॥ श्री हरि:॥

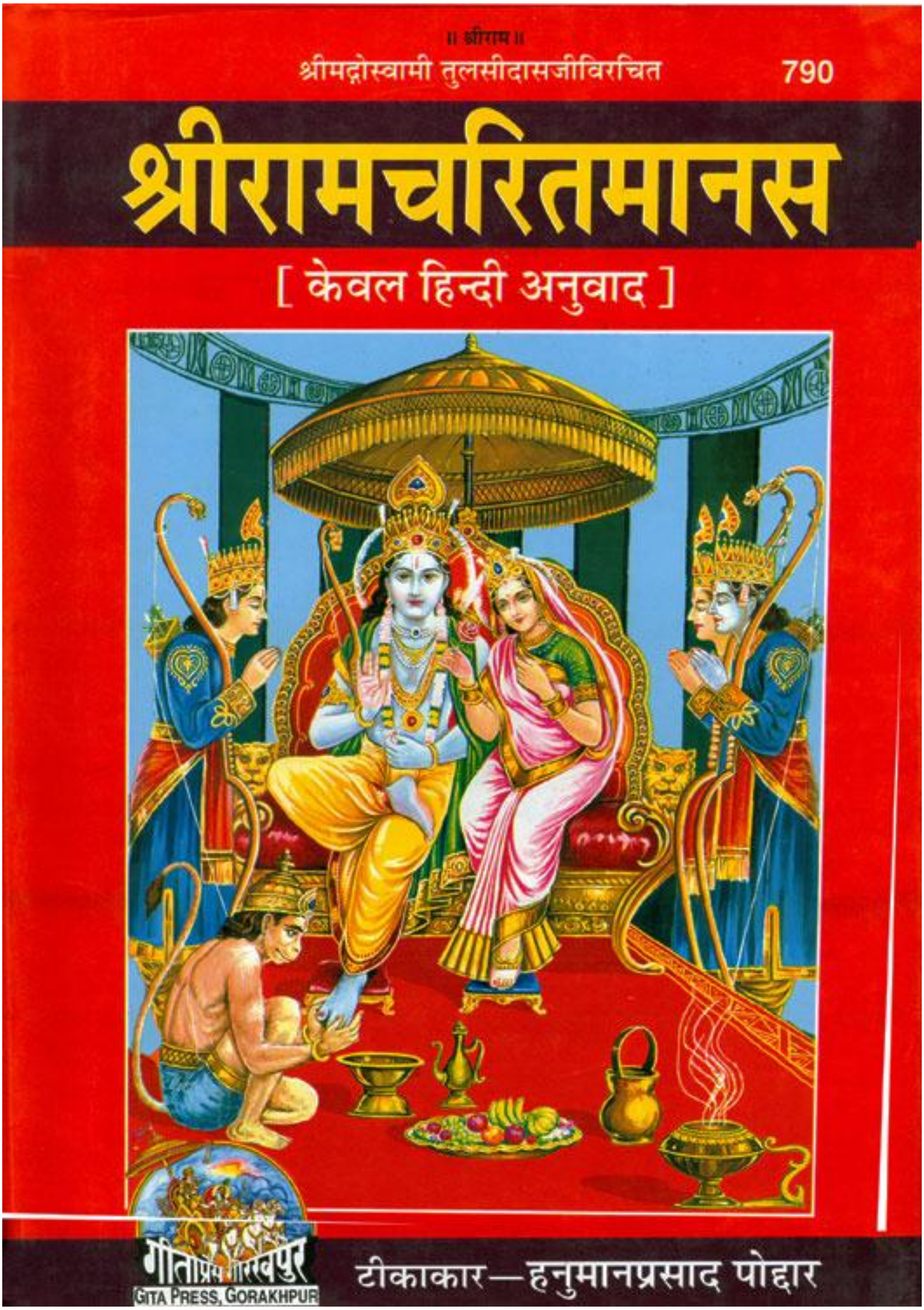

॥ श्रीराम ॥

श्रीमद्गोस्वामी तुलसीदासजीविरचित 790

श्रीरामचरितमानस

[केवल हिन्दी अनुवाद]

गीताप्रेस गोरखपुर
GITA PRESS, GORAKHPUR

टीकाकार—हनुमानप्रसाद पोद्दार

श्रीरामचरितमानस-सम्पूर्ण (हिन्दी अर्थ सहित),गीताप्रेस गोरखपुर , टीकाकार – श्री हनुमान प्रसाद जी पोद्दार-भाईजी

श्रीरामचरितमानस

बालकाण्ड

प्रथम सोपान-मंगलाचरण

श्लोक :

* वर्णानामर्थसंघानां रसानां छन्दसामपि।
मंगलानां च कर्त्तारौ वन्दे वाणीविनायकौ॥1॥

भावार्थ:-अक्षरों, अर्थ समूहों, रसों, छन्दों और मंगलों को करने वाली सरस्वतीजी और गणेशजी की मैं वंदना करता हूँ॥1॥

* भवानीशंकरौ वन्दे श्रद्धाविश्वासरूपिणौ।
याभ्यां विना न पश्यन्ति सिद्धाः स्वान्तःस्थमीश्वरम्॥2॥

भावार्थ:-श्रद्धा और विश्वास के स्वरूप श्री पार्वतीजी और श्री शंकरजी की मैं वंदना करता हूँ, जिनके बिना सिद्धजन अपने अन्तःकरण में स्थित ईश्वर को नहीं देख सकते॥2॥

* वन्दे बोधमयं नित्यं गुरुं शंकररूपिणम्।
यमाश्रितो हि वक्रोऽपि चन्द्रः सर्वत्र वन्द्यते॥3॥

भावार्थ:-ज्ञानमय, नित्य, शंकर रूपी गुरु की मैं वन्दना करता हूँ, जिनके आश्रित होने से ही टेढ़ा चन्द्रमा भी सर्वत्र वन्दित होता है॥3॥

* सीतारामगुणग्रामपुण्यारण्यविहारिणौ।
वन्दे विशुद्धविज्ञानौ कवीश्वरकपीश्वरौ॥4॥

भावार्थ:-श्री सीतारामजी के गुणसमूह रूपी पवित्र वन में विहार करने वाले, विशुद्ध विज्ञान सम्पन्न कवीश्वर श्री वाल्मीकिजी और कपीश्वर श्री हनुमानजी की मैं वन्दना करता हूँ॥4॥

* उद्भवस्थितिसंहारकारिणीं क्लेशहारिणीम्।
सर्वश्रेयस्करीं सीतां नतोऽहं रामवल्लभाम्॥5॥

भावार्थ:-उत्पत्ति, स्थिति (पालन) और संहार करने वाली, क्लेशों को हरने वाली तथा सम्पूर्ण कल्याणों को करने वाली श्री रामचन्द्रजी की प्रियतमा श्री सीताजी को मैं नमस्कार करता हूँ॥5॥

* यन्मायावशवर्ति विश्वमखिलं ब्रह्मादिदेवासुरा
यत्सत्त्वादमृषैव भाति सकलं रज्जौ यथाहेर्भ्रमः।
यत्पादप्लवमेकमेव हि भवाम्भोधेस्तितीर्षावतां
वन्देऽहं तमशेषकारणपरं रामाख्यमीशं हरिम्॥6॥

भावार्थ:-जिनकी माया के वशीभूत सम्पूर्ण विश्व, ब्रह्मादि देवता और असुर हैं, जिनकी सत्ता से रस्सी में सर्प के भ्रम की भाँति यह सारा दृश्य जगत् सत्य ही प्रतीत होता है और जिनके केवल चरण ही भवसागर से तरने की इच्छा वालों के लिए एकमात्र नौका हैं, उन समस्त कारणों से पर (सब कारणों के कारण और सबसे श्रेष्ठ) राम कहलाने वाले भगवान हरि की मैं वंदना करता हूँ॥6॥

* नानापुराणनिगमागमसम्मतं यद्
रामायणे निगदितं क्वचिदन्यतोऽपि।
स्वान्तःसुखाय तुलसी रघुनाथगाथा
भाषानिबन्धमतिमंजुलमातनोति॥7॥

भावार्थ:-अनेक पुराण, वेद और (तंत्र) शास्त्र से सम्मत तथा जो रामायण में वर्णित है और कुछ अन्यत्र से भी उपलब्ध श्री रघुनाथजी की कथा को तुलसीदास अपने अन्तःकरण के सुख के लिए अत्यन्त मनोहर भाषा रचना में विस्तृत करता है॥7॥

सोरठा :

* जो सुमिरत सिधि होइ गन नायक करिबर बदन।
करउ अनुग्रह सोइ बुद्धि रासि सुभ गुन सदन॥1॥

भावार्थ:-जिन्हें स्मरण करने से सब कार्य सिद्ध होते हैं, जो गणों के स्वामी और सुंदर हाथी के मुख वाले हैं, वे ही बुद्धि के राशि और शुभ गुणों के धाम (श्री गणेशजी) मुझ पर कृपा करें॥1॥

* मूक होइ बाचाल पंगु चढ़इ गिरिबर गहन।
जासु कृपाँ सो दयाल द्रवउ सकल कलिमल दहन॥2॥

भावार्थ:-जिनकी कृपा से गूँगा बहुत सुंदर बोलने वाला हो जाता है और लँगड़ा-लूला दुर्गम पहाड़ पर चढ़ जाता है, वे कलियुग के सब पापों को जला डालने वाले दयालु (भगवान) मुझ पर द्रवित हों (दया करें)॥2॥

* नील सरोरुह स्याम तरुन अरुन बारिज नयन।
करउ सो मम उर धाम सदा छीरसागर सयन॥3॥

भावार्थ:-जो नीलकमल के समान श्यामवर्ण हैं, पूर्ण खिले हुए लाल कमल के समान जिनके नेत्र हैं और जो सदा क्षीरसागर पर शयन करते हैं, वे भगवान् (नारायण) मेरे हृदय में निवास करें॥3॥

* कुंद इंदु सम देह उमा रमन करुना अयन।
जाहि दीन पर नेह करउ कृपा मर्दन मयन॥4॥

भावार्थ:-जिनका कुंद के पुष्प और चन्द्रमा के समान (गौर) शरीर है, जो पार्वतीजी के प्रियतम और दया के धाम हैं और जिनका दीनों पर स्नेह है, वे कामदेव का मर्दन करने वाले (शंकरजी) मुझ पर कृपा करें॥4॥

गुरु वंदना

* बंदउँ गुरु पद कंज कृपा सिंधु नररूप हरि।

महामोह तम पुंज जासु बचन रबि कर निकर॥5॥

भावार्थ:-मैं उन गुरु महाराज के चरणकमल की वंदना करता हूँ, जो कृपा के समुद्र और नर रूप में श्री हरि ही हैं और जिनके वचन महामोह रूपी घने अन्धकार का नाश करने के लिए सूर्य किरणों के समूह हैं॥5॥

चौपाई :

* बंदऊँ गुरु पद पदुम परागा। सुरुचि सुबास सरस अनुरागा॥
अमिअ मूरिमय चूरन चारू। समन सकल भव रुज परिवारू॥1॥

भावार्थ:-मैं गुरु महाराज के चरण कमलों की रज की वन्दना करता हूँ, जो सुरुचि (सुंदर स्वाद), सुगंध तथा अनुराग रूपी रस से पूर्ण है। वह अमर मूल (संजीवनी जड़ी) का सुंदर चूर्ण है, जो सम्पूर्ण भव रोगों के परिवार को नाश करने वाला है॥1॥

* सुकृति संभु तन बिमल बिभूती। मंजुल मंगल मोद प्रसूती॥
जन मन मंजु मुकुर मल हरनी। किएँ तिलक गुन गन बस करनी॥2॥

भावार्थ:-वह रज सुकृति (पुण्यवान् पुरुष) रूपी शिवजी के शरीर पर सुशोभित निर्मल विभूति है और सुंदर कल्याण और आनन्द की जननी है, भक्त के मन रूपी सुंदर दर्पण के मैल को दूर करने वाली और तिलक करने से गुणों के समूह को वश में करने वाली है॥2॥

* श्री गुर पद नख मनि गन जोती। सुमिरत दिब्य दृष्टि हियँ होती॥
दलन मोह तम सो सप्रकासू। बड़े भाग उर आवइ जासू॥3॥

भावार्थ:-श्री गुरु महाराज के चरण-नखों की ज्योति मणियों के प्रकाश के समान है, जिसके स्मरण करते ही हृदय में दिव्य दृष्टि उत्पन्न हो जाती है। वह प्रकाश अज्ञान रूपी अन्धकार का नाश करने वाला है, वह जिसके हृदय में आ जाता है, उसके बड़े भाग्य हैं॥3॥

* उघरहिं बिमल बिलोचन ही के। मिटहिं दोष दुख भव रजनी के॥
सूझहिं राम चरित मनि मानिक। गुपुत प्रगट जहँ जो जेहि खानिक॥4॥

भावार्थ:-उसके हृदय में आते ही हृदय के निर्मल नेत्र खुल जाते हैं और संसार रूपी रात्रि के दोष-दुःख मिट जाते हैं एवं श्री रामचरित्र रूपी मणि और माणिक्य, गुप्त और प्रकट जहाँ जो जिस खान में है, सब दिखाई पड़ने लगते हैं-॥4॥

दोहा :

* जथा सुअंजन अंजि दृग साधक सिद्ध सुजान।
कौतुक देखत सैल बन भूतल भूरि निधान॥1॥

भावार्थ:-जैसे सिद्धांजन को नेत्रों में लगाकर साधक, सिद्ध और सुजान पर्वतों, वनों और पृथ्वी के अंदर कौतुक से ही बहुत सी खानें देखते हैं॥1॥

चौपाई :

* गुरु पद रज मृदु मंजुल अंजन। नयन अमिअ दृग दोष बिभंजन॥
तेहिं करि बिमल बिबेक बिलोचन। बरनउँ राम चरित भव मोचन॥1॥

भावार्थ:-श्री गुरु महाराज के चरणों की रज कोमल और सुंदर नयनामृत अंजन है, जो नेत्रों के दोषों का नाश करने वाला है। उस अंजन से विवेक रूपी नेत्रों को निर्मल करके मैं संसाररूपी बंधन से छुड़ाने वाले श्री रामचरित्र का वर्णन करता हूँ॥1॥

ब्राह्मण-संत वंदना

* बंदउँ प्रथम महीसुर चरना। मोह जनित संसय सब हरना॥
सुजन समाज सकल गुन खानी। करउँ प्रनाम सप्रेम सुबानी॥2॥

भावार्थ:-पहले पृथ्वी के देवता ब्राह्मणों के चरणों की वन्दना करता हूँ, जो अज्ञान से उत्पन्न सब संदेहों को हरने वाले हैं। फिर सब गुणों की खान संत समाज को प्रेम सहित सुंदर वाणी से प्रणाम करता हूँ॥2॥

* साधु चरित सुभ चरित कपासू। निरस बिसद गुनमय फल जासू॥
जो सहि दुख परछिद्र दुरावा। बंदनीय जेहिं जग जस पावा॥3॥

भावार्थ:-संतों का चरित्र कपास के चरित्र (जीवन) के समान शुभ है, जिसका फल नीरस, विशद और गुणमय होता है। (कपास की डोडी नीरस होती है, संत चरित्र में भी विषयासक्ति नहीं है, इससे वह भी नीरस है, कपास उज्ज्वल होता है, संत का हृदय भी अज्ञान और पाप रूपी अन्धकार से रहित होता है, इसलिए वह विशद है और कपास में गुण (तंतु) होते हैं, इसी प्रकार संत का चरित्र भी सद्‌गुणों का भंडार होता है, इसलिए वह गुणमय है।) (जैसे कपास का धागा सुई के किए हुए छेद को अपना तन देकर ढँक देता है, अथवा कपास जैसे लोढ़े जाने, काते जाने और बुने जाने का कष्ट सहकर भी वस्त्र के रूप में परिणत होकर दूसरों के गोपनीय स्थानों को ढँकता है, उसी प्रकार) संत स्वयं दुःख सहकर दूसरों के छिद्रों (दोषों) को ढँकता है, जिसके कारण उसने जगत में वंदनीय यश प्राप्त किया है॥3॥

* मुद मंगलमय संत समाजू। जो जग जंगम तीरथराजू॥
राम भक्ति जहँ सुरसरि धारा। सरसइ ब्रह्म बिचार प्रचारा॥4॥

भावार्थ:-संतों का समाज आनंद और कल्याणमय है, जो जगत में चलता-फिरता तीर्थराज (प्रयाग) है। जहाँ (उस संत समाज रूपी प्रयागराज में) राम भक्ति रूपी गंगाजी की धारा है और ब्रह्मविचार का प्रचार सरस्वतीजी हैं॥4॥

* बिधि निषेधमय कलिमल हरनी। करम कथा रबिनंदनि बरनी॥
हरि हर कथा बिराजति बेनी। सुनत सकल मुद मंगल देनी॥5॥

भावार्थ:-विधि और निषेध (यह करो और यह न करो) रूपी कर्मों की कथा कलियुग के पापों को हरने वाली सूर्यतनया यमुनाजी हैं और भगवान विष्णु और शंकरजी की कथाएँ त्रिवेणी रूप से सुशोभित हैं, जो सुनते ही सब आनंद और कल्याणों को देने वाली हैं॥5॥

* बटु बिस्वास अचल निज धरमा। तीरथराज समाज सुकरमा॥
सबहि सुलभ सब दिन सब देसा। सेवत सादर समन कलेसा॥6॥

भावार्थ:-(उस संत समाज रूपी प्रयाग में) अपने धर्म में जो अटल विश्वास है, वह अक्षयवट है और शुभ कर्म ही उस तीर्थराज का समाज (परिकर) है। वह (संत समाज रूपी प्रयागराज) सब देशों में, सब समय सभी को सहज ही में प्राप्त हो सकता है और आदरपूर्वक सेवन करने से क्लेशों को नष्ट करने वाला है॥6॥

* अकथ अलौकिक तीरथराऊ। देह सद्य फल प्रगट प्रभाऊ॥7॥

भावार्थ:-वह तीर्थराज अलौकिक और अकथनीय है एवं तत्काल फल देने वाला है, उसका प्रभाव प्रत्यक्ष है॥7॥

दोहा :

* सुनि समुझहिं जन मुदित मन मज्जहिं अति अनुराग।
लहहिं चारि फल अछत तनु साधु समाज प्रयाग॥2॥

भावार्थ:-जो मनुष्य इस संत समाज रूपी तीर्थराज का प्रभाव प्रसन्न मन से सुनते और समझते हैं और फिर अत्यन्त प्रेमपूर्वक इसमें गोते लगाते हैं, वे इस शरीर के रहते ही धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष- चारों फल पा जाते हैं॥2॥

चौपाई :

* मज्जन फल पेखिअ ततकाला। काक होहिं पिक बकउ मराला॥
सुनि आचरज करै जनि कोई। सतसंगति महिमा नहिं गोई॥1॥

भावार्थ:-इस तीर्थराज में स्नान का फल तत्काल ऐसा देखने में आता है कि कौए कोयल बन जाते हैं और बगुले हंस। यह सुनकर कोई आश्चर्य न करे, क्योंकि सत्संग की महिमा छिपी नहीं है॥1॥

* बालमीक नारद घटजोनी। निज निज मुखनि कही निज होनी॥
जलचर थलचर नभचर नाना। जे जड़ चेतन जीव जहाना॥2॥

भावार्थ:-वाल्मीकिजी, नारदजी और अगस्त्यजी ने अपने-अपने मुखों से अपनी होनी (जीवन का वृत्तांत) कही है। जल में रहने वाले, जमीन पर चलने वाले और आकाश में विचरने वाले नाना प्रकार के जड़-चेतन जितने जीव इस जगत में हैं॥2॥

* मति कीरति गति भूति भलाई। जब जेहिं जतन जहाँ जेहिं पाई॥
सो जानब सतसंग प्रभाऊ। लोकहुँ बेद न आन उपाऊ॥3॥

भावार्थ:-उनमें से जिसने जिस समय जहाँ कहीं भी जिस किसी यत्न से बुद्धि, कीर्ति, सद्गति, विभूति (ऐश्वर्य) और भलाई पाई है, सो सब सत्संग का ही प्रभाव समझना चाहिए। वेदों में और लोक में इनकी प्राप्ति का दूसरा कोई उपाय नहीं है॥3॥

* बिनु सतसंग बिबेक न होई। राम कृपा बिनु सुलभ न सोई॥
सतसंगत मुद मंगल मूला। सोई फल सिधि सब साधन फूला॥4॥

भावार्थ:-सत्संग के बिना विवेक नहीं होता और श्री रामजी की कृपा के बिना वह सत्संग सहज में मिलता नहीं। सत्संगति आनंद और कल्याण की जड़ है। सत्संग की सिद्धि (प्राप्ति) ही फल है और सब साधन तो फूल है॥4॥

* सठ सुधरहिं सतसंगति पाई। पारस परस कुधात सुहाई॥

बिधि बस सुजन कुसंगत परहीं। फनि मनि सम निज गुन अनुसरहीं॥5॥

भावार्थ:-दुष्ट भी सत्संगति पाकर सुधर जाते हैं, जैसे पारस के स्पर्श से लोहा सुहावना हो जाता है (सुंदर सोना बन जाता है), किन्तु दैवयोग से यदि कभी सज्जन कुसंगति में पड़ जाते हैं, तो वे वहाँ भी साँप की मणि के समान अपने गुणों का ही अनुसरण करते हैं। (अर्थात् जिस प्रकार साँप का संसर्ग पाकर भी मणि उसके विष को ग्रहण नहीं करती तथा अपने सहज गुण प्रकाश को नहीं छोड़ती, उसी प्रकार साधु पुरुष दुष्टों के संग में रहकर भी दूसरों को प्रकाश ही देते हैं, दुष्टों का उन पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता।)॥5॥

* बिधि हरि हर कबि कोबिद बानी। कहत साधु महिमा सकुचानी॥
सो मो सन कहि जात न कैसें। साक बनिक मनि गुन गन जैसें॥6॥

भावार्थ:-ब्रह्मा, विष्णु, शिव, कवि और पण्डितों की वाणी भी संत महिमा का वर्णन करने में सकुचाती है, वह मुझसे किस प्रकार नहीं कही जाती, जैसे साग-तरकारी बेचने वाले से मणियों के गुण समूह नहीं कहे जा सकते॥6॥

दोहा :

* बंदउँ संत समान चित हित अनहित नहिं कोइ।
अंजलि गत सुभ सुमन जिमि सम सुगंध कर दोइ॥3 (क)॥

भावार्थ:-मैं संतों को प्रणाम करता हूँ, जिनके चित्त में समता है, जिनका न कोई मित्र है और न शत्रु! जैसे अंजलि में रखे हुए सुंदर फूल (जिस हाथ ने फूलों को तोड़ा और जिसने उनको रखा उन) दोनों ही हाथों को समान रूप से सुगंधित करते हैं (वैसे ही संत शत्रु और मित्र दोनों का ही समान रूप से कल्याण करते हैं।)॥3 (क)॥

* संत सरल चित जगत हित जानि सुभाउ सनेहु।
बालबिनय सुनि करि कृपा राम चरन रति देहु॥ 3 (ख)

भावार्थ:-संत सरल हृदय और जगत के हितकारी होते हैं, उनके ऐसे स्वभाव और स्नेह को जानकर मैं विनय करता हूँ, मेरी इस बाल-विनय को सुनकर कृपा करके श्री रामजी के चरणों में मुझे प्रीति दें॥ 3 (ख)॥

खल वंदना

चौपाई :

* बहुरि बंदि खल गन सतिभाएँ। जे बिनु काज दाहिनेहु बाएँ॥
पर हित हानि लाभ जिन्ह केरें। उजरें हरष बिषाद बसेरें॥1॥

भावार्थ:-अब मैं सच्चे भाव से दुष्टों को प्रणाम करता हूँ, जो बिना ही प्रयोजन, अपना हित करने वाले के भी प्रतिकूल आचरण करते हैं। दूसरों के हित की हानि ही जिनकी दृष्टि में लाभ है, जिनको दूसरों के उजड़ने में हर्ष और बसने में विषाद होता है॥1॥

* हरि हर जस राकेस राहु से। पर अकाज भट सहसबाहु से॥
जे पर दोष लखहिं सहसाखी। पर हित घृत जिन्ह के मन माखी॥2॥

भावार्थ:-जो हरि और हर के यश रूपी पूर्णिमा के चन्द्रमा के लिए राहु के समान हैं (अर्थात जहाँ कहीं भगवान विष्णु या शंकर के यश का वर्णन होता है, उसी में वे बाधा देते हैं) और दूसरों की बुराई करने में सहस्रबाहु के समान वीर हैं। जो दूसरों के दोषों को हजार आँखों से देखते हैं और दूसरों के हित रूपी घी के लिए जिनका मन मक्खी के समान है (अर्थात् जिस प्रकार मक्खी घी में गिरकर उसे खराब कर देती है और स्वयं भी मर जाती है, उसी प्रकार दुष्ट लोग दूसरों के बने-बनाए काम को अपनी हानि करके भी बिगाड़ देते हैं)॥2॥

*तेज कृसानु रोष महिषेसा। अघ अवगुन धन धनी धनेसा॥
उदय केत सम हित सबही के। कुंभकरन सम सोवत नीके॥3॥

भावार्थ:-जो तेज (दूसरों को जलाने वाले ताप) में अग्नि और क्रोध में यमराज के समान हैं, पाप और अवगुण रूपी धन में कुबेर के समान धनी हैं, जिनकी बढ़ती सभी के हित का नाश करने के लिए केतु (पुच्छल तारे) के समान है और जिनके कुम्भकर्ण की तरह सोते रहने में ही भलाई है॥3॥

* पर अकाजु लगि तनु परिहरहीं। जिमि हिम उपल कृषी दलि गरहीं॥
बंदउँ खल जस सेष सरोषा। सहस बदन बरनइ पर दोषा॥4॥

भावार्थ:-जैसे ओले खेती का नाश करके आप भी गल जाते हैं, वैसे ही वे दूसरों का काम बिगाड़ने के लिए अपना शरीर तक छोड़ देते हैं। मैं दुष्टों को (हजार मुख वाले) शेषजी के समान समझकर प्रणाम करता हूँ, जो पराए दोषों का हजार मुखों से बड़े रोष के साथ वर्णन करते हैं॥4॥

* पुनि प्रनवउँ पृथुराज समाना। पर अघ सुनइ सहस दस काना॥
बहुरि सक्र सम बिनवउँ तेही। संतत सुरानीक हित जेही॥5॥

भावार्थ:-पुनः उनको राजा पृथु (जिन्होंने भगवान का यश सुनने के लिए दस हजार कान माँगे थे) के समान जानकर प्रणाम करता हूँ, जो दस हजार कानों से दूसरों के पापों को सुनते हैं। फिर इन्द्र के समान मानकर उनकी विनय करता हूँ, जिनको सुरा (मदिरा) नीकी और हितकारी मालूम देती है (इन्द्र के लिए भी सुरानीक अर्थात् देवताओं की सेना हितकारी है)॥5॥

* बचन बज्र जेहि सदा पिआरा। सहस नयन पर दोष निहारा॥6॥

भावार्थ:-जिनको कठोर वचन रूपी वज्र सदा प्यारा लगता है और जो हजार आँखों से दूसरों के दोषों को देखते हैं॥6॥

दोहा :

* उदासीन अरि मीत हित सुनत जरहिं खल रीति।
जानि पानि जुग जोरि जन बिनती करइ सप्रीति॥4॥

भावार्थ:-दुष्टों की यह रीति है कि वे उदासीन, शत्रु अथवा मित्र, किसी का भी हित सुनकर जलते हैं। यह जानकर दोनों हाथ जोड़कर यह जन प्रेमपूर्वक उनसे विनय करता है॥4॥

चौपाई :

* मैं अपनी दिसि कीन्ह निहोरा। तिन्ह निज ओर न लाउब भोरा॥
बायस पलिअहिं अति अनुरागा। होहिं निरामिष कबहुँ कि कागा॥1॥

भावार्थ:-मैंने अपनी ओर से विनती की है, परन्तु वे अपनी ओर से कभी नहीं चूकेंगे। कौओं को बड़े प्रेम से पालिए, परन्तु वे क्या कभी मांस के त्यागी हो सकते हैं?॥1॥

संत-असंत वंदना

* बंदउँ संत असज्जन चरना। दुःखप्रद उभय बीच कछु बरना॥
बिछुरत एक प्रान हरि लेहीं। मिलत एक दुख दारुन देहीं॥2॥

भावार्थ:-अब मैं संत और असंत दोनों के चरणों की वन्दना करता हूँ, दोनों ही दुःख देने वाले हैं, परन्तु उनमें कुछ अन्तर कहा गया है। वह अंतर यह है कि एक (संत) तो बिछुड़ते समय प्राण हर लेते हैं और दूसरे (असंत) मिलते हैं, तब दारुण दुःख देते हैं। (अर्थात् संतों का बिछुड़ना मरने के समान दुःखदायी होता है और असंतों का मिलना।)॥2॥

* उपजहिं एक संग जग माहीं। जलज जोंक जिमि गुन बिलगाहीं॥

सुधा सुरा सम साधु असाधू। जनक एक जग जलधि अगाधू॥3॥

भावार्थ:-दोनों (संत और असंत) जगत में एक साथ पैदा होते हैं, पर (एक साथ पैदा होने वाले) कमल और जोंक की तरह उनके गुण अलग-अलग होते हैं। (कमल दर्शन और स्पर्श से सुख देता है, किन्तु जोंक शरीर का स्पर्श पाते ही रक्त चूसने लगती है।) साधु अमृत के समान (मृत्यु रूपी संसार से उबारने वाला) और असाधु मदिरा के समान (मोह, प्रमाद और जड़ता उत्पन्न करने वाला) है, दोनों को उत्पन्न करने वाला जगत रूपी अगाध समुद्र एक ही है। (शास्त्रों में समुद्रमन्थन से ही अमृत और मदिरा दोनों की उत्पत्ति बताई गई है।)॥3॥

*भल अनभल निज निज करतूती। लहत सुजस अपलोक बिभूती॥

सुधा सुधाकर सुरसरि साधू। गरल अनल कलिमल सरि ब्याधू॥4॥

गुन अवगुन जानत सब कोई। जो जेहि भाव नीक तेहि सोई॥5॥

भावार्थ:-भले और बुरे अपनी-अपनी करनी के अनुसार सुंदर यश और अपयश की सम्पत्ति पाते हैं। अमृत, चन्द्रमा, गंगाजी और साधु एवं विष, अग्नि, कलियुग के पापों की नदी अर्थात्‌ कर्मनाशा और हिंसा करने वाला व्याध, इनके गुण-अवगुण सब कोई जानते हैं, किन्तु जिसे जो भाता है, उसे वही अच्छा लगता है॥4-5॥

दोहा :

* भलो भलाइहि पै लहइ लहइ निचाइहि नीचु।

सुधा सराहिअ अमरताँ गरल सराहिअ मीचु॥5॥

भावार्थ:-भला भलाई ही ग्रहण करता है और नीच नीचता को ही ग्रहण किए रहता है। अमृत की सराहना अमर करने में होती है और विष की मारने में॥5॥

चौपाई :

* खल अघ अगुन साधु गुन गाहा। उभय अपार उदधि अवगाहा॥
तेहि तें कछु गुन दोष बखाने। संग्रह त्याग न बिनु पहिचाने॥1॥

भावार्थ:-दुष्टों के पापों और अवगुणों की और साधुओं के गुणों की कथाएँ- दोनों ही अपार और अथाह समुद्र हैं। इसी से कुछ गुण और दोषों का वर्णन किया गया है, क्योंकि बिना पहचाने उनका ग्रहण या त्याग नहीं हो सकता॥1॥

* भलेउ पोच सब बिधि उपजाए। गनि गुन दोष बेद बिलगाए॥
कहहिं बेद इतिहास पुराना। बिधि प्रपंचु गुन अवगुन साना॥2॥

भावार्थ:-भले-बुरे सभी ब्रह्मा के पैदा किए हुए हैं, पर गुण और दोषों को विचार कर वेदों ने उनको अलग-अलग कर दिया है। वेद, इतिहास और पुराण कहते हैं कि ब्रह्मा की यह सृष्टि गुण-अवगुणों से सनी हुई है॥2॥

* दुख सुख पाप पुन्य दिन राती। साधु असाधु सुजाति कुजाती॥
दानव देव ऊँच अरु नीचू। अमिअ सुजीवनु माहुरु मीचू॥3॥
माया ब्रह्म जीव जगदीसा। लच्छि अलच्छि रंक अवनीसा॥
कासी मग सुरसरि क्रमनासा। मरु मारव महिदेव गवासा॥4॥
सरग नरक अनुराग बिरागा। निगमागम गुन दोष बिभागा॥5॥

भावार्थ:-दुःख-सुख, पाप-पुण्य, दिन-रात, साधु-असाधु, सुजाति-कुजाति, दानव-देवता, ऊँच-नीच, अमृत-विष, सुजीवन (सुंदर जीवन)-मृत्यु, माया-ब्रह्म, जीव-ईश्वर, सम्पत्ति-दरिद्रता, रंक-राजा, काशी-मगध, गंगा-कर्मनाशा, मारवाड़-मालवा, ब्राह्मण-कसाई, स्वर्ग-नरक, अनुराग-वैराग्य (ये सभी पदार्थ ब्रह्मा की सृष्टि में हैं।) वेद-शास्त्रों ने उनके गुण-दोषों का विभाग कर दिया है॥3-5॥

दोहा :

* जड़ चेतन गुन दोषमय बिस्व कीन्ह करतार।
संत हंस गुन गहहिं पय परिहरि बारि बिकार॥6॥

भावार्थ:-विधाता ने इस जड़-चेतन विश्व को गुण-दोषमय रचा है, किन्तु संत रूपी हंस दोष रूपी जल को छोड़कर गुण रूपी दूध को ही ग्रहण करते हैं॥6॥

चौपाई :

* अस बिबेक जब देइ बिधाता। तब तजि दोष गुनहिं मनु राता॥
काल सुभाउ करम बरिआईं। भलेउ प्रकृति बस चुकइ भलाईं॥1॥

भावार्थ:-विधाता जब इस प्रकार का (हंस का सा) विवेक देते हैं, तब दोषों को छोड़कर मन गुणों में अनुरक्त होता है। काल स्वभाव और कर्म की प्रबलता से भले लोग (साधु) भी माया के वश में होकर कभी-कभी भलाई से चूक जाते हैं॥1॥

* सो सुधारि हरिजन जिमि लेहीं। दलि दुख दोष बिमल जसु देहीं॥
खलउ करहिं भल पाइ सुसंगू। मिटइ न मलिन सुभाउ अभंगू॥2॥

भावार्थ:-भगवान के भक्त जैसे उस चूक को सुधार लेते हैं और दुःख-दोषों को मिटाकर निर्मल यश देते हैं, वैसे ही दुष्ट भी कभी-कभी उत्तम संग पाकर भलाई करते हैं, परन्तु उनका कभी भंग न होने वाला मलिन स्वभाव नहीं मिटता॥2॥

* लखि सुबेष जग बंचक जेऊ। बेष प्रताप पूजिअहिं तेऊ॥
उघरहिं अंत न होइ निबाहू। कालनेमि जिमि रावन राहू॥3॥

भावार्थ:-जो (वेषधारी) ठग हैं, उन्हें भी अच्छा (साधु का सा) वेष बनाए देखकर वेष के प्रताप से जगत पूजता है, परन्तु एक न एक दिन वे चौड़े

आ ही जाते हैं, अंत तक उनका कपट नहीं निभता, जैसे कालनेमि, रावण और राहु का हाल हुआ ॥3॥

* किएहुँ कुबेषु साधु सनमानू। जिमि जग जामवंत हनुमानू॥
हानि कुसंग सुसंगति लाहू। लोकहुँ बेद बिदित सब काहू॥4॥

भावार्थ:-बुरा वेष बना लेने पर भी साधु का सम्मान ही होता है, जैसे जगत में जाम्बवान् और हनुमान्‌जी का हुआ। बुरे संग से हानि और अच्छे संग से लाभ होता है, यह बात लोक और वेद में है और सभी लोग इसको जानते हैं॥4॥

* गगन चढ़इ रज पवन प्रसंगा। कीचहिं मिलइ नीच जल संगा॥
साधु असाधु सदन सुक सारीं। सुमिरहिं राम देहिं गनि गारीं॥5॥

भावार्थ:-पवन के संग से धूल आकाश पर चढ़ जाती है और वही नीच (नीचे की ओर बहने वाले) जल के संग से कीचड़ में मिल जाती है। साधु के घर के तोता-मैना राम-राम सुमिरते हैं और असाधु के घर के तोता-मैना गिन-गिनकर गालियाँ देते हैं॥5॥

* धूम कुसंगति कारिख होई। लिखिअ पुरान मंजु मसि सोई॥
सोइ जल अनल अनिल संघाता। होइ जलद जग जीवन दाता॥6॥

भावार्थ:-कुसंग के कारण धुआँ कालिख कहलाता है, वही धुआँ (सुसंग से) सुंदर स्याही होकर पुराण लिखने के काम में आता है और वही धुआँ जल, अग्नि और पवन के संग से बादल होकर जगत को जीवन देने वाला बन जाता है॥6॥

दोहा :

* ग्रह भेजष जल पवन पट पाइ कुजोग सुजोग।
होहिं कुबस्तु सुबस्तु जग लखहिं सुलच्छन लोग॥7 (क)॥

भावार्थ:-ग्रह, औषधि, जल, वायु और वस्त्र- ये सब भी कुसंग और सुसंग पाकर संसार में बुरे और भले पदार्थ हो जाते हैं। चतुर एवं विचारशील पुरुष ही इस बात को जान पाते हैं॥7 (क)॥

* सम प्रकास तम पाख दुहुँ नाम भेद बिधि कीन्ह।

ससि सोषक पोषक समुझि जग जस अपजस दीन्ह॥7 (ख)॥

भावार्थ:-महीने के दोनों पखवाड़ों में उजियाला और अँधेरा समान ही रहता है, परन्तु विधाता ने इनके नाम में भेद कर दिया है (एक का नाम शुक्ल और दूसरे का नाम कृष्ण रख दिया)। एक को चन्द्रमा का बढ़ाने वाला और दूसरे को उसका घटाने वाला समझकर जगत ने एक को सुयश और दूसरे को अपयश दे दिया॥7 (ख)॥

रामरूप से जीवमात्र की वंदना :

* जड़ चेतन जग जीव जत सकल राममय जानि।

बंदउँ सब के पद कमल सदा जोरि जुग पानि॥7(ग)॥

भावार्थ:-जगत में जितने जड़ और चेतन जीव हैं, सबको राममय जानकर मैं उन सबके चरणकमलों की सदा दोनों हाथ जोड़कर वन्दना करता हूँ॥7 (ग)॥

* देव दनुज नर नाग खग प्रेत पितर गंधर्ब।

बंदउँ किंनर रजनिचर कृपा करहु अब सर्ब॥7 (घ)

भावार्थ:-देवता, दैत्य, मनुष्य, नाग, पक्षी, प्रेत, पितर, गंधर्व, किन्नर और निशाचर सबको मैं प्रणाम करता हूँ। अब सब मुझ पर कृपा कीजिए॥7 (घ)॥

चौपाई :

* आकर चारि लाख चौरासी। जाति जीव जल थल नभ बासी॥

सीय राममय सब जग जानी। करउँ प्रनाम जोरि जुग पानी॥1॥

भावार्थ:-चौरासी लाख योनियों में चार प्रकार के (स्वेदज, अण्डज, उद्भिज्ज, जरायुज) जीव जल, पृथ्वी और आकाश में रहते हैं, उन सबसे भरे हुए इस सारे जगत को श्री सीताराममय जानकर मैं दोनों हाथ जोड़कर प्रणाम करता हूँ॥1॥

तुलसीदासजी की दीनता और राम भक्तिमयी कविता की महिमा

* जानि कृपाकर किंकर मोहू। सब मिलि करहु छाड़ि छल छोहू॥
निज बुधि बल भरोस मोहि नाहीं। तातें बिनय करउँ सब पाहीं॥2॥

भावार्थ:-मुझको अपना दास जानकर कृपा की खान आप सब लोग मिलकर छल छोड़कर कृपा कीजिए। मुझे अपने बुद्धि-बल का भरोसा नहीं है, इसीलिए मैं सबसे विनती करता हूँ॥2॥

* करन चहउँ रघुपति गुन गाहा। लघु मति मोरि चरित अवगाहा॥
सूझ न एकउ अंग उपाऊ। मन मति रंक मनोरथ राउ॥3॥

भावार्थ:-मैं श्री रघुनाथजी के गुणों का वर्णन करना चाहता हूँ, परन्तु मेरी बुद्धि छोटी है और श्री रामजी का चरित्र अथाह है। इसके लिए मुझे उपाय का एक भी अंग अर्थात् कुछ (लेशमात्र) भी उपाय नहीं सूझता। मेरे मन और बुद्धि कंगाल हैं, किन्तु मनोरथ राजा है॥3॥

* मति अति नीच ऊँचि रुचि आछी। चहिअ अमिअ जग जुरइ न छाछी॥
छमिहहिं सज्जन मोरि ढिठाई। सुनिहहिं बालबचन मन लाई॥4॥

भावार्थ:-मेरी बुद्धि तो अत्यन्त नीची है और चाह बड़ी ऊँची है, चाह तो अमृत पाने की है, पर जगत में जुड़ती छाछ भी नहीं। सज्जन मेरी ढिठाई को क्षमा करेंगे और मेरे बाल वचनों को मन लगाकर (प्रेमपूर्वक) सुनेंगे॥4॥

* जौं बालक कह तोतरि बाता। सुनहिं मुदित मन पितु अरु माता॥
हँसिहहिं कूर कुटिल कुबिचारी। जे पर दूषन भूषनधारी॥5॥

भावार्थ:-जैसे बालक जब तोतले वचन बोलता है, तो उसके माता-पिता उन्हें प्रसन्न मन से सुनते हैं, किन्तु क्रूर, कुटिल और बुरे विचार वाले लोग जो दूसरों के दोषों को ही भूषण रूप से धारण किए रहते हैं (अर्थात् जिन्हें पराए दोष ही प्यारे लगते हैं), हँसेंगे॥5॥

* निज कबित्त केहि लाग न नीका। सरस होउ अथवा अति फीका॥
जे पर भनिति सुनत हरषाहीं। ते बर पुरुष बहुत जग नाहीं॥6॥

भावार्थ:-रसीली हो या अत्यन्त फीकी, अपनी कविता किसे अच्छी नहीं लगती? किन्तु जो दूसरे की रचना को सुनकर हर्षित होते हैं, ऐसे उत्तम पुरुष जगत में बहुत नहीं हैं॥6॥

* जग बहु नर सर सरि सम भाई। जे निज बाढ़ि बढ़हि जल पाई॥
सज्जन सकृत सिंधु सम कोई। देखि पूर बिधु बाढ़इ जोई॥7॥

भावार्थ:-हे भाई! जगत में तालाबों और नदियों के समान मनुष्य ही अधिक हैं, जो जल पाकर अपनी ही बाढ़ से बढ़ते हैं (अर्थात् अपनी ही उन्नति से प्रसन्न होते हैं)। समुद्र सा तो कोई एक बिरला ही सज्जन होता है, जो चन्द्रमा को पूर्ण देखकर (दूसरों का उत्कर्ष देखकर) उमड़ पड़ता है॥7॥

दोहा :

* भाग छोट अभिलाषु बड़ करउँ एक बिस्वास।
पैहहिं सुख सुनि सुजन सब खल करिहहिं उपहास॥8॥

भावार्थ:-मेरा भाग्य छोटा है और इच्छा बहुत बड़ी है, परन्तु मुझे एक विश्वास है कि इसे सुनकर सज्जन सभी सुख पावेंगे और दुष्ट हँसी उड़ावेंगे॥8॥

चौपाई :

* खल परिहास होइ हित मोरा। काक कहहिं कलकंठ कठोरा॥
हंसहि बक दादुर चातकही। हँसहिं मलिन खल बिमल बतकही॥1॥

भावार्थ:-किन्तु दुष्टों के हँसने से मेरा हित ही होगा। मधुर कण्ठ वाली कोयल को कौए तो कठोर ही कहा करते हैं। जैसे बगुले हंस को और मेंढक पपीहे को हँसते हैं, वैसे ही मलिन मन वाले दुष्ट निर्मल वाणी को हँसते हैं॥1॥

* कबित रसिक न राम पद नेहू। तिन्ह कहँ सुखद हास रस एहू॥
भाषा भनिति भोरि मति मोरी। हँसिबे जो हँसें नहिं खोरी॥2॥

भावार्थ:-जो न तो कविता के रसिक हैं और न जिनका श्री रामचन्द्रजी के चरणों में प्रेम है, उनके लिए भी यह कविता सुखद हास्यरस का काम देगी। प्रथम तो यह भाषा की रचना है, दूसरे मेरी बुद्धि भोली है, इससे यह हँसने के योग्य ही है, हँसने में उन्हें कोई दोष नहीं॥2॥

* प्रभु पद प्रीति न सामुझि नीकी। तिन्हहि कथा सुनि लागिहि फीकी॥
हरि हर पद रति मति न कुतर की। तिन्ह कहँ मधुर कथा रघुबर की॥3॥

भावार्थ:-जिन्हें न तो प्रभु के चरणों में प्रेम है और न अच्छी समझ ही है, उनको यह कथा सुनने में फीकी लगेगी। जिनकी श्री हरि (भगवान विष्णु) और श्री हर (भगवान शिव) के चरणों में प्रीति है और जिनकी बुद्धि कुतर्क करने वाली नहीं है (जो श्री हरि-हर में भेद की या ऊँच-नीच की कल्पना नहीं करते), उन्हें श्री रघुनाथजी की यह कथा मीठी लगेगी॥3॥

* राम भगति भूषित जियँ जानी। सुनिहहिं सुजन सराहि सुबानी॥
कबि न होउँ नहिं बचन प्रबीनू। सकल कला सब बिद्या हीनू॥4॥

भावार्थ:-सज्जनगण इस कथा को अपने जी में श्री रामजी की भक्ति से भूषित जानकर सुंदर वाणी से सराहना करते हुए सुनेंगे। मैं न तो कवि हूँ, न वाक्य रचना में ही कुशल हूँ, मैं तो सब कलाओं तथा सब विद्याओं से रहित हूँ॥4॥

* आखर अरथ अलंकृति नाना। छंद प्रबंध अनेक बिधाना॥
भाव भेद रस भेद अपारा। कबित दोष गुन बिबिध प्रकारा॥5॥

भावार्थ:-नाना प्रकार के अक्षर, अर्थ और अलंकार, अनेक प्रकार की छंद रचना, भावों और रसों के अपार भेद और कविता के भाँति-भाँति के गुण-दोष होते हैं॥5॥

* कबित बिबेक एक नहिं मोरें। सत्य कहउँ लिखि कागद कोरें॥6॥

भावार्थ:-इनमें से काव्य सम्बन्धी एक भी बात का ज्ञान मुझमें नहीं है, यह मैं कोरे कागज पर लिखकर (शपथपूर्वक) सत्य-सत्य कहता हूँ॥6॥

दोहा :

* भनिति मोरि सब गुन रहित बिस्व बिदित गुन एक।
सो बिचारि सुनिहहिं सुमति जिन्ह कें बिमल बिबेक॥9॥

भावार्थ:-मेरी रचना सब गुणों से रहित है, इसमें बस, जगत्प्रसिद्ध एक गुण है। उसे विचारकर अच्छी बुद्धिवाले पुरुष, जिनके निर्मल ज्ञान है, इसको सुनेंगे॥9॥

चौपाई :

* एहि महँ रघुपति नाम उदारा। अति पावन पुरान श्रुति सारा॥
मंगल भवन अमंगल हारी। उमा सहित जेहि जपत पुरारी॥1॥

भावार्थ:-इसमें श्री रघुनाथजी का उदार नाम है, जो अत्यन्त पवित्र है, वेद-पुराणों का सार है, कल्याण का भवन है और अमंगलों को हरने वाला है, जिसे पार्वतीजी सहित भगवान शिवजी सदा जपा करते हैं॥1॥

* भनिति बिचित्र सुकबि कृत जोऊ। राम नाम बिनु सोह न सोउ॥
बिधुबदनी सब भाँति सँवारी। सोह न बसन बिना बर नारी॥2॥

भावार्थ:-जो अच्छे कवि के द्वारा रची हुई बड़ी अनूठी कविता है, वह भी राम नाम के बिना शोभा नहीं पाती। जैसे चन्द्रमा के समान मुख वाली सुंदर स्त्री सब प्रकार से सुसज्जित होने पर भी वस्त्र के बिना शोभा नहीं देती॥2॥

*सब गुन रहित कुकबि कृत बानी। राम नाम जस अंकित जानी॥
सादर कहहिं सुनहिं बुध ताही। मधुकर सरिस संत गुनग्राही॥3॥

भावार्थ:-इसके विपरीत, कुकवि की रची हुई सब गुणों से रहित कविता को भी, राम के नाम एवं यश से अंकित जानकर, बुद्धिमान लोग आदरपूर्वक कहते और सुनते हैं, क्योंकि संतजन भौंरे की भाँति गुण ही को ग्रहण करने वाले होते हैं॥3॥

*जदपि कबित रस एकउ नाहीं। राम प्रताप प्रगट एहि माहीं॥
सोइ भरोस मोरें मन आवा। केहिं न सुसंग बड़प्पनु पावा॥4॥

भावार्थ:-यद्यपि मेरी इस रचना में कविता का एक भी रस नहीं है, तथापि इसमें श्री रामजी का प्रताप प्रकट है। मेरे मन में यही एक भरोसा है। भले संग से भला, किसने बड़प्पन नहीं पाया?॥4॥

*धूमउ तजइ सहज करुआई। अगरु प्रसंग सुगंध बसाई॥
भनिति भदेस बस्तु भलि बरनी। राम कथा जग मंगल करनी॥5॥

भावार्थ:-धुआँ भी अगर के संग से सुगंधित होकर अपने स्वाभाविक कड़ुवेपन को छोड़ देता है। मेरी कविता अवश्य भद्दी है, परन्तु इसमें जगत का कल्याण करने वाली रामकथा रूपी उत्तम वस्तु का वर्णन किया गया है। (इससे यह भी अच्छी ही समझी जाएगी।)॥5॥

छंद :

*मंगल करनि कलिमल हरनि तुलसी कथा रघुनाथ की।
गति कूर कबिता सरित की ज्यों सरित पावन पाथ की॥
प्रभु सुजस संगति भनिति भलि होइहि सुजन मन भावनी
भव अंग भूति मसान की सुमिरत सुहावनि पावनी॥

भावार्थ:-तुलसीदासजी कहते हैं कि श्री रघुनाथजी की कथा कल्याण करने वाली और कलियुग के पापों को हरने वाली है। मेरी इस भद्दी कविता रूपी नदी की चाल पवित्र जल वाली नदी (गंगाजी) की चाल की भाँति टेढ़ी है। प्रभु श्री रघुनाथजी के सुंदर यश के संग से यह कविता सुंदर तथा सज्जनों के मन को भाने वाली हो जाएगी। श्मशान की अपवित्र राख भी श्री महादेवजी के अंग के संग से सुहावनी लगती है और स्मरण करते ही पवित्र करने वाली होती है।

दोहाः

*प्रिय लागिहि अति सबहि मम भनिति राम जस संग।
दारु बिचारु कि करइ कोउ बंदिअ मलय प्रसंग॥10 क॥

भावार्थ:-श्री रामजी के यश के संग से मेरी कविता सभी को अत्यन्त प्रिय लगेगी। जैसे मलय पर्वत के संग से काष्ठमात्र (चंदन बनकर) वंदनीय हो जाता है, फिर क्या कोई काठ (की तुच्छता) का विचार करता है?॥10 (क)॥

*स्याम सुरभि पय बिसद अति गुनद करहिं सब पान।
गिरा ग्राम्य सिय राम जस गावहिं सुनहिं सुजान ॥10 ख॥

भावार्थ:-श्यामा गो काली होने पर भी उसका दूध उज्ज्वल और बहुत गुणकारी होता है। यही समझकर सब लोग उसे पीते हैं। इसी तरह गँवारू भाषा में होने पर भी श्री सीतारामजी के यश को बुद्धिमान लोग बड़े चाव से गाते और सुनते हैं॥10 (ख)॥

चौपाई :

*मनि मानिक मुकुता छबि जैसी। अहि गिरि गज सिर सोह न तैसी॥
नृप किरीट तरुनी तनु पाई। लहहिं सकल सोभा अधिकाई॥1॥

भावार्थ:-मणि, माणिक और मोती की जैसी सुंदर छबि है, वह साँप, पर्वत और हाथी के मस्तक पर वैसी शोभा नहीं पाती। राजा के मुकुट और नवयुवती स्त्री के शरीर को पाकर ही ये सब अधिक शोभा को प्राप्त होते हैं॥1॥

*तैसेहिं सुकबि कबित बुध कहहीं। उपजहिं अनत अनत छबि लहहीं॥
भगति हेतु बिधि भवन बिहाई। सुमिरत सारद आवति धाई॥2॥

भावार्थ:-इसी तरह, बुद्धिमान लोग कहते हैं कि सुकवि की कविता भी उत्पन्न और कहीं होती है और शोभा अन्यत्र कहीं पाती है (अर्थात कवि की वाणी से उत्पन्न हुई कविता वहाँ शोभा पाती है, जहाँ उसका विचार, प्रचार तथा उसमें कथित आदर्श का ग्रहण और अनुसरण होता है)। कवि के स्मरण करते ही उसकी भक्ति के कारण सरस्वतीजी ब्रह्मलोक को छोड़कर दौड़ी आती हैं॥2॥

*राम चरित सर बिनु अन्हवाएँ। सो श्रम जाइ न कोटि उपाएँ॥
कबि कोबिद अस हृदयँ बिचारी। गावहिं हरि जस कलि मल हारी॥3॥

भावार्थ:-सरस्वतीजी की दौड़ी आने की वह थकावट रामचरित रूपी सरोवर में उन्हें नहलाए बिना दूसरे करोड़ों उपायों से भी दूर नहीं

होती। कवि और पण्डित अपने हृदय में ऐसा विचारकर कलियुग के पापों को हरने वाले श्री हरि के यश का ही गान करते हैं॥3॥

*कीन्हें प्राकृत जन गुन गाना। सिर धुनि गिरा लगत पछिताना॥
हृदय सिंधु मति सीप समाना। स्वाति सारदा कहहिं सुजाना॥4॥

भावार्थ:-संसारी मनुष्यों का गुणगान करने से सरस्वतीजी सिर धुनकर पछताने लगती हैं (कि मैं क्यों इसके बुलाने पर आई)। बुद्धिमान लोग हृदय को समुद्र, बुद्धि को सीप और सरस्वती को स्वाति नक्षत्र के समान कहते हैं॥4॥

*जौं बरषइ बर बारि बिचारू। हो हिं कबित मुकुतामनि चारू॥5॥

भावार्थ:-इसमें यदि श्रेष्ठ विचार रूपी जल बरसता है तो मुक्ता मणि के समान सुंदर कविता होती है॥5॥

दोहा :

*जुगुति बेधि पुनि पोहिअहिं रामचरित बर ताग।
पहिरहिं सज्जन बिमल उर सोभा अति अनुराग॥11॥

भावार्थ:-उन कविता रूपी मुक्तामणियों को युक्ति से बेधकर फिर रामचरित्र रूपी सुंदर तागे में पिरोकर सज्जन लोग अपने निर्मल हृदय में धारण करते हैं, जिससे अत्यन्त अनुराग रूपी शोभा होती है (वे आत्यन्तिक प्रेम को प्राप्त होते हैं)॥11॥

चौपाई :

*जे जनमे कलिकाल कराला। करतब बायस बेष मराला॥
चलत कुपंथ बेद मग छाँड़े। कपट कलेवर कलि मल भाँड़े॥1॥

भावार्थ:-जो कराल कलियुग में जन्मे हैं, जिनकी करनी कौए के समान है और वेष हंस का सा है, जो वेदमार्ग को छोड़कर कुमार्ग पर चलते हैं, जो कपट की मूर्ति और कलियुग के पापों के भाँड़ें हैं॥1॥

*बंचक भगत कहाइ राम के। किंकर कंचन कोह काम के॥
तिन्ह महँ प्रथम रेख जग मोरी। धींग धरम ध्वज धंधक धोरी॥2॥

भावार्थ:-जो श्री रामजी के भक्त कहलाकर लोगों को ठगते हैं, जो धन (लोभ), क्रोध और काम के गुलाम हैं और जो धींगाधींगी करने वाले, धर्मध्वजी (धर्म की झूठी ध्वजा फहराने वाले दम्भी) और कपट के धन्धों का बोझ ढोने वाले हैं, संसार के ऐसे लोगों में सबसे पहले मेरी गिनती है॥2॥

*जौं अपने अवगुन सब कहऊँ। बाढ़इ कथा पार नहिं लहऊँ ॥
ताते मैं अति अलप बखाने। थोरे महुँ जानिहहिं सयाने ॥3॥

भावार्थ:-यदि मैं अपने सब अवगुणों को कहने लगूँ तो कथा बहुत बढ़ जाएगी और मैं पार नहीं पाऊँगा। इससे मैंने बहुत कम अवगुणों का वर्णन किया है। बुद्धिमान लोग थोड़े ही में समझ लेंगे॥3॥

*समुझि बिबिधि बिधि बिनती मोरी। कोउ न कथा सुनि देइहि खोरी॥
एतेहु पर करिहहिं जे असंका। मोहि ते अधिक ते जड़ मति रंका॥4॥

भावार्थ:-मेरी अनेकों प्रकार की विनती को समझकर, कोई भी इस कथा को सुनकर दोष नहीं देगा। इतने पर भी जो शंका करेंगे, वे तो मुझसे भी अधिक मूर्ख और बुद्धि के कंगाल हैं॥4॥

*कबि न होउँ नहिं चतुर कहावउँ। मति अनुरूप राम गुन गावउँ॥
कहँ रघुपति के चरित अपारा। कहँ मति मोरि निरत संसारा॥5॥

भावार्थ:-मैं न तो कवि हूँ, न चतुर कहलाता हूँ, अपनी बुद्धि के अनुसार श्री रामजी के गुण गाता हूँ। कहाँ तो श्री रघुनाथजी के अपार चरित्र, कहाँ संसार में आसक्त मेरी बुद्धि !॥5॥।

*जेहिं मारुत गिरि मेरु उड़ाहीं। कहहु तूल केहि लेखे माहीं॥
समुझत अमित राम प्रभुताई। करत कथा मन अति कदराई॥6॥

भावार्थ:-जिस हवा से सुमेरु जैसे पहाड़ उड़ जाते हैं, कहिए तो, उसके सामने रूई किस गिनती में है। श्री रामजी की असीम प्रभुता को समझकर कथा रचने में मेरा मन बहुत हिचकता है-॥6॥

दोहा :

*सारद सेस महेस बिधि आगम निगम पुरान।
नेति नेति कहि जासु गुन करहिं निरंतर गान॥12॥

भावार्थ:-सरस्वतीजी, शेषजी, शिवजी, ब्रह्माजी, शास्त्र, वेद और पुराण- ये सब 'नेति-नेति' कहकर (पार नहीं पाकर 'ऐसा नहीं', ऐसा नहीं कहते हुए) सदा जिनका गुणगान किया करते हैं॥12॥

चौपाई :

*सब जानत प्रभु प्रभुता सोई। तदपि कहें बिनु रहा न कोई॥
तहाँ बेद अस कारन राखा। भजन प्रभाउ भाँति बहु भाषा॥1॥

भावार्थ:-यद्यपि प्रभु श्री रामचन्द्रजी की प्रभुता को सब ऐसी (अकथनीय) ही जानते हैं, तथापि कहे बिना कोई नहीं रहा। इसमें वेद ने ऐसा कारण बताया है कि भजन का प्रभाव बहुत तरह से कहा गया है। (अर्थात भगवान की महिमा का पूरा वर्णन तो कोई कर नहीं सकता, परन्तु जिससे जितना बन पड़े उतना भगवान का गुणगान करना चाहिए, क्योंकि भगवान के गुणगान रूपी भजन का प्रभाव बहुत ही अनोखा है, उसका नाना प्रकार से शास्त्रों में वर्णन है। थोड़ा सा भी भगवान का भजन मनुष्य को सहज ही भवसागर से तार देता है)॥1॥

*एक अनीह अरूप अनामा। अज सच्चिदानंद पर धामा॥

ब्यापक बिस्वरूप भगवाना। तेहिं धरि देह चरित कृत नाना॥2॥

भावार्थ:-जो परमेश्वर एक है, जिनके कोई इच्छा नहीं है, जिनका कोई रूप और नाम नहीं है, जो अजन्मा, सच्चिदानन्द और परमधाम है और जो सबमें व्यापक एवं विश्व रूप हैं, उन्हीं भगवान ने दिव्य शरीर धारण करके नाना प्रकार की लीला की है॥2॥

*सो केवल भगतन हित लागी। परम कृपाल प्रनत अनुरागी॥
जेहि जन पर ममता अति छोहू। जेहिं करुना करि कीन्ह न कोहू॥3॥

भावार्थ:-वह लीला केवल भक्तों के हित के लिए ही है, क्योंकि भगवान परम कृपालु हैं और शरणागत के बड़े प्रेमी हैं। जिनकी भक्तों पर बड़ी ममता और कृपा है, जिन्होंने एक बार जिस पर कृपा कर दी, उस पर फिर कभी क्रोध नहीं किया॥3॥

*गई बहोर गरीब नेवाजू। सरल सबल साहिब रघुराजू॥
बुध बरनहिं हरि जस अस जानी। करहिं पुनीत सुफल निज बानी॥4॥

भावार्थ:-वे प्रभु श्री रघुनाथजी गई हुई वस्तु को फिर प्राप्त कराने वाले, गरीब नवाज (दीनबन्धु), सरल स्वभाव, सर्वशक्तिमान और सबके स्वामी हैं। यही समझकर बुद्धिमान लोग उन श्री हरि का यश वर्णन करके अपनी वाणी को पवित्र और उत्तम फल (मोक्ष और दुर्लभ भगवत्प्रेम) देने वाली बनाते हैं॥4॥

*तेहिं बल मैं रघुपति गुन गाथा। कहिहउँ नाइ राम पद माथा॥
मुनिन्ह प्रथम हरि कीरति गाई। तेहिं मग चलत सुगम मोहि भाई॥5॥

भावार्थ:-उसी बल से (महिमा का यथार्थ वर्णन नहीं, परन्तु महान फल देने वाला भजन समझकर भगवत्कृपा के बल पर ही) मैं श्री रामचन्द्रजी के चरणों में सिर नवाकर श्री रघुनाथजी के गुणों की कथा कहूँगा। इसी

विचार से (वाल्मीकि, व्यास आदि) मुनियों ने पहले हरि की कीर्ति गाई है। भाई! उसी मार्ग पर चलना मेरे लिए सुगम होगा॥5॥

दोहा :

*अति अपार जे सरित बर जौं नृप सेतु कराहिं।
चढ़ि पिपीलिकउ परम लघु बिनु श्रम पारहि जाहिं॥13॥

भावार्थ:-जो अत्यन्त बड़ी श्रेष्ठ नदियाँ हैं, यदि राजा उन पर पुल बँधा देता है, तो अत्यन्त छोटी चींटियाँ भी उन पर चढ़कर बिना ही परिश्रम के पार चली जाती हैं। (इसी प्रकार मुनियों के वर्णन के सहारे मैं भी श्री रामचरित्र का वर्णन सहज ही कर सकूँगा)॥13॥

चौपाई :

*एहि प्रकार बल मनहि देखाई। करिहउँ रघुपति कथा सुहाई॥
ब्यास आदि कबि पुंगव नाना। जिन्ह सादर हरि सुजस बखाना॥1॥

भावार्थ:-इस प्रकार मन को बल दिखलाकर मैं श्री रघुनाथजी की सुहावनी कथा की रचना करूँगा। व्यास आदि जो अनेकों श्रेष्ठ कवि हो गए हैं, जिन्होंने बड़े आदर से श्री हरि का सुयश वर्णन किया है॥1॥

कवि वंदना

* चरन कमल बंदउँ तिन्ह केरे। पुरवहुँ सकल मनोरथ मेरे॥
कलि के कबिन्ह करउँ परनामा। जिन्ह बरने रघुपति गुन ग्रामा॥2॥

भावार्थ:-मैं उन सब (श्रेष्ठ कवियों) के चरणकमलों में प्रणाम करता हूँ, वे मेरे सब मनोरथों को पूरा करें। कलियुग के भी उन कवियों को मैं प्रणाम करता हूँ, जिन्होंने श्री रघुनाथजी के गुण समूहों का वर्णन किया है॥2॥

* जे प्राकृत कबि परम सयाने। भाषाँ जिन्ह हरि चरित बखाने॥
भए जे अहहिं जे होइहहिं आगें। प्रनवउँ सबहि कपट सब त्यागें॥3॥

भावार्थ:-जो बड़े बुद्धिमान प्राकृत कवि हैं, जिन्होंने भाषा में हरि चरित्रों का वर्णन किया है, जो ऐसे कवि पहले हो चुके हैं, जो इस समय वर्तमान हैं और जो आगे होंगे, उन सबको मैं सारा कपट त्यागकर प्रणाम करता हूँ॥3॥

* होहु प्रसन्न देहु बरदानू। साधु समाज भनिति सनमानू॥
जो प्रबंध बुध नहिं आदरहीं। सो श्रम बादि बाल कबि करहीं॥4॥

भावार्थ:-आप सब प्रसन्न होकर यह वरदान दीजिए कि साधु समाज में मेरी कविता का सम्मान हो, क्योंकि बुद्धिमान लोग जिस कविता का आदर नहीं करते, मूर्ख कवि ही उसकी रचना का व्यर्थ परिश्रम करते हैं॥4॥

* कीरति भनिति भूति भलि सोई। सुरसरि सम सब कहँ हित होई॥
राम सुकीरति भनिति भदेसा। असमंजस अस मोहि अँदेसा॥5॥

भावार्थ:-कीर्ति, कविता और सम्पत्ति वही उत्तम है, जो गंगाजी की तरह सबका हित करने वाली हो। श्री रामचन्द्रजी की कीर्ति तो बड़ी सुंदर (सबका अनन्त कल्याण करने वाली ही) है, परन्तु मेरी कविता भद्दी है। यह असामंजस्य है (अर्थात इन दोनों का मेल नहीं मिलता), इसी की मुझे चिन्ता है॥5॥

* तुम्हरी कृपाँ सुलभ सोउ मोरे। सिअनि सुहावनि टाट पटोरे॥6॥

भावार्थ:-परन्तु हे कवियों! आपकी कृपा से यह बात भी मेरे लिए सुलभ हो सकती है। रेशम की सिलाई टाट पर भी सुहावनी लगती है॥6॥

दोहा :

* सरल कबित कीरति बिमल सोइ आदरहिं सुजान।
सहज बयर बिसराइ रिपु जो सुनि करहिं बखान॥14 क॥

भावार्थ:-चतुर पुरुष उसी कविता का आदर करते हैं, जो सरल हो और जिसमें निर्मल चरित्र का वर्णन हो तथा जिसे सुनकर शत्रु भी स्वाभाविक बैर को भूलकर सराहना करने लगें॥14 (क)॥

सो न होई बिनु बिमल मति मोहि मति बल अति थोर।
करहु कृपा हरि जस कहउँ पुनि पुनि करउँ निहोर॥14 ख॥

भावार्थ:-ऐसी कविता बिना निर्मल बुद्धि के होती नहीं और मेरी बुद्धि का बल बहुत ही थोड़ा है, इसलिए बार-बार निहोरा करता हूँ कि हे कवियों! आप कृपा करें, जिससे मैं हरि यश का वर्णन कर सकूँ॥14 (ख)॥

* कबि कोबिद रघुबर चरित मानस मंजु मराल।
बालबिनय सुनि सुरुचि लखि मो पर होहु कृपाल॥14 ग॥

भावार्थ:-कवि और पण्डितगण! आप जो रामचरित्र रूपी मानसरोवर के सुंदर हंस हैं, मुझ बालक की विनती सुनकर और सुंदर रुचि देखकर मुझ पर कृपा करें॥14 (ग)॥

वाल्मीकि, वेद, ब्रह्मा, देवता, शिव, पार्वती आदि की वंदना

सोरठा :

* बंदउँ मुनि पद कंजु रामायन जेहिं निरमयउ।
सखर सुकोमल मंजु दोष रहित दूषन सहित॥14 घ॥

भावार्थ:-मैं उन वाल्मीकि मुनि के चरण कमलों की वंदना करता हूँ, जिन्होंने रामायण की रचना की है, जो खर (राक्षस) सहित होने पर भी (खर (कठोर) से विपरीत) बड़ी कोमल और सुंदर है तथा जो दूषण (राक्षस) सहित होने पर भी दूषण अर्थात् दोष से रहित है॥14 (घ)॥

* बंदउँ चारिउ बेद भव बारिधि बोहित सरिस।
जिन्हहि न सपनेहुँ खेद बरनत रघुबर बिसद जसु॥14 ङ॥

भावार्थ:-मैं चारों वेदों की वन्दना करता हूँ, जो संसार समुद्र के पार होने के लिए जहाज के समान हैं तथा जिन्हें श्री रघुनाथजी का निर्मल यश वर्णन करते स्वप्न में भी खेद (थकावट) नहीं होता॥14 (ङ)॥

* बंदउँ बिधि पद रेनु भव सागर जेहिं कीन्ह जहँ।

संत सुधा ससि धेनु प्रगटे खल बिष बारुनी॥14च॥

भावार्थ:-मैं ब्रह्माजी के चरण रज की वन्दना करता हूँ, जिन्होंने भवसागर बनाया है, जहाँ से एक ओर संतरूपी अमृत, चन्द्रमा और कामधेनु निकले और दूसरी ओर दुष्ट मनुष्य रूपी विष और मदिरा उत्पन्न हुए॥14 (च)॥

दोहा :

* बिबुध बिप्र बुध ग्रह चरन बंदि कहउँ कर जोरि।

होइ प्रसन्न पुरवहु सकल मंजु मनोरथ मोरि॥14 छ॥

भावार्थ:-देवता, ब्राह्मण, पंडित, ग्रह- इन सबके चरणों की वंदना करके हाथ जोड़कर कहता हूँ कि आप प्रसन्न होकर मेरे सारे सुंदर मनोरथों को पूरा करें॥14 (छ)॥

चौपाई :

* पुनि बंदउँ सारद सुरसरिता। जुगल पुनीत मनोहर चरिता॥

मज्जन पान पाप हर एका। कहत सुनत एक हर अबिबेका॥1॥

भावार्थ:-फिर मैं सरस्वती और देवनदी गंगाजी की वंदना करता हूँ। दोनों पवित्र और मनोहर चरित्र वाली हैं। एक (गंगाजी) स्नान करने और जल पीने से पापों को हरती है और दूसरी (सरस्वतीजी) गुण और यश कहने और सुनने से अज्ञान का नाश कर देती है॥1॥

* गुर पितु मातु महेस भवानी। प्रनवउँ दीनबंधु दिन दानी॥

सेवक स्वामि सखा सिय पी के। हित निरुपधि सब बिधि तुलसी के॥2॥

भावार्थ:-श्री महेश और पार्वती को मैं प्रणाम करता हूँ, जो मेरे गुरु और माता-पिता हैं, जो दीनबन्धु और नित्य दान करने वाले हैं, जो सीतापति श्री रामचन्द्रजी के सेवक, स्वामी और सखा हैं तथा मुझ तुलसीदास का सब प्रकार से कपटरहित (सच्चा) हित करने वाले हैं॥2॥

* कलि बिलोकि जग हित हर गिरिजा। साबर मंत्र जाल जिन्ह सिरिजा॥
अनमिल आखर अरथ न जापू। प्रगट प्रभाउ महेस प्रतापू॥3॥

भावार्थ:-जिन शिव-पार्वती ने कलियुग को देखकर, जगत के हित के लिए, शाबर मन्त्र समूह की रचना की, जिन मंत्रों के अक्षर बेमेल हैं, जिनका न कोई ठीक अर्थ होता है और न जप ही होता है, तथापि श्री शिवजी के प्रताप से जिनका प्रभाव प्रत्यक्ष है॥3॥

* सो उमेस मोहि पर अनुकूला। करिहिं कथा मुद मंगल मूला॥
सुमिरि सिवा सिव पाइ पसाऊ। बरनउँ रामचरित चित चाऊ॥4॥

भावार्थ:-वे उमापति शिवजी मुझ पर प्रसन्न होकर (श्री रामजी की) इस कथा को आनन्द और मंगल की मूल (उत्पन्न करने वाली) बनाएँगे। इस प्रकार पार्वतीजी और शिवजी दोनों का स्मरण करके और उनका प्रसाद पाकर मैं चाव भरे चित्त से श्री रामचरित्र का वर्णन करता हूँ॥4॥

* भनिति मोरि सिव कृपाँ बिभाती। ससि समाज मिलि मनहुँ सुराती॥
जे एहि कथहि सनेह समेता। कहिहहिं सुनिहहिं समुझि सचेता॥5॥
होइहहिं राम चरन अनुरागी। कलि मल रहित सुमंगल भागी॥6॥

भावार्थ:-मेरी कविता श्री शिवजी की कृपा से ऐसी सुशोभित होगी, जैसी तारागणों के सहित चन्द्रमा के साथ रात्रि शोभित होती है, जो इस कथा को प्रेम सहित एवं सावधानी के साथ समझ-बूझकर कहें-सुनेंगे, वे

कलियुग के पापों से रहित और सुंदर कल्याण के भागी होकर श्री रामचन्द्रजी के चरणों के प्रेमी बन जाएँगे॥5-6॥

दोहा :

* सपनेहुँ साचेहुँ मोहि पर जौं हर गौरि पसाउ।
तौ फुर होउ जो कहेउँ सब भाषा भनिति प्रभाउ॥15॥

भावार्थ:-यदि मुझ पर श्री शिवजी और पार्वतीजी की स्वप्न में भी सचमुच प्रसन्नता हो, तो मैंने इस भाषा कविता का जो प्रभाव कहा है, वह सब सच हो॥15॥

श्री सीताराम-धाम-परिकर वंदना

चौपाई :

* बंदउँ अवध पुरी अति पावनि। सरजू सरि कलि कलुष नसावनि॥
प्रनवउँ पुर नर नारि बहोरी। ममता जिन्ह पर प्रभुहि न थोरी॥1॥

भावार्थ:-मैं अति पवित्र श्री अयोध्यापुरी और कलियुग के पापों का नाश करने वाली श्री सरयू नदी की वन्दना करता हूँ। फिर अवधपुरी के उन नर-नारियों को प्रणाम करता हूँ, जिन पर प्रभु श्री रामचन्द्रजी की ममता थोड़ी नहीं है (अर्थात्‌ बहुत है)॥1॥

* सिय निंदक अघ ओघ नसाए। लोक बिसोक बनाइ बसाए॥
बंदउँ कौसल्या दिसि प्राची। कीरति जासु सकल जग माची॥2॥

भावार्थ:-उन्होंने (अपनी पुरी में रहने वाले) सीताजी की निंदा करने वाले (धोबी और उसके समर्थक पुर-नर-नारियों) के पाप समूह को नाश कर उनको शोकरहित बनाकर अपने लोक (धाम) में बसा दिया। मैं कौशल्या रूपी पूर्व दिशा की वन्दना करता हूँ, जिसकी कीर्ति समस्त संसार में फैल रही है॥2॥

* प्रगटेउ जहँ रघुपति ससि चारू। बिस्व सुखद खल कमल तुसारू॥

दसरथ राउ सहित सब रानी। सुकृत सुमंगल मूरति मानी॥3॥
करउँ प्रनाम करम मन बानी। करहु कृपा सुत सेवक जानी॥
जिन्हहि बिरचि बड़ भयउ बिधाता। महिमा अवधि राम पितु माता॥4॥

भावार्थ:-जहाँ (कौशल्या रूपी पूर्व दिशा) से विश्व को सुख देने वाले और दुष्ट रूपी कमलों के लिए पाले के समान श्री रामचन्द्रजी रूपी सुंदर चंद्रमा प्रकट हुए। सब रानियों सहित राजा दशरथजी को पुण्य और सुंदर कल्याण की मूर्ति मानकर मैं मन, वचन और कर्म से प्रणाम करता हूँ। अपने पुत्र का सेवक जानकर वे मुझ पर कृपा करें, जिनको रचकर ब्रह्माजी ने भी बड़ाई पाई तथा जो श्री रामजी के माता और पिता होने के कारण महिमा की सीमा हैं॥3-4॥

सोरठा :

* बंदउँ अवध भुआल सत्य प्रेम जेहि राम पद।
बिछुरत दीनदयाल प्रिय तनु तृन इव परिहरेउ॥16॥

भावार्थ:-मैं अवध के राजा श्री दशरथजी की वन्दना करता हूँ, जिनका श्री रामजी के चरणों में सच्चा प्रेम था, जिन्होंने दीनदयालु प्रभु के बिछुड़ते ही अपने प्यारे शरीर को मामूली तिनके की तरह त्याग दिया॥16॥

चौपाई :

* प्रनवउँ परिजन सहित बिदेहू। जाहि राम पद गूढ़ सनेहू॥
जोग भोग महँ राखेउ गोई। राम बिलोकत प्रगटेउ सोई॥1॥

भावार्थ:-मैं परिवार सहित राजा जनकजी को प्रणाम करता हूँ, जिनका श्री रामजी के चरणों में गूढ़ प्रेम था, जिसको उन्होंने योग और भोग में छिपा रखा था, परन्तु श्री रामचन्द्रजी को देखते ही वह प्रकट हो गया॥1॥

गीताप्रेस गोरखपुर

* प्रनवउँ प्रथम भरत के चरना। जासु नेम ब्रत जाइ न बरना॥
राम चरन पंकज मन जासू। लुबुध मधुप इव तजइ न पासू॥2॥

भावार्थ:-(भाइयों में) सबसे पहले मैं श्री भरतजी के चरणों को प्रणाम करता हूँ, जिनका नियम और व्रत वर्णन नहीं किया जा सकता तथा जिनका मन श्री रामजी के चरणकमलों में भौंरे की तरह लुभाया हुआ है, कभी उनका पास नहीं छोड़ता॥2॥

* बंदउँ लछिमन पद जल जाता। सीतल सुभग भगत सुख दाता॥
रघुपति कीरति बिमल पताका। दंड समान भयउ जस जाका॥3॥

भावार्थ:-मैं श्री लक्ष्मणजी के चरण कमलों को प्रणाम करता हूँ, जो शीतल सुंदर और भक्तों को सुख देने वाले हैं। श्री रघुनाथजी की कीर्ति रूपी विमल पताका में जिनका (लक्ष्मणजी का) यश (पताका को ऊँचा करके फहराने वाले) दंड के समान हुआ॥3॥

* सेष सहस्रसीस जग कारन। जो अवतरेउ भूमि भय टारन॥
सदा सो सानुकूल रह मो पर। कृपासिन्धु सौमित्रि गुनाकर॥4॥

भावार्थ:-जो हजार सिर वाले और जगत के कारण (हजार सिरों पर जगत को धारण कर रखने वाले) शेषजी हैं, जिन्होंने पृथ्वी का भय दूर करने के लिए अवतार लिया, वे गुणों की खान कृपासिन्धु सुमित्रानंदन श्री लक्ष्मणजी मुझ पर सदा प्रसन्न रहें॥4॥

* रिपुसूदन पद कमल नमामी। सूर सुसील भरत अनुगामी॥
महाबीर बिनवउँ हनुमाना। राम जासु जस आप बखाना॥5॥

भावार्थ:-मैं श्री शत्रुघ्नजी के चरणकमलों को प्रणाम करता हूँ, जो बड़े वीर, सुशील और श्री भरतजी के पीछे चलने वाले हैं। मैं महावीर श्री

हनुमानजी की विनती करता हूँ, जिनके यश का श्री रामचन्द्रजी ने स्वयं (अपने श्रीमुख से) वर्णन किया है॥5॥

सोरठा :

* प्रनवउँ पवनकुमार खल बन पावक ग्यान घन।
जासु हृदय आगार बसहिं राम सर चाप धर॥17॥

भावार्थ:-मैं पवनकुमार श्री हनुमान्‌जी को प्रणाम करता हूँ, जो दुष्ट रूपी वन को भस्म करने के लिए अग्निरूप हैं, जो ज्ञान की घनमूर्ति हैं और जिनके हृदय रूपी भवन में धनुष-बाण धारण किए श्री रामजी निवास करते हैं॥17॥

चौपाई :

* कपिपति रीछ निसाचर राजा। अंगदादि जे कीस समाजा॥
बंदउँ सब के चरन सुहाए। अधम सरीर राम जिन्ह पाए॥1॥

भावार्थ:-वानरों के राजा सुग्रीवजी, रीछों के राजा जाम्बवानजी, राक्षसों के राजा विभीषणजी और अंगदजी आदि जितना वानरों का समाज है, सबके सुंदर चरणों की मैं वदना करता हूँ, जिन्होंने अधम (पशु और राक्षस आदि) शरीर में भी श्री रामचन्द्रजी को प्राप्त कर लिया॥1॥

* रघुपति चरन उपासक जेते। खग मृग सुर नर असुर समेते॥
बंदउँ पद सरोज सब केरे। जे बिनु काम राम के चेरे॥2॥

भावार्थ:-पशु, पक्षी, देवता, मनुष्य, असुर समेत जितने श्री रामजी के चरणों के उपासक हैं, मैं उन सबके चरणकमलों की वंदना करता हूँ, जो श्री रामजी के निष्काम सेवक हैं॥2॥

* सुक सनकादि भगत मुनि नारद। जे मुनिबर बिग्यान बिसारद॥
प्रनवउँ सबहि धरनि धरि सीसा। करहु कृपा जन जानि मुनीसा॥3॥

भावार्थ:-शुकदेवजी, सनकादि, नारदमुनि आदि जितने भक्त और परम ज्ञानी श्रेष्ठ मुनि हैं, मैं धरती पर सिर टेककर उन सबको प्रणाम करता हूँ, हे मुनीश्वरों! आप सब मुझको अपना दास जानकर कृपा कीजिए॥3॥

* जनकसुता जग जननि जानकी। अतिसय प्रिय करुनानिधान की॥
ताके जुग पद कमल मनावउँ। जासु कृपाँ निरमल मति पावउँ॥4॥

भावार्थ:-राजा जनक की पुत्री, जगत की माता और करुणा निधान श्री रामचन्द्रजी की प्रियतमा श्री जानकीजी के दोनों चरण कमलों को मैं मनाता हूँ, जिनकी कृपा से निर्मल बुद्धि पाऊँ॥4॥

* पुनि मन बचन कर्म रघुनायक। चरन कमल बंदउँ सब लायक॥
राजीवनयन धरें धनु सायक। भगत बिपति भंजन सुखदायक॥5॥

भावार्थ:-फिर मैं मन, वचन और कर्म से कमलनयन, धनुष-बाणधारी, भक्तों की विपत्ति का नाश करने और उन्हें सुख देने वाले भगवान् श्री रघुनाथजी के सर्व समर्थ चरण कमलों की वन्दना करता हूँ॥5॥

दोहा :

* गिरा अरथ जल बीचि सम कहिअत भिन्न न भिन्न।
बंदउँ सीता राम पद जिन्हहि परम प्रिय खिन्न॥18॥

भावार्थ:-जो वाणी और उसके अर्थ तथा जल और जल की लहर के समान कहने में अलग-अलग हैं, परन्तु वास्तव में अभिन्न (एक) हैं, उन श्री सीतारामजी के चरणों की मैं वंदना करता हूँ, जिन्हें दीन-दुःखी बहुत ही प्रिय हैं॥18॥

श्री नाम वंदना और नाम महिमा

चौपाई :

* बंदउँ नाम राम रघुबर को। हेतु कृसानु भानु हिमकर को॥

बिधि हरि हरमय बेद प्रान सो। अगुन अनूपम गुन निधान सो॥1॥

भावार्थ:-मैं श्री रघुनाथजी के नाम 'राम' की वंदना करता हूँ, जो कृशानु (अग्नि), भानु (सूर्य) और हिमकर (चन्द्रमा) का हेतु अर्थात्‌ 'र' 'आ' और 'म' रूप से बीज है। वह 'राम' नाम ब्रह्मा, विष्णु और शिवरूप है। वह वेदों का प्राण है, निर्गुण, उपमारहित और गुणों का भंडार है॥1॥

*महामंत्र जोइ जपत महेसू। कासीं मुकुति हेतु उपदेसू॥
महिमा जासु जान गनराऊ। प्रथम पूजिअत नाम प्रभाऊ॥2॥

भावार्थ:-जो महामंत्र है, जिसे महेश्वर श्री शिवजी जपते हैं और उनके द्वारा जिसका उपदेश काशी में मुक्ति का कारण है तथा जिसकी महिमा को गणेशजी जानते हैं, जो इस 'राम' नाम के प्रभाव से ही सबसे पहले पूजे जाते हैं॥2॥

* जान आदिकबि नाम प्रतापू। भयउ सुद्ध करि उलटा जापू॥
सहस नाम सम सुनि सिव बानी। जपि जेईं पिय संग भवानी॥3॥

भावार्थ:-आदिकवि श्री वाल्मीकिजी रामनाम के प्रताप को जानते हैं, जो उल्टा नाम ('मरा', 'मरा') जपकर पवित्र हो गए। श्री शिवजी के इस वचन को सुनकर कि एक राम-नाम सहस्र नाम के समान है, पार्वतीजी सदा अपने पति (श्री शिवजी) के साथ राम-नाम का जप करती रहती हैं॥3॥

* हरषे हेतु हेरि हर ही को। किय भूषन तिय भूषन ती को॥
नाम प्रभाउ जान सिव नीको। कालकूट फलु दीन्ह अमी को॥4॥

भावार्थ:-नाम के प्रति पार्वतीजी के हृदय की ऐसी प्रीति देखकर श्री शिवजी हर्षित हो गए और उन्होंने स्त्रियों में भूषण रूप (पतिव्रताओं में शिरोमणि) पार्वतीजी को अपना भूषण बना लिया। (अर्थात्‌ उन्हें अपने

अंग में धारण करके अर्धांगिनी बना लिया)। नाम के प्रभाव को श्री शिवजी भलीभाँति जानते हैं, जिस (प्रभाव) के कारण कालकूट जहर ने उनको अमृत का फल दिया॥4॥

दोहा :

* बरषा रितु रघुपति भगति तुलसी सालि सुदास।
राम नाम बर बरन जुग सावन भादव मास॥19॥

भावार्थ:-श्री रघुनाथजी की भक्ति वर्षा ऋतु है, तुलसीदासजी कहते हैं कि उत्तम सेवकगण धान हैं और 'राम' नाम के दो सुंदर अक्षर सावन-भादो के महीने हैं॥19॥

चौपाई :

* आखर मधुर मनोहर दोऊ। बरन बिलोचन जन जिय जोऊ॥
ससुमिरत सुलभ सुखद सब काहू। लोक लाहु परलोक निबाहू॥1॥

भावार्थ:-दोनों अक्षर मधुर और मनोहर हैं, जो वर्णमाला रूपी शरीर के नेत्र हैं, भक्तों के जीवन हैं तथा स्मरण करने में सबके लिए सुलभ और सुख देने वाले हैं और जो इस लोक में लाभ और परलोक में निर्वाह करते हैं (अर्थात्‌ भगवान के दिव्य धाम में दिव्य देह से सदा भगवत्सेवा में नियुक्त रखते हैं।)॥1॥

* कहत सुनत सुमिरत सुठि नीके। राम लखन सम प्रिय तुलसी के॥
बरनत बरन प्रीति बिलगाती। ब्रह्म जीव सम सहज सँघाती॥2॥

भावार्थ:-ये कहने, सुनने और स्मरण करने में बहुत ही अच्छे (सुंदर और मधुर) हैं, तुलसीदास को तो श्री राम-लक्ष्मण के समान प्यारे हैं। इनका ('र' और 'म' का) अलग-अलग वर्णन करने में प्रीति बिलगाती है (अर्थात बीज मंत्र की दृष्टि से इनके उच्चारण, अर्थ और फल में भिन्नता दिख

पड़ती है), परन्तु हैं ये जीव और ब्रह्म के समान स्वभाव से ही साथ रहने वाले (सदा एक रूप और एक रस),॥2॥

* नर नारायन सरिस सुभ्राता। जग पालक बिसेषि जन त्राता॥
भगति सुतिय कल करन बिभूषन। जग हित हेतु बिमल बिधु पूषन॥3॥

भावार्थ:-ये दोनों अक्षर नर-नारायण के समान सुंदर भाई हैं, ये जगत का पालन और विशेष रूप से भक्तों की रक्षा करने वाले हैं। ये भक्ति रूपिणी सुंदर स्त्री के कानों के सुंदर आभूषण (कर्णफूल) हैं और जगत के हित के लिए निर्मल चन्द्रमा और सूर्य हैं॥3॥

* स्वाद तोष सम सुगति सुधा के। कमठ सेष सम धर बसुधा के॥
जन मन मंजु कंज मधुकर से। जीह जसोमति हरि हलधर से॥4॥

भावार्थ:-ये सुंदर गति (मोक्ष) रूपी अमृत के स्वाद और तृप्ति के समान हैं, कच्छप और शेषजी के समान पृथ्वी के धारण करने वाले हैं, भक्तों के मन रूपी सुंदर कमल में विहार करने वाले भौंरे के समान हैं और जीभ रूपी यशोदाजी के लिए श्री कृष्ण और बलरामजी के समान (आनंद देने वाले) हैं॥4॥

दोहा :

* एकु छत्रु एकु मुकुटमनि सब बरननि पर जोउ।
तुलसी रघुबर नाम के बरन बिराजत दोउ॥20॥

भावार्थ:-तुलसीदासजी कहते हैं- श्री रघुनाथजी के नाम के दोनों अक्षर बड़ी शोभा देते हैं, जिनमें से एक (रकार) छत्ररूप (रेफ र्) से और दूसरा (मकार) मुकुटमणि (अनुस्वार) रूप से सब अक्षरों के ऊपर है॥20॥

चौपाई :

* समुझत सरिस नाम अरु नामी। प्रीति परसपर प्रभु अनुगामी॥
नाम रूप दुइ ईस उपाधी। अकथ अनादि सुसामुझि साधी॥1॥

भावार्थ:-समझने में नाम और नामी दोनों एक से हैं, किन्तु दोनों में परस्पर स्वामी और सेवक के समान प्रीति है (अर्थात् नाम और नामी में पूर्ण एकता होने पर भी जैसे स्वामी के पीछे सेवक चलता है, उसी प्रकार नाम के पीछे नामी चलते हैं। प्रभु श्री रामजी अपने 'राम' नाम का ही अनुगमन करते हैं (नाम लेते ही वहाँ आ जाते हैं)। नाम और रूप दोनों ईश्वर की उपाधि हैं, ये (भगवान के नाम और रूप) दोनों अनिर्वचनीय हैं, अनादि हैं और सुंदर (शुद्ध भक्तियुक्त) बुद्धि से ही इनका (दिव्य अविनाशी) स्वरूप जानने में आता है॥1॥

* को बड़ छोट कहत अपराधू। सुनि गुन भेदु समुझिहहिं साधू॥
देखिअहिं रूप नाम आधीना। रूप ग्यान नहिं नाम बिहीना॥2॥

भावार्थ:-इन (नाम और रूप) में कौन बड़ा है, कौन छोटा, यह कहना तो अपराध है। इनके गुणों का तारतम्य (कमी-बेशी) सुनकर साधु पुरुष स्वयं ही समझ लेंगे। रूप नाम के अधीन देखे जाते हैं, नाम के बिना रूप का ज्ञान नहीं हो सकता॥2॥

* रूप बिसेष नाम बिनु जानें। करतल गत न परहिं पहिचानें॥
सुमिरिअ नाम रूप बिनु देखें। आवत हृदयँ सनेह बिसेषें॥3॥

भावार्थ:-कोई सा विशेष रूप बिना उसका नाम जाने हथेली पर रखा हुआ भी पहचाना नहीं जा सकता और रूप के बिना देखे भी नाम का स्मरण किया जाए तो विशेष प्रेम के साथ वह रूप हृदय में आ जाता है॥3॥

* नाम रूप गति अकथ कहानी। समुझत सुखद न परति बखानी॥
अगुन सगुन बिच नाम सुसाखी। उभय प्रबोधक चतुर दुभाषी॥4॥

भावार्थ:-नाम और रूप की गति की कहानी (विशेषता की कथा) अकथनीय है। वह समझने में सुखदायक है, परन्तु उसका वर्णन नहीं किया जा सकता। निर्गुण और सगुण के बीच में नाम सुंदर साक्षी है और दोनों का यथार्थ ज्ञान कराने वाला चतुर दुभाषिया है॥4॥

दोहा :

* राम नाम मनिदीप धरु जीह देहरीं द्वार।
तुलसी भीतर बाहेरहुँ जौं चाहसि उजिआर॥21॥

भावार्थ:-तुलसीदासजी कहते हैं, यदि तू भीतर और बाहर दोनों ओर उजाला चाहता है, तो मुख रूपी द्वार की जीभ रूपी देहली पर रामनाम रूपी मणि-दीपक को रख॥21॥

चौपाई :

* नाम जीहँ जपि जागहिं जोगी। बिरति बिरंचि प्रपंच बियोगी॥
ब्रह्मसुखहि अनुभवहिं अनूपा। अकथ अनामय नाम न रूपा॥1॥

भावार्थ:-ब्रह्मा के बनाए हुए इस प्रपंच (दृश्य जगत) से भलीभाँति छूटे हुए वैराग्यवान्‌ मुक्त योगी पुरुष इस नाम को ही जीभ से जपते हुए (तत्व ज्ञान रूपी दिन में) जागते हैं और नाम तथा रूप से रहित अनुपम, अनिर्वचनीय, अनामय ब्रह्मसुख का अनुभव करते हैं॥1॥

* जाना चहहिं गूढ़ गति जेऊ। नाम जीहँ जपि जानहिं तेऊ॥
साधक नाम जपहिं लय लाएँ। होहिं सिद्ध अनिमादिक पाएँ॥2॥

भावार्थ:-जो परमात्मा के गूढ़ रहस्य को (यथार्थ महिमा को) जानना चाहते हैं, वे (जिज्ञासु) भी नाम को जीभ से जपकर उसे जान लेते हैं। (लौकिक सिद्धियों के चाहने वाले अर्थार्थी) साधक लौ लगाकर नाम का जप करते हैं और अणिमादि (आठों) सिद्धियों को पाकर सिद्ध हो जाते हैं॥2॥

* जपहिं नामु जन आरत भारी। मिटहिं कुसंकट होहिं सुखारी॥
राम भगत जग चारि प्रकारा। सुकृती चारिउ अनघ उदारा॥3॥

भावार्थ:-(संकट से घबड़ाए हुए) आर्त भक्त नाम जप करते हैं, तो उनके बड़े भारी बुरे-बुरे संकट मिट जाते हैं और वे सुखी हो जाते हैं। जगत में चार प्रकार के (1- अर्थार्थी-धनादि की चाह से भजने वाले, 2-आर्त संकट की निवृत्ति के लिए भजने वाले, 3-जिज्ञासु-भगवान को जानने की इच्छा से भजने वाले, 4-ज्ञानी-भगवान को तत्व से जानकर स्वाभाविक ही प्रेम से भजने वाले) रामभक्त हैं और चारों ही पुण्यात्मा, पापरहित और उदार हैं॥3॥

* चहू चतुर कहुँ नाम अधारा। ग्यानी प्रभुहि बिसेषि पिआरा॥
चहुँ जुग चहुँ श्रुति नाम प्रभाऊ। कलि बिसेषि नहिं आन उपाऊ॥4॥

भावार्थ:-चारों ही चतुर भक्तों को नाम का ही आधार है, इनमें ज्ञानी भक्त प्रभु को विशेष रूप से प्रिय हैं। यों तो चारों युगों में और चारों ही वेदों में नाम का प्रभाव है, परन्तु कलियुग में विशेष रूप से है। इसमें तो (नाम को छोड़कर) दूसरा कोई उपाय ही नहीं है॥4॥

दोहा :

* सकल कामना हीन जे राम भगति रस लीन।
नाम सुप्रेम पियूष ह्रद तिन्हहुँ किए मन मीन॥22॥

भावार्थ:-जो सब प्रकार की (भोग और मोक्ष की भी) कामनाओं से रहित और श्री रामभक्ति के रस में लीन हैं, उन्होंने भी नाम के सुंदर प्रेम रूपी अमृत के सरोवर में अपने मन को मछली बना रखा है (अर्थात् वे नाम रूपी सुधा का निरंतर आस्वादन करते रहते हैं, क्षणभर भी उससे अलग होना नहीं चाहते)॥22॥

चौपाई :

* अगुन सगुन दुइ ब्रह्म सरूपा। अकथ अगाध अनादि अनूपा॥
मोरें मत बड़ नामु दुहू तें। किए जेहिं जुग निज बस निज बूतें॥1॥

भावार्थ:-निर्गुण और सगुण ब्रह्म के दो स्वरूप हैं। ये दोनों ही अकथनीय, अथाह, अनादि और अनुपम हैं। मेरी सम्मति में नाम इन दोनों से बड़ा है, जिसने अपने बल से दोनों को अपने वश में कर रखा है॥1॥

* प्रौढ़ि सुजन जनि जानहिं जन की। कहउँ प्रतीति प्रीति रुचि मन की॥
एकु दारुगत देखिअ एकू। पावक सम जुग ब्रह्म बिबेकू॥2॥
उभय अगम जुग सुगम नाम तें। कहेउँ नामु बड़ ब्रह्म राम तें॥
ब्यापकु एकु ब्रह्म अबिनासी। सत चेतन घन आनँद रासी॥3॥

भावार्थ:-सज्जनगण इस बात को मुझ दास की ढिठाई या केवल काव्योक्ति न समझें। मैं अपने मन के विश्वास, प्रेम और रुचि की बात कहता हूँ। (निर्गुण और सगुण) दोनों प्रकार के ब्रह्म का ज्ञान अग्नि के समान है। निर्गुण उस अप्रकट अग्नि के समान है, जो काठ के अंदर है, परन्तु दिखती नहीं और सगुण उस प्रकट अग्नि के समान है, जो प्रत्यक्ष दिखती है।

(तत्त्वतः दोनों एक ही हैं, केवल प्रकट-अप्रकट के भेद से भिन्न मालूम होती हैं। इसी प्रकार निर्गुण और सगुण तत्त्वतः एक ही हैं। इतना होने पर भी) दोनों ही जानने में बड़े कठिन हैं, परन्तु नाम से दोनों सुगम हो जाते हैं। इसी से मैंने नाम को (निर्गुण) ब्रह्म से और (सगुण) राम से बड़ा कहा है, ब्रह्म व्यापक है, एक है, अविनाशी है, सत्ता, चैतन्य और आनन्द की घन राशि है॥2-3॥

* अस प्रभु हृदयँ अछत अबिकारी। सकल जीव जग दीन दुखारी॥

नाम निरूपन नाम जतन तें। सोउ प्रगटत जिमि मोल रतन तें॥4॥
भावार्थ:-ऐसे विकाररहित प्रभु के हृदय में रहते भी जगत के सब जीव दीन और दुःखी हैं। नाम का निरूपण करके (नाम के यथार्थ स्वरूप, महिमा, रहस्य और प्रभाव को जानकर) नाम का जतन करने से (श्रद्धापूर्वक नाम जप रूपी साधन करने से) वही ब्रह्म ऐसे प्रकट हो जाता है, जैसे रत्न के जानने से उसका मूल्य॥4॥
दोहा :
* निरगुन तें एहि भाँति बड़ नाम प्रभाउ अपार।
कहउँ नामु बड़ राम तें निज बिचार अनुसार॥23॥
भावार्थ:-इस प्रकार निर्गुण से नाम का प्रभाव अत्यंत बड़ा है। अब अपने विचार के अनुसार कहता हूँ, कि नाम (सगुण) राम से भी बड़ा है॥23॥
चौपाई :
* राम भगत हित नर तनु धारी। सहि संकट किए साधु सुखारी॥
नामु सप्रेम जपत अनयासा। भगत होहिं मुद मंगल बासा॥1॥
भावार्थ:-श्री रामचन्द्रजी ने भक्तों के हित के लिए मनुष्य शरीर धारण करके स्वयं कष्ट सहकर साधुओं को सुखी किया, परन्तु भक्तगण प्रेम के साथ नाम का जप करते हुए सहज ही में आनन्द और कल्याण के घर हो जाते हैं॥1॥।
* राम एक तापस तिय तारी। नाम कोटि खल कुमति सुधारी॥
रिषि हित राम सुकेतुसुता की। सहित सेन सुत कीन्हि बिबाकी॥2॥
सहित दोष दुख दास दुरासा। दलइ नामु जिमि रबि निसि नासा॥
भंजेउ राम आपु भव चापू। भव भय भंजन नाम प्रतापू॥3॥
भावार्थ:-श्री रामजी ने एक तपस्वी की स्त्री (अहिल्या) को ही तारा, परन्तु नाम ने करोड़ों दुष्टों की बिगड़ी बुद्धि को सुधार दिया। श्री रामजी

ने ऋषि विश्वामित्र के हित के लिए एक सुकेतु यक्ष की कन्या ताड़का की सेना और पुत्र (सुबाहु) सहित समाप्ति की, परन्तु नाम अपने भक्तों के दोष, दुःख और दुराशाओं का इस तरह नाश कर देता है जैसे सूर्य रात्रि का। श्री रामजी ने तो स्वयं शिवजी के धनुष को तोड़ा, परन्तु नाम का प्रताप ही संसार के सब भयों का नाश करने वाला है॥2-3॥

* दंडक बन प्रभु कीन्ह सुहावन। जन मन अमित नाम किए पावन॥
निसिचर निकर दले रघुनंदन। नामु सकल कलि कलुष निकंदन॥4॥

भावार्थ:-प्रभु श्री रामजी ने (भयानक) दण्डक वन को सुहावना बनाया, परन्तु नाम ने असंख्य मनुष्यों के मनों को पवित्र कर दिया। श्री रघुनाथजी ने राक्षसों के समूह को मारा, परन्तु नाम तो कलियुग के सारे पापों की जड़ उखाड़ने वाला है॥4॥

दोहा :

* सबरी गीध सुसेवकनि सुगति दीन्हि रघुनाथ।
नाम उधारे अमित खल बेद बिदित गुन गाथ॥24॥

भावार्थ:-श्री रघुनाथजी ने तो शबरी, जटायु आदि उत्तम सेवकों को ही मुक्ति दी, परन्तु नाम ने अगनित दुष्टों का उद्धार किया। नाम के गुणों की कथा वेदों में प्रसिद्ध है॥24॥

चौपाई :

* राम सुकंठ बिभीषन दोऊ। राखे सरन जान सबु कोऊ ॥
नाम गरीब अनेक नेवाजे। लोक बेद बर बिरिद बिराजे॥1॥

भावार्थ:-श्री रामजी ने सुग्रीव और विभीषण दोनों को ही अपनी शरण में रखा, यह सब कोई जानते हैं, परन्तु नाम ने अनेक गरीबों पर कृपा

की है। नाम का यह सुंदर विरद लोक और वेद में विशेष रूप से प्रकाशित है॥1॥

* राम भालु कपि कटुक बटोरा। सेतु हेतु श्रमु कीन्ह न थोरा॥

नामु लेत भवसिन्धु सुखाहीं। करहु बिचारु सुजन मन माहीं॥2॥

भावार्थ:-श्री रामजी ने तो भालू और बंदरों की सेना बटोरी और समुद्र पर पुल बाँधने के लिए थोड़ा परिश्रम नहीं किया, परन्तु नाम लेते ही संसार समुद्र सूख जाता है। सज्जनगण! मन में विचार कीजिए (कि दोनों में कौन बड़ा है)॥2॥

* राम सकुल रन रावनु मारा। सीय सहित निज पुर पगु धारा॥

राजा रामु अवध रजधानी। गावत गुन सुर मुनि बर बानी॥3॥

सेवक सुमिरत नामु सप्रीती। बिनु श्रम प्रबल मोह दलु जीती॥

फिरत सनेहँ मगन सुख अपनें। नाम प्रसाद सोच नहिं सपनें॥4॥

भावार्थ:-श्री रामचन्द्रजी ने कुटुम्ब सहित रावण को युद्ध में मारा, तब सीता सहित उन्होंने अपने नगर (अयोध्या) में प्रवेश किया। राम राजा हुए, अवध उनकी राजधानी हुई, देवता और मुनि सुंदर वाणी से जिनके गुण गाते हैं, परन्तु सेवक (भक्त) प्रेमपूर्वक नाम के स्मरण मात्र से बिना परिश्रम मोह की प्रबल सेना को जीतकर प्रेम में मग्न हुए अपने ही सुख में विचरते हैं, नाम के प्रसाद से उन्हें सपने में भी कोई चिन्ता नहीं सताती॥3-4॥

दोहा :

* ब्रह्म राम तें नामु बड़ बर दायक बर दानि।

रामचरित सत कोटि महँ लिय महेस जियँ जानि॥25॥

भावार्थ:-इस प्रकार नाम (निर्गुण) ब्रह्म और (सगुण) राम दोनों से बड़ा है। यह वरदान देने वालों को भी वर देने वाला है। श्री शिवजी ने अपने

हृदय में यह जानकर ही सौ करोड़ राम चरित्र में से इस 'राम' नाम को (साररूप से चुनकर) ग्रहण किया है॥25॥

मासपारायण, पहला विश्राम

चौपाई :

* नाम प्रसाद संभु अबिनासी। साजु अमंगल मंगल रासी॥
सुक सनकादि सिद्ध मुनि जोगी। नाम प्रसाद ब्रह्मसुख भोगी॥1॥

भावार्थ:-नाम ही के प्रसाद से शिवजी अविनाशी हैं और अमंगल वेष वाले होने पर भी मंगल की राशि हैं। शुकदेवजी और सनकादि सिद्ध, मुनि, योगी गण नाम के ही प्रसाद से ब्रह्मानन्द को भोगते हैं॥1॥

*नारद जानेउ नाम प्रतापू। जग प्रिय हरि हरि हर प्रिय आपू॥
नामु जपत प्रभु कीन्ह प्रसादू। भगत सिरोमनि भे प्रहलादू॥2॥

भावार्थ:-नारदजी ने नाम के प्रताप को जाना है। हरि सारे संसार को प्यारे हैं, (हरि को हर प्यारे हैं) और आप (श्री नारदजी) हरि और हर दोनों को प्रिय हैं। नाम के जपने से प्रभु ने कृपा की, जिससे प्रह्लाद, भक्त शिरोमणि हो गए॥2॥

* ध्रुवँ सगलानि जपेउ हरि नाऊँ। पायउ अचल अनूपम ठाऊँ॥
सुमिरि पवनसुत पावन नामू। अपने बस करि राखे रामू॥3॥

भावार्थ:-ध्रुवजी ने ग्लानि से (विमाता के वचनों से दुःखी होकर सकाम भाव से) हरि नाम को जपा और उसके प्रताप से अचल अनुपम स्थान (ध्रुवलोक) प्राप्त किया। हनुमान्‌जी ने पवित्र नाम का स्मरण करके श्री रामजी को अपने वश में कर रखा है॥3॥

* अपतु अजामिलु गजु गनिकाऊ। भए मुकुत हरि नाम प्रभाऊ॥
कहौं कहाँ लगि नाम बड़ाई। रामु न सकहिं नाम गुन गाई॥4॥

भावार्थ:-नीच अजामिल, गज और गणिका (वेश्या) भी श्री हरि के नाम के प्रभाव से मुक्त हो गए। मैं नाम की बड़ाई कहाँ तक कहूँ, राम भी नाम के गुणों को नहीं गा सकते॥4॥

दोहा :

* नामु राम को कलपतरु कलि कल्यान निवासु।
जो सुमिरत भयो भाँग तें तुलसी तुलसीदासु॥26॥

भावार्थ:-कलियुग में राम का नाम कल्पतरु (मन चाहा पदार्थ देने वाला) और कल्याण का निवास (मुक्ति का घर) है, जिसको स्मरण करने से भाँग सा (निकृष्ट) तुलसीदास तुलसी के समान (पवित्र) हो गया॥26॥

चौपाई :

* चहुँ जुग तीनि काल तिहुँ लोका। भए नाम जपि जीव बिसोका॥
बेद पुरान संत मत एहू। सकल सुकृत फल राम सनेहू॥1॥

भावार्थ:-(केवल कलियुग की ही बात नहीं है,) चारों युगों में, तीनों काल में और तीनों लोकों में नाम को जपकर जीव शोकरहित हुए हैं। वेद, पुराण और संतों का मत यही है कि समस्त पुण्यों का फल श्री रामजी में (या राम नाम में) प्रेम होना है॥1॥

* ध्यानु प्रथम जुग मख बिधि दूजें। द्वापर परितोषत प्रभु पूजें॥
कलि केवल मल मूल मलीना। पाप पयोनिधि जन मन मीना॥2॥

भावार्थ:-पहले (सत्य) युग में ध्यान से, दूसरे (त्रेता) युग में यज्ञ से और द्वापर में पूजन से भगवान प्रसन्न होते हैं, परन्तु कलियुग केवल पाप की जड़ और मलिन है, इसमें मनुष्यों का मन पाप रूपी समुद्र में मछली बना हुआ है (अर्थात पाप से कभी अलग होना ही नहीं चाहता, इससे ध्यान, यज्ञ और पूजन नहीं बन सकते)॥2॥

* नाम कामतरु काल कराला। सुमिरत समन सकल जग जाला॥

राम नाम कलि अभिमत दाता। हित परलोक लोक पितु माता॥3॥

भावार्थ:-ऐसे कराल (कलियुग के) काल में तो नाम ही कल्पवृक्ष है, जो स्मरण करते ही संसार के सब जंजालों को नाश कर देने वाला है। कलियुग में यह राम नाम मनोवांछित फल देने वाला है, परलोक का परम हितैषी और इस लोक का माता-पिता है (अर्थात परलोक में भगवान का परमधाम देता है और इस लोक में माता-पिता के समान सब प्रकार से पालन और रक्षण करता है।)॥3॥

* नहिं कलि करम न भगति बिबेकू। राम नाम अवलंबन एकू॥

कालनेमि कलि कपट निधानू। नाम सुमति समरथ हनुमानू॥4॥

भावार्थ:-कलियुग में न कर्म है, न भक्ति है और न ज्ञान ही है, राम नाम ही एक आधार है। कपट की खान कलियुग रूपी कालनेमि के (मारने के) लिए राम नाम ही बुद्धिमान और समर्थ श्री हनुमान्‌जी हैं॥4॥

दोहा :

* राम नाम नरकेसरी कनककसिपु कलिकाल।

जापक जन प्रहलाद जिमि पालिहि दलि सुरसाल॥27॥

भावार्थ:-राम नाम श्री नृसिंह भगवान है, कलियुग हिरण्यकशिपु है और जप करने वाले जन प्रह्लाद के समान हैं, यह राम नाम देवताओं के शत्रु (कलियुग रूपी दैत्य) को मारकर जप करने वालों की रक्षा करेगा॥27॥

चौपाई :

* भायँ कुभायँ अनख आलस हूँ। नाम जपत मंगल दिसि दसहूँ॥

सुमिरि सो नाम राम गुन गाथा। करउँ नाइ रघुनाथहि माथा॥1॥॥

भावार्थ:-अच्छे भाव (प्रेम) से, बुरे भाव (बैर) से, क्रोध से या आलस्य से, किसी तरह से भी नाम जपने से दसों दिशाओं में कल्याण होता है। उसी (परम कल्याणकारी) राम नाम का स्मरण करके और श्री रघुनाथजी को मस्तक नवाकर मैं रामजी के गुणों का वर्णन करता हूँ॥1॥

श्री रामगुण और श्री रामचरित् की महिमा

* मोरि सुधारिहि सो सब भाँती। जासु कृपा नहिं कृपाँ अघाती॥
राम सुस्वामि कुसेवकु मोसो। निज दिसि देखि दयानिधि पोसो॥2॥

भावार्थ:-वे (श्री रामजी) मेरी (बिगड़ी) सब तरह से सुधार लेंगे, जिनकी कृपा कृपा करने से नहीं अघाती। राम से उत्तम स्वामी और मुझ सरीखा बुरा सेवक! इतने पर भी उन दयानिधि ने अपनी ओर देखकर मेरा पालन किया है॥2॥

* लोकहुँ बेद सुसाहिब रीती। बिनय सुनत पहिचानत प्रीती॥
गनी गरीब ग्राम नर नागर। पंडित मूढ़ मलीन उजागर॥3॥

भावार्थ:-लोक और वेद में भी अच्छे स्वामी की यही रीति प्रसिद्ध है कि वह विनय सुनते ही प्रेम को पहचान लेता है। अमीर-गरीब, गँवार-नगर निवासी, पण्डित-मूर्ख, बदनाम-यशस्वी॥3॥

* सुकबि कुकबि निज मति अनुहारी। नृपहि सराहत सब नर नारी॥
साधु सुजान सुसील नृपाला। ईस अंस भव परम कृपाला॥4॥

भावार्थ:-सुकवि-कुकवि, सभी नर-नारी अपनी-अपनी बुद्धि के अनुसार राजा की सराहना करते हैं और साधु, बुद्धिमान, सुशील, ईश्वर के अंश से उत्पन्न कृपालु राजा-॥4॥

* सुनि सनमानहिं सबहि सुबानी। भनिति भगति नति गति पहिचानी॥
यह प्राकृत महिपाल सुभाऊ। जान सिरोमनि कोसलराऊ॥5॥

भावार्थ:-सबकी सुनकर और उनकी वाणी, भक्ति, विनय और चाल को पहचानकर सुंदर (मीठी) वाणी से सबका यथायोग्य सम्मान करते हैं। यह स्वभाव तो संसारी राजाओं का है, कोसलनाथ श्री रामचन्द्रजी तो चतुरशिरोमणि हैं॥5॥

* रीझत राम सनेह निसोतें। को जग मंद मलिनमति मोतें॥6॥

भावार्थ:-श्री रामजी तो विशुद्ध प्रेम से ही रीझते हैं, पर जगत में मुझसे बढ़कर मूर्ख और मलिन बुद्धि और कौन होगा?॥6॥

दोहा :

* सठ सेवक की प्रीति रुचि रखिहहिं राम कृपालु।
उपल किए जलजान जेहिं सचिव सुमति कपि भालु॥28 क॥

भावार्थ:-तथापि कृपालु श्री रामचन्द्रजी मुझ दुष्ट सेवक की प्रीति और रुचि को अवश्य रखेंगे, जिन्होंने पत्थरों को जहाज और बंदर-भालुओं को बुद्धिमान मंत्री बना लिया॥28 (क)॥

* हौंहु कहावत सबु कहत राम सहत उपहास।
साहिब सीतानाथ सो सेवक तुलसीदास॥28 ख॥

भावार्थ:-सब लोग मुझे श्री रामजी का सेवक कहते हैं और मैं भी (बिना लज्जा-संकोच के) कहलाता हूँ (कहने वालों का विरोध नहीं करता), कृपालु श्री रामजी इस निन्दा को सहते हैं कि श्री सीतानाथजी, जैसे स्वामी का तुलसीदास सा सेवक है॥28 (ख)॥

चौपाई :

* अति बड़ि मोरि ढिठाई खोरी। सुनि अघ नरकहुँ नाक सकोरी॥
समुझि सहम मोहि अपडर अपनें। सो सुधि राम कीन्हि नहिं सपनें॥1॥

भावार्थ:-यह मेरी बहुत बड़ी ढिठाई और दोष है, मेरे पाप को सुनकर नरक ने भी नाक सिकोड़ ली है (अर्थात नरक में भी मेरे लिए ठौर नहीं है)। यह समझकर मुझे अपने ही कल्पित डर से डर हो रहा है, किन्तु भगवान श्री रामचन्द्रजी ने तो स्वप्न में भी इस पर (मेरी इस ढिठाई और दोष पर) ध्यान नहीं दिया॥1॥

* सुनि अवलोकि सुचित चख चाही। भगति मोरि मति स्वामि सराही॥
कहत नसाइ होइ हियँ नीकी। रीझत राम जानि जन जी की॥2॥

भावार्थ:-वरन मेरे प्रभु श्री रामचन्द्रजी ने तो इस बात को सुनकर, देखकर और अपने सुचित्त रूपी चक्षु से निरीक्षण कर मेरी भक्ति और बुद्धि की (उलटे) सराहना की, क्योंकि कहने में चाहे बिगड़ जाए (अर्थात् मैं चाहे अपने को भगवान का सेवक कहता-कहलाता रहूँ), परन्तु हृदय में अच्छापन होना चाहिए। (हृदय में तो अपने को उनका सेवक बनने योग्य नहीं मानकर पापी और दीन ही मानता हूँ, यह अच्छापन है।) श्री रामचन्द्रजी भी दास के हृदय की (अच्छी) स्थिति जानकर रीझ जाते हैं॥2॥

* रहति न प्रभु चित चूक किए की। करत सुरति सय बार हिए की॥
जेहिं अघ बधेउ ब्याध जिमि बाली। फिरि सुकंठ सोइ कीन्हि कुचाली॥3॥

भावार्थ:-प्रभु के चित्त में अपने भक्तों की हुई भूल-चूक याद नहीं रहती (वे उसे भूल जाते हैं) और उनके हृदय (की अच्छाई-नेकी) को सौ-सौ बार याद करते रहते हैं। जिस पाप के कारण उन्होंने बालि को व्याध की तरह मारा था, वैसी ही कुचाल फिर सुग्रीव ने चली॥3॥

* सोइ करतूति बिभीषन केरी। सपनेहूँ सो न राम हियँ हेरी॥
ते भरतहि भेंटत सनमाने। राजसभाँ रघुबीर बखाने॥4॥

भावार्थ:-वही करनी विभीषण की थी, परन्तु श्री रामचन्द्रजी ने स्वप्न में भी उसका मन में विचार नहीं किया। उलटे भरतजी से मिलने के समय श्री रघुनाथजी ने उनका सम्मान किया और राजसभा में भी उनके गुणों का बखान किया॥4॥

दोहा :

* प्रभु तरु तर कपि डार पर ते किए आपु समान।
तुलसी कहूँ न राम से साहिब सील निधान॥29 क॥

भावार्थ:-प्रभु (श्री रामचन्द्रजी) तो वृक्ष के नीचे और बंदर डाली पर (अर्थात कहाँ मर्यादा पुरुषोत्तम सच्चिदानन्दघन परमात्मा श्री रामजी और कहाँ पेड़ों की शाखाओं पर कूदने वाले बंदर), परन्तु ऐसे बंदरों को भी उन्होंने अपने समान बना लिया। तुलसीदासजी कहते हैं कि श्री रामचन्द्रजी सरीखे शीलनिधान स्वामी कहीं भी नहीं हैं॥29 (क)॥

* राम निकाईं रावरी है सबही को नीक।
जौं यह साँची है सदा तौ नीको तुलसीक॥29 ख॥

भावार्थ:-हे श्री रामजी! आपकी अच्छाई से सभी का भला है (अर्थात आपका कल्याणमय स्वभाव सभी का कल्याण करने वाला है) यदि यह बात सच है तो तुलसीदास का भी सदा कल्याण ही होगा॥29 (ख)॥

* एहि बिधि निज गुन दोष कहि सबहि बहुरि सिरु नाइ।
बरनउँ रघुबर बिसद जसु सुनि कलि कलुष नसाइ॥29 ग॥

भावार्थ:-इस प्रकार अपने गुण-दोषों को कहकर और सबको फिर सिर नवाकर मैं श्री रघुनाथजी का निर्मल यश वर्णन करता हूँ, जिसके सुनने से कलियुग के पाप नष्ट हो जाते हैं॥29 (ग)॥

चौपाई :

* जागबलिक जो कथा सुहाई। भरद्वाज मुनिबरहि सुनाई॥

कहिहउँ सोइ संबाद बखानी। सुनहुँ सकल सज्जन सुखु मानी॥1॥

भावार्थ:-मुनि याज्ञवल्क्यजी ने जो सुहावनी कथा मुनिश्रेष्ठ भरद्वाजजी को सुनाई थी, उसी संवाद को मैं बखानकर कहूँगा, सब सज्जन सुख का अनुभव करते हुए उसे सुनें॥1॥

* संभु कीन्ह यह चरित सुहावा। बहुरि कृपा करि उमहि सुनावा॥

सोइ सिव कागभुसुंडिहि दीन्हा। राम भगत अधिकारी चीन्हा॥2॥

भावार्थ:-शिवजी ने पहले इस सुहावने चरित्र को रचा, फिर कृपा करके पार्वतीजी को सुनाया। वही चरित्र शिवजी ने काकभुशुण्डिजी को रामभक्त और अधिकारी पहचानकर दिया॥2॥

* तेहि सन जागबलिक पुनि पावा। तिन्ह पुनि भरद्वाज प्रति गावा॥

ते श्रोता बकता समसीला। सवँदरसी जानहिं हरिलीला॥3॥

भावार्थ:-उन काकभुशुण्डिजी से फिर याज्ञवल्क्यजी ने पाया और उन्होंने फिर उसे भरद्वाजजी को गाकर सुनाया। वे दोनों वक्ता और श्रोता (याज्ञवल्क्य और भरद्वाज) समान शील वाले और समदर्शी हैं और श्री हरि की लीला को जानते हैं॥3॥

* जानहिं तीनि काल निज ग्याना। करतल गत आमलक समाना॥

औरउ जे हरिभगत सुजाना। कहहिं सुनहिं समुझहिं बिधि नाना॥4॥

भावार्थ:-वे अपने ज्ञान से तीनों कालों की बातों को हथेली पर रखे हुए आँवले के समान (प्रत्यक्ष) जानते हैं। और भी जो सुजान (भगवान की लीलाओं का रहस्य जानने वाले) हरि भक्त हैं, वे इस चरित्र को नाना प्रकार से कहते, सुनते और समझते हैं॥4॥

दोहा :

* मैं पुनि निज गुर सन सुनी कथा सो सूकरखेत।

समुझी नहिं तसि बालपन तब अति रहेउँ अचेत॥30 क॥

भावार्थ:-फिर वही कथा मैंने वाराह क्षेत्र में अपने गुरुजी से सुनी, परन्तु उस समय मैं लड़कपन के कारण बहुत बेसमझ था, इससे उसको उस प्रकार (अच्छी तरह) समझा नहीं॥30 (क)॥

* श्रोता बकता ग्याननिधि कथा राम कै गूढ़।
किमि समुझौं मैं जीव जड़ कलि मल ग्रसित बिमूढ़॥30ख॥

भावार्थ:-श्री रामजी की गूढ़ कथा के वक्ता (कहने वाले) और श्रोता (सुनने वाले) दोनों ज्ञान के खजाने (पूरे ज्ञानी) होते हैं। मैं कलियुग के पापों से ग्रसा हुआ महामूढ़ जड़ जीव भला उसको कैसे समझ सकता था?॥30 ख॥

चौपाई :

* तदपि कही गुर बारहिं बारा। समुझि परी कछु मति अनुसारा॥
भाषाबद्ध करबि मैं सोई। मोरें मन प्रबोध जेहिं होई॥1॥

भावार्थ:-तो भी गुरुजी ने जब बार-बार कथा कही, तब बुद्धि के अनुसार कुछ समझ में आई। वही अब मेरे द्वारा भाषा में रची जाएगी, जिससे मेरे मन को संतोष हो॥1॥

* जस कछु बुधि बिबेक बल मेरें। तस कहिहउँ हियँ हरि के प्रेरें॥
निज संदेह मोह भ्रम हरनी। करउँ कथा भव सरिता तरनी॥2॥

भावार्थ:-जैसा कुछ मुझमें बुद्धि और विवेक का बल है, मैं हृदय में हरि की प्रेरणा से उसी के अनुसार कहूँगा। मैं अपने संदेह, अज्ञान और भ्रम को हरने वाली कथा रचता हूँ, जो संसार रूपी नदी के पार करने के लिए नाव है॥2॥

* बुध बिश्राम सकल जन रंजनि। रामकथा कलि कलुष बिभंजनि॥
रामकथा कलि पंनग भरनी। पुनि बिबेक पावक कहुँ अरनी॥3॥

भावार्थ:-रामकथा पण्डितों को विश्राम देने वाली, सब मनुष्यों को प्रसन्न करने वाली और कलियुग के पापों का नाश करने वाली है। रामकथा कलियुग रूपी साँप के लिए मोरनी है और विवेक रूपी अग्नि के प्रकट करने के लिए अरणि (मंथन की जाने वाली लकड़ी) है, (अर्थात इस कथा से ज्ञान की प्राप्ति होती है)॥3॥

* रामकथा कलि कामद गाई। सुजन सजीवनि मूरि सुहाई॥
सोइ बसुधातल सुधा तरंगिनि। भय भंजनि भ्रम भेक भुअंगिनि॥4॥

भावार्थ:-रामकथा कलियुग में सब मनोरथों को पूर्ण करने वाली कामधेनु गौ है और सज्जनों के लिए सुंदर संजीवनी जड़ी है। पृथ्वी पर यही अमृत की नदी है, जन्म-मरण रूपी भय का नाश करने वाली और भ्रम रूपी मेंढकों को खाने के लिए सर्पिणी है॥4॥

* असुर सेन सम नरक निकंदिनि। साधु बिबुध कुल हित गिरिनंदिनि॥
संत समाज पयोधि रमा सी। बिस्व भार भर अचल छमा सी॥5॥

भावार्थ:-यह रामकथा असुरों की सेना के समान नरकों का नाश करने वाली और साधु रूप देवताओं के कुल का हित करने वाली पार्वती (दुर्गा) है। यह संत-समाज रूपी क्षीर समुद्र के लिए लक्ष्मीजी के समान है और सम्पूर्ण विश्व का भार उठाने में अचल पृथ्वी के समान है॥5॥

* जम गन मुहँ मसि जग जमुना सी। जीवन मुकुति हेतु जनु कासी॥
रामहि प्रिय पावनि तुलसी सी। तुलसिदास हित हियँ हुलसी सी॥6॥

भावार्थ:-यमदूतों के मुख पर कालिख लगाने के लिए यह जगत में यमुनाजी के समान है और जीवों को मुक्ति देने के लिए मानो काशी ही है। यह श्री रामजी को पवित्र तुलसी के समान प्रिय है और तुलसीदास के लिए हुलसी (तुलसीदासजी की माता) के समान हृदय से हित करने वाली है॥6॥

* सिवप्रिय मेकल सैल सुता सी। सकल सिद्धि सुख संपति रासी॥

सदगुन सुरगन अंब अदिति सी। रघुबर भगति प्रेम परमिति सी॥7॥

भावार्थ:-यह रामकथा शिवजी को नर्मदाजी के समान प्यारी है, यह सब सिद्धियों की तथा सुख-सम्पत्ति की राशि है। सद्‌गुण रूपी देवताओं के उत्पन्न और पालन-पोषण करने के लिए माता अदिति के समान है। श्री रघुनाथजी की भक्ति और प्रेम की परम सीमा सी है॥7॥

दोहा :

* रामकथा मंदाकिनी चित्रकूट चित चारु।

तुलसी सुभग सनेह बन सिय रघुबीर बिहारु॥31॥

भावार्थ:-तुलसीदासजी कहते हैं कि रामकथा मंदाकिनी नदी है, सुंदर (निर्मल) चित्त चित्रकूट है और सुंदर स्नेह ही वन है, जिसमें श्री सीतारामजी विहार करते हैं॥31॥

चौपाई :

* रामचरित चिंतामति चारू। संत सुमति तिय सुभग सिंगारू॥

जग मंगल गुनग्राम राम के। दानि मुकुति धन धरम धाम के॥1॥

भावार्थ:-श्री रामचन्द्रजी का चरित्र सुंदर चिन्तामणि है और संतों की सुबुद्धि रूपी स्त्री का सुंदर श्रंगार है। श्री रामचन्द्रजी के गुण-समूह जगत्‌ का कल्याण करने वाले और मुक्ति, धन, धर्म और परमधाम के देने वाले हैं॥1॥

* सदगुर ग्यान बिराग जोग के। बिबुध बैद भव भीम रोग के॥

जननि जनक सिय राम प्रेम के। बीज सकल ब्रत धरम नेम के॥2॥

भावार्थ:-ज्ञान, वैराग्य और योग के लिए सद्‌गुरु हैं और संसार रूपी भयंकर रोग का नाश करने के लिए देवताओं के वैद्य (अश्विनीकुमार) के

समान हैं। ये श्री सीतारामजी के प्रेम के उत्पन्न करने के लिए माता-पिता हैं और सम्पूर्ण व्रत, धर्म और नियमों के बीज हैं॥2॥

* समन पाप संताप सोक के। प्रिय पालक परलोक लोक के॥
सचिव सुभट भूपति बिचार के। कुंभज लोभ उदधि अपार के॥3॥

भावार्थ:-पाप, संताप और शोक का नाश करने वाले तथा इस लोक और परलोक के प्रिय पालन करने वाले हैं। विचार (ज्ञान) रूपी राजा के शूरवीर मंत्री और लोभ रूपी अपार समुद्र के सोखने के लिए अगस्त्य मुनि हैं॥3॥

* काम कोह कलिमल करिगन के। केहरि सावक जन मन बन के॥
अतिथि पूज्य प्रियतम पुरारि के। कामद घन दारिद दवारि के॥4॥

भावार्थ:-भक्तों के मन रूपी वन में बसने वाले काम, क्रोध और कलियुग के पाप रूपी हाथियों को मारने के लिए सिंह के बच्चे हैं। शिवजी के पूज्य और प्रियतम अतिथि हैं और दरिद्रता रूपी दावानल के बुझाने के लिए कामना पूर्ण करने वाले मेघ हैं॥4॥

* मंत्र महामनि बिषय ब्याल के। मेटत कठिन कुअंक भाल के॥
हरन मोह तम दिनकर कर से। सेवक सालि पाल जलधर से॥5॥

भावार्थ:-विषय रूपी साँप का जहर उतारने के लिए मन्त्र और महामणि हैं। ये ललाट पर लिखे हुए कठिनता से मिटने वाले बुरे लेखों (मंद प्रारब्ध) को मिटा देने वाले हैं। अज्ञान रूपी अन्धकार को हरण करने के लिए सूर्य किरणों के समान और सेवक रूपी धान के पालन करने में मेघ के समान हैं॥5॥

* अभिमत दानि देवतरु बर से। सेवत सुलभ सुखद हरि हर से॥
सुकबि सरद नभ मन उडगन से। रामभगत जन जीवन धन से॥6॥

भावार्थ:-मनोवांछित वस्तु देने में श्रेष्ठ कल्पवृक्ष के समान हैं और सेवा करने में हरि-हर के समान सुलभ और सुख देने वाले हैं। सुकवि रूपी शरद् ऋतु के मन रूपी आकाश को सुशोभित करने के लिए तारागण के समान और श्री रामजी के भक्तों के तो जीवन धन ही हैं॥6॥

* सकल सुकृत फल भूरि भोग से। जग हित निरुपधि साधु लोग से॥

सेवक मन मानस मराल से। पावन गंग तरंग माल से॥7॥

भावार्थ:-सम्पूर्ण पुण्यों के फल महान भोगों के समान हैं। जगत का छलरहित (यथार्थ) हित करने में साधु-संतों के समान हैं। सेवकों के मन रूपी मानसरोवर के लिए हंस के समान और पवित्र करने में गंगाजी की तरंगमालाओं के समान हैं॥7॥

दोहा :

* कुपथ कुतरक कुचालि कलि कपट दंभ पाषंड।

दहन राम गुन ग्राम जिमि इंधन अनल प्रचंड॥32 क॥

भावार्थ:-श्री रामजी के गुणों के समूह कुमार्ग, कुतर्क, कुचाल और कलियुग के कपट, दम्भ और पाखण्ड को जलाने के लिए वैसे ही हैं, जैसे ईंधन के लिए प्रचण्ड अग्नि॥32 (क)॥

* रामचरित राकेस कर सरिस सुखद सब काहु।

सज्जन कुमुद चकोर चित हित बिसेषि बड़ लाहु॥32 ख॥

भावार्थ:-रामचरित्र पूर्णिमा के चन्द्रमा की किरणों के समान सभी को सुख देने वाले हैं, परन्तु सज्जन रूपी कुमुदिनी और चकोर के चित्त के लिए तो विशेष हितकारी और महान लाभदायक हैं॥32 (ख)॥

चौपाई :

* कीन्हि प्रस्न जेहि भाँति भवानी। जेहि बिधि संकर कहा बखानी॥

सो सब हेतु कहब मैं गाई। कथा प्रबंध बिचित्र बनाई॥1॥

भावार्थ:-जिस प्रकार श्री पार्वतीजी ने श्री शिवजी से प्रश्न किया और जिस प्रकार से श्री शिवजी ने विस्तार से उसका उत्तर कहा, वह सब कारण मैं विचित्र कथा की रचना करके गाकर कहूँगा॥1॥

* जेहिं यह कथा सुनी नहिं होई। जनि आचरजु करै सुनि सोई॥
कथा अलौकिक सुनहिं जे ग्यानी। नहिं आचरजु करहिं अस जानी॥2॥
रामकथा कै मिति जग नाहीं। असि प्रतीति तिन्ह के मन माहीं॥
नाना भाँति राम अवतारा। रामायन सत कोटि अपारा॥3॥

भावार्थ:-जिसने यह कथा पहले न सुनी हो, वह इसे सुनकर आश्चर्य न करे। जो ज्ञानी इस विचित्र कथा को सुनते हैं, वे यह जानकर आश्चर्य नहीं करते कि संसार में रामकथा की कोई सीमा नहीं है (रामकथा अनंत है)। उनके मन में ऐसा विश्वास रहता है। नाना प्रकार से श्री रामचन्द्रजी के अवतार हुए हैं और सौ करोड़ तथा अपार रामायण हैं॥2-3॥

* कलपभेद हरिचरित सुहाए। भाँति अनेक मुनीसन्ह गाए॥
करिअ न संसय अस उर आनी। सुनिअ कथा सादर रति मानी॥4॥

भावार्थ:-कल्पभेद के अनुसार श्री हरि के सुंदर चरित्रों को मुनीश्वरों ने अनेकों प्रकार से गया है। हृदय में ऐसा विचार कर संदेह न कीजिए और आदर सहित प्रेम से इस कथा को सुनिए॥4॥

दोहा :

* राम अनंत अनंत गुन अमित कथा बिस्तार।
सुनि आचरजु न मानिहहिं जिन्ह कें बिमल बिचार॥33॥

भावार्थ:-श्री रामचन्द्रजी अनन्त हैं, उनके गुण भी अनन्त हैं और उनकी कथाओं का विस्तार भी असीम है। अतएव जिनके विचार निर्मल हैं, वे इस कथा को सुनकर आश्चर्य नहीं मानेंगे॥3॥

चौपाई :

* एहि बिधि सब संसय करि दूरी। सिर धरि गुर पद पंकज धूरी॥
पुनि सबही बिनवउँ कर जोरी। करत कथा जेहिं लाग न खोरी॥1॥

भावार्थ:-इस प्रकार सब संदेहों को दूर करके और श्री गुरुजी के चरणकमलों की रज को सिर पर धारण करके मैं पुनः हाथ जोड़कर सबकी विनती करता हूँ, जिससे कथा की रचना में कोई दोष स्पर्श न करने पावे॥1॥

मानस निर्माण की तिथि

* सादर सिवहि नाइ अब माथा। बरनउँ बिसद राम गुन गाथा॥
संबत सोरह सै एकतीसा। करउँ कथा हरि पद धरि सीसा॥2॥

भावार्थ:-अब मैं आदरपूर्वक श्री शिवजी को सिर नवाकर श्री रामचन्द्रजी के गुणों की निर्मल कथा कहता हूँ। श्री हरि के चरणों पर सिर रखकर संवत् 1631 में इस कथा का आरंभ करता हूँ॥2॥

* नौमी भौम बार मधुमासा। अवधपुरीं यह चरित प्रकासा॥
जेहि दिन राम जनम श्रुति गावहिं। तीरथ सकल जहाँ चलि आवहिं॥3॥

भावार्थ:-चैत्र मास की नवमी तिथि मंगलवार को श्री अयोध्याजी में यह चरित्र प्रकाशित हुआ। जिस दिन श्री रामजी का जन्म होता है, वेद कहते हैं कि उस दिन सारे तीर्थ वहाँ (श्री अयोध्याजी में) चले आते हैं॥3॥

* असुर नाग खग नर मुनि देवा। आइ करहिं रघुनायक सेवा॥
जन्म महोत्सव रचहिं सुजाना। करहिं राम कल कीरति गाना॥4॥

भावार्थ:-असुर-नाग, पक्षी, मनुष्य, मुनि और देवता सब अयोध्याजी में आकर श्री रघुनाथजी की सेवा करते हैं। बुद्धिमान लोग जन्म का महोत्सव मनाते हैं और श्री रामजी की सुंदर कीर्ति का गान करते हैं॥4॥

दोहा :

* मज्जहिं सज्जन बृंद बहु पावन सरजू नीर।

जपहिं राम धरि ध्यान उर सुंदर स्याम सरीर॥34॥

भावार्थ:-सज्जनों के बहुत से समूह उस दिन श्री सरयूजी के पवित्र जल में स्नान करते हैं और हृदय में सुंदर श्याम शरीर श्री रघुनाथजी का ध्यान करके उनके नाम का जप करते हैं॥34॥

चौपाई :

* दरस परस मज्जन अरु पाना। हरइ पाप कह बेद पुराना॥

नदी पुनीत अमित महिमा अति। कहि न सकइ सारदा बिमल मति॥1॥

भावार्थ:-वेद-पुराण कहते हैं कि श्री सरयूजी का दर्शन, स्पर्श, स्नान और जलपान पापों को हरता है। यह नदी बड़ी ही पवित्र है, इसकी महिमा अनन्त है, जिसे विमल बुद्धि वाली सरस्वतीजी भी नहीं कह सकतीं॥1॥

* राम धामदा पुरी सुहावनि। लोक समस्त बिदित अति पावनि॥

चारि खानि जग जीव अपारा। अवध तजें तनु नहिं संसारा॥2॥

भावार्थ:-यह शोभायमान अयोध्यापुरी श्री रामचन्द्रजी के परमधाम की देने वाली है, सब लोकों में प्रसिद्ध है और अत्यन्त पवित्र है। जगत में (अण्डज, स्वेदज, उद्भिज्ज और जरायुज) चार खानि (प्रकार) के अनन्त जीव हैं, इनमें से जो कोई भी अयोध्याजी में शरीर छोड़ते हैं, वे फिर संसार में नहीं आते (जन्म-मृत्यु के चक्कर से छूटकर भगवान के परमधाम में निवास करते हैं)॥2॥

* सब बिधि पुरी मनोहर जानी। सकल सिद्धिप्रद मंगल खानी॥

बिमल कथा कर कीन्ह अरंभा। सुनत नसाहिं काम मद दंभा॥3॥

भावार्थ:-इस अयोध्यापुरी को सब प्रकार से मनोहर, सब सिद्धियों की देने वाली और कल्याण की खान समझकर मैंने इस निर्मल कथा का आरंभ किया, जिसके सुनने से काम, मद और दम्भ नष्ट हो जाते हैं॥3॥

* रामचरितमानस एहि नामा। सुनत श्रवन पाइअ बिश्रामा॥
मन करि बिषय अनल बन जरई। होई सुखी जौं एहिं सर परई॥4॥

भावार्थ:-इसका नाम रामचरित मानस है, जिसके कानों से सुनते ही शांति मिलती है। मन रूपी हाथी विषय रूपी दावानल में जल रहा है, वह यदि इस रामचरित मानस रूपी सरोवर में आ पड़े तो सुखी हो जाए॥4॥

* रामचरितमानस मुनि भावन। बिरचेउ संभु सुहावन पावन॥
त्रिबिध दोष दुख दारिद दावन। कलि कुचालि कुलि कलुष नसावन॥5॥

भावार्थ:-यह रामचरित मानस मुनियों का प्रिय है, इस सुहावने और पवित्र मानस की शिवजी ने रचना की। यह तीनों प्रकार के दोषों, दुःखों और दरिद्रता को तथा कलियुग की कुचालों और सब पापों का नाश करने वाला है॥5॥

* रचि महेस निज मानस राखा। पाइ सुसमउ सिवा सन भाषा॥
तातें रामचरितमानस बर। धरेउ नाम हियँ हेरि हरषि हर॥6॥

भावार्थ:-श्री महादेवजी ने इसको रचकर अपने मन में रखा था और सुअवसर पाकर पार्वतीजी से कहा। इसी से शिवजी ने इसको अपने हृदय में देखकर और प्रसन्न होकर इसका सुंदर 'रामचरित मानस' नाम रखा॥6॥

* कहउँ कथा सोइ सुखद सुहाई। सादर सुनहु सुजन मन लाई॥7॥

भावार्थ:-मैं उसी सुख देने वाली सुहावनी रामकथा को कहता हूँ, हे सज्जनों! आदरपूर्वक मन लगाकर इसे सुनिए॥7॥

मानस का रूप और माहात्म्य

दोहा :

* जस मानस जेहि बिधि भयउ जग प्रचार जेहि हेतु।
अब सोइ कहउँ प्रसंग सब सुमिरि उमा बृषकेतु॥35॥

भावार्थ:-यह रामचरित मानस जैसा है, जिस प्रकार बना है और जिस हेतु से जगत में इसका प्रचार हुआ, अब वही सब कथा मैं श्री उमा-महेश्वर का स्मरण करके कहता हूँ॥35॥

चौपाई :

* संभु प्रसाद सुमति हियँ हुलसी। रामचरितमानस कबि तुलसी॥
करइ मनोहर मति अनुहारी। सुजन सुचित सुनि लेहु सुधारी॥1॥

भावार्थ:-श्री शिवजी की कृपा से उसके हृदय में सुंदर बुद्धि का विकास हुआ, जिससे यह तुलसीदास श्री रामचरित मानस का कवि हुआ। अपनी बुद्धि के अनुसार तो वह इसे मनोहर ही बनाता है, किन्तु फिर भी हे सज्जनो! सुंदर चित्त से सुनकर इसे आप सुधार लीजिए॥1॥

* सुमति भूमि थल हृदय अगाधू। बेद पुरान उदधि घन साधू॥
बरषहिं राम सुजस बर बारी। मधुर मनोहर मंगलकारी॥2॥

भावार्थ:-सुंदर (सात्त्विकी) बुद्धि भूमि है, हृदय ही उसमें गहरा स्थान है, वेद-पुराण समुद्र हैं और साधु-संत मेघ हैं। वे (साधु रूपी मेघ) श्री रामजी के सुयश रूपी सुंदर, मधुर, मनोहर और मंगलकारी जल की वर्षा करते हैं॥2॥

* लीला सगुन जो कहहिं बखानी। सोइ स्वच्छता करइ मल हानी॥

प्रेम भगति जो बरनि न जाई। सोइ मधुरता सुसीतलताई॥3॥

भावार्थ:-सगुण लीला का जो विस्तार से वर्णन करते हैं, वही राम सुयश रूपी जल की निर्मलता है, जो मल का नाश करती है और जिस प्रेमाभक्ति का वर्णन नहीं किया जा सकता, वही इस जल की मधुरता और सुंदर शीतलता है॥3॥

* सो जल सुकृत सालि हित होई। राम भगत जन जीवन सोई॥
मेधा महि गत सो जल पावन। सकिलि श्रवन मग चलेउ सुहावन॥4॥
भरेउ सुमानस सुथल थिराना। सुखद सीत रुचि चारु चिराना॥5॥

भावार्थ:-वह (राम सुयश रूपी) जल सत्कर्म रूपी धान के लिए हितकर है और श्री रामजी के भक्तों का तो जीवन ही है। वह पवित्र जल बुद्धि रूपी पृथ्वी पर गिरा और सिमटकर सुहावने कान रूपी मार्ग से चला और मानस (हृदय) रूपी श्रेष्ठ स्थान में भरकर वहीं स्थिर हो गया। वही पुराना होकर सुंदर, रुचिकर, शीतल और सुखदाई हो गया॥4-5॥

दोहा :

* सुठि सुंदर संबाद बर बिरचे बुद्धि बिचारि।
तेइ एहि पावन सुभग सर घाट मनोहर चारि॥36॥

भावार्थ:-इस कथा में बुद्धि से विचारकर जो चार अत्यन्त सुंदर और उत्तम संवाद (भुशुण्डि-गरुड़, शिव-पार्वती, याज्ञवल्क्य-भरद्वाज और तुलसीदास और संत) रचे हैं, वही इस पवित्र और सुंदर सरोवर के चार मनोहर घाट हैं॥36॥

चौपाई :

* सप्त प्रबंध सुभग सोपाना। ग्यान नयन निरखत मन माना॥
रघुपति महिमा अगुन अबाधा। बरनब सोइ बर बारि अगाधा॥1॥

भावार्थ:-सात काण्ड ही इस मानस सरोवर की सुंदर सात सीढ़ियाँ हैं, जिनको ज्ञान रूपी नेत्रों से देखते ही मन प्रसन्न हो जाता है। श्री रघुनाथजी की निर्गुण (प्राकृतिक गुणों से अतीत) और निर्बाध (एकरस) महिमा का जो वर्णन किया जाएगा, वही इस सुंदर जल की अथाह गहराई है॥1॥

* राम सीय जस सलिल सुधासम। उपमा बीचि बिलास मनोरम॥
पुरइनि सघन चारु चौपाई। जुगुति मंजु मनि सीप सुहाई॥2॥

भावार्थ:-श्री रामचन्द्रजी और सीताजी का यश अमृत के समान जल है। इसमें जो उपमाएँ दी गई हैं, वही तरंगों का मनोहर विलास है। सुंदर चौपाइयाँ ही इसमें घनी फैली हुई पुरइन (कमलिनी) हैं और कविता की युक्तियाँ सुंदर मणि (मोती) उत्पन्न करने वाली सुहावनी सीपियाँ हैं॥2॥

* छंद सोरठा सुंदर दोहा। सोइ बहुरंग कमल कुल सोहा॥
अरथ अनूप सुभाव सुभासा। सोइ पराग मकरंद सुबासा॥3॥

भावार्थ:-जो सुंदर छन्द, सोरठे और दोहे हैं, वही इसमें बहुरंगे कमलों के समूह सुशोभित हैं। अनुपम अर्थ, ऊँचे भाव और सुंदर भाषा ही पराग (पुष्परज), मकरंद (पुष्परस) और सुगंध हैं॥3॥

* सुकृत पुंज मंजुल अलि माला। ग्यान बिराग बिचार मराला॥
धुनि अवरेब कबित गुन जाती। मीन मनोहर ते बहुभाँती॥4॥

भावार्थ:-सत्कर्मों (पुण्यों) के पुंज भौंरों की सुंदर पंक्तियाँ हैं, ज्ञान, वैराग्य और विचार हंस हैं। कविता की ध्वनि वक्रोक्ति, गुण और जाति ही अनेकों प्रकार की मनोहर मछलियाँ हैं॥4॥

* अरथ धरम कामादिक चारी। कहब ग्यान बिग्यान बिचारी॥
नव रस जप तप जोग बिरागा। ते सब जलचर चारु तड़ागा॥5॥

भावार्थ:-अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष- ये चारों, ज्ञान-विज्ञान का विचार के कहना, काव्य के नौ रस, जप, तप, योग और वैराग्य के प्रसंग- ये सब इस सरोवर के सुंदर जलचर जीव हैं॥5॥

* सुकृती साधु नाम गुन गाना। ते बिचित्र जलबिहग समाना॥
संतसभा चहुँ दिसि अवँराई। श्रद्धा रितु बसंत सम गाई॥6॥

भावार्थ:-सुकृती (पुण्यात्मा) जनों के, साधुओं के और श्री रामनाम के गुणों का गान ही विचित्र जल पक्षियों के समान है। संतों की सभा ही इस सरोवर के चारों ओर की अमराई (आम की बगीचियाँ) हैं और श्रद्धा वसन्त ऋतु के समान कही गई है॥6॥

* भगति निरूपन बिबिध बिधाना। छमा दया दम लता बिताना॥
सम जम नियम फूल फल ग्याना। हरि पद रति रस बेद बखाना॥7॥

भावार्थ:-नाना प्रकार से भक्ति का निरूपण और क्षमा, दया तथा दम (इन्द्रिय निग्रह) लताओं के मण्डप हैं। मन का निग्रह, यम (अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह), नियम (शौच, संतोष, तप, स्वाध्याय और ईश्वर प्रणिधान) ही उनके फूल हैं, ज्ञान फल है और श्री हरि के चरणों में प्रेम ही इस ज्ञान रूपी फल का रस है। ऐसा वेदों ने कहा है॥7॥

* औरउ कथा अनेक प्रसंगा। तेइ सुक पिक बहुबरन बिहंगा॥8॥

भावार्थ:-इस (रामचरित मानस) में और भी जो अनेक प्रसंगों की कथाएँ हैं, वे ही इसमें तोते, कोयल आदि रंग-बिरंगे पक्षी हैं॥8॥

दोहा :

* पुलक बाटिका बाग बन सुख सुबिहंग बिहारु।
माली सुमन सनेह जल सींचत लोचन चारु॥37॥

भावार्थ:-कथा में जो रोमांच होता है, वही वाटिका, बाग और वन है और जो सुख होता है, वही सुंदर पक्षियों का विहार है। निर्मल मन ही माली है, जो प्रेमरूपी जल से सुंदर नेत्रों द्वारा उनको सींचता है॥37॥

चौपाई :

* जे गावहिं यह चरित सँभारे। तेइ एहि ताल चतुर रखवारे॥
सदा सुनहिं सादर नर नारी। तेइ सुरबर मानस अधिकारी॥1॥

भावार्थ:-जो लोग इस चरित्र को सावधानी से गाते हैं, वे ही इस तालाब के चतुर रखवाले हैं और जो स्त्री-पुरुष सदा आदरपूर्वक इसे सुनते हैं, वे ही इस सुंदर मानस के अधिकारी उत्तम देवता हैं॥1॥

* अति खल जे बिषई बग कागा। एहि सर निकट न जाहिं अभागा॥
संबुक भेक सेवार समाना। इहाँ न बिषय कथा रस नाना॥2॥

भावार्थ:-जो अति दुष्ट और विषयी हैं, वे अभागे बगुले और कौए हैं, जो इस सरोवर के समीप नहीं जाते, क्योंकि यहाँ (इस मानस सरोवर में) घोंघे, मेंढक और सेवार के समान विषय रस की नाना कथाएँ नहीं हैं॥2॥

* तेहि कारन आवत हियँ हारे। कामी काक बलाक बिचारे॥
आवत ऐहिं सर अति कठिनाई। राम कृपा बिनु आइ न जाई॥3॥

भावार्थ:-इसी कारण बेचारे कौवे और बगुले रूपी विषयी लोग यहाँ आते हुए हृदय में हार मान जाते हैं, क्योंकि इस सरोवर तक आने में कठिनाइयाँ बहुत हैं। श्री रामजी की कृपा बिना यहाँ नहीं आया जाता॥3॥

* कठिन कुसंग कुपंथ कराला। तिन्ह के बचन बाघ हरि ब्याला॥

गृह कारज नाना जंजाला। ते अति दुर्गम सैल बिसाला॥4॥

भावार्थ:-घोर कुसंग ही भयानक बुरा रास्ता है, उन कुसंगियों के वचन ही बाघ, सिंह और साँप हैं। घर के कामकाज और गृहस्थी के भाँति-भाँति के जंजाल ही अत्यंत दुर्गम बड़े-बड़े पहाड़ हैं॥4॥

* बन बहु बिषम मोह मद माना। नदीं कुतर्क भयंकर नाना॥5॥

भावार्थ:-मोह, मद और मान ही बहुत से बीहड़ वन हैं और नाना प्रकार के कुतर्क ही भयानक नदियाँ हैं॥5॥

दोहा :

* जे श्रद्धा संबल रहित नहिं संतन्ह कर साथ।

तिन्ह कहुँ मानस अगम अति जिन्हहि न प्रिय रघुनाथ॥38॥

भावार्थ:-जिनके पास श्रद्धा रूपी राह खर्च नहीं है और संतों का साथ नहीं है और जिनको श्री रघुनाथजी प्रिय हैं, उनके लिए यह मानस अत्यंत ही अगम है। (अर्थात् श्रद्धा, सत्संग और भगवत्प्रेम के बिना कोई इसको नहीं पा सकता)॥38॥

चौपाई :

* जौं करि कष्ट जाइ पुनि कोई। जातहिं नीद जुड़ाई होई॥

जड़ता जाड़ बिषम उर लागा। गएहुँ न मज्जन पाव अभागा॥1॥

भावार्थ:-यदि कोई मनुष्य कष्ट उठाकर वहाँ तक पहुँच भी जाए, तो वहाँ जाते ही उसे नींद रूपी ज़ूडी आ जाती है। हृदय में मूर्खता रूपी बड़ा कड़ा जाड़ा लगने लगता है, जिससे वहाँ जाकर भी वह अभागा स्नान नहीं कर पाता॥1॥

* करि न जाइ सर मज्जन पाना। फिरि आवइ समेत अभिमाना।

जौं बहोरि कोउ पूछन आवा। सर निंदा करि ताहि बुझावा॥2॥

भावार्थ:-उससे उस सरोवर में स्नान और उसका जलपान तो किया नहीं जाता, वह अभिमान सहित लौट आता है। फिर यदि कोई उससे (वहाँ का हाल) पूछने आता है, तो वह (अपने अभाग्य की बात न कहकर) सरोवर की निंदा करके उसे समझाता है॥2॥

* सकल बिघ्न ब्यापहिं नहिं तेही। राम सुकृपाँ बिलोकहिं जेही॥
सोइ सादर सर मज्जनु करई। महा घोर त्रयताप न जरई॥3॥

भावार्थ:-ये सारे विघ्न उसको नहीं व्यापते (बाधा नहीं देते) जिसे श्री रामचंद्रजी सुंदर कृपा की दृष्टि से देखते हैं। वही आदरपूर्वक इस सरोवर में स्नान करता है और महान् भयानक त्रिताप से (आध्यात्मिक, आधिदैविक, आधिभौतिक तापों से) नहीं जलता॥3॥

* ते नर यह सर तजहिं न काऊ। जिन्ह कें राम चरन भल भाऊ॥
जो नहाइ चह एहिं सर भाई। सो सतसंग करउ मन लाई॥4॥

भावार्थ:-जिनके मन में श्री रामचंद्रजी के चरणों में सुंदर प्रेम है, वे इस सरोवर को कभी नहीं छोड़ते। हे भाई! जो इस सरोवर में स्नान करना चाहे, वह मन लगाकर सत्संग करे॥4॥

* अस मानस मानस चख चाही। भइ कबि बुद्धि बिमल अवगाही॥
भयउ हृदयँ आनंद उछाहू। उमगेउ प्रेम प्रमोद प्रबाहू॥5॥

भावार्थ:-ऐसे मानस सरोवर को हृदय के नेत्रों से देखकर और उसमें गोता लगाकर कवि की बुद्धि निर्मल हो गई, हृदय में आनंद और उत्साह भर गया और प्रेम तथा आनंद का प्रवाह उमड़ आया॥5॥

*चली सुभग कबिता सरिता सो। राम बिमल जस जल भरित सो।
सरजू नाम सुमंगल मूला। लोक बेद मत मंजुल कूला॥6॥

भावार्थ:-उससे वह सुंदर कविता रूपी नदी बह निकली, जिसमें श्री रामजी का निर्मल यश रूपी जल भरा है। इस (कवितारूपिणी नदी) का नाम सरयू है, जो संपूर्ण सुंदर मंगलों की जड़ है। लोकमत और वेदमत इसके दो सुंदर किनारे हैं॥6॥

* नदी पुनीत सुमानस नंदिनि। कलिमल तृन तरु मूल निकंदिनि॥7॥

भावार्थ:-यह सुंदर मानस सरोवर की कन्या सरयू नदी बड़ी पवित्र है और कलियुग के (छोटे-बड़े) पाप रूपी तिनकों और वृक्षों को जड़ से उखाड़ फेंकने वाली है॥7॥

दोहा :

* श्रोता त्रिबिध समाज पुर ग्राम नगर दुहुँ कूल।
संतसभा अनुपम अवध सकल सुमंगल मूल॥39॥

भावार्थ:-तीनों प्रकार के श्रोताओं का समाज ही इस नदी के दोनों किनारों पर बसे हुए पुरवे, गाँव और नगर में है और संतों की सभा ही सब सुंदर मंगलों की जड़ अनुपम अयोध्याजी हैं॥39॥

चौपाई :

* रामभगति सुरसरितहि जाई। मिली सुकीरति सरजु सुहाई॥
सानुज राम समर जसु पावन। मिलेउ महानदु सोन सुहावन॥1॥

भावार्थ:-सुंदर कीर्ति रूपी सुहावनी सरयूजी रामभक्ति रूपी गंगाजी में जा मिलीं। छोटे भाई लक्ष्मण सहित श्री रामजी के युद्ध का पवित्र यश रूपी सुहावना महानद सोन उसमें आ मिला॥1॥

* जुग बिच भगति देवधुनि धारा। सोहति सहित सुबिरति बिचारा॥
त्रिबिध ताप त्रासक तिमुहानी। राम सरूप सिंधु समुहानी॥2॥

भावार्थ:-दोनों के बीच में भक्ति रूपी गंगाजी की धारा ज्ञान और वैराग्य के सहित शोभित हो रही है। ऐसी तीनों तापों को डराने वाली यह तिमुहानी नदी रामस्वरूप रूपी समुद्र की ओर जा रही है॥2॥

*मानस मूल मिली सुरसरिही। सुनत सुजन मन पावन करिही॥

बिच बिच कथा बिचित्र बिभागा। जनु सरि तीर तीर बन बागा॥3॥

भावार्थ:-इस (कीर्ति रूपी सरयू) का मूल मानस (श्री रामचरित) है और यह (रामभक्ति रूपी) गंगाजी में मिली है, इसलिए यह सुनने वाले सज्जनों के मन को पवित्र कर देगी। इसके बीच-बीच में जो भिन्न-भिन्न प्रकार की विचित्र कथाएँ हैं, वे ही मानो नदी तट के आस-पास के वन और बाग हैं॥3॥

* उमा महेस बिबाह बराती। ते जलचर अगनित बहुभाँती॥

रघुबर जनम अनंद बधाई। भवँर तरंग मनोहरताई॥4॥

भावार्थ:-श्री पार्वतीजी और शिवजी के विवाह के बाराती इस नदी में बहुत प्रकार के असंख्य जलचर जीव हैं। श्री रघुनाथजी के जन्म की आनंद-बधाइयाँ ही इस नदी के भँवर और तरंगों की मनोहरता है॥4॥

दोहा:

* बालचरित चहु बंधु के बनज बिपुल बहुरंग।

नृप रानी परिजन सुकृत मधुकर बारि बिहंग॥40॥

भावार्थ:-चारों भाइयों के जो बालचरित हैं, वे ही इसमें खिले हुए रंग-बिरंगे बहुत से कमल हैं। महाराज श्री दशरथजी तथा उनकी रानियों और कुटुम्बियों के सत्कर्म (पुण्य) ही भ्रमर और जल पक्षी हैं॥40॥

चौपाई :

* सीय स्वयंबर कथा सुहाई। सरित सुहावनि सो छबि छाई॥

नदी नाव पटु प्रस्न अनेका। केवट कुसल उतर सबिबेका॥1॥

भावार्थ:-श्री सीताजी के स्वयंवर की जो सुन्दर कथा है, वह इस नदी में सुहावनी छबि छा रही है। अनेकों सुंदर विचारपूर्ण प्रश्न ही इस नदी की नावें हैं और उनके विवेकयुक्त उत्तर ही चतुर केवट हैं॥1॥

* सुनि अनुकथन परस्पर होई। पथिक समाज सोह सरि सोई॥
घोर धार भृगुनाथ रिसानी। घाट सुबद्ध राम बर बानी॥2॥

भावार्थ:-इस कथा को सुनकर पीछे जो आपस में चर्चा होती है, वही इस नदी के सहारे-सहारे चलने वाले यात्रियों का समाज शोभा पा रहा है। परशुरामजी का क्रोध इस नदी की भयानक धारा है और श्री रामचंद्रजी के श्रेष्ठ वचन ही सुंदर बँधे हुए घाट हैं॥2॥

* सानुज राम बिबाह उछाहू। सो सुभ उमग सुखद सब काहू॥
कहत सुनत हरषहिं पुलकाहीं। ते सुकृती मन मुदित नहाहीं॥3॥

भावार्थ:-भाइयों सहित श्री रामचंद्रजी के विवाह का उत्साह ही इस कथा नदी की कल्याणकारिणी बाढ़ है, जो सभी को सुख देने वाली है। इसके कहने-सुनने में जो हर्षित और पुलकित होते हैं, वे ही पुण्यात्मा पुरुष हैं, जो प्रसन्न मन से इस नदी में नहाते हैं॥3॥

* राम तिलक हित मंगल साजा। परब जोग जनु जुरे समाजा।
काई कुमति केकई केरी। परी जासु फल बिपति घनेरी॥4॥

भावार्थ:-श्री रामचंद्रजी के राजतिलक के लिए जो मंगल साज सजाया गया, वही मानो पर्व के समय इस नदी पर यात्रियों के समूह इकट्ठे हुए हैं। कैकेयी की कुबुद्धि ही इस नदी में काई है, जिसके फलस्वरूप बड़ी भारी विपत्ति आ पड़ी॥4॥

दोहा :

* समन अमित उतपात सब भरत चरित जपजाग।

कलि अघ खल अवगुन कथन ते जलमल बग काग॥41॥

भावार्थ:-संपूर्ण अनगिनत उत्पातों को शांत करने वाला भरतजी का चरित्र नदी तट पर किया जाने वाला जपयज्ञ है। कलियुग के पापों और दुष्टों के अवगुणों के जो वर्णन हैं, वे ही इस नदी के जल का कीचड़ और बगुले-कौए हैं॥41॥

चौपाई :

* कीरति सरित छहूँ रितु रूरी। समय सुहावनि पावनि भूरी॥
हिम हिमसैलसुता सिव ब्याहू। सिसिर सुखद प्रभु जनम उछाहू॥1॥

भावार्थ:-यह कीर्तिरूपिणी नदी छहों ऋतुओं में सुंदर है। सभी समय यह परम सुहावनी और अत्यंत पवित्र है। इसमें शिव-पार्वती का विवाह हेमंत ऋतु है। श्री रामचंद्रजी के जन्म का उत्सव सुखदायी शिशिर ऋतु है॥1॥

* बरनब राम बिबाह समाजू। सो मुद मंगलमय रितुराजू॥
ग्रीषम दुसह राम बनगवनू। पंथकथा खर आतप पवनू॥2॥

भावार्थ:-श्री रामचंद्रजी के विवाह समाज का वर्णन ही आनंद-मंगलमय ऋतुराज वसंत है। श्री रामजी का वनगमन दुःसह ग्रीष्म ऋतु है और मार्ग की कथा ही कड़ी धूप और लू है॥2॥

* बरषा घोर निसाचर रारी। सुरकुल सालि सुमंगलकारी॥
राम राज सुख बिनय बड़ाई। बिसद सुखद सोइ सरद सुहाई॥3॥

भावार्थ:-राक्षसों के साथ घोर युद्ध ही वर्षा ऋतु है, जो देवकुल रूपी धान के लिए सुंदर कल्याण करने वाली है। रामचंद्रजी के राज्यकाल का जो सुख, विनम्रता और बड़ाई है, वही निर्मल सुख देने वाली सुहावनी शरद् ऋतु है॥3॥

* सती सिरोमनि सिय गुन गाथा। सोइ गुन अमल अनूपम पाथा॥

भरत सुभाउ सुसीतलताई। सदा एकरस बरनि न जाई॥4॥

भावार्थ:-सती-शिरोमणि श्री सीताजी के गुणों की जो कथा है, वही इस जल का निर्मल और अनुपम गुण है। श्री भरतजी का स्वभाव इस नदी की सुंदर शीतलता है, जो सदा एक सी रहती है और जिसका वर्णन नहीं किया जा सकता॥4॥

दोहा :

* अवलोकनि बोलनि मिलनि प्रीति परसपर हास।
भायप भलि चहु बंधु की जल माधुरी सुबास॥42॥

भावार्थ:-चारों भाइयों का परस्पर देखना, बोलना, मिलना, एक-दूसरे से प्रेम करना, हँसना और सुंदर भाईपना इस जल की मधुरता और सुगंध है॥42॥

चौपाई :

* आरति बिनय दीनता मोरी। लघुता ललित सुबारि न थोरी॥
अदभुत सलिल सुनत गुनकारी। आस पिआस मनोमल हारी॥1॥

भावार्थ:-मेरा आर्तभाव, विनय और दीनता इस सुंदर और निर्मल जल का कम हलकापन नहीं है (अर्थात्‌ अत्यंत हलकापन है)। यह जल बड़ा ही अनोखा है, जो सुनने से ही गुण करता है और आशा रूपी प्यास को और मन के मैल को दूर कर देता है॥1॥

* राम सुप्रेमहि पोषत पानी। हरत सकल कलि कलुष गलानी॥
भव श्रम सोषक तोषक तोषा। समन दुरित दुख दारिद दोषा॥2॥

भावार्थ:-यह जल श्री रामचंद्रजी के सुंदर प्रेम को पुष्ट करता है, कलियुग के समस्त पापों और उनसे होने वाली ग्लानि को हर लेता है। (संसार के

जन्म-मृत्यु रूप) श्रम को सोख लेता है, संतोष को भी संतुष्ट करता है और पाप, दरिद्रता और दोषों को नष्ट कर देता है॥2॥

* काम कोह मद मोह नसावन। बिमल बिबेक बिराग बढ़ावन॥
सादर मज्जन पान किए तें। मिटहिं पाप परिताप हिए तें॥3॥

भावार्थ:-यह जल काम, क्रोध, मद और मोह का नाश करने वाला और निर्मल ज्ञान और वैराग्य को बढ़ाने वाला है। इसमें आदरपूर्वक स्नान करने से और इसे पीने से हृदय में रहने वाले सब पाप-ताप मिट जाते हैं॥3॥

* जिन्ह एहिं बारि न मानस धोए। ते कायर कलिकाल बिगोए॥
तृषित निरखि रबि कर भव बारी। फिरिहहिं मृग जिमि जीव दुखारी॥4॥

भावार्थ:-जिन्होंने इस (राम सुयश रूपी) जल से अपने हृदय को नहीं धोया, वे कायर कलिकाल के द्वारा ठगे गए। जैसे प्यासा हिरन सूर्य की किरणों के रेत पर पड़ने से उत्पन्न हुए जल के भ्रम को वास्तविक जल समझकर पीने को दौड़ता है और जल न पाकर दुःखी होता है, वैसे ही वे (कलियुग से ठगे हुए) जीव भी (विषयों के पीछे भटककर) दुःखी होंगे॥4॥

दोहा :

* मति अनुहारि सुबारि गुन गन गनि मन अन्हवाइ।
सुमिरि भवानी संकरहि कह कबि कथा सुहाइ॥43 क॥

भावार्थ:-अपनी बुद्धि के अनुसार इस सुंदर जल के गुणों को विचार कर, उसमें अपने मन को स्नान कराकर और श्री भवानी-शंकर को स्मरण करके कवि (तुलसीदास) सुंदर कथा कहता है॥43 (क)॥

याज्ञवल्क्य-भरद्वाज संवाद तथा प्रयाग माहात्म्य

* अब रघुपति पद पंकरुह हियँ धरि पाइ प्रसाद।
कहउँ जुगल मुनिबर्य कर मिलन सुभग संबाद ॥43 ख॥

भावार्थ:-मैं अब श्री रघुनाथजी के चरण कमलों को हृदय में धारण कर और उनका प्रसाद पाकर दोनों श्रेष्ठ मुनियों के मिलन का सुंदर संवाद वर्णन करता हूँ॥43 (ख)॥

चौपाई :

* भरद्वाज मुनि बसहिं प्रयागा। तिन्हहि राम पद अति अनुरागा॥
तापस सम दम दया निधाना। परमारथ पथ परम सुजाना॥1॥

भावार्थ:-भरद्वाज मुनि प्रयाग में बसते हैं, उनका श्री रामजी के चरणों में अत्यंत प्रेम है। वे तपस्वी, निगृहीत चित्त, जितेन्द्रिय, दया के निधान और परमार्थ के मार्ग में बड़े ही चतुर हैं॥1॥

* माघ मकरगत रबि जब होई। तीरथपतिहिं आव सब कोई॥
देव दनुज किंनर नर श्रेनीं। सादर मज्जहिं सकल त्रिबेनीं॥2॥

भावार्थ:-माघ में जब सूर्य मकर राशि पर जाते हैं, तब सब लोग तीर्थराज प्रयाग को आते हैं। देवता, दैत्य, किन्नर और मनुष्यों के समूह सब आदरपूर्वक त्रिवेणी में स्नान करते हैं॥।2॥

* पूजहिं माधव पद जलजाता। परसि अखय बटु हरषहिं गाता॥
भरद्वाज आश्रम अति पावन। परम रम्य मुनिबर मन भावन॥3॥

भावार्थ:-श्री वेणीमाधवजी के चरणकमलों को पूजते हैं और अक्षयवट का स्पर्श कर उनके शरीर पुलकित होते हैं। भरद्वाजजी का आश्रम बहुत ही पवित्र, परम रमणीय और श्रेष्ठ मुनियों के मन को भाने वाला है॥3॥

* तहाँ होइ मुनि रिषय समाजा। जाहिं जे मज्जन तीरथराजा॥

मज्जहिं प्रात समेत उछाहा। कहहिं परसपर हरि गुन गाहा॥4॥

भावार्थ:-तीर्थराज प्रयाग में जो स्नान करने जाते हैं, उन ऋषि-मुनियों का समाज वहाँ (भरद्वाज के आश्रम में) जुटता है। प्रातःकाल सब उत्साहपूर्वक स्नान करते हैं और फिर परस्पर भगवान् के गुणों की कथाएँ कहते हैं॥4॥

दोहा :

* ब्रह्म निरूपन धरम बिधि बरनहिं तत्त्व बिभाग।

ककहिं भगति भगवंत कै संजुत ग्यान बिराग॥44॥

भावार्थ:-ब्रह्म का निरूपण, धर्म का विधान और तत्त्वों के विभाग का वर्णन करते हैं तथा ज्ञान-वैराग्य से युक्त भगवान् की भक्ति का कथन करते हैं॥44॥

चौपाई :

* एहि प्रकार भरि माघ नहाहीं। पुनि सब निज निज आश्रम जाहीं॥

प्रति संबत अति होइ अनंदा। मकर मज्जि गवनहिं मुनिबृंदा॥1॥

भावार्थ:-इसी प्रकार माघ के महीनेभर स्नान करते हैं और फिर सब अपने-अपने आश्रमों को चले जाते हैं। हर साल वहाँ इसी तरह बड़ा आनंद होता है। मकर में स्नान करके मुनिगण चले जाते हैं॥1॥

* एक बार भरि मकर नहाए। सब मुनीस आश्रमन्ह सिधाए॥

जागबलिक मुनि परम बिबेकी। भरद्वाज राखे पद टेकी॥2॥

भावार्थ:-एक बार पूरे मकरभर स्नान करके सब मुनीश्वर अपने-अपने आश्रमों को लौट गए। परम ज्ञानी याज्ञवल्क्य मुनि को चरण पकड़कर भरद्वाजजी ने रख लिया॥2॥

* सादर चरन सरोज पखारे। अति पुनीत आसन बैठारे॥

करि पूजा मुनि सुजसु बखानी। बोले अति पुनीत मृदु बानी॥3॥

भावार्थ:-आदरपूर्वक उनके चरण कमल धोए और बड़े ही पवित्र आसन पर उन्हें बैठाया। पूजा करके मुनि याज्ञवल्क्यजी के सुयश का वर्णन किया और फिर अत्यंत पवित्र और कोमल वाणी से बोले-॥3॥

* नाथ एक संसउ बड़ मोरें। करगत बेदतत्त्व सबु तोरें॥

कहत सो मोहि लागत भय लाजा। जौं न कहउँ बड़ होइ अकाजा॥4॥

भावार्थ:-हे नाथ! मेरे मन में एक बड़ा संदेह है, वेदों का तत्त्व सब आपकी मुट्ठी में है (अर्थात् आप ही वेद का तत्त्व जानने वाले होने के कारण मेरा संदेह निवारण कर सकते हैं) पर उस संदेह को कहते मुझे भय और लाज आती है (भय इसलिए कि कहीं आप यह न समझें कि मेरी परीक्षा ले रहा है, लाज इसलिए कि इतनी आयु बीत गई, अब तक ज्ञान न हुआ) और यदि नहीं कहता तो बड़ी हानि होती है (क्योंकि अज्ञानी बना रहता हूँ)॥4॥

दोहा :

* संत कहहिं असि नीति प्रभु श्रुति पुरान मुनि गाव।

होइ न बिमल बिबेक उर गुर सन किएँ दुराव॥45॥

भावार्थ:-हे प्रभो! संत लोग ऐसी नीति कहते हैं और वेद, पुराण तथा मुनिजन भी यही बतलाते हैं कि गुरु के साथ छिपाव करने से हृदय में निर्मल ज्ञान नहीं होता॥45॥

चौपाई :

* अस बिचारि प्रगटउँ निज मोहू। हरहु नाथ करि जन पर छोहू॥

राम नाम कर अमित प्रभावा। संत पुरान उपनिषद गावा॥1॥

भावार्थ:-यही सोचकर मैं अपना अज्ञान प्रकट करता हूँ। हे नाथ! सेवक पर कृपा करके इस अज्ञान का नाश कीजिए। संतों, पुराणों और उपनिषदों ने राम नाम के असीम प्रभाव का गान किया है॥1॥

* संतत जपत संभु अबिनासी। सिव भगवान ग्यान गुन रासी॥
आकर चारि जीव जग अहहीं। कासीं मरत परम पद लहहीं॥2॥

भावार्थ:-कल्याण स्वरूप, ज्ञान और गुणों की राशि, अविनाशी भगवान् शम्भु निरंतर राम नाम का जप करते रहते हैं। संसार में चार जाति के जीव हैं, काशी में मरने से सभी परम पद को प्राप्त करते हैं॥2॥

*सोपि राम महिमा मुनिराया। सिव उपदेसु करत करि दाया॥
रामु कवन प्रभु पूछउँ तोही। कहिअ बुझाइ कृपानिधि मोही॥3॥

भावार्थ:-हे मुनिराज! वह भी राम (नाम) की ही महिमा है, क्योंकि शिवजी महाराज दया करके (काशी में मरने वाले जीव को) राम नाम का ही उपदेश करते हैं (इसी से उनको परम पद मिलता है)। हे प्रभो! मैं आपसे पूछता हूँ कि वे राम कौन हैं? हे कृपानिधान! मुझे समझाकर कहिए॥3॥

* एक राम अवधेस कुमारा। तिन्ह कर चरित बिदित संसारा॥
नारि बिरहँ दुखु लहेउ अपारा। भयउ रोषु रन रावनु मारा॥4॥

भावार्थ:-एक राम तो अवध नरेश दशरथजी के कुमार हैं, उनका चरित्र सारा संसार जानता है। उन्होंने स्त्री के विरह में अपार दुःख उठाया और क्रोध आने पर युद्ध में रावण को मार डाला॥4॥

दोहा :

* प्रभु सोइ राम कि अपर कोउ जाहि जपत त्रिपुरारि।
सत्यधाम सर्बग्य तुम्ह कहहु बिबेकु बिचारि॥46॥

भावार्थ:-हे प्रभो! वही राम हैं या और कोई दूसरे हैं, जिनको शिवजी जपते हैं? आप सत्य के धाम हैं और सब कुछ जानते हैं, ज्ञान विचार कर कहिए॥46॥

* जैसें मिटै मोर भ्रम भारी। कहहु सो कथा नाथ बिस्तारी॥
जागबलिक बोले मुसुकाई। तुम्हहि बिदित रघुपति प्रभुताई॥1॥

भावार्थ:-हे नाथ! जिस प्रकार से मेरा यह भारी भ्रम मिट जाए, आप वही कथा विस्तारपूर्वक कहिए। इस पर याज्ञवल्क्यजी मुस्कुराकर बोले, श्री रघुनाथजी की प्रभुता को तुम जानते हो॥1॥

* रामभगत तुम्ह मन क्रम बानी। चतुराई तुम्हारि मैं जानी॥
चाहहु सुनै राम गुन गूढ़ा कीन्हिहु प्रस्न मनहुँ अति मूढ़ा॥2॥

भावार्थ:-तुम मन, वचन और कर्म से श्री रामजी के भक्त हो। तुम्हारी चतुराई को मैं जान गया। तुम श्री रामजी के रहस्यमय गुणों को सुनना चाहते हो, इसी से तुमने ऐसा प्रश्न किया है मानो बड़े ही मूढ़ हो॥2॥

* तात सुनहु सादर मनु लाई। कहउँ राम कै कथा सुहाई॥
महामोहु महिषेसु बिसाला। रामकथा कालिका कराला॥3॥

भावार्थ:-हे तात! तुम आदरपूर्वक मन लगाकर सुनो, मैं श्री रामजी की सुंदर कथा कहता हूँ। बड़ा भारी अज्ञान विशाल महिषासुर है और श्री रामजी की कथा (उसे नष्ट कर देने वाली) भयंकर कालीजी हैं॥3॥

सती का भ्रम, श्री रामजी का ऐश्वर्य और सती का खेद

* रामकथा ससि किरन समाना। संत चकोर करहिं जेहि पाना॥
ऐसेइ संसय कीन्ह भवानी। महादेव तब कहा बखानी॥4॥

भावार्थ:-श्री रामजी की कथा चंद्रमा की किरणों के समान है, जिसे संत रूपी चकोर सदा पान करते हैं। ऐसा ही संदेह पार्वतीजी ने किया था, तब महादेवजी ने विस्तार से उसका उत्तर दिया था॥4॥

दोहा :

* कहउँ सो मति अनुहारि अब उमा संभु संबाद।
भयउ समय जेहि हेतु जेहि सुनु मुनि मिटिहि बिषाद॥47॥

भावार्थ:-अब मैं अपनी बुद्धि के अनुसार वही उमा और शिवजी का संवाद कहता हूँ। वह जिस समय और जिस हेतु से हुआ, उसे हे मुनि! तुम सुनो, तुम्हारा विषाद मिट जाएगा॥47॥

चौपाई :

* एक बार त्रेता जुग माहीं। संभु गए कुंभज रिषि पाहीं॥
संग सती जगजननि भवानी। पूजे रिषि अखिलेस्वर जानी॥1॥

भावार्थ:-एक बार त्रेता युग में शिवजी अगस्त्य ऋषि के पास गए। उनके साथ जगज्जननी भवानी सतीजी भी थीं। ऋषि ने संपूर्ण जगत् के ईश्वर जानकर उनका पूजन किया॥1॥

* रामकथा मुनिबर्ज बखानी। सुनी महेस परम सुखु मानी॥
रिषि पूछी हरिभगति सुहाई। कही संभु अधिकारी पाई॥2॥

भावार्थ:-मुनिवर अगस्त्यजी ने रामकथा विस्तार से कही, जिसको महेश्वर ने परम सुख मानकर सुना। फिर ऋषि ने शिवजी से सुंदर हरिभक्ति पूछी और शिवजी ने उनको अधिकारी पाकर (रहस्य सहित) भक्ति का निरूपण किया॥2॥

* कहत सुनत रघुपति गुन गाथा। कछु दिन तहाँ रहे गिरिनाथा॥
मुनि सन बिदा मागि त्रिपुरारी। चले भवन सँग दच्छकुमारी।।3।।

भावार्थ:-श्री रघुनाथजी के गुणों की कथाएँ कहते-सुनते कुछ दिनों तक शिवजी वहाँ रहे। फिर मुनि से विदा माँगकर शिवजी दक्षकुमारी सतीजी के साथ घर (कैलास) को चले॥3॥

* तेहि अवसर भंजन महिभारा। हरि रघुबंस लीन्ह अवतारा॥
पिता बचन तजि राजु उदासी। दंडक बन बिचरत अबिनासी॥4॥

भावार्थ:-उन्हीं दिनों पृथ्वी का भार उतारने के लिए श्री हरि ने रघुवंश में अवतार लिया था। वे अविनाशी भगवान् उस समय पिता के वचन से राज्य का त्याग करके तपस्वी या साधु वेश में दण्डकवन में विचर रहे थे॥4॥

दोहा :

* हृदयँ बिचारत जात हर केहि बिधि दरसनु होइ।
गुप्त रूप अवतरेउ प्रभु गएँ जान सबु कोइ॥48 क॥

भावार्थ:-शिवजी हृदय में विचारते जा रहे थे कि भगवान् के दर्शन मुझे किस प्रकार हों। प्रभु ने गुप्त रूप से अवतार लिया है, मेरे जाने से सब लोग जान जाएँगे॥ 48 (क)॥

सोरठा :

* संकर उर अति छोभु सती न जानहिं मरमु सोइ।
तुलसी दरसन लोभु मन डरु लोचन लालची॥48 ख॥

भावार्थ:-श्री शंकरजी के हृदय में इस बात को लेकर बड़ी खलबली उत्पन्न हो गई, परन्तु सतीजी इस भेद को नहीं जानती थीं। तुलसीदासजी कहते हैं कि शिवजी के मन में (भेद खुलने का) डर था, परन्तु दर्शन के लोभ से उनके नेत्र ललचा रहे थे॥48 (ख)॥

चौपाई :

* रावन मरन मनुज कर जाचा। प्रभु बिधि बचनु कीन्ह चह साचा॥
जौं नहिं जाउँ रहइ पछितावा। करत बिचारु न बनत बनावा॥1॥

भावार्थ:-रावण ने (ब्रह्माजी से) अपनी मृत्यु मनुष्य के हाथ से माँगी थी। ब्रह्माजी के वचनों को प्रभु सत्य करना चाहते हैं। मैं जो पास नहीं जाता हूँ तो बड़ा पछतावा रह जाएगा। इस प्रकार शिवजी विचार करते थे, परन्तु कोई भी युक्ति ठीक नहीं बैठती थी॥1॥

* ऐहि बिधि भए सोचबस ईसा। तेही समय जाइ दससीसा॥
लीन्ह नीच मारीचहि संगा। भयउ तुरउ सोइ कपट कुरंगा॥2॥

भावार्थ:-इस प्रकार महादेवजी चिन्ता के वश हो गए। उसी समय नीच रावण ने जाकर मारीच को साथ लिया और वह (मारीच) तुरंत कपट मृग बन गया॥2॥

* करि छलु मूढ़ हरी बैदेही। प्रभु प्रभाउ तस बिदित न तेही॥
मृग बधि बंधु सहित हरि आए। आश्रमु देखि नयन जल छाए॥3॥

भावार्थ:-मूर्ख (रावण) ने छल करके सीताजी को हर लिया। उसे श्री रामचंद्रजी के वास्तविक प्रभाव का कुछ भी पता न था। मृग को मारकर भाई लक्ष्मण सहित श्री हरि आश्रम में आए और उसे खाली देखकर (अर्थात् वहाँ सीताजी को न पाकर) उनके नेत्रों में आँसू भर आए॥3॥

* बिरह बिकल नर इव रघुराई। खोजत बिपिन फिरत दोउ भाई॥
कबहूँ जोग बियोग न जाकें। देखा प्रगट बिरह दुखु ताकें॥4॥

भावार्थ:-श्री रघुनाथजी मनुष्यों की भाँति विरह से व्याकुल हैं और दोनों भाई वन में सीता को खोजते हुए फिर रहे हैं। जिनके कभी कोई संयोग-वियोग नहीं है, उनमें प्रत्यक्ष विरह का दुःख देखा गया॥4॥

दोहा :

* अति बिचित्र रघुपति चरित जानहिं परम सुजान।
जे मतिमंद बिमोह बस हृदयँ धरहिं कछु आन॥49॥

भावार्थ:-श्री रघुनाथजी का चरित्र बड़ा ही विचित्र है, उसको पहुँचे हुए ज्ञानीजन ही जानते हैं। जो मंदबुद्धि हैं, वे तो विशेष रूप से मोह के वश होकर हृदय में कुछ दूसरी ही बात समझ बैठते हैं॥49॥

चौपाई :

* संभु समय तेहि रामहि देखा। उपजा हियँ अति हरषु बिसेषा ॥

भरि लोचन छबिसिंधु निहारी। कुसमय जानि न कीन्हि चिन्हारी॥1॥

भावार्थ:-श्री शिवजी ने उसी अवसर पर श्री रामजी को देखा और उनके हृदय में बहुत भारी आनंद उत्पन्न हुआ। उन शोभा के समुद्र (श्री रामचंद्रजी) को शिवजी ने नेत्र भरकर देखा, परन्तु अवसर ठीक न जानकर परिचय नहीं किया॥1॥

* जय सच्चिदानंद जग पावन। अस कहि चलेउ मनोज नसावन॥
चले जात सिव सती समेता। पुनि पुनि पुलकत कृपानिकेता॥2॥

भावार्थ:-जगत् को पवित्र करने वाले सच्चिदानंद की जय हो, इस प्रकार कहकर कामदेव का नाश करने वाले श्री शिवजी चल पड़े। कृपानिधान शिवजी बार-बार आनंद से पुलकित होते हुए सतीजी के साथ चले जा रहे थे॥2॥

* सतीं सो दसा संभु कै देखी। उर उपजा संदेहु बिसेषी॥
संकरु जगतबंद्य जगदीसा। सुर नर मुनि सब नावत सीसा॥3॥

भावार्थ:-सतीजी ने शंकरजी की वह दशा देखी तो उनके मन में बड़ा संदेह उत्पन्न हो गया। (वे मन ही मन कहने लगीं कि) शंकरजी की सारा जगत् वंदना करता है, वे जगत् के ईश्वर हैं, देवता, मनुष्य, मुनि सब उनके प्रति सिर नवाते हैं॥3॥

* तिन्ह नृपसुतहि कीन्ह परनामा। कहि सच्चिदानंद परधामा॥
भए मगन छबि तासु बिलोकी। अजहुँ प्रीति उर रहति न रोकी॥4॥

भावार्थ:-उन्होंने एक राजपुत्र को सच्चिदानंद परधाम कहकर प्रणाम किया और उसकी शोभा देखकर वे इतने प्रेममग्न हो गए कि अब तक उनके हृदय में प्रीति रोकने से भी नहीं रुकती॥4॥

दोहा :

* ब्रह्म जो ब्यापक बिरज अज अकल अनीह अभेद।

सो कि देह धरि होइ नर जाहि न जानत बेद॥50॥

भावार्थ:-जो ब्रह्म सर्वव्यापक, मायारहित, अजन्मा, अगोचर, इच्छारहित और भेदरहित है और जिसे वेद भी नहीं जानते, क्या वह देह धारण करके मनुष्य हो सकता है?॥50॥

चौपाई :

* बिष्नु जो सुर हित नरतनु धारी। सोउ सर्बग्य जथा त्रिपुरारी॥
खोजइ सो कि अग्य इव नारी। ग्यानधाम श्रीपति असुरारी॥1॥

भावार्थ:-देवताओं के हित के लिए मनुष्य शरीर धारण करने वाले जो विष्णु भगवान् हैं, वे भी शिवजी की ही भाँति सर्वज्ञ हैं। वे ज्ञान के भंडार, लक्ष्मीपति और असुरों के शत्रु भगवान् विष्णु क्या अज्ञानी की तरह स्त्री को खोजेंगे?॥1॥

* संभुगिरा पुनि मृषा न होई। सिव सर्बग्य जान सबु कोई॥
अस संसय मन भयउ अपारा। होइ न हृदयँ प्रबोध प्रचारा॥2॥

भावार्थ:-फिर शिवजी के वचन भी झूठे नहीं हो सकते। सब कोई जानते हैं कि शिवजी सर्वज्ञ हैं। सती के मन में इस प्रकार का अपार संदेह उठ खड़ा हुआ, किसी तरह भी उनके हृदय में ज्ञान का प्रादुर्भाव नहीं होता था॥2॥

* जद्यपि प्रगट न कहेउ भवानी। हर अंतरजामी सब जानी॥
सुनहि सती तव नारि सुभाऊ। संसय अस न धरिअ उर काऊ॥3॥

भावार्थ:-यद्यपि भवानीजी ने प्रकट कुछ नहीं कहा, पर अन्तर्यामी शिवजी सब जान गए। वे बोले- हे सती! सुनो, तुम्हारा स्त्री स्वभाव है। ऐसा संदेह मन में कभी न रखना चाहिए॥3॥

* जासु कथा कुंभज रिषि गाई। भगति जासु मैं मुनिहि सुनाई॥

सोइ मम इष्टदेव रघुबीरा। सेवत जाहि सदा मुनि धीरा॥4॥

भावार्थ:-जिनकी कथा का अगस्त्य ऋषि ने गान किया और जिनकी भक्ति मैंने मुनि को सुनाई, ये वही मेरे इष्टदेव श्री रघुवीरजी हैं, जिनकी सेवा ज्ञानी मुनि सदा किया करते हैं॥4॥

छंद :

* मुनि धीर जोगी सिद्ध संतत बिमल मन जेहि ध्यावहीं।
कहि नेति निगम पुरान आगम जासु कीरति गावहीं॥
सोइ रामु ब्यापक ब्रह्म भुवन निकाय पति माया धनी।
अवतरेउ अपने भगत हित निजतंत्र नित रघुकुलमनी॥

भावार्थ:-ज्ञानी मुनि, योगी और सिद्ध निरंतर निर्मल चित्त से जिनका ध्यान करते हैं तथा वेद, पुराण और शास्त्र 'नेति-नेति' कहकर जिनकी कीर्ति गाते हैं, उन्हीं सर्वव्यापक, समस्त ब्रह्मांडों के स्वामी, मायापति, नित्य परम स्वतंत्र, ब्रह्मा रूप भगवान् श्री रामजी ने अपने भक्तों के हित के लिए (अपनी इच्छा से) रघुकुल के मणिरूप में अवतार लिया है।

सोरठा :

* लाग न उर उपदेसु जदपि कहेउ सिवँ बार बहु।
बोले बिहसि महेसु हरिमाया बलु जानि जियँ॥51॥

भावार्थ:-यद्यपि शिवजी ने बहुत बार समझाया, फिर भी सतीजी के हृदय में उनका उपदेश नहीं बैठा। तब महादेवजी मन में भगवान् की माया का बल जानकर मुस्कुराते हुए बोले-॥51॥

चौपाई :

* जौं तुम्हरें मन अति संदेहू। तौ किन जाइ परीछा लेहू॥
तब लगि बैठ अहउँ बटछाहीं। जब लगि तुम्ह ऐहहु मोहि पाहीं॥1॥

भावार्थ:-जो तुम्हारे मन में बहुत संदेह है तो तुम जाकर परीक्षा क्यों नहीं लेती? जब तक तुम मेरे पास लौट आओगी तब तक मैं इसी बड़ की छाँह में बैठा हूँ॥1॥

* जैसें जाइ मोह भ्रम भारी। करेहु सो जतनु बिबेक बिचारी॥
चलीं सती सिव आयसु पाई। करहिं बेचारु करौं का भाई॥2॥

भावार्थ:-जिस प्रकार तुम्हारा यह अज्ञानजनित भारी भ्रम दूर हो, (भली-भाँति) विवेक के द्वारा सोच-समझकर तुम वही करना। शिवजी की आज्ञा पाकर सती चलीं और मन में सोचने लगीं कि भाई! क्या करूँ (कैसे परीक्षा लूँ)?॥2॥

* इहाँ संभु अस मन अनुमाना। दच्छसुता कहुँ नहिं कल्याना॥
मोरेहु कहें न संसय जाहीं। बिधि बिपरीत भलाई नाहीं॥3॥

भावार्थ:-इधर शिवजी ने मन में ऐसा अनुमान किया कि दक्षकन्या सती का कल्याण नहीं है। जब मेरे समझाने से भी संदेह दूर नहीं होता तब (मालूम होता है) विधाता ही उलटे हैं, अब सती का कुशल नहीं है॥3॥

* होइहि सोइ जो राम रचि राखा। को करि तर्क बढ़ावै साखा॥
अस कहि लगे जपन हरिनामा। गईं सती जहँ प्रभु सुखधामा॥4॥

भावार्थ:-जो कुछ राम ने रच रखा है, वही होगा। तर्क करके कौन शाखा (विस्तार) बढ़ावे। (मन में) ऐसा कहकर शिवजी भगवान् श्री हरि का नाम जपने लगे और सतीजी वहाँ गईं, जहाँ सुख के धाम प्रभु श्री रामचंद्रजी थे॥4॥

दोहा :

* पुनि पुनि हृदयँ बिचारु करि धरि सीता कर रूप।
आगें होइ चलि पंथ तेहिं जेहिं आवत नरभूप॥52॥

भावार्थ:-सती बार-बार मन में विचार कर सीताजी का रूप धारण करके उस मार्ग की ओर आगे होकर चलीं, जिससे (सतीजी के विचारानुसार) मनुष्यों के राजा रामचंद्रजी आ रहे थे॥52॥

चौपाई :

* लछिमन दीख उमाकृत बेषा। चकित भए भ्रम हृदयँ बिसेषा॥
कहि न सकत कछु अति गंभीरा। प्रभु प्रभाउ जानत मतिधीरा॥1॥

भावार्थ:-सतीजी के बनावटी वेष को देखकर लक्ष्मणजी चकित हो गए और उनके हृदय में बड़ा भ्रम हो गया। वे बहुत गंभीर हो गए, कुछ कह नहीं सके। धीर बुद्धि लक्ष्मण प्रभु रघुनाथजी के प्रभाव को जानते थे॥1॥

* सती कपटु जानेउ सुरस्वामी। सबदरसी सब अंतरजामी॥
सुमिरत जाहि मिटइ अग्याना। सोइ सरबग्य रामु भगवाना॥2॥

भावार्थ:-सब कुछ देखने वाले और सबके हृदय की जानने वाले देवताओं के स्वामी श्री रामचंद्रजी सती के कपट को जान गए, जिनके स्मरण मात्र से अज्ञान का नाश हो जाता है, वही सर्वज्ञ भगवान् श्री रामचंद्रजी हैं॥2॥

* सती कीन्ह चह तहँहुँ दुराऊ। देखहु नारि सुभाव प्रभाऊ॥
निज माया बलु हृदयँ बखानी। बोले बिहसि रामु मृदु बानी॥3॥

भावार्थ:-स्त्री स्वभाव का असर तो देखो कि वहाँ (उन सर्वज्ञ भगवान् के सामने) भी सतीजी छिपाव करना चाहती हैं। अपनी माया के बल को हृदय में बखानकर, श्री रामचंद्रजी हँसकर कोमल वाणी से बोले॥3॥

* जोरि पानि प्रभु कीन्ह प्रनामू। पिता समेत लीन्ह निज नामू॥
कहेउ बहोरि कहाँ बृषकेतू। बिपिन अकेलि फिरहु केहि हेतू॥4॥

भावार्थ:-पहले प्रभु ने हाथ जोड़कर सती को प्रणाम किया और पिता सहित अपना नाम बताया। फिर कहा कि वृषकेतु शिवजी कहाँ हैं? आप यहाँ वन में अकेली किसलिए फिर रही हैं?॥4॥

दोहा :

* राम बचन मृदु गूढ़ सुनि उपजा अति संकोचु।
सती सभीत महेस पहिं चलीं हृदयँ बड़ सोचु॥53॥

भावार्थ:-श्री रामचन्द्रजी के कोमल और रहस्य भरे वचन सुनकर सतीजी को बड़ा संकोच हुआ। वे डरती हुई (चुपचाप) शिवजी के पास चलीं, उनके हृदय में बड़ी चिन्ता हो गई॥53॥

चौपाई :

* मैं संकर कर कहा न माना। निज अग्यानु राम पर आना॥
जाइ उतरु अब देहउँ काहा। उर उपजा अति दारुन दाहा॥1॥

भावार्थ:-कि मैंने शंकरजी का कहना न माना और अपने अज्ञान का श्री रामचन्द्रजी पर आरोप किया। अब जाकर मैं शिवजी को क्या उत्तर दूँगी? (यों सोचते-सोचते) सतीजी के हृदय में अत्यन्त भयानक जलन पैदा हो गई॥1॥

* जाना राम सतीं दुखु पावा। निज प्रभाउ कछु प्रगटि जनावा॥
सतीं दीख कौतुकु मग जाता। आगें रामु सहित श्री भ्राता॥2॥

भावार्थ:-श्री रामचन्द्रजी ने जान लिया कि सतीजी को दुःख हुआ, तब उन्होंने अपना कुछ प्रभाव प्रकट करके उन्हें दिखलाया। सतीजी ने मार्ग में जाते हुए यह कौतुक देखा कि श्री रामचन्द्रजी सीताजी और लक्ष्मणजी सहित आगे चले जा रहे हैं। (इस अवसर पर सीताजी को इसलिए दिखाया कि सतीजी श्री राम के सच्चिदानंदमय रूप को देखें,

वियोग और दुःख की कल्पना जो उन्हें हुई थी, वह दूर हो जाए तथा वे प्रकृतिस्थ हों।)॥2॥

* फिरि चितवा पाछें प्रभु देखा। सहित बंधु सिय सुंदर बेषा॥
जहँ चितवहिं तहँ प्रभु आसीना। सेवहिं सिद्ध मुनीस प्रबीना॥3॥

भावार्थ:-(तब उन्होंने) पीछे की ओर फिरकर देखा, तो वहाँ भी भाई लक्ष्मणजी और सीताजी के साथ श्री रामचन्द्रजी सुंदर वेष में दिखाई दिए। वे जिधर देखती हैं, उधर ही प्रभु श्री रामचन्द्रजी विराजमान हैं और सुचतुर सिद्ध मुनीश्वर उनकी सेवा कर रहे हैं॥3॥

* देखे सिव बिधि बिष्नु अनेका। अमित प्रभाउ एक तें एका॥
बंदत चरन करत प्रभु सेवा। बिबिध बेष देखे सब देवा॥4॥

भावार्थ:-सतीजी ने अनेक शिव, ब्रह्मा और विष्णु देखे, जो एक से एक बढ़कर असीम प्रभाव वाले थे। (उन्होंने देखा कि) भाँति-भाँति के वेष धारण किए सभी देवता श्री रामचन्द्रजी की चरणवन्दना और सेवा कर रहे हैं॥4॥

दोहा :

* सती बिधात्री इंदिरा देखीं अमित अनूप।
जेहिं जेहिं बेष अजादि सुर तेहि तेहि तन अनुरूप॥54॥

भावार्थ:-उन्होंने अनगिनत अनुपम सती, ब्रह्माणी और लक्ष्मी देखीं। जिस-जिस रूप में ब्रह्मा आदि देवता थे, उसी के अनुकूल रूप में (उनकी) ये सब (शक्तियाँ) भी थीं॥54॥

चौपाई :

* देखे जहँ जहँ रघुपति जेते। सक्तिन्ह सहित सकल सुर तेते॥
जीव चराचर जो संसारा। देखे सकल अनेक प्रकारा॥1॥

भावार्थ:-सतीजी ने जहाँ-जहाँ जितने रघुनाथजी देखे, शक्तियों सहित वहाँ उतने ही सारे देवताओं को भी देखा। संसार में जो चराचर जीव हैं, वे भी अनेक प्रकार के सब देखे॥1॥

* पूजहिं प्रभुहि देव बहु बेषा। राम रूप दूसर नहिं देखा॥
अवलोके रघुपति बहुतेरे। सीता सहित न बेष घनेरे॥2॥

भावार्थ:-(उन्होंने देखा कि) अनेकों वेष धारण करके देवता प्रभु श्री रामचन्द्रजी की पूजा कर रहे हैं, परन्तु श्री रामचन्द्रजी का दूसरा रूप कहीं नहीं देखा। सीता सहित श्री रघुनाथजी बहुत से देखे, परन्तु उनके वेष अनेक नहीं थे॥2॥

* सोइ रघुबर सोइ लछिमनु सीता। देखि सती अति भईं सभीता॥
हृदय कंप तन सुधि कछु नाहीं। नयन मूदि बैठीं मग माहीं॥3॥

भावार्थ:-(सब जगह) वही रघुनाथजी, वही लक्ष्मण और वही सीताजी- सती ऐसा देखकर बहुत ही डर गईं। उनका हृदय काँपने लगा और देह की सारी सुध-बुध जाती रही। वे आँख मूँदकर मार्ग में बैठ गईं॥3॥

* बहुरि बिलोकेउ नयन उघारी। कछु न दीख तहँ दच्छकुमारी॥
पुनि पुनि नाइ राम पद सीसा। चलीं तहाँ जहँ रहे गिरीसा॥4॥

भावार्थ:-फिर आँख खोलकर देखा, तो वहाँ दक्षकुमारी (सतीजी) को कुछ भी न दिख पड़ा। तब वे बार-बार श्री रामचन्द्रजी के चरणों में सिर नवाकर वहाँ चलीं, जहाँ श्री शिवजी थे॥4॥

दोहा :

* गईं समीप महेस तब हँसि पूछी कुसलात।
लीन्हि परीछा कवन बिधि कहहु सत्य सब बात॥55॥

भावार्थ:-जब पास पहुँचीं, तब श्री शिवजी ने हँसकर कुशल प्रश्न करके कहा कि तुमने रामजी की किस प्रकार परीक्षा ली, सारी बात सच-सच कहो॥55॥

मास पारायण, दूसरा विश्राम

चौपाई :

* सतीं समुझि रघुबीर प्रभाऊ। भय बस सिव सन कीन्ह दुराऊ॥
कछु न परीछा लीन्हि गोसाईं। कीन्ह प्रनामु तुम्हारिहि नाईं॥1॥

भावार्थ:-सतीजी ने श्री रघुनाथजी के प्रभाव को समझकर डर के मारे शिवजी से छिपाव किया और कहा- हे स्वामिन्! मैंने कुछ भी परीक्षा नहीं ली, (वहाँ जाकर) आपकी ही तरह प्रणाम किया॥1॥

* जो तुम्ह कहा सो मृषा न होई। मोरें मन प्रतीति अति सोई॥
तब संकर देखेउ धरि ध्याना। सतीं जो कीन्ह चरित सबु जाना॥2॥

भावार्थ:-आपने जो कहा वह झूठ नहीं हो सकता, मेरे मन में यह बड़ा (पूरा) विश्वास है। तब शिवजी ने ध्यान करके देखा और सतीजी ने जो चरित्र किया था, सब जान लिया॥2॥

* बहुरि राममायहि सिरु नावा। प्रेरि सतिहि जेहिं झूँठ कहावा॥
हरि इच्छा भावी बलवाना। हृदयँ बिचारत संभु सुजाना॥3॥

भावार्थ:-फिर श्री रामचन्द्रजी की माया को सिर नवाया, जिसने प्रेरणा करके सती के मुँह से भी झूठ कहला दिया। सुजान शिवजी ने मन में विचार किया कि हरि की इच्छा रूपी भावी प्रबल है॥3॥

* सतीं कीन्ह सीता कर बेषा। सिव उर भयउ बिषाद बिसेषा॥
जौं अब करउँ सती सन प्रीती। मिटइ भगति पथु होइ अनीती॥4॥

भावार्थ:-सतीजी ने सीताजी का वेष धारण किया, यह जानकर शिवजी के हृदय में बड़ा विषाद हुआ। उन्होंने सोचा कि यदि मैं अब सती से प्रीति करता हूँ तो भक्तिमार्ग लुप्त हो जाता है और बड़ा अन्याय होता है॥4॥

शिवजी द्वारा सती का त्याग, शिवजी की समाधि

दोहा :

* परम पुनीत न जाइ तजि किएँ प्रेम बड़ पापु।
प्रगटि न कहत महेसु कछु हृदयँ अधिक संतापु॥56॥

भावार्थ:-सती परम पवित्र हैं, इसलिए इन्हें छोड़ते भी नहीं बनता और प्रेम करने में बड़ा पाप है। प्रकट करके महादेवजी कुछ भी नहीं कहते, परन्तु उनके हृदय में बड़ा संताप है॥56॥

चौपाई :

*तब संकर प्रभु पद सिरु नावा। सुमिरत रामु हृदयँ अस आवा॥
एहिं तन सतिहि भेंट मोहि नाहीं। सिव संकल्पु कीन्ह मन माहीं॥1॥

भावार्थ:-तब शिवजी ने प्रभु श्री रामचन्द्रजी के चरण कमलों में सिर नवाया और श्री रामजी का स्मरण करते ही उनके मन में यह आया कि सती के इस शरीर से मेरी (पति-पत्नी रूप में) भेंट नहीं हो सकती और शिवजी ने अपने मन में यह संकल्प कर लिया॥1॥

* अस बिचारि संकरु मतिधीरा। चले भवन सुमिरत रघुबीरा॥
चलत गगन भै गिरा सुहाई। जय महेस भलि भगति दृढ़ाई॥2॥

भावार्थ:-स्थिर बुद्धि शंकरजी ऐसा विचार कर श्री रघुनाथजी का स्मरण करते हुए अपने घर (कैलास) को चले। चलते समय सुंदर आकाशवाणी हुई कि हे महेश ! आपकी जय हो। आपने भक्ति की अच्छी दृढ़ता की॥2॥

* अस पन तुम्ह बिनु करइ को आना। रामभगत समरथ भगवाना॥

सुनि नभगिरा सती उर सोचा। पूछा सिवहि समेत सकोचा॥3॥
भावार्थ:-आपको छोड़कर दूसरा कौन ऐसी प्रतिज्ञा कर सकता है। आप श्री रामचन्द्रजी के भक्त हैं, समर्थ हैं और भगवान् हैं। इस आकाशवाणी को सुनकर सतीजी के मन में चिन्ता हुई और उन्होंने सकुचाते हुए शिवजी से पूछा-॥3॥

*कीन्ह कवन पन कहहु कृपाला। सत्यधाम प्रभु दीनदयाला॥

जदपि सतीं पूछा बहु भाँती। तदपि न कहेउ त्रिपुर आराती॥4॥

भावार्थ:-हे कृपालु! कहिए, आपने कौन सी प्रतिज्ञा की है? हे प्रभो! आप सत्य के धाम और दीनदयालु हैं। यद्यपि सतीजी ने बहुत प्रकार से पूछा, परन्तु त्रिपुरारि शिवजी ने कुछ न कहा॥4॥
दोहा :
* सतीं हृदयँ अनुमान किय सबु जानेउ सर्बग्य।

कीन्ह कपटु मैं संभु सन नारि सहज जड़ अग्य॥57 क॥
भावार्थ:-सतीजी ने हृदय में अनुमान किया कि सर्वज्ञ शिवजी सब जान गए। मैंने शिवजी से कपट किया, स्त्री स्वभाव से ही मूर्ख और बेसमझ होती है॥57 (क)॥
सोरठा :
* जलु पय सरिस बिकाइ देखहु प्रीति कि रीति भलि।

बिलग होइ रसु जाइ कपट खटाई परत पुनि॥57 ख॥
भावार्थ:-प्रीति की सुंदर रीति देखिए कि जल भी (दूध के साथ मिलकर) दूध के समान भाव बिकता है, परन्तु फिर कपट रूपी खटाई पड़ते ही पानी अलग हो जाता है (दूध फट जाता है) और स्वाद (प्रेम) जाता रहता है॥57 (ख)॥
चौ.

* हृदयँ सोचु समुझत निज करनी। चिंता अमित जाइ नहिं बरनी॥
कृपासिंधु सिव परम अगाधा। प्रगट न कहेउ मोर अपराधा॥1॥

भावार्थ:-अपनी करनी को याद करके सतीजी के हृदय में इतना सोच है और इतनी अपार चिन्ता है कि जिसका वर्णन नहीं किया जा सकता। (उन्होंने समझ लिया कि) शिवजी कृपा के परम अथाह सागर हैं। इससे प्रकट में उन्होंने मेरा अपराध नहीं कहा॥1॥

* संकर रुख अवलोकि भवानी। प्रभु मोहि तजेउ हृदयँ अकुलानी॥
निज अघ समुझि न कछु कहि जाई। तपइ अवाँ इव उर अधिकाई॥2॥

भावार्थ:-शिवजी का रुख देखकर सतीजी ने जान लिया कि स्वामी ने मेरा त्याग कर दिया और वे हृदय में व्याकुल हो उठीं। अपना पाप समझकर कुछ कहते नहीं बनता, परन्तु हृदय (भीतर ही भीतर) कुम्हार के आँवे के समान अत्यन्त जलने लगा॥2॥

* सतिहि ससोच जानि बृषकेतू। कहीं कथा सुंदर सुख हेतू॥
बरनत पंथ बिबिध इतिहासा। बिस्वनाथ पहुँचे कैलासा॥3॥

भावार्थ:-वृषकेतु शिवजी ने सती को चिन्तायुक्त जानकर उन्हें सुख देने के लिए सुंदर कथाएँ कहीं। इस प्रकार मार्ग में विविध प्रकार के इतिहासों को कहते हुए विश्वनाथ कैलास जा पहुँचे॥3॥

* तहँ पुनि संभु समुझि पन आपन। बैठे बट तर करि कमलासन॥
संकर सहज सरूपु सम्हारा। लागि समाधि अखंड अपारा॥4॥

भावार्थ:-वहाँ फिर शिवजी अपनी प्रतिज्ञा को याद करके बड़ के पेड़ के नीचे पद्मासन लगाकर बैठ गए। शिवजी ने अपना स्वाभाविक रूप संभाला। उनकी अखण्ड और अपार समाधि लग गई॥4॥

दोहा :

*सती बसहिं कैलास तब अधिक सोचु मन माहिं।

मरमु न कोऊ जान कछु जुग सम दिवस सिराहिं॥58॥

भावार्थ:-तब सतीजी कैलास पर रहने लगीं। उनके मन में बड़ा दुःख था। इस रहस्य को कोई कुछ भी नहीं जानता था। उनका एक-एक दिन युग के समान बीत रहा था॥58॥

चौपाई :

* नित नव सोचु सती उर भारा। कब जैहउँ दुख सागर पारा॥
मैं जो कीन्ह रघुपति अपमाना। पुनि पतिबचनु मृषा करि जाना॥1॥

भावार्थ:-सतीजी के हृदय में नित्य नया और भारी सोच हो रहा था कि मैं इस दुःख समुद्र के पार कब जाऊँगी। मैंने जो श्री रघुनाथजी का अपमान किया और फिर पति के वचनों को झूठ जाना-॥1॥

* सो फलु मोहि बिधाताँ दीन्हा। जो कछु उचित रहा सोइ कीन्हा॥
अब बिधि अस बूझिअ नहिं तोही। संकर बिमुख जिआवसि मोही॥2॥

भावार्थ:-उसका फल विधाता ने मुझको दिया, जो उचित था वही किया, परन्तु हे विधाता! अब तुझे यह उचित नहीं है, जो शंकर से विमुख होने पर भी मुझे जिला रहा है॥2॥

* कहि न जाइ कछु हृदय गलानी। मन महुँ रामहि सुमिर सयानी॥
जौं प्रभु दीनदयालु कहावा। आरति हरन बेद जसु गावा॥3॥

भावार्थ:-सतीजी के हृदय की ग्लानि कुछ कही नहीं जाती। बुद्धिमती सतीजी ने मन में श्री रामचन्द्रजी का स्मरण किया और कहा- हे प्रभो! यदि आप दीनदयालु कहलाते हैं और वेदों ने आपका यह यश गाया है कि आप दुःख को हरने वाले हैं, ॥3॥

* तौ मैं बिनय करउँ कर जोरी। छूटउ बेगि देह यह मोरी॥
जौं मोरें सिव चरन सनेहू। मन क्रम बचन सत्य ब्रतु एहू॥4॥

भावार्थ:-तो मैं हाथ जोड़कर विनती करती हूँ कि मेरी यह देह जल्दी छूट जाए। यदि मेरा शिवजी के चरणों में प्रेम है और मेरा यह (प्रेम का) व्रत मन, वचन और कर्म (आचरण) से सत्य है,॥4॥

दोहा :

* तौ सबदरसी सुनिअ प्रभु करउ सो बेगि उपाइ।

होइ मरनु जेहिं बिनहिं श्रम दुसह बिपत्ति बिहाइ॥59॥

भावार्थ:-तो हे सर्वदर्शी प्रभो! सुनिए और शीघ्र वह उपाय कीजिए, जिससे मेरा मरण हो और बिना ही परिश्रम यह (पति-परित्याग रूपी) असह्य विपत्ति दूर हो जाए॥59॥

चौपाई :

* एहि बिधि दुखित प्रजेसकुमारी। अकथनीय दारुन दुखु भारी॥

बीतें संबत सहस सतासी। तजी समाधि संभु अबिनासी॥1॥

भावार्थ:-दक्षसुता सतीजी इस प्रकार बहुत दुःखित थीं, उनको इतना दारुण दुःख था कि जिसका वर्णन नहीं किया जा सकता। सत्तासी हजार वर्ष बीत जाने पर अविनाशी शिवजी ने समाधि खोली॥1॥

*राम नाम सिव सुमिरन लागे। जानेउ सतीं जगतपति जागे॥

जाइ संभु पद बंदनु कीन्हा। सनमुख संकर आसनु दीन्हा॥2॥

भावार्थ:-शिवजी रामनाम का स्मरण करने लगे, तब सतीजी ने जाना कि अब जगत के स्वामी (शिवजी) जागे। उन्होंने जाकर शिवजी के चरणों में प्रणाम किया। शिवजी ने उनको बैठने के लिए सामने आसन दिया॥2॥

* लगे कहन हरि कथा रसाला। दच्छ प्रजेस भए तेहि काला॥

देखा बिधि बिचारि सब लायक। दच्छहि कीन्ह प्रजापति नायक॥3॥

भावार्थ:-शिवजी भगवान हरि की रसमयी कथाएँ कहने लगे। उसी समय दक्ष प्रजापति हुए। ब्रह्माजी ने सब प्रकार से योग्य देख-समझकर दक्ष को प्रजापतियों का नायक बना दिया॥3॥

* बड़ अधिकार दच्छ जब पावा। अति अभिनामु हृदयँ तब आवा॥
नहिं कोउ अस जनमा जग माहीं। प्रभुता पाइ जाहि मद नाहीं॥4॥

भावार्थ:-जब दक्ष ने इतना बड़ा अधिकार पाया, तब उनके हृदय में अत्यन्त अभिमान आ गया। जगत में ऐसा कोई नहीं पैदा हुआ, जिसको प्रभुता पाकर मद न हो॥4॥

सती का दक्ष यज्ञ में जाना

दोहा :

* दच्छ लिए मुनि बोलि सब करन लगे बड़ जाग।
नेवते सादर सकल सुर जे पावत मख भाग॥60॥

भावार्थ:-दक्ष ने सब मुनियों को बुला लिया और वे बड़ा यज्ञ करने लगे। जो देवता यज्ञ का भाग पाते हैं, दक्ष ने उन सबको आदर सहित निमन्त्रित किया॥60॥

चौपाई :

* किंनर नाग सिद्ध गंधर्बा। बधुन्ह समेत चले सुर सर्बा॥
बिष्नु बिरंचि महेसु बिहाई। चले सकल सुर जान बनाई॥1॥

भावार्थ:-(दक्ष का निमन्त्रण पाकर) किन्नर, नाग, सिद्ध, गन्धर्व और सब देवता अपनी-अपनी स्त्रियों सहित चले। विष्णु, ब्रह्मा और महादेवजी को छोड़कर सभी देवता अपना-अपना विमान सजाकर चले॥1॥

* सतीं बिलोके ब्योम बिमाना। जात चले सुंदर बिधि नाना॥
सुर सुंदरी करहिं कल गाना। सुनत श्रवन छूटहिं मुनि ध्याना॥2॥

भावार्थ:-सतीजी ने देखा, अनेकों प्रकार के सुंदर विमान आकाश में चले जा रहे हैं, देव-सुन्दरियाँ मधुर गान कर रही हैं, जिन्हें सुनकर मुनियों का ध्यान छूट जाता है॥2॥

* पूछेउ तब सिवँ कहेउ बखानी। पिता जग्य सुनि कछु हरषानी॥
जौं महेसु मोहि आयसु देहीं। कछु दिन जाइ रहौं मिस एहीं॥3॥

भावार्थ:-सतीजी ने (विमानों में देवताओं के जाने का कारण) पूछा, तब शिवजी ने सब बातें बतलाईं। पिता के यज्ञ की बात सुनकर सती कुछ प्रसन्न हुईं और सोचने लगीं कि यदि महादेवजी मुझे आज्ञा दें, तो इसी बहाने कुछ दिन पिता के घर जाकर रहूँ॥3॥

* पति परित्याग हृदयँ दुखु भारी। कहइ न निज अपराध बिचारी॥
बोली सती मनोहर बानी। भय संकोच प्रेम रस सानी॥4॥

भावार्थ:-क्योंकि उनके हृदय में पति द्वारा त्यागी जाने का बड़ा भारी दुःख था, पर अपना अपराध समझकर वे कुछ कहती न थीं। आखिर सतीजी भय, संकोच और प्रेमरस में सनी हुई मनोहर वाणी से बोलीं- ॥4॥

दोहा :

* पिता भवन उत्सव परम जौं प्रभु आयसु होइ।
तौ मैं जाउँ कृपायतन सादर देखन सोइ॥61॥

भावार्थ:-हे प्रभो! मेरे पिता के घर बहुत बड़ा उत्सव है। यदि आपकी आज्ञा हो तो हे कृपाधाम! मैं आदर सहित उसे देखने जाऊँ॥61॥

चौपाई :

* कहेहु नीक मोरेहूँ मन भावा। यह अनुचित नहिं नेवत पठावा॥
दच्छ सकल निज सुता बोलाईं। हमरें बयर तुम्हउ बिसराईं॥1॥

भावार्थ:-शिवजी ने कहा- तुमने बात तो अच्छी कही, यह मेरे मन को भी पसंद आई पर उन्होंने न्योता नहीं भेजा, यह अनुचित है। दक्ष ने अपनी सब लड़कियों को बुलाया है, किन्तु हमारे बैर के कारण उन्होंने तुमको भी भुला दिया॥1॥

* ब्रह्मसभाँ हम सन दुखु माना। तेहि तें अजहुँ करहिं अपमाना॥
जौं बिनु बोलें जाहु भवानी। रहइ न सीलु सनेहु न कानी॥2॥

भावार्थ:-एक बार ब्रह्मा की सभा में हम से अप्रसन्न हो गए थे, उसी से वे अब भी हमारा अपमान करते हैं। हे भवानी! जो तुम बिना बुलाए जाओगी तो न शील-स्नेह ही रहेगा और न मान-मर्यादा ही रहेगी॥2॥

* जदपि मित्र प्रभु पितु गुर गेहा। जाइअ बिनु बोलेहुँ न सँदेहा॥
तदपि बिरोध मान जहँ कोई। तहाँ गएँ कल्यानु न होई॥3॥

भावार्थ:-यद्यपि इसमें संदेह नहीं कि मित्र, स्वामी, पिता और गुरु के घर बिना बुलाए भी जाना चाहिए तो भी जहाँ कोई विरोध मानता हो, उसके घर जाने से कल्याण नहीं होता॥3॥

* भाँति अनेक संभु समुझावा। भावी बस न ग्यानु उर आवा॥
कह प्रभु जाहु जो बिनहिं बोलाएँ। नहिं भलि बात हमारे भाएँ॥4॥

भावार्थ:-शिवजी ने बहुत प्रकार से समझाया, पर होनहारवश सती के हृदय में बोध नहीं हुआ। फिर शिवजी ने कहा कि यदि बिना बुलाए जाओगी, तो हमारी समझ में अच्छी बात न होगी॥4॥

दोहा :

* कहि देखा हर जतन बहु रहइ न दच्छकुमारि।
दिए मुख्य गन संग तब बिदा कीन्ह त्रिपुरारि॥62॥

भावार्थ:-शिवजी ने बहुत प्रकार से कहकर देख लिया, किन्तु जब सती किसी प्रकार भी नहीं रुकीं, तब त्रिपुरारि महादेवजी ने अपने मुख्य गणों को साथ देकर उनको बिदा कर दिया॥62॥

चौपाई :

* पिता भवन जब गईं भवानी। दच्छ त्रास काहुँ न सनमानी॥
सादर भलेहिं मिली एक माता। भगिनीं मिलीं बहुत मुसुकाता॥1॥

भावार्थ:-भवानी जब पिता (दक्ष) के घर पहुँची, तब दक्ष के डर के मारे किसी ने उनकी आवभगत नहीं की, केवल एक माता भले ही आदर से मिली। बहिनें बहुत मुस्कुराती हुई मिलीं॥1॥

* दच्छ न कछु पूछी कुसलाता। सतिहि बिलोकी जरे सब गाता॥
सतीं जाइ देखेउ तब जागा। कतहूँ न दीख संभु कर भागा॥2॥

भावार्थ:-दक्ष ने तो उनकी कुछ कुशल तक नहीं पूछी, सतीजी को देखकर उलटे उनके सारे अंग जल उठे। तब सती ने जाकर यज्ञ देखा तो वहाँ कहीं शिवजी का भाग दिखाई नहीं दिया॥2॥

* तब चित चढ़ेउ जो संकर कहेऊ। प्रभु अपमानु समुझि उर दहेऊ॥
पाछिल दुखु न हृदयँ अस ब्यापा। जस यह भयउ महा परितापा॥3॥

भावार्थ:-तब शिवजी ने जो कहा था, वह उनकी समझ में आया। स्वामी का अपमान समझकर सती का हृदय जल उठा। पिछला (पति परित्याग का) दुःख उनके हृदय में उतना नहीं व्यापा था, जितना महान्‌ दुःख इस समय (पति अपमान के कारण) हुआ॥3॥

* जद्यपि जग दारुन दुख नाना। सब तें कठिन जाति अवमाना॥
समुझि सो सतिहि भयउ अति क्रोधा। बहु बिधि जननीं कीन्ह प्रबोधा॥4॥

भावार्थ:-यद्यपि जगत में अनेक प्रकार के दारुण दुःख हैं, तथापि, जाति अपमान सबसे बढ़कर कठिन है। यह समझकर सतीजी को बड़ा क्रोध हो आया। माता ने उन्हें बहुत प्रकार से समझाया-बुझाया॥4॥

पति के अपमान से दुःखी होकर सती का योगाग्नि से जल जाना, दक्ष यज्ञ विध्वंस

दोहा :

* सिव अपमानु न जाइ सहि हृदयँ न होइ प्रबोध।
सकल सभहि हठि हटकि तब बोलीं बचन सक्रोध॥63॥

भावार्थ:-परन्तु उनसे शिवजी का अपमान सहा नहीं गया, इससे उनके हृदय में कुछ भी प्रबोध नहीं हुआ। तब वे सारी सभा को हठपूर्वक डाँटकर क्रोधभरे वचन बोलीं-॥63॥

चौपाई :

* सुनहु सभासद सकल मुनिंदा। कही सुनी जिन्ह संकर निंदा॥
सो फलु तुरत लहब सब काहूँ। भली भाँति पछिताब पिताहूँ॥1॥

भावार्थ:-हे सभासदों और सब मुनीश्वरो! सुनो। जिन लोगों ने यहाँ शिवजी की निंदा की या सुनी है, उन सबको उसका फल तुरंत ही मिलेगा और मेरे पिता दक्ष भी भलीभाँति पछताएँगे॥1॥

* संत संभु श्रीपति अपबादा। सुनिअ जहाँ तहँ असि मरजादा॥
काटिअ तासु जीभ जो बसाई। श्रवन मूदि न त चलिअ पराई॥2॥

भावार्थ:-जहाँ संत, शिवजी और लक्ष्मीपति श्री विष्णु भगवान की निंदा सुनी जाए, वहाँ ऐसी मर्यादा है कि यदि अपना वश चले तो उस (निंदा करने वाले) की जीभ काट लें और नहीं तो कान मूँदकर वहाँ से भाग जाएँ॥2॥

*जगदातमा महेसु पुरारी। जगत जनक सब के हितकारी॥
पिता मंदमति निंदत तेही। दच्छ सुक्र संभव यह देही॥3॥

भावार्थ:-त्रिपुर दैत्य को मारने वाले भगवान महेश्वर सम्पूर्ण जगत की आत्मा हैं, वे जगत्पिता और सबका हित करने वाले हैं। मेरा मंदबुद्धि पिता उनकी निंदा करता है और मेरा यह शरीर दक्ष ही के वीर्य से उत्पन्न है॥3॥

* तजिहउँ तुरत देह तेहि हेतू। उर धरि चंद्रमौलि बृषकेतू॥
अस कहि जोग अगिनि तनु जारा। भयउ सकल मख हाहाकारा॥4॥

भावार्थ:-इसलिए चन्द्रमा को ललाट पर धारण करने वाले वृषकेतु शिवजी को हृदय में धारण करके मैं इस शरीर को तुरंत ही त्याग दूँगी। ऐसा कहकर सतीजी ने योगाग्नि में अपना शरीर भस्म कर डाला। सारी यज्ञशाला में हाहाकार मच गया॥4॥

दोहा :

* सती मरनु सुनि संभु गन लगे करन मख खीस।
जग्य बिधंस बिलोकि भृगु रच्छा कीन्हि मुनीस॥64॥ ॥

भावार्थ:-सती का मरण सुनकर शिवजी के गण यज्ञ विध्वंस करने लगे। यज्ञ विध्वंस होते देखकर मुनीश्वर भृगुजी ने उसकी रक्षा की॥64॥

चौपाई :

* समाचार सब संकर पाए। बीरभद्रु करि कोप पठाए॥
जग्य बिधंस जाइ तिन्ह कीन्हा। सकल सुरन्ह बिधिवत फलु दीन्हा॥1॥

भावार्थ:-ये सब समाचार शिवजी को मिले, तब उन्होंने क्रोध करके वीरभद्र को भेजा। उन्होंने वहाँ जाकर यज्ञ विध्वंस कर डाला और सब देवताओं को यथोचित फल (दंड) दिया॥1॥

* भै जगबिदित दच्छ गति सोई। जसि कछु संभु बिमुख कै होई॥

यह इतिहास सकल जग जानी। ताते मैं संछेप बखानी॥2॥

भावार्थ:-दक्ष की जगत्प्रसिद्ध वही गति हुई, जो शिवद्रोही की हुआ करती है। यह इतिहास सारा संसार जानता है, इसलिए मैंने संक्षेप में वर्णन किया॥2॥

पार्वती का जन्म और तपस्या

*सतीं मरत हरि सन बरु मागा। जनम जनम सिव पद अनुरागा॥
तेहि कारन हिमगिरि गृह जाई। जनमीं पारबती तनु पाई॥3॥

भावार्थ:-सती ने मरते समय भगवान हरि से यह वर माँगा कि मेरा जन्म-जन्म में शिवजी के चरणों में अनुराग रहे। इसी कारण उन्होंने हिमाचल के घर जाकर पार्वती के शरीर से जन्म लिया॥3॥

*जब तें उमा सैल गृह जाईं। सकल सिद्धि संपति तहँ छाईं॥
जहँ तहँ मुनिन्ह सुआश्रम कीन्हे। उचित बास हिम भूधर दीन्हे॥4॥

भावार्थ:-जब से उमाजी हिमाचल के घर जन्मीं, तबसे वहाँ सारी सिद्धियाँ और सम्पत्तियाँ छा गईं। मुनियों ने जहाँ-तहाँ सुंदर आश्रम बना लिए और हिमाचल ने उनको उचित स्थान दिए॥4॥

दोहा :

* सदा सुमन फल सहित सब द्रुम नव नाना जाति।
प्रगटीं सुंदर सैल पर मनि आकर बहु भाँति॥65॥

भावार्थ:-उस सुंदर पर्वत पर बहुत प्रकार के सब नए-नए वृक्ष सदा पुष्प-फलयुक्त हो गए और वहाँ बहुत तरह की मणियों की खानें प्रकट हो गईं॥65॥

चौपाई :

* सरिता सब पुनीत जलु बहहीं। खग मृग मधुप सुखी सब रहहीं॥
सहज बयरु सब जीवन्ह त्यागा। गिरि पर सकल करहिं अनुरागा॥1॥

भावार्थ:-सारी नदियों में पवित्र जल बहता है और पक्षी, पशु, भ्रमर सभी सुखी रहते हैं। सब जीवों ने अपना स्वाभाविक बैर छोड़ दिया और पर्वत पर सभी परस्पर प्रेम करते हैं॥1॥

* सोह सैल गिरिजा गृह आएँ। जिमि जनु रामभगति के पाएँ॥

नित नूतन मंगल गृह तासू। ब्रह्मादिक गावहिं जसु जासू॥2॥

भावार्थ:-पार्वतीजी के घर आ जाने से पर्वत ऐसा शोभायमान हो रहा है जैसा रामभक्ति को पाकर भक्त शोभायमान होता है। उस (पर्वतराज) के घर नित्य नए-नए मंगलोत्सव होते हैं, जिसका ब्रह्मादि यश गाते हैं॥2॥

* नारद समाचार सब पाए। कोतुकहीं गिरि गेह सिधाए॥

सैलराज बड़ आदर कीन्हा। पद पखारि बर आसनु दीन्हा॥3॥

भावार्थ:-जब नारदजी ने ये सब समाचार सुने तो वे कौतुक ही से हिमाचल के घर पधारे। पर्वतराज ने उनका बड़ा आदर किया और चरण धोकर उनको उत्तम आसन दिया॥3॥

* नारि सहित मुनि पद सिरु नावा। चरन सलिल सबु भवनु सिंचावा॥

निज सौभाग्य बहुत गिरि बरना। सुता बोलि मेली मुनि चरना॥4॥

भावार्थ:-फिर अपनी स्त्री सहित मुनि के चरणों में सिर नवाया और उनके चरणोदक को सारे घर में छिड़काया। हिमाचल ने अपने सौभाग्य का बहुत बखान किया और पुत्री को बुलाकर मुनि के चरणों पर डाल दिया॥4॥

दोहा :

* त्रिकालग्य सर्बग्य तुम्ह गति सर्बत्र तुम्हारि।

कहहु सुता के दोष गुन मुनिबर हृदयँ बिचारि॥66॥

भावार्थ:-(और कहा-) हे मुनिवर! आप त्रिकालज्ञ और सर्वज्ञ हैं, आपकी सर्वत्र पहुँच है। अतः आप हृदय में विचार कर कन्या के दोष-गुण कहिए॥66॥

चौपाई :

* कह मुनि बिहसि गूढ़ मृदु बानी। सुता तुम्हारि सकल गुन खानी॥
सुंदर सहज सुसील सयानी। नाम उमा अंबिका भवानी॥1॥

भावार्थ:-नारद मुनि ने हँसकर रहस्ययुक्त कोमल वाणी से कहा- तुम्हारी कन्या सब गुणों की खान है। यह स्वभाव से ही सुंदर, सुशील और समझदार है। उमा, अम्बिका और भवानी इसके नाम हैं॥1॥

* सब लच्छन संपन्न कुमारी। होइहि संतत पियहि पिआरी॥
सदा अचल एहि कर अहिवाता। एहि तें जसु पैहहिं पितु माता॥2॥

भावार्थ:-कन्या सब सुलक्षणों से सम्पन्न है, यह अपने पति को सदा प्यारी होगी। इसका सुहाग सदा अचल रहेगा और इससे इसके माता-पिता यश पावेंगे॥2॥

* होइहि पूज्य सकल जग माहीं। एहि सेवत कछु दुर्लभ नाहीं॥
एहि कर नामु सुमिरि संसारा। त्रिय चढ़िहहिं पतिब्रत असिधारा॥3॥

भावार्थ:-यह सारे जगत में पूज्य होगी और इसकी सेवा करने से कुछ भी दुर्लभ न होगा। संसार में स्त्रियाँ इसका नाम स्मरण करके पतिव्रता रूपी तलवार की धार पर चढ़ जाएँगी॥3॥

* सैल सुलच्छन सुता तुम्हारी। सुनहु जे अब अवगुन दुइ चारी॥
अगुन अमान मातु पितु हीना। उदासीन सब संसय छीना॥4॥

भावार्थ:-हे पर्वतराज! तुम्हारी कन्या सुलच्छनी है। अब इसमें जो दो-चार अवगुण हैं, उन्हें भी सुन लो। गुणहीन, मानहीन, माता-पिताविहीन, उदासीन, संशयहीन (लापरवाह)॥4॥

दोहा :

* जोगी जटिल अकाम मन नगन अमंगल बेष।
अस स्वामी एहि कहँ मिलिहि परी हस्त असि रेख॥67॥

भावार्थ:-योगी, जटाधारी, निष्काम हृदय, नंगा और अमंगल वेष वाला, ऐसा पति इसको मिलेगा। इसके हाथ में ऐसी ही रेखा पड़ी है॥67॥

चौपाई :

* सुनि मुनि गिरा सत्य जियँ जानी। दुख दंपतिहि उमा हरषानी॥
नारदहूँ यह भेदु न जाना। दसा एक समुझब बिलगाना॥1॥

भावार्थ:-नारद मुनि की वाणी सुनकर और उसको हृदय में सत्य जानकर पति-पत्नी (हिमवान्‌ और मैना) को दुःख हुआ और पार्वतीजी प्रसन्न हुईं। नारदजी ने भी इस रहस्य को नहीं जाना, क्योंकि सबकी बाहरी दशा एक सी होने पर भी भीतरी समझ भिन्न-भिन्न थी॥1॥

* सकल सखीं गिरिजा गिरि मैना। पुलक सरीर भरे जल नैना॥
होइ न मृषा देवरिषि भाषा। उमा सो बचनु हृदयँ धरि राखा॥2॥

भावार्थ:-सारी सखियाँ, पार्वती, पर्वतराज हिमवान्‌ और मैना सभी के शरीर पुलकित थे और सभी के नेत्रों में जल भरा था। देवर्षि के वचन असत्य नहीं हो सकते, (यह विचारकर) पार्वती ने उन वचनों को हृदय में धारण कर लिया॥2॥

* उपजेउ सिव पद कमल सनेहू। मिलन कठिन मन भा संदेहू॥
जानि कुअवसरु प्रीति दुराई। सखी उछँग बैठी पुनि जाई॥3॥

भावार्थ:-उन्हें शिवजी के चरण कमलों में स्नेह उत्पन्न हो आया, परन्तु मन में यह संदेह हुआ कि उनका मिलना कठिन है। अवसर ठीक न जानकर उमा ने अपने प्रेम को छिपा लिया और फिर वे सखी की गोद में जाकर बैठ गईं॥3॥

* झूठि न होइ देवरिषि बानी। सोचहिं दंपति सखीं सयानी॥
उर धरि धीर कहइ गिरिराऊ। कहहु नाथ का करिअ उपाऊ॥4॥

भावार्थ:-देवर्षि की वाणी झूठी न होगी, यह विचार कर हिमवान्, मैना और सारी चतुर सखियाँ चिन्ता करने लगीं। फिर हृदय में धीरज धरकर पर्वतराज ने कहा- हे नाथ! कहिए, अब क्या उपाय किया जाए?॥4॥

दोहा :

* कह मुनीस हिमवंत सुनु जो बिधि लिखा लिलार।
देव दनुज नर नाग मुनि कोउ न मेटनिहार॥68॥

भावार्थ:-मुनीश्वर ने कहा- हे हिमवान्! सुनो, विधाता ने ललाट पर जो कुछ लिख दिया है, उसको देवता, दानव, मनुष्य, नाग और मुनि कोई भी नहीं मिटा सकते॥68॥

चौपाई :

* तदपि एक मैं कहउँ उपाई। होइ करै जौं दैउ सहाई॥
जस बरु मैं बरनेउँ तुम्ह पाहीं। मिलिहि उमहि तस संसय नाहीं॥1॥

भावार्थ:-तो भी एक उपाय मैं बताता हूँ। यदि दैव सहायता करें तो वह सिद्ध हो सकता है। उमा को वर तो निःसंदेह वैसा ही मिलेगा, जैसा मैंने तुम्हारे सामने वर्णन किया है॥1॥

* जे जे बर के दोष बखाने। ते सब सिव पहिं मैं अनुमाने॥
जौं बिबाहु संकर सन होई। दोषउ गुन सम कह सबु कोई॥2॥

भावार्थ:-परन्तु मैंने वर के जो-जो दोष बतलाए हैं, मेरे अनुमान से वे सभी शिवजी में हैं। यदि शिवजी के साथ विवाह हो जाए तो दोषों को भी सब लोग गुणों के समान ही कहेंगे॥2॥

* जौं अहि सेज सयन हरि करहीं। बुध कछु तिन्ह कर दोषु न धरहीं॥
भानु कृसानु सर्ब रस खाहीं। तिन्ह कहँ मंद कहत कोउ नाहीं॥3॥

भावार्थ:-जैसे विष्णु भगवान शेषनाग की शय्या पर सोते हैं, तो भी पण्डित लोग उनको कोई दोष नहीं लगाते। सूर्य और अग्निदेव अच्छे-बुरे सभी रसों का भक्षण करते हैं, परन्तु उनको कोई बुरा नहीं कहता॥3॥

*सुभ अरु असुभ सलिल सब बहई। सुरसरि कोउ अपुनीत न कहई॥
समरथ कहुँ नहिं दोषु गोसाईं। रबि पावक सुरसरि की नाईं॥4॥

भावार्थ:-गंगाजी में शुभ और अशुभ सभी जल बहता है, पर कोई उन्हें अपवित्र नहीं कहता। सूर्य, अग्नि और गंगाजी की भाँति समर्थ को कुछ दोष नहीं लगता॥4॥

दोहा :

* जौं अस हिसिषा करहिं नर जड़ बिबेक अभिमान।
परहिं कलप भरि नरक महुँ जीव कि ईस समान॥69॥

भावार्थ:-यदि मूर्ख मनुष्य ज्ञान के अभिमान से इस प्रकार होड़ करते हैं, तो वे कल्पभर के लिए नरक में पड़ते हैं। भला कहीं जीव भी ईश्वर के समान (सर्वथा स्वतंत्र) हो सकता है?॥69॥

चौपाई :

* सुरसरि जल कृत बारुनि जाना। कबहुँ न संत करहिं तेहि पाना॥
सुरसरि मिलें सो पावन जैसें। ईस अनीसहि अंतरु तैसें॥1॥

भावार्थ:-गंगा जल से भी बनाई हुई मदिरा को जानकर संत लोग कभी उसका पान नहीं करते। पर वही गंगाजी में मिल जाने पर जैसे पवित्र हो जाती है, ईश्वर और जीव में भी वैसा ही भेद है॥1॥

* संभु सहज समरथ भगवाना। एहि बिबाहँ सब बिधि कल्याना॥
दुराराध्य पै अहहिं महेसू। आसुतोष पुनि किएँ कलेसू॥2॥

भावार्थ:-शिवजी सहज ही समर्थ हैं, क्योंकि वे भगवान हैं, इसलिए इस विवाह में सब प्रकार कल्याण है, परन्तु महादेवजी की आराधना बड़ी कठिन है, फिर भी क्लेश (तप) करने से वे बहुत जल्द संतुष्ट हो जाते हैं॥2॥

* जौं तपु करै कुमारि तुम्हारी। भाविउ मेटि सकहिं त्रिपुरारी॥
जद्यपि बर अनेक जग माहीं। एहि कहँ सिव तजि दूसर नाहीं॥3॥

भावार्थ:-यदि तुम्हारी कन्या तप करे, तो त्रिपुरारि महादेवजी होनहार को मिटा सकते हैं। यद्यपि संसार में वर अनेक हैं, पर इसके लिए शिवजी को छोड़कर दूसरा वर नहीं है॥3॥

* बर दायक प्रनतारति भंजन। कृपासिंधु सेवक मन रंजन॥
इच्छित फल बिनु सिव अवराधें। लहिअ न कोटि जोग जप साधें॥4॥

भावार्थ:-शिवजी वर देने वाले, शरणागतों के दुःखों का नाश करने वाले, कृपा के समुद्र और सेवकों के मन को प्रसन्न करने वाले हैं। शिवजी की आराधना किए बिना करोड़ों योग और जप करने पर भी वांछित फल नहीं मिलता॥4॥

दोहा :

* अस कहि नारद सुमिरि हरि गिरिजहि दीन्हि असीस।
होइहि यह कल्यान अब संसय तजहु गिरीस॥70॥

भावार्थ:-ऐसा कहकर भगवान का स्मरण करके नारदजी ने पार्वती को आशीर्वाद दिया। (और कहा कि-) हे पर्वतराज! तुम संदेह का त्याग कर दो, अब यह कल्याण ही होगा॥70॥

चौपाई :

* कहि अस ब्रह्मभवन मुनि गयऊ। आगिल चरित सुनहु जस भयऊ॥
पतिहि एकांत पाइ कह मैना। नाथ न मैं समुझे मुनि बैना॥1॥

भावार्थ:-यों कहकर नारद मुनि ब्रह्मलोक को चले गए। अब आगे जो चरित्र हुआ उसे सुनो। पति को एकान्त में पाकर मैना ने कहा- हे नाथ! मैंने मुनि के वचनों का अर्थ नहीं समझा॥1॥

* जौं घरु बरु कुलु होइ अनूपा। करिअ बिबाहु सुता अनुरूपा॥
न त कन्या बरु रहउ कुआरी। कंत उमा मम प्रानपिआरी॥2॥

भावार्थ:-जो हमारी कन्या के अनुकूल घर, वर और कुल उत्तम हो तो विवाह कीजिए। नहीं तो लड़की चाहे कुमारी ही रहे (मैं अयोग्य वर के साथ उसका विवाह नहीं करना चाहती), क्योंकि हे स्वामिन्! पार्वती मुझको प्राणों के समान प्यारी है॥2॥

* जौं न मिलिहि बरु गिरिजहि जोगू। गिरि जड़ सहज कहिहि सबु लोगू॥
सोइ बिचारि पति करेहु बिबाहू। जेहिं न बहोरि होइ उर दाहू॥3॥

भावार्थ:-यदि पार्वती के योग्य वर न मिला तो सब लोग कहेंगे कि पर्वत स्वभाव से ही जड़ (मूर्ख) होते हैं। हे स्वामी! इस बात को विचारकर ही विवाह कीजिएगा, जिसमें फिर पीछे हृदय में सन्ताप न हो॥3॥

* अस कहि परी चरन धरि सीसा। बोले सहित सनेह गिरीसा॥
बरु पावक प्रगटै ससि माहीं। नारद बचनु अन्यथा नाहीं॥4॥

भावार्थ:-इस प्रकार कहकर मैना पति के चरणों पर मस्तक रखकर गिर पड़ीं। तब हिमवान् ने प्रेम से कहा- चाहे चन्द्रमा में अग्नि प्रकट हो जाए, पर नारदजी के वचन झूठे नहीं हो सकते॥4॥

दोहा :

* प्रिया सोचु परिहरहु सबु सुमिरहु श्रीभगवान।
पारबतिहि निरमयउ जेहिं सोइ करिहि कल्यान॥71॥

भावार्थ:-हे प्रिये! सब सोच छोड़कर श्री भगवान का स्मरण करो, जिन्होंने पार्वती को रचा है, वे ही कल्याण करेंगे॥71॥

चौपाई :

* अब जौं तुम्हहि सुता पर नेहू। तौ अस जाइ सिखावनु देहू॥
करै सो तपु जेहिं मिलहिं महेसू। आन उपायँ न मिटिहि कलेसू॥1॥

भावार्थ:-अब यदि तुम्हें कन्या पर प्रेम है, तो जाकर उसे यह शिक्षा दो कि वह ऐसा तप करे, जिससे शिवजी मिल जाएँ। दूसरे उपाय से यह क्लेश नहीं मिटेगा॥1॥

* नारद बचन सगर्भ सहेतू। सुंदर सब गुन निधि बृषकेतू॥
अस बिचारि तुम्ह तजहु असंका। सबहि भाँति संकरु अकलंका॥2॥

भावार्थ:-नारदजी के वचन रहस्य से युक्त और सकारण हैं और शिवजी समस्त सुंदर गुणों के भण्डार हैं। यह विचारकर तुम (मिथ्या) संदेह को छोड़ दो। शिवजी सभी तरह से निष्कलंक हैं॥2॥

* सुनि पति बचन हरषि मन माहीं। गई तुरत उठि गिरिजा पाहीं॥
उमहि बिलोकि नयन भरे बारी। सहित सनेह गोद बैठारी॥3॥

भावार्थ:-पति के वचन सुन मन में प्रसन्न होकर मैना उठकर तुरंत पार्वती के पास गईं। पार्वती को देखकर उनकी आँखों में आँसू भर आए। उसे स्नेह के साथ गोद में बैठा लिया॥3॥

दोहा :

* बारहिं बार लेति उर लाई। गदगद कंठ न कछु कहि जाई॥
जगत मातु सर्बग्य भवानी। मातु सुखद बोलीं मृदु बानी॥4॥

भावार्थ:-फिर बार-बार उसे हृदय से लगाने लगीं। प्रेम से मैना का गला भर आया, कुछ कहा नहीं जाता। जगज्जननी भवानीजी तो सर्वज्ञ ठहरीं। (माता के मन की दशा को जानकर) वे माता को सुख देने वाली कोमल वाणी से बोलीं-॥4॥

दोहा :

* सुनहि मातु मैं दीख अस सपन सुनावउँ तोहि।
सुंदर गौर सुबिप्रबर अस उपदेसेउ मोहि॥72॥

भावार्थ:-माँ! सुन, मैं तुझे सुनाती हूँ, मैंने ऐसा स्वप्न देखा है कि मुझे एक सुंदर गौरवर्ण श्रेष्ठ ब्राह्मण ने ऐसा उपदेश दिया है-॥72॥

चौपाई :

* करहि जाइ तपु सैलकुमारी। नारद कहा सो सत्य बिचारी॥
मातु पितहि पुनि यह मत भावा। तपु सुखप्रद दुख दोष नसावा॥1॥

भावार्थ:-हे पार्वती! नारदजी ने जो कहा है, उसे सत्य समझकर तू जाकर तप कर। फिर यह बात तेरे माता-पिता को भी अच्छी लगी है। तप सुख देने वाला और दुःख-दोष का नाश करने वाला है॥1॥

* तपबल रचइ प्रपंचु बिधाता। तपबल बिष्नु सकल जग त्राता॥
तपबल संभु करहिं संघारा। तपबल सेषु धरइ महिभारा॥2॥

भावार्थ:-तप के बल से ही ब्रह्मा संसार को रचते हैं और तप के बल से ही बिष्णु सारे जगत का पालन करते हैं। तप के बल से ही शम्भु (रुद्र रूप से) जगत का संहार करते हैं और तप के बल से ही शेषजी पृथ्वी का भार धारण करते हैं॥2॥

* तप अधार सब सृष्टि भवानी। करहि जाइ तपु अस जियँ जानी॥

सुनत बचन बिसमित महतारी। सपन सुनायउ गिरिहि हँकारी॥3॥

भावार्थ:-हे भवानी! सारी सृष्टि तप के ही आधार पर है। ऐसा जी में जानकर तू जाकर तप कर। यह बात सुनकर माता को बड़ा अचरज हुआ और उसने हिमवान् को बुलाकर वह स्वप्न सुनाया॥3॥

दोहा :

* मातु पितहि बहुबिधि समुझाई। चलीं उमा तप हित हरषाई॥

प्रिय परिवार पिता अरु माता। भए बिकल मुख आव न बाता॥4॥

भावार्थ:-माता-पिता को बहुत तरह से समझाकर बड़े हर्ष के साथ पार्वतीजी तप करने के लिए चलीं। प्यारे कुटुम्बी, पिता और माता सब व्याकुल हो गए। किसी के मुँह से बात नहीं निकलती॥4॥

दोहा :

*बेदसिरा मुनि आइ तब सबहि कहा समुझाइ।

पारबती महिमा सुनत रहे प्रबोधहि पाइ॥73॥

भावार्थ:-तब वेदशिरा मुनि ने आकर सबको समझाकर कहा। पार्वतीजी की महिमा सुनकर सबको समाधान हो गया॥73॥

चौपाई :

* उर धरि उमा प्रानपति चरना। जाइ बिपिन लागीं तपु करना॥

अति सुकुमार न तनु तप जोगू। पति पद सुमिरि तजेउ सबु भोगू॥1॥

भावार्थ:-प्राणपति (शिवजी) के चरणों को हृदय में धारण करके पार्वतीजी वन में जाकर तप करने लगीं। पार्वतीजी का अत्यन्त सुकुमार

शरीर तप के योग्य नहीं था, तो भी पति के चरणों का स्मरण करके उन्होंने सब भोगों को तज दिया॥1॥

* नित नव चरन उपज अनुरागा। बिसरी देह तपहिं मनु लागा॥
संबत सहस मूल फल खाए। सागु खाइ सत बरष गवाँए॥2॥

भावार्थ:-स्वामी के चरणों में नित्य नया अनुराग उत्पन्न होने लगा और तप में ऐसा मन लगा कि शरीर की सारी सुध बिसर गई। एक हजार वर्ष तक उन्होंने मूल और फल खाए, फिर सौ वर्ष साग खाकर बिताए॥2॥

* कछु दिन भोजनु बारि बतासा। किए कठिन कछु दिन उपबासा॥
बेल पाती महि परइ सुखाई। तीनि सहस संबत सोइ खाई॥3॥

भावार्थ:-कुछ दिन जल और वायु का भोजन किया और फिर कुछ दिन कठोर उपवास किए, जो बेल पत्र सूखकर पृथ्वी पर गिरते थे, तीन हजार वर्ष तक उन्हीं को खाया॥3॥

* पुनि परिहरे सुखानेउ परना। उमहि नामु तब भयउ अपरना॥
देखि उमहि तप खीन सरीरा। ब्रह्मगिरा भै गगन गभीरा॥4॥

भावार्थ:-फिर सूखे पर्ण (पत्ते) भी छोड़ दिए, तभी पार्वती का नाम 'अपर्णा' हुआ। तप से उमा का शरीर क्षीण देखकर आकाश से गंभीर ब्रह्मवाणी हुई-॥4॥

दोहा :

* भयउ मनोरथ सुफल तव सुनु गिरिराजकुमारि।
परिहरु दुसह कलेस सब अब मिलिहहिं त्रिपुरारि॥74॥

भावार्थ:-हे पर्वतराज की कुमारी! सुन, तेरा मनोरथ सफल हुआ। तू अब सारे असह्य क्लेशों को (कठिन तप को) त्याग दे। अब तुझे शिवजी मिलेंगे॥74॥

चौपाई :

* अस तपु काहुँ न कीन्ह भवानी। भए अनेक धीर मुनि ग्यानी॥
अब उर धरहु ब्रह्म बर बानी। सत्य सदा संतत सुचि जानी॥1॥

भावार्थ:-हे भवानी! धीर, मुनि और ज्ञानी बहुत हुए हैं, पर ऐसा (कठोर) तप किसी ने नहीं किया। अब तू इस श्रेष्ठ ब्रह्मा की वाणी को सदा सत्य और निरंतर पवित्र जानकर अपने हृदय में धारण कर॥1॥

* आवै पिता बोलावन जबहीं। हठ परिहरि घर जाएहु तबहीं॥
मिलहिं तुम्हहि जब सप्त रिषीसा। जानेहु तब प्रमान बागीसा॥2॥

भावार्थ:-जब तेरे पिता बुलाने को आवें, तब हठ छोड़कर घर चली जाना और जब तुम्हें सप्तर्षि मिलें तब इस वाणी को ठीक समझना॥2॥

* सुनत गिरा बिधि गगन बखानी। पुलक गात गिरिजा हरषानी॥
उमा चरित सुंदर मैं गावा। सुनहु संभु कर चरित सुहावा॥3॥

भावार्थ:-(इस प्रकार) आकाश से कही हुई ब्रह्मा की वाणी को सुनते ही पार्वतीजी प्रसन्न हो गईं और (हर्ष के मारे) उनका शरीर पुलकित हो गया। (याज्ञवल्क्यजी भरद्वाजजी से बोले कि-) मैंने पार्वती का सुंदर चरित्र सुनाया, अब शिवजी का सुहावना चरित्र सुनो॥3॥

* जब तें सतीं जाइ तनु त्यागा। तब तें सिव मन भयउ बिरागा॥
जपहिं सदा रघुनायक नामा। जहँ तहँ सुनहिं राम गुन ग्रामा॥4॥

भावार्थ:-जब से सती ने जाकर शरीर त्याग किया, तब से शिवजी के मन में वैराग्य हो गया। वे सदा श्री रघुनाथजी का नाम जपने लगे और जहाँ-तहाँ श्री रामचन्द्रजी के गुणों की कथाएँ सुनने लगे॥4॥

दोहा :

* चिदानंद सुखधाम सिव बिगत मोह मद काम।

बिचरहिं महि धरि हृदयँ हरि सकल लोक अभिराम॥75॥

भावार्थ:-चिदानन्द, सुख के धाम, मोह, मद और काम से रहित शिवजी सम्पूर्ण लोकों को आनंद देने वाले भगवान श्री हरि (श्री रामचन्द्रजी) को हृदय में धारण कर (भगवान के ध्यान में मस्त हुए) पृथ्वी पर विचरने लगे॥75॥

चौपाई :

* कतहुँ मुनिन्ह उपदेसहिं ग्याना। कतहुँ राम गुन करहिं बखाना॥

जदपि अकाम तदपि भगवाना। भगत बिरह दुख दुखित सुजाना॥1॥

भावार्थ:-वे कहीं मुनियों को ज्ञान का उपदेश करते और कहीं श्री रामचन्द्रजी के गुणों का वर्णन करते थे। यद्यपि सुजान शिवजी निष्काम हैं, तो भी वे भगवान अपने भक्त (सती) के वियोग के दुःख से दुःखी हैं॥1॥

* एहि बिधि गयउ कालु बहु बीती। नित नै होइ राम पद प्रीती॥

नेमु प्रेमु संकर कर देखा। अबिचल हृदयँ भगति कै रेखा॥2॥

भावार्थ:-इस प्रकार बहुत समय बीत गया। श्री रामचन्द्रजी के चरणों में नित नई प्रीति हो रही है। शिवजी के (कठोर) नियम, (अनन्य) प्रेम और उनके हृदय में भक्ति की अटल टेक को (जब श्री रामचन्द्रजी ने) देखा॥2॥

* प्रगटे रामु कृतग्य कृपाला। रूप सील निधि तेज बिसाला॥

बहु प्रकार संकरहि सराहा। तुम्ह बिनु अस ब्रतु को निरबाहा॥3॥

भावार्थ:-तब कृतज्ञ (उपकार मानने वाले), कृपालु, रूप और शील के भण्डार, महान्‌ तेजपुंज भगवान श्री रामचन्द्रजी प्रकट हुए। उन्होंने बहुत तरह से शिवजी की सराहना की और कहा कि आपके बिना ऐसा (कठिन) व्रत कौन निबाह सकता है॥3॥

* बहुबिधि राम सिवहि समुझावा। पारबती कर जन्मु सुनावा॥
अति पुनीत गिरिजा कै करनी। बिस्तर सहित कृपानिधि बरनी॥4॥

भावार्थ:-श्री रामचन्द्रजी ने बहुत प्रकार से शिवजी को समझाया और पार्वतीजी का जन्म सुनाया। कृपानिधान श्री रामचन्द्रजी ने विस्तारपूर्वक पार्वतीजी की अत्यन्त पवित्र करनी का वर्णन किया॥4॥

श्री रामजी का शिवजी से विवाह के लिए अनुरोध

दोहा :

* अब बिनती मम सुनहु सिव जौं मो पर निज नेहु।
जाइ बिबाहहु सैलजहि यह मोहि मागें देहु॥76॥

भावार्थ:-(फिर उन्होंने शिवजी से कहा-) हे शिवजी! यदि मुझ पर आपका स्नेह है, तो अब आप मेरी विनती सुनिए। मुझे यह माँगें दीजिए कि आप जाकर पार्वती के साथ विवाह कर लें॥76॥

चौपाई :

* कह सिव जदपि उचित अस नाहीं। नाथ बचन पुनि मेटि न जाहीं॥
सिर धरि आयसु करिअ तुम्हारा। परम धरमु यह नाथ हमारा॥1॥

भावार्थ:-शिवजी ने कहा- यद्यपि ऐसा उचित नहीं है, परन्तु स्वामी की बात भी मेटी नहीं जा सकती। हे नाथ! मेरा यही परम धर्म है कि मैं आपकी आज्ञा को सिर पर रखकर उसका पालन करूँ॥1॥

* मातु पिता गुर प्रभु कै बानी। बिनहिं बिचार करिअ सुभ जानी॥

तुम्ह सब भाँति परम हितकारी। अग्या सिर पर नाथ तुम्हारी॥2॥

भावार्थ:-माता, पिता, गुरु और स्वामी की बात को बिना ही विचारे शुभ समझकर करना (मानना) चाहिए। फिर आप तो सब प्रकार से मेरे परम हितकारी हैं। हे नाथ! आपकी आज्ञा मेरे सिर पर है॥2॥

* प्रभु तोषेउ सुनि संकर बचना। भक्ति बिबेक धर्म जुत रचना॥

कह प्रभु हर तुम्हार पन रहेऊ। अब उर राखेहु जो हम कहेऊ॥3॥

भावार्थ:-शिवजी की भक्ति, ज्ञान और धर्म से युक्त वचन रचना सुनकर प्रभु रामचन्द्रजी संतुष्ट हो गए। प्रभु ने कहा- हे हर! आपकी प्रतिज्ञा पूरी हो गई। अब हमने जो कहा है, उसे हृदय में रखना॥3॥

* अंतरधान भए अस भाषी। संकर सोइ मूरति उर राखी॥

तबहिं सप्तरिषि सिव पहिं आए। बोले प्रभु अति बचन सुहाए॥4॥

भावार्थ:-इस प्रकार कहकर श्री रामचन्द्रजी अन्तर्धान हो गए। शिवजी ने उनकी वह मूर्ति अपने हृदय में रख ली। उसी समय सप्तर्षि शिवजी के पास आए। प्रभु महादेवजी ने उनसे अत्यन्त सुहावने वचन कहे-॥4॥

दोहा :

* पारबती पहिं जाइ तुम्ह प्रेम परिच्छा लेहु।

गिरिहि प्रेरि पठएहु भवन दूरि करेहु संदेहु॥77॥

भावार्थ:-आप लोग पार्वती के पास जाकर उनके प्रेम की परीक्षा लीजिए और हिमाचल को कहकर (उन्हें पार्वती को लिवा लाने के लिए भेजिए तथा) पार्वती को घर भिजवाइए और उनके संदेह को दूर कीजिए॥77॥

कामदेव का देवकार्य के लिए जाना और भस्म होना

दोहा :

* सुरन्ह कही निज बिपति सब सुनि मन कीन्ह बिचार।

संभु बिरोध न कुसल मोहि बिहसि कहेउ अस मार॥83॥

भावार्थ:-देवताओं ने कामदेव से अपनी सारी विपत्ति कही। सुनकर कामदेव ने मन में विचार किया और हँसकर देवताओं से यों कहा कि शिवजी के साथ विरोध करने में मेरी कुशल नहीं है॥83॥

चौपाई :

*तदपि करब मैं काजु तुम्हारा। श्रुति कह परम धरम उपकारा॥
पर हित लागि तजइ जो देही। संतत संत प्रसंसहिं तेही॥1॥

भावार्थ:-तथापि मैं तुम्हारा काम तो करूँगा, क्योंकि वेद दूसरे के उपकार को परम धर्म कहते हैं। जो दूसरे के हित के लिए अपना शरीर त्याग देता है, संत सदा उसकी बड़ाई करते हैं॥1॥

* अस कहि चलेउ सबहि सिरु नाई। सुमन धनुष कर सहित सहाई॥
चलत मार अस हृदयँ बिचारा। सिव बिरोध ध्रुब मरनु हमारा॥2॥

भावार्थ:-यों कह और सबको सिर नवाकर कामदेव अपने पुष्प के धनुष को हाथ में लेकर (वसन्तादि) सहायकों के साथ चला। चलते समय कामदेव ने हृदय में ऐसा विचार किया कि शिवजी के साथ विरोध करने से मेरा मरण निश्चित है॥2॥

* तब आपन प्रभाउ बिस्तारा। निज बस कीन्ह सकल संसारा॥
कोपेउ जबहिं बारिचरकेतू। छन महुँ मिटे सकल श्रुति सेतू॥3॥

भावार्थ:-तब उसने अपना प्रभाव फैलाया और समस्त संसार को अपने वश में कर लिया। जिस समय उस मछली के चिह्न की ध्वजा वाले कामदेव ने कोप किया, उस समय क्षणभर में ही वेदों की सारी मर्यादा मिट गई॥3॥

* ब्रह्मचर्ज ब्रत संजम नाना। धीरज धरम ग्यान बिग्याना॥
सदाचार जप जोग बिरागा। सभय बिबेक कटकु सबु भागा॥4॥

भावार्थ:-ब्रह्मचर्य, नियम, नाना प्रकार के संयम, धीरज, धर्म, ज्ञान, विज्ञान, सदाचार, जप, योग, वैराग्य आदि विवेक की सारी सेना डरकर भाग गई॥4॥

छंद :

* भागेउ बिबेकु सहाय सहित सो सुभट संजुग महि मुरे।
सदग्रंथ पर्बत कंदरन्हि महुँ जाइ तेहि अवसर दुरे॥
होनिहार का करतार को रखवार जग खरभरु परा।
दुइ माथ केहि रतिनाथ जेहि कहुँ कोपि कर धनु सरु धरा॥

भावार्थ:-विवेक अपने सहायकों सहित भाग गया, उसके योद्धा रणभूमि से पीठ दिखा गए। उस समय वे सब सद्ग्रन्थ रूपी पर्वत की कन्दराओं में जा छिपे (अर्थात ज्ञान, वैराग्य, संयम, नियम, सदाचारादि ग्रंथों में ही लिखे रह गए, उनका आचरण छूट गया)। सारे जगत् में खलबली मच गई (और सब कहने लगे) हे विधाता! अब क्या होने वाला है? हमारी रक्षा कौन करेगा? ऐसा दो सिर वाला कौन है, जिसके लिए रति के पति कामदेव ने कोप करके हाथ में धनुष-बाण उठाया है?

दोहा :

*जे सजीव जग अचर चर नारि पुरुष अस नाम।
ते निज निज मरजाद तजि भए सकल बस काम॥84॥

भावार्थ:-जगत में स्त्री-पुरुष संज्ञा वाले जितने चर-अचर प्राणी थे, वे सब अपनी-अपनी मर्यादा छोड़कर काम के वश में हो गए॥84॥

चौपाई :

* सब के हृदयँ मदन अभिलाषा। लता निहारि नवहिं तरु साखा॥
नदीं उमगि अंबुधि कहुँ धाईं। संगम करहिं तलाव तलाईं॥1॥

भावार्थ:-सबके हृदय में काम की इच्छा हो गई। लताओं (बेलों) को देखकर वृक्षों की डालियाँ झुकने लगीं। नदियाँ उमड़-उमड़कर समुद्र की ओर दौड़ीं और ताल-तलैयाँ भी आपस में संगम करने (मिलने-जुलने) लगीं॥1॥

* जहँ असि दसा जड़न्ह कै बरनी। को कहि सकइ सचेतन करनी॥
पसु पच्छी नभ जल थल चारी। भए काम बस समय बिसारी॥2॥

भावार्थ:-जब जड़ (वृक्ष, नदी आदि) की यह दशा कही गई, तब चेतन जीवों की करनी कौन कह सकता है? आकाश, जल और पृथ्वी पर विचरने वाले सारे पशु-पक्षी (अपने संयोग का) समय भुलाकर काम के वश में हो गए॥2॥

* मदन अंध ब्याकुल सब लोका। निसि दिनु नहिं अवलोकहिं कोका॥
देव दनुज नर किंनर ब्याला। प्रेत पिसाच भूत बेताला॥3॥

भावार्थ:-सब लोक कामान्ध होकर व्याकुल हो गए। चकवा-चकवी रात-दिन नहीं देखते। देव, दैत्य, मनुष्य, किन्नर, सर्प, प्रेत, पिशाच, भूत, बेताल-॥3॥

* इन्ह कै दसा न कहेउँ बखानी। सदा काम के चेरे जानी॥
सिद्ध बिरक्त महामुनि जोगी। तेपि कामबस भए बियोगी॥4॥

भावार्थ:-ये तो सदा ही काम के गुलाम हैं, यह समझकर मैंने इनकी दशा का वर्णन नहीं किया। सिद्ध, विरक्त, महामुनि और महान् योगी भी काम के वश होकर योगरहित या स्त्री के विरही हो गए॥4॥

छंद :

* भए कामबस जोगीस तापस पावँरन्हि की को कहै।
देखहिं चराचर नारिमय जे ब्रह्ममय देखत रहे॥
अबला बिलोकहिं पुरुषमय जगु पुरुष सब अबलामयं।

दुइ दंड भरि ब्रह्मांड भीतर कामकृत कौतुक अयं॥

भावार्थ:-जब योगीश्वर और तपस्वी भी काम के वश हो गए, तब पामर मनुष्यों की कौन कहे? जो समस्त चराचर जगत को ब्रह्ममय देखते थे, वे अब उसे स्त्रीमय देखने लगे। स्त्रियाँ सारे संसार को पुरुषमय देखने लगीं और पुरुष उसे स्त्रीमय देखने लगे। दो घड़ी तक सारे ब्राह्मण्ड के अंदर कामदेव का रचा हुआ यह कौतुक (तमाशा) रहा।

सोरठा :

* धरी न काहूँ धीर सब के मन मनसिज हरे।
जे राखे रघुबीर ते उबरे तेहि काल महुँ॥85॥

भावार्थ:-किसी ने भी हृदय में धैर्य नहीं धारण किया, कामदेव ने सबके मन हर लिए। श्री रघुनाथजी ने जिनकी रक्षा की, केवल वे ही उस समय बचे रहे॥85॥

चौपाई :

*उभय घरी अस कौतुक भयऊ। जौ लगि कामु संभु पहिं गयऊ॥
सिवहि बिलोकि ससंकेउ मारू। भयउ जथाथिति सबु संसारू॥1॥

भावार्थ:-दो घड़ी तक ऐसा तमाशा हुआ, जब तक कामदेव शिवजी के पास पहुँच गया। शिवजी को देखकर कामदेव डर गया, तब सारा संसार फिर जैसा-का तैसा स्थिर हो गया।

*भए तुरत सब जीव सुखारे। जिमि मद उतरि गएँ मतवारे॥
रुद्रहि देखि मदन भय माना। दुराधरष दुर्गम भगवाना॥2॥

भावार्थ:-तुरंत ही सब जीव वैसे ही सुखी हो गए, जैसे मतवाले (नशा पिए हुए) लोग मद (नशा) उतर जाने पर सुखी होते हैं। दुराधर्ष (जिनको पराजित करना अत्यन्त ही कठिन है) और दुर्गम (जिनका पार पाना कठिन है) भगवान (सम्पूर्ण ऐश्वर्य, धर्म, यश, श्री, ज्ञान और

वैराग्य रूप छह ईश्वरीय गुणों से युक्त) रुद्र (महाभयंकर) शिवजी को देखकर कामदेव भयभीत हो गया॥2॥

* फिरत लाज कछु करि नहिं जाई। मरनु ठानि मन रचेसि उपाई॥

प्रगटेसि तुरत रुचिर रितुराजा। कुसुमित नव तरु राजि बिराजा॥3॥

भावार्थ:-लौट जाने में लज्जा मालूम होती है और करते कुछ बनता नहीं। आखिर मन में मरने का निश्चय करके उसने उपाय रचा। तुरंत ही सुंदर ऋतुराज वसन्त को प्रकट किया। फूले हुए नए-नए वृक्षों की कतारें सुशोभित हो गईं॥3॥

* बन उपबन बापिका तड़ागा। परम सुभग सब दिसा बिभागा॥

जहँ तहँ जनु उमगत अनुरागा। देखि मुएहुँ मन मनसिज जागा॥4॥

भावार्थ:-वन-उपवन, बावली-तालाब और सब दिशाओं के विभाग परम सुंदर हो गए। जहाँ-तहाँ मानो प्रेम उमड़ रहा है, जिसे देखकर मरे मनों में भी कामदेव जाग उठा॥4॥

छंद :

* जागइ मनोभव मुएहुँ मन बन सुभगता न परै कही।
सीतल सुगंध सुमंद मारुत मदन अनल सखा सही॥
बिकसे सरन्हि बहु कंज गुंजत पुंज मंजुल मधुकरा।
कलहंस पिक सुक सरस रव करि गान नाचहिं अपछरा

भावार्थ:-मरे हुए मन में भी कामदेव जागने लगा, वन की सुंदरता कही नहीं जा सकती। कामरूपी अग्नि का सच्चा मित्र शीतल-मन्द-सुगंधित पवन चलने लगा। सरोवरों में अनेकों कमल खिल गए, जिन पर सुंदर भौंरों के समूह गुंजार करने लगे। राजहंस, कोयल और तोते रसीली बोली बोलने लगे और अप्सराएँ गा-गाकर नाचने लगीं॥

दोहा :

* सकल कला करि कोटि बिधि हारेउ सेन समेत।
चली न अचल समाधि सिव कोपेउ हृदयनिकेत॥86॥

भावार्थ:-कामदेव अपनी सेना समेत करोड़ों प्रकार की सब कलाएँ (उपाए) करके हार गया, पर शिवजी की अचल समाधि न डिगी। तब कामदेव क्रोधित हो उठा॥86॥

चौपाई :

* देखि रसाल बिटप बर साखा। तेहि पर चढ़ेउ मदनु मन माखा॥
सुमन चाप निज सर संधाने। अति रिस ताकि श्रवन लगि ताने॥1॥

भावार्थ:-आम के वृक्ष की एक सुंदर डाली देखकर मन में क्रोध से भरा हुआ कामदेव उस पर चढ़ गया। उसने पुष्प धनुष पर अपने (पाँचों) बाण चढ़ाए और अत्यन्त क्रोध से (लक्ष्य की ओर) ताककर उन्हें कान तक तान लिया॥1॥

* छाड़े बिषम बिसिख उर लागे। छूटि समाधि संभु तब जागे॥
भयउ ईस मन छोभु बिसेषी। नयन उघारि सकल दिसि देखी॥2॥

भावार्थ:-कामदेव ने तीक्ष्ण पाँच बाण छोड़े, जो शिवजी के हृदय में लगे। तब उनकी समाधि टूट गई और वे जाग गए। ईश्वर (शिवजी) के मन में बहुत क्षोभ हुआ। उन्होंने आँखें खोलकर सब ओर देखा॥2॥

* सौरभ पल्लव मदनु बिलोका। भयउ कोपु कंपेउ त्रैलोका॥
तब सिवँ तीसर नयन उघारा। चितवन कामु भयउ जरि छारा॥3॥

भावार्थ:-जब आम के पत्तों में (छिपे हुए) कामदेव को देखा तो उन्हें बड़ा क्रोध हुआ, जिससे तीनों लोक काँप उठे। तब शिवजी ने तीसरा नेत्र खोला, उनको देखते ही कामदेव जलकर भस्म हो गया॥3॥

* हाहाकार भयउ जग भारी। डरपे सुर भए असुर सुखारी॥

समुझि कामसुख सोचहिं भोगी। भए अकंटक साधक जोगी॥4॥

भावार्थ:-जगत में बड़ा हाहाकर मच गया। देवता डर गए, दैत्य सुखी हुए। भोगी लोग कामसुख को याद करके चिन्ता करने लगे और साधक योगी निष्कंटक हो गए॥4॥

छंद :

* जोगी अकंटक भए पति गति सुनत रति मुरुछित भई।
रोदति बदति बहु भाँति करुना करति संकर पहिं गई॥
अति प्रेम करि बिनती बिबिध बिधि जोरि कर सन्मुख रही।
प्रभु आसुतोष कृपाल सिव अबला निरखि बोले सही॥

भावार्थ:-योगी निष्कंटक हो गए, कामदेव की स्त्री रति अपने पति की यह दशा सुनते ही मूर्च्छित हो गई। रोती-चिल्लाती और भाँति-भाँति से करुणा करती हुई वह शिवजी के पास गई। अत्यन्त प्रेम के साथ अनेकों प्रकार से विनती करके हाथ जोड़कर सामने खड़ी हो गई। शीघ्र प्रसन्न होने वाले कृपालु शिवजी अबला (असहाय स्त्री) को देखकर सुंदर (उसको सान्त्वना देने वाले) वचन बोले।

रति को वरदान

दोहा :

* अब तें रति तव नाथ कर होइहि नामु अनंगु।
बिनु बपु ब्यापिहि सबहि पुनि सुनु निज मिलन प्रसंगु॥87॥

भावार्थ:-हे रति! अब से तेरे स्वामी का नाम अनंग होगा। वह बिना ही शरीर के सबको व्यापेगा। अब तू अपने पति से मिलने की बात सुन॥87॥

चौपाई :

* जब जदुबंस कृष्न अवतारा। होइहि हरन महा महिभारा॥
कृष्न तनय होइहि पति तोरा। बचनु अन्यथा होइ न मोरा॥1॥

भावार्थ:-जब पृथ्वी के बड़े भारी भार को उतारने के लिए यदुवंश में श्री कृष्ण का अवतार होगा, तब तेरा पति उनके पुत्र (प्रद्युम्न) के रूप में उत्पन्न होगा। मेरा यह वचन अन्यथा नहीं होगा॥1॥

* रति गवनी सुनि संकर बानी। कथा अपर अब कहउँ बखानी॥
देवन्ह समाचार सब पाए। ब्रह्मादिक बैकुंठ सिधाए॥2॥

भावार्थ:-शिवजी के वचन सुनकर रति चली गई। अब दूसरी कथा बखानकर (विस्तार से) कहता हूँ। ब्रह्मादि देवताओं ने ये सब समाचार सुने तो वे वैकुण्ठ को चले॥2॥

* सब सुर बिष्नु बिरंचि समेता। गए जहाँ सिव कृपानिकेता॥
पृथक-पृथक तिन्ह कीन्हि प्रसंसा। भए प्रसन्न चंद्र अवतंसा॥3॥

भावार्थ:-फिर वहाँ से विष्णु और ब्रह्मा सहित सब देवता वहाँ गए, जहाँ कृपा के धाम शिवजी थे। उन सबने शिवजी की अलग-अलग स्तुति की, तब शशिभूषण शिवजी प्रसन्न हो गए॥3॥

* बोले कृपासिंधु बृषकेतू। कहहु अमर आए केहि हेतू॥
कह बिधि तुम्ह प्रभु अंतरजामी। तदपि भगति बस बिनवउँ स्वामी॥4॥

भावार्थ:-कृपा के समुद्र शिवजी बोले- हे देवताओं! कहिए, आप किसलिए आए हैं? ब्रह्माजी ने कहा- हे प्रभो! आप अन्तर्यामी हैं, तथापि हे स्वामी! भक्तिवश मैं आपसे विनती करता हूँ॥4॥

देवताओं का शिवजी से ब्याह के लिए प्रार्थना करना, सप्तर्षियों का पार्वती के पास जाना

दोहा :

*सकल सुरन्ह के हृदयँ अस संकर परम उछाहु।
निज नयनन्हि देखा चहहिं नाथ तुम्हार बिबाहु॥88॥

भावार्थ:-हे शंकर! सब देवताओं के मन में ऐसा परम उत्साह है कि हे नाथ! वे अपनी आँखों से आपका विवाह देखना चाहते हैं॥88॥

चौपाई :

* यह उत्सव देखिअ भरि लोचन। सोइ कछु करहु मदन मद मोचन॥
कामु जारि रति कहुँ बरु दीन्हा। कृपासिन्धु यह अति भल कीन्हा॥1॥

भावार्थ:-हे कामदेव के मद को चूर करने वाले! आप ऐसा कुछ कीजिए, जिससे सब लोग इस उत्सव को नेत्र भरकर देखें। हे कृपा के सागर! कामदेव को भस्म करके आपने रति को जो वरदान दिया, सो बहुत ही अच्छा किया॥1॥

* सासति करि पुनि करहिं पसाऊ। नाथ प्रभुन्ह कर सहज सुभाऊ॥
पारबतीं तपु कीन्ह अपारा। करहु तासु अब अंगीकारा॥2॥

भावार्थ:-हे नाथ! श्रेष्ठ स्वामियों का यह सहज स्वभाव ही है कि वे पहले दण्ड देकर फिर कृपा किया करते हैं। पार्वती ने अपार तप किया है, अब उन्हें अंगीकार कीजिए॥2॥

* सुनि बिधि बिनय समुझि प्रभु बानी। ऐसेइ होउ कहा सुखु मानी॥
तब देवन्ह दुंदुभीं बजाईं। बरषि सुमन जय जय सुर साईं॥3॥

भावार्थ:-ब्रह्माजी की प्रार्थना सुनकर और प्रभु श्री रामचन्द्रजी के वचनों को याद करके शिवजी ने प्रसन्नतापूर्वक कहा- 'ऐसा ही हो।' तब देवताओं ने नगाड़े बजाए और फूलों की वर्षा करके 'जय हो! देवताओं के स्वामी जय हो' ऐसा कहने लगे॥3॥

* अवसरु जानि सप्तरिषि आए। तुरतहिं बिधि गिरिभवन पठाए॥
प्रथम गए जहँ रहीं भवानी। बोले मधुर बचन छल सानी॥4॥

भावार्थ:-उचित अवसर जानकर सप्तर्षि आए और ब्रह्माजी ने तुरंत ही उन्हें हिमाचल के घर भेज दिया। वे पहले वहाँ गए जहाँ पार्वतीजी थीं और उनसे छल से भरे मीठे (विनोदयुक्त, आनंद पहुँचाने वाले) वचन बोले-॥4॥

दोहा :

* कहा हमार न सुनेहु तब नारद कें उपदेस॥
अब भा झूठ तुम्हार पन जारेउ कामु महेस॥89॥

भावार्थ:-नारदजी के उपदेश से तुमने उस समय हमारी बात नहीं सुनी। अब तो तुम्हारा प्रण झूठा हो गया, क्योंकि महादेवजी ने काम को ही भस्म कर डाला॥89॥

मासपारायण, तीसरा विश्राम

चौपाई :

* सुनि बोलीं मुसुकाइ भवानी। उचित कहेहु मुनिबर बिग्यानी॥
तुम्हरें जान कामु अब जारा। अब लगि संभु रहे सबिकारा॥1॥

भावार्थ:-यह सुनकर पार्वतीजी मुस्कुराकर बोलीं- हे विज्ञानी मुनिवरों! आपने उचित ही कहा। आपकी समझ में शिवजी ने कामदेव को अब जलाया है, अब तक तो वे विकारयुक्त (कामी) ही रहे!॥1॥

* हमरें जान सदासिव जोगी। अज अनवद्य अकाम अभोगी॥
जौं मैं सिव सेये अस जानी। प्रीति समेत कर्म मन बानी॥2॥

भावार्थ:-किन्तु हमारी समझ से तो शिवजी सदा से ही योगी, अजन्मे, अनिन्द्य, कामरहित और भोगहीन हैं और यदि मैंने शिवजी को ऐसा समझकर ही मन, वचन और कर्म से प्रेम सहित उनकी सेवा की है॥2॥

* तौ हमार पन सुनहु मुनीसा। करिहहिं सत्य कृपानिधि ईसा॥

तुम्ह जो कहा हर जारेउ मारा। सोइ अति बड़ अबिबेकु तुम्हारा॥3॥

भावार्थ:-तो हे मुनीश्वरो! सुनिए, वे कृपानिधान भगवान मेरी प्रतिज्ञा को सत्य करेंगे। आपने जो यह कहा कि शिवजी ने कामदेव को भस्म कर दिया, यही आपका बड़ा भारी अविवेक है॥3॥

* तात अनल कर सहज सुभाऊ। हिम तेहि निकट जाइ नहिं काऊ॥

गएँ समीप सो अवसि नसाई। असि मन्मथ महेस की नाई॥4॥

भावार्थ:-हे तात! अग्नि का तो यह सहज स्वभाव ही है कि पाला उसके समीप कभी जा ही नहीं सकता और जाने पर वह अवश्य नष्ट हो जाएगा। महादेवजी और कामदेव के संबंध में भी यही न्याय (बात) समझना चाहिए॥4॥

दोहा :

* हियँ हरषे मुनि बचन सुनि देखि प्रीति बिस्वास।

चले भवानिहि नाइ सिर गए हिमाचल पास॥90॥

भावार्थ:-पार्वती के वचन सुनकर और उनका प्रेम तथा विश्वास देखकर मुनि हृदय में बड़े प्रसन्न हुए। वे भवानी को सिर नवाकर चल दिए और हिमाचल के पास पहुँचे॥90॥

चौपाई :

* सबु प्रसंगु गिरिपतिहि सुनावा। मदन दहन सुनि अति दुखु पावा॥

बहुरि कहेउ रति कर बरदाना। सुनि हिमवंत बहुत सुखु माना॥1॥

भावार्थ:-उन्होंने पर्वतराज हिमाचल को सब हाल सुनाया। कामदेव का भस्म होना सुनकर हिमाचल बहुत दुःखी हुए। फिर मुनियों ने रति के वरदान की बात कही, उसे सुनकर हिमवान् ने बहुत सुख माना॥1॥

* हृदयँ बिचारि संभु प्रभुताई। सादर मुनिबर लिए बोलाई।

सुदिनु सुनखतु सुघरी सोचाई। बेगि बेदबिधि लगन धराई॥2॥

भावार्थ:-शिवजी के प्रभाव को मन में विचार कर हिमाचल ने श्रेष्ठ मुनियों को आदरपूर्वक बुला लिया और उनसे शुभ दिन, शुभ नक्षत्र और शुभ घड़ी शोधवाकर वेद की विधि के अनुसार शीघ्र ही लग्न निश्चय कराकर लिखवा लिया॥2॥

* पत्री सप्तरिषिन्ह सोइ दीन्ही। गहि पद बिनय हिमाचल कीन्ही॥

जाइ बिधिहि तिन्ह दीन्हि सो पाती। बाचत प्रीति न हृदयँ समाती॥3॥

भावार्थ:-फिर हिमाचल ने वह लग्नपत्रिका सप्तर्षियों को दे दी और चरण पकड़कर उनकी विनती की। उन्होंने जाकर वह लग्न पत्रिका ब्रह्माजी को दी। उसको पढ़ते समय उनके हृदय में प्रेम समाता न था॥3॥

* लगन बाचि अज सबहि सुनाई। हरषे मुनि सब सुर समुदाई॥

सुमन बृष्टि नभ बाजन बाजे। मंगल कलस दसहुँ दिसि साजे॥4॥

भावार्थ:-ब्रह्माजी ने लग्न पढ़कर सबको सुनाया, उसे सुनकर सब मुनि और देवताओं का सारा समाज हर्षित हो गया। आकाश से फूलों की वर्षा होने लगी, बाजे बजने लगे और दसों दिशाओं में मंगल कलश सजा दिए गए॥4॥

शिवजी की विचित्र बारात और विवाह की तैयारी

दोहा :

* लगे सँवारन सकल सुर बाहन बिबिध बिमान।

होहिं सगुन मंगल सुभद करहिं अपछरा गान॥91॥

भावार्थ:-सब देवता अपने भाँति-भाँति के वाहन और विमान सजाने लगे, कल्याणप्रद मंगल शकुन होने लगे और अप्सराएँ गाने लगीं॥91॥

चौपाई :

* सिवहि संभु गन करहिं सिंगारा। जटा मुकुट अहि मौरु सँवारा॥

कुंडल कंकन पहिरे ब्याला। तन बिभूति पट केहरि छाला॥1॥

भावार्थ:-शिवजी के गण शिवजी का श्रृंगार करने लगे। जटाओं का मुकुट बनाकर उस पर साँपों का मौर सजाया गया। शिवजी ने साँपों के ही कुंडल और कंकण पहने, शरीर पर विभूति रमायी और वस्त्र की जगह बाघम्बर लपेट लिया॥1॥

* ससि ललाट सुंदर सिर गंगा। नयन तीनि उपबीत भुजंगा॥
गरल कंठ उर नर सिर माला। असिव बेष सिवधाम कृपाला॥2॥

भावार्थ:-शिवजी के सुंदर मस्तक पर चन्द्रमा, सिर पर गंगाजी, तीन नेत्र, साँपों का जनेऊ, गले में विष और छाती पर नरमुण्डों की माला थी। इस प्रकार उनका वेष अशुभ होने पर भी वे कल्याण के धाम और कृपालु हैं॥2॥

* कर त्रिसूल अरु डमरु बिराजा। चले बसहँ चढ़ि बाजहिं बाजा॥
देखि सिवहि सुरत्रिय मुसुकाहीं। बर लायक दुलहिनि जग नाहीं॥3॥

भावार्थ:-एक हाथ में त्रिशूल और दूसरे में डमरू सुशोभित है। शिवजी बैल पर चढ़कर चले। बाजे बज रहे हैं। शिवजी को देखकर देवांगनाएँ मुस्कुरा रही हैं (और कहती हैं कि) इस वर के योग्य दुलहिन संसार में नहीं मिलेगी॥3॥

* बिष्नु बिरंचि आदि सुरब्राता। चढ़ि चढ़ि बाहन चले बराता॥
सुर समाज सब भाँति अनूपा। नहिं बरात दूलह अनुरूपा॥4॥

भावार्थ:-विष्णु और ब्रह्मा आदि देवताओं के समूह अपने-अपने वाहनों (सवारियों) पर चढ़कर बारात में चले। देवताओं का समाज सब प्रकार से अनुपम (परम सुंदर) था, पर दूल्हे के योग्य बारात न थी॥4॥

दोहा :

* बिष्नु कहा अस बिहसि तब बोलि सकल दिसिराज।

बिलग बिलग होइ चलहु सब निज निज सहित समाज॥92॥
भावार्थ:-तब विष्णु भगवान ने सब दिक्पालों को बुलाकर हँसकर ऐसा कहा- सब लोग अपने-अपने दल समेत अलग-अलग होकर चलो॥92॥

चौपाई :

* बर अनुहारि बरात न भाई। हँसी करैहहु पर पुर जाई॥
बिष्नु बचन सुनि सुर मुसुकाने। निज निज सेन सहित बिलगाने॥1॥
भावार्थ:-हे भाई! हम लोगों की यह बारात वर के योग्य नहीं है। क्या पराए नगर में जाकर हँसी कराओगे? विष्णु भगवान की बात सुनकर देवता मुस्कुराए और वे अपनी-अपनी सेना सहित अलग हो गए॥1॥

* मनहीं मन महेसु मुसुकाहीं। हरि के बिंग्य बचन नहिं जाहीं॥
अति प्रिय बचन सुनत प्रिय केरे। भृंगिहि प्रेरि सकल गन टेरे॥2॥
भावार्थ:-महादेवजी (यह देखकर) मन-ही-मन मुस्कुराते हैं कि विष्णु भगवान के व्यंग्य-वचन (दिल्लगी) नहीं छूटते! अपने प्यारे (विष्णु भगवान) के इन अति प्रिय वचनों को सुनकर शिवजी ने भी भृंगी को भेजकर अपने सब गणों को बुलवा लिया॥2॥

* सिव अनुसासन सुनि सब आए। प्रभु पद जलज सीस तिन्ह नाए॥
नाना बाहन नाना बेषा। बिहसे सिव समाज निज देखा॥3॥
भावार्थ:-शिवजी की आज्ञा सुनते ही सब चले आए और उन्होंने स्वामी के चरण कमलों में सिर नवाया। तरह-तरह की सवारियों और तरह-तरह के वेष वाले अपने समाज को देखकर शिवजी हँसे॥3॥

* कोउ मुख हीन बिपुल मुख काहू। बिनु पद कर कोउ बहु पद बाहू॥
बिपुल नयन कोउ नयन बिहीना। रिष्टपुष्ट कोउ अति तनखीना॥4॥
भावार्थ:-कोई बिना मुख का है, किसी के बहुत से मुख हैं, कोई बिना हाथ-पैर का है तो किसी के कई हाथ-पैर हैं। किसी के बहुत आँखें हैं तो

किसी के एक भी आँख नहीं है। कोई बहुत मोटा-ताजा है, तो कोई बहुत ही दुबला-पतला है॥4॥

छंद :

* तन कीन कोउ अति पीन पावन कोउ अपावन गति धरें।
भूषन कराल कपाल कर सब सद्य सोनित तन भरें॥
खर स्वान सुअर सृकाल मुख गन बेष अगनित को गनै।
बहु जिनस प्रेत पिसाच जोगि जमात बरनत नहिं बनै॥

भावार्थ:-कोई बहुत दुबला, कोई बहुत मोटा, कोई पवित्र और कोई अपवित्र वेष धारण किए हुए है। भयंकर गहने पहने हाथ में कपाल लिए हैं और सब के सब शरीर में ताजा खून लपेटे हुए हैं। गधे, कुत्ते, सूअर और सियार के से उनके मुख हैं। गणों के अनगिनत वेषों को कौन गिने? बहुत प्रकार के प्रेत, पिशाच और योगिनियों की जमाते हैं। उनका वर्णन करते नहीं बनता।

सोरठा :

* नाचह�

शिवजी की विचित्र बारात और विवाह की तैयारी

दोहा :

* लगे सँवारन सकल सुर बाहन बिबिध बिमान।
होहिं सगुन मंगल सुभद करहिं अपछरा गान॥91॥

भावार्थ:-सब देवता अपने भाँति-भाँति के वाहन और विमान सजाने लगे, कल्याणप्रद मंगल शकुन होने लगे और अप्सराएँ गाने लगीं॥91॥

चौपाई :

* सिवहि संभु गन करहिं सिंगारा। जटा मुकुट अहि मौरु सँवारा॥
कुंडल कंकन पहिरे ब्याला। तन बिभूति पट केहरि छाला॥1॥

भावार्थ:-शिवजी के गण शिवजी का श्रृंगार करने लगे। जटाओं का मुकुट बनाकर उस पर साँपों का मौर सजाया गया। शिवजी ने साँपों के ही कुंडल और कंकण पहने, शरीर पर विभूति रमायी और वस्त्र की जगह बाघम्बर लपेट लिया॥1॥

* ससि ललाट सुंदर सिर गंगा। नयन तीनि उपबीत भुजंगा॥
गरल कंठ उर नर सिर माला। असिव बेष सिवधाम कृपाला॥2॥

भावार्थ:-शिवजी के सुंदर मस्तक पर चन्द्रमा, सिर पर गंगाजी, तीन नेत्र, साँपों का जनेऊ, गले में विष और छाती पर नरमुण्डों की माला थी। इस प्रकार उनका वेष अशुभ होने पर भी वे कल्याण के धाम और कृपालु हैं॥2॥

* कर त्रिसूल अरु डमरु बिराजा। चले बसहँ चढ़ि बाजहिं बाजा॥
देखि सिवहि सुरत्रिय मुसुकाहीं। बर लायक दुलहिनि जग नाहीं॥3॥

भावार्थ:-एक हाथ में त्रिशूल और दूसरे में डमरू सुशोभित है। शिवजी बैल पर चढ़कर चले। बाजे बज रहे हैं। शिवजी को देखकर देवांगनाएँ मुस्कुरा रही हैं (और कहती हैं कि) इस वर के योग्य दुलहिन संसार में नहीं मिलेगी॥3॥

* बिष्नु बिरंचि आदि सुरब्राता। चढ़ि चढ़ि बाहन चले बराता॥
सुर समाज सब भाँति अनूपा। नहिं बरात दूलह अनुरूपा॥4॥

भावार्थ:-विष्णु और ब्रह्मा आदि देवताओं के समूह अपने-अपने वाहनों (सवारियों) पर चढ़कर बारात में चले। देवताओं का समाज सब प्रकार से अनुपम (परम सुंदर) था, पर दूल्हे के योग्य बारात न थी॥4॥

दोहा :

* बिष्नु कहा अस बिहसि तब बोलि सकल दिसिराज।
बिलग बिलग होइ चलहु सब निज निज सहित समाज॥92॥

भावार्थ:-तब विष्णु भगवान ने सब दिक्पालों को बुलाकर हँसकर ऐसा कहा- सब लोग अपने-अपने दल समेत अलग-अलग होकर चलो॥92॥

चौपाई :

* बर अनुहारि बरात न भाई। हँसी करैहहु पर पुर जाई॥
बिष्नु बचन सुनि सुर मुसुकाने। निज निज सेन सहित बिलगाने॥1॥

भावार्थ:-हे भाई! हम लोगों की यह बारात वर के योग्य नहीं है। क्या पराए नगर में जाकर हँसी कराओगे? विष्णु भगवान की बात सुनकर देवता मुस्कुराए और वे अपनी-अपनी सेना सहित अलग हो गए॥1॥

* मनहीं मन महेसु मुसुकाहीं। हरि के बिंग्य बचन नहिं जाहीं॥
अति प्रिय बचन सुनत प्रिय केरे। भृंगिहि प्रेरि सकल गन टेरे॥2॥

भावार्थ:-महादेवजी (यह देखकर) मन-ही-मन मुस्कुराते हैं कि विष्णु भगवान के व्यंग्य-वचन (दिल्लगी) नहीं छूटते! अपने प्यारे (विष्णु भगवान) के इन अति प्रिय वचनों को सुनकर शिवजी ने भी भृंगी को भेजकर अपने सब गणों को बुलवा लिया॥2॥

* सिव अनुसासन सुनि सब आए। प्रभु पद जलज सीस तिन्ह नाए॥
नाना बाहन नाना बेषा। बिहसे सिव समाज निज देखा॥3॥

भावार्थ:-शिवजी की आज्ञा सुनते ही सब चले आए और उन्होंने स्वामी के चरण कमलों में सिर नवाया। तरह-तरह की सवारियों और तरह-तरह के वेष वाले अपने समाज को देखकर शिवजी हँसे॥3॥

* कोउ मुख हीन बिपुल मुख काहू। बिनु पद कर कोउ बहु पद बाहू॥
बिपुल नयन कोउ नयन बिहीना। रिष्टपुष्ट कोउ अति तनखीना॥4॥

भावार्थ:-कोई बिना मुख का है, किसी के बहुत से मुख हैं, कोई बिना हाथ-पैर का है तो किसी के कई हाथ-पैर हैं। किसी के बहुत आँखें हैं तो

किसी के एक भी आँख नहीं है। कोई बहुत मोटा-ताजा है, तो कोई बहुत ही दुबला-पतला है॥4॥

छंद :

* तन कीन कोउ अति पीन पावन कोउ अपावन गति धरें।
भूषन कराल कपाल कर सब सद्य सोनित तन भरें॥
खर स्वान सुअर सृकाल मुख गन बेष अगनित को गनै।
बहु जिनस प्रेत पिसाच जोगि जमात बरनत नहिं बनै॥

भावार्थ:-कोई बहुत दुबला, कोई बहुत मोटा, कोई पवित्र और कोई अपवित्र वेष धारण किए हुए है। भयंकर गहने पहने हाथ में कपाल लिए हैं और सब के सब शरीर में ताजा खून लपेटे हुए हैं। गधे, कुत्ते, सूअर और सियार के से उनके मुख हैं। गणों के अनगिनत वेषों को कौन गिने? बहुत प्रकार के प्रेत, पिशाच और योगिनियों की जमातें हैं। उनका वर्णन करते नहीं बनता।

सोरठा :

* नाचहिं गावहिं गीत परम तरंगी भूत सब।
देखत अति बिपरीत बोलहिं बचन बिचित्र बिधि॥93॥

भावार्थ:-भूत-प्रेत नाचते और गाते हैं, वे सब बड़े मौजी हैं। देखने में बहुत ही बेढंगे जान पड़ते हैं और बड़े ही विचित्र ढंग से बोलते हैं॥93॥

चौपाई :

* जस दूलहु तसि बनी बराता। कौतुक बिबिध होहिं मग जाता॥
इहाँ हिमाचल रचेउ बिताना। अति बिचित्र नहिं जाइ बखाना॥1॥

भावार्थ:-जैसा दूल्हा है, अब वैसी ही बारात बन गई है। मार्ग में चलते हुए भाँति-भाँति के कौतुक (तमाशे) होते जाते हैं। इधर हिमाचल ने ऐसा विचित्र मण्डप बनाया कि जिसका वर्णन नहीं हो सकता॥1॥

* सैल सकल जहँ लगि जग माहीं। लघु बिसाल नहिं बरनि सिराहीं॥
बन सागर सब नदी तलावा। हिमगिरि सब कहुँ नेवत पठावा॥2॥

भावार्थ:-जगत में जितने छोटे-बड़े पर्वत थे, जिनका वर्णन करके पार नहीं मिलता तथा जितने वन, समुद्र, नदियाँ और तालाब थे, हिमाचल ने सबको नेवता भेजा॥2॥

* कामरूप सुंदर तन धारी। सहित समाज सहित बर नारी॥
गए सकल तुहिमाचल गेहा। गावहिं मंगल सहित सनेहा॥3॥

भावार्थ:-वे सब अपनी इच्छानुसार रूप धारण करने वाले सुंदर शरीर धारण कर सुंदरी स्त्रियों और समाजों के साथ हिमाचल के घर गए। सभी स्नेह सहित मंगल गीत गाते हैं॥3॥

* प्रथमहिं गिरि बहु गृह सँवराए। जथाजोगु तहँ तहँ सब छाए॥
पुर सोभा अवलोकि सुहाई। लागइ लघु बिरंचि निपुनाई॥4॥

भावार्थ:-हिमाचल ने पहले ही से बहुत से घर सजवा रखे थे। यथायोग्य उन-उन स्थानों में सब लोग उतर गए। नगर की सुंदर शोभा देखकर ब्रह्मा की रचना चातुरी भी तुच्छ लगती थी॥4॥

छन्द :

* लघु लाग बिधि की निपुनता अवलोकि पुर सोभा सही।
बन बाग कूप तड़ाग सरिता सुभग सब सक को कही॥
मंगल बिपुल तोरन पताका केतु गृह गृह सोहहीं।
बनिता पुरुष सुंदर चतुर छबि देखि मुनि मन मोहहीं॥

भावार्थ:-नगर की शोभा देखकर ब्रह्मा की निपुणता सचमुच तुच्छ लगती है। वन, बाग, कुएँ, तालाब, नदियाँ सभी सुंदर हैं, उनका वर्णन कौन कर सकता है? घर-घर बहुत से मंगल सूचक तोरण और ध्वजा-

पताकाएँ सुशोभित हो रही हैं। वहाँ के सुंदर और चतुर स्त्री-पुरुषों की छबि देखकर मुनियों के भी मन मोहित हो जाते हैं॥

दोहा :

* जगदंबा जहँ अवतरी सो पुरु बरनि कि जाइ।
रिद्धि सिद्धि संपत्ति सुख नित नूतन अधिकाइ॥94॥

भावार्थ:-जिस नगर में स्वयं जगदम्बा ने अवतार लिया, क्या उसका वर्णन हो सकता है? वहाँ ऋद्धि, सिद्धि, सम्पत्ति और सुख नित-नए बढ़ते जाते हैं॥94॥

चौपाई :

* नगर निकट बरात सुनि आई। पुर खरभरु सोभा अधिकाई॥
करि बनाव सजि बाहन नाना। चले लेन सादर अगवाना॥1॥

भावार्थ:-बारात को नगर के निकट आई सुनकर नगर में चहल-पहल मच गई, जिससे उसकी शोभा बढ़ गई। अगवानी करने वाले लोग बनाव-श्रृंगार करके तथा नाना प्रकार की सवारियों को सजाकर आदर सहित बारात को लेने चले॥1॥

* हियँ हरषे सुर सेन निहारी। हरिहि देखि अति भए सुखारी॥
सिव समाज जब देखन लागे। बिडरि चले बाहन सब भागे॥2॥

भावार्थ:-देवताओं के समाज को देखकर सब मन में प्रसन्न हुए और विष्णु भगवान को देखकर तो बहुत ही सुखी हुए, किन्तु जब शिवजी के दल को देखने लगे तब तो उनके सब वाहन (सवारियों के हाथी, घोड़े, रथ के बैल आदि) डरकर भाग चले॥2॥

* धरि धीरजु तहँ रहे सयाने। बालक सब लै जीव पराने॥
गएँ भवन पूछहिं पितु माता। कहहिं बचन भय कंपित गाता॥3॥

भावार्थ:-कुछ बड़ी उम्र के समझदार लोग धीरज धरकर वहाँ डटे रहे। लड़के तो सब अपने प्राण लेकर भागे। घर पहुँचने पर जब माता-पिता पूछते हैं, तब वे भय से काँपते हुए शरीर से ऐसा वचन कहते हैं॥3॥

* कहिअ काह कहि जाइ न बाता। जम कर धार किधौं बरिआता॥
बरु बौराह बसहँ असवारा। ब्याल कपाल बिभूषन छारा॥4॥

भावार्थ:-क्या कहें, कोई बात कही नहीं जाती। यह बारात है या यमराज की सेना? दूल्हा पागल है और बैल पर सवार है। साँप, कपाल और राख ही उसके गहने हैं॥4॥

छन्द :

* तन छार ब्याल कपाल भूषन नगन जटिल भयंकरा।
सँग भूत प्रेत पिसाच जोगिनि बिकट मुख रजनीचरा॥
जो जिअत रहिहि बरात देखत पुन्य बड़ तेहि कर सही।
देखिहि सो उमा बिबाहु घर घर बात असि लरिकन्ह कही॥

भावार्थ:-दूल्हे के शरीर पर राख लगी है, साँप और कपाल के गहने हैं, वह नंगा, जटाधारी और भयंकर है। उसके साथ भयानक मुखवाले भूत, प्रेत, पिशाच, योगिनियाँ और राक्षस हैं, जो बारात को देखकर जीता बचेगा, सचमुच उसके बड़े ही पुण्य हैं और वही पार्वती का विवाह देखेगा। लड़कों ने घर-घर यही बात कही।

दोहा :

* समुझि महेस समाज सब जननि जनक मुसुकाहिं।
बाल बुझाए बिबिध बिधि निडर होहु डरु नाहिं॥95॥

भावार्थ:-महेश्वर (शिवजी) का समाज समझकर सब लड़कों के माता-पिता मुस्कुराते हैं। उन्होंने बहुत तरह से लड़कों को समझाया कि निडर हो जाओ, डर की कोई बात नहीं है॥95॥

चौपाई :

* लै अगवान बरातहि आए। दिए सबहि जनवास सुहाए॥
मैनाँ सुभ आरती सँवारी। संग सुमंगल गावहिं नारी॥1॥

भावार्थ:-अगवान लोग बारात को लिवा लाए, उन्होंने सबको सुंदर जनवासे ठहरने को दिए। मैना (पार्वतीजी की माता) ने शुभ आरती सजाई और उनके साथ की स्त्रियाँ उत्तम मंगलगीत गाने लगीं॥1॥

* कंचन थार सोह बर पानी। परिछन चली हरहि हरषानी॥
बिकट बेष रुद्रहि जब देखा। अबलन्ह उर भय भयउ बिसेषा॥2॥

भावार्थ:-सुंदर हाथों में सोने का थाल शोभित है, इस प्रकार मैना हर्ष के साथ शिवजी का परछन करने चलीं। जब महादेवजी को भयानक वेष में देखा तब तो स्त्रियों के मन में बड़ा भारी भय उत्पन्न हो गया॥2॥

* भागि भवन पैठीं अति त्रासा। गए महेसु जहाँ जनवासा॥
मैना हृदयँ भयउ दुखु भारी। लीन्ही बोली गिरीसकुमारी॥3॥

भावार्थ:-बहुत ही डर के मारे भागकर वे घर में घुस गईं और शिवजी जहाँ जनवासा था, वहाँ चले गए। मैना के हृदय में बड़ा दुःख हुआ, उन्होंने पार्वतीजी को अपने पास बुला लिया॥3॥

* अधिक सनेहँ गोद बैठारी। स्याम सरोज नयन भरे बारी॥
जेहिं बिधि तुम्हहि रूपु अस दीन्हा। तेहिं जड़ बरु बाउर कस कीन्हा॥4॥

भावार्थ:-और अत्यन्त स्नेह से गोद में बैठाकर अपने नीलकमल के समान नेत्रों में आँसू भरकर कहा- जिस विधाता ने तुमको ऐसा सुंदर रूप दिया, उस मूर्ख ने तुम्हारे दूल्हे को बावला कैसे बनाया?॥4॥

छन्द :

* कस कीन्ह बरु बौराह बिधि जेहिं तुम्हहि सुंदरता दई।

जो फलु चहिअ सुरतरुहिं सो बरबस बबूरहिं लागई॥
तुम्ह सहित गिरि तें गिरौं पावक जरौं जलनिधि महुँ परौं।
घरु जाउ अपजसु होउ जग जीवत बिबाहु न हौं करौं॥

भावार्थ:-जिस विधाता ने तुमको सुंदरता दी, उसने तुम्हारे लिए वर बावला कैसे बनाया? जो फल कल्पवृक्ष में लगना चाहिए, वह जबर्दस्ती बबूल में लग रहा है। मैं तुम्हें लेकर पहाड़ से गिर पड़ूँगी, आग में जल जाऊँगी या समुद्र में कूद पड़ूँगी। चाहे घर उजड़ जाए और संसार भर में अपकीर्ति फैल जाए, पर जीते जी मैं इस बावले वर से तुम्हारा विवाह न करूँगी।

दोहा :

* भईं बिकल अबला सकल दुखित देखि गिरिनारि।
करि बिलापु रोदति बदति सुता सनेहु सँभारि॥96॥।

भावार्थ:-हिमाचल की स्त्री (मैना) को दुःखी देखकर सारी स्त्रियाँ व्याकुल हो गईं। मैना अपनी कन्या के स्नेह को याद करके विलाप करती, रोती और कहती थीं-॥96॥

चौपाई :

* नारद कर मैं काह बिगारा। भवनु मोर जिन्ह बसत उजारा॥
अस उपदेसु उमहि जिन्ह दीन्हा। बौरे बरहि लागि तपु कीन्हा॥1॥

भावार्थ:-मैंने नारद का क्या बिगाड़ा था, जिन्होंने मेरा बसता हुआ घर उजाड़ दिया और जिन्होंने पार्वती को ऐसा उपदेश दिया कि जिससे उसने बावले वर के लिए तप किया॥1॥

* साचेहुँ उन्ह कें मोह न माया। उदासीन धनु धामु न जाया॥
पर घर घालक लाज न भीरा। बाँझ कि जान प्रसव कै पीरा॥2॥

भावार्थ:-सचमुच उनके न किसी का मोह है, न माया, न उनके धन है, न घर है और न स्त्री ही है, वे सबसे उदासीन हैं। इसी से वे दूसरे का घर उजाड़ने वाले हैं। उन्हें न किसी की लाज है, न डर है। भला, बाँझ स्त्री प्रसव की पीड़ा को क्या जाने॥2॥

* जननिहि बिकल बिलोकि भवानी। बोली जुत बिबेक मृदु बानी॥
अस बिचारि सोचहि मति माता। सो न टरइ जो रचइ बिधाता॥3॥

भावार्थ:-माता को विकल देखकर पार्वतीजी विवेकयुक्त कोमल वाणी बोलीं- हे माता! जो विधाता रच देते हैं, वह टलता नहीं, ऐसा विचार कर तुम सोच मत करो!॥3॥

* करम लिखा जौं बाउर नाहू। तौ कत दोसु लगाइअ काहू॥
तुम्ह सन मिटहिं कि बिधि के अंका। मातु ब्यर्थ जनि लेहु कलंका॥4॥

भावार्थ:-जो मेरे भाग्य में बावला ही पति लिखा है, तो किसी को क्यों दोष लगाया जाए? हे माता! क्या विधाता के अंक तुमसे मिट सकते हैं? वृथा कलंक का टीका मत लो॥4॥

छन्द :

* जनि लेहु मातु कलंकु करुना परिहरहु अवसर नहीं।
दुखु सुखु जो लिखा लिलार हमरें जाब जहँ पाउब तहीं॥
सुनि उमा बचन बिनीत कोमल सकल अबला सोचहीं।
बहु भाँति बिधिहि लगाइ दूषन नयन बारि बिमोचहीं॥

भावार्थ:-हे माता! कलंक मत लो, रोना छोड़ो, यह अवसर विषाद करने का नहीं है। मेरे भाग्य में जो दुःख-सुख लिखा है, उसे मैं जहाँ जाऊँगी, वहीं पाऊँगी! पार्वतीजी के ऐसे विनय भरे कोमल वचन सुनकर सारी स्त्रियाँ सोच करने लगीं और भाँति-भाँति से विधाता को दोष देकर आँखों से आँसू बहाने लगीं।

दोहा :

* तेहि अवसर नारद सहित अरु रिषि सप्त समेत।
समाचार सुनि तुहिनगिरि गवने तुरत निकेत॥97॥

भावार्थ:-इस समाचार को सुनते ही हिमाचल उसी समय नारदजी और सप्त ऋषियों को साथ लेकर अपने घर गए॥97॥

चौपाई :

* तब नारद सबही समुझावा। पूरुब कथा प्रसंगु सुनावा॥
मयना सत्य सुनहु मम बानी। जगदंबा तव सुता भवानी॥1॥

भावार्थ:-तब नारदजी ने पूर्वजन्म की कथा सुनाकर सबको समझाया (और कहा) कि हे मैना! तुम मेरी सच्ची बात सुनो, तुम्हारी यह लड़की साक्षात जगज्जनी भवानी है॥1॥

* अजा अनादि सक्ति अबिनासिनि। सदा संभु अरधंग निवासिनि॥
जग संभव पालन लय कारिनि। निज इच्छा लीला बपु धारिनि॥2॥

भावार्थ:-ये अजन्मा, अनादि और अविनाशिनी शक्ति हैं। सदा शिवजी के अर्द्धांग में रहती हैं। ये जगत की उत्पत्ति, पालन और संहार करने वाली हैं और अपनी इच्छा से ही लीला शरीर धारण करती हैं॥2॥

* जनमीं प्रथम दच्छ गृह जाई। नामु सती सुंदर तनु पाई॥
तहँहुँ सती संकरहि बिबाहीं। कथा प्रसिद्ध सकल जग माहीं॥3॥

भावार्थ:-पहले ये दक्ष के घर जाकर जन्मी थीं, तब इनका सती नाम था, बहुत सुंदर शरीर पाया था। वहाँ भी सती शंकरजी से ही ब्याही गई थीं। यह कथा सारे जगत में प्रसिद्ध है॥3॥

* एक बार आवत सिव संगा। देखेउ रघुकुल कमल पतंगा॥
भयउ मोहु सिव कहा न कीन्हा। भ्रम बस बेषु सीय कर लीन्हा॥4॥

भावार्थ:-एक बार इन्होंने शिवजी के साथ आते हुए (राह में) रघुकुल रूपी कमल के सूर्य श्री रामचन्द्रजी को देखा, तब इन्हें मोह हो गया और इन्होंने शिवजी का कहना न मानकर भ्रमवश सीताजी का वेष धारण कर लिया॥4॥

छन्द :

* सिय बेषु सतीं जो कीन्ह तेहिं अपराध संकर परिहरीं।
हर बिरहँ जाइ बहोरि पितु कें जग्य जोगानल जरीं॥
अब जनमि तुम्हरे भवन निज पति लागि दारुन तपु किया।
अस जानि संसय तजहु गिरिजा सर्बदा संकरप्रिया॥

भावार्थ:-सतीजी ने जो सीता का वेष धारण किया, उसी अपराध के कारण शंकरजी ने उनको त्याग दिया। फिर शिवजी के वियोग में ये अपने पिता के यज्ञ में जाकर वहीं योगाग्नि से भस्म हो गईं। अब इन्होंने तुम्हारे घर जन्म लेकर अपने पति के लिए कठिन तप किया है ऐसा जानकर संदेह छोड़ दो, पार्वतीजी तो सदा ही शिवजी की प्रिया (अर्द्धांगिनी) हैं।

दोहा :

* सुनि नारद के बचन तब सब कर मिटा बिषाद।
छन महुँ ब्यापेउ सकल पुर घर घर यह संबाद॥98॥

भावार्थ:-तब नारद के वचन सुनकर सबका विषाद मिट गया और क्षणभर में यह समाचार सारे नगर में घर-घर फैल गया॥98॥

चौपाई :

* तब मयना हिमवंतु अनंदे। पुनि पुनि पारबती पद बंदे॥
नारि पुरुष सिसु जुबा सयाने। नगर लोग सब अति हरषाने॥1॥

भावार्थ:-तब मैना और हिमवान आनंद में मग्न हो गए और उन्होंने बार-बार पार्वती के चरणों की वंदना की। स्त्री, पुरुष, बालक, युवा और वृद्ध नगर के सभी लोग बहुत प्रसन्न हुए॥1॥

* लगे होन पुर मंगल गाना। सजे सबहिं हाटक घट नाना॥
भाँति अनेक भई जेवनारा। सूपसास्त्र जस कछु ब्यवहारा॥2॥

भावार्थ:-नगर में मंगल गीत गाए जाने लगे और सबने भाँति-भाँति के सुवर्ण के कलश सजाए। पाक शास्त्र में जैसी रीति है, उसके अनुसार अनेक भाँति की ज्योनार हुई (रसोई बनी)॥2॥

*सो जेवनार कि जाइ बखानी। बसहिं भवन जेहिं मातु भवानी॥
सादर बोले सकल बराती। बिष्नु बिरंचि देव सब जाती॥3॥

भावार्थ:-जिस घर में स्वयं माता भवानी रहती हों, वहाँ की ज्योनार (भोजन सामग्री) का वर्णन कैसे किया जा सकता है? हिमाचल ने आदरपूर्वक सब बारातियों, विष्णु, ब्रह्मा और सब जाति के देवताओं को बुलवाया॥3॥

* बिबिधि पाँति बैठी जेवनारा। लागे परुसन निपुन सुआरा॥
नारिबृंद सुर जेवँत जानी। लगीं देन गारीं मृदु बानी॥4॥

भावार्थ:-भोजन (करने वालों) की बहुत सी पंगतें बैठीं। चतुर रसोइए परोसने लगे। स्त्रियों की मंडलियाँ देवताओं को भोजन करते जानकर कोमल वाणी से गालियाँ देने लगीं॥4॥

छन्द :

* गारीं मधुर स्वर देहिं सुंदरि बिंग्य बचन सुनावहीं।
भोजनु करहिं सुर अति बिलंबु बिनोदु सुनि सचु पावहीं॥
जेवँत जो बढ्यो अनंदु सो मुख कोटिहूँ न परै कह्यो।
अचवाँइ दीन्हें पान गवने बास जहँ जाको रह्यो॥

भावार्थ:-सब सुंदरी स्त्रियाँ मीठे स्वर में गालियाँ देने लगीं और व्यंग्य भरे वचन सुनाने लगीं। देवगण विनोद सुनकर बहुत सुख अनुभव करते हैं, इसलिए भोजन करने में बड़ी देर लगा रहे हैं। भोजन के समय जो आनंद बढ़ा वह करोड़ों मुँह से भी नहीं कहा जा सकता। (भोजन कर चुकने पर) सबके हाथ-मुँह धुलवाकर पान दिए गए। फिर सब लोग, जो जहाँ ठहरे थे, वहाँ चले गए।

दोहा :

*बहुरि मुनिन्ह हिमवंत कहुँ लगन सुनाई आइ।
समय बिलोकि बिबाह कर पठए देव बोलाइ॥99॥

भावार्थ:-फिर मुनियों ने लौटकर हिमवान् को लगन (लग्न पत्रिका) सुनाई और विवाह का समय देखकर देवताओं को बुला भेजा॥99॥

चौपाई :

* बोलि सकल सुर सादर लीन्हे। सबहि जथोचित आसन दीन्हे॥
बेदी बेद बिधान सँवारी। सुभग सुमंगल गावहिं नारी॥1॥

भावार्थ:-सब देवताओं को आदर सहित बुलवा लिया और सबको यथायोग्य आसन दिए। वेद की रीति से वेदी सजाई गई और स्त्रियाँ सुंदर श्रेष्ठ मंगल गीत गाने लगीं॥1॥

* सिंघासनु अति दिब्य सुहावा। जाइ न बरनि बिरंचि बनावा॥
बैठे सिव बिप्रन्ह सिरु नाई। हृदयँ सुमिरि निज प्रभु रघुराई॥2॥

भावार्थ:-वेदिका पर एक अत्यन्त सुंदर दिव्य सिंहासन था, जिस (की सुंदरता) का वर्णन नहीं किया जा सकता, क्योंकि वह स्वयं ब्रह्माजी का बनाया हुआ था। ब्राह्मणों को सिर नवाकर और हृदय में अपने स्वामी श्री रघुनाथजी का स्मरण करके शिवजी उस सिंहासन पर बैठ गए॥2॥

* बहुरि मुनीसन्ह उमा बोलाईं। करि सिंगारु सखीं लै आईं॥

देखत रूपु सकल सुर मोहे। बरनै छबि अस जग कबि को है॥3॥
भावार्थ:-फिर मुनीश्वरों ने पार्वतीजी को बुलाया। सखियाँ श्रृंगार करके उन्हें ले आईं। पार्वतीजी के रूप को देखते ही सब देवता मोहित हो गए। संसार में ऐसा कवि कौन है, जो उस सुंदरता का वर्णन कर सके?॥3॥

* जगदंबिका जानि भव भामा। सुरन्ह मनहिं मन कीन्ह प्रनामा॥

सुंदरता मरजाद भवानी। जाइ न कोटिहुँ बदन बखानी॥4॥
भावार्थ:-पार्वतीजी को जगदम्बा और शिवजी की पत्नी समझकर देवताओं ने मन ही मन प्रणाम किया। भवानीजी सुंदरता की सीमा हैं। करोड़ों मुखों से भी उनकी शोभा नहीं कही जा सकती॥4॥
छन्द :
* कोटिहुँ बदन नहिं बनै बरनत जग जननि सोभा महा।
सकुचहिं कहत श्रुति सेष सारद मंदमति तुलसीकहा॥
छबिखानि मातु भवानि गवनीं मध्य मंडप सिव जहाँ।
अवलोकि सकहिं न सकुच पति पद कमल मनु मधुकरु तहाँ॥
भावार्थ:-जगज्जननी पार्वतीजी की महान शोभा का वर्णन करोड़ों मुखों से भी करते नहीं बनता। वेद, शेषजी और सरस्वतीजी तक उसे कहते हुए सकुचा जाते हैं, तब मंदबुद्धि तुलसी किस गिनती में है? सुंदरता और शोभा की खान माता भवानी मंडप के बीच में, जहाँ शिवजी थे, वहाँ गईं। वे संकोच के मारे पति (शिवजी) के चरणकमलों को देख नहीं सकतीं, परन्तु उनका मन रूपी भौंरा तो वहीं (रसपान कर रहा) था।

शिवजी का विवाह
दोहा :

* मुनि अनुसासन गनपतिहि पूजेउ संभु भवानि।
कोउ सुनि संसय करै जनि सुर अनादि जियँ जानि॥100॥

भावार्थ:-मुनियों की आज्ञा से शिवजी और पार्वतीजी ने गणेशजी का पूजन किया। मन में देवताओं को अनादि समझकर कोई इस बात को सुनकर शंका न करे (कि गणेशजी तो शिव-पार्वती की संतान हैं, अभी विवाह से पूर्व ही वे कहाँ से आ गए?)॥100॥

चौपाई :

* जसि बिबाह कै बिधि श्रुति गाई। महामुनिन्ह सो सब करवाई॥
गहि गिरीस कुस कन्या पानी। भवहि समरपीं जानि भवानी॥1॥

भावार्थ:-वेदों में विवाह की जैसी रीति कही गई है, महामुनियों ने वह सभी रीति करवाई। पर्वतराज हिमाचल ने हाथ में कुश लेकर तथा कन्या का हाथ पकड़कर उन्हें भवानी (शिवपत्नी) जानकर शिवजी को समर्पण किया॥1॥

* पानिग्रहन जब कीन्ह महेसा। हियँ हरषे तब सकल सुरेसा॥
बेदमन्त्र मुनिबर उच्चरहीं। जय जय जय संकर सुर करहीं॥2॥

भावार्थ:-जब महेश्वर (शिवजी) ने पार्वती का पाणिग्रहण किया, तब (इन्द्रादि) सब देवता हृदय में बड़े ही हर्षित हुए। श्रेष्ठ मुनिगण वेदमंत्रों का उच्चारण करने लगे और देवगण शिवजी का जय-जयकार करने लगे॥2॥

* बाजहिं बाजन बिबिध बिधाना। सुमनबृष्टि नभ भै बिधि नाना॥
हर गिरिजा कर भयउ बिबाहू। सकल भुवन भरि रहा उछाहू॥3॥

भावार्थ:-अनेकों प्रकार के बाजे बजने लगे। आकाश से नाना प्रकार के फूलों की वर्षा हुई। शिव-पार्वती का विवाह हो गया। सारे ब्राह्माण्ड में आनंद भर गया॥3॥

* दासीं दास तुरग रथ नागा। धेनु बसन मनि बस्तु बिभागा॥
अन्न कनकभाजन भरि जाना। दाइज दीन्ह न जाइ बखाना॥4॥

भावार्थ:-दासी, दास, रथ, घोड़े, हाथी, गायें, वस्त्र और मणि आदि अनेक प्रकार की चीजें, अन्न तथा सोने के बर्तन गाड़ियों में लदवाकर दहेज में दिए, जिनका वर्णन नहीं हो सकता॥4॥

छन्द :

* दाइज दियो बहु भाँति पुनि कर जोरि हिमभूधर कह्यो।
का देउँ पूरनकाम संकर चरन पंकज गहि रह्यो॥
सिवँ कृपासागर ससुर कर संतोषु सब भाँतिहिं कियो।
पुनि गहे पद पाथोज मयनाँ प्रेम परिपूरन हियो॥

भावार्थ:-बहुत प्रकार का दहेज देकर, फिर हाथ जोड़कर हिमाचल ने कहा- हे शंकर! आप पूर्णकाम हैं, मैं आपको क्या दे सकता हूँ? (इतना कहकर) वे शिवजी के चरणकमल पकड़कर रह गए। तब कृपा के सागर शिवजी ने अपने ससुर का सभी प्रकार से समाधान किया। फिर प्रेम से परिपूर्ण हृदय मैनाजी ने शिवजी के चरण कमल पकड़े (और कहा-)।

दोहा :

* नाथ उमा मम प्रान सम गृहकिंकरी करेहु।
छमेहु सकल अपराध अब होइ प्रसन्न बरु देहु॥101॥

भावार्थ:-हे नाथ! यह उमा मुझे मेरे प्राणों के समान (प्यारी) है। आप इसे अपने घर की टहलनी बनाइएगा और इसके सब अपराधों को क्षमा करते रहिएगा। अब प्रसन्न होकर मुझे यही वर दीजिए॥101॥

चौपाई :

* बहु बिधि संभु सासु समुझाई। गवनी भवन चरन सिरु नाई॥
जननीं उमा बोलि तब लीन्ही। लै उछंग सुंदर सिख दीन्ही॥1॥

भावार्थ:-शिवजी ने बहुत तरह से अपनी सास को समझाया। तब वे शिवजी के चरणों में सिर नवाकर घर गईं। फिर माता ने पार्वती को बुला लिया और गोद में बिठाकर यह सुंदर सीख दी-॥1॥

* करेहु सदा संकर पद पूजा। नारिधरमु पति देउ न दूजा॥

बचन कहत भरे लोचन बारी। बहुरि लाइ उर लीन्हि कुमारी॥2॥

भावार्थ:-हे पार्वती! तू सदाशिवजी के चरणों की पूजा करना, नारियों का यही धर्म है। उनके लिए पति ही देवता है और कोई देवता नहीं है। इस प्रकार की बातें कहते-कहते उनकी आँखों में आँसू भर आए और उन्होंने कन्या को छाती से चिपटा लिया॥2॥

* कत बिधि सृजीं नारि जग माहीं। पराधीन सपनेहूँ सुखु नाहीं॥

भै अति प्रेम बिकल महतारी। धीरजु कीन्ह कुसमय बिचारी॥3॥

भावार्थ:-(फिर बोलीं कि) विधाता ने जगत में स्त्री जाति को क्यों पैदा किया? पराधीन को सपने में भी सुख नहीं मिलता। यों कहती हुई माता प्रेम में अत्यन्त विकल हो गईं, परन्तु कुसमय जानकर (दुःख करने का अवसर न जानकर) उन्होंने धीरज धरा॥3॥

* पुनि पुनि मिलति परति गहि चरना। परम प्रेमु कछु जाइ न बरना॥

सब नारिन्ह मिलि भेंटि भवानी। जाइ जननि उर पुनि लपटानी॥4॥

भावार्थ:-मैना बार-बार मिलती हैं और (पार्वती के) चरणों को पकड़कर गिर पड़ती हैं। बड़ा ही प्रेम है, कुछ वर्णन नहीं किया जाता। भवानी सब स्त्रियों से मिल-भेंटकर फिर अपनी माता के हृदय से जा लिपटीं॥4॥

छन्द :

* जननिहि बहुरि मिलि चली उचित असीस सब काहूँ दईं।
फिरि फिरि बिलोकति मातु तन तब सखीं लै सिव पहिं गईं॥
जाचक सकल संतोषि संकरु उमा सहित भवन चले।

सब अमर हरषे सुमन बरषि निसान नभ बाजे भले॥

भावार्थ:-पार्वतीजी माता से फिर मिलकर चलीं, सब किसी ने उन्हें योग्य आशीर्वाद दिए। पार्वतीजी फिर-फिरकर माता की ओर देखती जाती थीं। तब सखियाँ उन्हें शिवजी के पास ले गईं। महादेवजी सब याचकों को संतुष्ट कर पार्वती के साथ घर (कैलास) को चले। सब देवता प्रसन्न होकर फूलों की वर्षा करने लगे और आकाश में सुंदर नगाड़े बजाने लगे।

दोहा :

* चले संग हिमवंतु तब पहुँचावन अति हेतु।
बिबिध भाँति परितोषु करि बिदा कीन्ह बृषकेतु॥102॥

भावार्थ:-तब हिमवान् अत्यन्त प्रेम से शिवजी को पहुँचाने के लिए साथ चले। वृषकेतु (शिवजी) ने बहुत तरह से उन्हें संतोष कराकर विदा किया॥102॥

चौपाई :

* तुरत भवन आए गिरिराई। सकल सैल सर लिए बोलाई॥
आदर दान बिनय बहुमाना। सब कर बिदा कीन्ह हिमवाना॥1॥

भावार्थ:-पर्वतराज हिमाचल तुरंत घर आए और उन्होंने सब पर्वतों और सरोवरों को बुलाया। हिमवान ने आदर, दान, विनय और बहुत सम्मानपूर्वक सबकी विदाई की॥1॥

* जबहिं संभु कैलासहिं आए। सुर सब निज निज लोक सिधाए॥
जगत मातु पितु संभु भवानी। तेहिं सिंगारु न कहउँ बखानी॥2॥

भावार्थ:-जब शिवजी कैलास पर्वत पर पहुँचे, तब सब देवता अपने-अपने लोकों को चले गए। (तुलसीदासजी कहते हैं कि) पार्वतीजी और शिवजी जगत के माता-पिता हैं, इसलिए मैं उनके श्रृंगार का वर्णन नहीं करता॥2॥

* करहिं बिबिध बिधि भोग बिलासा। गनन्ह समेत बसहिं कैलासा॥

हर गिरिजा बिहार नित नयऊ। एहि बिधि बिपुल काल चलि गयऊ॥3॥

भावार्थ:-शिव-पार्वती विविध प्रकार के भोग-विलास करते हुए अपने गणों सहित कैलास पर रहने लगे। वे नित्य नए विहार करते थे। इस प्रकार बहुत समय बीत गया॥3॥

* जब जनमेउ षटबदन कुमारा। तारकु असुरु समर जेहिं मारा॥

आगम निगम प्रसिद्ध पुराना। षन्मुख जन्मु सकल जग जाना॥4॥

भावार्थ:-तब छः मुखवाले पुत्र (स्वामिकार्तिक) का जन्म हुआ, जिन्होंने (बड़े होने पर) युद्ध में तारकासुर को मारा। वेद, शास्त्र और पुराणों में स्वामिकार्तिक के जन्म की कथा प्रसिद्ध है और सारा जगत उसे जानता है॥4॥

छन्द :

* जगु जान षन्मुख जन्मु कर्मु प्रतापु पुरुषारथु महा।
तेहि हेतु मैं बृषकेतु सुत कर चरित संछेपहिं कहा॥
यह उमा संभु बिबाहु जे नर नारि कहहिं जे गावहीं।
कल्यान काज बिबाह मंगल सर्बदा सुखु पावहीं॥

भावार्थ:-षडानन (स्वामिकार्तिक) के जन्म, कर्म, प्रताप और महान पुरुषार्थ को सारा जगत जानता है, इसलिए मैंने वृषकेतु (शिवजी) के पुत्र का चरित्र संक्षेप में ही कहा है। शिव-पार्वती के विवाह की इस कथा को जो स्त्री-पुरुष कहेंगे और गाएँगे, वे कल्याण के कार्यों और विवाहादि मंगलों में सदा सुख पाएँगे।

दोहा :

* चरित सिंधु गिरिजा रमन बेद न पावहिं पारु।

बरनै तुलसीदासु किमि अति मतिमंद गवाँरु॥103॥

भावार्थ:-गिरिजापति महादेवजी का चरित्र समुद्र के समान (अपार) है, उसका पार वेद भी नहीं पाते। तब अत्यन्त मन्दबुद्धि और गँवार तुलसीदास उसका वर्णन कैसे कर सकता है? ॥103॥

चौपाई :

* संभु चरित सुनि सरस सुहावा। भरद्वाज मुनि अति सुखु पावा॥
बहु लालसा कथा पर बाढ़ी। नयनन्हि नीरु रोमावलि ठाढ़ी॥1॥

भावार्थ:-शिवजी के रसीले और सुहावने चरित्र को सुनकर मुनि भरद्वाजजी ने बहुत ही सुख पाया। कथा सुनने की उनकी लालसा बहुत बढ़ गई। नेत्रों में जल भर आया तथा रोमावली खड़ी हो गई॥1॥

* प्रेम बिबस मुख आव न बानी। दसा देखि हरषे मुनि ग्यानी॥
अहो धन्य तब जन्मु मुनीसा। तुम्हहि प्रान सम प्रिय गौरीसा॥2॥

भावार्थ:-वे प्रेम में मुग्ध हो गए, मुख से वाणी नहीं निकलती। उनकी यह दशा देखकर ज्ञानी मुनि याज्ञवल्क्य बहुत प्रसन्न हुए (और बोले-) हे मुनीश! अहा हा! तुम्हारा जन्म धन्य है, तुमको गौरीपति शिवजी प्राणों के समान प्रिय हैं॥2॥

* सिव पद कमल जिन्हहि रति नाहीं। रामहि ते सपनेहुँ न सोहाहीं॥
बिनु छल बिस्वनाथ पद नेहू। राम भगत कर लच्छन एहू॥3॥

भावार्थ:-शिवजी के चरण कमलों में जिनकी प्रीति नहीं है, वे श्री रामचन्द्रजी को स्वप्न में भी अच्छे नहीं लगते। विश्वनाथ श्री शिवजी के चरणों में निष्कपट (विशुद्ध) प्रेम होना यही रामभक्त का लक्षण है॥3॥

* सिव सम को रघुपति ब्रतधारी। बिनु अघ तजी सती असि नारी॥
पनु करि रघुपति भगति देखाई। को सिव सम रामहि प्रिय भाई॥4॥

भावार्थ:-शिवजी के समान रघुनाथजी (की भक्ति) का व्रत धारण करने वाला कौन है? जिन्होंने बिना ही पाप के सती जैसी स्त्री को त्याग दिया और प्रतिज्ञा करके श्री रघुनाथजी की भक्ति को दिखा दिया। हे भाई! श्री रामचन्द्रजी को शिवजी के समान और कौन प्यारा है?॥4॥

दोहा :

* प्रथमहिं मैं कहि सिव चरित बूझा मरमु तुम्हार।

सुचि सेवक तुम्ह राम के रहित समस्त बिकार॥104॥

भावार्थ:-मैंने पहले ही शिवजी का चरित्र कहकर तुम्हारा भेद समझ लिया। तुम श्री रामचन्द्रजी के पवित्र सेवक हो और समस्त दोषों से रहित हो॥104॥

चौपाई :

*मैं जाना तुम्हार गुन सीला। कहउँ सुनहु अब रघुपति लीला॥

सुनु मुनि आजु समागम तोरें। कहि न जाइ जस सुखु मन मोरें॥1॥

भावार्थ:-मैंने तुम्हारा गुण और शील जान लिया। अब मैं श्री रघुनाथजी की लीला कहता हूँ, सुनो। हे मुनि! सुनो, आज तुम्हारे मिलने से मेरे मन में जो आनंद हुआ है, वह कहा नहीं जा सकता॥1॥

*राम चरित अति अमित मुनीसा। कहि न सकहिं सत कोटि अहीसा॥

तदपि जथाश्रुत कहउँ बखानी। सुमिरि गिरापति प्रभु धनुपानी॥2॥

भावार्थ:-हे मुनीश्वर! रामचरित्र अत्यन्त अपार है। सौ करोड़ शेषजी भी उसे नहीं कह सकते। तथापि जैसा मैंने सुना है, वैसा वाणी के स्वामी (प्रेरक) और हाथ में धनुष लिए हुए प्रभु श्री रामचन्द्रजी का स्मरण करके कहता हूँ॥2॥

*सारद दारुनारि सम स्वामी। रामु सूत्रधर अंतरजामी॥

जेहि पर कृपा करहिं जनु जानी। कबि उर अजिर नचावहिं बानी॥3॥

भावार्थ:-सरस्वतीजी कठपुतली के समान हैं और अन्तर्यामी स्वामी श्री रामचन्द्रजी (सूत पकड़कर कठपुतली को नचाने वाले) सूत्रधार हैं। अपना भक्त जानकर जिस कवि पर वे कृपा करते हैं, उसके हृदय रूपी आँगन में सरस्वती को वे नचाया करते हैं॥3॥

* प्रनवउँ सोइ कृपाल रघुनाथा। बरनउँ बिसद तासु गुन गाथा॥
परम रम्य गिरिबरु कैलासू। सदा जहाँ सिव उमा निवासू॥4॥

भावार्थ:-उन्हीं कृपालु श्री रघुनाथजी को मैं प्रणाम करता हूँ और उन्हीं के निर्मल गुणों की कथा कहता हूँ। कैलास पर्वतों में श्रेष्ठ और बहुत ही रमणीय है, जहाँ शिव-पार्वतीजी सदा निवास करते हैं॥4॥

दोहा :

* सिद्ध तपोधन जोगिजन सुर किंनर मुनिबृंद।
बसहिं तहाँ सुकृती सकल सेवहिं सिव सुखकंद॥105॥

भावार्थ:-सिद्ध, तपस्वी, योगीगण, देवता, किन्नर और मुनियों के समूह उस पर्वत पर रहते हैं। वे सब बड़े पुण्यात्मा हैं और आनंदकन्द श्री महादेवजी की सेवा करते हैं॥105॥

चौपाई :

* हरि हर बिमुख धर्म रति नाहीं। ते नर तहँ सपनेहुँ नहिं जाहीं॥
तेहि गिरि पर बट बिटप बिसाला। नित नूतन सुंदर सब काला॥1॥

भावार्थ:-जो भगवान विष्णु और महादेवजी से विमुख हैं और जिनकी धर्म में प्रीति नहीं है, वे लोग स्वप्न में भी वहाँ नहीं जा सकते। उस पर्वत पर एक विशाल बरगद का पेड़ है, जो नित्य नवीन और सब काल (छहों ऋतुओं) में सुंदर रहता है॥1॥

* त्रिबिध समीर सुसीतलि छाया। सिव बिश्राम बिटप श्रुति गाया॥
एक बार तेहि तर प्रभु गयऊ। तरु बिलोकि उर अति सुखु भयऊ॥2॥

भावार्थ:-वहाँ तीनों प्रकार की (शीतल, मंद और सुगंध) वायु बहती रहती है और उसकी छाया बड़ी ठंडी रहती है। वह शिवजी के विश्राम करने का वृक्ष है, जिसे वेदों ने गाया है। एक बार प्रभु श्री शिवजी उस वृक्ष के नीचे गए और उसे देखकर उनके हृदय में बहुत आनंद हुआ॥2॥

*निज कर डासि नागरिपु छाला। बैठे सहजहिं संभु कृपाला॥
कुंद इंदु दर गौर सरीरा। भुज प्रलंब परिधन मुनिचीरा॥3॥

भावार्थ:-अपने हाथ से बाघम्बर बिछाकर कृपालु शिवजी स्वभाव से ही (बिना किसी खास प्रयोजन के) वहाँ बैठ गए। कुंद के पुष्प, चन्द्रमा और शंख के समान उनका गौर शरीर था। बड़ी लंबी भुजाएँ थीं और वे मुनियों के से (वल्कल) वस्त्र धारण किए हुए थे॥3॥

* तरुन अरुन अंबुज सम चरना। नख दुति भगत हृदय तम हरना॥
भुजग भूति भूषन त्रिपुरारी। आननु सरद चंद छबि हारी॥4॥

भावार्थ:-उनके चरण नए (पूर्ण रूप से खिले हुए) लाल कमल के समान थे, नखों की ज्योति भक्तों के हृदय का अंधकार हरने वाली थी। साँप और भस्म ही उनके भूषण थे और उन त्रिपुरासुर के शत्रु शिवजी का मुख शरद (पूर्णिमा) के चन्द्रमा की शोभा को भी हरने वाला (फीकी करने वाला) था॥4॥

शिव-पार्वती संवाद

दोहा :

* जटा मुकुट सुरसरित सिर लोचन नलिन बिसाल।
नीलकंठ लावन्यनिधि सोह बालबिधु भाल॥106॥

भावार्थ:-उनके सिर पर जटाओं का मुकुट और गंगाजी (शोभायमान) थीं। कमल के समान बड़े-बड़े नेत्र थे। उनका नील कंठ था और वे सुंदरता के भंडार थे। उनके मस्तक पर द्वितीया का चन्द्रमा शोभित था॥106॥

चौपाई :

* बैठे सोह कामरिपु कैसें। धरें सरीरु सांतरसु जैसें॥

पारबती भल अवसरु जानी। गईं संभु पहिं मातु भवानी॥1॥

भावार्थ:-कामदेव के शत्रु शिवजी वहाँ बैठे हुए ऐसे शोभित हो रहे थे, मानो शांतरस ही शरीर धारण किए बैठा हो। अच्छा मौका जानकर शिवपत्नी माता पार्वतीजी उनके पास गईं।

* जानि प्रिया आदरु अति कीन्हा। बाम भाग आसनु हर दीन्हा॥

बैठीं सिव समीप हरषाई। पूरुब जन्म कथा चित आई॥2॥

भावार्थ:-अपनी प्यारी पत्नी जानकार शिवजी ने उनका बहुत आदर-सत्कार किया और अपनी बायीं ओर बैठने के लिए आसन दिया। पार्वतीजी प्रसन्न होकर शिवजी के पास बैठ गईं। उन्हें पिछले जन्म की कथा स्मरण हो आई॥2॥

*पति हियँ हेतु अधिक अनुमानी। बिहसि उमा बोलीं प्रिय बानी॥

कथा जो सकल लोक हितकारी। सोइ पूछन चह सैल कुमारी॥3॥

भावार्थ:-स्वामी के हृदय में (अपने ऊपर पहले की अपेक्षा) अधिक प्रेम समझकर पार्वतीजी हँसकर प्रिय वचन बोलीं। (याज्ञवल्क्यजी कहते हैं कि) जो कथा सब लोगों का हित करने वाली है, उसे ही पार्वतीजी पूछना चाहती हैं॥3॥

*बिस्वनाथ मम नाथ पुरारी। त्रिभुवन महिमा बिदित तुम्हारी॥

चर अरु अचर नाग नर देवा। सकल करहिं पद पंकज सेवा॥4॥

भावार्थ:-(पार्वतीजी ने कहा-) हे संसार के स्वामी! हे मेरे नाथ! हे त्रिपुरासुर का वध करने वाले! आपकी महिमा तीनों लोकों में विख्यात है। चर, अचर, नाग, मनुष्य और देवता सभी आपके चरण कमलों की सेवा करते हैं॥4॥

दोहा :

* प्रभु समरथ सर्बग्य सिव सकल कला गुन धाम।
जोग ग्यान बैराग्य निधि प्रनत कलपतरु नाम॥107॥

भावार्थ:-हे प्रभो! आप समर्थ, सर्वज्ञ और कल्याणस्वरूप हैं। सब कलाओं और गुणों के निधान हैं और योग, ज्ञान तथा वैराग्य के भंडार हैं। आपका नाम शरणागतों के लिए कल्पवृक्ष है॥107॥

चौपाई :

* जौं मो पर प्रसन्न सुखरासी। जानिअ सत्य मोहि निज दासी॥
तौ प्रभु हरहु मोर अग्याना। कहि रघुनाथ कथा बिधि नाना॥1॥

भावार्थ:-हे सुख की राशि ! यदि आप मुझ पर प्रसन्न हैं और सचमुच मुझे अपनी दासी (या अपनी सच्ची दासी) जानते हैं, तो हे प्रभो! आप श्री रघुनाथजी की नाना प्रकार की कथा कहकर मेरा अज्ञान दूर कीजिए॥1॥

* जासु भवनु सुरतरु तर होई। सहि कि दरिद्र जनित दुखु सोई॥
ससिभूषन अस हृदयँ बिचारी। हरहु नाथ मम मति भ्रम भारी॥2॥

भावार्थ:-जिसका घर कल्पवृक्ष के नीचे हो, वह भला दरिद्रता से उत्पन्न दुःख को क्यों सहेगा? हे शशिभूषण! हे नाथ! हृदय में ऐसा विचार कर मेरी बुद्धि के भारी भ्रम को दूर कीजिए॥2॥

* प्रभु जे मुनि परमारथबादी। कहहिं राम कहुँ ब्रह्म अनादी॥
सेस सारदा बेद पुराना। सकल करहिं रघुपति गुन गाना॥3॥

भावार्थ:-हे प्रभो! जो परमार्थतत्व (ब्रह्म) के ज्ञाता और वक्ता मुनि हैं, वे श्री रामचन्द्रजी को अनादि ब्रह्म कहते हैं और शेष, सरस्वती, वेद और पुराण सभी श्री रघुनाथजी का गुण गाते हैं॥3॥

* तुम्ह पुनि राम राम दिन राती। सादर जपहु अनँग आराती॥
रामु सो अवध नृपति सुत सोई। की अज अगुन अलखगति कोई॥4॥

भावार्थ:-और हे कामदेव के शत्रु! आप भी दिन-रात आदरपूर्वक राम-राम जपा करते हैं- ये राम वही अयोध्या के राजा के पुत्र हैं? या अजन्मे, निर्गुण और अगोचर कोई और राम हैं?॥4॥

दोहा :

* जौं नृप तनय त ब्रह्म किमि नारि बिरहँ मति भोरि।
देखि चरित महिमा सुनत भ्रमति बुद्धि अति मोरि॥108॥

भावार्थ:-यदि वे राजपुत्र हैं तो ब्रह्म कैसे? (और यदि ब्रह्म हैं तो) स्त्री के विरह में उनकी मति बावली कैसे हो गई? इधर उनके ऐसे चरित्र देखकर और उधर उनकी महिमा सुनकर मेरी बुद्धि अत्यन्त चकरा रही है॥108॥

चौपाई :

* जौं अनीह ब्यापक बिभु कोऊ। कहहु बुझाइ नाथ मोहि सोऊ॥
अग्य जानि रिस उर जनि धरहू। जेहि बिधि मोह मिटै सोइ करहू॥1॥

भावार्थ:-यदि इच्छारहित, व्यापक, समर्थ ब्रह्म कोई और हैं, तो हे नाथ! मुझे उसे समझाकर कहिए। मुझे नादान समझकर मन में क्रोध न लाइए। जिस तरह मेरा मोह दूर हो, वही कीजिए॥1॥

* मैं बन दीखि राम प्रभुताई। अति भय बिकल न तुम्हहि सुनाई॥
तदपि मलिन मन बोधु न आवा। सो फलु भली भाँति हम पावा॥2॥

भावार्थ:-मैंने (पिछले जन्म में) वन में श्री रामचन्द्रजी की प्रभुता देखी थी, परन्तु अत्यन्त भयभीत होने के कारण मैंने वह बात आपको सुनाई

नहीं। तो भी मेरे मलिन मन को बोध न हुआ। उसका फल भी मैंने अच्छी तरह पा लिया॥2॥

* अजहूँ कछु संसउ मन मोरें। करहु कृपा बिनवउँ कर जोरें॥
प्रभु तब मोहि बहु भाँति प्रबोधा। नाथ सो समुझि करहु जनि क्रोधा॥3॥

भावार्थ:-अब भी मेरे मन में कुछ संदेह है। आप कृपा कीजिए, मैं हाथ जोड़कर विनती करती हूँ। हे प्रभो! आपने उस समय मुझे बहुत तरह से समझाया था (फिर भी मेरा संदेह नहीं गया), हे नाथ! यह सोचकर मुझ पर क्रोध न कीजिए॥3॥

* तब कर अस बिमोह अब नाहीं। रामकथा पर रुचि मन माहीं॥
कहहु पुनीत राम गुन गाथा। भुजगराज भूषन सुरनाथा॥4॥

भावार्थ:-मुझे अब पहले जैसा मोह नहीं है, अब तो मेरे मन में रामकथा सुनने की रुचि है। हे शेषनाग को अलंकार रूप में धारण करने वाले देवताओं के नाथ! आप श्री रामचन्द्रजी के गुणों की पवित्र कथा कहिए॥4॥

दोहा :

* बंदउँ पद धरि धरनि सिरु बिनय करउँ कर जोरि।
बरनहु रघुबर बिसद जसु श्रुति सिद्धांत निचोरि॥109॥

भावार्थ:-मैं पृथ्वी पर सिर टेककर आपके चरणों की वंदना करती हूँ और हाथ जोड़कर विनती करती हूँ। आप वेदों के सिद्धांत को निचोड़कर श्री रघुनाथजी का निर्मल यश वर्णन कीजिए॥109॥

चौपाई :

* जदपि जोषिता नहिं अधिकारी। दासी मन क्रम बचन तुम्हारी॥
गूढ़उ तत्त्व न साधु दुरावहिं। आरत अधिकारी जहँ पावहिं॥1॥

भावार्थ:-यद्यपि स्त्री होने के कारण मैं उसे सुनने की अधिकारिणी नहीं हूँ, तथापि मैं मन, वचन और कर्म से आपकी दासी हूँ। संत लोग जहाँ आर्त अधिकारी पाते हैं, वहाँ गूढ़ तत्त्व भी उससे नहीं छिपाते॥1॥

* अति आरति पूछउँ सुरराया। रघुपति कथा कहहु करि दाया॥
प्रथम सो कारन कहहु बिचारी। निर्गुन ब्रह्म सगुन बपु धारी॥2॥

भावार्थ:-हे देवताओं के स्वामी! मैं बहुत ही आर्तभाव (दीनता) से पूछती हूँ, आप मुझ पर दया करके श्री रघुनाथजी की कथा कहिए। पहले तो वह कारण विचारकर बतलाइए, जिससे निर्गुण ब्रह्म सगुण रूप धारण करता है॥2॥

* पुनि प्रभु कहहु राम अवतारा। बालचरित पुनि कहहु उदारा॥
कहहु जथा जानकी बिबाहीं। राज तजा सो दूषन काहीं॥3॥

भावार्थ:-फिर हे प्रभु! श्री रामचन्द्रजी के अवतार (जन्म) की कथा कहिए तथा उनका उदार बाल चरित्र कहिए। फिर जिस प्रकार उन्होंने श्री जानकीजी से विवाह किया, वह कथा कहिए और फिर यह बतलाइए कि उन्होंने जो राज्य छोड़ा, सो किस दोष से॥3॥

* बन बसि कीन्हे चरित अपारा। कहहु नाथ जिमि रावन मारा॥
राज बैठि कीन्हीं बहु लीला। सकल कहहु संकर सुखसीला॥4॥

भावार्थ:-हे नाथ! फिर उन्होंने वन में रहकर जो अपार चरित्र किए तथा जिस तरह रावण को मारा, वह कहिए। हे सुखस्वरूप शंकर! फिर आप उन सारी लीलाओं को कहिए जो उन्होंने राज्य (सिंहासन) पर बैठकर की थीं॥4॥

दोहा :

* बहुरि कहहु करुनायतन कीन्ह जो अचरज राम।

प्रजा सहित रघुबंसमनि किमि गवने निज धाम॥110॥

भावार्थ:-हे कृपाधाम! फिर वह अद्भुत चरित्र कहिए जो श्री रामचन्द्रजी ने किया- वे रघुकुल शिरोमणि प्रजा सहित किस प्रकार अपने धाम को गए?॥110॥

चौपाई :

* पुनि प्रभु कहहु सो तत्त्व बखानी। जेहिं बिग्यान मगन मुनि ग्यानी॥
भगति ग्यान बिग्यान बिरागा। पुनि सब बरनहु सहित बिभागा॥1॥

भावार्थ:-हे प्रभु! फिर आप उस तत्त्व को समझाकर कहिए, जिसकी अनुभूति में ज्ञानी मुनिगण सदा मग्न रहते हैं और फिर भक्ति, ज्ञान, विज्ञान और वैराग्य का विभाग सहित वर्णन कीजिए॥1॥

* औरउ राम रहस्य अनेका। कहहु नाथ अति बिमल बिबेका॥
जो प्रभु मैं पूछा नहिं होई। सोउ दयाल राखहु जनि गोई॥2॥

भावार्थ:-(इसके सिवा) श्री रामचन्द्रजी के और भी जो अनेक रहस्य (छिपे हुए भाव अथवा चरित्र) हैं, उनको कहिए। हे नाथ! आपका ज्ञान अत्यन्त निर्मल है। हे प्रभो! जो बात मैंने न भी पूछी हो, हे दयालु! उसे भी आप छिपा न रखिएगा॥2॥

* तुम्ह त्रिभुवन गुर बेद बखाना। आन जीव पाँवर का जाना॥
प्रस्न उमा कै सहज सुहाई। छल बिहीन सुनि सिव मन भाई॥3॥

भावार्थ:-वेदों ने आपको तीनों लोकों का गुरु कहा है। दूसरे पामर जीव इस रहस्य को क्या जानें! पार्वतीजी के सहज सुंदर और छलरहित (सरल) प्रश्न सुनकर शिवजी के मन को बहुत अच्छे लगे॥3॥

* हर हियँ रामचरित सब आए। प्रेम पुलक लोचन जल छाए॥
श्रीरघुनाथ रूप उर आवा। परमानंद अमित सुख पावा॥4॥

भावार्थ:-श्री महादेवजी के हृदय में सारे रामचरित्र आ गए। प्रेम के मारे उनका शरीर पुलकित हो गया और नेत्रों में जल भर आया। श्री रघुनाथजी का रूप उनके हृदय में आ गया, जिससे स्वयं परमानन्दस्वरूप शिवजी ने भी अपार सुख पाया॥4॥

दोहा :

* मगन ध्यान रस दंड जुग पुनि मन बाहेर कीन्ह।
रघुपति चरित महेस तब हरषित बरनै लीन्ह॥111।

भावार्थ:-शिवजी दो घड़ी तक ध्यान के रस (आनंद) में डूबे रहे, फिर उन्होंने मन को बाहर खींचा और तब वे प्रसन्न होकर श्री रघुनाथजी का चरित्र वर्णन करने लगे॥111॥

चौपाई :

* झूठेउ सत्य जाहि बिनु जानें। जिमि भुजंग बिनु रजु पहिचानें॥
जेहि जानें जग जाइ हेराई। जागें जथा सपन भ्रम जाई॥1॥

भावार्थ:-जिसके बिना जाने झूठ भी सत्य मालूम होता है, जैसे बिना पहचाने रस्सी में साँप का भ्रम हो जाता है और जिसके जान लेने पर जगत का उसी तरह लोप हो जाता है, जैसे जागने पर स्वप्न का भ्रम जाता रहता है॥1॥

*बंदउँ बालरूप सोइ रामू। सब सिधि सुलभ जपत जिसु नामू॥
मंगल भवन अमंगल हारी। द्रवउ सो दसरथ अजिर बिहारी॥2॥

भावार्थ:-मैं उन्हीं श्री रामचन्द्रजी के बाल रूप की वंदना करता हूँ, जिनका नाम जपने से सब सिद्धियाँ सहज ही प्राप्त हो जाती हैं। मंगल के धाम, अमंगल के हरने वाले और श्री दशरथजी के आँगन में खेलने वाले (बालरूप) श्री रामचन्द्रजी मुझ पर कृपा करें॥2॥

* करि प्रनाम रामहि त्रिपुरारी। हरषि सुधा सम गिरा उचारी॥

धन्य धन्य गिरिराजकुमारी। तुम्ह समान नहिं कोउ उपकारी॥3॥

भावार्थ:-त्रिपुरासुर का वध करने वाले शिवजी श्री रामचन्द्रजी को प्रणाम करके आनंद में भरकर अमृत के समान वाणी बोले- हे गिरिराजकुमारी पार्वती! तुम धन्य हो! धन्य हो!! तुम्हारे समान कोई उपकारी नहीं है॥3॥

* पूँछेहु रघुपति कथा प्रसंगा। सकल लोक जग पावनि गंगा॥

तुम्ह रघुबीर चरन अनुरागी। कीन्हिहु प्रस्न जगत हित लागी॥4॥

भावार्थ:-जो तुमने श्री रघुनाथजी की कथा का प्रसंग पूछा है, जो कथा समस्त लोकों के लिए जगत को पवित्र करने वाली गंगाजी के समान है। तुमने जगत के कल्याण के लिए ही प्रश्न पूछे हैं। तुम श्री रघुनाथजी के चरणों में प्रेम रखने वाली हो॥4॥

दोहा :

* राम कृपा तें पारबति सपनेहुँ तव मन माहिं।

सोक मोह संदेह भ्रम मम बिचार कछु नाहिं॥112॥

भावार्थ:-हे पार्वती! मेरे विचार में तो श्री रामजी की कृपा से तुम्हारे मन में स्वप्न में भी शोक, मोह, संदेह और भ्रम कुछ भी नहीं है॥112॥

चौपाई :

* तदपि असंका कीन्हिहु सोई। कहत सुनत सब कर हित होई॥

जिन्ह हरिकथा सुनी नहिं काना। श्रवन रंध्र अहिभवन समाना॥1॥

भावार्थ:-फिर भी तुमने इसीलिए वही (पुरानी) शंका की है कि इस प्रसंग के कहने-सुनने से सबका कल्याण होगा। जिन्होंने अपने कानों से भगवान की कथा नहीं सुनी, उनके कानों के छिद्र साँप के बिल के समान हैं॥1॥

* नयनन्हि संत दरस नहिं देखा। लोचन मोरपंख कर लेखा॥
तेसिर कटु तुंबरि समतूला। जे न नमत हरि गुर पद मूला॥2॥

भावार्थ:-जिन्होंने अपने नेत्रों से संतों के दर्शन नहीं किए, उनके वे नेत्र मोर के पंखों पर दिखने वाली नकली आँखों की गिनती में हैं। वे सिर कड़वी तूँबी के समान हैं, जो श्री हरि और गुरु के चरणतल पर नहीं झुकते॥2॥

* जिन्ह हरिभगति हृदयँ नहिं आनी। जीवत सव समान तेइ प्रानी॥
जो नहिं करइ राम गुन गाना। जीह सो दादुर जीह समाना॥3॥

भावार्थ:-जिन्होंने भगवान की भक्ति को अपने हृदय में स्थान नहीं दिया, वे प्राणी जीते हुए ही मुर्दे के समान हैं, जो जीभ श्री रामचन्द्रजी के गुणों का गान नहीं करती, वह मेंढक की जीभ के समान है॥3॥

* कुलिस कठोर निठुर सोइ छाती। सुनि हरिचरित न जो हरषाती॥
गिरिजा सुनहु राम कै लीला। सुर हित दनुज बिमोहनसीला॥4॥

भावार्थ:-वह हृदय वज्र के समान कड़ा और निष्ठुर है, जो भगवान के चरित्र सुनकर हर्षित नहीं होता। हे पार्वती! श्री रामचन्द्रजी की लीला सुनो, यह देवताओं का कल्याण करने वाली और दैत्यों को विशेष रूप से मोहित करने वाली है॥4॥

दोहा :

* रामकथा सुरधेनु सम सेवत सब सुख दानि।
सतसमाज सुरलोक सब को न सुनै अस जानि॥113॥

भावार्थ:-श्री रामचन्द्रजी की कथा कामधेनु के समान सेवा करने से सब सुखों को देने वाली है और सत्पुरुषों के समाज ही सब देवताओं के लोक हैं, ऐसा जानकर इसे कौन न सुनेगा!॥113॥

चौपाई :

* रामकथा सुंदर कर तारी। संसय बिहग उड़ावनिहारी॥
रामकथा कलि बिटप कुठारी। सादर सुनु गिरिराजकुमारी॥1॥

भावार्थ:-श्री रामचन्द्रजी की कथा हाथ की सुंदर ताली है, जो संदेह रूपी पक्षियों को उड़ा देती है। फिर रामकथा कलियुग रूपी वृक्ष को काटने के लिए कुल्हाड़ी है। हे गिरिराजकुमारी! तुम इसे आदरपूर्वक सुनो॥1॥

* राम नाम गुन चरित सुहाए। जनम करम अगनित श्रुति गाए॥
जथा अनंत राम भगवाना। तथा कथा कीरति गुन नाना॥2॥

भावार्थ:-वेदों ने श्री रामचन्द्रजी के सुंदर नाम, गुण, चरित्र, जन्म और कर्म सभी अनगिनत कहे हैं। जिस प्रकार भगवान श्री रामचन्द्रजी अनन्त हैं, उसी तरह उनकी कथा, कीर्ति और गुण भी अनंत हैं॥2॥

* तदपि जथा श्रुत जसि मति मोरी। कहिहउँ देखि प्रीति अति तोरी॥
उमा प्रस्न तव सहज सुहाई। सुखद संतसंमत मोहि भाई॥3॥

भावार्थ:-तो भी तुम्हारी अत्यन्त प्रीति देखकर, जैसा कुछ मैंने सुना है और जैसी मेरी बुद्धि है, उसी के अनुसार मैं कहूँगा। हे पार्वती! तुम्हारा प्रश्न स्वाभाविक ही सुंदर, सुखदायक और संतसम्मत है और मुझे तो बहुत ही अच्छा लगा है॥3॥

* एक बात नहिं मोहि सोहानी। जदपि मोह बस कहेहु भवानी॥
तुम्ह जो कहा राम कोउ आना। जेहि श्रुति गाव धरहिं मुनि ध्याना॥4॥

भावार्थ:-परंतु हे पार्वती! एक बात मुझे अच्छी नहीं लगी, यद्यपि वह तुमने मोह के वश होकर ही कही है। तुमने जो यह कहा कि वे राम कोई और हैं, जिन्हें वेद गाते और मुनिजन जिनका ध्यान धरते हैं-॥4॥

दोहा :

* कहहिं सुनहिं अस अधम नर ग्रसे जे मोह पिसाच।
पाषंडी हरि पद बिमुख जानहिं झूठ न साच॥114॥

भावार्थ:-जो मोह रूपी पिशाच के द्वारा ग्रस्त हैं, पाखण्डी हैं, भगवान के चरणों से विमुख हैं और जो झूठ-सच कुछ भी नहीं जानते, ऐसे अधम मनुष्य ही इस तरह कहते-सुनते हैं॥114॥

चौपाई :

* अग्य अकोबिद अंध अभागी। काई बिषय मुकुर मन लागी॥
लंपट कपटी कुटिल बिसेषी। सपनेहुँ संतसभा नहिं देखी॥1॥

भावार्थ:-जो अज्ञानी, मूर्ख, अंधे और भाग्यहीन हैं और जिनके मन रूपी दर्पण पर विषय रूपी काई जमी हुई है, जो व्यभिचारी, छली और बड़े कुटिल हैं और जिन्होंने कभी स्वप्न में भी संत समाज के दर्शन नहीं किए॥1॥

* कहहिं ते बेद असंमत बानी। जिन्ह कें सूझ लाभु नहिं हानी॥
मुकुर मलिन अरु नयन बिहीना। राम रूप देखहिं किमि दीना॥2॥

भावार्थ:-और जिन्हें अपने लाभ-हानि नहीं सूझती, वे ही ऐसी वेदविरुद्ध बातें कहा करते हैं, जिनका हृदय रूपी दर्पण मैला है और जो नेत्रों से हीन हैं, वे बेचारे श्री रामचन्द्रजी का रूप कैसे देखें!॥2॥

* जिन्ह कें अगुन न सगुन बिबेका। जल्पहिं कल्पित बचन अनेका॥
हरिमाया बस जगत भ्रमाहीं। तिन्हहि कहत कछु अघटित नाहीं॥3॥

भावार्थ:-जिनको निर्गुण-सगुण का कुछ भी विवेक नहीं है, जो अनेक मनगढ़ंत बातें बका करते हैं, जो श्री हरि की माया के वश में होकर

जगत में (जन्म-मृत्यु के चक्र में) भ्रमते फिरते हैं, उनके लिए कुछ भी कह डालना असंभव नहीं है॥3॥

* बातुल भूत बिबस मतवारे। ते नहिं बोलहिं बचन बिचारे॥
जिन्ह कृत महामोह मद पाना। तिन्ह कर कहा करिअ नहिं काना॥4॥

भावार्थ:-जिन्हें वायु का रोग (सन्निपात, उन्माद आदि) हो गया हो, जो भूत के वश हो गए हैं और जो नशे में चूर हैं, ऐसे लोग विचारकर वचन नहीं बोलते। जिन्होंने महामोह रूपी मदिरा पी रखी है, उनके कहने पर कान नहीं देना चाहिए॥4॥

सोरठा :

* अस निज हृदयँ बिचारि तजु संसय भजु राम पद।
सुनु गिरिराज कुमारि भ्रम तम रबि कर बचन मम॥115॥

भावार्थ:-अपने हृदय में ऐसा विचार कर संदेह छोड़ दो और श्री रामचन्द्रजी के चरणों को भजो। हे पार्वती! भ्रम रूपी अंधकार के नाश करने के लिए सूर्य की किरणों के समान मेरे वचनों को सुनो!॥115॥

चौपाई :

* सगुनहि अगुनहि नहिं कछु भेदा। गावहिं मुनि पुरान बुध बेदा॥
अगुन अरूप अलख अज जोई। भगत प्रेम बस सगुन सो होई॥1॥

भावार्थ:-सगुण और निर्गुण में कुछ भी भेद नहीं है- मुनि, पुराण, पण्डित और वेद सभी ऐसा कहते हैं। जो निर्गुण, अरूप (निराकार), अलख (अव्यक्त) और अजन्मा है, वही भक्तों के प्रेमवश सगुण हो जाता है॥1॥

* जो गुन रहित सगुन सोइ कैसें। जलु हिम उपल बिलग नहिं जैसें॥
जासु नाम भ्रम तिमिर पतंगा। तेहि किमि कहिअ बिमोह प्रसंगा॥2॥

भावार्थ:-जो निर्गुण है वही सगुण कैसे है? जैसे जल और ओले में भेद नहीं। (दोनों जल ही हैं, ऐसे ही निर्गुण और सगुण एक ही हैं।) जिसका नाम भ्रम रूपी अंधकार के मिटाने के लिए सूर्य है, उसके लिए मोह का प्रसंग भी कैसे कहा जा सकता है?॥2॥

* राम सच्चिदानंद दिनेसा। नहिं तहँ मोह निसा लवलेसा॥
सहज प्रकासरूप भगवाना। नहिं तहँ पुनि बिग्यान बिहाना॥3॥

भावार्थ:-श्री रामचन्द्रजी सच्चिदानन्दस्वरूप सूर्य हैं। वहाँ मोह रूपी रात्रि का लवलेश भी नहीं है। वे स्वभाव से ही प्रकाश रूप और (षडैश्वर्ययुक्त) भगवान है, वहाँ तो विज्ञान रूपी प्रातःकाल भी नहीं होता (अज्ञान रूपी रात्रि हो तब तो विज्ञान रूपी प्रातःकाल हो, भगवान तो नित्य ज्ञान स्वरूप हैं।)॥3॥

* हरष बिषाद ग्यान अग्याना। जीव धर्म अहमिति अभिमाना॥
राम ब्रह्म ब्यापक जग जाना। परमानंद परेस पुराना॥4॥

भावार्थ:-हर्ष, शोक, ज्ञान, अज्ञान, अहंता और अभिमान- ये सब जीव के धर्म हैं। श्री रामचन्द्रजी तो व्यापक ब्रह्म, परमानन्दस्वरूप, परात्पर प्रभु और पुराण पुरुष हैं। इस बात को सारा जगत जानता है॥4॥

दोहा :

* पुरुष प्रसिद्ध प्रकाश निधि प्रगट परावर नाथ।
रघुकुलमनि मम स्वामि सोइ कहि सिवँ नायउ माथ॥116॥

भावार्थ:-जो (पुराण) पुरुष प्रसिद्ध हैं, प्रकाश के भंडार हैं, सब रूपों में प्रकट हैं, जीव, माया और जगत सबके स्वामी हैं, वे ही रघुकुल मणि श्री रामचन्द्रजी मेरे स्वामी हैं- ऐसा कहकर शिवजी ने उनको मस्तक नवाया॥116॥

चौपाई :

* निज भ्रम नहिं समुझहिं अग्यानी। प्रभु पर मोह धरहिं जड़ प्रानी॥
जथा गगन घन पटल निहारी। झाँपेउ भानु कहहिं कुबिचारी॥1॥

भावार्थ:-अज्ञानी मनुष्य अपने भ्रम को तो समझते नहीं और वे मूर्ख प्रभु श्री रामचन्द्रजी पर उसका आरोप करते हैं, जैसे आकाश में बादलों का परदा देखकर कुविचारी (अज्ञानी) लोग कहते हैं कि बादलों ने सूर्य को ढँक लिया॥1॥

* चितव जो लोचन अंगुलि लाएँ। प्रगट जुगल ससि तेहि के भाएँ॥
उमा राम बिषइक अस मोहा। नभ तम धूम धूरि जिमि सोहा॥2॥

भावार्थ:-जो मनुष्य आँख में अँगुली लगाकर देखता है, उसके लिए तो दो चन्द्रमा प्रकट (प्रत्यक्ष) हैं। हे पार्वती! श्री रामचन्द्रजी के विषय में इस प्रकार मोह की कल्पना करना वैसा ही है, जैसा आकाश में अंधकार, धुएँ और धूल का सोहना (दिखना)। (आकाश जैसे निर्मल और निर्लेप है, उसको कोई मलिन या स्पर्श नहीं कर सकता, इसी प्रकार भगवान श्री रामचन्द्रजी नित्य निर्मल और निर्लेप हैं।) ॥2॥

* बिषय करन सुर जीव समेता। सकल एक तें एक सचेता॥
सब कर परम प्रकासक जोई। राम अनादि अवधपति सोई॥3॥

भावार्थ:-विषय, इन्द्रियाँ, इन्द्रियों के देवता और जीवात्मा- ये सब एक की सहायता से एक चेतन होते हैं। (अर्थात विषयों का प्रकाश इन्द्रियों से, इन्द्रियों का इन्द्रियों के देवताओं से और इन्द्रिय देवताओं का चेतन जीवात्मा से प्रकाश होता है।) इन सबका जो परम प्रकाशक है (अर्थात जिससे इन सबका प्रकाश होता है), वही अनादि ब्रह्म अयोध्या नरेश श्री रामचन्द्रजी हैं॥3॥

* जगत प्रकास्य प्रकासक रामू। मायाधीस ग्यान गुन धामू॥
जासु सत्यता तें जड़ माया। भास सत्य इव मोह सहाया॥4॥

भावार्थ:-यह जगत प्रकाश्य है और श्री रामचन्द्रजी इसके प्रकाशक हैं। वे माया के स्वामी और ज्ञान तथा गुणों के धाम हैं। जिनकी सत्ता से, मोह की सहायता पाकर जड़ माया भी सत्य सी भासित होती है॥4॥

दोहा :

*रजत सीप महुँ भास जिमि जथा भानु कर बारि।
जदपि मृषा तिहुँ काल सोइ भ्रम न सकइ कोउ टारि॥117॥

भावार्थ:-जैसे सीप में चाँदी की और सूर्य की किरणों में पानी की (बिना हुए भी) प्रतीति होती है। यद्यपि यह प्रतीति तीनों कालों में झूठ है, तथापि इस भ्रम को कोई हटा नहीं सकता॥117॥

चौपाई :

* एहि बिधि जग हरि आश्रित रहई। जदपि असत्य देत दुख अहई॥
जौं सपनें सिर काटै कोई। बिनु जागें न दूरि दुख होई॥1॥

भावार्थ:-इसी तरह यह संसार भगवान के आश्रित रहता है। यद्यपि यह असत्य है, तो भी दुःख तो देता ही है, जिस तरह स्वप्न में कोई सिर काट ले तो बिना जागे वह दुःख दूर नहीं होता॥1॥

* जासु कृपाँ अस भ्रम मिटि जाई। गिरिजा सोइ कृपाल रघुराई॥
आदि अंत कोउ जासु न पावा। मति अनुमानि निगम अस गावा॥2॥

भावार्थ:-हे पार्वती! जिनकी कृपा से इस प्रकार का भ्रम मिट जाता है, वही कृपालु श्री रघुनाथजी हैं। जिनका आदि और अंत किसी ने नहीं (जान) पाया। वेदों ने अपनी बुद्धि से अनुमान करके इस प्रकार (नीचे लिखे अनुसार) गाया है-॥2॥

* बिनु पद चलइ सुनइ बिनु काना। कर बिनु करम करइ बिधि नाना॥
आनन रहित सकल रस भोगी। बिनु बानी बकता बड़ जोगी॥3॥

भावार्थ:-वह (ब्रह्म) बिना ही पैर के चलता है, बिना ही कान के सुनता है, बिना ही हाथ के नाना प्रकार के काम करता है, बिना मुँह (जिव्हा) के ही सारे (छहों) रसों का आनंद लेता है और बिना ही वाणी के बहुत योग्य वक्ता है॥3॥

* तन बिनु परस नयन बिनु देखा। ग्रहइ घ्रान बिनु बास असेषा॥
असि सब भाँति अलौकिक करनी। महिमा जासु जाइ नहिं बरनी॥4॥

भावार्थ:-वह बिना ही शरीर (त्वचा) के स्पर्श करता है, बिना ही आँखों के देखता है और बिना ही नाक के सब गंधों को ग्रहण करता है (सूँघता है)। उस ब्रह्म की करनी सभी प्रकार से ऐसी अलौकिक है कि जिसकी महिमा कही नहीं जा सकती॥4॥

दोहा :

* जेहि इमि गावहिं बेद बुध जाहि धरहिं मुनि ध्यान।
सोइ दसरथ सुत भगत हित कोसलपति भगवान॥118॥

भावार्थ:-जिसका वेद और पंडित इस प्रकार वर्णन करते हैं और मुनि जिसका ध्यान धरते हैं, वही दशरथनंदन, भक्तों के हितकारी, अयोध्या के स्वामी भगवान श्री रामचन्द्रजी हैं॥118॥

चौपाई :

*कासीं मरत जंतु अवलोकी। जासु नाम बल करउँ बिसोकी॥
सोइ प्रभु मोर चराचर स्वामी। रघुबर सब उर अंतरजामी॥1॥

भावार्थ:-(हे पार्वती !) जिनके नाम के बल से काशी में मरते हुए प्राणी को देखकर मैं उसे (राम मंत्र देकर) शोकरहित कर देता हूँ (मुक्त कर देता

हूँ), वही मेरे प्रभु रघुश्रेष्ठ श्री रामचन्द्रजी जड़-चेतन के स्वामी और सबके हृदय के भीतर की जानने वाले हैं॥1॥

* बिबसहुँ जासु नाम नर कहहीं। जनम अनेक रचित अघ दहहीं॥
सादर सुमिरन जे नर करहीं। भव बारिधि गोपद इव तरहीं॥2॥

भावार्थ:-विवश होकर (बिना इच्छा के) भी जिनका नाम लेने से मनुष्यों के अनेक जन्मों में किए हुए पाप जल जाते हैं। फिर जो मनुष्य आदरपूर्वक उनका स्मरण करते हैं, वे तो संसार रूपी (दुस्तर) समुद्र को गाय के खुर से बने हुए गड्ढे के समान (अर्थात बिना किसी परिश्रम के) पार कर जाते हैं॥2॥

* राम सो परमातमा भवानी। तहँ भ्रम अति अबिहित तव बानी॥
अस संसय आनत उर माहीं। ग्यान बिराग सकल गुन जाहीं॥3॥

भावार्थ:-हे पार्वती! वही परमात्मा श्री रामचन्द्रजी हैं। उनमें भ्रम (देखने में आता) है, तुम्हारा ऐसा कहना अत्यन्त ही अनुचित है। इस प्रकार का संदेह मन में लाते ही मनुष्य के ज्ञान, वैराग्य आदि सारे सद्‌गुण नष्ट हो जाते हैं॥3॥

* सुनि सिव के भ्रम भंजन बचना। मिटि गै सब कुतरक कै रचना॥
भइ रघुपति पद प्रीति प्रतीती। दारुन असंभावना बीती॥4॥

भावार्थ:-शिवजी के भ्रमनाशक वचनों को सुनकर पार्वतीजी के सब कुतर्कों की रचना मिट गई। श्री रघुनाथजी के चरणों में उनका प्रेम और विश्वास हो गया और कठिन असम्भावना (जिसका होना- सम्भव नहीं, ऐसी मिथ्या कल्पना) जाती रही!॥4॥

दोहा :

* पुनि पुनि प्रभु पद कमल गहि जोरि पंकरुह पानि।

बोलीं गिरिजा बचन बर मनहुँ प्रेम रस सानि॥119॥

भावार्थ:-बार- बार स्वामी (शिवजी) के चरणकमलों को पकड़कर और अपने कमल के समान हाथों को जोड़कर पार्वतीजी मानो प्रेमरस में सानकर सुंदर वचन बोलीं॥119॥

चौपाई :

* ससि कर सम सुनि गिरा तुम्हारी। मिटा मोह सरदातप भारी॥
तुम्ह कृपाल सबु संसउ हरेऊ। राम स्वरूप जानि मोहि परेऊ॥1॥

भावार्थ:-आपकी चन्द्रमा की किरणों के समान शीतल वाणी सुनकर मेरा अज्ञान रूपी शरद-ऋतु (क्वार) की धूप का भारी ताप मिट गया। हे कृपालु! आपने मेरा सब संदेह हर लिया, अब श्री रामचन्द्रजी का यथार्थ स्वरूप मेरी समझ में आ गया॥1॥

* नाथ कृपाँ अब गयउ बिषादा। सुखी भयउँ प्रभु चरन प्रसादा॥
अब मोहि आपनि किंकरि जानी। जदपि सहज जड़ नारि अयानी॥2॥

भावार्थ:-हे नाथ! आपकी कृपा से अब मेरा विषाद जाता रहा और आपके चरणों के अनुग्रह से मैं सुखी हो गई। यद्यपि मैं स्त्री होने के कारण स्वभाव से ही मूर्ख और ज्ञानहीन हूँ, तो भी अब आप मुझे अपनी दासी जानकर-॥2॥

* प्रथम जो मैं पूछा सोइ कहहू। जौं मो पर प्रसन्न प्रभु अहहू॥
राम ब्रह्म चिनमय अबिनासी। सर्ब रहित सब उर पुर बासी॥3॥

भावार्थ:-हे प्रभो! यदि आप मुझ पर प्रसन्न हैं, तो जो बात मैंने पहले आपसे पूछी थी, वही कहिए। (यह सत्य है कि) श्री रामचन्द्रजी ब्रह्म हैं, चिन्मय (ज्ञानस्वरूप) हैं, अविनाशी हैं, सबसे रहित और सबके हृदय रूपी नगरी में निवास करने वाले हैं॥3॥

* नाथ धरेउ नरतनु केहि हेतू। मोहि समुझाइ कहहु बृषकेतू॥
उमा बचन सुनि परम बिनीता। रामकथा पर प्रीति पुनीता॥4॥

भावार्थ:-फिर हे नाथ! उन्होंने मनुष्य का शरीर किस कारण से धारण किया? हे धर्म की ध्वजा धारण करने वाले प्रभो! यह मुझे समझाकर कहिए। पार्वती के अत्यन्त नम्र वचन सुनकर और श्री रामचन्द्रजी की कथा में उनका विशुद्ध प्रेम देखकर-॥4॥

दोहा :

* हियँ हरषे कामारि तब संकर सहज सुजान।
बहु बिधि उमहि प्रसंसि पुनि बोले कृपानिधान॥120 क॥

भावार्थ:-तब कामदेव के शत्रु, स्वाभाविक ही सुजान, कृपा निधान शिवजी मन में बहुत ही हर्षित हुए और बहुत प्रकार से पार्वती की बड़ाई करके फिर बोले- ॥120 (क)॥

नवाह्न पारायण, पहला विश्राम

मासपारायण, चौथा विश्राम

अवतार के हेतु

सोरठा :

* सुनु सुभ कथा भवानि रामचरितमानस बिमल।
कहा भुसुंडि बखानि सुना बिहग नायक गरुड़॥120 ख॥

भावार्थ:-हे पार्वती! निर्मल रामचरितमानस की वह मंगलमयी कथा सुनो जिसे काकभुशुण्डि ने विस्तार से कहा और पक्षियों के राजा गरुड़जी ने सुना था॥120 (ख)॥

* सो संबाद उदार जेहि बिधि भा आगें कहब।
सुनहु राम अवतार चरित परम सुंदर अनघ॥120 ग॥

भावार्थ:-वह श्रेष्ठ संवाद जिस प्रकार हुआ, वह मैं आगे कहूँगा। अभी तुम श्री रामचन्द्रजी के अवतार का परम सुंदर और पवित्र (पापनाशक) चरित्र सुनो॥120(ग)॥

* हरि गुन नाम अपार कथा रूप अगनित अमित।
मैं निज मति अनुसार कहउँ उमा सादर सुनहु॥120 घ॥

भावार्थ:-श्री हरि के गुण, मान, कथा और रूप सभी अपार, अगणित और असीम हैं। फिर भी हे पार्वती! मैं अपनी बुद्धि के अनुसार कहता हूँ, तुम आदरपूर्वक सुनो॥120 (घ)॥

चौपाई :

* सुनु गिरिजा हरिचरित सुहाए। बिपुल बिसद निगमागम गाए॥
हरि अवतार हेतु जेहि होई। इदमित्थं कहि जाइ न सोई॥1॥

भावार्थ:-हे पार्वती! सुनो, वेद-शास्त्रों ने श्री हरि के सुंदर, विस्तृत और निर्मल चरित्रों का गान किया है। हरि का अवतार जिस कारण से होता है, वह कारण 'बस यही है' ऐसा नहीं कहा जा सकता (अनेकों कारण हो सकते हैं और ऐसे भी हो सकते हैं, जिन्हें कोई जान ही नहीं सकता)॥1॥

* राम अतर्क्य बुद्धि मन बानी। मत हमार अस सुनहि सयानी॥
तदपि संत मुनि बेद पुराना। जस कछु कहहिं स्वमति अनुमाना॥2॥

भावार्थ:-हे सयानी! सुनो, हमारा मत तो यह है कि बुद्धि, मन और वाणी से श्री रामचन्द्रजी की तर्कना नहीं की जा सकती। तथापि संत, मुनि, वेद और पुराण अपनी-अपनी बुद्धि के अनुसार जैसा कुछ कहते हैं॥2॥

* तस मैं सुमुखि सुनावउँ तोही। समुझि परइ जस कारन मोही॥

जब जब होई धरम कै हानी। बाढ़हिं असुर अधम अभिमानी॥3॥

भावार्थ:-और जैसा कुछ मेरी समझ में आता है, हे सुमुखि! वही कारण मैं तुमको सुनाता हूँ। जब-जब धर्म का ह्रास होता है और नीच अभिमानी राक्षस बढ़ जाते हैं॥3॥

चौपाई :

* करहिं अनीति जाइ नहिं बरनी। सीदहिं बिप्र धेनु सुर धरनी॥
तब तब प्रभु धरि बिबिध सरीरा। हरहिं कृपानिधि सज्जन पीरा॥4॥

भावार्थ:-और वे ऐसा अन्याय करते हैं कि जिसका वर्णन नहीं हो सकता तथा ब्राह्मण, गो, देवता और पृथ्वी कष्ट पाते हैं, तब-तब वे कृपानिधान प्रभु भाँति-भाँति के (दिव्य) शरीर धारण कर सज्जनों की पीड़ा हरते हैं॥4॥

दोहा :

* असुर मारि थापहिं सुरन्ह राखहिं निज श्रुति सेतु।
जग बिस्तारहिं बिसद जस राम जन्म कर हेतु॥121॥

भावार्थ:-वे असुरों को मारकर देवताओं को स्थापित करते हैं, अपने (श्वास रूप) वेदों की मर्यादा की रक्षा करते हैं और जगत में अपना निर्मल यश फैलाते हैं। श्री रामचन्द्रजी के अवतार का यह कारण है॥121॥

चौपाई :

* सोइ जस गाइ भगत भव तरहीं। कृपासिंधु जन हित तनु धरहीं॥
राम जनम के हेतु अनेका। परम बिचित्र एक तें एका॥1॥

भावार्थ:-उसी यश को गा-गाकर भक्तजन भवसागर से तर जाते हैं। कृपासागर भगवान भक्तों के हित के लिए शरीर धारण करते हैं। श्री

रामचन्द्रजी के जन्म लेने के अनेक कारण हैं, जो एक से एक बढ़कर विचित्र हैं॥1॥

* जनम एक दुइ कहउँ बखानी। सावधान सुनु सुमति भवानी॥
द्वारपाल हरि के प्रिय दोऊ। जय अरु बिजय जान सब कोऊ॥2॥

भावार्थ:-हे सुंदर बुद्धि वाली भवानी! मैं उनके दो-एक जन्मों का विस्तार से वर्णन करता हूँ, तुम सावधान होकर सुनो। श्री हरि के जय और विजय दो प्यारे द्वारपाल हैं, जिनको सब कोई जानते हैं॥2॥

* बिप्र श्राप तें दूनउ भाई। तामस असुर देह तिन्ह पाई॥
कनककसिपु अरु हाटकलोचन। जगत बिदित सुरपति मद मोचन॥3॥

भावार्थ:-उन दोनों भाइयों ने ब्राह्मण (सनकादि) के शाप से असुरों का तामसी शरीर पाया। एक का नाम था हिरण्यकशिपु और दूसरे का हिरण्याक्ष। ये देवराज इन्द्र के गर्व को छुड़ाने वाले सारे जगत में प्रसिद्ध हुए॥3॥

* बिजई समर बीर बिख्याता। धरि बराह बपु एक निपाता॥
होइ नरहरि दूसर पुनि मारा। जन प्रहलाद सुजस बिस्तारा॥4॥

भावार्थ:-वे युद्ध में विजय पाने वाले विख्यात वीर थे। इनमें से एक (हिरण्याक्ष) को भगवान ने वराह (सूअर) का शरीर धारण करके मारा, फिर दूसरे (हिरण्यकशिपु) का नरसिंह रूप धारण करके वध किया और अपने भक्त प्रह्लाद का सुंदर यश फैलाया॥4॥

दोहा :

* भए निसाचर जाइ तेइ महाबीर बलवान।
कुंभकरन रावन सुभट सुर बिजई जग जान॥122॥

भावार्थ:-वे ही (दोनों) जाकर देवताओं को जीतने वाले तथा बड़े योद्धा, रावण और कुम्भकर्ण नामक बड़े बलवान और महावीर राक्षस हुए, जिन्हें सारा जगत जानता है॥122॥

चौपाई :

* मुकुत न भए हते भगवाना। तीनि जनम द्विज बचन प्रवाना॥
एक बार तिन्ह के हित लागी। धरेउ सरीर भगत अनुरागी॥1॥

भावार्थ:-भगवान के द्वारा मारे जाने पर भी वे (हिरण्याक्ष और हिरण्यकशिपु) इसीलिए मुक्त नहीं हुए कि ब्राह्मण के वचन (शाप) का प्रमाण तीन जन्म के लिए था। अतः एक बार उनके कल्याण के लिए भक्तप्रेमी भगवान ने फिर अवतार लिया॥1॥

* कस्यप अदिति तहाँ पितु माता। दसरथ कौसल्या बिख्याता॥
एक कलप एहि बिधि अवतारा। चरित पवित्र किए संसारा॥2॥

भावार्थ:-वहाँ (उस अवतार में) कश्यप और अदिति उनके माता-पिता हुए, जो दशरथ और कौसल्या के नाम से प्रसिद्ध थे। एक कल्प में इस प्रकार अवतार लेकर उन्होंने संसार में पवित्र लीलाएँ कीं॥2॥

* एक कलप सुर देखि दुखारे। समर जलंधर सन सब हारे॥
संभु कीन्ह संग्राम अपारा। दनुज महाबल मरइ न मारा॥3॥

भावार्थ:-एक कल्प में सब देवताओं को जलन्धर दैत्य से युद्ध में हार जाने के कारण दुःखी देखकर शिवजी ने उसके साथ बड़ा घोर युद्ध किया, पर वह महाबली दैत्य मारे नहीं मरता था॥3॥

* परम सती असुराधिप नारी। तेहिं बल ताहि न जितहिं पुरारी॥4॥

भावार्थ:-उस दैत्यराज की स्त्री परम सती (बड़ी ही पतिव्रता) थी। उसी के प्रताप से त्रिपुरासुर (जैसे अजेय शत्रु) का विनाश करने वाले शिवजी भी उस दैत्य को नहीं जीत सके॥4॥

दोहा :

* छल करि टारेउ तासु ब्रत प्रभु सुर कारज कीन्ह।
जब तेहिं जानेउ मरम तब श्राप कोप करि दीन्ह॥123॥

भावार्थ:-प्रभु ने छल से उस स्त्री का व्रत भंग कर देवताओं का काम किया। जब उस स्त्री ने यह भेद जाना, तब उसने क्रोध करके भगवान को शाप दिया॥123॥

चौपाई :

* तासु श्राप हरि दीन्ह प्रमाना। कौतुकनिधि कृपाल भगवाना॥
तहाँ जलंधर रावन भयऊ। रन हति राम परम पद दयऊ॥1॥

भावार्थ:-लीलाओं के भंडार कृपालु हरि ने उस स्त्री के शाप को प्रामाण्य दिया (स्वीकार किया)। वही जलन्धर उस कल्प में रावण हुआ, जिसे श्री रामचन्द्रजी ने युद्ध में मारकर परमपद दिया॥1॥

* एक जनम कर कारन एहा। जेहि लगि राम धरी नरदेहा॥
प्रति अवतार कथा प्रभु केरी। सुनु मुनि बरनी कबिन्ह घनेरी॥2॥

भावार्थ:-एक जन्म का कारण यह था, जिससे श्री रामचन्द्रजी ने मनुष्य देह धारण किया। हे भरद्वाज मुनि! सुनो, प्रभु के प्रत्येक अवतार की कथा का कवियों ने नाना प्रकार से वर्णन किया है॥2॥

* नारद श्राप दीन्ह एक बारा। कलप एक तेहि लगि अवतारा॥
गिरिजा चकित भईं सुनि बानी। नारद बिष्नुभगत पुनि ग्यानी॥3॥

भावार्थ:-एक बार नारदजी ने शाप दिया, अतः एक कल्प में उसके लिए अवतार हुआ। यह बात सुनकर पार्वतीजी बड़ी चकित हुईं (और बोलीं कि) नारदजी तो विष्णु भक्त और ज्ञानी हैं॥3॥

* कारन कवन श्राप मुनि दीन्हा। का अपराध रमापति कीन्हा॥

यह प्रसंग मोहि कहहु पुरारी। मुनि मन मोह आचरज भारी॥4॥
भावार्थ:-मुनि ने भगवान को शाप किस कारण से दिया। लक्ष्मीपति भगवान ने उनका क्या अपराध किया था? हे पुरारि (शंकरजी)! यह कथा मुझसे कहिए। मुनि नारद के मन में मोह होना बड़े आश्चर्य की बात है॥4॥

दोहा :

* बोले बिहसि महेस तब ग्यानी मूढ़ न कोइ।
जेहि जस रघुपति करहिं जब सो तस तेहि छन होइ॥124 क॥

भावार्थ:-तब महादेवजी ने हँसकर कहा- न कोई ज्ञानी है न मूर्ख। श्री रघुनाथजी जब जिसको जैसा करते हैं, वह उसी क्षण वैसा ही हो जाता है॥124 (क)॥

सोरठा :

* कहउँ राम गुन गाथ भरद्वाज सादर सुनहु।
भव भंजन रघुनाथ भजु तुलसी तजि मान मद॥124 ख॥

भावार्थ:-(याज्ञवल्क्यजी कहते हैं-) हे भरद्वाज! मैं श्री रामचन्द्रजी के गुणों की कथा कहता हूँ, तुम आदर से सुनो। तुलसीदासजी कहते हैं- मान और मद को छोड़कर आवागमन का नाश करने वाले रघुनाथजी को भजो॥124 (ख)॥

चौपाई :

*हिमगिरि गुहा एक अति पावनि। बह समीप सुरसरी सुहावनि॥
आश्रम परम पुनीत सुहावा। देखि देवरिषि मन अति भावा॥1॥

भावार्थ:-हिमालय पर्वत में एक बड़ी पवित्र गुफा थी। उसके समीप ही सुंदर गंगाजी बहती थीं। वह परम पवित्र सुंदर आश्रम देखने पर नारदजी के मन को बहुत ही सुहावना लगा॥1॥

* निरखि सैल सरि बिपिन बिभागा। भयउ रमापति पद अनुरागा॥

सुमिरत हरिहि श्राप गति बाधी। सहज बिमल मन लागि समाधी॥2॥

भावार्थ:-पर्वत, नदी और वन के (सुंदर) विभागों को देखकर नादरजी का लक्ष्मीकांत भगवान के चरणों में प्रेम हो गया। भगवान का स्मरण करते ही उन (नारद मुनि) के शाप की (जो शाप उन्हें दक्ष प्रजापति ने दिया था और जिसके कारण वे एक स्थान पर नहीं ठहर सकते थे) गति रुक गई और मन के स्वाभाविक ही निर्मल होने से उनकी समाधि लग गई॥2॥

* मुनि गति देखि सुरेस डेराना। कामहि बोलि कीन्ह सनमाना॥

सहित सहाय जाहु मम हेतू। चलेउ हरषि हियँ जलचरकेतू॥3॥

भावार्थ:-नारद मुनि की (यह तपोमयी) स्थिति देखकर देवराज इंद्र डर गया। उसने कामदेव को बुलाकर उसका आदर-सत्कार किया (और कहा कि) मेरे (हित के) लिए तुम अपने सहायकों सहित (नारद की समाधि भंग करने को) जाओ। (यह सुनकर) मीनध्वज कामदेव मन में प्रसन्न होकर चला॥3॥

* सुनासीर मन महुँ असि त्रासा। चहत देवरिषि मम पुर बासा॥

जे कामी लोलुप जग माहीं। कुटिल काक इव सबहि डेराहीं॥4॥

भावार्थ:-इन्द्र के मन में यह डर हुआ कि देवर्षि नारद मेरी पुरी (अमरावती) का निवास (राज्य) चाहते हैं। जगत में जो कामी और लोभी होते हैं, वे कुटिल कौए की तरह सबसे डरते हैं॥4॥

दोहा :

* सूख हाड़ लै भाग सठ स्वान निरखि मृगराज।

छीनि लेइ जनि जान जड़ तिमि सुरपतिहि न लाज॥125॥

भावार्थ:-जैसे मूर्ख कुत्ता सिंह को देखकर सूखी हड्डी लेकर भागे और वह मूर्ख यह समझे कि कहीं उस हड्डी को सिंह छीन न ले, वैसे ही इन्द्र को (नारदजी मेरा राज्य छीन लेंगे, ऐसा सोचते) लाज नहीं आई॥125॥

चौपाई :

* तेहि आश्रमहिं मदन जब गयऊ। निज मायाँ बसंत निरमयऊ॥
कुसुमित बिबिध बिटप बहुरंगा। कूजहिं कोकिल गुंजहिं भृंगा॥1॥

भावार्थ:-जब कामदेव उस आश्रम में गया, तब उसने अपनी माया से वहाँ वसन्त ऋतु को उत्पन्न किया। तरह-तरह के वृक्षों पर रंग-बिरंगे फूल खिल गए, उन पर कोयलें कूकने लगीं और भौंरे गुंजार करने लगे॥1॥

* चली सुहावनि त्रिबिध बयारी। काम कृसानु बढ़ावनिहारी॥
रंभादिक सुर नारि नबीना। सकल असमसर कला प्रबीना॥2॥

भावार्थ:-कामाग्नि को भड़काने वाली तीन प्रकार की (शीतल, मंद और सुगंध) सुहावनी हवा चलने लगी। रम्भा आदि नवयुवती देवांगनाएँ, जो सब की सब कामकला में निपुण थीं,॥2॥

* करहिं गान बहु तान तरंगा। बहुबिधि क्रीड़हिं पानि पतंगा॥
देखि सहाय मदन हरषाना। कीन्हेसि पुनि प्रपंच बिधि नाना॥3॥

भावार्थ:-वे बहुत प्रकार की तानों की तरंग के साथ गाने लगीं और हाथ में गेंद लेकर नाना प्रकार के खेल खेलने लगीं। कामदेव अपने इन सहायकों को देखकर बहुत प्रसन्न हुआ और फिर उसने नाना प्रकार के मायाजाल किए॥3॥

* काम कला कछु मुनिहि न ब्यापी। निज भयँ डरेउ मनोभव पापी॥
सीम कि चाँपि सकइ कोउ तासू। बड़ रखवार रमापति जासू॥4॥

भावार्थ:-परन्तु कामदेव की कोई भी कला मुनि पर असर न कर सकी। तब तो पापी कामदेव अपने ही (नाश के) भय से डर गया। लक्ष्मीपति भगवान जिसके बड़े रक्षक हों, भला, उसकी सीमा (मर्यादा) को कोई दबा सकता है? ॥4॥

दोहा :

* सहित सहाय सभीत अति मानि हारि मन मैन।
गहेसि जाइ मुनि चरन तब कहि सुठि आरत बैन॥126॥

भावार्थ:-तब अपने सहायकों समेत कामदेव ने बहुत डरकर और अपने मन में हार मानकर बहुत ही आर्त (दीन) वचन कहते हुए मुनि के चरणों को जा पकड़ा॥126॥

चौपाई :

* भयउ न नारद मन कछु रोषा। कहि प्रिय बचन काम परितोषा॥
नाइ चरन सिरु आयसु पाई। गयउ मदन तब सहित सहाई॥1॥

भावार्थ:-नारदजी के मन में कुछ भी क्रोध न आया। उन्होंने प्रिय वचन कहकर कामदेव का समाधान किया। तब मुनि के चरणों में सिर नवाकर और उनकी आज्ञा पाकर कामदेव अपने सहायकों सहित लौट गया॥1॥

दोहा :

* मुनि सुसीलता आपनि करनी। सुरपति सभाँ जाइ सब बरनी॥
सुनि सब कें मन अचरजु आवा। मुनिहि प्रसंसि हरिहि सिरु नावा॥2॥

भावार्थ:-देवराज इन्द्र की सभा में जाकर उसने मुनि की सुशीलता और अपनी करतूत सब कही, जिसे सुनकर सबके मन में आश्चर्य हुआ और उन्होंने मुनि की बड़ाई करके श्री हरि को सिर नवाया॥2॥

* तब नारद गवने सिव पाहीं। जिता काम अहमिति मन माहीं॥
मार चरित संकरहि सुनाए। अतिप्रिय जानि महेस सिखाए॥3॥

भावार्थ:- तब नारदजी शिवजी के पास गए। उनके मन में इस बात का अहंकार हो गया कि हमने कामदेव को जीत लिया। उन्होंने कामदेव के चरित्र शिवजी को सुनाए और महादेवजी ने उन (नारदजी) को अत्यन्त प्रिय जानकर (इस प्रकार) शिक्षा दी-॥3॥

* बार बार बिनवउँ मुनि तोही। जिमि यह कथा सुनायहु मोही॥

तिमि जनि हरिहि सुनावहु कबहूँ। चलेहुँ प्रसंग दुराएहु तबहूँ॥4॥

भावार्थ:-हे मुनि! मैं तुमसे बार-बार विनती करता हूँ कि जिस तरह यह कथा तुमने मुझे सुनाई है, उस तरह भगवान श्री हरि को कभी मत सुनाना। चर्चा भी चले तब भी इसको छिपा जाना॥4॥

नारद का अभिमान और माया का प्रभाव

दोहा :

* संभु दीन्ह उपदेस हित नहिं नारदहि सोहान।

भरद्वाज कौतुक सुनहु हरि इच्छा बलवान॥127॥

भावार्थ:-यद्यपि शिवजी ने यह हित की शिक्षा दी, पर नारदजी को वह अच्छी न लगी। हे भरद्वाज! अब कौतुक (तमाशा) सुनो। हरि की इच्छा बड़ी बलवान है॥127॥

चौपाई :

* राम कीन्ह चाहहिं सोइ होई। करै अन्यथा अस नहिं कोई॥

संभु बचन मुनि मन नहिं भाए। तब बिरंचि के लोक सिधाए॥1॥

भावार्थ:-श्री रामचन्द्रजी जो करना चाहते हैं, वही होता है, ऐसा कोई नहीं जो उसके विरुद्ध कर सके। श्री शिवजी के वचन नारदजी के मन को अच्छे नहीं लगे, तब वे वहाँ से ब्रह्मलोक को चल दिए॥1॥

* एक बार करतल बर बीना। गावत हरि गुन गान प्रबीना॥

छीरसिंधु गवने मुनिनाथा। जहँ बस श्रीनिवास श्रुतिमाथा॥2॥

भावार्थ:-एक बार गानविद्या में निपुण मुनिनाथ नारदजी हाथ में सुंदर वीणा लिए, हरिगुण गाते हुए क्षीरसागर को गए, जहाँ वेदों के मस्तकस्वरूप (मूर्तिमान वेदांतत्व) लक्ष्मी निवास भगवान नारायण रहते हैं॥2॥

* हरषि मिले उठि रमानिकेता। बैठे आसन रिषिहि समेता॥
बोले बिहसि चराचर राया। बहुते दिनन कीन्हि मुनि दाया॥3॥

भावार्थ:-रमानिवास भगवान उठकर बड़े आनंद से उनसे मिले और ऋषि (नारदजी) के साथ आसन पर बैठ गए। चराचर के स्वामी भगवान हँसकर बोले- हे मुनि! आज आपने बहुत दिनों पर दया की॥3॥

* काम चरित नारद सब भाषे। जद्यपि प्रथम बरजि सिवँ राखे॥
अति प्रचंड रघुपति कै माया। जेहि न मोह अस को जग जाया॥4॥

भावार्थ:-यद्यपि श्री शिवजी ने उन्हें पहले से ही बरज रखा था, तो भी नारदजी ने कामदेव का सारा चरित्र भगवान को कह सुनाया। श्री रघुनाथजी की माया बड़ी ही प्रबल है। जगत में ऐसा कौन जन्मा है, जिसे वे मोहित न कर दें॥4॥

दोहा :

*रूख बदन करि बचन मृदु बोले श्रीभगवान।
तुम्हरे सुमिरन तें मिटहिं मोह मार मद मान॥128॥

भावार्थ:-भगवान रूखा मुँह करके कोमल वचन बोले- हे मुनिराज! आपका स्मरण करने से दूसरों के मोह, काम, मद और अभिमान मिट जाते हैं (फिर आपके लिए तो कहना ही क्या है!)॥128॥

चौपाई :

* सुनु मुनि मोह होइ मन ताकें। ग्यान बिराग हृदय नहिं जाकें॥
ब्रह्मचरज ब्रत रत मतिधीरा। तुम्हहि कि करइ मनोभव पीरा॥1॥

भावार्थ:-हे मुनि! सुनिए, मोह तो उसके मन में होता है, जिसके हृदय में ज्ञान-वैराग्य नहीं है। आप तो ब्रह्मचर्यव्रत में तत्पर और बड़े धीर बुद्धि हैं। भला, कहीं आपको भी कामदेव सता सकता है?॥1॥

* नारद कहेउ सहित अभिमाना। कृपा तुम्हारि सकल भगवाना॥

करुनानिधि मन दीख बिचारी। उर अंकुरेउ गरब तरु भारी॥2॥

भावार्थ:-नारदजी ने अभिमान के साथ कहा- भगवन! यह सब आपकी कृपा है। करुणानिधान भगवान ने मन में विचारकर देखा कि इनके मन में गर्व के भारी वृक्ष का अंकुर पैदा हो गया है॥2॥

* बेगि सो मैं डारिहउँ उखारी। पन हमार सेवक हितकारी॥

मुनि कर हित मम कौतुक होई। अवसि उपाय करबि मैं सोई॥3॥

भावार्थ:-मैं उसे तुरंत ही उखाड़ फेंकूँगा, क्योंकि सेवकों का हित करना हमारा प्रण है। मैं अवश्य ही वह उपाय करूँगा, जिससे मुनि का कल्याण और मेरा खेल हो॥3॥

* तब नारद हरि पद सिर नाई। चले हृदयँ अहमिति अधिकाई॥

श्रीपति निज माया तब प्रेरी। सुनहु कठिन करनी तेहि केरी॥4॥

भावार्थ:-तब नारदजी भगवान के चरणों में सिर नवाकर चले। उनके हृदय में अभिमान और भी बढ़ गया। तब लक्ष्मीपति भगवान ने अपनी माया को प्रेरित किया। अब उसकी कठिन करनी सुनो॥4॥

दोहा :

* बिरचेउ मग महुँ नगर तेहिं सत जोजन बिस्तार।

श्रीनिवासपुर तें अधिक रचना बिबिध प्रकार॥129॥

भावार्थ:-उस (हरिमाया) ने रास्ते में सौ योजन (चार सौ कोस) का एक नगर रचा। उस नगर की भाँति-भाँति की रचनाएँ लक्ष्मीनिवास भगवान विष्णु के नगर (वैकुण्ठ) से भी अधिक सुंदर थीं॥129॥

चौपाई :

* बसहिं नगर सुंदर नर नारी। जनु बहु मनसिज रति तनुधारी॥
तेहिं पुर बसइ सीलनिधि राजा। अगनित हय गय सेन समाजा॥1॥

भावार्थ:-उस नगर में ऐसे सुंदर नर-नारी बसते थे, मानो बहुत से कामदेव और (उसकी स्त्री) रति ही मनुष्य शरीर धारण किए हुए हों। उस नगर में शीलनिधि नाम का राजा रहता था, जिसके यहाँ असंख्य घोड़े, हाथी और सेना के समूह (टुकड़ियाँ) थे॥1॥

* सत सुरेस सम बिभव बिलासा। रूप तेज बल नीति निवासा॥
बिस्वमोहनी तासु कुमारी। श्री बिमोह जिसु रूपु निहारी॥2॥

भावार्थ:-उसका वैभव और विलास सौ इन्द्रों के समान था। वह रूप, तेज, बल और नीति का घर था। उसके विश्वमोहिनी नाम की एक (ऐसी रूपवती) कन्या थी, जिसके रूप को देखकर लक्ष्मीजी भी मोहित हो जाएँ॥ 2॥

*सोइ हरिमाया सब गुन खानी। सोभा तासु कि जाइ बखानी॥
करइ स्वयंबर सो नृपबाला। आए तहँ अगनित महिपाला॥3॥

भावार्थ:-वह सब गुणों की खान भगवान की माया ही थी। उसकी शोभा का वर्णन कैसे किया जा सकता है। वह राजकुमारी स्वयंबर करना चाहती थी, इससे वहाँ अगणित राजा आए हुए थे॥3॥

*मुनि कौतुकी नगर तेहि गयऊ। पुरबासिन्ह सब पूछत भयऊ॥
सुनि सब चरित भूपगृहँ आए। करि पूजा नृप मुनि बैठाए॥4॥

भावार्थ:-खिलवाड़ी मुनि नारदजी उस नगर में गए और नगरवासियों से उन्होंने सब हाल पूछा। सब समाचार सुनकर वे राजा के महल में आए। राजा ने पूजा करके मुनि को (आसन पर) बैठाया॥4॥

विश्वमोहिनी का स्वयंवर, शिवगणों तथा भगवान् को शाप और नारद का मोहभंग

दोहा :

* आनि देखाई नारदहि भूपति राजकुमारि।

कहहु नाथ गुन दोष सब एहि के हृदयँ बिचारि॥130॥

भावार्थ:-(फिर) राजा ने राजकुमारी को लाकर नारदजी को दिखलाया (और पूछा कि-) हे नाथ! आप अपने हृदय में विचार कर इसके सब गुण-दोष कहिए॥130॥

चौपाई :

*देखि रूप मुनि बिरति बिसारी। बड़ी बार लगि रहे निहारी॥

लच्छन तासु बिलोकि भुलाने। हृदयँ हरष नहिं प्रगट बखाने॥1॥

भावार्थ:-उसके रूप को देखकर मुनि वैराग्य भूल गए और बड़ी देर तक उसकी ओर देखते ही रह गए। उसके लक्षण देखकर मुनि अपने आपको भी भूल गए और हृदय में हर्षित हुए, पर प्रकट रूप में उन लक्षणों को नहीं कहा॥1॥

* जो एहि बरइ अमर सोइ होई। समरभूमि तेहि जीत न कोई॥

सेवहिं सकल चराचर ताही। बरइ सीलनिधि कन्या जाही॥2॥

भावार्थ:-(लक्षणों को सोचकर वे मन में कहने लगे कि) जो इसे ब्याहेगा, वह अमर हो जाएगा और रणभूमि में कोई उसे जीत न सकेगा। यह शीलनिधि की कन्या जिसको वरेगी, सब चर-अचर जीव उसकी सेवा करेंगे॥2॥

* लच्छन सब बिचारि उर राखे। कछुक बनाइ भूप सन भाषे॥

सुता सुलच्छन कहि नृप पाहीं। नारद चले सोच मन माहीं॥3॥

भावार्थ:-सब लक्षणों को विचारकर मुनि ने अपने हृदय में रख लिया और राजा से कुछ अपनी ओर से बनाकर कह दिए। राजा से लड़की के सुलक्षण कहकर नारदजी चल दिए। पर उनके मन में यह चिन्ता थी कि-॥3॥

* करौं जाइ सोइ जतन बिचारी। जेहि प्रकार मोहि बरै कुमारी॥

जप तप कछु न होइ तेहि काला। हे बिधि मिलइ कवन बिधि बाला॥4॥

भावार्थ:-मैं जाकर सोच-विचारकर अब वही उपाय करूँ, जिससे यह कन्या मुझे ही वरे। इस समय जप-तप से तो कुछ हो नहीं सकता। हे विधाता! मुझे यह कन्या किस तरह मिलेगी?॥4॥

दोहा :

* एहि अवसर चाहिअ परम सोभा रूप बिसाल।

जो बिलोकि रीझै कुअँरि तब मेलै जयमाल॥131॥

भावार्थ:-इस समय तो बड़ी भारी शोभा और विशाल (सुंदर) रूप चाहिए, जिसे देखकर राजकुमारी मुझ पर रीझ जाए और तब जयमाल (मेरे गले में) डाल दे॥131॥

चौपाई :

* हरि सन मागौं सुंदरताई। होइहि जात गहरु अति भाई॥

मोरें हित हरि सम नहिं कोऊ। एहि अवसर सहाय सोइ होऊ॥1॥

भावार्थ:-(एक काम करूँ कि) भगवान से सुंदरता माँगूँ, पर भाई! उनके पास जाने में तो बहुत देर हो जाएगी, किन्तु श्री हरि के समान मेरा हितू भी कोई नहीं है, इसलिए इस समय वे ही मेरे सहायक हों॥1॥

* बहुबिधि बिनय कीन्हि तेहि काला। प्रगटेउ प्रभु कौतुकी कृपाला॥

प्रभु बिलोकि मुनि नयन जुड़ाने। होइहि काजु हिएँ हरषाने॥2॥

भावार्थ:-उस समय नारदजी ने भगवान की बहुत प्रकार से विनती की। तब लीलामय कृपालु प्रभु (वहीं) प्रकट हो गए। स्वामी को देखकर नारदजी के नेत्र शीतल हो गए और वे मन में बड़े ही हर्षित हुए कि अब तो काम बन ही जाएगा॥2॥

* अति आरति कहि कथा सुनाई। करहु कृपा करि होहु सहाई॥
आपन रूप देहु प्रभु मोहीं। आन भाँति नहिं पावौं ओही॥3॥

भावार्थ:-नारदजी ने बहुत आर्त (दीन) होकर सब कथा कह सुनाई (और प्रार्थना की कि) कृपा कीजिए और कृपा करके मेरे सहायक बनिए। हे प्रभो! आप अपना रूप मुझको दीजिए और किसी प्रकार मैं उस (राजकन्या) को नहीं पा सकता॥3॥

* जेहि बिधि नाथ होइ हित मोरा। करहु सो बेगि दास मैं तोरा॥
निज माया बल देखि बिसाला। हियँ हँसि बोले दीनदयाला॥4॥

भावार्थ:-हे नाथ! जिस तरह मेरा हित हो, आप वही शीघ्र कीजिए। मैं आपका दास हूँ। अपनी माया का विशाल बल देख दीनदयालु भगवान मन ही मन हँसकर बोले-॥4॥

दोहा :

* जेहि बिधि होइहि परम हित नारद सुनहु तुम्हार।
सोइ हम करब न आन कछु बचन न मृषा हमार॥132॥

भावार्थ:-हे नारदजी! सुनो, जिस प्रकार आपका परम हित होगा, हम वही करेंगे, दूसरा कुछ नहीं। हमारा वचन असत्य नहीं होता॥132॥

चौपाई :

* कुपथ माग रुज ब्याकुल रोगी। बैद न देइ सुनहु मुनि जोगी॥
एहि बिधि हित तुम्हार मैं ठयऊ। कहि अस अंतरहित प्रभु भयऊ॥1॥

भावार्थ:-हे योगी मुनि! सुनिए, रोग से व्याकुल रोगी कुपथ्य माँगे तो वैद्य उसे नहीं देता। इसी प्रकार मैंने भी तुम्हारा हित करने की ठान ली है। ऐसा कहकर भगवान अन्तर्धान हो गए॥1॥

* माया बिबस भए मुनि मूढ़ा। समुझी नहिं हरि गिरा निगूढ़ा॥
गवने तुरत तहाँ रिषिराई। जहाँ स्वयंबर भूमि बनाई॥2॥

भावार्थ:-(भगवान की) माया के वशीभूत हुए मुनि ऐसे मूढ़ हो गए कि वे भगवान की अगूढ़ (स्पष्ट) वाणी को भी न समझ सके। ऋषिराज नारदजी तुरंत वहाँ गए जहाँ स्वयंवर की भूमि बनाई गई थी॥2॥

* निज निज आसन बैठे राजा। बहु बनाव करि सहित समाजा॥
मुनि मन हरष रूप अति मोरें। मोहि तजि आनहि बरिहि न भोरें॥3॥

भावार्थ:-राजा लोग खूब सज-धजकर समाज सहित अपने-अपने आसन पर बैठे थे। मुनि (नारद) मन ही मन प्रसन्न हो रहे थे कि मेरा रूप बड़ा सुंदर है, मुझे छोड़ कन्या भूलकर भी दूसरे को न वरेगी॥3॥

* मुनि हित कारन कृपानिधाना। दीन्ह कुरूप न जाइ बखाना॥
सो चरित्र लखि काहुँ न पावा। नारद जानि सबहिं सिर नावा॥4॥

भावार्थ:-कृपानिधान भगवान ने मुनि के कल्याण के लिए उन्हें ऐसा कुरूप बना दिया कि जिसका वर्णन नहीं हो सकता, पर यह चरित कोई भी न जान सका। सबने उन्हें नारद ही जानकर प्रणाम किया॥4॥

दोहा :

* रहे तहाँ दुइ रुद्र गन ते जानहिं सब भेउ।
बिप्रबेष देखत फिरहिं परम कौतुकी तेउ॥133॥

भावार्थ:-वहाँ शिवजी के दो गण भी थे। वे सब भेद जानते थे और ब्राह्मण का वेष बनाकर सारी लीला देखते-फिरते थे। वे भी बड़े मौजी थे॥133॥

चौपाई :

* जेहिं समाज बैठे मुनि जाई। हृदयँ रूप अहमिति अधिकाई॥
तहँ बैठे महेस गन दोऊ। बिप्रबेष गति लखइ न कोऊ॥1॥

भावार्थ:-नारदजी अपने हृदय में रूप का बड़ा अभिमान लेकर जिस समाज (पंक्ति) में जाकर बैठे थे, ये शिवजी के दोनों गण भी वहीं बैठ गए। ब्राह्मण के वेष में होने के कारण उनकी इस चाल को कोई न जान सका॥1॥

* करहिं कूटि नारदहि सुनाई। नीकि दीन्हि हरि सुंदरताई॥
रीझिहि राजकुअँरि छबि देखी। इन्हहि बरिहि हरि जानि बिसेषी॥2॥

भावार्थ:-वे नारदजी को सुना-सुनाकर, व्यंग्य वचन कहते थे- भगवान ने इनको अच्छी 'सुंदरता' दी है। इनकी शोभा देखकर राजकुमारी रीझ ही जाएगी और 'हरि' (वानर) जानकर इन्हीं को खास तौर से वरेगी॥2॥

* मुनिहि मोह मन हाथ पराएँ। हँसहिं संभु गन अति सचु पाएँ॥
जदपि सुनहिं मुनि अटपटि बानी। समुझि न परइ बुद्धि भ्रम सानी॥3॥

भावार्थ:-नारद मुनि को मोह हो रहा था, क्योंकि उनका मन दूसरे के हाथ (माया के वश) में था। शिवजी के गण बहुत प्रसन्न होकर हँस रहे थे। यद्यपि मुनि उनकी अटपटी बातें सुन रहे थे, पर बुद्धि भ्रम में सनी हुई होने के कारण वे बातें उनकी समझ में नहीं आती थीं (उनकी बातों को वे अपनी प्रशंसा समझ रहे थे)॥3॥

* काहुँ न लखा सो चरित बिसेषा। सो सरूप नृपकन्याँ देखा॥
मर्कट बदन भयंकर देही। देखत हृदयँ क्रोध भा तेही॥4॥

भावार्थ:-इस विशेष चरित को और किसी ने नहीं जाना, केवल राजकन्या ने (नारदजी का) वह रूप देखा। उनका बंदर का सा मुँह और भयंकर शरीर देखते ही कन्या के हृदय में क्रोध उत्पन्न हो गया॥4॥

दोहा :

* सखीं संग लै कुअँरि तब चलि जनु राजमराल।

देखत फिरइ महीप सब कर सरोज जयमाल॥134॥

भावार्थ:-तब राजकुमारी सखियों को साथ लेकर इस तरह चली मानो राजहंसिनी चल रही है। वह अपने कमल जैसे हाथों में जयमाला लिए सब राजाओं को देखती हुई घूमने लगी॥134॥

चौपाई :

* जेहि दिसि बैठे नारद फूली। सो दिसि तेहिं न बिलोकी भूली॥

पुनि-पुनि मुनि उकसहिं अकुलाहीं। देखि दसा हर गन मुसुकाहीं॥1॥

भावार्थ:-जिस ओर नारदजी (रूप के गर्व में) फूले बैठे थे, उस ओर उसने भूलकर भी नहीं ताका। नारद मुनि बार-बार उचकते और छटपटाते हैं। उनकी दशा देखकर शिवजी के गण मुसकराते हैं॥1॥

* धरि नृपतनु तहँ गयउ कृपाला। कुअँरि हरषि मेलेउ जयमाला॥

दुलहिनि लै गे लच्छिनिवासा। नृपसमाज सब भयउ निरासा॥2॥

भावार्थ:-कृपालु भगवान भी राजा का शरीर धारण कर वहाँ जा पहुँचे। राजकुमारी ने हर्षित होकर उनके गले में जयमाला डाल दी। लक्ष्मीनिवास भगवान दुलहिन को ले गए। सारी राजमंडली निराश हो गई॥2॥

* मुनि अति बिकल मोहँ मति नाठी। मनि गिरि गई छूटि जनु गाँठी॥

तब हर गन बोले मुसुकाई। निज मुख मुकुर बिलोकहु जाई॥3॥

भावार्थ:-मोह के कारण मुनि की बुद्धि नष्ट हो गई थी, इससे वे (राजकुमारी को गई देख) बहुत ही विकल हो गए। मानो गाँठ से छूटकर मणि गिर गई हो। तब शिवजी के गणों ने मुसकराकर कहा- जाकर दर्पण में अपना मुँह तो देखिए!॥3॥

* अस कहि दोउ भागे भयँ भारी। बदन दीख मुनि बारि निहारी॥
बेषु बिलोकि क्रोध अति बाढ़ा। तिन्हहि सराप दीन्ह अति गाढ़ा॥4॥

भावार्थ:-ऐसा कहकर वे दोनों बहुत भयभीत होकर भागे। मुनि ने जल में झाँककर अपना मुँह देखा। अपना रूप देखकर उनका क्रोध बहुत बढ़ गया। उन्होंने शिवजी के उन गणों को अत्यन्त कठोर शाप दिया-॥4॥

दोहा :

* होहु निसाचर जाइ तुम्ह कपटी पापी दोउ।
हँसेहु हमहि सो लेहु फल बहुरि हँसेहु मुनि कोउ॥135॥

भावार्थ:-तुम दोनों कपटी और पापी जाकर राक्षस हो जाओ। तुमने हमारी हँसी की, उसका फल चखो। अब फिर किसी मुनि की हँसी करना।135॥

चौपाई :

* पुनि जल दीख रूप निज पावा। तदपि हृदयँ संतोष न आवा॥
फरकत अधर कोप मन माहीं। सपदि चले कमलापति पाहीं॥1॥

भावार्थ:-मुनि ने फिर जल में देखा, तो उन्हें अपना (असली) रूप प्राप्त हो गया, तब भी उन्हें संतोष नहीं हुआ। उनके होठ फड़क रहे थे और मन में क्रोध (भरा) था। तुरंत ही वे भगवान कमलापति के पास चले॥1॥

* देहउँ श्राप कि मरिहउँ जाई। जगत मोरि उपहास कराई॥
बीचहिं पंथ मिले दनुजारी। संग रमा सोइ राजकुमारी॥2॥

भावार्थ:-(मन में सोचते जाते थे-) जाकर या तो शाप दूँगा या प्राण दे दूँगा। उन्होंने जगत में मेरी हँसी कराई। दैत्यों के शत्रु भगवान हरि उन्हें बीच रास्ते में ही मिल गए। साथ में लक्ष्मीजी और वही राजकुमारी थीं॥2॥

* बोले मधुर बचन सुरसाईं। मुनि कहँ चले बिकल की नाईं॥

सुनत बचन उपजा अति क्रोधा। माया बस न रहा मन बोधा॥3॥

भावार्थ:-देवताओं के स्वामी भगवान ने मीठी वाणी में कहा- हे मुनि! व्याकुल की तरह कहाँ चले? ये शब्द सुनते ही नारद को बड़ा क्रोध आया, माया के वशीभूत होने के कारण मन में चेत नहीं रहा॥3॥

* पर संपदा सकहु नहिं देखी। तुम्हरें इरिषा कपट बिसेषी॥

मथत सिंधु रुद्रहि बौरायहु। सुरन्ह प्रेरि बिष पान करायहु॥4॥

भावार्थ:-(मुनि ने कहा-) तुम दूसरों की सम्पदा नहीं देख सकते, तुम्हारे ईर्ष्या और कपट बहुत है। समुद्र मथते समय तुमने शिवजी को बावला बना दिया और देवताओं को प्रेरित करके उन्हें विषपान कराया॥4॥

दोहा :

* असुर सुरा बिष संकरहि आपु रमा मनि चारु।

स्वारथ साधक कुटिल तुम्ह सदा कपट ब्यवहारु॥136॥

भावार्थ:-असुरों को मदिरा और शिवजी को विष देकर तुमने स्वयं लक्ष्मी और सुंदर (कौस्तुभ) मणि ले ली। तुम बड़े धोखेबाज और मतलबी हो। सदा कपट का व्यवहार करते हो॥136॥

चौपाई :

* परम स्वतंत्र न सिर पर कोई। भावइ मनहि करहु तुम्ह सोई॥

भलेहि मंद मंदेहि भल करहू। बिसमय हरष न हियँ कछु धरहू॥1॥

भावार्थ:-तुम परम स्वतंत्र हो, सिर पर तो कोई है नहीं, इससे जब जो मन को भाता है, (स्वच्छन्दता से) वही करते हो। भले को बुरा और बुरे को भला कर देते हो। हृदय में हर्ष-विषाद कुछ भी नहीं लाते॥1॥

* डहकि डहकि परिचेहु सब काहू। अति असंक मन सदा उछाहू॥
करम सुभासुभ तुम्हहि न बाधा। अब लगि तुम्हहि न काहूँ साधा॥2॥

भावार्थ:-सबको ठग-ठगकर परक गए हो और अत्यन्त निडर हो गए हो, इसी से (ठगने के काम में) मन में सदा उत्साह रहता है। शुभ-अशुभ कर्म तुम्हें बाधा नहीं देते। अब तक तुम को किसी ने ठीक नहीं किया था॥2॥

* भले भवन अब बायन दीन्हा। पावहुगे फल आपन कीन्हा॥
बंचेहु मोहि जवनि धरि देहा। सोइ तनु धरहु श्राप मम एहा॥3॥

भावार्थ:-अबकी तुमने अच्छे घर बैना दिया है (मेरे जैसे जबर्दस्त आदमी से छेड़खानी की है।) अतः अपने किए का फल अवश्य पाओगे। जिस शरीर को धारण करके तुमने मुझे ठगा है, तुम भी वही शरीर धारण करो, यह मेरा शाप है॥3॥

* कपि आकृति तुम्ह कीन्हि हमारी। करिहहिं कीस सहाय तुम्हारी॥
मम अपकार कीन्ह तुम्ह भारी। नारि बिरहँ तुम्ह होब दुखारी॥4॥

भावार्थ:-तुमने हमारा रूप बंदर का सा बना दिया था, इससे बंदर ही तुम्हारी सहायता करेंगे। (मैं जिस स्त्री को चाहता था, उससे मेरा वियोग कराकर) तुमने मेरा बड़ा अहित किया है, इससे तुम भी स्त्री के वियोग में दुःखी होंगे॥4॥

दोहा :

* श्राप सीस धरि हरषि हियँ प्रभु बहु बिनती कीन्हि॥
निज माया कै प्रबलता करषि कृपानिधि लीन्हि॥137॥

भावार्थ:-शाप को सिर पर चढ़ाकर, हृदय में हर्षित होते हुए प्रभु ने नारदजी से बहुत विनती की और कृपानिधान भगवान ने अपनी माया की प्रबलता खींच ली॥137॥

चौपाई :

* जब हरि माया दूरि निवारी। नहिं तहँ रमा न राजकुमारी॥
तब मुनि अति सभीत हरि चरना। गहे पाहि प्रनतारति हरना॥1॥

भावार्थ:-जब भगवान ने अपनी माया को हटा लिया, तब वहाँ न लक्ष्मी ही रह गईं, न राजकुमारी ही। तब मुनि ने अत्यन्त भयभीत होकर श्री हरि के चरण पकड़ लिए और कहा- हे शरणागत के दुःखों को हरने वाले! मेरी रक्षा कीजिए॥1॥

* मृषा होउ मम श्राप कृपाला। मम इच्छा कह दीनदयाला॥
मैं दुर्बचन कहे बहुतेरे। कह मुनि पाप मिटिहिं किमि मेरे॥2॥

भावार्थ:-हे कृपालु! मेरा शाप मिथ्या हो जाए। तब दीनों पर दया करने वाले भगवान ने कहा कि यह सब मेरी ही इच्छा (से हुआ) है। मुनि ने कहा- मैंने आप को अनेक खोटे वचन कहे हैं। मेरे पाप कैसे मिटेंगे?॥2॥

* जपहु जाइ संकर सत नामा। होइहि हृदयँ तुरत बिश्रामा॥
कोउ नहिं सिव समान प्रिय मोरें। असि परतीति तजहु जनि भोरें॥3॥

भावार्थ:-(भगवान ने कहा-) जाकर शंकरजी के शतनाम का जप करो, इससे हृदय में तुरंत शांति होगी। शिवजी के समान मुझे कोई प्रिय नहीं है, इस विश्वास को भूलकर भी न छोड़ना॥3॥

*जेहि पर कृपा न करहिं पुरारी। सो न पाव मुनि भगति हमारी॥
अस उर धरि महि बिचरहु जाई। अब न तुम्हहि माया निअराई॥4॥

भावार्थ:-हे मुनि ! पुरारि (शिवजी) जिस पर कृपा नहीं करते, वह मेरी भक्ति नहीं पाता। हृदय में ऐसा निश्चय करके जाकर पृथ्वी पर विचरो। अब मेरी माया तुम्हारे निकट नहीं आएगी॥4॥

दोहा :

* बहुबिधि मुनिहि प्रबोधि प्रभु तब भए अंतरधान।
सत्यलोक नारद चले करत राम गुन गान॥138॥

भावार्थ:-बहुत प्रकार से मुनि को समझा-बुझाकर (ढाँढस देकर) तब प्रभु अंतर्द्धान हो गए और नारदजी श्री रामचन्द्रजी के गुणों का गान करते हुए सत्य लोक (ब्रह्मलोक) को चले॥138॥

चौपाई :

* हर गन मुनिहि जात पथ देखी। बिगत मोह मन हरष बिसेषी॥
अति सभीत नारद पहिं आए। गहि पद आरत बचन सुहाए॥1॥

भावार्थ:-शिवजी के गणों ने जब मुनि को मोहरहित और मन में बहुत प्रसन्न होकर मार्ग में जाते हुए देखा तब वे अत्यन्त भयभीत होकर नारदजी के पास आए और उनके चरण पकड़कर दीन वचन बोले-॥1॥

* हर गन हम न बिप्र मुनिराया। बड़ अपराध कीन्ह फल पाया॥
श्राप अनुग्रह करहु कृपाला। बोले नारद दीनदयाला॥2॥

भावार्थ:-हे मुनिराज! हम ब्राह्मण नहीं हैं, शिवजी के गण हैं। हमने बड़ा अपराध किया, जिसका फल हमने पा लिया। हे कृपालु! अब शाप दूर करने की कृपा कीजिए। दीनों पर दया करने वाले नारदजी ने कहा-॥2॥

* निसिचर जाइ होहु तुम्ह दोऊ। बैभव बिपुल तेज बल होऊ॥
भुज बल बिस्व जितब तुम्ह जहिआ। धरिहहिं बिष्नु मनुज तनु तहिआ॥3॥

भावार्थ:-तुम दोनों जाकर राक्षस होओ, तुम्हें महान ऐश्वर्य, तेज और बल की प्राप्ति हो। तुम अपनी भुजाओं के बल से जब सारे विश्व को जीत लोगे, तब भगवान विष्णु मनुष्य का शरीर धारण करेंगे॥3॥

* समर मरन हरि हाथ तुम्हारा। होइहहु मुकुत न पुनि संसारा॥
चले जुगल मुनि पद सिर नाई। भए निसाचर कालहि पाई॥4॥

भावार्थ:-युद्ध में श्री हरि के हाथ से तुम्हारी मृत्यु होगी, जिससे तुम मुक्त हो जाओगे और फिर संसार में जन्म नहीं लोगे। वे दोनों मुनि के चरणों में सिर नवाकर चले और समय पाकर राक्षस हुए॥4॥

दोहा :

* एक कलप एहि हेतु प्रभु लीन्ह मनुज अवतार।
सुर रंजन सज्जन सुखद हरि भंजन भुमि भार॥139॥

भावार्थ:-देवताओं को प्रसन्न करने वाले, सज्जनों को सुख देने वाले और पृथ्वी का भार हरण करने वाले भगवान ने एक कल्प में इसी कारण मनुष्य का अवतार लिया था॥139॥

चौपाई :

* एहि बिधि जनम करम हरि केरे। सुंदर सुखद बिचित्र घनेरे॥
कलप कलप प्रति प्रभु अवतरहीं। चारु चरित नानाबिधि करहीं॥1॥

भावार्थ:-इस प्रकार भगवान के अनेक सुंदर, सुखदायक और अलौकिक जन्म और कर्म हैं। प्रत्येक कल्प में जब-जब भगवान अवतार लेते हैं और नाना प्रकार की सुंदर लीलाएँ करते हैं,॥1॥

* तब-तब कथा मुनीसन्ह गाई। परम पुनीत प्रबंध बनाई॥
बिबिध प्रसंग अनूप बखाने। करहिं न सुनि आचरजु सयाने॥2॥

भावार्थ:-तब-तब मुनीश्वरों ने परम पवित्र काव्य रचना करके उनकी कथाओं का गान किया है और भाँति-भाँति के अनुपम प्रसंगों का वर्णन

किया है, जिनको सुनकर समझदार (विवेकी) लोग आश्चर्य नहीं करते॥2॥

* हरि अनंत हरि कथा अनंता। कहहिं सुनहिं बहुबिधि सब संता॥
रामचंद्र के चरित सुहाए। कलप कोटि लगि जाहिं न गाए॥3॥

भावार्थ:-श्री हरि अनंत हैं (उनका कोई पार नहीं पा सकता) और उनकी कथा भी अनंत है। सब संत लोग उसे बहुत प्रकार से कहते-सुनते हैं। श्री रामचन्द्रजी के सुंदर चरित्र करोड़ों कल्पों में भी गाए नहीं जा सकते॥3॥

* यह प्रसंग मैं कहा भवानी। हरिमायाँ मोहहिं मुनि ग्यानी॥
प्रभु कौतुकी प्रनत हितकारी। सेवत सुलभ सकल दुखहारी॥4॥

भावार्थ:-(शिवजी कहते हैं कि) हे पार्वती! मैंने यह बताने के लिए इस प्रसंग को कहा कि ज्ञानी मुनि भी भगवान की माया से मोहित हो जाते हैं। प्रभु कौतुकी (लीलामय) हैं और शरणागत का हित करने वाले हैं। वे सेवा करने में बहुत सुलभ और सब दुःखों के हरने वाले हैं॥4॥

सोरठा :

* सुर नर मुनि कोउ नाहिं जेहि न मोह माया प्रबल।
अस बिचारि मन माहिं भजिअ महामाया पतिहि॥140॥

भावार्थ:-देवता, मनुष्य और मुनियों में ऐसा कोई नहीं है, जिसे भगवान की महान बलवती माया मोहित न कर दे। मन में ऐसा विचारकर उस महामाया के स्वामी (प्रेरक) श्री भगवान का भजन करना चाहिए॥140॥

चौपाई :

*अपर हेतु सुनु सैलकुमारी। कहउँ बिचित्र कथा बिस्तारी॥
जेहि कारन अज अगुन अरूपा। ब्रह्म भयउ कोसलपुर भूपा॥1॥

भावार्थ:-हे गिरिराजकुमारी! अब भगवान के अवतार का वह दूसरा कारण सुनो- मैं उसकी विचित्र कथा विस्तार करके कहता हूँ- जिस कारण से जन्मरहित, निर्गुण और रूपरहित (अव्यक्त सच्चिदानंदघन) ब्रह्म अयोध्यापुरी के राजा हुए॥1॥

* जो प्रभु बिपिन फिरत तुम्ह देखा। बंधु समेत धरें मुनिबेषा॥
जासु चरित अवलोकि भवानी। सती सरीर रहिहु बौरानी॥2॥

भावार्थ:-जिन प्रभु श्री रामचन्द्रजी को तुमने भाई लक्ष्मणजी के साथ मुनियों का सा वेष धारण किए वन में फिरते देखा था और हे भवानी! जिनके चरित्र देखकर सती के शरीर में तुम ऐसी बावली हो गई थीं कि- ॥2॥

* अजहुँ न छाया मिटति तुम्हारी। तासु चरित सुनु भ्रम रुज हारी॥
लीला कीन्हि जो तेहिं अवतारा। सो सब कहिहउँ मति अनुसारा॥3॥

भावार्थ:-अब भी तुम्हारे उस बावलेपन की छाया नहीं मिटती, उन्हीं के भ्रम रूपी रोग के हरण करने वाले चरित्र सुनो। उस अवतार में भगवान ने जो-जो लीला की, वह सब मैं अपनी बुद्धि के अनुसार तुम्हें कहूँगा॥3॥

* भरद्वाज सुनि संकर बानी। सकुचि सप्रेम उमा मुसुकानी॥
लगे बहुरि बरनै बृषकेतू। सो अवतार भयउ जेहि हेतू॥4॥

भावार्थ:-(याज्ञवल्क्यजी ने कहा-) हे भरद्वाज! शंकरजी के वचन सुनकर पार्वतीजी सकुचाकर प्रेमसहित मुस्कुराईं। फिर वृषकेतु शिवजी जिस कारण से भगवान का वह अवतार हुआ था, उसका वर्णन करने लगे॥4॥

मनु-शतरूपा तप एवं वरदान

दोहा :

* सो मैं तुम्ह सन कहउँ सबु सुनु मुनीस मन लाइ।
रामकथा कलि मल हरनि मंगल करनि सुहाइ॥141॥

भावार्थ:-हे मुनीश्वर भरद्वाज! मैं वह सब तुमसे कहता हूँ, मन लगाकर सुनो। श्री रामचन्द्रजी की कथा कलियुग के पापों को हरने वाली, कल्याण करने वाली और बड़ी सुंदर है॥141॥

चौपाई :

* स्वायंभू मनु अरु सतरूपा। जिन्ह तें भै नरसृष्टि अनूपा॥
दंपति धरम आचरन नीका। अजहुँ गाव श्रुति जिन्ह कै लीका॥1॥

भावार्थ:-स्वायम्भुव मनु और (उनकी पत्नी) शतरूपा, जिनसे मनुष्यों की यह अनुपम सृष्टि हुई, इन दोनों पति-पत्नी के धर्म और आचरण बहुत अच्छे थे। आज भी वेद जिनकी मर्यादा का गान करते हैं॥1॥

* नृप उत्तानपाद सुत तासू। ध्रुव हरिभगत भयउ सुत जासू॥
लघु सुत नाम प्रियब्रत ताही। बेद पुरान प्रसंसहिं जाही॥2॥

भावार्थ:-राजा उत्तानपाद उनके पुत्र थे, जिनके पुत्र (प्रसिद्ध) हरिभक्त ध्रुवजी हुए। उन (मनुजी) के छोटे लड़के का नाम प्रियव्रत था, जिनकी प्रशंसा वेद और पुराण करते हैं॥2॥

* देवहूति पुनि तासु कुमारी। जो मुनि कर्दम कै प्रिय नारी॥
आदि देव प्रभु दीनदयाला। जठर धरेउ जेहिं कपिल कृपाला॥3॥

भावार्थ:-पुनः देवहूति उनकी कन्या थी, जो कर्दम मुनि की प्यारी पत्नी हुई और जिन्होंने आदि देव, दीनों पर दया करने वाले समर्थ एवं कृपालु भगवान कपिल को गर्भ में धारण किया॥3॥

* सांख्य सास्त्र जिन्ह प्रगट बखाना। तत्व बिचार निपुन भगवाना॥
तेहिं मनु राज कीन्ह बहु काला। प्रभु आयसु सब बिधि प्रतिपाला॥4॥

भावार्थ:-तत्वों का विचार करने में अत्यन्त निपुण जिन (कपिल) भगवान ने सांख्य शास्त्र का प्रकट रूप में वर्णन किया, उन (स्वायम्भुव) मनुजी ने बहुत समय तक राज्य किया और सब प्रकार से भगवान की आज्ञा (रूप शास्त्रों की मर्यादा) का पालन किया॥4॥

सोरठा :

* होइ न बिषय बिराग भवन बसत भा चौथपन॥
हृदयँ बहुत दुख लाग जनम गयउ हरिभगति बिनु॥142॥

भावार्थ:-घर में रहते बुढ़ापा आ गया, परन्तु विषयों से वैराग्य नहीं होता (इस बात को सोचकर) उनके मन में बड़ा दुःख हुआ कि श्री हरि की भक्ति बिना जन्म यों ही चला गया॥142॥

चौपाई :

* बरबस राज सुतहि तब दीन्हा। नारि समेत गवन बन कीन्हा॥
तीरथ बर नैमिष बिख्याता। अति पुनीत साधक सिधि दाता॥1॥

भावार्थ:-तब मनुजी ने अपने पुत्र को जबर्दस्ती राज्य देकर स्वयं स्त्री सहित वन को गमन किया। अत्यन्त पवित्र और साधकों को सिद्धि देने वाला तीर्थों में श्रेष्ठ नैमिषारण्य प्रसिद्ध है॥1॥

* बसहिं तहाँ मुनि सिद्ध समाजा। तहँ हियँ हरषि चलेउ मनु राजा॥
पंथ जात सोहहिं मतिधीरा। ग्यान भगति जनु धरें सरीरा॥2॥

भावार्थ:-वहाँ मुनियों और सिद्धों के समूह बसते हैं। राजा मनु हृदय में हर्षित होकर वहीं चले। वे धीर बुद्धि वाले राजा-रानी मार्ग में जाते हुए ऐसे सुशोभित हो रहे थे मानों ज्ञान और भक्ति ही शरीर धारण किए जा रहे हों॥2॥

* पहुँचे जाइ धेनुमति तीरा। हरषि नहाने निरमल नीरा॥
आए मिलन सिद्ध मुनि ग्यानी। धरम धुरंधर नृपरिषि जानी॥3॥

भावार्थ:-(चलते-चलते) वे गोमती के किनारे जा पहुँचे। हर्षित होकर उन्होंने निर्मल जल में स्नान किया। उनको धर्मधुरंधर राजर्षि जानकर सिद्ध और ज्ञानी मुनि उनसे मिलने आए॥3॥

* जहँ जहँ तीरथ रहे सुहाए। मुनिन्ह सकल सादर करवाए॥

कृस सरीर मुनिपट परिधाना। सत समाज नित सुनहिं पुराना॥4॥

भावार्थ:-जहाँ-जहाँ सुंदर तीर्थ थे, मुनियों ने आदरपूर्वक सभी तीर्थ उनको करा दिए। उनका शरीर दुर्बल हो गया था। वे मुनियों के से (वल्कल) वस्त्र धारण करते थे और संतों के समाज में नित्य पुराण सुनते थे॥4॥

दोहा :

* द्वादस अच्छर मंत्र पुनि जपहिं सहित अनुराग।

बासुदेव पद पंकरुह दंपति मन अति लाग॥143॥

भावार्थ:-और द्वादशाक्षर मन्त्र (ॐ नमो भगवते वासुदेवाय) का प्रेम सहित जप करते थे। भगवान वासुदेव के चरणकमलों में उन राजा-रानी का मन बहुत ही लग गया॥143॥

चौपाई :

* करहिं अहार साक फल कंदा। सुमिरहिं ब्रह्म सच्चिदानंदा॥

पुनि हरि हेतु करन तप लागे। बारि अधार मूल फल त्यागे॥1॥

भावार्थ:-वे साग, फल और कन्द का आहार करते थे और सच्चिदानंद ब्रह्म का स्मरण करते थे। फिर वे श्री हरि के लिए तप करने लगे और मूल-फल को त्यागकर केवल जल के आधार पर रहने लगे॥1॥

* उर अभिलाष निरंतर होई। देखिअ नयन परम प्रभु सोई॥

अगुन अखंड अनंत अनादी। जेहि चिंतहिं परमारथबादी॥2॥

भावार्थ:-हृदय में निरंतर यही अभिलाषा हुआ करती कि हम (कैसे) उन परम प्रभु को आँखों से देखें, जो निर्गुण, अखंड, अनंत और अनादि हैं और परमार्थवादी (ब्रह्मज्ञानी, तत्त्ववेत्ता) लोग जिनका चिन्तन किया करते हैं॥2॥

* नेति नेति जेहि बेद निरूपा। निजानंद निरुपाधि अनूपा॥
संभु बिरंचि बिष्नु भगवाना। उपजहिं जासु अंस तें नाना॥3॥

भावार्थ:-जिन्हें वेद 'नेति-नेति' (यह भी नहीं, यह भी नहीं) कहकर निरूपण करते हैं। जो आनंदस्वरूप, उपाधिरहित और अनुपम हैं एवं जिनके अंश से अनेक शिव, ब्रह्मा और विष्णु भगवान प्रकट होते हैं॥3॥

* ऐसेउ प्रभु सेवक बस अहई। भगत हेतु लीलातनु गहई॥
जौं यह बचन सत्य श्रुति भाषा। तौ हमार पूजिहि अभिलाषा॥4॥

भावार्थ:-ऐसे (महान) प्रभु भी सेवक के वश में हैं और भक्तों के लिए (दिव्य) लीला विग्रह धारण करते हैं। यदि वेदों में यह वचन सत्य कहा है, तो हमारी अभिलाषा भी अवश्य पूरी होगी॥4॥

दोहा :

* एहि बिधि बीते बरष षट सहस बारि आहार।
संबत सप्त सहस्र पुनि रहे समीर अधार॥144॥

भावार्थ:-इस प्रकार जल का आहार (करके तप) करते छह हजार वर्ष बीत गए। फिर सात हजार वर्ष वे वायु के आधार पर रहे॥144॥

चौपाई :

* बरष सहस दस त्यागेउ सोऊ। ठाढ़े रहे एक पद दोऊ ॥
बिधि हरि हर तप देखि अपारा। मनु समीप आए बहु बारा॥1॥

भावार्थ:-दस हजार वर्ष तक उन्होंने वायु का आधार भी छोड़ दिया। दोनों एक पैर से खड़े रहे। उनका अपार तप देखकर ब्रह्मा, विष्णु और शिवजी कई बार मनुजी के पास आए॥1॥

* मागहु बर बहु भाँति लोभाए। परम धीर नहिं चलहिं चलाए॥
अस्थिमात्र होइ रहे सरीरा। तदपि मनाग मनहिं नहिं पीरा॥2॥

भावार्थ:-उन्होंने इन्हें अनेक प्रकार से ललचाया और कहा कि कुछ वर माँगो। पर ये परम धैर्यवान (राजा-रानी अपने तप से किसी के) डिगाए नहीं डिगे। यद्यपि उनका शरीर हड्डियों का ढाँचा मात्र रह गया था, फिर भी उनके मन में जरा भी पीड़ा नहीं थी॥2॥

* प्रभु सर्बग्य दास निज जानी। गति अनन्य तापस नृप रानी॥
मागु मागु बरु भै नभ बानी। परम गभीर कृपामृत सानी॥3॥

भावार्थ:-सर्वज्ञ प्रभु ने अनन्य गति (आश्रय) वाले तपस्वी राजा-रानी को 'निज दास' जाना। तब परम गंभीर और कृपा रूपी अमृत से सनी हुई यह आकाशवाणी हुई कि 'वर माँगो'॥3॥

* मृतक जिआवनि गिरा सुहाई। श्रवन रंध्र होइ उर जब आई॥
हृष्ट पुष्ट तन भए सुहाए। मानहुँ अबहिं भवन ते आए॥4॥

भावार्थ:-मुर्दे को भी जिला देने वाली यह सुंदर वाणी कानों के छेदों से होकर जब हृदय में आई, तब राजा-रानी के शरीर ऐसे सुंदर और हृष्ट-पुष्ट हो गए, मानो अभी घर से आए हैं॥4॥

दोहा :

* श्रवन सुधा सम बचन सुनि पुलक प्रफुल्लित गात।
बोले मनु करि दंडवत प्रेम न हृदयँ समात॥145॥

भावार्थ:-कानों में अमृत के समान लगने वाले वचन सुनते ही उनका शरीर पुलकित और प्रफुल्लित हो गया। तब मनुजी दण्डवत करके बोले- प्रेम हृदय में समाता न था-॥145॥

चौपाई :

* सुनु सेवक सुरतरु सुरधेनू। बिधि हरि हर बंदित पद रेनू॥
सेवत सुलभ सकल सुखदायक। प्रनतपाल सचराचर नायक॥1॥

भावार्थ:-हे प्रभो! सुनिए, आप सेवकों के लिए कल्पवृक्ष और कामधेनु हैं। आपके चरण रज की ब्रह्मा, विष्णु और शिवजी भी वंदना करते हैं। आप सेवा करने में सुलभ हैं तथा सब सुखों के देने वाले हैं। आप शरणागत के रक्षक और जड़-चेतन के स्वामी हैं॥1॥

* जौं अनाथ हित हम पर नेहू। तौ प्रसन्न होई यह बर देहू॥
जोसरूप बस सिव मन माहीं। जेहिं कारन मुनि जतन कराहीं॥2॥

भावार्थ:-हे अनाथों का कल्याण करने वाले! यदि हम लोगों पर आपका स्नेह है, तो प्रसन्न होकर यह वर दीजिए कि आपका जो स्वरूप शिवजी के मन में बसता है और जिस (की प्राप्ति) के लिए मुनि लोग यत्न करते हैं॥2॥

* जो भुसुंडि मन मानस हंसा। सगुन अगुन जेहि निगम प्रसंसा॥
देखहिं हम सो रूप भरि लोचन। कृपा करहु प्रनतारति मोचन॥3॥

भावार्थ:-जो काकभुशुण्डि के मन रूपी मान सरोवर में विहार करने वाला हंस है, सगुण और निर्गुण कहकर वेद जिसकी प्रशंसा करते हैं, हे शरणागत के दुःख मिटाने वाले प्रभो! ऐसी कृपा कीजिए कि हम उसी रूप को नेत्र भरकर देखें॥3॥

* दंपति बचन परम प्रिय लागे। मृदुल बिनीत प्रेम रस पागे॥
भगत बछल प्रभु कृपानिधाना। बिस्वबास प्रगटे भगवाना॥4॥

भावार्थ:-राजा-रानी के कोमल, विनययुक्त और प्रेमरस में पगे हुए वचन भगवान को बहुत ही प्रिय लगे। भक्तवत्सल, कृपानिधान, सम्पूर्ण विश्व के निवास स्थान (या समस्त विश्व में व्यापक), सर्वसमर्थ भगवान प्रकट हो गए॥4॥

दोहा :

* नील सरोरुह नील मनि नील नीरधर स्याम।

लाजहिं तन सोभा निरखि कोटि कोटि सत काम॥146॥

भावार्थ:- भगवान के नीले कमल, नीलमणि और नीले (जलयुक्त) मेघ के समान (कोमल, प्रकाशमय और सरस) श्यामवर्ण (चिन्मय) शरीर की शोभा देखकर करोड़ों कामदेव भी लजा जाते हैं॥146॥

चौपाई :

* सरद मयंक बदन छबि सींवा। चारु कपोल चिबुक दर ग्रीवा॥

अधर अरुन रद सुंदर नासा। बिधु कर निकर बिनिंदक हासा॥1॥

भावार्थ:-उनका मुख शरद (पूर्णिमा) के चन्द्रमा के समान छबि की सीमास्वरूप था। गाल और ठोड़ी बहुत सुंदर थे, गला शंख के समान (त्रिरेखायुक्त, चढ़ाव-उतार वाला) था। लाल होठ, दाँत और नाक अत्यन्त सुंदर थे। हँसी चन्द्रमा की किरणावली को नीचा दिखाने वाली थी॥1॥

* नव अंबुज अंबक छबि नीकी। चितवनि ललित भावँतीजी की॥

भृकुटि मनोज चाप छबि हारी। तिलक ललाट पटल दुतिकारी॥2॥

भावार्थ:-नेत्रों की छवि नए (खिले हुए) कमल के समान बड़ी सुंदर थी। मनोहर चितवन जी को बहुत प्यारी लगती थी। टेढ़ी भौंहें कामदेव के

धनुष की शोभा को हरने वाली थीं। ललाट पटल पर प्रकाशमय तिलक था॥2॥

* कुंडल मकर मुकुट सिर भ्राजा। कुटिल केस जनु मधुप समाजा॥
उर श्रीबत्स रुचिर बनमाला। पदिक हार भूषन मनिजाला॥3॥

भावार्थ:-कानों में मकराकृत (मछली के आकार के) कुंडल और सिर पर मुकुट सुशोभित था। टेढ़े (घुँघराले) काले बाल ऐसे सघन थे, मानो भौंरों के झुंड हों। हृदय पर श्रीवत्स, सुंदर वनमाला, रत्नजड़ित हार और मणियों के आभूषण सुशोभित थे॥3॥

* केहरि कंधर चारु जनेऊ। बाहु बिभूषन सुंदर तेऊ॥
मकरि कर सरिस सुभग भुजदंडा। कटि निषंग कर सर कोदंडा॥4॥

भावार्थ:-सिंह की सी गर्दन थी, सुंदर जनेऊ था। भुजाओं में जो गहने थे, वे भी सुंदर थे। हाथी की सूँड के समान (उतार-चढ़ाव वाले) सुंदर भुजदंड थे। कमर में तरकस और हाथ में बाण और धनुष (शोभा पा रहे) थे॥4॥

दोहा :

* तड़ित बिनिंदक पीत पट उदर रेख बर तीनि।
नाभि मनोहर लेति जनु जमुन भँवर छबि छीनि॥147॥

भावार्थ:-(स्वर्ण-वर्ण का प्रकाशमय) पीताम्बर बिजली को लजाने वाला था। पेट पर सुंदर तीन रेखाएँ (त्रिवली) थीं। नाभि ऐसी मनोहर थी, मानो यमुनाजी के भँवरों की छबि को छीने लेती हो॥147॥

चौपाई :

* पद राजीव बरनि नहिं जाहीं। मुनि मन मधुप बसहिं जेन्ह माहीं॥
बाम भाग सोभति अनुकूला। आदिसक्ति छबिनिधि जगमूला॥1॥

भावार्थ:-जिनमें मुनियों के मन रूपी भौंरे बसते हैं, भगवान के उन चरणकमलों का तो वर्णन ही नहीं किया जा सकता। भगवान के बाएँ भाग में सदा अनुकूल रहने वाली, शोभा की राशि जगत की मूलकारण रूपा आदि शक्ति श्री जानकीजी सुशोभित हैं॥1॥

*जासु अंस उपजहिं गुनखानी। अगनित लच्छि उमा ब्रह्मानी॥
भृकुटि बिलास जासु जग होई। राम बाम दिसि सीता सोई॥2॥

भावार्थ:-जिनके अंश से गुणों की खान अगणित लक्ष्मी, पार्वती और ब्रह्माणी (त्रिदेवों की शक्तियाँ) उत्पन्न होती हैं तथा जिनकी भौंह के इशारे से ही जगत की रचना हो जाती है, वही (भगवान की स्वरूपा शक्ति) श्री सीताजी श्री रामचन्द्रजी की बाईं ओर स्थित हैं॥2॥

*छबिसमुद्र हरि रूप बिलोकी। एकटक रहे नयन पट रोकी॥
चितवहिं सादर रूप अनूपा। तृप्ति न मानहिं मनु सतरूपा॥3॥

भावार्थ:-शोभा के समुद्र श्री हरि के रूप को देखकर मनु-शतरूपा नेत्रों के पट (पलकें) रोके हुए एकटक (स्तब्ध) रह गए। उस अनुपम रूप को वे आदर सहित देख रहे थे और देखते-देखते अघाते ही न थे॥3॥

* हरष बिबस तन दसा भुलानी। परे दंड इव गहि पद पानी॥
सिर परसे प्रभु निज कर कंजा। तुरत उठाए करुनापुंजा॥4॥

भावार्थ:-आनंद के अधिक वश में हो जाने के कारण उन्हें अपने देह की सुधि भूल गई। वे हाथों से भगवान के चरण पकड़कर दण्ड की तरह (सीधे) भूमि पर गिर पड़े। कृपा की राशि प्रभु ने अपने करकमलों से उनके मस्तकों का स्पर्श किया और उन्हें तुरंत ही उठा लिया॥4॥

दोहा :

* बोले कृपानिधान पुनि अति प्रसन्न मोहि जानि।
मागहु बर जोइ भाव मन महादानि अनुमानि॥148॥

भावार्थ:-फिर कृपानिधान भगवान बोले- मुझे अत्यन्त प्रसन्न जानकर और बड़ा भारी दानी मानकर, जो मन को भाए वही वर माँग लो॥148॥

चौपाई :

* सुनि प्रभु बचन जोरि जुग पानी। धरि धीरजु बोली मृदु बानी॥
नाथ देखि पद कमल तुम्हारे। अब पूरे सब काम हमारे॥1॥

भावार्थ:-प्रभु के वचन सुनकर, दोनों हाथ जोड़कर और धीरज धरकर राजा ने कोमल वाणी कही- हे नाथ! आपके चरणकमलों को देखकर अब हमारी सारी मनःकामनाएँ पूरी हो गईं॥1॥

* एक लालसा बड़ि उर माहीं। सुगम अगम कहि जाति सो नाहीं॥
तुम्हहि देत अति सुगम गोसाईं। अगम लाग मोहि निज कृपनाईं॥2॥

भावार्थ:-फिर भी मन में एक बड़ी लालसा है। उसका पूरा होना सहज भी है और अत्यन्त कठिन भी, इसी से उसे कहते नहीं बनता। हे स्वामी! आपके लिए तो उसका पूरा करना बहुत सहज है, पर मुझे अपनी कृपणता (दीनता) के कारण वह अत्यन्त कठिन मालूम होता है॥2॥

* जथा दरिद्र बिबुधतरु पाई। बहु संपति मागत सकुचाई॥
तासु प्रभाउ जान नहिं सोई। तथा हृदयँ मम संसय होई॥3॥

भावार्थ:-जैसे कोई दरिद्र कल्पवृक्ष को पाकर भी अधिक द्रव्य माँगने में संकोच करता है, क्योंकि वह उसके प्रभाव को नहीं जानता, वैसे ही मेरे हृदय में संशय हो रहा है॥3॥

* सो तुम्ह जानहु अंतरजामी। पुरवहु मोर मनोरथ स्वामी॥
सकुच बिहाइ मागु नृप मोही। मोरें नहिं अदेय कछु तोही॥4॥

भावार्थ:-हे स्वामी! आप अन्तरयामी हैं, इसलिए उसे जानते ही हैं। मेरा वह मनोरथ पूरा कीजिए। (भगवान ने कहा-) हे राजन्! संकोच छोड़कर मुझसे माँगो। तुम्हें न दे सकूँ ऐसा मेरे पास कुछ भी नहीं है॥4॥

दोहा :

*दानि सिरोमनि कृपानिधि नाथ कहउँ सतिभाउ।
चाहउँ तुम्हहि समान सुत प्रभु सन कवन दुराउ॥149॥

भावार्थ:-(राजा ने कहा-) हे दानियों के शिरोमणि! हे कृपानिधान! हे नाथ! मैं अपने मन का सच्चा भाव कहता हूँ कि मैं आपके समान पुत्र चाहता हूँ। प्रभु से भला क्या छिपाना! ॥149॥

चौपाई :

* देखि प्रीति सुनि बचन अमोले। एवमस्तु करुनानिधि बोले॥
आपु सरिस खोजौं कहँ जाई। नृप तव तनय होब मैं आई॥1॥

भावार्थ:-राजा की प्रीति देखकर और उनके अमूल्य वचन सुनकर करुणानिधान भगवान बोले- ऐसा ही हो। हे राजन्! मैं अपने समान (दूसरा) कहाँ जाकर खोजूँ! अतः स्वयं ही आकर तुम्हारा पुत्र बनूँगा॥1॥

* सतरूपहिं बिलोकि कर जोरें। देबि मागु बरु जो रुचि तोरें॥
जो बरु नाथ चतुर नृप मागा। सोइ कृपाल मोहि अति प्रिय लागा॥2॥

भावार्थ:-शतरूपाजी को हाथ जोड़े देखकर भगवान ने कहा- हे देवी! तुम्हारी जो इच्छा हो, सो वर माँग लो। (शतरूपा ने कहा-) हे नाथ! चतुर राजा ने जो वर माँगा, हे कृपालु! वह मुझे बहुत ही प्रिय लगा,॥2॥

* प्रभु परंतु सुठि होति ढिठाई। जदपि भगत हित तुम्हहि सोहाई॥
तुम्ह ब्रह्मादि जनक जग स्वामी। ब्रह्म सकल उर अंतरजामी॥3॥

भावार्थ:-परंतु हे प्रभु! बहुत ढिठाई हो रही है, यद्यपि हे भक्तों का हित करने वाले! वह ढिठाई भी आपको अच्छी ही लगती है। आप ब्रह्मा आदि

के भी पिता (उत्पन्न करने वाले), जगत के स्वामी और सबके हृदय के भीतर की जानने वाले ब्रह्म हैं॥3॥

* अस समुझत मन संसय होई। कहा जो प्रभु प्रवान पुनि सोई॥
जे निज भगत नाथ तव अहहीं। जो सुख पावहिं जो गति लहहीं॥4॥

भावार्थ:-ऐसा समझने पर मन में संदेह होता है, फिर भी प्रभु ने जो कहा वही प्रमाण (सत्य) है। (मैं तो यह माँगती हूँ कि) हे नाथ! आपके जो निज जन हैं, वे जो (अलौकिक, अखंड) सुख पाते हैं और जिस परम गति को प्राप्त होते हैं-॥4॥

दोहा :

* सोइ सुख सोइ गति सोइ भगति सोइ निज चरन सनेहु।
सोइ बिबेक सोइ रहनि प्रभु हमहि कृपा करि देहु॥150॥

भावार्थ:-हे प्रभो! वही सुख, वही गति, वही भक्ति, वही अपने चरणों में प्रेम, वही ज्ञान और वही रहन-सहन कृपा करके हमें दीजिए॥150॥

चौपाई :

* सुनि मृदु गूढ़ रुचिर बर रचना। कृपासिंधु बोले मृदु बचना॥
जो कछु रुचि तुम्हरे मन माहीं। मैं सो दीन्ह सब संसय नाहीं॥1॥

भावार्थ:-(रानी की) कोमल, गूढ़ और मनोहर श्रेष्ठ वाक्य रचना सुनकर कृपा के समुद्र भगवान कोमल वचन बोले- तुम्हारे मन में जो कुछ इच्छा है, वह सब मैंने तुमको दिया, इसमें कोई संदेह न समझना॥1॥

*मातु बिबेक अलौकिक तोरें। कबहुँ न मिटिहि अनुग्रह मोरें॥
बंदि चरन मनु कहेउ बहोरी। अवर एक बिनती प्रभु मोरी॥2॥

भावार्थ:-हे माता! मेरी कृपा से तुम्हारा अलौकिक ज्ञान कभी नष्ट न होगा। तब मनु ने भगवान के चरणों की वंदना करके फिर कहा- हे प्रभु! मेरी एक विनती और है-॥2॥

* सुत बिषइक तव पद रति होऊ। मोहि बड़ मूढ़ कहे किन कोऊ॥
मनि बिनु फनि जिमि जल बिनु मीना। मम जीवन तिमि तुम्हहि अधीना॥3॥

भावार्थ:-आपके चरणों में मेरी वैसी ही प्रीति हो जैसी पुत्र के लिए पिता की होती है, चाहे मुझे कोई बड़ा भारी मूर्ख ही क्यों न कहे। जैसे मणि के बिना साँप और जल के बिना मछली (नहीं रह सकती), वैसे ही मेरा जीवन आपके अधीन रहे (आपके बिना न रह सके)॥3॥

* अस बरु मागि चरन गहि रहेऊ। एवमस्तु करुनानिधि कहेऊ॥
अब तुम्ह मम अनुसासन मानी। बसहु जाइ सुरपति रजधानी॥4॥

भावार्थ:-ऐसा वर माँगकर राजा भगवान के चरण पकड़े रह गए। तब दया के निधान भगवान ने कहा- ऐसा ही हो। अब तुम मेरी आज्ञा मानकर देवराज इन्द्र की राजधानी (अमरावती) में जाकर वास करो॥4॥

सोरठा :

* तहँ करि भोग बिसाल तात गएँ कछु काल पुनि।
होइहहु अवध भुआल तब मैं होब तुम्हार सुत॥151॥

भावार्थ:-हे तात! वहाँ (स्वर्ग के) बहुत से भोग भोगकर, कुछ काल बीत जाने पर, तुम अवध के राजा होंगे। तब मैं तुम्हारा पुत्र होऊँगा॥151॥

चौपाई :

*इच्छामय नरबेष सँवारें। होइहउँ प्रगट निकेत तुम्हारें॥
अंसन्ह सहित देह धरि ताता। करिहउँ चरित भगत सुखदाता॥1॥

भावार्थ:-इच्छानिर्मित मनुष्य रूप सजकर मैं तुम्हारे घर प्रकट होऊँगा। हे तात! मैं अपने अंशों सहित देह धारण करके भक्तों को सुख देने वाले चरित्र करूँगा॥1॥

* जे सुनि सादर नर बड़भागी। भव तरिहहिं ममता मद त्यागी॥
आदिसक्ति जेहिं जग उपजाया। सोउ अवतरिहि मोरि यह माया॥2॥

भावार्थ:-जिन (चरित्रों) को बड़े भाग्यशाली मनुष्य आदरसहित सुनकर, ममता और मद त्यागकर, भवसागर से तर जाएँगे। आदिशक्ति यह मेरी (स्वरूपभूता) माया भी, जिसने जगत को उत्पन्न किया है, अवतार लेगी॥2॥

* पुरउब मैं अभिलाष तुम्हारा। सत्य सत्य पन सत्य हमारा॥
पुनि पुनि अस कहि कृपानिधाना। अंतरधान भए भगवाना॥3॥

भावार्थ:-इस प्रकार मैं तुम्हारी अभिलाषा पूरी करूँगा। मेरा प्रण सत्य है, सत्य है, सत्य है। कृपानिधान भगवान बार-बार ऐसा कहकर अन्तरधान हो गए॥3॥

* दंपति उर धरि भगत कृपाला। तेहिं आश्रम निवसे कछु काला॥
समय पाइ तनु तजि अनयासा। जाइ कीन्ह अमरावति बासा॥4॥

भावार्थ:-वे स्त्री-पुरुष (राजा-रानी) भक्तों पर कृपा करने वाले भगवान को हृदय में धारण करके कुछ काल तक उस आश्रम में रहे। फिर उन्होंने समय पाकर, सहज ही (बिना किसी कष्ट के) शरीर छोड़कर, अमरावती (इन्द्र की पुरी) में जाकर वास किया॥4॥

दोहा :

* यह इतिहास पुनीत अति उमहि कही बृषकेतु।
भरद्वाज सुनु अपर पुनि राम जनम कर हेतु॥152॥

भावार्थ:-(याज्ञवल्क्यजी कहते हैं-) हे भरद्वाज! इस अत्यन्त पवित्र इतिहास को शिवजी ने पार्वती से कहा था। अब श्रीराम के अवतार लेने का दूसरा कारण सुनो॥152॥

मासपारायण, पाँचवाँ विश्राम

प्रतापभानु की कथा

चौपाई :

* सुनु मुनि कथा पुनीत पुरानी। जो गिरिजा प्रति संभु बखानी॥
बिस्व बिदित एक कैकय देसू। सत्यकेतु तहँ बसइ नरेसू॥1॥

भावार्थ:-हे मुनि! वह पवित्र और प्राचीन कथा सुनो, जो शिवजी ने पार्वती से कही थी। संसार में प्रसिद्ध एक कैकय देश है। वहाँ सत्यकेतु नाम का राजा रहता (राज्य करता) था॥1॥

* धरम धुरंधर नीति निधाना। तेज प्रताप सील बलवाना॥
तेहि कें भए जुगल सुत बीरा। सब गुन धाम महा रनधीरा॥2॥

भावार्थ:-वह धर्म की धुरी को धारण करने वाला, नीति की खान, तेजस्वी, प्रतापी, सुशील और बलवान था, उसके दो वीर पुत्र हुए, जो सब गुणों के भंडार और बड़े ही रणधीर थे॥2॥

* राज धनी जो जेठ सुत आही। नाम प्रतापभानु अस ताही॥
अपर सुतहि अरिमर्दन नामा। भुजबल अतुल अचल संग्रामा॥3॥

भावार्थ:-राज्य का उत्तराधिकारी जो बड़ा लड़का था, उसका नाम प्रतापभानु था। दूसरे पुत्र का नाम अरिमर्दन था, जिसकी भुजाओं में अपार बल था और जो युद्ध में (पर्वत के समान) अटल रहता था॥3॥

* भाइहि भाइहि परम समीती। सकल दोष छल बरजित प्रीती॥
जेठे सुतहि राज नृप दीन्हा। हरि हित आपु गवन बन कीन्हा॥4॥

भावार्थ:-भाई-भाई में बड़ा मेल और सब प्रकार के दोषों और छलों से रहित (सच्ची) प्रीति थी। राजा ने जेठे पुत्र को राज्य दे दिया और आप भगवान (के भजन) के लिए वन को चल दिए॥4॥

दोहा :

* जब प्रतापरबि भयउ नृप फिरी दोहाई देस।

प्रजा पाल अति बेदबिधि कतहुँ नहीं अघ लेस॥153॥

भावार्थ:-जब प्रतापभानु राजा हुआ, देश में उसकी दुहाई फिर गई। वह वेद में बताई हुई विधि के अनुसार उत्तम रीति से प्रजा का पालन करने लगा। उसके राज्य में पाप का कहीं लेश भी नहीं रह गया॥153॥

चौपाई :

* नृप हितकारक सचिव सयाना। नाम धरमरुचि सुक्र समाना॥

सचिव सयान बंधु बलबीरा। आपु प्रतापपुंज रनधीरा॥1॥

भावार्थ:-राजा का हित करने वाला और शुक्राचार्य के समान बुद्धिमान धर्मरुचि नामक उसका मंत्री था। इस प्रकार बुद्धिमान मंत्री और बलवान तथा वीर भाई के साथ ही स्वयं राजा भी बड़ा प्रतापी और रणधीर था॥1॥

* सेन संग चतुरंग अपारा। अमित सुभट सब समर जुझारा॥

सेन बिलोकि राउ हरषाना। अरु बाजे गहगहे निसाना॥2॥

भावार्थ:-साथ में अपार चतुरंगिणी सेना थी, जिसमें असंख्य योद्धा थे, जो सब के सब रण में जूझ मरने वाले थे। अपनी सेना को देखकर राजा बहुत प्रसन्न हुआ और घमाघम नगाड़े बजने लगे॥2॥

* बिजय हेतु कटकई बनाई। सुदिन साधि नृप चलेउ बजाई॥

जहँ तहँ परीं अनेक लराईं। जीते सकल भूप बरिआईं॥3॥

भावार्थ:-दिग्विजय के लिए सेना सजाकर वह राजा शुभ दिन (मुहूर्त) साधकर और डंका बजाकर चला। जहाँ-तहाँ बहुतसी लड़ाइयाँ हुईं। उसने सब राजाओं को बलपूर्वक जीत लिया॥3॥

* सप्त दीप भुजबल बस कीन्हे। लै लै दंड छाड़ि नृप दीन्हे॥

सकल अवनि मंडल तेहि काला। एक प्रतापभानु महिपाला॥4॥

भावार्थ:-अपनी भुजाओं के बल से उसने सातों द्वीपों (भूमिखण्डों) को वश में कर लिया और राजाओं से दंड (कर) ले-लेकर उन्हें छोड़ दिया। सम्पूर्ण पृथ्वी मंडल का उस समय प्रतापभानु ही एकमात्र (चक्रवर्ती) राजा था॥4॥

दोहा :

* स्वबस बिस्व करि बाहुबल निज पुर कीन्ह प्रबेसु।

अरथ धरम कामादि सुख सेवइ समयँ नरेसु॥154॥

भावार्थ:-संसारभर को अपनी भुजाओं के बल से वश में करके राजा ने अपने नगर में प्रवेश किया। राजा अर्थ, धर्म और काम आदि के सुखों का समयानुसार सेवन करता था॥154॥

चौपाई :

* भूप प्रतापभानु बल पाई। कामधेनु भै भूमि सुहाई॥

सब दुख बरजित प्रजा सुखारी। धरमसील सुंदर नर नारी॥1॥

भावार्थ:-राजा प्रतापभानु का बल पाकर भूमि सुंदर कामधेनु (मनचाही वस्तु देने वाली) हो गई। (उनके राज्य में) प्रजा सब (प्रकार के) दुःखों से रहित और सुखी थी और सभी स्त्री-पुरुष सुंदर और धर्मात्मा थे॥1॥

* सचिव धरमरुचि हरि पद प्रीती। नृप हित हेतु सिखव नित नीती॥

गुर सुर संत पितर महिदेवा। करइ सदा नृप सब कै सेवा॥2॥

भावार्थ:-धर्मरुचि मंत्री का श्री हरि के चरणों में प्रेम था। वह राजा के हित के लिए सदा उसको नीति सिखाया करता था। राजा गुरु, देवता, संत, पितर और ब्राह्मण- इन सबकी सदा सेवा करता रहता था॥2॥

*भूप धरम जे बेद बखाने। सकल करइ सादर सुख माने॥
दिन प्रति देइ बिबिध बिधि दाना। सुनइ सास्त्र बर बेद पुराना॥3॥

भावार्थ:-वेदों में राजाओं के जो धर्म बताए गए हैं, राजा सदा आदरपूर्वक और सुख मानकर उन सबका पालन करता था। प्रतिदिन अनेक प्रकार के दान देता और उत्तम शास्त्र, वेद और पुराण सुनता था॥3॥

* नाना बापीं कूप तड़ागा। सुमन बाटिका सुंदर बागा॥
बिप्रभवन सुरभवन सुहाए। सब तीरथन्ह विचित्र बनाए॥4॥

भावार्थ:-उसने बहुत सी बावलियाँ, कुएँ, तालाब, फुलवाड़ियाँ सुंदर बगीचे, ब्राह्मणों के लिए घर और देवताओं के सुंदर विचित्र मंदिर सब तीर्थों में बनवाए॥4॥

दोहा :

* जहँ लजि कहे पुरान श्रुति एक एक सब जाग।
बार सहस्र सहस्र नृप किए सहित अनुराग॥155॥

भावार्थ:-वेद और पुराणों में जितने प्रकार के यज्ञ कहे गए हैं, राजा ने एक-एक करके उन सब यज्ञों को प्रेम सहित हजार-हजार बार किया॥155॥

चौपाई :

* हृदयँ न कछु फल अनुसंधाना। भूप बिबेकी परम सुजाना॥
करइ जे धरम करम मन बानी। बासुदेव अर्पित नृप ग्यानी॥1॥

भावार्थ:-(राजा के) हृदय में किसी फल की टोह (कामना) न थी। राजा बड़ा ही बुद्धिमान और ज्ञानी था। वह ज्ञानी राजा कर्म, मन और वाणी से जो कुछ भी धर्म करता था, सब भगवान वासुदेव को अर्पित करते रहता था॥1॥

* चढ़ि बर बाजि बार एक राजा। मृगया कर सब साजि समाजा॥
बिंध्याचल गभीर बन गयऊ। मृग पुनीत बहु मारत भयऊ॥2॥

भावार्थ:-एक बार वह राजा एक अच्छे घोड़े पर सवार होकर, शिकार का सब सामान सजाकर विंध्याचल के घने जंगल में गया और वहाँ उसने बहुत से उत्तम-उत्तम हिरन मारे॥2॥

* फिरत बिपिन नृप दीख बराहू। जनु बन दुरेउ ससिहि ग्रसि राहू॥
बड़ बिधु नहिं समात मुख माहीं। मनहुँ क्रोध बस उगिलत नाहीं॥3॥

भावार्थ:-राजा ने वन में फिरते हुए एक सूअर को देखा। (दाँतों के कारण वह ऐसा दिख पड़ता था) मानो चन्द्रमा को ग्रसकर (मुँह में पकड़कर) राहु वन में आ छिपा हो। चन्द्रमा बड़ा होने से उसके मुँह में समाता नहीं है और मानो क्रोधवश वह भी उसे उगलता नहीं है॥3॥

* कोल कराल दसन छबि गाई। तनु बिसाल पीवर अधिकाई॥
घुरुघुरात हय आरौ पाएँ। चकित बिलोकत कान उठाएँ॥4॥

भावार्थ:-यह तो सूअर के भयानक दाँतों की शोभा कही गई। (इधर) उसका शरीर भी बहुत विशाल और मोटा था। घोड़े की आहट पाकर वह घुरघुराता हुआ कान उठाए चौकन्ना होकर देख रहा था॥4॥

दोहा :

* नील महीधर सिखर सम देखि बिसाल बराहु।
चपरि चलेउ हय सुटुकि नृप हाँकि न होइ निबाहु॥156॥

भावार्थ:-नील पर्वत के शिखर के समान विशाल (शरीर वाले) उस सूअर को देखकर राजा घोड़े को चाबुक लगाकर तेजी से चला और उसने सूअर को ललकारा कि अब तेरा बचाव नहीं हो सकता॥156॥

चौपाई :

* आवत देखि अधिक रव बाजी। चलेउ बराह मरुत गति भाजी॥

तुरत कीन्ह नृप सर संधाना। महि मिलि गयउ बिलोकत बाना॥1॥

भावार्थ:-अधिक शब्द करते हुए घोड़े को (अपनी तरफ) आता देखकर सूअर पवन वेग से भाग चला। राजा ने तुरंत ही बाण को धनुष पर चढ़ाया। सूअर बाण को देखते ही धरती में दुबक गया॥1॥

* तकि तकि तीर महीस चलावा। करि छल सुअर सरीर बचावा॥

प्रगटत दुरत जाइ मृग भागा। रिस बस भूप चलेउ सँग लागा॥2॥

भावार्थ:-राजा तक-तककर तीर चलाता है, परन्तु सूअर छल करके शरीर को बचाता जाता है। वह पशु कभी प्रकट होता और कभी छिपता हुआ भाग जाता था और राजा भी क्रोध के वश उसके साथ (पीछे) लगा चला जाता था॥2॥

* गयउ दूरि घन गहन बराहू। जहँ नाहिन गज बाजि निबाहू॥

अति अकेल बन बिपुल कलेसू। तदपि न मृग मग तजइ नरेसू॥3॥

भावार्थ:-सूअर बहुत दूर ऐसे घने जंगल में चला गया, जहाँ हाथी-घोड़े का निबाह (गमन) नहीं था। राजा बिलकुल अकेला था और वन में क्लेश भी बहुत था, फिर भी राजा ने उस पशु का पीछा नहीं छोड़ा॥3॥

* कोल बिलोकि भूप बड़ धीरा। भागि पैठ गिरिगुहाँ गभीरा॥

अगम देखि नृप अति पछिताई। फिरेउ महाबन परेउ भुलाई॥4॥

भावार्थ:-राजा को बड़ा धैर्यवान देखकर, सूअर भागकर पहाड़ की एक गहरी गुफा में जा घुसा। उसमें जाना कठिन देखकर राजा को बहुत पछताकर लौटना पड़ा, पर उस घोर वन में वह रास्ता भूल गया॥4॥

दोहा :

*खेद खिन्न छुद्धित तृषित राजा बाजि समेत।

खोजत ब्याकुल सरित सर जल बिनु भयउ अचेत॥157॥

भावार्थ:-बहुत परिश्रम करने से थका हुआ और घोड़े समेत भूख-प्यास से व्याकुल राजा नदी-तालाब खोजता-खोजता पानी बिना बेहाल हो गया॥157॥

चौपाई :

* फिरत बिपिन आश्रम एक देखा। तहँ बस नृपति कपट मुनिबेषा॥

जासु देस नृप लीन्ह छड़ाई। समर सेन तजि गयउ पराई॥1॥

भावार्थ:- वन में फिरते-फिरते उसने एक आश्रम देखा, वहाँ कपट से मुनि का वेष बनाए एक राजा रहता था, जिसका देश राजा प्रतापभानु ने छीन लिया था और जो सेना को छोड़कर युद्ध से भाग गया था॥1॥

* समय प्रतापभानु कर जानी। आपन अति असमय अनुमानी॥

गयउ न गृह मन बहुत गलानी। मिला न राजहि नृप अभिमानी॥2॥

भावार्थ:-प्रतापभानु का समय (अच्छे दिन) जानकर और अपना कुसमय (बुरे दिन) अनुमानकर उसके मन में बड़ी ग्लानि हुई। इससे वह न तो घर गया और न अभिमानी होने के कारण राजा प्रतापभानु से ही मिला (मेल किया)॥2॥

* रिस उर मारि रंक जिमि राजा। बिपिन बसइ तापस कें साजा॥

तासु समीप गवन नृप कीन्हा। यह प्रतापरबि तेहिं तब चीन्हा॥3॥

भावार्थ:-दरिद्र की भाँति मन ही में क्रोध को मारकर वह राजा तपस्वी के वेष में वन में रहता था। राजा (प्रतापभानु) उसी के पास गया। उसने तुरंत पहचान लिया कि यह प्रतापभानु है॥3॥

* राउ तृषित नहिं सो पहिचाना। देखि सुबेष महामुनि जाना॥

उतरि तुरग तें कीन्ह प्रनामा। परम चतुर न कहेउ निज नामा॥4॥

भावार्थ:-राजा प्यासा होने के कारण (व्याकुलता में) उसे पहचान न सका। सुंदर वेष देखकर राजा ने उसे महामुनि समझा और घोड़े से उतरकर उसे प्रणाम किया, परन्तु बड़ा चतुर होने के कारण राजा ने उसे अपना नाम नहीं बताया॥4॥

दोहा :

* भूपति तृषित बिलोकि तेहिं सरबरू दीन्ह देखाइ।

मज्जन पान समेत हय कीन्ह नृपति हरषाइ॥158॥

भावार्थ:-राजा को प्यासा देखकर उसने सरोवर दिखला दिया। हर्षित होकर राजा ने घोड़े सहित उसमें स्नान और जलपान किया॥158॥

चौपाई :

* गै श्रम सकल सुखी नृप भयऊ। निज आश्रम तापस लै गयऊ॥

आसन दीन्ह अस्त रबि जानी। पुनि तापस बोलेउ मृदु बानी॥1॥

भावार्थ:-सारी थकावट मिट गई, राजा सुखी हो गया। तब तपस्वी उसे अपने आश्रम में ले गया और सूर्यास्त का समय जानकर उसने (राजा को बैठने के लिए) आसन दिया। फिर वह तपस्वी कोमल वाणी से बोला- ॥1॥

*को तुम्ह कस बन फिरहु अकेलें। सुंदर जुबा जीव परहेलें॥

चक्रबर्ति के लच्छन तोरें। देखत दया लागि अति मोरें॥2॥

भावार्थ:-तुम कौन हो? सुंदर युवक होकर, जीवन की परवाह न करके वन में अकेले क्यों फिर रहे हो? तुम्हारे चक्रवर्ती राजा के से लक्षण देखकर मुझे बड़ी दया आती है॥2॥

* नाम प्रतापभानु अवनीसा। तासु सचिव मैं सुनहु मुनीसा॥
फिरत अहेरें परेउँ भुलाई। बड़ें भाग देखेउँ पद आई॥3॥

भावार्थ:-(राजा ने कहा-) हे मुनीश्वर! सुनिए, प्रतापभानु नाम का एक राजा है, मैं उसका मंत्री हूँ। शिकार के लिए फिरते हुए राह भूल गया हूँ। बड़े भाग्य से यहाँ आकर मैंने आपके चरणों के दर्शन पाए हैं॥3॥

* हम कहँ दुर्लभ दरस तुम्हारा। जानत हौं कछु भल होनिहारा॥
कह मुनि तात भयउ अँधिआरा। जोजन सत्तरि नगरु तुम्हारा॥4॥

भावार्थ:-हमें आपका दर्शन दुर्लभ था, इससे जान पड़ता है कुछ भला होने वाला है। मुनि ने कहा- हे तात! अँधेरा हो गया। तुम्हारा नगर यहाँ से सत्तर योजन पर है॥4॥

दोहा :

* निसा घोर गंभीर बन पंथ न सुनहु सुजान।
बसहु आजु अस जानि तुम्ह जाएहु होत बिहान॥159 (क)॥

भावार्थ:-हे सुजान! सुनो, घोर अँधेरी रात है, घना जंगल है, रास्ता नहीं है, ऐसा समझकर तुम आज यहीं ठहर जाओ, सबेरा होते ही चले जाना॥159 (क)॥

* तुलसी जसि भवतब्यता तैसी मिलइ सहाइ।
आपुनु आवइ ताहि पहिं ताहि तहाँ लै जाइ॥159(ख)॥

भावार्थ:-तुलसीदासजी कहते हैं- जैसी भवितव्यता (होनहार) होती है, वैसी ही सहायता मिल जाती है। या तो वह आप ही उसके पास आती है या उसको वहाँ ले जाती है॥159 (ख)॥

चौपाई :

* भलेहिं नाथ आयसु धरि सीसा। बाँधि तुरग तरु बैठ महीसा॥
नृप बहु भाँति प्रसंसेउ ताही। चरन बंदि निज भाग्य सराही॥1॥

भावार्थ:-हे नाथ! बहुत अच्छा, ऐसा कहकर और उसकी आज्ञा सिर चढ़ाकर, घोड़े को वृक्ष से बाँधकर राजा बैठ गया। राजा ने उसकी बहुत प्रकार से प्रशंसा की और उसके चरणों की वंदना करके अपने भाग्य की सराहना की॥1॥

* पुनि बोलेउ मृदु गिरा सुहाई। जानि पिता प्रभु करउँ ढिठाई॥
मोहि मुनीस सुत सेवक जानी। नाथ नाम निज कहहु बखानी॥2॥

भावार्थ:-फिर सुंदर कोमल वाणी से कहा- हे प्रभो! आपको पिता जानकर मैं ढिठाई करता हूँ। हे मुनीश्वर! मुझे अपना पुत्र और सेवक जानकर अपना नाम (धाम) विस्तार से बतलाइए॥2॥

* तेहि न जान नृप नृपहि सो जाना। भूप सुहृद सो कपट सयाना॥
बैरी पुनि छत्री पुनि राजा। छल बल कीन्ह चहइ निज काजा॥3॥

भावार्थ:-राजा ने उसको नहीं पहचाना, पर वह राजा को पहचान गया था। राजा तो शुद्ध हृदय था और वह कपट करने में चतुर था। एक तो वैरी, फिर जाति का क्षत्रिय, फिर राजा। वह छल-बल से अपना काम बनाना चाहता था॥3॥

* समुझि राजसुख दुखित अराती। अवाँ अनल इव सुलगइ छाती॥
ससरल बचन नृप के सुनि काना। बयर सँभारि हृदयँ हरषाना॥4॥

भावार्थ:-वह शत्रु अपने राज्य सुख को समझ करके (स्मरण करके) दुःखी था। उसकी छाती (कुम्हार के) आँवे की आग की तरह (भीतर ही भीतर) सुलग रही थी। राजा के सरल वचन कान से सुनकर, अपने वैर को यादकर वह हृदय में हर्षित हुआ॥4॥

दोहा :

* कपट बोरि बानी मृदल बोलेउ जुगुति समेत।
नाम हमार भिखारि अब निर्धन रहित निकेत॥160॥

भावार्थ:-वह कपट में डुबोकर बड़ी युक्ति के साथ कोमल वाणी बोला- अब हमारा नाम भिखारी है, क्योंकि हम निर्धन और अनिकेत (घर-द्वारहीन) हैं॥160॥

चौपाई :

* कह नृप जे बिग्यान निधाना। तुम्ह सारिखे गलित अभिमाना॥
सदा रहहिं अपनपौ दुराएँ। सब बिधि कुसल कुबेष बनाएँ॥1॥

भावार्थ:-राजा ने कहा- जो आपके सदृश विज्ञान के निधान और सर्वथा अभिमानरहित होते हैं, वे अपने स्वरूप को सदा छिपाए रहते हैं, क्योंकि कुवेष बनाकर रहने में ही सब तरह का कल्याण है (प्रकट संत वेश में मान होने की सम्भावना है और मान से पतन की)॥1॥

* तेहि तें कहहिं संत श्रुति टेरें। परम अकिंचन प्रिय हरि केरें॥
तुम्ह सम अधन भिखारि अगेहा। होत बिरंचि सिवहि संदेहा॥2॥

भावार्थ:-इसी से तो संत और वेद पुकारकर कहते हैं कि परम अकिंचन (सर्वथा अहंकार, ममता और मानरहित) ही भगवान को प्रिय होते हैं। आप सरीखे निर्धन, भिखारी और गृहहीनों को देखकर ब्रह्मा और शिवजी को भी संदेह हो जाता है (कि वे वास्तविक संत हैं या भिखारी)॥2॥

* जोसि सोसि तव चरन नमामी। मो पर कृपा करिअ अब स्वामी॥
सहज प्रीति भूपति कै देखी। आपु बिषय बिस्वास बिसेषी॥3॥

भावार्थ:-आप जो हों सो हों (अर्थात्‌ जो कोई भी हों), मैं आपके चरणों में नमस्कार करता हूँ। हे स्वामी! अब मुझ पर कृपा कीजिए। अपने ऊपर राजा की स्वाभाविक प्रीति और अपने विषय में उसका अधिक विश्वास देखकर॥2॥

* सब प्रकार राजहि अपनाई। बोलेउ अधिक सनेह जनाई॥
सुनु सतिभाउ कहउँ महिपाला। इहाँ बसत बीते बहु काला॥4॥

भावार्थ:-सब प्रकार से राजा को अपने वश में करके, अधिक स्नेह दिखाता हुआ वह (कपट-तपस्वी) बोला- हे राजन्‌! सुनो, मैं तुमसे सत्य कहता हूँ, मुझे यहाँ रहते बहुत समय बीत गया॥4॥

दोहा :

* अब लगि मोहि न मिलेउ कोउ मैं न जनावउँ काहु।
लोकमान्यता अनल सम कर तप कानन दाहु॥161 क॥

भावार्थ:-अब तक न तो कोई मुझसे मिला और न मैं अपने को किसी पर प्रकट करता हूँ, क्योंकि लोक में प्रतिष्ठा अग्नि के समान है, जो तप रूपी वन को भस्म कर डालती है॥161 (क)॥

सोरठा :

* तुलसी देखि सुबेषु भूलहिं मूढ़ न चतुर नर।
सुंदर केकिहि पेखु बचन सुधा सम असन अहि॥161 ख॥

भावार्थ:-तुलसीदासजी कहते हैं- सुंदर वेष देखकर मूढ़ नहीं (मूढ़ तो मूढ़ ही हैं), चतुर मनुष्य भी धोखा खा जाते हैं। सुंदर मोर को देखो, उसका वचन तो अमृत के समान है और आहार साँप का है॥161 (ख)॥

चौपाई :

* तातें गुपुत रहउँ जग माहीं। हरि तजि किमपि प्रयोजन नाहीं॥

प्रभु जानत सब बिनहिं जनाए। कहहु कवनि सिधि लोक रिझाएँ॥1॥

भावार्थ:-(कपट-तपस्वी ने कहा-) इसी से मैं जगत में छिपकर रहता हूँ। श्री हरि को छोड़कर किसी से कुछ भी प्रयोजन नहीं रखता। प्रभु तो बिना जनाए ही सब जानते हैं। फिर कहो संसार को रिझाने से क्या सिद्धि मिलेगी॥1॥

* तुम्ह सुचि सुमति परम प्रिय मोरें। प्रीति प्रतीति मोहि पर तोरें॥

अब जौं तात दुरावउँ तोही। दारुन दोष घटइ अति मोही॥2॥

भावार्थ:-तुम पवित्र और सुंदर बुद्धि वाले हो, इससे मुझे बहुत ही प्यारे हो और तुम्हारी भी मुझ पर प्रीति और विश्वास है। हे तात! अब यदि मैं तुमसे कुछ छिपाता हूँ, तो मुझे बहुत ही भयानक दोष लगेगा॥2॥

* जिमि जिमि तापसु कथइ उदासा। तिमि तिमि नृपहि उपज बिस्वासा॥

देखा स्वबस कर्म मन बानी। तब बोला तापस बगध्यानी॥3॥

भावार्थ:-ज्यों-ज्यों वह तपस्वी उदासीनता की बातें कहता था, त्यों ही त्यों राजा को विश्वास उत्पन्न होता जाता था। जब उस बगुले की तरह ध्यान लगाने वाले (कपटी) मुनि ने राजा को कर्म, मन और वचन से अपने वश में जाना, तब वह बोला- ॥3॥

* नाम हमार एकतनु भाई। सुनि नृप बोलेउ पुनि सिरु नाई॥

कहहु नाम कर अरथ बखानी। मोहि सेवक अति आपन जानी॥4॥

भावार्थ:-हे भाई! हमारा नाम एकतनु है। यह सुनकर राजा ने फिर सिर नवाकर कहा- मुझे अपना अत्यन्त (अनुरागी) सेवक जानकर अपने नाम का अर्थ समझाकर कहिए॥4॥

दोहा :

* आदिसृष्टि उपजी जबहिं तब उतपति भै मोरि।
नाम एकतनु हेतु तेहि देह न धरी बहोरि॥162॥

भावार्थ:-(कपटी मुनि ने कहा-) जब सबसे पहले सृष्टि उत्पन्न हुई थी, तभी मेरी उत्पत्ति हुई थी। तबसे मैंने फिर दूसरी देह नहीं धारण की, इसी से मेरा नाम एकतनु है॥162॥

चौपाई :

*जनि आचरजु करहु मन माहीं। सुत तप तें दुर्लभ कछु नाहीं॥
तप बल तें जग सृजइ बिधाता। तप बल बिष्नु भए परित्राता॥1॥

भावार्थ:-हे पुत्र! मन में आश्चर्य मत करो, तप से कुछ भी दुर्लभ नहीं है, तप के बल से ब्रह्मा जगत को रचते हैं। तप के ही बल से विष्णु संसार का पालन करने वाले बने हैं॥1॥

* तपबल संभु करहिं संघारा। तप तें अगम न कछु संसारा॥
भयउ नृपहि सुनि अति अनुरागा। कथा पुरातन कहै सो लागा॥2॥

भावार्थ:-तप ही के बल से रुद्र संहार करते हैं। संसार में कोई ऐसी वस्तु नहीं जो तप से न मिल सके। यह सुनकर राजा को बड़ा अनुराग हुआ। तब वह (तपस्वी) पुरानी कथाएँ कहने लगा॥2॥

* करम धरम इतिहास अनेका। करइ निरूपन बिरति बिबेका॥
उदभव पालन प्रलय कहानी। कहेसि अमित आचरज बखानी॥3॥

भावार्थ:-कर्म, धर्म और अनेकों प्रकार के इतिहास कहकर वह वैराग्य और ज्ञान का निरूपण करने लगा। सृष्टि की उत्पत्ति, पालन (स्थिति) और संहार (प्रलय) की अपार आश्चर्यभरी कथाएँ उसने विस्तार से कही॥3॥

* सुनि महीप तापस बस भयऊ। आपन नाम कहन तब लयउ॥
कह तापस नृप जानउँ तोही। कीन्हेहु कपट लाग भल मोही॥4॥

भावार्थ:-राजा सुनकर उस तपस्वी के वश में हो गया और तब वह उसे अपना नाम बताने लगा। तपस्वी ने कहा- राजन ! मैं तुमको जानता हूँ। तुमने कपट किया, वह मुझे अच्छा लगा॥4॥

सोरठा :

* सुनु महीस असि नीति जहँ तहँ नाम न कहहिं नृप।
मोहि तोहि पर अति प्रीति सोइ चतुरता बिचारि तव॥163॥

भावार्थ:-हे राजन्! सुनो, ऐसी नीति है कि राजा लोग जहाँ-तहाँ अपना नाम नहीं कहते। तुम्हारी वही चतुराई समझकर तुम पर मेरा बड़ा प्रेम हो गया है॥163॥

चौपाई :

* नाम तुम्हार प्रताप दिनेसा। सत्यकेतु तव पिता नरेसा॥
गुर प्रसाद सब जानिअ राजा। कहिअ न आपन जानि अकाजा॥1॥

भावार्थ:-तुम्हारा नाम प्रतापभानु है, महाराज सत्यकेतु तुम्हारे पिता थे। हे राजन्! गुरु की कृपा से मैं सब जानता हूँ, पर अपनी हानि समझकर कहता नहीं॥1॥

* देखि तात तव सहज सुधाई। प्रीति प्रतीति नीति निपुनाई॥
उपजि परी ममता मन मोरें। कहउँ कथा निज पूछे तोरें॥2॥

भावार्थ:-हे तात! तुम्हारा स्वाभाविक सीधापन (सरलता), प्रेम, विश्वास और नीति में निपुणता देखकर मेरे मन में तुम्हारे ऊपर बड़ी ममता उत्पन्न हो गई है, इसीलिए मैं तुम्हारे पूछने पर अपनी कथा कहता हूँ॥2॥

* अब प्रसन्न मैं संसय नाहीं। मागु जो भूप भाव मन माहीं॥
सुनि सुबचन भूपति हरषाना। गहि पद बिनय कीन्हि बिधि नाना॥3॥

भावार्थ:-अब मैं प्रसन्न हूँ, इसमें संदेह न करना। हे राजन्! जो मन को भावे वही माँग लो। सुंदर (प्रिय) वचन सुनकर राजा हर्षित हो गया और (मुनि के) पैर पकड़कर उसने बहुत प्रकार से विनती की॥3॥

* कृपासिंधु मुनि दरसन तोरें। चारि पदारथ करतल मोरें॥
प्रभुहि तथापि प्रसन्न बिलोकी। मागि अगम बर होउँ असोकी॥4॥

भावार्थ:-हे दयासागर मुनि! आपके दर्शन से ही चारों पदार्थ (अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष) मेरी मुट्ठी में आ गए। तो भी स्वामी को प्रसन्न देखकर मैं यह दुर्लभ वर माँगकर (क्यों न) शोकरहित हो जाऊँ॥4॥

दोहा :

* जरा मरन दुख रहित तनु समर जितै जनि कोउ।
एकछत्र रिपुहीन महि राज कलप सत होउ॥164॥

भावार्थ:-मेरा शरीर वृद्धावस्था, मृत्यु और दुःख से रहित हो जाए, मुझे युद्ध में कोई जीत न सके और पृथ्वी पर मेरा सौ कल्पतक एकछत्र अकण्टक राज्य हो॥164॥

चौपाई :

* कह तापस नृप ऐसेइ होऊ। कारन एक कठिन सुनु सोऊ॥
कालउ तुअ पद नाइहि सीसा। एक बिप्रकुल छाड़ि महीसा॥1॥

भावार्थ:-तपस्वी ने कहा- हे राजन्! ऐसा ही हो, पर एक बात कठिन है, उसे भी सुन लो। हे पृथ्वी के स्वामी! केवल ब्राह्मण कुल को छोड़ काल भी तुम्हारे चरणों पर सिर नवाएगा॥1॥

* तपबल बिप्र सदा बरिआरा। तिन्ह के कोप न कोउ रखवारा॥

जौं बिप्रन्ह बस करहु नरेसा। तौ तुअ बस बिधि बिष्नु महेसा॥2॥

भावार्थ:-तप के बल से ब्राह्मण सदा बलवान रहते हैं। उनके क्रोध से रक्षा करने वाला कोई नहीं है। हे नरपति! यदि तुम ब्राह्मणों को वश में कर लो, तो ब्रह्मा, विष्णु और महेश भी तुम्हारे अधीन हो जाएँगे॥2॥

* चल न ब्रह्मकुल सन बरिआई। सत्य कहउँ दोउ भुजा उठाई॥
बिप्र श्राप बिनु सुनु महिपाला। तोर नास नहिं कवनेहुँ काला॥3॥

भावार्थ:-ब्राह्मण कुल से जोर जबर्दस्ती नहीं चल सकती, मैं दोनों भुजा उठाकर सत्य कहता हूँ। हे राजन्! सुनो, ब्राह्मणों के शाप बिना तुम्हारा नाश किसी काल में नहीं होगा॥3॥

* हरषेउ राउ बचन सुनि तासू। नाथ न होइ मोर अब नासू॥
तव प्रसाद प्रभु कृपानिधाना। मो कहुँ सर्बकाल कल्याना॥4॥

भावार्थ:-राजा उसके वचन सुनकर बड़ा प्रसन्न हुआ और कहने लगा- हे स्वामी! मेरा नाश अब नहीं होगा। हे कृपानिधान प्रभु! आपकी कृपा से मेरा सब समय कल्याण होगा॥4॥

दोहा :

* एवमस्तु कहि कपट मुनि बोला कुटिल बहोरि।
मिलब हमार भुलाब निज कहहु त हमहि न खोरि॥165॥

भावार्थ:-'एवमस्तु' (ऐसा ही हो) कहकर वह कुटिल कपटी मुनि फिर बोला- (किन्तु) तुम मेरे मिलने तथा अपने राह भूल जाने की बात किसी से (कहना नहीं, यदि) कह दोगे, तो हमारा दोष नहीं॥165॥

चौपाई :

* तातें मैं तोहि बरजउँ राजा। कहें कथा तव परम अकाजा॥
छठें श्रवन यह परत कहानी। नास तुम्हार सत्य मम बानी॥1॥

भावार्थ:-हे राजन्! मैं तुमको इसलिए मना करता हूँ कि इस प्रसंग को कहने से तुम्हारी बड़ी हानि होगी। छठे कान में यह बात पड़ते ही तुम्हारा नाश हो जाएगा, मेरा यह वचन सत्य जानना॥1॥

* यह प्रगटें अथवा द्विजश्रापा। नास तोर सुनु भानुप्रतापा॥
आन उपायँ निधन तव नाहीं। जौं हरि हर कोपहिं मन माहीं॥2॥

भावार्थ:-हे प्रतापभानु! सुनो, इस बात के प्रकट करने से अथवा ब्राह्मणों के शाप से तुम्हारा नाश होगा और किसी उपाय से, चाहे ब्रह्मा और शंकर भी मन में क्रोध करें, तुम्हारी मृत्यु नहीं होगी॥2॥

* सत्य नाथ पद गहि नृप भाषा। द्विज गुर कोप कहहु को राखा॥
राखइ गुर जौं कोप बिधाता। गुर बिरोध नहिं कोउ जग त्राता॥3॥

भावार्थ:-राजा ने मुनि के चरण पकड़कर कहा- हे स्वामी! सत्य ही है। ब्राह्मण और गुरु के क्रोध से, कहिए, कौन रक्षा कर सकता है? यदि ब्रह्मा भी क्रोध करें, तो गुरु बचा लेते हैं, पर गुरु से विरोध करने पर जगत में कोई भी बचाने वाला नहीं है॥3॥

* जौं न चलब हम कहे तुम्हारें। होउ नास नहिं सोच हमारें॥
एकहिं डर डरपत मन मोरा। प्रभु महिदेव श्राप अति घोरा॥4॥

भावार्थ:-यदि मैं आपके कथन के अनुसार नहीं चलूँगा, तो (भले ही) मेरा नाश हो जाए। मुझे इसकी चिन्ता नहीं है। मेरा मन तो हे प्रभो! (केवल) एक ही डर से डर रहा है कि ब्राह्मणों का शाप बड़ा भयानक होता है॥4॥

दोहा :

* होहिं बिप्र बस कवन बिधि कहहु कृपा करि सोउ।
तुम्ह तजि दीनदयाल निज हितू न देखउँ कोउ॥166॥

भावार्थ:-वे ब्राह्मण किस प्रकार से वश में हो सकते हैं, कृपा करके वह भी बताइए। हे दीनदयालु! आपको छोड़कर और किसी को मैं अपना हितू नहीं देखता॥166॥

चौपाई :

* सुनु नृप बिबिध जतन जग माहीं। कष्टसाध्य पुनि होहिं कि नाहीं॥
अहइ एक अति सुगम उपाई। तहाँ परन्तु एक कठिनाई॥1॥

भावार्थ:-(तपस्वी ने कहा-) हे राजन् !सुनो, संसार में उपाय तो बहुत हैं, पर वे कष्ट साध्य हैं (बड़ी कठिनता से बनने में आते हैं) और इस पर भी सिद्ध हों या न हों (उनकी सफलता निश्चित नहीं है) हाँ, एक उपाय बहुत सहज है, परन्तु उसमें भी एक कठिनता है॥1॥

* मम आधीन जुगुति नृप सोई। मोर जाब तव नगर न होई॥
आजु लगें अरु जब तें भयऊँ। काहू के गृह ग्राम न गयऊँ॥2॥

भावार्थ:-हे राजन्! वह युक्ति तो मेरे हाथ है, पर मेरा जाना तुम्हारे नगर में हो नहीं सकता। जब से पैदा हुआ हूँ, तब से आज तक मैं किसी के घर अथवा गाँव नहीं गया॥2॥

* जौं न जाउँ तव होइ अकाजू। बना आइ असमंजस आजू॥
सुनि महीस बोलेउ मृदु बानी। नाथ निगम असि नीति बखानी॥3॥

भावार्थ:-परन्तु यदि नहीं जाता हूँ, तो तुम्हारा काम बिगड़ता है। आज यह बड़ा असमंजस आ पड़ा है। यह सुनकर राजा कोमल वाणी से बोला, हे नाथ! वेदों में ऐसी नीति कही है कि- ॥3॥

* बड़े सनेह लघुन्ह पर करहीं। गिरि निज सिरनि सदा तृन धरहीं॥
जलधि अगाध मौलि बह फेनू। संतत धरनि धरत सिर रेनू॥4॥

भावार्थ:-बड़े लोग छोटों पर स्नेह करते ही हैं। पर्वत अपने सिरों पर सदा तृण (घास) को धारण किए रहते हैं। अगाध समुद्र अपने मस्तक पर फेन को धारण करता है और धरती अपने सिर पर सदा धूलि को धारण किए रहती है॥4॥

दोहा :

* अस कहि गहे नरेस पद स्वामी होहु कृपाल।
मोहि लागि दुख सहिअ प्रभु सज्जन दीनदयाल॥167॥

भावार्थ:-ऐसा कहकर राजा ने मुनि के चरण पकड़ लिए। (और कहा-) हे स्वामी! कृपा कीजिए। आप संत हैं। दीनदयालु हैं। (अतः) हे प्रभो! मेरे लिए इतना कष्ट (अवश्य) सहिए॥167॥

चौपाई :

* जानि नृपहि आपन आधीना। बोला तापस कपट प्रबीना॥
सत्य कहउँ भूपति सुनु तोही। जग नाहिन दुर्लभ कछु मोही॥1॥

भावार्थ:-राजा को अपने अधीन जानकर कपट में प्रवीण तपस्वी बोला- हे राजन्! सुनो, मैं तुमसे सत्य कहता हूँ, जगत में मुझे कुछ भी दुर्लभ नहीं है॥1॥

* अवसि काज मैं करिहउँ तोरा। मन तन बचन भगत तैं मोरा॥
जोग जुगुति तप मंत्र प्रभाऊ। फलइ तबहिं जब करिअ दुराऊ॥2॥

भावार्थ:-मैं तुम्हारा काम अवश्य करूँगा, (क्योंकि) तुम, मन, वाणी और शरीर (तीनों) से मेरे भक्त हो। पर योग, युक्ति, तप और मंत्रों का प्रभाव तभी फलीभूत होता है जब वे छिपाकर किए जाते हैं॥2॥

* जौं नरेस मैं करौं रसोई। तुम्ह परुसहु मोहि जान न कोई॥
अन्न सो जोइ जोइ भोजन करई। सोइ सोइ तव आयसु अनुसरई॥3॥

भावार्थ:-हे नरपति! मैं यदि रसोई बनाऊँ और तुम उसे परोसो और मुझे कोई जानने न पावे, तो उस अन्न को जो-जो खाएगा, सो-सो तुम्हारा आज्ञाकारी बन जाएगा॥3॥

* पुनि तिन्ह के गृह जेवँइ जोऊ। तव बस होइ भूप सुनु सोऊ॥
जाइ उपाय रचहु नृप एहू। संबत भरि संकलप करेहू॥4॥

भावार्थ:-यही नहीं, उन (भोजन करने वालों) के घर भी जो कोई भोजन करेगा, हे राजन्! सुनो, वह भी तुम्हारे अधीन हो जाएगा। हे राजन्! जाकर यही उपाय करो और वर्षभर (भोजन कराने) का संकल्प कर लेना॥4॥

दोहा :

* नित नूतन द्विज सहस सत बरेहु सहित परिवार।
मैं तुम्हरे संकलप लगि दिनहिं करबि जेवनार॥168॥

भावार्थ:-नित्य नए एक लाख ब्राह्मणों को कुटुम्ब सहित निमंत्रित करना। मैं तुम्हारे सकंल्प (के काल अर्थात एक वर्ष) तक प्रतिदिन भोजन बना दिया करूँगा॥168॥

चौपाई :

* एहि बिधि भूप कष्ट अति थोरें। होइहहिं सकल बिप्र बस तोरें॥
करिहहिं बिप्र होममख सेवा। तेहिं प्रसंग सहजेहिं बस देवा॥1॥

भावार्थ:-हे राजन्! इस प्रकार बहुत ही थोड़े परिश्रम से सब ब्राह्मण तुम्हारे वश में हो जाएँगे। ब्राह्मण हवन, यज्ञ और सेवा-पूजा करेंगे, तो उस प्रसंग (संबंध) से देवता भी सहज ही वश में हो जाएँगे॥1॥

* और एक तोहि कहउँ लखाऊ। मैं एहिं बेष न आउब काऊ॥
तुम्हरे उपरोहित कहुँ राया। हरि आनब मैं करि निज माया॥2॥

भावार्थ:-मैं एक और पहचान तुमको बताए देता हूँ कि मैं इस रूप में कभी न आऊँगा। हे राजन्! मैं अपनी माया से तुम्हारे पुरोहित को हर लाऊँगा॥2॥\

* तपबल तेहि करि आपु समाना। रखिहउँ इहाँ बरष परवाना॥
मैं धरि तासु बेषु सुनु राजा। सब बिधि तोर सँवारब काजा॥3॥

भावार्थ:-तप के बल से उसे अपने समान बनाकर एक वर्ष यहाँ रखूँगा और हे राजन्! सुनो, मैं उसका रूप बनाकर सब प्रकार से तुम्हारा काम सिद्ध करूँगा॥3॥

* गै निसि बहुत सयन अब कीजे। मोहि तोहि भूप भेंट दिन तीजे॥
मैं तपबल तोहि तुरग समेता। पहुँचैहउँ सोवतहि निकेता॥4॥

भावार्थ:-हे राजन्! रात बहुत बीत गई, अब सो जाओ। आज से तीसरे दिन मुझसे तुम्हारी भेंट होगी। तप के बल से मैं घोड़े सहित तुमको सोते ही में घर पहुँचा दूँगा॥4॥

दोहा :

* मैं आउब सोइ बेषु धरि पहिचानेहु तब मोहि।
जब एकांत बोलाइ सब कथा सुनावौं तोहि॥169॥

भावार्थ:-मैं वही (पुरोहित का) वेश धरकर आऊँगा। जब एकांत में तुमको बुलाकर सब कथा सुनाऊँगा, तब तुम मुझे पहचान लेना॥169॥

चौपाई :

* सयन कीन्ह नृप आयसु मानी। आसन जाइ बैठ छलग्यानी॥
श्रमित भूप निद्रा अति आई। सो किमि सोव सोच अधिकाई॥1॥

भावार्थ:-राजा ने आज्ञा मानकर शयन किया और वह कपट-ज्ञानी आसन पर जा बैठा। राजा थका था, (उसे) खूब (गहरी) नींद आ गई। पर वह कपटी कैसे सोता। उसे तो बहुत चिन्ता हो रही थी॥1॥

* कालकेतु निसिचर तहँ आवा। जेहिं सूकर होइ नृपहि भुलावा॥
परम मित्र तापस नृप केरा। जानइ सो अति कपट घनेरा॥2॥

भावार्थ:-(उसी समय) वहाँ कालकेतु राक्षस आया, जिसने सूअर बनकर राजा को भटकाया था। वह तपस्वी राजा का बड़ा मित्र था और खूब छल-प्रपंच जानता था॥2॥

* तेहि के सत सुत अरु दस भाई। खल अति अजय देव दुखदाई॥
प्रथमहिं भूप समर सब मारे। बिप्र संत सुर देखि दुखारे॥3॥

भावार्थ:-उसके सौ पुत्र और दस भाई थे, जो बड़े ही दुष्ट, किसी से न जीते जाने वाले और देवताओं को दुःख देने वाले थे। ब्राह्मणों, संतों और देवताओं को दुःखी देखकर राजा ने उन सबको पहले ही युद्ध में मार डाला था॥3॥

* तेहिं खल पाछिल बयरु सँभारा। तापस नृप मिलि मंत्र बिचारा॥
जेहिं रिपु छय सोइ रचेन्हि उपाऊ। भावी बस न जान कछु राऊ॥4॥

भावार्थ:-उस दुष्ट ने पिछला बैर याद करके तपस्वी राजा से मिलकर सलाह विचारी (षड्यंत्र किया) और जिस प्रकार शत्रु का नाश हो, वही उपाय रचा। भावीवश राजा (प्रतापभानु) कुछ भी न समझ सका॥4॥

दोहा :

* रिपु तेजसी अकेल अपि लघु करि गनिअ न ताहु।
अजहुँ देत दुख रबि ससिहि सिर अवसेषित राहु॥170॥

भावार्थ:-तेजस्वी शत्रु अकेला भी हो तो भी उसे छोटा नहीं समझना चाहिए। जिसका सिर मात्र बचा था, वह राहु आज तक सूर्य-चन्द्रमा को दुःख देता है॥170॥

* तापस नृप निज सखहि निहारी। हरषि मिलेउ उठि भयउ सुखारी॥

मित्रहि कहि सब कथा सुनाई। जातुधान बोला सुख पाई॥1॥

भावार्थ:-तपस्वी राजा अपने मित्र को देख प्रसन्न हो उठकर मिला और सुखी हुआ। उसने मित्र को सब कथा कह सुनाई, तब राक्षस आनंदित होकर बोला॥1॥

* अब साधेउँ रिपु सुनहु नरेसा। जौं तुम्ह कीन्ह मोर उपदेसा॥
परिहरि सोच रहहु तुम्ह सोई। बिनु औषध बिआधि बिधि खोई॥2॥

भावार्थ:-हे राजन्! सुनो, जब तुमने मेरे कहने के अनुसार (इतना) काम कर लिया, तो अब मैंने शत्रु को काबू में कर ही लिया (समझो)। तुम अब चिन्ता त्याग सो रहो। विधाता ने बिना ही दवा के रोग दूर कर दिया॥2॥

* कुल समेत रिपु मूल बहाई। चौथें दिवस मिलब मैं आई॥
तापस नृपहि बहुत परितोषी। चला महाकपटी अतिरोषी॥3॥

भावार्थ:-कुल सहित शत्रु को जड़-मूल से उखाड़-बहाकर, (आज से) चौथे दिन मैं तुमसे आ मिलूँगा। (इस प्रकार) तपस्वी राजा को खूब दिलासा देकर वह महामायावी और अत्यन्त क्रोधी राक्षस चला॥3॥

* भानुप्रतापहि बाजि समेता। पहुँचाएसि छन माझ निकेता॥
नृपहि नारि पहिं सयन कराई। हयगृहँ बाँधेसि बाजि बनाई॥4॥

भावार्थ:-उसने प्रतापभानु राजा को घोड़े सहित क्षणभर में घर पहुँचा दिया। राजा को रानी के पास सुलाकर घोड़े को अच्छी तरह से घुड़साल में बाँध दिया॥4॥

दोहा :

* राजा के उपरोहितहि हरि लै गयउ बहोरि।
लै राखेसि गिरि खोह महुँ मायाँ करि मति भोरि॥171॥

भावार्थ:-फिर वह राजा के पुरोहित को उठा ले गया और माया से उसकी बुद्धि को भ्रम में डालकर उसे उसने पहाड़ की खोह में ला रखा॥171॥

चौपाई :

* आपु बिरचि उपरोहित रूपा। परेउ जाइ तेहि सेज अनूपा॥
जागेउ नृप अनभएँ बिहाना। देखि भवन अति अचरजु माना॥1॥

भावार्थ:-वह आप पुरोहित का रूप बनाकर उसकी सुंदर सेज पर जा लेटा। राजा सबेरा होने से पहले ही जागा और अपना घर देखकर उसने बड़ा ही आश्चर्य माना॥1॥

* मुनि महिमा मन महुँ अनुमानी। उठेउ गवँहिं जेहिं जान न रानी॥
कानन गयउ बाजि चढ़ि तेहीं। पुर नर नारि न जानेउ केहीं॥2॥

भावार्थ:-मन में मुनि की महिमा का अनुमान करके वह धीरे से उठा, जिसमें रानी न जान पावे। फिर उसी घोड़े पर चढ़कर वन को चला गया। नगर के किसी भी स्त्री-पुरुष ने नहीं जाना॥2॥

* गएँ जाम जुग भूपति आवा। घर घर उत्सव बाज बधावा॥
उपरोहितहि देख जब राजा। चकित बिलोक सुमिरि सोइ काजा॥3॥

भावार्थ:-दो पहर बीत जाने पर राजा आया। घर-घर उत्सव होने लगे और बधावा बजने लगा। जब राजा ने पुरोहित को देखा, तब वह (अपने) उसी कार्य का स्मरणकर उसे आश्चर्य से देखने लगा॥3॥

* जुग सम नृपहि गए दिन तीनी। कपटी मुनि पद रह मति लीनी॥
समय जान उपरोहित आवा। नृपहि मते सब कहि समुझावा॥4॥

भावार्थ:-राजा को तीन दिन युग के समान बीते। उसकी बुद्धि कपटी मुनि के चरणों में लगी रही। निश्चित समय जानकर पुरोहित (बना हुआ

राक्षस) आया और राजा के साथ की हुई गुप्त सलाह के अनुसार (उसने अपने) सब विचार उसे समझाकर कह दिए॥4॥

दोहा :

* नृप हरषेउ पहिचानि गुरु भ्रम बस रहा न चेत।
बरे तुरत सत सहस बर बिप्र कुटुंब समेत॥172॥

भावार्थ:-(संकेत के अनुसार) गुरु को (उस रूप में) पहचानकर राजा प्रसन्न हुआ। भ्रमवश उसे चेत न रहा (कि यह तापस मुनि है या कालकेतु राक्षस)। उसने तुरंत एक लाख उत्तम ब्राह्मणों को कुटुम्ब सहित निमंत्रण दे दिया॥172॥

चौपाई :

* उपरोहित जेवनार बनाई। छरस चारि बिधि जसि श्रुति गाई॥
मायामय तेहिं कीन्हि रसोई। बिंजन बहु गनि सकइ न कोई॥1॥

भावार्थ:-पुरोहित ने छह रस और चार प्रकार के भोजन, जैसा कि वेदों में वर्णन है, बनाए। उसने मायामयी रसोई तैयार की और इतने व्यंजन बनाए, जिन्हें कोई गिन नहीं सकता॥1॥

* बिबिध मृगन्ह कर आमिष राँधा। तेहि महुँ बिप्र माँसु खल साँधा॥
भोजन कहुँ सब बिप्र बोलाए। पद पखारि सादर बैठाए॥2॥

भावार्थ:-अनेक प्रकार के पशुओं का मांस पकाया और उसमें उस दुष्ट ने ब्राह्मणों का मांस मिला दिया। सब ब्राह्मणों को भोजन के लिए बुलाया और चरण धोकर आदर सहित बैठाया॥2॥

* परुसन जबहिं लाग महिपाला। भै अकासबानी तेहि काला॥
बिप्रबृंद उठि उठि गृह जाहू। है बड़ि हानि अन्न जनि खाहू॥3॥

भावार्थ:-ज्यों ही राजा परोसने लगा, उसी काल (कालकेतुकृत) आकाशवाणी हुई- हे ब्राह्मणों! उठ-उठकर अपने घर जाओ, यह अन्न मत खाओ। इस (के खाने) में बड़ी हानि है॥3॥

* भयउ रसोईं भूसुर माँसू। सब द्विज उठे मानि बिस्वासू॥
भूप बिकल मति मोहँ भुलानी। भावी बस न आव मुख बानी॥4॥

भावार्थ:-रसोई में ब्राह्मणों का मांस बना है। (आकाशवाणी का) विश्वास मानकर सब ब्राह्मण उठ खड़े हुए। राजा व्याकुल हो गया (परन्तु), उसकी बुद्धि मोह में भूली हुई थी। होनहारवश उसके मुँह से (एक) बात (भी) न निकली॥4॥

दोहा :

*बोले बिप्र सकोप तब नहिं कछु कीन्ह बिचार।
जाइ निसाचर होहु नृप मूढ़ सहित परिवार॥173॥

भावार्थ:-तब ब्राह्मण क्रोध सहित बोल उठे- उन्होंने कुछ भी विचार नहीं किया- अरे मूर्ख राजा! तू जाकर परिवार सहित राक्षस हो॥173॥

चौपाई :

* छत्रबंधु तैं बिप्र बोलाई। घालै लिए सहित समुदाई॥
ईश्वर राखा धरम हमारा। जैहसि तैं समेत परिवारा॥1॥

भावार्थ:-रे नीच क्षत्रिय! तूने तो परिवार सहित ब्राह्मणों को बुलाकर उन्हें नष्ट करना चाहा था, ईश्वर ने हमारे धर्म की रक्षा की। अब तू परिवार सहित नष्ट होगा॥1॥

* संबत मध्य नास तव होऊ। जलदाता न रहिहि कुल कोऊ॥
नृप सुनि श्राप बिकल अति त्रासा। भै बहोरि बर गिरा अकासा॥2॥

भावार्थ:-एक वर्ष के भीतर तेरा नाश हो जाए, तेरे कुल में कोई पानी देने वाला तक न रहेगा। शाप सुनकर राजा भय के मारे अत्यन्त व्याकुल हो गया। फिर सुंदर आकाशवाणी हुई-॥2॥

* बिप्रहु श्राप बिचारि न दीन्हा। नहिं अपराध भूप कछु कीन्हा॥
चकित बिप्र सब सुनि नभबानी। भूप गयउ जहँ भोजन खानी॥3॥

भावार्थ:-हे ब्राह्मणों! तुमने विचार कर शाप नहीं दिया। राजा ने कुछ भी अपराध नहीं किया। आकाशवाणी सुनकर सब ब्राह्मण चकित हो गए। तब राजा वहाँ गया, जहाँ भोजन बना था॥3॥

* तहँ न असन नहिं बिप्र सुआरा। फिरेउ राउ मन सोच अपारा॥
सब प्रसंग महिसुरन्ह सुनाई। त्रसित परेउ अवनीं अकुलाई॥4॥

भावार्थ:-(देखा तो) वहाँ न भोजन था, न रसोइया ब्राह्मण ही था। तब राजा मन में अपार चिन्ता करता हुआ लौटा। उसने ब्राह्मणों को सब वृत्तान्त सुनाया और (बड़ा ही) भयभीत और व्याकुल होकर वह पृथ्वी पर गिर पड़ा॥4॥

दोहा :

* भूपति भावी मिटइ नहिं जदपि न दूषन तोर।
किएँ अन्यथा होइ नहिं बिप्रश्राप अति घोर॥174॥

भावार्थ:-हे राजन! यद्यपि तुम्हारा दोष नहीं है, तो भी होनहार नहीं मिटता। ब्राह्मणों का शाप बहुत ही भयानक होता है, यह किसी तरह भी टाले टल नहीं सकता॥174॥

चौपाई :

* अस कहि सब महिदेव सिधाए। समाचार पुरलोगन्ह पाए॥
सोचहिं दूषन दैवहि देहीं। बिरचत हंस काग किए जेहीं॥1॥

भावार्थ:-ऐसा कहकर सब ब्राह्मण चले गए। नगरवासियों ने (जब) यह समाचार पाया, तो वे चिन्ता करने और विधाता को दोष देने लगे, जिसने हंस बनाते-बनाते कौआ कर दिया (ऐसे पुण्यात्मा राजा को देवता बनाना चाहिए था, सो राक्षस बना दिया)॥1॥

* उपरोहितहि भवन पहुँचाई। असुर तापसहि खबरि जनाई॥

तेहिं खल जहँ तहँ पत्र पठाए। सजि सजि सेन भूप सब धाए॥2॥

भावार्थ:-पुरोहित को उसके घर पहुँचाकर असुर (कालकेतु) ने (कपटी) तपस्वी को खबर दी। उस दुष्ट ने जहाँ-तहाँ पत्र भेजे, जिससे सब (बैरी) राजा सेना सजा-सजाकर (चढ़) दौड़े॥2॥

* घेरेन्हि नगर निसान बजाई। बिबिध भाँति नित होइ लराई॥

जूझे सकल सुभट करि करनी। बंधु समेत परेउ नृप धरनी॥3॥

भावार्थ:-और उन्होंने डंका बजाकर नगर को घेर लिया। नित्य प्रति अनेक प्रकार से लड़ाई होने लगी। (प्रताप भानु के) सब योद्धा (शूरवीरों की) करनी करके रण में जूझ मरे। राजा भी भाई सहित खेत रहा॥3॥

* सत्यकेतु कुल कोउ नहिं बाँचा। बिप्रश्राप किमि होइ असाँचा॥

रिपु जिति सब नृप नगर बसाई। निज पुर गवने जय जसु पाई॥4॥

भावार्थ:-सत्यकेतु के कुल में कोई नहीं बचा। ब्राह्मणों का शाप झूठा कैसे हो सकता था। शत्रु को जीतकर नगर को (फिर से) बसाकर सब राजा विजय और यश पाकर अपने-अपने नगर को चले गए॥4॥

रावणादि का जन्म, तपस्या और उनका ऐश्वर्य तथा अत्याचार

दोहा :

* भरद्वाज सुनु जाहि जब होई बिधाता बाम।

धूरि मेरुसम जनक जम ताहि ब्यालसम दाम॥175॥

भावार्थ:-(याज्ञवल्क्यजी कहते हैं-) हे भरद्वाज! सुनो, विधाता जब जिसके विपरीत होते हैं, तब उसके लिए धूल सुमेरु पर्वत के समान (भारी और कुचल डालने वाली), पिता यम के समान (कालरूप) और रस्सी साँप के समान (काट खाने वाली) हो जाती है॥175॥

चौपाई:

* काल पाइ मुनि सुनु सोइ राजा। भयउ निसाचर सहित समाजा॥
दस सिर ताहि बीस भुजदंडा। रावन नाम बीर बरिबंडा॥1॥

भावार्थ:-हे मुनि! सुनो, समय पाकर वही राजा परिवार सहित रावण नामक राक्षस हुआ। उसके दस सिर और बीस भुजाएँ थीं और वह बड़ा ही प्रचण्ड शूरवीर था॥1॥

* भूप अनुज अरिमर्दन नामा। भयउ सो कुंभकरन बलधामा॥
सचिव जो रहा धरमरुचि जासू। भयउ बिमात्र बंधु लघु तासू॥2॥

भावार्थ:-अरिमर्दन नामक जो राजा का छोटा भाई था, वह बल का धाम कुम्भकर्ण हुआ। उसका जो मंत्री था, जिसका नाम धर्मरुचि था, वह रावण का सौतेला छोटा भाई हुआ ॥2॥

* नाम बिभीषन जेहि जग जाना। बिष्नुभगत बिग्यान निधाना॥
रहे जे सुत सेवक नृप केरे। भए निसाचर घोर घनेरे॥3॥

भावार्थ:-उसका विभीषण नाम था, जिसे सारा जगत जानता है। वह विष्णुभक्त और ज्ञान-विज्ञान का भंडार था और जो राजा के पुत्र और सेवक थे, वे सभी बड़े भयानक राक्षस हुए॥3॥

* कामरूप खल जिनस अनेका। कुटिल भयंकर बिगत बिबेका॥
कृपा रहित हिंसक सब पापी। बरनि न जाहिं बिस्व परितापी॥4॥

भावार्थ:-वे सब अनेकों जाति के, मनमाना रूप धारण करने वाले, दुष्ट, कुटिल, भयंकर, विवेकरहित, निर्दयी, हिंसक, पापी और संसार भर को दुःख देने वाले हुए, उनका वर्णन नहीं हो सकता॥4॥

दोहा :

* उपजे जदपि पुलस्त्यकुल पावन अमल अनूप।
तदपि महीसुर श्राप बस भए सकल अघरूप॥176॥

भावार्थ:-यद्यपि वे पुलस्त्य ऋषि के पवित्र, निर्मल और अनुपम कुल में उत्पन्न हुए, तथापि ब्राह्मणों के शाप के कारण वे सब पाप रूप हुए॥176॥

चौपाई :

* कीन्ह बिबिध तप तीनिहुँ भाई। परम उग्र नहिं बरनि सो जाई॥
गयउ निकट तप देखि बिधाता। मागहु बर प्रसन्न मैं ताता॥1॥

भावार्थ:-तीनों भाइयों ने अनेकों प्रकार की बड़ी ही कठिन तपस्या की, जिसका वर्णन नहीं हो सकता। (उनका उग्र) तप देखकर ब्रह्माजी उनके पास गए और बोले- हे तात! मैं प्रसन्न हूँ, वर माँगो॥1॥

* करि बिनती पद गहि दससीसा। बोलेउ बचन सुनहु जगदीसा॥
हम काहू के मरहिं न मारें। बानर मनुज जाति दुइ बारें॥2॥

भावार्थ:-रावण ने विनय करके और चरण पकड़कर कहा- हे जगदीश्वर! सुनिए, वानर और मनुष्य- इन दो जातियों को छोड़कर हम और किसी के मारे न मरें। (यह वर दीजिए)॥2॥

* एवमस्तु तुम्ह बड़ तप कीन्हा। मैं ब्रह्माँ मिलि तेहि बर दीन्हा॥
पुनि प्रभु कुंभकरन पहिं गयऊ। तेहि बिलोकि मन बिसमय भयऊ॥3॥

भावार्थ:-(शिवजी कहते हैं कि-) मैंने और ब्रह्मा ने मिलकर उसे वर दिया कि ऐसा ही हो, तुमने बड़ा तप किया है। फिर ब्रह्माजी कुंभकर्ण के पास गए। उसे देखकर उनके मन में बड़ा आश्चर्य हुआ॥3॥

* जौं एहिं खल नित करब अहारू। होइहि सब उजारि संसारू॥
सारद प्रेरि तासु मति फेरी। मागेसि नीद मास षट केरी॥4॥

भावार्थ:-जो यह दुष्ट नित्य आहार करेगा, तो सारा संसार ही उजाड़ हो जाएगा। (ऐसा विचारकर) ब्रह्माजी ने सरस्वती को प्रेरणा करके उसकी बुद्धि फेर दी। (जिससे) उसने छह महीने की नींद माँगी॥4॥

दोहा :

* गए बिभीषन पास पुनि कहेउ पुत्र बर मागु।
तेहिं मागेउ भगवंत पद कमल अमल अनुरागु॥177॥

भावार्थ:-फिर ब्रह्माजी विभीषण के पास गए और बोले- हे पुत्र! वर माँगो। उसने भगवान के चरणकमलों में निर्मल (निष्काम और अनन्य) प्रेम माँगा॥177॥

चौपाई :

* तिन्हहि देइ बर ब्रह्म सिधाए। हरषित ते अपने गृह आए॥
मय तनुजा मंदोदरि नामा। परम सुंदरी नारि ललामा॥1॥

भावार्थ:-उनको वर देकर ब्रह्माजी चले गए और वे (तीनों भाई) हर्षित हेकर अपने घर लौट आए। मय दानव की मंदोदरी नाम की कन्या परम सुंदरी और स्त्रियों में शिरोमणि थी॥1॥

* सोइ मयँ दीन्हि रावनहि आनी। होइहि जातुधानपति जानी॥
हरषित भयउ नारि भलि पाई। पुनि दोउ बंधु बिआहेसि जाई॥2॥

भावार्थ:-मय ने उसे लाकर रावण को दिया। उसने जान लिया कि यह राक्षसों का राजा होगा। अच्छी स्त्री पाकर रावण प्रसन्न हुआ और फिर उसने जाकर दोनों भाइयों का विवाह कर दिया॥2॥

* गिरि त्रिकूट एक सिंधु मझारी। बिधि निर्मित दुर्गम अति भारी॥

सोइ मय दानवँ बहुरि सँवारा। कनक रचित मनि भवन अपारा॥3॥

भावार्थ:-समुद्र के बीच में त्रिकूट नामक पर्वत पर ब्रह्मा का बनाया हुआ एक बड़ा भारी किला था। (महान मायावी और निपुण कारीगर) मय दानव ने उसको फिर से सजा दिया। उसमें मणियों से जड़े हुए सोने के अनगिनत महल थे॥3॥

* भोगावति जसि अहिकुल बासा। अमरावति जसि सक्रनिवासा॥

तिन्ह तें अधिक रम्य अति बंका। जग बिख्यात नाम तेहि लंका॥4॥

भावार्थ:-जैसी नागकुल के रहने की (पाताल लोक में) भोगावती पुरी है और इन्द्र के रहने की (स्वर्गलोक में) अमरावती पुरी है, उनसे भी अधिक सुंदर और बाँका वह दुर्ग था। जगत में उसका नाम लंका प्रसिद्ध हुआ॥4॥

दोहा :

* खाईं सिंधु गभीर अति चारिहुँ दिसि फिरि आव।

कनक कोट मनि खचित दृढ़ बरनि न जाइ बनाव॥178 क॥

भावार्थ:-उसे चारों ओर से समुद्र की अत्यन्त गहरी खाई घेरे हुए है। उस (दुर्ग) के मणियों से जड़ा हुआ सोने का मजबूत परकोटा है, जिसकी कारीगरी का वर्णन नहीं किया जा सकता॥178 (क)॥

* हरि प्रेरित जेहिं कलप जोइ जातुधानपति होइ।

सूर प्रतापी अतुलबल दल समेत बस सोइ॥178 ख॥

भावार्थ:-भगवान की प्रेरणा से जिस कल्प में जो राक्षसों का राजा (रावण) होता है, वही शूर, प्रतापी, अतुलित बलवान् अपनी सेना सहित उस पुरी में बसता है॥178 (ख)॥

चौपाई :

* रहे तहाँ निसिचर भट भारे। ते सब सुरन्ह समर संघारे॥

अब तहँ रहहिं सक्र के प्रेरे। रच्छक कोटि जच्छपति केरे॥1॥

भावार्थ:-(पहले) वहाँ बड़े-बड़े योद्धा राक्षस रहते थे। देवताओं ने उन सबको युद्ध में मार डाला। अब इंद्र की प्रेरणा से वहाँ कुबेर के एक करोड़ रक्षक (यक्ष लोग) रहते हैं॥1॥

*दसमुख कतहुँ खबरि असि पाई। सेन साजि गढ़ घेरेसि जाई॥

देखि बिकट भट बड़ि कटकाई। जच्छ जीव लै गए पराई॥2॥

भावार्थ:-रावण को कहीं ऐसी खबर मिली, तब उसने सेना सजाकर किले को जा घेरा। उस बड़े विकट योद्धा और उसकी बड़ी सेना को देखकर यक्ष अपने प्राण लेकर भाग गए॥2॥

* फिरि सब नगर दसानन देखा। गयउ सोच सुख भयउ बिसेषा॥

सुंदर सहज अगम अनुमानी। कीन्हि तहाँ रावन रजधानी॥3॥

भावार्थ:-तब रावण ने घूम-फिरकर सारा नगर देखा। उसकी (स्थान संबंधी) चिन्ता मिट गई और उसे बहुत ही सुख हुआ। उस पुरी को स्वाभाविक ही सुंदर और (बाहर वालों के लिए) दुर्गम अनुमान करके रावण ने वहाँ अपनी राजधानी कायम की॥3॥

* जेहि जस जोग बाँटि गृह दीन्हे। सुखी सकल रजनीचर कीन्हें॥

एक बार कुबेर पर धावा। पुष्पक जान जीति लै आवा॥4॥

भावार्थ:-योग्यता के अनुसार घरों को बाँटकर रावण ने सब राक्षसों को सुखी किया। एक बार वह कुबेर पर चढ़ दौड़ा और उससे पुष्पक विमान को जीतकर ले आया॥4॥

दोहा :

* कौतुकहीं कैलास पुनि लीन्हेसि जाइ उठाइ।
मनहुँ तौलि निज बाहुबल चला बहुत सुख पाइ॥179॥

भावार्थ:-फिर उसने जाकर (एक बार) खिलवाड़ ही में कैलास पर्वत को उठा लिया और मानो अपनी भुजाओं का बल तौलकर, बहुत सुख पाकर वह वहाँ से चला आया॥179॥

चौपाई :

* सुख संपति सुत सेन सहाई। जय प्रताप बल बुद्धि बड़ाई॥
नित नूतन सब बाढ़त जाई। जिमि प्रतिलाभ लोभ अधिकाई॥1॥

भावार्थ:-सुख, सम्पत्ति, पुत्र, सेना, सहायक, जय, प्रताप, बल, बुद्धि और बड़ाई- ये सब उसके नित्य नए (वैसे ही) बढ़ते जाते थे, जैसे प्रत्येक लाभ पर लोभ बढ़ता है॥1॥

* अतिबल कुंभकरन अस भ्राता। जेहि कहुँ नहिं प्रतिभट जग जाता॥
करइ पान सोवइ षट मासा। जागत होइ तिहूँ पुर त्रासा॥2॥

भावार्थ:-अत्यन्त बलवान् कुम्भकर्ण सा उसका भाई था, जिसके जोड़ का योद्धा जगत में पैदा ही नहीं हुआ। वह मदिरा पीकर छह महीने सोया करता था। उसके जागते ही तीनों लोकों में तहलका मच जाता था॥2॥

* जौं दिन प्रति अहार कर सोई। बिस्व बेगि सब चौपट होई॥
समर धीर नहिं जाइ बखाना। तेहि सम अमित बीर बलवाना॥3॥

भावार्थ:-यदि वह प्रतिदिन भोजन करता, तब तो सम्पूर्ण विश्व शीघ्र ही चौपट (खाली) हो जाता। रणधीर ऐसा था कि जिसका वर्णन नहीं किया जा सकता। (लंका में) उसके ऐसे असंख्य बलवान वीर थे॥3॥

* बारिदनाद जेठ सुत तासू। भट महुँ प्रथम लीक जग जासू॥
जेहि न होइ रन सनमुख कोई। सुरपुर नितहिं परावन होई॥4॥

भावार्थ:- मेघनाद रावण का बड़ा लड़का था, जिसका जगत के योद्धाओं में पहला नंबर था। रण में कोई भी उसका सामना नहीं कर सकता था। स्वर्ग में तो (उसके भय से) नित्य भगदड़ मची रहती थी॥4॥

दोहा :

* कुमुख अकंपन कुलिसरद धूमकेतु अतिकाय।
एक एक जग जीति सक ऐसे सुभट निकाय॥180॥

भावार्थ:-(इनके अतिरिक्त) दुर्मुख, अकम्पन, वज्रदन्त, धूमकेतु और अतिकाय आदि ऐसे अनेक योद्धा थे, जो अकेले ही सारे जगत को जीत सकते थे॥180॥

चौपाई :

* कामरूप जानहिं सब माया। सपनेहुँ जिन्ह कें धरम न दाया॥
दसमुख बैठ सभाँ एक बारा। देखि अमित आपन परिवारा॥1॥

भावार्थ:-सभी राक्षस मनमाना रूप बना सकते थे और (आसुरी) माया जानते थे। उनके दया-धर्म स्वप्न में भी नहीं था। एक बार सभा में बैठे हुए रावण ने अपने अगणित परिवार को देखा-॥1॥

* सुत समूह जन परिजन नाती। गनै को पार निसाचर जाती॥
सेन बिलोकि सहज अभिमानी। बोला बचन क्रोध मद सानी॥2॥

भावार्थ:-पुत्र-पौत्र, कुटुम्बी और सेवक ढेर-के-ढेर थे। (सारी) राक्षसों की जातियों को तो गिन ही कौन सकता था! अपनी सेना को देखकर स्वभाव से ही अभिमानी रावण क्रोध और गर्व में सनी हुई वाणी बोला-॥2॥

* सुनहु सकल रजनीचर जूथा। हमरे बैरी बिबुध बरूथा॥
ते सनमुख नहिं करहिं लराई। देखि सबल रिपु जाहिं पराई॥3॥

भावार्थ:-हे समस्त राक्षसों के दलों! सुनो, देवतागण हमारे शत्रु हैं। वे सामने आकर युद्ध नहीं करते। बलवान शत्रु को देखकर भाग जाते हैं॥3॥

* तेन्ह कर मरन एक बिधि होई। कहउँ बुझाइ सुनहु अब सोई॥
द्विजभोजन मख होम सराधा। सब कै जाइ करहु तुम्ह बाधा॥4॥

भावार्थ:-उनका मरण एक ही उपाय से हो सकता है, मैं समझाकर कहता हूँ। अब उसे सुनो। (उनके बल को बढ़ाने वाले) ब्राह्मण भोजन, यज्ञ, हवन और श्राद्ध- इन सबमें जाकर तुम बाधा डालो॥4॥

दोहा :

* छुधा छीन बलहीन सुर सहजेहिं मिलिहहिं आइ।
तब मारिहउँ कि छाड़िहउँ भली भाँति अपनाइ॥181॥

भावार्थ:-भूख से दुर्बल और बलहीन होकर देवता सहज ही में आ मिलेंगे। तब उनको मैं मार डालूँगा अथवा भलीभाँति अपने अधीन करके (सर्वथा पराधीन करके) छोड़ दूँगा॥181॥

चौपाई :

* मेघनाद कहूँ पुनि हँकरावा। दीन्हीं सिख बलु बयरु बढ़ावा॥
जे सुर समर धीर बलवाना। जिन्ह कें लरिबे कर अभिमाना॥1॥

भावार्थ:-फिर उसने मेघनाद को बुलवाया और सिखा-पढ़ाकर उसके बल और देवताओं के प्रति बैरभाव को उत्तेजना दी। (फिर कहा-) हे पुत्र ! जो देवता रण में धीर और बलवान् हैं और जिन्हें लड़ने का अभिमान है॥1॥

* तिन्हहि जीति रन आनेसु बाँधी। उठि सुत पितु अनुसासन काँधी॥

एहि बिधि सबही अग्या दीन्हीं। आपुनु चलेउ गदा कर लीन्ही॥2॥

भावार्थ:-उन्हें युद्ध में जीतकर बाँध लाना। बेटे ने उठकर पिता की आज्ञा को शिरोधार्य किया। इसी तरह उसने सबको आज्ञा दी और आप भी हाथ में गदा लेकर चल दिया॥2॥

* चलत दसानन डोलति अवनी। गर्जत गर्भ स्रवहिं सुर रवनी॥

रावन आवत सुनेउ सकोहा। देवन्ह तके मेरु गिरि खोहा॥3॥

भावार्थ:-रावण के चलने से पृथ्वी डगमगाने लगी और उसकी गर्जना से देवरमणियों के गर्भ गिरने लगे। रावण को क्रोध सहित आते हुए सुनकर देवताओं ने सुमेरु पर्वत की गुफाएँ तकीं (भागकर सुमेरु की गुफाओं का आश्रय लिया)॥3॥

* दिगपालन्ह के लोक सुहाए। सूने सकल दसानन पाए॥

पुनि पुनि सिंघनाद करि भारी। देइ देवतन्ह गारि पचारी॥4॥

भावार्थ:-दिक्पालों के सारे सुंदर लोकों को रावण ने सूना पाया। वह बार-बार भारी सिंहगर्जना करके देवताओं को ललकार-ललकारकर गालियाँ देता था॥4॥

* रन मद मत्त फिरइ जग धावा। प्रतिभट खोजत कतहुँ न पावा॥

रबि ससि पवन बरुन धनधारी। अगिनि काल जम सब अधिकारी॥5॥

भावार्थ:-रण के मद में मतवाला होकर वह अपनी जोड़ी का योद्धा खोजता हुआ जगत भर में दौड़ता फिरा, परन्तु उसे ऐसा योद्धा कहीं

नहीं मिला। सूर्य, चन्द्रमा, वायु, वरुण, कुबेर, अग्नि, काल और यम आदि सब अधिकारी,॥5॥

* किंनर सिद्ध मनुज सुर नागा। हठि सबही के पंथहिं लागा॥
ब्रह्मसृष्टि जहँ लगि तनुधारी। दसमुख बसबर्ती नर नारी॥6॥

भावार्थ:-किन्नर, सिद्ध, मनुष्य, देवता और नाग- सभी के पीछे वह हठपूर्वक पड़ गया (किसी को भी उसने शांतिपूर्वक नहीं बैठने दिया)। ब्रह्माजी की सृष्टि में जहाँ तक शरीरधारी स्त्री-पुरुष थे, सभी रावण के अधीन हो गए॥6॥

* आयसु करहिं सकल भयभीता। नवहिं आइ नित चरन बिनीता॥7॥

भावार्थ:-डर के मारे सभी उसकी आज्ञा का पालन करते थे और नित्य आकर नम्रतापूर्वक उसके चरणों में सिर नवाते थे॥7॥

दोहा :

* भुजबल बिस्व बस्य करि राखेसि कोउ न सुतंत्र।
मंडलीक मनि रावन राज करइ निज मंत्र॥182 क॥

भावार्थ:-उसने भुजाओं के बल से सारे विश्व को वश में कर लिया, किसी को स्वतंत्र नहीं रहने दिया। (इस प्रकार) मंडलीक राजाओं का शिरोमणि (सार्वभौम सम्राट) रावण अपनी इच्छानुसार राज्य करने लगा॥182 (क)॥

* देव जच्छ गंधर्ब नर किंनर नाग कुमारि।
जीति बरीं निज बाहु बल बहु सुंदर बर नारि॥182 ख॥

भावार्थ:-देवता, यक्ष, गंधर्व, मनुष्य, किन्नर और नागों की कन्याओं तथा बहुत सी अन्य सुंदरी और उत्तम स्त्रियों को उसने अपनी भुजाओं के बल से जीतकर ब्याह लिया॥182 (ख)॥

चौपाई :

* इंद्रजीत सन जो कछु कहेऊ। सो सब जनु पहिलेहिं करि रहेऊ॥
प्रथमहिं जिन्ह कहुँ आयसु दीन्हा। तिन्ह कर चरित सुनहु जो कीन्हा॥1॥

भावार्थ:-मेघनाद से उसने जो कुछ कहा, उसे उसने (मेघनाद ने) मानो पहले से ही कर रखा था (अर्थात् रावण के कहने भर की देर थी, उसने आज्ञापालन में तनिक भी देर नहीं की।) जिनको (रावण ने मेघनाद से) पहले ही आज्ञा दे रखी थी, उन्होंने जो करतूतें की उन्हें सुनो॥1॥

* देखत भीमरूप सब पापी। निसिचर निकर देव परितापी॥
करहिं उपद्रव असुर निकाया। नाना रूप धरहिं करि माया॥2॥

भावार्थ:-सब राक्षसों के समूह देखने में बड़े भयानक, पापी और देवताओं को दुःख देने वाले थे। वे असुरों के समूह उपद्रव करते थे और माया से अनेकों प्रकार के रूप धरते थे॥2॥

* जेहि बिधि होइ धर्म निर्मूला। सो सब करहिं बेद प्रतिकूला॥
जेहिं जेहिं देस धेनु द्विज पावहिं। नगर गाउँ पुर आगि लगावहिं॥3॥

भावार्थ:-जिस प्रकार धर्म की जड़ कटे, वे वही सब वेदविरुद्ध काम करते थे। जिस-जिस स्थान में वे गो और ब्राह्मणों को पाते थे, उसी नगर, गाँव और पुरवे में आग लगा देते थे॥3॥

* सुभ आचरन कतहुँ नहिं होई। देव बिप्र गुरु मान न कोई॥
नहिं हरिभगति जग्य तप ग्याना। सपनेहु सुनिअ न बेद पुराना॥4॥

भावार्थ:-(उनके डर से) कहीं भी शुभ आचरण (ब्राह्मण भोजन, यज्ञ, श्राद्ध आदि) नहीं होते थे। देवता, ब्राह्मण और गुरु को कोई नहीं मानता

था। न हरिभक्ति थी, न यज्ञ, तप और ज्ञान था। वेद और पुराण तो स्वप्न में भी सुनने को नहीं मिलते थे॥4॥

छन्द :

* जप जोग बिरागा तप मख भागा श्रवन सुनइ दससीसा।
आपुनु उठि धावइ रहै न पावइ धरि सब घालइ खीसा॥
अस भ्रष्ट अचारा भा संसारा धर्म सुनिअ नहिं काना।
तेहि बहुबिधि त्रासइ देस निकासइ जो कह बेद पुराना॥

भावार्थ:-जप, योग, वैराग्य, तप तथा यज्ञ में (देवताओं के) भाग पाने की बात रावण कहीं कानों से सुन पाता, तो (उसी समय) स्वयं उठ दौड़ता। कुछ भी रहने नहीं पाता, वह सबको पकड़कर विध्वंस कर डालता था। संसार में ऐसा भ्रष्ट आचरण फैल गया कि धर्म तो कानों में सुनने में नहीं आता था, जो कोई वेद और पुराण कहता, उसको बहुत तरह से त्रास देता और देश से निकाल देता था।

सोरठा :

* बरनि न जाइ अनीति घोर निसाचर जो करहिं।
हिंसा पर अति प्रीति तिन्ह के पापहि कवनि मिति॥183॥

भावार्थ:-राक्षस लोग जो घोर अत्याचार करते थे, उसका वर्णन नहीं किया जा सकता। हिंसा पर ही जिनकी प्रीति है, उनके पापों का क्या ठिकाना॥183॥

मासपारायण, छठा विश्राम

पृथ्वी और देवतादि की करुण पुकार

चौपाई :

* बाढ़े खल बहु चोर जुआरा। जे लंपट परधन परदारा॥
मानहिं मातु पिता नहिं देवा। साधुन्ह सन करवावहिं सेवा॥1॥

भावार्थ:-पराए धन और पराई स्त्री पर मन चलाने वाले, दुष्ट, चोर और जुआरी बहुत बढ़ गए। लोग माता-पिता और देवताओं को नहीं मानते थे और साधुओं (की सेवा करना तो दूर रहा, उल्टे उन) से सेवा करवाते थे॥1॥

* जिन्ह के यह आचरन भवानी। ते जानेहु निसिचर सब प्रानी॥
अतिसय देखि धर्म कै ग्लानी। परम सभीत धरा अकुलानी॥2॥

भावार्थ:-(श्री शिवजी कहते हैं कि-) हे भवानी! जिनके ऐसे आचरण हैं, उन सब प्राणियों को राक्षस ही समझना। इस प्रकार धर्म के प्रति (लोगों की) अतिशय ग्लानि (अरुचि, अनास्था) देखकर पृथ्वी अत्यन्त भयभीत एवं व्याकुल हो गई॥2॥

* गिरि सरि सिंधु भार नहिं मोही। जस मोहि गरुअ एक परद्रोही।
सकल धर्म देखइ बिपरीता। कहि न सकइ रावन भय भीता॥3॥

भावार्थ:-(वह सोचने लगी कि) पर्वतों, नदियों और समुद्रों का बोझ मुझे इतना भारी नहीं जान पड़ता, जितना भारी मुझे एक परद्रोही (दूसरों का अनिष्ट करने वाला) लगता है। पृथ्वी सारे धर्मों को विपरीत देख रही है, पर रावण से भयभीत हुई वह कुछ बोल नहीं सकती॥3॥

*धेनु रूप धरि हृदयँ बिचारी। गई तहाँ जहँ सुर मुनि झारी॥
निज संताप सुनाएसि रोई। काहू तें कछु काज न होई॥4॥

भावार्थ:-(अंत में) हृदय में सोच-विचारकर, गो का रूप धारण कर धरती वहाँ गई, जहाँ सब देवता और मुनि (छिपे) थे। पृथ्वी ने रोककर उनको अपना दुःख सुनाया, पर किसी से कुछ काम न बना॥4॥

छन्द :

* सुर मुनि गंधर्बा मिलि करि सर्बा गे बिरंचि के लोका।

सँग गोतनुधारी भूमि बिचारी परम बिकल भय सोका॥
ब्रह्माँ सब जाना मन अनुमाना मोर कछू न बसाई।
जा करि तैं दासी सो अबिनासी हमरेउ तोर सहाई॥
भावार्थ:-तब देवता, मुनि और गंधर्व सब मिलकर ब्रह्माजी के लोक (सत्यलोक) को गए। भय और शोक से अत्यन्त व्याकुल बेचारी पृथ्वी भी गो का शरीर धारण किए हुए उनके साथ थी। ब्रह्माजी सब जान गए। उन्होंने मन में अनुमान किया कि इसमें मेरा कुछ भी वश नहीं चलने का। (तब उन्होंने पृथ्वी से कहा कि-) जिसकी तू दासी है, वही अविनाशी हमारा और तुम्हारा दोनों का सहायक है॥
सोरठा :
* धरनि धरहि मन धीर कह बिरंचि हरि पद सुमिरु।
जानत जन की पीर प्रभु भंजिहि दारुन बिपति॥184॥
भावार्थ:-ब्रह्माजी ने कहा- हे धरती! मन में धीरज धारण करके श्री हरि के चरणों का स्मरण करो। प्रभु अपने दासों की पीड़ा को जानते हैं, वे तुम्हारी कठिन विपत्ति का नाश करेंगे॥184॥
चौपाई :
* बैठे सुर सब करहिं बिचारा। कहँ पाइअ प्रभु करिअ पुकारा॥
पुर बैकुंठ जान कह कोई। कोउ कह पयनिधि बस प्रभु सोई॥1॥
भावार्थ:-सब देवता बैठकर विचार करने लगे कि प्रभु को कहाँ पावें ताकि उनके सामने पुकार (फरियाद) करें। कोई बैकुंठपुरी जाने को कहता था और कोई कहता था कि वही प्रभु क्षीरसमुद्र में निवास करते हैं॥1॥
* जाके हृदयँ भगति जसि प्रीती। प्रभु तहँ प्रगट सदा तेहिं रीती॥
तेहिं समाज गिरिजा मैं रहेउँ। अवसर पाइ बचन एक कहेउँ॥2॥

भावार्थ:-जिसके हृदय में जैसी भक्ति और प्रीति होती है, प्रभु वहाँ (उसके लिए) सदा उसी रीति से प्रकट होते हैं। हे पार्वती! उस समाज में मैं भी था। अवसर पाकर मैंने एक बात कही-॥2॥

* हरि ब्यापक सर्बत्र समाना। प्रेम तें प्रगट होहिं मैं जाना॥
देस काल दिसि बिदिसिहु माहीं। कहहु सो कहाँ जहाँ प्रभु नाहीं॥3॥

भावार्थ:-मैं तो यह जानता हूँ कि भगवान सब जगह समान रूप से व्यापक हैं, प्रेम से वे प्रकट हो जाते हैं, देश, काल, दिशा, विदिशा में बताओ, ऐसी जगह कहाँ है, जहाँ प्रभु न हों॥3॥

* अग जगमय सब रहित बिरागी। प्रेम तें प्रभु प्रगटइ जिमि आगी॥
मोर बचन सब के मन माना। साधु-साधु करि ब्रह्म बखाना॥4॥

भावार्थ:-वे चराचरमय (चराचर में व्याप्त) होते हुए ही सबसे रहित हैं और विरक्त हैं (उनकी कहीं आसक्ति नहीं है), वे प्रेम से प्रकट होते हैं, जैसे अग्नि। (अग्नि अव्यक्त रूप से सर्वत्र व्याप्त है, परन्तु जहाँ उसके लिए अरणिमन्थनादि साधन किए जाते हैं, वहाँ वह प्रकट होती है। इसी प्रकार सर्वत्र व्याप्त भगवान भी प्रेम से प्रकट होते हैं।) मेरी बात सबको प्रिय लगी। ब्रह्माजी ने 'साधु-साधु' कहकर बड़ाई की॥4॥

दोहा :

* सुनि बिरंचि मन हरष तन पुलकि नयन बह नीर।
अस्तुति करत जोरि कर सावधान मतिधीर॥185॥

भावार्थ:-मेरी बात सुनकर ब्रह्माजी के मन में बड़ा हर्ष हुआ, उनका तन पुलकित हो गया और नेत्रों से (प्रेम के) आँसू बहने लगे। तब वे धीरबुद्धि ब्रह्माजी सावधान होकर हाथ जोड़कर स्तुति करने लगे॥185॥

छन्द :

* जय जय सुरनायक जन सुखदायक प्रनतपाल भगवंता।
गो द्विज हितकारी जय असुरारी सिंधुसुता प्रिय कंता॥
पालन सुर धरनी अद्‌भुत करनी मरम न जानइ कोई।
जो सहज कृपाला दीनदयाला करउ अनुग्रह सोई॥1॥

भावार्थ:-हे देवताओं के स्वामी, सेवकों को सुख देने वाले, शरणागत की रक्षा करने वाले भगवान! आपकी जय हो! जय हो!! हे गो-ब्राह्मणों का हित करने वाले, असुरों का विनाश करने वाले, समुद्र की कन्या (श्री लक्ष्मीजी) के प्रिय स्वामी! आपकी जय हो! हे देवता और पृथ्वी का पालन करने वाले! आपकी लीला अद्‌भुत है, उसका भेद कोई नहीं जानता। ऐसे जो स्वभाव से ही कृपालु और दीनदयालु हैं, वे ही हम पर कृपा करें॥1॥

* जय जय अबिनासी सब घट बासी ब्यापक परमानंदा।
अबिगत गोतीतं चरित पुनीतं मायारहित मुकुंदा॥
जेहि लागि बिरागी अति अनुरागी बिगत मोह मुनिबृंदा।
निसि बासर ध्यावहिं गुन गन गावहिं जयति सच्चिदानंदा॥2॥

भावार्थ:-हे अविनाशी, सबके हृदय में निवास करने वाले (अन्तर्यामी), सर्वव्यापक, परम आनंदस्वरूप, अज्ञेय, इन्द्रियों से परे, पवित्र चरित्र, माया से रहित मुकुंद (मोक्षदाता)! आपकी जय हो! जय हो!! (इस लोक और परलोक के सब भोगों से) विरक्त तथा मोह से सर्वथा छूटे हुए (ज्ञानी) मुनिवृन्द भी अत्यन्त अनुरागी (प्रेमी) बनकर जिनका रात-दिन ध्यान करते हैं और जिनके गुणों के समूह का गान करते हैं, उन सच्चिदानंद की जय हो॥2॥

* जेहिं सृष्टि उपाई त्रिबिध बनाई संग सहाय न दूजा।
सो करउ अघारी चिंत हमारी जानिअ भगति न पूजा॥

जो भव भय भंजन मुनि मन रंजन गंजन बिपति बरूथा।
मन बच क्रम बानी छाड़ि सयानी सरन सकल सुरजूथा॥3॥

भावार्थ:-जिन्होंने बिना किसी दूसरे संगी अथवा सहायक के अकेले ही (या स्वयं अपने को त्रिगुणरूप- ब्रह्मा, विष्णु, शिवरूप- बनाकर अथवा बिना किसी उपादान-कारण के अर्थात् स्वयं ही सृष्टि का अभिन्ननिमित्तोपादान कारण बनकर) तीन प्रकार की सृष्टि उत्पन्न की, वे पापों का नाश करने वाले भगवान हमारी सुधि लें। हम न भक्ति जानते हैं, न पूजा, जो संसार के (जन्म-मृत्यु के) भय का नाश करने वाले, मुनियों के मन को आनंद देने वाले और विपत्तियों के समूह को नष्ट करने वाले हैं। हम सब देवताओं के समूह, मन, वचन और कर्म से चतुराई करने की बान छोड़कर उन (भगवान) की शरण (आए) हैं॥3॥

* सारद श्रुति सेषा रिषय असेषा जा कहुँ कोउ नहिं जाना।
जेहि दीन पिआरे बेद पुकारे द्रवउ सो श्रीभगवाना॥
भव बारिधि मंदर सब बिधि सुंदर गुनमंदिर सुखपुंजा।
मुनि सिद्ध सकल सुर परम भयातुर नमत नाथ पद कंजा॥4॥

भावार्थ:-सरस्वती, वेद, शेषजी और सम्पूर्ण ऋषि कोई भी जिनको नहीं जानते, जिन्हें दीन प्रिय हैं, ऐसा वेद पुकारकर कहते हैं, वे ही श्री भगवान हम पर दया करें। हे संसार रूपी समुद्र के (मथने के) लिए मंदराचल रूप, सब प्रकार से सुंदर, गुणों के धाम और सुखों की राशि नाथ! आपके चरण कमलों में मुनि, सिद्ध और सारे देवता भय से अत्यन्त व्याकुल होकर नमस्कार करते हैं॥4॥

भगवान् का वरदान

दोहा :

* जानि सभय सुर भूमि सुनि बचन समेत सनेह।

गगनगिरा गंभीर भइ हरनि सोक संदेह॥186॥

भावार्थ:-देवताओं और पृथ्वी को भयभीत जानकर और उनके स्नेहयुक्त वचन सुनकर शोक और संदेह को हरने वाली गंभीर आकाशवाणी हुई॥186॥

चौपाई :

* जनि डरपहु मुनि सिद्ध सुरेसा। तुम्हहि लागि धरिहउँ नर बेसा॥

अंसन्ह सहित मनुज अवतारा। लेहउँ दिनकर बंस उदारा॥1॥

भावार्थ:-हे मुनि, सिद्ध और देवताओं के स्वामियों! डरो मत। तुम्हारे लिए मैं मनुष्य का रूप धारण करूँगा और उदार (पवित्र) सूर्यवंश में अंशों सहित मनुष्य का अवतार लूँगा॥1॥

* कस्यप अदिति महातप कीन्हा। तिन्ह कहुँ मैं पूरब बर दीन्हा॥

ते दसरथ कौसल्या रूपा। कोसलपुरीं प्रगट नर भूपा॥2॥

भावार्थ:-कश्यप और अदिति ने बड़ा भारी तप किया था। मैं पहले ही उनको वर दे चुका हूँ। वे ही दशरथ और कौसल्या के रूप में मनुष्यों के राजा होकर श्री अयोध्यापुरी में प्रकट हुए हैं॥2॥

* तिन्ह कें गृह अवतरिहउँ जाई। रघुकुल तिलक सो चारिउ भाई॥

नारद बचन सत्य सब करिहउँ। परम सक्ति समेत अवतरिहउँ॥3॥

भावार्थ:-उन्हीं के घर जाकर मैं रघुकुल में श्रेष्ठ चार भाइयों के रूप में अवतार लूँगा। नारद के सब वचन मैं सत्य करूँगा और अपनी पराशक्ति के सहित अवतार लूँगा॥3॥

* हरिहउँ सकल भूमि गरुआई। निर्भय होहु देव समुदाई॥

गगन ब्रह्मबानी सुनि काना। तुरत फिरे सुर हृदय जुड़ाना॥4॥

भावार्थ:-मैं पृथ्वी का सब भार हर लूँगा। हे देववृंद! तुम निर्भय हो जाओ। आकाश में ब्रह्म (भगवान) की वाणी को कान से सुनकर देवता तुरंत लौट गए। उनका हृदय शीतल हो गया॥4॥

* तब ब्रह्माँ धरनिहि समुझावा। अभय भई भरोस जियँ आवा॥5॥

भावार्थ:-तब ब्रह्माजी ने पृथ्वी को समझाया। वह भी निर्भय हुई और उसके जी में भरोसा (ढाढस) आ गया॥5॥

दोहा :

* निज लोकहि बिरंचि गे देवन्ह इहइ सिखाइ।
बानर तनु धरि धरि महि हरि पद सेवहु जाइ॥187॥

भावार्थ:-देवताओं को यही सिखाकर कि वानरों का शरीर धर-धरकर तुम लोग पृथ्वी पर जाकर भगवान के चरणों की सेवा करो, ब्रह्माजी अपने लोक को चले गए॥187॥

चौपाई :

* गए देव सब निज निज धामा। भूमि सहित मन कहुँ बिश्रामा॥
जो कछु आयसु ब्रह्माँ दीन्हा। हरषे देव बिलंब न कीन्हा॥1॥

भावार्थ:-सब देवता अपने-अपने लोक को गए। पृथ्वी सहित सबके मन को शांति मिली। ब्रह्माजी ने जो कुछ आज्ञा दी, उससे देवता बहुत प्रसन्न हुए और उन्होंने (वैसा करने में) देर नहीं की॥1॥

*बनचर देह धरी छिति माहीं। अतुलित बल प्रताप तिन्ह पाहीं॥
गिरि तरु नख आयुध सब बीरा। हरि मारग चितवहिं मतिधीरा॥2॥

भावार्थ:-पृथ्वी पर उन्होंने वानरदेह धारण की। उनमें अपार बल और प्रताप था। सभी शूरवीर थे, पर्वत, वृक्ष और नख ही उनके शस्त्र थे। वे धीर बुद्धि वाले (वानर रूप देवता) भगवान के आने की राह देखने लगे॥2॥

राजा दशरथ का पुत्रेष्टि यज्ञ, रानियों का गर्भवती होना

* गिरि कानन जहँ तहँ भरि पूरी। रहे निज निज अनीक रचि रूरी॥
यह सब रुचिर चरित मैं भाषा। अब सो सुनहु जो बीचहिं राखा॥3॥

भावार्थ:-वे (वानर) पर्वतों और जंगलों में जहाँ-तहाँ अपनी-अपनी सुंदर सेना बनाकर भरपूर छा गए। यह सब सुंदर चरित्र मैंने कहा। अब वह चरित्र सुनो जिसे बीच ही में छोड़ दिया था॥3॥

* अवधपुरीं रघुकुलमनि राऊ। बेद बिदित तेहि दसरथ नाऊँ॥
धरम धुरंधर गुननिधि ग्यानी। हृदयँ भगति भति सारँगपानी॥4॥

भावार्थ:-अवधपुरी में रघुकुल शिरोमणि दशरथ नाम के राजा हुए, जिनका नाम वेदों में विख्यात है। वे धर्मधुरंधर, गुणों के भंडार और ज्ञानी थे। उनके हृदय में शार्ंगधनुष धारण करने वाले भगवान की भक्ति थी और उनकी बुद्धि भी उन्हीं में लगी रहती थी॥4॥

दोहा :

* कौसल्यादि नारि प्रिय सब आचरन पुनीत।
पति अनुकूल प्रेम दृढ़ हरि पद कमल बिनीत॥188॥

भावार्थ:-उनकी कौसल्या आदि प्रिय रानियाँ सभी पवित्र आचरण वाली थीं। वे (बड़ी) विनीत और पति के अनुकूल (चलने वाली) थीं और श्री हरि के चरणकमलों में उनका दृढ़ प्रेम था॥188॥

चौपाई :

* एक बार भूपति मन माहीं। भै गलानि मोरें सुत नाहीं॥
गुर गृह गयउ तुरत महिपाला। चरन लागि करि बिनय बिसाला॥1॥

भावार्थ:-एक बार राजा के मन में बड़ी ग्लानि हुई कि मेरे पुत्र नहीं है। राजा तुरंत ही गुरु के घर गए और चरणों में प्रणाम कर बहुत विनय की॥1॥

* निज दुख सुख सब गुरहि सुनायउ। कहि बसिष्ठ बहुबिधि समुझायउ॥
धरहु धीर होइहहिं सुत चारी। त्रिभुवन बिदित भगत भय हारी॥2॥
भावार्थ:-राजा ने अपना सारा सुख-दुःख गुरु को सुनाया। गुरु वशिष्ठजी ने उन्हें बहुत प्रकार से समझाया (और कहा-) धीरज धरो, तुम्हारे चार पुत्र होंगे, जो तीनों लोकों में प्रसिद्ध और भक्तों के भय को हरने वाले होंगे॥2॥

* सृंगी रिषिहि बसिष्ठ बोलावा। पुत्रकाम सुभ जग्य करावा॥
भगति सहित मुनि आहुति दीन्हें। प्रगटे अगिनि चरू कर लीन्हें॥3॥
भावार्थ:-वशिष्ठजी ने श्रृंगी ऋषि को बुलवाया और उनसे शुभ पुत्रकामेष्टि यज्ञ कराया। मुनि के भक्ति सहित आहुतियाँ देने पर अग्निदेव हाथ में चरु (हविष्यान्न खीर) लिए प्रकट हुए॥3॥

दोहा :

*जो बसिष्ठ कछु हृदयँ बिचारा। सकल काजु भा सिद्ध तुम्हारा॥
यह हबि बाँटि देहु नृप जाई। जथा जोग जेहि भाग बनाई॥4॥
भावार्थ:-(और दशरथ से बोले-) वशिष्ठ ने हृदय में जो कुछ विचारा था, तुम्हारा वह सब काम सिद्ध हो गया। हे राजन्! (अब) तुम जाकर इस हविष्यान्न (पायस) को, जिसको जैसा उचित हो, वैसा भाग बनाकर बाँट दो॥4॥

दोहा :

* तब अदृस्य भए पावक सकल सभहि समुझाइ।
परमानंद मगन नृप हरष न हृदयँ समाइ॥189॥
भावार्थ:-तदनन्तर अग्निदेव सारी सभा को समझाकर अन्तर्धान हो गए। राजा परमानंद में मग्न हो गए, उनके हृदय में हर्ष समाता न था॥189॥

चौपाई :

* तबहिं रायँ प्रिय नारि बोलाईं। कौसल्यादि तहाँ चलि आईं॥

अर्ध भाग कौसल्यहि दीन्हा। उभय भाग आधे कर कीन्हा॥1॥

भावार्थ:-उसी समय राजा ने अपनी प्यारी पत्नियों को बुलाया। कौसल्या आदि सब (रानियाँ) वहाँ चली आईं। राजा ने (पायस का) आधा भाग कौसल्या को दिया, (और शेष) आधे के दो भाग किए॥1॥

* कैकेई कहँ नृप सो दयऊ। रह्यो सो उभय भाग पुनि भयऊ॥

कौसल्या कैकेई हाथ धरि। दीन्ह सुमित्रहि मन प्रसन्न करि॥2॥

भावार्थ:-वह (उनमें से एक भाग) राजा ने कैकेयी को दिया। शेष जो बच रहा उसके फिर दो भाग हुए और राजा ने उनको कौसल्या और कैकेयी के हाथ पर रखकर (अर्थात् उनकी अनुमति लेकर) और इस प्रकार उनका मन प्रसन्न करके सुमित्रा को दिया॥2॥

* एहि बिधि गर्भसहित सब नारी। भईं हृदयँ हरषित सुख भारी॥

जा दिन तें हरि गर्भहिं आए। सकल लोक सुख संपति छाए॥3॥

भावार्थ:-इस प्रकार सब स्त्रियाँ गर्भवती हुईं। वे हृदय में बहुत हर्षित हुईं। उन्हें बड़ा सुख मिला। जिस दिन से श्री हरि (लीला से ही) गर्भ में आए, सब लोकों में सुख और सम्पत्ति छा गई॥3॥

* मंदिर महँ सब राजहिं रानीं। सोभा सील तेज की खानीं॥

सुख जुत कछुक काल चलि गयऊ। जेहिं प्रभु प्रगट सो अवसर भयऊ॥4॥

भावार्थ:-शोभा, शील और तेज की खान (बनी हुई) सब रानियाँ महल में सुशोभित हुईं। इस प्रकार कुछ समय सुखपूर्वक बीता और वह अवसर आ गया, जिसमें प्रभु को प्रकट होना था॥4॥

श्री भगवान् का प्राकट्य और बाललीला का आनंद

दोहा :

* जोग लगन ग्रह बार तिथि सकल भए अनुकूल।

चर अरु अचर हर्षजुत राम जनम सुखमूल॥190॥

भावार्थ:-योग, लग्न, ग्रह, वार और तिथि सभी अनुकूल हो गए। जड़ और चेतन सब हर्ष से भर गए। (क्योंकि) श्री राम का जन्म सुख का मूल है॥190॥

चौपाई :

* नौमी तिथि मधु मास पुनीता। सुकल पच्छ अभिजित हरिप्रीता॥
मध्यदिवस अति सीत न घामा। पावन काल लोक बिश्रामा॥1॥

भावार्थ:-पवित्र चैत्र का महीना था, नवमी तिथि थी। शुक्ल पक्ष और भगवान का प्रिय अभिजित् मुहूर्त था। दोपहर का समय था। न बहुत सर्दी थी, न धूप (गरमी) थी। वह पवित्र समय सब लोकों को शांति देने वाला था॥1॥

* सीतल मंद सुरभि बह बाऊ। हरषित सुर संतन मन चाऊ॥
बन कुसुमित गिरिगन मनिआरा। स्रवहिं सकल सरिताऽमृतधारा॥2॥

भावार्थ:-शीतल, मंद और सुगंधित पवन बह रहा था। देवता हर्षित थे और संतों के मन में (बड़ा) चाव था। वन फूले हुए थे, पर्वतों के समूह मणियों से जगमगा रहे थे और सारी नदियाँ अमृत की धारा बहा रही थीं॥2॥

* सो अवसर बिरंचि जब जाना। चले सकल सुर साजि बिमाना॥
गगन बिमल संकुल सुर जूथा। गावहिं गुन गंधर्ब बरूथा॥3॥

भावार्थ:-जब ब्रह्माजी ने वह (भगवान के प्रकट होने का) अवसर जाना तब (उनके समेत) सारे देवता विमान सजा-सजाकर चले। निर्मल आकाश देवताओं के समूहों से भर गया। गंधर्वों के दल गुणों का गान करने लगे॥3॥

* बरषहिं सुमन सुअंजुलि साजी। गहगहि गगन दुंदुभी बाजी॥
अस्तुति करहिं नाग मुनि देवा। बहुबिधि लावहिं निज निज सेवा॥4॥

भावार्थ:-और सुंदर अंजलियों में सजा-सजाकर पुष्प बरसाने लगे। आकाश में घमाघम नगाड़े बजने लगे। नाग, मुनि और देवता स्तुति करने लगे और बहुत प्रकार से अपनी-अपनी सेवा (उपहार) भेंट करने लगे॥4॥

दोहा :

* सुर समूह बिनती करि पहुँचे निज निज धाम।
जगनिवास प्रभु प्रगटे अखिल लोक बिश्राम॥191

भावार्थ:-देवताओं के समूह विनती करके अपने-अपने लोक में जा पहुँचे। समस्त लोकों को शांति देने वाले, जगदाधार प्रभु प्रकट हुए॥191॥

छन्द :

* भए प्रगट कृपाला दीनदयाला कौसल्या हितकारी।
हरषित महतारी मुनि मन हारी अद्भुत रूप बिचारी॥
लोचन अभिरामा तनु घनस्यामा निज आयुध भुजचारी।
भूषन बनमाला नयन बिसाला सोभासिंधु खरारी॥1॥

भावार्थ:-दीनों पर दया करने वाले, कौसल्याजी के हितकारी कृपालु प्रभु प्रकट हुए। मुनियों के मन को हरने वाले उनके अद्भुत रूप का विचार करके माता हर्ष से भर गई। नेत्रों को आनंद देने वाला मेघ के समान श्याम शरीर था, चारों भुजाओं में अपने (खास) आयुध (धारण किए हुए) थे, (दिव्य) आभूषण और वनमाला पहने थे, बड़े-बड़े नेत्र थे। इस प्रकार शोभा के समुद्र तथा खर राक्षस को मारने वाले भगवान प्रकट हुए॥1॥

* कह दुइ कर जोरी अस्तुति तोरी केहि बिधि करौं अनंता।
माया गुन ग्यानातीत अमाना बेद पुरान भनंता॥

करुना सुख सागर सब गुन आगर जेहि गावहिं श्रुति संता।
सो मम हित लागी जन अनुरागी भयउ प्रगट श्रीकंता॥2॥

भावार्थ:-दोनों हाथ जोड़कर माता कहने लगी- हे अनंत! मैं किस प्रकार तुम्हारी स्तुति करूँ। वेद और पुराण तुम को माया, गुण और ज्ञान से परे और परिमाण रहित बतलाते हैं। श्रुतियाँ और संतजन दया और सुख का समुद्र, सब गुणों का धाम कहकर जिनका गान करते हैं, वही भक्तों पर प्रेम करने वाले लक्ष्मीपति भगवान मेरे कल्याण के लिए प्रकट हुए हैं॥2॥

* ब्रह्मांड निकाया निर्मित माया रोम रोम प्रति बेद कहै।
मम उर सो बासी यह उपहासी सुनत धीर मति थिर न रहै॥
उपजा जब ग्याना प्रभु मुसुकाना चरित बहुत बिधि कीन्ह चहै।
कहि कथा सुहाई मातु बुझाई जेहि प्रकार सुत प्रेम लहै॥3॥

भावार्थ:-वेद कहते हैं कि तुम्हारे प्रत्येक रोम में माया के रचे हुए अनेकों ब्रह्माण्डों के समूह (भरे) हैं। वे तुम मेरे गर्भ में रहे- इस हँसी की बात के सुनने पर धीर (विवेकी) पुरुषों की बुद्धि भी स्थिर नहीं रहती (विचलित हो जाती है)। जब माता को ज्ञान उत्पन्न हुआ, तब प्रभु मुस्कुराए। वे बहुत प्रकार के चरित्र करना चाहते हैं। अतः उन्होंने (पूर्व जन्म की) सुंदर कथा कहकर माता को समझाया, जिससे उन्हें पुत्र का (वात्सल्य) प्रेम प्राप्त हो (भगवान के प्रति पुत्र भाव हो जाए)॥3॥

* माता पुनि बोली सो मति डोली तजहु तात यह रूपा।
कीजै सिसुलीला अति प्रियसीला यह सुख परम अनूपा॥
सुनि बचन सुजाना रोदन ठाना होइ बालक सुरभूपा।
यह चरित जे गावहिं हरिपद पावहिं ते न परहिं भवकूपा॥4॥

भावार्थ:-माता की वह बुद्धि बदल गई, तब वह फिर बोली- हे तात! यह रूप छोड़कर अत्यन्त प्रिय बाललीला करो, (मेरे लिए) यह सुख परम

अनुपम होगा। (माता का) यह वचन सुनकर देवताओं के स्वामी सुजान भगवान ने बालक (रूप) होकर रोना शुरू कर दिया। (तुलसीदासजी कहते हैं-) जो इस चरित्र का गान करते हैं, वे श्री हरि का पद पाते हैं और (फिर) संसार रूपी कूप में नहीं गिरते॥4॥

दोहा :

* बिप्र धेनु सुर संत हित लीन्ह मनुज अवतार।
निज इच्छा निर्मित तनु माया गुन गो पार॥192॥

भावार्थ:-ब्राह्मण, गो, देवता और संतों के लिए भगवान ने मनुष्य का अवतार लिया। वे (अज्ञानमयी, मलिना) माया और उसके गुण (सत्, रज, तम) और (बाहरी तथा भीतरी) इन्द्रियों से परे हैं। उनका (दिव्य) शरीर अपनी इच्छा से ही बना है (किसी कर्म बंधन से परवश होकर त्रिगुणात्मक भौतिक पदार्थों के द्वारा नहीं)॥192॥

चौपाई :

* सुनि सिसु रुदन परम प्रिय बानी। संभ्रम चलि आईं सब रानी॥
हरषित जहँ तहँ धाईं दासी। आनँद मगन सकल पुरबासी॥1॥

भावार्थ:-बच्चे के रोने की बहुत ही प्यारी ध्वनि सुनकर सब रानियाँ उतावली होकर दौड़ी चली आईं। दासियाँ हर्षित होकर जहाँ-तहाँ दौड़ीं। सारे पुरवासी आनंद में मग्न हो गए॥1॥

* दसरथ पुत्रजन्म सुनि काना। मानहु ब्रह्मानंद समाना॥
परम प्रेम मन पुलक सरीरा। चाहत उठन करत मति धीरा॥2॥

भावार्थ:-राजा दशरथजी पुत्र का जन्म कानों से सुनकर मानो ब्रह्मानंद में समा गए। मन में अतिशय प्रेम है, शरीर पुलकित हो गया। (आनंद में अधीर हुई) बुद्धि को धीरज देकर (और प्रेम में शिथिल हुए शरीर को संभालकर) वे उठना चाहते हैं॥2॥

* जाकर नाम सुनत सुभ होई। मोरें गृह आवा प्रभु सोई॥
परमानंद पूरि मन राजा। कहा बोलाइ बजावहु बाजा॥3॥

भावार्थ:-जिनका नाम सुनने से ही कल्याण होता है, वही प्रभु मेरे घर आए हैं। (यह सोचकर) राजा का मन परम आनंद से पूर्ण हो गया। उन्होंने बाजे वालों को बुलाकर कहा कि बाजा बजाओ॥3॥

* गुर बसिष्ठ कहँ गयउ हँकारा। आए द्विजन सहित नृपद्वारा॥
अनुपम बालक देखेन्हि जाई। रूप रासि गुन कहि न सिराई॥4॥

भावार्थ:-गुरु वशिष्ठजी के पास बुलावा गया। वे ब्राह्मणों को साथ लिए राजद्वार पर आए। उन्होंने जाकर अनुपम बालक को देखा, जो रूप की राशि है और जिसके गुण कहने से समाप्त नहीं होते॥4॥

दोहा :

* नंदीमुख सराध करि जातकरम सब कीन्ह।
हाटक धेनु बसन मनि नृप बिप्रन्ह कहँ दीन्ह॥193॥

भावार्थ:-फिर राजा ने नांदीमुख श्राद्ध करके सब जातकर्म-संस्कार आदि किए और ब्राह्मणों को सोना, गो, वस्त्र और मणियों का दान दिया॥193॥

चौपाई :

* ध्वज पताक तोरन पुर छावा। कहि न जाइ जेहि भाँति बनावा॥
सुमनबृष्टि अकास तें होई। ब्रह्मानंद मगन सब लोई॥1॥

भावार्थ:-ध्वजा, पताका और तोरणों से नगर छा गया। जिस प्रकार से वह सजाया गया, उसका तो वर्णन ही नहीं हो सकता। आकाश से फूलों की वर्षा हो रही है, सब लोग ब्रह्मानंद में मग्न हैं॥1॥

* बृंद बृंद मिलि चलीं लोगाईं। सहज सिंगार किएँ उठि धाईं॥

गीताप्रेस गोरखपुर

कनक कलस मंगल भरि थारा। गावत पैठहिं भूप दुआरा॥2॥

भावार्थ:-स्त्रियाँ झुंड की झुंड मिलकर चलीं। स्वाभाविक श्रृंगार किए ही वे उठ दौड़ीं। सोने का कलश लेकर और थालों में मंगल द्रव्य भरकर गाती हुईं राजद्वार में प्रवेश करती हैं॥2॥

* करि आरति नेवछावरि करहीं। बार बार सिसु चरनन्हि परहीं॥
मागध सूत बंदिगन गायक। पावन गुन गावहिं रघुनायक॥3॥

भावार्थ:-वे आरती करके निछावर करती हैं और बार-बार बच्चे के चरणों पर गिरती हैं। मागध, सूत, वन्दीजन और गवैये रघुकुल के स्वामी के पवित्र गुणों का गान करते हैं॥3॥

* सर्बस दान दीन्ह सब काहू। जेहिं पावा राखा नहिं ताहू॥
मृगमद चंदन कुंकुम कीचा। मची सकल बीथिन्ह बिच बीचा॥4॥

भावार्थ:-राजा ने सब किसी को भरपूर दान दिया। जिसने पाया उसने भी नहीं रखा (लुटा दिया)। (नगर की) सभी गलियों के बीच-बीच में कस्तूरी, चंदन और केसर की कीच मच गई॥4॥

दोहा :

* गृह गृह बाज बधाव सुभ प्रगटे सुषमा कंद।
हरषवंत सब जहँ तहँ नगर नारि नर बृंद॥194॥

भावार्थ:-घर-घर मंगलमय बधावा बजने लगा, क्योंकि शोभा के मूल भगवान प्रकट हुए हैं। नगर के स्त्री-पुरुषों के झुंड के झुंड जहाँ-तहाँ आनंदमग्न हो रहे हैं॥194॥

चौपाई :

* कैकयसुता सुमित्रा दोऊ। सुंदर सुत जनमत भैं ओऊ॥
वह सुख संपति समय समाजा। कहि न सकइ सारद अहिराजा॥1॥

भावार्थ:-कैकेयी और सुमित्रा- इन दोनों ने भी सुंदर पुत्रों को जन्म दिया। उस सुख, सम्पत्ति, समय और समाज का वर्णन सरस्वती और सर्पों के राजा शेषजी भी नहीं कर सकते॥1॥

* अवधपुरी सोहइ एहि भाँती। प्रभुहि मिलन आई जनु राती॥
देखि भानु जनु मन सकुचानी। तदपि बनी संध्या अनुमानी॥2॥

भावार्थ:-अवधपुरी इस प्रकार सुशोभित हो रही है, मानो रात्रि प्रभु से मिलने आई हो और सूर्य को देखकर मानो मन में सकुचा गई हो, परन्तु फिर भी मन में विचार कर वह मानो संध्या बन (कर रह) गई हो॥2॥

* अगर धूप बहु जनु अँधिआरी। उड़इ अबीर मनहुँ अरुनारी॥
मंदिर मनि समूह जनु तारा। नृप गृह कलस सो इंदु उदारा॥3॥

भावार्थ:-अगर की धूप का बहुत सा धुआँ मानो (संध्या का) अंधकार है और जो अबीर उड़ रहा है, वह उसकी ललाई है। महलों में जो मणियों के समूह हैं, वे मानो तारागण हैं। राज महल का जो कलश है, वही मानो श्रेष्ठ चन्द्रमा है॥3॥

* भवन बेदधुनि अति मृदु बानी। जनु खग मुखर समयँ जनु सानी॥
कौतुक देखि पतंग भुलाना। एक मास तेइँ जात न जाना॥4॥

भावार्थ:-राजभवन में जो अति कोमल वाणी से वेदध्वनि हो रही है, वही मानो समय से (समयानुकूल) सनी हुई पक्षियों की चहचहाहट है। यह कौतुक देखकर सूर्य भी (अपनी चाल) भूल गए। एक महीना उन्होंने जाता हुआ न जाना (अर्थात उन्हें एक महीना वहीं बीत गया)॥4॥

दोहा :

* मास दिवस कर दिवस भा मरम न जानइ कोइ।
रथ समेत रबि थाकेउ निसा कवन बिधि होइ॥195॥

भावार्थ:- महीने भर का दिन हो गया। इस रहस्य को कोई नहीं जानता। सूर्य अपने रथ सहित वहीं रुक गए, फिर रात किस तरह होती॥195॥

चौपाई :

* यह रहस्य काहूँ नहिं जाना। दिनमनि चले करत गुनगाना॥
देखि महोत्सव सुर मुनि नागा। चले भवन बरनत निज भागा॥1॥

भावार्थ:-यह रहस्य किसी ने नहीं जाना। सूर्यदेव (भगवान श्री रामजी का) गुणगान करते हुए चले। यह महोत्सव देखकर देवता, मुनि और नाग अपने भाग्य की सराहना करते हुए अपने-अपने घर चले॥1॥

* औरउ एक कहउँ निज चोरी। सुनु गिरिजा अति दृढ़ मति तोरी॥
काकभुसुंडि संग हम दोऊ। मनुजरूप जानइ नहिं कोऊ॥2॥

भावार्थ:-हे पार्वती! तुम्हारी बुद्धि (श्री रामजी के चरणों में) बहुत दृढ़ है, इसलिए मैं और भी अपनी एक चोरी (छिपाव) की बात कहता हूँ, सुनो। काकभुशुण्डि और मैं दोनों वहाँ साथ-साथ थे, परन्तु मनुष्य रूप में होने के कारण हमें कोई जान न सका॥2॥

* परमानंद प्रेम सुख फूले। बीथिन्ह फिरहिं मगन मन भूले॥
यह सुभ चरित जान पै सोई। कृपा राम कै जापर होई॥3॥

भावार्थ:-परम आनंद और प्रेम के सुख में फूले हुए हम दोनों मगन मन से (मस्त हुए) गलियों में (तन-मन की सुधि) भूले हुए फिरते थे, परन्तु यह शुभ चरित्र वही जान सकता है, जिस पर श्री रामजी की कृपा हो॥3॥

* तेहि अवसर जो जेहि बिधि आवा। दीन्ह भूप जो जेहि मन भावा॥
गज रथ तुरग हेम गो हीरा। दीन्हे नृप नानाबिधि चीरा॥4॥

भावार्थ:-उस अवसर पर जो जिस प्रकार आया और जिसके मन को जो अच्छा लगा, राजा ने उसे वही दिया। हाथी, रथ, घोड़े, सोना, गायें, हीरे और भाँति-भाँति के वस्त्र राजा ने दिए॥4॥

दोहा :

* मन संतोषे सबन्हि के जहँ तहँ देहिं असीस।
सकल तनय चिर जीवहुँ तुलसिदास के ईस॥196॥

भावार्थ:-राजा ने सबके मन को संतुष्ट किया। (इसी से) सब लोग जहाँ-तहाँ आशीर्वाद दे रहे थे कि तुलसीदास के स्वामी सब पुत्र (चारों राजकुमार) चिरजीवी (दीर्घायु) हों॥196॥

चौपाई :

* कछुक दिवस बीते एहि भाँती। जात न जानिअ दिन अरु राती॥
नामकरन कर अवसरु जानी। भूप बोलि पठए मुनि ग्यानी॥1॥

भावार्थ:-इस प्रकार कुछ दिन बीत गए। दिन और रात जाते हुए जान नहीं पड़ते। तब नामकरण संस्कार का समय जानकर राजा ने ज्ञानी मुनि श्री वशिष्ठजी को बुला भेजा॥1॥

* करि पूजा भूपति अस भाषा। धरिअ नाम जो मुनि गुनि राखा॥
इन्ह के नाम अनेक अनूपा। मैं नृप कहब स्वमति अनुरूपा॥2॥

भावार्थ:-मुनि की पूजा करके राजा ने कहा- हे मुनि! आपने मन में जो विचार रखे हों, वे नाम रखिए। (मुनि ने कहा-) हे राजन्! इनके अनुपम नाम हैं, फिर भी मैं अपनी बुद्धि के अनुसार कहूँगा॥2॥

*जो आनंद सिंधु सुखरासी। सीकर तें त्रैलोक सुपासी॥
सो सुखधाम राम अस नामा। अखिल लोक दायक बिश्रामा॥3॥

भावार्थ:-ये जो आनंद के समुद्र और सुख की राशि हैं, जिस (आनंदसिंधु) के एक कण से तीनों लोक सुखी होते हैं, उन (आपके सबसे बड़े पुत्र) का

नाम 'राम' है, जो सुख का भवन और सम्पूर्ण लोकों को शांति देने वाला है॥3॥

* बिस्व भरन पोषन कर जोई। ताकर नाम भरत अस होई॥
जाके सुमिरन तें रिपु नासा। नाम सत्रुहन बेद प्रकासा॥4॥

भावार्थ:-जो संसार का भरण-पोषण करते हैं, उन (आपके दूसरे पुत्र) का नाम 'भरत' होगा, जिनके स्मरण मात्र से शत्रु का नाश होता है, उनका वेदों में प्रसिद्ध 'शत्रुघ्न' नाम है॥4॥

दोहा :

* लच्छन धाम राम प्रिय सकल जगत आधार।
गुरु बसिष्ठछ तेहि राखा लछिमन नाम उदार॥197॥

भावार्थ:-जो शुभ लक्षणों के धाम, श्री रामजी के प्यारे और सारे जगत के आधार हैं, गुरु वशिष्ठाजी ने उनका 'लक्ष्मण' ऐसा श्रेष्ठन नाम रखा है॥197॥

चौपाई :

* धरे नाम गुर हृदयँ बिचारी। बेद तत्व नृप तव सुत चारी॥
मुनि धन जन सरबस सिव प्राना। बाल केलि रस तेहिं सुख माना॥1॥

भावार्थ:-गुरुजी ने हृदय में विचार कर ये नाम रखे (और कहा-) हे राजन्! तुम्हारे चारों पुत्र वेद के तत्त्व (साक्षात् परात्पर भगवान) हैं। जो मुनियों के धन, भक्तों के सर्वस्व और शिवजी के प्राण हैं, उन्होंने (इस समय तुम लोगों के प्रेमवश) बाल लीला के रस में सुख माना है॥1॥

* बारेहि ते निज हित पति जानी। लछिमन राम चरन रति मानी॥
भरत सत्रुहन दूनउ भाई। प्रभु सेवक जसि प्रीति बड़ाई॥2॥

भावार्थ:-बचपन से ही श्री रामचन्द्रजी को अपना परम हितैषी स्वामी जानकर लक्ष्मणजी ने उनके चरणों में प्रीति जोड़ ली। भरत और शत्रुघ्न दोनों भाइयों मंज स्वामी और सेवक की जिस प्रीति की प्रशंसा है, वैसी प्रीति हो गई॥2॥

*स्याम गौर सुंदर दोउ जोरी। निरखहिं छबि जननीं तृन तोरी॥
चारिउ सील रूप गुन धामा। तदपि अधिक सुखसागर रामा॥3॥

भावार्थ:-श्याम और गौर शरीर वाली दोनों सुंदर जोड़ियों की शोभा को देखकर माताएँ तृण तोड़ती हैं (जिसमें दीठ न लग जाए)। यों तो चारों ही पुत्र शील, रूप और गुण के धाम हैं, तो भी सुख के समुद्र श्री रामचन्द्रजी सबसे अधिक हैं॥3॥

* हृदयँ अनुग्रह इंदु प्रकासा। सूचत किरन मनोहर हासा॥
कबहुँ उछंग कबहुँ बर पलना। मातु दुलारइ कहि प्रिय ललना॥4॥

भावार्थ:-उनके हृदय में कृपा रूपी चन्द्रमा प्रकाशित है। उनकी मन को हरने वाली हँसी उस (कृपा रूपी चन्द्रमा) की किरणों को सूचित करती है। कभी गोद में (लेकर) और कभी उत्तम पालने में (लिटाकर) माता 'प्यारे ललना!' कहकर दुलार करती है॥4॥

दोहा :

* ब्यापक ब्रह्म निरंजन निर्गुन बिगत बिनोद।
सो अज प्रेम भगति बस कौसल्या कें गोद॥198॥

भावार्थ:-जो सर्वव्यापक, निरंजन (मायारहित), निर्गुण, विनोदरहित और अजन्मे ब्रह्म हैं, वही प्रेम और भक्ति के वश कौसल्याजी की गोद में (खेल रहे) हैं॥198॥

चौपाई :

* काम कोटि छबि स्याम सरीरा। नील कंज बारिद गंभीरा॥

नअरुन चरन पंकज नख जोती। कमल दलन्हि बैठे जनु मोती॥1॥

भावार्थ:-उनके नीलकमल और गंभीर (जल से भरे हुए) मेघ के समान श्याम शरीर में करोड़ों कामदेवों की शोभा है। लाल-लाल चरण कमलों के नखों की (शुभ्र) ज्योति ऐसी मालूम होती है जैसे (लाल) कमल के पत्तों पर मोती स्थिर हो गए हों॥1॥

* रेख कुलिस ध्वज अंकुस सोहे। नूपुर धुनि सुनि मुनि मन मोहे॥

कटि किंकिनी उदर त्रय रेखा। नाभि गभीर जान जेहिं देखा॥2॥

भावार्थ:-(चरणतलों में) वज्र, ध्वजा और अंकुश के चिह्न शोभित हैं। नूपुर (पेंजनी) की ध्वनि सुनकर मुनियों का भी मन मोहित हो जाता है। कमर में करधनी और पेट पर तीन रेखाएँ (त्रिवली) हैं। नाभि की गंभीरता को तो वही जानते हैं, जिन्होंने उसे देखा है॥2॥

* भुज बिसाल भूषन जुत भूरी। हियँ हरि नख अति सोभा रूरी॥

उर मनिहार पदिक की सोभा। बिप्र चरन देखत मन लोभा॥3॥

भावार्थ:-बहुत से आभूषणों से सुशोभित विशाल भुजाएँ हैं। हृदय पर बाघ के नख की बहुत ही निराली छटा है। छाती पर रत्नों से युक्त मणियों के हार की शोभा और ब्राह्मण (भृगु) के चरण चिह्न को देखते ही मन लुभा जाता है॥3॥

* कंबु कंठ अति चिबुक सुहाई। आनन अमित मदन छबि छाई॥

दुइ दुइ दसन अधर अरुनारे। नासा तिलक को बरनै पारे॥4॥

भावार्थ:-कंठ शंख के समान (उतार-चढ़ाव वाला, तीन रेखाओं से सुशोभित) है और ठोड़ी बहुत ही सुंदर है। मुख पर असंख्य कामदेवों की छटा छा रही है। दो-दो सुंदर दँतुलियाँ हैं, लाल-लाल होठ हैं। नासिका और तिलक (के सौंदर्य) का तो वर्णन ही कौन कर सकता है॥4॥

* सुंदर श्रवन सुचारु कपोला। अति प्रिय मधुर तोतरे बोला॥

चिक्कन कच कुंचित गभुआरे। बहु प्रकार रचि मातु सँवारे॥5॥
भावार्थ:-सुंदर कान और बहुत ही सुंदर गाल हैं। मधुर तोतले शब्द बहुत ही प्यारे लगते हैं। जन्म के समय से रखे हुए चिकने और घुँघराले बाल हैं, जिनको माता ने बहुत प्रकार से बनाकर सँवार दिया है॥5॥

* पीत झगुलिआ तनु पहिराई। जानु पानि बिचरनि मोहि भाई॥
रूप सकहिं नहिं कहि श्रुति सेषा। सो जानइ सपनेहुँ जेहिं देखा॥6॥
भावार्थ:-शरीर पर पीली झँगुली पहनाई हुई है। उनका घुटनों और हाथों के बल चलना मुझे बहुत ही प्यारा लगता है। उनके रूप का वर्णन वेद और शेषजी भी नहीं कर सकते। उसे वही जानता है, जिसने कभी स्वप्न में भी देखा हो॥6॥

दोहा :

* सुख संदोह मोह पर ग्यान गिरा गोतीत।
दंपति परम प्रेम बस कर सिसुचरित पुनीत॥199॥
भावार्थ:-जो सुख के पुंज, मोह से परे तथा ज्ञान, वाणी और इन्द्रियों से अतीत हैं, वे भगवान दशरथ-कौसल्या के अत्यन्त प्रेम के वश होकर पवित्र बाललीला करते हैं॥199॥

चौपाई :

* एहि बिधि राम जगत पितु माता। कोसलपुर बासिन्ह सुखदाता॥
जिन्ह रघुनाथ चरन रति मानी। तिन्ह की यह गति प्रगट भवानी॥1॥
भावार्थ:-इस प्रकार (सम्पूर्ण) जगत के माता-पिता श्री रामजी अवधपुर के निवासियों को सुख देते हैं, जिन्होंने श्री रामचन्द्रजी के चरणों में प्रीति जोड़ी है, हे भवानी! उनकी यह प्रत्यक्ष गति है (कि भगवान उनके प्रेमवश बाललीला करके उन्हें आनंद दे रहे हैं)॥1॥

* रघुपति बिमुख जतन कर कोरी। कवन सकइ भव बंधन छोरी॥
जीव चराचर बस कै राखे। सो माया प्रभु सों भय भाखे॥2॥

भावार्थ:-श्री रघुनाथजी से विमुख रहकर मनुष्य चाहे करोड़ों उपाय करे, परन्तु उसका संसार बंधन कौन छुड़ा सकता है। जिसने सब चराचर जीवों को अपने वश में कर रखा है, वह माया भी प्रभु से भय खाती है॥2॥

* भृकुटि बिलास नचावइ ताही। अस प्रभु छाड़ि भजिअ कहु काही॥
मन क्रम बचन छाड़ि चतुराई। भजत कृपा करिहहिं रघुराई॥3॥

भावार्थ:-भगवान उस माया को भौंह के इशारे पर नचाते हैं। ऐसे प्रभु को छोड़कर कहो, (और) किसका भजन किया जाए। मन, वचन और कर्म से चतुराई छोड़कर भजते ही श्री रघुनाथजी कृपा करेंगे॥3॥

* एहि बिधि सिसुबिनोद प्रभु कीन्हा। सकल नगरबासिन्ह सुख दीन्हा॥
लै उछंग कबहुँक हलरावै। कबहुँ पालने घालि झुलावै॥4॥

भावार्थ:-इस प्रकार से प्रभु श्री रामचन्द्रजी ने बालक्रीड़ा की और समस्त नगर निवासियों को सुख दिया। कौसल्याजी कभी उन्हें गोद में लेकर हिलाती-डुलाती और कभी पालने में लिटाकर झुलाती थीं॥4॥

दोहा :

* प्रेम मगन कौसल्या निसि दिन जात न जान।
सुत सनेह बस माता बालचरित कर गान॥200॥

भावार्थ:-प्रेम में मग्न कौसल्याजी रात और दिन का बीतना नहीं जानती थीं। पुत्र के स्नेहवश माता उनके बालचरित्रों का गान किया करतीं॥200॥

चौपाई :

* एक बार जननीं अन्हवाए। करि सिंगार पलनाँ पौढ़ाए॥

गीताप्रेस गोरखपुर

निज कुल इष्टदेव भगवाना। पूजा हेतु कीन्ह अस्नाना॥1॥

भावार्थ:-एक बार माता ने श्री रामचन्द्रजी को स्नान कराया और श्रृंगार करके पालने पर पौढ़ा दिया। फिर अपने कुल के इष्टदेव भगवान की पूजा के लिए स्नान किया॥1॥

* करि पूजा नैबेद्य चढ़ावा। आपु गई जहँ पाक बनावा॥
बहुरि मातु तहवाँ चलि आई। भोजन करत देख सुत जाई॥2॥

भावार्थ:-पूजा करके नैवेद्य चढ़ाया और स्वयं वहाँ गईं, जहाँ रसोई बनाई गई थी। फिर माता वहीं (पूजा के स्थान में) लौट आई और वहाँ आने पर पुत्र को (इष्टदेव भगवान के लिए चढ़ाए हुए नैवेद्य का) भोजन करते देखा॥2॥

* गै जननी सिसु पहिं भयभीता। देखा बाल तहाँ पुनि सूता॥
बहुरि आइ देखा सुत सोई। हृदयँ कंप मन धीर न होई॥3।

भावार्थ:-माता भयभीत होकर (पालने में सोया था, यहाँ किसने लाकर बैठा दिया, इस बात से डरकर) पुत्र के पास गई, तो वहाँ बालक को सोया हुआ देखा। फिर (पूजा स्थान में लौटकर) देखा कि वही पुत्र वहाँ (भोजन कर रहा) है। उनके हृदय में कम्प होने लगा और मन को धीरज नहीं होता॥3॥

* इहाँ उहाँ दुइ बालक देखा। मतिभ्रम मोर कि आन बिसेषा॥
देखि राम जननी अकुलानी। प्रभु हँसि दीन्ह मधुर मुसुकानी॥4॥

भावार्थ:-(वह सोचने लगी कि) यहाँ और वहाँ मैंने दो बालक देखे। यह मेरी बुद्धि का भ्रम है या और कोई विशेष कारण है? प्रभु श्री रामचन्द्रजी माता को घबड़ाई हुई देखकर मधुर मुस्कान से हँस दिए॥4॥

दोहा :

* देखरावा मातहि निज अद्भुत रूप अखंड।

रोम रोम प्रति लागे कोटि कोटि ब्रह्मंड॥201॥

भावार्थ:-फिर उन्होंने माता को अपना अखंड अद्भुत रूप दिखलाया, जिसके एक-एक रोम में करोड़ों ब्रह्माण्ड लगे हुए हैं॥201॥

चौपाई :

* अगनित रबि ससि सिव चतुरानन। बहु गिरि सरित सिंधु महि कानन॥
काल कर्म गुन ग्यान सुभाऊ। सोउ देखा जो सुना न काऊ॥1॥

भावार्थ:-अगणित सूर्य, चन्द्रमा, शिव, ब्रह्मा, बहुत से पर्वत, नदियाँ, समुद्र, पृथ्वी, वन, काल, कर्म, गुण, ज्ञान और स्वभाव देखे और वे पदार्थ भी देखे जो कभी सुने भी न थे॥1॥

* देखी माया सब बिधि गाढ़ी। अति सभीत जोरें कर ठाढ़ी॥
देखा जीव नचावइ जाही। देखी भगति जो छोरइ ताही॥2॥

भावार्थ:-सब प्रकार से बलवती माया को देखा कि वह (भगवान के सामने) अत्यन्त भयभीत हाथ जोड़े खड़ी है। जीव को देखा, जिसे वह माया नचाती है और (फिर) भक्ति को देखा, जो उस जीव को (माया से) छुड़ा देती है॥2॥

* तन पुलकित मुख बचन न आवा। नयन मूदि चरननि सिरु नावा॥
बिसमयवंत देखि महतारी। भए बहुरि सिसुरूप खरारी॥3॥

भावार्थ:-(माता का) शरीर पुलकित हो गया, मुख से वचन नहीं निकलता। तब आँखें मूँदकर उसने श्री रामचन्द्रजी के चरणों में सिर नवाया। माता को आश्चर्यचकित देखकर खर के शत्रु श्री रामजी फिर बाल रूप हो गए॥3॥

* अस्तुति करि न जाइ भय माना। जगत पिता मैं सुत करि जाना॥
हरि जननी बहुबिधि समुझाई। यह जनि कतहुँ कहसि सुनु माई॥4॥

भावार्थ:-(माता से) स्तुति भी नहीं की जाती। वह डर गई कि मैंने जगत्पिता परमात्मा को पुत्र करके जाना। श्री हरि ने माता को बहुत प्रकार से समझाया (और कहा-) हे माता! सुनो, यह बात कहीं पर कहना नहीं॥4॥

दोहा :

* बार बार कौसल्या बिनय करइ कर जोरि।
अब जनि कबहूँ ब्यापै प्रभु मोहि माया तोरि॥202॥

भावार्थ:-कौसल्याजी बार-बार हाथ जोड़कर विनय करती हैं कि हे प्रभो! मुझे आपकी माया अब कभी न व्यापे॥202॥

चौपाई :

* बालचरित हरि बहुबिधि कीन्हा। अति अनंद दासन्ह कहँ दीन्हा॥
कछुक काल बीतें सब भाई। बड़े भए परिजन सुखदाई॥1॥

भावार्थ:-भगवान ने बहुत प्रकार से बाललीलाएँ कीं और अपने सेवकों को अत्यन्त आनंद दिया। कुछ समय बीतने पर चारों भाई बड़े होकर कुटुम्बियों को सुख देने वाले हुए॥1॥

* चूड़ाकरन कीन्ह गुरु जाई। बिप्रन्ह पुनि दछिना बहु पाई॥
परम मनोहर चरित अपारा। करत फिरत चारिउ सुकुमारा॥2॥

भावार्थ:-तब गुरुजी ने जाकर चूड़ाकर्म-संस्कार किया। ब्राह्मणों ने फिर बहुत सी दक्षिणा पाई। चारों सुंदर राजकुमार बड़े ही मनोहर अपार चरित्र करते फिरते हैं॥2॥

* मन क्रम बचन अगोचर जोई। दसरथ अजिर बिचर प्रभु सोई॥
भोजन करत बोल जब राजा। नहिं आवत तजि बाल समाजा॥3॥

भावार्थ:-जो मन, वचन और कर्म से अगोचर हैं, वही प्रभु दशरथजी के आँगन में विचर रहे हैं। भोजन करने के समय जब राजा बुलाते हैं, तब वे अपने बाल सखाओं के समाज को छोड़कर नहीं आते॥3॥

* कौसल्या जब बोलन जाई। ठुमुकु ठुमुकु प्रभु चलहिं पराई॥
निगम नेति सिव अंत न पावा। ताहि धरै जननी हठि धावा॥4॥

भावार्थ:-कौसल्या जब बुलाने जाती हैं, तब प्रभु ठुमुक-ठुमुक भाग चलते हैं। जिनका वेद 'नेति' (इतना ही नहीं) कहकर निरूपण करते हैं और शिवजी ने जिनका अन्त नहीं पाया, माता उन्हें हठपूर्वक पकड़ने के लिए दौड़ती हैं॥4॥

* धूसर धूरि भरें तनु आए। भूपति बिहसि गोद बैठाए॥5॥।

भावार्थ:-वे शरीर में धूल लपेटे हुए आए और राजा ने हँसकर उन्हें गोद में बैठा लिया॥5॥

दोहा :

*भोजन करत चपल चित इत उत अवसरु पाइ।
भाजि चले किलकत मुख दधि ओदन लपटाइ॥203॥

भावार्थ:-भोजन करते हैं, पर चित चंचल है। अवसर पाकर मुँह में दही-भात लपटाए किलकारी मारते हुए इधर-उधर भाग चले॥203॥

चौपाई :

* बालचरित अति सरल सुहाए। सारद सेष संभु श्रुति गाए॥
जिन्ह कर मन इन्ह सन नहिं राता। ते जन बंचित किए बिधाता॥1॥

भावार्थ:-श्री रामचन्द्रजी की बहुत ही सरल (भोली) और सुंदर (मनभावनी) बाललीलाओं का सरस्वती, शेषजी, शिवजी और वेदों ने

गान किया है। जिनका मन इन लीलाओं में अनुरक्त नहीं हुआ, विधाता ने उन मनुष्यों को वंचित कर दिया (नितांत भाग्यहीन बनाया)॥1॥

* भए कुमार जबहिं सब भ्राता। दीन्ह जनेऊ गुरु पितु माता॥
गुरगृहँ गए पढ़न रघुराई। अलप काल बिद्या सब आई॥2॥

भावार्थ:-ज्यों ही सब भाई कुमारावस्था के हुए, त्यों ही गुरु, पिता और माता ने उनका यज्ञोपवीत संस्कार कर दिया। श्री रघुनाथजी (भाइयों सहित) गुरु के घर में विद्या पढ़ने गए और थोड़े ही समय में उनको सब विद्याएँ आ गईं॥2॥

* जाकी सहज स्वास श्रुति चारी। सो हरि पढ़ यह कौतुक भारी॥
बिद्या बिनय निपुन गुन सीला। खेलहिंखेल सकल नृपलीला॥3॥

भावार्थ:-चारों वेद जिनके स्वाभाविक श्वास हैं, वे भगवान पढ़ें, यह बड़ा कौतुक (अचरज) है। चारों भाई विद्या, विनय, गुण और शील में (बड़े) निपुण हैं और सब राजाओं की लीलाओं के ही खेल खेलते हैं॥3॥

* करतल बान धनुष अति सोहा। देखत रूप चराचर मोहा॥
जिन्ह बीथिन्ह बिहरहिं सब भाई। थकित होहिं सब लोग लुगाई॥4॥

भावार्थ:-हाथों में बाण और धनुष बहुत ही शोभा देते हैं। रूप देखते ही चराचर (जड़-चेतन) मोहित हो जाते हैं। वे सब भाई जिन गलियों में खेलते (हुए निकलते) हैं, उन गलियों के सभी स्त्री-पुरुष उनको देखकर स्नेह से शिथिल हो जाते हैं अथवा ठिठककर रह जाते हैं॥4॥

दोहा :

* कोसलपुर बासी नर नारि बृद्ध अरु बाल।
प्रानहु ते प्रिय लागत सब कहुँ राम कृपाल॥204॥

भावार्थ:-कोसलपुर के रहने वाले स्त्री, पुरुष, बूढ़े और बालक सभी को कृपालु श्री रामचन्द्रजी प्राणों से भी बढ़कर प्रिय लगते हैं॥204॥

चौपाई :

* बंधु सखा सँग लेहिं बोलाई। बन मृगया नित खेलहिं जाई॥
पावन मृग मारहिं जियँ जानी। दिन प्रति नृपहि देखावहिं आनी॥1॥

भावार्थ:-श्री रामचन्द्रजी भाइयों और इष्ट मित्रों को बुलाकर साथ ले लेते हैं और नित्य वन में जाकर शिकार खेलते हैं। मन में पवित्र समझकर मृगों को मारते हैं और प्रतिदिन लाकर राजा (दशरथजी) को दिखलाते हैं॥1॥

* जे मृग राम बान के मारे। ते तनु तजि सुरलोक सिधारे॥
अनुज सखा सँग भोजन करहीं। मातु पिता अग्या अनुसरहीं॥2॥

भावार्थ:-जो मृग श्री रामजी के बाण से मारे जाते थे, वे शरीर छोड़कर देवलोक को चले जाते थे। श्री रामचन्द्रजी अपने छोटे भाइयों और सखाओं के साथ भोजन करते हैं और माता-पिता की आज्ञा का पालन करते हैं॥2॥

* जेहि बिधि सुखी होहिं पुर लोगा। करहिं कृपानिधि सोइ संजोगा॥
बेद पुरान सुनहिं मन लाई। आपु कहहिं अनुजन्ह समुझाई॥3॥

भावार्थ:-जिस प्रकार नगर के लोग सुखी हों, कृपानिधान श्री रामचन्द्रजी वही संयोग (लीला) करते हैं। वे मन लगाकर वेद-पुराण सुनते हैं और फिर स्वयं छोटे भाइयों को समझाकर कहते हैं॥3॥

* प्रातकाल उठि कै रघुनाथा। मातु पिता गुरु नावहिं माथा॥
आयसु मागि करहिं पुर काजा। देखि चरित हरषइ मन राजा॥4॥

भावार्थ:-श्री रघुनाथजी प्रातःकाल उठकर माता-पिता और गुरु को मस्तक नवाते हैं और आज्ञा लेकर नगर का काम करते हैं। उनके चरित्र देख-देखकर राजा मन में बड़े हर्षित होते हैं॥4॥

विश्वामित्र का राजा दशरथ से राम-लक्ष्मण को माँगना, ताड़का वध

दोहा :

* ब्यापक अकल अनीह अज निर्गुन नाम न रूप।
भगत हेतु नाना बिधि करत चरित्र अनूप॥205॥

भावार्थ:-जो व्यापक, अकल (निरवयव), इच्छारहित, अजन्मा और निर्गुण है तथा जिनका न नाम है न रूप, वही भगवान भक्तों के लिए नाना प्रकार के अनुपम (अलौकिक) चरित्र करते हैं॥205॥

चौपाई :

* यह सब चरित कहा मैं गाई। आगिलि कथा सुनहु मन लाई॥
बिस्वामित्र महामुनि ग्यानी। बसहिं बिपिन सुभ आश्रम जानी॥1॥

भावार्थ:-यह सब चरित्र मैंने गाकर (बखानकर) कहा। अब आगे की कथा मन लगाकर सुनो। ज्ञानी महामुनि विश्वामित्रजी वन में शुभ आश्रम (पवित्र स्थान) जानकर बसते थे,॥1॥

* जहँ जप जग्य जोग मुनि करहीं। अति मारीच सुबाहुहि डरहीं॥
देखत जग्य निसाचर धावहिं। करहिं उपद्रव मुनि दुख पावहिं॥2॥

भावार्थ:-जहाँ वे मुनि जप, यज्ञ और योग करते थे, परन्तु मारीच और सुबाहु से बहुत डरते थे। यज्ञ देखते ही राक्षस दौड़ पड़ते थे और उपद्रव मचाते थे, जिससे मुनि (बहुत) दुःख पाते थे॥2॥

* गाधितनय मन चिंता ब्यापी। हरि बिनु मरहिं न निसिचर पापी॥
तब मुनिबर मन कीन्ह बिचारा। प्रभु अवतरेउ हरन महि भारा॥3॥

भावार्थ:-गाधि के पुत्र विश्वामित्रजी के मन में चिन्ता छा गई कि ये पापी राक्षस भगवान के (मारे) बिना न मरेंगे। तब श्रेष्ठ मुनि ने मन में विचार किया कि प्रभु ने पृथ्वी का भार हरने के लिए अवतार लिया है॥3॥

*एहूँ मिस देखौं पद जाई। करि बिनती आनौं दोउ भाई॥

ग्यान बिराग सकल गुन अयना। सो प्रभु मैं देखब भरि नयना॥4॥

भावार्थ:-इसी बहाने जाकर मैं उनके चरणों का दर्शन करूँ और विनती करके दोनों भाइयों को ले आऊँ। (अहा!) जो ज्ञान, वैराग्य और सब गुणों के धाम हैं, उन प्रभु को मैं नेत्र भरकर देखूँगा॥4॥

दोहा :

* बहुबिधि करत मनोरथ जात लागि नहिं बार।

करि मज्जन सरऊ जल गए भूप दरबार॥206॥

भावार्थ:-बहुत प्रकार से मनोरथ करते हुए जाने में देर नहीं लगी। सरयूजी के जल में स्नान करके वे राजा के दरवाजे पर पहुँचे॥206॥

चौपाई :

* मुनि आगमन सुना जब राजा। मिलन गयउ लै बिप्र समाजा॥

करि दंडवत मुनिहि सनमानी। निज आसन बैठारेन्हि आनी॥1॥

भावार्थ:-राजा ने जब मुनि का आना सुना, तब वे ब्राह्मणों के समाज को साथ लेकर मिलने गए और दण्डवत् करके मुनि का सम्मान करते हुए उन्हें लाकर अपने आसन पर बैठाया॥1॥

* चरन पखारि कीन्हि अति पूजा। मो सम आजु धन्य नहिं दूजा॥

बिबिध भाँति भोजन करवावा। मुनिबर हृदयँ हरष अति पावा॥2॥

भावार्थ:-चरणों को धोकर बहुत पूजा की और कहा- मेरे समान धन्य आज दूसरा कोई नहीं है। फिर अनेक प्रकार के भोजन करवाए, जिससे श्रेष्ठ मुनि ने अपने हृदय में बहुत ही हर्ष प्राप्त किया॥2॥

*पुनि चरननि मेले सुत चारी। राम देखि मुनि देह बिसारी॥
भए मगन देखत मुख सोभा। जनु चकोर पूरन ससि लोभा॥3॥

भावार्थ:-फिर राजा ने चारों पुत्रों को मुनि के चरणों पर डाल दिया (उनसे प्रणाम कराया)। श्री रामचन्द्रजी को देखकर मुनि अपनी देह की सुधि भूल गए। वे श्री रामजी के मुख की शोभा देखते ही ऐसे मग्न हो गए, मानो चकोर पूर्ण चन्द्रमा को देखकर लुभा गया हो॥3॥

* तब मन हरषि बचन कह राऊ। मुनि अस कृपा न कीन्हिहु काऊ॥
केहि कारन आगमन तुम्हारा। कहहु सो करत न लावउँ बारा॥4॥

भावार्थ:-तब राजा ने मन में हर्षित होकर ये वचन कहे- हे मुनि! इस प्रकार कृपा तो आपने कभी नहीं की। आज किस कारण से आपका शुभागमन हुआ? कहिए, मैं उसे पूरा करने में देर नहीं लगाऊँगा॥4॥

* असुर समूह सतावहिं मोही। मैं जाचन आयउँ नृप तोही॥
अनुज समेत देहु रघुनाथा। निसिचर बध मैं होब सनाथा॥5॥

भावार्थ:-(मुनि ने कहा-) हे राजन्! राक्षसों के समूह मुझे बहुत सताते हैं, इसीलिए मैं तुमसे कुछ माँगने आया हूँ। छोटे भाई सहित श्री रघुनाथजी को मुझे दो। राक्षसों के मारे जाने पर मैं सनाथ (सुरक्षित) हो जाऊँगा॥5॥

दोहा :

* देहु भूप मन हरषित तजहु मोह अग्यान।
धर्म सुजस प्रभु तुम्ह कौं इन्ह कहँ अति कल्यान॥207॥

भावार्थ:-हे राजन्! प्रसन्न मन से इनको दो, मोह और अज्ञान को छोड़ दो। हे स्वामी! इससे तुमको धर्म और सुयश की प्राप्ति होगी और इनका परम कल्याण होगा॥207॥

चौपाई :

* सुनि राजा अति अप्रिय बानी। हृदय कंप मुख दुति कुमुलानी॥
चौथेंपन पायउँ सुत चारी। बिप्र बचन नहिं कहेहु बिचारी॥1॥

भावार्थ:-इस अत्यन्त अप्रिय वाणी को सुनकर राजा का हृदय काँप उठा और उनके मुख की कांति फीकी पड़ गई। (उन्होंने कहा-) हे ब्राह्मण! मैंने चौथेपन में चार पुत्र पाए हैं, आपने विचार कर बात नहीं कही॥1॥

* मागहु भूमि धेनु धन कोसा। सर्बस देउँ आजु सहरोसा॥
देह प्रान तें प्रिय कछु नाहीं। सोउ मुनि देउँ निमिष एक माहीं॥2॥

भावार्थ:-हे मुनि! आप पृथ्वी, गो, धन और खजाना माँग लीजिए, मैं आज बड़े हर्ष के साथ अपना सर्वस्व दे दूँगा। देह और प्राण से अधिक प्यारा कुछ भी नहीं होता, मैं उसे भी एक पल में दे दूँगा॥2॥

* सब सुत प्रिय मोहि प्रान की नाईं। राम देत नहिं बनइ गोसाईं॥
कहँ निसिचर अति घोर कठोरा। कहँ सुंदर सुत परम किसोरा॥3॥

भावार्थ:-सभी पुत्र मुझे प्राणों के समान प्यारे हैं, उनमें भी हे प्रभो! राम को तो (किसी प्रकार भी) देते नहीं बनता। कहाँ अत्यन्त डरावने और क्रूर राक्षस और कहाँ परम किशोर अवस्था के (बिलकुल सुकुमार) मेरे सुंदर पुत्र! ॥3॥

* सुनि नृप गिरा प्रेम रस सानी। हृदयँ हरष माना मुनि ग्यानी॥
तब बसिष्ट बहुबिधि समुझावा। नृप संदेह नास कहँ पावा॥4॥

भावार्थ:-प्रेम रस में सनी हुई राजा की वाणी सुनकर ज्ञानी मुनि विश्वामित्रजी ने हृदय में बड़ा हर्ष माना। तब वशिष्ठजी ने राजा को बहुत प्रकार से समझाया, जिससे राजा का संदेह नाश को प्राप्त हुआ॥4॥

* अति आदर दोउ तनय बोलाए। हृदयँ लाइ बहु भाँति सिखाए॥
मेरे प्रान नाथ सुत दोऊ। तुम्ह मुनि पिता आन नहिं कोऊ॥5॥

भावार्थ:-राजा ने बड़े ही आदर से दोनों पुत्रों को बुलाया और हृदय से लगाकर बहुत प्रकार से उन्हें शिक्षा दी। (फिर कहा-) हे नाथ! ये दोनों पुत्र मेरे प्राण हैं। हे मुनि! (अब) आप ही इनके पिता हैं, दूसरा कोई नहीं॥5॥

दोहा :

* सौंपे भूप रिषिहि सुत बहुबिधि देइ असीस।
जननी भवन गए प्रभु चले नाइ पद सीस॥208 क ॥

भावार्थ:-राजा ने बहुत प्रकार से आशीर्वाद देकर पुत्रों को ऋषि के हवाले कर दिया। फिर प्रभु माता के महल में गए और उनके चरणों में सिर नवाकर चले॥208 (क)॥

सोरठा :

* पुरुष सिंह दोउ बीर हरषि चले मुनि भय हरन।
कृपासिंधु मतिधीर अखिल बिस्व कारन करन॥208 ख॥

भावार्थ:-पुरुषों में सिंह रूप दोनों भाई (राम-लक्ष्मण) मुनि का भय हरने के लिए प्रसन्न होकर चले। वे कृपा के समुद्र, धीर बुद्धि और सम्पूर्ण विश्व के कारण के भी कारण हैं॥208 (ख)॥

चौपाई :

* अरुन नयन उर बाहु बिसाला। नील जलज तनु स्याम तमाला॥
कटि पट पीत कसें बर भाथा। रुचिर चाप सायक दुहुँ हाथा॥1॥

भावार्थ:-भगवान के लाल नेत्र हैं, चौड़ी छाती और विशाल भुजाएँ हैं, नील कमल और तमाल के वृक्ष की तरह श्याम शरीर है, कमर में पीताम्बर (पहने) और सुंदर तरकस कसे हुए हैं। दोनों हाथों में (क्रमशः) सुंदर धनुष और बाण हैं॥1॥

* स्याम गौर सुंदर दोउ भाई। बिस्वामित्र महानिधि पाई॥
प्रभु ब्रह्मन्यदेव मैं जाना। मोहि निति पिता तजेउ भगवाना॥2॥

भावार्थ:-श्याम और गौर वर्ण के दोनों भाई परम सुंदर हैं। विश्वामित्रजी को महान निधि प्राप्त हो गई। (वे सोचने लगे-) मैं जान गया कि प्रभु ब्रह्मण्यदेव (ब्राह्मणों के भक्त) हैं। मेरे लिए भगवान ने अपने पिता को भी छोड़ दिया॥2॥

* चले जात मुनि दीन्हि देखाई। सुनि ताड़का क्रोध करि धाई॥
एकहिं बान प्रान हरि लीन्हा। दीन जानि तेहि निज पद दीन्हा॥3॥

भावार्थ:-मार्ग में चले जाते हुए मुनि ने ताड़का को दिखलाया। शब्द सुनते ही वह क्रोध करके दौड़ी। श्री रामजी ने एक ही बाण से उसके प्राण हर लिए और दीन जानकर उसको निजपद (अपना दिव्य स्वरूप) दिया॥3॥

* तब रिषि निज नाथहि जियँ चीन्ही। बिद्यानिधि कहुँ बिद्या दीन्ही॥
जाते लाग न छुधा पिपासा। अतुलित बल तनु तेज प्रकासा॥4॥

भावार्थ:-तब ऋषि विश्वामित्र ने प्रभु को मन में विद्या का भंडार समझते हुए भी (लीला को पूर्ण करने के लिए) ऐसी विद्या दी, जिससे भूख-प्यास न लगे और शरीर में अतुलित बल और तेज का प्रकाश हो॥4॥

विश्वामित्र-यज्ञ की रक्षा

दोहा :

* आयुध सर्ब समर्पि कै प्रभु निज आश्रम आनि।
कंद मूल फल भोजन दीन्ह भगति हित जानि॥209॥

भावार्थ:-सब अस्त्र-शस्त्र समर्पण करके मुनि प्रभु श्री रामजी को अपने आश्रम में ले आए और उन्हें परम हितू जानकर भक्तिपूर्वक कंद, मूल और फल का भोजन कराया॥209॥

चौपाई :

*प्रात कहा मुनि सन रघुराई। निर्भय जग्य करहु तुम्ह जाई॥
होम करन लागे मुनि झारी। आपु रहे मख कीं रखवारी॥1॥

भावार्थ:-सबेरे श्री रघुनाथजी ने मुनि से कहा- आप जाकर निडर होकर यज्ञ कीजिए। यह सुनकर सब मुनि हवन करने लगे। आप (श्री रामजी) यज्ञ की रखवाली पर रहे॥1॥

* सुनि मारीच निसाचर क्रोही। लै सहाय धावा मुनिद्रोही॥
बिनु फर बान राम तेहि मारा। सत जोजन गा सागर पारा॥2॥

भावार्थ:-यह समाचार सुनकर मुनियों का शत्रु कोरथी राक्षस मारीच अपने सहायकों को लेकर दौड़ा। श्री रामजी ने बिना फल वाला बाण उसको मारा, जिससे वह सौ योजन के विस्तार वाले समुद्र के पार जा गिरा॥2॥

* पावक सर सुबाहु पुनि मारा। अनुज निसाचर कटकु सँघारा॥
मारि असुर द्विज निर्भयकारी। अस्तुति करहिं देव मुनि झारी॥3॥

भावार्थ:-फिर सुबाहु को अग्निबाण मारा। इधर छोटे भाई लक्ष्मणजी ने राक्षसों की सेना का संहार कर डाला। इस प्रकार श्री रामजी ने राक्षसों

को मारकर ब्राह्मणों को निर्भय कर दिया। तब सारे देवता और मुनि स्तुति करने लगे॥3॥

* तहँ पुनि कछुक दिवस रघुराया। रहे कीन्हि बिप्रन्ह पर दाया॥
भगति हेतु बहुत कथा पुराना। कहे बिप्र जद्यपि प्रभु जाना॥4॥

भावार्थ:-श्री रघुनाथजी ने वहाँ कुछ दिन और रहकर ब्राह्मणों पर दया की। भक्ति के कारण ब्राह्मणों ने उन्हें पुराणों की बहुत सी कथाएँ कहीं, यद्यपि प्रभु सब जानते थे॥4॥

* तब मुनि सादर कहा बुझाई। चरित एक प्रभु देखिअ जाई॥
धनुषजग्य सुनि रघुकुल नाथा। हरषि चले मुनिबर के साथा॥5॥

भावार्थ:-तदन्तर मुनि ने आदरपूर्वक समझाकर कहा- हे प्रभो! चलकर एक चरित्र देखिए। रघुकुल के स्वामी श्री रामचन्द्रजी धनुषयज्ञ (की बात) सुनकर मुनिश्रेष्ठ विश्वामित्रजी के साथ प्रसन्न होकर चले॥5॥

गीताप्रेस गोरखपुर

अहल्या उद्धार

* आश्रम एक दीख मग माहीं। खग मृग जीव जंतु तहँ नाहीं॥
पूछा मुनिहि सिला प्रभु देखी। सकल कथा मुनि कहा बिसेषी॥6॥

भावार्थ:-मार्ग में एक आश्रम दिखाई पड़ा। वहाँ पशु-पक्षी, को भी जीव-जन्तु नहीं था। पत्थर की एक शिला को देखकर प्रभु ने पूछा, तब मुनि ने विस्तारपूर्वक सब कथा कही॥6॥

दोहा :

* गौतम नारि श्राप बस उपल देह धरि धीर।
चरन कमल रज चाहति कृपा करहु रघुबीर॥210॥

भावार्थ:-गौतम मुनि की स्त्री अहल्या शापवश पत्थर की देह धारण किए बड़े धीरज से आपके चरणकमलों की धूलि चाहती है। हे रघुवीर! इस पर कृपा कीजिए॥210॥

छन्द :

* परसत पद पावन सोकनसावन प्रगट भई तपपुंज सही।
देखत रघुनायक जन सुखदायक सनमुख होइ कर जोरि रही॥
अति प्रेम अधीरा पुलक शरीरा मुख नहिं आवइ बचन कही।
अतिसय बड़भागी चरनन्हि लागी जुगल नयन जलधार बही॥1॥

भावार्थ:-श्री रामजी के पवित्र और शोक को नाश करने वाले चरणों का स्पर्श पाते ही सचमुच वह तपोमूर्ति अहल्या प्रकट हो गई। भक्तों को सुख देने वाले श्री रघुनाथजी को देखकर वह हाथ जोड़कर सामने खड़ी रह गई। अत्यन्त प्रेम के कारण वह अधीर हो गई। उसका शरीर पुलकित हो उठा, मुख से वचन कहने में नहीं आते थे। वह अत्यन्त बड़भागिनी अहल्या प्रभु के चरणों से लिपट गई और उसके दोनों नेत्रों से जल (प्रेम और आनंद के आँसुओं) की धारा बहने लगी॥1॥

* धीरजु मन कीन्हा प्रभु कहुँ चीन्हा रघुपति कृपाँ भगति पाई।
अति निर्मल बानी अस्तुति ठानी ग्यानगम्य जय रघुराई॥
मैं नारि अपावन प्रभु जग पावन रावन रिपु जन सुखदाई।
राजीव बिलोचन भव भय मोचन पाहि पाहि सरनहिं आई॥2॥

भावार्थ:-फिर उसने मन में धीरज धरकर प्रभु को पहचाना और श्री रघुनाथजी की कृपा से भक्ति प्राप्त की। तब अत्यन्त निर्मल वाणी से उसने (इस प्रकार) स्तुति प्रारंभ की- हे ज्ञान से जानने योग्य श्री रघुनाथजी! आपकी जय हो! मैं (सहज ही) अपवित्र स्त्री हूँ, और हे प्रभो!

आप जगत को पवित्र करने वाले, भक्तों को सुख देने वाले और रावण के शत्रु हैं। हे कमलनयन! हे संसार (जन्म-मृत्यु) के भय से छुड़ाने वाले! मैं आपकी शरण आई हूँ, (मेरी) रक्षा कीजिए, रक्षा कीजिए॥2॥

* मुनि श्राप जो दीन्हा अति भल कीन्हा परम अनुग्रह मैं माना।
देखेउँ भरि लोचन हरि भव मोचन इहइ लाभ संकर जाना॥
बिनती प्रभु मोरी मैं मति भोरी नाथ न मागउँ बर आना।
पद कमल परागा रस अनुरागा मम मन मधुप करै पाना॥3॥

भावार्थ:-मुनि ने जो मुझे शाप दिया, सो बहुत ही अच्छा किया। मैं उसे अत्यन्त अनुग्रह (करके) मानती हूँ कि जिसके कारण मैंने संसार से छुड़ाने वाले श्री हरि (आप) को नेत्र भरकर देखा। इसी (आपके दर्शन) को शंकरजी सबसे बड़ा लाभ समझते हैं। हे प्रभो! मैं बुद्धि की बड़ी भोली हूँ, मेरी एक विनती है। हे नाथ ! मैं और कोई वर नहीं माँगती, केवल यही चाहती हूँ कि मेरा मन रूपी भौंरा आपके चरण-कमल की रज के प्रेमरूपी रस का सदा पान करता रहे॥3॥

* जेहिं पद सुरसरिता परम पुनीता प्रगट भई सिव सीस धरी।
सोई पद पंकज जेहि पूजत अज मम सिर धरेउ कृपाल हरी॥
एहि भाँति सिधारी गौतम नारी बार बार हरि चरन परी।
जो अति मन भावा सो बरु पावा गै पति लोक अनंद भरी॥4॥

भावार्थ:-जिन चरणों से परमपवित्र देवनदी गंगाजी प्रकट हुईं, जिन्हें शिवजी ने सिर पर धारण किया और जिन चरणकमलों को ब्रह्माजी पूजते हैं, कृपालु हरि (आप) ने उन्हीं को मेरे सिर पर रखा। इस प्रकार (स्तुति करती हुई) बार-बार भगवान के चरणों में गिरकर, जो मन को बहुत ही अच्छा लगा, उस वर को पाकर गौतम की स्त्री अहल्या आनंद में भरी हुई पतिलोक को चली गई॥4॥

दोहा :

* अस प्रभु दीनबंधु हरि कारन रहित दयाल।

तुलसिदास सठ तेहि भजु छाड़ि कपट जंजाल॥211॥

भावार्थ:-प्रभु श्री रामचन्द्रजी ऐसे दीनबंधु और बिना ही कारण दया करने वाले हैं। तुलसीदासजी कहते हैं, हे शठ (मन)! तू कपट-जंजाल छोड़कर उन्हीं का भजन कर॥211॥

मासपारायण, सातवाँ विश्राम

श्री राम-लक्ष्मण सहित विश्वामित्र का जनकपुर में प्रवेश

चौपाई :

* चले राम लछिमन मुनि संगा। गए जहाँ जग पावनि गंगा॥

गाधिसूनु सब कथा सुनाई। जेहि प्रकार सुरसरि महि आई॥1॥

भावार्थ:-श्री रामजी और लक्ष्मणजी मुनि के साथ चले। वे वहाँ गए, जहाँ जगत को पवित्र करने वाली गंगाजी थीं। महाराज गाधि के पुत्र विश्वामित्रजी ने वह सब कथा कह सुनाई जिस प्रकार देवनदी गंगाजी पृथ्वी पर आई थीं॥1॥

* तब प्रभु रिषिन्ह समेत नहाए। बिबिध दान महिदेवन्हि पाए॥

हरषि चले मुनि बृंद सहाया। बेगि बिदेह नगर निअराया॥2॥

भावार्थ:-तब प्रभु ने ऋषियों सहित (गंगाजी में) स्नान किया। ब्राह्मणों ने भाँति-भाँति के दान पाए। फिर मुनिवृन्द के साथ वे प्रसन्न होकर चले और शीघ्र ही जनकपुर के निकट पहुँच गए॥2॥

* पुर रम्यता राम जब देखी। हरषे अनुज समेत बिसेषी॥

बापीं कूप सरित सर नाना। सलिल सुधासम मनि सोपाना॥3॥

भावार्थ:-श्री रामजी ने जब जनकपुर की शोभा देखी, तब वे छोटे भाई लक्ष्मण सहित अत्यन्त हर्षित हुए। वहाँ अनेकों बावलियाँ, कुएँ, नदी

और तालाब हैं, जिनमें अमृत के समान जल है और मणियों की सीढ़ियाँ (बनी हुई) हैं॥3॥

* गुंजत मंजु मत्त रस भृंगा। कूजत कल बहुबरन बिहंगा॥
बरन बरन बिकसे बनजाता। त्रिबिध समीर सदा सुखदाता॥4॥

भावार्थ:-मकरंद रस से मतवाले होकर भौंरे सुंदर गुंजार कर रहे हैं। रंग-बिरंगे (बहुत से) पक्षी मधुर शब्द कर रहे हैं। रंग-रंग के कमल खिले हैं। सदा (सब ऋतुओं में) सुख देने वाला शीतल, मंद, सुगंध पवन बह रहा है॥4॥

दोहा :

* सुमन बाटिका बाग बन बिपुल बिहंग निवास।
फूलत फलत सुपल्लवत सोहत पुर चहुँ पास॥212।

भावार्थ:-पुष्प वाटिका (फुलवारी), बाग और वन, जिनमें बहुत से पक्षियों का निवास है, फूलते, फलते और सुंदर पत्तों से लदे हुए नगर के चारों ओर सुशोभित हैं॥212॥

चौपाई :

* बनइ न बरनत नगर निकाई। जहाँ जाइ मन तहँइँ लोभाई॥
चारु बजारु बिचित्र अँबारी। मनिमय बिधि जनु स्वकर सँवारी॥1॥

भावार्थ:-नगर की सुंदरता का वर्णन करते नहीं बनता। मन जहाँ जाता है, वहीं लुभा जाता (रम जाता) है। सुंदर बाजार है, मणियों से बने हुए विचित्र छज्जे हैं, मानो ब्रह्मा ने उन्हें अपने हाथों से बनाया है॥1॥

*धनिक बनिक बर धनद समाना। बैठे सकल बस्तु लै नाना।
चौहट सुंदर गलीं सुहाई। संतत रहहिं सुगंध सिंचाई॥2॥

भावार्थ:-कुबेर के समान श्रेष्ठ धनी व्यापारी सब प्रकार की अनेक वस्तुएँ लेकर (दुकानों में) बैठे हैं। सुंदर चौराहे और सुहावनी गलियाँ सदा सुगंध से सिंची रहती हैं॥2॥

* मंगलमय मंदिर सब केरें। चित्रित जनु रतिनाथ चितेरें॥
पुर नर नारि सुभग सुचि संता। धरमसील ग्यानी गुनवंता॥3॥

भावार्थ:-सबके घर मंगलमय हैं और उन पर चित्र कढ़े हुए हैं, जिन्हें मानो कामदेव रूपी चित्रकार ने अंकित किया है। नगर के (सभी) स्त्री-पुरुष सुंदर, पवित्र, साधु स्वभाव वाले, धर्मात्मा, ज्ञानी और गुणवान हैं॥3॥

*अति अनूप जहँ जनक निवासू। बिथकहिं बिबुध बिलोकि बिलासू॥
होत चकित चित कोट बिलोकी। सकल भुवन सोभा जनु रोकी॥4॥

भावार्थ:-जहाँ जनकजी का अत्यन्त अनुपम (सुंदर) निवास स्थान (महल) है, वहाँ के विलास (ऐश्वर्य) को देखकर देवता भी थकित (स्तम्भित) हो जाते हैं (मनुष्यों की तो बात ही क्या!)। कोट (राजमहल के परकोटे) को देखकर चित्त चकित हो जाता है, (ऐसा मालूम होता है) मानो उसने समस्त लोकों की शोभा को रोक (घेर) रखा है॥4॥

दोहा :

*धवल धाम मनि पुरट पट सुघटित नाना भाँति।
सिय निवास सुंदर सदन सोभा किमि कहि जाति॥213॥

भावार्थ:-उज्ज्वल महलों में अनेक प्रकार के सुंदर रीति से बने हुए मणि जटित सोने की जरी के परदे लगे हैं। सीताजी के रहने के सुंदर महल की शोभा का वर्णन किया ही कैसे जा सकता है॥213॥

चौपाई :

* सुभग द्वार सब कुलिस कपाटा। भूप भीर नट मागध भाटा॥

बनी बिसाल बाजि गज साला। हय गय रथ संकुल सब काला॥1॥

भावार्थ:-राजमहल के सब दरवाजे (फाटक) सुंदर हैं, जिनमें वज्र के (मजबूत अथवा हीरों के चमकते हुए) किवाड़ लगे हैं। वहाँ (मातहत) राजाओं, नटों, मागधों और भाटों की भीड़ लगी रहती है। घोड़ों और हाथियों के लिए बहुत बड़ी-बड़ी घुड़सालें और गजशालाएँ (फीलखाने) बनी हुई हैं, जो सब समय घोड़े, हाथी और रथों से भरी रहती हैं॥1॥

* सूर सचिव सेनप बहुतेरे। नृपगृह सरिस सदन सब केरे॥
पुर बाहेर सर सरित समीपा। उतरे जहँ तहँ बिपुल महीपा॥2॥

भावार्थ:-बहुत से शूरवीर, मंत्री और सेनापति हैं। उन सबके घर भी राजमहल सरीखे ही हैं। नगर के बाहर तालाब और नदी के निकट जहाँ-तहाँ बहुत से राजा लोग उतरे हुए (डेरा डाले हुए) हैं॥2॥

* देखि अनूप एक अँवराई। सब सुपास सब भाँति सुहाई।
कौसिक कहेउ मोर मनु माना। इहाँ रहिअ रघुबीर सुजाना॥3॥

भावार्थ:-(वहीं) आमों का एक अनुपम बाग देखकर, जहाँ सब प्रकार के सुभीते थे और जो सब तरह से सुहावना था, विश्वामित्रजी ने कहा- हे सुजान रघुवीर! मेरा मन कहता है कि यहीं रहा जाए॥3॥

* भलेहिं नाथ कहि कृपानिकेता। उतरे तहँ मुनि बृंद समेता॥
बिस्वामित्र महामुनि आए। समाचार मिथिलापति पाए॥4॥

भावार्थ:-कृपा के धाम श्री रामचन्द्रजी 'बहुत अच्छा स्वामिन्!' कहकर वहीं मुनियों के समूह के साथ ठहर गए। मिथिलापति जनकजी ने जब यह समाचार पाया कि महामुनि विश्वामित्र आए हैं,॥4॥

दोहा :

* संग सचिव सुचि भूरि भट भूसुर बर गुर ग्याति।

चले मिलन मुनिनायकहि मुदित राउ एहि भाँति॥214॥

भावार्थ:-तब उन्होंने पवित्र हृदय के (ईमानदार, स्वामिभक्त) मंत्री बहुत से योद्धा, श्रेष्ठ ब्राह्मण, गुरु (शतानंदजी) और अपनी जाति के श्रेष्ठ लोगों को साथ लिया और इस प्रकार प्रसन्नता के साथ राजा मुनियों के स्वामी विश्वामित्रजी से मिलने चले॥214॥

चौपाई :

* कीन्ह प्रनामु चरन धरि माथा। दीन्हि असीस मुदित मुनिनाथा॥
बिप्रबृंद सब सादर बंदे। जानि भाग्य बड़ राउ अनंदे॥1॥

भावार्थ:-राजा ने मुनि के चरणों पर मस्तक रखकर प्रणाम किया। मुनियों के स्वामी विश्वामित्रजी ने प्रसन्न होकर आशीर्वाद दिया। फिर सारी ब्राह्मणमंडली को आदर सहित प्रणाम किया और अपना बड़ा भाग्य जानकर राजा आनंदित हुए॥1॥

* कुसल प्रस्न कहि बारहिं बारा। बिस्वामित्र नृपहि बैठारा॥
तेहि अवसर आए दोउ भाई। गए रहे देखन फुलवाई॥2॥

भावार्थ:-बार-बार कुशल प्रश्न करके विश्वामित्रजी ने राजा को बैठाया। उसी समय दोनों भाई आ पहुँचे, जो फुलवाड़ी देखने गए थे॥2॥

* स्याम गौर मृदु बयस किसोरा। लोचन सुखद बिस्व चित चोरा॥
उठे सकल जब रघुपति आए। बिस्वामित्र निकट बैठाए॥3॥

भावार्थ:-सुकुमार किशोर अवस्था वाले श्याम और गौर वर्ण के दोनों कुमार नेत्रों को सुख देने वाले और सारे विश्व के चित्त को चुराने वाले हैं। जब रघुनाथजी आए तब सभी (उनके रूप एवं तेज से प्रभावित होकर) उठकर खड़े हो गए। विश्वामित्रजी ने उनको अपने पास बैठा लिया॥3॥

* भए सब सुखी देखि दोउ भ्राता। बारि बिलोचन पुलकित गाता॥
मूरति मधुर मनोहर देखी भयउ बिदेहु बिदेहु बिसेषी॥4॥

भावार्थ:-दोनों भाइयों को देखकर सभी सुखी हुए। सबके नेत्रों में जल भर आया (आनंद और प्रेम के आँसू उमड़ पड़े) और शरीर रोमांचित हो उठे। रामजी की मधुर मनोहर मूर्ति को देखकर विदेह (जनक) विशेष रूप से विदेह (देह की सुध-बुध से रहित) हो गए॥4॥

श्री राम-लक्ष्मण को देखकर जनकजी की प्रेम मुग्धता

दोहा :

* प्रेम मगन मनु जानि नृपु करि बिबेकु धरि धीर।
बोलेउ मुनि पद नाइ सिरु गदगद गिरा गभीर॥215॥

भावार्थ:-मन को प्रेम में मग्न जान राजा जनक ने विवेक का आश्रय लेकर धीरज धारण किया और मुनि के चरणों में सिर नवाकर गद्ग द् (प्रेमभरी) गंभीर वाणी से कहा- ॥215॥

चौपाई :

* कहहु नाथ सुंदर दोउ बालक। मुनिकुल तिलक कि नृपकुल पालक॥
ब्रह्म जो निगम नेति कहि गावा। उभय बेष धरि की सोइ आवा॥1॥

भावार्थ:-हे नाथ! कहिए, ये दोनों सुंदर बालक मुनिकुल के आभूषण हैं या किसी राजवंश के पालक? अथवा जिसका वेदों ने 'नेति' कहकर गान किया है कहीं वह ब्रह्म तो युगल रूप धरकर नहीं आया है?॥1॥

* सहज बिरागरूप मनु मोरा। थकित होत जिमि चंद चकोरा॥
ताते प्रभु पूछउँ सतिभाऊ। कहहु नाथ जनि करहु दुराऊ॥2॥

भावार्थ:-मेरा मन जो स्वभाव से ही वैराग्य रूप (बना हुआ) है, (इन्हें देखकर) इस तरह मुग्ध हो रहा है, जैसे चन्द्रमा को देखकर चकोर। हे प्रभो! इसलिए मैं आपसे सत्य (निश्छल) भाव से पूछता हूँ। हे नाथ! बताइए, छिपाव न कीजिए॥2॥

* इन्हहि बिलोकत अति अनुरागा। बरबस ब्रह्मसुखहि मन त्यागा॥

कह मुनि बिहसि कहेहु नृप नीका। बचन तुम्हार न होइ अलीका॥3॥

भावार्थ:-इनको देखते ही अत्यन्त प्रेम के वश होकर मेरे मन ने जबर्दस्ती ब्रह्मसुख को त्याग दिया है। मुनि ने हँसकर कहा- हे राजन्! आपने ठीक (यथार्थ ही) कहा। आपका वचन मिथ्या नहीं हो सकता॥3॥

* ए प्रिय सबहि जहाँ लगि प्रानी। मन मुसुकाहिं रामु सुनि बानी॥

रघुकुल मनि दसरथ के जाए। मम हित लागि नरेस पठाए॥4॥

भावार्थ:-जगत में जहाँ तक (जितने भी) प्राणी हैं, ये सभी को प्रिय हैं। मुनि की (रहस्य भरी) वाणी सुनकर श्री रामजी मन ही मन मुस्कुराते हैं (हँसकर मानो संकेत करते हैं कि रहस्य खोलिए नहीं)। (तब मुनि ने कहा-) ये रघुकुल मणि महाराज दशरथ के पुत्र हैं। मेरे हित के लिए राजा ने इन्हें मेरे साथ भेजा है॥4॥

दोहा :

* रामु लखनु दोउ बंधुबर रूप सील बल धाम।

मख राखेउ सबु साखि जगु जिते असुर संग्राम॥216॥

भावार्थ:-ये राम और लक्ष्मण दोनों श्रेष्ठ भाई रूप, शील और बल के धाम हैं। सारा जगत (इस बात का) साक्षी है कि इन्होंने युद्ध में असुरों को जीतकर मेरे यज्ञ की रक्षा की है॥216॥

चौपाई :

* मुनि तव चरन देखि कह राऊ। कहि न सकउँ निज पुन्य प्रभाऊ॥

सुंदर स्याम गौर दोउ भ्राता। आनँदहू के आनँद दाता॥1॥

भावार्थ:-राजा ने कहा- हे मुनि! आपके चरणों के दर्शन कर मैं अपना पुण्य प्रभाव कह नहीं सकता। ये सुंदर श्याम और गौर वर्ण के दोनों भाई आनंद को भी आनंद देने वाले हैं।

* इन्ह कै प्रीति परसपर पावनि। कहि न जाइ मन भाव सुहावनि॥

सुनहु नाथ कह मुदित बिदेहू। ब्रह्म जीव इव सहज सनेहू॥2॥

भावार्थ:-इनकी आपस की प्रीति बड़ी पवित्र और सुहावनी है, वह मन को बहुत भाती है, पर (वाणी से) कही नहीं जा सकती। विदेह (जनकजी) आनंदित होकर कहते हैं- हे नाथ! सुनिए, ब्रह्म और जीव की तरह इनमें स्वाभाविक प्रेम है॥2॥

* पुनि पुनि प्रभुहि चितव नरनाहू। पुलक गात उर अधिक उछाहू॥
मुनिहि प्रसंसि नाइ पद सीसू। चलेउ लवाइ नगर अवनीसू॥3॥

भावार्थ:-राजा बार-बार प्रभु को देखते हैं (दृष्टि वहाँ से हटना ही नहीं चाहती)। (प्रेम से) शरीर पुलकित हो रहा है और हृदय में बड़ा उत्साह है। (फिर) मुनि की प्रशंसा करके और उनके चरणों में सिर नवाकर राजा उन्हें नगर में लिवा चले॥3॥

* सुंदर सदनु सुखद सब काला। तहाँ बासु लै दीन्ह भुआला॥
करि पूजा सब बिधि सेवकाई। गयउ राउ गृह बिदा कराई॥4॥

भावार्थ:-एक सुंदर महल जो सब समय (सभी ऋतुओं में) सुखदायक था, वहाँ राजा ने उन्हें ले जाकर ठहराया। तदनन्तर सब प्रकार से पूजा और सेवा करके राजा विदा माँगकर अपने घर गए॥4॥

दोहा :

* रिषय संग रघुबंस मनि करि भोजनु बिश्रामु।
बैठे प्रभु भ्राता सहित दिवसु रहा भरि जामु॥217॥

भावार्थ:-रघुकुल के शिरोमणि प्रभु श्री रामचन्द्रजी ऋषियों के साथ भोजन और विश्राम करके भाई लक्ष्मण समेत बैठे। उस समय पहरभर दिन रह गया था॥217॥

चौपाई :

*लखन हृदयँ लालसा बिसेषी। जाइ जनकपुर आइअ देखी॥

प्रभु भय बहुरि मुनिहि सकुचाहीं। प्रगट न कहहिं मनहिं मुसुकाहीं॥1॥
भावार्थ:-लक्ष्मणजी के हृदय में विशेष लालसा है कि जाकर जनकपुर देख आवें, परन्तु प्रभु श्री रामचन्द्रजी का डर है और फिर मुनि से भी सकुचाते हैं, इसलिए प्रकट में कुछ नहीं कहते, मन ही मन मुस्कुरा रहे हैं॥1॥

* राम अनुज मन की गति जानी। भगत बछलता हियँ हुलसानी॥
परम बिनीत सकुचि मुसुकाई। बोले गुर अनुसासन पाई॥2॥
भावार्थ:-(अन्तर्यामी) श्री रामचन्द्रजी ने छोटे भाई के मन की दशा जान ली, (तब) उनके हृदय में भक्तवत्सलता उमड़ आई। वे गुरु की आज्ञा पाकर बहुत ही विनय के साथ सकुचाते हुए मुस्कुराकर बोले॥2॥

* नाथ लखनु पुरु देखन चहहीं। प्रभु सकोच डर प्रगट न कहहीं॥
जौं राउर आयसु मैं पावौं। नगर देखाइ तुरत लै आवौं॥3॥
भावार्थ:-हे नाथ! लक्ष्मण नगर देखना चाहते हैं, किन्तु प्रभु (आप) के डर और संकोच के कारण स्पष्ट नहीं कहते। यदि आपकी आज्ञा पाऊँ, तो मैं इनको नगर दिखलाकर तुरंत ही (वापस) ले आऊँ॥3॥

* सुनि मुनीसु कह बचन सप्रीती। कस न राम तुम्ह राखहु नीती॥
धरम सेतु पालक तुम्ह ताता। प्रेम बिबस सेवक सुखदाता॥4॥
भावार्थ:-यह सुनकर मुनीश्वर विश्वामित्रजी ने प्रेम सहित वचन कहे- हे राम! तुम नीति की रक्षा कैसे न करोगे, हे तात! तुम धर्म की मर्यादा का पालन करने वाले और प्रेम के वशीभूत होकर सेवकों को सुख देने वाले हो॥4॥

श्री राम-लक्ष्मण का जनकपुर निरीक्षण

दोहा :

* जाइ देखि आवहु नगरु सुख निधान दोउ भाइ।

करहु सुफल सब के नयन सुंदर बदन देखाइ॥218॥

भावार्थ:-सुख के निधान दोनों भाई जाकर नगर देख आओ। अपने सुंदर मुख दिखलाकर सब (नगर निवासियों) के नेत्रों को सफल करो॥218॥

चौपाई :

* मुनि पद कमल बंदि दोउ भ्राता। चले लोक लोचन सुख दाता॥

बालक बृंद देखि अति सोभा। लगे संग लोचन मनु लोभा॥1॥

भावार्थ:-सब लोकों के नेत्रों को सुख देने वाले दोनों भाई मुनि के चरणकमलों की वंदना करके चले। बालकों के झुंड इन (के सौंदर्य) की अत्यन्त शोभा देखकर साथ लग गए। उनके नेत्र और मन (इनकी माधुरी पर) लुभा गए॥1॥

* पीत बसन परिकर कटि भाथा। चारु चाप सर सोहत हाथा॥

तन अनुहरत सुचंदन खोरी। स्यामल गौर मनोहर जोरी॥2॥

भावार्थ:-(दोनों भाइयों के) पीले रंग के वस्त्र हैं, कमर के (पीले) दुपट्टों में तरकस बँधे हैं। हाथों में सुंदर धनुष-बाण सुशोभित हैं। (श्याम और गौर वर्ण के) शरीरों के अनुकूल (अर्थात्‌ जिस पर जिस रंग का चंदन अधिक फबे उस पर उसी रंग के) सुंदर चंदन की खौर लगी है। साँवरे और गोरे (रंग) की मनोहर जोड़ी है॥2॥

* केहरि कंधर बाहु बिसाला। उर अति रुचिर नागमनि माला॥

सुभग सोन सरसीरुह लोचन। बदन मयंक तापत्रय मोचन॥3॥

भावार्थ:-सिंह के समान (पुष्ट) गर्दन (गले का पिछला भाग) है, विशाल भुजाएँ हैं। (चौड़ी) छाती पर अत्यन्त सुंदर गजमुक्ता की माला है। सुंदर लाल कमल के समान नेत्र हैं। तीनों तापों से छुड़ाने वाला चन्द्रमा के समान मुख है॥3॥

* कानन्हि कनक फूल छबि देहीं। चितवत चितहि चोरि जनु लेहीं॥
चितवनि चारु भृकुटि बर बाँकी। तिलक रेख सोभा जनु चाँकी॥4॥

भावार्थ:-कानों में सोने के कर्णफूल (अत्यन्त) शोभा दे रहे हैं और देखते ही (देखने वाले के) चित्त को मानो चुरा लेते हैं। उनकी चितवन (दृष्टि) बड़ी मनोहर है और भौंहें तिरछी एवं सुंदर हैं। (माथे पर) तिलक की रेखाएँ ऐसी सुंदर हैं, मानो (मूर्तिमती) शोभा पर मुहर लगा दी गई है॥4॥

दोहा :

* रुचिर चौतनीं सुभग सिर मेचक कुंचित केस।
नख सिख सुंदर बंधु दोउ सोभा सकल सुदेस॥219॥

भावार्थ:-सिर पर सुंदर चौकोनी टोपियाँ (दिए) हैं, काले और घुँघराले बाल हैं। दोनों भाई नख से लेकर शिखा तक (एड़ी से चोटी तक) सुंदर हैं और सारी शोभा जहाँ जैसी चाहिए वैसी ही है॥219॥

चौपाई :

* देखन नगरु भूपसुत आए। समाचार पुरबासिन्ह पाए॥
धाए धाम काम सब त्यागी। मनहुँ रंक निधि लूटन लागी॥1॥

भावार्थ:-जब पुरवासियों ने यह समाचार पाया कि दोनों राजकुमार नगर देखने के लिए आए हैं, तब वे सब घर-बार और सब काम-काज छोड़कर ऐसे दौड़े मानो दरिद्री (धन का) खजाना लूटने दौड़े हों॥1॥

* निरखि सहज सुंदर दोउ भाई। होहिं सुखी लोचन फल पाई॥
जुबतीं भवन झरोखन्हि लागीं। निरखहिं राम रूप अनुरागीं॥2॥

भावार्थ:-स्वभाव ही से सुंदर दोनों भाइयों को देखकर वे लोग नेत्रों का फल पाकर सुखी हो रहे हैं। युवती स्त्रियाँ घर के झरोखों से लगी हुई प्रेम सहित श्री रामचन्द्रजी के रूप को देख रही हैं॥2॥

* कहहिं परसपर बचन सप्रीती। सखि इन्ह कोटि काम छबि जीती॥
सुर नर असुर नाग मुनि माहीं। सोभा असि कहुँ सुनिअति नाहीं॥3॥

भावार्थ:-वे आपस में बड़े प्रेम से बातें कर रही हैं- हे सखी! इन्होंने करोड़ों कामदेवों की छबि को जीत लिया है। देवता, मनुष्य, असुर, नाग और मुनियों में ऐसी शोभा तो कहीं सुनने में भी नहीं आती॥3॥

* बिष्नु चारि भुज बिधि मुख चारी। बिकट बेष मुख पंच पुरारी॥
अपर देउ अस कोउ ना आही। यह छबि सखी पटतरिअ जाही॥4॥

भावार्थ:-भगवान विष्णु के चार भुजाएँ हैं, ब्रह्माजी के चार मुख हैं, शिवजी का विकट (भयानक) वेष है और उनके पाँच मुँह हैं। हे सखी! दूसरा देवता भी कोई ऐसा नहीं है, जिसके साथ इस छबि की उपमा दी जाए॥4॥

दोहा :

* बय किसोर सुषमा सदन स्याम गौर सुख धाम।
अंग अंग पर वारिअहिं कोटि कोटि सत काम॥220॥

भावार्थ:-इनकी किशोर अवस्था है, ये सुंदरता के घर, साँवले और गोरे रंग के तथा सुख के धाम हैं। इनके अंग-अंग पर करोड़ों-अरबों कामदेवों को निछावर कर देना चाहिए॥220॥

चौपाई :

* कहहु सखी अस को तनु धारी। जो न मोह यह रूप निहारी॥
कोउ सप्रेम बोली मृदु बानी। जो मैं सुना सो सुनहु सयानी॥1॥

भावार्थ:-हे सखी! (भला) कहो तो ऐसा कौन शरीरधारी होगा, जो इस रूप को देखकर मोहित न हो जाए (अर्थात यह रूप जड़-चेतन सबको

मोहित करने वाला है)। (तब) कोई दूसरी सखी प्रेम सहित कोमल वाणी से बोली- हे सयानी! मैंने जो सुना है उसे सुनो-॥1॥

* ए दोऊ दसरथ के ढोटा। बाल मरालन्हि के कल जोटा॥

मुनि कौसिक मख के रखवारे। जिन्ह रन अजिर निसाचर मारे॥2॥

भावार्थ:-ये दोनों (राजकुमार) महाराज दशरथजी के पुत्र हैं! बाल राजहंसों का सा सुंदर जोड़ा है। ये मुनि विश्वामित्र के यज्ञ की रक्षा करने वाले हैं, इन्होंने युद्ध के मैदान में राक्षसों को मारा है॥2॥

* स्याम गात कल कंज बिलोचन। जो मारीच सुभुज मदु मोचन॥

कौसल्या सुत सो सुख खानी। नामु रामु धनु सायक पानी॥3॥

भावार्थ:-जिनका श्याम शरीर और सुंदर कमल जैसे नेत्र हैं, जो मारीच और सुबाहु के मद को चूर करने वाले और सुख की खान हैं और जो हाथ में धनुष-बाण लिए हुए हैं, वे कौसल्याजी के पुत्र हैं, इनका नाम राम है॥3॥

* गौर किसोर बेषु बर काछें। कर सर चाप राम के पाछें॥

लछिमनु नामु राम लघु भ्राता। सुनु सखि तासु सुमित्रा माता॥4॥

भावार्थ:-जिनका रंग गोरा और किशोर अवस्था है और जो सुंदर वेष बनाए और हाथ में धनुष-बाण लिए श्री रामजी के पीछे-पीछे चल रहे हैं, वे इनके छोटे भाई हैं, उनका नाम लक्ष्मण है। हे सखी! सुनो, उनकी माता सुमित्रा हैं॥4॥

दोहा :

* बिप्रकाजु करि बंधु दोउ मग मुनिबधू उधारि।

आए देखन चापमख सुनि हरषीं सब नारि॥221॥

भावार्थ:-दोनों भाई ब्राह्मण विश्वामित्र का काम करके और रास्ते में मुनि गौतम की स्त्री अहल्या का उद्धार करके यहाँ धनुषयज्ञ देखने आए हैं। यह सुनकर सब स्त्रियाँ प्रसन्न हुईं॥221॥

चौपाई :

* देखि राम छबि कोउ एक कहई। जोगु जानकिहि यह बरु अहई॥
जौं सखि इन्हहि देख नरनाहू। पन परिहरि हठि करइ बिबाहू॥1॥

भावार्थ:-श्री रामचन्द्रजी की छबि देखकर कोई एक (दूसरी सखी) कहने लगी- यह वर जानकी के योग्य है। हे सखी! यदि कहीं राजा इन्हें देख ले, तो प्रतिज्ञा छोड़कर हठपूर्वक इन्हीं से विवाह कर देगा॥1॥

* कोउ कह ए भूपति पहिचाने। मुनि समेत सादर सनमाने॥
सखि परंतु पनु राउ न तजई। बिधि बस हठि अबिबेकहि भजई॥2॥

भावार्थ:-किसी ने कहा- राजा ने इन्हें पहचान लिया है और मुनि के सहित इनका आदरपूर्वक सम्मान किया है, परंतु हे सखी! राजा अपना प्रण नहीं छोड़ता। वह होनहार के वशीभूत होकर हठपूर्वक अविवेक का ही आश्रय लिए हुए हैं (प्रण पर अड़े रहने की मूर्खता नहीं छोड़ता)॥2॥

* कोउ कह जौं भल अहइ बिधाता। सब कहँ सुनिअ उचित फल दाता॥
तौ जानकिहि मिलिहि बरु एहू। नाहिन आलि इहाँ संदेहू॥3॥

भावार्थ:-कोई कहती है- यदि विधाता भले हैं और सुना जाता है कि वे सबको उचित फल देते हैं, तो जानकीजी को यही वर मिलेगा। हे सखी! इसमें संदेह नहीं है॥3॥

* जौं बिधि बस अस बनै सँजोगू। तौ कृतकृत्य होइ सब लोगू॥
सखि हमरें आरति अति तातें। कबहुँक ए आवहिं एहि नातें॥4॥

भावार्थ:-जो दैवयोग से ऐसा संयोग बन जाए, तो हम सब लोग कृतार्थ हो जाएँ। हे सखी! मेरे तो इसी से इतनी अधिक आतुरता हो रही है कि इसी नाते कभी ये यहाँ आवेंगे॥4॥

दोहा :

* नाहिं त हम कहुँ सुनहु सखि इन्ह कर दरसनु दूरि।
यह संघटु तब होइ जब पुन्य पुराकृत भूरि॥222॥

भावार्थ:-नहीं तो (विवाह न हुआ तो) हे सखी! सुनो, हमको इनके दर्शन दुर्लभ हैं। यह संयोग तभी हो सकता है, जब हमारे पूर्वजन्मों के बहुत पुण्य हों॥222॥

चौपाई :

* बोली अपर कहेहु सखि नीका। एहिं बिआह अति हित सबही का।
कोउ कह संकर चाप कठोरा। ए स्यामल मृदु गात किसोरा॥1॥

भावार्थ:-दूसरी ने कहा- हे सखी! तुमने बहुत अच्छा कहा। इस विवाह से सभी का परम हित है। किसी ने कहा- शंकरजी का धनुष कठोर है और ये साँवले राजकुमार कोमल शरीर के बालक हैं॥1॥

* सबु असमंजस अहइ सयानी। यह सुनि अपर कहइ मृदु बानी॥
सखि इन्ह कहँ कोउ कोउ अस कहहीं। बड़ प्रभाउ देखत लघु अहहीं॥2॥

भावार्थ:-हे सयानी! सब असमंजस ही है। यह सुनकर दूसरी सखी कोमल वाणी से कहने लगी- हे सखी! इनके संबंध में कोई-कोई ऐसा कहते हैं कि ये देखने में तो छोटे हैं, पर इनका प्रभाव बहुत बड़ा है॥2॥

* परसि जासु पद पंकज धूरी। तरी अहल्या कृत अघ भूरी॥
सो कि रहिहि बिनु सिव धनु तोरें। यह प्रतीति परिहरिअ न भोरें॥3॥

भावार्थ:-जिनके चरणकमलों की धूलि का स्पर्श पाकर अहल्या तर गई, जिसने बड़ा भारी पाप किया था, वे क्या शिवजी का धनुष बिना तोड़े रहेंगे। इस विश्वास को भूलकर भी नहीं छोड़ना चाहिए॥3॥

* जेहिं बिरंचि रचि सीय सँवारी। तेहिं स्यामल बरु रचेउ बिचारी॥
तासु बचन सुनि सब हरषानीं। ऐसेइ होउ कहहिं मृदु बानीं॥4॥

भावार्थ:-जिस ब्रह्मा ने सीता को सँवारकर (बड़ी चतुराई से) रचा है, उसी ने विचार कर साँवला वर भी रच रखा है। उसके ये वचन सुनकर सब हर्षित हुईं और कोमल वाणी से कहने लगीं- ऐसा ही हो॥4॥

दोहा :

* हियँ हरषहिं बरषहिं सुमन सुमुखि सुलोचनि बृंद।
जाहिं जहाँ जहँ बंधु दोउ तहँ तहँ परमानंद॥223॥

भावार्थ:- सुंदर मुख और सुंदर नेत्रों वाली स्त्रियाँ समूह की समूह हृदय में हर्षित होकर फूल बरसा रही हैं। जहाँ-जहाँ दोनों भाई जाते हैं, वहाँ-वहाँ परम आनंद छा जाता है॥223॥

चौपाई :

* पुर पूरब दिसि गे दोउ भाई। जहँ धनुमख हित भूमि बनाई॥
अति बिस्तार चारु गच ढारी। बिमल बेदिका रुचिर सँवारी॥1॥

भावार्थ:-दोनों भाई नगर के पूरब ओर गए, जहाँ धनुषयज्ञ के लिए (रंग) भूमि बनाई गई थी। बहुत लंबा-चौड़ा सुंदर ढाला हुआ पक्का आँगन था, जिस पर सुंदर और निर्मल वेदी सजाई गई थी॥1॥

* चहुँ दिसि कंचन मंच बिसाला। रचे जहाँ बैठहिं महिपाला॥
तेहि पाछें समीप चहुँ पासा। अपर मंच मंडली बिलासा॥2॥

भावार्थ:-चारों ओर सोने के बड़े-बड़े मंच बने थे, जिन पर राजा लोग बैठेंगे। उनके पीछे समीप ही चारों ओर दूसरे मचानों का मंडलाकार घेरा सुशोभित था॥2॥

* कछुक ऊँचि सब भाँति सुहाई। बैठहिं नगर लोग जहँ जाई॥

तिन्ह के निकट बिसाल सुहाए। धवल धाम बहुबरन बनाए॥3॥

भावार्थ:-वह कुछ ऊँचा था और सब प्रकार से सुंदर था, जहाँ जाकर नगर के लोग बैठेंगे। उन्हीं के पास विशाल एवं सुंदर सफेद मकान अनेक रंगों के बनाए गए हैं॥3॥

* जहँ बैठें देखहिं सब नारी। जथाजोगु निज कुल अनुहारी॥

पुर बालक कहि कहि मृदु बचना। सादर प्रभुहि देखावहिं रचना॥4॥

भावार्थ:-जहाँ अपने-अपने कुल के अनुसार सब स्त्रियाँ यथायोग्य (जिसको जहाँ बैठना उचित है) बैठकर देखेंगी। नगर के बालक कोमल वचन कह-कहकर आदरपूर्वक प्रभु श्री रामचन्द्रजी को (यज्ञशाला की) रचना दिखला रहे हैं॥4॥

दोहा :

* सब सिसु एहि मिस प्रेमबस परसि मनोहर गात।

तन पुलकहिं अति हरषु हियँ देखि देखि दोउ भ्रात॥224॥

भावार्थ:-सब बालक इसी बहाने प्रेम के वश में होकर श्री रामजी के मनोहर अंगों को छूकर शरीर से पुलकित हो रहे हैं और दोनों भाइयों को देख-देखकर उनके हृदय में अत्यन्त हर्ष हो रहा है॥224॥

चौपाई :

* सिसु सब राम प्रेमबस जाने। प्रीति समेत निकेत बखाने॥

निज निज रुचि सब लेहिं बोलाई। सहित सनेह जाहिं दोउ भाई॥1॥

भावार्थ:-श्री रामचन्द्रजी ने सब बालकों को प्रेम के वश जानकर (यज्ञभूमि के) स्थानों की प्रेमपूर्वक प्रशंसा की। (इससे बालकों का उत्साह, आनंद और प्रेम और भी बढ़ गया, जिससे) वे सब अपनी-अपनी रुचि के अनुसार उन्हें बुला लेते हैं और (प्रत्येक के बुलाने पर) दोनों भाई प्रेम सहित उनके पास चले जाते हैं॥1॥

* राम देखावहिं अनुजहि रचना। कहि मृदु मधुर मनोहर बचना॥
लव निमेष महुँ भुवन निकाया। रचइ जासु अनुसासन माया॥2॥

भावार्थ:-कोमल, मधुर और मनोहर वचन कहकर श्री रामजी अपने छोटे भाई लक्ष्मण को (यज्ञभूमि की) रचना दिखलाते हैं। जिनकी आज्ञा पाकर माया लव निमेष (पलक गिरने के चौथाई समय) में ब्रह्माण्डों के समूह रच डालती है,॥2॥

*भगति हेतु सोइ दीनदयाला। चितवत चकित धनुष मखसाला॥
कौतुक देखि चले गुरु पाहीं। जानि बिलंबु त्रास मन माहीं॥3॥

भावार्थ:-वही दीनों पर दया करने वाले श्री रामजी भक्ति के कारण धनुष यज्ञ शाला को चकित होकर (आश्चर्य के साथ) देख रहे हैं। इस प्रकार सब कौतुक (विचित्र रचना) देखकर वे गुरु के पास चले। देर हुई जानकर उनके मन में डर है॥3॥

* जासु त्रास डर कहुँ डर होई। भजन प्रभाउ देखावत सोई॥
कहि बातें मृदु मधुर सुहाईं। किए बिदा बालक बरिआईं॥4॥

भावार्थ:-जिनके भय से डर को भी डर लगता है, वही प्रभु भजन का प्रभाव (जिसके कारण ऐसे महान प्रभु भी भय का नाट्य करते हैं) दिखला रहे हैं। उन्होंने कोमल, मधुर और सुंदर बातें कहकर बालकों को जबर्दस्ती विदा किया॥4॥

दोहा :

* सभय सप्रेम बिनीत अति सकुच सहित दोउ भाइ।
गुर पद पंकज नाइ सिर बैठे आयसु पाइ॥225॥

भावार्थ:-फिर भय, प्रेम, विनय और बड़े संकोच के साथ दोनों भाई गुरु के चरण कमलों में सिर नवाकर आज्ञा पाकर बैठे॥225॥

चौपाई :

* निसि प्रबेस मुनि आयसु दीन्हा। सबहीं संध्याबंदनु कीन्हा॥
कहत कथा इतिहास पुरानी। रुचिर रजनि जुग जाम सिरानी॥1॥

भावार्थ:-रात्रि का प्रवेश होते ही (संध्या के समय) मुनि ने आज्ञा दी, तब सबने संध्यावंदन किया। फिर प्राचीन कथाएँ तथा इतिहास कहते-कहते सुंदर रात्रि दो पहर बीत गई॥1॥

* मुनिबर सयन कीन्हि तब जाई। लगे चरन चापन दोउ भाई॥
जिन्ह के चरन सरोरुह लागी। करत बिबिध जप जोग बिरागी॥2॥

भावार्थ:-तब श्रेष्ठ मुनि ने जाकर शयन किया। दोनों भाई उनके चरण दबाने लगे, जिनके चरण कमलों के (दर्शन एवं स्पर्श के) लिए वैराग्यवान्‌ पुरुष भी भाँति-भाँति के जप और योग करते हैं॥2॥

*तेइ दोउ बंधु प्रेम जनु जीते। गुर पद कमल पलोटत प्रीते॥
बार बार मुनि अग्या दीन्ही। रघुबर जाइ सयन तब कीन्ही॥3॥

भावार्थ:-वे ही दोनों भाई मानो प्रेम से जीते हुए प्रेमपूर्वक गुरुजी के चरण कमलों को दबा रहे हैं। मुनि ने बार-बार आज्ञा दी, तब श्री रघुनाथजी ने जाकर शयन किया॥3॥

* चापत चरन लखनु उर लाएँ। सभय सप्रेम परम सचु पाएँ॥
पुनि पुनि प्रभु कह सोवहु ताता। पौढ़े धरि उर पद जलजाता॥4॥

भावार्थ:-श्री रामजी के चरणों को हृदय से लगाकर भय और प्रेम सहित परम सुख का अनुभव करते हुए लक्ष्मणजी उनको दबा रहे हैं। प्रभु श्री रामचन्द्रजी ने बार-बार कहा- हे तात! (अब) सो जाओ। तब वे उन चरण कमलों को हृदय में धरकर लेटे रहे॥4॥

पुष्पवाटिका-निरीक्षण, सीताजी का प्रथम दर्शन, श्री सीता-रामजी का परस्पर दर्शन

दोहा :

* उठे लखनु निसि बिगत सुनि अरुनसिखा धुनि कान।

गुर तें पहिलेहिं जगतपति जागे रामु सुजान॥226॥

भावार्थ:-रात बीतने पर, मुर्गे का शब्द कानों से सुनकर लक्ष्मणजी उठे। जगत के स्वामी सुजान श्री रामचन्द्रजी भी गुरु से पहले ही जाग गए॥226॥

चौपाई :

* सकल सौच करि जाइ नहाए। नित्य निबाहि मुनिहि सिर नाए॥

समय जानि गुर आयसु पाई। लेन प्रसून चले दोउ भाई॥1॥

भावार्थ:-सब शौचक्रिया करके वे जाकर नहाए। फिर (संध्या-अग्निहोत्रादि) नित्यकर्म समाप्त करके उन्होंने मुनि को मस्तक नवाया। (पूजा का) समय जानकर, गुरु की आज्ञा पाकर दोनों भाई फूल लेने चले॥1॥

* भूप बागु बर देखेउ जाई। जहँ बसंत रितु रही लोभाई॥

लागे बिटप मनोहर नाना। बरन बरन बर बेलि बिताना॥2॥

भावार्थ:-उन्होंने जाकर राजा का सुंदर बाग देखा, जहाँ वसंत ऋतु लुभाकर रह गई है। मन को लुभाने वाले अनेक वृक्ष लगे हैं। रंग-बिरंगी उत्तम लताओं के मंडप छाए हुए हैं॥2॥

*नव पल्लव फल सुमन सुहाए। निज संपति सुर रूख लजाए॥
चातक कोकिल कीर चकोरा। कूजत बिहग नटत कल मोरा॥3॥

भावार्थ:-नए, पत्तों, फलों और फूलों से युक्त सुंदर वृक्ष अपनी सम्पत्ति से कल्पवृक्ष को भी लजा रहे हैं। पपीहे, कोयल, तोते, चकोर आदि पक्षी मीठी बोली बोल रहे हैं और मोर सुंदर नृत्य कर रहे हैं॥3॥

* मध्य बाग सरु सोह सुहावा। मनि सोपान बिचित्र बनावा॥
बिमल सलिलु सरसिज बहुरंगा। जलखग कूजत गुंजत भृंगा॥4॥

भावार्थ:-बाग के बीचोंबीच सुहावना सरोवर सुशोभित है, जिसमें मणियों की सीढ़ियाँ विचित्र ढंग से बनी हैं। उसका जल निर्मल है, जिसमें अनेक रंगों के कमल खिले हुए हैं, जल के पक्षी कलरव कर रहे हैं और भ्रमर गुंजार कर रहे हैं॥4॥

दोहा :

* बागु तड़ागु बिलोकि प्रभु हरषे बंधु समेत।
परम रम्य आरामु यहु जो रामहि सुख देत॥227॥

भावार्थ:-बाग और सरोवर को देखकर प्रभु श्री रामचन्द्रजी भाई लक्ष्मण सहित हर्षित हुए। यह बाग (वास्तव में) परम रमणीय है, जो (जगत को सुख देने वाले) श्री रामचन्द्रजी को सुख दे रहा है॥227॥

चौपाई :

*चहुँ दिसि चितइ पूँछि मालीगन। लगे लेन दल फूल मुदित मन॥
तेहि अवसर सीता तहँ आई। गिरिजा पूजन जननि पठाई॥1॥

भावार्थ:-चारों ओर दृष्टि डालकर और मालियों से पूछकर वे प्रसन्न मन से पत्र-पुष्प लेने लगे। उसी समय सीताजी वहाँ आईं। माता ने उन्हें गिरिजाजी (पार्वती) की पूजा करने के लिए भेजा था॥1॥

* संग सखीं सब सुभग सयानीं। गावहिं गीत मनोहर बानीं॥
सर समीप गिरिजा गृह सोहा। बरनि न जाइ देखि मनु मोहा॥2॥

भावार्थ:-साथ में सब सुंदरी और सयानी सखियाँ हैं, जो मनोहर वाणी से गीत गा रही हैं। सरोवर के पास गिरिजाजी का मंदिर सुशोभित है, जिसका वर्णन नहीं किया जा सकता, देखकर मन मोहित हो जाता है॥।2॥

* मज्जनु करि सर सखिन्ह समेता। गई मुदित मन गौरि निकेता॥
पूजा कीन्हि अधिक अनुरागा। निज अनुरूप सुभग बरु मागा॥3॥

भावार्थ:-सखियों सहित सरोवर में स्नान करके सीताजी प्रसन्न मन से गिरिजाजी के मंदिर में गईं। उन्होंने बड़े प्रेम से पूजा की और अपने योग्य सुंदर वर माँगा॥3॥

* एक सखी सिय संगु बिहाई। गई रही देखन फुलवाई॥
तेहिं दोउ बंधु बिलोके जाई। प्रेम बिबस सीता पहिं आई॥4॥

भावार्थ:-एक सखी सीताजी का साथ छोड़कर फुलवाड़ी देखने चली गई थी। उसने जाकर दोनों भाइयों को देखा और प्रेम में विह्वल होकर वह सीताजी के पास आई॥4॥

दोहा :

* तासु दसा देखी सखिन्ह पुलक गात जलु नैन।
कहु कारनु निज हरष कर पूछहिं सब मृदु बैन॥228॥

भावार्थ:-सखियों ने उसकी दशा देखी कि उसका शरीर पुलकित है और नेत्रों में जल भरा है। सब कोमल वाणी से पूछने लगीं कि अपनी प्रसन्नता का कारण बता॥228॥

चौपाई :

* देखन बागु कुअँर दुइ आए। बय किसोर सब भाँति सुहाए॥

स्याम गौर किमि कहौं बखानी। गिरा अनयन नयन बिनु बानी॥1॥
भावार्थ:-(उसने कहा-) दो राजकुमार बाग देखने आए हैं। किशोर अवस्था के हैं और सब प्रकार से सुंदर हैं। वे साँवले और गोरे (रंग के) हैं, उनके सौंदर्य को मैं कैसे बखानकर कहूँ। वाणी बिना नेत्र की है और नेत्रों के वाणी नहीं है॥1॥

* सुनि हरषीं सब सखीं सयानी। सिय हियँ अति उतकंठा जानी॥

एक कहइ नृपसुत तेइ आली। सुने जे मुनि सँग आए काली॥2॥
भावार्थ:-यह सुनकर और सीताजी के हृदय में बड़ी उत्कंठा जानकर सब सयानी सखियाँ प्रसन्न हुईं। तब एक सखी कहने लगी- हे सखी! ये वही राजकुमार हैं, जो सुना है कि कल विश्वामित्र मुनि के साथ आए हैं॥2॥

* जिन्ह निज रूप मोहनी डारी। कीन्हे स्वबस नगर नर नारी॥

बरनत छबि जहँ तहँ सब लोगू। अवसि देखिअहिं देखन जोगू॥3॥
भावार्थ:-और जिन्होंने अपने रूप की मोहिनी डालकर नगर के स्त्री-पुरुषों को अपने वश में कर लिया है। जहाँ-तहाँ सब लोग उन्हीं की छबि का वर्णन कर रहे हैं। अवश्य (चलकर) उन्हें देखना चाहिए, वे देखने ही योग्य हैं॥3॥

* तासु बचन अति सियहि सोहाने। दरस लागि लोचन अकुलाने॥

चली अग्र करि प्रिय सखि सोई। प्रीति पुरातन लखइ न कोई॥4॥
भावार्थ:-उसके वचन सीताजी को अत्यन्त ही प्रिय लगे और दर्शन के लिए उनके नेत्र अकुला उठे। उसी प्यारी सखी को आगे करके सीताजी चलीं। पुरानी प्रीति को कोई लख नहीं पाता॥4॥
दोहा :
* सुमिरि सीय नारद बचन उपजी प्रीति पुनीत।

चकित बिलोकति सकल दिसि जनु सिसु मृगी सभीत॥229॥

भावार्थ:-नारदजी के वचनों का स्मरण करके सीताजी के मन में पवित्र प्रीति उत्पन्न हुई। वे चकित होकर सब ओर इस तरह देख रही हैं, मानो डरी हुई मृगछौनी इधर-उधर देख रही हो॥229॥

चौपाई :

* कंकन किंकिनि नूपुर धुनि सुनि। कहत लखन सन रामु हृदयँ गुनि॥
मानहुँ मदन दुंदुभी दीन्ही। मनसा बिस्व बिजय कहँ कीन्ही॥1॥

भावार्थ:-कंकण (हाथों के कड़े), करधनी और पायजेब के शब्द सुनकर श्री रामचन्द्रजी हृदय में विचार कर लक्ष्मण से कहते हैं- (यह ध्वनि ऐसी आ रही है) मानो कामदेव ने विश्व को जीतने का संकल्प करके डंके पर चोट मारी है॥1॥

* अस कहि फिरि चितए तेहि ओरा। सिय मुख ससि भए नयन चकोरा॥
भए बिलोचन चारु अचंचल। मनहुँ सकुचि निमि तजे दिगंचल॥2॥

भावार्थ:-ऐसा कहकर श्री रामजी ने फिर कर उस ओर देखा। श्री सीताजी के मुख रूपी चन्द्रमा (को निहारने) के लिए उनके नेत्र चकोर बन गए। सुंदर नेत्र स्थिर हो गए (टकटकी लग गई)। मानो निमि (जनकजी के पूर्वज) ने (जिनका सबकी पलकों में निवास माना गया है, लड़की-दामाद के मिलन-प्रसंग को देखना उचित नहीं, इस भाव से) सकुचाकर पलकें छोड़ दीं, (पलकों में रहना छोड़ दिया, जिससे पलकों का गिरना रुक गया)॥2॥

* देखि सीय शोभा सुखु पावा। हृदयँ सराहत बचनु न आवा॥
जनु बिरंचि सब निज निपुनाई। बिरचि बिस्व कहँ प्रगटि देखाई॥3॥

भावार्थ:-सीताजी की शोभा देखकर श्री रामजी ने बड़ा सुख पाया। हृदय में वे उसकी सराहना करते हैं, किन्तु मुख से वचन नहीं निकलते। (वह

शोभा ऐसी अनुपम है) मानो ब्रह्मा ने अपनी सारी निपुणता को मूर्तिमान कर संसार को प्रकट करके दिखा दिया हो॥3॥

* सुंदरता कहुँ सुंदर करई। छबिगृहँ दीपसिखा जनु बरई॥

सब उपमा कबि रहे जुठारी। केहिं पटतरौं बिदेहकुमारी॥4॥

भावार्थ:-वह (सीताजी की शोभा) सुंदरता को भी सुंदर करने वाली है। (वह ऐसी मालूम होती है) मानो सुंदरता रूपी घर में दीपक की लौ जल रही हो। (अब तक सुंदरता रूपी भवन में अँधेरा था, वह भवन मानो सीताजी की सुंदरता रूपी दीपशिखा को पाकर जगमगा उठा है, पहले से भी अधिक सुंदर हो गया है)। सारी उपमाओं को तो कवियों ने जूँठा कर रखा है। मैं जनकनन्दिनी श्री सीताजी की किससे उपमा दूँ॥4॥

दोहा :

* सिय शोभा हियँ बरनि प्रभु आपनि दसा बिचारि॥

बोले सुचि मन अनुज सन बचन समय अनुहारि॥230॥

भावार्थ:-(इस प्रकार) हृदय में सीताजी की शोभा का वर्णन करके और अपनी दशा को विचारकर प्रभु श्री रामचन्द्रजी पवित्र मन से अपने छोटे भाई लक्ष्मण से समयानुकूल वचन बोले-॥230॥

चौपाई :

* तात जनकतनया यह सोई। धनुषजग्य जेहि कारन होई॥

पूजन गौरि सखीं लै आईं। करत प्रकासु फिरइ फुलवाईं॥1॥

भावार्थ:-हे तात! यह वही जनकजी की कन्या है, जिसके लिए धनुषयज्ञ हो रहा है। सखियाँ इसे गौरी पूजन के लिए ले आई हैं। यह फुलवाड़ी में प्रकाश करती हुई फिर रही है॥1॥

* जासु बिलोकि अलौकिक सोभा। सहज पुनीत मोर मनु छोभा॥

सो सबु कारन जान बिधाता। फरकहिं सुभद अंग सुनु भ्राता॥2॥

भावार्थ:-जिसकी अलौकिक सुंदरता देखकर स्वभाव से ही पवित्र मेरा मन क्षुब्ध हो गया है। वह सब कारण (अथवा उसका सब कारण) तो विधाता जानें, किन्तु हे भाई! सुनो, मेरे मंगलदायक (दाहिने) अंग फड़क रहे हैं॥2॥

* रघुबंसिन्ह कर सहज सुभाऊ। मनु कुपंथ पगु धरइ न काऊ॥

मोहि अतिसय प्रतीति मन केरी। जेहिं सपनेहुँ परनारि न हेरी॥3॥

भावार्थ:-रघुवंशियों का यह सहज (जन्मगत) स्वभाव है कि उनका मन कभी कुमार्ग पर पैर नहीं रखता। मुझे तो अपने मन का अत्यन्त ही विश्वास है कि जिसने (जाग्रत की कौन कहे) स्वप्न में भी पराई स्त्री पर दृष्टि नहीं डाली है॥3॥

* जिन्ह कै लहहिं न रिपु रन पीठी। नहिं पावहिं परतिय मनु डीठी॥

मंगन लहहिं न जिन्ह कै नाहीं। ते नरबर थोरे जग माहीं॥4॥

भावार्थ:-रण में शत्रु जिनकी पीठ नहीं देख पाते (अर्थात् जो लड़ाई के मैदान से भागते नहीं), पराई स्त्रियाँ जिनके मन और दृष्टि को नहीं खींच पातीं और भिखारी जिनके यहाँ से 'नाहीं' नहीं पाते (खाली हाथ नहीं लौटते), ऐसे श्रेष्ठ पुरुष संसार में थोड़े हैं॥4॥

दोहा :

* करत बतकही अनुज सन मन सिय रूप लोभान।

मुख सरोज मकरंद छबि करइ मधुप इव पान॥231॥

भावार्थ:- यों श्री रामजी छोटे भाई से बातें कर रहे हैं, पर मन सीताजी के रूप में लुभाया हुआ उनके मुखरूपी कमल के छबि रूप मकरंद रस को भौंरे की तरह पी रहा है॥231॥

चौपाई :

* चितवति चकित चहूँ दिसि सीता। कहँ गए नृप किसोर मनु चिंता॥

जहँ बिलोक मृग सावक नैनी। जनु तहँ बरिस कमल सित श्रेनी॥1॥

भावार्थ:-सीताजी चकित होकर चारों ओर देख रही हैं। मन इस बात की चिन्ता कर रहा है कि राजकुमार कहाँ चले गए। बाल मृगनयनी (मृग के छौने की सी आँख वाली) सीताजी जहाँ दृष्टि डालती हैं, वहाँ मानो श्वेत कमलों की कतार बरस जाती है॥1॥

* लता ओट तब सखिन्ह लखाए। स्यामल गौर किसोर सुहाए॥
देखि रूप लोचन ललचाने। हरषे जनु निज निधि पहिचाने॥2॥

भावार्थ:-तब सखियों ने लता की ओट में सुंदर श्याम और गौर कुमारों को दिखलाया। उनके रूप को देखकर नेत्र ललचा उठे, वे ऐसे प्रसन्न हुए मानो उन्होंने अपना खजाना पहचान लिया॥2॥

* थके नयन रघुपति छबि देखें। पलकन्हिहूँ परिहरीं निमेषें॥
अधिक सनेहँ देह भै भोरी। सरद ससिहि जनु चितव चकोरी॥3॥

भावार्थ:-श्री रघुनाथजी की छबि देखकर नेत्र थकित (निश्चल) हो गए। पलकों ने भी गिरना छोड़ दिया। अधिक स्नेह के कारण शरीर विह्वल (बेकाबू) हो गया। मानो शरद ऋतु के चन्द्रमा को चकोरी (बेसुध हुई) देख रही हो॥3॥

* लोचन मग रामहि उर आनी। दीन्हे पलक कपाट सयानी॥
जब सिय सखिन्ह प्रेमबस जानी। कहि न सकहिं कछु मन सकुचानी॥4॥

भावार्थ:-नेत्रों के रास्ते श्री रामजी को हृदय में लाकर चतुरशिरोमणि जानकीजी ने पलकों के किवाड़ लगा दिए (अर्थात नेत्र मूँदकर उनका ध्यान करने लगीं)। जब सखियों ने सीताजी को प्रेम के वश जाना, तब वे मन में सकुचा गईं, कुछ कह नहीं सकती थीं॥4॥

दोहा :

* लताभवन तें प्रगट भे तेहि अवसर दोउ भाइ।

तकिसे जनु जुग बिमल बिधु जलद पटल बिलगाई॥232॥
भावार्थ:-उसी समय दोनों भाई लता मंडप (कुंज) में से प्रकट हुए। मानो दो निर्मल चन्द्रमा बादलों के परदे को हटाकर निकले हों॥232॥

चौपाई :

* सोभा सीवँ सुभग दोउ बीरा। नील पीत जलजाभ सरीरा॥
मोरपंख सिर सोहत नीके। गुच्छ बीच बिच कुसुम कली के॥1॥

भावार्थ:-दोनों सुंदर भाई शोभा की सीमा हैं। उनके शरीर की आभा नीले और पीले कमल की सी है। सिर पर सुंदर मोरपंख सुशोभित हैं। उनके बीच-बीच में फूलों की कलियों के गुच्छे लगे हैं॥1॥

* भाल तिलक श्रम बिन्दु सुहाए। श्रवन सुभग भूषन छबि छाए॥
बिकट भृकुटि कच घूघरवारे। नव सरोज लोचन रतनारे॥2॥

भावार्थ:-माथे पर तिलक और पसीने की बूँदें शोभायमान हैं। कानों में सुंदर भूषणों की छबि छाई है। टेढ़ी भौंहें और घुँघराले बाल हैं। नए लाल कमल के समान रतनारे (लाल) नेत्र हैं॥2॥

* चारु चिबुक नासिका कपोला। हास बिलास लेत मनु मोला॥
मुखछबि कहि न जाइ मोहि पाहीं। जो बिलोकि बहु काम लजाहीं॥3॥

भावार्थ:-ठोड़ी नाक और गाल बड़े सुंदर हैं और हँसी की शोभा मन को मोल लिए लेती है। मुख की छबि तो मुझसे कही ही नहीं जाती, जिसे देखकर बहुत से कामदेव लजा जाते हैं॥3॥

* उर मनि माल कंबु कल गीवा। काम कलभ कर भुज बलसींवा॥
सुमन समेत बाम कर दोना। सावँर कुअँर सखी सुठि लोना॥4॥

भावार्थ:-वक्षःस्थल पर मणियों की माला है। शंख के सदृश सुंदर गला है। कामदेव के हाथी के बच्चे की सूँड के समान (उतार-चढ़ाव वाली एवं

कोमल) भुजाएँ हैं, जो बल की सीमा हैं। जिसके बाएँ हाथ में फूलों सहित दोना है, हे सखि! वह साँवला कुँअर तो बहुत ही सलोना है॥4॥

दोहा :

* केहरि कटि पट पीत धर सुषमा सील निधान।
देखि भानुकुलभूषनहि बिसरा सखिन्ह अपान॥233॥

भावार्थ:-सिंह की सी (पतली, लचीली) कमर वाले, पीताम्बर धारण किए हुए, शोभा और शील के भंडार, सूर्यकुल के भूषण श्री रामचन्द्रजी को देखकर सखियाँ अपने आपको भूल गईं॥233॥

चौपाई :

* धरि धीरजु एक आलि सयानी। सीता सन बोली गहि पानी॥
बहुरि गौरि कर ध्यान करेहू। भूपकिसोर देखि किन लेहू॥1॥

भावार्थ:-एक चतुर सखी धीरज धरकर, हाथ पकड़कर सीताजी से बोली- गिरिजाजी का ध्यान फिर कर लेना, इस समय राजकुमार को क्यों नहीं देख लेतीं॥1॥

* सकुचि सीयँ तब नयन उघारे। सनमुख दोउ रघुसिंघ निहारे॥
नख सिख देखि राम कै सोभा। सुमिरि पिता पनु मनु अति छोभा॥2॥

भावार्थ:-तब सीताजी ने सकुचाकर नेत्र खोले और रघुकुल के दोनों सिंहों को अपने सामने (खड़े) देखा। नख से शिखा तक श्री रामजी की शोभा देखकर और फिर पिता का प्रण याद करके उनका मन बहुत क्षुब्ध हो गया॥2॥

* परबस सखिन्ह लखी जब सीता। भयउ गहरु सब कहहिं सभीता॥
पुनि आउब एहि बेरिआँ काली। अस कहि मन बिहसी एक आली॥3॥

भावार्थ:-जब सखियों ने सीताजी को परवश (प्रेम के वश) देखा, तब सब भयभीत होकर कहने लगीं- बड़ी देर हो गई। (अब चलना चाहिए)। कल इसी समय फिर आएँगी, ऐसा कहकर एक सखी मन में हँसी॥3॥

* गूढ़ गिरा सुनि सिय सकुचानी। भयउ बिलंबु मातु भय मानी॥

धरि बड़ि धीर रामु उर आने। फिरी अपनपउ पितुबस जाने॥4॥

भावार्थ:-सखी की यह रहस्यभरी वाणी सुनकर सीताजी सकुचा गईं। देर हो गई जान उन्हें माता का भय लगा। बहुत धीरज धरकर वे श्री रामचन्द्रजी को हृदय में ले आईं और (उनका ध्यान करती हुई) अपने को पिता के अधीन जानकर लौट चलीं॥4॥

श्री सीताजी का पार्वती पूजन एवं वरदान प्राप्ति तथा राम-लक्ष्मण संवाद

दोहा :

* देखन मिस मृग बिहग तरु फिरइ बहोरि बहोरि।

निरखि निरखि रघुबीर छबि बाढ़इ प्रीति न थोरि॥234॥

भावार्थ:-मृग, पक्षी और वृक्षों को देखने के बहाने सीताजी बार-बार घूम जाती हैं और श्री रामजी की छबि देख-देखकर उनका प्रेम कम नहीं बढ़ रहा है। (अर्थात् बहुत ही बढ़ता जाता है)॥234॥

चौपाई :

* जानि कठिन सिवचाप बिसूरति। चली राखि उर स्यामल मूरति॥

प्रभु जब जात जानकी जानी। सुख सनेह सोभा गुन खानी॥1॥

भावार्थ:-शिवजी के धनुष को कठोर जानकर वे विसूरती (मन में विलाप करती) हुई हृदय में श्री रामजी की साँवली मूर्ति को रखकर चलीं। (शिवजी के धनुष की कठोरता का स्मरण आने से उन्हें चिंता होती थी कि ये सुकुमार रघुनाथजी उसे कैसे तोड़ेंगे, पिता के प्रण की स्मृति से उनके हृदय में क्षोभ था ही, इसलिए मन में विलाप करने लगीं। प्रेमवश

ऐश्वर्य की विस्मृति हो जाने से ही ऐसा हुआ, फिर भगवान के बल का स्मरण आते ही वे हर्षित हो गईं और साँवली छबि को हृदय में धारण करके चलीं।) प्रभु श्री रामजी ने जब सुख, स्नेह, शोभा और गुणों की खान श्री जानकीजी को जाती हुई जाना,॥1॥

* परम प्रेममय मृदु मसि कीन्ही। चारु चित्त भीतीं लिखि लीन्ही॥
गई भवानी भवन बहोरी। बंदि चरन बोली कर जोरी॥2॥

भावार्थ:-तब परमप्रेम की कोमल स्याही बनाकर उनके स्वरूप को अपने सुंदर चित्त रूपी भित्ति पर चित्रित कर लिया। सीताजी पुनः भवानीजी के मंदिर में गईं और उनके चरणों की वंदना करके हाथ जोड़कर बोलीं-॥2॥

*जय जय गिरिबरराज किसोरी। जय महेस मुख चंद चकोरी॥
जय गजबदन षडानन माता। जगत जननि दामिनि दुति गाता॥3॥

भावार्थ:-हे श्रेष्ठ पर्वतों के राजा हिमाचल की पुत्री पार्वती! आपकी जय हो, जय हो, हे महादेवजी के मुख रूपी चन्द्रमा की (ओर टकटकी लगाकर देखने वाली) चकोरी! आपकी जय हो, हे हाथी के मुख वाले गणेशजी और छह मुख वाले स्वामिकार्तिकजी की माता! हे जगज्जननी! हे बिजली की सी कान्तियुक्त शरीर वाली! आपकी जय हो! ॥3॥

* नहिं तव आदि मध्य अवसाना। अमित प्रभाउ बेदु नहिं जाना॥
भव भव बिभव पराभव कारिनि। बिस्व बिमोहनि स्वबस बिहारिनि॥4॥

भावार्थ:-आपका न आदि है, न मध्य है और न अंत है। आपके असीम प्रभाव को वेद भी नहीं जानते। आप संसार को उत्पन्न, पालन और नाश करने वाली हैं। विश्व को मोहित करने वाली और स्वतंत्र रूप से विहार करने वाली हैं॥4॥

दोहा :

* पतिदेवता सुतीय महुँ मातु प्रथम तव रेख।
महिमा अमित न सकहिं कहि सहस सारदा सेष॥235॥

भावार्थ:-पति को इष्टदेव मानने वाली श्रेष्ठ नारियों में हे माता! आपकी प्रथम गणना है। आपकी अपार महिमा को हजारों सरस्वती और शेषजी भी नहीं कह सकते॥235॥

चौपाई :

* सेवत तोहि सुलभ फल चारी। बरदायनी पुरारि पिआरी॥
देबि पूजि पद कमल तुम्हारे। सुर नर मुनि सब होहिं सुखारे॥1॥

भावार्थ:-हे (भक्तों को मुँहमाँगा) वर देने वाली! हे त्रिपुर के शत्रु शिवजी की प्रिय पत्नी! आपकी सेवा करने से चारों फल सुलभ हो जाते हैं। हे देवी! आपके चरण कमलों की पूजा करके देवता, मनुष्य और मुनि सभी सुखी हो जाते हैं॥1॥

* मोर मनोरथु जानहु नीकें। बसहु सदा उर पुर सबही कें॥
कीन्हेउँ प्रगट न कारन तेहीं। अस कहि चरन गहे बैदेहीं॥2॥

भावार्थ:-मेरे मनोरथ को आप भलीभाँति जानती हैं, क्योंकि आप सदा सबके हृदय रूपी नगरी में निवास करती हैं। इसी कारण मैंने उसको प्रकट नहीं किया। ऐसा कहकर जानकीजी ने उनके चरण पकड़ लिए॥2॥

* बिनय प्रेम बस भई भवानी। खसी माल मूरति मुसुकानी॥
सादर सियँ प्रसादु सिर धरेऊ। बोली गौरि हरषु हियँ भरेऊ॥3॥

भावार्थ:-गिरिजाजी सीताजी के विनय और प्रेम के वश में हो गईं। उन (के गले) की माला खिसक पड़ी और मूर्ति मुस्कुराई। सीताजी ने आदरपूर्वक उस प्रसाद (माला) को सिर पर धारण किया। गौरीजी का हृदय हर्ष से भर गया और वे बोलीं-॥3॥

* सुनु सिय सत्य असीस हमारी। पूजिहि मन कामना तुम्हारी॥
नारद बचन सदा सुचि साचा। सो बरु मिलिहि जाहिं मनु राचा॥4॥

भावार्थ:-हे सीता! हमारी सच्ची आसीस सुनो, तुम्हारी मनःकामना पूरी होगी। नारदजी का वचन सदा पवित्र (संशय, भ्रम आदि दोषों से रहित) और सत्य है। जिसमें तुम्हारा मन अनुरक्त हो गया है, वही वर तुमको मिलेगा॥4॥

छन्द :

* मनु जाहिं राचेउ मिलिहि सो बरु सहज सुंदर साँवरो।
करुना निधान सुजान सीलु सनेहु जानत रावरो॥
एहि भाँति गौरि असीस सुनि सिय सहित हियँ हरषीं अली।
तुलसी भवानिहि पूजि पुनि पुनि मुदित मन मंदिर चली॥

भावार्थ:-जिसमें तुम्हारा मन अनुरक्त हो गया है, वही स्वभाव से ही सुंदर साँवला वर (श्री रामचन्द्रजी) तुमको मिलेगा। वह दया का खजाना और सुजान (सर्वज्ञ) है, तुम्हारे शील और स्नेह को जानता है। इस प्रकार श्री गौरीजी का आशीर्वाद सुनकर जानकीजी समेत सब सखियाँ हृदय में हर्षित हुईं। तुलसीदासजी कहते हैं- भवानीजी को बार-बार पूजकर सीताजी प्रसन्न मन से राजमहल को लौट चलीं॥

सोरठा :

* जानि गौरि अनुकूल सिय हिय हरषु न जाइ कहि।
मंजुल मंगल मूल बाम अंग फरकन लगे॥236॥

भावार्थ:-गौरीजी को अनुकूल जानकर सीताजी के हृदय को जो हर्ष हुआ, वह कहा नहीं जा सकता। सुंदर मंगलों के मूल उनके बाएँ अंग फड़कने लगे॥236॥

चौपाई :

* हृदयँ सराहत सीय लोनाई। गुर समीप गवने दोउ भाई॥
राम कहा सबु कौसिक पाहीं। सरल सुभाउ छुअत छल नाहीं॥1॥

भावार्थ:-हृदय में सीताजी के सौंदर्य की सराहना करते हुए दोनों भाई गुरुजी के पास गए। श्री रामचन्द्रजी ने विश्वामित्र से सब कुछ कह दिया, क्योंकि उनका सरल स्वभाव है, छल तो उसे छूता भी नहीं है॥1॥

* सुमन पाइ मुनि पूजा कीन्ही। पुनि असीस दुहु भाइन्ह दीन्ही॥
सुफल मनोरथ होहुँ तुम्हारे। रामु लखनु सुनि भय सुखारे॥2॥

भावार्थ:-फूल पाकर मुनि ने पूजा की। फिर दोनों भाइयों को आशीर्वाद दिया कि तुम्हारे मनोरथ सफल हों। यह सुनकर श्री राम-लक्ष्मण सुखी हुए॥2॥

* करि भोजनु मुनिबर बिग्यानी। लगे कहन कछु कथा पुरानी॥
बिगत दिवसु गुरु आयसु पाई। संध्या करन चले दोउ भाई॥3॥

भावार्थ:-श्रेष्ठ विज्ञानी मुनि विश्वामित्रजी भोजन करके कुछ प्राचीन कथाएँ कहने लगे। (इतने में) दिन बीत गया और गुरु की आज्ञा पाकर दोनों भाई संध्या करने चले॥3॥

* प्राची दिसि ससि उयउ सुहावा। सिय मुख सरिस देखि सुखु पावा॥
बहुरि बिचारु कीन्ह मन माहीं। सीय बदन सम हिमकर नाहीं॥4॥

भावार्थ:-(उधर) पूर्व दिशा में सुंदर चन्द्रमा उदय हुआ। श्री रामचन्द्रजी ने उसे सीता के मुख के समान देखकर सुख पाया। फिर मन में विचार किया कि यह चन्द्रमा सीताजी के मुख के समान नहीं है॥4॥

दोहा :

* जनमु सिंधु पुनि बंधु बिषु दिन मलीन सकलंक।
सिय मुख समता पाव किमि चंदु बापुरो रंक॥237॥

भावार्थ:-खारे समुद्र में तो इसका जन्म, फिर (उसी समुद्र से उत्पन्न होने के कारण) विष इसका भाई, दिन में यह मलिन (शोभाहीन, निस्तेज) रहता है, और कलंकी (काले दाग से युक्त) है। बेचारा गरीब चन्द्रमा सीताजी के मुख की बराबरी कैसे पा सकता है?॥237॥

चौपाई :

* घटइ बढ़इ बिरहिनि दुखदाई। ग्रसइ राहु निज संधिहिं पाई॥
कोक सोकप्रद पंकज द्रोही। अवगुन बहुत चंद्रमा तोही॥1॥

भावार्थ:-फिर यह घटता-बढ़ता है और विरहिणी स्त्रियों को दुःख देने वाला है, राहु अपनी संधि में पाकर इसे ग्रस लेता है। चकवे को (चकवी के वियोग का) शोक देने वाला और कमल का बैरी (उसे मुरझा देने वाला) है। हे चन्द्रमा! तुझमें बहुत से अवगुण हैं (जो सीताजी में नहीं हैं।)॥1॥

* बैदेही मुख पटतर दीन्हे। होइ दोषु बड़ अनुचित कीन्हे॥
सिय मुख छबि बिधु ब्याज बखानी। गुर पहिं चले निसा बड़ि जानी॥2॥

भावार्थ:-अतः जानकीजी के मुख की तुझे उपमा देने में बड़ा अनुचित कर्म करने का दोष लगेगा। इस प्रकार चन्द्रमा के बहाने सीताजी के मुख की छबि का वर्णन करके, बड़ी रात हो गई जान, वे गुरुजी के पास चले॥2॥

* करि मुनि चरन सरोज प्रनामा। आयसु पाइ कीन्ह बिश्रामा॥
बिगत निसा रघुनायक जागे। बंधु बिलोकि कहन अस लागे॥3॥

भावार्थ:-मुनि के चरण कमलों में प्रणाम करके, आज्ञा पाकर उन्होंने विश्राम किया, रात बीतने पर श्री रघुनाथजी जागे और भाई को देखकर ऐसा कहने लगे-॥3॥

* उयउ अरुन अवलोकहु ताता। पंकज कोक लोक सुखदाता॥
बोले लखनु जोरि जुग पानी। प्रभु प्रभाउ सूचक मृदु बानी॥4॥

भावार्थ:-हे तात! देखो, कमल, चक्रवाक और समस्त संसार को सुख देने वाला अरुणोदय हुआ है। लक्ष्मणजी दोनों हाथ जोड़कर प्रभु के प्रभाव को सूचित करने वाली कोमल वाणी बोले-॥4॥

दोहा :

* अरुनोदयँ सकुचे कुमुद उडगन जोति मलीन।
जिमि तुम्हार आगमन सुनि भए नृपति बलहीन॥238॥

भावार्थ:-अरुणोदय होने से कुमुदिनी सकुचा गई और तारागणों का प्रकाश फीका पड़ गया, जिस प्रकार आपका आना सुनकर सब राजा बलहीन हो गए हैं॥238॥

चौपाई :

* नृप सब नखत करहिं उजिआरी। टारि न सकहिं चाप तम भारी॥
कमल कोक मधुकर खग नाना। हरषे सकल निसा अवसाना॥1॥

भावार्थ:-सब राजा रूपी तारे उजाला (मंद प्रकाश) करते हैं, पर वे धनुष रूपी महान अंधकार को हटा नहीं सकते। रात्रि का अंत होने से जैसे कमल, चकवे, भौंरे और नाना प्रकार के पक्षी हर्षित हो रहे हैं॥1॥

* ऐसेहिं प्रभु सब भगत तुम्हारे। होइहहिं टूटें धनुष सुखारे॥
उयउ भानु बिनु श्रम तम नासा। दुरे नखत जग तेजु प्रकासा॥2॥

भावार्थ:-वैसे ही हे प्रभो! आपके सब भक्त धनुष टूटने पर सुखी होंगे। सूर्य उदय हुआ, बिना ही परिश्रम अंधकार नष्ट हो गया। तारे छिप गए, संसार में तेज का प्रकाश हो गया॥2॥

* रबि निज उदय ब्याज रघुराया। प्रभु प्रतापु सब नृपन्ह दिखाया॥

तव भुज बल महिमा उदघाटी। प्रगटी धनु बिघटन परिपाटी।3॥
भावार्थ:-हे रघुनाथजी! सूर्य ने अपने उदय के बहाने सब राजाओं को प्रभु (आप) का प्रताप दिखलाया है। आपकी भुजाओं के बल की महिमा को उद्घाटित करने (खोलकर दिखाने) के लिए ही धनुष तोड़ने की यह पद्धति प्रकट हुई है॥3॥

* बंधु बचन सुनि प्रभु मुसुकाने। होइ सुचि सहज पुनीत नहाने॥

कनित्यक्रिया करि गरु पहिं आए। चरन सरोज सुभग सिर नाए॥4॥
भावार्थ:-भाई के वचन सुनकर प्रभु मुस्कुराए। फिर स्वभाव से ही पवित्र श्री रामजी ने शौच से निवृत्त होकर स्नान किया और नित्यकर्म करके वे गुरुजी के पास आए। आकर उन्होंने गुरुजी के सुंदर चरण कमलों में सिर नवाया॥4॥

* सतानंदु तब जनक बोलाए। कौसिक मुनि पहिं तुरत पठाए॥

जनक बिनय तिन्ह आइ सुनाई। हरषे बोलि लिए दोउ भाई॥5॥
भावार्थ:- तब जनकजी ने शतानंदजी को बुलाया और उन्हें तुरंत ही विश्वामित्र मुनि के पास भेजा। उन्होंने आकर जनकजी की विनती सुनाई। विश्वामित्रजी ने हर्षित होकर दोनों भाइयों को बुलाया॥5॥
दोहा :
* सतानंद पद बंदि प्रभु बैठे गुर पहिं जाइ।

चलहु तात मुनि कहेउ तब पठवा जनक बोलाइ॥239॥
भावार्थ:-शतानन्दजी के चरणों की वंदना करके प्रभु श्री रामचन्द्रजी गुरुजी के पास जा बैठे। तब मुनि ने कहा- हे तात! चलो, जनकजी ने बुला भेजा है॥239॥

मासपारायण, आठवाँ विश्राम

नवाह्न पारायण, दूसरा विश्राम

श्री राम-लक्ष्मण सहित विश्वामित्र का यज्ञशाला में प्रवेश

चौपाई :

* सीय स्वयंबरू देखिअ जाई। ईसु काहि धौं देइ बड़ाई॥
लखन कहा जस भाजनु सोई। नाथ कृपा तव जापर होई॥1॥

भावार्थ:-चलकर सीताजी के स्वयंवर को देखना चाहिए। देखें ईश्वर किसको बड़ाई देते हैं। लक्ष्मणजी ने कहा- हे नाथ! जिस पर आपकी कृपा होगी, वही बड़ाई का पात्र होगा (धनुष तोड़ने का श्रेय उसी को प्राप्त होगा)॥1॥

* हरषे मुनि सब सुनि बर बानी। दीन्हि असीस सबहिं सुखु मानी॥
पुनि मुनिबृंद समेत कृपाला। देखन चले धनुषमख साला॥2॥

भावार्थ:-इस श्रेष्ठ वाणी को सुनकर सब मुनि प्रसन्न हुए। सभी ने सुख मानकर आशीर्वाद दिया। फिर मुनियों के समूह सहित कृपालु श्री रामचन्द्रजी धनुष यज्ञशाला देखने चले॥2॥

* रंगभूमि आए दोउ भाई। असि सुधि सब पुरबासिन्ह पाई॥
चले सकल गृह काज बिसारी। बाल जुबान जरठ नर नारी॥3॥

भावार्थ:-दोनों भाई रंगभूमि में आए हैं, ऐसी खबर जब सब नगर निवासियों ने पाई, तब बालक, जवान, बूढ़े, स्त्री, पुरुष सभी घर और काम-काज को भुलाकर चल दिए॥3॥

* देखी जनक भीर भै भारी। सुचि सेवक सब लिए हँकारी॥
तुरत सकल लोगन्ह पहिं जाहू। आसन उचित देहु सब काहू॥4॥

भावार्थ:-जब जनकजी ने देखा कि बड़ी भीड़ हो गई है, तब उन्होंने सब विश्वासपात्र सेवकों को बुलवा लिया और कहा- तुम लोग तुरंत सब लोगों के पास जाओ और सब किसी को यथायोग्य आसन दो॥4॥

दोहा :

* कहि मृदु बचन बिनीत तिन्ह बैठारे नर नारि।
उत्तम मध्यम नीच लघु निज निज थल अनुहारि॥240॥

भावार्थ:-उन सेवकों ने कोमल और नम्र वचन कहकर उत्तम, मध्यम, नीच और लघु (सभी श्रेणी के) स्त्री-पुरुषों को अपने-अपने योग्य स्थान पर बैठाया॥240॥

चौपाई :

* राजकुअँर तेहि अवसर आए। मनहुँ मनोहरता तन छाए॥
गुन सागर नागर बर बीरा। सुंदर स्यामल गौर सरीरा॥1॥

भावार्थ:-उसी समय राजकुमार (राम और लक्ष्मण) वहाँ आए। (वे ऐसे सुंदर हैं) मानो साक्षात मनोहरता ही उनके शरीरों पर छा रही हो। सुंदर साँवला और गोरा उनका शरीर है। वे गुणों के समुद्र, चतुर और उत्तम वीर हैं॥1॥

* राज समाज बिराजत रूरे। उडगन महुँ जनु जुग बिधु पूरे॥
जिन्ह कें रही भावना जैसी। प्रभु मूरति तिन्ह देखी तैसी॥2॥

भावार्थ:-वे राजाओं के समाज में ऐसे सुशोभित हो रहे हैं, मानो तारागणों के बीच दो पूर्ण चन्द्रमा हों। जिनकी जैसी भावना थी, प्रभु की मूर्ति उन्होंने वैसी ही देखी॥2॥

* देखहिं रूप महा रनधीरा। मनहुँ बीर रसु धरें सरीरा॥
डरे कुटिल नृप प्रभुहि निहारी। मनहुँ भयानक मूरति भारी॥3॥

भावार्थ:-महान रणधीर (राजा लोग) श्री रामचन्द्रजी के रूप को ऐसा देख रहे हैं, मानो स्वयं वीर रस शरीर धारण किए हुए हों। कुटिल राजा प्रभु को देखकर डर गए, मानो बड़ी भयानक मूर्ति हो॥3॥

* रहे असुर छल छोनिप बेषा। तिन्ह प्रभु प्रगट कालसम देखा।

पुरबासिन्ह देखे दोउ भाई। नरभूषन लोचन सुखदाई॥4॥

भावार्थ:-छल से जो राक्षस वहाँ राजाओं के वेष में (बैठे) थे, उन्होंने प्रभु को प्रत्यक्ष काल के समान देखा। नगर निवासियों ने दोनों भाइयों को मनुष्यों के भूषण रूप और नेत्रों को सुख देने वाला देखा॥4॥

दोहा :

* नारि बिलोकहिं हरषि हियँ निज-निज रुचि अनुरूप।
जनु सोहत सिंगार धरि मूरति परम अनूप॥241॥

भावार्थ:-स्त्रियाँ हृदय में हर्षित होकर अपनी-अपनी रुचि के अनुसार उन्हें देख रही हैं। मानो श्रृंगार रस ही परम अनुपम मूर्ति धारण किए सुशोभित हो रहा हो॥241॥

चौपाई :

* बिदुषन्ह प्रभु बिराटमय दीसा। बहु मुख कर पग लोचन सीसा॥
जनक जाति अवलोकहिं कैसें। सजन सगे प्रिय लागहिं जैसें॥1॥

भावार्थ:-विद्वानों को प्रभु विराट रूप में दिखाई दिए, जिसके बहुत से मुँह, हाथ, पैर, नेत्र और सिर हैं। जनकजी के सजातीय (कुटुम्बी) प्रभु को किस तरह (कैसे प्रिय रूप में) देख रहे हैं, जैसे सगे सजन (संबंधी) प्रिय लगते हैं॥1॥

* सहित बिदेह बिलोकहिं रानी। सिसु सम प्रीति न जाति बखानी॥
जोगिन्ह परम तत्वमय भासा। सांत सुद्ध सम सहज प्रकासा॥2॥

भावार्थ:-जनक समेत रानियाँ उन्हें अपने बच्चे के समान देख रही हैं, उनकी प्रीति का वर्णन नहीं किया जा सकता। योगियों को वे शांत, शुद्ध, सम और स्वतः प्रकाश परम तत्व के रूप में दिखे॥2॥

* हरिभगतन्ह देखे दोउ भ्राता। इष्टदेव इव सब सुख दाता॥

रामहि चितव भायँ जेहि सीया। सो सनेहु सुखु नहिं कथनीया॥3॥

भावार्थ:-हरि भक्तों ने दोनों भाइयों को सब सुखों के देने वाले इष्ट देव के समान देखा। सीताजी जिस भाव से श्री रामचन्द्रजी को देख रही हैं, वह स्नेह और सुख तो कहने में ही नहीं आता॥3॥

* उर अनुभवति न कहि सक सोऊ। कवन प्रकार कहै कबि कोऊ॥
एहि बिधि रहा जाहि जस भाऊ। तेहिं तस देखेउ कोसलराऊ॥4॥

भावार्थ:-उस (स्नेह और सुख) का वे हृदय में अनुभव कर रही हैं, पर वे भी उसे कह नहीं सकतीं। फिर कोई कवि उसे किस प्रकार कह सकता है। इस प्रकार जिसका जैसा भाव था, उसने कोसलाधीश श्री रामचन्द्रजी को वैसा ही देखा॥4॥

दोहा :

* राजत राज समाज महुँ कोसलराज किसोर।
सुंदर स्यामल गौर तन बिस्व बिलोचन चोर॥242॥

भावार्थ:-सुंदर साँवले और गोरे शरीर वाले तथा विश्वभर के नेत्रों को चुराने वाले कोसलाधीश के कुमार राज समाज में (इस प्रकार) सुशोभित हो रहे हैं॥242॥

चौपाई :

* सहज मनोहर मूरति दोऊ। कोटि काम उपमा लघु सोऊ॥
सरद चंद निंदक मुख नीके। नीरज नयन भावते जी के॥1॥

भावार्थ:-दोनों मूर्तियाँ स्वभाव से ही (बिना किसी बनाव-श्रृंगार के) मन को हरने वाली हैं। करोड़ों कामदेवों की उपमा भी उनके लिए तुच्छ है। उनके सुंदर मुख शरद् (पूर्णिमा) के चन्द्रमा की भी निंदा करने वाले (उसे नीचा दिखाने वाले) हैं और कमल के समान नेत्र मन को बहुत ही भाते हैं॥1॥

* चितवनि चारु मार मनु हरनी। भावति हृदय जाति नहिं बरनी॥
कल कपोल श्रुति कुंडल लोला। चिबुक अधर सुंदर मृदु बोला॥2॥

भावार्थ:-सुंदर चितवन (सारे संसार के मन को हरने वाले) कामदेव के भी मन को हरने वाली है। वह हृदय को बहुत ही प्यारी लगती है, पर उसका वर्णन नहीं किया जा सकता। सुंदर गाल हैं, कानों में चंचल (झूमते हुए) कुंडल हैं। ठोड़ और अधर (होठ) सुंदर हैं, कोमल वाणी है॥2॥

* कुमुदबंधु कर निंदक हाँसा। भृकुटी बिकट मनोहर नासा॥
भाल बिसाल तिलक झलकाहीं। कच बिलोकि अलि अवलि लजाहीं॥3॥

भावार्थ:-हँसी, चन्द्रमा की किरणों का तिरस्कार करने वाली है। भौंहें टेढ़ी और नासिका मनोहर है। (ऊँचे) चौड़े ललाट पर तिलक झलक रहे हैं (दीप्तिमान हो रहे हैं)। (काले घुँघराले) बालों को देखकर भौंरों की पंक्तियाँ भी लजा जाती हैं॥3॥

* पीत चौतनीं सिरन्हि सुहाईं। कुसुम कलीं बिच बीच बनाईं॥
रेखें रुचिर कंबु कल गीवाँ। जनु त्रिभुवन सुषमा की सीवाँ॥4॥

भावार्थ:-पीली चौकोनी टोपियाँ सिरों पर सुशोभित हैं, जिनके बीच-बीच में फूलों की कलियाँ बनाई (काढ़ी) हुई हैं। शंख के समान सुंदर (गोल) गले में मनोहर तीन रेखाएँ हैं, जो मानो तीनों लोकों की सुंदरता की सीमा (को बता रही) हैं॥4॥

दोहा :
* कुंजर मनि कंठा कलित उरन्हि तुलसिका माल।
बृषभ कंध केहरि ठवनि बल निधि बाहु बिसाल॥243॥

भावार्थ:-हृदयों पर गजमुक्ताओं के सुंदर कंठे और तुलसी की मालाएँ सुशोभित हैं। उनके कंधे बैलों के कंधे की तरह (ऊँचे तथा पुष्ट) हैं, ऐंड़ (खड़े होने की शान) सिंह की सी है और भुजाएँ विशाल एवं बल की भंडार हैं॥243॥

चौपाई :

* कटि तूनीर पीत पट बाँधें। कर सर धनुष बाम बर काँधें॥
पीत जग्य उपबीत सुहाए। नख सिख मंजु महाछबि छाए॥1॥

भावार्थ:-कमर में तरकस और पीताम्बर बाँधे हैं। (दाहिने) हाथों में बाण और बाएँ सुंदर कंधों पर धनुष तथा पीले यज्ञोपवीत (जनेऊ) सुशोभित हैं। नख से लेकर शिखा तक सब अंग सुंदर हैं, उन पर महान शोभा छाई हुई है॥1॥

* देखि लोग सब भए सुखारे। एकटक लोचन चलत न तारे॥
हरषे जनकु देखि दोउ भाई। मुनि पद कमल गहे तब जाई॥2॥

भावार्थ:-उन्हें देखकर सब लोग सुखी हुए। नेत्र एकटक (निमेष शून्य) हैं और तारे (पुतलियाँ) भी नहीं चलते। जनकजी दोनों भाइयों को देखकर हर्षित हुए। तब उन्होंने जाकर मुनि के चरण कमल पकड़ लिए॥2॥

* करि बिनती निज कथा सुनाई। रंग अवनि सब मुनिहि देखाई॥
जहँ जहँ जाहिं कुअँर बर दोऊ। तहँ तहँ चकित चितव सबु कोऊ॥3॥

भावार्थ:-विनती करके अपनी कथा सुनाई और मुनि को सारी रंगभूमि (यज्ञशाला) दिखलाई। (मुनि के साथ) दोनों श्रेष्ठ राजकुमार जहाँ-जहाँ जाते हैं, वहाँ-वहाँ सब कोई आश्चर्यचकित हो देखने लगते हैं॥3॥

* निज निज रुख रामहि सबु देखा। कोउ न जान कछु मरमु बिसेषा॥
भलि रचना मुनि नृप सन कहेऊ। राजाँ मुदित महासुख लहेऊ॥4॥

भावार्थ:-सबने रामजी को अपनी-अपनी ओर ही मुख किए हुए देखा, परन्तु इसका कुछ भी विशेष रहस्य कोई नहीं जान सका। मुनि ने राजा से कहा- रंगभूमि की रचना बड़ी सुंदर है (विश्वामित्र- जैसे निःस्पृह, विरक्त और ज्ञानी मुनि से रचना की प्रशंसा सुनकर) राजा प्रसन्न हुए और उन्हें बड़ा सुख मिला॥4॥

दोहा :

* सब मंचन्ह तें मंचु एक सुंदर बिसद बिसाल।
मुनि समेत दोउ बंधु तहँ बैठारे महिपाल॥244॥

भावार्थ:-सब मंचों से एक मंच अधिक सुंदर, उज्ज्वल और विशाल था। (स्वयं) राजा ने मुनि सहित दोनों भाइयों को उस पर बैठाया॥244॥

चौपाई :

* प्रभुहि देखि सब नृप हियँ हारे। जनु राकेश उदय भएँ तारे॥
असि प्रतीति सब के मन माहीं। राम चाप तोरब सक नाहीं॥1॥

भावार्थ:- प्रभु को देखकर सब राजा हृदय में ऐसे हार गए (निराश एवं उत्साहहीन हो गए) जैसे पूर्ण चन्द्रमा के उदय होने पर तारे प्रकाशहीन हो जाते हैं। (उनके तेज को देखकर) सबके मन में ऐसा विश्वास हो गया कि रामचन्द्रजी ही धनुष को तोड़ेंगे, इसमें संदेह नहीं॥1॥

* बिनु भंजेहुँ भव धनुषु बिसाला। मेलिहि सीय राम उर माला॥
अस बिचारि गवनहु घर भाई। जसु प्रतापु बलु तेजु गवाँई॥2॥

भावार्थ:-(इधर उनके रूप को देखकर सबके मन में यह निश्चय हो गया कि) शिवजी के विशाल धनुष को (जो संभव है न टूट सके) बिना तोड़े भी सीताजी श्री रामचन्द्रजी के ही गले में जयमाला डालेंगी (अर्थात दोनों तरह से ही हमारी हार होगी और विजय रामचन्द्रजी के हाथ

रहेगी)। (यों सोचकर वे कहने लगे) हे भाई! ऐसा विचारकर यश, प्रताप, बल और तेज गँवाकर अपने-अपने घर चलो॥2॥

* बिहसे अपर भूप सुनि बानी। जे अबिबेक अंध अभिमानी॥
तोरेहुँ धनुषु ब्याहु अवगाहा। बिनु तोरें को कुअँरि बिआहा॥3॥

भावार्थ:-दूसरे राजा, जो अविवेक से अंधे हो रहे थे और अभिमानी थे, यह बात सुनकर बहुत हँसे। (उन्होंने कहा) धनुष तोड़ने पर भी विवाह होना कठिन है (अर्थात सहज ही में हम जानकी को हाथ से जाने नहीं देंगे), फिर बिना तोड़े तो राजकुमारी को ब्याह ही कौन सकता है॥3॥

* एक बार कालउ किन होऊ। सिय हित समर जितब हम सोऊ॥
यह सुनि अवर महिप मुसुकाने। धरमसील हरिभगत सयाने॥4॥

भावार्थ:-काल ही क्यों न हो, एक बार तो सीता के लिए उसे भी हम युद्ध में जीत लेंगे। यह घमंड की बात सुनकर दूसरे राजा, जो धर्मात्मा, हरिभक्त और सयाने थे, मुस्कुराए॥4॥

सोरठा :

* सीय बिआहबि राम गरब दूरि करि नृपन्ह के।
जीति को सक संग्राम दसरथ के रन बाँकुरे॥245॥

भावार्थ:-(उन्होंने कहा-) राजाओं के गर्व दूर करके (जो धनुष किसी से नहीं टूट सकेगा उसे तोड़कर) श्री रामचन्द्रजी सीताजी को ब्याहेंगे। (रही युद्ध की बात, सो) महाराज दशरथ के रण में बाँके पुत्रों को युद्ध में तो जीत ही कौन सकता है॥245॥

चौपाई :

* ब्यर्थ मरहु जनि गाल बजाई। मन मोदकन्हि कि भूख बुताई॥
सिख हमारि सुनि परम पुनीता। जगदंबा जानहु जियँ सीता॥1॥

भावार्थ:-गाल बजाकर व्यर्थ ही मत मरो। मन के लड्डुओं से भी कहीं भूख बुझती है? हमारी परम पवित्र (निष्कपट) सीख को सुनकर सीताजी को अपने जी में साक्षात जगज्जननी समझो (उन्हें पत्नी रूप में पाने की आशा एवं लालसा छोड़ दो),॥1॥

* जगत पिता रघुपतिहि बिचारी। भरि लोचन छबि लेहु निहारी॥
सुंदर सुखद सकल गुन रासी। ए दोउ बंधु संभु उर बासी॥2॥

भावार्थ:-और श्री रघुनाथजी को जगत का पिता (परमेश्वर) विचार कर, नेत्र भरकर उनकी छबि देख लो (ऐसा अवसर बार-बार नहीं मिलेगा)। सुंदर, सुख देने वाले और समस्त गुणों की राशि ये दोनों भाई शिवजी के हृदय में बसने वाले हैं (स्वयं शिवजी भी जिन्हें सदा हृदय में छिपाए रखते हैं, वे तुम्हारे नेत्रों के सामने आ गए हैं)॥2॥

* सुधा समुद्र समीप बिहाई। मृगजलु निरखि मरहु कत धाई॥
करहु जाइ जा कहुँ जोइ भावा। हम तौ आजु जनम फलु पावा॥3॥

भावार्थ:-समीप आए हुए (भगवत्दजर्शन रूप) अमृत के समुद्र को छोड़कर तुम (जगज्जननी जानकी को पत्नी रूप में पाने की दुराशा रूप मिथ्या) मृगजल को देखकर दौड़कर क्यों मरते हो? फिर (भाई!) जिसको जो अच्छा लगे, वही जाकर करो। हमने तो (श्री रामचन्द्रजी के दर्शन करके) आज जन्म लेने का फल पा लिया (जीवन और जन्म को सफल कर लिया)॥3॥

* अस कहि भले भूप अनुरागे। रूप अनूप बिलोकन लागे॥
देखहिं सुर नभ चढ़े बिमाना। बरषहिं सुमन करहिं कल गाना॥4॥

भावार्थ:-ऐसा कहकर अच्छे राजा प्रेम मग्न होकर श्री रामजी का अनुपम रूप देखने लगे। (मनुष्यों की तो बात ही क्या) देवता लोग भी आकाश

से विमानों पर चढ़े हुए दर्शन कर रहे हैं और सुंदर गान करते हुए फूल बरसा रहे हैं॥4॥

श्री सीताजी का यज्ञशाला में प्रवेश

दोहा :

* जानि सुअवसरु सीय तब पठई जनक बोलाइ।
चतुर सखीं सुंदर सकल सादर चलीं लिवाइ॥246॥

भावार्थ:-तब सुअवसर जानकर जनकजी ने सीताजी को बुला भेजा। सब चतुर और सुंदर सखियाँ आरदपूर्वक उन्हें लिवा चलीं॥246॥

चौपाई :

* सिय सोभा नहिं जाइ बखानी। जगदंबिका रूप गुन खानी॥
उपमा सकल मोहि लघु लागीं। प्राकृत नारि अंग अनुरागीं॥1॥

भावार्थ:-रूप और गुणों की खान जगज्जननी जानकीजी की शोभा का वर्णन नहीं हो सकता। उनके लिए मुझे (काव्य की) सब उपमाएँ तुच्छ लगती हैं, क्योंकि वे लौकिक स्त्रियों के अंगों से अनुराग रखने वाली हैं (अर्थात्‌ वे जगत की स्त्रियों के अंगों को दी जाती हैं)। (काव्य की उपमाएँ सब त्रिगुणात्मक, मायिक जगत से ली गई हैं, उन्हें भगवान की स्वरूपा शक्ति श्री जानकीजी के अप्राकृत, चिन्मय अंगों के लिए प्रयुक्त करना उनका अपमान करना और अपने को उपहासास्पद बनाना है)॥1॥

* सिय बरनिअ तेइ उपमा देई। कुकबि कहाइ अजसु को लेई॥
जौं पटतरिअ तीय सम सीया। जग असि जुबति कहाँ कमनीया॥2॥

भावार्थ:-सीताजी के वर्णन में उन्हीं उपमाओं को देकर कौन कुकवि कहलाए और अपयश का भागी बने (अर्थात सीताजी के लिए उन उपमाओं का प्रयोग करना सुकवि के पद से च्युत होना और अपकीर्ति मोल लेना है, कोई भी सुकवि ऐसी नादानी एवं अनुचित कार्य नहीं

करेगा।) यदि किसी स्त्री के साथ सीताजी की तुलना की जाए तो जगत में ऐसी सुंदर युवती है ही कहाँ (जिसकी उपमा उन्हें दी जाए)॥2॥

* गिरा मुखर तन अरध भवानी। रति अति दुखित अतनु पति जानी॥
बिष बारुनी बंधु प्रिय जेही। कहिअ रमासम किमि बैदेही॥3॥

भावार्थ:-(पृथ्वी की स्त्रियों की तो बात ही क्या, देवताओं की स्त्रियों को भी यदि देखा जाए तो हमारी अपेक्षा कहीं अधिक दिव्य और सुंदर हैं, तो उनमें) सरस्वती तो बहुत बोलने वाली हैं, पार्वती अंर्द्धांगिनी हैं (अर्थात अर्ध-नारीनटेश्वर के रूप में उनका आधा ही अंग स्त्री का है, शेष आधा अंग पुरुष-शिवजी का है), कामदेव की स्त्री रति पति को बिना शरीर का (अनंग) जानकर बहुत दुःखी रहती है और जिनके विष और मद्य-जैसे (समुद्र से उत्पन्न होने के नाते) प्रिय भाई हैं, उन लक्ष्मी के समान तो जानकीजी को कहा ही कैसे जाए॥3॥

* जौं छबि सुधा पयोनिधि होई। परम रूपमय कच्छपु सोई॥
सोभा रजु मंदरु सिंगारू। मथै पानि पंकज निज मारू॥4॥

भावार्थ:-(जिन लक्ष्मीजी की बात ऊपर कही गई है, वे निकली थीं खारे समुद्र से, जिसको मथने के लिए भगवान ने अति कर्कश पीठ वाले कच्छप का रूप धारण किया, रस्सी बनाई गई महान विषधर वासुकि नाग की, मथानी का कार्य किया अतिशय कठोर मंदराचल पर्वत ने और उसे मथा सारे देवताओं और दैत्यों ने मिलकर। जिन लक्ष्मी को अतिशय शोभा की खान और अनुपम सुंदरी कहते हैं, उनको प्रकट करने में हेतु बने ये सब असुंदर एवं स्वाभाविक ही कठोर उपकरण। ऐसे उपकरणों से प्रकट हुई लक्ष्मी श्री जानकीजी की समता को कैसे पा सकती हैं। हाँ, (इसके विपरीत) यदि छबि रूपी अमृत का समुद्र हो, परम रूपमय

कच्छप हो, शोभा रूप रस्सी हो, श्रृंगार (रस) पर्वत हो और (उस छबि के समुद्र को) स्वयं कामदेव अपने ही करकमल से मथे,॥4॥

दोहा :

* एहि बिधि उपजै लच्छि जब सुंदरता सुख मूल।
तदपि सकोच समेत कबि कहहिं सीय समतूल॥247॥

भावार्थ:-इस प्रकार (का संयोग होने से) जब सुंदरता और सुख की मूल लक्ष्मी उत्पन्न हो, तो भी कवि लोग उसे (बहुत) संकोच के साथ सीताजी के समान कहेंगे॥247॥<

(जिस सुंदरता के समुद्र को कामदेव मथेगा वह सुंदरता भी प्राकृत, लौकिक सुंदरता ही होगी, क्योंकि कामदेव स्वयं भी त्रिगुणमयी प्रकृति का ही विकार है। अतः उस सुंदरता को मथकर प्रकट की हुई लक्ष्मी भी उपर्युक्त लक्ष्मी की अपेक्षा कहीं अधिक सुंदर और दिव्य होने पर भी होगी प्राकृत ही, अतः उसके साथ भी जानकीजी की तुलना करना कवि के लिए बड़े संकोच की बात होगी। जिस सुंदरता से जानकीजी का दिव्यातिदिव्य परम दिव्य विग्रह बना है, वह सुंदरता उपर्युक्त सुंदरता से भिन्न अप्राकृत है- वस्तुतः लक्ष्मीजी का अप्राकृत रूप भी यही है। वह कामदेव के मथने में नहीं आ सकती और वह जानकीजी का स्वरूप ही है, अतः उनसे भिन्न नहीं और उपमा दी जाती है भिन्न वस्तु के साथ। इसके अतिरिक्त जानकीजी प्रकट हुई हैं स्वयं अपनी महिमा से, उन्हें प्रकट करने के लिए किसी भिन्न उपकरण की अपेक्षा नहीं है। अर्थात शक्ति शक्तिमान से अभिन्न, अद्वैत तत्व है, अतएव अनुपमेय है, यही गूढ़ दार्शनिक तत्व भक्त शिरोमणि कवि ने इस अभूतोपमालंकार के द्वारा बड़ी सुंदरता से व्यक्त किया है।)

चौपाई :

* चलीं संग लै सखीं सयानी। गावत गीत मनोहर बानी॥
सोह नवल तनु सुंदर सारी। जगत जननि अतुलित छबि भारी॥1॥

भावार्थ:-सयानी सखियाँ सीताजी को साथ लेकर मनोहर वाणी से गीत गाती हुई चलीं। सीताजी के नवल शरीर पर सुंदर साड़ी सुशोभित है। जगज्जननी की महान छबि अतुलनीय है॥1॥

* भूषन सकल सुदेस सुहाए। अंग अंग रचि सखिन्ह बनाए॥
रंगभूमि जब सिय पगु धारी। देखि रूप मोहे नर नारी॥2॥

भावार्थ:-सब आभूषण अपनी-अपनी जगह पर शोभित हैं, जिन्हें सखियों ने अंग-अंग में भलीभाँति सजाकर पहनाया है। जब सीताजी ने रंगभूमि में पैर रखा, तब उनका (दिव्य) रूप देखकर स्त्री, पुरुष सभी मोहित हो गए॥2॥

*हरषि सुरन्ह दुंदुभीं बजाईं। बरषि प्रसून अपछरा गाईं॥
पानि सरोज सोह जयमाला। अवचट चितए सकल भुआला॥3॥

भावार्थ:-देवताओं ने हर्षित होकर नगाड़े बजाए और पुष्प बरसाकर अप्सराएँ गाने लगीं। सीताजी के करकमलों में जयमाला सुशोभित है। सब राजा चकित होकर अचानक उनकी ओर देखने लगे॥3॥

* सीय चकित चित रामहि चाहा। भए मोहबस सब नरनाहा॥
मुनि समीप देखे दोउ भाई। लगे ललकि लोचन निधि पाई॥4॥

भावार्थ:-सीताजी चकित चित्त से श्री रामजी को देखने लगीं, तब सब राजा लोग मोह के वश हो गए। सीताजी ने मुनि के पास (बैठे हुए) दोनों भाइयों को देखा तो उनके नेत्र अपना खजाना पाकर ललचाकर वहीं (श्री रामजी में) जा लगे (स्थिर हो गए)॥4॥

दोहा :

* गुरजन लाज समाजु बड़ देखि सीय सकुचानि।

लागि बिलोकन सखिन्ह तन रघुबीरहि उर आनि॥248॥

भावार्थ:-परन्तु गुरुजनों की लाज से तथा बहुत बड़े समाज को देखकर सीताजी सकुचा गईं। वे श्री रामचन्द्रजी को हृदय में लाकर सखियों की ओर देखने लगीं॥248॥

चौपाई :

* राम रूपु अरु सिय छबि देखें। नर नारिन्ह परिहरीं निमेषें॥
सोचहिं सकल कहत सकुचाहीं। बिधि सन बिनय करहिं मन माहीं॥1॥

भावार्थ:-श्री रामचन्द्रजी का रूप और सीताजी की छबि देखकर स्त्री-पुरुषों ने पलक मारना छोड़ दिया (सब एकटक उन्हीं को देखने लगे)। सभी अपने मन में सोचते हैं, पर कहते सकुचाते हैं। मन ही मन वे विधाता से विनय करते हैं-॥1॥

* हरु बिधि बेगि जनक जड़ताई। मति हमारि असि देहि सुहाई॥
बिनु बिचार पनु तजि नरनाहू। सीय राम कर करै बिबाहू॥2॥

भावार्थ:-हे विधाता! जनक की मूढ़ता को शीघ्र हर लीजिए और हमारी ही ऐसी सुंदर बुद्धि उन्हें दीजिए कि जिससे बिना ही विचार किए राजा अपना प्रण छोड़कर सीताजी का विवाह रामजी से कर दें॥2॥

*जगु भल कहिहि भाव सब काहू। हठ कीन्हें अंतहुँ उर दाहू॥
एहिं लालसाँ मगन सब लोगू। बरु साँवरो जानकी जोगू॥3॥

भावार्थ:-संसार उन्हें भला कहेगा, क्योंकि यह बात सब किसी को अच्छी लगती है। हठ करने से अंत में भी हृदय जलेगा। सब लोग इसी लालसा में मग्न हो रहे हैं कि जानकीजी के योग्य वर तो यह साँवला ही है॥3॥

बंदीजनों द्वारा जनकप्रतिज्ञा की घोषणा राजाओं से धनुष न उठना, जनक की निराशाजनक वाणी

* तब बंदीजन जनक बोलाए। बिरिदावली कहत चलि आए॥

कह नृपु जाइ कहहु पन मोरा। चले भाट हियँ हरषु न थोरा॥4॥

भावार्थ:-तब राजा जनक ने वंदीजनों (भाटों) को बुलाया। वे विरुदावली (वंश की कीर्ति) गाते हुए चले आए। राजा ने कहा- जाकर मेरा प्रण सबसे कहो। भाट चले, उनके हृदय में कम आनंद न था॥4॥

दोहा :

* बोले बंदी बचन बर सुनहु सकल महिपाल।
पन बिदेह कर कहहिं हम भुजा उठाइ बिसाल॥249॥

भावार्थ:-भाटों ने श्रेष्ठ वचन कहा- हे पृथ्वी की पालना करने वाले सब राजागण! सुनिए। हम अपनी भुजा उठाकर जनकजी का विशाल प्रण कहते हैं-॥249॥

चौपाई :

* नृप भुजबल बिधु सिवधनु राहू। गरुअ कठोर बिदित सब काहू॥
रावनु बानु महाभट भारे। देखि सरासन गवँहिं सिधारे॥1॥

भावार्थ:-राजाओं की भुजाओं का बल चन्द्रमा है, शिवजी का धनुष राहु है, वह भारी है, कठोर है, यह सबको विदित है। बड़े भारी योद्धा रावण और बाणासुर भी इस धनुष को देखकर गौं से (चुपके से) चलते बने (उसे उठाना तो दूर रहा, छूने तक की हिम्मत न हुई)॥1॥

* सोइ पुरारि कोदंडु कठोरा। राज समाज आजु जोइ तोरा॥
त्रिभुवन जय समेत बैदेही। बिनहिं बिचार बरइ हठि तेही॥2॥

भावार्थ:-उसी शिवजी के कठोर धनुष को आज इस राज समाज में जो भी तोड़ेगा, तीनों लोकों की विजय के साथ ही उसको जानकीजी बिना किसी विचार के हठपूर्वक वरण करेंगी॥2॥

* सुनि पन सकल भूप अभिलाषे। भटमानी अतिसय मन माखे॥
परिकर बाँधि उठे अकुलाई। चले इष्ट देवन्ह सिर नाई॥3॥

भावार्थ:-प्रण सुनकर सब राजा ललचा उठे। जो वीरता के अभिमानी थे, वे मन में बहुत ही तमतमाए। कमर कसकर अकुलाकर उठे और अपने इष्टदेवों को सिर नवाकर चले॥3॥

* तमकि ताकि तकि सिवधनु धरहीं। उठइ न कोटि भाँति बलु करहीं॥
जिन्ह के कछु बिचारु मन माहीं। चाप समीप महीप न जाहीं॥4॥

भावार्थ:-वे तमककर (बड़े ताव से) शिवजी के धनुष की ओर देखते हैं और फिर निगाह जमाकर उसे पकड़ते हैं, करोड़ों भाँति से जोर लगाते हैं, पर वह उठता ही नहीं। जिन राजाओं के मन में कुछ विवेक है, वे तो धनुष के पास ही नहीं जाते॥4॥

दोहा :

* तमकि धरहिं धनु मूढ़ नृप उठइ न चलहिं लजाइ॥
मनहुँ पाइ भट बाहुबलु अधिकु अधिकु गरुआइ॥250॥

भावार्थ:-वे मूर्ख राजा तमककर (किटकिटाकर) धनुष को पकड़ते हैं, परन्तु जब नहीं उठता तो लजाकर चले जाते हैं, मानो वीरों की भुजाओं का बल पाकर वह धनुष अधिक-अधिक भारी होता जाता है॥250॥

चौपाई :

* भूप सहस दस एकहि बारा। लगे उठावन टरइ न टारा॥
डगइ न संभु सरासनु कैसें। कामी बचन सती मनु जैसें॥1॥

भावार्थ:-तब दस हजार राजा एक ही बार धनुष को उठाने लगे, तो भी वह उनके टाले नहीं टलता। शिवजी का वह धनुष कैसे नहीं डिगता था, जैसे कामी पुरुष के वचनों से सती का मन (कभी) चलायमान नहीं होता॥1॥

* सब नृप भए जोगु उपहासी। जैसें बिनु बिराग संन्यासी॥

कीरति बिजय बीरता भारी। चले चाप कर बरबस हारी॥2॥

भावार्थ:-सब राजा उपहास के योग्य हो गए, जैसे वैराग्य के बिना संन्यासी उपहास के योग्य हो जाता है। कीर्ति, विजय, बड़ी वीरता- इन सबको वे धनुष के हाथों बरबस हारकर चले गए॥2॥

* श्रीहत भए हारि हियँ राजा। बैठे निज निज जाइ समाजा॥
नृपन्ह बिलोकि जनकु अकुलाने। बोले बचन रोष जनु साने॥3॥

भावार्थ:-राजा लोग हृदय से हारकर श्रीहीन (हतप्रभ) हो गए और अपने-अपने समाज में जा बैठे। राजाओं को (असफल) देखकर जनक अकुला उठे और ऐसे वचन बोले जो मानो क्रोध में सने हुए थे॥3॥

* दीप दीप के भूपति नाना। आए सुनिहम जो पनु ठाना॥
देव दनुज धरि मनुज सरीरा। बिपुल बीर आए रनधीरा॥4॥

भावार्थ:-मैंने जो प्रण ठाना था, उसे सुनकर द्वीप-द्वीप के अनेकों राजा आए। देवता और दैत्य भी मनुष्य का शरीर धारण करके आए तथा और भी बहुत से रणधीर वीर आए॥4॥

दोहा :

* कुअँरि मनोहर बिजय बड़ि कीरतिअति कमनीय।
पावनिहार बिरंचि जनु रचेउ न धनु दमनीय॥251॥

भावार्थ:-परन्तु धनुष को तोड़कर मनोहर कन्या, बड़ी विजय और अत्यन्त सुंदर कीर्ति को पाने वाला मानो ब्रह्मा ने किसी को रचा ही नहीं॥251॥

चौपाई :

* कहहु काहि यहु लाभु न भावा। काहुँ न संकर चाप चढ़ावा॥
रहउ चढ़ाउब तोरब भाई। तिलु भरि भूमि न सके छड़ाई॥1॥

भावार्थ:-कहिए, यह लाभ किसको अच्छा नहीं लगता, परन्तु किसी ने भी शंकरजी का धनुष नहीं चढ़ाया। अरे भाई! चढ़ाना और तोड़ना तो दूर रहा, कोई तिल भर भूमि भी छुड़ा न सका॥1॥

* अब जनि कोउ भाखै भट मानी। बीर बिहीन मही मैं जानी॥
तजहु आस निज निज गृह जाहू। लिखा न बिधि बैदेहि बिबाहू॥2॥

भावार्थ:-अब कोई वीरता का अभिमानी नाराज न हो। मैंने जान लिया, पृथ्वी वीरों से खाली हो गई। अब आशा छोड़कर अपने-अपने घर जाओ, ब्रह्मा ने सीता का विवाह लिखा ही नहीं॥2॥

* सुकृतु जाइ जौं पनु परिहरऊँ। कुअँरि कुआँरि रहउ का करऊँ॥
जौं जनतेउँ बिनु भट भुबि भाई। तौ पनु करि होतेउँ न हँसाई॥3॥

भावार्थ:-यदि प्रण छोड़ता हूँ, तो पुण्य जाता है, इसलिए क्या करूँ, कन्या कुँआरी ही रहे। यदि मैं जानता कि पृथ्वी वीरों से शून्य है, तो प्रण करके उपहास का पात्र न बनता॥3॥

श्री लक्ष्मणजी का क्रोध

* जनक बचन सुनि सब नर नारी। देखि जानकिहि भए दुखारी॥
माखे लखनु कुटिल भइँ भौंहें। रदपट फरकत नयन रिसौंहें॥4॥

भावार्थ:-जनक के वचन सुनकर सभी स्त्री-पुरुष जानकीजी की ओर देखकर दुःखी हुए, परन्तु लक्ष्मणजी तमतमा उठे, उनकी भौंहें टेढ़ी हो गईं, होठ फड़कने लगे और नेत्र क्रोध से लाल हो गए॥4॥

दोहा :

* कहि न सकत रघुबीर डर लगे बचन जनु बान।
नाइ राम पद कमल सिरु बोले गिरा प्रमान॥252॥

भावार्थ:-श्री रघुवीरजी के डर से कुछ कह तो सकते नहीं, पर जनक के वचन उन्हें बाण से लगे। (जब न रह सके तब) श्री रामचन्द्रजी के चरण कमलों में सिर नवाकर वे यथार्थ वचन बोले-॥252॥

चौपाई :

* रघुबंसिन्ह महुँ जहँ कोउ होई। तेहिं समाज अस कहइ न कोई॥
कही जनक जसि अनुचित बानी। बिद्यमान रघुकुल मनि जानी॥1॥

भावार्थ:-रघुवंशियों में कोई भी जहाँ होता है, उस समाज में ऐसे वचन कोई नहीं कहता, जैसे अनुचित वचन रघुकुल शिरोमणि श्री रामजी को उपस्थित जानते हुए भी जनकजी ने कहे हैं॥1॥

* सुनहु भानुकुल पंकज भानू। कहउँ सुभाउ न कछु अभिमानू॥
जौं तुम्हारि अनुसासन पावौं। कंदुक इव ब्रह्मांड उठावौं॥2॥

भावार्थ:-हे सूर्य कुल रूपी कमल के सूर्य! सुनिए, मैं स्वभाव ही से कहता हूँ, कुछ अभिमान करके नहीं, यदि आपकी आज्ञा पाऊँ, तो मैं ब्रह्माण्ड को गेंद की तरह उठा लूँ॥2॥

*काचे घट जिमि डारौं फोरी। सकउँ मेरु मूलक जिमि तोरी॥
तव प्रताप महिमा भगवाना। को बापुरो पिनाक पुराना॥3॥

भावार्थ:-और उसे कच्चे घड़े की तरह फोड़ डालूँ। मैं सुमेरु पर्वत को मूली की तरह तोड़ सकता हूँ, हे भगवन्! आपके प्रताप की महिमा से यह बेचारा पुराना धनुष तो कौन चीज है॥3॥

* नाथ जानि अस आयसु होऊ। कौतुकु करौं बिलोकिअ सोऊ॥
कमल नाल जिमि चाप चढ़ावौं। जोजन सत प्रमान लै धावौं॥4॥

भावार्थ:-ऐसा जानकर हे नाथ! आज्ञा हो तो कुछ खेल करूँ, उसे भी देखिए। धनुष को कमल की डंडी की तरह चढ़ाकर उसे सौ योजन तक दौड़ा लिए चला जाऊँ॥4॥

दोहा :

* तोरौं छत्रक दंड जिमि तव प्रताप बल नाथ।
जौं न करौं प्रभु पद सपथ कर न धरौं धनु भाथ॥253॥

भावार्थ:-हे नाथ! आपके प्रताप के बल से धनुष को कुकुरमुत्ते (बरसाती छत्ते) की तरह तोड़ दूँ। यदि ऐसा न करूँ तो प्रभु के चरणों की शपथ है, फिर मैं धनुष और तरकस को कभी हाथ में भी न लूँगा॥253॥

चौपाई :

* लखन सकोप बचन जे बोले। डगमगानि महि दिग्गज डोले॥
सकल लोग सब भूप डेराने। सिय हियँ हरषु जनकु सकुचाने॥1॥

भावार्थ:-ज्यों ही लक्ष्मणजी क्रोध भरे वचन बोले कि पृथ्वी डगमगा उठी और दिशाओं के हाथी काँप गए। सभी लोग और सब राजा डर गए। सीताजी के हृदय में हर्ष हुआ और जनकजी सकुचा गए॥1॥

* गुर रघुपति सब मुनि मन माहीं। मुदित भए पुनि पुनि पुलकाहीं॥
सयनहिं रघुपति लखनु नेवारे। प्रेम समेत निकट बैठारे॥2॥

भावार्थ:-गुरु विश्वामित्रजी, श्री रघुनाथजी और सब मुनि मन में प्रसन्न हुए और बार-बार पुलकित होने लगे। श्री रामचन्द्रजी ने इशारे से लक्ष्मण को मना किया और प्रेम सहित अपने पास बैठा लिया॥2॥

* बिस्वामित्र समय सुभ जानी। बोले अति सनेहमय बानी॥
उठहु राम भंजहु भवचापा। मेटहु तात जनक परितापा॥3॥

भावार्थ:-विश्वामित्रजी शुभ समय जानकर अत्यन्त प्रेमभरी वाणी बोले- हे राम! उठो, शिवजी का धनुष तोड़ो और हे तात! जनक का संताप मिटाओ॥3॥

* सुनि गुरु बचन चरन सिरु नावा। हरषु बिषादु न कछु उर आवा॥
ठाढ़े भए उठि सहज सुभाएँ। ठवनि जुबा मृगराजु लजाएँ॥4॥

भावार्थ:-गुरु के वचन सुनकर श्री रामजी ने चरणों में सिर नवाया। उनके मन में न हर्ष हुआ, न विषाद और वे अपनी ऐंड़ (खड़े होने की शान) से जवान सिंह को भी लजाते हुए सहज स्वभाव से ही उठ खड़े हुए ॥4॥

दोहा :

* उदित उदयगिरि मंच पर रघुबर बालपतंग।
बिकसे संत सरोज सब हरषे लोचन भृंग॥254॥

भावार्थ:-मंच रूपी उदयाचल पर रघुनाथजी रूपी बाल सूर्य के उदय होते ही सब संत रूपी कमल खिल उठे और नेत्र रूपी भौंरे हर्षित हो गए॥254॥

चौपाई :

* नृपन्ह केरि आसा निसि नासी। बचन नखत अवली न प्रकासी॥
मानी महिप कुमुद सकुचाने। कपटी भूप उलूक लुकाने॥1॥

भावार्थ:-राजाओं की आशा रूपी रात्रि नष्ट हो गई। उनके वचन रूपी तारों के समूह का चमकना बंद हो गया। (वे मौन हो गए)। अभिमानी राजा रूपी कुमुद संकुचित हो गए और कपटी राजा रूपी उल्लू छिप गए॥1॥

* भए बिसोक कोक मुनि देवा। बरिसहिं सुमन जनावहिं सेवा॥
गुर पद बंदि सहित अनुरागा। राम मुनिन्हसन आयसु मागा॥2॥

भावार्थ:-मुनि और देवता रूपी चकवे शोकरहित हो गए। वे फूल बरसाकर अपनी सेवा प्रकट कर रहे हैं। प्रेम सहित गुरु के चरणों की वंदना करके श्री रामचन्द्रजी ने मुनियों से आज्ञा माँगी॥2॥

* सहजहिं चले सकल जग स्वामी। मत्त मंजु बर कुंजर गामी॥
चलत राम सब पुर नर नारी। पुलक पूरि तन भए सुखारी॥3॥

भावार्थ:-समस्त जगत के स्वामी श्री रामजी सुंदर मतवाले श्रेष्ठ हाथी की सी चाल से स्वाभाविक ही चले। श्री रामचन्द्रजी के चलते ही नगर भर के सब स्त्री-पुरुष सुखी हो गए और उनके शरीर रोमांच से भर गए॥3॥

* बंदि पितर सुर सुकृत सँभारे। जौं कछु पुन्य प्रभाउ हमारे॥
तौ सिवधनु मृनाल की नाईं। तोरहुँ रामु गनेस गोसाईं॥4॥

भावार्थ:-उन्होंने पितर और देवताओं की वंदना करके अपने पुण्यों का स्मरण किया। यदि हमारे पुण्यों का कुछ भी प्रभाव हो, तो हे गणेश गोसाईं! रामचन्द्रजी शिवजी के धनुष को कमल की डंडी की भाँति तोड़ डालें॥4॥

दोहा :

* रामहि प्रेम समेत लखि सखिन्ह समीप बोलाइ।
सीता मातु सनेह बस बचन कहइ बिलखाइ॥255॥

भावार्थ:-श्री रामचन्द्रजी को (वात्सल्य) प्रेम के साथ देखकर और सखियों को समीप बुलाकर सीताजी की माता स्नेहवश बिलखकर (विलाप करती हुई सी) ये वचन बोलीं-॥255॥

चौपाई :

* सखि सब कौतुक देख निहारे। जेउ कहावत हितू हमारे॥
कोउ न बुझाइ कहइ गुर पाहीं। ए बालक असि हठ भलि नाहीं॥1॥

भावार्थ:-हे सखी! ये जो हमारे हितू कहलाते हैं, वे भी सब तमाशा देखने वाले हैं। कोई भी (इनके) गुरु विश्वामित्रजी को समझाकर नहीं कहता कि ये (रामजी) बालक हैं, इनके लिए ऐसा हठ अच्छा नहीं। (जो धनुष रावण और बाण- जैसे जगद्विजयी वीरों के हिलाए न हिल सका, उसे तोड़ने के लिए मुनि विश्वामित्रजी का रामजी को आज्ञा देना और रामजी का उसे तोड़ने के लिए चल देना रानी को हठ जान पड़ा, इसलिए वे कहने लगीं कि गुरु विश्वामित्रजी को कोई समझाता भी नहीं)॥1॥

* रावन बान छुआ नहिं चापा। हारे सकल भूप करि दापा॥
सो धनु राजकुअँर कर देहीं। बाल मराल कि मंदर लेहीं॥2॥

भावार्थ:-रावण और बाणासुर ने जिस धनुष को छुआ तक नहीं और सब राजा घमंड करके हार गए, वही धनुष इस सुकुमार राजकुमार के हाथ में दे रहे हैं। हंस के बच्चे भी कहीं मंदराचल पहाड़ उठा सकते हैं?॥2॥

* भूप सयानप सकल सिरानी। सखि बिधि गति कछु जाति न जानी॥
बोली चतुर सखी मृदु बानी। तेजवंत लघु गनिअ न रानी॥3॥

भावार्थ:-(और तो कोई समझाकर कहे या नहीं, राजा तो बड़े समझदार और ज्ञानी हैं, उन्हें तो गुरु को समझाने की चेष्टा करनी चाहिए थी, परन्तु मालूम होता है-) राजा का भी सारा सयानापन समाप्त हो गया। हे सखी! विधाता की गति कुछ जानने में नहीं आती (यों कहकर रानी चुप हो रहीं)। तब एक चतुर (रामजी के महत्व को जानने वाली) सखी कोमल वाणी से बोली- हे रानी! तेजवान को (देखने में छोटा होने पर भी) छोटा नहीं गिनना चाहिए॥3॥

* कहँ कुंभज कहँ सिंधु अपारा। सोषेउ सुजसु सकल संसारा॥
रबि मंडल देखत लघु लागा। उदयँ तासु तिभुवन तम भागा॥4॥

भावार्थ:-कहाँ घड़े से उत्पन्न होने वाले (छोटे से) मुनि अगस्त्य और कहाँ समुद्र? किन्तु उन्होंने उसे सोख लिया, जिसका सुयश सारे संसार में छाया हुआ है। सूर्यमंडल देखने में छोटा लगता है, पर उसके उदय होते ही तीनों लोकों का अंधकार भाग जाता है॥4॥

दोहा :

* मंत्र परम लघु जासु बस बिधि हरि हर सुर सर्ब।
महामत्त गजराज कहुँ बस कर अंकुस खर्ब॥256॥

भावार्थ:-जिसके वश में ब्रह्मा, विष्णु, शिव और सभी देवता हैं, वह मंत्र अत्यन्त छोटा होता है। महान मतवाले गजराज को छोटा सा अंकुश वश में कर लेता है॥256॥

चौपाई :

* काम कुसुम धनु सायक लीन्हे। सकल भुवन अपनें बस कीन्हे॥
देबि तजिअ संसउ अस जानी। भंजब धनुषु राम सुनु रानी॥1॥

भावार्थ:-कामदेव ने फूलों का ही धनुष-बाण लेकर समस्त लोकों को अपने वश में कर रखा है। हे देवी! ऐसा जानकर संदेह त्याग दीजिए। हे रानी! सुनिए, रामचन्द्रजी धनुष को अवश्य ही तोड़ेंगे॥1॥

* सखी बचन सुनि भै परतीती। मिटा बिषादु बढ़ी अति प्रीती॥
तब रामहि बिलोकि बैदेही। सभय हृदयँ बिनवति जेहि तेही॥2॥

भावार्थ:-सखी के वचन सुनकर रानी को (श्री रामजी के सामर्थ्य के संबंध में) विश्वास हो गया। उनकी उदासी मिट गई और श्री रामजी के प्रति उनका प्रेम अत्यन्त बढ़ गया। उस समय श्री रामचन्द्रजी को देखकर सीताजी भयभीत हृदय से जिस-तिस (देवता) से विनती कर रही हैं॥2॥

* मनहीं मन मनाव अकुलानी। होहु प्रसन्न महेस भवानी॥
करहु सफल आपनि सेवकाई। करि हितु हरहु चाप गरुआई॥3॥

भावार्थ:-वे व्याकुल होकर मन ही मन मना रही हैं- हे महेश-भवानी! मुझ पर प्रसन्न होइए, मैंने आपकी जो सेवा की है, उसे सुफल कीजिए और मुझ पर स्नेह करके धनुष के भारीपन को हर लीजिए॥3॥

* गननायक बरदायक देवा। आजु लगें कीन्हिउँ तुअ सेवा॥
बार बार बिनती सुनि मोरी। करहु चाप गुरुता अति थोरी॥4॥

भावार्थ:- हे गणों के नायक, वर देने वाले देवता गणेशजी! मैंने आज ही के लिए तुम्हारी सेवा की थी। बार-बार मेरी विनती सुनकर धनुष का भारीपन बहुत ही कम कर दीजिए॥4॥

दोहा :

* देखि देखि रघुबीर तन सुर मनाव धरि धीर।
भरे बिलोचन प्रेम जल पुलकावली सरीर॥257॥

भावार्थ:-श्री रघुनाथजी की ओर देख-देखकर सीताजी धीरज धरकर देवताओं को मना रही हैं। उनके नेत्रों में प्रेम के आँसू भरे हैं और शरीर में रोमांच हो रहा है॥257॥

चौपाई :

* नीकें निरखि नयन भरि सोभा। पितु पनु सुमिरि बहुरि मनु छोभा॥
अहह तात दारुनि हठ ठानी। समुझत नहिं कछु लाभु न हानी॥1॥

भावार्थ:-अच्छी तरह नेत्र भरकर श्री रामजी की शोभा देखकर, फिर पिता के प्रण का स्मरण करके सीताजी का मन क्षुब्ध हो उठा। (वे मन ही मन कहने लगीं-) अहो! पिताजी ने बड़ा ही कठिन हठ ठाना है, वे लाभ-हानि कुछ भी नहीं समझ रहे हैं॥1॥

* सचिव सभय सिख देइ न कोई। बुध समाज बड़ अनुचित होई॥
कहँ धनु कुलिसहु चाहि कठोरा। कहँ स्यामल मृदुगात किसोरा॥2॥

भावार्थ:-मंत्री डर रहे हैं, इसलिए कोई उन्हें सीख भी नहीं देता, पंडितों की सभा में यह बड़ा अनुचित हो रहा है। कहाँ तो वज्र से भी बढ़कर कठोर धनुष और कहाँ ये कोमल शरीर किशोर श्यामसुंदर!॥2॥

* बिधि केहि भाँति धरौं उर धीरा। सिरस सुमन कन बेधिअ हीरा॥
सकल सभा कै मति भै भोरी। अब मोहि संभुचाप गति तोरी॥3॥

भावार्थ:-हे विधाता! मैं हृदय में किस तरह धीरज धरूँ, सिरस के फूल के कण से कहीं हीरा छेदा जाता है। सारी सभा की बुद्धि भोली (बावली) हो गई है, अत: हे शिवजी के धनुष! अब तो मुझे तुम्हारा ही आसरा है॥3॥

* निज जड़ता लोगन्ह पर डारी। होहि हरुअ रघुपतिहि निहारी॥
अति परिताप सीय मन माहीं। लव निमेष जुग सय सम जाहीं॥4॥

भावार्थ:-तुम अपनी जड़ता लोगों पर डालकर, श्री रघुनाथजी (के सुकुमार शरीर) को देखकर (उतने ही) हल्के हो जाओ। इस प्रकार सीताजी के मन में बड़ा ही संताप हो रहा है। निमेष का एक लव (अंश) भी सौ युगों के समान बीत रहा है॥4॥

दोहा :

* प्रभुहि चितइ पुनि चितव महि राजत लोचन लोल।
खेलत मनसिज मीन जुग जनु बिधु मंडल डोल॥258॥

भावार्थ:-प्रभु श्री रामचन्द्रजी को देखकर फिर पृथ्वी की ओर देखती हुई सीताजी के चंचल नेत्र इस प्रकार शोभित हो रहे हैं, मानो चन्द्रमंडल रूपी डोल में कामदेव की दो मछलियाँ खेल रही हों॥258॥

चौपाई :

* गिरा अलिनि मुख पंकज रोकी। प्रगट न लाज निसा अवलोकी॥

लोचन जलु रह लोचन कोना। जैसें परम कृपन कर सोना॥1॥
भावार्थ:-सीताजी की वाणी रूपी भ्रमरी को उनके मुख रूपी कमल ने रोक रखा है। लाज रूपी रात्रि को देखकर वह प्रकट नहीं हो रही है। नेत्रों का जल नेत्रों के कोने (कोये) में ही रह जाता है। जैसे बड़े भारी कंजूस का सोना कोने में ही गड़ा रह जाता है॥1॥

* सकुची ब्याकुलता बड़ि जानी। धरि धीरजु प्रतीति उर आनी॥

तन मन बचन मोर पनु साचा। रघुपति पद सरोज चितु राचा॥2॥
भावार्थ:-अपनी बढ़ी हुई व्याकुलता जानकर सीताजी सकुचा गईं और धीरज धरकर हृदय में विश्वास ले आईं कि यदि तन, मन और वचन से मेरा प्रण सच्चा है और श्री रघुनाथजी के चरण कमलों में मेरा चित्त वास्तव में अनुरक्त है,॥2॥

* तौ भगवानु सकल उर बासी। करिहि मोहि रघुबर कै दासी॥

जेहि कें जेहि पर सत्य सनेहू। सो तेहि मिलइ न कछु संदेहू॥3॥
भावार्थ:-तो सबके हृदय में निवास करने वाले भगवान मुझे रघुश्रेष्ठ श्री रामचन्द्रजी की दासी अवश्य बनाएँगे। जिसका जिस पर सच्चा स्नेह होता है, वह उसे मिलता ही है, इसमें कुछ भी संदेह नहीं है॥3॥

* प्रभु तन चितइ प्रेम तन ठाना। कृपानिधान राम सबु जाना॥

सियहि बिलोकि तकेउ धनु कैसें। चितव गरुरु लघु ब्यालहि जैसें॥4॥
भावार्थ:-प्रभु की ओर देखकर सीताजी ने शरीर के द्वारा प्रेम ठान लिया (अर्थात् यह निश्चय कर लिया कि यह शरीर इन्हीं का होकर रहेगा या रहेगा ही नहीं) कृपानिधान श्री रामजी सब जान गए। उन्होंने सीताजी को देखकर धनुष की ओर कैसे ताका, जैसे गरुड़जी छोटे से साँप की ओर देखते हैं॥4॥
दोहा :

* लखन लखेउ रघुबंसमनि ताकेउ हर कोदंडु।
पुलकि गात बोले बचन चरन चापि ब्रह्मांडु॥259॥
भावार्थ:-इधर जब लक्ष्मणजी ने देखा कि रघुकुल मणि श्री रामचन्द्रजी ने शिवजी के धनुष की ओर ताका है, तो वे शरीर से पुलकित हो ब्रह्माण्ड को चरणों से दबाकर निम्नलिखित वचन बोले-॥259॥

चौपाई :

*दिसिकुंजरहु कमठ अहि कोला। धरहु धरनि धरि धीर न डोला॥
रामु चहहिं संकर धनु तोरा। होहु सजग सुनि आयसु मोरा॥1॥
भावार्थ:-हे दिग्गजो! हे कच्छप! हे शेष! हे वाराह! धीरज धरकर पृथ्वी को थामे रहो, जिससे यह हिलने न पावे। श्री रामचन्द्रजी शिवजी के धनुष को तोड़ना चाहते हैं। मेरी आज्ञा सुनकर सब सावधान हो जाओ॥1॥

* चाप समीप रामु जब आए। नर नारिन्ह सुर सुकृत मनाए॥
सब कर संसउ अरु अग्यानू। मंद महीपन्ह कर अभिमानू॥2॥
भावार्थ:-श्री रामचन्द्रजी जब धनुष के समीप आए, तब सब स्त्री-पुरुषों ने देवताओं और पुण्यों को मनाया। सबका संदेह और अज्ञान, नीच राजाओं का अभिमान,॥2॥

* भृगुपति केरि गरब गरुआई। सुर मुनिबरन्ह केरि कदराई॥
सिय कर सोचु जनक पछितावा। रानिन्ह कर दारुन दुख दावा॥3॥
भावार्थ:-परशुरामजी के गर्व की गुरुता, देवता और श्रेष्ठ मुनियों की कातरता (भय), सीताजी का सोच, जनक का पश्चाताप और रानियों के दारुण दुःख का दावानल,॥3॥

* संभुचाप बड़ बोहितु पाई। चढ़े जाइ सब संगु बनाई॥

राम बाहुबल सिंधु अपारू। चहत पारु नहिं कोउ कड़हारू॥4॥

भावार्थ:-ये सब शिवजी के धनुष रूपी बड़े जहाज को पाकर, समाज बनाकर उस पर जा चढ़े। ये श्री रामचन्द्रजी की भुजाओं के बल रूपी अपार समुद्र के पार जाना चाहते हैं, परन्तु कोई केवट नहीं है॥4॥

जयमाला पहनाना, परशुराम का आगमन व क्रोध

दोहा :

* बंदी मागध सूतगन बिरुद बदहिं मतिधीर।

करहिं निछावरि लोग सब हय गय धन मनि चीर॥262॥

भावार्थ:-धीर बुद्धि वाले, भाट, मागध और सूत लोग विरुदावली (कीर्ति) का बखान कर रहे हैं। सब लोग घोड़े, हाथी, धन, मणि और वस्त्र निछावर कर रहे हैं॥262॥

चौपाई :

* झाँझि मृदंग संख सहनाई। भेरि ढोल दुंदुभी सुहाई॥

बाजहिं बहु बाजने सुहाए। जहँ तहँ जुबतिन्ह मंगल गाए॥1॥

भावार्थ:-झाँझ, मृदंग, शंख, शहनाई, भेरी, ढोल और सुहावने नगाड़े आदि बहुत प्रकार के सुंदर बाजे बज रहे हैं। जहाँ-तहाँ युवतियाँ मंगल गीत गा रही हैं॥1॥

* सखिन्ह सहित हरषी अति रानी। सूखत धान परा जनु पानी॥

जनक लहेउ सुखु सोचु बिहाई। तैरत थकें थाह जनु पाई॥2॥

भावार्थ:-सखियों सहित रानी अत्यन्त हर्षित हुईं, मानो सूखते हुए धान पर पानी पड़ गया हो। जनकजी ने सोच त्याग कर सुख प्राप्त किया। मानो तैरते-तैरते थके हुए पुरुष ने थाह पा ली हो॥2॥

* श्रीहत भए भूप धनु टूटे। जैसें दिवस दीप छबि छूटे॥
सीय सुखहि बरनिअ केहि भाँती। जनु चातकी पाइ जलु स्वाती॥3॥

भावार्थ:-धनुष टूट जाने पर राजा लोग ऐसे श्रीहीन (निस्तेज) हो गए, जैसे दिन में दीपक की शोभा जाती रहती है। सीताजी का सुख किस प्रकार वर्णन किया जाए, जैसे चातकी स्वाती का जल पा गई हो॥3॥

* रामहि लखनु बिलोकत कैसें। ससिहि चकोर किसोरकु जैसें॥
सतानंद तब आयसु दीन्हा। सीताँ गमनु राम पहिं कीन्हा॥4॥

भावार्थ:-श्री रामजी को लक्ष्मणजी किस प्रकार देख रहे हैं, जैसे चन्द्रमा को चकोर का बच्चा देख रहा हो। तब शतानंदजी ने आज्ञा दी और सीताजी ने श्री रामजी के पास गमन किया॥4॥

दोहा :

* संग सखीं सुंदर चतुर गावहिं मंगलचार।
गवनी बाल मराल गति सुषमा अंग अपार॥263॥

भावार्थ:-साथ में सुंदर चतुर सखियाँ मंगलाचार के गीत गा रही हैं, सीताजी बालहंसिनी की चाल से चलीं। उनके अंगों में अपार शोभा है॥263॥

चौपाई :

* सखिन्ह मध्य सिय सोहति कैसें। छबिगन मध्य महाछबि जैसें॥
कर सरोज जयमाल सुहाई। बिस्व बिजय सोभा जेहिं छाई॥1॥

भावार्थ:-सखियों के बीच में सीताजी कैसी शोभित हो रही हैं, जैसे बहुत सी छवियों के बीच में महाछवि हो। करकमल में सुंदर जयमाला है, जिसमें विश्व विजय की शोभा छाई हुई है॥1॥

* तन सकोचु मन परम उछाहू। गूढ़ प्रेमु लखि परइ न काहू॥

गीताप्रेस गोरखपुर

जाइ समीप राम छबि देखी। रहि जनु कुअँरि चित्र अवरेखी॥2॥

भावार्थ:-सीताजी के शरीर में संकोच है, पर मन में परम उत्साह है। उनका यह गुप्त प्रेम किसी को जान नहीं पड़ रहा है। समीप जाकर, श्री रामजी की शोभा देखकर राजकुमारी सीताजी जैसे चित्र में लिखी सी रह गईं॥2॥

* चतुर सखीं लखि कहा बुझाई। पहिरावहु जयमाल सुहाई॥
सुनत जुगल कर माल उठाई। प्रेम बिबस पहिराइ न जाई॥3॥

भावार्थ:-चतुर सखी ने यह दशा देखकर समझाकर कहा- सुहावनी जयमाला पहनाओ। यह सुनकर सीताजी ने दोनों हाथों से माला उठाई, पर प्रेम में विवश होने से पहनाई नहीं जाती॥3॥

* सोहत जनु जुग जलज सनाला। ससिहि सभीत देत जयमाला॥
गावहिं छबि अवलोकि सहेली। सियँ जयमाल राम उर मेली॥4॥

भावार्थ:-(उस समय उनके हाथ ऐसे सुशोभित हो रहे हैं) मानो डंडियों सहित दो कमल चन्द्रमा को डरते हुए जयमाला दे रहे हों। इस छवि को देखकर सखियाँ गाने लगीं। तब सीताजी ने श्री रामजी के गले में जयमाला पहना दी॥4॥

सोरठा :

* रघुबर उर जयमाल देखि देव बरिसहिं सुमन।
सकुचे सकल भुआल जनु बिलोकि रबि कुमुदगन॥264॥

भावार्थ:-श्री रघुनाथजी के हृदय पर जयमाला देखकर देवता फूल बरसाने लगे। समस्त राजागण इस प्रकार सकुचा गए मानो सूर्य को देखकर कुमुदों का समूह सिकुड़ गया हो॥264॥

चौपाई :

* पुर अरु ब्योम बाजने बाजे। खल भए मलिन साधु सब राजे॥

सुर किंनर नर नाग मुनीसा। जय जय जय कहि देहिं असीसा॥1॥

भावार्थ:-नगर और आकाश में बाजे बजने लगे। दुष्ट लोग उदास हो गए और सज्जन लोग सब प्रसन्न हो गए। देवता, किन्नर, मनुष्य, नाग और मुनीश्वर जय-जयकार करके आशीर्वाद दे रहे हैं॥1॥

* नाचहिं गावहिं बिबुध बधूटीं। बार बार कुसुमांजलि छूटीं॥
जहँ तहँ बिप्र बेदधुनि करहीं। बंदी बिरिदावलि उच्चरहीं॥2॥

भावार्थ:-देवताओं की स्त्रियाँ नाचती-गाती हैं। बार-बार हाथों से पुष्पों की अंजलियाँ छूट रही हैं। जहाँ-तहाँ ब्रह्म वेदध्वनि कर रहे हैं और भाट लोग विरुदावली (कुलकीर्ति) बखान रहे हैं॥2॥

* महिं पाताल नाक जसु ब्यापा। राम बरी सिय भंजेउ चापा॥
करहिं आरती पुर नर नारी। देहिं निछावरि बित्त बिसारी॥3॥

भावार्थ:-पृथ्वी, पाताल और स्वर्ग तीनों लोकों में यश फैल गया कि श्री रामचन्द्रजी ने धनुष तोड़ दिया और सीताजी को वरण कर लिया। नगर के नर-नारी आरती कर रहे हैं और अपनी पूँजी (हैसियत) को भुलाकर (सामर्थ्य से बहुत अधिक) निछावर कर रहे हैं॥3॥

* सोहति सीय राम कै जोरी। छबि सिंगारु मनहुँ एक ठोरी॥
सखीं कहहिं प्रभु पद गहु सीता। करति न चरन परस अति भीता॥4॥

भावार्थ:-श्री सीता-रामजी की जोड़ी ऐसी सुशोभित हो रही है मानो सुंदरता और श्रृंगार रस एकत्र हो गए हों। सखियाँ कह रही हैं- सीते! स्वामी के चरण छुओ, किन्तु सीताजी अत्यन्त भयभीत हुई उनके चरण नहीं छूतीं॥4॥

दोहा :

* गौतम तिय गति सुरति करि नहिं परसति पग पानि।
मन बिहसे रघुबंसमनि प्रीति अलौकिक जानि॥265॥

भावार्थ:-गौतमजी की स्त्री अहल्या की गति का स्मरण करके सीताजी श्री रामजी के चरणों को हाथों से स्पर्श नहीं कर रही हैं। सीताजी की अलौकिक प्रीति जानकर रघुकुल मणि श्री रामचन्द्रजी मन में हँसे॥265॥

चौपाई :

* तब सिय देखि भूप अभिलाषे। कूर कपूत मूढ़ मन माखे॥
उठि उठि पहिरि सनाह अभागे। जहँ तहँ गाल बजावन लागे॥1॥

भावार्थ:-उस समय सीताजी को देखकर कुछ राजा लोग ललचा उठे। वे दुष्ट, कुपूत और मूढ़ राजा मन में बहुत तमतमाए। वे अभागे उठ-उठकर, कवच पहनकर, जहाँ-तहाँ गाल बजाने लगे॥1॥

* लेहु छड़ाइ सीय कह कोऊ। धरि बाँधहु नृप बालक दोऊ॥
तोरें धनुषु चाड़ नहिं सरई। जीवत हमहि कुअँरि को बरई॥2॥

भावार्थ:-कोई कहते हैं, सीता को छीन लो और दोनों राजकुमारों को पकड़कर बाँध लो। धनुष तोड़ने से ही चाह नहीं सरेगी (पूरी होगी)। हमारे जीते-जी राजकुमारी को कौन ब्याह सकता है?॥2॥

* जौं बिदेहु कछु करै सहाई। जीतहु समर सहित दोउ भाई॥
साधु भूप बोले सुनि बानी। राजसमाजहि लाज लजानी॥3॥

भावार्थ:-यदि जनक कुछ सहायता करें, तो युद्ध में दोनों भाइयों सहित उसे भी जीत लो। ये वचन सुनकर साधु राजा बोले- इस (निर्लज्ज) राज समाज को देखकर तो लाज भी लजा गई॥3॥

* बलु प्रतापु बीरता बड़ाई। नाक पिनाकहि संग सिधाई॥
सोइ सूरता कि अब कहुँ पाई। असि बुधि तौ बिधि मुँह मसि लाई॥4॥

भावार्थ:-अरे! तुम्हारा बल, प्रताप, वीरता, बड़ाई और नाक (प्रतिष्ठा) तो धनुष के साथ ही चली गई। वही वीरता थी कि अब कहीं से मिली

है? ऐसी दुष्ट बुद्धि है, तभी तो विधाता ने तुम्हारे मुखों पर कालिख लगा दी॥4॥

दोहा :

* देखहु रामहि नयन भरि तजि इरिषा मदु कोहु।।
लखन रोषु पावकु प्रबल जानि सलभ जनि होहु॥266॥

भावार्थ:-ईर्षा, घमंड और क्रोध छोड़कर नेत्र भरकर श्री रामजी (की छबि) को देख लो। लक्ष्मण के क्रोध को प्रबल अग्नि जानकर उसमें पतंगे मत बनो॥266॥

चौपाई :

*बैनतेय बलि जिमि चह कागू। जिमि ससु चहै नाग अरि भागू॥
जिमि चह कुसल अकारन कोही। सब संपदा चहै सिवद्रोही॥1॥

भावार्थ:-जैसे गरुड़ का भाग कौआ चाहे, सिंह का भाग खरगोश चाहे, बिना कारण ही क्रोध करने वाला अपनी कुशल चाहे, शिवजी से विरोध करने वाला सब प्रकार की सम्पत्ति चाहे,॥1॥

* लोभी लोलुप कल कीरति चहई। अकलंकता कि कामी लहई॥
हरि पद बिमुख परम गति चाहा। तस तुम्हार लालचु नरनाहा॥2॥

भावार्थ:-लोभी-लालची सुंदर कीर्ति चाहे, कामी मनुष्य निष्कलंकता (चाहे तो) क्या पा सकता है? और जैसे श्री हरि के चरणों से विमुख मनुष्य परमगति (मोक्ष) चाहे, हे राजाओं! सीता के लिए तुम्हारा लालच भी वैसा ही व्यर्थ है॥2॥

* कोलाहलु सुनि सीय सकानी। सखीं लवाइ गईं जहँ रानी॥
रामु सुभायँ चले गुरु पाहीं। सिय सनेहु बरनत मन माहीं॥3॥

भावार्थ:-कोलाहल सुनकर सीताजी शंकित हो गईं। तब सखियाँ उन्हें वहाँ ले गईं, जहाँ रानी (सीताजी की माता) थीं। श्री रामचन्द्रजी मन में सीताजी के प्रेम का बखान करते हुए स्वाभाविक चाल से गुरुजी के पास चले॥3॥

*रानिन्ह सहित सोच बस सीया। अब धौं बिधिहि काह करनीया॥
भूप बचन सुनि इत उत तकहीं। लखनु राम डर बोलि न सकहीं॥4॥

भावार्थ:-रानियों सहित सीताजी (दुष्ट राजाओं के दुर्वचन सुनकर) सोच के वश हैं कि न जाने विधाता अब क्या करने वाले हैं। राजाओं के वचन सुनकर लक्ष्मणजी इधर-उधर ताकते हैं, किन्तु श्री रामचन्द्रजी के डर से कुछ बोल नहीं सकते॥4॥

दोहा :

* अरुन नयन भृकुटी कुटिल चितवत नृपन्ह सकोप।
मनहुँ मत्त गजगन निरखि सिंघकिसोरहि चोप॥267॥

भावार्थ:- उनके नेत्र लाल और भौंहें टेढ़ी हो गईं और वे क्रोध से राजाओं की ओर देखने लगे, मानो मतवाले हाथियों का झुंड देखकर सिंह के बच्चे को जोश आ गया हो॥267॥

चौपाई :

* खरभरु देखि बिकल पुर नारीं। सब मिलि देहिं महीपन्ह गारीं॥
तेहिं अवसर सुनि सिवधनु भंगा। आयउ भृगुकुल कमल पतंगा॥1॥

भावार्थ:-खलबली देखकर जनकपुरी की स्त्रियाँ व्याकुल हो गईं और सब मिलकर राजाओं को गालियाँ देने लगीं। उसी मौके पर शिवजी के धनुष का टूटना सुनकर भृगुकुल रूपी कमल के सूर्य परशुरामजी आए॥1॥

* देखि महीप सकल सकुचाने। बाज झपट जनु लवा लुकाने॥
गौरि सरीर भूति भल भ्राजा। भाल बिसाल त्रिपुंड बिराजा॥2॥

भावार्थ:-इन्हें देखकर सब राजा सकुचा गए, मानो बाज के झपटने पर बटेर लुक (छिप) गए हों। गोरे शरीर पर विभूति (भस्म) बड़ी फब रही है और विशाल ललाट पर त्रिपुण्ड्र विशेष शोभा दे रहा है॥2॥

* सीस जटा ससिबदनु सुहावा। रिस बस कछुक अरुन होइ आवा॥
भृकुटी कुटिल नयन रिस राते। सहजहुँ चितवत मनहुँ रिसाते॥3॥

भावार्थ:-सिर पर जटा है, सुंदर मुखचन्द्र क्रोध के कारण कुछ लाल हो आया है। भौंहें टेढ़ी और आँखें क्रोध से लाल हैं। सहज ही देखते हैं, तो भी ऐसा जान पड़ता है मानो क्रोध कर रहे हैं॥3॥

* बृषभ कंध उर बाहु बिसाला। चारु जनेउ माल मृगछाला॥
कटि मुनिबसन तून दुइ बाँधें। धनु सर कर कुठारु कल काँधें॥4॥

भावार्थ:-बैल के समान (ऊँचे और पुष्ट) कंधे हैं, छाती और भुजाएँ विशाल हैं। सुंदर यज्ञोपवीत धारण किए, माला पहने और मृगचर्म लिए हैं। कमर में मुनियों का वस्त्र (वल्कल) और दो तरकस बाँधे हैं। हाथ में धनुष-बाण और सुंदर कंधे पर फरसा धारण किए हैं॥4॥

दोहा :

* सांत बेषु करनी कठिन बरनि न जाइ सरूप।
धरि मुनितनु जनु बीर रसु आयउ जहँ सब भूप॥268॥

भावार्थ:-शांत वेष है, परन्तु करनी बहुत कठोर हैं, स्वरूप का वर्णन नहीं किया जा सकता। मानो वीर रस ही मुनि का शरीर धारण करके, जहाँ सब राजा लोग हैं, वहाँ आ गया हो॥268॥

चौपाई :

* देखत भृगुपति बेषु कराला। उठे सकल भय बिकल भुआला॥
पितु समेत कहि कहि निज नामा। लगे करन सब दंड प्रनामा॥1॥

भावार्थ:-परशुरामजी का भयानक वेष देखकर सब राजा भय से व्याकुल हो उठ खड़े हुए और पिता सहित अपना नाम कह-कहकर सब दंडवत प्रणाम करने लगे॥1॥

* जेहि सुभायँ चितवहिं हितु जानी। सो जानइ जनु आइ खुटानी॥
जनक बहोरि आइ सिरु नावा। सीय बोलाइ प्रनामु करावा॥2॥

भावार्थ:-परशुरामजी हित समझकर भी सहज ही जिसकी ओर देख लेते हैं, वह समझता है मानो मेरी आयु पूरी हो गई। फिर जनकजी ने आकर सिर नवाया और सीताजी को बुलाकर प्रणाम कराया॥2॥

* आसिष दीन्हि सखीं हरषानीं। निज समाज लै गईं सयानीं॥
बिस्वामित्रु मिले पुनि आई। पद सरोज मेले दोउ भाई॥3॥

भावार्थ:-परशुरामजी ने सीताजी को आशीर्वाद दिया। सखियाँ हर्षित हुईं और (वहाँ अब अधिक देर ठहरना ठीक न समझकर) वे सयानी सखियाँ उनको अपनी मंडली में ले गईं। फिर विश्वामित्रजी आकर मिले और उन्होंने दोनों भाइयों को उनके चरण कमलों पर गिराया॥3॥

* रामु लखनु दसरथ के ढोटा। दीन्हि असीस देखि भल जोटा॥
रामहि चितइ रहे थकि लोचन। रूप अपार मार मद मोचन॥4॥

भावार्थ:-(विश्वामित्रजी ने कहा-) ये राम और लक्ष्मण राजा दशरथ के पुत्र हैं। उनकी सुंदर जोड़ी देखकर परशुरामजी ने आशीर्वाद दिया। कामदेव के भी मद को छुड़ाने वाले श्री रामचन्द्रजी के अपार रूप को देखकर उनके नेत्र थकित (स्तम्भित) हो रहे॥4॥

दोहा :

* बहुरि बिलोकि बिदेह सन कहहु काह अति भीर।
पूँछत जानि अजान जिमि ब्यापेउ कोपु सरीर॥269॥

भावार्थ:-फिर सब देखकर, जानते हुए भी अनजान की तरह जनकजी से पूछते हैं कि कहो, यह बड़ी भारी भीड़ कैसी है? उनके शरीर में क्रोध छा गया॥269॥

चौपाई :

* समाचार कहि जनक सुनाए। जेहि कारन महीप सब आए॥
सुनत बचन फिरि अनत निहारे। देखे चापखंड महि डारे॥1॥

भावार्थ:-जिस कारण सब राजा आए थे, राजा जनक ने वे सब समाचार कह सुनाए। जनक के वचन सुनकर परशुरामजी ने फिरकर दूसरी ओर देखा तो धनुष के टुकड़े पृथ्वी पर पड़े हुए दिखाई दिए॥1॥

* अति रिस बोले बचन कठोरा। कहु जड़ जनक धनुष कै तोरा॥
बेगि देखाउ मूढ़ न त आजू। उलटउँ महि जहँ लहि तव राजू॥2॥

भावार्थ:-अत्यन्त क्रोध में भरकर वे कठोर वचन बोले- रे मूर्ख जनक! बता, धनुष किसने तोड़ा? उसे शीघ्र दिखा, नहीं तो अरे मूढ़! आज मैं जहाँ तक तेरा राज्य है, वहाँ तक की पृथ्वी उलट दूँगा॥2॥

* अति डरु उतरु देत नृपु नाहीं। कुटिल भूप हरषे मन माहीं॥
सुर मुनि नाग नगर नर नारी। सोचहिं सकल त्रास उर भारी॥3॥

भावार्थ:-राजा को अत्यन्त डर लगा, जिसके कारण वे उत्तर नहीं देते। यह देखकर कुटिल राजा मन में बड़े प्रसन्न हुए। देवता, मुनि, नाग और नगर के स्त्री-पुरुष सभी सोच करने लगे, सबके हृदय में बड़ा भय है॥3॥

*मन पछिताति सीय महतारी। बिधि अब सँवरी बात बिगारी॥
भृगुपति कर सुभाउ सुनि सीता। अरध निमेष कलप सम बीता॥4॥

भावार्थ:-सीताजी की माता मन में पछता रही हैं कि हाय! विधाता ने अब बनी-बनाई बात बिगाड़ दी। परशुरामजी का स्वभाव सुनकर सीताजी को आधा क्षण भी कल्प के समान बीतते लगा॥4॥

दोहा :

* सभय बिलोके लोग सब जानि जानकी भीरु।
हृदयँ न हरषु बिषादु कछु बोले श्रीरघुबीरु॥270॥

भावार्थ:-तब श्री रामचन्द्रजी सब लोगों को भयभीत देखकर और सीताजी को डरी हुई जानकर बोले- उनके हृदय में न कुछ हर्ष था न विषाद-॥270॥

मासपारायण नौवाँ विश्राम

श्री राम-लक्ष्मण और परशुराम-संवाद

चौपाई :

* नाथ संभुधनु भंजनिहारा। होइहि केउ एक दास तुम्हारा॥
आयसु काह कहिअ किन मोही। सुनि रिसाइ बोले मुनि कोही॥1॥

भावार्थ:-हे नाथ! शिवजी के धनुष को तोड़ने वाला आपका कोई एक दास ही होगा। क्या आज्ञा है, मुझसे क्यों नहीं कहते? यह सुनकर क्रोधी मुनि रिसाकर बोले-॥1॥

* सेवकु सो जो करै सेवकाई। अरि करनी करि करिअ लराई॥
सुनहु राम जेहिं सिवधनु तोरा। सहसबाहु सम सो रिपु मोरा॥2॥

भावार्थ:-सेवक वह है जो सेवा का काम करे। शत्रु का काम करके तो लड़ाई ही करनी चाहिए। हे राम! सुनो, जिसने शिवजी के धनुष को तोड़ा है, वह सहस्रबाहु के समान मेरा शत्रु है॥2॥

* सो बिलगाउ बिहाइ समाजा। न त मारे जैहहिं सब राजा॥

सुनि मुनि बचन लखन मुसुकाने। बोले परसुधरहि अपमाने॥3॥

भावार्थ:-वह इस समाज को छोड़कर अलग हो जाए, नहीं तो सभी राजा मारे जाएँगे। मुनि के वचन सुनकर लक्ष्मणजी मुस्कुराए और परशुरामजी का अपमान करते हुए बोले-॥3॥

* बहु धनुहीं तोरीं लरिकाईं। कबहुँ न असि रिस कीन्हि गोसाईं॥

एहि धनु पर ममता केहि हेतू। सुनि रिसाइ कह भृगुकुलकेतू॥4॥

भावार्थ:-हे गोसाईं! लड़कपन में हमने बहुत सी धनुहियाँ तोड़ डालीं, किन्तु आपने ऐसा क्रोध कभी नहीं किया। इसी धनुष पर इतनी ममता किस कारण से है? यह सुनकर भृगुवंश की ध्वजा स्वरूप परशुरामजी कुपित होकर कहने लगे॥4॥

दोहा :

* रे नृप बालक काल बस बोलत तोहि न सँभार।

धनुही सम तिपुरारि धनु बिदित सकल संसार॥271॥

भावार्थ:-अरे राजपुत्र! काल के वश होने से तुझे बोलने में कुछ भी होश नहीं है। सारे संसार में विख्यात शिवजी का यह धनुष क्या धनुही के समान है?॥271॥

चौपाई :

* लखन कहा हँसि हमरें जाना। सुनहु देव सब धनुष समाना॥

का छति लाभु जून धनु तोरें। देखा राम नयन के भोरें॥1॥

भावार्थ:-लक्ष्मणजी ने हँसकर कहा- हे देव! सुनिए, हमारे जान में तो सभी धनुष एक से ही हैं। पुराने धनुष के तोड़ने में क्या हानि-लाभ! श्री रामचन्द्रजी ने तो इसे नवीन के धोखे से देखा था॥1॥

* छुअत टूट रघुपतिहु न दोसू। मुनि बिनु काज करिअ कत रोसू॥
बोले चितइ परसु की ओरा। रे सठ सुनेहि सुभाउ न मोरा॥2॥

भावार्थ:-फिर यह तो छूते ही टूट गया, इसमें रघुनाथजी का भी कोई दोष नहीं है। मुनि! आप बिना ही कारण किसलिए क्रोध करते हैं? परशुरामजी अपने फरसे की ओर देखकर बोले- अरे दुष्ट! तूने मेरा स्वभाव नहीं सुना॥2॥

* बालकु बोलि बधउँ नहिं तोही। केवल मुनि जड़ जानहि मोही॥
बाल ब्रह्मचारी अति कोही। बिस्व बिदित छत्रियकुल द्रोही॥3॥

भावार्थ:-मैं तुझे बालक जानकर नहीं मारता हूँ। अरे मूर्ख! क्या तू मुझे निरा मुनि ही जानता है। मैं बालब्रह्मचारी और अत्यन्त क्रोधी हूँ। क्षत्रियकुल का शत्रु तो विश्वभर में विख्यात हूँ॥3॥

* भुजबल भूमि भूप बिनु कीन्ही। बिपुल बार महिदेवन्ह दीन्ही॥
सहसबाहु भुज छेदनिहारा। परसु बिलोकु महीपकुमारा॥4॥

भावार्थ:-अपनी भुजाओं के बल से मैंने पृथ्वी को राजाओं से रहित कर दिया और बहुत बार उसे ब्राह्मणों को दे डाला। हे राजकुमार! सहस्रबाहु की भुजाओं को काटने वाले मेरे इस फरसे को देख!॥4॥

दोहा :

* मातु पितहि जनि सोचबस करसि महीसकिसोर।
गर्भन्ह के अर्भक दलन परसु मोर अति घोर॥272॥

भावार्थ:-अरे राजा के बालक! तू अपने माता-पिता को सोच के वश न कर। मेरा फरसा बड़ा भयानक है, यह गर्भों के बच्चों का भी नाश करने वाला है॥272॥

चौपाई :

*बिहसि लखनु बोले मृदु बानी। अहो मुनीसु महा भटमानी॥

पुनि पुनि मोहि देखाव कुठारू। चहत उड़ावन फूँकि पहारू॥1॥

भावार्थ:-लक्ष्मणजी हँसकर कोमल वाणी से बोले- अहो, मुनीश्वर तो अपने को बड़ा भारी योद्धा समझते हैं। बार-बार मुझे कुल्हाड़ी दिखाते हैं। फूँक से पहाड़ उड़ाना चाहते हैं॥1॥

* इहाँ कुम्हड़बतिया कोउ नाहीं। जे तरजनी देखि मरि जाहीं॥

देखि कुठारु सरासन बाना। मैं कछु कहा सहित अभिमाना॥2॥

भावार्थ:-यहाँ कोई कुम्हड़े की बतिया (छोटा कच्चा फल) नहीं है, जो तर्जनी (सबसे आगे की) अँगुली को देखते ही मर जाती हैं। कुठार और धनुष-बाण देखकर ही मैंने कुछ अभिमान सहित कहा था॥2॥

*भृगुसुत समुझि जनेउ बिलोकी। जो कछु कहहु सहउँ रिस रोकी॥

सुर महिसुर हरिजन अरु गाई। हमरें कुल इन्ह पर न सुराई॥3॥

भावार्थ:-भृगुवंशी समझकर और यज्ञोपवीत देखकर तो जो कुछ आप कहते हैं, उसे मैं क्रोध को रोककर सह लेता हूँ। देवता, ब्राह्मण, भगवान के भक्त और गो- इन पर हमारे कुल में वीरता नहीं दिखाई जाती॥3॥

* बधें पापु अपकीरति हारें। मारतहूँ पा परिअ तुम्हारें॥

कोटि कुलिस सम बचनु तुम्हारा। ब्यर्थ धरहु धनु बान कुठारा॥4॥

भावार्थ:-क्योंकि इन्हें मारने से पाप लगता है और इनसे हार जाने पर अपकीर्ति होती है, इसलिए आप मारें तो भी आपके पैर ही पड़ना चाहिए। आपका एक-एक वचन ही करोड़ों वज्रों के समान है। धनुष-बाण और कुठार तो आप व्यर्थ ही धारण करते हैं॥4॥

दोहा :

* जो बिलोकि अनुचित कहेउँ छमहु महामुनि धीर।

सुनि सरोष भृगुबंसमनि बोले गिरा गभीर॥273॥

भावार्थ:-इन्हें (धनुष-बाण और कुठार को) देखकर मैंने कुछ अनुचित कहा हो, तो उसे हे धीर महामुनि! क्षमा कीजिए। यह सुनकर भृगुवंशमणि परशुरामजी क्रोध के साथ गंभीर वाणी बोले-॥273॥

चौपाई :

* कौसिक सुनहु मंद यहु बालकु। कुटिल कालबस निज कुल घालकु॥
भानु बंस राकेस कलंकू। निपट निरंकुस अबुध असंकू॥1॥

भावार्थ:-हे विश्वामित्र! सुनो, यह बालक बड़ा कुबुद्धि और कुटिल है, काल के वश होकर यह अपने कुल का घातक बन रहा है। यह सूर्यवंश रूपी पूर्ण चन्द्र का कलंक है। यह बिल्कुल उद्दण्ड, मूर्ख और निडर है॥1॥

* काल कवलु होइहि छन माहीं। कहउँ पुकारि खोरि मोहि नाहीं॥
तुम्ह हटकहु जौं चहहु उबारा। कहि प्रतापु बलु रोषु हमारा॥2॥

भावार्थ:-अभी क्षण भर में यह काल का ग्रास हो जाएगा। मैं पुकारकर कहे देता हूँ, फिर मुझे दोष नहीं है। यदि तुम इसे बचाना चाहते हो, तो हमारा प्रताप, बल और क्रोध बतलाकर इसे मना कर दो॥2॥

* लखन कहेउ मुनि सुजसु तुम्हारा। तुम्हहि अछत को बरनै पारा॥
अपने मुँह तुम्ह आपनि करनी। बार अनेक भाँति बहु बरनी॥3॥

भावार्थ:-लक्ष्मणजी ने कहा- हे मुनि! आपका सुयश आपके रहते दूसरा कौन वर्णन कर सकता है? आपने अपने ही मुँह से अपनी करनी अनेकों बार बहुत प्रकार से वर्णन की है॥3॥

* नहिं संतोषु त पुनि कछु कहहू। जनि रिस रोकि दुसह दुख सहहू॥
बीरब्रती तुम्ह धीर अछोभा। गारी देत न पावहु सोभा॥4॥

भावार्थ:-इतने पर भी संतोष न हुआ हो तो फिर कुछ कह डालिए। क्रोध रोककर असह्य दुःख मत सहिए। आप वीरता का व्रत धारण करने वाले, धैर्यवान और क्षोभरहित हैं। गाली देते शोभा नहीं पाते॥4॥

दोहा :

* सूर समर करनी करहिं कहि न जनावहिं आपु।
बिद्यमान रन पाइ रिपु कायर कथहिं प्रतापु॥274॥

भावार्थ:-शूरवीर तो युद्ध में करनी (शूरवीरता का कार्य) करते हैं, कहकर अपने को नहीं जनाते। शत्रु को युद्ध में उपस्थित पाकर कायर ही अपने प्रताप की डींग मारा करते हैं॥274॥

चौपाई :

* तुम्ह तौ कालु हाँक जनु लावा। बार बार मोहि लागि बोलावा॥
सुनत लखन के बचन कठोरा। परसु सुधारि धरेउ कर घोरा॥1॥

भावार्थ:-आप तो मानो काल को हाँक लगाकर बार-बार उसे मेरे लिए बुलाते हैं। लक्ष्मणजी के कठोर वचन सुनते ही परशुरामजी ने अपने भयानक फरसे को सुधारकर हाथ में ले लिया॥1॥

* अब जनि देइ दोसु मोहि लोगू। कटुबादी बालकु बधजोगू॥
बाल बिलोकि बहुत मैं बाँचा। अब यहु मरनिहार भा साँचा॥2॥

भावार्थ:- (और बोले-) अब लोग मुझे दोष न दें। यह कडुआ बोलने वाला बालक मारे जाने के ही योग्य है। इसे बालक देखकर मैंने बहुत बचाया, पर अब यह सचमुच मरने को ही आ गया है॥2॥

* कौसिक कहा छमिअ अपराधू। बाल दोष गुन गनहिं न साधू॥
खर कुठार मैं अकरुन कोही। आगें अपराधी गुरुद्रोही॥3॥

भावार्थ:-विश्वामित्रजी ने कहा- अपराध क्षमा कीजिए। बालकों के दोष और गुण को साधु लोग नहीं गिनते। (परशुरामजी बोले-) तीखी धार का

कुठार, मैं दयारहित और क्रोधी और यह गुरुद्रोही और अपराधी मेरे सामने-॥3॥

* उतर देत छोड़उँ बिनु मारें। केवल कौसिक सील तुम्हारें॥
न त एहि काटि कुठार कठोरें। गुरहि उरिन होतेउँ श्रम थोरें॥4॥

भावार्थ:-उत्तर दे रहा है। इतने पर भी मैं इसे बिना मारे छोड़ रहा हूँ, सो हे विश्वामित्र! केवल तुम्हारे शील (प्रेम) से। नहीं तो इसे इस कठोर कुठार से काटकर थोड़े ही परिश्रम से गुरु से उऋण हो जाता॥4॥

दोहा :

* गाधिसूनु कह हृदयँ हँसि मुनिहि हरिअरइ सूझ।
अयमय खाँड़ न ऊखमय अजहुँ न बूझ अबूझ॥275॥

भावार्थ:-विश्वामित्रजी ने हृदय में हँसकर कहा- मुनि को हरा ही हरा सूझ रहा है (अर्थात सर्वत्र विजयी होने के कारण ये श्री राम-लक्ष्मण को भी साधारण क्षत्रिय ही समझ रहे हैं), किन्तु यह लोहमयी (केवल फौलाद की बनी हुई) खाँड़ (खाँड़ा-खड्ग) है, ऊख की (रस की) खाँड़ नहीं है (जो मुँह में लेते ही गल जाए। खेद है,) मुनि अब भी बेसमझ बने हुए हैं, इनके प्रभाव को नहीं समझ रहे हैं॥275॥

चौपाई :

* कहेउ लखन मुनि सीलु तुम्हारा। को नहिं जान बिदित संसारा॥
माता पितहि उरिन भए नीकें। गुर रिनु रहा सोचु बड़ जीकें॥1॥

भावार्थ:- लक्ष्मणजी ने कहा- हे मुनि! आपके शील को कौन नहीं जानता? वह संसार भर में प्रसिद्ध है। आप माता-पिता से तो अच्छी तरह उऋण हो ही गए, अब गुरु का ऋण रहा, जिसका जी में बड़ा सोच लगा है॥1॥

* सो जनु हमरेहि माथे काढ़ा। दिन चलि गए ब्याज बड़ बाढ़ा॥
अब आनिअ ब्यवहरिआ बोली। तुरत देउँ मैं थैली खोली॥2॥

भावार्थ:-वह मानो हमारे ही मत्थे काढ़ा था। बहुत दिन बीत गए, इससे ब्याज भी बहुत बढ़ गया होगा। अब किसी हिसाब करने वाले को बुला लाइए, तो मैं तुरंत थैली खोलकर दे दूँ॥2॥

*सुनि कटु बचन कुठार सुधारा। हाय हाय सब सभा पुकारा॥
भृगुबर परसु देखावहु मोही। बिप्र बिचारि बचउँ नृपदोही॥3॥

भावार्थ:-लक्ष्मणजी के कड़ुए वचन सुनकर परशुरामजी ने कुठार सम्हाला। सारी सभा हाय-हाय! करके पुकार उठी। (लक्ष्मणजी ने कहा-) हे भृगुश्रेष्ठ! आप मुझे फरसा दिखा रहे हैं? पर हे राजाओं के शत्रु! मैं ब्राह्मण समझकर बचा रहा हूँ (तरह दे रहा हूँ)॥3॥

* मिले न कबहुँ सुभट रन गाढ़े। द्विज देवता घरहि के बाढ़े॥
अनुचित कहि सब लोग पुकारे। रघुपति सयनहिं लखनु नेवारे॥4॥

भावार्थ:-आपको कभी रणधीर बलवान् वीर नहीं मिले हैं। हे ब्राह्मण देवता ! आप घर ही में बड़े हैं। यह सुनकर 'अनुचित है, अनुचित है' कहकर सब लोग पुकार उठे। तब श्री रघुनाथजी ने इशारे से लक्ष्मणजी को रोक दिया॥4॥

दोहा :

* लखन उतर आहुति सरिस भृगुबर कोपु कृसानु।
बढ़त देखि जल सम बचन बोले रघुकुलभानु॥276॥

भावार्थ:-लक्ष्मणजी के उत्तर से, जो आहुति के समान थे, परशुरामजी के क्रोध रूपी अग्नि को बढ़ते देखकर रघुकुल के सूर्य श्री रामचंद्रजी जल के समान (शांत करने वाले) वचन बोले-॥276॥

चौपाई :

*नाथ करहु बालक पर छोहु। सूध दूधमुख करिअ न कोहू॥
जौं पै प्रभु प्रभाउ कछु जाना। तौ कि बराबरि करत अयाना॥1॥

भावार्थ:-हे नाथ ! बालक पर कृपा कीजिए। इस सीधे और दूधमुँहे बच्चे पर क्रोध न कीजिए। यदि यह प्रभु का (आपका) कुछ भी प्रभाव जानता, तो क्या यह बेसमझ आपकी बराबरी करता ?॥1॥

* जौं लरिका कछु अचगरि करहीं। गुर पितु मातु मोद मन भरहीं॥
करिअ कृपा सिसु सेवक जानी। तुम्ह सम सील धीर मुनि ग्यानी॥2॥

भावार्थ:-बालक यदि कुछ चपलता भी करते हैं, तो गुरु, पिता और माता मन में आनंद से भर जाते हैं। अतः इसे छोटा बच्चा और सेवक जानकर कृपा कीजिए। आप तो समदर्शी, सुशील, धीर और ज्ञानी मुनि हैं॥2॥

* राम बचन सुनि कछुक जुड़ाने। कहि कछु लखनु बहुरि मुसुकाने॥
हँसत देखि नख सिख रिस ब्यापी। राम तोर भ्राता बड़ पापी॥3॥

भावार्थ:-श्री रामचंद्रजी के वचन सुनकर वे कुछ ठंडे पड़े। इतने में लक्ष्मणजी कुछ कहकर फिर मुस्कुरा दिए। उनको हँसते देखकर परशुरामजी के नख से शिखा तक (सारे शरीर में) क्रोध छा गया। उन्होंने कहा- हे राम! तेरा भाई बड़ा पापी है॥3॥

* गौर सरीर स्याम मन माहीं। कालकूट मुख पयमुख नाहीं॥
सहज टेढ़ अनुहरइ न तोही। नीचु मीचु सम देख न मोही॥4॥

भावार्थ:-यह शरीर से गोरा, पर हृदय का बड़ा काला है। यह विषमुख है, दूधमुँहा नहीं। स्वभाव ही टेढ़ा है, तेरा अनुसरण नहीं करता (तेरे जैसा शीलवान नहीं है)। यह नीच मुझे काल के समान नहीं देखता॥4॥

दोहा :

* लखन कहेउ हँसि सुनहु मुनि क्रोधु पाप कर मूल।
जेहि बस जन अनुचित करहिं चरहिं बिस्व प्रतिकूल॥277॥

भावार्थ:-लक्ष्मणजी ने हँसकर कहा- हे मुनि! सुनिए, क्रोध पाप का मूल है, जिसके वश में होकर मनुष्य अनुचित कर्म कर बैठते हैं और विश्वभर के प्रतिकूल चलते (सबका अहित करते) हैं॥277॥

चौपाई :

* मैं तुम्हार अनुचर मुनिराया। परिहरि कोपु करिअ अब दाया॥
टूट चाप नहिं जुरिहि रिसाने। बैठिअ होइहिं पाय पिराने॥1॥

भावार्थ:-हे मुनिराज! मैं आपका दास हूँ। अब क्रोध त्यागकर दया कीजिए। टूटा हुआ धनुष क्रोध करने से जुड़ नहीं जाएगा। खड़े-खड़े पैर दुःखने लगे होंगे, बैठ जाइए॥1॥

* जौं अति प्रिय तौ करिअ उपाई। जोरिअ कोउ बड़ गुनी बोलाई॥
बोलत लखनहिं जनकु डेराहीं। मष्ट करहु अनुचित भल नाहीं॥2॥

भावार्थ:-यदि धनुष अत्यन्त ही प्रिय हो, तो कोई उपाय किया जाए और किसी बड़े गुणी (कारीगर) को बुलाकर जुड़वा दिया जाए। लक्ष्मणजी के बोलने से जनकजी डर जाते हैं और कहते हैं- बस, चुप रहिए, अनुचित बोलना अच्छा नहीं॥2॥

* थर थर काँपहिं पुर नर नारी। छोट कुमार खोट बड़ भारी॥
भृगुपति सुनि सुनि निरभय बानी। रिस तन जरइ होई बल हानी॥3॥

भावार्थ:-जनकपुर के स्त्री-पुरुष थर-थर काँप रहे हैं (और मन ही मन कह रहे हैं कि) छोटा कुमार बड़ा ही खोटा है। लक्ष्मणजी की निर्भय वाणी सुन-सुनकर परशुरामजी का शरीर क्रोध से जला जा रहा है और उनके बल की हानि हो रही है (उनका बल घट रहा है)॥3॥

* बोले रामहि देइ निहोरा। बचउँ बिचारि बंधु लघु तोरा॥

मनु मलीन तनु सुंदर कैसें। बिष रस भरा कनक घटु जैसें॥4॥

भावार्थ:-तब श्री रामचन्द्रजी पर एहसान जनाकर परशुरामजी बोले- तेरा छोटा भाई समझकर मैं इसे बचा रहा हूँ। यह मन का मैला और शरीर का कैसा सुंदर है, जैसे विष के रस से भरा हुआ सोने का घड़ा!॥4॥

दोहा :

* सुनि लछिमन बिहसे बहुरि नयन तरेरे राम।

गुर समीप गवने सकुचि परिहरि बानी बाम॥278॥

भावार्थ:-यह सुनकर लक्ष्मणजी फिर हँसे। तब श्री रामचन्द्रजी ने तिरछी नजर से उनकी ओर देखा, जिससे लक्ष्मणजी सकुचाकर, विपरीत बोलना छोड़कर, गुरुजी के पास चले गए॥278॥

चौपाई :

* अति बिनीत मृदु सीतल बानी। बोले रामु जोरि जुग पानी॥

सुनहु नाथ तुम्ह सहज सुजाना। बालक बचनु करिअ नहिं काना॥1॥

भावार्थ:-श्री रामचन्द्रजी दोनों हाथ जोड़कर अत्यन्त विनय के साथ कोमल और शीतल वाणी बोले- हे नाथ! सुनिए, आप तो स्वभाव से ही सुजान हैं। आप बालक के वचन पर कान न दीजिए (उसे सुना-अनसुना कर दीजिए)॥1॥

*बररै बालकु एकु सुभाऊ। इन्हहि न संत बिदूषहिं काऊ ॥

तेहिं नाहीं कछु काज बिगारा। अपराधी मैं नाथ तुम्हारा॥2॥

भावार्थ:-बर्रै और बालक का एक स्वभाव है। संतजन इन्हें कभी दोष नहीं लगाते। फिर उसने (लक्ष्मण ने) तो कुछ काम भी नहीं बिगाड़ा है, हे नाथ! आपका अपराधी तो मैं हूँ॥2॥

* कृपा कोपु बधु बँधब गोसाईं। मो पर करिअ दास की नाईं॥
कहिअ बेगि जेहि बिधि रिस जाई। मुनिनायक सोइ करौं उपाई॥3॥

भावार्थ:-अतः हे स्वामी! कृपा, क्रोध, वध और बंधन, जो कुछ करना हो, दास की तरह (अर्थात दास समझकर) मुझ पर कीजिए। जिस प्रकार से शीघ्र आपका क्रोध दूर हो। हे मुनिराज! बताइए, मैं वही उपाय करूँ॥3॥

* कह मुनि राम जाइ रिस कैसें। अजहुँ अनुज तव चितव अनैसें॥
एहि कें कंठ कुठारु न दीन्हा। तौ मैं कहा कोपु करि कीन्हा॥4॥

भावार्थ:-मुनि ने कहा- हे राम! क्रोध कैसे जाए, अब भी तेरा छोटा भाई टेढ़ा ही ताक रहा है। इसकी गर्दन पर मैंने कुठार न चलाया, तो क्रोध करके किया ही क्या?॥4॥

दोहा :

* गर्भ स्रवहिं अवनिप रवनि सुनि कुठार गति घोर।
परसु अछत देखउँ जिअत बैरी भूपकिसोर॥279॥

भावार्थ:-मेरे जिस कुठार की घोर करनी सुनकर राजाओं की स्त्रियों के गर्भ गिर पड़ते हैं, उसी फरसे के रहते मैं इस शत्रु राजपुत्र को जीवित देख रहा हूँ॥279॥

चौपाई :

* बहइ न हाथु दहइ रिस छाती। भा कुठारु कुंठित नृपघाती॥
भयउ बाम बिधि फिरेउ सुभाऊ। मोरे हृदयँ कृपा कसि काऊ॥1॥

भावार्थ:-हाथ चलता नहीं, क्रोध से छाती जली जाती है। (हाय!) राजाओं का घातक यह कुठार भी कुण्ठित हो गया। विधाता विपरीत हो गया, इससे मेरा स्वभाव बदल गया, नहीं तो भला, मेरे हृदय में किसी समय भी कृपा कैसी?॥1॥

* आजु दया दुखु दुसह सहावा। सुनि सौमित्रि बिहसि सिरु नावा॥
बाउ कृपा मूरति अनुकूला। बोलत बचन झरत जनु फूला॥2॥

भावार्थ:-आज दया मुझे यह दुःसह दुःख सहा रही है। यह सुनकर लक्ष्मणजी ने मुस्कुराकर सिर नवाया (और कहा-) आपकी कृपा रूपी वायु भी आपकी मूर्ति के अनुकूल ही है, वचन बोलते हैं, मानो फूल झड़ रहे हैं॥2॥

* जौं पै कृपाँ जरिहिं मुनि गाता। क्रोध भएँ तनु राख बिधाता॥
देखु जनक हठि बालकु एहू। कीन्ह चहत जड़ जमपुर गेहू॥3॥

भावार्थ:-हे मुनि ! यदि कृपा करने से आपका शरीर जला जाता है, तो क्रोध होने पर तो शरीर की रक्षा विधाता ही करेंगे। (परशुरामजी ने कहा-) हे जनक! देख, यह मूर्ख बालक हठ करके यमपुरी में घर (निवास) करना चाहता है॥3॥

* बेगि करहु किन आँखिन्ह ओटा। देखत छोट खोट नृपु ढोटा॥
बिहसे लखनु कहा मन माहीं। मूदें आँखि कतहुँ कोउ नाहीं॥4॥

भावार्थ:-इसको शीघ्र ही आँखों की ओट क्यों नहीं करते? यह राजपुत्र देखने में छोटा है, पर है बड़ा खोटा। लक्ष्मणजी ने हँसकर मन ही मन कहा- आँख मूँद लेने पर कहीं कोई नहीं है॥4॥

दोहा :

* परसुरामु तब राम प्रति बोले उर अति क्रोधु।
संभु सरासनु तोरि सठ करसि हमार प्रबोधु॥280॥

भावार्थ:-तब परशुरामजी हृदय में अत्यन्त क्रोध भरकर श्री रामजी से बोले- अरे शठ! तू शिवजी का धनुष तोड़कर उलटा हमीं को ज्ञान सिखाता है॥280॥

चौपाई :

* बंधु कहइ कटु संमत तोरें। तू छल बिनय करसि कर जोरें॥
करु परितोषु मोर संग्रामा। नाहिं त छाड़ कहाउब रामा॥1॥

भावार्थ:-तेरा यह भाई तेरी ही सम्मति से कटु वचन बोलता है और तू छल से हाथ जोड़कर विनय करता है। या तो युद्ध में मेरा संतोष कर, नहीं तो राम कहलाना छोड़ दे॥1॥

* छलु तजि करहि समरु सिवद्रोही। बंधु सहित न त मारउँ तोही॥
भृगुपति बकहिं कुठार उठाएँ। मन मुसुकाहिं रामु सिर नाएँ॥2॥

भावार्थ:-अरे शिवद्रोही! छल त्यागकर मुझसे युद्ध कर। नहीं तो भाई सहित तुझे मार डालूँगा। इस प्रकार परशुरामजी कुठार उठाए बक रहे हैं और श्री रामचन्द्रजी सिर झुकाए मन ही मन मुस्कुरा रहे हैं॥2॥

* गुनह लखन कर हम पर रोषू। कतहुँ सुधाइहु ते बड़ दोषू॥
टेढ़ जानि सब बंदइ काहू। बक्र चंद्रमहि ग्रसइ न राहू॥3॥

भावार्थ:-(श्री रामचन्द्रजी ने मन ही मन कहा-) गुनाह (दोष) तो लक्ष्मण का और क्रोध मुझ पर करते हैं। कहीं-कहीं सीधेपन में भी बड़ा दोष होता है। टेढ़ा जानकर सब लोग किसी की भी वंदना करते हैं, टेढ़े चन्द्रमा को राहु भी नहीं ग्रसता॥3॥

* राम कहेउ रिस तजिअ मुनीसा। कर कुठारु आगें यह सीसा॥
जेहिं रिस जाइ करिअ सोइ स्वामी। मोहि जानिअ आपन अनुगामी॥4॥

भावार्थ:-श्री रामचन्द्रजी ने (प्रकट) कहा- हे मुनीश्वर! क्रोध छोड़िए। आपके हाथ में कुठार है और मेरा यह सिर आगे है, जिस प्रकार आपका क्रोध जाए, हे स्वामी! वही कीजिए। मुझे अपना अनुचर (दास) जानिए॥4॥

दोहा :

* प्रभुहि सेवकहि समरु कस तजहु बिप्रबर रोसु।
बेषु बिलोकें कहेसि कछु बालकहू नहिं दोसु॥281॥

भावार्थ:-स्वामी और सेवक में युद्ध कैसा? हे ब्राह्मण श्रेष्ठ! क्रोध का त्याग कीजिए। आपका (वीरों का सा) वेष देखकर ही बालक ने कुछ कह डाला था, वास्तव में उसका भी कोई दोष नहीं है॥281॥

चौपाई :

*देखि कुठार बान धनु धारी। भै लरिकहि रिस बीरु बिचारी॥
नामु जान पै तुम्हहि न चीन्हा। बंस सुभायँ उतरु तेहिं दीन्हा॥1॥

भावार्थ:-आपको कुठार, बाण और धनुष धारण किए देखकर और वीर समझकर बालक को क्रोध आ गया। वह आपका नाम तो जानता था, पर उसने आपको पहचाना नहीं। अपने वंश (रघुवंश) के स्वभाव के अनुसार उसने उत्तर दिया॥1॥

* जौं तुम्ह औतेहु मुनि की नाईं। पद रज सिर सिसु धरत गोसाईं॥
छमहु चूक अनजानत केरी। चहिअ बिप्र उर कृपा घनेरी॥2॥

भावार्थ:-यदि आप मुनि की तरह आते, तो हे स्वामी! बालक आपके चरणों की धूलि सिर पर रखता। अनजाने की भूल को क्षमा कर दीजिए। ब्राह्मणों के हृदय में बहुत अधिक दया होनी चाहिए॥2॥

* हमहि तुम्हहि सरिबरि कसि नाथा। कहहु न कहाँ चरन कहँ माथा॥
राम मात्र लघुनाम हमारा। परसु सहित बड़ नाम तोहारा॥3॥

भावार्थ:-हे नाथ! हमारी और आपकी बराबरी कैसी? कहिए न, कहाँ चरण और कहाँ मस्तक! कहाँ मेरा राम मात्र छोटा सा नाम और कहाँ आपका परशुसहित बड़ा नाम॥3॥

* देव एकु गुनु धनुष हमारें। नव गुन परम पुनीत तुम्हारें॥

सब प्रकार हम तुम्ह सन हारे। छमहु बिप्र अपराध हमारे॥4॥
भावार्थ:-हे देव! हमारे तो एक ही गुण धनुष है और आपके परम पवित्र (शम, दम, तप, शौच, क्षमा, सरलता, ज्ञान, विज्ञान और आस्तिकता ये) नौ गुण हैं। हम तो सब प्रकार से आपसे हारे हैं। हे विप्र! हमारे अपराधों को क्षमा कीजिए॥4॥

दोहा :

* बार बार मुनि बिप्रबर कहा राम सन राम।
बोले भृगुपति सरुष हसि तहूँ बंधू सम बाम॥282॥

भावार्थ:-श्री रामचन्द्रजी ने परशुरामजी को बार-बार 'मुनि' और 'विप्रवर' कहा। तब भृगुपति (परशुरामजी) कुपित होकर (अथवा क्रोध की हँसी हँसकर) बोले- तू भी अपने भाई के समान ही टेढ़ा है॥282॥

* निपटहिं द्विज करि जानहि मोही। मैं जस बिप्र सुनावउँ तोही॥
चाप सुवा सर आहुति जानू। कोपु मोर अति घोर कृसानू॥1॥

भावार्थ:-तू मुझे निरा ब्राह्मण ही समझता है? मैं जैसा विप्र हूँ, तुझे सुनाता हूँ। धनुष को सुरवा, बाण को आहुति और मेरे क्रोध को अत्यन्त भयंकर अग्नि जान॥1॥

* समिधि सेन चतुरंग सुहाई। महा महीप भए पसु आई॥
मैं एहिं परसु काटि बलि दीन्हे। समर जग्य जप कोटिन्ह कीन्हे॥2॥

भावार्थ:-चतुरंगिणी सेना सुंदर समिधाएँ (यज्ञ में जलाई जाने वाली लकड़ियाँ) हैं। बड़े-बड़े राजा उसमें आकर बलि के पशु हुए हैं, जिनको मैंने इसी फरसे से काटकर बलि दिया है। ऐसे करोड़ों जपयुक्त रणयज्ञ मैंने किए हैं (अर्थात जैसे मंत्रोच्चारण पूर्वक 'स्वाहा' शब्द के साथ आहुति

दी जाती है, उसी प्रकार मैंने पुकार-पुकार कर राजाओं की बलि दी है)॥2॥

* मोर प्रभाउ बिदित नहिं तोरें। बोलसि निदरि बिप्र के भोरें॥
भंजेउ चापु दापु बड़ बाढ़ा। अहमिति मनहुँ जीति जगु ठाढ़ा॥3॥

भावार्थ:-मेरा प्रभाव तुझे मालूम नहीं है, इसी से तू ब्राह्मण के धोखे मेरा निरादर करके बोल रहा है। धनुष तोड़ डाला, इससे तेरा घमंड बहुत बढ़ गया है। ऐसा अहंकार है, मानो संसार को जीतकर खड़ा है॥3॥

* राम कहा मुनि कहहु बिचारी। रिस अति बड़ि लघु चूक हमारी॥
छुअतहिं टूट पिनाक पुराना। मैं केहि हेतु करौं अभिमाना॥4॥

भावार्थ:-श्री रामचन्द्रजी ने कहा- हे मुनि! विचारकर बोलिए। आपका क्रोध बहुत बड़ा है और मेरी भूल बहुत छोटी है। पुराना धनुष था, छूते ही टूट गया। मैं किस कारण अभिमान करूँ?॥4॥

दोहा :

* जौं हम निदरहिं बिप्र बदि सत्य सुनहु भृगुनाथ।
तौ अस को जग सुभटु जेहि भय बस नावहिं माथ॥283॥

भावार्थ:-हे भृगुनाथ! यदि हम सचमुच ब्राह्मण कहकर निरादर करते हैं, तो यह सत्य सुनिए, फिर संसार में ऐसा कौन योद्धा है, जिसे हम डरके मारे मस्तक नवाएँ?॥283॥

चौपाई :

* देव दनुज भूपति भट नाना। समबल अधिक होउ बलवाना॥
जौं रन हमहि पचारै कोऊ। लरहिं सुखेन कालु किन होऊ ॥1॥

भावार्थ:-देवता, दैत्य, राजा या और बहुत से योद्धा, वे चाहे बल में हमारे बराबर हों चाहे अधिक बलवान हों, यदि रण में हमें कोई भी ललकारे तो हम उससे सुखपूर्वक लड़ेंगे, चाहे काल ही क्यों न हो॥1॥

* छत्रिय तनु धरि समर सकाना। कुल कलंकु तेहिं पावँर आना॥
कहउँ सुभाउ न कुलहि प्रसंसी। कालहु डरहिं न रन रघुबंसी॥2॥

भावार्थ:-क्षत्रिय का शरीर धरकर जो युद्ध में डर गया, उस नीच ने अपने कुल पर कलंक लगा दिया। मैं स्वभाव से ही कहता हूँ, कुल की प्रशंसा करके नहीं, कि रघुवंशी रण में काल से भी नहीं डरते॥2॥

* बिप्रबंस कै असि प्रभुताई। अभय होइ जो तुम्हहि डेराई॥
सुनि मृदु गूढ़ बचन रघुपत के। उघरे पटल परसुधर मति के॥3॥

भावार्थ:-ब्राह्मणवंश की ऐसी ही प्रभुता (महिमा) है कि जो आपसे डरता है, वह सबसे निर्भय हो जाता है (अथवा जो भयरहित होता है, वह भी आपसे डरता है) श्री रघुनाथजी के कोमल और रहस्यपूर्ण वचन सुनकर परशुरामजी की बुद्धि के परदे खुल गए॥3॥

* राम रमापति कर धनु लेहू। खैंचहु मिटै मोर संदेहू॥
देत चापु आपुहिं चलि गयऊ। परसुराम मन बिसमय भयऊ॥4॥

भावार्थ:-(परशुरामजी ने कहा-) हे राम! हे लक्ष्मीपति! धनुष को हाथ में (अथवा लक्ष्मीपति विष्णु का धनुष) लीजिए और इसे खींचिए, जिससे मेरा संदेह मिट जाए। परशुरामजी धनुष देने लगे, तब वह आप ही चला गया। तब परशुरामजी के मन में बड़ा आश्चर्य हुआ॥4॥

दोहा :

* जाना राम प्रभाउ तब पुलक प्रफुल्लित गात।
जोरि पानि बोले बचन हृदयँ न प्रेमु अमात॥284॥

भावार्थ:-तब उन्होंने श्री रामजी का प्रभाव जाना, (जिसके कारण) उनका शरीर पुलकित और प्रफुल्लित हो गया। वे हाथ जोड़कर वचन बोले- प्रेम उनके हृदय में समाता न था-॥284॥

चौपाई :

* जय रघुबंस बनज बन भानू। गहन दनुज कुल दहन कृसानू॥
जय सुर बिप्र धेनु हितकारी। जय मद मोह कोह भ्रम हारी॥1॥

भावार्थ:-हे रघुकुल रूपी कमल वन के सूर्य! हे राक्षसों के कुल रूपी घने जंगल को जलाने वाले अग्नि! आपकी जय हो! हे देवता, ब्राह्मण और गो का हित करने वाले! आपकी जय हो। हे मद, मोह, क्रोध और भ्रम के हरने वाले! आपकी जय हो॥1॥

* बिनय सील करुना गुन सागर। जयति बचन रचना अति नागर॥
सेवक सुखद सुभग सब अंगा। जय सरीर छबि कोटि अनंगा॥2॥

भावार्थ:-हे विनय, शील, कृपा आदि गुणों के समुद्र और वचनों की रचना में अत्यन्त चतुर! आपकी जय हो। हे सेवकों को सुख देने वाले, सब अंगों से सुंदर और शरीर में करोड़ों कामदेवों की छबि धारण करने वाले! आपकी जय हो॥2॥

*करौं काह मुख एक प्रसंसा। जय महेस मन मानस हंसा॥
अनुचित बहुत कहेउँ अग्याता। छमहु छमा मंदिर दोउ भ्राता॥3॥

भावार्थ:-मैं एक मुख से आपकी क्या प्रशंसा करूँ? हे महादेवजी के मन रूपी मानसरोवर के हंस! आपकी जय हो। मैंने अनजाने में आपको बहुत से अनुचित वचन कहे। हे क्षमा के मंदिर दोनों भाई! मुझे क्षमा कीजिए॥3॥

* कहि जय जय जय रघुकुलकेतू। भृगुपति गए बनहि तप हेतू॥

अपभयँ कुटिल महीप डेराने। जहँ तहँ कायर गवँहिं पराने॥4॥

भावार्थ:-हे रघुकुल के पताका स्वरूप श्री रामचन्द्रजी! आपकी जय हो, जय हो, जय हो। ऐसा कहकर परशुरामजी तप के लिए वन को चले गए। (यह देखकर) दुष्ट राजा लोग बिना ही कारण के (मनः कल्पित) डर से (रामचन्द्रजी से तो परशुरामजी भी हार गए, हमने इनका अपमान किया था, अब कहीं ये उसका बदला न लें, इस व्यर्थ के डर से डर गए) वे कायर चुपके से जहाँ-तहाँ भाग गए॥4॥

दोहा :

* देवन्ह दीन्हीं दुंदुभीं प्रभु पर बरषहिं फूल।
हरषे पुर नर नारि सब मिटी मोहमय सूल॥285॥

भावार्थ:-देवताओं ने नगाड़े बजाए, वे प्रभु के ऊपर फूल बरसाने लगे। जनकपुर के स्त्री-पुरुष सब हर्षित हो गए। उनका मोहमय (अज्ञान से उत्पन्न) शूल मिट गया॥285॥

चौपाई :

* अति गहगहे बाजने बाजे। सबहिं मनोहर मंगल साजे॥
जूथ जूथ मिलि सुमुखि सुनयनीं। करहिं गान कल कोकिलबयनीं॥1॥

भावार्थ:-खूब जोर से बाजे बजने लगे। सभी ने मनोहर मंगल साज साजे। सुंदर मुख और सुंदर नेत्रों वाली तथा कोयल के समान मधुर बोलने वाली स्त्रियाँ झुंड की झुंड मिलकर सुंदरगान करने लगीं॥1॥

* सुखु बिदेह कर बरनि न जाई। जन्मदरिद्र मनहुँ निधि पाई॥
बिगत त्रास भइ सीय सुखारी। जनु बिधु उदयँ चकोरकुमारी॥2॥

भावार्थ:-जनकजी के सुख का वर्णन नहीं किया जा सकता, मानो जन्म का दरिद्री धन का खजाना पा गया हो! सीताजी का भय जाता रहा, वे

ऐसी सुखी हुईं जैसे चन्द्रमा के उदय होने से चकोर की कन्या सुखी होती है॥2॥

* जनक कीन्ह कौसिकहि प्रनामा। प्रभु प्रसाद धनु भंजेउ रामा॥
मोहि कृतकृत्य कीन्ह दुहुँ भाईं। अब जो उचित सो कहिअ गोसाईं॥3॥

भावार्थ:-जनकजी ने विश्वामित्रजी को प्रणाम किया (और कहा-) प्रभु ही की कृपा से श्री रामचन्द्रजी ने धनुष तोड़ा है। दोनों भाइयों ने मुझे कृतार्थ कर दिया। हे स्वामी! अब जो उचित हो सो कहिए॥3॥

* कह मुनि सुनु नरनाथ प्रबीना। रहा बिबाहु चाप आधीना॥
टूटतहीं धनु भयउ बिबाहू। सुर नर नाग बिदित सब काहू॥4॥

भावार्थ:-मुनि ने कहा- हे चतुर नरेश ! सुनो यों तो विवाह धनुष के अधीन था, धनुष के टूटते ही विवाह हो गया। देवता, मनुष्य और नाग सब किसी को यह मालूम है॥4॥

दशरथजी के पास जनकजी का दूत भेजना, अयोध्या से बारात का प्रस्थान

दोहा :

* तदपि जाइ तुम्ह करहु अब जथा बंस ब्यवहारु।
बूझि बिप्र कुलबृद्ध गुर बेद बिदित आचारु॥286॥

भावार्थ:-तथापि तुम जाकर अपने कुल का जैसा व्यवहार हो, ब्राह्मणों, कुल के बूढ़ों और गुरुओं से पूछकर और वेदों में वर्णित जैसा आचार हो वैसा करो॥286॥

चौपाई :

* दूत अवधपुर पठवहु जाई। आनहिं नृप दसरथहिं बोलाई॥
मुदित राउ कहि भलेहिं कृपाला। पठए दूत बोलि तेहि काला॥1॥

भावार्थ:-जाकर अयोध्या को दूत भेजो, जो राजा दशरथ को बुला लावें। राजा ने प्रसन्न होकर कहा- हे कृपालु! बहुत अच्छा! और उसी समय दूतों को बुलाकर भेज दिया॥1॥

* बहुरि महाजन सकल बोलाए। आइ सबन्हि सादर सिर नाए॥
हाट बाट मंदिर सुरबासा। नगरु सँवारहु चारिहुँ पासा॥2॥

भावार्थ:-फिर सब महाजनों को बुलाया और सबने आकर राजा को आदरपूर्वक सिर नवाया। (राजा ने कहा-) बाजार, रास्ते, घर, देवालय और सारे नगर को चारों ओर से सजाओ॥2॥

* हरषि चले निज निज गृह आए। पुनि परिचारक बोलि पठाए॥
रचहु बिचित्र बितान बनाई। सिर धरि बचन चले सचु पाई॥3॥

भावार्थ:-महाजन प्रसन्न होकर चले और अपने-अपने घर आए। फिर राजा ने नौकरों को बुला भेजा (और उन्हें आज्ञा दी कि) विचित्र मंडप सजाकर तैयार करो। यह सुनकर वे सब राजा के वचन सिर पर धरकर और सुख पाकर चले॥3॥

* पठए बोलि गुनी तिन्ह नाना। जे बितान बिधि कुसल सुजाना॥
बिधिहि बंदि तिन्ह कीन्ह अरंभा। बिरचे कनक कदलि के खंभा॥4॥

भावार्थ:-उन्होंने अनेक कारीगरों को बुला भेजा, जो मंडप बनाने में कुशल और चतुर थे। उन्होंने ब्रह्मा की वंदना करके कार्य आरंभ किया और (पहले) सोने के केले के खंभे बनाए॥4॥

दोहा :

* हरित मनिन्ह के पत्र फल पदुमराग के फूल।
रचना देखि बिचित्र अति मनु बिरंचि कर भूल॥287॥

भावार्थ:-हरी-हरी मणियों (पन्ने) के पत्ते और फल बनाए तथा पद्मराग मणियों (माणिक) के फूल बनाए। मंडप की अत्यन्त विचित्र रचना देखकर ब्रह्मा का मन भी भूल गया॥287॥

चौपाई :

* बेनु हरित मनिमय सब कीन्हे। सरल सपरब परहिं नहिं चीन्हे॥
कनक कलित अहिबेलि बनाई। लखि नहिं परइ सपरन सुहाई॥1॥

भावार्थ:-बाँस सब हरी-हरी मणियों (पन्ने) के सीधे और गाँठों से युक्त ऐसे बनाए जो पहचाने नहीं जाते थे (कि मणियों के हैं या साधारण)। सोने की सुंदर नागबेली (पान की लता) बनाई, जो पत्तों सहित ऐसी भली मालूम होती थी कि पहचानी नहीं जाती थी॥1॥

* तेहि के रचि पचि बंध बनाए। बिच बिच मुकुता दाम सुहाए॥
मानिक मरकत कुलिस पिरोजा। चीरि कोरि पचि रचे सरोजा॥2॥

भावार्थ:-उसी नागबेली के रचकर और पच्चीकारी करके बंधन (बाँधने की रस्सी) बनाए। बीच-बीच में मोतियों की सुंदर झालरें हैं। माणिक, पन्ने, हीरे और िफरोजे, इन रत्नों को चीरकर, कोरकर और पच्चीकारी करके, इनके (लाल, हरे, सफेद और फिरोजी रंग के) कमल बनाए॥2॥

* किए भृंग बहुरंग बिहंगा। गुंजहिं कूजहिं पवन प्रसंगा॥
सुर प्रतिमा खंभन गढ़ि काढ़ीं। मंगल द्रब्य लिएँ सब ठाढ़ीं॥3॥

भावार्थ:-भौंरे और बहुत रंगों के पक्षी बनाए, जो हवा के सहारे गूँजते और कूजते थे। खंभों पर देवताओं की मूर्तियाँ गढ़कर निकालीं, जो सब मंगल द्रव्य लिए खड़ी थीं॥3॥

* चौकें भाँति अनेक पुराईं। सिंधुर मनिमय सहज सुहाईं॥4॥

भावार्थ:-गजमुक्ताओं के सहज ही सुहावने अनेकों तरह के चौक पुराए॥4॥

दोहा :

* सौरभ पल्लव सुभग सुठि किए नीलमनि कोरि।
हेम बौर मरकत घवरि लसत पाटमय डोरि॥288॥

भावार्थ:-नील मणि को कोरकर अत्यन्त सुंदर आम के पत्ते बनाए। सोने के बौर (आम के फूल) और रेशम की डोरी से बँधे हुए पन्ने के बने फलों के गुच्छे सुशोभित हैं॥288॥

चौपाई :

* रचे रुचिर बर बंदनिवारे। मनहुँ मनोभवँ फंद सँवारे॥
मंगल कलश अनेक बनाए। ध्वज पताक पट चमर सुहाए॥1॥

भावार्थ:-ऐसे सुंदर और उत्तम बंदनवार बनाए मानो कामदेव ने फंदे सजाए हों। अनेकों मंगल कलश और सुंदर ध्वजा, पताका, परदे और चँवर बनाए॥1॥

* दीप मनोहर मनिमय नाना। जाइ न बरनि बिचित्र बिताना॥
जेहिं मंडप दुलहिनि बैदेही। सो बरनै असि मति कबि केही॥2॥

भावार्थ:-जिसमें मणियों के अनेकों सुंदर दीपक हैं, उस विचित्र मंडप का तो वर्णन ही नहीं किया जा सकता, जिस मंडप में श्री जानकीजी दुलहिन होंगी, किस कवि की ऐसी बुद्धि है जो उसका वर्णन कर सके॥2॥

* दूलहु रामु रूप गुन सागर। सो बितानु तिहुँ लोग उजागर॥
जनक भवन कै सोभा जैसी। गृह गृह प्रति पुर देखिअ तैसी॥3॥

भावार्थ:-जिस मंडप में रूप और गुणों के समुद्र श्री रामचन्द्रजी दूल्हे होंगे, वह मंडप तीनों लोकों में प्रसिद्ध होना ही चाहिए। जनकजी के महल की जैसी शोभा है, वैसी ही शोभा नगर के प्रत्येक घर की दिखाई देती है॥3॥

* जेहिं तेरहुति तेहि समय निहारी। तेहि लघु लगहिं भुवन दस चारी॥
जो संपदा नीच गृह सोहा। सो बिलोकि सुरनायक मोहा॥4॥

भावार्थ:-उस समय जिसने तिरहुत को देखा, उसे चौदह भुवन तुच्छ जान पड़े। जनकपुर में नीच के घर भी उस समय जो सम्पदा सुशोभित थी, उसे देखकर इन्द्र भी मोहित हो जाता था॥4॥

दोहा :

* बसइ नगर जेहिं लच्छि करि कपट नारि बर बेषु।
तेहि पुर कै सोभा कहत सकुचहिं सारद सेषु॥289॥

भावार्थ:-जिस नगर में साक्षात् लक्ष्मीजी कपट से स्त्री का सुंदर वेष बनाकर बसती हैं, उस पुर की शोभा का वर्णन करने में सरस्वती और शेष भी सकुचाते हैं॥289॥

चौपाई :

* पहुँचे दूत राम पुर पावन। हरषे नगर बिलोकि सुहावन॥
भूप द्वार तिन्ह खबरि जनाई। दसरथ नृप सुनि लिए बोलाई॥1॥

भावार्थ:-जनकजी के दूत श्री रामचन्द्रजी की पवित्र पुरी अयोध्या में पहुँचे। सुंदर नगर देखकर वे हर्षित हुए। राजद्वार पर जाकर उन्होंने खबर भेजी, राजा दशरथजी ने सुनकर उन्हें बुला लिया॥1॥

* करि प्रनामु तिन्ह पाती दीन्ही। मुदित महीप आपु उठि लीन्ही॥
बारि बिलोचन बाँचत पाती। पुलक गात आई भरि छाती॥2॥

भावार्थ:-दूतों ने प्रणाम करके चिट्ठी दी। प्रसन्न होकर राजा ने स्वयं उठकर उसे लिया। चिट्ठी बाँचते समय उनके नेत्रों में जल (प्रेम और आनंद के आँसू) छा गया, शरीर पुलकित हो गया और छाती भर आई॥2॥

* रामु लखनु उर कर बर चीठी। रहि गए कहत न खाटी मीठी॥
पुनि धरि धीर पत्रिका बाँची। हरषी सभा बात सुनि साँची॥3॥

भावार्थ:-हृदय में राम और लक्ष्मण हैं, हाथ में सुंदर चिट्ठी है, राजा उसे हाथ में लिए ही रह गए, खट्टी-मीठी कुछ भी कह न सके। फिर धीरज धरकर उन्होंने पत्रिका पढ़ी। सारी सभा सच्ची बात सुनकर हर्षित हो गई॥3॥

* खेलत रहे तहाँ सुधि पाई। आए भरतु सहित हित भाई॥
पूछत अति सनेहँ सकुचाई। तात कहाँ तें पाती आई॥4॥

भावार्थ:-भरतजी अपने मित्रों और भाई शत्रुघ्न के साथ जहाँ खेलते थे, वहीं समाचार पाकर वे आ गए। बहुत प्रेम से सकुचाते हुए पूछते हैं- पिताजी! चिट्ठी कहाँ से आई है?॥4॥

दोहा :

* कुसल प्रानप्रिय बंधु दोउ अहहिं कहहु केहिं देस।
सुनि सनेह साने बचन बाची बहुरि नरेस॥290॥

भावार्थ:- हमारे प्राणों से प्यारे दोनों भाई, कहिए सकुशल तो हैं और वे किस देश में हैं? स्नेह से सने ये वचन सुनकर राजा ने फिर से चिट्ठी पढ़ी॥290॥

चौपाई :

* सुनि पाती पुलके दोउ भ्राता। अधिन सनेहु समात न गाता॥

प्रीति पुनीत भरत कै देखी। सकल सभाँ सुखु लहेउ बिसेषी॥1॥
भावार्थ:-चिट्ठी सुनकर दोनों भाई पुलकित हो गए। स्नेह इतना अधिक हो गया कि वह शरीर में समाता नहीं। भरतजी का पवित्र प्रेम देखकर सारी सभा ने विशेष सुख पाया॥1॥

* तब नृप दूत निकट बैठारे। मधुर मनोहर बचन उचारे॥
भैया कहहु कुसल दोउ बारे। तुम्ह नीकें निज नयन निहारे॥2॥
भावार्थ:-तब राजा दूतों को पास बैठाकर मन को हरने वाले मीठे वचन बाले- भैया! कहो, दोनों बच्चे कुशल से तो हैं? तुमने अपनी आँखों से उन्हें अच्छी तरह देखा है न?॥2॥

* स्यामल गौर धरें धनु भाथा। बय किसोर कौसिक मुनि साथा॥
पहिचानहु तुम्ह कहहु सुभाऊ। प्रेम बिबस पुनि पुनि कह राऊ॥3॥
भावार्थ:-साँवले और गोरे शरीर वाले वे धनुष और तरकस धारण किए रहते हैं, किशोर अवस्था है, विश्वामित्र मुनि के साथ हैं। तुम उनको पहचानते हो तो उनका स्वभाव बताओ। राजा प्रेम के विशेष वश होने से बार-बार इस प्रकार कह (पूछ) रहे हैं॥3॥

* जा दिन तें मुनि गए लवाई। तब तें आजु साँचि सुधि पाई॥
कहहु बिदेह कवन बिधि जाने। सुनि प्रिय बचन दूत मुसुकाने॥4॥
भावार्थ:- (भैया!) जिस दिन से मुनि उन्हें लिवा ले गए, तब से आज ही हमने सच्ची खबर पाई है। कहो तो महाराज जनक ने उन्हें कैसे पहचाना? ये प्रिय (प्रेम भरे) वचन सुनकर दूत मुस्कुराए॥4॥
दोहा :
* सुनहु महीपति मुकुट मनि तुम्ह सम धन्य न कोउ।
रामु लखनु जिन्ह के तनय बिस्व बिभूषन दोउ॥291॥

भावार्थ:-(दूतों ने कहा-) हे राजाओं के मुकुटमणि! सुनिए, आपके समान धन्य और कोई नहीं है, जिनके राम-लक्ष्मण जैसे पुत्र हैं, जो दोनों विश्व के विभूषण हैं॥291॥

चौपाई :

* पूछन जोगु न तनय तुम्हारे। पुरुषसिंघ तिहु पुर उजिआरे॥
जिन्ह के जस प्रताप कें आगे। ससि मलीन रबि सीतल लागे॥1॥

भावार्थ:-आपके पुत्र पूछने योग्य नहीं हैं। वे पुरुषसिंह तीनों लोकों के प्रकाश स्वरूप हैं। जिनके यश के आगे चन्द्रमा मलिन और प्रताप के आगे सूर्य शीतल लगता है॥1॥

* तिन्ह कहँ कहिअ नाथ किमि चीन्हे। देखिअ रबि कि दीप कर लीन्हे॥
सीय स्वयंबर भूप अनेका। समिटे सुभट एक तें एका॥2॥

भावार्थ:-हे नाथ! उनके लिए आप कहते हैं कि उन्हें कैसे पहचाना! क्या सूर्य को हाथ में दीपक लेकर देखा जाता है? सीताजी के स्वयंवर में अनेकों राजा और एक से एक बढ़कर योद्धा एकत्र हुए थे॥2॥

* संभु सरासनु काहुँ न टारा। हारे सकल बीर बरिआरा॥
तीनि लोक महँ जे भटमानी। सभ कै सकति संभु धनु भानी॥3॥

भावार्थ:-परंतु शिवजी के धनुष को कोई भी नहीं हटा सका। सारे बलवान वीर हार गए। तीनों लोकों में जो वीरता के अभिमानी थे, शिवजी के धनुष ने सबकी शक्ति तोड़ दी॥3॥

* सकइ उठाइ सरासुर मेरू। सोउ हियँ हारि गयउ करि फेरू॥
जेहिं कौतुक सिवसैलु उठावा। सोउ तेहि सभाँ पराभउ पावा॥4॥

भावार्थ:-बाणासुर, जो सुमेरु को भी उठा सकता था, वह भी हृदय में हारकर परिक्रमा करके चला गया और जिसने खेल से ही कैलास को उठा लिया था, वह रावण भी उस सभा में पराजय को प्राप्त हुआ॥4॥

दोहा :

* तहाँ राम रघुबंसमनि सुनिअ महा महिपाल।
भंजेउ चाप प्रयास बिनु जिमि गज पंकज नाल॥292॥

भावार्थ:-हे महाराज! सुनिए, वहाँ (जहाँ ऐसे-ऐसे योद्धा हार मान गए) रघुवंशमणि श्री रामचन्द्रजी ने बिना ही प्रयास शिवजी के धनुष को वैसे ही तोड़ डाला जैसे हाथी कमल की डंडी को तोड़ डालता है!॥292॥

चौपाई :

* सुनि सरोष भृगुनायकु आए। बहुत भाँति तिन्ह आँखि देखाए॥
देखि राम बलु निज धनु दीन्हा। करिबहु बिनय गवनु बन कीन्हा॥1॥

भावार्थ:-धनुष टूटने की बात सुनकर परशुरामजी क्रोध में भरे आए और उन्होंने बहुत प्रकार से आँखें दिखलाईं। अंत में उन्होंने भी श्री रामचन्द्रजी का बल देखकर उन्हें अपना धनुष दे दिया और बहुत प्रकार से विनती करके वन को गमन किया॥1॥

* राजन रामु अतुलबल जैसें। तेज निधान लखनु पुनि तैसें॥
कंपहिं भूप बिलोकत जाकें। जिमि गज हरि किसोर के ताकें॥2॥

भावार्थ:-हे राजन्! जैसे श्री रामचन्द्रजी अतुलनीय बली हैं, वैसे ही तेज निधान फिर लक्ष्मणजी भी हैं, जिनके देखने मात्र से राजा लोग ऐसे काँप उठते थे, जैसे हाथी सिंह के बच्चे के ताकने से काँप उठते हैं॥2॥

* देव देखि तव बालक दोऊ। अब न आँखि तर आवत कोऊ ॥
दूत बचन रचना प्रिय लागी। प्रेम प्रताप बीर रस पागी॥3॥

भावार्थ:-हे देव! आपके दोनों बालकों को देखने के बाद अब आँखों के नीचे कोई आता ही नहीं (हमारी दृष्टि पर कोई चढ़ता ही नहीं)। प्रेम, प्रताप और वीर रस में पगी हुई दूतों की वचन रचना सबको बहुत प्रिय लगी॥3॥

* सभा समेत राउ अनुरागे। दूतन्ह देन निछावरि लागे॥
कहि अनीति ते मूदहिं काना। धरमु बिचारि सबहिं सुखु माना॥4॥

भावार्थ:-सभा सहित राजा प्रेम में मग्न हो गए और दूतों को निछावर देने लगे। (उन्हें निछावर देते देखकर) यह नीति विरुद्ध है, ऐसा कहकर दूत अपने हाथों से कान मूँदने लगे। धर्म को विचारकर (उनका धर्मयुक्त बर्ताव देखकर) सभी ने सुख माना॥4॥

दोहा :

* तब उठि भूप बसिष्ट कहुँ दीन्हि पत्रिका जाई।
कथा सुनाई गुरहि सब सादर दूत बोलाइ॥293॥

भावार्थ:-तब राजा ने उठकर वशिष्ठजी के पास जाकर उन्हें पत्रिका दी और आदरपूर्वक दूतों को बुलाकर सारी कथा गुरुजी को सुना दी॥293॥

चौपाई :

* सुनि बोले गुर अति सुखु पाई। पुन्य पुरुष कहुँ महि सुख छाई॥
जिमि सरिता सागर महुँ जाहीं। जद्यपि ताहि कामना नाहीं॥1॥

भावार्थ:-सब समाचार सुनकर और अत्यन्त सुख पाकर गुरु बोले- पुण्यात्मा पुरुष के लिए पृथ्वी सुखों से छाई हुई है। जैसे नदियाँ समुद्र में जाती हैं, यद्यपि समुद्र को नदी की कामना नहीं होती॥1॥

* तिमि सुख संपति बिनहिं बोलाएँ। धरमसील पहिं जाहिं सुभाएँ॥
तुम्ह गुर बिप्र धेनु सुर सेबी। तसि पुनीत कौसल्या देबी॥2॥

भावार्थ:-वैसे ही सुख और सम्पत्ति बिना ही बुलाए स्वाभाविक ही धर्मात्मा पुरुष के पास जाती है। तुम जैसे गुरु, ब्राह्मण, गाय और देवता की सेवा करने वाले हो, वैसी ही पवित्र कौसल्यादेवी भी हैं॥2॥

* सुकृती तुम्ह समान जग माहीं। भयउ न है कोउ होनेउ नाहीं॥
तुम्ह ते अधिक पुन्य बड़ काकें। राजन राम सरिस सुत जाकें॥3॥

भावार्थ:-तुम्हारे समान पुण्यात्मा जगत में न कोई हुआ, न है और न होने का ही है। हे राजन्! तुमसे अधिक पुण्य और किसका होगा, जिसके राम सरीखे पुत्र हैं॥3॥

* बीर बिनीत धरम ब्रत धारी। गुन सागर बर बालक चारी॥
तुम्ह कहुँ सर्ब काल कल्याना। सजहु बरात बजाइ निसाना॥4॥

भावार्थ:-और जिसके चारों बालक वीर, विनम्र, धर्म का व्रत धारण करने वाले और गुणों के सुंदर समुद्र हैं। तुम्हारे लिए सभी कालों में कल्याण है। अतएव डंका बजवाकर बारात सजाओ॥4॥

दोहा :

* चलहु बेगि सुनि गुर बचन भलेहिं नाथ सिरु नाई।
भूपति गवने भवन तब दूतन्ह बासु देवाइ॥294॥

भावार्थ:-और जल्दी चलो। गुरुजी के ऐसे वचन सुनकर, हे नाथ! बहुत अच्छा कहकर और सिर नवाकर तथा दूतों को डेरा दिलवाकर राजा महल में गए॥294॥

चौपाई :

* राजा सबु रनिवास बोलाई। जनक पत्रिका बाचि सुनाई॥
सुनि संदेसु सकल हरषानीं। अपर कथा सब भूप बखानीं॥1॥

भावार्थ:-राजा ने सारे रनिवास को बुलाकर जनकजी की पत्रिका बाँचकर सुनाई। समाचार सुनकर सब रानियाँ हर्ष से भर गईं। राजा ने फिर दूसरी सब बातों का (जो दूतों के मुख से सुनी थीं) वर्णन किया॥1॥

* प्रेम प्रफुल्लित राजहिं रानी। मनहुँ सिखिनि सुनि बारिद बानी॥

मुदित असीस देहिं गुर नारीं। अति आनंद मगन महतारीं॥2॥

भावार्थ:-प्रेम में प्रफुल्लित हुई रानियाँ ऐसी सुशोभित हो रही हैं, जैसे मोरनी बादलों की गरज सुनकर प्रफुल्लित होती हैं। बड़ी-बूढ़ी (अथवा गुरुओं की) स्त्रियाँ प्रसन्न होकर आशीर्वाद दे रही हैं। माताएँ अत्यन्त आनंद में मग्न हैं॥2॥

* लेहिं परस्पर अति प्रिय पाती। हृदयँ लगाई जुड़ावहिं छाती॥

राम लखन कै कीरति करनी। बारहिं बार भूपबर बरनी॥3॥

भावार्थ:-उस अत्यन्त प्रिय पत्रिका को आपस में लेकर सब हृदय से लगाकर छाती शीतल करती हैं। राजाओं में श्रेष्ठ दशरथजी ने श्री राम-लक्ष्मण की कीर्ति और करनी का बारंबार वर्णन किया॥3॥

* मुनि प्रसादु कहि द्वार सिधाए। रानिन्ह तब महिदेव बोलाए॥

दिए दान आनंद समेता। चले बिप्रबर आसिष देता॥4॥

भावार्थ:-'यह सब मुनि की कृपा है' ऐसा कहकर वे बाहर चले आए। तब रानियों ने ब्राह्मणों को बुलाया और आनंद सहित उन्हें दान दिए। श्रेष्ठ ब्राह्मण आशीर्वाद देते हुए चले॥4॥

सोरठा :

* जाचक लिए हँकारि दीन्हि निछावरि कोटि बिधि।

चिरु जीवहुँ सुत चारि चक्रबर्ति दसरत्थ के॥295॥

भावार्थ:-फिर भिक्षुकों को बुलाकर करोड़ों प्रकार की निछावरें उनको दीं। 'चक्रवर्ती महाराज दशरथ के चारों पुत्र चिरंजीवी हों'॥295॥

चौपाई :

* कहत चले पहिरें पट नाना। हरषि हने गहगहे निसाना॥
समाचार सब लोगन्ह पाए। लागे घर-घर होन बधाए॥1॥

भावार्थ:-यों कहते हुए वे अनेक प्रकार के सुंदर वस्त्र पहन-पहनकर चले। आनंदित होकर नगाड़े वालों ने बड़े जोर से नगाड़ों पर चोट लगाई। सब लोगों ने जब यह समाचार पाया, तब घर-घर बधावे होने लगे॥1॥

* भुवन चारिदस भरा उछाहू। जनकसुता रघुबीर बिआहू॥
सुनि सुभ कथा लोग अनुरागे। मग गृह गलीं सँवारन लागे॥2॥

भावार्थ:-चौदहों लोकों में उत्साह भर गया कि जानकीजी और श्री रघुनाथजी का विवाह होगा। यह शुभ समाचार पाकर लोग प्रेममग्न हो गए और रास्ते, घर तथा गलियाँ सजाने लगे॥2॥

* जद्यपि अवध सदैव सुहावनि। रामपुरी मंगलमय पावनि॥
तदपि प्रीति कै प्रीति सुहाई। मंगल रचना रची बनाई॥3॥

भावार्थ:-यद्यपि अयोध्या सदा सुहावनी है, क्योंकि वह श्री रामजी की मंगलमयी पवित्र पुरी है, तथापि प्रीति पर प्रीति होने से वह सुंदर मंगल रचना से सजाई गई॥3॥

* ध्वज पताक पट चामर चारू। छावा परम बिचित्र बजारू॥
कनक कलस तोरन मनि जाला। हरद दूब दधि अच्छत माला॥4॥

भावार्थ:-ध्वजा, पताका, परदे और सुंदर चँवरों से सारा बाजा बहुत ही अनूठा छाया हुआ है। सोने के कलश, तोरण, मणियों की झालरें, हलदी, दूब, दही, अक्षत और मालाओं से-॥4॥

दोहा :

* मंगलमय निज निज भवन लोगन्ह रचे बनाइ।

बीथीं सींचीं चतुरसम चौकें चारु पुराइ॥296॥

भावार्थ:-लोगों ने अपने-अपने घरों को सजाकर मंगलमय बना लिया। गलियों को चतुर सम से सींचा और (द्वारों पर) सुंदर चौक पुराए। (चंदन, केशर, कस्तूरी और कपूर से बने हुए एक सुगंधित द्रव को चतुरसम कहते हैं)॥296॥

चौपाई :

* जहँ तहँ जूथ जूथ मिलि भामिनि। सजि नव सप्त सकल दुति दामिनि॥
बिधुबदनीं मृग सावक लोचनि। निज सरूप रति मानु बिमोचनि॥1॥

भावार्थ:-बिजली की सी कांति वाली चन्द्रमुखी, हरिन के बच्चे के से नेत्र वाली और अपने सुंदर रूप से कामदेव की स्त्री रति के अभिमान को छुड़ाने वाली सुहागिनी स्त्रियाँ सभी सोलहों श्रृंगार सजकर, जहाँ-तहाँ झुंड की झुंड मिलकर,॥1॥

* गावहिं मंगल मंजुल बानीं। सुनि कल रव कलकंठि लजानीं॥
भूप भवन किमि जाइ बखाना। बिस्व बिमोहन रचेउ बिताना॥2॥

भावार्थ:-मनोहर वाणी से मंगल गीत गा रही हैं, जिनके सुंदर स्वर को सुनकर कोयलें भी लजा जाती हैं। राजमहल का वर्णन कैसे किया जाए, जहाँ विश्व को विमोहित करने वाला मंडप बनाया गया है॥2॥

* मंगल द्रब्य मनोहर नाना। राजत बाजत बिपुल निसाना॥
कतहुँ बिरिद बंदी उच्चरहीं। कतहुँ बेद धुनि भूसुर करहीं॥3॥

भावार्थ:-अनेकों प्रकार के मनोहर मांगलिक पदार्थ शोभित हो रहे हैं और बहुत से नगाड़े बज रहे हैं। कहीं भाट विरुदावली (कुलकीर्ति) का उच्चारण कर रहे हैं और कहीं ब्राह्मण वेदध्वनि कर रहे हैं॥3॥

* गावहिं सुंदरि मंगल गीता। लै लै नामु रामु अरु सीता॥

बहुत उछाहु भवनु अति थोरा। मानहुँ उमगि चला चहु ओरा॥4॥

भावार्थ:-सुंदरी स्त्रियाँ श्री रामजी और श्री सीताजी का नाम ले-लेकर मंगलगीत गा रही हैं। उत्साह बहुत है और महल अत्यन्त ही छोटा है। इससे (उसमें न समाकर) मानो वह उत्साह (आनंद) चारों ओर उमड़ चला है॥4॥

दोहा :

* सोभा दसरथ भवन कइ को कबि बरनै पार।

जहाँ सकल सुर सीस मनि राम लीन्ह अवतार॥297॥

भावार्थ:-दशरथ के महल की शोभा का वर्णन कौन कवि कर सकता है, जहाँ समस्त देवताओं के शिरोमणि रामचन्द्रजी ने अवतार लिया है॥297॥

चौपाई :

* भूप भरत पुनि लिए बोलाई। हय गयस्यंदन साजहु जाई॥

चलहु बेगि रघुबीर बराता। सुनत पुलक पूरे दोउ भ्राता॥1॥

भावार्थ:-फिर राजा ने भरतजी को बुला लिया और कहा कि जाकर घोड़े, हाथी और रथ सजाओ, जल्दी रामचन्द्रजी की बारात में चलो। यह सुनते ही दोनों भाई (भरतजी और शत्रुघ्नजी) आनंदवश पुलक से भर गए॥1॥

* भरत सकल साहनी बोलाए। आयसु दीन्ह मुदित उठि धाए॥

रचि रुचि जीन तुरग तिन्ह साजे। बरन बरन बर बाजि बिराजे॥2॥

भावार्थ:-भरतजी ने सब साहनी (घुड़साल के अध्यक्ष) बुलाए और उन्हें (घोड़ों को सजाने की) आज्ञा दी, वे प्रसन्न होकर उठ दौड़े। उन्होंने रुचि के साथ (यथायोग्य) जीनें कसकर घोड़े सजाए। रंग-रंग के उत्तम घोड़े शोभित हो गए॥2॥

* सुभग सकल सुठि चंचल करनी। अय इव जरत धरत पग धरनी॥
नाना जाति न जाहिं बखाने। निदरि पवनु जनु चहत उड़ाने॥3॥

भावार्थ:-सब घोड़े बड़े ही सुंदर और चंचल करनी (चाल) के हैं। वे धरती पर ऐसे पैर रखते हैं जैसे जलते हुए लोहे पर रखते हों। अनेकों जाति के घोड़े हैं, जिनका वर्णन नहीं हो सकता। (ऐसी तेज चाल के हैं) मानो हवा का निरादर करके उड़ना चाहते हैं॥3॥

* तिन्ह सब छयल भए असवारा। भरत सरिस बय राजकुमारा॥
सब सुंदर सब भूषनधारी। कर सर चाप तून कटि भारी॥4॥

भावार्थ:-उन सब घोड़ों पर भरतजी के समान अवस्था वाले सब छैल-छबीले राजकुमार सवार हुए। वे सभी सुंदर हैं और सब आभूषण धारण किए हुए हैं। उनके हाथों में बाण और धनुष हैं तथा कमर में भारी तरकस बँधे हैं॥4॥

दोहा :

* छरे छबीले छयल सब सूर सुजान नबीन।
जुग पदचर असवार प्रति जे असिकला प्रबीन॥298॥

भावार्थ:-सभी चुने हुए छबीले छैल, शूरवीर, चतुर और नवयुवक हैं। प्रत्येक सवार के साथ दो पैदल सिपाही हैं, जो तलवार चलाने की कला में बड़े निपुण हैं॥298॥

चौपाई :

* बाँधें बिरद बीर रन गाढ़े। निकसि भए पुर बाहेर ठाढ़े॥
फेरहिं चतुर तुरग गति नाना। हरषहिं सुनि सुनि पनव निसाना॥1॥

भावार्थ:-शूरता का बाना धारण किए हुए रणधीर वीर सब निकलकर नगर के बाहर आ खड़े हुए। वे चतुर अपने घोड़ों को तरह-तरह की

चालों से फेर रहे हैं और भेरी तथा नगाड़े की आवाज सुन-सुनकर प्रसन्न हो रहे हैं॥1॥

* रथ सारथिन्ह बिचित्र बनाए। ध्वज पताक मनि भूषन लाए॥
चवँर चारु किंकिनि धुनि करहीं। भानु जान सोभा अपहरहीं॥2॥

भावार्थ:-सारथियों ने ध्वजा, पताका, मणि और आभूषणों को लगाकर रथों को बहुत विलक्षण बना दिया है। उनमें सुंदर चँवर लगे हैं और घंटियाँ सुंदर शब्द कर रही हैं। वे रथ इतने सुंदर हैं, मानो सूर्य के रथ की शोभा को छीने लेते हैं॥2॥

* सावँकरन अगनित हय होते। ते तिन्ह रथन्ह सारथिन्ह जोते॥
सुंदर सकल अलंकृत सोहे। जिन्हहि बिलोकत मुनि मन मोहे॥3॥

भावार्थ:-अगणित श्यामवर्ण घोड़े थे। उनको सारथियों ने उन रथों में जोत दिया है, जो सभी देखने में सुंदर और गहनों से सजाए हुए सुशोभित हैं और जिन्हें देखकर मुनियों के मन भी मोहित हो जाते हैं॥3॥

* जे जल चलहिं थलहि की नाईं। टाप न बूड़ बेग अधिकाईं॥
अस्त्र सस्त्र सबु साजु बनाई। रथी सारथिन्ह लिए बोलाई॥4॥

भावार्थ:-जो जल पर भी जमीन की तरह ही चलते हैं। वेग की अधिकता से उनकी टाप पानी में नहीं डूबती। अस्त्र-शस्त्र और सब साज सजाकर सारथियों ने रथियों को बुला लिया॥4॥

दोहा :

* चढ़ि चढ़ि रथ बाहेर नगर लागी जुरन बरात।
होत सगुन सुंदर सबहि जो जेहि कारज जात॥299॥

भावार्थ:-रथों पर चढ़-चढ़कर बारात नगर के बाहर जुटने लगी, जो जिस काम के लिए जाता है, सभी को सुंदर शकुन होते हैं॥299॥

चौपाई :

* कलित करिबरन्हि परीं अँबारीं। कहि न जाहिं जेहि भाँति सँवारीं॥
चले मत्त गज घंट बिराजी। मनहुँ सुभग सावन घन राजी॥1॥

भावार्थ:-श्रेष्ठ हाथियों पर सुंदर अंबारियाँ पड़ी हैं। वे जिस प्रकार सजाई गई थीं, सो कहा नहीं जा सकता। मतवाले हाथी घंटों से सुशोभित होकर (घंटे बजाते हुए) चले, मानो सावन के सुंदर बादलों के समूह (गरजते हुए) जा रहे हों॥

* बाहन अपर अनेक बिधाना। सिबिका सुभग सुखासन जाना॥
तिन्ह चढ़ि चले बिप्रबर बृंदा। जनु तनु धरें सकल श्रुति छंदा॥2॥

भावार्थ:-सुंदर पालकियाँ, सुख से बैठने योग्य तामजान (जो कुर्सीनुमा होते हैं) और रथ आदि और भी अनेकों प्रकार की सवारियाँ हैं। उन पर श्रेष्ठ ब्राह्मणों के समूह चढ़कर चले, मानो सब वेदों के छन्द ही शरीर धारण किए हुए हों॥2॥

* मागध सूत बंधि गुनगायक। चले जान चढ़ि जो जेहि लायक॥
बेसर ऊँट बृषभ बहु जाती। चले बस्तु भरि अगनित भाँती॥3॥

भावार्थ:-मागध, सूत, भाट और गुण गाने वाले सब, जो जिस योग्य थे, वैसी सवारी पर चढ़कर चले। बहुत जातियों के खच्चर, ऊँट और बैल असंख्यों प्रकार की वस्तुएँ लाद-लादकर चले॥3॥

* कोटिन्ह काँवरि चले कहारा। बिबिध बस्तु को बरनै पारा॥
चले सकल सेवक समुदाई। निज निज साजु समाजु बनाई॥4॥

भावार्थ:-कहार करोड़ों काँवरें लेकर चले। उनमें अनेकों प्रकार की इतनी वस्तुएँ थीं कि जिनका वर्णन कौन कर सकता है। सब सेवकों के समूह अपना-अपना साज-समाज बनाकर चले॥4॥

दोहा :

* सब कें उर निर्भर हरषु पूरित पुलक सरीर।
कबहिं देखिबे नयन भरि रामु लखनु दोउ बीर॥300॥

भावार्थ:-सबके हृदय में अपार हर्ष है और शरीर पुलक से भरे हैं। (सबको एक ही लालसा लगी है कि) हम श्री राम-लक्ष्मण दोनों भाइयों को नेत्र भरकर कब देखेंगे॥300॥

चौपाई :

* गरजहिं गज घंटा धुनि घोरा। रथ रव बाजि हिंस चहु ओरा॥
निदरि घनहि घुर्म्मरहिं निसाना। निज पराइ कछु सुनिअ न काना॥1॥

भावार्थ:-हाथी गरज रहे हैं, उनके घंटों की भीषण ध्वनि हो रही है। चारों ओर रथों की घरघराहट और घोड़ों की हिनहिनाहट हो रही है। बादलों का निरादर करते हुए नगाड़े घोर शब्द कर रहे हैं। किसी को अपनी-पराई कोई बात कानों से सुनाई नहीं देती॥1॥

* महा भीर भूपति के द्वारें। रज होइ जाइ पषान पबारें॥
चढ़ी अटारिन्ह देखहिं नारीं। लिएँ आरती मंगल थारीं॥2॥

भावार्थ:-राजा दशरथ के दरवाजे पर इतनी भारी भीड़ हो रही है कि वहाँ पत्थर फेंका जाए तो वह भी पिसकर धूल हो जाए। अटारियों पर चढ़ी स्त्रियाँ मंगल थालों में आरती लिए देख रही हैं॥2॥

* गावहिं गीत मनोहर नाना। अति आनंदु न जाइ बखाना॥
तब सुमंत्र दुइ स्यंदन साजी। जोते रबि हय निंदक बाजी॥3॥

भावार्थ:-और नाना प्रकार के मनोहर गीत गा रही हैं। उनके अत्यन्त आनंद का बखान नहीं हो सकता। तब सुमन्त्रजी ने दो रथ सजाकर उनमें सूर्य के घोड़ों को भी मात करने वाले घोड़े जोते॥3॥

* दोउ रथ रुचिर भूप पहिं आने। नहिं सारद पहिं जाहिं बखाने॥

राज समाजु एक रथ साजा। दूसर तेज पुंज अति भ्राजा॥4॥

भावार्थ:-दोनों सुंदर रथ वे राजा दशरथ के पास ले आए, जिनकी सुंदरता का वर्णन सरस्वती से भी नहीं हो सकता। एक रथ पर राजसी सामान सजाया गया और दूसरा जो तेज का पुंज और अत्यन्त ही शोभायमान था,॥4॥

दोहा :

* तेहिं रथ रुचिर बसिष्ठ कहुँ हरषि चढ़ाई नरेसु।

आपु चढ़ेउ स्यंदन सुमिरि हर गुर गौरि गनेसु॥301॥

भावार्थ:-उस सुंदर रथ पर राजा वशिष्ठजी को हर्ष पूर्वक चढ़ाकर फिर स्वयं शिव, गुरु, गौरी (पार्वती) और गणेशजी का स्मरण करके (दूसरे) रथ पर चढ़े॥301॥

चौपाई :

* सहित बसिष्ठ सोह नृप कैसें। सुर गुर संग पुरंदर जैसें॥

करि कुल रीति बेद बिधि राऊ। देखि सबहि सब भाँति बनाऊ॥1॥

भावार्थ:-वशिष्ठजी के साथ (जाते हुए) राजा दशरथजी कैसे शोभित हो रहे हैं, जैसे देव गुरु बृहस्पतिजी के साथ इन्द्र हों। वेद की विधि से और कुल की रीति के अनुसार सब कार्य करके तथा सबको सब प्रकार से सजे देखकर,॥1॥

* सुमिरि रामु गुर आयसु पाई। चले महीपति संख बजाई॥

हरषे बिबुध बिलोकि बराता। बरषहिं सुमन सुमंगल दाता॥2॥

भावार्थ:-श्री रामचन्द्रजी का स्मरण करके, गुरु की आज्ञा पाकर पृथ्वी पति दशरथजी शंख बजाकर चले। बारात देखकर देवता हर्षित हुए और सुंदर मंगलदायक फूलों की वर्षा करने लगे॥2॥

* भयउ कोलाहल हय गय गाजे। ब्योम बरात बाजने बाजे॥

सुर नर नारि सुमंगल गाईं। सरस राग बाजहिं सहनाईं॥3॥

भावार्थ:-बड़ा शोर मच गया, घोड़े और हाथी गरजने लगे। आकाश में और बारात में (दोनों जगह) बाजे बजने लगे। देवांगनाएँ और मनुष्यों की स्त्रियाँ सुंदर मंगलगान करने लगीं और रसीले राग से शहनाइयाँ बजने लगीं॥3॥

* घंट घंटि धुनि बरनि न जाहीं। सरव करहिं पाइक फहराहीं॥

करहिं बिदूषक कौतुक नाना। हास कुसल कल गान सुजाना॥4॥

भावार्थ:-घंटे-घंटियों की ध्वनि का वर्णन नहीं हो सकता। पैदल चलने वाले सेवकगण अथवा पट्टेबाज कसरत के खेल कर रहे हैं और फहरा रहे हैं (आकाश में ऊँचे उछलते हुए जा रहे हैं।) हँसी करने में निपुण और सुंदर गाने में चतुर विदूषक (मसखरे) तरह-तरह के तमाशे कर रहे हैं॥4॥

दोहा :

* तुरग नचावहिं कुअँर बर अकनि मृदंग निसान।

नागर नट चितवहिं चकित डगहिं न ताल बँधान॥302॥

भावार्थ:-सुंदर राजकुमार मृदंग और नगाड़े के शब्द सुनकर घोड़ों को उन्हीं के अनुसार इस प्रकार नचा रहे हैं कि वे ताल के बंधान से जरा भी डिगते नहीं हैं। चतुर नट चकित होकर यह देख रहे हैं॥302॥

चौपाई :

* बनइ न बरनत बनी बराता। होहिं सगुन सुंदर सुभदाता॥

चारा चाषु बाम दिसि लेई। मनहुँ सकल मंगल कहि देई॥1॥

भावार्थ:-बारात ऐसी बनी है कि उसका वर्णन करते नहीं बनता। सुंदर शुभदायक शकुन हो रहे हैं। नीलकंठ पक्षी बाईं ओर चारा ले रहा है, मानो सम्पूर्ण मंगलों की सूचना दे रहा हो॥1॥

* दाहिन काग सुखेत सुहावा। नकुल दरसु सब काहूँ पावा॥
सानुकूल बह त्रिबिध बयारी। सघट सबाल आव बर नारी॥2॥

भावार्थ:-दाहिनी ओर कौआ सुंदर खेत में शोभा पा रहा है। नेवले का दर्शन भी सब किसी ने पाया। तीनों प्रकार की (शीतल, मंद, सुगंधित) हवा अनुकूल दिशा में चल रही है। श्रेष्ठ (सुहागिनी) स्त्रियाँ भरे हुए घड़े और गोद में बालक लिए आ रही हैं॥2॥

* लोवा फिरि फिरि दरसु देखावा। सुरभी सनमुख सिसुहि पिआवा॥
मृगमाला फिरि दाहिनि आई। मंगल गन जनु दीन्हि देखाई॥3॥

भावार्थ:-लोमड़ी फिर-फिरकर (बार-बार) दिखाई दे जाती है। गायें सामने खड़ी बछड़ों को दूध पिलाती हैं। हरिनों की टोली (बाईं ओर से) घूमकर दाहिनी ओर को आई, मानो सभी मंगलों का समूह दिखाई दिया॥3॥

* छेमकरी कह छेम बिसेषी। स्यामा बाम सुतरु पर देखी॥
सनमुख आयउ दधि अरु मीना। कर पुस्तक दुइ बिप्र प्रबीना॥4॥

भावार्थ:-क्षेमकरी (सफेद सिरवाली चील) विशेष रूप से क्षेम (कल्याण) कह रही है। श्यामा बाईं ओर सुंदर पेड़ पर दिखाई पड़ी। दही, मछली और दो विद्वान ब्राह्मण हाथ में पुस्तक लिए हुए सामने आए॥4॥

दोहा :

* मंगलमय कल्यानमय अभिमत फल दातार।

जनु सब साचे होन हित भए सगुन एक बार॥303॥

भावार्थ:-सभी मंगलमय, कल्याणमय और मनोवांछित फल देने वाले शकुन मानो सच्चे होने के लिए एक ही साथ हो गए॥303॥

चौपाई :

* मंगल सगुन सुगम सब ताकें। सगुन ब्रह्म सुंदर सुत जाकें॥
राम सरिस बरु दुलहिनि सीता। समधी दसरथु जनकु पुनीता॥1॥

भावार्थ:-स्वयं सगुण ब्रह्म जिसके सुंदर पुत्र हैं, उसके लिए सब मंगल शकुन सुलभ हैं। जहाँ श्री रामचन्द्रजी सरीखे दूल्हा और सीताजी जैसी दुलहिन हैं तथा दशरथजी और जनकजी जैसे पवित्र समधी हैं,॥1॥

* सुनि अस ब्याहु सगुन सब नाचे। अब कीन्हे बिरंचि हम साँचे॥
एहि बिधि कीन्ह बरात पयाना। हय गय गाजहिं हने निसाना॥2॥

भावार्थ:-ऐसा ब्याह सुनकर मानो सभी शकुन नाच उठे (और कहने लगे-) अब ब्रह्माजी ने हमको सच्चा कर दिया। इस तरह बारात ने प्रस्थान किया। घोड़े, हाथी गरज रहे हैं और नगाड़ों पर चोट लग रही है॥2॥

* आवत जानि भानुकुल केतू। सरितन्हि जनक बँधाए सेतू॥
बीच-बीच बर बास बनाए। सुरपुर सरिस संपदा छाए॥3॥

भावार्थ:-सूर्यवंश के पताका स्वरूप दशरथजी को आते हुए जानकर जनकजी ने नदियों पर पुल बँधवा दिए। बीच-बीच में ठहरने के लिए सुंदर घर (पड़ाव) बनवा दिए, जिनमें देवलोक के समान सम्पदा छाई है,॥3॥

* असन सयन बर बसन सुहाए। पावहिं सब निज निज मन भाए॥
नित नूतन सुख लखि अनुकूले। सकल बरातिन्ह मंदिर भूले॥4॥

भावार्थ:-और जहाँ बारात के सब लोग अपने-अपने मन की पसंद के अनुसार सुहावने उत्तम भोजन, बिस्तर और वस्त्र पाते हैं। मन के अनुकूल नित्य नए सुखों को देखकर सभी बारातियों को अपने घर भूल गए॥4॥

दोहा :

* आवत जानि बरात बर सुनि गहगहे निसान।
सजि गज रथ पदचर तुरग लेन चले अगवान॥304॥

भावार्थ:-बड़े जोर से बजते हुए नगाड़ों की आवाज सुनकर श्रेष्ठ बारात को आती हुई जानकर अगवानी करने वाले हाथी, रथ, पैदल और घोड़े सजाकर बारात लेने चले॥304॥

मासपारायण दसवाँ विश्राम

बारात का जनकपुर में आना और स्वागतादि

चौपाई :

* कनक कलस भरि कोपर थारा। भाजन ललित अनेक प्रकारा॥
भरे सुधा सम सब पकवाने। नाना भाँति न जाहिं बखाने॥1॥

भावार्थ:-(दूध, शर्बत, ठंडाई, जल आदि से) भरकर सोने के कलश तथा जिनका वर्णन नहीं हो सकता ऐसे अमृत के समान भाँति-भाँति के सब पकवानों से भरे हुए परात, थाल आदि अनेक प्रकार के सुंदर बर्तन,॥1॥

* फल अनेक बर बस्तु सुहाईं। हरषि भेंट हित भूप पठाईं॥
भूषन बसन महामनि नाना। खग मृग हय गय बहुबिधि जाना॥2॥

भावार्थ:-उत्तम फल तथा और भी अनेकों सुंदर वस्तुएँ राजा ने हर्षित होकर भेंट के लिए भेजीं। गहने, कपड़े, नाना प्रकार की मूल्यवान मणियाँ (रत्न), पक्षी, पशु, घोड़े, हाथी और बहुत तरह की सवारियाँ,॥2॥

* मंगल सगुन सुगंध सुहाए। बहुत भाँति महिपाल पठाए॥

दधि चिउरा उपहार अपारा। भरि भरि काँवरि चले कहारा॥3॥

भावार्थ:-तथा बहुत प्रकार के सुगंधित एवं सुहावने मंगल द्रव्य और शगुन के पदार्थ राजा ने भेजे। दही, चिउड़ा और अगणित उपहार की चीजें काँवरों में भर-भरकर कहार चले॥3॥

* अगवानन्ह जब दीखि बराता। उर आनंदु पुलक भर गाता॥
देखि बनाव सहित अगवाना। मुदित बरातिन्ह हने निसाना॥4॥

भावार्थ:-अगवानी करने वालों को जब बारात दिखाई दी, तब उनके हृदय में आनंद छा गया और शरीर रोमांच से भर गया। अगवानों को सज-धज के साथ देखकर बारातियों ने प्रसन्न होकर नगाड़े बजाए॥4॥

दोहा :

* हरषि परसपर मिलन हित कछुक चले बगमेल।
जनु आनंद समुद्र दुइ मिलत बिहाइ सुबेल॥305॥

भावार्थ:-(बाराती तथा अगवानों में से) कुछ लोग परस्पर मिलने के लिए हर्ष के मारे बाग छोड़कर (सरपट) दौड़ चले और ऐसे मिले मानो आनंद के दो समुद्र मर्यादा छोड़कर मिलते हों॥305॥

चौपाई :

* बरषि सुमन सुर सुंदरि गावहिं। मुदित देव दुंदुभीं बजावहिं॥
बस्तु सकल राखीं नृप आगें। बिनय कीन्हि तिन्ह अति अनुरागें॥1॥

भावार्थ:-देवसुंदरियाँ फूल बरसाकर गीत गा रही हैं और देवता आनंदित होकर नगाड़े बजा रहे हैं। (अगवानी में आए हुए) उन लोगों ने सब चीजें दशरथजी के आगे रख दीं और अत्यन्त प्रेम से विनती की॥1॥

* प्रेम समेत रायँ सबु लीन्हा। भै बकसीस जाचकन्हि दीन्हा॥
करि पूजा मान्यता बड़ाई। जनवासे कहुँ चले लवाई॥2॥

भावार्थ:-राजा दशरथजी ने प्रेम सहित सब वस्तुएँ ले लीं, फिर उनकी बख्शीशें होने लगीं और वे याचकों को दे दी गईं। तदनन्तर पूजा, आदर-सत्कार और बड़ाई करके अगवान लोग उनको जनवासे की ओर लिवा ले चले॥2॥

* बसन बिचित्र पाँवड़े परहीं। देखि धनदु धन मदु परिहरहीं॥
अति सुंदर दीन्हेउ जनवासा। जहँ सब कहुँ सब भाँति सुपासा॥3॥

भावार्थ:-विलक्षण वस्त्रों के पाँवड़े पड़ रहे हैं, जिन्हें देखकर कुबेर भी अपने धन का अभिमान छोड़ देते हैं। बड़ा सुंदर जनवासा दिया गया, जहाँ सबको सब प्रकार का सुभीता था॥3॥

* जानी सियँ बरात पुर आई। कछु निज महिमा प्रगटि जनाई॥
हृदयँ सुमिरि सब सिद्धि बोलाईं। भूप पहुनई करन पठाईं॥4॥

भावार्थ:-सीताजी ने बारात जनकपुर में आई जानकर अपनी कुछ महिमा प्रकट करके दिखलाई। हृदय में स्मरणकर सब सिद्धियों को बुलाया और उन्हें राजा दशरथजी की मेहमानी करने के लिए भेजा॥4॥

दोहा :

* सिधि सब सिय आयसु अकनि गईं जहाँ जनवास।
लिएँ संपदा सकल सुख सुरपुर भोग बिलास॥306॥

भावार्थ:-सीताजी की आज्ञा सुनकर सब सिद्धियाँ जहाँ जनवासा था, वहाँ सारी सम्पदा, सुख और इंद्रपुरी के भोग-विलास को लिए हुए गईं॥306॥

चौपाई :

* निज निज बास बिलोकि बराती। सुर सुख सकल सुलभ सब भाँती॥
बिभव भेद कछु कोउ न जाना। सकल जनक कर करहिं बखाना॥1॥

भावार्थ:-बारातियों ने अपने-अपने ठहरने के स्थान देखे तो वहाँ देवताओं के सब सुखों को सब प्रकार से सुलभ पाया। इस ऐश्वर्य का कुछ भी भेद कोई जान न सका। सब जनकजी की बड़ाई कर रहे हैं॥1॥

* सिय महिमा रघुनायक जानी। हरषे हृदयँ हेतु पहिचानी॥

पितु आगमनु सुनत दोउ भाई। हृदयँ न अति आनंदु अमाई॥2॥

भावार्थ:-श्री रघुनाथजी यह सब सीताजी की महिमा जानकर और उनका प्रेम पहचानकर हृदय में हर्षित हुए। पिता दशरथजी के आने का समाचार सुनकर दोनों भाइयों के हृदय में महान आनंद समाता न था॥2॥

* सकुचन्ह कहि न सकत गुरु पाहीं। पितु दरसन लालचु मन माहीं॥

बिस्वामित्र बिनय बड़ि देखी। उपजा उर संतोषु बिसेषी॥3॥

भावार्थ:-संकोचवश वे गुरु विश्वामित्रजी से कह नहीं सकते थे, परन्तु मन में पिताजी के दर्शनों की लालसा थी। विश्वामित्रजी ने उनकी बड़ी नम्रता देखी, तो उनके हृदय में बहुत संतोष उत्पन्न हुआ॥3॥

* हरषि बंधु दोउ हृदयँ लगाए। पुलक अंग अंबक जल छाए॥

चले जहाँ दसरथु जनवासे। मनहुँ सरोबर तकेउ पिआसे॥4॥

भावार्थ:-प्रसन्न होकर उन्होंने दोनों भाइयों को हृदय से लगा लिया। उनका शरीर पुलकित हो गया और नेत्रों में (प्रेमाश्रुओं का) जल भर आया। वे उस जनवासे को चले, जहाँ दशरथजी थे। मानो सरोवर प्यासे की ओर लक्ष्य करके चला हो॥4॥

दोहा :

* भूप बिलोके जबहिं मुनि आवत सुतन्ह समेत।

उठे हरषि सुखसिंधु महुँ चले थाह सी लेत॥307॥

भावार्थ:-जब राजा दशरथजी ने पुत्रों सहित मुनि को आते देखा, तब वे हर्षित होकर उठे और सुख के समुद्र में थाह सी लेते हुए चले॥307॥

चौपाई :

* मुनिहि दंडवत कीन्ह महीसा। बार बार पद रज धरि सीसा॥
कौसिक राउ लिए उर लाई। कहि असीस पूछी कुसलाई॥1॥

भावार्थ:-पृथ्वीपति दशरथजी ने मुनि की चरणधूलि को बारंबार सिर पर चढ़ाकर उनको दण्डवत्‌ प्रणाम किया। विश्वामित्रजी ने राजा को उठाकर हृदय से लगा लिया और आशीर्वाद देकर कुशल पूछी॥1॥

* पुनि दंडवत करत दोउ भाई। देखि नृपति उर सुखु न समाई॥
सुत हियँ लाइ दुसह दुख मेटे। मृतक सरीर प्रान जनु भेंटे॥2॥

भावार्थ:-फिर दोनों भाइयों को दण्डवत्‌ प्रणाम करते देखकर राजा के हृदय में सुख समाया नहीं। पुत्रों को (उठाकर) हृदय से लगाकर उन्होंने अपने (वियोगजनित) दुःसह दुःख को मिटाया। मानो मृतक शरीर को प्राण मिल गए हों॥2॥

* पुनि बसिष्ठ पद सिर तिन्ह नाए। प्रेम मुदित मुनिबर उर लाए॥
बिप्र बृंद बंदे दुहुँ भाईं। मनभावती असीसें पाईं॥3॥

भावार्थ:-फिर उन्होंने वशिष्ठजी के चरणों में सिर नवाया। मुनि श्रेष्ठ ने प्रेम के आनंद में उन्हें हृदय से लगा लिया। दोनों भाइयों ने सब ब्राह्मणों की वंदना की और मनभाए आशीर्वाद पाए॥3॥

* भरत सहानुज कीन्ह प्रनामा। लिए उठाइ लाइ उर रामा॥
हरषे लखन देखि दोउ भ्राता। मिले प्रेम परिपूरित गाता॥4॥

भावार्थ:-भरतजी ने छोटे भाई शत्रुघ्न सहित श्री रामचन्द्रजी को प्रणाम किया। श्री रामजी ने उन्हें उठाकर हृदय से लगा लिया। लक्ष्मणजी दोनों

भाइयों को देखकर हर्षित हुए और प्रेम से परिपूर्ण हुए शरीर से उनसे मिले॥4॥

दोहा :

* पुरजन परिजन जातिजन जाचक मंत्री मीत।
मिले जथाबिधि सबहि प्रभु परम कृपाल बिनीत॥308॥

भावार्थ:-तदन्तर परम कृपालु और विनयी श्री रामचन्द्रजी अयोध्यावासियों, कुटुम्बियों, जाति के लोगों, याचकों, मंत्रियों और मित्रों सभी से यथा योग्य मिले॥308॥

* रामहि देखि बरात जुड़ानी। प्रीति कि रीति न जाति बखानी॥
नृप समीप सोहहिं सुत चारी। जनु धन धरमादिक तनुधारी॥1॥

भावार्थ:- श्री रामचन्द्रजी को देखकर बारात शीतल हुई (राम के वियोग में सबके हृदय में जो आग जल रही थी, वह शांत हो गई)। प्रीति की रीति का बखान नहीं हो सकता। राजा के पास चारों पुत्र ऐसी शोभा पा रहे हैं, मानो अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष शरीर धारण किए हुए हों॥1॥

चौपाई :

* सुतन्ह समेत दसरथहि देखी। मुदित नगर नर नारि बिसेषी॥
सुमन बरिसि सुर हनहिं निसाना। नाकनटीं नाचहिं करि गाना॥2॥

भावार्थ:-पुत्रों सहित दशरथजी को देखकर नगर के स्त्री-पुरुष बहुत ही प्रसन्न हो रहे हैं। (आकाश में) देवता फूलों की वर्षा करके नगाड़े बजा रहे हैं और अप्सराएँ गा-गाकर नाच रही हैं॥2॥

* सतानंद अरु बिप्र सचिव गन। मागध सूत बिदुष बंदीजन॥
सहित बरात राउ सनमाना। आयसु मागि फिरे अगवाना॥3॥

भावार्थ:-अगवानी में आए हुए शतानंदजी, अन्य ब्राह्मण, मंत्रीगण, मागध, सूत, विद्वान और भाटों ने बारात सहित राजा दशरथजी का आदर-सत्कार किया। फिर आज्ञा लेकर वे वापस लौटे॥3॥

* प्रथम बरात लगन तें आई। तातें पुर प्रमोदु अधिकाई॥
ब्रह्मानंदु लोग सब लहहीं। बढ़हुँ दिवस निसि बिधि सन कहहीं॥4॥

भावार्थ:-बारात लग्न के दिन से पहले आ गई है, इससे जनकपुर में अधिक आनंद छा रहा है। सब लोग ब्रह्मानंद प्राप्त कर रहे हैं और विधाता से मनाकर कहते हैं कि दिन-रात बढ़ जाएँ (बड़े हो जाएँ)॥4॥

* रामु सीय सोभा अवधि सुकृत अवधि दोउ राज।
जहँ तहँ पुरजन कहहिं अस मिलि नर नारि समाज॥309॥

भावार्थ:- श्री रामचन्द्रजी और सीताजी सुंदरता की सीमा हैं और दोनों राजा पुण्य की सीमा हैं, जहाँ-तहाँ जनकपुरवासी स्त्री-पुरुषों के समूह इकट्ठे हो-होकर यही कह रहे हैं॥309॥

चौपाई :

* जनक सुकृत मूरति बैदेही। दसरथ सुकृत रामु धरें देही॥
इन्ह सम काहुँ न सिव अवराधे। काहुँ न इन्ह समान फल लाधे॥1॥

भावार्थ:-जनकजी के सुकृत (पुण्य) की मूर्ति जानकीजी हैं और दशरथजी के सुकृत देह धारण किए हुए श्री रामजी हैं। इन (दोनों राजाओं) के समान किसी ने शिवजी की आराधना नहीं की और न इनके समान किसी ने फल ही पाए॥1॥

* इन्ह सम कोउ न भयउ जग माहीं। है नहिं कतहूँ होनेउ नाहीं॥
हम सब सकल सुकृत कै रासी। भए जग जनमि जनकपुर बासी॥2॥

भावार्थ:-इनके समान जगत में न कोई हुआ, न कहीं है, न होने का ही है। हम सब भी सम्पूर्ण पुण्यों की राशि हैं, जो जगत में जन्म लेकर जनकपुर के निवासी हुए,॥2॥

* जिन्ह जानकी राम छबि देखी। को सुकृती हम सरिस बिसेषी॥

पुनि देखब रघुबीर बिआहू। लेब भली बिधि लोचन लाहू॥3॥

भावार्थ:-और जिन्होंने जानकीजी और श्री रामचन्द्रजी की छबि देखी है। हमारे सरीखा विशेष पुण्यात्मा कौन होगा! और अब हम श्री रघुनाथजी का विवाह देखेंगे और भलीभाँति नेत्रों का लाभ लेंगे॥3॥

* कहहिं परसपर कोकिलबयनीं। एहि बिआहँ बड़ लाभु सुनयनीं॥

बड़ें भाग बिधि बात बनाई। नयन अतिथि होइहहिं दोउ भाई॥4॥

भावार्थ:-कोयल के समान मधुर बोलने वाली स्त्रियाँ आपस में कहती हैं कि हे सुंदर नेत्रों वाली! इस विवाह में बड़ा लाभ है। बड़े भाग्य से विधाता ने सब बात बना दी है, ये दोनों भाई हमारे नेत्रों के अतिथि हुआ करेंगे॥4॥

दोहा :

* बारहिं बार सनेह बस जनक बोलाउब सीय।

लेन आइहहिं बंधु दोउ कोटि काम कमनीय॥310॥

भावार्थ:-जनकजी स्नेहवश बार-बार सीताजी को बुलावेंगे और करोड़ों कामदेवों के समान सुंदर दोनों भाई सीताजी को लेने (विदा कराने) आया करेंगे॥310॥

चौपाई :

* बिबिध भाँति होइहि पहुनाई। प्रिय न काहि अस सासुर माई॥

तब तब राम लखनहि निहारी। होइहहिं सब पुर लोग सुखारी॥1॥

भावार्थ:-तब उनकी अनेकों प्रकार से पहुनाई होगी। सखी! ऐसी ससुराल किसे प्यारी न होगी! तब-तब हम सब नगर निवासी श्री राम-लक्ष्मण को देख-देखकर सुखी होंगे॥1॥

* सखि जस राम लखन कर जोटा। तैसेइ भूप संग दुइ ढोटा॥
स्याम गौर सब अंग सुहाए। ते सब कहहिं देखि जे आए॥2॥

भावार्थ:-हे सखी! जैसा श्री राम-लक्ष्मण का जोड़ा है, वैसे ही दो कुमार राजा के साथ और भी हैं। वे भी एक श्याम और दूसरे गौर वर्ण के हैं, उनके भी सब अंग बहुत सुंदर हैं। जो लोग उन्हें देख आए हैं, वे सब यही कहते हैं॥2॥

* कहा एक मैं आजु निहारे। जनु बिरंचि निज हाथ सँवारे॥
भरतु राम ही की अनुहारी। सहसा लखि न सकहिं नर नारी॥3॥

भावार्थ:-एक ने कहा- मैंने आज ही उन्हें देखा है, इतने सुंदर हैं, मानो ब्रह्माजी ने उन्हें अपने हाथों सँवारा है। भरत तो श्री रामचन्द्रजी की ही शकल-सूरत के हैं। स्त्री-पुरुष उन्हें सहसा पहचान नहीं सकते॥3॥

* लखनु सत्रुसूदनु एकरूपा। नख सिख ते सब अंग अनूपा॥
मन भावहिं मुख बरनि न जाहीं। उपमा कहुँ त्रिभुवन कोउ नाहीं॥4॥

भावार्थ:-लक्ष्मण और शत्रुघ्न दोनों का एक रूप है। दोनों के नख से शिखा तक सभी अंग अनुपम हैं। मन को बड़े अच्छे लगते हैं, पर मुख से उनका वर्णन नहीं हो सकता। उनकी उपमा के योग्य तीनों लोकों में कोई नहीं है॥4॥

छन्द :

* उपमा न कोउ कह दास तुलसी कतहुँ कबि कोबिद कहैं।
बल बिनय बिद्या सील सोभा सिंधु इन्ह से एइ अहैं॥
पुर नारि सकल पसारि अंचल बिधिहि बचन सुनावहीं॥

ब्याहिअहुँ चारिउ भाइ एहिं पुर हम सुमंगल गावहीं॥
भावार्थ:-दास तुलसी कहता है कवि और कोविद (विद्वान) कहते हैं, इनकी उपमा कहीं कोई नहीं है। बल, विनय, विद्या, शील और शोभा के समुद्र इनके समान ये ही हैं। जनकपुर की सब स्त्रियाँ आँचल फैलाकर विधाता को यह वचन (विनती) सुनाती हैं कि चारों भाइयों का विवाह इसी नगर में हो और हम सब सुंदर मंगल गावें।

सोरठा :

* कहहिं परस्पर नारि बारि बिलोचन पुलक तन।
सखि सबु करब पुरारि पुन्य पयोनिधि भूप दोउ॥311॥
भावार्थ:-नेत्रों में (प्रेमाश्रुओं का) जल भरकर पुलकित शरीर से स्त्रियाँ आपस में कह रही हैं कि हे सखी! दोनों राजा पुण्य के समुद्र हैं, त्रिपुरारी शिवजी सब मनोरथ पूर्ण करेंगे॥311॥

चौपाई :

* एहि बिधि सकल मनोरथ करहीं। आनँद उमगि उमगि उर भरहीं॥
जे नृप सीय स्वयंबर आए। देखि बंधु सब तिन्ह सुख पाए॥1॥
भावार्थ:-इस प्रकार सब मनोरथ कर रही हैं और हृदय को उमंग-उमंगकर (उत्साहपूर्वक) आनंद से भर रही हैं। सीताजी के स्वयंवर में जो राजा आए थे, उन्होंने भी चारों भाइयों को देखकर सुख पाया॥1॥

* कहत राम जसु बिसद बिसाला। निज निज भवन गए महिपाला॥
गए बीति कछु दिन एहि भाँती। प्रमुदित पुरजन सकल बराती॥2॥
भावार्थ:-श्री रामचन्द्रजी का निर्मल और महान यश कहते हुए राजा लोग अपने-अपने घर गए। इस प्रकार कुछ दिन बीत गए। जनकपुर निवासी और बाराती सभी बड़े आनंदित हैं॥2॥

* मंगल मूल लगन दिनु आवा। हिम रितु अगहनु मासु सुहावा॥

ग्रह तिथि नखतु जोगु बर बारू। लगन सोधि बिधि कीन्ह बिचारू॥3॥

भावार्थ:-मंगलों का मूल लग्न का दिन आ गया। हेमंत ऋतु और सुहावना अगहन का महीना था। ग्रह, तिथि, नक्षत्र, योग और वार श्रेष्ठ थे। लग्न (मुहूर्त) शोधकर ब्रह्माजी ने उस पर विचार किया,॥3॥

* पठै दीन्हि नारद सन सोई। गनी जनक के गनकन्ह जोई॥

सुनी सकल लोगन्ह यह बाता। कहहिं जोतिषी आहिं बिधाता॥4॥

भावार्थ:-और उस (लग्न पत्रिका) को नारदजी के हाथ (जनकजी के यहाँ) भेज दिया। जनकजी के ज्योतिषियों ने भी वही गणना कर रखी थी। जब सब लोगों ने यह बात सुनी तब वे कहने लगे- यहाँ के ज्योतिषी भी ब्रह्मा ही हैं॥4॥

दोहा :

* धेनुधूरि बेला बिमल सकल सुमंगल मूल।

बिप्रन्ह कहेउ बिदेह सन जानि सगुन अनुकूल॥312॥

भावार्थ:-निर्मल और सभी सुंदर मंगलों की मूल गोधूलि की पवित्र बेला आ गई और अनुकूल शकुन होने लगे, यह जानकर ब्राह्मणों ने जनकजी से कहा॥312॥

चौपाई :

* उपरोहितहि कहेउ नरनाहा। अब बिलंब कर कारनु काहा॥

सतानंद तब सचिव बोलाए। मंगल सकल साजि सब ल्याए॥1॥

भावार्थ:-तब राजा जनक ने पुरोहित शतानंदजी से कहा कि अब देरी का क्या कारण है। तब शतानंदजी ने मंत्रियों को बुलाया। वे सब मंगल का सामान सजाकर ले आए॥1॥

* संख निसान पनव बहु बाजे। मंगल कलस सगुन सुभ साजे॥

सुभग सुआसिनि गावहिं गीता। करहिं बेद धुनि बिप्र पुनीता॥2॥

भावार्थ:-शंख, नगाड़े, ढोल और बहुत से बाजे बजने लगे तथा मंगल कलश और शुभ शकुन की वस्तुएँ (दधि, दूर्वा आदि) सजाई गईं। सुंदर सुहागिन स्त्रियाँ गीत गा रही हैं और पवित्र ब्राह्मण वेद की ध्वनि कर रहे हैं॥2॥

* लेन चले सादर एहि भाँती। गए जहाँ जनवास बराती॥
कोसलपति कर देखि समाजू। अति लघु लाग तिन्हहि सुरराजू॥3॥

भावार्थ:-सब लोग इस प्रकार आदरपूर्वक बारात को लेने चले और जहाँ बारातियों का जनवासा था, वहाँ गए। अवधपति दशरथजी का समाज (वैभव) देखकर उनको देवराज इन्द्र भी बहुत ही तुच्छ लगने लगे॥3॥

* भयउ समउ अब धारिअ पाऊ। यह सुनि परा निसानहिं घाऊ ॥
गुरहि पूछि करि कुल बिधि राजा। चले संग मुनि साधु समाजा॥4॥

भावार्थ:-(उन्होंने जाकर विनती की-) समय हो गया, अब पधारिए। यह सुनते ही नगाड़ों पर चोट पड़ी। गुरु वशिष्ठजी से पूछकर और कुल की सब रीतियों को करके राजा दशरथजी मुनियों और साधुओं के समाज को साथ लेकर चले॥4॥

दोहा :

* भाग्य बिभव अवधेस कर देखि देव ब्रह्मादि।
लगे सराहन सहस मुख जानि जनम निज बादि॥313॥

भावार्थ:-अवध नरेश दशरथजी का भाग्य और वैभव देखकर और अपना जन्म व्यर्थ समझकर, ब्रह्माजी आदि देवता हजारों मुखों से उसकी सराहना करने लगे॥313॥

चौपाई :

* सुरन्ह सुमंगल अवसरु जाना। बरषहिं सुमन बजाइ निसाना॥

सिव ब्रह्मादिक बिबुध बरूथा। चढ़े बिमानन्हि नाना जूथा॥1॥

भावार्थ:-देवगण सुंदर मंगल का अवसर जानकर, नगाड़े बजा-बजाकर फूल बरसाते हैं। शिवजी, ब्रह्माजी आदि देववृन्द यूथ (टोलियाँ) बना-बनाकर विमानों पर जा चढ़े॥1॥

* प्रेम पुलक तन हृदयँ उछाहू। चले बिलोकन राम बिआहू॥
देखि जनकपुरु सुर अनुरागे। निज निज लोक सबहिं लघु लागे॥2॥

भावार्थ:-और प्रेम से पुलकित शरीर हो तथा हृदय में उत्साह भरकर श्री रामचन्द्रजी का विवाह देखने चले। जनकपुर को देखकर देवता इतने अनुरक्त हो गए कि उन सबको अपने-अपने लोक बहुत तुच्छ लगने लगे॥2॥

* चितवहिं चकित बिचित्र बिताना। रचना सकल अलौकिक नाना।
नगर नारि नर रूप निधाना। सुघर सुधरम सुसील सुजाना॥3॥

भावार्थ:-विचित्र मंडप को तथा नाना प्रकार की सब अलौकिक रचनाओं को वे चकित होकर देख रहे हैं। नगर के स्त्री-पुरुष रूप के भंडार, सुघड़, श्रेष्ठ धर्मात्मा, सुशील और सुजान हैं॥3॥

* तिन्हहि देखि सब सुर सुरनारीं। भए नखत जनु बिधु उजिआरीं॥
बिधिहि भयउ आचरजु बिसेषी। निज करनी कछु कतहुँ न देखी॥4॥

भावार्थ:-उन्हें देखकर सब देवता और देवांगनाएँ ऐसे प्रभाहीन हो गए जैसे चन्द्रमा के उजियाले में तारागण फीके पड़ जाते हैं। ब्रह्माजी को विशेष आश्चर्य हुआ, क्योंकि वहाँ उन्होंने अपनी कोई करनी (रचना) तो कहीं देखी ही नहीं॥4॥

दोहा :

* सिवँ समुझाए देव सब जनि आचरज भुलाहु।

हृदयँ बिचारहु धीर धरि सिय रघुबीर बिआहु॥314॥

भावार्थ:-तब शिवजी ने सब देवताओं को समझाया कि तुम लोग आश्चर्य में मत भूलो। हृदय में धीरज धरकर विचार तो करो कि यह (भगवान की महामहिमामयी निजशक्ति) श्री सीताजी का और (अखिल ब्रह्माण्डों के परम ईश्वर साक्षात् भगवान) श्री रामचन्द्रजी का विवाह है॥314॥

चौपाई :

* जिन्ह कर नामु लेत जग माहीं। सकल अमंगल मूल नसाहीं॥
करतल होहिं पदारथ चारी। तेइ सिय रामु कहेउ कामारी॥1॥

भावार्थ:-जिनका नाम लेते ही जगत में सारे अमंगलों की जड़ कट जाती है और चारों पदार्थ (अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष) मुट्ठी में आ जाते हैं, ये वही (जगत के माता-पिता) श्री सीतारामजी हैं, काम के शत्रु शिवजी ने ऐसा कहा॥1॥

* एहि बिधि संभु सुरन्ह समुझावा। पुनि आगें बर बसह चलावा॥
देवन्ह देखे दसरथु जाता। महामोद मन पुलकित गाता॥2॥

भावार्थ:-इस प्रकार शिवजी ने देवताओं को समझाया और फिर अपने श्रेष्ठ बैल नंदीश्वर को आगे बढ़ाया। देवताओं ने देखा कि दशरथजी मन में बड़े ही प्रसन्न और शरीर से पुलकित हुए चले जा रहे हैं॥2॥

* साधु समाज संग महिदेवा। जनु तनु धरें करहिं सुख सेवा॥
सोहत साथ सुभग सुत चारी। जनु अपबरग सकल तनुधारी॥3॥

भावार्थ:-उनके साथ (परम हर्षयुक्त) साधुओं और ब्राह्मणों की मंडली ऐसी शोभा दे रही है, मानो समस्त सुख शरीर धारण करके उनकी सेवा कर रहे हों। चारों सुंदर पुत्र साथ में ऐसे सुशोभित हैं, मानो सम्पूर्ण मोक्ष (सालोक्य, सामीप्य, सारूप्य, सायुज्य) शरीर धारण किए हुए हों॥3॥

* मरकत कनक बरन बर जोरी। देखि सुरन्ह भै प्रीति न थोरी॥

पुनि रामहि बिलोकि हियँ हरषे। नृपहि सराहि सुमन तिन्ह बरषे॥4॥

भावार्थ:-मरकतमणि और सुवर्ण के रंग की सुंदर जोड़ियों को देखकर देवताओं को कम प्रीति नहीं हुई (अर्थात् बहुत ही प्रीति हुई)। फिर रामचन्द्रजी को देखकर वे हृदय में (अत्यन्त) हर्षित हुए और राजा की सराहना करके उन्होंने फूल बरसाए॥4॥

दोहा :

* राम रूपु नख सिख सुभग बारहिं बार निहारि।

पुलक गात लोचन सजल उमा समेत पुरारि॥315॥

भावार्थ:-नख से शिखा तक श्री रामचन्द्रजी के सुंदर रूप को बार-बार देखते हुए पार्वतीजी सहित श्री शिवजी का शरीर पुलकित हो गया और उनके नेत्र (प्रेमाश्रुओं के) जल से भर गए॥315॥

चौपाई :

* केकि कंठ दुति स्यामल अंगा। तड़ित बिनिंदक बसन सुरंगा॥

ब्याह बिभूषन बिबिध बनाए। मंगल सब सब भाँति सुहाए॥1॥

भावार्थ:-रामजी का मोर के कंठ की सी कांतिवाला (हरिताभ) श्याम शरीर है। बिजली का अत्यन्त निरादर करने वाले प्रकाशमय सुंदर (पीत) रंग के वस्त्र हैं। सब मंगल रूप और सब प्रकार के सुंदर भाँति-भाँति के विवाह के आभूषण शरीर पर सजाए हुए हैं॥1॥

* सरद बिमल बिधु बदनु सुहावन। नयन नवल राजीव लजावन॥

सकल अलौकिक सुंदरताई। कहि न जाई मनहीं मन भाई॥2॥

भावार्थ:-उनका सुंदर मुख शरत्पूर्णिमा के निर्मल चन्द्रमा के समान और (मनोहर) नेत्र नवीन कमल को लजाने वाले हैं। सारी सुंदरता अलौकिक है। (माया की बनी नहीं है, दिव्य सच्चिदानन्दमयी है) वह कहीं नहीं जा सकती, मन ही मन बहुत प्रिय लगती है॥2॥

* बंधु मनोहर सोहहिं संगा। जात नचावत चपल तुरंगा।

राजकुअँर बर बाजि देखावहिं। बंस प्रसंसक बिरिद सुनावहिं॥3॥

भावार्थ:-साथ में मनोहर भाई शोभित हैं, जो चंचल घोड़ों को नचाते हुए चले जा रहे हैं। राजकुमार श्रेष्ठ घोड़ों को (उनकी चाल को) दिखला रहे हैं और वंश की प्रशंसा करने वाले (मागध भाट) विरुदावली सुना रहे हैं॥3॥

* जेहि तुरंग पर रामु बिराजे। गति बिलोकि खगनायकु लाजे॥
कहि न जाइ सब भाँति सुहावा। बाजि बेषु जनु काम बनावा॥4॥

भावार्थ:-जिस घोड़े पर श्री रामजी विराजमान हैं, उसकी (तेज) चाल देखकर गरुड़ भी लजा जाते हैं, उसका वर्णन नहीं हो सकता, वह सब प्रकार से सुंदर है। मानो कामदेव ने ही घोड़े का वेष धारण कर लिया हो॥4॥

छन्द :

* जनु बाजि बेषु बनाइ मनसिजु राम हित अति सोहई।
आपनें बय बल रूप गुन गति सकल भुवन बिमोहई॥
जगमगत जीनु जराव जोति सुमोति मनि मानिक लगे।
किंकिनि ललाम लगामु ललित बिलोकिसुर नर मुनि ठगे॥

भावार्थ:-मानो श्री रामचन्द्रजी के लिए कामदेव घोड़े का वेश बनाकर अत्यन्त शोभित हो रहा है। वह अपनी अवस्था, बल, रूप, गुण और चाल से समस्त लोकों को मोहित कर रहा है। उसकी सुंदर घुँघरू लगी ललित लगाम को देखकर देवता, मनुष्य और मुनि सभी ठगे जाते हैं।

दोहा :

* प्रभु मनसहिं लयलीन मनु चलत बाजि छबि पाव।
भूषित उड़गन तड़ित घनु जनु बर बरहि नचाव॥316॥

भावार्थ:-प्रभु की इच्छा में अपने मन को लीन किए चलता हुआ वह घोड़ा बड़ी शोभा पा रहा है। मानो तारागण तथा बिजली से अलंकृत मेघ सुंदर मोर को नचा रहा हो॥316॥

चौपाई :

* जेहिं बर बाजि रामु असवारा। तेहि सारदउ न बरनै पारा॥
संकरु राम रूप अनुरागे। नयन पंचदस अति प्रिय लागे॥1॥

भावार्थ:-जिस श्रेष्ठ घोड़े पर श्री रामचन्द्रजी सवार हैं, उसका वर्णन सरस्वतीजी भी नहीं कर सकतीं। शंकरजी श्री रामचन्द्रजी के रूप में ऐसे अनुरक्त हुए कि उन्हें अपने पंद्रह नेत्र इस समय बहुत ही प्यारे लगने लगे॥1॥

* हरि हित सहित रामु जब जोहे। रमा समेत रमापति मोहे॥
निरखि राम छबि बिधि हरषाने। आठइ नयन जानि पछिताने॥2॥

भावार्थ:-भगवान विष्णु ने जब प्रेम सहित श्री राम को देखा, तब वे (रमणीयता की मूर्ति) श्री लक्ष्मीजी के पति श्री लक्ष्मीजी सहित मोहित हो गए। श्री रामचन्द्रजी की शोभा देखकर ब्रह्माजी बड़े प्रसन्न हुए, पर अपने आठ ही नेत्र जानकर पछताने लगे॥2॥

* सुर सेनप उर बहुत उछाहू। बिधि ते डेवढ़ लोचन लाहू॥
रामहि चितव सुरेस सुजाना। गौतम श्रापु परम हित माना॥3॥

भावार्थ:-देवताओं के सेनापति स्वामि कार्तिक के हृदय में बड़ा उत्साह है, क्योंकि वे ब्रह्माजी से ड्योढ़े अर्थात बारह नेत्रों से रामदर्शन का सुंदर लाभ उठा रहे हैं। सुजान इन्द्र (अपने हजार नेत्रों से) श्री रामचन्द्रजी को देख रहे हैं और गौतमजी के शाप को अपने लिए परम हितकर मान रहे हैं॥3॥

* देव सकल सुरपतिहि सिहाहीं। आजु पुरंदर सम कोउ नाहीं॥

मुदित देवगन रामहि देखी। नृपसमाज दुहुँ हरषु बिसेषी॥4॥

भावार्थ:-सभी देवता देवराज इन्द्र से ईर्षा कर रहे हैं (और कह रहे हैं) कि आज इन्द्र के समान भाग्यवान दूसरा कोई नहीं है। श्री रामचन्द्रजी को देखकर देवगण प्रसन्न हैं और दोनों राजाओं के समाज में विशेष हर्ष छा रहा है॥4॥

छन्द :

* अति हरषु राजसमाज दुहु दिसि दुंदुभीं बाजहिं घनी।
बरषहिं सुमन सुर हरषि कहि जय जयति जय रघुकुलमनी॥
एहि भाँति जानि बरात आवत बाजने बहु बाजहीं।
रानी सुआसिनि बोलि परिछनि हेतु मंगल साजहीं॥

भावार्थ:-दोनों ओर से राजसमाज में अत्यन्त हर्ष है और बड़े जोर से नगाड़े बज रहे हैं। देवता प्रसन्न होकर और 'रघुकुलमणि श्री राम की जय हो, जय हो, जय हो' कहकर फूल बरसा रहे हैं। इस प्रकार बारात को आती हुई जानकर बहुत प्रकार के बाजे बजने लगे और रानी सुहागिन स्त्रियों को बुलाकर परछन के लिए मंगल द्रव्य सजाने लगीं॥

दोहा :

* सजि आरती अनेक बिधि मंगल सकल सँवारि।
चलीं मुदित परिछनि करन गजगामिनि बर नारि॥317॥

भावार्थ:-अनेक प्रकार से आरती सजकर और समस्त मंगल द्रव्यों को यथायोग्य सजाकर गजगामिनी (हाथी की सी चाल वाली) उत्तम स्त्रियाँ आनंदपूर्वक परछन के लिए चलीं॥317॥

चौपाई :

* बिधुबदनीं सब सब मृगलोचनि। सब निज तन छबि रति मदु मोचनि॥
पहिरें बरन बरन बर चीरा। सकल बिभूषन सजें सरीरा॥1॥

भावार्थ:-सभी स्त्रियाँ चन्द्रमुखी (चन्द्रमा के समान मुख वाली) और सभी मृगलोचनी (हरिण की सी आँखों वाली) हैं और सभी अपने शरीर की शोभा से रति के गर्व को छुड़ाने वाली हैं। रंग-रंग की सुंदर साड़ियाँ पहने हैं और शरीर पर सब आभूषण सजे हुए हैं॥1॥

* सकल सुमंगल अंग बनाएँ। करहिं गान कलकंठि लजाएँ॥

कंकन किंकिनि नूपुर बाजहिं। चालि बिलोकि काम गज लाजहिं॥2॥

भावार्थ:-समस्त अंगों को सुंदर मंगल पदार्थों से सजाए हुए वे कोयल को भी लजाती हुई (मधुर स्वर से) गान कर रही हैं। कंगन, करधनी और नूपुर बज रहे हैं। स्त्रियों की चाल देखकर कामदेव के हाथी भी लजा जाते हैं॥2॥

* बाजहिं बाजने बिबिध प्रकारा। नभ अरु नगर सुमंगलचारा॥

सची सारदा रमा भवानी। जे सुरतिय सुचि सजह सयानी॥3॥

भावार्थ:-अनेक प्रकार के बाजे बज रहे हैं, आकाश और नगर दोनों स्थानों में सुंदर मंगलाचार हो रहे हैं। शची (इन्द्राणी), सरस्वती, लक्ष्मी, पार्वती और जो स्वभाव से ही पवित्र और सयानी देवांगनाएँ थीं,॥3॥

* कपट नारि बर बेष बनाई। मिली सकल रनिवासहिं जाई॥

करहिं गान कल मंगल बानीं। हरष बिबस सब काहुँ न जानीं॥4॥

भावार्थ:-वे सब कपट से सुंदर स्त्री का वेश बनाकर रनिवास में जा मिलीं और मनोहर वाणी से मंगलगान करने लगीं। सब कोई हर्ष के विशेष वश थे, अतः किसी ने उन्हें पहचाना नहीं॥4॥

छन्द :

* को जान केहि आनंद बस सब ब्रह्मु बर परिछन चली।
कल गान मधुर निसान बरषहिं सुमन सुर सोभा भली॥
आनंदकंदु बिलोकि दूलहु सकलहियँ हरषित भई।

अंभोज अंबक अंबु उमगि सुअंग पुलकावलि छई॥
भावार्थ:-कौन किसे जाने-पहिचाने! आनंद के वश हुई सब दूलह बने हुए ब्रह्म का परछन करने चलीं। मनोहर गान हो रहा है। मधुर-मधुर नगाड़े बज रहे हैं, देवता फूल बरसा रहे हैं, बड़ी अच्छी शोभा है। आनंदकन्द दूलह को देखकर सब स्त्रियाँ हृदय में हर्षित हुईं। उनके कमल सरीखे नेत्रों में प्रेमाश्रुओं का जल उमड़ आया और सुंदर अंगों में पुलकावली छा गई॥
दोहा :

* जो सुखु भा सिय मातु मन देखि राम बर बेषु।
सो न सकहिं कहि कलप सत सहस सारदा सेषु॥318॥

श्री रामचन्द्रजी का वर वेश देखकर सीताजी की माता सुनयनाजी के मन में जो सुख हुआ, उसे हजारों सरस्वती और शेषजी सौ कल्पों में भी नहीं कह सकते (अथवा लाखों सरस्वती और शेष लाखों कल्पों में भी नहीं कह सकते)॥318॥
चौपाई :

* नयन नीरु हटि मंगल जानी। परिछनि करहिं मुदित मन रानी॥
बेद बिहित अरु कुल आचारू। कीन्ह भली बिधि सब ब्यवहारू॥1॥

भावार्थ:-मंगल अवसर जानकर नेत्रों के जल को रोके हुए रानी प्रसन्न मन से परछन कर रही हैं। वेदों में कहे हुए तथा कुलाचार के अनुसार सभी व्यवहार रानी ने भलीभाँति किए॥1॥

* पंच सबद धुनि मंगल गाना। पट पाँवड़े परहिं बिधि नाना॥
करि आरती अरघु तिन्ह दीन्हा। राम गमनु मंडप तब कीन्हा॥2॥

भावार्थ:-पंचशब्द (तंत्री, ताल, झाँझ, नगारा और तुरही- इन पाँच प्रकार के बाजों के शब्द), पंचध्वनि (वेदध्वनि, वन्दिध्वनि, जयध्वनि, शंखध्वनि और हुलूध्वनि) और मंगलगान हो रहे हैं। नाना प्रकार के

वस्त्रों के पाँवड़े पड़ रहे हैं। उन्होंने (रानी ने) आरती करके अर्घ्य दिया, तब श्री रामजी ने मंडप में गमन किया॥2॥

* दसरथु सहित समाज बिराजे। बिभव बिलोकि लोकपति लाजे॥
समयँ समयँ सुर बरषहिं फूला। सांति पढ़हिं महिसुर अनुकूला॥3॥

भावार्थ:-दशरथजी अपनी मंडली सहित विराजमान हुए। उनके वैभव को देखकर लोकपाल भी लजा गए। समय-समय पर देवता फूल बरसाते हैं और भूदेव ब्राह्मण समयानुकूल शांति पाठ करते हैं॥3॥

* नभ अरु नगर कोलाहल होई। आपनि पर कछु सुनइ न कोई॥
एहि बिधि रामु मंडपहिं आए। अरघु देइ आसन बैठाए॥4॥

भावार्थ:-आकाश और नगर में शोर मच रहा है। अपनी-पराई कोई कुछ भी नहीं सुनता। इस प्रकार श्री रामचन्द्रजी मंडप में आए और अर्घ्य देकर आसन पर बैठाए गए॥4॥

छन्द :

* बैठारि आसन आरती करि निरखि बरु सुखु पावहीं।
मनि बसन भूषन भूरि वारहिं नारि मंगल गावहीं॥
ब्रह्मादि सुरबर बिप्र बेष बनाइ कौतुक देखहीं।
अवलोकि रघुकुल कमल रबि छबि सुफल जीवन लेखहीं॥

भावार्थ:-आसन पर बैठाकर, आरती करके दूलह को देखकर स्त्रियाँ सुख पा रही हैं। वे ढेर के ढेर मणि, वस्त्र और गहने निछावर करके मंगल गा रही हैं। ब्रह्मा आदि श्रेष्ठ देवता ब्राह्मण का वेश बनाकर कौतुक देख रहे हैं। वे रघुकुल रूपी कमल को प्रफुल्लित करने वाले सूर्य श्री रामचन्द्रजी की छबि देखकर अपना जीवन सफल जान रहे हैं।

दोहा :

*नाऊ बारी भाट नट राम निछावरि पाइ।
मुदित असीसहिं नाइ सिर हरषु न हृदयँ समाइ॥319॥

भावार्थ:-नाई, बारी, भाट और नट श्री रामचन्द्रजी की निछावर पाकर आनंदित हो सिर नवाकर आशीष देते हैं, उनके हृदय में हर्ष समाता नहीं है॥319॥

चौपाई :

* मिले जनकु दसरथु अति प्रीतीं। करि बैदिक लौकिक सब रीतीं॥
मिलत महा दोउ राज बिराजे। उपमा खोजि खोजि कबि लाजे॥1॥

भावार्थ:-वैदिक और लौकिक सब रीतियाँ करके जनकजी और दशरथजी बड़े प्रेम से मिले। दोनों महाराज मिलते हुए बड़े ही शोभित हुए, कवि उनके लिए उपमा खोज-खोजकर लजा गए॥1॥

* लही न कतहुँ हारि हियँ मानी। इन्ह सम एइ उपमा उर आनी॥
सामध देखि देव अनुरागे। सुमन बरषि जसु गावन लागे॥2॥

भावार्थ:-जब कहीं भी उपमा नहीं मिली, तब हृदय में हार मानकर उन्होंने मन में यही उपमा निश्चित की कि इनके समान ये ही हैं। समधियों का मिलाप या परस्पर संबंध देखकर देवता अनुरक्त हो गए और फूल बरसाकर उनका यश गाने लगे॥2॥

* जगु बिरंचि उपजावा जब तें। देखे सुने ब्याह बहु तब तें॥
सकल भाँति सम साजु समाजू। सम समधी देखे हम आजू॥3॥

भावार्थ:-(वे कहने लगे-) जबसे ब्रह्माजी ने जगत को उत्पन्न किया, तब से हमने बहुत विवाह देखे- सुने, परन्तु सब प्रकार से समान साज-समाज और बराबरी के (पूर्ण समतायुक्त) समधी तो आज ही देखे॥3॥

* देव गिरा सुनि सुंदर साँची। प्रीति अलौकिक दुहु दिसि माची॥
देत पाँवड़े अरघु सुहाए। सादर जनकु मंडपहिं ल्याए॥4॥

भावार्थ:-देवताओं की सुंदर सत्यवाणी सुनकर दोनों ओर अलौकिक प्रीति छा गई। सुंदर पाँवड़े और अर्घ्य देते हुए जनकजी दशरथजी को आदरपूर्वक मंडप में ले आए॥4॥

छन्द :

* मंडपु बिलोकि बिचित्र रचनाँ रुचिरताँ मुनि मन हरे।
निज पानि जनक सुजान सब कहुँ आनि सिंघासन धरे॥
कुल इष्ट सरिस बसिष्ट पूजे बिनय करि आसिष लही।
कौसिकहि पूजन परम प्रीति कि रीति तौ न परै कही॥

भावार्थ:-मंडप को देखकर उसकी विचित्र रचना और सुंदरता से मुनियों के मन भी हरे गए (मोहित हो गए)। सुजान जनकजी ने अपने हाथों से ला-लाकर सबके लिए सिंहासन रखे। उन्होंने अपने कुल के इष्टदेवता के समान वशिष्ठजी की पूजा की और विनय करके आशीर्वाद प्राप्त किया। विश्वामित्रजी की पूजा करते समय की परम प्रीति की रीति तो कहते ही नहीं बनती॥

दोहा :

* बामदेव आदिक रिषय पूजे मुदित महीस॥
दिए दिब्य आसन सबहि सब सन लही असीस॥320॥

भावार्थ:-राजा ने वामदेव आदि ऋषियों की प्रसन्न मन से पूजा की। सभी को दिव्य आसन दिए और सबसे आशीर्वाद प्राप्त किया॥320॥

चौपाई :

* बहुरि कीन्हि कोसलपति पूजा। जानि ईस सम भाउ न दूजा॥
कीन्हि जोरि कर बिनय बड़ाई। कहि निज भाग्य बिभव बहुताई॥1॥

भावार्थ:-फिर उन्होंने कोसलाधीश राजा दशरथजी की पूजा उन्हें ईश (महादेवजी) के समान जानकर की, कोई दूसरा भाव न था। तदन्तर (उनके संबंध से) अपने भाग्य और वैभव के विस्तार की सराहना करके हाथ जोड़कर विनती और बड़ाई की॥1॥

* पूजे भूपति सकल बराती। समधी सम सादर सब भाँती॥
आसन उचित दिए सब काहू। कहौं काह मुख एक उछाहू॥2॥

भावार्थ:-राजा जनकजी ने सब बारातियों का समधी दशरथजी के समान ही सब प्रकार से आदरपूर्वक पूजन किया और सब किसी को उचित आसन दिए। मैं एक मुख से उस उत्साह का क्या वर्णन करूँ॥2॥

* सकल बरात जनक सनमानी। दान मान बिनती बर बानी॥
बिधि हरि हरु दिसिपति दिनराऊ। जे जानहिं रघुबीर प्रभाऊ॥3॥

भावार्थ:-राजा जनक ने दान, मान-सम्मान, विनय और उत्तम वाणी से सारी बारात का सम्मान किया। ब्रह्मा, विष्णु, शिव, दिक्पाल और सूर्य जो श्री रघुनाथजी का प्रभाव जानते हैं,॥3॥

* कपट बिप्र बर बेष बनाएँ। कौतुक देखहिं अति सचु पाएँ॥
पूजे जनक देव सम जानें। दिए सुआसन बिनु पहिचानें॥4॥

भावार्थ:-वे कपट से ब्राह्मणों का सुंदर वेश बनाए बहुत ही सुख पाते हुए सब लीला देख रहे थे। जनकजी ने उनको देवताओं के समान जानकर उनका पूजन किया और बिना पहिचाने भी उन्हें सुंदर आसन दिए॥4॥

छन्द :

* पहिचान को केहि जान सबहि अपान सुधि भोरी भई।
आनंद कंदु बिलोकि दूलहु उभय दिसि आनँदमई॥
सुर लखे राम सुजान पूजे मानसिक आसन दए।
अवलोकि सीलु सुभाउ प्रभु को बिबुध मन प्रमुदित भए॥

भावार्थ:-कौन किसको जाने-पहिचाने! सबको अपनी ही सुध भूली हुई है। आनंदकन्द दूलह को देखकर दोनों ओर आनंदमयी स्थिति हो रही है। सुजान (सर्वज्ञ) श्री रामचन्द्रजी ने देवताओं को पहिचान लिया और उनकी मानसिक पूजा करके उन्हें मानसिक आसन दिए। प्रभु का शील-स्वभाव देखकर देवगण मन में बहुत आनंदित हुए।

दोहा :

* रामचन्द्र मुख चंद्र छबि लोचन चारु चकोर।
करत पान सादर सकल प्रेमु प्रमोदु न थोर॥321॥

भावार्थ:-श्री रामचन्द्रजी के मुख रूपी चन्द्रमा की छबि को सभी के सुंदर नेत्र रूपी चकोर आदरपूर्वक पान कर रहे हैं, प्रेम और आनंद कम नहीं है (अर्थात बहुत है)॥321॥

चौपाई :

* समउ बिलोकि बसिष्ठ बोलाए। सादर सतानंदु सुनि आए॥
बेगि कुअँरि अब आनहु जाई। चले मुदित मुनि आयसु पाई॥1॥

भावार्थ:-समय देखकर वशिष्ठजी ने शतानंदजी को आदरपूर्वक बुलाया। वे सुनकर आदर के साथ आए। वशिष्ठजी ने कहा- अब जाकर राजकुमारी को शीघ्र ले आइए। मुनि की आज्ञा पाकर वे प्रसन्न होकर चले॥1॥

* रानी सुनि उपरोहित बानी। प्रमुदित सखिन्ह समेत सयानी॥
बिप्र बधू कुल बृद्ध बोलाईं। करि कुल रीति सुमंगल गाईं॥2॥

भावार्थ:-बुद्धिमती रानी पुरोहित की वाणी सुनकर सखियों समेत बड़ी प्रसन्न हुईं। ब्राह्मणों की स्त्रियों और कुल की बूढ़ी स्त्रियों को बुलाकर उन्होंने कुलरीति करके सुंदर मंगल गीत गाए॥2॥

* नारि बेष जे सुर बर बामा। सकल सुभायँ सुंदरी स्यामा॥
तिन्हहि देखि सुखु पावहिं नारी। बिनु पहिचानि प्रानहु ते प्यारीं॥3॥

भावार्थ:-श्रेष्ठ देवांगनाएँ, जो सुंदर मनुष्य-स्त्रियों के वेश में हैं, सभी स्वभाव से ही सुंदरी और श्यामा (सोलह वर्ष की अवस्था वाली) हैं। उनको देखकर रनिवास की स्त्रियाँ सुख पाती हैं और बिना पहिचान के ही वे सबको प्राणों से भी प्यारी हो रही हैं॥3॥

* बार बार सनमानहिं रानी। उमा रमा सारद सम जानी॥
सीय सँवारि समाजु बनाई। मुदित मंडपहिं चलीं लवाई॥4॥

भावार्थ:-उन्हें पार्वती, लक्ष्मी और सरस्वती के समान जानकर रानी बार-बार उनका सम्मान करती हैं। (रनिवास की स्त्रियाँ और सखियाँ) सीताजी का श्रृंगार करके, मंडली बनाकर, प्रसन्न होकर उन्हें मंडप में लिवा चलीं॥4॥

श्री सीता-राम विवाह, विदाई

छन्द :

* चलि ल्याइ सीतहि सखीं सादर सजि सुमंगल भामिनीं।
नवसप्त साजें सुंदरी सब मत्त कुंजर गामिनीं॥
कल गान सुनि मुनि ध्यान त्यागहिं काम कोकिल लाजहीं।
मंजीर नूपुर कलित कंकन ताल गति बर बाजहीं॥

भावार्थ:-सुंदर मंगल का साज सजकर (रनिवास की) स्त्रियाँ और सखियाँ आदर सहित सीताजी को लिवा चलीं। सभी सुंदरियाँ सोलहों श्रृंगार किए हुए मतवाले हाथियों की चाल से चलने वाली हैं। उनके मनोहर गान को सुनकर मुनि ध्यान छोड़ देते हैं और कामदेव की कोयलें भी लजा जाती हैं। पायजेब, पैंजनी और सुंदर कंकण ताल की गति पर बड़े सुंदर बज रहे हैं।

दोहा :

* सोहति बनिता बृंद महुँ सहज सुहावनि सीय।
छबि ललना गन मध्य जनु सुषमा तिय कमनीय॥322॥

भावार्थ:-सहज ही सुंदरी सीताजी स्त्रियों के समूह में इस प्रकार शोभा पा रही हैं, मानो छबि रूपी ललनाओं के समूह के बीच साक्षात परम मनोहर शोभा रूपी स्त्री सुशोभित हो॥322॥

चौपाई :

* सिय सुंदरता बरनि न जाई। लघु मति बहुत मनोहरताई॥
आवत दीखि बरातिन्ह सीता। रूप रासि सब भाँति पुनीता॥1॥

भावार्थ:-सीताजी की सुंदरता का वर्णन नहीं हो सकता, क्योंकि बुद्धि बहुत छोटी है और मनोहरता बहुत बड़ी है। रूप की राशि और सब प्रकार से पवित्र सीताजी को बारातियों ने आते देखा॥1॥

* सबहिं मनहिं मन किए प्रनामा। देखि राम भए पूरनकामा॥
हरषे दसरथ सुतन्ह समेता। कहि न जाइ उर आनँदु जेता॥2॥

भावार्थ:-सभी ने उन्हें मन ही मन प्रणाम किया। श्री रामचन्द्रजी को देखकर तो सभी पूर्णकाम (कृतकृत्य) हो गए। राजा दशरथजी पुत्रों सहित हर्षित हुए। उनके हृदय में जितना आनंद था, वह कहा नहीं जा सकता॥2॥

* सुर प्रनामु करि बरिसहिं फूला। मुनि असीस धुनि मंगल मूला॥
गान निसान कोलाहलु भारी। प्रेम प्रमोद मगन नर नारी॥3॥

भावार्थ:-देवता प्रणाम करके फूल बरसा रहे हैं। मंगलों की मूल मुनियों के आशीर्वादों की ध्वनि हो रही है। गानों और नगाड़ों के शब्द से बड़ा शोर मच रहा है। सभी नर-नारी प्रेम और आनंद में मग्न हैं॥3॥

*एहि बिधि सीय मंडपहिं आई। प्रमुदित सांति पढ़हिं मुनिराई॥
तेहि अवसर कर बिधि ब्यवहारू। दुहुँ कुलगुर सब कीन्ह अचारू॥4॥

भावार्थ:-इस प्रकार सीताजी मंडप में आईं। मुनिराज बहुत ही आनंदित होकर शांतिपाठ पढ़ रहे हैं। उस अवसर की सब रीति, व्यवहार और कुलाचार दोनों कुलगुरुओं ने किए॥4॥

छन्द :

* आचारु करि गुर गौरि गनपति मुदित बिप्र पुजावहीं।
सुर प्रगटि पूजा लेहिं देहिं असीस अति सुखु पावहीं॥

मधुपर्क मंगल द्रब्य जो जेहि समय मुनि मन महुँ चहें।
भरे कनक कोपर कलस सो तब लिएहिं परिचारक रहैं॥1॥

भावार्थ:-कुलाचार करके गुरुजी प्रसन्न होकर गौरीजी, गणेशजी और ब्राह्मणों की पूजा करा रहे हैं (अथवा ब्राह्मणों के द्वारा गौरी और गणेश की पूजा करवा रहे हैं)। देवता प्रकट होकर पूजा ग्रहण करते हैं, आशीर्वाद देते हैं और अत्यन्त सुख पा रहे हैं। मधुपर्क आदि जिस किसी भी मांगलिक पदार्थ की मुनि जिस समय भी मन में चाह मात्र करते हैं, सेवकगण उसी समय सोने की परातों में और कलशों में भरकर उन पदार्थों को लिए तैयार रहते हैं॥1॥

* कुल रीति प्रीति समेत रबि कहि देत सबु सादर कियो।
एहि भाँति देव पुजाइ सीतहि सुभग सिंघासनु दियो॥
सिय राम अवलोकनि परसपर प्रेमु काहुँ न लखि परै।
मन बुद्धि बर बानी अगोचर प्रगट कबि कैसें करै॥2॥

भावार्थ:-स्वयं सूर्यदेव प्रेम सहित अपने कुल की सब रीतियाँ बता देते हैं और वे सब आदरपूर्वक की जा रही हैं। इस प्रकार देवताओं की पूजा कराके मुनियों ने सीताजी को सुंदर सिंहासन दिया। श्री सीताजी और श्री रामजी का आपस में एक-दूसरे को देखना तथा उनका परस्पर का प्रेम किसी को लख नहीं पड़ रहा है, जो बात श्रेष्ठ मन, बुद्धि और वाणी से भी परे है, उसे कवि क्यों कर प्रकट करे?॥2॥

दोहा :

* होम समय तनु धरि अनलु अति सुख आहुति लेहिं।
बिप्र बेष धरि बेद सब कहि बिबाह बिधि देहिं॥323॥

भावार्थ:-हवन के समय अग्निदेव शरीर धारण करके बड़े ही सुख से आहुति ग्रहण करते हैं और सारे वेद ब्राह्मण वेष धरकर विवाह की विधियाँ बताए देते हैं॥323॥

चौपाई :

* जनक पाटमहिषी जग जानी। सीय मातु किमि जाइ बखानी॥॥

सुजसु सुकृत सुख सुंदरताई। सब समेटि बिधि रची बनाई॥1॥

भावार्थ:-जनकजी की जगविख्यात पटरानी और सीताजी की माता का बखान तो हो ही कैसे सकता है। सुयश, सुकृत (पुण्य), सुख और सुंदरता सबको बटोरकर विधाता ने उन्हें सँवारकर तैयार किया है॥1॥

* समउ जानि मुनिबरन्ह बोलाईं। सुनत सुआसिनि सादर ल्याईं॥

जनक बाम दिसि सोह सुनयना। हिमगिरि संग बनी जनु मयना॥2॥

भावार्थ:-समय जानकर श्रेष्ठ मुनियों ने उनको बुलवाया। यह सुनते ही सुहागिनी स्त्रियाँ उन्हें आदरपूर्वक ले आईं। सुनयनाजी (जनकजी की पटरानी) जनकजी की बाईं ओर ऐसी सोह रही हैं, मानो हिमाचल के साथ मैनाजी शोभित हों॥2॥

* कनक कलस मनि कोपर रूरे। सुचि सुगंध मंगल जल पूरे॥

निज कर मुदित रायँ अरु रानी। धरे राम के आगें आनी॥3॥

भावार्थ:-पवित्र, सुगंधित और मंगल जल से भरे सोने के कलश और मणियों की सुंदर परातें राजा और रानी ने आनंदित होकर अपने हाथों से लाकर श्री रामचन्द्रजी के आगे रखीं॥3॥

* पढ़हिं बेद मुनि मंगल बानी। गगन सुमन झरि अवसरु जानी॥

बरु बिलोकि दंपति अनुरागे। पाय पुनीत पखारन लागे॥4॥

भावार्थ:-मुनि मंगलवाणी से वेद पढ़ रहे हैं। सुअवसर जानकर आकाश से फूलों की झड़ी लग गई है। दूलह को देखकर राजा-रानी प्रेममग्न हो गए और उनके पवित्र चरणों को पखारने लगे॥4॥

छन्द :

* लागे पखारन पाय पंकज प्रेम तन पुलकावली।

नभ नगर गान निसान जय धुनि उमगि जनु चहुँ दिसि चली॥
जे पद सरोज मनोज अरि उर सर सदैव बिराजहीं।
जे सुकृत सुमिरत बिमलता मन सकल कलि मल भाजहीं॥1॥

भावार्थ:-वे श्री रामजी के चरण कमलों को पखारने लगे, प्रेम से उनके शरीर में पुलकावली छा रही है। आकाश और नगर में होने वाली गान, नगाड़े और जय-जयकार की ध्वनि मानो चारों दिशाओं में उमड़ चली, जो चरण कमल कामदेव के शत्रु श्री शिवजी के हृदय रूपी सरोवर में सदा ही विराजते हैं, जिनका एक बार भी स्मरण करने से मन में निर्मलता आ जाती है और कलियुग के सारे पाप भाग जाते हैं,॥1।

* जे परसि मुनिबनिता लही गति रही जो पातकमई।
मकरंदु जिन्ह को संभु सिर सुचिता अवधि सुर बरनई॥
करि मधुप मन मुनि जोगिजन जे सेइ अभिमत गति लहैं।
ते पद पखारत भाग्यभाजनु जनकु जय जय सब कहैं॥2॥

भावार्थ:-जिनका स्पर्श पाकर गौतम मुनि की स्त्री अहल्या ने, जो पापमयी थी, परमगति पाई, जिन चरणकमलों का मकरन्द रस (गंगाजी) शिवजी के मस्तक पर विराजमान है, जिसको देवता पवित्रता की सीमा बताते हैं, मुनि और योगीजन अपने मन को भौंरा बनाकर जिन चरणकमलों का सेवन करके मनोवांछित गति प्राप्त करते हैं, उन्हीं चरणों को भाग्य के पात्र (बड़भागी) जनकजी धो रहे हैं, यह देखकर सब जय-जयकार कर रहे हैं॥2॥

*बर कुअँरि करतल जोरि साखोचारु दोउ कुलगुर करैं।
भयो पानिगहनु बिलोकि बिधि सुर मनुज मुनि आनँद भरैं॥
सुखमूल दूलहु देखि दंपति पुलक तन हुलस्यो हियो।

करि लोक बेद बिधानु कन्यादानु नृपभूषन कियो॥3॥

भावार्थ:-दोनों कुलों के गुरु वर और कन्या की हथेलियों को मिलाकर शाखोच्चार करने लगे। पाणिग्रहण हुआ देखकर ब्रह्मादि देवता, मनुष्य और मुनि आनंद में भर गए। सुख के मूल दूलह को देखकर राजा-रानी का शरीर पुलकित हो गया और हृदय आनंद से उमंग उठा। राजाओं के अलंकार स्वरूप महाराज जनकजी ने लोक और वेद की रीति को करके कन्यादान किया॥3॥

* हिमवंत जिमि गिरिजा महेसहि हरिहि श्री सागर दई।
तिमि जनक रामहि सिय समरपी बिस्व कल कीरति नई॥
क्यों करै बिनय बिदेहु कियो बिदेहु मूरति सावँरीं।
करि होमु बिधिवत गाँठि जोरी होन लागीं भावँरीं॥4॥

भावार्थ:-जैसे हिमवान ने शिवजी को पार्वतीजी और सागर ने भगवान विष्णु को लक्ष्मीजी दी थीं, वैसे ही जनकजी ने श्री रामचन्द्रजी को सीताजी समर्पित कीं, जिससे विश्व में सुंदर नवीन कीर्ति छा गई। विदेह (जनकजी) कैसे विनती करें! उस साँवली मूर्ति ने तो उन्हें सचमुच विदेह (देह की सुध-बुध से रहित) ही कर दिया। विधिपूर्वक हवन करके गठजोड़ी की गई और भाँवरें होने लगीं॥4॥

दोहा :

* जय धुनि बंदी बेद धुनि मंगल गान निसान।
सुनि हरषहिं बरषहिं बिबुध सुरतरु सुमन सुजान॥324॥

भावार्थ:-जय ध्वनि, वन्दी ध्वनि, वेद ध्वनि, मंगलगान और नगाड़ों की ध्वनि सुनकर चतुर देवगण हर्षित हो रहे हैं और कल्पवृक्ष के फूलों को बरसा रहे हैं॥324॥

चौपाई :

* कुअँरु कुअँरि कल भावँरि देहीं। नयन लाभु सब सादर लेहीं॥

जाइ न बरनि मनोहर जोरी। जो उपमा कछु कहौं सो थोरी॥1॥
भावार्थ:-वर और कन्या सुंदर भाँवरें दे रहे हैं। सब लोग आदरपूर्वक (उन्हें देखकर) नेत्रों का परम लाभ ले रहे हैं। मनोहर जोड़ी का वर्णन नहीं हो सकता, जो कुछ उपमा कहूँ वही थोड़ी होगी॥1॥

* राम सीय सुंदर प्रतिछाहीं। जगमगात मनि खंभन माहीं
मनहुँ मदन रति धरि बहु रूपा। देखत राम बिआहु अनूपा॥2॥
भावार्थ:-श्री रामजी और श्री सीताजी की सुंदर परछाहीं मणियों के खम्भों में जगमगा रही हैं, मानो कामदेव और रति बहुत से रूप धारण करके श्री रामजी के अनुपम विवाह को देख रहे हैं॥2॥

* दरस लालसा सकुच न थोरी। प्रगटत दुरत बहोरि बहोरी॥
भए मगन सब देखनिहारे। जनक समान अपान बिसारे॥3॥
भावार्थ:- उन्हें (कामदेव और रति को) दर्शन की लालसा और संकोच दोनों ही कम नहीं हैं (अर्थात बहुत हैं), इसीलिए वे मानो बार-बार प्रकट होते और छिपते हैं। सब देखने वाले आनंदमग्न हो गए और जनकजी की भाँति सभी अपनी सुध भूल गए॥3॥

* प्रमुदित मुनिन्ह भावँरीं फेरीं। नेगसहित सब रीति निबेरीं॥
राम सीय सिर सेंदुर देहीं। सोभा कहि न जाति बिधि केहीं॥4॥
भावार्थ:-मुनियों ने आनंदपूर्वक भाँवरें फिराईं और नेग सहित सब रीतियों को पूरा किया। श्री रामचन्द्रजी सीताजी के सिर में सिंदूर दे रहे हैं, यह शोभा किसी प्रकार भी कही नहीं जाती॥4॥

* अरुन पराग जलजु भरि नीकें। ससिहि भूष अहि लोभ अमी कें॥
बहुरि बसिष्ठ दीन्हि अनुसासन। बरु दुलहिनि बैठे एक आसन॥5॥
भावार्थ:-मानो कमल को लाल पराग से अच्छी तरह भरकर अमृत के लोभ से साँप चन्द्रमा को भूषित कर रहा है। (यहाँ श्री राम के हाथ को

कमल की, सेंदूर को पराग की, श्री राम की श्याम भुजा को साँप की और सीताजी के मुख को चन्द्रमा की उपमा दी गई है।) फिर वशिष्ठजी ने आज्ञा दी, तब दूलह और दुलहिन एक आसन पर बैठे॥5॥

छन्द :

* बैठे बरासन रामु जानकि मुदित मन दसरथु भए।
तनु पुलक पुनि पुनि देखि अपनें सुकृत सुरतरु पल नए॥
भरि भुवन रहा उछाहु राम बिबाहु भा सबहीं कहा।
केहि भाँति बरनि सिरात रसना एक यहु मंगलु महा॥1॥

भावार्थ:-श्री रामजी और जानकीजी श्रेष्ठ आसन पर बैठे, उन्हें देखकर दशरथजी मन में बहुत आनंदित हुए। अपने सुकृत रूपी कल्प वृक्ष में नए फल (आए) देखकर उनका शरीर बार-बार पुलकित हो रहा है। चौदहों भुवनों में उत्साह भर गया, सबने कहा कि श्री रामचन्द्रजी का विवाह हो गया। जीभ एक है और यह मंगल महान है, फिर भला, वह वर्णन करके किस प्रकार समाप्त किया जा सकता है॥1॥

* तब जनक पाइ बसिष्ठ आयसु ब्याह साज सँवारि कै।
मांडवी श्रुतकीरति उरमिला कुअँरि लईं हँकारि कै॥
कुसकेतु कन्या प्रथम जो गुन सील सुख सोभामई।
सब रीति प्रीति समेत करि सो ब्याहि नृप भरतहि दई॥2॥

भावार्थ:- तब वशिष्ठजी की आज्ञा पाकर जनकजी ने विवाह का सामान सजाकर माण्डवीजी, श्रुतकीर्तिजी और उर्मिलाजी इन तीनों राजकुमारियों को बुला लिया। कुश ध्वज की बड़ी कन्या माण्डवीजी को, जो गुण, शील, सुख और शोभा की रूप ही थीं, राजा जनक ने प्रेमपूर्वक सब रीतियाँ करके भरतजी को ब्याह दिया॥2॥

* जानकी लघु भगिनी सकल सुंदरि सिरोमनि जानि कै।

सो तनय दीन्ही ब्याहि लखनहि सकल बिधि सनमानि कै॥
जेहि नामु श्रुतकीरति सुलोचनि सुमुखि सब गुन आगरी।
सो दई रिपुसूदनहि भूपति रूप सील उजागरी॥3॥

भावार्थ:-जानकीजी की छोटी बहिन उर्मिलाजी को सब सुंदरियों में शिरोमणि जानकर उस कन्या को सब प्रकार से सम्मान करके, लक्ष्मणजी को ब्याह दिया और जिनका नाम श्रुतकीर्ति है और जो सुंदर नेत्रों वाली, सुंदर मुखवाली, सब गुणों की खान और रूप तथा शील में उजागर हैं, उनको राजा ने शत्रुघ्न को ब्याह दिया॥3॥

* अनुरूप बर दुलहिनि परस्पर लखि सकुच हियँ हरषहीं।
सब मुदित सुंदरता सराहहिं सुमन सुर गन बरषहीं॥
सुंदरीं सुंदर बरन्ह सह सब एक मंडप राजहीं।
जनु जीव उर चारिउ अवस्था बिभुन सहित बिराजहीं॥4॥

भावार्थ:-दूलह और दुलहिनें परस्पर अपने-अपने अनुरूप जोड़ी को देखकर सकुचाते हुए हृदय में हर्षित हो रही हैं। सब लोग प्रसन्न होकर उनकी सुंदरता की सराहना करते हैं और देवगण फूल बरसा रहे हैं। सब सुंदरी दुलहिनें सुंदर दूल्हों के साथ एक ही मंडप में ऐसी शोभा पा रही हैं, मानो जीव के हृदय में चारों अवस्थाएँ (जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति और तुरीय) अपने चारों स्वामियों (वि�

श्री सीता-राम विवाह, विदाई

छन्द :

* चलि ल्याइ सीतहि सखीं सादर सजि सुमंगल भामिनीं।
नवसप्त साजें सुंदरी सब मत्त कुंजर गामिनीं॥
कल गान सुनि मुनि ध्यान त्यागहिं काम कोकिल लाजहीं।
मंजीर नूपुर कलित कंकन ताल गति बर बाजहीं॥

भावार्थ:-सुंदर मंगल का साज सजकर (रनिवास की) स्त्रियाँ और सखियाँ आदर सहित सीताजी को लिवा चलीं। सभी सुंदरियाँ सोलहों श्रृंगार किए हुए मतवाले हाथियों की चाल से चलने वाली हैं। उनके मनोहर गान को सुनकर मुनि ध्यान छोड़ देते हैं और कामदेव की कोयलें भी लजा जाती हैं। पायजेब, पैंजनी और सुंदर कंकण ताल की गति पर बड़े सुंदर बज रहे हैं।

दोहा :

* सोहति बनिता बृंद महुँ सहज सुहावनि सीय।
छबि ललना गन मध्य जनु सुषमा तिय कमनीय॥322॥

भावार्थ:-सहज ही सुंदरी सीताजी स्त्रियों के समूह में इस प्रकार शोभा पा रही हैं, मानो छबि रूपी ललनाओं के समूह के बीच साक्षात परम मनोहर शोभा रूपी स्त्री सुशोभित हो॥322॥

चौपाई :

* सिय सुंदरता बरनि न जाई। लघु मति बहुत मनोहरताई॥
आवत दीखि बरातिन्ह सीता। रूप रासि सब भाँति पुनीता॥1॥

भावार्थ:-सीताजी की सुंदरता का वर्णन नहीं हो सकता, क्योंकि बुद्धि बहुत छोटी है और मनोहरता बहुत बड़ी है। रूप की राशि और सब प्रकार से पवित्र सीताजी को बारातियों ने आते देखा॥1॥

* सबहिं मनहिं मन किए प्रनामा। देखि राम भए पूरनकामा॥
हरषे दसरथ सुतन्ह समेता। कहि न जाइ उर आनँदु जेता॥2॥

भावार्थ:-सभी ने उन्हें मन ही मन प्रणाम किया। श्री रामचन्द्रजी को देखकर तो सभी पूर्णकाम (कृतकृत्य) हो गए। राजा दशरथजी पुत्रों सहित हर्षित हुए। उनके हृदय में जितना आनंद था, वह कहा नहीं जा सकता॥2॥

* सुर प्रनामु करि बरिसहिं फूला। मुनि असीस धुनि मंगल मूला॥
गान निसान कोलाहलु भारी। प्रेम प्रमोद मगन नर नारी॥3॥

भावार्थ:-देवता प्रणाम करके फूल बरसा रहे हैं। मंगलों की मूल मुनियों के आशीर्वादों की ध्वनि हो रही है। गानों और नगाड़ों के शब्द से बड़ा शोर मच रहा है। सभी नर-नारी प्रेम और आनंद में मग्न हैं॥3॥

*एहि बिधि सीय मंडपहिं आई। प्रमुदित सांति पढ़हिं मुनिराई॥
तेहि अवसर कर बिधि ब्यवहारू। दुहुँ कुलगुर सब कीन्ह अचारू॥4॥

भावार्थ:-इस प्रकार सीताजी मंडप में आईं। मुनिराज बहुत ही आनंदित होकर शांतिपाठ पढ़ रहे हैं। उस अवसर की सब रीति, व्यवहार और कुलाचार दोनों कुलगुरुओं ने किए॥4॥

छन्द :

* आचारु करि गुर गौरि ग�

श्री सीता-राम विवाह, विदाई

छन्द :

* चलि ल्याइ सीतहि सखीं सादर सजि सुमंगल भामिनीं।
नवसप्त साजें सुंदरी सब मत्त कुंजर गामिनीं॥
कल गान सुनि मुनि ध्यान त्यागहिं काम कोकिल लाजहीं।
मंजीर नूपुर कलित कंकन ताल गति बर बाजहीं॥

भावार्थ:-सुंदर मंगल का साज सजकर (रनिवास की) स्त्रियाँ और सखियाँ आदर सहित सीताजी को लिवा चलीं। सभी सुंदरियाँ सोलहों श्रृंगार किए हुए मतवाले हाथियों की चाल से चलने वाली हैं। उनके मनोहर गान को सुनकर मुनि ध्यान छोड़ देते हैं और कामदेव की कोयलें भी लजा जाती हैं। पायजेब, पैंजनी और सुंदर कंकण ताल की गति पर बड़े सुंदर बज रहे हैं।

दोहा :

* सोहति बनिता बृंद महुँ सहज सुहावनि सीय।
छबि ललना गन मध्य जनु सुषमा तिय कमनीय॥322॥

भावार्थ:-सहज ही सुंदरी सीताजी स्त्रियों के समूह में इस प्रकार शोभा पा रही हैं, मानो छबि रूपी ललनाओं के समूह के बीच साक्षात परम मनोहर शोभा रूपी स्त्री सुशोभित हो॥322॥

चौपाई :

* सिय सुंदरता बरनि न जाई। लघु मति बहुत मनोहरताई॥
आवत दीखि बरातिन्ह सीता। रूप रासि सब भाँति पुनीता॥1॥

भावार्थ:-सीताजी की सुंदरता का वर्णन नहीं हो सकता, क्योंकि बुद्धि बहुत छोटी है और मनोहरता बहुत बड़ी है। रूप की राशि और सब प्रकार से पवित्र सीताजी को बारातियों ने आते देखा॥1॥

* सबहिं मनहिं मन किए प्रनामा। देखि राम भए पूरनकामा॥
हरषे दसरथ सुतन्ह समेता। कहि न जाइ उर आनँदु जेता॥2॥

भावार्थ:-सभी ने उन्हें मन ही मन प्रणाम किया। श्री रामचन्द्रजी को देखकर तो सभी पूर्णकाम (कृतकृत्य) हो गए। राजा दशरथजी पुत्रों सहित हर्षित हुए। उनके हृदय में जितना आनंद था, वह कहा नहीं जा सकता॥2॥

* सुर प्रनामु करि बरिसहिं फूला। मुनि असीस धुनि मंगल मूला॥
गान निसान कोलाहलु भारी। प्रेम प्रमोद मगन नर नारी॥3॥

भावार्थ:-देवता प्रणाम करके फूल बरसा रहे हैं। मंगलों की मूल मुनियों के आशीर्वादों की ध्वनि हो रही है। गानों और नगाड़ों के शब्द से बड़ा शोर मच रहा है। सभी नर-नारी प्रेम और आनंद में मग्न हैं॥3॥

*एहि बिधि सीय मंडपहिं आई। प्रमुदित सांति पढ़हिं मुनिराई॥

तेहि अवसर कर बिधि ब्यवहारू। दुहुँ कुलगुर सब कीन्ह अचारू॥4॥
भावार्थ:-इस प्रकार सीताजी मंडप में आईं। मुनिराज बहुत ही आनंदित होकर शांतिपाठ पढ़ रहे हैं। उस अवसर की सब रीति, व्यवहार और कुलाचार दोनों कुलगुरुओं ने किए॥4॥

छन्द :

* आचारु करि गुर गौरि गनपति मुदित बिप्र पुजावहीं।
सुर प्रगटि पूजा लेहिं देहिं असीस अति सुखु पावहीं॥
मधुपर्क मंगल द्रब्य जो जेहि समय मुनि मन महुँ चहें।
भरे कनक कोपर कलस सो तब लिएहिं परिचारक रहैं॥1॥

भावार्थ:-कुलाचार करके गुरुजी प्रसन्न होकर गौरीजी, गणेशजी और ब्राह्मणों की पूजा करा रहे हैं (अथवा ब्राह्मणों के द्वारा गौरी और गणेश की पूजा करवा रहे हैं)। देवता प्रकट होकर पूजा ग्रहण करते हैं, आशीर्वाद देते हैं और अत्यन्त सुख पा रहे हैं। मधुपर्क आदि जिस किसी भी मांगलिक पदार्थ की मुनि जिस समय भी मन में चाह मात्र करते हैं, सेवकगण उसी समय सोने की परातों में और कलशों में भरकर उन पदार्थों को लिए तैयार रहते हैं॥1॥

* कुल रीति प्रीति समेत रबि कहि देत सबु सादर कियो।
एहि भाँति देव पुजाइ सीतहि सुभग सिंघासनु दियो॥
सिय राम अवलोकनि परसपर प्रेमु काहुँ न लखि परै।
मन बुद्धि बर बानी अगोचर प्रगट कबि कैसें करै॥2॥

भावार्थ:-स्वयं सूर्यदेव प्रेम सहित अपने कुल की सब रीतियाँ बता देते हैं और वे सब आदरपूर्वक की जा रही हैं। इस प्रकार देवताओं की पूजा कराके मुनियों ने सीताजी को सुंदर सिंहासन दिया। श्री सीताजी और श्री रामजी का आपस में एक-दूसरे को देखना तथा उनका परस्पर का

प्रेम किसी को लख नहीं पड़ रहा है, जो बात श्रेष्ठ मन, बुद्धि और वाणी से भी परे है, उसे कवि क्यों कर प्रकट करे?॥2॥

दोहा :

* होम समय तनु धरि अनलु अति सुख आहुति लेहिं।
बिप्र बेष धरि बेद सब कहि बिबाह बिधि देहिं॥323॥

भावार्थ:-हवन के समय अग्निदेव शरीर धारण करके बड़े ही सुख से आहुति ग्रहण करते हैं और सारे वेद ब्राह्मण वेष धरकर विवाह की विधियाँ बताए देते हैं॥323॥

चौपाई :

* जनक पाटमहिषी जग जानी। सीय मातु किमि जाइ बखानी॥॥
सुजसु सुकृत सुख सुंदरताई। सब समेटि बिधि रची बनाई॥1॥

भावार्थ:-जनकजी की जगविख्यात पटरानी और सीताजी की माता का बखान तो हो ही कैसे सकता है। सुयश, सुकृत (पुण्य), सुख और सुंदरता सबको बटोरकर विधाता ने उन्हें सँवारकर तैयार किया है॥1॥

* समउ जानि मुनिबरन्ह बोलाईं। सुनत सुआसिनि सादर ल्याईं॥
जनक बाम दिसि सोह सुनयना। हिमगिरि संग बनी जनु मयना॥2॥

भावार्थ:-समय जानकर श्रेष्ठ मुनियों ने उनको बुलवाया। यह सुनते ही सुहागिनी स्त्रियाँ उन्हें आदरपूर्वक ले आईं। सुनयनाजी (जनकजी की पटरानी) जनकजी की बाईं ओर ऐसी सोह रही हैं, मानो हिमाचल के साथ मैनाजी शोभित हों॥2॥

* कनक कलस मनि कोपर रूरे। सुचि सुगंध मंगल जल पूरे॥
निज कर मुदित रायँ अरु रानी। धरे राम के आगें आनी॥3॥

भावार्थ:-पवित्र, सुगंधित और मंगल जल से भरे सोने के कलश और मणियों की सुंदर परातें राजा और रानी ने आनंदित होकर अपने हाथों से लाकर श्री रामचन्द्रजी के आगे रखीं॥3॥

* पढ़हिं बेद मुनि मंगल बानी। गगन सुमन झरि अवसरु जानी॥

बरु बिलोकि दंपति अनुरागे। पाय पुनीत पखारन लागे॥4॥

भावार्थ:-मुनि मंगलवाणी से वेद पढ़ रहे हैं। सुअवसर जानकर आकाश से फूलों की झड़ी लग गई है। दूलह को देखकर राजा-रानी प्रेममग्न हो गए और उनके पवित्र चरणों को पखारने लगे॥4॥

छन्द :

* लागे पखारन पाय पंकज प्रेम तन पुलकावली।
नभ नगर गान निसान जय धुनि उमगि जनु चहुँ दिसि चली॥
जे पद सरोज मनोज अरि उर सर सदैव बिराजहीं।
जे सुकृत सुमिरत बिमलता मन सकल कलि मल भाजहीं॥1॥

भावार्थ:-वे श्री रामजी के चरण कमलों को पखारने लगे, प्रेम से उनके शरीर में पुलकावली छा रही है। आकाश और नगर में होने वाली गान, नगाड़े और जय-जयकार की ध्वनि मानो चारों दिशाओं में उमड़ चली, जो चरण कमल कामदेव के शत्रु श्री शिवजी के हृदय रूपी सरोवर में सदा ही विराजते हैं, जिनका एक बार भी स्मरण करने से मन में निर्मलता आ जाती है और कलियुग के सारे पाप भाग जाते हैं,॥1।

* जे परसि मुनिबनिता लही गति रही जो पातकमई।
मकरंदु जिन्ह को संभु सिर सुचिता अवधि सुर बरनई॥
करि मधुप मन मुनि जोगिजन जे सेइ अभिमत गति लहैं।
ते पद पखारत भाग्यभाजनु जनकु जय जय सब कहैं॥2॥

भावार्थ:-जिनका स्पर्श पाकर गौतम मुनि की स्त्री अहल्या ने, जो पापमयी थी, परमगति पाई, जिन चरणकमलों का मकरन्द रस (गंगाजी) शिवजी के मस्तक पर विराजमान है, जिसको देवता पवित्रता की सीमा बताते हैं, मुनि और योगीजन अपने मन को भौंरा बनाकर जिन चरणकमलों का सेवन करके मनोवांछित गति प्राप्त करते हैं, उन्हीं चरणों को भाग्य के पात्र (बड़भागी) जनकजी धो रहे हैं, यह देखकर सब जय-जयकार कर रहे हैं॥2॥

*बर कुअँरि करतल जोरि साखोचारु दोउ कुलगुर करैं।
भयो पानिगहनु बिलोकि बिधि सुर मनुज मुनि आनँद भरैं॥
सुखमूल दूलहु देखि दंपति पुलक तन हुलस्यो हियो।
करि लोक बेद बिधानु कन्यादानु नृपभूषन कियो॥3॥

भावार्थ:-दोनों कुलों के गुरु वर और कन्या की हथेलियों को मिलाकर शाखोच्चार करने लगे। पाणिग्रहण हुआ देखकर ब्रह्मादि देवता, मनुष्य और मुनि आनंद में भर गए। सुख के मूल दूलह को देखकर राजा-रानी का शरीर पुलकित हो गया और हृदय आनंद से उमंग उठा। राजाओं के अलंकार स्वरूप महाराज जनकजी ने लोक और वेद की रीति को करके कन्यादान किया॥3॥

* हिमवंत जिमि गिरिजा महेसहि हरिहि श्री सागर दई।
तिमि जनक रामहि सिय समरपी बिस्व कल कीरति नई॥
क्यों करै बिनय बिदेहु कियो बिदेहु मूरति सावँरीं।
करि होमु बिधिवत गाँठि जोरी होन लागीं भावँरीं॥4॥

भावार्थ:-जैसे हिमवान ने शिवजी को पार्वतीजी और सागर ने भगवान विष्णु को लक्ष्मीजी दी थीं, वैसे ही जनकजी ने श्री रामचन्द्रजी को सीताजी समर्पित कीं, जिससे विश्व में सुंदर नवीन कीर्ति छा गई। विदेह

(जनकजी) कैसे विनती करें! उस साँवली मूर्ति ने तो उन्हें सचमुच विदेह (देह की सुध-बुध से रहित) ही कर दिया। विधिपूर्वक हवन करके गठजोड़ी की गई और भाँवरें होने लगीं॥4॥

दोहा :

* जय धुनि बंदी बेद धुनि मंगल गान निसान।
सुनि हरषहिं बरषहिं बिबुध सुरतरु सुमन सुजान॥324॥

भावार्थ:-जय ध्वनि, वन्दी ध्वनि, वेद ध्वनि, मंगलगान और नगाड़ों की ध्वनि सुनकर चतुर देवगण हर्षित हो रहे हैं और कल्पवृक्ष के फूलों को बरसा रहे हैं॥324॥

चौपाई :

* कुअँरु कुअँरि कल भावँरि देहीं। नयन लाभु सब सादर लेहीं॥
जाइ न बरनि मनोहर जोरी। जो उपमा कछु कहौं सो थोरी॥1॥

भावार्थ:-वर और कन्या सुंदर भाँवरें दे रहे हैं। सब लोग आदरपूर्वक (उन्हें देखकर) नेत्रों का परम लाभ ले रहे हैं। मनोहर जोड़ी का वर्णन नहीं हो सकता, जो कुछ उपमा कहूँ वही थोड़ी होगी॥1॥

* राम सीय सुंदर प्रतिछाहीं। जगमगात मनि खंभन माहीं
मनहुँ मदन रति धरि बहु रूपा। देखत राम बिआहु अनूपा॥2॥

भावार्थ:-श्री रामजी और श्री सीताजी की सुंदर परछाहीं मणियों के खम्भों में जगमगा रही हैं, मानो कामदेव और रति बहुत से रूप धारण करके श्री रामजी के अनुपम विवाह को देख रहे हैं॥2॥

* दरस लालसा सकुच न थोरी। प्रगटत दुरत बहोरि बहोरी॥
भए मगन सब देखनिहारे। जनक समान अपान बिसारे॥3॥

भावार्थ:- उन्हें (कामदेव और रति को) दर्शन की लालसा और संकोच दोनों ही कम नहीं हैं (अर्थात बहुत हैं), इसीलिए वे मानो बार-बार

प्रकट होते और छिपते हैं। सब देखने वाले आनंदमग्न हो गए और जनकजी की भाँति सभी अपनी सुध भूल गए॥3॥

* प्रमुदित मुनिन्ह भावँरीं फेरीं। नेगसहित सब रीति निवेरीं॥
राम सीय सिर सेंदुर देहीं। सोभा कहि न जाति बिधि केहीं॥4॥

भावार्थ:-मुनियों ने आनंदपूर्वक भाँवरें फिराईं और नेग सहित सब रीतियों को पूरा किया। श्री रामचन्द्रजी सीताजी के सिर में सिंदूर दे रहे हैं, यह शोभा किसी प्रकार भी कही नहीं जाती॥4॥

* अरुन पराग जलजु भरि नीकें। ससिहि भूष अहि लोभ अमी कें॥
बहुरि बसिष्ठ दीन्हि अनुसासन। बरु दुलहिनि बैठे एक आसन॥5॥

भावार्थ:-मानो कमल को लाल पराग से अच्छी तरह भरकर अमृत के लोभ से साँप चन्द्रमा को भूषित कर रहा है। (यहाँ श्री राम के हाथ को कमल की, सेंदूर को पराग की, श्री राम की श्याम भुजा को साँप की और सीताजी के मुख को चन्द्रमा की उपमा दी गई है।) फिर वशिष्ठजी ने आज्ञा दी, तब दूलह और दुलहिन एक आसन पर बैठे॥5॥

छन्द :

* बैठे बरासन रामु जानकि मुदित मन दसरथु भए।
तनु पुलक पुनि पुनि देखि अपनें सुकृत सुरतरु फल नए॥
भरि भुवन रहा उछाहु राम बिबाहु भा सबहीं कहा।
केहि भाँति बरनि सिरात रसना एक यहु मंगलु महा॥1॥

भावार्थ:-श्री रामजी और जानकीजी श्रेष्ठ आसन पर बैठे, उन्हें देखकर दशरथजी मन में बहुत आनंदित हुए। अपने सुकृत रूपी कल्प वृक्ष में नए फल (आए) देखकर उनका शरीर बार-बार पुलकित हो रहा है। चौदहों भुवनों में उत्साह भर गया, सबने कहा कि श्री रामचन्द्रजी का विवाह

हो गया। जीभ एक है और यह मंगल महान है, फिर भला, वह वर्णन करके किस प्रकार समाप्त किया जा सकता है॥1॥

* तब जनक पाइ बसिष्ठ आयसु ब्याह साज सँवारि कै।
मांडवी श्रुतकीरति उरमिला कुअँरि लईं हँकारि कै॥
कुसकेतु कन्या प्रथम जो गुन सील सुख सोभामई।
सब रीति प्रीति समेत करि सो ब्याहि नृप भरतहि दई॥2॥

भावार्थ:- तब वशिष्ठजी की आज्ञा पाकर जनकजी ने विवाह का सामान सजाकर माण्डवीजी, श्रुतकीर्तिजी और उर्मिलाजी इन तीनों राजकुमारियों को बुला लिया। कुश ध्वज की बड़ी कन्या माण्डवीजी को, जो गुण, शील, सुख और शोभा की रूप ही थीं, राजा जनक ने प्रेमपूर्वक सब रीतियाँ करके भरतजी को ब्याह दिया॥2॥

* जानकी लघु भगिनी सकल सुंदरि सिरोमनि जानि कै।
सो तनय दीन्ही ब्याहि लखनहि सकल बिधि सनमानि कै॥
जेहि नामु श्रुतकीरति सुलोचनि सुमुखि सब गुन आगरी।
सो दई रिपुसूदनहि भूपति रूप सील उजागरी॥3॥

भावार्थ:-जानकीजी की छोटी बहिन उर्मिलाजी को सब सुंदरियों में शिरोमणि जानकर उस कन्या को सब प्रकार से सम्मान करके, लक्ष्मणजी को ब्याह दिया और जिनका नाम श्रुतकीर्ति है और जो सुंदर नेत्रों वाली, सुंदर मुखवाली, सब गुणों की खान और रूप तथा शील में उजागर हैं, उनको राजा ने शत्रुघ्न को ब्याह दिया॥3॥

* अनुरूप बर दुलहिनि परस्पर लखि सकुच हियँ हरषहीं।
सब मुदित सुंदरता सराहहिं सुमन सुर गन बरषहीं॥
सुंदरीं सुंदर बरन्ह सह सब एक मंडप राजहीं।
जनु जीव उर चारिउ अवस्था बिभुन सहित बिराजहीं॥4॥

भावार्थ:-दूलह और दुलहिनें परस्पर अपने-अपने अनुरूप जोड़ी को देखकर सकुचाते हुए हृदय में हर्षित हो रही हैं। सब लोग प्रसन्न होकर उनकी सुंदरता की सराहना करते हैं और देवगण फूल बरसा रहे हैं। सब सुंदरी दुलहिनें सुंदर दूल्हों के साथ एक ही मंडप में ऐसी शोभा पा रही हैं, मानो जीव के हृदय में चारों अवस्थाएँ (जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति और तुरीय) अपने चारों स्वामियों (विश्व, तैजस, प्राज्ञ और ब्रह्म) सहित विराजमान हों॥4॥

दोहा :

* मुदित अवधपति सकल सुत बधुन्ह समेत निहारि।
जनु पाए महिपाल मनि क्रियन्ह सहित फल चारि॥325॥

भावार्थ:-सब पुत्रों को बहुओं सहित देखकर अवध नरेश दशरथजी ऐसे आनंदित हैं, मानो वे राजाओं के शिरोमणि क्रियाओं (यज्ञक्रिया, श्रद्धाक्रिया, योगक्रिया और ज्ञानक्रिया) सहित चारों फल (अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष) पा गए हों॥325॥

चौपाई :

* जसि रघुबीर ब्याह बिधि बरनी। सकल कुअँर ब्याहे तेहिं करनी॥
कहि न जा कछु दाइज भूरी। रहा कनक मनि मंडपु पूरी॥1॥

भावार्थ:-श्री रामचन्द्रजी के विवाह की जैसी विधि वर्णन की गई, उसी रीति से सब राजकुमार विवाहे गए। दहेज की अधिकता कुछ कही नहीं जाती, सारा मंडप सोने और मणियों से भर गया॥1॥

* कंबल बसन बिचित्र पटोरे। भाँति भाँति बहु मोल न थोरे॥
गज रथ तुरगदास अरु दासी। धेनु अलंकृत कामदुहा सी॥2॥

भावार्थ:-बहुत से कम्बल, वस्त्र और भाँति-भाँति के विचित्र रेशमी कपड़े, जो थोड़ी कीमत के न थे (अर्थात बहुमूल्य थे) तथा हाथी, रथ, घोड़े, दास-दासियाँ और गहनों से सजी हुई कामधेनु सरीखी गायें-॥2॥

* बस्तु अनेक करिअ किमि लेखा। कहि न जाइ जानहिं जिन्ह देखा॥
लोकपाल अवलोकि सिहाने। लीन्ह अवधपति सबु सुखु माने॥3॥

भावार्थ:-(आदि) अनेकों वस्तुएँ हैं, जिनकी गिनती कैसे की जाए। उनका वर्णन नहीं किया जा सकता, जिन्होंने देखा है, वही जानते हैं। उन्हें देखकर लोकपाल भी सिहा गए। अवधराज दशरथजी ने सुख मानकर प्रसन्नचित्त से सब कुछ ग्रहण किया॥3॥

* दीन्ह जाचकन्हि जो जेहि भावा। उबरा सो जनवासेहिं आवा॥
तब कर जोरि जनकु मृदु बानी। बोले सब बरात सनमानी॥4॥

भावार्थ:-उन्होंने वह दहेज का सामान याचकों को, जो जिसे अच्छा लगा, दे दिया। जो बच रहा, वह जनवासे में चला आया। तब जनकजी हाथ जोड़कर सारी बारात का सम्मान करते हुए कोमल वाणी से बोले॥4॥

छन्द :

* सनमानि सकल बरात आदर दान बिनय बड़ाइ कै।
प्रमुदित महामुनि बृंद बंदे पूजि प्रेम लड़ाइ कै॥
सिरु नाइ देव मनाइ सब सन कहत कर संपुट किएँ।
सुर साधु चाहत भाउ सिंधु कि तोष जल अंजलि दिएँ॥1॥

भावार्थ:-आदर, दान, विनय और बड़ाई के द्वारा सारी बारात का सम्मान कर राजा जनक ने महान आनंद के साथ प्रेमपूर्वक लड़ाकर (लाड़ करके) मुनियों के समूह की पूजा एवं वंदना की। सिर नवाकर,

देवताओं को मनाकर, राजा हाथ जोड़कर सबसे कहने लगे कि देवता और साधु तो भाव ही चाहते हैं, (वे प्रेम से ही प्रसन्न हो जाते हैं, उन पूर्णकाम महानुभावों को कोई कुछ देकर कैसे संतुष्ट कर सकता है), क्या एक अंजलि जल देने से कहीं समुद्र संतुष्ट हो सकता है॥1॥

* कर जोरि जनकु बहोरि बंधु समेत कोसलराय सों।
बोले मनोहर बयन सानि सनेह सील सुभाय सों॥
संबंध राजन रावरें हम बड़े अब सब बिधि भए।
एहि राज साज समेत सेवक जानिबे बिनु गथ लए॥2॥

भावार्थ:-फिर जनकजी भाई सहित हाथ जोड़कर कोसलाधीश दशरथजी से स्नेह, शील और सुंदर प्रेम में सानकर मनोहर वचन बोले- हे राजन्! आपके साथ संबंध हो जाने से अब हम सब प्रकार से बड़े हो गए। इस राज-पाट सहित हम दोनों को आप बिना दाम के लिए हुए सेवक ही समझिएगा॥2॥

* ए दारिका परिचारिका करि पालिबीं करुना नई।
अपराधु छमिबो बोलि पठए बहुत हौं ढीट्यो कई॥
पुनि भानुकुलभूषन सकल सनमान निधि समधी किए।
कहि जाति नहिं बिनती परस्पर प्रेम परिपूरन हिए॥3॥

भावार्थ:-इन लड़कियों को टहलनी मानकर, नई-नई दया करके पालन कीजिएगा। मैंने बड़ी ढिठाई की कि आपको यहाँ बुला भेजा, अपराध क्षमा कीजिएगा। फिर सूर्यकुल के भूषण दशरथजी ने समधी जनकजी को सम्पूर्ण सम्मान का निधि कर दिया (इतना सम्मान किया कि वे सम्मान के भंडार ही हो गए)। उनकी परस्पर की विनय कही नहीं जाती, दोनों के हृदय प्रेम से परिपूर्ण हैं॥3॥

* बृंदारका गन सुमन बरिसहिं राउ जनवासेहि चले।

दुंदुभी जय धुनि बेद धुनि नभ नगर कौतूहल भले॥
तब सखीं मंगल गान करत मुनीस आयसु पाइ कै।
दूलह दुलहिनिन्ह सहित सुंदरि चलीं कोहबर ल्याइ कै॥4॥

भावार्थ:-देवतागण फूल बरसा रहे हैं, राजा जनवासे को चले। नगाड़े की ध्वनि, जयध्वनि और वेद की ध्वनि हो रही है, आकाश और नगर दोनों में खूब कौतूहल हो रहा है (आनंद छा रहा है), तब मुनीश्वर की आज्ञा पाकर सुंदरी सखियाँ मंगलगान करती हुई दुलहिनों सहित दूल्हों को लिवाकर कोहबर को चलीं॥4॥

दोहा :

* पुनि पुनि रामहि चितव सिय सकुचति मनु सकुचै न।
हरत मनोहर मीन छबि प्रेम पिआसे नैन॥326॥

भावार्थ:-सीताजी बार-बार रामजी को देखती हैं और सकुचा जाती हैं, पर उनका मन नहीं सकुचाता। प्रेम के प्यासे उनके नेत्र सुंदर मछलियों की छबि को हर रहे हैं॥326॥

मासपारायण, ग्यारहवाँ विश्राम

चौपाई :

* स्याम सरीरु सुभायँ सुहावन। सोभा कोटि मनोज लजावन॥
जावक जुत पद कमल सुहाए। मुनि मन मधुप रहत जिन्ह छाए॥1॥

भावार्थ:-श्री रामचन्द्रजी का साँवला शरीर स्वभाव से ही सुंदर है। उसकी शोभा करोड़ों कामदेवों को लजाने वाली है। महावर से युक्त चरण कमल बड़े सुहावने लगते हैं, जिन पर मुनियों के मन रूपी भौंरे सदा छाए रहते हैं॥1॥

* पीत पुनीत मनोहर धोती। हरति बाल रबि दामिनि जोती॥
कल किंकिनि कटि सूत्र मनोहर। बाहु बिसाल बिभूषन सुंदर॥2॥

भावार्थ:-पवित्र और मनोहर पीली धोती प्रातःकाल के सूर्य और बिजली की ज्योति को हरे लेती है। कमर में सुंदर किंकिणी और कटिसूत्र हैं। विशाल भुजाओं में सुंदर आभूषण सुशोभित हैं॥2॥

* पीत जनेउ महाछबि देई। कर मुद्रिका चोरि चितु लेई॥

सोहत ब्याह साज सब साजे। उर आयत उरभूषन राजे॥3॥

भावार्थ:-पीला जनेऊ महान शोभा दे रहा है। हाथ की अँगूठी चित्त को चुरा लेती है। ब्याह के सब साज सजे हुए वे शोभा पा रहे हैं। चौड़ी छाती पर हृदय पर पहनने के सुंदर आभूषण सुशोभित हैं॥3॥

* पिअर उपरना काखासोती। दुहुँ आँचरन्हि लगे मनि मोती॥

नयन कमल कल कुंडल काना। बदनु सकल सौंदर्ज निदाना॥4॥

भावार्थ:-पीला दुपट्टा काँखासोती (जनेऊ की तरह) शोभित है, जिसके दोनों छोरों पर मणि और मोती लगे हैं। कमल के समान सुंदर नेत्र हैं, कानों में सुंदर कुंडल हैं और मुख तो सारी सुंदरता का खजाना ही है॥4॥

* सुंदर भृकुटि मनोहर नासा। भाल तिलकु रुचिरता निवासा॥

सोहत मौरु मनोहर माथे। मंगलमय मुकुता मनि गाथे॥5॥

भावार्थ:-सुंदर भौंहें और मनोहर नासिका है। ललाट पर तिलक तो सुंदरता का घर ही है, जिसमें मंगलमय मोती और मणि गुँथे हुए हैं, ऐसा मनोहर मौर माथे पर सोह रहा है॥5॥

छन्द :

* गाथे महामनि मौर मंजुल अंग सब चित चोरहीं।
पुर नारि सुर सुंदरीं बरहि बिलोकि सब तिन तोरहीं॥
मनि बसन भूषन वारि आरति करहिं मंगल गावहीं।
सुर सुमन बरिसहिं सूत मागध बंदि सुजसु सुनावहीं॥1॥

भावार्थ:-सुंदर मौर में बहुमूल्य मणियाँ गुँथी हुई हैं, सभी अंग चित्त को चुराए लेते हैं। सब नगर की स्त्रियाँ और देवसुंदरियाँ दूलह को देखकर तिनका तोड़ रही हैं (उनकी बलैयाँ ले रही हैं) और मणि, वस्त्र तथा आभूषण निछावर करके आरती उतार रही और मंगलगान कर रही हैं। देवता फूल बरसा रहे हैं और सूत, मागध तथा भाट सुयश सुना रहे हैं॥1॥

*कोहबरहिं आने कुअँर कुअँरि सुआसिनिन्ह सुख पाइ कै।
अति प्रीति लौकिक रीति लागीं करन मंगल गाइ कै॥
लहकौरि गौरि सिखाव रामहि सीय सन सारद कहैं।
रनिवासु हास बिलास रस बस जन्म को फलु सब लहैं॥2॥

भावार्थ:-सुहागिनी स्त्रियाँ सुख पाकर कुँअर और कुमारियों को कोहबर (कुलदेवता के स्थान) में लाईं और अत्यन्त प्रेम से मंगल गीत गा-गाकर लौकिक रीति करने लगीं। पार्वतीजी श्री रामचन्द्रजी को लहकौर (वर-वधू का परस्पर ग्रास देना) सिखाती हैं और सरस्वतीजी सीताजी को सिखाती हैं। रनिवास हास-विलास के आनंद में मग्न है, (श्री रामजी और सीताजी को देख-देखकर) सभी जन्म का परम फल प्राप्त कर रही हैं॥2॥

* निज पानि मनि महुँ देखिअति मूरति सुरूपनिधान की।
चालति न भुजबल्ली बिलोकनि बिरह भय बस जानकी॥
कौतुक बिनोद प्रमोदु प्रेमु न जाइ कहि जानहिं अलीं।
बर कुअँरि सुंदर सकल सखीं लवाइ जनवासेहि चलीं॥3॥

भावार्थ:-'अपने हाथ की मणियों में सुंदर रूप के भण्डार श्री रामचन्द्रजी की परछाहीं दिख रही है। यह देखकर जानकीजी दर्शन में वियोग होने के भय से बाहु रूपी लता को और दृष्टि को हिलाती-डुलाती नहीं हैं। उस समय के हँसी-खेल और विनोद का आनंद और प्रेम कहा नहीं जा सकता,

उसे सखियाँ ही जानती हैं। तदनन्तर वर-कन्याओं को सब सुंदर सखियाँ जनवासे को लिवा चलीं॥3॥

* तेहि समय सुनिअ असीस जहँ तहँ नगर नभ आनँदु महा।
चिरु जिअहुँ जोरीं चारु चार्‌यो मुदित मन सबहीं कहा॥
जोगींद्र सिद्ध मुनीस देव बिलोकि प्रभु दुंदुभि हनी।
चले हरषि बरषि प्रसून निज निज लोक जय जय जय भनी॥4॥

भावार्थ:-उस समय नगर और आकाश में जहाँ सुनिए, वहीं आशीर्वाद की ध्वनि सुनाई दे रही है और महान आनंद छाया है। सभी ने प्रसन्न मन से कहा कि सुंदर चारों जोड़ियाँ चिरंजीवी हों। योगीराज, सिद्ध, मुनीश्वर और देवताओं ने प्रभु श्री रामचन्द्रजी को देखकर दुन्दुभी बजाई और हर्षित होकर फूलों की वर्षा करते हुए तथा 'जय हो, जय हो, जय हो' कहते हुए वे अपने-अपने लोक को चले॥4॥

दोहा :

* सहित बधूटिन्ह कुअँर सब तब आए पितु पास।

सोभा मंगल मोद भरि उमगेउ जनु जनवास॥327॥

भावार्थ:-तब सब (चारों) कुमार बहुओं सहित पिताजी के पास आए। ऐसा मालूम होता था मानो शोभा, मंगल और आनंद से भरकर जनवासा उमड़ पड़ा हो॥327॥

चौपाई :

* पुनि जेवनार भई बहु भाँती। पठए जनक बोलाइ बराती॥

परत पाँवड़े बसन अनूपा। सुतन्ह समेत गवन कियो भूपा॥1॥

भावार्थ:-फिर बहुत प्रकार की रसोई बनी। जनकजी ने बारातियों को बुला भेजा। राजा दशरथजी ने पुत्रों सहित गमन किया। अनुपम वस्त्रों के पाँवड़े पड़ते जाते हैं॥1॥

* सादर सब के पाय पखारे। जथाजोगु पीढ़न्ह बैठारे॥
धोए जनक अवधपति चरना। सीलु सनेहु जाइ नहिं बरना॥2॥

भावार्थ:-आदर के साथ सबके चरण धोए और सबको यथायोग्य पीढ़ों पर बैठाया। तब जनकजी ने अवधपति दशरथजी के चरण धोए। उनका शील और स्नेह वर्णन नहीं किया जा सकता॥2॥

* बहुरि राम पद पंकज धोए। जे हर हृदय कमल महुँ गोए॥
तीनिउ भाइ राम सम जानी। धोए चरन जनक निज पानी॥3॥

भावार्थ:-फिर श्री रामचन्द्रजी के चरणकमलों को धोया, जो श्री शिवजी के हृदय कमल में छिपे रहते हैं। तीनों भाइयों को श्री रामचन्द्रजी के समान जानकर जनकजी ने उनके भी चरण अपने हाथों से धोए॥3॥

* आसन उचित सबहि नृप दीन्हे। बोलि सूपकारी सब लीन्हे॥
सादर लगे परन पनवारे। कनक कील मनि पान सँवारे॥4॥

भावार्थ:-राजा जनकजी ने सभी को उचित आसन दिए और सब परसने वालों को बुला लिया। आदर के साथ पत्तलें पड़ने लगीं, जो मणियों के पत्तों से सोने की कील लगाकर बनाई गई थीं॥4॥

दोहा :

* सूपोदन सुरभी सरपि सुंदर स्वादु पुनीत।
छन महुँ सब कें परुसि गे चतुर सुआर बिनीत॥328॥

भावार्थ:-चतुर और विनीत रसोइए सुंदर, स्वादिष्ट और पवित्र दाल-भात और गाय का (सुगंधित) घी क्षण भर में सबके सामने परस गए॥328॥

चौपाई :

* पंच कवल करि जेवन लागे। गारि गान सुनि अति अनुरागे।

भाँति अनेक परे पकवाने। सुधा सरिस नहिं जाहिं बखाने॥1॥

भावार्थ:-सब लोग पंचकौर करके (अर्थात 'प्राणाय स्वाहा, अपानाय स्वाहा, व्यानाय स्वाहा, उदानाय स्वाहा और समानाय स्वाहा' इन मंत्रों का उच्चारण करते हुए पहले पाँच ग्रास लेकर) भोजन करने लगे। गाली का गाना सुनकर वे अत्यन्त प्रेममग्न हो गए। अनेकों तरह के अमृत के समान (स्वादिष्ट) पकवान परसे गए, जिनका बखान नहीं हो सकता॥1॥

* परुसन लगे सुआर सुजाना। बिंजन बिबिध नाम को जाना॥
चारि भाँति भोजन बिधि गाई। एक एक बिधि बरनि न जाई॥2॥

भावार्थ:-चतुर रसोइए नाना प्रकार के व्यंजन परसने लगे, उनका नाम कौन जानता है। चार प्रकार के (चर्व्य, चोष्य, लेह्य, पेय अर्थात चबाकर, चूसकर, चाटकर और पीना-खाने योग्य) भोजन की विधि कही गई है, उनमें से एक-एक विधि के इतने पदार्थ बने थे कि जिनका वर्ण नहीं किया जा सकता॥2॥

* छरस रुचिर बिंजन बहु जाती। एक एक रस अगनित भाँती॥
जेवँत देहिं मधुर धुनि गारी। लै लै नाम पुरुष अरु नारी॥3॥

भावार्थ:-छहों रसों के बहुत तरह के सुंदर (स्वादिष्ट) व्यंजन हैं। एक-एक रस के अनगिनत प्रकार के बने हैं। भोजन के समय पुरुष और स्त्रियों के नाम ले-लेकर स्त्रियाँ मधुर ध्वनि से गाली दे रही हैं (गाली गा रही हैं)॥3॥

* समय सुहावनि गारि बिराजा। हँसत राउ सुनि सहित समाजा॥
एहि बिधि सबहीं भोजनु कीन्हा। आदर सहित आचमनु दीन्हा॥4॥

भावार्थ:-समय की सुहावनी गाली शोभित हो रही है। उसे सुनकर समाज सहित राजा दशरथजी हँस रहे हैं। इस रीति से सभी ने भोजन

किया और तब सबको आदर सहित आचमन (हाथ-मुँह धोने के लिए जल) दिया गया॥4॥

दोहा :

* देइ पान पूजे जनक दसरथु सहित समाज।
जनवासेहि गवने मुदित सकल भूप सिरताज॥329॥

भावार्थ:-फिर पान देकर जनकजी ने समाज सहित दशरथजी का पूजन किया। सब राजाओं के सिरमौर (चक्रवर्ती) श्री दशरथजी प्रसन्न होकर जनवासे को चले॥329॥

चौपाई :

* नित नूतन मंगल पुर माहीं। निमिष सरिस दिन जामिनि जाहीं॥
बड़े भोर भूपतिमनि जागे। जाचक गुन गन गावन लागे॥1॥

भावार्थ:-जनकपुर में नित्य नए मंगल हो रहे हैं। दिन और रात पल के समान बीत जाते हैं। बड़े सबेरे राजाओं के मुकुटमणि दशरथजी जागे। याचक उनके गुण समूह का गान करने लगे॥1॥

* देखि कुअँर बर बधुन्ह समेता। किमि कहि जात मोदु मन जेता॥
प्रातक्रिया करि गे गुरु पाहीं। महाप्रमोदु प्रेमु मन माहीं॥2॥

भावार्थ:-चारों कुमारों को सुंदर वधुओं सहित देखकर उनके मन में जितना आनंद है, वह किस प्रकार कहा जा सकता है? वे प्रातः क्रिया करके गुरु वशिष्ठजी के पास गए। उनके मन में महान आनंद और प्रेम भरा है॥2॥

* करि प्रनामु पूजा कर जोरी। बोले गिरा अमिअँ जनु बोरी॥
तुम्हरी कृपाँ सुनहु मुनिराजा। भयउँ आजु मैं पूरन काजा॥3॥

भावार्थ:-राजा प्रणाम और पूजन करके, फिर हाथ जोड़कर मानो अमृत में डुबोई हुई वाणी बोले- हे मुनिराज! सुनिए, आपकी कृपा से आज मैं पूर्णकाम हो गया॥3॥

* अब सब बिप्र बोलाइ गोसाईं। देहु धेनु सब भाँति बनाईं॥
सुनि गुर करि महिपाल बड़ाई। पुनि पठए मुनिबृंद बोलाई॥4॥

भावार्थ:-हे स्वामिन्! अब सब ब्राह्मणों को बुलाकर उनको सब तरह (गहनों-कपड़ों) से सजी हुई गायें दीजिए। यह सुनकर गुरुजी ने राजा की बड़ाई करके फिर मुनिगणों को बुलवा भेजा॥4॥

दोहा :

* बामदेउ अरु देवरिषि बालमीकि जाबालि।
आए मुनिबर निकर तब कौसिकादि तपसालि॥330॥

भावार्थ:-तब वामदेव, देवर्षि नारद, वाल्मीकि, जाबालि और विश्वामित्र आदि तपस्वी श्रेष्ठ मुनियों के समूह के समूह आए॥330॥

चौपाई :

* दंड प्रनाम सबहि नृप कीन्हे। पूजि सप्रेम बरासन दीन्हे॥
चारि लच्छ बर धेनु मगाईं। काम सुरभि सम सील सुहाईं॥1॥

भावार्थ:-राजा ने सबको दण्डवत् प्रणाम किया और प्रेम सहित पूजन करके उन्हें उत्तम आसन दिए। चार लाख उत्तम गायें मँगवाईं, जो कामधेनु के समान अच्छे स्वभाव वाली और सुहावनी थीं॥1॥

* सब बिधि सकल अलंकृत कीन्हीं। मुदित महिप महिदेवन्ह दीन्हीं॥
करत बिनय बहु बिधि नरनाहू। लहेउँ आजु जग जीवन लाहू॥2॥

भावार्थ:-उन सबको सब प्रकार से (गहनों-कपड़ों से) सजाकर राजा ने प्रसन्न होकर भूदेव ब्राह्मणों को दिया। राजा बहुत तरह से विनती कर रहे हैं कि जगत में मैंने आज ही जीने का लाभ पाया॥2॥

* पाइ असीस महीसु अनंदा। लिए बोलि पुनि जाचक बृंदा॥
कनक बसन मनि हय गय स्यंदन। दिए बूझि रुचि रबिकुलनंदन॥3॥

भावार्थ:-(ब्राह्मणों से) आशीर्वाद पाकर राजा आनंदित हुए। फिर याचकों के समूहों को बुलवा लिया और सबको उनकी रुचि पूछकर सोना, वस्त्र, मणि, घोड़ा, हाथी और रथ (जिसने जो चाहा सो) सूर्यकुल को आनंदित करने वाले दशरथजी ने दिए॥3॥

* चले पढ़त गावत गुन गाथा। जय जय जय दिनकर कुल नाथा॥
एहि बिधि राम बिआह उछाहू। सकइ न बरनि सहस मुख जाहू॥4॥

भावार्थ:-वे सब गुणानुवाद गाते और 'सूर्यकुल के स्वामी की जय हो, जय हो, जय हो' कहते हुए चले। इस प्रकार श्री रामचन्द्रजी के विवाह का उत्सव हुआ, जिन्हें सहस्र मुख हैं, वे शेषजी भी उसका वर्णन नहीं कर सकते॥4॥

दोहा :

* बार बार कौसिक चरन सीसु नाइ कह राउ।
यह सबु सुखु मुनिराज तव कृपा कटाच्छ पसाउ॥331॥

भावार्थ:-बार-बार विश्वामित्रजी के चरणों में सिर नवाकर राजा कहते हैं- हे मुनिराज! यह सब सुख आपके ही कृपाकटाक्ष का प्रसाद है॥331॥

चौपाई :

* जनक सनेहु सीलु करतूती। नृपु सब भाँति सराह बिभूती॥
दिन उठि बिदा अवधपति मागा। राखहिं जनकु सहित अनुरागा॥1॥

भावार्थ:-राजा दशरथजी जनकजी के स्नेह, शील, करनी और ऐश्वर्य की सब प्रकार से सराहना करते हैं। प्रतिदिन (सबेरे) उठकर अयोध्या नरेश विदा माँगते हैं। पर जनकजी उन्हें प्रेम से रख लेते हैं॥1॥

* नित नूतन आदरु अधिकाई। दिन प्रति सहस भाँति पहुनाई॥
नित नव नगर अनंद उछाहू। दसरथ गवनु सोहाइ न काहू॥2॥

भावार्थ:-आदर नित्य नया बढ़ता जाता है। प्रतिदिन हजारों प्रकार से मेहमानी होती है। नगर में नित्य नया आनंद और उत्साह रहता है, दशरथजी का जाना किसी को नहीं सुहाता॥2॥

* बहुत दिवस बीते एहि भाँती। जनु सनेह रजु बँधे बराती॥
कौसिक सतानंद तब जाई। कहा बिदेह नृपहि समुझाई॥3॥

भावार्थ:-इस प्रकार बहुत दिन बीत गए, मानो बाराती स्नेह की रस्सी से बँध गए हैं। तब विश्वामित्रजी और शतानंदजी ने जाकर राजा जनक को समझाकर कहा-॥3॥

* अब दसरथ कहँ आयसु देहू। जद्यपि छाड़ि न सकहु सनेहू॥
भलेहिं नाथ कहि सचिव बोलाए। कहि जय जीव सीस तिन्ह नाए॥4॥

भावार्थ:-यद्यपि आप स्नेह (वश उन्हें) नहीं छोड़ सकते, तो भी अब दशरथजी को आज्ञा दीजिए। 'हे नाथ! बहुत अच्छा' कहकर जनकजी ने मंत्रियों को बुलवाया। वे आए और 'जय जीव' कहकर उन्होंने मस्तक नवाया॥4॥

दोहा :

* अवधनाथु चाहत चलन भीतर करहु जनाउ।
भए प्रेमबस सचिव सुनि बिप्र सभासद राउ॥332॥

भावार्थ:-(जनकजी ने कहा-) अयोध्यानाथ चलना चाहते हैं, भीतर (रनिवास में) खबर कर दो। यह सुनकर मंत्री, ब्राह्मण, सभासद और राजा जनक भी प्रेम के वश हो गए॥332॥

चौपाई :

* पुरबासी सुनि चलिहि बराता। बूझत बिकल परस्पर बाता॥
सत्य गवनु सुनि सब बिलखाने। मनहुँ साँझ सरसिज सकुचाने॥1॥

भावार्थ:-जनकपुरवासियों ने सुना कि बारात जाएगी, तब वे व्याकुल होकर एक-दूसरे से बात पूछने लगे। जाना सत्य है, यह सुनकर सब ऐसे उदास हो गए मानो संध्या के समय कमल सकुचा गए हों॥1॥

* जहँ जहँ आवत बसे बराती। तहँ तहँ सिद्ध चला बहु भाँती॥
बिबिध भाँति मेवा पकवाना। भोजन साजु न जाइ बखाना॥2॥

भावार्थ:-आते समय जहाँ-जहाँ बाराती ठहरे थे, वहाँ-वहाँ बहुत प्रकार का सीधा (रसोई का सामान) भेजा गया। अनेकों प्रकार के मेवे, पकवान और भोजन की सामग्री जो बखानी नहीं जा सकती-॥2॥

* भरि भरि बसहँ अपार कहारा। पठईं जनक अनेक सुसारा॥
तुरग लाख रथ सहस पचीसा। सकल सँवारे नख अरु सीसा॥3॥

भावार्थ:-अनगिनत बैलों और कहारों पर भर-भरकर (लाद-लादकर) भेजी गई। साथ ही जनकजी ने अनेकों सुंदर शय्याएँ (पलंग) भेजीं। एक लाख घोड़े और पचीस हजार रथ सब नख से शिखा तक (ऊपर से नीचे तक) सजाए हुए,॥3॥

दोहा :

* मत्त सहस दस सिंधुर साजे। जिन्हहि देखि दिसिकुंजर लाजे॥
कनक बसन मनि भरि भरि जाना। महिषीं धेनु बस्तु बिधि नाना॥4॥

भावार्थ:-दस हजार सजे हुए मतवाले हाथी, जिन्हें देखकर दिशाओं के हाथी भी लजा जाते हैं, गाड़ियों में भर-भरकर सोना, वस्त्र और रत्न (जवाहरात) और भैंस, गाय तथा और भी नाना प्रकार की चीजें दीं॥4॥

दोहा :

* दाइज अमित न सकिअ कहि दीन्ह बिदेहँ बहोरि।
जो अवलोकत लोकपति लोक संपदा थोरि॥333॥

भावार्थ:-(इस प्रकार) जनकजी ने फिर से अपरिमित दहेज दिया, जो कहा नहीं जा सकता और जिसे देखकर लोकपालों के लोकों की सम्पदा भी थोड़ी जान पड़ती थी॥333॥

चौपाई :

* सबु समाजु एहि भाँति बनाई। जनक अवधपुर दीन्ह पठाई॥
चलिहि बरात सुनत सब रानीं। बिकल मीनगन जनु लघु पानीं॥1॥

भावार्थ:-इस प्रकार सब सामान सजाकर राजा जनक ने अयोध्यापुरी को भेज दिया। बारात चलेगी, यह सुनते ही सब रानियाँ ऐसी विकल हो गईं, मानो थोड़े जल में मछलियाँ छटपटा रही हों॥1॥

* पुनि पुनि सीय गोद करि लेहीं। देइ असीस सिखावनु देहीं॥
होएहु संतत पियहि पिआरी। चिरु अहिबात असीस हमारी॥2॥

भावार्थ:-वे बार-बार सीताजी को गोद कर लेती हैं और आशीर्वाद देकर सिखावन देती हैं- तुम सदा अपने पति की प्यारी होओ, तुम्हारा सोहाग अचल हो, हमारी यही आशीष है॥2॥

* सासु ससुर गुर सेवा करेहू। पति रुख लखि आयसु अनुसरेहू॥
अति सनेह बस सखीं सयानी। नारि धरम सिखवहिं मृदु बानी॥3॥

भावार्थ:-सास, ससुर और गुरु की सेवा करना। पति का रुख देखकर उनकी आज्ञा का पालन करना। सयानी सखियाँ अत्यन्त स्नेह के वश कोमल वाणी से स्त्रियों के धर्म सिखलाती हैं॥3॥

* सादर सकल कुअँरि समुझाईं। रानिन्ह बार बार उर लाईं॥

बहुरि बहुरि भेटहिं महतारीं। कहहिं बिरंचि रचीं कत नारीं॥4॥

भावार्थ:-आदर के साथ सब पुत्रियों को (स्त्रियों के धर्म) समझाकर रानियों ने बार-बार उन्हें हृदय से लगाया। माताएँ फिर-फिर भेंटती और कहती हैं कि ब्रह्मा ने स्त्री जाति को क्यों रचा॥4॥

दोहा :

* तेहि अवसर भाइन्ह सहित रामु भानु कुल केतु।

चले जनक मंदिर मुदित बिदा करावन हेतु॥334॥

भावार्थ:-उसी समय सूर्यवंश के पताका स्वरूप श्री रामचन्द्रजी भाइयों सहित प्रसन्न होकर विदा कराने के लिए जनकजी के महल को चले॥334॥

चौपाई :

* चारिउ भाइ सुभायँ सुहाए। नगर नारि नर देखन धाए॥

कोउ कह चलन चहत हहिं आजू। कीन्ह बिदेह बिदा कर साजू॥1॥

भावार्थ:-स्वभाव से ही सुंदर चारों भाइयों को देखने के लिए नगर के स्त्री-पुरुष दौड़े। कोई कहता है- आज ये जाना चाहते हैं। विदेह ने विदाई का सब सामान तैयार कर लिया है॥1॥

* लेहु नयन भरि रूप निहारी। प्रिय पाहुने भूप सुत चारी॥

को जानै केहिं सुकृत सयानी। नयन अतिथि कीन्हे बिधि आनी॥2॥

भावार्थ:-राजा के चारों पुत्र, इन प्यारे मेहमानों के (मनोहर) रूप को नेत्र भरकर देख लो। हे सयानी! कौन जाने, किस पुण्य से विधाता ने इन्हें यहाँ लाकर हमारे नेत्रों का अतिथि किया है॥2॥

* मरनसीलु जिमि पाव पिऊषा। सुरतरु लहै जनम कर भूखा॥
पाव नार की हरिपदु जैसें। इन्ह कर दरसनु हम कहँ तैसें॥3॥

भावार्थ:-मरने वाला जिस तरह अमृत पा जाए, जन्म का भूखा कल्पवृक्ष पा जाए और नरक में रहने वाला (या नरक के योग्य) जीव जैसे भगवान के परमपद को प्राप्त हो जाए, हमारे लिए इनके दर्शन वैसे ही हैं॥3॥

* निरखि राम सोभा उर धरहू। निज मन फनि मूरति मनि करहू॥
एहि बिधि सबहि नयन फलु देता। गए कुअँर सब राज निकेता॥4॥

भावार्थ:-श्री रामचन्द्रजी की शोभा को निरखकर हृदय में धर लो। अपने मन को साँप और इनकी मूर्ति को मणि बना लो। इस प्रकार सबको नेत्रों का फल देते हुए सब राजकुमार राजमहल में गए॥4॥

दोहा :

* रूप सिंधु सब बंधु लखि हरषि उठा रनिवासु।
करहिं निछावरि आरती महा मुदित मन सासु॥335॥

भावार्थ:-रूप के समुद्र सब भाइयों को देखकर सारा रनिवास हर्षित हो उठा। सासुएँ महान प्रसन्न मन से निछावर और आरती करती हैं॥335॥

चौपाई :

* देखि राम छबि अति अनुरागीं। प्रेमबिबस पुनि पुनि पद लागीं॥
रही न लाज प्रीति उर छाई। सहज सनेहु बरनि किमि जाई॥1॥

भावार्थ:-श्री रामचन्द्रजी की छबि देखकर वे प्रेम में अत्यन्त मग्न हो गईं और प्रेम के विशेष वश होकर बार-बार चरणों लगीं। हृदय में प्रीति छा

गई, इससे लज्जा नहीं रह गई। उनके स्वाभाविक स्नेह का वर्णन किस तरह किया जा सकता है॥1॥

* भाइन्ह सहित उबटि अन्हवाए। छरस असन अति हेतु जेवाँए॥
बोले रामु सुअवसरु जानी। सील सनेह सकुचमय बानी॥2॥

भावार्थ:-उन्होंने भाइयों सहित श्री रामजी को उबटन करके स्नान कराया और बड़े प्रेम से षट्रस भोजन कराया। सुअवसर जानकर श्री रामचन्द्रजी शील, स्नेह और संकोचभरी वाणी बोले-॥2॥

* राउ अवधपुर चहत सिधाए। बिदा होन हम इहाँ पठाए॥
मातु मुदित मन आयसु देहू। बालक जानि करब नित नेहू॥3॥

भावार्थ:-महाराज अयोध्यापुरी को चलाना चाहते हैं, उन्होंने हमें विदा होने के लिए यहाँ भेजा है। हे माता! प्रसन्न मन से आज्ञा दीजिए और हमें अपने बालक जानकर सदा स्नेह बनाए रखिएगा॥3॥

* सुनत बचन बिलखेउ रनिवासू। बोलि न सकहिं प्रेमबस सासू॥
हृदयँ लगाई कुअँरि सब लीन्ही। पतिन्ह सौंपि बिनती अति कीन्ही॥4॥

भावार्थ:-इन वचनों को सुनते ही रनिवास उदास हो गया। सासुएँ प्रेमवश बोल नहीं सकतीं। उन्होंने सब कुमारियों को हृदय से लगा लिया और उनके पतियों को सौंपकर बहुत विनती की॥4॥

छन्द :

* करि बिनय सिय रामहि समरपी जोरि कर पुनि पुनि कहै।
बलि जाउँ तात सुजान तुम्ह कहुँ बिदित गति सब की अहै॥
परिवार पुरजन मोहि राजहि प्रानप्रिय सिय जानिबी।
तुलसीस सीलु सनेहु लखि निज किंकरी करि मानिबी॥

भावार्थ:-विनती करके उन्होंने सीताजी को श्री रामचन्द्रजी को समर्पित किया और हाथ जोड़कर बार-बार कहा- हे तात! हे सुजान! मैं बलि

जाती हूँ, तुमको सबकी गति (हाल) मालूम है। परिवार को, पुरवासियों को, मुझको और राजा को सीता प्राणों के समान प्रिय है, ऐसा जानिएगा। हे तुलसी के स्वामी! इसके शील और स्नेह को देखकर इसे अपनी दासी करके मानिएगा।

सोरठा :

* तुम्ह परिपूरन काम जान सिरोमनि भावप्रिय।
जन गुन गाहक राम दोष दलन करुनायतन॥336॥

भावार्थ:-तुम पूर्ण काम हो, सुजान शिरोमणि हो और भावप्रिय हो (तुम्हें प्रेम प्यारा है)। हे राम! तुम भक्तों के गुणों को ग्रहण करने वाले, दोषों को नाश करने वाले और दया के धाम हो॥336॥

चौपाई :

* अस कहि रही चरन गहि रानी। प्रेम पंक जनु गिरा समानी॥
सुनि सनेहसानी बर बानी। बहुबिधि राम सासु सनमानी॥1॥

भावार्थ:-ऐसा कहकर रानी चरणों को पकड़कर (चुप) रह गईं। मानो उनकी वाणी प्रेम रूपी दलदल में समा गई हो। स्नेह से सनी हुई श्रेष्ठ वाणी सुनकर श्री रामचन्द्रजी ने सास का बहुत प्रकार से सम्मान किया॥1॥

* राम बिदा मागत कर जोरी। कीन्ह प्रनामु बहोरि बहोरी॥
पाइ असीस बहुरि सिरु नाई। भाइन्ह सहित चले रघुराई॥2॥

भावार्थ:-तब श्री रामचन्द्रजी ने हाथ जोड़कर विदा माँगते हुए बार-बार प्रणाम किया। आशीर्वाद पाकर और फिर सिर नवाकर भाइयों सहित श्री रघुनाथजी चले॥2॥

* मंजु मधुर मूरति उर आनी। भईं सनेह सिथिल सब रानी॥
पुनि धीरजु धरि कुअँरि हँकारीं। बार बार भेटहि महतारीं॥3॥

भावार्थ:-श्री रामजी की सुंदर मधुर मूर्ति को हृदय में लाकर सब रानियाँ स्नेह से शिथिल हो गईं। फिर धीरज धारण करके कुमारियों को बुलाकर माताएँ बारंबार उन्हें (गले लगाकर) भेंटने लगीं॥3॥

* पहुँचावहिं फिरि मिलहिं बहोरी। बढ़ी परस्पर प्रीति न थोरी॥

पुनि पुनि मिलत सखिन्ह बिलगाई। बाल बच्छ जिमि धेनु लवाई॥4॥

भावार्थ:-पुत्रियों को पहुँचाती हैं, फिर लौटकर मिलती हैं। परस्पर में कुछ थोड़ी प्रीति नहीं बढ़ी (अर्थात बहुत प्रीति बढ़ी)। बार-बार मिलती हुई माताओं को सखियों ने अलग कर दिया। जैसे हाल की ब्यायी हुई गाय को कोई उसके बालक बछड़े (या बछिया) से अलग कर दे॥4॥

दोहा :

* प्रेमबिबस नर नारि सब सखिन्ह सहित रनिवासु।

मानहुँ कीन्ह बिदेहपुर करुनाँ बिरहँ निवासु॥337॥

भावार्थ:-सब स्त्री-पुरुष और सखियों सहित सारा रनिवास प्रेम के विशेष वश हो रहा है। (ऐसा लगता है) मानो जनकपुर में करुणा और विरह ने डेरा डाल दिया है॥337॥

चौपाई :

* सुक सारिका जानकी ज्याए। कनक पिंजरन्हि राखि पढ़ाए॥

ब्याकुल कहहिं कहाँ बैदेही। सुनि धीरजु परिहरइ न केही॥1॥

भावार्थ:-जानकी ने जिन तोता और मैना को पाल-पोसकर बड़ा किया था और सोने के पिंजड़ों में रखकर पढ़ाया था, वे व्याकुल होकर कह रहे हैं- वैदेही कहाँ हैं। उनके ऐसे वचनों को सुनकर धीरज किसको नहीं त्याग देगा (अर्थात सबका धैर्य जाता रहा)॥1॥

* भए बिकल खग मृग एहि भाँती। मनुज दसा कैसें कहि जाती॥

बंधु समेत जनकु तब आए। प्रेम उमगि लोचन जल छाए॥2॥

भावार्थ:-जब पक्षी और पशु तक इस तरह विकल हो गए, तब मनुष्यों की दशा कैसे कही जा सकती है! तब भाई सहित जनकजी वहाँ आए। प्रेम से उमड़कर उनके नेत्रों में (प्रेमाश्रुओं का) जल भर आया॥2॥

* सीय बिलोकि धीरता भागी। रहे कहावत परम बिरागी॥

लीन्हि रायँ उर लाइ जानकी। मिटी महामरजाद ग्यान की॥3॥

भावार्थ:-वे परम वैराग्यवान कहलाते थे, पर सीताजी को देखकर उनका भी धीरज भाग गया। राजा ने जानकीजी को हृदय से लगा लिया। (प्रेम के प्रभाव से) ज्ञान की महान मर्यादा मिट गई (ज्ञान का बाँध टूट गया)॥3॥

* समुझावत सब सचिव सयाने। कीन्ह बिचारु न अवसर जाने॥

बारहिं बार सुता उर लाईं। सजि सुंदर पालकीं मगाईं॥4॥

भावार्थ:-सब बुद्धिमान मंत्री उन्हें समझाते हैं। तब राजा ने विषाद करने का समय न जानकर विचार किया। बारंबार पुत्रियों को हृदय से लगाकर सुंदर सजी हुई पालकियाँ मँगवाई॥4॥

दोहा :

* प्रेमबिबस परिवारु सबु जानि सुलगन नरेस।

कुअँरि चढ़ाईं पालकिन्ह सुमिरे सिद्धि गनेस॥338॥

भावार्थ:-सारा परिवार प्रेम में विवश है। राजा ने सुंदर मुहूर्त जानकर सिद्धि सहित गणेशजी का स्मरण करके कन्याओं को पालकियों पर चढ़ाया॥338॥

चौपाई :

* बहुबिधि भूप सुता समुझाईं। नारिधरमु कुलरीति सिखाईं॥

दासीं दास दिए बहुतेरे। सुचि सेवक जे प्रिय सिय केरे॥1॥

भावार्थ:-राजा ने पुत्रियों को बहुत प्रकार से समझाया और उन्हें स्त्रियों का धर्म और कुल की रीति सिखाई। बहुत से दासी-दास दिए, जो सीताजी के प्रिय और विश्वास पात्र सेवक थे॥1॥

* सीय चलत ब्याकुल पुरबासी। होहिं सगुन सुभ मंगल रासी॥
भूसुर सचिव समेत समाजा। संग चले पहुँचावन राजा॥2॥

भावार्थ:-सीताजी के चलते समय जनकपुरवासी व्याकुल हो गए। मंगल की राशि शुभ शकुन हो रहे हैं। ब्राह्मण और मंत्रियों के समाज सहित राजा जनकजी उन्हें पहुँचाने के लिए साथ चले॥2॥

* समय बिलोकि बाजने बाजे। रथ गज बाजि बरातिन्ह साजे॥
दसरथ बिप्र बोलि सब लीन्हे। दान मान परिपूरन कीन्हे॥3॥

भावार्थ:-समय देखकर बाजे बजने लगे। बारातियों ने रथ, हाथी और घोड़े सजाए। दशरथजी ने सब ब्राह्मणों को बुला लिया और उन्हें दान और सम्मान से परिपूर्ण कर दिया॥3॥

* चरन सरोज धूरि धरि सीसा। मुदित महीपति पाइ असीसा॥
सुमिरि गजाननु कीन्ह पयाना। मंगल मूल सगुन भए नाना॥4॥

भावार्थ:-उनके चरण कमलों की धूलि सिर पर धरकर और आशीष पाकर राजा आनंदित हुए और गणेशजी का स्मरण करके उन्होंने प्रस्थान किया। मंगलों के मूल अनेकों शकुन हुए॥4॥

दोहा :

* सुर प्रसून बरषहिं हरषि करहिं अपछरा गान।
चले अवधपति अवधपुर मुदित बजाइ निसान॥339॥

भावार्थ:-देवता हर्षित होकर फूल बरसा रहे हैं और अप्सराएँ गान कर रही हैं। अवधपति दशरथजी नगाड़े बजाकर आनंदपूर्वक अयोध्यापुरी चले॥339॥

चौपाई :

* नृप करि बिनय महाजन फेरे। सादर सकल मागने टेरे॥
भूषन बसन बाजि गज दीन्हे। प्रेम पोषि ठाढ़े सब कीन्हे॥1॥

भावार्थ:-राजा दशरथजी ने विनती करके प्रतिष्ठित जनों को लौटाया और आदर के साथ सब मँगनों को बुलवाया। उनको गहने-कपड़े, घोड़े-हाथी दिए और प्रेम से पुष्ट करके सबको सम्पन्न अर्थात बलयुक्त कर दिया॥1॥।

* बार बार बिरिदावलि भाषी। फिरे सकल रामहि उर राखी॥
बहुरि बहुरि कोसलपति कहहीं। जनकु प्रेमबस फिरै न चहहीं॥2॥

भावार्थ:-वे सब बारंबार विरुदावली (कुलकीर्ति) बखानकर और श्री रामचन्द्रजी को हृदय में रखकर लौटे। कोसलाधीश दशरथजी बार-बार लौटने को कहते हैं, परन्तु जनकजी प्रेमवश लौटना नहीं चाहते॥2॥

* पुनि कह भूपत बचन सुहाए। फिरिअ महीस दूरि बड़ि आए॥
राउ बहोरि उतरि भए ठाढ़े। प्रेम प्रबाह बिलोचन बाढ़े॥3॥

भावार्थ:-दशरथजी ने फिर सुहावने वचन कहे- हे राजन्! बहुत दूर आ गए, अब लौटिए। फिर राजा दशरथजी रथ से उतरकर खड़े हो गए। उनके नेत्रों में प्रेम का प्रवाह बढ़ आया (प्रेमाश्रुओं की धारा बह चली)॥3॥

* तब बिदेह बोले कर जोरी। बचन सनेह सुधाँ जनु बोरी॥
करौं कवन बिधि बिनय बनाई। महाराज मोहि दीन्हि बड़ाई॥4॥

भावार्थ:-तब जनकजी हाथ जोड़कर मानो स्नेह रूपी अमृत में डुबोकर वचन बोले- मैं किस तरह बनाकर (किन शब्दों में) विनती करूँ। हे महाराज! आपने मुझे बड़ी बड़ाई दी है॥4॥

दोहा :

* कोसलपति समधी सजन सनमाने सब भाँति।

मिलनि परसपर बिनय अति प्रीति न हृदयँ समाति॥340॥

भावार्थ:-अयोध्यानाथ दशरथजी ने अपने स्वजन समधी का सब प्रकार से सम्मान किया। उनके आपस के मिलने में अत्यन्त विनय थी और इतनी प्रीति थी जो हृदय में समाती न थी॥340॥

चौपाई :

* मुनि मंडलिहि जनक सिरु नावा। आसिरबादु सबहि सन पावा॥

सादर पुनि भेंटे जामाता। रूप सील गुन निधि सब भ्राता॥1॥

भावार्थ:-जनकजी ने मुनि मंडली को सिर नवाया और सभी से आशीर्वाद पाया। फिर आदर के साथ वे रूप, शील और गुणों के निधान सब भाइयों से, अपने दामादों से मिले,॥1॥

* जोरि पंकरुह पानि सुहाए। बोले बचन प्रेम जनु जाए॥

राम करौं केहि भाँति प्रसंसा। मुनि महेस मन मानस हंसा॥2॥

भावार्थ:-और सुंदर कमल के समान हाथों को जोड़कर ऐसे वचन बोले जो मानो प्रेम से ही जन्मे हों। हे रामजी! मैं किस प्रकार आपकी प्रशंसा करूँ! आप मुनियों और महादेवजी के मन रूपी मानसरोवर के हंस हैं॥2॥

* करहिं जोग जोगी जेहि लागी। कोहु मोहु ममता मदु त्यागी॥

ब्यापकु ब्रह्मु अलखु अबिनासी। चिदानंदु निरगुन गुनरासी॥3॥

भावार्थ:-योगी लोग जिनके लिए क्रोध, मोह, ममता और मद को त्यागकर योग साधन करते हैं, जो सर्वव्यापक, ब्रह्म, अव्यक्त, अविनाशी, चिदानंद, निर्गुण और गुणों की राशि हैं,॥3॥

*मन समेत जेहि जान न बानी। तरकि न सकहिं सकल अनुमानी॥

महिमा निगमु नेति कहि कहई। जो तिहुँ काल एकरस रहई॥4॥

भावार्थ:- जिनको मन सहित वाणी नहीं जानती और सब जिनका अनुमान ही करते हैं, कोई तर्कना नहीं कर सकते, जिनकी महिमा को वेद 'नेति' कहकर वर्णन करता है और जो (सच्चिदानंद) तीनों कालों में एकरस (सर्वदा और सर्वथा निर्विकार) रहते हैं,॥4॥

दोहा :

* नयन बिषय मो कहुँ भयउ सो समस्त सुख मूल।
सबइ लाभु जग जीव कहँ भएँ ईसु अनुकूल॥341॥

भावार्थ:-वे ही समस्त सुखों के मूल (आप) मेरे नेत्रों के विषय हुए। ईश्वर के अनुकूल होने पर जगत में जीव को सब लाभ ही लाभ है॥341॥

चौपाई :

* सबहि भाँति मोहि दीन्हि बड़ाई। निज जन जानि लीन्ह अपनाई॥
होहिं सहस दस सारद सेषा। करहिं कलप कोटिक भरि लेखा॥1॥

भावार्थ:- आपने मुझे सभी प्रकार से बड़ाई दी और अपना जन जानकर अपना लिया। यदि दस हजार सरस्वती और शेष हों और करोड़ों कल्पों तक गणना करते रहें॥1॥

* मोर भाग्य राउर गुन गाथा। कहि न सिराहिं सुनहु रघुनाथा॥
मैं कछु कहउँ एक बल मोरें। तुम्ह रीझहु सनेह सुठि थोरें॥2॥

भावार्थ:- तो भी हे रघुनाजी! सुनिए, मेरे सौभाग्य और आपके गुणों की कथा कहकर समाप्त नहीं की जा सकती। मैं जो कुछ कह रहा हूँ, वह अपने इस एक ही बल पर कि आप अत्यन्त थोड़े प्रेम से प्रसन्न हो जाते हैं॥2॥

* बार बार मागउँ कर जोरें। मनु परिहरै चरन जनि भोरें॥

सुनि बर बचन प्रेम जनु पोषे। पूरनकाम रामु परितोषे॥3॥

भावार्थ:- मैं बार-बार हाथ जोड़कर यह माँगता हूँ कि मेरा मन भूलकर भी आपके चरणों को न छोड़े। जनकजी के श्रेष्ठ वचनों को सुनकर, जो मानो प्रेम से पुष्ट किए हुए थे, पूर्ण काम श्री रामचन्द्रजी संतुष्ट हुए॥3॥

* करि बर बिनय ससुर सनमाने। पितु कौसिक बसिष्ठ सम जाने॥
बिनती बहुरि भरत सन कीन्ही। मिलि सप्रेमु पुनि आसिष दीन्ही॥4॥

भावार्थ:- उन्होंने सुंदर विनती करके पिता दशरथजी, गुरु विश्वामित्रजी और कुलगुरु वशिष्ठजी के समान जानकर ससुर जनकजी का सम्मान किया। फिर जनकजी ने भरतजी से विनती की और प्रेम के साथ मिलकर फिर उन्हें आशीर्वाद दिया॥4॥

दोहा :

* मिले लखन रिपुसूदनहि दीन्हि असीस महीस।
भए परसपर प्रेमबस फिरि फिरि नावहिं सीस॥342॥

भावार्थ:- फिर राजा ने लक्ष्मणजी और शत्रुघ्नजी से मिलकर उन्हें आशीर्वाद दिया। वे परस्पर प्रेम के वश होकर बार-बार आपस में सिर नवाने लगे॥342॥

चौपाई :

* बार बार करि बिनय बड़ाई। रघुपति चले संग सब भाई॥
जनक गहे कौसिक पद जाई। चरन रेनु सिर नयनन्ह लाई॥1॥

भावार्थ:- जनकजी की बार-बार विनती और बड़ाई करके श्री रघुनाथजी सब भाइयों के साथ चले। जनकजी ने जाकर विश्वामित्रजी के चरण पकड़ लिए और उनके चरणों की रज को सिर और नेत्रों में लगाया॥1॥

* सुनु मुनीस बर दरसन तोरें। अगमु न कछु प्रतीति मन मोरें॥
जो सुखु सुजसु लोकपति चहहीं। करत मनोरथ सकुचत अहहीं॥2॥

भावार्थ:- (उन्होंने कहा-) हे मुनीश्वर! सुनिए, आपके सुंदर दर्शन से कुछ भी दुर्लभ नहीं है, मेरे मन में ऐसा विश्वास है, जो सुख और सुयश लोकपाल चाहते हैं, परन्तु (असंभव समझकर) जिसका मनोरथ करते हुए सकुचाते हैं,॥2॥

* सो सुखु सुजसु सुलभ मोहि स्वामी। सब सिधि तव दरसन अनुगामी॥
कीन्हि बिनय पुनि पुनि सिरु नाई। फिरे महीसु आसिषा पाई॥3॥

भावार्थ:- हे स्वामी! वही सुख और सुयश मुझे सुलभ हो गया, सारी सिद्धियाँ आपके दर्शनों की अनुगामिनी अर्थात पीछे-पीछे चलने वाली हैं। इस प्रकार बार-बार विनती की और सिर नवाकर तथा उनसे आशीर्वाद पाकर राजा जनक लौटे॥3॥

बारात का अयोध्या लौटना और अयोध्या में आनंद

* चली बरात निसान बजाई। मुदित छोट बड़ सब समुदाई॥
रामहि निरखि ग्राम नर नारी। पाइ नयन फलु होहिं सुखारी॥4॥

भावार्थ:-डंका बजाकर बारात चली। छोटे-बड़े सभी समुदाय प्रसन्न हैं। (रास्ते के) गाँव के स्त्री-पुरुष श्री रामचन्द्रजी को देखकर नेत्रों का फल पाकर सुखी होते हैं॥4॥

दोहा :

* बीच बीच बर बास करि मग लोगन्ह सुख देत।
अवध समीप पुनीत दिन पहुँची आइ जनेत॥343॥

भावार्थ:-बीच-बीच में सुंदर मुकाम करती हुई तथा मार्ग के लोगों को सुख देती हुई वह बारात पवित्र दिन में अयोध्यापुरी के समीप आ पहुँची॥343॥

चौपाई :

*हने निसान पनव बर बाजे। भेरि संख धुनि हय गय गाजे॥

गीताप्रेस गोरखपुर

झाँझि बिरव डिंडिमीं सुहाई। सरस राग बाजहिं सहनाई॥1॥

भावार्थ:-नगाड़ों पर चोटें पड़ने लगीं, सुंदर ढोल बजने लगे। भेरी और शंख की बड़ी आवाज हो रही है, हाथी-घोड़े गरज रहे हैं। विशेष शब्द करने वाली झाँझें, सुहावनी डफलियाँ तथा रसीले राग से शहनाइयाँ बज रही हैं॥1॥

* पुर जन आवत अकनि बराता। मुदित सकल पुलकावलि गाता॥
निज निज सुंदर सदन सँवारे। हाट बाट चौहटपुर द्वारे॥2॥

भावार्थ:-बारात को आती हुई सुनकर नगर निवासी प्रसन्न हो गए। सबके शरीरों पर पुलकावली छा गई। सबने अपने-अपने सुंदर घरों, बाजारों, गलियों, चौराहों और नगर के द्वारों को सजाया॥2॥

* गलीं सकल अरगजाँ सिंचाईं। जहँ तहँ चौकें चारु पुराईं॥
बना बजारु न जाइ बखाना। तोरन केतु पताक बिताना॥3॥

भावार्थ:-सारी गलियाँ अरगजे से सिंचाई गईं, जहाँ-तहाँ सुंदर चौक पुराए गए। तोरणों ध्वजा-पताकाओं और मंडपों से बाजार ऐसा सजा कि जिसका वर्णन नहीं किया जा सकता॥3॥

* सफल पूगफल कदलि रसाला। रोपे बकुल कदंब तमाला॥
लगे सुभग तरु परसत धरनी। मनिमय आलबाल कल करनी॥4॥

भावार्थ:-फल सहित सुपारी, केला, आम, मौलसिरी, कदम्ब और तमाल के वृक्ष लगाए गए। वे लगे हुए सुंदर वृक्ष (फलों के भार से) पृथ्वी को छू रहे हैं। उनके मणियों के थाले बड़ी सुंदर कारीगरी से बनाए गए हैं॥4॥

दोहा :

* बिबिध भाँति मंगल कलस गृह गृह रचे सँवारि।
सुर ब्रह्मादि सिहाहिं सब रघुबर पुरी निहारि॥344॥

भावार्थ:-अनेक प्रकार के मंगल-कलश घर-घर सजाकर बनाए गए हैं। श्री रघुनाथजी की पुरी (अयोध्या) को देखकर ब्रह्मा आदि सब देवता सिहाते हैं॥344॥

चौपाई :

* भूप भवनु तेहि अवसर सोहा। रचना देखि मदन मनु मोहा॥
मंगल सगुन मनोहरताई। रिधि सिधि सुख संपदा सुहाई॥1॥

भावार्थ:-उस समय राजमहल (अत्यन्त) शोभित हो रहा था। उसकी रचना देखकर कामदेव भी मन मोहित हो जाता था। मंगल शकुन, मनोहरता, ऋद्धि-सिद्धि, सुख, सुहावनी सम्पत्ति॥1॥

* जनु उछाह सब सहज सुहाए। तनु धरि धरि दसरथ गृहँ छाए॥
देखन हेतु राम बैदेही। कहहु लालसा होहि न केही॥2॥

भावार्थ:-और सब प्रकार के उत्साह (आनंद) मानो सहज सुंदर शरीर धर-धरकर दशरथजी के घर में छा गए हैं। श्री रामचन्द्रजी और सीताजी के दर्शनों के लिए भला कहिए, किसे लालसा न होगी॥2॥

* जूथ जूथ मिलि चलीं सुआसिनि। निज छबि निदरहिं मदन बिलासिनि॥
सकल सुमंगल सजें आरती। गावहिं जनु बहु बेष भारती॥3॥

भावार्थ:-सुहागिनी स्त्रियाँ झुंड की झुंड मिलकर चलीं, जो अपनी छबि से कामदेव की स्त्री रति का भी निरादर कर रही हैं। सभी सुंदर मंगलद्रव्य एवं आरती सजाए हुए गा रही हैं, मानो सरस्वतीजी ही बहुत से वेष धारण किए गा रही हों॥3॥

* भूपति भवन कोलाहलु होई। जाइ न बरनि समउ सुखु सोई॥
कौसल्यादि राम महतारीं। प्रेमबिबस तन दसा बिसारीं॥4॥

भावार्थ:-राजमहल में (आनंद के मारे) शोर मच रहा है। उस समय का और सुख का वर्णन नहीं किया जा सकता। कौसल्याजी आदि श्री रामचन्द्रजी की सब माताएँ प्रेम के विशेष वश होने से शरीर की सुध भूल गईं॥4॥

दोहा :

* दिए दान बिप्रन्ह बिपुल पूजि गनेस पुरारि।
प्रमुदित परम दरिद्र जनु पाइ पदारथ चारि॥345॥

भावार्थ:-गणेशजी और त्रिपुरारि शिवजी का पूजन करके उन्होंने ब्राह्मणों को बहुत सा दान दिया। वे ऐसी परम प्रसन्न हुईं, मानो अत्यन्त दरिद्री चारों पदार्थ पा गया हो॥345॥

चौपाई :

* मोद प्रमोद बिबस सब माता। चलहिं न चरन सिथिल भए गाता॥
राम दरस हित अति अनुरागीं। परिछनि साजु सजन सब लागीं॥1॥

भावार्थ:-सुख और महान आनंद से विवश होने के कारण सब माताओं के शरीर शिथिल हो गए हैं, उनके चरण चलते नहीं हैं। श्री रामचन्द्रजी के दर्शनों के लिए वे अत्यन्त अनुराग में भरकर परछन का सब सामान सजाने लगीं॥1॥

* बिबिध बिधान बाजने बाजे। मंगल मुदित सुमित्राँ साजे॥
हरद दूब दधि पल्लव फूला। पान पूगफल मंगल मूला॥2॥

भावार्थ:-अनेकों प्रकार के बाजे बजते थे। सुमित्राजी ने आनंदपूर्वक मंगल साज सजाए। हल्दी, दूब, दही, पत्ते, फूल, पान और सुपारी आदि मंगल की मूल वस्तुएँ,॥2॥

* अच्छत अंकुर लोचन लाजा। मंजुल मंजरि तुलसि बिराजा॥
छुहे पुरट घट सहज सुहाए। मदन सकुन जनु नीड़ बनाए॥3॥

भावार्थ:-तथा अक्षत (चावल), अँखुए, गोरोचन, लावा और तुलसी की सुंदर मंजरियाँ सुशोभित हैं। नाना रंगों से चित्रित किए हुए सहज सुहावने सुवर्ण के कलश ऐसे मालूम होते हैं, मानो कामदेव के पक्षियों ने घोंसले बनाए हों॥3॥

*सगुन सुगंध न जाहिं बखानी। मंगल सकल सजहिं सब रानी॥
रचीं आरतीं बहुत बिधाना। मुदित करहिं कल मंगल गाना॥4॥

भावार्थ:-शकुन की सुगन्धित वस्तुएँ बखानी नहीं जा सकतीं। सब रानियाँ सम्पूर्ण मंगल साज सज रही हैं। बहुत प्रकार की आरती बनाकर वे आनंदित हुईं सुंदर मंगलगान कर रही हैं॥4॥

दोहा :

* कनक थार भरि मंगलन्हि कमल करन्हि लिएँ मात।
चलीं मुदित परिछनि करन पुलक पल्लवित गात॥346॥

भावार्थ:-सोने के थालों को मांगलिक वस्तुओं से भरकर अपने कमल के समान (कोमल) हाथों में लिए हुए माताएँ आनंदित होकर परछन करने चलीं। उनके शरीर पुलकावली से छा गए हैं॥346॥

चौपाई :

* धूप धूम नभु मेचक भयऊ। सावन घन घमंडु जनु ठयऊ॥
सुरतरु सुमन माल सुर बरषहिं। मनहुँ बलाक अवलि मनु करषहिं॥1॥

भावार्थ:-धूप के धुएँ से आकाश ऐसा काला हो गया है मानो सावन के बादल घुमड़-घुमड़कर छा गए हों। देवता कल्पवृक्ष के फूलों की मालाएँ बरसा रहे हैं। वे ऐसी लगती हैं, मानो बगुलों की पाँति मन को (अपनी ओर) खींच रही हो॥1॥

* मंजुल मनिमय बंदनिवारे। मनहुँ पाकरिपु चाप सँवारे॥
प्रगटहिं दुरहिं अटन्ह पर भामिनि। चारु चपल जनु दमकहिं दामिनि॥2॥

भावार्थ:-सुंदर मणियों से बने बंदनवार ऐसे मालूम होते हैं, मानो इन्द्रधनुष सजाए हों। अटारियों पर सुंदर और चपल स्त्रियाँ प्रकट होती और छिप जाती हैं (आती-जाती हैं), वे ऐसी जान पड़ती हैं, मानो बिजलियाँ चमक रही हों॥2॥

* दुंदुभि धुनि घन गरजनि घोरा। जाचक चातक दादुर मोरा॥
सुर सुगंध सुचि बरषहिं बारी। सुखी सकल ससि पुर नर नारी॥3॥

भावार्थ:-नगाड़ों की ध्वनि मानो बादलों की घोर गर्जना है। याचकगण पपीहे, मेंढक और मोर हैं। देवता पवित्र सुगंध रूपी जल बरसा रहे हैं, जिससे खेती के समान नगर के सब स्त्री-पुरुष सुखी हो रहे हैं॥3॥

* समउ जानि गुर आयसु दीन्हा। पुर प्रबेसु रघुकुलमनि कीन्हा॥
सुमिरि संभु गिरिजा गनराजा। मुदित महीपति सहित समाजा॥4॥

भावार्थ:- (प्रवेश का) समय जानकर गुरु वशिष्ठजी ने आज्ञा दी। तब रघुकुलमणि महाराज दशरथजी ने शिवजी, पार्वतीजी और गणेशजी का स्मरण करके समाज सहित आनंदित होकर नगर में प्रवेश किया॥4॥

* होहिं सगुन बरषहिं सुमन सुर दुंदभीं बजाइ।
बिबुध बधू नाचहिं मुदित मंजुल मंगल गाइ॥347॥

भावार्थ:-शकुन हो रहे हैं, देवता दुन्दुभी बजा-बजाकर फूल बरसा रहे हैं। देवताओं की स्त्रियाँ आनंदित होकर सुंदर मंगल गीत गा-गाकर नाच रही हैं॥347॥

चौपाई :

* मागध सूत बंदि नट नागर। गावहिं जसु तिहु लोक उजागर॥
जय धुनि बिमल बेद बर बानी। दस दिसि सुनिअ सुमंगल सानी॥1॥

भावार्थ:-मागध, सूत, भाट और चतुर नट तीनों लोकों के उजागर (सबको प्रकाश देने वाले परम प्रकाश स्वरूप) श्री रामचन्द्रजी का यश गा रहे हैं। जय ध्वनि तथा वेद की निर्मल श्रेष्ठ वाणी सुंदर मंगल से सनी हुई दसों दिशाओं में सुनाई पड़ रही है॥1॥

* बिपुल बाज ने बाजन लागे। नभ सुर नगर लोग अनुरागे॥

बने बराती बरनि न जाहीं। महा मुदित मन सुख न समाहीं॥2॥

भावार्थ:-बहुत से बाजे बजने लगे। आकाश में देवता और नगर में लोग सब प्रेम में मग्न हैं। बाराती ऐसे बने-ठने हैं कि उनका वर्णन नहीं हो सकता। परम आनंदित हैं, सुख उनके मन में समाता नहीं है॥2॥

* पुरबासिन्ह तब राय जोहारे। देखत रामहि भए सुखारे॥

करहिं निछावरि मनिगन चीरा। बारि बिलोचन पुलक सरीरा॥3॥

भावार्थ:- तब अयोध्यावसियों ने राजा को जोहार (वंदना) की। श्री रामचन्द्रजी को देखते ही वे सुखी हो गए। सब मणियाँ और वस्त्र निछावर कर रहे हैं। नेत्रों में (प्रेमाश्रुओं का) जल भरा है और शरीर पुलकित हैं॥3॥।

* आरति करहिं मुदित पुर नारी। हरषहिं निरखि कुअँर बर चारी॥

सिबिका सुभग ओहार उघारी। देखि दुलहिनिन्ह होहिं सुखारी॥4॥

भावार्थ:-नगर की स्त्रियाँ आनंदित होकर आरती कर रही हैं और सुंदर चारों कुमारों को देखकर हर्षित हो रही हैं। पालकियों के सुंदर परदे हटा-हटाकर वे दुलहिनों को देखकर सुखी होती हैं॥4॥

दोहा :

* एहि बिधि सबही देत सुखु आए राजदुआर।

मुदित मातु परिछनि करहिं बधुन्ह समेत कुमार॥348॥

भावार्थ:-इस प्रकार सबको सुख देते हुए राजद्वार पर आए। माताएँ आनंदित होकर बहुओं सहित कुमारों का परछन कर रही हैं॥348॥

चौपाई :

* करहिं आरती बारहिं बारा। प्रेमु प्रमोदु कहै को पारा॥

भूषन मनि पट नाना जाती। करहिं निछावरि अगनित भाँती॥1॥

भावार्थ:-वे बार-बार आरती कर रही हैं। उस प्रेम और महान आनंद को कौन कह सकता है! अनेकों प्रकार के आभूषण, रत्न और वस्त्र तथा अगणित प्रकार की अन्य वस्तुएँ निछावर कर रही हैं॥1॥

* बधुन्ह समेत देखि सुत चारी। परमानंद मगन महतारी॥

पुनि पुनि सीय राम छबि देखी। मुदित सफल जग जीवन लेखी॥2॥

भावार्थ:-बहुओं सहित चारों पुत्रों को देखकर माताएँ परमानंद में मग्न हो गईं। सीताजी और श्री रामजी की छबि को बार-बार देखकर वे जगत में अपने जीवन को सफल मानकर आनंदित हो रही हैं॥2॥

* सखीं सीय मुख पुनि पुनि चाही। गान करहिं निज सुकृत सराही॥

बरषहिं सुमन छनहिं छन देवा। नाचहिं गावहिं लावहिं सेवा॥3॥

भावार्थ:-सखियाँ सीताजी के मुख को बार-बार देखकर अपने पुण्यों की सराहना करती हुई गान कर रही हैं। देवता क्षण-क्षण में फूल बरसाते, नाचते, गाते तथा अपनी-अपनी सेवा समर्पण करते हैं॥3॥

* देखि मनोहर चारिउ जोरीं। सारद उपमा सकल ढँढोरीं॥

देत न बनहिं निपट लघु लागीं। एकटक रहीं रूप अनुरागीं॥4॥

भावार्थ:-चारों मनोहर जोड़ियों को देखकर सरस्वती ने सारी उपमाओं को खोज डाला, पर कोई उपमा देते नहीं बनी, क्योंकि उन्हें सभी बिलकुल तुच्छ जान पड़ीं। तब हारकर वे भी श्री रामजी के रूप में अनुरक्त होकर एकटक देखती रह गईं॥4॥

दोहा :

* निगम नीति कुल रीति करि अरघ पाँवड़े देत।
बधुन्ह सहित सुत परिछि सब चलीं लवाइ निकेत॥349॥

भावार्थ:-वेद की विधि और कुल की रीति करके अर्घ्य-पाँवड़े देती हुई बहुओं समेत सब पुत्रों को परछन करके माताएँ महल में लिवा चलीं॥349॥

चौपाई :

* चारि सिंघासन सहज सुहाए। जनु मनोज निज हाथ बनाए॥
तिन्ह पर कुअँरि कुअँर बैठारे। सादर पाय पुनीत पखारे॥1॥

भावार्थ:-स्वाभाविक ही सुंदर चार सिंहासन थे, जो मानो कामदेव ने ही अपने हाथ से बनाए थे। उन पर माताओं ने राजकुमारियों और राजकुमारों को बैठाया और आदर के साथ उनके पवित्र चरण धोए॥1॥

* धूप दीप नैबेद बेद बिधि। पूजे बर दुलहिनि मंगल निधि॥
बारहिं बार आरती करहीं। ब्यजन चारु चामर सिर ढरहीं॥2॥

भावार्थ:-फिर वेद की विधि के अनुसार मंगल के निधान दूलह की दुलहिनों की धूप, दीप और नैवेद्य आदि के द्वारा पूजा की। माताएँ बारम्बार आरती कर रही हैं और वर-वधुओं के सिरों पर सुंदर पंखे तथा चँवर ढल रहे हैं॥2॥

* बस्तु अनेक निछावरि होहीं। भरीं प्रमोद मातु सब सोहीं॥
पावा परम तत्व जनु जोगीं। अमृतु लहेउ जनु संतत रोगीं॥3॥

भावार्थ:-अनेकों वस्तुएँ निछावर हो रही हैं, सभी माताएँ आनंद से भरी हुई ऐसी सुशोभित हो रही हैं मानो योगी ने परम तत्व को प्राप्त कर लिया। सदा के रोगी ने मानो अमृत पा लिया॥3॥

* जनम रंक जनु पारस पावा। अंधहि लोचन लाभु सुहावा॥

मूक बदन जनु सारद छाई। मानहुँ समर सूर जय पाई॥4॥

भावार्थ:-जन्म का दरिद्री मानो पारस पा गया। अंधे को सुंदर नेत्रों का लाभ हुआ। गूँगे के मुख में मानो सरस्वती आ विराजीं और शूरवीर ने मानो युद्ध में विजय पा ली॥4॥

दोहा :

* एहि सुख ते सत कोटि गुन पावहिं मातु अनंदु।
भाइन्ह सहित बिआहि घर आए रघुकुलचंदु॥350 क॥

भावार्थ:-इन सुखों से भी सौ करोड़ गुना बढ़कर आनंद माताएँ पा रही हैं, क्योंकि रघुकुल के चंद्रमा श्री रामजी विवाह कर के भाइयों सहित घर आए हैं॥350 (क)॥

* लोक रीति जननीं करहिं बर दुलहिनि सकुचाहिं।
मोदु बिनोदु बिलोकि बड़ रामु मनहिं मुसुकाहिं॥350 ख॥

भावार्थ:-माताएँ लोकरीति करती हैं और दूलह-दुलहिनें सकुचाते हैं। इस महान आनंद और विनोद को देखकर श्री रामचन्द्रजी मन ही मन मुस्कुरा रहे हैं॥350 (ख)॥

चौपाई :

* देव पितर पूजे बिधि नीकी। पूजीं सकल बासना जी की॥
सबहि बंदि माँगहिं बरदाना। भाइन्ह सहित राम कल्याना॥1॥

भावार्थ:-मन की सभी वासनाएँ पूरी हुई जानकर देवता और पितरों का भलीभाँति पूजन किया। सबकी वंदना करके माताएँ यही वरदान माँगती हैं कि भाइयों सहित श्री रामजी का कल्याण हो॥1॥

* अंतरहित सुर आसिष देहीं। मुदित मातु अंचल भरि लेहीं॥
भूपति बोलि बराती लीन्हे। जान बसन मनि भूषन दीन्हे॥2॥

भावार्थ:-देवता छिपे हुए (अन्तरिक्ष से) आशीर्वाद दे रहे हैं और माताएँ आनन्दित हो आँचल भरकर ले रही हैं। तदनन्तर राजा ने बारातियों को बुलवा लिया और उन्हें सवारियाँ, वस्त्र, मणि (रत्न) और आभूषणादि दिए॥2॥

* आयसु पाइ राखि उर रामहि। मुदित गए सब निज निज धामहि॥
पुर नर नारि सकल पहिराए। घर घर बाजन लगे बधाए॥3॥

भावार्थ:-आज्ञा पाकर, श्री रामजी को हृदय में रखकर वे सब आनंदित होकर अपने-अपने घर गए। नगर के समस्त स्त्री-पुरुषों को राजा ने कपड़े और गहने पहनाए। घर-घर बधावे बजने लगे॥3॥

* जाचक जन जाचहिं जोइ जोई। प्रमुदित राउ देहिं सोइ सोई॥
सेवक सकल बजनिआ नाना। पूरन किए दान सनमाना॥4॥

भावार्थ:-याचक लोग जो-जो माँगते हैं, विशेष प्रसन्न होकर राजा उन्हें वही-वही देते हैं। सम्पूर्ण सेवकों और बाजे वालों को राजा ने नाना प्रकार के दान और सम्मान से सन्तुष्ट किया॥4॥

दोहा :

* देहिं असीस जोहारि सब गावहिं गुन गन गाथ।
तब गुर भूसुर सहित गृहँ गवनु कीन्ह नरनाथ॥351॥

भावार्थ:-सब जोहार (वंदन) करके आशीष देते हैं और गुण समूहों की कथा गाते हैं। तब गुरु और ब्राह्मणों सहित राजा दशरथजी ने महल में गमन किया॥351॥

चौपाई :

* जो बसिष्ट अनुसासन दीन्ही। लोक बेद बिधि सादर कीन्ही॥
भूसुर भीर देखि सब रानी। सादर उठीं भाग्य बड़ जानी॥1॥

भावार्थ:- वशिष्ठजी ने जो आज्ञा दी, उसे लोक और वेद की विधि के अनुसार राजा ने आदरपूर्वक किया। ब्राह्मणों की भीड़ देखकर अपना बड़ा भाग्य जानकर सब रानियाँ आदर के साथ उठीं॥1॥

* पाय पखारि सकल अन्हवाए। पूजि भली बिधि भूप जेवाँए॥
आदर दान प्रेम परिपोषे। देत असीस चले मन तोषे॥2॥

भावार्थ:-चरण धोकर उन्होंने सबको स्नान कराया और राजा ने भली-भाँति पूजन करके उन्हें भोजन कराया! आदर, दान और प्रेम से पुष्ट हुए वे संतुष्ट मन से आशीर्वाद देते हुए चले॥2॥

* बहु बिधि कीन्हि गाधिसुत पूजा। नाथ मोहि सम धन्य न दूजा॥
कीन्हि प्रसंसा भूपति भूरी। रानिन्ह सहित लीन्हि पग धूरी॥3॥

भावार्थ:-राजा ने गाधि पुत्र विश्वामित्रजी की बहुत तरह से पूजा की और कहा- हे नाथ! मेरे समान धन्य दूसरा कोई नहीं है। राजा ने उनकी बहुत प्रशंसा की और रानियों सहित उनकी चरणधूलि को ग्रहण किया॥3॥

* भीतर भवन दीन्ह बर बासू। मन जोगवत रह नृपु रनिवासू॥
पूजे गुर पद कमल बहोरी। कीन्हि बिनय उर प्रीति न थोरी॥4॥

भावार्थ:-उन्हें महल के भीतर ठहरने को उत्तम स्थान दिया, जिसमें राजा और सब रनिवास उनका मन जोहता रहे (अर्थात जिसमें राजा और महल की सारी रानियाँ स्वयं उनकी इच्छानुसार उनके आराम की ओर दृष्टि रख सकें) फिर राजा ने गुरु वशिष्ठजी के चरणकमलों की पूजा और विनती की। उनके हृदय में कम प्रीति न थी (अर्थात बहुत प्रीति थी)॥4॥

दोहा :

* बधुन्ह समेत कुमार सब रानिन्ह सहित महीसु।

पुनि पुनि बंदत गुर चरन देत असीस मुनीसु॥352॥

भावार्थ:-बहुओं सहित सब राजकुमार और सब रानियों समेत राजा बार-बार गुरुजी के चरणों की वंदना करते हैं और मुनीश्वर आशीर्वाद देते हैं॥352॥

चौपाई :

* बिनय कीन्हि उर अति अनुरागें। सुत संपदा राखि सब आगें॥
नेगु मागि मुनिनायक लीन्हा। आसिरबादु बहुत बिधि दीन्हा॥1॥

भावार्थ:-राजा ने अत्यन्त प्रेमपूर्ण हृदय से पुत्रों को और सारी सम्पत्ति को सामने रखकर (उन्हें स्वीकार करने के लिए) विनती की, परन्तु मुनिराज ने (पुरोहित के नाते) केवल अपना नेग माँग लिया और बहुत तरह से आशीर्वाद दिया॥1॥

* उर धरि रामहि सीय समेता। हरषि कीन्ह गुर गवनु निकेता॥
बिप्रबधू सब भूप बोलाईं। चैल चारु भूषन पहिराईं॥1॥

भावार्थ:-फिर सीताजी सहित श्री रामचन्द्रजी को हृदय में रखकर गुरु वशिष्ठजी हर्षित होकर अपने स्थान को गए। राजा ने सब ब्राह्मणों की स्त्रियों को बुलवाया और उन्हें सुंदर वस्त्र तथा आभूषण पहनाए॥2॥

* बहुरि बोलाइ सुआसिनि लीन्हीं। रुचि बिचारि पहिरावनि दीन्हीं॥
नेगी नेग जोग जब लेहीं। रुचि अनुरूप भूपमनि देहीं॥3॥

भावार्थ:-फिर अब सुआसिनियों को (नगर की सौभाग्यवती बहिन, बेटी, भानजी आदि को) बुलवा लिया और उनकी रुचि समझकर (उसी के अनुसार) उन्हें पहिरावनी दी। नेगी लोग सब अपना-अपना नेग-जोग लेते और राजाओं के शिरोमणि दशरथजी उनकी इच्छा के अनुसार देते हैं॥3॥

* प्रिय पाहुने पूज्य जे जाने। भूपति भली भाँति सनमाने॥

देव देखि रघुबीर बिबाहू। बरषि प्रसून प्रसंसि उछाहू॥4॥

भावार्थ:-जिन मेहमानों को प्रिय और पूजनीय जाना, उनका राजा ने भलीभाँति सम्मान किया। देवगण श्री रघुनाथजी का विवाह देखकर, उत्सव की प्रशंसा करके फूल बरसाते हुए-॥4॥

दोहा :

* चले निसान बजाइ सुर निज निज पुर सुख पाइ।
कहत परसपर राम जसु प्रेम न हृदयँ समाइ॥353॥

भावार्थ:-नगाड़े बजाकर और (परम) सुख प्राप्त कर अपने-अपने लोकों को चले। वे एक-दूसरे से श्री रामजी का यश कहते जाते हैं। हृदय में प्रेम समाता नहीं है॥353॥

चौपाई :

* सब बिधि सबहि समदि नरनाहू। रहा हृदयँ भरि पूरि उछाहू॥
जहँ रनिवासु तहाँ पगु धारे। सहित बहूटिन्ह कुअँर निहारे॥1॥

भावार्थ:-सब प्रकार से सबका प्रेमपूर्वक भली-भाँति आदर-सत्कार कर लेने पर राजा दशरथजी के हृदय में पूर्ण उत्साह (आनंद) भर गया। जहाँ रनिवास था, वे वहाँ पधारे और बहुओं समेत उन्होंने कुमारों को देखा॥1॥

* लिए गोद करि मोद समेता। को कहि सकइ भयउ सुखु जेता॥
बधू सप्रेम गोद बैठारीं। बार बार हियँ हरषि दुलारीं॥2॥

भावार्थ:-राजा ने आनंद सहित पुत्रों को गोद में ले लिया। उस समय राजा को जितना सुख हुआ उसे कौन कह सकता है? फिर पुत्रवधुओं को प्रेम सहित गोदी में बैठाकर, बार-बार हृदय में हर्षित होकर उन्होंने उनका दुलार (लाड़-चाव) किया॥2॥

* देखि समाजु मुदित रनिवासू। सब कें उर अनंद कियो बासू॥
कहेउ भूप जिमि भयउ बिबाहू। सुनि सुनि हरषु होत सब काहू॥3॥

भावार्थ:-यह समाज (समारोह) देखकर रनिवास प्रसन्न हो गया। सबके हृदय में आनंद ने निवास कर लिया। तब राजा ने जिस तरह विवाह हुआ था, वह सब कहा। उसे सुन-सुनकर सब किसी को हर्ष होता है॥3॥

* जनक राज गुन सीलु बड़ाई। प्रीति रीति संपदा सुहाई॥
बहुबिधि भूप भाट जिमि बरनी। रानीं सब प्रमुदित सुनि करनी॥4॥

भावार्थ:-राजा जनक के गुण, शील, महत्व, प्रीति की रीति और सुहावनी सम्पत्ति का वर्णन राजा ने भाट की तरह बहुत प्रकार से किया। जनकजी की करनी सुनकर सब रानियाँ बहुत प्रसन्न हुईं॥4॥

दोहा :

* सुतन्ह समेत नहाइ नृप बोलि बिप्र गुर ग्याति।
भोजन कीन्ह अनेक बिधि घरी पंच गइ राति॥354॥

भावार्थ:-पुत्रों सहित स्नान करके राजा ने ब्राह्मण, गुरु और कुटुम्बियों को बुलाकर अनेक प्रकार के भोजन किए। (यह सब करते-करते) पाँच घड़ी रात बीत गई॥354॥

चौपाई :

* मंगलगान करहिं बर भामिनि। भै सुखमूल मनोहर जामिनि॥
अँचइ पान सब काहूँ पाए। स्रग सुगंध भूषित छबि छाए॥1॥

भावार्थ:-सुंदर स्त्रियाँ मंगलगान कर रही हैं। वह रात्रि सुख की मूल और मनोहारिणी हो गई। सबने आचमन करके पान खाए और फूलों की माला, सुगंधित द्रव्य आदि से विभूषित होकर सब शोभा से छा गए॥1॥

* रामहि देखि रजायसु पाई। निज निज भवन चले सिर नाई॥
प्रेम प्रमोदु बिनोदु बड़ाई। समउ समाजु मनोहरताई॥2॥

भावार्थ:-श्री रामचन्द्रजी को देखकर और आज्ञा पाकर सब सिर नवाकर अपने-अपने घर को चले। वहाँ के प्रेम, आनंद, विनोद, महत्व, समय, समाज और मनोहरता को-॥2॥

* कहि न सकहिं सतसारद सेसू। बेद बिरंचि महेस गनेसू॥
सो मैं कहौं कवन बिधि बरनी। भूमिनागु सिर धरइ कि धरनी॥3॥

भावार्थ:-सैकड़ों सरस्वती, शेष, वेद, ब्रह्मा, महादेवजी और गणेशजी भी नहीं कह सकते। फिर भला मैं उसे किस प्रकार से बखानकर कहूँ? कहीं केंचुआ भी धरती को सिर पर ले सकता है?॥3॥

* नृप सब भाँति सबहि सनमानी। कहि मृदु बचन बोलाईं रानी॥
बधू लरिकनीं पर घर आईं। राखेहु नयन पलक की नाईं॥4॥

भावार्थ:-राजा ने सबका सब प्रकार से सम्मान करके, कोमल वचन कहकर रानियों को बुलाया और कहा- बहुएँ अभी बच्ची हैं, पराए घर आई हैं। इनको इस तरह से रखना जैसे नेत्रों को पलकें रखती हैं (जैसे पलकें नेत्रों की सब प्रकार से रक्षा करती हैं और उन्हें सुख पहुँचाती हैं, वैसे ही इनको सुख पहुँचाना)॥4॥

दोहा :

* लरिका श्रमित उनीद बस सयन करावहु जाइ।
अस कहि गे बिश्रामगृहँ राम चरन चितु लाइ॥355॥

भावार्थ:-लड़के थके हुए नींद के वश हो रहे हैं, इन्हें ले जाकर शयन कराओ। ऐसा कहकर राजा श्री रामचन्द्रजी के चरणों में मन लगाकर विश्राम भवन में चले गए॥355॥

चौपाई :

* भूप बचन सुनि सहज सुहाए। जरित कनक मनि पलँग डसाए॥

सुभग सुरभि पय फेन समाना। कोमल कलित सुपेतीं नाना॥1॥

भावार्थ:-राजा के स्वाभव से ही सुंदर वचन सुनकर (रानियों ने) मणियों से जड़े सुवर्ण के पलँग बिछवाए। (गद्दों पर) गो के फेन के समान सुंदर एवं कोमल अनेकों सफेद चादरें बिछाईं॥1॥

* उपबरहन बर बरनि न जाहीं। स्रग सुगंध मनिमंदिर माहीं॥

रतनदीप सुठि चारु चँदोवा। कहत न बनइ जान जेहिं जोवा॥2॥

भावार्थ:-सुंदर तकियों का वर्णन नहीं किया जा सकता। मणियों के मंदिर में फूलों की मालाएँ और सुगंध द्रव्य सजे हैं। सुंदर रत्नों के दीपकों और सुंदर चँदोवे की शोभा कहते नहीं बनती। जिसने उन्हें देखा हो, वही जान सकता है॥2॥

* सेज रुचिर रचि रामु उठाए। प्रेम समेत पलँग पौढ़ाए॥

अग्या पुनि पुनि भाइन्ह दीन्ही। निज निज सेज सयन तिन्ह कीन्ही॥3॥

भावार्थ:-इस प्रकार सुंदर शय्या सजाकर (माताओं ने) श्री रामचन्द्रजी को उठाया और प्रेम सहित पलँग पर पौढ़ाया। श्री रामजी ने बार-बार भाइयों को आज्ञा दी। तब वे भी अपनी-अपनी शय्याओं पर सो गए॥3॥

* देखि स्याम मृदु मंजुल गाता। कहहिं सप्रेम बचन सब माता॥

मारग जात भयावनि भारी। केहि बिधि तात ताड़का मारी॥4॥

भावार्थ:-श्री रामजी के साँवले सुंदर कोमल अँगों को देखकर सब माताएँ प्रेम सहित वचन कह रही हैं- हे तात! मार्ग में जाते हुए तुमने बड़ी भयावनी ताड़का राक्षसी को किस प्रकार से मारा?॥4॥

दोहा :

* घोर निसाचर बिकट भट समर गनहिं नहिं काहु।

मारे सहित सहाय किमि खल मारीच सुबाहु॥356॥

भावार्थ:-बड़े भयानक राक्षस, जो विकट योद्धा थे और जो युद्ध में किसी को कुछ नहीं गिनते थे, उन दुष्ट मारीच और सुबाहु को सहायकों सहित तुमने कैसे मारा?॥356॥

चौपाई :

* मुनि प्रसाद बलि तात तुम्हारी। ईस अनेक करवरें टारी॥
मख रखवारी करि दुहुँ भाईं। गुरु प्रसाद सब बिद्या पाईं॥1॥

भावार्थ:-हे तात! मैं बलैया लेती हूँ, मुनि की कृपा से ही ईश्वर ने तुम्हारी बहुत सी बलाओं को टाल दिया। दोनों भाइयों ने यज्ञ की रखवाली करके गुरुजी के प्रसाद से सब विद्याएँ पाईं॥1॥

* मुनितिय तरी लगत पग धूरी। कीरति रही भुवन भरि पूरी॥
कमठ पीठि पबि कूट कठोरा। नृप समाज महुँ सिव धनु तोरा॥2॥

भावार्थ:-चरणों की धूलि लगते ही मुनि पत्नी अहल्या तर गई। विश्वभर में यह कीर्ति पूर्ण रीति से व्याप्त हो गई। कच्छप की पीठ, वज्र और पर्वत से भी कठोर शिवजी के धनुष को राजाओं के समाज में तुमने तोड़ दिया!॥2॥

* बिस्व बिजय जसु जानकि पाई। आए भवन ब्याहि सब भाई॥
सकल अमानुष करम तुम्हारे। केवल कौसिक कृपाँ सुधारे॥3॥

भावार्थ:-विश्वविजय के यश और जानकी को पाया और सब भाइयों को ब्याहकर घर आए। तुम्हारे सभी कर्म अमानुषी हैं (मनुष्य की शक्ति के बाहर हैं), जिन्हें केवल विश्वामित्रजी की कृपा ने सुधारा है (सम्पन्न किया है)॥3॥

* आजु सुफल जग जनमु हमारा। देखि तात बिधुबदन तुम्हारा॥
जे दिन गए तुम्हहि बिनु देखें। ते बिरंचि जनि पारहिं लेखें॥4॥

भावार्थ:-हे तात! तुम्हारा चन्द्रमुख देखकर आज हमारा जगत में जन्म लेना सफल हुआ। तुमको बिना देखे जो दिन बीते हैं, उनको ब्रह्मा गिनती में न लावें (हमारी आयु में शामिल न करें)॥4॥

दोहा :

* राम प्रतोषीं मातु सब कहि बिनीत बर बैन।
सुमिरि संभु गुरु बिप्र पद किए नीदबस नैन॥357॥

भावार्थ:-विनय भरे उत्तम वचन कहकर श्री रामचन्द्रजी ने सब माताओं को संतुष्ट किया। फिर शिवजी, गुरु और ब्राह्मणों के चरणों का स्मरण कर नेत्रों को नींद के वश किया। (अर्थात वे सो रहे)॥357॥

चौपाई :

* नीदउँ बदन सोह सुठि लोना। मनहुँ साँझ सरसीरुह सोना॥
घर घर करहिं जागरन नारीं। देहिं परसपर मंगल गारीं॥1॥

भावार्थ:-नींद में भी उनका अत्यन्त सलोना मुखड़ा ऐसा सोह रहा था, मानो संध्या के समय का लाल कमल सोह रहा हो। स्त्रियाँ घर-घर जागरण कर रही हैं और आपस में (एक-दूसरी को) मंगलमयी गालियाँ दे रही हैं॥1॥

* पुरी बिराजति राजति रजनी। रानीं कहहिं बिलोकहु सजनी॥
सुंदर बधुन्ह सासु लै सोईं। फनिकन्ह जनु सिरमनि उर गोईं॥2॥

भावार्थ:-रानियाँ कहती हैं- हे सजनी! देखो, (आज) रात्रि की कैसी शोभा है, जिससे अयोध्यापुरी विशेष शोभित हो रही है! (यों कहती हुई) सासुएँ सुंदर बहुओं को लेकर सो गईं, मानो सर्पों ने अपने सिर की मणियों को हृदय में छिपा लिया है॥2॥

* प्रात पुनीत काल प्रभु जागे। अरुनचूड़ बर बोलन लागे॥

बंदि मागधन्हि गुनगन गाए। पुरजन द्वार जोहारन आए॥3॥

भावार्थ:-प्रातःकाल पवित्र ब्रह्म मुहूर्त में प्रभु जागे। मुर्गे सुंदर बोलने लगे। भाट और मागधों ने गुणों का गान किया तथा नगर के लोग द्वार पर जोहार करने को आए॥3॥

* बंदि बिप्र सुर गुर पितु माता। पाइ असीस मुदित सब भ्राता॥
जननिन्ह सादर बदन निहारे। भूपति संग द्वार पगु धारे॥4॥

भावार्थ:-ब्राह्मणों, देवताओं, गुरु, पिता और माताओं की वंदना करके आशीर्वाद पाकर सब भाई प्रसन्न हुए। माताओं ने आदर के साथ उनके मुखों को देखा। फिर वे राजा के साथ दरवाजे (बाहर) पधारे॥4॥

दोहा :

* कीन्हि सौच सब सहज सुचि सरित पुनीत नहाइ।
प्रातक्रिया करि तात पहिं आए चारिउ भाइ॥358॥

भावार्थ:-स्वभाव से ही पवित्र चारों भाइयों ने सब शौचादि से निवृत्त होकर पवित्र सरयू नदी में स्नान किया और प्रातःक्रिया (संध्या वंदनादि) करके वे पिता के पास आए॥358॥

नवाह्नपारायण, तीसरा विश्राम

चौपाई :

* भूप बिलोकि लिए उर लाई। बैठे हरषि रजायसु पाई॥
देखि रामु सब सभा जुड़ानी। लोचन लाभ अवधि अनुमानी॥1॥

भावार्थ:-राजा ने देखते ही उन्हें हृदय से लगा लिया। तदनन्तर वे आज्ञा पाकर हर्षित होकर बैठ गए। श्री रामचन्द्रजी के दर्शन कर और नेत्रों के लाभ की बस यही सीमा है, ऐसा अनुमान कर सारी सभा शीतल हो गई। (अर्थात सबके तीनों प्रकार के ताप सदा के लिए मिट गए)॥1॥

* पुनि बसिष्टु मुनि कौसिकु आए। सुभग आसनन्हि मुनि बैठाए॥

सुतन्ह समेत पूजि पद लागे। निरखि रामु दोउ गुर अनुरागे॥2॥
भावार्थ:-फिर मुनि वशिष्ठजी और विश्वामित्रजी आए। राजा ने उनको सुंदर आसनों पर बैठाया और पुत्रों समेत उनकी पूजा करके उनके चरणों लगे। दोनों गुरु श्री रामजी को देखकर प्रेम में मुग्ध हो गए॥2॥

* कहहिं बसिष्टु धरम इतिहासा। सुनहिं महीसु सहित रनिवासा॥
मुनि मन अगम गाधिसुत करनी। मुदित बसिष्ठ बिपुल बिधि बरनी॥3॥
भावार्थ:-वशिष्ठजी धर्म के इतिहास कह रहे हैं और राजा रनिवास सहित सुन रहे हैं, जो मुनियों के मन को भी अगम्य है, ऐसी विश्वामित्रजी की करनी को वशिष्ठजी ने आनंदित होकर बहुत प्रकार से वर्णन किया॥3॥

* बोले बामदेउ सब साँची। कीरति कलित लोक तिहुँ माची॥
सुनि आनंदु भयउ सब काहू। राम लखन उर अधिक उछाहू॥4॥
भावार्थ:-वामदेवजी बोले- ये सब बातें सत्य हैं। विश्वामित्रजी की सुंदर कीर्ति तीनों लोकों में छाई हुई है। यह सुनकर सब किसी को आनंद हुआ। श्री राम-लक्ष्मण के हृदय में अधिक उत्साह (आनंद) हुआ॥4॥

दोहा :

* मंगल मोद उछाह नित जाहिं दिवस एहि भाँति।
उमगी अवध अनंद भरि अधिक अधिक अधिकाति॥359॥
भावार्थ:-नित्य ही मंगल, आनंद और उत्सव होते हैं, इस तरह आनंद में दिन बीतते जाते हैं। अयोध्या आनंद से भरकर उमड़ पड़ी, आनंद की अधिकता अधिक-अधिक बढ़ती ही जा रही है॥359॥

चौपाई :

* सुदिन सोधि कल कंकन छोरे। मंगल मोद बिनोद न थोरे॥
नित नव सुखु सुर देखि सिहाहीं। अवध जन्म जाचहिं बिधि पाहीं॥1॥

भावार्थ:-अच्छा दिन (शुभ मुहूर्त) शोधकर सुंदर कंकण खोले गए। मंगल, आनंद और विनोद कुछ कम नहीं हुए (अर्थात बहुत हुए)। इस प्रकार नित्य नए सुख को देखकर देवता सिहाते हैं और अयोध्या में जन्म पाने के लिए ब्रह्माजी से याचना करते हैं॥1॥

* बिस्वामित्रु चलन नित चहहीं। राम सप्रेम बिनय बस रहहीं॥
दिन दिन सयगुन भूपति भाऊ। देखि सराह महामुनिराऊ॥2॥

भावार्थ:-विश्वामित्रजी नित्य ही चलना (अपने आश्रम जाना) चाहते हैं, पर रामचन्द्रजी के स्नेह और विनयवश रह जाते हैं। दिनोंदिन राजा का सौ गुना भाव (प्रेम) देखकर महामुनिराज विश्वामित्रजी उनकी सराहना करते हैं॥2॥

* मागत बिदा राउ अनुरागे। सुतन्ह समेत ठाढ़ भे आगे॥
नाथ सकल संपदा तुम्हारी। मैं सेवकु समेत सुत नारी॥3॥

भावार्थ:-अंत में जब विश्वामित्रजी ने विदा माँगी, तब राजा प्रेममग्न हो गए और पुत्रों सहित आगे खड़े हो गए। (वे बोले-) हे नाथ! यह सारी सम्पदा आपकी है। मैं तो स्त्री-पुत्रों सहित आपका सेवक हूँ॥3॥

* करब सदा लरिकन्ह पर छोहू। दरसनु देत रहब मुनि मोहू॥
अस कहि राउ सहित सुत रानी। परेउ चरन मुख आव न बानी॥4॥

भावार्थ:-हे मुनि! लड़कों पर सदा स्नेह करते रहिएगा और मुझे भी दर्शन देते रहिएगा। ऐसा कहकर पुत्रों और रानियों सहित राजा दशरथजी विश्वामित्रजी के चरणों पर गिर पड़े, (प्रेमविह्वल हो जाने के कारण) उनके मुँह से बात नहीं निकलती॥4॥

* दीन्हि असीस बिप्र बहु भाँति। चले न प्रीति रीति कहि जाती॥
रामु सप्रेम संग सब भाई। आयसु पाइ फिरे पहुँचाई॥5॥

भावार्थ:-ब्राह्मण विश्वमित्रजी ने बहुत प्रकार से आशीर्वाद दिए और वे चल पड़े। प्रीति की रीति कही नहीं जीती। सब भाइयों को साथ लेकर श्री रामजी प्रेम के साथ उन्हें पहुँचाकर और आज्ञा पाकर लौटे॥5॥

श्री रामचरित् सुनने-गाने की महिमा

दोहा :

* राम रूपु भूपति भगति ब्याहु उछाहु अनंदु।
जात सराहत मनहिं मन मुदित गाधिकुलचंदु॥360॥

भावार्थ:-गाधिकुल के चन्द्रमा विश्वामित्रजी बड़े हर्ष के साथ श्री रामचन्द्रजी के रूप, राजा दशरथजी की भक्ति, (चारों भाइयों के) विवाह और (सबके) उत्साह और आनंद को मन ही मन सराहते जाते हैं॥360॥

चौपाई :

* बामदेव रघुकुल गुर ग्यानी। बहुरि गाधिसुत कथा बखानी॥
सुनि मुनि सुजसु मनहिं मन राऊ। बरनत आपन पुन्य प्रभाऊ॥1॥

भावार्थ:-वामदेवजी और रघुकुल के गुरु ज्ञानी वशिष्ठजी ने फिर विश्वामित्रजी की कथा बखानकर कही। मुनि का सुंदर यश सुनकर राजा मन ही मन अपने पुण्यों के प्रभाव का बखान करने लगे॥1॥

* बहुरे लोग रजायसु भयऊ। सुतन्ह समेत नृपति गृहँ गयऊ॥
जहँ तहँ राम ब्याहु सबु गावा। सुजसु पुनीत लोक तिहुँ छावा॥2॥

भावार्थ:-आज्ञा हुई तब सब लोग (अपने-अपने घरों को) लौटे। राजा दशरथजी भी पुत्रों सहित महल में गए। जहाँ-तहाँ सब श्री रामचन्द्रजी के विवाह की गाथाएँ गा रहे हैं। श्री रामचन्द्रजी का पवित्र सुयश तीनों लोकों में छा गया॥2॥

* आए ब्याहि रामु घर जब तें। बसइ अनंद अवध सब तब तें॥
प्रभु बिबाहँ जस भयउ उछाहू। सकहिं न बरनि गिरा अहिनाहू॥3॥

भावार्थ:-जब से श्री रामचन्द्रजी विवाह करके घर आए, तब से सब प्रकार का आनंद अयोध्या में आकर बसने लगा। प्रभु के विवाह में आनंद-उत्साह हुआ, उसे सरस्वती और सर्पों के राजा शेषजी भी नहीं कह सकते॥3॥

* कबिकुल जीवनु पावन जानी। राम सीय जसु मंगल खानी॥
तेहि ते मैं कछु कहा बखानी। करन पुनीत हेतु निज बानी॥4॥

भावार्थ:-श्री सीतारामजी के यश को कविकुल के जीवन को पवित्र करने वाला और मंगलों की खान जानकर, इससे मैंने अपनी वाणी को पवित्र करने के लिए कुछ (थोड़ा सा) बखानकर कहा है॥4॥

छन्द :

* निज गिरा पावनि करन कारन राम जसु तुलसीं कह्यो।
रघुबीर चरित अपार बारिधि पारु कबि कौनें लह्यो॥
उपबीत ब्याह उछाह मंगल सुनि जे सादर गावहीं।
बैदेहि राम प्रसाद ते जन सर्बदा सुखु पावहीं॥

भावार्थ:-अपनी वाणी को पवित्र करने के लिए तुलसी ने राम का यश कहा है। (नहीं तो) श्री रघुनाथजी का चरित्र अपार समुद्र है, किस कवि ने उसका पार पाया है? जो लोग यज्ञोपवीत और विवाह के मंगलमय उत्सव का वर्णन आदर के साथ सुनकर गावेंगे, वे लोग श्री जानकीजी और श्री रामजी की कृपा से सदा सुख पावेंगे।

सोरठा :

* सिय रघुबीर बिबाहु जे सप्रेम गावहिं सुनहिं।
तिन्ह कहुँ सदा उछाहु मंगलायतन राम जसु॥361॥

भावार्थ:-श्री सीताजी और श्री रघुनाथजी के विवाह प्रसंग को जो लोग प्रेमपूर्वक गाएँ-सुनेंगे, उनके लिए सदा उत्साह (आनंद) ही उत्साह है, क्योंकि श्री रामचन्द्रजी का यश मंगल का धाम है॥361॥

* मासपारायण, बारहवाँ विश्राम

इति श्रीमद्रामचरितमानसे सकलकलिकलुषविध्वंसने प्रथमः सोपानः समाप्तः।

कलियुग के सम्पूर्ण पापों को विध्वंस करने वाले श्री रामचरित मानस का यह पहला सोपान समाप्त हुआ॥

(बाल-काण्ड समाप्त)

गीताप्रेस गोरखपुर

श्री रामचरितमानस

अयोध्याकाण्ड

द्वितीय सोपान-मंगलाचरण

श्लोक :

* यस्यांके च विभाति भूधरसुता देवापगा मस्तके
भाले बालविधुर्गले च गरलं यस्योरसि व्यालराट्।
सोऽयं भूतिविभूषणः सुरवरः सर्वाधिपः सर्वदा
शर्वः सर्वगतः शिवः शशिनिभः श्री शंकरः पातु माम्॥1॥

भावार्थ:-जिनकी गोद में हिमाचलसुता पार्वतीजी, मस्तक पर गंगाजी, ललाट पर द्वितीया का चन्द्रमा, कंठ में हलाहल विष और वक्षःस्थल पर सर्पराज शेषजी सुशोभित हैं, वे भस्म से विभूषित, देवताओं में श्रेष्ठ, सर्वेश्वर, संहारकर्ता (या भक्तों के पापनाशक), सर्वव्यापक, कल्याण रूप, चन्द्रमा के समान शुभ्रवर्ण श्री शंकरजी सदा मेरी रक्षा करें॥1॥

* प्रसन्नतां या न गताभिषेकतस्तथा न मम्ले वनवासदुःखतः।
मुखाम्बुजश्री रघुनन्दनस्य मे सदास्तु सा मंजुलमंगलप्रदा॥2॥

भावार्थ:-रघुकुल को आनंद देने वाले श्री रामचन्द्रजी के मुखारविंद की जो शोभा राज्याभिषेक से (राज्याभिषेक की बात सुनकर) न तो प्रसन्नता को प्राप्त हुई और न वनवास के दुःख से मलिन ही हुई, वह (मुखकमल की छबि) मेरे लिए सदा सुंदर मंगलों की देने वाली हो॥2॥

* नीलाम्बुजश्यामलकोमलांग सीतासमारोपितवामभागम्।

पाणौ महासायकचारुचापं नमामि रामं रघुवंशनाथम्॥3॥

भावार्थ:-नीले कमल के समान श्याम और कोमल जिनके अंग हैं, श्री सीताजी जिनके वाम भाग में विराजमान हैं और जिनके हाथों में (क्रमशः) अमोघ बाण और सुंदर धनुष है, उन रघुवंश के स्वामी श्री रामचन्द्रजी को मैं नमस्कार करता हूँ॥3॥

दोहा :

* श्री गुरु चरन सरोज रज निज मनु मुकुरु सुधारि।
बरनउँ रघुबर बिमल जसु जो दायकु फल चारि॥

भावार्थ:-श्री गुरुजी के चरण कमलों की रज से अपने मन रूपी दर्पण को साफ करके मैं श्री रघुनाथजी के उस निर्मल यश का वर्णन करता हूँ, जो चारों फलों को (धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष को) देने वाला है।

चौपाई :

* जब तें रामु ब्याहि घर आए। नित नव मंगल मोद बधाए॥
भुवन चारिदस भूधर भारी। सुकृत मेघ बरषहिं सुख बारी॥1॥

भावार्थ:-जब से श्री रामचन्द्रजी विवाह करके घर आए, तब से (अयोध्या में) नित्य नए मंगल हो रहे हैं और आनंद के बधावे बज रहे हैं। चौदहों लोक रूपी बड़े भारी पर्वतों पर पुण्य रूपी मेघ सुख रूपी जल बरसा रहे हैं॥1॥

* रिधि सिधि संपति नदीं सुहाई। उमगि अवध अंबुधि कहुँ आई॥
मनिगन पुर नर नारि सुजाती। सुचि अमोल सुंदर सब भाँती॥2॥

भावार्थ:-ऋद्धि-सिद्धि और सम्पत्ति रूपी सुहावनी नदियाँ उमड़-उमड़कर अयोध्या रूपी समुद्र में आ मिलीं। नगर के स्त्री-पुरुष

अच्छी जाति के मणियों के समूह हैं, जो सब प्रकार से पवित्र, अमूल्य और सुंदर हैं॥2॥

* कहि न जाइ कछु नगर बिभूती। जनु एतनिअ बिरंचि करतूती॥
सब बिधि सब पुर लोग सुखारी। रामचंद मुख चंदु निहारी॥3॥

भावार्थ:-नगर का ऐश्वर्य कुछ कहा नहीं जाता। ऐसा जान पड़ता है, मानो ब्रह्माजी की कारीगरी बस इतनी ही है। सब नगर निवासी श्री रामचन्द्रजी के मुखचन्द्र को देखकर सब प्रकार से सुखी हैं॥3॥

* मुदित मातु सब सखीं सहेली। फलित बिलोकि मनोरथ बेली॥
राम रूपु गुन सीलु सुभाऊ। प्रमुदित होइ देखि सुनि राऊ॥4॥

भावार्थ:-सब माताएँ और सखी-सहेलियाँ अपनी मनोरथ रूपी बेल को फली हुई देखकर आनंदित हैं। श्री रामचन्द्रजी के रूप, गुण, शील और स्वभाव को देख-सुनकर राजा दशरथजी बहुत ही आनंदित होते हैं॥4॥

गीताप्रेस गोरखपुर

गीताप्रेस गोरखपुर

राम राज्याभिषेक की तैयारी, देवताओं की व्याकुलता तथा सरस्वती से उनकी प्रार्थना

दोहा :

* सब कें उर अभिलाषु अस कहहिं मनाइ महेसु।
आप अछत जुबराज पद रामहि देउ नरेसु॥1॥

भावार्थ:-सबके हृदय में ऐसी अभिलाषा है और सब महादेवजी को मनाकर (प्रार्थना करके) कहते हैं कि राजा अपने जीते जी श्री रामचन्द्रजी को युवराज पद दे दें॥1॥

चौपाई :

* एक समय सब सहित समाजा। राजसभाँ रघुराजु बिराजा॥
सकल सुकृत मूरति नरनाहू। राम सुजसु सुनि अतिहि उछाहू॥1॥

भावार्थ:-एक समय रघुकुल के राजा दशरथजी अपने सारे समाज सहित राजसभा में विराजमान थे। महाराज समस्त पुण्यों की मूर्ति हैं, उन्हें श्री रामचन्द्रजी का सुंदर यश सुनकर अत्यन्त आनंद हो रहा है॥1॥

* नृप सब रहहिं कृपा अभिलाषें। लोकप करहिं प्रीति रुख
राखें॥वन तीनि काल जग माहीं। भूरिभाग दसरथ सम नाहीं॥2॥

भावार्थ:-सब राजा उनकी कृपा चाहते हैं और लोकपालगण उनके रुख को रखते हुए (अनुकूल होकर) प्रीति करते हैं। (पृथ्वी, आकाश, पाताल) तीनों भुवनों में और (भूत, भविष्य, वर्तमान) तीनों कालों में दशरथजी के समान बड़भागी (और) कोई नहीं है॥2॥

* मंगलमूल रामु सुत जासू। जो कछु कहिअ थोर सबु तासू॥
रायँ सुभायँ मुकुरु कर लीन्हा। बदनु बिलोकि मुकुटु सम
कीन्हा॥3॥

भावार्थ:-मंगलों के मूल श्री रामचन्द्रजी जिनके पुत्र हैं, उनके लिए जो कुछ कहा जाए सब थोड़ा है। राजा ने स्वाभाविक ही

हाथ में दर्पण ले लिया और उसमें अपना मुँह देखकर मुकुट को सीधा किया॥3॥

* श्रवन समीप भए सित केसा। मनहुँ जरठपनु अस उपदेसा॥
नृप जुबराजु राम कहुँ देहू। जीवन जनम लाहु किन लेहू॥4॥

भावार्थ:-(देखा कि) कानों के पास बाल सफेद हो गए हैं, मानो बुढ़ापा ऐसा उपदेश कर रहा है कि हे राजन्! श्री रामचन्द्रजी को युवराज पद देकर अपने जीवन और जन्म का लाभ क्यों नहीं लेते॥4॥

दोहा :

* यह बिचारु उर आनि नृप सुदिनु सुअवसरु पाइ।
प्रेम पुलकि तन मुदित मन गुरहि सुनायउ जाइ॥2॥

भावार्थ:-हृदय में यह विचार लाकर (युवराज पद देने का निश्चय कर) राजा दशरथजी ने शुभ दिन और सुंदर समय पाकर, प्रेम से पुलकित शरीर हो आनंदमग्न मन से उसे गुरु वशिष्ठजी को जा सुनाया॥2॥

चौपाई :

* कहइ भुआलु सुनिअ मुनिनायक। भए राम सब बिधि सब लायक॥
सेवक सचिव सकल पुरबासी। जे हमार अरि मित्र उदासी॥1॥

भावार्थ:-राजा ने कहा- हे मुनिराज! (कृपया यह निवेदन) सुनिए। श्री रामचन्द्रजी अब सब प्रकार से सब योग्य हो गए हैं। सेवक, मंत्री, सब नगर निवासी और जो हमारे शत्रु, मित्र या उदासीन हैं-॥1॥

* सबहि रामु प्रिय जेहि बिधि मोही। प्रभु असीस जनु तनु धरि सोही॥
बिप्र सहित परिवार गोसाईं। करहिं छोहु सब रौरिहि नाईं॥2॥

भावार्थ:-सभी को श्री रामचन्द्र वैसे ही प्रिय हैं, जैसे वे मुझको हैं। (उनके रूप में) आपका आशीर्वाद ही मानो शरीर धारण करके शोभित हो रहा है। हे स्वामी! सारे ब्राह्मण, परिवार सहित आपके ही समान उन पर स्नेह करते हैं॥2॥

* जे गुर चरन रेनु सिर धरहीं। ते जनु सकल बिभव बस करहीं॥
मोहि सम यहु अनुभयउ न दूजे

गीताप्रेस गोरखपुर

राम राज्याभिषेक की तैयारी, देवताओं की व्याकुलता तथा सरस्वती से उनकी प्रार्थना

दोहा :

* सब कें उर अभिलाषु अस कहहिं मनाइ महेसु।
आप अछत जुबराज पद रामहि देउ नरेसु॥1॥

भावार्थ:-सबके हृदय में ऐसी अभिलाषा है और सब महादेवजी को मनाकर (प्रार्थना करके) कहते हैं कि राजा अपने जीते जी श्री रामचन्द्रजी को युवराज पद दे दें॥1॥

चौपाई :

* एक समय सब सहित समाजा। राजसभाँ रघुराजु बिराजा॥
सकल सुकृत मूरति नरनाहू। राम सुजसु सुनि अतिहि उछाहू॥1॥

भावार्थ:-एक समय रघुकुल के राजा दशरथजी अपने सारे समाज सहित राजसभा में विराजमान थे। महाराज समस्त पुण्यों की मूर्ति हैं, उन्हें श्री रामचन्द्रजी का सुंदर यश सुनकर अत्यन्त आनंद हो रहा है॥1॥

* नृप सब रहहिं कृपा अभिलाषें। लोकप करहिं प्रीति रुख राखें॥वन तीनि काल जग माहीं। भूरिभाग दसरथ सम नाहीं॥2॥

भावार्थ:-सब राजा उनकी कृपा चाहते हैं और लोकपालगण उनके रुख को रखते हुए (अनुकूल होकर) प्रीति करते हैं। (पृथ्वी, आकाश, पाताल) तीनों भुवनों में और (भूत, भविष्य, वर्तमान)

तीनों कालों में दशरथजी के समान बड़भागी (और) कोई नहीं है॥2॥

* मंगलमूल रामु सुत जासू। जो कछु कहिअ थोर सबु तासू॥
रायँ सुभायँ मुकुरु कर लीन्हा। बदनु बिलोकि मुकुटु सम कीन्हा॥3॥

भावार्थ:-मंगलों के मूल श्री रामचन्द्रजी जिनके पुत्र हैं, उनके लिए जो कुछ कहा जाए सब थोड़ा है। राजा ने स्वाभाविक ही हाथ में दर्पण ले लिया और उसमें अपना मुँह देखकर मुकुट को सीधा किया॥3॥

* श्रवन समीप भए सित केसा। मनहुँ जरठपनु अस उपदेसा॥
नृप जुबराजु राम कहुँ देहू। जीवन जनम लाहु किन लेहू॥4॥

भावार्थ:-(देखा कि) कानों के पास बाल सफेद हो गए हैं, मानो बुढ़ापा ऐसा उपदेश कर रहा है कि हे राजन्! श्री रामचन्द्रजी को युवराज पद देकर अपने जीवन और जन्म का लाभ क्यों नहीं लेते॥4॥

दोहा :

* यह बिचारु उर आनि नृप सुदिनु सुअवसरु पाइ।
प्रेम पुलकि तन मुदित मन गुरहि सुनायउ जाइ॥2॥

भावार्थ:-हृदय में यह विचार लाकर (युवराज पद देने का निश्चय कर) राजा दशरथजी ने शुभ दिन और सुंदर समय पाकर, प्रेम से पुलकित शरीर हो आनंदमग्न मन से उसे गुरु वशिष्ठजी को जा सुनाया॥2॥

चौपाई :

* कहइ भुआलु सुनिअ मुनिनायक। भए राम सब बिधि सब लायक॥
सेवक सचिव सकल पुरबासी। जे हमार अरि मित्र उदासी॥1॥

भावार्थ:-राजा ने कहा- हे मुनिराज! (कृपया यह निवेदन) सुनिए। श्री रामचन्द्रजी अब सब प्रकार से सब योग्य हो गए हैं। सेवक, मंत्री, सब नगर निवासी और जो हमारे शत्रु, मित्र या उदासीन हैं-॥1॥

* सबहि रामु प्रिय जेहि बिधि मोही। प्रभु असीस जनु तनु धरि सोही॥
बिप्र सहित परिवार गोसाईं। करहिं छोहु सब रौरिहि नाईं॥2॥

भावार्थ:-सभी को श्री रामचन्द्र वैसे ही प्रिय हैं, जैसे वे मुझको हैं। (उनके रूप में) आपका आशीर्वाद ही मानो शरीर धारण करके शोभित हो रहा है। हे स्वामी! सारे ब्राह्मण, परिवार सहित आपके ही समान उन पर स्नेह करते हैं॥2॥

* जे गुर चरन रेनु सिर धरहीं। ते जनु सकल बिभव बस करहीं॥
मोहि सम यहु अनुभयउ न दूजें। सबु पायउँ रज पावनि पूजें॥3॥

भावार्थ:-जो लोग गुरु के चरणों की रज को मस्तक पर धारण करते हैं, वे मानो समस्त ऐश्वर्य को अपने वश में कर लेते हैं। इसका अनुभव मेरे समान दूसरे किसी ने नहीं किया। आपकी पवित्र चरण रज की पूजा करके मैंने सब कुछ पा लिया॥3॥

* अब अभिलाषु एकु मन मोरें। पूजिहि नाथ अनुग्रह तोरें॥
मुनि प्रसन्न लखि सहज सनेहू। कहेउ नरेस रजायसु देहू॥4॥

भावार्थ:-अब मेरे मन में एक ही अभिलाषा है। हे नाथ! वह भी आप ही के अनुग्रह से पूरी होगी। राजा का सहज प्रेम देखकर मुनि ने प्रसन्न होकर कहा- नरेश! आज्ञा दीजिए (कहिए, क्या अभिलाषा है?)॥4॥

दोहा :

* राजन राउर नामु जसु सब अभिमत दातार।
फल अनुगामी महिप मनि मन अभिलाषु तुम्हार॥3॥

भावार्थ:-हे राजन! आपका नाम और यश ही सम्पूर्ण मनचाही वस्तुओं को देने वाला है। हे राजाओं के मुकुटमणि! आपके मन की अभिलाषा फल का अनुगमन करती है (अर्थात आपके इच्छा करने के पहले ही फल उत्पन्न हो जाता है)॥3॥

चौपाई :

* सब बिधि गुरु प्रसन्न जियँ जानी। बोलेउ राउ रहँसि मृदु बानी॥
नाथ रामु करिअहिं जुबराजू। कहिअ कृपा करि करिअ समाजू॥1॥

भावार्थ:-अपने जी में गुरुजी को सब प्रकार से प्रसन्न जानकर, हर्षित होकर राजा कोमल वाणी से बोले- हे नाथ! श्री रामचन्द्र को युवराज कीजिए। कृपा करके कहिए (आज्ञा दीजिए) तो तैयारी की जाए॥1॥

* मोहि अछत यहु होइ उछाहू। लहहिं लोग सब लोचन लाहू॥
प्रभु प्रसाद सिव सबइ निबाहीं। यह लालसा एक मन माहीं॥2॥

भावार्थ:-मेरे जीते जी यह आनंद उत्सव हो जाए, (जिससे) सब लोग अपने नेत्रों का लाभ प्राप्त करें। प्रभु (आप) के प्रसाद से

शिवजी ने सब कुछ निबाह दिया (सब इच्छाएँ पूर्ण कर दीं), केवल यही एक लालसा मन में रह गई है॥2॥

* पुनि न सोच तनु रहउ कि जाऊ। जेहिं न होइ पाछें पछिताऊ॥
सुनि मुनि दसरथ बचन सुहाए। मंगल मोद मूल मन भाए॥3॥

भावार्थ:-(इस लालसा के पूर्ण हो जाने पर) फिर सोच नहीं, शरीर रहे या चला जाए, जिससे मुझे पीछे पछतावा न हो। दशरथजी के मंगल और आनंद के मूल सुंदर वचन सुनकर मुनि मन में बहुत प्रसन्न हुए॥3॥

* सुनु नृप जासु बिमुख पछिताहीं। जासु भजन बिनु जरनि न जाहीं॥
भयउ तुम्हार तनय सोइ स्वामी। रामु पुनीत प्रेम अनुगामी॥4॥

भावार्थ:-(वशिष्ठजी ने कहा-) हे राजन्! सुनिए, जिनसे विमुख होकर लोग पछताते हैं और जिनके भजन बिना जी की जलन नहीं जाती, वही स्वामी (सर्वलोक महेश्वर) श्री रामजी आपके पुत्र हुए हैं, जो पवित्र प्रेम के अनुगामी हैं। (श्री रामजी पवित्र प्रेम के पीछे-पीछे चलने वाले हैं, इसी से तो प्रेमवश आपके पुत्र हुए हैं।)॥4॥

दोहा :

* बेगि बिलंबु न करिअ नृप साजिअ सबुइ समाजु।
सुदिन सुमंगलु तबहिं जब रामु होहिं जुबराजु॥4॥

भावार्थ:-हे राजन्! अब देर न कीजिए, शीघ्र सब सामान सजाइए। शुभ दिन और सुंदर मंगल तभी है, जब श्री

रामचन्द्रजी युवराज हो जाएँ (अर्थात उनके अभिषेक के लिए सभी दिन शुभ और मंगलमय हैं)॥4॥

चौपाई :

* मुदित महीपति मंदिर आए। सेवक सचिव सुमंत्रु बोलाए॥
कहि जयजीव सीस तिन्ह नाए। भूप सुमंगल बचन सुनाए॥1॥

भावार्थ:-राजा आनंदित होकर महल में आए और उन्होंने सेवकों को तथा मंत्री सुमंत्र को बुलवाया। उन लोगों ने 'जय-जीव' कहकर सिर नवाए। तब राजा ने सुंदर मंगलमय वचन (श्री रामजी को युवराज पद देने का प्रस्ताव) सुनाए॥1॥

* जौं पाँचहि मत लागै नीका। करहु हरषि हियँ रामहि टीका॥2॥

भावार्थ:-(और कहा-) यदि पंचों को (आप सबको) यह मत अच्छा लगे, तो हृदय में हर्षित होकर आप लोग श्री रामचन्द्र का राजतिलक कीजिए॥2॥

* मंत्री मुदित सुनत प्रिय बानी। अभिमत बिरवँ परेउ जनु पानी॥
बिनती सचिव करहिं कर जोरी। जिअहु जगतपति बरिस करोरी॥3॥

भावार्थ:-इस प्रिय वाणी को सुनते ही मंत्री ऐसे आनंदित हुए मानो उनके मनोरथ रूपी पौधे पर पानी पड़ गया हो। मंत्री हाथ जोड़कर विनती करते हैं कि हे जगत्पति! आप करोड़ों वर्ष जिएँ॥3॥

* जग मंगल भल काजु बिचारा। बेगिअ नाथ न लाइअ बारा॥

नृपहि मोदु सुनि सचिव सुभाषा। बढ़त बौंड़ जनु लही सुसाखा॥4॥

भावार्थ:-आपने जगतभर का मंगल करने वाला भला काम सोचा है। हे नाथ! शीघ्रता कीजिए, देर न लगाइए। मंत्रियों की सुंदर वाणी सुनकर राजा को ऐसा आनंद हुआ मानो बढ़ती हुई बेल सुंदर डाली का सहारा पा गई हो॥4॥

दोहा :

* कहेउ भूप मुनिराज कर जोइ जोइ आयसु होइ।
राम राज अभिषेक हित बेगि करहु सोइ सोइ॥5॥

भावार्थ:-राजा ने कहा- श्री रामचन्द्र के राज्याभिषेक के लिए मुनिराज वशिष्ठजी की जो-जो आज्ञा हो, आप लोग वही सब तुरंत करें॥5॥

चौपाई :

* हरषि मुनीस कहेउ मृदु बानी। आनहु सकल सुतीरथ पानी॥
औषध मूल फूल फल पाना। कहे नाम गनि मंगल नाना॥1॥

भावार्थ:-मुनिराज ने हर्षित होकर कोमल वाणी से कहा कि सम्पूर्ण श्रेष्ठ तीर्थों का जल ले आओ। फिर उन्होंने औषधि, मूल, फूल, फल और पत्र आदि अनेकों मांगलिक वस्तुओं के नाम गिनकर बताए॥1॥

* चामर चरम बसन बहु भाँती। रोम पाट पट अगनित जाती॥
मनिगन मंगल बस्तु अनेका। जो जग जोगु भूप अभिषेका॥2॥

भावार्थ:-चँवर, मृगचर्म, बहुत प्रकार के वस्त्र, असंख्यों जातियों के ऊनी और रेशमी कपड़े, (नाना प्रकार की) मणियाँ (रत्न) तथा

और भी बहुत सी मंगल वस्तुएँ, जो जगत में राज्याभिषेक के योग्य होती हैं, (सबको मँगाने की उन्होंने आज्ञा दी)॥2॥

* बेद बिदित कहि सकल बिधाना। कहेउ रचहु पुर बिबिध बिताना॥
सफल रसाल पूगफल केरा। रोपहु बीथिन्ह पुर चहुँ फेरा॥3॥

भावार्थ:-मुनि ने वेदों में कहा हुआ सब विधान बताकर कहा- नगर में बहुत से मंडप (चँदोवे) सजाओ। फलों समेत आम, सुपारी और केले के वृक्ष नगर की गलियों में चारों ओर रोप दो॥3॥

* रचहु मंजु मनि चौकें चारू। कहहु बनावन बेगि बजारू॥
पूजहु गनपति गुर कुलदेवा। सब बिधि करहु भूमिसुर सेवा॥4॥

भावार्थ:-सुंदर मणियों के मनोहर चौक पुरवाओ और बाजार को तुरंत सजाने के लिए कह दो। श्री गणेशजी, गुरु और कुलदेवता की पूजा करो और भूदेव ब्राह्मणों की सब प्रकार से सेवा करो॥4॥

दोहा :

* ध्वज पताक तोरन कलस सजहु तुरग रथ नाग।
सिर धरि मुनिबर बचन सबु निज निज काजहिं लाग॥6॥

भावार्थ:-ध्वजा, पताका, तोरण, कलश, घोड़े, रथ और हाथी सबको सजाओ! मुनि श्रेष्ठ वशिष्ठजी के वचनों को शिरोधार्य करके सब लोग अपने-अपने काम में लग गए॥6॥

चौपाई :

* जो मुनीस जेहि आयसु दीन्हा। सो तेहिं काजु प्रथम जनु कीन्हा॥

बिप्र साधु सुर पूजत राजा। करत राम हित मंगल काजा॥1॥

भावार्थ:-मुनीश्वर ने जिसको जिस काम के लिए आज्ञा दी, उसने वह काम (इतनी शीघ्रता से कर डाला कि) मानो पहले से ही कर रखा था। राजा ब्राह्मण, साधु और देवताओं को पूज रहे हैं और श्री रामचन्द्रजी के लिए सब मंगल कार्य कर रहे हैं॥1॥

* सुनत राम अभिषेक सुहावा। बाज गहागह अवध बधावा॥
राम सीय तन सगुन जनाए। फरकहिं मंगल अंग सुहाए॥2॥

भावार्थ:-श्री रामचन्द्रजी के राज्याभिषेक की सुहावनी खबर सुनते ही अवधभर में बड़ी धूम से बधावे बजने लगे। श्री रामचन्द्रजी और सीताजी के शरीर में भी शुभ शकुन सूचित हुए। उनके सुंदर मंगल अंग फड़कने लगे॥2॥

* पुलकि सप्रेम परसपर कहहीं। भरत आगमनु सूचक अहहीं॥
भए बहुत दिन अति अवसेरी। सगुन प्रतीति भेंट प्रिय केरी॥3॥

भावार्थ:-पुलकित होकर वे दोनों प्रेम सहित एक-दूसरे से कहते हैं कि ये सब शकुन भरत के आने की सूचना देने वाले हैं। (उनको मामा के घर गए) बहुत दिन हो गए, बहुत ही अवसेर आ रही है (बार-बार उनसे मिलने की मन में आती है) शकुनों से प्रिय (भरत) के मिलने का विश्वास होता है॥3॥

* भरत सरिस प्रिय को जग माहीं। इहइ सगुन फलु दूसर नाहीं॥
रामहि बंधु सोच दिन राती। अंडन्हि कमठ हृदय जेहि भाँती॥4॥

भावार्थ:-और भरत के समान जगत में (हमें) कौन प्यारा है! शकुन का बस, यही फल है, दूसरा नहीं। श्री रामचन्द्रजी को (अपने) भाई भरत का दिन-रात ऐसा सोच रहता है जैसा कछुए का हृदय अंडों में रहता है॥4॥

दोहा :

* एहि अवसर मंगलु परम सुनि रहँसेउ रनिवासु।
सोभत लखि बिधु बढ़त जनु बारिधि बीचि बिलासु॥7॥

भावार्थ:-इसी समय यह परम मंगल समाचार सुनकर सारा रनिवास हर्षित हो उठा। जैसे चन्द्रमा को बढ़ते देखकर समुद्र में लहरों का विलास (आनंद) सुशोभित होता है॥7॥

चौपाई :

* प्रथम जाइ जिन्ह बचन सुनाए। भूषन बसन भूरि तिन्ह पाए॥
प्रेम पुलकि तन मन अनुरागीं। मंगल कलस सजन सब लागीं॥1॥

भावार्थ:-सबसे पहले (रनिवास में) जाकर जिन्होंने ये वचन (समाचार) सुनाए, उन्होंने बहुत से आभूषण और वस्त्र पाए। रानियों का शरीर प्रेम से पुलकित हो उठा और मन प्रेम में मग्न हो गया। वे सब मंगल कलश सजाने लगीं॥1॥

* चौकें चारु सुमित्राँ पूरी। मनिमय बिबिध भाँति अति रूरी॥
आनँद मगन राम महतारी। दिए दान बहु बिप्र हँकारी॥2॥

भावार्थ:-सुमित्राजी ने मणियों (रत्नों) के बहुत प्रकार के अत्यन्त सुंदर और मनोहर चौक पूरे। आनंद में मग्न हुई श्री रामचन्द्रजी की माता कौसल्याजी ने ब्राह्मणों को बुलाकर बहुत दान दिए॥2॥

* पूजीं ग्रामदेबि सुर नागा। कहेउ बहोरि देन बलिभागा॥
जेहि बिधि होइ राम कल्यानू। देहु दया करि सो बरदानू॥3॥

भावार्थ:-उन्होंने ग्रामदेवियों, देवताओं और नागों की पूजा की और फिर बलि भेंट देने को कहा (अर्थात कार्य सिद्ध होने पर फिर पूजा करने की मनौती मानी) और प्रार्थना की कि जिस

प्रकार से श्री रामचन्द्रजी का कल्याण हो, दया करके वही वरदान दीजिए॥3॥

*गावहिं मंगल कोकिलबयनीं। बिधुबदनीं मृगसावकनयनीं॥4॥

भावार्थ:-कोयल की सी मीठी वाणी वाली, चन्द्रमा के समान मुख वाली और हिरन के बच्चे के से नेत्रों वाली स्त्रियाँ मंगलगान करने लगीं॥4॥

दोहा :

* राम राज अभिषेकु सुनि हियँ हरषे नर नारि।
लगे सुमंगल सजन सब बिधि अनुकूल बिचारि॥8॥

भावार्थ:-श्री रामचन्द्रजी का राज्याभिषेक सुनकर सभी स्त्री-पुरुष हृदय में हर्षित हो उठे और विधाता को अपने अनुकूल समझकर सब सुंदर मंगल साज सजाने लगे॥8॥

चौपाई :

* तब नरनाहँ बसिष्ठु बोलाए। रामधाम सिख देन पठाए॥
गुर आगमनु सुनत रघुनाथा। द्वार आइ पद नायउ माथा॥1॥

भावार्थ:-तब राजा ने वशिष्ठजी को बुलाया और शिक्षा (समयोचित उपदेश) देने के लिए श्री रामचन्द्रजी के महल में भेजा। गुरु का आगमन सुनते ही श्री रघुनाथजी ने दरवाजे पर आकर उनके चरणों में मस्तक नवाया।1॥

* सादर अरघ देइ घर आने। सोरह भाँति पूजि सनमाने॥
गहे चरन सिय सहित बहोरी। बोले रामु कमल कर जोरी॥2॥

भावार्थ:-आदरपूर्वक अर्घ्य देकर उन्हें घर में लाए और षोडशोपचार से पूजा करके उनका सम्मान किया। फिर सीताजी

सहित उनके चरण स्पर्श किए और कमल के समान दोनों हाथों को जोड़कर श्री रामजी बोले-॥2॥

* सेवक सदन स्वामि आगमनू। मंगल मूल अमंगल दमनू॥
तदपि उचित जनु बोलि सप्रीती। पठइअ काज नाथ असि
नीती॥3॥

भावार्थ:-यद्यपि सेवक के घर स्वामी का पधारना मंगलों का मूल और अमंगलों का नाश करने वाला होता है, तथापि हे नाथ! उचित तो यही था कि प्रेमपूर्वक दास को ही कार्य के लिए बुला भेजते, ऐसी ही नीति है॥3॥

* प्रभुता तजि प्रभु कीन्ह सनेहू। भयउ पुनीत आजु यहु गेहू॥
आयसु होइ सो करौं गोसाईं। सेवकु लइह स्वामि सेवकाईं॥4॥

भावार्थ:-परन्तु प्रभु (आप) ने प्रभुता छोड़कर (स्वयं यहाँ पधारकर) जो स्नेह किया, इससे आज यह घर पवित्र हो गया! हे गोसाईं! (अब) जो आज्ञा हो, मैं वही करूँ। स्वामी की सेवा में ही सेवक का लाभ है॥4॥

दोहा :

* सुनि सनेह साने बचन मुनि रघुबरहि प्रसंस।
राम कस न तुम्ह कहहु अस हंस बंस अवतंस॥9॥

भावार्थ:-(श्री रामचन्द्रजी के) प्रेम में सने हुए वचनों को सुनकर मुनि वशिष्ठजी ने श्री रघुनाथजी की प्रशंसा करते हुए कहा कि हे राम! भला आप ऐसा क्यों न कहें। आप सूर्यवंश के भूषण जो हैं॥9॥

चौपाई :

* बरनि राम गुन सीलु सुभाऊ। बोले प्रेम पुलकि मुनिराऊ॥

भूप सजेउ अभिषेक समाजू। चाहत देन तुम्हहि जुबराजू॥1॥

भावार्थ:-श्री रामचन्द्रजी के गुण, शील और स्वभाव का बखान कर, मुनिराज प्रेम से पुलकित होकर बोले- (हे रामचन्द्रजी!) राजा (दशरथजी) ने राज्याभिषेक की तैयारी की है। वे आपको युवराज पद देना चाहते हैं॥1॥

* राम करहु सब संजम आजू। जौं बिधि कुसल निबाहै काजू॥
गुरु सिख देइ राय पहिं गयऊ। राम हृदयँ अस बिसमउ भयऊ॥2॥

भावार्थ:-(इसलिए) हे रामजी! आज आप (उपवास, हवन आदि विधिपूर्वक) सब संयम कीजिए, जिससे विधाता कुशलपूर्वक इस काम को निबाह दें (सफल कर दें)। गुरुजी शिक्षा देकर राजा दशरथजी के पास चले गए। श्री रामचन्द्रजी के हृदय में (यह सुनकर) इस बात का खेद हुआ कि-॥2॥

* जनमे एक संग सब भाई। भोजन सयन केलि लरिकाई॥
करनबेध उपबीत बिआहा। संग संग सब भए उछाहा॥3॥

भावार्थ:-हम सब भाई एक ही साथ जन्मे, खाना, सोना, लड़कपन के खेल-कूद, कनछेदन, यज्ञोपवीत और विवाह आदि उत्सव सब साथ-साथ ही हुए॥3॥

* बिमल बंस यहु अनुचित एकू। बंधु बिहाइ बड़ेहि अभिषेकू॥
प्रभु सप्रेम पछितानि सुहाई। हरउ भगत मन कै कुटिलाई॥4॥

भावार्थ:-पर इस निर्मल वंश में यही एक अनुचित बात हो रही है कि और सब भाइयों को छोड़कर राज्याभिषेक एक बड़े का ही (मेरा ही) होता है। (तुलसीदासजी कहते हैं कि) प्रभु श्री

रामचन्द्रजी का यह सुंदर प्रेमपूर्ण पछतावा भक्तों के मन की कुटिलता को हरण करे॥4॥

दोहा :

*तेहि अवसर आए लखन मगन प्रेम आनंद।

सनमाने प्रिय बचन कहि रघुकुल कैरव चंद॥10॥

भावार्थ:-उसी समय प्रेम और आनंद में मग्न लक्ष्मणजी आए। रघुकुल रूपी कुमुद के खिलाने वाले चन्द्रमा श्री रामचन्द्रजी ने प्रिय वचन कहकर उनका सम्मान किया॥10॥

चौपाई :

* बाजहिं बाजने बिबिध बिधाना। पुर प्रमोदु नहिं जाइ बखाना॥

भरत आगमनु सकल मनावहिं। आवहुँ बेगि नयन फलु पावहिं॥1॥

भावार्थ:-बहुत प्रकार के बाजे बज रहे हैं। नगर के अतिशय आनंद का वर्णन नहीं हो सकता। सब लोग भरतजी का आगमन मना रहे हैं और कह रहे हैं कि वे भी शीघ्र आवें और (राज्याभिषेक का उत्सव देखकर) नेत्रों का फल प्राप्त करें॥1॥

* हाट बाट घर गलीं अथाईं। कहहिं परसपर लोग लोगाईं॥

कालि लगन भलि केतिक बारा। पूजिहि बिधि अभिलाषु हमारा॥2॥

भावार्थ:-बाजार, रास्ते, घर, गली और चबूतरों पर (जहाँ-तहाँ) पुरुष और स्त्री आपस में यही कहते हैं कि कल वह शुभ लग्न (मुहूर्त) कितने समय है, जब विधाता हमारी अभिलाषा पूरी करेंगे॥2॥

* कनक सिंघासन सीय समेता। बैठहिं रामु होइ चित चेता॥

सकल कहहिं कब होइहि काली। बिघन मनावहिं देव कुचाली॥3॥

भावार्थ:-जब सीताजी सहित श्री रामचन्द्रजी सुवर्ण के सिंहासन पर विराजेंगे और हमारा मनचीता होगा (मनःकामना पूरी होगी)। इधर तो सब यह कह रहे हैं कि कल कब होगा, उधर कुचक्री देवता विघ्न मना रहे हैं॥3॥

* तिन्हहि सोहाइ न अवध बधावा। चोरहि चंदिनि राति न भावा॥
सारद बोलि बिनय सुर करहीं। बारहिं बार पाय लै परहीं॥4॥

भावार्थ:-उन्हें (देवताओं को) अवध के बधावे नहीं सुहाते, जैसे चोर को चाँदनी रात नहीं भाती। सरस्वतीजी को बुलाकर देवता विनय कर रहे हैं और बार-बार उनके पैरों को पकड़कर उन पर गिरते हैं॥4॥

दोहा :

* बिपति हमारि बिलोकि बड़ि मातु करिअ सोइ आजु।
रामु जाहिं बन राजु तजि होइ सकल सुरकाजु॥11॥

भावार्थ:-(वे कहते हैं-) हे माता! हमारी बड़ी विपत्ति को देखकर आज वही कीजिए जिससे श्री रामचन्द्रजी राज्य त्यागकर वन को चले जाएँ और देवताओं का सब कार्य सिद्ध हो॥11॥

चौपाई :

* सुनि सुर बिनय ठाढ़ि पछिताती। भइउँ सरोज बिपिन हिमराती॥
देखि देव पुनि कहहिं निहोरी। मातु तोहि नहिं थोरिउ खोरी॥1॥

भावार्थ:-देवताओं की विनती सुनकर सरस्वतीजी खड़ी-खड़ी पछता रही हैं कि (हाय!) मैं कमलवन के लिए हेमंत ऋतु की रात हुई। उन्हें इस प्रकार पछताते देखकर देवता विनय करके कहने लगे- हे माता! इसमें आपको जरा भी दोष न लगेगा॥1॥

* बिसमय हरष रहित रघुराऊ। तुम्ह जानहु सब राम प्रभाऊ॥
जीव करम बस सुख दुख भागी। जाइअ अवध देव हित लागी॥2॥

भावार्थ:-श्री रघुनाथजी विषाद और हर्ष से रहित हैं। आप तो श्री रामजी के सब प्रभाव को जानती ही हैं। जीव अपने कर्मवश ही सुख-दुःख का भागी होता है। अतएव देवताओं के हित के लिए आप अयोध्या जाइए॥2॥

* बार बार गहि चरन सँकोची। चली बिचारि बिबुध मति पोची॥
ऊँच निवासु नीचि करतूती। देखि न सकहिं पराइ बिभूती॥3॥

भावार्थ:-बार-बार चरण पकड़कर देवताओं ने सरस्वती को संकोच में डाल दिया। तब वे यह विचारकर चलीं कि देवताओं की बुद्धि ओछी है। इनका निवास तो ऊँचा है, पर इनकी करनी नीची है। ये दूसरे का ऐश्वर्य नहीं देख सकते॥3॥

* आगिल काजु बिचारि बहोरी। करिहहिं चाह कुसल कबि मोरी॥
हरषि हृदयँ दसरथ पुर आई। जनु ग्रह दसा दुसह दुखदाई॥4॥

भावार्थ:-परन्तु आगे के काम का विचार करके (श्री रामजी के वन जाने से राक्षसों का वध होगा, जिससे सारा जगत सुखी हो जाएगा) चतुर कवि (श्री रामजी के वनवास के चरित्रों का वर्णन करने के लिए) मेरी चाह (कामना) करेंगे। ऐसा विचार कर सरस्वती हृदय में हर्षित होकर दशरथजी की पुरी अयोध्या में आईं, मानो दुःसह दुःख देने वाली कोई ग्रहदशा आई हो॥4॥

गीताप्रेस गोरखपुर

सरस्वती का मन्थरा की बुद्धि फेरना, कैकेयी-मन्थरा संवाद, प्रजा में खुशी

दोहा :

* नामु मंथरा मंदमति चेरी कैकइ केरि।
अजस पेटारी ताहि करि गई गिरा मति फेरि॥12॥

भावार्थ:-मन्थरा नाम की कैकेई की एक मंदबुद्धि दासी थी, उसे अपयश की पिटारी बनाकर सरस्वती उसकी बुद्धि को फेरकर चली गईं॥12॥

चौपाई :

* दीख मंथरा नगरु बनावा। मंजुल मंगल बाज बधावा॥
पूछेसि लोगन्ह काह उछाहू। राम तिलकु सुनि भा उर दाहू॥1॥

भावार्थ:-मंथरा ने देखा कि नगर सजाया हुआ है। सुंदर मंगलमय बधावे बज रहे हैं। उसने लोगों से पूछा कि कैसा उत्सव है? (उनसे) श्री रामचन्द्रजी के राजतिलक की बात सुनते ही उसका हृदय जल उठा॥1॥

* करइ बिचारु कुबुद्धि कुजाती। होइ अकाजु कवनि बिधि राती॥

देखि लागि मधु कुटिल किराती। जिमि गवँ तकइ लेउँ केहि भाँती॥2॥

भावार्थ:-वह दुर्बुद्धि, नीच जाति वाली दासी विचार करने लगी कि किस प्रकार से यह काम रात ही रात में बिगड़ जाए, जैसे कोई कुटिल भीलनी शहद का छत्ता लगा देखकर घात लगाती है कि इसको किस तरह से उखाड़ लूँ॥2॥

* भरत मातु पहिं गइ बिलखानी। का अनमनि हसि कह हँसि रानी॥
ऊतरु देइ न लेइ उसासू। नारि चरित करि ढारइ आँसू॥3॥

भावार्थ:-वह उदास होकर भरतजी की माता कैकेयी के पास गई। रानी कैकेयी ने हँसकर कहा- तू उदास क्यों है? मंथरा कुछ उत्तर नहीं देती, केवल लंबी साँस ले रही है और त्रियाचरित्र करके आँसू ढरका रही है॥3॥

* हँसि कह रानि गालु बड़ तोरें। दीन्ह लखन सिख अस मन मोरें॥
तबहुँ न बोल चेरि बड़ि पापिनि। छाड़इ स्वास कारि जनु साँपिनि॥4॥

भावार्थ:-रानी हँसकर कहने लगी कि तेरे बड़े गाल हैं (तू बहुत बढ़-बढ़कर बोलने वाली है)। मेरा मन कहता है कि लक्ष्मण ने तुझे कुछ सीख दी है (दण्ड दिया है)। तब भी वह महापापिनी दासी कुछ भी नहीं बोलती। ऐसी लंबी साँस छोड़ रही है, मानो काली नागिन (फुफकार छोड़ रही) हो॥4॥

दोहा :

* सभय रानि कह कहसि किन कुसल रामु महिपालु।

लखनु भरतु रिपुदमनु सुनि भा कुबरी उर सालु॥13॥

भावार्थ:-तब रानी ने डरकर कहा- अरी! कहती क्यों नहीं? श्री रामचन्द्र, राजा, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न कुशल से तो हैं? यह सुनकर कुबरी मंथरा के हृदय में बड़ी ही पीड़ा हुई॥13॥

चौपाई :

* कत सिख देइ हमहि कोउ माई। गालु करब केहि कर बलु पाई॥
रामहि छाड़ि कुसल केहि आजू। जेहि जनेसु देइ जुबराजू॥1॥

भावार्थ:-(वह कहने लगी-) हे माई! हमें कोई क्यों सीख देगा और मैं किसका बल पाकर गाल करूँगी (बढ़-बढ़कर बोलूँगी)। रामचन्द्र को छोड़कर आज और किसकी कुशल है, जिन्हें राजा युवराज पद दे रहे हैं॥1॥

* भयउ कौसिलहि बिधि अति दाहिन। देखत गरब रहत उर नाहिन॥
देखहु कस न जाइ सब सोभा। जो अवलोकि मोर मनु छोभा॥2॥

भावार्थ:-आज कौसल्या को विधाता बहुत ही दाहिने (अनुकूल) हुए हैं, यह देखकर उनके हृदय में गर्व समाता नहीं। तुम स्वयं जाकर सब शोभा क्यों नहीं देख लेतीं, जिसे देखकर मेरे मन में क्षोभ हुआ है॥2॥

* पूतु बिदेस न सोचु तुम्हारें। जानति हहु बस नाहु हमारें॥
नीद बहुत प्रिय सेज तुराई। लखहु न भूप कपट चतुराई॥3॥

भावार्थ:-तुम्हारा पुत्र परदेस में है, तुम्हें कुछ सोच नहीं। जानती हो कि स्वामी हमारे वश में हैं। तुम्हें तो तोशक-पलँग पर पड़े-

पड़े नींद लेना ही बहुत प्यारा लगता है, राजा की कपटभरी चतुराई तुम नहीं देखतीं॥3॥

*सुनि प्रिय बचन मलिन मनु जानी। झुकी रानि अब रहु अरगानी॥
पुनि अस कबहुँ कहसि घरफोरी। तब धरि जीभ कढ़ावउँ तोरी॥4॥

भावार्थ:-मन्थरा के प्रिय वचन सुनकर, किन्तु उसको मन की मैली जानकर रानी झुककर (डाँटकर) बोली- बस, अब चुप रह घरफोड़ी कहीं की! जो फिर कभी ऐसा कहा तो तेरी जीभ पकड़कर निकलवा लूँगी॥4॥

दोहा :

* काने खोरे कूबरे कुटिल कुचाली जानि।
तिय बिसेषि पुनिचेरि कहि भरतमातु मुसुकानि॥14॥

भावार्थ:-कानों, लंगड़ों और कुबड़ों को कुटिल और कुचाली जानना चाहिए। उनमें भी स्त्री और खासकर दासी! इतना कहकर भरतजी की माता कैकेयी मुस्कुरा दीं॥14॥

चौपाई :

* प्रियबादिनि सिख दीन्हिउँ तोही। सपनेहुँ तो पर कोपु न मोही॥
सुदिनु सुमंगल दायकु सोई। तोर कहा फुर जेहि दिन होई॥1॥

भावार्थ:-(और फिर बोलीं-) हे प्रिय वचन कहने वाली मंथरा! मैंने तुझको यह सीख दी है (शिक्षा के लिए इतनी बात कही है)। मुझे तुझ पर स्वप्न में भी क्रोध नहीं है। सुंदर मंगलदायक

शुभ दिन वही होगा, जिस दिन तेरा कहना सत्य होगा (अर्थात श्री राम का राज्यतिलक होगा)॥1॥

* जेठ स्वामि सेवक लघु भाई। यह दिनकर कुल रीति सुहाई॥
राम तिलकु जौं साँचेहुँ काली। देउँ मागु मन भावत आली॥2॥

भावार्थ:-बड़ा भाई स्वामी और छोटा भाई सेवक होता है। यह सूर्यवंश की सुहावनी रीति ही है। यदि सचमुच कल ही श्री राम का तिलक है, तो हे सखी! तेरे मन को अच्छी लगे वही वस्तु माँग ले, मैं दूँगी॥2॥

* कौसल्या सम सब महतारी। रामहि सहज सुभायँ पिआरी॥
मो पर करहिं सनेहु बिसेषी। मैं करि प्रीति परीछा देखी॥3॥

भावार्थ:-राम को सहज स्वभाव से सब माताएँ कौसल्या के समान ही प्यारी हैं। मुझ पर तो वे विशेष प्रेम करते हैं। मैंने उनकी प्रीति की परीक्षा करके देख ली है॥3॥

* जौं बिधि जनमु देइ करि छोहू। होहुँ राम सिय पूत पुतोहू॥
प्रान तें अधिक रामु प्रिय मोरें। तिन्ह कें तिलक छोभु कस तोरें॥4॥

भावार्थ:-जो विधाता कृपा करके जन्म दें तो (यह भी दें कि) श्री रामचन्द्र पुत्र और सीता बहू हों। श्री राम मुझे प्राणों से भी अधिक प्रिय हैं। उनके तिलक से (उनके तिलक की बात सुनकर) तुझे क्षोभ कैसा?॥4॥

दोहा :

* भरत सपथ तोहि सत्य कहु परिहरि कपट दुराउ।
हरष समय बिसमउ करसि कारन मोहि सुनाउ॥15॥

भावार्थ:- तुझे भरत की सौगंध है, छल-कपट छोड़कर सच-सच कह। तू हर्ष के समय विषाद कर रही है, मुझे इसका कारण सुना॥15॥

चौपाई :

* एकहिं बार आस सब पूजी। अब कछु कहब जीभ करि दूजी॥
फोरै जोगु कपारु अभागा। भलेउ कहत दुख रउरेहि लागा॥1॥

भावार्थ:-(मंथरा ने कहा-) सारी आशाएँ तो एक ही बार कहने में पूरी हो गईं। अब तो दूसरी जीभ लगाकर कुछ कहूँगी। मेरा अभागा कपाल तो फोड़ने ही योग्य है, जो अच्छी बात कहने पर भी आपको दुःख होता है॥1॥

* कहहिं झूठि फुरि बात बनाई। ते प्रिय तुम्हहि करुइ मैं माई॥
हमहुँ कहबि अब ठकुरसोहाती। नाहिं त मौन रहब दिनु राती॥2॥

भावार्थ:-जो झूठी-सच्ची बातें बनाकर कहते हैं, हे माई! वे ही तुम्हें प्रिय हैं और मैं कड़वी लगती हूँ! अब मैं भी ठकुरसुहाती (मुँह देखी) कहा करूँगी। नहीं तो दिन-रात चुप रहूँगी॥2॥

* करि कुरूप बिधि परबस कीन्हा। बवा सो लुनिअ लहिअ जो दीन्हा॥
कोउ नृप होउ हमहि का हानी। चेरि छाड़ि अब होब कि रानी॥3॥

भावार्थ:-विधाता ने कुरूप बनाकर मुझे परवश कर दिया! (दूसरे को क्या दोष) जो बोया सो काटती हूँ, दिया सो पाती हूँ। कोई भी राजा हो, हमारी क्या हानि है? दासी छोड़कर क्या अब मैं रानी होऊँगी! (अर्थात रानी तो होने से रही)॥3॥

* जारै जोगु सुभाउ हमारा। अनभल देखि न जाइ तुम्हारा॥
तातें कछुक बात अनुसारी। छमिअ देबि बड़ि चूक हमारी॥4॥

भावार्थ:-हमारा स्वभाव तो जलाने ही योग्य है, क्योंकि तुम्हारा अहित मुझसे देखा नहीं जाता, इसलिए कुछ बात चलाई थी, किन्तु हे देवी! हमारी बड़ी भूल हुई, क्षमा करो॥4॥

दोहा :

* गूढ़ कपट प्रिय बचन सुनि तीय अधरबुधि रानि।
सुरमाया बस बैरिनिहि सुहृद जानि पतिआनि॥16॥

भावार्थ:-आधाररहित (अस्थिर) बुद्धि की स्त्री और देवताओं की माया के वश में होने के कारण रहस्ययुक्त कपट भरे प्रिय वचनों को सुनकर रानी कैकेयी ने बैरिन मन्थरा को अपनी सुहृद् (अहैतुक हित करने वाली) जानकर उसका विश्वास कर लिया॥16॥

चौपाई :

* सादर पुनि पुनि पूँछति ओही। सबरी गान मृगी जनु मोही॥
तसि मति फिरी अहइ जसि भाबी। रहसी चेरि घात जनु फाबी॥1॥

भावार्थ:-बार-बार रानी उससे आदर के साथ पूछ रही है, मानो भीलनी के गान से हिरनी मोहित हो गई हो। जैसी भावी (होनहार) है, वैसी ही बुद्धि भी फिर गई। दासी अपना दाँव लगा जानकर हर्षित हुई॥1॥

* तुम्ह पूँछहु मैं कहत डेराउँ। धरेहु मोर घरफोरी नाऊँ॥
सजि प्रतीति बहुबिधि गढ़ि छोली। अवध साढ़साती तब बोली॥2॥

भावार्थ:-तुम पूछती हो, किन्तु मैं कहते डरती हूँ, क्योंकि तुमने पहले ही मेरा नाम घरफोड़ी रख दिया है। बहुत तरह से गढ़-छोलकर, खूब विश्वास जमाकर, तब वह अयोध्या की साढ़ साती (शनि की साढ़े साती वर्ष की दशा रूपी मंथरा) बोली-॥2॥

* प्रिय सिय रामु कहा तुम्ह रानी। रामहि तुम्ह प्रिय सो फुरि बानी॥
रहा प्रथम अब ते दिन बीते। समउ फिरें रिपु होहिं पिरीते॥3॥

भावार्थ:-हे रानी! तुमने जो कहा कि मुझे सीता-राम प्रिय हैं और राम को तुम प्रिय हो, सो यह बात सच्ची है, परन्तु यह बात पहले थी, वे दिन अब बीत गए। समय फिर जाने पर मित्र भी शत्रु हो जाते हैं॥3॥

* भानु कमल कुल पोषनिहारा। बिनु जल जारि करइ सोइ छारा॥
जरि तुम्हारि चह सवति उखारी। रूँधहु करि उपाउ बर बारी॥4॥

भावार्थ:-सूर्य कमल के कुल का पालन करने वाला है, पर बिना जल के वही सूर्य उनको (कमलों को) जलाकर भस्म कर देता है। सौत कौसल्या तुम्हारी जड़ उखाड़ना चाहती है। अतः उपाय रूपी श्रेष्ठ बाड़ (घेरा) लगाकर उसे रूँध दो (सुरक्षित कर दो)॥4॥

दोहा :

* तुम्हहि न सोचु सोहाग बल निज बस जानहु राउ।
मन मलीन मुँह मीठ नृपु राउर सरल सुभाउ॥17॥

भावार्थ:-तुमको अपने सुहाग के (झूठे) बल पर कुछ भी सोच नहीं है, राजा को अपने वश में जानती हो, किन्तु राजा मन के मैले और मुँह के मीठे हैं! और आपका सीधा स्वभाव है (आप कपट-चतुराई जानती ही नहीं)॥17॥

चौपाई :

* चतुर गँभीर राम महतारी। बीचु पाइ निज बात सँवारी॥
पठए भरतु भूप ननिअउरें। राम मातु मत जानब रउरें॥1॥

भावार्थ:-राम की माता (कौसल्या) बड़ी चतुर और गंभीर है (उसकी थाह कोई नहीं पाता)। उसने मौका पाकर अपनी बात बना ली। राजा ने जो भरत को ननिहाल भेज दिया, उसमें आप बस राम की माता की ही सलाह समझिए!॥1॥

* सेवहिं सकल सवति मोहि नीकें। गरबित भरत मातु बल पी कें॥
सालु तुमर कौसिलहि माई। कपट चतुर नहिं होई जनाई॥2॥

भावार्थ:-(कौसल्या समझती है कि) और सब सौतें तो मेरी अच्छी तरह सेवा करती हैं, एक भरत की माँ पति के बल पर गर्वित रहती है! इसी से हे माई! कौसल्या को तुम बहुत ही साल (खटक) रही हो, किन्तु वह कपट करने में चतुर है, अतः उसके हृदय का भाव जानने में नहीं आता (वह उसे चतुरता से छिपाए रखती है)॥2॥

* राजहि तुम्ह पर प्रेमु बिसेषी। सवति सुभाउ सकइ नहिं देखी॥
रचि प्रपंचु भूपहि अपनाई। राम तिलक हित लगन धराई॥3॥

भावार्थ:-राजा का तुम पर विशेष प्रेम है। कौसल्या सौत के स्वभाव से उसे देख नहीं सकती, इसलिए उसने जाल रचकर

राजा को अपने वश में करके, (भरत की अनुपस्थिति में) राम के राजतिलक के लिए लग्न निश्चय करा लिया॥3॥

* यह कुल उचित राम कहुँ टीका। सबहि सोहाइ मोहि सुठि नीका॥
आगिलि बात समुझि डरु मोही। देउ दैउ फिरि सो फलु ओही॥4॥

भावार्थ:-राम को तिलक हो, यह कुल (रघुकुल) के उचित ही है और यह बात सभी को सुहाती है और मुझे तो बहुत ही अच्छी लगती है, परन्तु मुझे तो आगे की बात विचारकर डर लगता है। दैव उलटकर इसका फल उसी (कौसल्या) को दे॥4॥

दोहा :

* रचि पचि कोटिक कुटिलपन कीन्हेसि कपट प्रबोधु।
कहिसि कथा सत सवति कै जेहि बिधि बाढ़ बिरोधु॥18॥

भावार्थ:-इस तरह करोड़ों कुटिलपन की बातें गढ़-छोलकर मन्थरा ने कैकेयी को उलटा-सीधा समझा दिया और सैकड़ों सौतों की कहानियाँ इस प्रकार (बना-बनाकर) कहीं जिस प्रकार विरोध बढ़े॥18॥

चौपाई :

* भावी बस प्रतीति उर आई। पूँछ रानि पुनि सपथ देवाई॥
का पूँछहु तुम्ह अबहुँ न जाना। निज हित अनहित पसु पहिचाना॥1॥

भावार्थ:-होनहार वश कैकेयी के मन में विश्वास हो गया। रानी फिर सौगंध दिलाकर पूछने लगी। (मंथरा बोली-) क्या पूछती

गीताप्रेस गोरखपुर

हो? अरे, तुमने अब भी नहीं समझा? अपने भले-बुरे को (अथवा मित्र-शत्रु को) तो पशु भी पहचान लेते हैं॥1॥

* भयउ पाखु दिन सजत समाजू। तुम्ह पाई सुधि मोहि सन आजू॥
खाइअ पहिरिअ राज तुम्हारें। सत्य कहें नहिं दोषु हमारें॥2॥

भावार्थ:-पूरा पखवाड़ा बीत गया सामान सजते और तुमने खबर पाई है आज मुझसे! मैं तुम्हारे राज में खाती-पहनती हूँ, इसलिए सच कहने में मुझे कोई दोष नहीं है॥2॥

* जौं असत्य कछु कहब बनाई। तौ बिधि देइहि हमहि सजाई॥
रामहि तिलक कालि जौं भयऊ। तुम्ह कहुँ बिपति बीजु बिधि बयऊ॥3॥

भावार्थ:-यदि मैं कुछ बनाकर झूठ कहती होऊँगी तो विधाता मुझे दंड देगा। यदि कल राम को राजतिलक हो गया तो (समझ रखना कि) तुम्हारे लिए विधाता ने विपत्ति का बीज बो दिया॥3॥

* रेख खँचाइ कहउँ बलु भाषी। भामिनि भइहु दूध कइ माखी॥
जौं सुत सहित करहु सेवकाई। तौ घर रहहु न आन उपाई॥4॥

भावार्थ:-मैं यह बात लकीर खींचकर बलपूर्वक कहती हूँ, हे भामिनी! तुम तो अब दूध की मक्खी हो गई! (जैसे दूध में पड़ी हुई मक्खी को लोग निकालकर फेंक देते हैं, वैसे ही तुम्हें भी लोग घर से निकाल बाहर करेंगे) जो पुत्र सहित (कौसल्या की) चाकरी बजाओगी तो घर में रह सकोगी, (अन्यथा घर में रहने का) दूसरा उपाय नहीं॥4॥

दोहा :

* कद्रूँ बिनतहि दीन्ह दुखु तुम्हहि कौसिलाँ देब।
भरतु बंदिगृह सेइहहिं लखनु राम के नेब॥19॥

भावार्थ:-कद्रू ने विनता को दुःख दिया था, तुम्हें कौसल्या देगी। भरत कारागार का सेवन करेंगे (जेल की हवा खाएँगे) और लक्ष्मण राम के नायब (सहकारी) होंगे॥19॥

चौपाई :

* कैकयसुता सुनत कटु बानी। कहि न सकइ कछु सहमि सुखानी॥
तन पसेउ कदली जिमि काँपी। कुबरीं दसन जीभ तब चाँपी॥1॥

भावार्थ:-कैकेयी मन्थरा की कड़वी वाणी सुनते ही डरकर सूख गई, कुछ बोल नहीं सकती। शरीर में पसीना हो आया और वह केले की तरह काँपने लगी। तब कुबरी (मंथरा) ने अपनी जीभ दाँतों तले दबाई (उसे भय हुआ कि कहीं भविष्य का अत्यन्त डरावना चित्र सुनकर कैकेयी के हृदय की गति न रुक जाए, जिससे उलटा सारा काम ही बिगड़ जाए)॥1॥

* कहि कहि कोटिक कपट कहानी। धीरजु धरहु प्रबोधिसि रानी॥
फिरा करमु प्रिय लागि कुचाली। बकिहि सराहइ मानि मराली॥2॥

भावार्थ:-फिर कपट की करोड़ों कहानियाँ कह-कहकर उसने रानी को खूब समझाया कि धीरज रखो! कैकेयी का भाग्य पलट गया, उसे कुचाल प्यारी लगी। वह बगुली को हंसिनी मानकर (वैरिन को हित मानकर) उसकी सराहना करने लगी॥2॥

* सुनु मंथरा बात फुरि तोरी। दहिनि आँखि नित फरकइ मोरी॥

दिन प्रति देखउँ राति कुसपने। कहउँ न तोहि मोह बस अपने॥3॥

भावार्थ:-कैकेयी ने कहा- मन्थरा! सुन, तेरी बात सत्य है। मेरी दाहिनी आँख नित्य फड़का करती है। मैं प्रतिदिन रात को बुरे स्वप्न देखती हूँ, किन्तु अपने अज्ञानवश तुझसे कहती नहीं॥3॥

* काह करौं सखि सूध सुभाऊ। दाहिन बाम न जानउँ काऊ॥4॥

भावार्थ:-सखी! क्या करूँ, मेरा तो सीधा स्वभाव है। मैं दायाँ-बायाँ कुछ भी नहीं जानती॥4॥

दोहा :

* अपनें चलत न आजु लगि अनभल काहुक कीन्ह।
केहिं अघ एकहि बार मोहि दैअँ दुसह दुखु दीन्ह॥20॥

भावार्थ:-अपनी चलते (जहाँ तक मेरा वश चला) मैंने आज तक कभी किसी का बुरा नहीं किया। फिर न जाने किस पाप से दैव ने मुझे एक ही साथ यह दुःसह दुःख दिया॥20॥

चौपाई :

* नैहर जनमु भरब बरु जाई। जिअत न करबि सवति सेवकाई॥
अरि बस दैउ जिआवत जाही। मरनु नीक तेहि जीवन चाही॥1॥

भावार्थ:-मैं भले ही नैहर जाकर वहीं जीवन बिता दूँगी, पर जीते जी सौत की चाकरी नहीं करूँगी। दैव जिसको शत्रु के वश में रखकर जिलाता है, उसके लिए तो जीने की अपेक्षा मरना ही अच्छा है॥1॥ दीन बचन कह बहुबिधि रानी। सुनि कुबरीं तियमाया ठानी॥

* दीन बचन कह बहुबिधि रानी। सुनि कुबरीं तियमाया ठानी॥

अस कस कहहु मानि मन ऊना। सुखु सोहागु तुम्ह कहुँ दिन दूना॥2॥

भावार्थ:-रानी ने बहुत प्रकार के दीन वचन कहे। उन्हें सुनकर कुबरी ने त्रिया चरित्र फैलाया। (वह बोली-) तुम मन में ग्लानि मानकर ऐसा क्यों कह रही हो, तुम्हारा सुख-सुहाग दिन-दिन दूना होगा॥2॥

* जेहिं राउर अति अनभल ताका। सोइ पाइहि यह फलु परिपाका॥
जब तें कुमत सुना मैं स्वामिनि। भूख न बासर नींद न जामिनि॥3॥

भावार्थ:-जिसने तुम्हारी बुराई चाही है, वही परिणाम में यह (बुराई रूप) फल पाएगी। हे स्वामिनि! मैंने जब से यह कुमत सुना है, तबसे मुझे न तो दिन में कुछ भूख लगती है और न रात में नींद ही आती है॥3॥

* पूँछेउँ गुनिन्ह रेख तिन्ह खाँची। भरत भुआल होहिं यह साँची॥
भामिनि करहु त कहौं उपाऊ। है तुम्हरीं सेवा बस राऊ॥4॥

भावार्थ:-मैंने ज्योतिषियों से पूछा, तो उन्होंने रेखा खींचकर (गणित करके अथवा निश्चयपूर्वक) कहा कि भरत राजा होंगे, यह सत्य बात है। हे भामिनि! तुम करो तो उपाय मैं बताऊँ। राजा तुम्हारी सेवा के वश में हैं ही॥4॥

दोहा :

* परउँ कूप तुअ बचन पर सकउँ पूत पति त्यागि।
कहसि मोर दुखु देखि बड़ कस न करब हित लागि॥21॥

भावार्थ:-(कैकेयी ने कहा-) मैं तेरे कहने से कुएँ में गिर सकती हूँ, पुत्र और पति को भी छोड़ सकती हूँ। जब तू मेरा बड़ा भारी दुःख देखकर कुछ कहती है, तो भला मैं अपने हित के लिए उसे क्यों न करूँगी॥21॥

चौपाई :

* कुबरीं करि कबुली कैकेई। कपट छुरी उर पाहन टेई॥
लखइ ना रानि निकट दुखु कैसें। चरइ हरित तिन बलिपसु जैसें॥1॥

भावार्थ:-कुबरी ने कैकेयी को (सब तरह से) कबूल करवाकर (अर्थात बलि पशु बनाकर) कपट रूप छुरी को अपने (कठोर) हृदय रूपी पत्थर पर टेया (उसकी धार को तेज किया)। रानी कैकेयी अपने निकट के (शीघ्र आने वाले) दुःख को कैसे नहीं देखती, जैसे बलि का पशु हरी-हरी घास चरता है। (पर यह नहीं जानता कि मौत सिर पर नाच रही है।)॥1॥

* सुनत बात मृदु अंत कठोरी। देति मनहुँ मधु माहुर घोरी॥
कहइ चेरि सुधि अहइ कि नाहीं। स्वामिनि कहिहु कथा मोहि पाहीं॥2॥

भावार्थ:-मन्थरा की बातें सुनने में तो कोमल हैं, पर परिणाम में कठोर (भयानक) हैं। मानो वह शहद में घोलकर जहर पिला रही हो। दासी कहती है- हे स्वामिनि! तुमने मुझको एक कथा कही थी, उसकी याद है कि नहीं?॥2॥

* दुइ बरदान भूप सन थाती। मागहु आजु जुड़ावहु छाती॥
सुतहि राजु रामहि बनबासू। देहु लेहु सब सवति हुलासू॥3॥

भावार्थ:-तुम्हारे दो वरदान राजा के पास धरोहर हैं। आज उन्हें राजा से माँगकर अपनी छाती ठंडी करो। पुत्र को राज्य और राम को वनवास दो और सौत का सारा आनंद तुम ले लो॥3॥

* भूपति राम सपथ जब करई। तब मागेहु जेहिं बचनु न टरई॥
होइ अकाजु आजु निसि बीतें। बचनु मोर प्रिय मानेहु जी तें॥4॥

भावार्थ:-जब राजा राम की सौगंध खा लें, तब वर माँगना, जिससे वचन न टलने पावे। आज की रात बीत गई, तो काम बिगड़ जाएगा। मेरी बात को हृदय से प्रिय (या प्राणों से भी प्यारी) समझना॥4॥

कैकेयी का कोपभवन में जाना

दोहा :

* बड़ कुघातु करि पातकिनि कहेसि कोपगृहँ जाहु।
काजु सँवारेहु सजग सबु सहसा जनि पतिआहु॥22॥॥

भावार्थ:-पापिनी मन्थरा ने बड़ी बुरी घात लगाकर कहा- कोपभवन में जाओ। सब काम बड़ी सावधानी से बनाना, राजा पर सहसा विश्वास न कर लेना (उनकी बातों में न आ जाना)॥22॥

चौपाई :

* कुबरिहि रानि प्रानप्रिय जानी। बार बार बुद्धि बखानी॥
तोहि सम हित न मोर संसारा। बहे जात कई भइसि अधारा॥1॥

भावार्थ:-कुबरी को रानी ने प्राणों के समान प्रिय समझकर बार-बार उसकी बड़ी बुद्धि का बखान किया और बोली- संसार में

मेरा तेरे समान हितकारी और कोई नहीं है। तू मुझे बही जाती हुई के लिए सहारा हुई है॥1॥

* जौं बिधि पुरब मनोरथु काली। करौं तोहि चख पूतरि आली॥
बहुबिधि चेरिहि आदरु देई। कोपभवन गवनी कैकेई॥2॥

भावार्थ:-यदि विधाता कल मेरा मनोरथ पूरा कर दें तो हे सखी! मैं तुझे आँखों की पुतली बना लूँ। इस प्रकार दासी को बहुत तरह से आदर देकर कैकेयी कोपभवन में चली गई॥।2॥

* बिपति बीजु बरषा रितु चेरी। भुइँ भइ कुमति कैकई केरी॥
पाइ कपट जलु अंकुर जामा। बर दोउ दल दुख फल परिनामा॥3॥

भावार्थ:-विपत्ति (कलह) बीज है, दासी वर्षा ऋतु है, कैकेयी की कुबुद्धि (उस बीज के बोने के लिए) जमीन हो गई। उसमें कपट रूपी जल पाकर अंकुर फूट निकला। दोनों वरदान उस अंकुर के दो पत्ते हैं और अंत में इसके दुःख रूपी फल होगा॥3॥

* कोप समाजु साजि सबु सोई। राजु करत निज कुमति बिगोई॥
राउर नगर कोलाहलु होई। यह कुचालि कछु जान न कोई॥4॥

भावार्थ:-कैकेयी कोप का सब साज सजकर (कोपभवन में) जा सोई। राज्य करती हुई वह अपनी दुष्ट बुद्धि से नष्ट हो गई। राजमहल और नगर में धूम-धाम मच रही है। इस कुचाल को कोई कुछ नहीं जानता॥4॥

दोहा :

* प्रमुदित पुर नर नारि सब सजहिं सुमंगलचार।
एक प्रबिसहिं एक निर्गमहिं भीर भूप दरबार॥23।

भावार्थ:-बड़े ही आनन्दित होकर नगर के सब स्त्री-पुरुष शुभ मंगलाचार के साथ सज रहे हैं। कोई भीतर जाता है, कोई बाहर निकलता है, राजद्वार में बड़ी भीड़ हो रही है॥23॥

चौपाई :

* बाल सखा सुनि हियँ हरषाहीं। मिलि दस पाँच राम पहिं जाहीं॥
प्रभु आदरहिं प्रेमु पहिचानी। पूँछहिं कुसल खेम मृदु बानी॥1॥

भावार्थ:-श्री रामचन्द्रजी के बाल सखा राजतिलक का समाचार सुनकर हृदय में हर्षित होते हैं। वे दस-पाँच मिलकर श्री रामचन्द्रजी के पास जाते हैं। प्रेम पहचानकर प्रभु श्री रामचन्द्रजी उनका आदर करते हैं और कोमल वाणी से कुशल क्षेम पूछते हैं॥1॥

* फिरहिं भवन प्रिय आयसु पाई। करत परसपर राम बड़ाई॥
को रघुबीर सरिस संसारा। सीलु सनेहु निबाहनिहारा॥2॥

भावार्थ:-अपने प्रिय सखा श्री रामचन्द्रजी की आज्ञा पाकर वे आपस में एक-दूसरे से श्री रामचन्द्रजी की बड़ाई करते हुए घर लौटते हैं और कहते हैं- संसार में श्री रघुनाथजी के समान शील और स्नेह को निबाहने वाला कौन है?॥2॥

* जेहिं-जेहिं जोनि करम बस भ्रमहीं। तहँ तहँ ईसु देउ यह हमहीं॥
सेवक हम स्वामी सियनाहू। होउ नात यह ओर निबाहू॥3॥

भावार्थ:-भगवान हमें यही दें कि हम अपने कर्मवश भ्रमते हुए जिस-जिस योनि में जन्में, वहाँ-वहाँ (उस-उस योनि में) हम तो सेवक हों और सीतापति श्री रामचन्द्रजी हमारे स्वामी हों और यह नाता अन्त तक निभ जाए॥

* अस अभिलाषु नगर सब काहू। कैकयसुता हृदयँ अति दाहू॥
को न कुसंगति पाइ नसाई। रहइ न नीच मतें चतुराई॥4॥

भावार्थ:-नगर में सबकी ऐसी ही अभिलाषा है, परन्तु कैकेयी के हृदय में बड़ी जलन हो रही है। कुसंगति पाकर कौन नष्ट नहीं होता। नीच के मत के अनुसार चलने से चतुराई नहीं रह जाती॥4॥

दोहा :

* साँझ समय सानंद नृपु गयउ कैकई गेहँ।
गवनु निठुरता निकट किय जनु धरि देह सनेहँ॥24॥

भावार्थ:-संध्या के समय राजा दशरथ आनंद के साथ कैकेयी के महल में गए। मानो साक्षात स्नेह ही शरीर धारण कर निष्ठुरता के पास गया हो!॥24॥

चौपाई :

* कोपभवन सुनि सकुचेउ राऊ। भय बस अगहुड़ परइ न पाऊ॥
सुरपति बसइ बाहँबल जाकें। नरपति सकल रहहिं रुख ताकें॥1॥

भावार्थ:-कोप भवन का नाम सुनकर राजा सहम गए। डर के मारे उनका पाँव आगे को नहीं पड़ता। स्वयं देवराज इन्द्र जिनकी भुजाओं के बल पर (राक्षसों से निर्भय होकर) बसता है और सम्पूर्ण राजा लोग जिनका रुख देखते रहते हैं॥1॥

* सो सुनि तिय रिस गयउ सुखाई। देखहु काम प्रताप बड़ाई॥
सूल कुलिस असि अँगवनिहारे। ते रतिनाथ सुमन सर मारे॥2॥

भावार्थ:-वही राजा दशरथ स्त्री का क्रोध सुनकर सूख गए। कामदेव का प्रताप और महिमा तो देखिए। जो त्रिशूल, वज्र और

तलवार आदि की चोट अपने अंगों पर सहने वाले हैं, वे रतिनाथ कामदेव के पुष्पबाण से मारे गए॥2॥

* सभय नरेसु प्रिया पहिं गयऊ। देखि दसा दुखु दारुन भयऊ॥
भूमि सयन पटु मोट पुराना। दिए डारि तन भूषन नाना॥3॥

भावार्थ:-राजा डरते-डरते अपनी प्यारी कैकेयी के पास गए। उसकी दशा देखकर उन्हें बड़ा ही दुःख हुआ। कैकेयी जमीन पर पड़ी है। पुराना मोटा कपड़ा पहने हुए है। शरीर के नाना आभूषणों को उतारकर फेंक दिया है।

* कुमतिहि कसि कुबेषता फाबी। अनअहिवातु सूच जनु भाबी॥
जाइ निकट नृपु कह मृदु बानी। प्रानप्रिया केहि हेतु रिसानी॥4॥

भावार्थ:-उस दुर्बुद्धि कैकेयी को यह कुवेषता (बुरा वेष) कैसी फब रही है, मानो भावी विधवापन की सूचना दे रही हो। राजा उसके पास जाकर कोमल वाणी से बोले- हे प्राणप्रिये! किसलिए रिसाई (रूठी) हो?॥4॥

दशरथ-कैकेयी संवाद और दशरथ शोक, सुमन्त्र का महल में जाना और वहाँ से लौटकर श्री रामजी को महल में भेजना

छन्द :

* केहि हेतु रानि रिसानि परसत पानि पतिहि नेवारई।
मानहुँ सरोष भुअंग भामिनि बिषम भाँति निहारई॥
दोउ बासना रसना दसन बर मरम ठाहरु देखई।
तुलसी नृपति भवतब्यता बस काम कौतुक लेखई॥

भावार्थ:-'हे रानी! किसलिए रूठी हो?' यह कहकर राजा उसे हाथ से स्पर्श करते हैं, तो वह उनके हाथ को (झटककर) हटा देती है और ऐसे देखती है मानो क्रोध में भरी हुई नागिन क्रूर दृष्टि से देख रही हो। दोनों (वरदानों की) वासनाएँ उस नागिन

की दो जीभें हैं और दोनों वरदान दाँत हैं, वह काटने के लिए मर्मस्थान देख रही है। तुलसीदासजी कहते हैं कि राजा दशरथ होनहार के वश में होकर इसे (इस प्रकार हाथ झटकने और नागिन की भाँति देखने को) कामदेव की क्रीड़ा ही समझ रहे हैं।

सोरठा :

* बार बार कह राउ सुमुखि सुलोचनि पिकबचनि।

कारन मोहि सुनाउ गजगामिनि निज कोप कर॥25॥

भावार्थ:-राजा बार-बार कह रहे हैं- हे सुमुखी! हे सुलोचनी! हे कोकिलबयनी! हे गजगामिनी! मुझे अपने क्रोध का कारण तो सुना॥25॥

चौपाई :

* अनहित तोर प्रिया केइँ कीन्हा। केहि दुइ सिर केहि जमु चह लीन्हा॥

कहु केहि रंकहि करौं नरेसू। कहु केहि नृपहि निकासौं देसू॥1॥

भावार्थ:-हे प्रिये! किसने तेरा अनिष्ट किया? किसके दो सिर हैं? यमराज किसको लेना (अपने लोक को ले जाना) चाहते हैं? कह, किस कंगाल को राजा कर दूँ या किस राजा को देश से निकाल दूँ?॥1॥

* सकउँ तोर अरि अमरउ मारी। काह कीट बपुरे नर नारी॥

जानसि मोर सुभाउ बरोरू। मनु तव आनन चंद चकोरू॥2॥

भावार्थ:-तेरा शत्रु अमर (देवता) भी हो, तो मैं उसे भी मार सकता हूँ। बेचारे कीड़े-मकोड़े सरीखे नर-नारी तो चीज ही क्या हैं। हे सुंदरी! तू तो मेरा स्वभाव जानती ही है कि मेरा मन सदा तेरे मुख रूपी चन्द्रमा का चकोर है॥2॥

* प्रिया प्रान सुत सरबसु मोरें। परिजन प्रजा सकल बस तोरें॥
जौं कछु कहौं कपटु करि तोही। भामिनि राम सपथ सत
मोही॥3॥

भावार्थ:-हे प्रिये! मेरी प्रजा, कुटम्बी, सर्वस्व (सम्पत्ति), पुत्र, यहाँ तक कि मेरे प्राण भी, ये सब तेरे वश में (अधीन) हैं। यदि मैं तुझसे कुछ कपट करके कहता होऊँ तो हे भामिनी! मुझे सौ बार राम की सौगंध है॥3॥

* बिहसि मागु मनभावति बाता। भूषन सजहि मनोहर गाता॥।
घरी कुघरी समुझि जियँ देखू। बेगि प्रिया परिहरहि कुबेषू॥4॥

भावार्थ:-तू हँसकर (प्रसन्नतापूर्वक) अपनी मनचाही बात माँग ले और अपने मनोहर अंगों को आभूषणों से सजा। मौका-बेमौका तो मन में विचार कर देख। हे प्रिये! जल्दी इस बुरे वेष को त्याग दे॥4॥

दोहा :

* यह सुनि मन गुनि सपथ बड़ि बिहसि उठी मतिमंद।
भूषन सजति बिलोकिमृगु मनहुँ किराततिनि फंद॥26॥

भावार्थ:-यह सुनकर और मन में रामजी की बड़ी सौंगंध को विचारकर मंदबुद्धि कैकेयी हँसती हुई उठी और गहने पहनने लगी, मानो कोई भीलनी मृग को देखकर फंदा तैयार कर रही हो!॥26॥

चौपाई :

* पुनि कह राउ सुहृद जियँ जानी। प्रेम पुलकि मृदु मंजुल
बानी॥
भामिनि भयउ तोर मनभावा। घर घर नगर अनंद बधावा॥1॥

भावार्थ:-अपने जी में कैकेयी को सुहृद् जानकर राजा दशरथजी प्रेम से पुलकित होकर कोमल और सुंदर वाणी से फिर बोले- हे भामिनि! तेरा मनचीता हो गया। नगर में घर-घर आनंद के बधावे बज रहे हैं॥1॥

* रामहि देउँ कालि जुबराजू। सजहि सुलोचनि मंगल साजू॥

दलकि उठेउ सुनि हृदउ कठोरू। जनु छुइ गयउ पाक बरतोरू॥2॥

भावार्थ:-मैं कल ही राम को युवराज पद दे रहा हूँ, इसलिए हे सुनयनी! तू मंगल साज सज। यह सुनते ही उसका कठोर हृदय दलक उठा (फटने लगा)। मानो पका हुआ बालतोड़ (फोड़ा) छू गया हो॥2॥

* ऐसिउ पीर बिहसि तेहिं गोई। चोर नारि जिमि प्रगटि न रोई॥

लखहिं न भूप कपट चतुराई। कोटि कुटिल मनि गुरू पढ़ाई॥3॥

भावार्थ:-ऐसी भारी पीड़ा को भी उसने हँसकर छिपा लिया, जैसे चोर की स्त्री प्रकट होकर नहीं रोती (जिसमें उसका भेद न खुल जाए)। राजा उसकी कपट-चतुराई को नहीं लख रहे हैं, क्योंकि वह करोड़ों कुटिलों की शिरोमणि गुरु मंथरा की पढ़ाई हुई है॥3॥

* जद्यपि नीति निपुन नरनाहू। नारिचरित जलनिधि अवगाहू॥

कपट सनेहु बढ़ाई बहोरी। बोली बिहसि नयन मुहु मोरी॥4॥

भावार्थ:-यद्यपि राजा नीति में निपुण हैं, परन्तु त्रियाचरित्र अथाह समुद्र है। फिर वह कपटयुक्त प्रेम बढ़ाकर (ऊपर से प्रेम दिखाकर) नेत्र और मुँह मोड़कर हँसती हुई बोली-॥4॥

दोहा :

* मागु मागु पै कहहु पिय कबहुँ न देहु न लेहु।
देन कहेहु बरदान दुइ तेउ पावत संदेहु॥27॥

भावार्थ:-हे प्रियतम! आप माँग-माँग तो कहा करते हैं, पर देते-लेते कभी कुछ भी नहीं। आपने दो वरदान देने को कहा था, उनके भी मिलने में संदेह है॥27॥

चौपाई :

* जानेउँ मरमु राउ हँसि कहई। तुम्हहि कोहाब परम प्रिय अहई॥
थाती राखि न मागिहु काऊ। बिसरि गयउ मोहि भोर सुभाऊ॥1॥

भावार्थ:-राजा ने हँसकर कहा कि अब मैं तुम्हारा मर्म (मतलब) समझा। मान करना तुम्हें परम प्रिय है। तुमने उन वरों को थाती (धरोहर) रखकर फिर कभी माँगा ही नहीं और मेरा भूलने का स्वभाव होने से मुझे भी वह प्रसंग याद नहीं रहा॥1॥

* झूठेहुँ हमहि दोषु जनि देहू। दुइ कै चारि मागि मकु लेहू॥
रघुकुल रीति सदा चलि आई। प्रान जाहुँ परु बचनु न जाई॥2॥

भावार्थ:-मुझे झूठ-मूठ दोष मत दो। चाहे दो के बदले चार माँग लो। रघुकुल में सदा से यह रीति चली आई है कि प्राण भले ही चले जाएँ, पर वचन नहीं जाता॥2॥

* नहिं असत्य सम पातक पुंजा। गिरि सम होहिं कि कोटिक गुंजा॥
सत्यमूल सब सुकृत सुहाए। बेद पुरान बिदित मनु गाए॥3॥

भावार्थ:-असत्य के समान पापों का समूह भी नहीं है। क्या करोड़ों घुँघचियाँ मिलकर भी कहीं पहाड़ के समान हो सकती

हैं। 'सत्य' ही समस्त उत्तम सुकृतों (पुण्यों) की जड़ है। यह बात वेद-पुराणों में प्रसिद्ध है और मनुजी ने भी यही कहा है॥3॥

* तेहि पर राम सपथ करि आई। सुकृत सनेह अवधि रघुराई॥
बाद दृढ़ाइ कुमति हँसि बोली। कुमत कुबिहग कुलह जनु खोली॥4॥

भावार्थ:-उस पर मेरे द्वारा श्री रामजी की शपथ करने में आ गई (मुँह से निकल पड़ी)। श्री रघुनाथजी मेरे सुकृत (पुण्य) और स्नेह की सीमा हैं। इस प्रकार बात पक्की कराके दुर्बुद्धि कैकेयी हँसकर बोली, मानो उसने कुमत (बुरे विचार) रूपी दुष्ट पक्षी (बाज) (को छोड़ने के लिए उस) की कुलही (आँखों पर की टोपी) खोल दी॥4॥

दोहा :

* भूप मनोरथ सुभग बनु सुख सुबिहंग समाजु।
भिल्लिनि जिमि छाड़न चहति बचनु भयंकरु बाजु॥28॥

भावार्थ:-राजा का मनोरथ सुंदर वन है, सुख सुंदर पक्षियों का समुदाय है। उस पर भीलनी की तरह कैकेयी अपना वचन रूपी भयंकर बाज छोड़ना चाहती है॥28॥

मासपारायण, तेरहवाँ विश्राम

चौपाई :

* सुनहु प्रानप्रिय भावत जी का। देहु एक बर भरतहि टीका॥
मागउँ दूसर बर कर जोरी। पुरवहु नाथ मनोरथ मोरी॥1॥

भावार्थ:-(वह बोली-) हे प्राण प्यारे! सुनिए, मेरे मन को भाने वाला एक वर तो दीजिए, भरत को राजतिलक और हे नाथ!

दूसरा वर भी मैं हाथ जोड़कर माँगती हूँ, मेरा मनोरथ पूरा कीजिए-॥1॥

* तापस बेष बिसेषि उदासी। चौदह बरिस रामु बनबासी॥
सुनि मृदु बचन भूप हियँ सोकू। ससि कर छुअत बिकल जिमि कोकू॥2॥

भावार्थ:-तपस्वियों के वेष में विशेष उदासीन भाव से (राज्य और कुटुम्ब आदि की ओर से भलीभाँति उदासीन होकर विरक्त मुनियों की भाँति) राम चौदह वर्ष तक वन में निवास करें। कैकेयी के कोमल (विनययुक्त) वचन सुनकर राजा के हृदय में ऐसा शोक हुआ जैसे चन्द्रमा की किरणों के स्पर्श से चकवा विकल हो जाता है॥2॥

* गयउ सहमि नहिं कछु कहि आवा। जनु सचान बन झपटेउ लावा॥
बिबरन भयउ निपट नरपालू। दामिनि हनेउ मनहुँ तरु तालू॥3॥

भावार्थ:-राजा सहम गए, उनसे कुछ कहते न बना मानो बाज वन में बटेर पर झपटा हो। राजा का रंग बिलकुल उड़ गया, मानो ताड़ के पेड़ को बिजली ने मारा हो (जैसे ताड़ के पेड़ पर बिजली गिरने से वह झुलसकर बदरंगा हो जाता है, वही हाल राजा का हुआ)॥3॥

* माथें हाथ मूदि दोउ लोचन। तनु धरि सोचु लाग जनु सोचन॥
मोर मनोरथु सुरतरु फूला। फरत करिनि जिमि हतेउ समूला॥4॥

भावार्थ:-माथे पर हाथ रखकर, दोनों नेत्र बंद करके राजा ऐसे सोच करने लगे, मानो साक्षात् सोच ही शरीर धारण कर सोच कर रहा हो। (वे सोचते हैं- हाय!) मेरा मनोरथ रूपी कल्पवृक्ष

फूल चुका था, परन्तु फलते समय कैकेयी ने हथिनी की तरह उसे जड़ समेत उखाड़कर नष्ट कर डाला॥4॥

* अवध उजारि कीन्हि कैकेईं। दीन्हिसि अचल बिपति कै नेईं॥5॥

भावार्थ:-कैकेयी ने अयोध्या को उजाड़ कर दिया और विपत्ति की अचल (सुदृढ़) नींव डाल दी॥5॥

दोहा :

* कवनें अवसर का भयउ गयउँ नारि बिस्वास।
जोग सिद्धि फल समय जिमि जतिहि अबिद्या नास॥29॥

भावार्थ:-किस अवसर पर क्या हो गया! स्त्री का विश्वास करके मैं वैसे ही मारा गया, जैसे योग की सिद्धि रूपी फल मिलने के समय योगी को अविद्या नष्ट कर देती है॥29॥

चौपाई :

* एहि बिधि राउ मनहिं मन झाँखा। देखि कुभाँति कुमति मन माखा॥
भरतु कि राउर पूत न होंही। आनेहु मोल बेसाहि कि मोही॥1॥

भावार्थ:-इस प्रकार राजा मन ही मन झींख रहे हैं। राजा का ऐसा बुरा हाल देखकर दुर्बुद्धि कैकेयी मन में बुरी तरह से क्रोधित हुई। (और बोली-) क्या भरत आपके पुत्र नहीं हैं? क्या मुझे आप दाम देकर खरीद लाए हैं? (क्या मैं आपकी विवाहिता पत्नी नहीं हूँ?)॥1॥

* जो सुनि सरु अस लाग तुम्हारें। काहे न बोलहु बचनु सँभारें॥
देहु उतरु अनु करहु कि नाहीं। सत्यसंध तुम्ह रघुकुल माहीं॥2॥

भावार्थ:-जो मेरा वचन सुनते ही आपको बाण सा लगा तो आप सोच-समझकर बात क्यों नहीं कहते? उत्तर दीजिए- हाँ कीजिए,

नहीं तो नाहीं कर दीजिए। आप रघुवंश में सत्य प्रतिज्ञा वाले (प्रसिद्ध) हैं!॥2॥

* देन कहेहु अब जनि बरु देहू। तजहु सत्य जग अपजसु लेहू॥
सत्य सराहि कहेहु बरु देना। जानेहु लेइहि मागि चबेना॥3॥

भावार्थ:-आपने ही वर देने को कहा था, अब भले ही न दीजिए। सत्य को छोड़ दीजिए और जगत में अपयश लीजिए। सत्य की बड़ी सराहना करके वर देने को कहा था। समझा था कि यह चबेना ही माँग लेगी!॥3॥

* सिबि दधीचि बलि जो कछु भाषा। तनु धनु तजेउ बचन पनु राखा॥
अति कटु बचन कहति कैकेई। मानहुँ लोन जरे पर देई॥4॥

भावार्थ:-राजा शिबि, दधीचि और बलि ने जो कुछ कहा, शरीर और धन त्यागकर भी उन्होंने अपने वचन की प्रतिज्ञा को निबाहा। कैकेयी बहुत ही कड़ुवे वचन कह रही है, मानो जले पर नमक छिड़क रही हो॥4॥

दोहा :

* धरम धुरंधर धीर धरि नयन उघारे रायँ।
सिरु धुनि लीन्हि उसास असि मारेसि मोहि कुठायँ॥30॥

भावार्थ:-धर्म की धुरी को धारण करने वाले राजा दशरथ ने धीरज धरकर नेत्र खोले और सिर धुनकर तथा लंबी साँस लेकर इस प्रकार कहा कि इसने मुझे बड़े कुठौर मारा (ऐसी कठिन परिस्थिति उत्पन्न कर दी, जिससे बच निकलना कठिन हो गया)॥30॥

चौपाई :

* आगें दीखि जरत सिर भारी। मनहुँ रोष तरवारि उघारी॥
मूठि कुबुद्धि धार निठुराई। धरी कूबरीं सान बनाई॥1॥

भावार्थ:-प्रचंड क्रोध से जलती हुई कैकेयी सामने इस प्रकार दिखाई पड़ी, मानो क्रोध रूपी तलवार नंगी (म्यान से बाहर) खड़ी हो। कुबुद्धि उस तलवार की मूठ है, निष्ठुरता धार है और वह कुबरी (मंथरा) रूपी सान पर धरकर तेज की हुई है॥1॥

* लखी महीप कराल कठोरा। सत्य कि जीवनु लेइहि मोरा॥
बोले राउ कठिन करि छाती। बानी सबिनय तासु सोहाती॥2॥

भावार्थ:-राजा ने देखा कि यह (तलवार) बड़ी ही भयानक और कठोर है (और सोचा-) क्या सत्य ही यह मेरा जीवन लेगी? राजा अपनी छाती कड़ी करके, बहुत ही नम्रता के साथ उसे (कैकेयी को) प्रिय लगने वाली वाणी बोले-॥2॥

* प्रिया बचन कस कहसि कुभाँती। भीर प्रतीति प्रीति करि हाँती॥
मोरें भरतु रामु दुइ आँखी। सत्य कहउँ करि संकरु साखी॥3॥

भावार्थ:-हे प्रिये! हे भीरु! विश्वास और प्रेम को नष्ट करके ऐसे बुरी तरह के वचन कैसे कह रही हो। मेरे तो भरत और रामचन्द्र दो आँखें (अर्थात एक से) हैं, यह मैं शंकरजी की साक्षी देकर सत्य कहता हूँ॥3॥

* अवसि दूतु मैं पठइब प्राता। ऐहहिं बेगि सुनत दोउ भ्राता॥
सुदिन सोधि सबु साजु सजाई। देउँ भरत कहुँ राजु बजाई॥4॥

भावार्थ:-मैं अवश्य सबेरे ही दूत भेजूँगा। दोनों भाई (भरत-शत्रुघ्न) सुनते ही तुरंत आ जाएँगे। अच्छा दिन (शुभ मुहूर्त) शोधवाकर, सब तैयारी करके डंका बजाकर मैं भरत को राज्य दे दूँगा॥4॥

दोहा :

* लोभु न रामहि राजु कर बहुत भरत पर प्रीति।
मैं बड़ छोट बिचारि जियँ करत रहेउँ नृपनीति॥31॥

भावार्थ:-राम को राज्य का लोभ नहीं है और भरत पर उनका बड़ा ही प्रेम है। मैं ही अपने मन में बड़े-छोटे का विचार करके राजनीति का पालन कर रहा था (बड़े को राजतिलक देने जा रहा था)॥31॥

चौपाई :

* राम सपथ सत कहउँ सुभाऊ। राममातु कछु कहेउ न काऊ॥
मैं सबु कीन्ह तोहि बिनु पूँछें। तेहि तें परेउ मनोरथु छूछें॥1॥

भावार्थ:-राम की सौ बार सौगंध खाकर मैं स्वभाव से ही कहता हूँ कि राम की माता (कौसल्या) ने (इस विषय में) मुझसे कभी कुछ नहीं कहा। अवश्य ही मैंने तुमसे बिना पूछे यह सब किया। इसी से मेरा मनोरथ खाली गया॥1॥

* रिस परिहरु अब मंगल साजू। कछु दिन गएँ भरत जुबराजू॥
एकहि बात मोहि दुखु लागा। बर दूसर असमंजस मागा॥2॥

भावार्थ:-अब क्रोध छोड़ दे और मंगल साज सज। कुछ ही दिनों बाद भरत युवराज हो जाएँगे। एक ही बात का मुझे दुःख लगा कि तूने दूसरा वरदान बड़ी अड़चन का माँगा॥2॥

* अजहूँ हृदय जरत तेहि आँचा। रिस परिहास कि साँचेहुँ साँचा॥
कहु तजि रोषु राम अपराधू। सबु कोउ कहइ रामु सुठि साधू॥3॥

भावार्थ:-उसकी आँच से अब भी मेरा हृदय जल रहा है। यह दिल्लगी में, क्रोध में अथवा सचमुच ही (वास्तव में) सच्चा है? क्रोध को त्यागकर राम का अपराध तो बता। सब कोई तो कहते हैं कि राम बड़े ही साधु हैं॥3॥

* तुहूँ सराहसि करसि सनेहू। अब सुनि मोहि भयउ संदेहू॥
जासु सुभाउ अरिहि अनूकूला। सो किमि करिहि मातु प्रतिकूला॥4॥

भावार्थ:-तू स्वयं भी राम की सराहना करती और उन पर स्नेह किया करती थी। अब यह सुनकर मुझे संदेह हो गया है (कि तुम्हारी प्रशंसा और स्नेह कहीं झूठे तो न थे?) जिसका स्वभाव शत्रु को भी अनूकल है, वह माता के प्रतिकूल आचरण क्यों कर करेगा?॥4॥

दोहा :

* प्रिया हास रिस परिहरहि मागु बिचारि बिबेकु।
जेहिं देखौं अब नयन भरि भरत राज अभिषेकु॥32॥

भावार्थ:-हे प्रिये! हँसी और क्रोध छोड़ दे और विवेक (उचित-अनुचित) विचारकर वर माँग, जिससे अब मैं नेत्र भरकर भरत का राज्याभिषेक देख सकूँ॥32॥

चौपाई :

* जिऐ मीन बरु बारि बिहीना। मनि बिनु फनिकु जिऐ दुख दीना॥
कहउँ सुभाउ न छलु मन माहीं। जीवनु मोर राम बिनु नाहीं॥1॥

भावार्थ:-मछली चाहे बिना पानी के जीती रहे और साँप भी चाहे बिना मणि के दीन-दुःखी होकर जीता रहे, परन्तु मैं

स्वभाव से ही कहता हूँ, मन में (जरा भी) छल रखकर नहीं कि मेरा जीवन राम के बिना नहीं है॥1॥

* समुझि देखु जियँ प्रिया प्रबीना। जीवनु राम दरस आधीना॥
सुनि मृदु बचन कुमति अति जरई। मनहुँ अनल आहुति घृत परई॥2॥

भावार्थ:-हे चतुर प्रिये! जी में समझ देख, मेरा जीवन श्री राम के दर्शन के अधीन है। राजा के कोमल वचन सुनकर दुर्बुद्धि कैकेयी अत्यन्त जल रही है। मानो अग्नि में घी की आहुतियाँ पड़ रही हैं॥2॥

* कहइ करहु किन कोटि उपाया। इहाँ न लागिहि राउरि माया॥
देहु कि लेहु अजसु करि नाहीं। मोहि न बहुत प्रपंच सोहाहीं॥3॥

भावार्थ:-(कैकेयी कहती है-) आप करोड़ों उपाय क्यों न करें, यहाँ आपकी माया (चालबाजी) नहीं लगेगी। या तो मैंने जो माँगा है सो दीजिए, नहीं तो 'नाहीं' करके अपयश लीजिए। मुझे बहुत प्रपंच (बखेड़े) नहीं सुहाते॥3॥

* रामु साधु तुम्ह साधु सयाने। राममातु भलि सब पहिचाने॥
जस कौसिलाँ मोर भल ताका। तस फलु उन्हहि देउँ करि साका॥4॥

भावार्थ:-राम साधु हैं, आप सयाने साधु हैं और राम की माता भी भली है, मैंने सबको पहचान लिया है। कौसल्या ने मेरा जैसा भला चाहा है, मैं भी साका करके (याद रखने योग्य) उन्हें वैसा ही फल दूँगी॥4॥

दोहा :

* होत प्रात मुनिबेष धरि जौं न रामु बन जाहिं।
मोर मरनु राउर अजस नृप समुझिअ मन माहिं॥33॥

भावार्थ:-(सबेरा होते ही मुनि का वेष धारण कर यदि राम वन को नहीं जाते, तो हे राजन्! मन में (निश्चय) समझ लीजिए कि मेरा मरना होगा और आपका अपयश!॥33॥

चौपाई :

* अस कहि कुटिल भई उठि ठाढ़ी। मानहुँ रोष तरंगिनि बाढ़ी॥
पाप पहार प्रगट भइ सोई। भरी क्रोध जल जाइ न जोई॥1॥

भावार्थ:-ऐसा कहकर कुटिल कैकेयी उठ खड़ी हुई, मानो क्रोध की नदी उमड़ी हो। वह नदी पाप रूपी पहाड़ से प्रकट हुई है और क्रोध रूपी जल से भरी है, (ऐसी भयानक है कि) देखी नहीं जाती!॥1॥

* दोउ बर कूल कठिन हठ धारा। भवँर कूबरी बचन प्रचारा॥
ढाहत भूपरूप तरु मूला। चली बिपति बारिधि अनूकूला॥2॥

भावार्थ:-दोनों वरदान उस नदी के दो किनारे हैं, कैकेयी का कठिन हठ ही उसकी (तीव्र) धारा है और कुबरी (मंथरा) के वचनों की प्रेरणा ही भँवर है। (वह क्रोध रूपी नदी) राजा दशरथ रूपी वृक्ष को जड़-मूल से ढहाती हुई विपत्ति रूपी समुद्र की ओर (सीधी) चली है॥2॥

* लखी नरेस बात फुरि साँची। तिय मिस मीचु सीस पर नाची॥
गहि पद बिनय कीन्ह बैठारी। जनि दिनकर कुल होसि कुठारी॥3॥

भावार्थ:-राजा ने समझ लिया कि बात सचमुच (वास्तव में) सच्ची है, स्त्री के बहाने मेरी मृत्यु ही सिर पर नाच रही है। (तदनन्तर राजा ने कैकेयी के) चरण पकड़कर उसे बिठाकर विनती की कि तू सूर्यकुल (रूपी वृक्ष) के लिए कुल्हाड़ी मत बन॥3॥

* मागु माथ अबहीं देउँ तोही। राम बिरहँ जनि मारसि मोही॥
राखु राम कहुँ जेहि तेहि भाँती। नाहिं त जरिहि जनम भरि छाती॥4॥

भावार्थ:-तू मेरा मस्तक माँग ले, मैं तुझे अभी दे दूँ। पर राम के विरह में मुझे मत मार। जिस किसी प्रकार से हो तू राम को रख ले। नहीं तो जन्मभर तेरी छाती जलेगी॥4॥

दोहा :

* देखी ब्याधि असाध नृपु परेउ धरनि धुनि माथ।
कहत परम आरत बचन राम राम रघुनाथ॥34॥

भावार्थ:-राजा ने देखा कि रोग असाध्य है, तब वे अत्यन्त आर्तवाणी से 'हा राम! हा राम! हा रघुनाथ!' कहते हुए सिर पीटकर जमीन पर गिर पड़े॥34॥

चौपाई :

* ब्याकुल राउ सिथिल सब गाता। करिनि कलपतरु मनहुँ निपाता॥
कंठु सूख मुख आव न बानी। जनु पाठीनु दीन बिनु पानी॥1॥

भावार्थ:-राजा व्याकुल हो गए, उनका सारा शरीर शिथिल पड़ गया, मानो हथिनी ने कल्पवृक्ष को उखाड़ फेंका हो। कंठ सूख

गीताप्रेस गोरखपुर

गया, मुख से बात नहीं निकलती, मानो पानी के बिना पहिना नामक मछली तड़प रही हो॥1॥

* पुनि कह कटु कठोर कैकेई। मनहुँ घाय महुँ माहुर देई॥
जौं अंतहुँ अस करतबु रहेऊ। मागु मागु तुम्ह केहिं बल कहेऊ॥2॥

भावार्थ:-कैकेयी फिर कड़वे और कठोर वचन बोली, मानो घाव में जहर भर रही हो। (कहती है-) जो अंत में ऐसा ही करना था, तो आपने 'माँग, माँग' किस बल पर कहा था?॥2॥

* दुइ कि होइ एक समय भुआला। हँसब ठठाइ फुलाउब गाला॥
दानि कहाउब अरु कृपनाई। होइ कि खेम कुसल रौताई॥3॥

भावार्थ:-हे राजा! ठहाका मारकर हँसना और गाल फुलाना- क्या ये दोनों एक साथ हो सकते हैं? दानी भी कहाना और कंजूसी भी करना। क्या रजपूती में क्षेम-कुशल भी रह सकती है?(लड़ाई में बहादुरी भी दिखावें और कहीं चोट भी न लगे!)॥3॥

* छाड़हु बचनु कि धीरजु धरहू। जनि अबला जिमि करुना करहू॥
तनु तिय तनय धामु धनु धरनी। सत्यसंध कहुँ तृन सम बरनी॥4॥

भावार्थ:-या तो वचन (प्रतिज्ञा) ही छोड़ दीजिए या धैर्य धारण कीजिए। यों असहाय स्त्री की भाँति रोइए-पीटिए नहीं। सत्यव्रती के लिए तो शरीर, स्त्री, पुत्र, घर, धन और पृथ्वी- सब तिनके के बराबर कहे गए हैं॥4॥

दोहा :

* मरम बचन सुनि राउ कह कहु कछु दोषु न तोर।

लागेउ तोहि पिसाच जिमि कालु कहावत मोर॥35॥

भावार्थ:-कैकेयी के मर्मभेदी वचन सुनकर राजा ने कहा कि तू जो चाहे कह, तेरा कुछ भी दोष नहीं है। मेरा काल तुझे मानो पिशाच होकर लग गया है, वही तुझसे यह सब कहला रहा है॥35॥

चौपाई :

* चहत न भरत भूपतहि भोरें। बिधि बस कुमति बसी जिय तोरें॥
सो सबु मोर पाप परिनामू। भयउ कुठाहर जेहिं बिधि बामू॥

भावार्थ:-भरत तो भूलकर भी राजपद नहीं चाहते। होनहारवश तेरे ही जी में कुमति आ बसी। यह सब मेरे पापों का परिणाम है, जिससे कुसमय (बेमौके) में विधाता विपरीत हो गया॥1॥

* सुबस बसिहि फिरि अवध सुहाई। सब गुन धाम राम प्रभुताई॥
करिहहिं भाइ सकल सेवकाई। होइहि तिहुँ पुर राम बड़ाई॥2॥

भावार्थ:- (तेरी उजाड़ी हुई) यह सुंदर अयोध्या फिर भलीभाँति बसेगी और समस्त गुणों के धाम श्री राम की प्रभुता भी होगी। सब भाई उनकी सेवा करेंगे और तीनों लोकों में श्री राम की बड़ाई होगी॥2॥

* तोर कलंकु मोर पछिताऊ। मुएहुँ न मिटिहि न जाइहि काऊ॥
अब तोहि नीक लाग करु सोई। लोचन ओट बैठु मुहु गोई॥3॥

भावार्थ:-केवल तेरा कलंक और मेरा पछतावा मरने पर भी नहीं मिटेगा, यह किसी तरह नहीं जाएगा। अब तुझे जो अच्छा लगे वही कर। मुँह छिपाकर मेरी आँखों की ओट जा बैठ (अर्थात मेरे सामने से हट जा, मुझे मुँह न दिखा)॥3॥

* जब लगि जिऔं कहउँ कर जोरी। तब लगि जनि कछु कहसि बहोरी॥
फिरि पछितैहसि अंत अभागी। मारसि गाइ नहारू लागी॥4॥

भावार्थ:-मैं हाथ जोड़कर कहता हूँ कि जब तक मैं जीता रहूँ, तब तक फिर कुछ न कहना (अर्थात मुझसे न बोलना)। अरी अभागिनी! फिर तू अन्त में पछताएगी जो तू नहारू (ताँत) के लिए गाय को मार रही है॥4॥

दोहा :

* परेउ राउ कहि कोटि बिधि काहे करसि निदानु।
कपट सयानि न कहति कछु जागति मनहुँ मसानु॥36॥

भावार्थ:-राजा करोड़ों प्रकार से (बहुत तरह से) समझाकर (और यह कहकर) कि तू क्यों सर्वनाश कर रही है, पृथ्वी पर गिर पड़े। पर कपट करने में चतुर कैकेयी कुछ बोलती नहीं, मानो (मौन होकर) मसान जगा रही हो (श्मशान में बैठकर प्रेतमंत्र सिद्ध कर रही हो)॥36॥

चौपाई :

* राम राम रट बिकल भुआलू। जनु बिनु पंख बिहंग बेहालू॥
हृदयँ मनाव भोरु जनि होई। रामहि जाइ कहै जनि कोई॥1॥

भावार्थ:-राजा 'राम-राम' रट रहे हैं और ऐसे व्याकुल हैं, जैसे कोई पक्षी पंख के बिना बेहाल हो। वे अपने हृदय में मनाते हैं कि सबेरा न हो और कोई जाकर श्री रामचन्द्रजी से यह बात न कहे॥1॥

* उदउ करहु जनि रबि रघुकुल गुर। अवध बिलोकि सूल होइहि उर॥

भूप प्रीति कैकइ कठिनाई। उभय अवधि बिधि रची बनाई॥2॥

भावार्थ:-हे रघुकुल के गुरु (बड़ेरे, मूलपुरुष) सूर्य भगवान्! आप अपना उदय न करें। अयोध्या को (बेहाल) देखकर आपके हृदय में बड़ी पीड़ा होगी। राजा की प्रीति और कैकेयी की निष्ठुरता दोनों को ब्रह्मा ने सीमा तक रचकर बनाया है (अर्थात राजा प्रेम की सीमा है और कैकेयी निष्ठुरता की)॥2॥

* बिलपत नृपहि भयउ भिनुसारा। बीना बेनु संख धुनि द्वारा॥
पढ़हिं भाट गुन गावहिं गायक। सुनत नृपहि जनु लागहिं सायक॥3॥

भावार्थ:-विलाप करते-करते ही राजा को सबेरा हो गया! राज द्वार पर वीणा, बाँसुरी और शंख की ध्वनि होने लगी। भाट लोग विरुदावली पढ़ रहे हैं और गवैये गुणों का गान कर रहे हैं। सुनने पर राजा को वे बाण जैसे लगते हैं॥3॥

* मंगल सकल सोहाहिं न कैसें। सहगामिनिहि बिभूषन जैसें॥
तेहि निसि नीद परी नहिं काहू। राम दरस लालसा उछाहू॥4॥

भावार्थ:-राजा को ये सब मंगल साज कैसे नहीं सुहा रहे हैं, जैसे पति के साथ सती होने वाली स्त्री को आभूषण! श्री रामचन्द्रजी के दर्शन की लालसा और उत्साह के कारण उस रात्रि में किसी को भी नींद नहीं आई॥4॥

दोहा :

* द्वार भीर सेवक सचिव कहहिं उदित रबि देखि।
जागेउ अजहुँ न अवधपति कारनु कवनु बिसेषि॥37॥

भावार्थ:-राजद्वार पर मंत्रियों और सेवकों की भीड़ लगी है। वे सब सूर्य को उदय हुआ देखकर कहते हैं कि ऐसा कौन सा

विशेष कारण है कि अवधपति दशरथजी अभी तक नहीं जागे?॥37॥

चौपाई :

* पछिले पहर भूपु नित जागा। आजु हमहि बड़ अचरजु लागा॥
जाहु सुमंत्र जगावहु जाई। कीजिअ काजु रजायसु पाई॥1॥

भावार्थ:-राजा नित्य ही रात के पिछले पहर जाग जाया करते हैं, किन्तु आज हमें बड़ा आश्चर्य हो रहा है। हे सुमंत्र! जाओ, जाकर राजा को जगाओ। उनकी आज्ञा पाकर हम सब काम करें॥1॥

* गए सुमंत्रु तब राउर माहीं। देखि भयावन जात डेराहीं॥
धाइ खाई जनु जाइ न हेरा। मानहुँ बिपति बिषाद बसेरा॥2॥

भावार्थ:-तब सुमंत्र रावले (राजमहल) में गए, पर महल को भयानक देखकर वे जाते हुए डर रहे हैं। (ऐसा लगता है) मानो दौड़कर काट खाएगा, उसकी ओर देखा भी नहीं जाता। मानो विपत्ति और विषाद ने वहाँ डेरा डाल रखा हो॥2॥

* पूछें कोउ न ऊतरु देई। गए जेहिं भवन भूप कैकेई॥
कहि जयजीव बैठ सिरु नाई। देखि भूप गति गयउ सुखाई॥3॥

भावार्थ:-पूछने पर कोई जवाब नहीं देता। वे उस महल में गए, जहाँ राजा और कैकेयी थे 'जय जीव' कहकर सिर नवाकर (वंदना करके) बैठे और राजा की दशा देखकर तो वे सूख ही गए॥3॥

* सोच बिकल बिबरन महि परेऊ। मानहु कमल मूलु परिहरेऊ॥
सचिउ सभीत सकइ नहिं पूँछी। बोली असुभ भरी सुभ छूँछी॥4॥

भावार्थ:-(देखा कि-) राजा सोच से व्याकुल हैं, चेहरे का रंग उड़ गया है। जमीन पर ऐसे पड़े हैं, मानो कमल जड़ छोड़कर (जड़ से उखड़कर) (मुर्झाया) पड़ा हो। मंत्री मारे डर के कुछ पूछ नहीं सकते। तब अशुभ से भरी हुई और शुभ से विहीन कैकेयी बोली-॥4॥

दोहा :

* परी न राजहि नीद निसि हेतु जान जगदीसु।
रामु रामु रटि भोरु किय कहइ ना मरमु महीसु॥38॥

भावार्थ:-राजा को रातभर नींद नहीं आई, इसका कारण जगदीश्वर ही जानें। इन्होंने 'राम राम' रटकर सबेरा कर दिया, परन्तु इसका भेद राजा कुछ भी नहीं बतलाते॥38॥

चौपाई :

* आनहु रामहि बेगि बोलाई। समाचार तब पूँछेहु आई॥
चलेउ सुमंत्रु राय रुख जानी। लखी कुचालि कीन्हि कछु रानी॥1॥

भावार्थ:-तुम जल्दी राम को बुला लाओ। तब आकर समाचार पूछना। राजा का रुख जानकर सुमंत्रजी चले, समझ गए कि रानी ने कुछ कुचाल की है॥1॥

* सोच बिकल मग परइ न पाऊ। रामहि बोलि कहिहि का राऊ॥
उर धरि धीरजु गयउ दुआरें। पूँछहिं सकल देखि मनु मारें॥2॥

भावार्थ:-सुमंत्र सोच से व्याकुल हैं, रास्ते पर पैर नहीं पड़ता (आगे बढ़ा नहीं जाता), (सोचते हैं-) रामजी को बुलाकर राजा

क्या कहेंगे? किसी तरह हृदय में धीरज धरकर वे द्वार पर गए। सब लोग उनको मन मारे (उदास) देखकर पूछने लगे॥2॥

* समाधानु करि सो सबही का। गयउ जहाँ दिनकर कुल टीका॥
राम सुमंत्रहि आवत देखा। आदरु कीन्ह पिता सम लेखा॥3॥

भावार्थ:-सब लोगों का समाधान करके (किसी तरह समझा-बुझाकर) सुमंत्र वहाँ गए, जहाँ सूर्यकुल के तिलक श्री रामचन्द्रजी थे। श्री रामचन्द्रजी ने सुमंत्र को आते देखा तो पिता के समान समझकर उनका आदर किया॥3॥

* निरखि बदनु कहि भूप रजाई। रघुकुलदीपहि चलेउ लेवाई॥
रामु कुभाँति सचिव सँग जाहीं। देखि लोग जहँ तहँ बिलखाहीं॥4॥

भावार्थ:-श्री रामचन्द्रजी के मुख को देखकर और राजा की आज्ञा सुनाकर वे रघुकुल के दीपक श्री रामचन्द्रजी को (अपने साथ) लिवा चले। श्री रामचन्द्रजी मंत्री के साथ बुरी तरह से (बिना किसी लवाजमे के) जा रहे हैं, यह देखकर लोग जहाँ-तहाँ विषाद कर रहे हैं॥4॥

दोहा :

* जाइ दीख रघुबंसमनि नरपति निपट कुसाजु।
सहमि परेउ लखि सिंघिनिहि मनहुँ बृद्ध गजराजु॥39॥

भावार्थ:-रघुवंशमणि श्री रामचन्द्रजी ने जाकर देखा कि राजा अत्यन्त ही बुरी हालत में पड़े हैं, मानो सिंहनी को देखकर कोई बूढ़ा गजराज सहमकर गिर पड़ा हो॥39॥

चौपाई :

* सूखहिं अधर जरइ सबु अंगू। मनहुँ दीन मनिहीन भुअंगू॥

सरुष समीप दीखि कैकेई। मानहुँ मीचु घरीं गनि लेई॥1॥

भावार्थ:-राजा के होठ सूख रहे हैं और सारा शरीर जल रहा है, मानो मणि के बिना साँप दुःखी हो रहा हो। पास ही क्रोध से भरी कैकेयी को देखा, मानो (साक्षात) मृत्यु ही बैठी (राजा के जीवन की अंतिम) घड़ियाँ गिन रही हो॥1॥

श्री राम-कैकेयी संवाद

* करुनामय मृदु राम सुभाऊ। प्रथम दीख दुखु सुना न काऊ॥
तदपि धीर धरि समउ बिचारी। पूँछी मधुर बचन महतारी॥2॥

भावार्थ:-श्री रामचन्द्रजी का स्वभाव कोमल और करुणामय है। उन्होंने (अपने जीवन में) पहली बार यह दुःख देखा, इससे पहले कभी उन्होंने दुःख सुना भी न था। तो भी समय का विचार करके हृदय में धीरज धरकर उन्होंने मीठे वचनों से माता कैकेयी से पूछा-॥2॥

* मोहि कहु मातु तात दुख कारन। करिअ जतन जेहिं होइ निवारन॥
सुनहु राम सबु कारनु एहू। राजहि तुम्ह पर बहुत सनेहू॥3॥

भावार्थ:-हे माता! मुझे पिताजी के दुःख का कारण कहो, ताकि उसका निवारण हो (दुःख दूर हो) वह यत्न किया जाए। (कैकेयी ने कहा-) हे राम! सुनो, सारा कारण यही है कि राजा का तुम पर बहुत स्नेह है॥3॥

* देन कहेन्हि मोहि दुइ बरदाना। मागेउँ जो कछु मोहि सोहाना॥

सो सुनि भयउ भूप उर सोचू। छाड़ि न सकहिं तुम्हार सँकोचू॥4॥

भावार्थ:-इन्होंने मुझे दो वरदान देने को कहा था। मुझे जो कुछ अच्छा लगा, वही मैंने माँगा। उसे सुनकर राजा के हृदय में सोच हो गया, क्योंकि ये तुम्हारा संकोच नहीं छोड़ सकते॥4॥

दोहा :

* सुत सनेहु इत बचनु उत संकट परेउ नरेसु।
सकहु त आयसु धरहु सिर मेटहु कठिन कलेसु॥40॥

भावार्थ:-इधर तो पुत्र का स्नेह है और उधर वचन (प्रतिज्ञा), राजा इसी धर्मसंकट में पड़ गए हैं। यदि तुम कर सकते हो, तो राजा की आज्ञा शिरोधार्य करो और इनके कठिन क्लेश को मिटाओ॥40॥

चौपाई :

* निधरक बैठि कहइ कटु बानी। सुनत कठिनता अति अकुलानी॥
जीभ कमान बचन सर नाना। मनहुँ महिप मृदु लच्छ समाना॥1॥

भावार्थ:-कैकेयी बेधड़क बैठी ऐसी कड़वी वाणी कह रही है, जिसे सुनकर स्वयं कठोरता भी अत्यन्त व्याकुल हो उठी। जीभ धनुष है, वचन बहुत से तीर हैं और मानो राजा ही कोमल निशाने के समान हैं॥1॥

* जनु कठोरपनु धरें सरीरू। सिखइ धनुषबिद्या बर बीरू॥
सबु प्रसंगु रघुपतिहि सुनाई। बैठि मनहुँ तनु धरि निठुराई॥2॥

भावार्थ:-(इस सारे साज-समान के साथ) मानो स्वयं कठोरपन श्रेष्ठ वीर का शरीर धारण करके धनुष विद्या सीख रहा है। श्री

रघुनाथजी को सब हाल सुनाकर वह ऐसे बैठी है, मानो निष्ठुरता ही शरीर धारण किए हुए हो॥2॥

* मन मुसुकाइ भानुकुल भानू। रामु सहज आनंद निधानू॥
बोले बचन बिगत सब दूषन। मृदु मंजुल जनु बाग बिभूषन॥3॥

भावार्थ:-सूर्यकुल के सूर्य, स्वाभाविक ही आनंदनिधान श्री रामचन्द्रजी मन में मुस्कुराकर सब दूषणों से रहित ऐसे कोमल और सुंदर वचन बोले जो मानो वाणी के भूषण ही थे-॥3॥

* सुनु जननी सोइ सुतु बड़भागी। जो पितु मातु बचन अनुरागी॥
तनय मातु पितु तोषनिहारा। दुर्लभ जननि सकल संसारा॥4॥

भावार्थ:-हे माता! सुनो, वही पुत्र बड़भागी है, जो पिता-माता के वचनों का अनुरागी (पालन करने वाला) है। (आज्ञा पालन द्वारा) माता-पिता को संतुष्ट करने वाला पुत्र, हे जननी! सारे संसार में दुर्लभ है॥4॥

दोहा :

* मुनिगन मिलनु बिसेषि बन सबहि भाँति हित मोर।
तेहि महँ पितु आयसु बहुरि संमत जननी तोर॥41॥

भावार्थ:-वन में विशेष रूप से मुनियों का मिलाप होगा, जिसमें मेरा सभी प्रकार से कल्याण है। उसमें भी, फिर पिताजी की आज्ञा और हे जननी! तुम्हारी सम्मति है,॥41॥

चौपाई :

* भरतु प्रानप्रिय पावहिं राजू। बिधि सब बिधि मोहि सनमुख आजू॥

जौं न जाउँ बन ऐसेहु काजा। प्रथम गनिअ मोहि मूढ़ समाजा॥1॥

भावार्थ:-और प्राण प्रिय भरत राज्य पावेंगे। (इन सभी बातों को देखकर यह प्रतीत होता है कि) आज विधाता सब प्रकार से मुझे सम्मुख हैं (मेरे अनुकूल हैं)। यदि ऐसे काम के लिए भी मैं वन को न जाऊँ तो मूर्खों के समाज में सबसे पहले मेरी गिनती करनी चाहिए॥1॥

* सेवहिं अरँडु कलपतरु त्यागी। परिहरि अमृत लेहिं बिषु मागी॥
तेउ न पाइ अस समउ चुकाहीं। देखु बिचारि मातु मन माहीं॥2॥

भावार्थ:-जो कल्पवृक्ष को छोड़कर रेंड की सेवा करते हैं और अमृत त्याग कर विष माँग लेते हैं, हे माता! तुम मन में विचार कर देखो, वे (महामूर्ख) भी ऐसा मौका पाकर कभी न चूकेंगे॥2॥

* अंब एक दुखु मोहि बिसेषी। निपट बिकल नरनायकु देखी॥
थोरिहिं बात पितहि दुख भारी। होति प्रतीति न मोहि महतारी॥3॥

भावार्थ:-हे माता! मुझे एक ही दुःख विशेष रूप से हो रहा है, वह महाराज को अत्यन्त व्याकुल देखकर। इस थोड़ी सी बात के लिए ही पिताजी को इतना भारी दुःख हो, हे माता! मुझे इस बात पर विश्वास नहीं होता॥3॥

* राउ धीर गुन उदधि अगाधू। भा मोहि तें कछु बड़ अपराधू॥
जातें मोहि न कहत कछु राऊ। मोरि सपथ तोहि कहु सतिभाऊ॥4॥

भावार्थ:-क्योंकि महाराज तो बड़े ही धीर और गुणों के अथाह समुद्र हैं। अवश्य ही मुझसे कोई बड़ा अपराध हो गया है,

जिसके कारण महाराज मुझसे कुछ नहीं कहते। तुम्हें मेरी सौगंध है, माता! तुम सच-सच कहो॥4॥

दोहा :

* सहज सकल रघुबर बचन कुमति कुटिल करि जान।
चलइ जोंक जल बक्रगति जद्यपि सलिलु समान॥42॥

भावार्थ:-रघुकुल में श्रेष्ठ श्री रामचन्द्रजी के स्वभाव से ही सीधे वचनों को दुर्बुद्धि कैकेयी टेढ़ा ही करके जान रही है, जैसे यद्यपि जल समान ही होता है, परन्तु जोंक उसमें टेढ़ी चाल से ही चलती है॥42॥

चौपाई :

* रहसी रानि राम रुख पाई। बोली कपट सनेहु जनाई॥
सपथ तुम्हार भरत कै आना। हेतु न दूसर मैं कछु जाना॥1॥

भावार्थ:-रानी कैकेयी श्री रामचन्द्रजी का रुख पाकर हर्षित हो गई और कपटपूर्ण स्नेह दिखाकर बोली- तुम्हारी शपथ और भरत की सौगंध है, मुझे राजा के दुःख का दूसरा कुछ भी कारण विदित नहीं है॥1॥

* तुम्ह अपराध जोगु नहिं ताता। जननी जनक बंधु सुखदाता॥
राम सत्य सबु जो कछु कहहू। तुम्ह पितु मातु बचन रत अहहू॥2॥

भावार्थ:-हे तात! तुम अपराध के योग्य नहीं हो (तुमसे माता-पिता का अपराध बन पड़े यह संभव नहीं)। तुम तो माता-पिता और भाइयों को सुख देने वाले हो। हे राम! तुम जो कुछ कह रहे हो, सब सत्य है। तुम पिता-माता के वचनों (के पालन) में तत्पर हो॥2॥

*पितहि बुझाइ कहहु बलि सोई। चौथेंपन जेहिं अजसु न होई॥
तुम्ह सम सुअन सुकृत जेहिं दीन्हे। उचित न तासु निरादरु
कीन्हे॥3॥

भावार्थ:-मैं तुम्हारी बलिहारी जाती हूँ, तुम पिता को समझाकर वही बात कहो, जिससे चौथेपन (बुढ़ापे) में इनका अपयश न हो। जिस पुण्य ने इनको तुम जैसे पुत्र दिए हैं, उसका निरादर करना उचित नहीं॥3॥

* लागहिं कुमुख बचन सुभ कैसे। मगहँ गयादिक तीरथ जैसे॥
रामहि मातु बचन सब भाए। जिमि सुरसरि गत सलिल
सुहाए॥4॥

भावार्थ:-कैकेयी के बुरे मुख में ये शुभ वचन कैसे लगते हैं जैसे मगध देश में गया आदिक तीर्थ! श्री रामचन्द्रजी को माता कैकेयी के सब वचन ऐसे अच्छे लगे जैसे गंगाजी में जाकर (अच्छे-बुरे सभी प्रकार के) जल शुभ, सुंदर हो जाते हैं॥4॥

श्री राम-दशरथ संवाद, अवधवासियों का विषाद, कैकेयी को समझाना

दोहा :

* गइ मुरुछा रामहि सुमिरि नृप फिरि करवट लीन्ह।
सचिव राम आगमन कहि बिनय समय सम कीन्ह॥43॥

भावार्थ:-इतने में राजा की मूर्च्छा दूर हुई, उन्होंने राम का स्मरण करके ('राम! राम!' कहकर) फिरकर करवट ली। मंत्री ने श्री रामचन्द्रजी का आना कहकर समयानुकूल विनती की॥43॥

चौपाई :

गीताप्रेस गोरखपुर

* अवनिप अकनि रामु पगु धारे। धरि धीरजु तब नयन उघारे॥
सचिवँ सँभारि राउ बैठारे। चरन परत नृप रामु निहारे॥1॥

भावार्थ:-जब राजा ने सुना कि श्री रामचन्द्र पधारे हैं तो उन्होंने धीरज धरके नेत्र खोले। मंत्री ने संभालकर राजा को बैठाया। राजा ने श्री रामचन्द्रजी को अपने चरणों में पड़ते (प्रणाम करते) देखा॥1॥

* लिए सनेह बिकल उर लाई। गै मनि मनहुँ फनिक फिरि पाई॥
रामहि चितइ रहेउ नरनाहू। चला बिलोचन बारि प्रबाहू॥2॥

भावार्थ:-स्नेह से विकल राजा ने रामजी को हृदय से लगा लिया। मानो साँप ने अपनी खोई हुई मणि फिर से पा ली हो। राजा दशरथजी श्री रामजी को देखते ही रह गए। उनके नेत्रों से आँसुओं की धारा बह चली॥2॥

* सोक बिबस कछु कहै न पारा। हृदयँ लगावत बारहिं बारा॥
बिधिहि मनाव राउ मन माहीं। जेहिं रघुनाथ न कानन जाहीं॥3॥

भावार्थ:-शोक के विशेष वश होने के कारण राजा कुछ कह नहीं सकते। वे बार-बार श्री रामचन्द्रजी को हृदय से लगाते हैं और मन में ब्रह्माजी को मनाते हैं कि जिससे श्री राघुनाथजी वन को न जाएँ॥3॥

* सुमिरि महेसहि कहइ निहोरी। बिनती सुनहु सदासिव मोरी॥
आसुतोष तुम्ह अवढर दानी। आरति हरहु दीन जनु जानी॥4॥

भावार्थ:-फिर महादेवजी का स्मरण करके उनसे निहोरा करते हुए कहते हैं- हे सदाशिव! आप मेरी विनती सुनिए। आप आशुतोष (शीघ्र प्रसन्न होने वाले) और अवढरदानी (मुँहमाँगा दे डालने वाले) हैं। अतः मुझे अपना दीन सेवक जानकर मेरे दुःख को दूर कीजिए॥4॥

दोहा :

* तुम्ह प्रेरक सब के हृदयँ सो मति रामहि देहु।
बचनु मोर तजि रहहिं घर परिहरि सीलु सनेहु॥44॥

भावार्थ:-आप प्रेरक रूप से सबके हृदय में हैं। आप श्री रामचन्द्र को ऐसी बुद्धि दीजिए, जिससे वे मेरे वचन को त्यागकर और शील-स्नेह को छोड़कर घर ही में रह जाएँ॥44॥

चौपाई :

* अजसु होउ जग सुजसु नसाऊ। नरक परौं बरु सुरपुरु जाऊ॥
सब दुख दुसह सहावहु मोही। लोचन ओट रामु जनि होंही॥1॥

भावार्थ:-जगत में चाहे अपयश हो और सुयश नष्ट हो जाए। चाहे (नया पाप होने से) मैं नरक में गिरूँ, अथवा स्वर्ग चला जाए (पूर्व पुण्यों के फलस्वरूप मिलने वाला स्वर्ग चाहे मुझे न मिले)। और भी सब प्रकार के दुःसह दुःख आप मुझसे सहन करा लें। पर श्री रामचन्द्र मेरी आँखों की ओट न हों॥1॥

* अस मन गुनइ राउ नहिं बोला। पीपर पात सरिस मनु डोला॥
रघुपति पितहि प्रेमबस जानी। पुनि कछु कहिहि मातु अनुमानी॥2॥

भावार्थ:-राजा मन ही मन इस प्रकार विचार कर रहे हैं, बोलते नहीं। उनका मन पीपल के पत्ते की तरह डोल रहा है। श्री रघुनाथजी ने पिता को प्रेम के वश जानकर और यह अनुमान करके कि माता फिर कुछ कहेगी (तो पिताजी को दुःख होगा)॥2॥

* देस काल अवसर अनुसारी। बोले बचन बिनीत बिचारी॥
तात कहउँ कछु करउँ ढिठाई। अनुचितु छमब जानि लरिकाई॥3॥

भावार्थ:-देश, काल और अवसर के अनुकूल विचार कर विनीत वचन कहे- हे तात! मैं कुछ कहता हूँ, यह ढिठाई करता हूँ। इस अनौचित्य को मेरी बाल्यावस्था समझकर क्षमा कीजिएगा॥3॥

* अति लघु बात लागि दुखु पावा। काहुँ न मोहि कहि प्रथम जनावा॥
देखि गोसाइँहि पूँछिउँ माता। सुनि प्रसंगु भए सीतल गाता॥4॥

भावार्थ:-इस अत्यन्त तुच्छ बात के लिए आपने इतना दुःख पाया। मुझे किसी ने पहले कहकर यह बात नहीं जनाई। स्वामी (आप) को इस दशा में देखकर मैंने माता से पूछा। उनसे सारा प्रसंग सुनकर मेरे सब अंग शीतल हो गए (मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई)॥4॥

दोहा :

* मंगल समय सनेह बस सोच परिहरिअ तात।
आयसु देइअ हरषि हियँ कहि पुलके प्रभु गात॥45॥

भावार्थ:-हे पिताजी! इस मंगल के समय स्नेहवश होकर सोच करना छोड़ दीजिए और हृदय में प्रसन्न होकर मुझे आज्ञा दीजिए। यह कहते हुए प्रभु श्री रामचन्द्रजी सर्वांग पुलकित हो गए॥45॥

चौपाई :

* धन्य जनमु जगतीतल तासू। पितहि प्रमोदु चरित सुनि जासू॥
चारि पदारथ करतल ताकें। प्रिय पितु मातु प्रान सम जाकें॥1॥

भावार्थ:-(उन्होंने फिर कहा-) इस पृथ्वीतल पर उसका जन्म धन्य है, जिसके चरित्र सुनकर पिता को परम आनंद हो, जिसको

माता-पिता प्राणों के समान प्रिय हैं, चारों पदार्थ (अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष) उसके करतलगत (मुट्ठी में) रहते हैं॥1॥

* आयसु पालि जनम फलु पाई। ऐहउँ बेगिहिं होउ रजाई॥
बिदा मातु सन आवउँ मागी। चलिहउँ बनहि बहुरि पग लागी॥2॥

भावार्थ:-आपकी आज्ञा पालन करके और जन्म का फल पाकर मैं जल्दी ही लौट आऊँगा, अतः कृपया आज्ञा दीजिए। माता से विदा माँग आता हूँ। फिर आपके पैर लगकर (प्रणाम करके) वन को चलूँगा॥2॥

* अस कहि राम गवनु तब कीन्हा। भूप सोक बस उतरु न दीन्हा॥
नगर ब्यापि गइ बात सुतीछी। छुअत चढ़ी जनु सब तन बीछी॥3॥

भावार्थ:-ऐसा कहकर तब श्री रामचन्द्रजी वहाँ से चल दिए। राजा ने शोकवश कोई उत्तर नहीं दिया। वह बहुत ही तीखी (अप्रिय) बात नगर भर में इतनी जल्दी फैल गई, मानो डंक मारते ही बिच्छू का विष सारे शरीर में चढ़ गया हो॥3॥

* सुनि भए बिकल सकल नर नारी। बेलि बिटप जिमि देखि दवारी॥
जो जहँ सुनइ धुनइ सिरु सोई। बड़ बिषादु नहिं धीरजु होई॥4॥

भावार्थ:-इस बात को सुनकर सब स्त्री-पुरुष ऐसे व्याकुल हो गए जैसे दावानल (वन में आग लगी) देखकर बेल और वृक्ष मुरझा जाते हैं। जो जहाँ सुनता है, वह वहीं सिर धुनने (पीटने) लगता है! बड़ा विषाद है, किसी को धीरज नहीं बँधता॥4॥

दोहा :

* मुख सुखाहिं लोचन स्रवहिं सोकु न हृदयँ समाइ।
मनहुँ करुन रस कटकई उतरी अवध बजाइ॥46॥

भावार्थ:-सबके मुख सूखे जाते हैं, आँखों से आँसू बहते हैं, शोक हृदय में नहीं समाता। मानो करुणा रस की सेना अवध पर डंका बजाकर उतर आई हो॥46॥

चौपाई :

* मिलेहि माझ बिधि बात बेगारी। जहँ तहँ देहिं कैकइहि गारी॥
एहि पापिनिहि बूझि का परेऊ। छाइ भवन पर पावकु धरेऊ॥1॥

भावार्थ:-सब मेल मिल गए थे (सब संयोग ठीक हो गए थे), इतने में ही विधाता ने बात बिगाड़ दी! जहाँ-तहाँ लोग कैकेयी को गाली दे रहे हैं! इस पापिन को क्या सूझ पड़ा जो इसने छाए घर पर आग रख दी॥1॥

* निज कर नयन काढ़ि चह दीखा। डारि सुधा बिषु चाहत चीखा॥
कुटिल कठोर कुबुद्धि अभागी। भइ रघुबंस बेनु बन आगी॥2॥

भावार्थ:-यह अपने हाथ से अपनी आँखों को निकालकर (आँखों के बिना ही) देखना चाहती है और अमृत फेंककर विष चखना चाहती है! यह कुटिल, कठोर, दुर्बुद्धि और अभागिनी कैकेयी रघुवंश रूपी बाँस के वन के लिए अग्नि हो गई!॥2॥

* पालव बैठि पेड़ु एहिं काटा। सुख महुँ सोक ठाटु धरि ठाटा॥
सदा रामु एहि प्रान समाना। कारन कवन कुटिलपनु ठाना॥3॥

भावार्थ:-पत्ते पर बैठकर इसने पेड़ को काट डाला। सुख में शोक का ठाट ठटकर रख दिया! श्री रामचन्द्रजी इसे सदा प्राणों के

समान प्रिय थे। फिर भी न जाने किस कारण इसने यह कुटिलता ठानी॥3॥

* सत्य कहहिं कबि नारि सुभाऊ। सब बिधि अगहु अगाध दुराऊ॥
निज प्रतिबिंबु बरुकु गहि जाई। जानि न जाइ नारि गति भाई॥4॥

भावार्थ:-कवि सत्य ही कहते हैं कि स्त्री का स्वभाव सब प्रकार से पकड़ में न आने योग्य, अथाह और भेदभरा होता है। अपनी परछाहीं भले ही पकड़ जाए, पर भाई! स्त्रियों की गति (चाल) नहीं जानी जाती॥4॥

दोहा :

* काह न पावकु जारि सक का न समुद्र समाइ।
का न करै अबला प्रबल केहि जग कालु न खाइ॥47॥

भावार्थ:-आग क्या नहीं जला सकती! समुद्र में क्या नहीं समा सकता! अबला कहाने वाली प्रबल स्त्री (जाति) क्या नहीं कर सकती! और जगत में काल किसको नहीं खाता!॥47॥

चौपाई :

* का सुनाइ बिधि काह सुनावा। का देखाइ चह काह देखावा॥
एक कहहिं भल भूप न कीन्हा। बरु बिचारि नहिं कुमतिहि दीन्हा॥1॥

भावार्थ:-विधाता ने क्या सुनाकर क्या सुना दिया और क्या दिखाकर अब वह क्या दिखाना चाहता है! एक कहते हैं कि राजा ने अच्छा नहीं किया, दुर्बुद्धि कैकेयी को विचारकर वर नहीं दिया॥1॥

* जो हठि भयउ सकल दुख भाजनु। अबला बिबस ग्यानु गुनु गा जनु॥
एक धरम परमिति पहिचाने। नृपहि दोसु नहिं देहिं सयाने॥2॥

भावार्थ:-जो हठ करके (कैकेयी की बात को पूरा करने में अड़े रहकर) स्वयं सब दुःखों के पात्र हो गए। स्त्री के विशेष वश होने के कारण मानो उनका ज्ञान और गुण जाता रहा। एक (दूसरे) जो धर्म की मर्यादा को जानते हैं और सयाने हैं, वे राजा को दोष नहीं देते॥2॥

* सिबि दधीचि हरिचंद कहानी। एक एक सन कहहिं बखानी॥
एक भरत कर संमत कहहीं। एक उदास भायँ सुनि रहहीं॥3॥

भावार्थ:-वे शिबि, दधीचि और हरिश्चन्द्र की कथा एक-दूसरे से बखानकर कहते हैं। कोई एक इसमें भरतजी की सम्मति बताते हैं। कोई एक सुनकर उदासीन भाव से रह जाते हैं (कुछ बोलते नहीं)॥3॥

* कान मूदि कर रद गहि जीहा। एक कहहिं यह बात अलीहा॥
सुकृत जाहिं अस कहत तुम्हारे। रामु भरत कहुँ प्रानपिआरे॥4॥

भावार्थ:-कोई हाथों से कान मूँदकर और जीभ को दाँतों तले दबाकर कहते हैं कि यह बात झूठ है, ऐसी बात कहने से तुम्हारे पुण्य नष्ट हो जाएँगे। भरतजी को तो श्री रामचन्द्रजी प्राणों के समान प्यारे हैं॥4॥

दोहा :

* चंदु चवै बरु अनल कन सुधा होइ बिषतूल।
सपनेहुँ कबहुँ न करहिं किछु भरतु राम प्रतिकूल॥48॥

भावार्थ:-चन्द्रमा चाहे (शीतल किरणों की जगह) आग की चिनगारियाँ बरसाने लगे और अमृत चाहे विष के समान हो जाए, परन्तु भरतजी स्वप्न में भी कभी श्री रामचन्द्रजी के विरुद्ध कुछ नहीं करेंगे॥48॥

चौपाई :

* एक बिधातहि दूषनु देहीं। सुधा देखाइ दीन्ह बिषु जेहीं॥
खरभरु नगर सोचु सब काहू। दुसह दाहु उर मिटा उछाहू॥1॥

भावार्थ:-कोई एक विधाता को दोष देते हैं, जिसने अमृत दिखाकर विष दे दिया। नगर भर में खलबली मच गई, सब किसी को सोच हो गया। हृदय में दुःसह जलन हो गई, आनंद-उत्साह मिट गया॥1॥

* बिप्रबधू कुलमान्य जठेरी। जे प्रिय परम कैकई केरी॥
लगीं देन सिख सीलु सराही। बचन बानसम लागहिं ताहीं॥2॥

भावार्थ:-ब्राह्मणों की स्त्रियाँ, कुल की माननीय बड़ी-बूढ़ी और जो कैकेयी की परम प्रिय थीं, वे उसके शील की सराहना करके उसे सीख देने लगीं। पर उसको उनके वचन बाण के समान लगते हैं॥2॥

* भरतु न मोहि प्रिय राम समाना। सदा कहहु यहु सबु जगु जाना॥
करहु राम पर सहज सनेहू। केहिं अपराध आजु बनु देहू॥3॥

भावार्थ:-(वे कहती हैं-) तुम तो सदा कहा करती थीं कि श्री रामचंद्र के समान मुझको भरत भी प्यारे नहीं हैं, इस बात को सारा जगत् जानता है। श्री रामचंद्रजी पर तो तुम स्वाभाविक

ही स्नेह करती रही हो। आज किस अपराध से उन्हें वन देती हो?॥3॥

* कबहुँ न कियहु सवति आरेसू। प्रीति प्रतीति जान सबु देसू॥
कौसल्याँ अब काह बिगारा। तुम्ह जेहि लागि बज्र पुर पारा॥4॥

भावार्थ:-तुमने कभी सौतियाडाह नहीं किया। सारा देश तुम्हारे प्रेम और विश्वास को जानता है। अब कौसल्या ने तुम्हारा कौन सा बिगाड़ कर दिया, जिसके कारण तुमने सारे नगर पर वज्र गिरा दिया॥4॥

दोहा :

* सीय कि पिय सँगु परिहरिहि लखनु करहिहहिं धाम।
राजु कि भूँजब भरत पुर नृपु कि जिइहि बिनु राम॥49॥

भावार्थ:-क्या सीताजी अपने पति (श्री रामचंद्रजी) का साथ छोड़ देंगी? क्या लक्ष्मणजी श्री रामचंद्रजी के बिना घर रह सकेंगे? क्या भरतजी श्री रामचंद्रजी के बिना अयोध्यापुरी का राज्य भोग सकेंगे? और क्या राजा श्री रामचंद्रजी के बिना जीवित रह सकेंगे? (अर्थात्‌ न सीताजी यहाँ रहेंगी, न लक्ष्मणजी रहेंगे, न भरतजी राज्य करेंगे और न राजा ही जीवित रहेंगे, सब उजाड़ हो जाएगा।)॥49॥

चौपाई :

* अस बिचारि उर छाड़हु कोहू। सोक कलंक कोठि जनि होहू॥
भरतहि अवसि देहु जुबराजू। कानन काह राम कर काजू॥1॥

भावार्थ:-हृदय में ऐसा विचार कर क्रोध छोड़ दो, शोक और कलंक की कोठी मत बनो। भरत को अवश्य युवराजपद दो, पर श्री रामचंद्रजी का वन में क्या काम है?॥1॥

* नाहिन रामु राज के भूखे। धरम धुरीन बिषय रस रूखे॥
गुर गृह बसहुँ रामु तजि गेहू। नृप सन अस बरु दूसर लेहू॥2॥

भावार्थ:-श्री रामचंद्रजी राज्य के भूखे नहीं हैं। वे धर्म की धुरी को धारण करने वाले और विषय रस से रूखे हैं (अर्थात् उनमें विषयासक्ति है ही नहीं), इसलिए तुम यह शंका न करो कि श्री रामजी वन न गए तो भरत के राज्य में विघ्न करेंगे, इतने पर भी मन न माने तो) तुम राजा से दूसरा ऐसा (यह) वर ले लो कि श्री राम घर छोड़कर गुरु के घर रहें॥2॥

* जौं नहिं लगिहहु कहें हमारे। नहिं लागिहि कछु हाथ तुम्हारे॥
जौं परिहास कीन्हि कछु होई। तौ कहि प्रगट जनावहु सोई॥3॥

भावार्थ:-जो तुम हमारे कहने पर न चलोगी तो तुम्हारे हाथ कुछ भी न लगेगा। यदि तुमने कुछ हँसी की हो तो उसे प्रकट में कहकर जना दो (कि मैंने दिल्लगी की है)॥3॥

* राम सरिस सुत कानन जोगू। काह कहिहि सुनि तुम्ह कहुँ लोगू॥
उठहु बेगि सोइ करहु उपाई। जेहि बिधि सोकु कलंकु नसाई॥4॥

भावार्थ:-राम सरीखा पुत्र क्या वन के योग्य है? यह सुनकर लोग तुम्हें क्या कहेंगे! जल्दी उठो और वही उपाय करो जिस उपाय से इस शोक और कलंक का नाश हो॥4॥

छंद :

* जेहि भाँति सोकु कलंकु जाइ उपाय करि कुल पालही।

हठि फेरु रामहि जात बन जनि बात दूसरि चालही॥
जिमि भानु बिनु दिनु प्रान बिनु तनु चंद बिनु जिमि जामिनी।
तिमि अवध तुलसीदास प्रभु बिन समुझि धौं जियँ भामनी॥

भावार्थ:-जिस तरह (नगरभर का) शोक और (तुम्हारा) कलंक मिटे, वही उपाय करके कुल की रक्षा कर। वन जाते हुए श्री रामजी को हठ करके लौटा ले, दूसरी कोई बात न चला। तुलसीदासजी कहते हैं- जैसे सूर्य के बिना दिन, प्राण के बिना शरीर और चंद्रमा के बिना रात (निर्जीव तथा शोभाहीन हो जाती है), वैसे ही श्री रामचंद्रजी के बिना अयोध्या हो जाएगी, हे भामिनी! तू अपने हृदय में इस बात को समझ (विचारकर देख) तो सही।

सोरठा :

* सखिन्ह सिखावनु दीन्ह सुनत मधुर परिनाम हित।
तेइँ कछु कान न कीन्ह कुटिल प्रबोधी कूबरी॥50॥

भावार्थ:-इस प्रकार सखियों ने ऐसी सीख दी जो सुनने में मीठी और परिणाम में हितकारी थी। पर कुटिला कुबरी की सिखाई-पढ़ाई हुई कैकेयी ने इस पर जरा भी कान नहीं दिया॥50॥

चौपाई :

* उतरु न देइ दुसह रिस रूखी। मृगिन्ह चितव जनु बाघिनि भूखी॥
ब्याधि असाधि जानि तिन्ह त्यागी। चलीं कहत मतिमंद अभागी॥1॥

भावार्थ:-कैकेयी कोई उत्तर नहीं देती, वह दुःसह क्रोध के मारे रूखी (बेमुरव्वत) हो रही है। ऐसे देखती है मानो भूखी बाघिन हरिनियों को देख रही हो। तब सखियों ने रोग को असाध्य

समझकर उसे छोड़ दिया। सब उसको मंदबुद्धि, अभागिनी कहती हुई चल दीं॥1॥

* राजु करत यह दैअँ बिगोई। कीन्हेसि अस जस करइ न कोई॥
एहि बिधि बिलपहिं पुर नर नारीं। देहिं कुचालिहि कोटिक गारीं॥2॥

भावार्थ:-राज्य करते हुए इस कैकेयी को दैव ने नष्ट कर दिया। इसने जैसा कुछ किया, वैसा कोई भी न करेगा! नगर के सब स्त्री-पुरुष इस प्रकार विलाप कर रहे हैं और उस कुचाली कैकेयी को करोड़ों गालियाँ दे रहे हैं॥2॥

* जरहिं बिषम जर लेहिं उसासा। कवनि राम बिनु जीवन आसा॥
बिपुल बियोग प्रजा अकुलानी। जनु जलचर गन सूखत पानी॥3॥

भावार्थ:-लोग विषम ज्वर (भयानक दुःख की आग) से जल रहे हैं। लंबी साँसें लेते हुए वे कहते हैं कि श्री रामचंद्रजी के बिना जीने की कौन आशा है। महान् वियोग (की आशंका) से प्रजा ऐसी व्याकुल हो गई है मानो पानी सूखने के समय जलचर जीवों का समुदाय व्याकुल हो!॥3

श्री राम-कौसल्या संवाद

* अति बिषाद बस लोग लोगाईं। गए मातु पहिं रामु गोसाईं॥
मुख प्रसन्न चित चौगुन चाऊ। मिटा सोचु जनि राखै राऊ॥4॥

भावार्थ:-सभी पुरुष और स्त्रियाँ अत्यंत विषाद के वश हो रहे हैं। स्वामी श्री रामचंद्रजी माता कौसल्या के पास गए। उनका मुख प्रसन्न है और चित्त में चौगुना चाव (उत्साह) है। यह सोच मिट गया है कि राजा कहीं रख न लें। (श्री रामजी को राजतिलक की बात सुनकर विषाद हुआ था कि सब भाइयों को छोड़कर

बड़े भाई मुझको ही राजतिलक क्यों होता है। अब माता कैकेयी की आज्ञा और पिता की मौन सम्मति पाकर वह सोच मिट गया।)॥4॥

दोहा :

* नव गयंदु रघुबीर मनु राजु अलान समान।
छूट जानि बन गवनु सुनि उर अनंदु अधिकान॥51॥

भावार्थ:-श्री रामचंद्रजी का मन नए पकड़े हुए हाथी के समान और राजतिलक उस हाथी के बाँधने की काँटेदार लोहे की बेड़ी के समान है। 'वन जाना है' यह सुनकर, अपने को बंधन से छूटा जानकर, उनके हृदय में आनंद बढ़ गया है॥51॥

चौपाई :

* रघुकुलतिलक जोरि दोउ हाथा। मुदित मातु पद नायउ माथा॥
दीन्हि असीस लाइ उर लीन्हे। भूषन बसन निछावरि कीन्हे॥1॥

भावार्थ:-रघुकुल तिलक श्री रामचंद्रजी ने दोनों हाथ जोड़कर आनंद के साथ माता के चरणों में सिर नवाया। माता ने आशीर्वाद दिया, अपने हृदय से लगा लिया और उन पर गहने तथा कपड़े निछावर किए॥1॥

* बार-बार मुख चुंबति माता। नयन नेह जलु पुलकित गाता॥
गोद राखि पुनि हृदयँ लगाए। स्रवत प्रेमरस पयद सुहाए॥2॥

भावार्थ:-माता बार-बार श्री रामचंद्रजी का मुख चूम रही हैं। नेत्रों में प्रेम का जल भर आया है और सब अंग पुलकित हो गए हैं। श्री राम को अपनी गोद में बैठाकर फिर हृदय से लगा लिया। सुंदर स्तन प्रेमरस (दूध) बहाने लगे॥2॥

* प्रेमु प्रमोदु न कछु कहि जाई। रंक धनद पदबी जनु पाई॥

सादर सुंदर बदनु निहारी। बोली मधुर बचन महतारी॥3॥

भावार्थ:-उनका प्रेम और महान् आनंद कुछ कहा नहीं जाता। मानो कंगाल ने कुबेर का पद पा लिया हो। बड़े आदर के साथ सुंदर मुख देखकर माता मधुर वचन बोलीं-॥3॥

* कहहु तात जननी बलिहारी। कबहिं लगन मुद मंगलकारी॥
सुकृत सील सुख सीवँ सुहाई। जनम लाभ कइ अवधि अघाई॥4॥

भावार्थ:-हे तात! माता बलिहारी जाती है, कहो, वह आनंद-मंगलकारी लग्न कब है, जो मेरे पुण्य, शील और सुख की सुंदर सीमा है और जन्म लेने के लाभ की पूर्णतम अवधि है,॥4॥

दोहा :

* जेहि चाहत नर नारि सब अति आरत एहि भाँति।
जिमि चातक चातकि तृषित बृष्टि सरद रितु स्वाति॥52॥

भावार्थ:-तथा जिस (लग्न) को सभी स्त्री-पुरुष अत्यंत व्याकुलता से इस प्रकार चाहते हैं जिस प्रकार प्यास से चातक और चातकी शरद् ऋतु के स्वाति नक्षत्र की वर्षा को चाहते हैं॥52॥

चौपाई :

* तात जाउँ बलि बेगि नाहाहू। जो मन भाव मधुर कछु खाहू॥
पितु समीप तब जाएहु भैआ। भइ बड़ि बार जाइ बलि मैआ॥1॥

भावार्थ:-हे तात! मैं बलैया लेती हूँ, तुम जल्दी नहा लो और जो मन भावे, कुछ मिठाई खा लो। भैया! तब पिता के पास जाना। बहुत देर हो गई है, माता बलिहारी जाती है॥1॥

* मातु बचन सुनि अति अनुकूला। जनु सनेह सुरतरु के फूला॥
सुख मकरंद भरे श्रियमूला। निरखि राम मनु भवँरु न भूला॥2॥

भावार्थ:-माता के अत्यंत अनुकूल वचन सुनकर- जो मानो स्नेह रूपी कल्पवृक्ष के फूल थे, जो सुख रूपी मकरन्द (पुष्परस) से भरे थे और श्री (राजलक्ष्मी) के मूल थे- ऐसे वचन रूपी फूलों को देकर श्री रामचंद्रजी का मन रूपी भौंरा उन पर नहीं भूला॥2॥

* धरम धुरीन धरम गति जानी। कहेउ मातु सन अति मृदु बानी॥
पिताँ दीन्ह मोहि कानन राजू। जहँ सब भाँति मोर बड़ काजू॥3॥

भावार्थ:-धर्मधुरीण श्री रामचंद्रजी ने धर्म की गति को जानकर माता से अत्यंत कोमल वाणी से कहा- हे माता! पिताजी ने मुझको वन का राज्य दिया है, जहाँ सब प्रकार से मेरा बड़ा काम बनने वाला है॥3॥

* आयसु देहि मुदित मन माता। जेहिं मुद मंगल कानन जाता॥
जनि सनेह बस डरपसि भोरें। आनँदु अंब अनुग्रह तोरें॥4॥

भावार्थ:-हे माता! तू प्रसन्न मन से मुझे आज्ञा दे, जिससे मेरी वन यात्रा में आनंद-मंगल हो। मेरे स्नेहवश भूलकर भी डरना नहीं। हे माता! तेरी कृपा से आनंद ही होगा॥4॥

दोहा :

* बरष चारिदस बिपिन बसि करि पितु बचन प्रमान।
आइ पाय पुनि देखिहउँ मनु जनि करसि मलान॥53॥

भावार्थ:-चौदह वर्ष वन में रहकर, पिताजी के वचन को प्रमाणित (सत्य) कर, फिर लौटकर तेरे चरणों का दर्शन करूँगा, तू मन को म्लान (दुःखी) न कर॥53॥

चौपाई :

* बचन बिनीत मधुर रघुबर के। सर सम लगे मातु उर करके॥
सहमि सूखि सुनि सीतलि बानी। जिमि जवास परें पावस पानी॥1॥

भावार्थ:-रघुकुल में श्रेष्ठ श्री रामजी के ये बहुत ही नम्र और मीठे वचन माता के हृदय में बाण के समान लगे और कसकने लगे। उस शीतल वाणी को सुनकर कौसल्या वैसे ही सहमकर सूख गईं जैसे बरसात का पानी पड़ने से जवासा सूख जाता है॥1॥

* कहि न जाइ कछु हृदय बिषादू। मनहुँ मृगी सुनि केहरि नादू॥
नयन सजल तन थर थर काँपी। माजहि खाइ मीन जनु मापी॥2॥

भावार्थ:-हृदय का विषाद कुछ कहा नहीं जाता। मानो सिंह की गर्जना सुनकर हिरनी विकल हो गई हो। नेत्रों में जल भर आया, शरीर थर-थर काँपने लगा। मानो मछली माँजा (पहली वर्षा का फेन) खाकर बदहवास हो गई हो!॥2॥

* धरि धीरजु सुत बदनु निहारी। गदगद बचन कहति महतारी॥
तात पितहि तुम्ह प्रानपिआरे। देखि मुदित नित चरित तुम्हारे॥3॥

भावार्थ:-धीरज धरकर, पुत्र का मुख देखकर माता गदगद वचन कहने लगीं- हे तात! तुम तो पिता को प्राणों के समान प्रिय हो। तुम्हारे चरित्रों को देखकर वे नित्य प्रसन्न होते थे॥3॥

* राजु देन कहुँ सुभ दिन साधा। कहेउ जान बन केहिं अपराधा॥
तात सुनावहु मोहि निदानू। को दिनकर कुल भयउ कृसानू॥4॥

भावार्थ:-राज्य देने के लिए उन्होंने ही शुभ दिन शोधवाया था। फिर अब किस अपराध से वन जाने को कहा? हे तात! मुझे

इसका कारण सुनाओ! सूर्यवंश (रूपी वन) को जलाने के लिए अग्नि कौन हो गया?॥4॥

दोहा :

* निरखि राम रुख सचिवसुत कारनु कहेउ बुझाइ।
सुनि प्रसंगु रहि मूक जिमि दसा बरनि नहिं जाइ॥54॥

भावार्थ:- तब श्री रामचन्द्रजी का रुख देखकर मन्त्री के पुत्र ने सब कारण समझाकर कहा। उस प्रसंग को सुनकर वे गूँगी जैसी (चुप) रह गईं, उनकी दशा का वर्णन नहीं किया जा सकता॥54॥

चौपाई :

* राखि न सकइ न कहि सक जाहू। दुहूँ भाँति उर दारुन दाहू॥
लिखत सुधाकर गा लिखि राहू। बिधि गति बाम सदा सब काहू॥1॥

भावार्थ:-न रख ही सकती हैं, न यह कह सकती हैं कि वन चले जाओ। दोनों ही प्रकार से हृदय में बड़ा भारी संताप हो रहा है। (मन में सोचती हैं कि देखो-) विधाता की चाल सदा सबके लिए टेढ़ी होती है। लिखने लगे चन्द्रमा और लिखा गया राहु॥1॥

* धरम सनेह उभयँ मति घेरी। भइ गति साँप छुछुंदरि केरी॥
राखउँ सुतहि करउँ अनुरोधू। धरमु जाइ अरु बंधु बिरोधू॥2॥

भावार्थ:-धर्म और स्नेह दोनों ने कौसल्याजी की बुद्धि को घेर लिया। उनकी दशा साँप-छछूँदर की सी हो गई। वे सोचने लगीं कि यदि मैं अनुरोध (हठ) करके पुत्र को रख लेती हूँ तो धर्म जाता है और भाइयों में विरोध होता है,॥2॥

* कहउँ जान बन तौ बड़ि हानी। संकट सोच बिबस भइ रानी॥

बहुरि समुझि तिय धरमु सयानी। रामु भरतु दोउ सुत सम जानी॥3॥

भावार्थ:-और यदि वन जाने को कहती हूँ तो बड़ी हानि होती है। इस प्रकार के धर्मसंकट में पड़कर रानी विशेष रूप से सोच के वश हो गईं। फिर बुद्धिमती कौसल्याजी स्त्री धर्म (पातिव्रत धर्म) को समझकर और राम तथा भरत दोनों पुत्रों को समान जानकर-॥3॥

* सरल सुभाउ राम महतारी। बोली बचन धीर धरि भारी॥
तात जाउँ बलि कीन्हेहु नीका। पितु आयसु सब धरमक टीका॥4॥

भावार्थ:-सरल स्वभाव वाली श्री रामचन्द्रजी की माता बड़ा धीरज धरकर वचन बोलीं- हे तात! मैं बलिहारी जाती हूँ, तुमने अच्छा किया। पिता की आज्ञा का पालन करना ही सब धर्मों का शिरोमणि धर्म है॥4॥

दोहा :

* राजु देन कहिदीन्ह बनु मोहि न सो दुख लेसु।
तुम्ह बिनु भरतहि भूपतिहि प्रजहि प्रचंड कलेसु॥55॥

भावार्थ:-राज्य देने को कहकर वन दे दिया, उसका मुझे लेशमात्र भी दुःख नहीं है। (दुःख तो इस बात का है कि) तुम्हारे बिना भरत को, महाराज को और प्रजा को बड़ा भारी क्लेश होगा॥55॥

चौपाई :

* जौं केवल पितु आयसु ताता। तौ जनि जाहु जानि बड़ि माता॥
जौं पितु मातु कहेउ बन जाना। तौ कानन सत अवध समाना॥1॥

भावार्थ:-हे तात! यदि केवल पिताजी की ही आज्ञा, हो तो माता को (पिता से) बड़ी जानकर वन को मत जाओ, किन्तु यदि पिता-माता दोनों ने वन जाने को कहा हो, तो वन तुम्हारे लिए सैकड़ों अयोध्या के समान है॥1॥

* पितु बनदेव मातु बनदेवी। खग मृग चरन सरोरुह सेवी॥
अंतहुँ उचित नृपहि बनबासू। बय बिलोकि हियँ होइ हराँसू॥2॥

भावार्थ:-वन के देवता तुम्हारे पिता होंगे और वनदेवियाँ माता होंगी। वहाँ के पशु-पक्षी तुम्हारे चरणकमलों के सेवक होंगे। राजा के लिए अंत में तो वनवास करना उचित ही है। केवल तुम्हारी (सुकुमार) अवस्था देखकर हृदय में दुःख होता है॥2॥

* बड़भागी बनु अवध अभागी। जो रघुबंसतिलक तुम्ह त्यागी॥
जौं सुत कहौं संग मोहि लेहू। तुम्हरे हृदयँ होइ संदेहू॥3॥

भावार्थ:-हे रघुवंश के तिलक! वन बड़ा भाग्यवान है और यह अवध अभागा है, जिसे तुमने त्याग दिया। हे पुत्र! यदि मैं कहूँ कि मुझे भी साथ ले चलो तो तुम्हारे हृदय में संदेह होगा (कि माता इसी बहाने मुझे रोकना चाहती हैं)॥3॥

* पूत परम प्रिय तुम्ह सबही के। प्रान प्रान के जीवन जी के॥
ते तुम्ह कहहु मातु बन जाऊँ। मैं सुनि बचन बैठि पछिताऊँ॥4॥

भावार्थ:-हे पुत्र! तुम सभी के परम प्रिय हो। प्राणों के प्राण और हृदय के जीवन हो। वही (प्राणाधार) तुम कहते हो कि माता! मैं वन को जाऊँ और मैं तुम्हारे वचनों को सुनकर बैठी पछताती हूँ!॥4॥

दोहा :

* यह बिचारि नहिं करउँ हठ झूठ सनेहु बढ़ाइ।

मानि मातु कर नात बलि सुरति बिसरि जनि जाइ॥56॥

भावार्थ:-यह सोचकर झूठा स्नेह बढ़ाकर मैं हठ नहीं करती! बेटा! मैं बलैया लेती हूँ, माता का नाता मानकर मेरी सुध भूल न जाना॥56॥

चौपाई :

* देव पितर सब तुम्हहि गोसाईं। राखहुँ पलक नयन की नाईं॥
अवधि अंबु प्रिय परिजन मीना। तुम्ह करुनाकर धरम धुरीना॥1॥

भावार्थ:-हे गोसाईं! सब देव और पितर तुम्हारी वैसी ही रक्षा करें, जैसे पलकें आँखों की रक्षा करती हैं। तुम्हारे वनवास की अवधि (चौदह वर्ष) जल है, प्रियजन और कुटुम्बी मछली हैं। तुम दया की खान और धर्म की धुरी को धारण करने वाले हो॥1॥

* अस बिचारि सोइ करहु उपाई। सबहि जिअत जेहिं भेंटहु आई॥
जाहु सुखेन बनहि बलि जाऊँ। करि अनाथ जन परिजन गाऊँ॥2॥

भावार्थ:-ऐसा विचारकर वही उपाय करना, जिसमें सबके जीते जी तुम आ मिलो। मैं बलिहारी जाती हूँ, तुम सेवकों, परिवार वालों और नगर भर को अनाथ करके सुखपूर्वक वन को जाओ॥2॥

* सब कर आजु सुकृत फल बीता। भयउ कराल कालु बिपरीता॥
बहुबिधि बिलपि चरन लपटानी। परम अभागिनि आपुहि जानी॥3॥

भावार्थ:-आज सबके पुण्यों का फल पूरा हो गया। कठिन काल हमारे विपरीत हो गया। (इस प्रकार) बहुत विलाप करके और

अपने को परम अभागिनी जानकर माता श्री रामचन्द्रजी के चरणों में लिपट गईं॥3॥

* दारुन दुसह दाहु उर ब्यापा। बरनि न जाहिं बिलाप कलापा॥
राम उठाइ मातु उर लाई। कहि मृदु बचन बहुरि समुझाई॥4॥

भावार्थ:-हृदय में भयानक दुःसह संताप छा गया। उस समय के बहुविध विलाप का वर्णन नहीं किया जा सकता। श्री रामचन्द्रजी ने माता को उठाकर हृदय से लगा लिया और फिर कोमल वचन कहकर उन्हें समझाया॥4॥

दोहा :

* समाचार तेहि समय सुनि सीय उठी अकुलाइ।
जाइ सासु पद कमल जुग बंदि बैठि सिरु नाइ॥57॥

भावार्थ:-उसी समय यह समाचार सुनकर सीताजी अकुला उठीं और सास के पास जाकर उनके दोनों चरणकमलों की वंदना कर सिर नीचा करके बैठ गईं॥57॥

चौपाई :

* दीन्हि असीस सासु मृदु बानी। अति सुकुमारि देखि अकुलानी॥
बैठि नमित मुख सोचति सीता। रूप रासि पति प्रेम पुनीता॥1॥

भावार्थ:-सास ने कोमल वाणी से आशीर्वाद दिया। वे सीताजी को अत्यन्त सुकुमारी देखकर व्याकुल हो उठीं। रूप की राशि और पति के साथ पवित्र प्रेम करने वाली सीताजी नीचा मुख किए बैठी सोच रही हैं॥1॥

* चलन चहत बन जीवननाथू। केहि सुकृती सन होइहि साथू॥
की तनु प्रान कि केवल प्राना। बिधि करतबु कछु जाइ न जाना॥2॥

भावार्थ:-जीवननाथ (प्राणनाथ) वन को चलना चाहते हैं। देखें किस पुण्यवान से उनका साथ होगा- शरीर और प्राण दोनों साथ जाएँगे या केवल प्राण ही से इनका साथ होगा? विधाता की करनी कुछ जानी नहीं जाती॥2॥

* चारु चरन नख लेखति धरनी। नूपुर मुखर मधुर कबि बरनी॥
मनहुँ प्रेम बस बिनती करहीं। हमहि सीय पद जनि परिहरहीं॥3॥

भावार्थ:-सीताजी अपने सुंदर चरणों के नखों से धरती कुरेद रही हैं। ऐसा करते समय नूपुरों का जो मधुर शब्द हो रहा है, कवि उसका इस प्रकार वर्णन करते हैं कि मानो प्रेम के वश होकर नूपुर यह विनती कर रहे हैं कि सीताजी के चरण कभी हमारा त्याग न करें॥3॥

* मंजु बिलोचन मोचति बारी। बोली देखि राम महतारी॥
तात सुनहु सिय अति सुकुमारी। सास ससुर परिजनहि पिआरी॥4॥

भावार्थ:-सीताजी सुंदर नेत्रों से जल बहा रही हैं। उनकी यह दशा देखकर श्री रामजी की माता कौसल्याजी बोलीं- हे तात! सुनो, सीता अत्यन्त ही सुकुमारी हैं तथा सास, ससुर और कुटुम्बी सभी को प्यारी हैं॥4॥

दोहा :

* पिता जनक भूपाल मनि ससुर भानुकुल भानु।
पति रबिकुल कैरव बिपिन बिधु गुन रूप निधानु॥58॥

भावार्थ:-इनके पिता जनकजी राजाओं के शिरोमणि हैं, ससुर सूर्यकुल के सूर्य हैं और पति सूर्यकुल रूपी कुमुदवन को खिलाने वाले चन्द्रमा तथा गुण और रूप के भंडार हैं॥58॥

* मैं पुनि पुत्रबधू प्रिय पाई। रूप रासि गुन सील सुहाई॥
नयन पुतरि करि प्रीति बढ़ाई। राखेउँ प्रान जानकिहिं लाई॥1॥

भावार्थ:-फिर मैंने रूप की राशि, सुंदर गुण और शीलवाली प्यारी पुत्रवधू पाई है। मैंने इन (जानकी) को आँखों की पुतली बनाकर इनसे प्रेम बढ़ाया है और अपने प्राण इनमें लगा रखे हैं॥1॥

* कलपबेलि जिमि बहुबिधि लाली। सींचि सनेह सलिल प्रतिपाली॥
फूलत फलत भयउ बिधि बामा। जानि न जाइ काह परिनामा॥2॥

भावार्थ:-इन्हें कल्पलता के समान मैंने बहुत तरह से बड़े लाड़-चाव के साथ स्नेह रूपी जल से सींचकर पाला है। अब इस लता के फूलने-फलने के समय विधाता वाम हो गए। कुछ जाना नहीं जाता कि इसका क्या परिणाम होगा॥2॥

* पलँग पीठ तजि गोद हिंडोरा। सियँ न दीन्ह पगु अवनि कठोरा॥
जिअनमूरि जिमि जोगवत रहउँ। दीप बाति नहिं टारन कहऊँ॥3॥

भावार्थ:-सीता ने पर्यंकपृष्ठ (पलंग के ऊपर), गोद और हिंडोले को छोड़कर कठोर पृथ्वी पर कभी पैर नहीं रखा। मैं सदा संजीवनी जड़ी के समान (सावधानी से) इनकी रखवाली करती रही हूँ। कभी दीपक की बत्ती हटाने को भी नहीं कहती॥3॥

* सोइ सिय चलन चहति बन साथा। आयसु काह होइ रघुनाथा॥
चंद किरन रस रसिक चकोरी। रबि रुखनयन सकइ किमि जोरी॥4॥

भावार्थ:-वही सीता अब तुम्हारे साथ वन चलना चाहती है। हे रघुनाथ! उसे क्या आज्ञा होती है? चन्द्रमा की किरणों का रस (अमृत) चाहने वाली चकोरी सूर्य की ओर आँख किस तरह मिला सकती है॥4॥

दोहा :

* करि केहरि निसिचर चरहिं दुष्ट जंतु बन भूरि।
बिष बाटिकाँ कि सोह सुत सुभग सजीवनि मूरि॥59॥

भावार्थ:-हाथी, सिंह, राक्षस आदि अनेक दुष्ट जीव-जन्तु वन में विचरते रहते हैं। हे पुत्र! क्या विष की वाटिका में सुंदर संजीवनी बूटी शोभा पा सकती है?॥59॥

चौपाई :

* बन हित कोल किरात किसोरी। रचीं बिरंचि बिषय सुख भोरी॥
पाहन कृमि जिमि कठिन सुभाऊ। तिन्हहि कलेसु न कानन काऊ॥1॥

भावार्थ:-वन के लिए तो ब्रह्माजी ने विषय सुख को न जानने वाली कोल और भीलों की लड़कियों को रचा है, जिनका पत्थर के कीड़े जैसा कठोर स्वभाव है। उन्हें वन में कभी क्लेश नहीं होता॥1॥

* कै तापस तिय कानन जोगू। जिन्ह तप हेतु तजा सब भोगू॥

सिय बन बसिहि तात केहि भाँती। चित्रलिखित कपि देखि डेराती॥2॥

भावार्थ:-अथवा तपस्वियों की स्त्रियाँ वन में रहने योग्य हैं, जिन्होंने तपस्या के लिए सब भोग तज दिए हैं। हे पुत्र! जो तसवीर के बंदर को देखकर डर जाती हैं, वे सीता वन में किस तरह रह सकेंगी?॥2॥

* सुरसर सुभग बनज बन चारी। डाबर जोगु कि हंसकुमारी॥
अस बिचारि जस आयसु होई। मैं सिख देउँ जानकिहि सोई॥3॥

भावार्थ:-देवसरोवर के कमल वन में विचरण करने वाली हंसिनी क्या गड़ैयों (तलैयों) में रहने के योग्य है? ऐसा विचार कर जैसी तुम्हारी आज्ञा हो, मैं जानकी को वैसी ही शिक्षा दूँ॥3॥

* जौं सिय भवन रहै कह अंबा। मोहि कहँ होइ बहुत अवलंबा॥
सुनि रघुबीर मातु प्रिय बानी। सील सनेह सुधाँ जनु सानी॥4॥

भावार्थ:-माता कहती हैं- यदि सीता घर में रहें तो मुझको बहुत सहारा हो जाए। श्री रामचन्द्रजी ने माता की प्रिय वाणी सुनकर, जो मानो शील और स्नेह रूपी अमृत से सनी हुई थी,॥4॥

दोहा :

* कहि प्रिय बचन बिबेकमय कीन्हि मातु परितोष।
लगे प्रबोधन जानकिहि प्रगटि बिपिन गुन दोष॥60॥

भावार्थ:-विवेकमय प्रिय वचन कहकर माता को संतुष्ट किया। फिर वन के गुण-दोष प्रकट करके वे जानकीजी को समझाने लगे॥60॥

मासपारायण, चौदहवाँ विश्राम

श्री सीता-राम संवाद

चौपाई :

* मातु समीप कहत सकुचाहीं। बोले समउ समुझि मन माहीं॥
राजकुमारि सिखावनु सुनहू। आन भाँति जियँ जनि कछु गुनहू॥1॥

भावार्थ:-माता के सामने सीताजी से कुछ कहने में सकुचाते हैं। पर मन में यह समझकर कि यह समय ऐसा ही है, वे बोले- हे राजकुमारी! मेरी सिखावन सुनो। मन में कुछ दूसरी तरह न समझ लेना॥1॥

* आपन मोर नीक जौं चहहू। बचनु हमार मानि गृह रहहू॥
आयसु मोर सासु सेवकाई। सब बिधि भामिनि भवन भलाई॥2॥

भावार्थ:-जो अपना और मेरा भला चाहती हो, तो मेरा वचन मानकर घर रहो। हे भामिनी! मेरी आज्ञा का पालन होगा, सास की सेवा बन पड़ेगी। घर रहने में सभी प्रकार से भलाई है॥2॥

* एहि ते अधिक धरमु नहिं दूजा। सादर सासु ससुर पद पूजा॥
जब जब मातु करिहि सुधि मोरी। होइहि प्रेम बिकल मति
भोरी॥3॥

भावार्थ:-आदरपूर्वक सास-ससुर के चरणों की पूजा (सेवा) करने से बढ़कर दूसरा कोई धर्म नहीं है। जब-जब माता मुझे याद करेंगी और प्रेम से व्याकुल होने के कारण उनकी बुद्धि भोली हो जाएगी (वे अपने-आपको भूल जाएँगी)॥3॥

* तब तब तुम्ह कहि कथा पुरानी। सुंदरि समुझाएहु मृदु बानी॥
कहउँ सुभायँ सपथ सत मोही। सुमुखि मातु हित राखउँ
तोही॥4॥

भावार्थ:-हे सुंदरी! तब-तब तुम कोमल वाणी से पुरानी कथाएँ कह-कहकर इन्हें समझाना। हे सुमुखि! मुझे सैकड़ों सौगंध हैं, मैं यह स्वभाव से ही कहता हूँ कि मैं तुम्हें केवल माता के लिए ही घर पर रखता हूँ॥4॥

दोहा :

* गुर श्रुति संमत धरम फलु पाइअ बिनहिं कलेस।
हठ बस सब संकट सहे गालव नहुष नरेस॥61॥

भावार्थ:-(मेरी आज्ञा मानकर घर पर रहने से) गुरु और वेद के द्वारा सम्मत धर्म (के आचरण) का फल तुम्हें बिना ही क्लेश के मिल जाता है, किन्तु हठ के वश होकर गालव मुनि और राजा नहुष आदि सब ने संकट ही सहे॥61॥

चौपाई :

* मैं पुनि करि प्रवान पितु बानी। बेगि फिरब सुनु सुमुखि सयानी॥
दिवस जात नहिं लागिहि बारा। सुंदरि सिखवनु सुनहु हमारा॥1॥

भावार्थ:-हे सुमुखि! हे सयानी! सुनो, मैं भी पिता के वचन को सत्य करके शीघ्र ही लौटूँगा। दिन जाते देर नहीं लगेगी। हे सुंदरी! हमारी यह सीख सुनो!॥1॥

* जौं हठ करहु प्रेम बस बामा। तौ तुम्ह दुखु पाउब परिनामा॥
काननु कठिन भयंकरु भारी। घोर घामु हिम बारि बयारी॥2॥

भावार्थ:-हे वामा! यदि प्रेमवश हठ करोगी, तो तुम परिणाम में दुःख पाओगी। वन बड़ा कठिन (क्लेशदायक) और भयानक है। वहाँ की धूप, जाड़ा, वर्षा और हवा सभी बड़े भयानक हैं॥2॥

* कुस कंटक मग काँकर नाना। चलब पयादेहिं बिनु पदत्राना॥

चरन कमल मृदु मंजु तुम्हारे। मारग अगम भूमिधर भारे॥3॥

भावार्थ:-रास्ते में कुश, काँटे और बहुत से कंकड़ हैं। उन पर बिना जूते के पैदल ही चलना होगा। तुम्हारे चरणकमल कोमल और सुंदर हैं और रास्ते में बड़े-बड़े दुर्गम पर्वत हैं॥3॥

* कंदर खोह नदीं नद नारे। अगम अगाध न जाहिं निहारे॥
भालु बाघ बृक केहरि नागा। करहिं नाद सुनि धीरजु भागा॥4॥

भावार्थ:-पर्वतों की गुफाएँ, खोह (दर्रे), नदियाँ, नद और नाले ऐसे अगम्य और गहरे हैं कि उनकी ओर देखा तक नहीं जाता। रीछ, बाघ, भेड़िये, सिंह और हाथी ऐसे (भयानक) शब्द करते हैं कि उन्हें सुनकर धीरज भाग जाता है॥4॥

दोहा :

* भूमि सयन बलकल बसन असनु कंद फल मूल।
ते कि सदा सब दिन मिलहिं सबुइ समय अनुकूल॥62॥

भावार्थ:-जमीन पर सोना, पेड़ों की छाल के वस्त्र पहनना और कंद, मूल, फल का भोजन करना होगा। और वे भी क्या सदा सब दिन मिलेंगे? सब कुछ अपने-अपने समय के अनुकूल ही मिल सकेगा॥62॥

चौपाई :

* नर अहार रजनीचर चरहीं। कपट बेष बिधि कोटिक करहीं॥
लागइ अति पहार कर पानी। बिपिन बिपति नहिं जाइ बखानी॥1॥

भावार्थ:-मनुष्यों को खाने वाले निशाचर (राक्षस) फिरते रहते हैं। वे करोड़ों प्रकार के कपट रूप धारण कर लेते हैं। पहाड़ का

पानी बहुत ही लगता है। वन की विपत्ति बखानी नहीं जा सकती॥1॥

* ब्याल कराल बिहग बन घोरा। निसिचर निकर नारि नर चोरा॥
डरपहिं धीर गहन सुधि आएँ। मृगलोचनि तुम्ह भीरु सुभाएँ॥2॥

भावार्थ:-वन में भीषण सर्प, भयानक पक्षी और स्त्री-पुरुषों को चुराने वाले राक्षसों के झुंड के झुंड रहते हैं। वन की (भयंकरता) याद आने मात्र से धीर पुरुष भी डर जाते हैं। फिर हे मृगलोचनि! तुम तो स्वभाव से ही डरपोक हो!॥2॥

* हंसगवनि तुम्ह नहिं बन जोगू। सुनि अपजसु मोहि देइहि लोगू॥
मानस सलिल सुधाँ प्रतिपाली। जिअइ कि लवन पयोधि मराली॥3॥

भावार्थ:-हे हंसगमनी! तुम वन के योग्य नहीं हो। तुम्हारे वन जाने की बात सुनकर लोग मुझे अपयश देंगे (बुरा कहेंगे)। मानसरोवर के अमृत के समान जल से पाली हुई हंसिनी कहीं खारे समुद्र में जी सकती है॥3॥

* नव रसाल बन बिहरनसीला। सोह कि कोकिल बिपिन करीला॥
रहहु भवन अस हृदयँ बिचारी। चंदबदनि दुखु कानन भारी॥4॥

भावार्थ:-नवीन आम के वन में विहार करने वाली कोयल क्या करील के जंगल में शोभा पाती है? हे चन्द्रमुखी! हृदय में ऐसा विचारकर तुम घर ही पर रहो। वन में बड़ा कष्ट है॥4॥

दोहा :

* सहज सुहृद गुर स्वामि सिख जो न करइ सिर मानि।

सो पछिताइ अघाइ उर अवसि होइ हित हानि॥63॥

भावार्थ:-स्वाभाविक ही हित चाहने वाले गुरु और स्वामी की सीख को जो सिर चढ़ाकर नहीं मानता, वह हृदय में भरपेट पछताता है और उसके हित की हानि अवश्य होती है॥63॥

चौपाई :

* सुनि मृदु बचन मनोहर पिय के। लोचन ललित भरे जल सिय के॥
सीतल सिख दाहक भइ कैसें। चकइहि सरद चंद निसि जैसें॥1॥

भावार्थ:-प्रियतम के कोमल तथा मनोहर वचन सुनकर सीताजी के सुंदर नेत्र जल से भर गए। श्री रामजी की यह शीतल सीख उनको कैसी जलाने वाली हुई, जैसे चकवी को शरद ऋतु की चाँदनी रात होती है॥1॥

* उतरु न आव बिकल बैदेही। तजन चहत सुचि स्वामि सनेही॥
बरबस रोकि बिलोचन बारी। धरि धीरजु उर अवनिकुमारी॥2॥

भावार्थ:-जानकीजी से कुछ उत्तर देते नहीं बनता, वे यह सोचकर व्याकुल हो उठीं कि मेरे पवित्र और प्रेमी स्वामी मुझे छोड़ जाना चाहते हैं। नेत्रों के जल (आँसुओं) को जबर्दस्ती रोककर वे पृथ्वी की कन्या सीताजी हृदय में धीरज धरकर,॥2॥

* लागि सासु पग कह कर जोरी। छमबि देबि बड़ि अबिनय मोरी।
दीन्हि प्रानपति मोहि सिख सोई। जेहि बिधि मोर परम हित होई॥3॥

भावार्थ:-सास के पैर लगकर, हाथ जोड़कर कहने लगीं- हे देवि! मेरी इस बड़ी भारी ढिठाई को क्षमा कीजिए। मुझे प्राणपति ने वही शिक्षा दी है, जिससे मेरा परम हित हो॥3॥

* मैं पुनि समुझि दीखि मन माहीं। पिय बियोग सम दुखु जग नाहीं॥4॥

भावार्थ:-परन्तु मैंने मन में समझकर देख लिया कि पति के वियोग के समान जगत में कोई दुःख नहीं है॥4॥

दोहा :

* प्राननाथ करुनायतन सुंदर सुखद सुजान।
तुम्ह बिनु रघुकुल कुमुद बिधु सुरपुर नरक समान॥64॥

भावार्थ:-हे प्राणनाथ! हे दया के धाम! हे सुंदर! हे सुखों के देने वाले! हे सुजान! हे रघुकुल रूपी कुमुद के खिलाने वाले चन्द्रमा! आपके बिना स्वर्ग भी मेरे लिए नरक के समान है॥64॥

चौपाई :

* मातु पिता भगिनी प्रिय भाई। प्रिय परिवारु सुहृदय समुदाई॥
सासु ससुर गुर सजन सहाई। सुत सुंदर सुसील सुखदाई॥1॥

भावार्थ:-माता, पिता, बहिन, प्यारा भाई, प्यारा परिवार, मित्रों का समुदाय, सास, ससुर, गुरु, स्वजन (बन्धु-बांधव), सहायक और सुंदर, सुशील और सुख देने वाला पुत्र-॥1॥

* जहँ लगिनाथ नेह अरु नाते। पिय बिनु तियहि तरनिहु ते ताते॥
तनु धनु धामु धरनि पुर राजू। पति बिहीन सबु सोक समाजू॥2॥

भावार्थ:-हे नाथ! जहाँ तक स्नेह और नाते हैं, पति के बिना स्त्री को सूर्य से भी बढ़कर तपाने वाले हैं। शरीर, धन, घर, पृथ्वी, नगर और राज्य, पति के बिना स्त्री के लिए यह सब शोक का समाज है॥2॥

* भोग रोगसम भूषन भारू। जम जातना सरिस संसारू॥
प्राननाथ तुम्ह बिनु जग माहीं। मो कहुँ सुखद कतहुँ कछु नाहीं॥3॥

भावार्थ:-भोग रोग के समान हैं, गहने भार रूप हैं और संसार यम यातना (नरक की पीड़ा) के समान है। हे प्राणनाथ! आपके बिना जगत में मुझे कहीं कुछ भी सुखदायी नहीं है॥3॥

* जिय बिनु देह नदी बिनु बारी। तैसिअ नाथ पुरुष बिनु नारी॥
नाथ सकल सुख साथ तुम्हारें। सरद बिमल बिधु बदनु निहारें॥4॥

भावार्थ:-जैसे बिना जीव के देह और बिना जल के नदी, वैसे ही हे नाथ! बिना पुरुष के स्त्री है। हे नाथ! आपके साथ रहकर आपका शरद्-(पूर्णिमा) के निर्मल चन्द्रमा के समान मुख देखने से मुझे समस्त सुख प्राप्त होंगे॥4॥

दोहा :

* खग मृग परिजन नगरु बनु बलकल बिमल दुकूल।
नाथ साथ सुरसदन सम परनसाल सुख मूल॥65॥

भावार्थ:-हे नाथ! आपके साथ पक्षी और पशु ही मेरे कुटुम्बी होंगे, वन ही नगर और वृक्षों की छाल ही निर्मल वस्त्र होंगे और पर्णकुटी (पत्तों की बनी झोपड़ी) ही स्वर्ग के समान सुखों की मूल होगी॥65॥

चौपाई :

* बनदेबीं बनदेव उदारा। करिहहिं सासु ससुर सम सारा॥
कुस किसलय साथरी सुहाई। प्रभु सँग मंजु मनोज तुराई॥1॥

भावार्थ:-उदार हृदय के वनदेवी और वनदेवता ही सास-ससुर के समान मेरी सार-संभार करेंगे और कुशा और पत्तों की सुंदर साथरी (बिछौना) ही प्रभु के साथ कामदेव की मनोहर तोशक के समान होगी॥1॥

* कंद मूल फल अमिअ अहारू। अवध सौध सत सरिस पहारू॥
छिनु-छिनु प्रभु पद कमल बिलोकी। रहिहउँ मुदित दिवस जिमि कोकी॥2॥

भावार्थ:-कन्द, मूल और फल ही अमृत के समान आहार होंगे और (वन के) पहाड़ ही अयोध्या के सैकड़ों राजमहलों के समान होंगे। क्षण-क्षण में प्रभु के चरण कमलों को देख-देखकर मैं ऐसी आनंदित रहूँगी जैसे दिन में चकवी रहती है॥2॥

* बन दुख नाथ कहे बहुतेरे। भय बिषाद परिताप घनेरे॥
प्रभु बियोग लवलेस समाना। सब मिलि होहिं न कृपानिधाना॥3॥

भावार्थ:-हे नाथ! आपने वन के बहुत से दुःख और बहुत से भय, विषाद और सन्ताप कहे, परन्तु हे कृपानिधान! वे सब मिलकर भी प्रभु (आप) के वियोग (से होने वाले दुःख) के लवलेश के समान भी नहीं हो सकते॥3॥

* अस जियँ जानि सुजान सिरोमनि। लेइअ संग मोहि छाड़िअ जनि॥
बिनती बहुत करौं का स्वामी। करुनामय उर अंतरजामी॥4॥

भावार्थ:-ऐसा जी में जानकर, हे सुजान शिरोमणि! आप मुझे साथ ले लीजिए, यहाँ न छोड़िए। हे स्वामी! मैं अधिक क्या विनती करूँ? आप करुणामय हैं और सबके हृदय के अंदर की जानने वाले हैं॥4॥

दोहा :

* राखिअ अवध जो अवधि लगि रहत न जनिअहिं प्रान।
दीनबंधु सुंदर सुखद सील सनेह निधान॥66॥

भावार्थ:-हे दीनबन्धु! हे सुंदर! हे सुख देने वाले! हे शील और प्रेम के भंडार! यदि अवधि (चौदह वर्ष) तक मुझे अयोध्या में रखते हैं, तो जान लीजिए कि मेरे प्राण नहीं रहेंगे॥66॥

चौपाई :

* मोहि मग चलत न होइहि हारी। छिनु छिनु चरन सरोज निहारी॥
सबहि भाँति पिय सेवा करिहौं। मारग जनित सकल श्रम हरिहौं॥1॥

भावार्थ:-क्षण-क्षण में आपके चरण कमलों को देखते रहने से मुझे मार्ग चलने में थकावट न होगी। हे प्रियतम! मैं सभी प्रकार से आपकी सेवा करूँगी और मार्ग चलने से होने वाली सारी थकावट को दूर कर दूँगी॥1॥

* पाय पखारि बैठि तरु छाहीं। करिहउँ बाउ मुदित मन माहीं॥
श्रम कन सहित स्याम तनु देखें। कहँ दुख समउ प्रानपति पेखें॥2॥

भावार्थ:-आपके पैर धोकर, पेड़ों की छाया में बैठकर, मन में प्रसन्न होकर हवा करूँगी (पंखा झलूँगी)। पसीने की बूँदों सहित

श्याम शरीर को देखकर प्राणपति के दर्शन करते हुए दुःख के लिए मुझे अवकाश ही कहाँ रहेगा॥2॥

* सम महि तृन तरुपल्लव डासी। पाय पलोटिहि सब निसि दासी॥
बार बार मृदु मूरति जोही। लागिहि तात बयारि न मोही॥3॥

भावार्थ:-समतल भूमि पर घास और पेड़ों के पत्ते बिछाकर यह दासी रातभर आपके चरण दबावेगी। बार-बार आपकी कोमल मूर्ति को देखकर मुझको गरम हवा भी न लगेगी॥3॥

* को प्रभु सँग मोहि चितवनिहारा। सिंघबधुहि जिमि ससक सिआरा॥
मैं सुकुमारि नाथ बन जोगू। तुम्हहि उचित तप मो कहुँ भोगू॥4॥

भावार्थ:-प्रभु के साथ (रहते) मेरी ओर (आँख उठाकर) देखने वाला कौन है (अर्थात कोई नहीं देख सकता)! जैसे सिंह की स्त्री (सिंहनी) को खरगोश और सियार नहीं देख सकते। मैं सुकुमारी हूँ और नाथ वन के योग्य हैं? आपको तो तपस्या उचित है और मुझको विषय भोग?॥4॥

दोहा :

* ऐसेउ बचन कठोर सुनि जौं न हृदउ बिलगान।
तौ प्रभु बिषम बियोग दुख सहिहहिं पावँर प्रान॥67॥

भावार्थ:-ऐसे कठोर वचन सुनकर भी जब मेरा हृदय न फटा तो, हे प्रभु! (मालूम होता है) ये पामर प्राण आपके वियोग का भीषण दुःख सहेंगे॥67॥

चौपाई :

* अस कहि सीय बिकल भइ भारी। बचन बियोगु न सकी सँभारी॥

देखि दसा रघुपति जियँ जाना। हठि राखें नहिं राखिहि प्राना॥1॥

भावार्थ:-ऐसा कहकर सीताजी बहुत ही व्याकुल हो गईं। वे वचन के वियोग को भी न सम्हाल सकीं। (अर्थात शरीर से वियोग की बात तो अलग रही, वचन से भी वियोग की बात सुनकर वे अत्यन्त विकल हो गईं।) उनकी यह दशा देखकर श्री रघुनाथजी ने अपने जी में जान लिया कि हठपूर्वक इन्हें यहाँ रखने से ये प्राणों को न रखेंगी॥1॥

* कहेउ कृपाल भानुकुलनाथा। परिहरि सोचु चलहु बन साथा॥
नहिं बिषाद कर अवसरु आजू। बेगि करहु बन गवन समाजू॥2॥

भावार्थ:-तब कृपालु, सूर्यकुल के स्वामी श्री रामचन्द्रजी ने कहा कि सोच छोड़कर मेरे साथ वन को चलो। आज विषाद करने का अवसर नहीं है। तुरंत वनगमन की तैयारी करो॥2॥

श्री राम-कौसल्या-सीता संवाद

* कहि प्रिय बचन प्रिया समुझाई। लगे मातु पद आसिष पाई॥
बेगि प्रजा दुख मेटब आई। जननी निठुर बिसरि जनि जाई॥3॥

भावार्थ:-श्री रामचन्द्रजी ने प्रिय वचन कहकर प्रियतमा सीताजी को समझाया। फिर माता के पैरों लगकर आशीर्वाद प्राप्त किया। (माता ने कहा-) बेटा! जल्दी लौटकर प्रजा के दुःख को मिटाना और यह निठुर माता तुम्हें भूल न जाए!॥3॥

* फिरिहि दसा बिधि बहुरि कि मोरी। देखिहउँ नयन मनोहर जोरी।
सुदिन सुघरी तात कब होइहि। जननी जिअत बदन बिधु जोइहि॥4॥

भावार्थ:-हे विधाता! क्या मेरी दशा भी फिर पलटेगी? क्या अपने नेत्रों से मैं इस मनोहर जोड़ी को फिर देख पाऊँगी? हे पुत्र! वह सुंदर दिन और शुभ घड़ी कब होगी जब तुम्हारी जननी जीते जी तुम्हारा चाँद सा मुखड़ा फिर देखेगी!॥4॥

दोहा :

* बहुरि बच्छ कहि लालु कहि रघुपति रघुबर तात।
कबहिं बोलाइ लगाइ हियँ हरषि निरखिहउँ गात॥68॥

भावार्थ:-हे तात! 'वत्स' कहकर, 'लाल' कहकर, 'रघुपति' कहकर, 'रघुवर' कहकर, मैं फिर कब तुम्हें बुलाकर हृदय से लगाऊँगी और हर्षित होकर तुम्हारे अंगों को देखूँगी!॥68॥

चौपाई :

* लखि सनेह कातरि महतारी। बचनु न आव बिकल भइ भारी॥
राम प्रबोधु कीन्ह बिधि नाना। समउ सनेहु न जाइ बखाना॥1॥

भावार्थ:-यह देखकर कि माता स्नेह के मारे अधीर हो गई हैं और इतनी अधिक व्याकुल हैं कि मुँह से वचन नहीं निकलता। श्री रामचन्द्रजी ने अनेक प्रकार से उन्हें समझाया। वह समय और स्नेह वर्णन नहीं किया जा सकता॥1॥

* तब जानकी सासु पग लागी। सुनिअ माय मैं परम अभागी॥
सेवा समय दैअँ बनु दीन्हा। मोर मनोरथु सफल न कीन्हा॥2॥

भावार्थ:-तब जानकीजी सास के पाँव लगीं और बोलीं- हे माता! सुनिए, मैं बड़ी ही अभागिनी हूँ। आपकी सेवा करने के समय दैव ने मुझे वनवास दे दिया। मेरा मनोरथ सफल न किया॥2॥

* तजब छोभु जनि छाड़िअ छोहू। करमु कठिन कछु दोसु न मोहू॥

सुनिसिय बचन सासु अकुलानी। दसा कवनि बिधि कहौं
बखानी॥3॥

भावार्थ:-आप क्षोभ का त्याग कर दें, परन्तु कृपा न छोड़िएगा। कर्म की गति कठिन है, मुझे भी कुछ दोष नहीं है। सीताजी के वचन सुनकर सास व्याकुल हो गईं। उनकी दशा को मैं किस प्रकार बखान कर कहूँ!॥3॥

* बारहिं बार लाइ उर लीन्ही। धरि धीरजु सिख आसिष दीन्ही॥
अचल होउ अहिवातु तुम्हारा। जब लगि गंग जमुन जल
धारा॥4॥

भावार्थ:-उन्होंने सीताजी को बार-बार हृदय से लगाया और धीरज धरकर शिक्षा दी और आशीर्वाद दिया कि जब तक गंगाजी और यमुनाजी में जल की धारा बहे, तब तक तुम्हारा सुहाग अचल रहे॥4॥

दोहा :

* सीतहि सासु आसीस सिख दीन्हि अनेक प्रकार।
चली नाइ पद पदुम सिरु अति हित बारहिं बार॥69॥

भावार्थ:-सीताजी को सास ने अनेकों प्रकार से आशीर्वाद और शिक्षाएँ दीं और वे (सीताजी) बड़े ही प्रेम से बार-बार चरणकमलों में सिर नवाकर चलीं॥69॥

श्री राम-लक्ष्मण संवाद

चौपाई :

* समाचार जब लछिमन पाए। ब्याकुल बिलख बदन उठि धाए॥
कंप पुलक तन नयन सनीरा। गहे चरन अति प्रेम अधीरा॥1॥

भावार्थ:-जब लक्ष्मणजी ने समाचार पाए, तब वे व्याकुल होकर उदास मुँह उठ दौड़े। शरीर काँप रहा है, रोमांच हो रहा है, नेत्र आँसुओं से भरे हैं। प्रेम से अत्यन्त अधीर होकर उन्होंने श्री रामजी के चरण पकड़ लिए॥1॥

* कहि न सकत कछु चितवत ठाढ़े। मीनु दीन जनु जल तें काढ़े॥
सोचु हृदयँ बिधि का होनिहारा। सबु सुखु सुकृतु सिरान हमारा॥2॥

भावार्थ:-वे कुछ कह नहीं सकते, खड़े-खड़े देख रहे हैं। (ऐसे दीन हो रहे हैं) मानो जल से निकाले जाने पर मछली दीन हो रही हो। हृदय में यह सोच है कि हे विधाता! क्या होने वाला है? क्या हमारा सब सुख और पुण्य पूरा हो गया?॥2॥

* मो कहुँ काह कहब रघुनाथा। रखिहहिं भवन कि लेहहिं साथा॥
राम बिलोकि बंधु कर जोरें। देह गेहसब सन तृनु तोरें॥3॥

भावार्थ:-मुझको श्री रघुनाथजी क्या कहेंगे? घर पर रखेंगे या साथ ले चलेंगे? श्री रामचन्द्रजी ने भाई लक्ष्मण को हाथ जोड़े और शरीर तथा घर सभी से नाता तोड़े हुए खड़े देखा॥3॥

* बोले बचनु राम नय नागर। सील सनेह सरल सुख सागर॥
तात प्रेम बस जनि कदराहू। समुझि हृदयँ परिनाम उछाहू॥4॥

भावार्थ:-तब नीति में निपुण और शील, स्नेह, सरलता और सुख के समुद्र श्री रामचन्द्रजी वचन बोले- हे तात! परिणाम में होने

वाले आनंद को हृदय में समझकर तुम प्रेमवश अधीर मत होओ॥4॥

दोहा :

* मातु पिता गुरु स्वामि सिख सिर धरि करहिं सुभायँ।
लहेउ लाभु तिन्ह जनम कर नतरु जनमु जग जायँ॥70॥

भावार्थ:-जो लोग माता, पिता, गुरु और स्वामी की शिक्षा को स्वाभाविक ही सिर चढ़ाकर उसका पालन करते हैं, उन्होंने ही जन्म लेने का लाभ पाया है, नहीं तो जगत में जन्म व्यर्थ ही है॥70॥

चौपाई :

* अस जियँ जानि सुनहु सिख भाई। करहु मातु पितु पद सेवकाई॥
भवन भरतु रिपुसूदनु नाहीं। राउ बृद्ध मम दुखु मन माहीं॥1॥

भावार्थ:-हे भाई! हृदय में ऐसा जानकर मेरी सीख सुनो और माता-पिता के चरणों की सेवा करो। भरत और शत्रुघ्न घर पर नहीं हैं, महाराज वृद्ध हैं और उनके मन में मेरा दुःख है॥1॥

* मैं बन जाउँ तुम्हहि लेइ साथा। होइ सबहि बिधि अवध अनाथा॥
गुरु पितु मातु प्रजा परिवारू। सब कहुँ परइ दुसह दुख भारू॥2॥

भावार्थ:-इस अवस्था में मैं तुमको साथ लेकर वन जाऊँ तो अयोध्या सभी प्रकार से अनाथ हो जाएगी। गुरु, पिता, माता, प्रजा और परिवार सभी पर दुःख का दुःसह भार आ पड़ेगा॥2॥

* रहहु करहु सब कर परितोषू। नतरु तात होइहि बड़ दोषू॥
जासु राज प्रिय प्रजा दुखारी। सो नृपु अवसि नरक अधिकारी॥3॥

गीताप्रेस गोरखपुर

भावार्थ:-अतः तुम यहीं रहो और सबका संतोष करते रहो। नहीं तो हे तात! बड़ा दोष होगा। जिसके राज्य में प्यारी प्रजा दुःखी रहती है, वह राजा अवश्य ही नरक का अधिकारी होता है॥3॥

* रहहु तात असि नीति बिचारी। सुनत लखनु भए ब्याकुल भारी॥
सिअरें बचन सूखि गए कैसें। परसत तुहिन तामरसु जैसें॥4॥

भावार्थ:-हे तात! ऐसी नीति विचारकर तुम घर रह जाओ। यह सुनते ही लक्ष्मणजी बहुत ही व्याकुल हो गए! इन शीतल वचनों से वे कैसे सूख गए, जैसे पाले के स्पर्श से कमल सूख जाता है!॥4॥

दोहा :

* उतरु न आवत प्रेम बस गहे चरन अकुलाइ।
नाथ दासु मैं स्वामि तुम्ह तजहु त काह बसाइ॥71॥

भावार्थ:-प्रेमवश लक्ष्मणजी से कुछ उत्तर देते नहीं बनता। उन्होंने व्याकुल होकर श्री रामजी के चरण पकड़ लिए और कहा- हे नाथ! मैं दास हूँ और आप स्वामी हैं, अतः आप मुझे छोड़ ही दें तो मेरा क्या वश है?॥71॥

चौपाई :

* दीन्हि मोहि सिख नीकि गोसाईं। लागि अगम अपनी कदराईं॥
नरबर धीर धरम धुर धारी। निगम नीति कहुँ ते अधिकारी॥1॥

भावार्थ:-हे स्वामी! आपने मुझे सीख तो बड़ी अच्छी दी है, पर मुझे अपनी कायरता से वह मेरे लिए अगम (पहुँच के बाहर) लगी। शास्त्र और नीति के तो वे ही श्रेष्ठ पुरुष अधिकारी हैं, जो धीर हैं और धर्म की धुरी को धारण करने वाले हैं॥1॥

* मैं सिसु प्रभु सनेहँ प्रतिपाला। मंदरु मेरु कि लेहिं मराला॥
गुर पितु मातु न जानउँ काहू। कहउँ सुभाउ नाथ पतिआहू॥2॥

भावार्थ:-मैं तो प्रभु (आप) के स्नेह में पला हुआ छोटा बच्चा हूँ! कहीं हंस भी मंदराचल या सुमेरु पर्वत को उठा सकते हैं! हे नाथ! स्वभाव से ही कहता हूँ, आप विश्वास करें, मैं आपको छोड़कर गुरु, पिता, माता किसी को भी नहीं जानता॥2॥

* जहँ लगि जगत सनेह सगाई। प्रीति प्रतीति निगम निजु गाई॥
मोरें सबइ एक तुम्ह स्वामी। दीनबंधु उर अंतरजामी॥3॥

भावार्थ:-जगत में जहाँ तक स्नेह का संबंध, प्रेम और विश्वास है, जिनको स्वयं वेद ने गाया है- हे स्वामी! हे दीनबन्धु! हे सबके हृदय के अंदर की जानने वाले! मेरे तो वे सब कुछ केवल आप ही हैं॥3॥

* धरम नीति उपदेसिअ ताही। कीरति भूति सुगति प्रिय जाही॥
मन क्रम बचन चरन रत होई। कृपासिंधु परिहरिअ कि सोई॥4॥

भावार्थ:-धर्म और नीति का उपदेश तो उसको करना चाहिए, जिसे कीर्ति, विभूति (ऐश्वर्य) या सद्गति प्यारी हो, किन्तु जो मन, वचन और कर्म से चरणों में ही प्रेम रखता हो, हे कृपासिन्धु! क्या वह भी त्यागने के योग्य है?॥4॥

दोहा :

* करुनासिंधु सुबंधु के सुनि मृदु बचन बिनीत।
समुझाए उर लाइ प्रभु जानि सनेहँ सभीत॥72॥

भावार्थ:- दया के समुद्र श्री रामचन्द्रजी ने भले भाई के कोमल और नम्रतायुक्त वचन सुनकर और उन्हें स्नेह के कारण डरे हुए जानकर, हृदय से लगाकर समझाया॥72॥

चौपाई :

* मागहु बिदा मातु सन जाई। आवहु बेगि चलहु बन भाई॥
मुदित भए सुनि रघुबर बानी। भयउ लाभ बड़ गइ बड़ि हानी॥1॥

भावार्थ:-(और कहा-) हे भाई! जाकर माता से विदा माँग आओ और जल्दी वन को चलो! रघुकुल में श्रेष्ठ श्री रामजी की वाणी सुनकर लक्ष्मणजी आनंदित हो गए। बड़ी हानि दूर हो गई और बड़ा लाभ हुआ!॥1।

श्री लक्ष्मण-सुमित्रा संवाद

* हरषित हृदयँ मातु पहिं आए। मनहुँ अंध फिरि लोचन पाए॥
जाइ जननि पग नायउ माथा। मनु रघुनंदन जानकि साथा॥2॥

भावार्थ:-वे हर्षित हृदय से माता सुमित्राजी के पास आए, मानो अंधा फिर से नेत्र पा गया हो। उन्होंने जाकर माता के चरणों में मस्तक नवाया, किन्तु उनका मन रघुकुल को आनंद देने वाले श्री रामजी और जानकीजी के साथ था॥2॥

* पूँछे मातु मलिन मन देखी। लखन कही सब कथा बिसेषी।
गई सहमि सुनि बचन कठोरा। मृगी देखि दव जनु चहुँ ओरा॥3॥

भावार्थ:-माता ने उदास मन देखकर उनसे (कारण) पूछा। लक्ष्मणजी ने सब कथा विस्तार से कह सुनाई। सुमित्राजी कठोर वचनों को सुनकर ऐसी सहम गईं जैसे हिरनी चारों ओर वन में आग लगी देखकर सहम जाती है॥3॥

* लखन लखेउ भा अनरथ आजू। एहिं सनेह सब करब अकाजू॥
मागत बिदा सभय सकुचाहीं। जाइ संग बिधि कहिहि कि
नाहीं॥4॥

भावार्थ:-लक्ष्मण ने देखा कि आज (अब) अनर्थ हुआ। ये स्नेह वश काम बिगाड़ देंगी! इसलिए वे विदा माँगते हुए डर के मारे सकुचाते हैं (और मन ही मन सोचते हैं) कि हे विधाता! माता साथ जाने को कहेंगी या नहीं॥4॥

दोहा :

* समुझि सुमित्राँ राम सिय रूपु सुसीलु सुभाउ।
नृप सनेहु लखि धुनेउ सिरु पापिनि दीन्ह कुदाउ॥73॥

भावार्थ:-सुमित्राजी ने श्री रामजी और श्री सीताजी के रूप, सुंदर शील और स्वभाव को समझकर और उन पर राजा का प्रेम देखकर अपना सिर धुना (पीटा) और कहा कि पापिनी कैकेयी ने बुरी तरह घात लगाया॥73॥

चौपाई :

* धीरजु धरेउ कुअवसर जानी। सहज सुहृद बोली मृदु बानी॥
तात तुम्हारि मातु बैदेही। पिता रामु सब भाँति सनेही॥1॥

भावार्थ:-परन्तु कुसमय जानकर धैर्य धारण किया और स्वभाव से ही हित चाहने वाली सुमित्राजी कोमल वाणी से बोलीं- हे तात! जानकीजी तुम्हारी माता हैं और सब प्रकार से स्नेह करने वाले श्री रामचन्द्रजी तुम्हारे पिता हैं!॥1॥

* अवध तहाँ जहँ राम निवासू। तहँइँ दिवसु जहँ भानु प्रकासू॥
जौं पै सीय रामु बन जाहीं। अवध तुम्हार काजु कछु नाहीं॥2॥

भावार्थ:-जहाँ श्री रामजी का निवास हो वहीं अयोध्या है। जहाँ सूर्य का प्रकाश हो वहीं दिन है। यदि निश्चय ही सीता-राम वन को जाते हैं, तो अयोध्या में तुम्हारा कुछ भी काम नहीं है॥2॥

* गुर पितु मातु बंधु सुर साईं। सेइअहिं सकल प्रान की नाईं॥
रामु प्रानप्रिय जीवन जी के। स्वारथ रहित सखा सबही के॥3॥

भावार्थ:-गुरु, पिता, माता, भाई, देवता और स्वामी, इन सबकी सेवा प्राण के समान करनी चाहिए। फिर श्री रामचन्द्रजी तो प्राणों के भी प्रिय हैं, हृदय के भी जीवन हैं और सभी के स्वार्थरहित सखा हैं॥3॥

* पूजनीय प्रिय परम जहाँ तें। सब मानिअहिं राम के नातें॥
अस जियँ जानि संग बन जाहू। लेहु तात जग जीवन लाहू॥4॥

भावार्थ:-जगत में जहाँ तक पूजनीय और परम प्रिय लोग हैं, वे सब रामजी के नाते से ही (पूजनीय और परम प्रिय) मानने योग्य हैं। हृदय में ऐसा जानकर, हे तात! उनके साथ वन जाओ और जगत में जीने का लाभ उठाओ!॥4॥

दोहा :

* भूरि भाग भाजनु भयहु मोहि समेत बलि जाउँ।
जौं तुम्हरें मन छाड़ि छलु कीन्ह राम पद ठाउँ॥74॥

भावार्थ:-मैं बलिहारी जाती हूँ, (हे पुत्र!) मेरे समेत तुम बड़े ही सौभाग्य के पात्र हुए, जो तुम्हारे चित्त ने छल छोड़कर श्री राम के चरणों में स्थान प्राप्त किया है॥74॥

चौपाई :

* पुत्रवती जुबती जग सोई। रघुपति भगतु जासु सुतु होई॥

नतरु बाँझ भलि बादि बिआनी। राम बिमुख सुत तें हित जानी॥1॥

भावार्थ:-संसार में वही युवती स्त्री पुत्रवती है, जिसका पुत्र श्री रघुनाथजी का भक्त हो। नहीं तो जो राम से विमुख पुत्र से अपना हित जानती है, वह तो बाँझ ही अच्छी। पशु की भाँति उसका ब्याना (पुत्र प्रसव करना) व्यर्थ ही है॥1॥

* तुम्हरेहिं भाग रामु बन जाहीं। दूसर हेतु तात कछु नाहीं॥
सकल सुकृत कर बड़ फलु एहू। राम सीय पद सहज सनेहू॥2॥

भावार्थ:-तुम्हारे ही भाग्य से श्री रामजी वन को जा रहे हैं। हे तात! दूसरा कोई कारण नहीं है। सम्पूर्ण पुण्यों का सबसे बड़ा फल यही है कि श्री सीतारामजी के चरणों में स्वाभाविक प्रेम हो॥2॥

* रागु रोषु इरिषा मदु मोहू। जनि सपनेहुँ इन्ह के बस होहू॥
सकल प्रकार बिकार बिहाई। मन क्रम बचन करेहु सेवकाई॥3॥

भावार्थ:-राग, रोष, ईर्षा, मद और मोह- इनके वश स्वप्न में भी मत होना। सब प्रकार के विकारों का त्याग कर मन, वचन और कर्म से श्री सीतारामजी की सेवा करना॥3॥

* तुम्ह कहुँ बन सब भाँति सुपासू। सँग पितु मातु रामु सिय जासू॥
जेहिं न रामु बन लहहिं कलेसू। सुत सोइ करेहु इहइ उपदेसू॥4॥

भावार्थ:-तुमको वन में सब प्रकार से आराम है, जिसके साथ श्री रामजी और सीताजी रूप पिता-माता हैं। हे पुत्र! तुम वही

करना जिससे श्री रामचन्द्रजी वन में क्लेश न पावें, मेरा यही उपदेश है॥4॥

छन्द :

* उपदेसु यहु जेहिं तात तुम्हरे राम सिय सुख पावहीं।
पितु मातु प्रिय परिवार पुर सुख सुरति बन बिसरावहीं॥
तुलसी प्रभुहि सिख देइ आयसु दीन्ह पुनि आसिष दई।
रति होउ अबिरल अमल सिय रघुबीर पद नित-नित नई॥

भावार्थ:-हे तात! मेरा यही उपदेश है (अर्थात तुम वही करना), जिससे वन में तुम्हारे कारण श्री रामजी और सीताजी सुख पावें और पिता, माता, प्रिय परिवार तथा नगर के सुखों की याद भूल जाएँ। तुलसीदासजी कहते हैं कि सुमित्राजी ने इस प्रकार हमारे प्रभु (श्री लक्ष्मणजी) को शिक्षा देकर (वन जाने की) आज्ञा दी और फिर यह आशीर्वाद दिया कि श्री सीताजी और श्री रघुवीरजी के चरणों में तुम्हारा निर्मल (निष्काम और अनन्य) एवं प्रगाढ़ प्रेम नित-नित नया हो!

सोरठा :

* मातु चरन सिरु नाइ चले तुरत संकित हृदयँ।
बागुर बिषम तोराइ मनहुँ भाग मृगु भाग बस॥75॥

भावार्थ:-माता के चरणों में सिर नवाकर, हृदय में डरते हुए (कि अब भी कोई विघ्न न आ जाए) लक्ष्मणजी तुरंत इस तरह चल दिए जैसे सौभाग्यवश कोई हिरन कठिन फंदे को तुड़ाकर भाग निकला हो॥75॥

चौपाई :

* गए लखनु जहँ जानकिनाथू। भे मन मुदित पाइ प्रिय साथू॥
बंदि राम सिय चरन सुहाए। चले संग नृपमंदिर आए॥1॥

भावार्थ:-लक्ष्मणजी वहाँ गए जहाँ श्री जानकीनाथजी थे और प्रिय का साथ पाकर मन में बड़े ही प्रसन्न हुए। श्री रामजी और सीताजी के सुंदर चरणों की वंदना करके वे उनके साथ चले और राजभवन में आए॥1॥

* कहहिं परसपर पुर नर नारी। भलि बनाइ बिधि बात बिगारी॥
तन कृस मन दुखु बदन मलीने। बिकल मनहुँ माखी मधु छीने॥2॥

भावार्थ:-नगर के स्त्री-पुरुष आपस में कह रहे हैं कि विधाता ने खूब बनाकर बात बिगाड़ी! उनके शरीर दुबले, मन दुःखी और मुख उदास हो रहे हैं। वे ऐसे व्याकुल हैं, जैसे शहद छीन लिए जाने पर शहद की मक्खियाँ व्याकुल हों॥2॥

* कर मीजहिं सिरु धुनि पछिताहीं। जनु बिनु पंख बिहग अकुलाहीं॥
भइ बड़ि भीर भूप दरबारा। बरनि न जाइ बिषादु अपारा॥3॥

भावार्थ:-सब हाथ मल रहे हैं और सिर धुनकर (पीटकर) पछता रहे हैं। मानो बिना पंख के पक्षी व्याकुल हो रहे हों। राजद्वार पर बड़ी भीड़ हो रही है। अपार विषाद का वर्णन नहीं किया जा सकता॥3॥

श्री रामजी, लक्ष्मणजी, सीताजी का महाराज दशरथ के पास विदा माँगने जाना, दशरथजी का सीताजी को समझाना

* सचिवँ उठाइ राउ बैठारे। कहि प्रिय बचन रामु पगु धारे॥
सिय समेत दोउ तनय निहारी। ब्याकुल भयउ भूमिपति भारी॥4॥

भावार्थ:-'श्री रामजी पधारे हैं', ये प्रिय वचन कहकर मंत्री ने राजा को उठाकर बैठाया। सीता सहित दोनों पुत्रों को (वन के लिए तैयार) देखकर राजा बहुत व्याकुल हुए॥4॥

दोहा :

* सीय सहित सुत सुभग दोउ देखि देखि अकुलाइ।
बारहिं बार सनेह बस राउ लेइ उर लाइ॥76॥

भावार्थ:-सीता सहित दोनों सुंदर पुत्रों को देख-देखकर राजा अकुलाते हैं और स्नेह वश बारंबार उन्हें हृदय से लगा लेते हैं॥76॥

चौपाई :

* सकइ न बोलि बिकल नरनाहू। सोक जनित उर दारुन दाहू॥
नाइ सीसु पद अति अनुरागा। उठि रघुबीर बिदा तब मागा॥1॥

भावार्थ:-राजा व्याकुल हैं, बोल नहीं सकते। हृदय में शोक से उत्पन्न हुआ भयानक सन्ताप है। तब रघुकुल के वीर श्री रामचन्द्रजी ने अत्यन्त प्रेम से चरणों में सिर नवाकर उठकर विदा माँगी-॥1॥

* पितु असीस आयसु मोहि दीजै। हरष समय बिसमउ कत कीजै॥
तात किएँ प्रिय प्रेम प्रमादू। जसु जग जाइ होइ अपबादू॥2॥

भावार्थ:-हे पिताजी! मुझे आशीर्वाद और आज्ञा दीजिए। हर्ष के समय आप शोक क्यों कर रहे हैं? हे तात! प्रिय के प्रेमवश प्रमाद (कर्तव्यकर्म में त्रुटि) करने से जगत में यश जाता रहेगा और निंदा होगी॥2॥

* सुनि सनेह बस उठि नरनाहाँ। बैठारे रघुपति गहि बाहाँ॥

सुनहु तात तुम्ह कहुँ मुनि कहहीं। रामु चराचर नायक अहहीं॥3॥

भावार्थ:-यह सुनकर स्नेहवश राजा ने उठकर श्री रघुनाथजी की बाँह पकड़कर उन्हें बैठा लिया और कहा- हे तात! सुनो, तुम्हारे लिए मुनि लोग कहते हैं कि श्री राम चराचर के स्वामी हैं॥3॥

* सुभ अरु असुभ करम अनुहारी। ईसु देइ फलु हृदयँ बिचारी॥
करइ जो करम पाव फल सोई। निगम नीति असि कह सबु कोई॥4॥

भावार्थ:-शुभ और अशुभ कर्मों के अनुसार ईश्वर हृदय में विचारकर फल देता है, जो कर्म करता है, वही फल पाता है। ऐसी वेद की नीति है, यह सब कोई कहते हैं॥4॥

दोहा :

*औरु करै अपराधु कोउ और पाव फल भोगु।
अति बिचित्र भगवंत गति को जग जानै जोगु॥77॥

भावार्थ:-(किन्तु इस अवसर पर तो इसके विपरीत हो रहा है,) अपराध तो कोई और ही करे और उसके फल का भोग कोई और ही पावे। भगवान की लीला बड़ी ही विचित्र है, उसे जानने योग्य जगत में कौन है?॥77॥

चौपाई :

* रायँ राम राखन हित लागी। बहुत उपाय किए छलु त्यागी॥
लखी राम रुख रहत न जाने। धरम धुरंधर धीर सयाने॥1॥

भावार्थ:-राजा ने इस प्रकार श्री रामचन्द्रजी को रखने के लिए छल छोड़कर बहुत से उपाय किए, पर जब उन्होंने धर्मधुरंधर, धीर और बुद्धिमान श्री रामजी का रुख देख लिया और वे रहते हुए न जान पड़े,॥1॥

* तब नृप सीय लाइ उर लीन्ही। अति हित बहुत भाँति सिख दीन्ही॥
कहि बन के दुख दुसह सुनाए। सासु ससुर पितु सुख समुझाए॥2॥

भावार्थ:-तब राजा ने सीताजी को हृदय से लगा लिया और बड़े प्रेम से बहुत प्रकार की शिक्षा दी। वन के दुःसह दुःख कहकर सुनाए। फिर सास, ससुर तथा पिता के (पास रहने के) सुखों को समझाया॥2॥

* सिय मनु राम चरन अनुरागा। घरु न सुगमु बनु बिषमु न लागा॥
औरउ सबहिं सीय समुझाई। कहि कहि बिपिन बिपति अधिकाई॥3॥

भावार्थ:-परन्तु सीताजी का मन श्री रामचन्द्रजी के चरणों में अनुरक्त था, इसलिए उन्हें घर अच्छा नहीं लगा और न वन भयानक लगा। फिर और सब लोगों ने भी वन में विपत्तियों की अधिकता बता-बताकर सीताजी को समझाया॥3॥

* सचिव नारि गुर नारि सयानी। सहित सनेह कहहिं मृदु बानी॥
तुम्ह कहुँ तौ न दीन्ह बनबासू। करहु जो कहहिं ससुर गुर सासू॥4॥

भावार्थ:-मंत्री सुमंत्रजी की पत्नी और गुरु वशिष्ठजी की स्त्री अरुंधतीजी तथा और भी चतुर स्त्रियाँ स्नेह के साथ कोमल वाणी से कहती हैं कि तुमको तो (राजा ने) वनवास दिया नहीं है, इसलिए जो ससुर, गुरु और सास कहें, तुम तो वही करो॥4॥

दोहा :

* सिख सीतलि हित मधुर मृदु सुनि सीतहि न सोहानि।

सरद चंद चंदिनि लगत जनु चकई अकुलानि॥78॥

भावार्थ:-यह शीतल, हितकारी, मधुर और कोमल सीख सुनने पर सीताजी को अच्छी नहीं लगी। (वे इस प्रकार व्याकुल हो गईं) मानो शरद ऋतु के चन्द्रमा की चाँदनी लगते ही चकई व्याकुल हो उठी हो॥78॥

चौपाई :

* सीय सकुच बस उतरु न देई। सो सुनि तमकि उठी कैकेई॥
मुनि पट भूषन भाजन आनी। आगें धरि बोली मृदु बानी॥1॥

भावार्थ:-सीताजी संकोचवश उत्तर नहीं देतीं। इन बातों को सुनकर कैकेयी तमककर उठी। उसने मुनियों के वस्त्र, आभूषण (माला, मेखला आदि) और बर्तन (कमण्डलु आदि) लाकर श्री रामचन्द्रजी के आगे रख दिए और कोमल वाणी से कहा-॥1॥

* नृपहि प्रानप्रिय तुम्ह रघुबीरा। सील सनेह न छाड़िहि भीरा॥
सुकृतु सुजसु परलोकु नसाऊ। तुम्हहि जान बन कहिहि न काऊ॥2॥

भावार्थ:-हे रघुवीर! राजा को तुम प्राणों के समान प्रिय हो। भीरु (प्रेमवश दुर्बल हृदय के) राजा शील और स्नेह नहीं छोड़ेंगे! पुण्य, सुंदर यश और परलोक चाहे नष्ट हे जाए, पर तुम्हें वन जाने को वे कभी न कहेंगे॥2॥

* अस बिचारि सोइ करहु जो भावा। राम जननि सिख सुनि सुखु पावा॥
भूपहि बचन बानसम लागे। करहिं न प्रान पयान अभागे॥3॥

भावार्थ:-ऐसा विचारकर जो तुम्हें अच्छा लगे वही करो। माता की सीख सुनकर श्री रामचन्द्रजी ने (बड़ा) सुख पाया, परन्तु

राजा को ये वचन बाण के समान लगे। (वे सोचने लगे) अब भी अभागे प्राण (क्यों) नहीं निकलते!॥3॥

* लोग बिकल मुरुछित नरनाहू। काह करिअ कछु सूझ न काहू॥
रामु तुरत मुनि बेषु बनाई। चले जनक जननिहि सिरु नाई॥4॥

भावार्थ:-राजा मूर्च्छित हो गए, लोग व्याकुल हैं। किसी को कुछ सूझ नहीं पड़ता कि क्या करें। श्री रामचन्द्रजी तुरंत मुनि का वेष बनाकर और माता-पिता को सिर नवाकर चल दिए॥4॥

श्री राम-सीता-लक्ष्मण का वन गमन और नगर निवासियों को सोए छोड़कर आगे बढ़ना

दोहा :

* सजि बन साजु समाजु सबु बनिता बंधु समेत।
बंदि बिप्र गुर चरन प्रभु चले करि सबहि अचेत॥79॥

भावार्थ:-वन का सब साज-सामान सजकर (वन के लिए आवश्यक वस्तुओं को साथ लेकर) श्री रामचन्द्रजी स्त्री (श्री सीताजी) और भाई (लक्ष्मणजी) सहित, ब्राह्मण और गुरु के चरणों की वंदना करके सबको अचेत करके चले॥79॥

चौपाई :

* निकसि बसिष्ठ द्वार भए ठाढ़े। देखे लोग बिरह दव दाढ़े॥
कहि प्रिय बचन सकल समुझाए। बिप्र बृंद रघुबीर बोलाए॥1॥

भावार्थ:-राजमहल से निकलकर श्री रामचन्द्रजी वशिष्ठजी के दरवाजे पर जा खड़े हुए और देखा कि सब लोग विरह की अग्नि में जल रहे हैं। उन्होंने प्रिय वचन कहकर सबको समझाया, फिर श्री रामचन्द्रजी ने ब्राह्मणों की मंडली को बुलाया॥1॥

गीताप्रेस गोरखपुर

* गुर सन कहि बरषासन दीन्हे। आदर दान बिनय बस कीन्हे॥
जाचक दान मान संतोषे। मीत पुनीत प्रेम परितोषे॥2॥

भावार्थ:-गुरुजी से कहकर उन सबको वर्षाशन (वर्षभर का भोजन) दिए और आदर, दान तथा विनय से उन्हें वश में कर लिया। फिर याचकों को दान और मान देकर संतुष्ट किया तथा मित्रों को पवित्र प्रेम से प्रसन्न किया॥2॥

* दासीं दास बोलाइ बहोरी। गुरहि सौंपि बोले कर जोरी॥
सब कै सार सँभार गोसाईं। करबि जनक जननी की नाईं॥3॥

भावार्थ:-फिर दास-दासियों को बुलाकर उन्हें गुरुजी को सौंपकर, हाथ जोड़कर बोले- हे गुसाईं! इन सबकी माता-पिता के समान सार-संभार (देख-रेख) करते रहिएगा॥3॥

* बारहिं बार जोरि जुग पानी। कहत रामु सब सन मृदु बानी॥
सोइ सब भाँति मोर हितकारी। जेहि तें रहै भुआल सुखारी॥4॥

भावार्थ:-श्री रामचन्द्रजी बार-बार दोनों हाथ जोड़कर सबसे कोमल वाणी कहते हैं कि मेरा सब प्रकार से हितकारी मित्र वही होगा, जिसकी चेष्टा से महाराज सुखी रहें॥4॥

दोहा :

* मातु सकल मोरे बिरहँ जेहिं न होहिं दुख दीन।
सोइ उपाउ तुम्ह करेहु सब पुर जन परम प्रबीन॥80॥

भावार्थ:-हे परम चतुर पुरवासी सज्जनों! आप लोग सब वही उपाए कीजिएगा, जिससे मेरी सब माताएँ मेरे विरह के दुःख से दुःखी न हों॥80॥

चौपाई :

* एहि बिधि राम सबहि समुझावा। गुर पद पदुम हरषि सिरु नावा॥
गनपति गौरि गिरीसु मनाई। चले असीस पाइ रघुराई॥1॥

भावार्थ:-इस प्रकार श्री रामजी ने सबको समझाया और हर्षित होकर गुरुजी के चरणकमलों में सिर नवाया। फिर गणेशजी, पार्वतीजी और कैलासपति महादेवजी को मनाकर तथा आशीर्वाद पाकर श्री रघुनाथजी चले॥1॥

* राम चलत अति भयउ बिषादू। सुनि न जाइ पुर आरत नादू॥
कुसगुन लंक अवध अति सोकू। हरष बिषाद बिबस सुरलोकू॥2॥

भावार्थ:-श्री रामजी के चलते ही बड़ा भारी विषाद हो गया। नगर का आर्तनाद (हाहाकर) सुना नहीं जाता। लंका में बुरे शकुन होने लगे, अयोध्या में अत्यन्त शोक छा गया और देवलोक में सब हर्ष और विषाद दोनों के वश में गए। (हर्ष इस बात का था कि अब राक्षसों का नाश होगा और विषाद अयोध्यावासियों के शोक के कारण था)॥2॥

* गइ मुरुछा तब भूपति जागे। बोलि सुमंत्रु कहन अस लागे॥
रामु चले बन प्रान न जाहीं। केहि सुख लागि रहत तन माहीं॥3॥

भावार्थ:-मूर्छा दूर हुई, तब राजा जागे और सुमंत्र को बुलाकर ऐसा कहने लगे- श्री राम वन को चले गए, पर मेरे प्राण नहीं जा रहे हैं। न जाने ये किस सुख के लिए शरीर में टिक रहे हैं॥3॥

* एहि तें कवन ब्यथा बलवाना। जो दुखु पाइ तजहिं तनु प्राना॥
पुनि धरि धीर कहइ नरनाहू। लै रथु संग सखा तुम्ह जाहू॥4॥

भावार्थ:-इससे अधिक बलवती और कौन सी व्यथा होगी, जिस दुःख को पाकर प्राण शरीर को छोड़ेंगे। फिर धीरज धरकर राजा ने कहा- हे सखा! तुम रथ लेकर श्री राम के साथ जाओ॥4॥

दोहा :

* सुठि सुकुमार कुमार दोउ जनकसुता सुकुमारि।
रथ चढ़ाइ देखराइ बनु फिरेहु गएँ दिन चारि॥81॥

भावार्थ:-अत्यन्त सुकुमार दोनों कुमारों को और सुकुमारी जानकी को रथ में चढ़ाकर, वन दिखलाकर चार दिन के बाद लौट आना॥81॥

चौपाई :

* जौं नहिं फिरहिं धीर दोउ भाई। सत्यसंध दृढ़ब्रत रघुराई॥
तौ तुम्ह बिनय करेहु कर जोरी। फेरिअ प्रभु मिथिलेसकिसोरी॥1॥॥

भावार्थ:-यदि धैर्यवान दोनों भाई न लौटें- क्योंकि श्री रघुनाथजी प्रण के सच्चे और दृढ़ता से नियम का पालन करने वाले हैं- तो तुम हाथ जोड़कर विनती करना कि हे प्रभो! जनककुमारी सीताजी को तो लौटा दीजिए॥1॥

* जब सिय कानन देखि डेराई। कहेहु मोरि सिख अवसरु पाई॥
सासु ससुर अस कहेउ सँदेसू। पुत्रि फिरिअ बन बहुत कलेसू॥2॥

भावार्थ:-जब सीता वन को देखकर डरें, तब मौका पाकर मेरी यह सीख उनसे कहना कि तुम्हारे सास और ससुर ने ऐसा संदेश कहा है कि हे पुत्री! तुम लौट चलो, वन में बहुत क्लेश हैं॥2॥

* पितुगृह कबहुँ कबहुँ ससुरारी। रहेहु जहाँ रुचि होइ तुम्हारी॥
एहि बिधि करेहु उपाय कदंबा। फिरइ त होइ प्रान अवलंबा॥3॥

भावार्थ:-कभी पिता के घर, कभी ससुराल, जहाँ तुम्हारी इच्छा हो, वहीं रहना। इस प्रकार तुम बहुत से उपाय करना। यदि सीताजी लौट आईं तो मेरे प्राणों को सहारा हो जाएगा॥3॥

* नाहिं त मोर मरनु परिनामा। कछु न बसाइ भएँ बिधि बामा॥
अस कहि मुरुछि परा महि राऊ। रामु लखनु सिय आनि देखाऊ॥4॥

भावार्थ:-(नहीं तो अंत में मेरा मरण ही होगा। विधाता के विपरीत होने पर कुछ वश नहीं चलता। हा! राम, लक्ष्मण और सीता को लाकर दिखाओ। ऐसा कहकर राजा मूर्च्छित होकर पृथ्वी पर गिर पड़े॥4॥

दोहा :

* पाइ रजायसु नाइ सिरु रथु अति बेग बनाइ।
गयउ जहाँ बाहेर नगर सीय सहित दोउ भाइ॥82॥

भावार्थ:-सुमंत्रजी राजा की आज्ञा पाकर, सिर नवाकर और बहुत जल्दी रथ जुड़वाकर वहाँ गए, जहाँ नगर के बाहर सीताजी सहित दोनों भाई थे॥82॥

चौपाई :

* तब सुमंत्र नृप बचन सुनाए। करि बिनती रथ रामु चढ़ाए॥
चढ़ि रथ सीय सहित दोउ भाई। चले हृदयँ अवधहि सिरु नाई॥1॥

भावार्थ:-तब (वहाँ पहुँचकर) सुमंत्र ने राजा के वचन श्री रामचन्द्रजी को सुनाए और विनती करके उनको रथ पर चढ़ाया।

गीताप्रेस गोरखपुर

सीताजी सहित दोनों भाई रथ पर चढ़कर हृदय में अयोध्या को सिर नवाकर चले॥1॥

* चलत रामु लखि अवध अनाथा। बिकल लोग सब लागे साथा॥
कृपासिंधु बहुबिधि समुझावहिं। फिरहिं प्रेम बस पुनि फिरि आवहिं॥2॥

भावार्थ:-श्री रामचन्द्रजी को जाते हुए और अयोध्या को अनाथ (होते हुए) देखकर सब लोग व्याकुल होकर उनके साथ हो लिए। कृपा के समुद्र श्री रामजी उन्हें बहुत तरह से समझाते हैं, तो वे (अयोध्या की ओर) लौट जाते हैं, परन्तु प्रेमवश फिर लौट आते हैं॥2॥

* लागति अवध भयावनि भारी। मानहुँ कालराति अँधिआरी॥
घोर जंतु सम पुर नर नारी। डरपहिं एकहि एक निहारी॥3॥

भावार्थ:-अयोध्यापुरी बड़ी डरावनी लग रही है, मानो अंधकारमयी कालरात्रि ही हो। नगर के नर-नारी भयानक जन्तुओं के समान एक-दूसरे को देखकर डर रहे हैं॥3॥

* घर मसान परिजन जनु भूता। सुत हित मीत मनहुँ जमदूता॥
बागन्ह बिटप बेलि कुम्हिलाहीं। सरित सरोवर देखि न जाहीं॥4॥

भावार्थ:-घर श्मशान, कुटुम्बी भूत-प्रेत और पुत्र, हितैषी और मित्र मानो यमराज के दूत हैं। बगीचों में वृक्ष और बेलें कुम्हला रही हैं। नदी और तालाब ऐसे भयानक लगते हैं कि उनकी ओर देखा भी नहीं जाता॥4॥

दोहा :

* हय गय कोटिन्ह केलिमृग पुरपसु चातक मोर।
पिक रथांग सुक सारिका सारस हंस चकोर॥83॥

भावार्थ:-करोड़ों घोड़े, हाथी, खेलने के लिए पाले हुए हिरन, नगर के (गाय, बैल, बकरी आदि) पशु, पपीहे, मोर, कोयल, चकवे, तोते, मैना, सारस, हंस और चकोर-॥83॥

चौपाई :

* राम बियोग बिकल सब ठाढ़े। जहँ तहँ मनहुँ चित्र लिखि काढ़े॥
नगरु सफल बनु गहबर भारी। खग मृग बिपुल सकल नर नारी॥1॥

भावार्थ:-श्री रामजी के वियोग में सभी व्याकुल हुए जहाँ-तहाँ (ऐसे चुपचाप स्थिर होकर) खड़े हैं, मानो तसवीरों में लिखकर बनाए हुए हैं। नगर मानो फलों से परिपूर्ण बड़ा भारी सघन वन था। नगर निवासी सब स्त्री-पुरुष बहुत से पशु-पक्षी थे। (अर्थात अवधपुरी अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष चारों फलों को देने वाली नगरी थी और सब स्त्री-पुरुष सुख से उन फलों को प्राप्त करते थे।)॥1॥

* बिधि कैकई किरातिनि कीन्ही। जेहिं दव दुसह दसहुँ दिसि दीन्ही॥
सहि न सके रघुबर बिरहागी। चले लोग सब ब्याकुल भागी॥2॥

भावार्थ:-विधाता ने कैकेयी को भीलनी बनाया, जिसने दसों दिशाओं में दुःसह दावाग्नि (भयानक आग) लगा दी। श्री रामचन्द्रजी के विरह की इस अग्नि को लोग सह न सके। सब लोग व्याकुल होकर भाग चले॥2॥

* सबहिं बिचारु कीन्ह मन माहीं। राम लखन सिय बिनु सुखु नाहीं॥

जहाँ रामु तहँ सबुइ समाजू। बिनु रघुबीर अवध नहिं काजू॥3॥

भावार्थ:-सबने मन में विचार कर लिया कि श्री रामजी, लक्ष्मणजी और सीताजी के बिना सुख नहीं है। जहाँ श्री रामजी रहेंगे, वहीं सारा समाज रहेगा। श्री रामचन्द्रजी के बिना अयोध्या में हम लोगों का कुछ काम नहीं है॥3॥

* चले साथ अस मंत्रु दृढ़ाई। सुर दुर्लभ सुख सदन बिहाई॥
राम चरन पंकज प्रिय जिन्हही। बिषय भोग बस करहिं कि तिन्हही॥4॥

भावार्थ:-ऐसा विचार दृढ़ करके देवताओं को भी दुर्लभ सुखों से पूर्ण घरों को छोड़कर सब श्री रामचन्द्रजी के साथ चले पड़े। जिनको श्री रामजी के चरणकमल प्यारे हैं, उन्हें क्या कभी विषय भोग वश में कर सकते हैं॥4॥

दोहा :

* बालक बृद्ध बिहाइ गृहँ लगे लोग सब साथ।
तमसा तीर निवासु किय प्रथम दिवस रघुनाथ॥84॥

भावार्थ:-बच्चों और बूढ़ों को घरों में छोड़कर सब लोग साथ हो लिए। पहले दिन श्री रघुनाथजी ने तमसा नदी के तीर पर निवास किया॥84॥

चौपाई :

* रघुपति प्रजा प्रेमबस देखी। सदय हृदयँ दुखु भयउ बिसेषी॥
करुनामय रघुनाथ गोसाँई। बेगि पाइअहिं पीर पराई॥1॥

भावार्थ:-प्रजा को प्रेमवश देखकर श्री रघुनाथजी के दयालु हृदय में बड़ा दुःख हुआ। प्रभु श्री रघुनाथजी करुणामय हैं। पराई पीड़ा

को वे तुरंत पा जाते हैं (अर्थात दूसरे का दुःख देखकर वे तुरंत स्वयं दुःखित हो जाते हैं)॥1॥

* कहि सप्रेम मृदु बचन सुहाए। बहुबिधि राम लोग समुझाए॥
किए धरम उपदेस घनेरे। लोग प्रेम बस फिरहिं न फेरे॥2॥

भावार्थ:-प्रेमयुक्त कोमल और सुंदर वचन कहकर श्री रामजी ने बहुत प्रकार से लोगों को समझाया और बहुतेरे धर्म संबंधी उपदेश दिए, परन्तु प्रेमवश लोग लौटाए लौटते नहीं॥2॥

* सीलु सनेहु छाड़ि नहिं जाई। असमंजस बस भे रघुराई॥
लोग सोग श्रम बस गए सोई। कछुक देवमायाँ मति मोई॥3॥

भावार्थ:-शील और स्नेह छोड़ा नहीं जाता। श्री रघुनाथजी असमंजस के अधीन हो गए (दुविधा में पड़ गए)। शोक और परिश्रम (थकावट) के मारे लोग सो गए और कुछ देवताओं की माया से भी उनकी बुद्धि मोहित हो गई॥3॥

* जबहिं जाम जुग जामिनि बीती। राम सचिव सन कहेउ सप्रीती॥
खोज मारि रथु हाँकहु ताता। आन उपायँ बनिहि नहिं बाता॥4॥

भावार्थ:-जब दो पहर बीत गई, तब श्री रामचन्द्रजी ने प्रेमपूर्वक मंत्री सुमंत्र से कहा- हे तात! रथ के खोज मारकर (अर्थात पहियों के चिह्नों से दिशा का पता न चले इस प्रकार) रथ को हाँकिए। और किसी उपाय से बात नहीं बनेगी॥4॥

दोहा :

* राम लखन सिय जान चढ़ि संभु चरन सिरु नाइ।
सचिवँ चलायउ तुरत रथु इत उत खोज दुराइ॥85॥

भावार्थ:-शंकरजी के चरणों में सिर नवाकर श्री रामजी, लक्ष्मणजी और सीताजी रथ पर सवार हुए। मंत्री ने तुरंत ही रथ को इधर-उधर खोज छिपाकर चला दिया॥85॥

चौपाई :

* जागे सकल लोग भएँ भोरू। गे रघुनाथ भयउ अति सोरू॥
रथ कर खोज कतहुँ नहिं पावहिं। राम राम कहि चहुँ दिसि धावहिं॥1॥

भावार्थ:-सबेरा होते ही सब लोग जागे, तो बड़ा शोर मचा कि रघुनाथजी चले गए। कहीं रथ का खोज नहीं पाते, सब 'हा राम! हा राम!' पुकारते हुए चारों ओर दौड़ रहे हैं॥1॥

* मनहुँ बारिनिधि बूड़ जहाजू। भयउ बिकल बड़ बनिक समाजू॥
एकहि एक देहिं उपदेसू। तजे राम हम जानि कलेसू॥2॥

भावार्थ:-मानो समुद्र में जहाज डूब गया हो, जिससे व्यापारियों का समुदाय बहुत ही व्याकुल हो उठा हो। वे एक-दूसरे को उपदेश देते हैं कि श्री रामचन्द्रजी ने, हम लोगों को क्लेश होगा, यह जानकर छोड़ दिया है॥2॥

* निंदहिं आपु सराहहिं मीना। धिग जीवनु रघुबीर बिहीना॥
जौं पै प्रिय बियोगु बिधि कीन्हा। तौ कस मरनु न मागें दीन्हा॥3॥

भावार्थ:-वे लोग अपनी निंदा करते हैं और मछलियों की सराहना करते हैं। (कहते हैं-) श्री रामचन्द्रजी के बिना हमारे जीने को धिक्कार है। विधाता ने यदि प्यारे का वियोग ही रचा, तो फिर उसने माँगने पर मृत्यु क्यों नहीं दी!॥3॥

* एहि बिधि करत प्रलाप कलापा। आए अवध भरे परितापा॥
बिषम बियोगु न जाइ बखाना। अवधि आस सब राखहिं प्राना॥4॥

भावार्थ:-इस प्रकार बहुत से प्रलाप करते हुए वे संताप से भरे हुए अयोध्याजी में आए। उन लोगों के विषम वियोग की दशा का वर्णन नहीं किया जा सकता। (चौदह साल की) अवधि की आशा से ही वे प्राणों को रख रहे हैं॥4॥

दोहा :

* राम दरस हित नेम ब्रत लगे करन नर नारि।
मनहुँ कोक कोकी कमल दीन बिहीन तमारि॥86॥

भावार्थ:-(सब) स्त्री-पुरुष श्री रामचन्द्रजी के दर्शन के लिए नियम और व्रत करने लगे और ऐसे दुःखी हो गए जैसे चकवा, चकवी और कमल सूर्य के बिना दीन हो जाते हैं॥86॥

चौपाई :

* सीता सचिव सहित दोउ भाई। सृंगबेरपुर पहुँचे जाई॥
उतरे राम देवसरि देखी। कीन्ह दंडवत हरषु बिसेषी॥1॥

भावार्थ:-सीताजी और मंत्री सहित दोनों भाई श्रृंगवेरपुर जा पहुँचे। वहाँ गंगाजी को देखकर श्री रामजी रथ से उतर पड़े और बड़े हर्ष के साथ उन्होंने दण्डवत की॥1॥

* लखन सचिवँ सियँ किए प्रनामा। सबहि सहित सुखु पायउ रामा॥
गंग सकल मुद मंगल मूला। सब सुख करनि हरनि सब सूला॥2॥

भावार्थ:-लक्ष्मणजी, सुमंत्र और सीताजी ने भी प्रणाम किया। सबके साथ श्री रामचन्द्रजी ने सुख पाया। गंगाजी समस्त आनंद-

मंगलों की मूल हैं। वे सब सुखों को करने वाली और सब पीड़ाओं को हरने वाली हैं॥2॥

* कहि कहि कोटिक कथा प्रसंगा। रामु बिलोकहिं गंग तरंगा॥
सचिवहि अनुजहि प्रियहि सुनाई। बिबुध नदी महिमा अधिकाई॥3॥

भावार्थ:-अनेक कथा प्रसंग कहते हुए श्री रामजी गंगाजी की तरंगों को देख रहे हैं। उन्होंने मंत्री को, छोटे भाई लक्ष्मणजी को और प्रिया सीताजी को देवनदी गंगाजी की बड़ी महिमा सुनाई॥3॥

* मज्जनु कीन्ह पंथ श्रम गयऊ। सुचि जलु पिअत मुदित मन भयऊ॥
सुमिरत जाहि मिटइ श्रम भारू। तेहि श्रम यह लौकिक ब्यवहारू॥4॥

भावार्थ:-इसके बाद सबने स्नान किया, जिससे मार्ग का सारा श्रम (थकावट) दूर हो गया और पवित्र जल पीते ही मन प्रसन्न हो गया। जिनके स्मरण मात्र से (बार-बार जन्म ने और मरने का) महान श्रम मिट जाता है, उनको 'श्रम' होना- यह केवल लौकिक व्यवहार (नरलीला) है॥4॥

गीताप्रेस गोरखपुर

श्री राम का श्रृंगवेरपुर पहुँचना, निषाद के द्वारा सेवा

दोहा :

* सुद्ध सच्चिदानंदमय कंद भानुकुल केतु।
चरितकरत नर अनुहरत संसृति सागर सेतु॥87॥

भावार्थ:-शुद्ध (प्रकृतिजन्य त्रिगुणों से रहित, मायातीत दिव्य मंगलविग्रह) सच्चिदानंद-कन्द स्वरूप सूर्य कुल के ध्वजा रूप भगवान श्री रामचन्द्रजी मनुष्यों के सदृश ऐसे चरित्र करते हैं, जो संसार रूपी समुद्र के पार उतरने के लिए पुल के समान हैं॥87॥

चौपाई :

* यह सुधि गुहँ निषाद जब पाई। मुदित लिए प्रिय बंधु बोलाई॥
लिए फल मूल भेंट भरि भारा। मिलन चलेउ हियँ हरषु अपारा॥1॥

भावार्थ:-जब निषादराज गुह ने यह खबर पाई, तब आनंदित होकर उसने अपने प्रियजनों और भाई-बंधुओं को बुला लिया और भेंट देने के लिए फल, मूल (कन्द) लेकर और उन्हें भारों (बहँगियों) में भरकर मिलने के लिए चला। उसके हृदय में हर्ष का पार नहीं था॥1॥

* करि दंडवत भेंट धरि आगें। प्रभुहि बिलोकत अति अनुरागें॥
सहज सनेह बिबस रघुराई। पूँछी कुसल निकट बैठाई॥2॥

भावार्थ:-दण्डवत करके भेंट सामने रखकर वह अत्यन्त प्रेम से प्रभु को देखने लगा। श्री रघुनाथजी ने स्वाभाविक स्नेह के वश होकर उसे अपने पास बैठाकर कुशल पूछी॥2॥

* नाथ कुसल पद पंकज देखें। भयउँ भागभाजन जन लेखें॥

देव धरनि धनु धामु तुम्हारा। मैं जनु नीचु सहित परिवारा॥3॥

भावार्थ:-निषादराज ने उत्तर दिया- हे नाथ! आपके चरणकमल के दर्शन से ही कुशल है (आपके चरणारविन्दों के दर्शन कर) आज मैं भाग्यवान पुरुषों की गिनती में आ गया। हे देव! यह पृथ्वी, धन और घर सब आपका है। मैं तो परिवार सहित आपका नीच सेवक हूँ॥3॥

* कृपा करिअ पुर धारिअ पाऊ। थापिय जनु सबु लोगु सिहाऊ॥
कहेहु सत्य सबु सखा सुजाना। मोहि दीन्ह पितु आयसु आना॥4॥

भावार्थ:-अब कृपा करके पुर (श्रृंगवेरपुर) में पधारिए और इस दास की प्रतिष्ठा बढ़ाइए, जिससे सब लोग मेरे भाग्य की बड़ाई करें। श्री रामचन्द्रजी ने कहा- हे सुजान सखा! तुमने जो कुछ कहा सब सत्य है, परन्तु पिताजी ने मुझको और ही आज्ञा दी है॥4॥

दोहा :

* बरष चारिदस बासु बन मुनि ब्रत बेषु अहारु।
ग्राम बासु नहिं उचित सुनि गुहहि भयउ दुखु भारु॥88॥

भावार्थ:-(उनकी आज्ञानुसार) मुझे चौदह वर्ष तक मुनियों का व्रत और वेष धारण कर और मुनियों के योग्य आहार करते हुए वन में ही बसना है, गाँव के भीतर निवास करना उचित नहीं है। यह सुनकर गुह को बड़ा दुःख हुआ॥88॥

चौपाई :

* राम लखन सिय रूप निहारी। कहहिं सप्रेम ग्राम नर नारी॥
ते पितु मातु कहहु सखि कैसे। जिन्ह पठए बन बालक ऐसे॥1॥

भावार्थ:-श्री रामजी, लक्ष्मणजी और सीताजी के रूप को देखकर गाँव के स्त्री-पुरुष प्रेम के साथ चर्चा करते हैं। (कोई कहती है-) हे सखी! कहो तो, वे माता-पिता कैसे हैं, जिन्होंने ऐसे (सुंदर सुकुमार) बालकों को वन में भेज दिया है॥1॥

* एक कहहिं भल भूपति कीन्हा। लोयन लाहु हमहि बिधि दीन्हा॥
तब निषादपति उर अनुमाना। तरु सिंसुपा मनोहर जाना॥2॥

भावार्थ:-कोई एक कहते हैं- राजा ने अच्छा ही किया, इसी बहाने हमें भी ब्रह्मा ने नेत्रों का लाभ दिया। तब निषाद राज ने हृदय में अनुमान किया, तो अशोक के पेड़ को (उनके ठहरने के लिए) मनोहर समझा॥2॥

* लै रघुनाथहिं ठाउँ देखावा। कहेउ राम सब भाँति सुहावा॥
पुरजन करि जोहारु घर आए। रघुबर संध्या करन सिधाए॥3॥

भावार्थ:-उसने श्री रघुनाथजी को ले जाकर वह स्थान दिखाया। श्री रामचन्द्रजी ने (देखकर) कहा कि यह सब प्रकार से सुंदर है। पुरवासी लोग जोहार (वंदना) करके अपने-अपने घर लौटे और श्री रामचन्द्रजी संध्या करने पधारे॥3॥

* गुहँ सँवारि साँथरी डसाई। कुस किसलयमय मृदुल सुहाई॥
सुचि फल मूल मधुर मृदु जानी। दोना भरि भरि राखेसि पानी॥4॥

भावार्थ:-गुह ने (इसी बीच) कुश और कोमल पत्तों की कोमल और सुंदर साथरी सजाकर बिछा दी और पवित्र, मीठे और कोमल देख-देखकर दोनों में भर-भरकर फल-मूल और पानी रख

दिया (अथवा अपने हाथ से फल-मूल दोनों में भर-भरकर रख दिए)॥4॥

दोहा :

* सिय सुमंत्र भ्राता सहित कंद मूल फल खाइ।
सयन कीन्ह रघुबंसमनि पाय पलोटत भाइ॥89॥

भावार्थ:-सीताजी, सुमंत्रजी और भाई लक्ष्मणजी सहित कन्द-मूल-फल खाकर रघुकुल मणि श्री रामचन्द्रजी लेट गए। भाई लक्ष्मणजी उनके पैर दबाने लगे॥89॥

चौपाई :

* उठे लखनु प्रभु सोवत जानी। कहि सचिवहि सोवन मृदु बानी॥
कछुक दूरि सजि बान सरासन। जागन लगे बैठि बीरासन॥1॥

भावार्थ:-फिर प्रभु श्री रामचन्द्रजी को सोते जानकर लक्ष्मणजी उठे और कोमल वाणी से मंत्री सुमंत्रजी को सोने के लिए कहकर वहाँ से कुछ दूर पर धनुष-बाण से सजकर, वीरासन से बैठकर जागने (पहरा देने) लगे॥1॥

* गुहँ बोलाइ पाहरू प्रतीती। ठावँ ठावँ राखे अति प्रीती॥
आपु लखन पहिं बैठेउ जाई। कटि भाथी सर चाप चढ़ाई॥2॥

भावार्थ:-गुह ने विश्वासपात्र पहरेदारों को बुलाकर अत्यन्त प्रेम से जगह-जगह नियुक्त कर दिया और आप कमर में तरकस बाँधकर तथा धनुष पर बाण चढ़ाकर लक्ष्मणजी के पास जा बैठा॥2॥

* सोवत प्रभुहि निहारि निषादू। भयउ प्रेम बस हृदयँ बिषादू॥
तनु पुलकित जलु लोचन बहई। बचन सप्रेम लखन सन कहई॥3॥

भावार्थ:-प्रभु को जमीन पर सोते देखकर प्रेम वश निषाद राज के हृदय में विषाद हो आया। उसका शरीर पुलकित हो गया

और नेत्रों से (प्रेमाश्रुओं का) जल बहने लगा। वह प्रेम सहित लक्ष्मणजी से वचन कहने लगा-॥3॥

* भूपति भवन सुभायँ सुहावा। सुरपति सदनु न पटतर पावा॥
मनिमय रचित चारु चौबारे। जनु रतिपति निज हाथ सँवारे॥4॥

भावार्थ:-महाराज दशरथजी का महल तो स्वभाव से ही सुंदर है, इन्द्रभवन भी जिसकी समानता नहीं पा सकता। उसमें सुंदर मणियों के रचे चौबारे (छत के ऊपर बँगले) हैं, जिन्हें मानो रति के पति कामदेव ने अपने ही हाथों सजाकर बनाया है॥4॥

दोहा :

* सुचि सुबिचित्र सुभोगमय सुमन सुगंध सुबास।
पलँग मंजु मनि दीप जहँ सब बिधि सकल सुपास॥90॥

भावार्थ:- जो पवित्र, बड़े ही विलक्षण, सुंदर भोग पदार्थों से पूर्ण और फूलों की सुगंध से सुवासित हैं, जहाँ सुंदर पलँग और मणियों के दीपक हैं तथा सब प्रकार का पूरा आराम है,॥90॥

चौपाई :

* बिबिध बसन उपधान तुराईं। छीर फेन मृदु बिसद सुहाईं॥
तहँ सिय रामु सयन निसि करहीं। निज छबि रति मनोज मदु हरहीं॥1॥

भावार्थ:-जहाँ (ओढ़ने-बिछाने के) अनेकों वस्त्र, तकिए और गद्दे हैं, जो दूध के फेन के समान कोमल, निर्मल (उज्ज्वल) और सुंदर हैं, वहाँ (उन चौबारों में) श्री सीताजी और श्री रामचन्द्रजी रात को सोया करते थे और अपनी शोभा से रति और कामदेव के गर्व को हरण करते थे॥1॥

* ते सिय रामु साथरीं सोए। श्रमित बसन बिनु जाहिं न जोए॥
मातु पिता परिजन पुरबासी। सखा सुसील दास अरु दासी॥2॥

भावार्थ:-वही श्री सीता और श्री रामजी आज घास-फूस की साथरी पर थके हुए बिना वस्त्र के ही सोए हैं। ऐसी दशा में वे देखे नहीं जाते। माता, पिता, कुटुम्बी, पुरवासी (प्रजा), मित्र, अच्छे शील-स्वभाव के दास और दासियाँ-॥2॥

* जोगवहिं जिन्हहि प्रान की नाईं। महि सोवत तेइ राम गोसाईं॥
पिता जनक जग बिदित प्रभाऊ। ससुर सुरेस सखा रघुराऊ॥3॥

भावार्थ:-सब जिनकी अपने प्राणों की तरह सार-संभार करते थे, वही प्रभु श्री रामचन्द्रजी आज पृथ्वी पर सो रहे हैं। जिनके पिता जनकजी हैं, जिनका प्रभाव जगत में प्रसिद्ध है, जिनके ससुर इन्द्र के मित्र रघुराज दशरथजी हैं,॥3॥

* रामचंदु पति सो बैदेही। सोवत महि बिधि बाम न केही॥
सिय रघुबीर कि कानन जोगू। करम प्रधान सत्य कह लोगू॥4॥

भावार्थ:-और पति श्री रामचन्द्रजी हैं, वही जानकीजी आज जमीन पर सो रही हैं। विधाता किसको प्रतिकूल नहीं होता! सीताजी और श्री रामचन्द्रजी क्या वन के योग्य हैं? लोग सच कहते हैं कि कर्म (भाग्य) ही प्रधान है॥4॥

दोहा :

* कैकयनंदिनि मंदमति कठिन कुटिलपन कीन्ह।
जेहिं रघुनंदन जानकिहि सुख अवसर दुखु दीन्ह॥91॥

भावार्थ:-कैकयराज की लड़की नीच बुद्धि कैकेयी ने बड़ी ही कुटिलता की, जिसने रघुनंदन श्री रामजी और जानकीजी को सुख के समय दुःख दिया॥91॥

चौपाई :

* भइ दिनकर कुल बिटप कुठारी। कुमति कीन्ह सब बिस्व दुखारी॥
भयउ बिषादु निषादहि भारी। राम सीय महि सयन निहारी॥1॥

भावार्थ:-वह सूर्यकुल रूपी वृक्ष के लिए कुल्हाड़ी हो गई। उस कुबुद्धि ने सम्पूर्ण विश्व को दुःखी कर दिया। श्री राम-सीता को जमीन पर सोते हुए देखकर निषाद को बड़ा दुःख हुआ॥1॥

गीताप्रेस गोरखपुर

लक्ष्मण-निषाद संवाद, श्री राम-सीता से सुमन्त्र का संवाद, सुमंत्र का लौटना

* बोले लखन मधुर मृदु बानी। ग्यान बिराग भगति रस सानी॥
काहु न कोउ सुख दुख कर दाता। निज कृत करम भोग सबु भ्राता॥2॥

भावार्थ:-तब लक्ष्मणजी ज्ञान, वैराग्य और भक्ति के रस से सनी हुई मीठी और कोमल वाणी बोले- हे भाई! कोई किसी को सुख-दुःख का देने वाला नहीं है। सब अपने ही किए हुए कर्मों का फल भोगते हैं॥2॥

* जोग बियोग भोग भल मंदा। हित अनहित मध्यम भ्रम फंदा॥
जनमु मरनु जहँ लगि जग जालू। संपति बिपति करमु अरु
कालू॥3॥

भावार्थ:-संयोग (मिलना), वियोग (बिछुड़ना), भले-बुरे भोग, शत्रु, मित्र और उदासीन- ये सभी भ्रम के फंदे हैं। जन्म-मृत्यु, सम्पत्ति-विपत्ति, कर्म और काल- जहाँ तक जगत के जंजाल हैं,॥3॥

* दरनि धामु धनु पुर परिवारू। सरगु नरकु जहँ लगि ब्यवहारू॥
देखिअ सुनिअ गुनिअ मन माहीं। मोह मूल परमारथु नाहीं॥4॥

भावार्थ:-धरती, घर, धन, नगर, परिवार, स्वर्ग और नरक आदि जहाँ तक व्यवहार हैं, जो देखने, सुनने और मन के अंदर विचारने में आते हैं, इन सबका मूल मोह (अज्ञान) ही है। परमार्थतः ये नहीं हैं॥4॥

दोहा :

* सपनें होइ भिखारि नृपु रंकु नाकपति होइ।
जागें लाभु न हानि कछु तिमि प्रपंच जियँ जोइ॥92॥

भावार्थ:-जैसे स्वप्न में राजा भिखारी हो जाए या कंगाल स्वर्ग का स्वामी इन्द्र हो जाए, तो जागने पर लाभ या हानि कुछ भी नहीं है, वैसे ही इस दृश्य-प्रपंच को हृदय से देखना चाहिए॥92॥

चौपाई :

* अस बिचारि नहिं कीजिअ रोसू। काहुहि बादि न देइअ दोसू॥
मोह निसाँ सबु सोवनिहारा। देखिअ सपन अनेक प्रकारा॥1॥

भावार्थ:-ऐसा विचारकर क्रोध नहीं करना चाहिए और न किसी को व्यर्थ दोष ही देना चाहिए। सब लोग मोह रूपी रात्रि में

सोने वाले हैं और सोते हुए उन्हें अनेकों प्रकार के स्वप्न दिखाई देते हैं॥1॥

* एहिं जग जामिनि जागहिं जोगी। परमारथी प्रपंच बियोगी॥
जानिअ तबहिं जीव जग जागा। जब सब बिषय बिलास बिरागा॥2॥

भावार्थ:-इस जगत रूपी रात्रि में योगी लोग जागते हैं, जो परमार्थी हैं और प्रपंच (मायिक जगत) से छूटे हुए हैं। जगत में जीव को जागा हुआ तभी जानना चाहिए, जब सम्पूर्ण भोग-विलासों से वैराग्य हो जाए॥2॥

* होइ बिबेकु मोह भ्रम भागा। तब रघुनाथ चरन अनुरागा॥
सखा परम परमारथु एहू। मन क्रम बचन राम पद नेहू॥3॥

भावार्थ:-विवेक होने पर मोह रूपी भ्रम भाग जाता है, तब (अज्ञान का नाश होने पर) श्री रघुनाथजी के चरणों में प्रेम होता है। हे सखा! मन, वचन और कर्म से श्री रामजी के चरणों में प्रेम होना, यही सर्वश्रेष्ठ परमार्थ (पुरुषार्थ) है॥3॥

* राम ब्रह्म परमारथ रूपा। अबिगत अलख अनादि अनूपा॥
सकल बिकार रहित गतभेदा। कहि नित नेति निरूपहिं बेदा॥4॥

भावार्थ:-श्री रामजी परमार्थस्वरूप (परमवस्तु) परब्रह्म हैं। वे अविगत (जानने में न आने वाले) अलख (स्थूल दृष्टि से देखने में न आने वाले), अनादि (आदिरहित), अनुपम (उपमारहित) सब विकारों से रहति और भेद शून्य हैं, वेद जिनका नित्य 'नेति-नेति' कहकर निरूपण करते हैं॥4॥

दोहा :

* भगत भूमि भूसुर सुरभि सुर हित लागि कृपाल।
करत चरित धरि मनुज तनु सुनत मिटहिं जग जाल॥93॥

भावार्थ:-वही कृपालु श्री रामचन्द्रजी भक्त, भूमि, ब्राह्मण, गो और देवताओं के हित के लिए मनुष्य शरीर धारण करके लीलाएँ करते हैं, जिनके सुनने से जगत के जंजाल मिट जाते हैं॥93॥

मासपारायण, पंद्रहवाँ विश्राम
चौपाई :

* सखा समुझि अस परिहरि मोहू। सिय रघुबीर चरन रत होहू॥
कहत राम गुन भा भिनुसारा। जागे जग मंगल सुखदारा॥1॥

भावार्थ:-हे सखा! ऐसा समझ, मोह को त्यागकर श्री सीतारामजी के चरणों में प्रेम करो। इस प्रकार श्री रामचन्द्रजी के गुण कहते-कहते सबेरा हो गया! तब जगत का मंगल करने वाले और उसे सुख देने वाले श्री रामजी जागे॥1॥

* सकल सौच करि राम नहावा। सुचि सुजान बट छीर मगावा॥
अनुज सहित सिर जटा बनाए। देखि सुमंत्र नयन जल छाए॥

भावार्थ:-शौच के सब कार्य करके (नित्य) पवित्र और सुजान श्री रामचन्द्रजी ने स्नान किया। फिर बड़ का दूध मँगाया और छोटे भाई लक्ष्मणजी सहित उस दूध से सिर पर जटाएँ बनाईं। यह देखकर सुमंत्रजी के नेत्रों में जल छा गया॥2॥

* हृदयँ दाहु अति बदन मलीना। कह कर जोर बचन अति दीना॥
नाथ कहेउ अस कोसलनाथा। लै रथु जाहु राम कें साथा॥3॥

भावार्थ:-उनका हृदय अत्यंत जलने लगा, मुँह मलिन (उदास) हो गया। वे हाथ जोड़कर अत्यंत दीन वचन बोले- हे नाथ! मुझे कौसलनाथ दशरथजी ने ऐसी आज्ञा दी थी कि तुम रथ लेकर श्री रामजी के साथ जाओ,॥3॥

* बनु देखाइ सुरसरि अन्हवाई। आनेहु फेरि बेगि दोउ भाई॥
लखनु रामु सिय आनेहु फेरी। संसय सकल सँकोच निबेरी॥4॥

भावार्थ:-वन दिखाकर, गंगा स्नान कराकर दोनों भाइयों को तुरंत लौटा लाना। सब संशय और संकोच को दूर करके लक्ष्मण, राम, सीता को फिरा लाना॥4॥

दोहा :

* नृप अस कहेउ गोसाइँ जस कहइ करौं बलि सोइ।
करि बिनती पायन्ह परेउ दीन्ह बाल जिमि रोइ॥94॥

भावार्थ:- महाराज ने ऐसा कहा था, अब प्रभु जैसा कहें, मैं वही करूँ, मैं आपकी बलिहारी हूँ। इस प्रकार से विनती करके वे श्री रामचन्द्रजी के चरणों में गिर पड़े और बालक की तरह रो दिए॥94॥

चौपाई :

* तात कृपा करि कीजिअ सोई। जातें अवध अनाथ न होई॥
मंत्रिहि राम उठाइ प्रबोधा। तात धरम मतु तुम्ह सबु सोधा॥1॥

भावार्थ:-(और कहा -) हे तात ! कृपा करके वही कीजिए जिससे अयोध्या अनाथ न हो श्री रामजी ने मंत्री को उठाकर धैर्य बँधाते हुए समझाया कि हे तात ! आपने तो धर्म के सभी सिद्धांतों को छान डाला है॥1॥

* सिबि दधीच हरिचंद नरेसा। सहे धरम हित कोटि कलेसा॥

रंतिदेव बलि भूप सुजाना। धरमु धरेउ सहि संकट नाना॥2॥

भावार्थ:-शिबि, दधीचि और राजा हरिश्चन्द्र ने धर्म के लिए करोड़ों (अनेकों) कष्ट सहे थे। बुद्धिमान राजा रन्तिदेव और बलि बहुत से संकट सहकर भी धर्म को पकड़े रहे (उन्होंने धर्म का परित्याग नहीं किया)॥2॥

* धरमु न दूसर सत्य समाना। आगम निगम पुरान बखाना॥
मैं सोइ धरमु सुलभ करि पावा। तजें तिहूँ पुर अपजसु छावा॥3॥

भावार्थ:-वेद, शास्त्र और पुराणों में कहा गया है कि सत्य के समान दूसरा धर्म नहीं है। मैंने उस धर्म को सहज ही पा लिया है। इस (सत्य रूपी धर्म) का त्याग करने से तीनों लोकों में अपयश छा जाएगा॥3॥

* संभावित कहुँ अपजस लाहू। मरन कोटि सम दारुन दाहू॥
तुम्ह सन तात बहुत का कहऊँ। दिएँ उतरु फिरि पातकु लहऊँ॥4॥

भावार्थ:-प्रतिष्ठित पुरुष के लिए अपयश की प्राप्ति करोड़ों मृत्यु के समान भीषण संताप देने वाली है। हे तात! मैं आप से अधिक क्या कहूँ! लौटकर उत्तर देने में भी पाप का भागी होता हूँ॥4॥

दोहा :

* पितु पद गहि कहि कोटि नति बिनय करब कर जोरि।
चिंता कवनिहु बात कै तात करिअ जनि मोरि॥95॥

भावार्थ:-आप जाकर पिताजी के चरण पकड़कर करोड़ों नमस्कार के साथ ही हाथ जोड़कर बिनती करिएगा कि हे तात! आप मेरी किसी बात की चिन्ता न करें॥95॥

चौपाई :

* तुम्ह पुनि पितु सम अति हित मोरें। बिनती करउँ तात कर जोरें॥
सब बिधि सोइ करतब्य तुम्हारें। दुख न पाव पितु सोच हमारें॥1॥

भावार्थ:-आप भी पिता के समान ही मेरे बड़े हितैषी हैं। हे तात! मैं हाथ जोड़कर आप से विनती करता हूँ कि आपका भी सब प्रकार से वही कर्तव्य है, जिसमें पिताजी हम लोगों के सोच में दुःख न पावें॥1॥

* सुनि रघुनाथ सचिव संबादू। भयउ सपरिजन बिकल निषादू॥
पुनि कछु लखन कही कटु बानी। प्रभु बरजे बड़ अनुचित जानी॥2॥

भावार्थ:-श्री रघुनाथजी और सुमंत्र का यह संवाद सुनकर निषादराज कुटुम्बियों सहित व्याकुल हो गया। फिर लक्ष्मणजी ने कुछ कड़वी बात कही। प्रभु श्री रामचन्द्रजी ने उसे बहुत ही अनुचित जानकर उनको मना किया॥2॥

* सकुचि राम निज सपथ देवाई। लखन सँदेसु कहिअ जनि जाई॥
कह सुमंत्रु पुनि भूप सँदेसू। सहि न सकिहि सिय बिपिन कलेसू॥3॥

भावार्थ:-श्री रामचन्द्रजी ने सकुचाकर, अपनी सौगंध दिलाकर सुमंत्रजी से कहा कि आप जाकर लक्ष्मण का यह संदेश न कहिएगा। सुमंत्र ने फिर राजा का संदेश कहा कि सीता वन के क्लेश न सह सकेंगी॥3॥

* जेहि बिधि अवध आव फिरि सीया। होइ रघुबरहि तुम्हहि करनीया॥

नतरु निपट अवलंब बिहीना। मैं न जिअब जिमि जल बिनु
मीना॥4॥

भावार्थ:-अतएव जिस तरह सीता अयोध्या को लौट आवें, तुमको और श्री रामचन्द्र को वही उपाय करना चाहिए। नहीं तो मैं बिल्कुल ही बिना सहारे का होकर वैसे ही नहीं जीऊँगा जैसे बिना जल के मछली नहीं जीती॥4॥

दोहा :

* मइकें ससुरें सकल सुख जबहिं जहाँ मनु मान।
तहँ तब रहिहि सुखेन सिय जब लगि बिपति बिहान॥96॥

भावार्थ:-सीता के मायके (पिता के घर) और ससुराल में सब सुख हैं। जब तक यह विपत्ति दूर नहीं होती, तब तक वे जब जहाँ जी चाहें, वहीं सुख से रहेंगी॥96॥

चौपाई :

* बिनती भूप कीन्ह जेहि भाँती। आरति प्रीति न सो कहि
जाती॥
पितु सँदेसु सुनि कृपानिधाना। सियहि दीन्ह सिख कोटि
बिधाना॥1॥

भावार्थ:-राजा ने जिस तरह (जिस दीनता और प्रेम से) विनती की है, वह दीनता और प्रेम कहा नहीं जा सकता। कृपानिधान श्री रामचन्द्रजी ने पिता का संदेश सुनकर सीताजी को करोड़ों (अनेकों) प्रकार से सीख दी॥1॥

* सासु ससुर गुर प्रिय परिवारू। फिरहु त सब कर मिटै
खभारू॥
सुनि पति बचन कहति बैदेही। सुनहु प्रानपति परम सनेही॥2॥

भावार्थ:-(उन्होंने कहा-) जो तुम घर लौट जाओ, तो सास, ससुर, गुरु, प्रियजन एवं कुटुम्बी सबकी चिन्ता मिट जाए। पति के वचन सुनकर जानकीजी कहती हैं- हे प्राणपति! हे परम स्नेही! सुनिए॥2॥

* प्रभु करुनामय परम बिबेकी। तनु तजि रहति छाँह किमि छेंकी॥
प्रभा जाइ कहँ भानु बिहाई। कहँ चंद्रिका चंदु तजि जाई॥3॥

भावार्थ:-हे प्रभो! आप करुणामय और परम ज्ञानी हैं। (कृपा करके विचार तो कीजिए) शरीर को छोड़कर छाया अलग कैसे रोकी रह सकती है? सूर्य की प्रभा सूर्य को छोड़कर कहाँ जा सकती है? और चाँदनी चन्द्रमा को त्यागकर कहाँ जा सकती है?॥3॥

* पतिहि प्रेममय बिनय सुनाई। कहति सचिव सन गिरा सुहाई॥
तुम्ह पितु ससुर सरिस हितकारी। उतरु देउँ फिरि अनुचित भारी॥4॥

भावार्थ:-इस प्रकार पति को प्रेममयी विनती सुनाकर सीताजी मंत्री से सुहावनी वाणी कहने लगीं- आप मेरे पिताजी और ससुरजी के समान मेरा हित करने वाले हैं। आपको मैं बदले में उत्तर देती हूँ, यह बहुत ही अनुचित है॥4॥

दोहा :

* आरति बस सनमुख भइउँ बिलगु न मानब तात।
आरजसुत पद कमल बिनु बादि जहाँ लगि नात॥97॥

भावार्थ:-किन्तु हे तात! मैं आर्त्त होकर ही आपके सम्मुख हुई हूँ, आप बुरा न मानिएगा। आर्यपुत्र (स्वामी) के चरणकमलों के बिना जगत में जहाँ तक नाते हैं, सभी मेरे लिए व्यर्थ हैं॥97॥

चौपाई :

* पितु बैभव बिलास मैं डीठा। नृप मनि मुकुट मिलित पद पीठा॥
सुखनिधान अस पितु गृह मोरें। पिय बिहीन मन भाव न भोरें॥1॥

भावार्थ:-मैंने पिताजी के ऐश्वर्य की छटा देखी है, जिनके चरण रखने की चौकी से सर्वशिरोमणि राजाओं के मुकुट मिलते हैं (अर्थात बड़े-बड़े राजा जिनके चरणों में प्रणाम करते हैं) ऐसे पिता का घर भी, जो सब प्रकार के सुखों का भंडार है, पति के बिना मेरे मन को भूलकर भी नहीं भाता॥1॥

* ससुर चक्कवइ कोसल राऊ। भुवन चारिदस प्रगट प्रभाऊ॥
आगें होइ जेहि सुरपति लेई। अरध सिंघासन आसनु देई॥2॥

भावार्थ:-मेरे ससुर कोसलराज चक्रवर्ती सम्राट हैं, जिनका प्रभाव चौदहों लोकों में प्रकट है, इन्द्र भी आगे होकर जिनका स्वागत करता है और अपने आधे सिंहासन पर बैठने के लिए स्थान देता है,॥2॥

* ससुरु एतादृस अवध निवासू। प्रिय परिवारु मातु सम सासू॥
बिनु रघुपति पद पदुम परागा। मोहि केउ सपनेहुँ सुखद न लागा॥3॥

भावार्थ:-ऐसे (ऐश्वर्य और प्रभावशाली) ससुर, (उनकी राजधानी) अयोध्या का निवास, प्रिय कुटुम्बी और माता के समान सासुएँ- ये कोई भी श्री रघुनाथजी के चरण कमलों की रज के बिना मुझे स्वप्न में भी सुखदायक नहीं लगते॥3॥

* अगम पंथ बनभूमि पहारा। करि केहरि सर सरित अपारा॥

कोल किरात कुरंग बिहंगा। मोहि सब सुखद प्रानपति संगा॥4॥

भावार्थ:-दुर्गम रास्ते, जंगली धरती, पहाड़, हाथी, सिंह, अथाह तालाब एवं नदियाँ, कोल, भील, हिरन और पक्षी- प्राणपति (श्री रघुनाथजी) के साथ रहते ये सभी मुझे सुख देने वाले होंगे॥4॥

दोहा :

* सासु ससुर सन मोरि हुँति बिनय करबि परि पायँ।
मोर सोचु जनि करिअ कछु मैं बन सुखी सुभायँ॥98॥

भावार्थ:-अतः सास और ससुर के पाँव पड़कर, मेरी ओर से विनती कीजिएगा कि वे मेरा कुछ भी सोच न करें, मैं वन में स्वभाव से ही सुखी हूँ॥98॥

चौपाई :

* प्राननाथ प्रिय देवर साथा। बीर धुरीन धरें धनु भाथा॥
नहिं मग श्रमु भ्रमु दुख मन मोरें। मोहि लगि सोचु करिअ जनि भोरें॥1॥

भावार्थ:-वीरों में अग्रगण्य तथा धनुष और (बाणों से भरे) तरकश धारण किए मेरे प्राणनाथ और प्यारे देवर साथ हैं। इससे मुझे न रास्ते की थकावट है, न भ्रम है और न मेरे मन में कोई दुःख ही है। आप मेरे लिए भूलकर भी सोच न करें॥1॥

* सुनि सुमंत्रु सिय सीतलि बानी। भयउ बिकल जनु फनि मनि हानी॥
नयन सूझ नहिं सुनइ न काना। कहि न सकइ कछु अति अकुलाना॥2॥

भावार्थ:-सुमंत्र सीताजी की शीतल वाणी सुनकर ऐसे व्याकुल हो गए जैसे साँप मणि खो जाने पर। नेत्रों से कुछ सूझता नहीं,

कानों से सुनाई नहीं देता। वे बहुत व्याकुल हो गए, कुछ कह नहीं सकते॥2॥

* राम प्रबोधु कीन्ह बहु भाँती। तदपि होति नहिं सीतलि छाती॥
जतन अनेक साथ हित कीन्हे। उचित उतर रघुनंदन दीन्हे॥3॥

भावार्थ:-श्री रामचन्द्रजी ने उनका बहुत प्रकार से समाधान किया। तो भी उनकी छाती ठंडी न हुई। साथ चलने के लिए मंत्री ने अनेकों यत्न किए (युक्तियाँ पेश कीं), पर रघुनंदन श्री रामजी (उन सब युक्तियों का) यथोचित उत्तर देते गए॥3॥

* मेटि जाइ नहिं राम रजाई। कठिन करम गति कछु न बसाई॥
राम लखन सिय पद सिरु नाई। फिरेउ बनिक जिमि मूर गवाँई॥4॥

भावार्थ:-श्री रामजी की आज्ञा मेटी नहीं जा सकती। कर्म की गति कठिन है, उस पर कुछ भी वश नहीं चलता। श्री राम, लक्ष्मण और सीताजी के चरणों में सिर नवाकर सुमंत्र इस तरह लौटे जैसे कोई व्यापारी अपना मूलधन (पूँजी) गँवाकर लौटे॥4॥

दोहा :

* रथु हाँकेउ हय राम तन हेरि हेरि हिहिनाहिं।
देखि निषाद बिषाद बस धुनहिं सीस पछिताहिं॥99॥

भावार्थ:-सुमंत्र ने रथ को हाँका, घोड़े श्री रामचन्द्रजी की ओर देख-देखकर हिनहिनाते हैं। यह देखकर निषाद लोग विषाद के वश होकर सिर धुन-धुनकर (पीट-पीटकर) पछताते हैं॥99॥

गीताप्रेस गोरखपुर

केवट का प्रेम और गंगा पार जाना

चौपाई :

* जासु बियोग बिकल पसु ऐसें। प्रजा मातु पितु जिइहहिं कैसें॥
बरबस राम सुमंत्रु पठाए। सुरसरि तीर आपु तब आए॥1॥

भावार्थ:-जिनके वियोग में पशु इस प्रकार व्याकुल हैं, उनके वियोग में प्रजा, माता और पिता कैसे जीते रहेंगे? श्री रामचन्द्रजी ने जबर्दस्ती सुमंत्र को लौटाया। तब आप गंगाजी के तीर पर आए॥1॥

* मागी नाव न केवटु आना। कहइ तुम्हार मरमु मैं जाना॥
चरन कमल रज कहुँ सबु कहई। मानुष करनि मूरि कछु अहई॥2॥

भावार्थ:-श्री राम ने केवट से नाव माँगी, पर वह लाता नहीं। वह कहने लगा- मैंने तुम्हारा मर्म (भेद) जान लिया। तुम्हारे चरण कमलों की धूल के लिए सब लोग कहते हैं कि वह मनुष्य बना देने वाली कोई जड़ी है,॥2॥

* छुअत सिला भइ नारि सुहाई। पाहन तें न काठ कठिनाई॥
तरनिउ मुनि घरिनी होइ जाई। बाट परइ मोरि नाव उड़ाई॥3॥

भावार्थ:-जिसके छूते ही पत्थर की शिला सुंदरी स्त्री हो गई (मेरी नाव तो काठ की है)। काठ पत्थर से कठोर तो होता नहीं। मेरी नाव भी मुनि की स्त्री हो जाएगी और इस प्रकार मेरी नाव उड़ जाएगी, मैं लुट जाऊँगा (अथवा रास्ता रुक

जाएगा, जिससे आप पार न हो सकेंगे और मेरी रोजी मारी जाएगी) (मेरी कमाने-खाने की राह ही मारी जाएगी)॥3॥

* एहिं प्रतिपालउँ सबु परिवारू। नहिं जानउँ कछु अउर कबारू॥
जौं प्रभु पार अवसि गा चहहू। मोहि पद पदुम पखारन कहहू॥4॥

भावार्थ:-मैं तो इसी नाव से सारे परिवार का पालन-पोषण करता हूँ। दूसरा कोई धंधा नहीं जानता। हे प्रभु! यदि तुम अवश्य ही पार जाना चाहते हो तो मुझे पहले अपने चरणकमल पखारने (धो लेने) के लिए कह दो॥4॥

छन्द :

* पद कमल धोइ चढ़ाइ नाव न नाथ उतराई चहौं।
मोहि राम राउरि आन दसरथसपथ सब साची कहौं॥
बरु तीर मारहुँ लखनु पै जब लगि न पाय पखारिहौं।
तब लगि न तुलसीदास नाथ कृपाल पारु उतारिहौं॥

भावार्थ:-हे नाथ! मैं चरण कमल धोकर आप लोगों को नाव पर चढ़ा लूँगा, मैं आपसे कुछ उतराई नहीं चाहता। हे राम! मुझे आपकी दुहाई और दशरथजी की सौगंध है, मैं सब सच-सच कहता हूँ। लक्ष्मण भले ही मुझे तीर मारें, पर जब तक मैं पैरों को पखार न लूँगा, तब तक हे तुलसीदास के नाथ! हे कृपालु! मैं पार नहीं उतारूँगा।

सोरठा :

* सुनि केवट के बैन प्रेम लपेटे अटपटे।
बिहसे करुनाऐन चितइ जानकी लखन तन॥100॥

भावार्थ:-केवट के प्रेम में लपेटे हुए अटपटे वचन सुनकर करुणाधाम श्री रामचन्द्रजी जानकीजी और लक्ष्मणजी की ओर देखकर हँसे॥100॥

चौपाई :

* कृपासिंधु बोले मुसुकाई। सोइ करु जेहिं तव नाव न जाई॥
बेगि आनु जलपाय पखारू। होत बिलंबु उतारहि पारू॥1॥

भावार्थ:-कृपा के समुद्र श्री रामचन्द्रजी केवट से मुस्कुराकर बोले भाई! तू वही कर जिससे तेरी नाव न जाए। जल्दी पानी ला और पैर धो ले। देर हो रही है, पार उतार दे॥1॥

* जासु नाम सुमिरत एक बारा। उतरहिं नर भवसिंधु अपारा॥
सोइ कृपालु केवटहि निहोरा। जेहिं जगु किय तिहु पगहु ते थोरा॥2॥

भावार्थ:-एक बार जिनका नाम स्मरण करते ही मनुष्य अपार भवसागर के पार उतर जाते हैं और जिन्होंने (वामनावतार में) जगत को तीन पग से भी छोटा कर दिया था (दो ही पग में त्रिलोकी को नाप लिया था), वही कृपालु श्री रामचन्द्रजी (गंगाजी से पार उतारने के लिए) केवट का निहोरा कर रहे हैं!॥2॥

* पद नख निरखि देवसरि हरषी। सुनि प्रभु बचन मोहँ मति करषी॥
केवट राम रजायसु पावा। पानि कठवता भरि लेइ आवा॥3॥

भावार्थ:-प्रभु के इन वचनों को सुनकर गंगाजी की बुद्धि मोह से खिंच गई थी (कि ये साक्षात भगवान होकर भी पार उतारने के लिए केवट का निहोरा कैसे कर रहे हैं), परन्तु (समीप आने पर अपनी उत्पत्ति के स्थान) पदनखों को देखते ही (उन्हें पहचानकर)

देवनदी गंगाजी हर्षित हो गईं। (वे समझ गईं कि भगवान नरलीला कर रहे हैं, इससे उनका मोह नष्ट हो गया और इन चरणों का स्पर्श प्राप्त करके मैं धन्य होऊँगी, यह विचारकर वे हर्षित हो गईं।) केवट श्री रामचन्द्रजी की आज्ञा पाकर कठौते में भरकर जल ले आया॥3॥

* अति आनंद उमगि अनुरागा। चरन सरोज पखारन लागा॥
बरषि सुमन सुर सकल सिहाहीं। एहि सम पुन्यपुंज कोउ नाहीं॥4॥

भावार्थ:-अत्यन्त आनंद और प्रेम में उमंगकर वह भगवान के चरणकमल धोने लगा। सब देवता फूल बरसाकर सिहाने लगे कि इसके समान पुण्य की राशि कोई नहीं है॥4॥

दोहा :

* पद पखारि जलु पान करि आपु सहित परिवार।
पितर पारु करि प्रभुहि पुनि मुदित गयउ लेइ पार॥101॥

भावार्थ:-चरणों को धोकर और सारे परिवार सहित स्वयं उस जल (चरणोदक) को पीकर पहले (उस महान पुण्य के द्वारा) अपने पितरों को भवसागर से पार कर फिर आनंदपूर्वक प्रभु श्री रामचन्द्रजी को गंगाजी के पार ले गया॥101॥

चौपाई :

* उतरि ठाढ़ भए सुरसरि रेता। सीय रामुगुह लखन समेता॥
केवट उतरि दंडवत कीन्हा। प्रभुहि सकुच एहि नहिं कछु दीन्हा॥1॥

भावार्थ:-निषादराज और लक्ष्मणजी सहित श्री सीताजी और श्री रामचन्द्रजी (नाव से) उतरकर गंगाजी की रेत (बालू) में खड़े हो

गए। तब केवट ने उतरकर दण्डवत की। (उसको दण्डवत करते देखकर) प्रभु को संकोच हुआ कि इसको कुछ दिया नहीं॥1॥

* पिय हिय की सिय जाननिहारी। मनि मुदरी मन मुदित उतारी॥
कहेउ कृपाल लेहि उतराई। केवट चरन गहे अकुलाई॥2॥

भावार्थ:-पति के हृदय की जानने वाली सीताजी ने आनंद भरे मन से अपनी रत्न जड़ित अँगूठी (अँगुली से) उतारी। कृपालु श्री रामचन्द्रजी ने केवट से कहा, नाव की उतराई लो। केवट ने व्याकुल होकर चरण पकड़ लिए॥2॥

* नाथ आजु मैं काह न पावा। मिटे दोष दुख दारिद दावा॥
बहुत काल मैं कीन्हि मजूरी। आजु दीन्ह बिधि बनि भलि भूरी॥3॥

भावार्थ:-(उसने कहा-) हे नाथ! आज मैंने क्या नहीं पाया! मेरे दोष, दुःख और दरिद्रता की आग आज बुझ गई है। मैंने बहुत समय तक मजदूरी की। विधाता ने आज बहुत अच्छी भरपूर मजदूरी दे दी॥3॥

* अब कछु नाथ न चाहिअ मोरें। दीन दयाल अनुग्रह तोरें॥
फिरती बार मोहि जो देबा। सो प्रसादु मैं सिर धरि लेबा॥4॥

भावार्थ:-हे नाथ! हे दीनदयाल! आपकी कृपा से अब मुझे कुछ नहीं चाहिए। लौटती बार आप मुझे जो कुछ देंगे, वह प्रसाद मैं सिर चढ़ाकर लूँगा॥4॥

दोहा :

* बहुत कीन्ह प्रभु लखन सियँ नहिं कछु केवटु लेइ।
बिदा कीन्ह करुनायतन भगति बिमल बरु देइ॥102॥

भावार्थ:- प्रभु श्री रामजी, लक्ष्मणजी और सीताजी ने बहुत आग्रह (या यत्न) किया, पर केवट कुछ नहीं लेता। तब करुणा के धाम भगवान श्री रामचन्द्रजी ने निर्मल भक्ति का वरदान देकर उसे विदा किया॥102॥

चौपाई :

* तब मज्जनु करि रघुकुलनाथा। पूजि पारथिव नायउ माथा॥
सियँ सुरसरिहि कहेउ कर जोरी। मातु मनोरथ पुरउबि मोरी॥1॥

भावार्थ:-फिर रघुकुल के स्वामी श्री रामचन्द्रजी ने स्नान करके पार्थिव पूजा की और शिवजी को सिर नवाया। सीताजी ने हाथ जोड़कर गंगाजी से कहा- हे माता! मेरा मनोरथ पूरा कीजिएगा॥1॥

* पति देवर सँग कुसल बहोरी। आइ करौं जेहिं पूजा तोरी॥
सुनि सिय बिनय प्रेम रस सानी। भइ तब बिमल बारि बर बानी॥2॥

भावार्थ:-जिससे मैं पति और देवर के साथ कुशलतापूर्वक लौट आकर तुम्हारी पूजा करूँ। सीताजी की प्रेम रस में सनी हुई विनती सुनकर तब गंगाजी के निर्मल जल में से श्रेष्ठ वाणी हुई-॥2॥

* सुनु रघुबीर प्रिया बैदेही। तब प्रभाउ जग बिदित न केही॥
लोकप होहिं बिलोकत तोरें। तोहि सेवहिं सब सिधि कर जोरें॥3॥

भावार्थ:-हे रघुवीर की प्रियतमा जानकी! सुनो, तुम्हारा प्रभाव जगत में किसे नहीं मालूम है? तुम्हारे (कृपा दृष्टि से) देखते ही

लोग लोकपाल हो जाते हैं। सब सिद्धियाँ हाथ जोड़े तुम्हारी सेवा करती हैं॥3॥

* तुम्ह जो हमहि बड़ि बिनय सुनाई। कृपा कीन्हि मोहि दीन्हि बड़ाई॥
तदपि देबि मैं देबि असीसा। सफल होन हित निज बागीसा॥4॥

भावार्थ:-तुमने जो मुझको बड़ी विनती सुनाई, यह तो मुझ पर कृपा की और मुझे बड़ाई दी है। तो भी हे देवी! मैं अपनी वाणी सफल होने के लिए तुम्हें आशीर्वाद दूँगी॥4॥

दोहा :

* प्राननाथ देवर सहित कुसल कोसला आइ।
पूजिहि सब मनकामना सुजसु रहिहि जग छाइ॥103॥

भावार्थ:-तुम अपने प्राणनाथ और देवर सहित कुशलपूर्वक अयोध्या लौटोगी। तुम्हारी सारी मनःकामनाएँ पूरी होंगी और तुम्हारा सुंदर यश जगतभर में छा जाएगा॥103॥

चौपाई :

* गंग बचन सुनि मंगल मूला। मुदित सीय सुरसरि अनुकूला॥
तब प्रभु गुहहि कहेउ घर जाहू। सुनत सूख मुखु भा उर दाहू॥1॥

भावार्थ:-मंगल के मूल गंगाजी के वचन सुनकर और देवनदी को अनुकूल देखकर सीताजी आनंदित हुईं। तब प्रभु श्री रामचन्द्रजी ने निषादराज गुह से कहा कि भैया! अब तुम घर जाओ! यह सुनते ही उसका मुँह सूख गया और हृदय में दाह उत्पन्न हो गया॥1॥

* दीन बचन गुह कह कर जोरी। बिनय सुनहु रघुकुलमनि मोरी॥
नाथ साथ रहि पंथु देखाई। करि दिन चारि चरन सेवकाई॥2॥

भावार्थ:-गुह हाथ जोड़कर दीन वचन बोला- हे रघुकुल शिरोमणि! मेरी विनती सुनिए। मैं नाथ (आप) के साथ रहकर, रास्ता दिखाकर, चार (कुछ) दिन चरणों की सेवा करके-॥2॥

* जेहिं बन जाइ रहब रघुराई। परनकुटी मैं करबि सुहाई॥
तब मोहि कहँ जसि देब रजाई। सोइ करिहउँ रघुबीर दोहाई॥3॥

भावार्थ:-हे रघुराज! जिस वन में आप जाकर रहेंगे, वहाँ मैं सुंदर पर्णकुटी (पत्तों की कुटिया) बना दूँगा। तब मुझे आप जैसी आज्ञा देंगे, मुझे रघुवीर (आप) की दुहाई है, मैं वैसा ही करूँगा॥3॥

* सहज सनेह राम लखि तासू। संग लीन्ह गुह हृदयँ हुलासू॥
पुनि गुहँ ग्याति बोलि सब लीन्हे। करि परितोषु बिदा तब कीन्हे॥4॥

भावार्थ:-उसके स्वाभाविक प्रेम को देखकर श्री रामचन्द्रजी ने उसको साथ ले लिया, इससे गुह के हृदय में बड़ा आनंद हुआ। फिर गुह (निषादराज) ने अपनी जाति के लोगों को बुला लिया और उनका संतोष कराके तब उनको विदा किया॥4॥

गीताप्रेस गोरखपुर

प्रयाग पहुँचना, भरद्वाज संवाद, यमुनातीर निवासियों का प्रेम

दोहा :

* तब गनपति सिव सुमिरि प्रभु नाइ सुरसरिहि माथ।

सखा अनुज सिय सहित बन गवनु कीन्ह रघुनाथ॥104॥

भावार्थ:-तब प्रभु श्री रघुनाथजी गणेशजी और शिवजी का स्मरण करके तथा गंगाजी को मस्तक नवाकर सखा निषादराज, छोटे भाई लक्ष्मणजी और सीताजी सहित वन को चले॥104॥

चौपाई :

* तेहि दिन भयउ बिटप तर बासू। लखन सखाँ सब कीन्ह सुपासू॥
प्रात प्रातकृत करि रघुराई। तीरथराजु दीख प्रभु जाई॥1॥

भावार्थ:-उस दिन पेड़ के नीचे निवास हुआ। लक्ष्मणजी और सखा गुह ने (विश्राम की) सब सुव्यवस्था कर दी। प्रभु श्री रामचन्द्रजी ने सबेरे प्रातःकाल की सब क्रियाएँ करके जाकर तीर्थों के राजा प्रयाग के दर्शन किए॥1॥

* सचिव सत्य श्रद्धा प्रिय नारी। माधव सरिस मीतु हितकारी॥
चारि पदारथ भरा भँडारू। पुन्य प्रदेस देस अति चारू॥2॥

भावार्थ:-उस राजा का सत्य मंत्री है, श्रद्धा प्यारी स्त्री है और श्री वेणीमाधवजी सरीखे हितकारी मित्र हैं। चार पदार्थों (धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष) से भंडार भरा है और वह पुण्यमय प्रांत ही उस राजा का सुंदर देश है॥2॥

* छेत्रु अगम गढ़ु गाढ़ सुहावा। सपनेहुँ नहिं प्रतिपच्छिन्ह पावा॥
सेन सकल तीरथ बर बीरा। कलुष अनीक दलन रनधीरा॥3॥

भावार्थ:-प्रयाग क्षेत्र ही दुर्गम, मजबूत और सुंदर गढ़ (किला) है, जिसको स्वप्न में भी (पाप रूपी) शत्रु नहीं पा सके हैं। संपूर्ण

तीर्थ ही उसके श्रेष्ठ वीर सैनिक हैं, जो पाप की सेना को कुचल डालने वाले और बड़े रणधीर हैं॥3॥

* संगमु सिंहासनु सुठि सोहा। छत्रु अखयबटु मुनि मनु मोहा॥
चवँर जमुन अरु गंग तरंगा। देखि होहिं दुख दारिद भंगा॥4॥

भावार्थ:-((गंगा, यमुना और सरस्वती का) संगम ही उसका अत्यन्त सुशोभित सिंहासन है। अक्षयवट छत्र है, जो मुनियों के भी मन को मोहित कर लेता है। यमुनाजी और गंगाजी की तरंगें उसके (श्याम और श्वेत) चँवर हैं, जिनको देखकर ही दुःख और दरिद्रता नष्ट हो जाती है॥4॥

दोहा :

* सेवहिं सुकृती साधु सुचि पावहिं सब मनकाम।
बंदी बेद पुरान गन कहहिं बिमल गुन ग्राम॥105॥

भावार्थ:-पुण्यात्मा, पवित्र साधु उसकी सेवा करते हैं और सब मनोरथ पाते हैं। वेद और पुराणों के समूह भाट हैं, जो उसके निर्मल गुणगणों का बखान करते हैं॥105॥

चौपाई :

* को कहि सकइ प्रयाग प्रभाऊ। कलुष पुंज कुंजर मृगराऊ॥
अस तीरथपति देखि सुहावा। सुख सागर रघुबर सुखु पावा॥1॥

भावार्थ:-पापों के समूह रूपी हाथी के मारने के लिए सिंह रूप प्रयागराज का प्रभाव (महत्व-माहात्म्य) कौन कह सकता है। ऐसे सुहावने तीर्थराज का दर्शन कर सुख के समुद्र रघुकुल श्रेष्ठ श्री रामजी ने भी सुख पाया॥1॥

* कहि सिय लखनहि सखहि सुनाई। श्री मुख तीरथराज बड़ाई॥

करि प्रनामु देखत बन बागा। कहत महातम अति अनुरागा॥2॥

भावार्थ:-उन्होंने अपने श्रीमुख से सीताजी, लक्ष्मणजी और सखा गुह को तीर्थराज की महिमा कहकर सुनाई। तदनन्तर प्रणाम करके, वन और बगीचों को देखते हुए और बड़े प्रेम से माहात्म्य कहते हुए-॥2॥

* एहि बिधि आइ बिलोकी बेनी। सुमिरत सकल सुमंगल देनी॥
मुदित नहाइ कीन्हि सिव सेवा। पूजि जथाबिधि तीरथ देवा॥3॥

भावार्थ:-इस प्रकार श्री राम ने आकर त्रिवेणी का दर्शन किया, जो स्मरण करने से ही सब सुंदर मंगलों को देने वाली है। फिर आनंदपूर्वक (त्रिवेणी में) स्नान करके शिवजी की सेवा (पूजा) की और विधिपूर्वक तीर्थ देवताओं का पूजन किया॥3॥

* तब प्रभु भरद्वाज पहिं आए। करत दंडवत मुनि उर लाए॥
मुनि मन मोद न कछु कहि जाई। ब्रह्मानंद रासि जनु पाई॥4॥

भावार्थ:-(स्नान, पूजन आदि सब करके) तब प्रभु श्री रामजी भरद्वाजजी के पास आए। उन्हें दण्डवत करते हुए ही मुनि ने हृदय से लगा लिया। मुनि के मन का आनंद कुछ कहा नहीं जाता। मानो उन्हें ब्रह्मानन्द की राशि मिल गई हो॥4॥

दोहा :

* दीन्हि असीस मुनीस उर अति अनंदु अस जानि।
लोचन गोचर सुकृत फल मनहुँ किए बिधि आनि॥106॥

भावार्थ:-मुनीश्वर भरद्वाजजी ने आशीर्वाद दिया। उनके हृदय में ऐसा जानकर अत्यन्त आनंद हुआ कि आज विधाता ने (श्री सीताजी और लक्ष्मणजी सहित प्रभु श्री रामचन्द्रजी के दर्शन

कराकर) मानो हमारे सम्पूर्ण पुण्यों के फल को लाकर आँखों के सामने कर दिया॥106॥

चौपाई :

* कुसल प्रस्न करि आसन दीन्हे। पूजि प्रेम परिपूरन कीन्हे॥
कंद मूल फल अंकुर नीके। दिए आनि मुनि मनहुँ अमी के॥1॥

भावार्थ:-कुशल पूछकर मुनिराज ने उनको आसन दिए और प्रेम सहित पूजन करके उन्हें संतुष्ट कर दिया। फिर मानो अमृत के ही बने हों, ऐसे अच्छे-अच्छे कन्द, मूल, फल और अंकुर लाकर दिए॥1॥

* सीय लखन जन सहित सुहाए। अति रुचि राम मूल फल खाए॥
भए बिगतश्रम रामु सुखारे। भरद्वाज मृदु बचन उचारे॥2॥

भावार्थ:-सीताजी, लक्ष्मणजी और सेवक गुह सहित श्री रामचन्द्रजी ने उन सुंदर मूल-फलों को बड़ी रुचि के साथ खाया। थकावट दूर होने से श्री रामचन्द्रजी सुखी हो गए। तब भरद्वाजजी ने उनसे कोमल वचन कहे-॥2॥

* आजु सफल तपु तीरथ त्यागू। आजु सुफल जप जोग बिरागू॥
सफल सकल सुभ साधन साजू। राम तुम्हहि अवलोकत आजू॥3॥

भावार्थ:-हे राम! आपका दर्शन करते ही आज मेरा तप, तीर्थ सेवन और त्याग सफल हो गया। आज मेरा जप, योग और वैराग्य सफल हो गया और आज मेरे सम्पूर्ण शुभ साधनों का समुदाय भी सफल हो गया॥3॥

* लाभ अवधि सुख अवधि न दूजी। तुम्हरें दरस आस सब पूजी॥
अब करि कृपा देहु बर एहू। निज पद सरसिज सहज सनेहू॥4॥

भावार्थ:-लाभ की सीमा और सुख की सीमा (प्रभु के दर्शन को छोड़कर) दूसरी कुछ भी नहीं है। आपके दर्शन से मेरी सब आशाएँ पूर्ण हो गईं। अब कृपा करके यह वरदान दीजिए कि आपके चरण कमलों में मेरा स्वाभाविक प्रेम हो॥4॥

दोहा :

* करम बचन मन छाड़ि छलु जब लगि जनु न तुम्हार।
तब लगि सुखु सपनेहुँ नहीं किएँ कोटि उपचार॥107॥

भावार्थ:- जब तक कर्म, वचन और मन से छल छोड़कर मनुष्य आपका दास नहीं हो जाता, तब तक करोड़ों उपाय करने से भी, स्वप्न में भी वह सुख नहीं पाता॥107॥

चौपाई :

* सुनि मुनि बचन रामु सकुचाने। भाव भगति आनंद अघाने॥
तब रघुबर मुनि सुजसु सुहावा। कोटि भाँति कहि सबहि सुनावा॥1॥

भावार्थ:-मुनि के वचन सुनकर, उनकी भाव-भक्ति के कारण आनंद से तृप्त हुए भगवान श्री रामचन्द्रजी (लीला की दृष्टि से) सकुचा गए। तब (अपने ऐश्वर्य को छिपाते हुए) श्री रामचन्द्रजी ने भरद्वाज मुनि का सुंदर सुयश करोड़ों (अनेकों) प्रकार से कहकर सबको सुनाया॥1॥

* सो बड़ सो सब गुन गन गेहू। जेहि मुनीस तुम्ह आदर देहू॥
मुनि रघुबीर परसपर नवहीं। बचन अगोचर सुखु अनुभवहीं॥2॥

भावार्थ:-(उन्होंने कहा-) हे मुनीश्वर! जिसको आप आदर दें, वही बड़ा है और वही सब गुण समूहों का घर है। इस प्रकार श्री

रामजी और मुनि भरद्वाजजी दोनों परस्पर विनम्र हो रहे हैं और अनिर्वचनीय सुख का अनुभव कर रहे हैं॥2॥

* यह सुधि पाइ प्रयाग निवासी। बटु तापस मुनि सिद्ध उदासी॥
भरद्वाज आश्रम सब आए। देखन दसरथ सुअन सुहाए॥3॥

भावार्थ:-यह (श्री राम, लक्ष्मण और सीताजी के आने की) खबर पाकर प्रयाग निवासी ब्रह्मचारी, तपस्वी, मुनि, सिद्ध और उदासी सब श्री दशरथजी के सुंदर पुत्रों को देखने के लिए भरद्वाजजी के आश्रम पर आए॥3॥

* राम प्रनाम कीन्ह सब काहू। मुदित भए लहि लोयन लाहू॥
देहिं असीस परम सुखु पाई। फिरे सराहत सुंदरताई॥4॥

भावार्थ:-श्री रामचन्द्रजी ने सब किसी को प्रणाम किया। नेत्रों का लाभ पाकर सब आनंदित हो गए और परम सुख पाकर आशीर्वाद देने लगे। श्री रामजी के सौंदर्य की सराहना करते हुए वे लौटे॥4॥

दोहा :

* राम कीन्ह बिश्राम निसि प्रात प्रयाग नहाइ।
चले सहितसिय लखन जन मुदित मुनिहि सिरु नाइ॥108॥

भावार्थ:-श्री रामजी ने रात को वहीं विश्राम किया और प्रातःकाल प्रयागराज का स्नान करके और प्रसन्नता के साथ मुनि को सिर नवाकर श्री सीताजी, लक्ष्मणजी और सेवक गुह के साथ वे चले॥108॥

चौपाई :

* राम सप्रेम कहेउ मुनि पाहीं। नाथ कहिअ हम केहि मग जाहीं॥

मुनि मन बिहसि राम सन कहहीं। सुगम सकल मग तुम्ह कहुँ अहहीं॥1॥

भावार्थ:-(चलते समय) बड़े प्रेम से श्री रामजी ने मुनि से कहा- हे नाथ! बताइए हम किस मार्ग से जाएँ। मुनि मन में हँसकर श्री रामजी से कहते हैं कि आपके लिए सभी मार्ग सुगम हैं॥1॥

* साथ लागि मुनि सिष्य बोलाए। सुनि मन मुदित पचासक आए॥
सबन्हि राम पर प्रेम अपारा। सकल कहहिं मगु दीख हमारा॥2॥

भावार्थ:-फिर उनके साथ के लिए मुनि ने शिष्यों को बुलाया। (साथ जाने की बात) सुनते ही चित्त में हर्षित हो कोई पचास शिष्य आ गए। सभी का श्री रामजी पर अपार प्रेम है। सभी कहते हैं कि मार्ग हमारा देखा हुआ है॥2॥

* मुनि बटु चारि संग तब दीन्हे। जिन्ह बहु जनम सुकृत सब कीन्हे॥
करि प्रनामु रिषि आयसु पाई। प्रमुदित हृदयँ चले रघुराई॥3॥

भावार्थ:-तब मुनि ने (चुनकर) चार ब्रह्मचारियों को साथ कर दिया, जिन्होंने बहुत जन्मों तक सब सुकृत (पुण्य) किए थे। श्री रघुनाथजी प्रणाम कर और ऋषि की आज्ञा पाकर हृदय में बड़े ही आनंदित होकर चले॥3॥

* ग्राम निकट जब निकसहिं जाई। देखहिं दरसु नारि नर धाई॥
होहिं सनाथ जनम फलु पाई। फिरहिं दुखित मनु संग पठाई॥4॥

भावार्थ:-जब वे किसी गाँव के पास होकर निकलते हैं, तब स्त्री-पुरुष दौड़कर उनके रूप को देखने लगते हैं। जन्म का फल पाकर वे (सदा के अनाथ) सनाथ हो जाते हैं और मन को नाथ

के साथ भेजकर (शरीर से साथ न रहने के कारण) दुःखी होकर लौट आते हैं॥4॥

दोहा :

* बिदा किए बटु बिनय करि फिरे पाइ मन काम।
उतरि नहाए जमुन जल जो सरीर सम स्याम॥109॥

भावार्थ:-तदनन्तर श्री रामजी ने विनती करके चारों ब्रह्मचारियों को विदा किया, वे मनचाही वस्तु (अनन्य भक्ति) पाकर लौटे। यमुनाजी के पार उतरकर सबने यमुनाजी के जल में स्नान किया, जो श्री रामचन्द्रजी के शरीर के समान ही श्याम रंग का था॥109॥

चौपाई :

* सुनत तीरबासी नर नारी। धाए निज निज काज बिसारी॥
लखन राम सिय सुंदरताई। देखि करहिं निज भाग्य बड़ाई॥1॥

भावार्थ:-यमुनाजी के किनारे पर रहने वाले स्त्री-पुरुष (यह सुनकर कि निषाद के साथ दो परम सुंदर सुकुमार नवयुवक और एक परम सुंदरी स्त्री आ रही है) सब अपना-अपना काम भूलकर दौड़े और लक्ष्मणजी, श्री रामजी और सीताजी का सौंदर्य देखकर अपने भाग्य की बड़ाई करने लगे॥1॥

* अति लालसा बसहिं मन माहीं। नाउँ गाउँ बूझत सकुचाहीं॥
जे तिन्ह महुँ बयबिरिध सयाने। तिन्ह करि जुगुति रामु पहिचाने॥2॥

भावार्थ:-उनके मन में (परिचय जानने की) बहुत सी लालसाएँ भरी हैं। पर वे नाम-गाँव पूछते सकुचाते हैं। उन लोगों में जो

वयोवृद्ध और चतुर थे, उन्होंने युक्ति से श्री रामचन्द्रजी को पहचान लिया॥2॥

* सकल कथा तिन्ह सबहि सुनाई। बनहि चले पितु आयसु पाई॥
सुनि सबिषाद सकल पछिताहीं। रानी रायँ कीन्ह भल नाहीं॥3॥

भावार्थ:-उन्होंने सब कथा सब लोगों को सुनाई कि पिता की आज्ञा पाकर ये वन को चले हैं। यह सुनकर सब लोग दुःखित हो पछता रहे हैं कि रानी और राजा ने अच्छा नहीं किया॥3॥

गीताप्रेस गोरखपुर

तापस प्रकरण

* तेहि अवसर एक तापसु आवा। तेजपुंज लघुबयस सुहावा॥
कबि अलखित गति बेषु बिरागी। मन क्रम बचन राम अनुरागी॥4॥

भावार्थ:-उसी अवसर पर वहाँ एक तपस्वी आया, जो तेज का पुंज, छोटी अवस्था का और सुंदर था। उसकी गति कवि नहीं जानते (अथवा वह कवि था जो अपना परिचय नहीं देना चाहता)। वह वैरागी के वेष में था और मन, वचन तथा कर्म से श्री रामचन्द्रजी का प्रेमी था॥4॥

दोहा :

* सजल नयन तन पुलकि निज इष्टदेउ पहिचानि।

परेउ दंड जिमि धरनितल दसा न जाइ बखानि॥110॥

भावार्थ:-अपने इष्टदेव को पहचानकर उसके नेत्रों में जल भर आया और शरीर पुलकित हो गया। वह दण्ड की भाँति पृथ्वी पर गिर पड़ा, उसकी (प्रेम विह्वल) दशा का वर्णन नहीं किया जा सकता॥110॥

चौपाई :

* राम सप्रेम पुलकि उर लावा। परम रंक जनु पारसु पावा॥
मनहुँ प्रेमु परमारथु दोऊ। मिलत धरें तन कह सबु कोऊ॥1॥

भावार्थ:-श्री रामजी ने प्रेमपूर्वक पुलकित होकर उसको हृदय से लगा लिया। (उसे इतना आनंद हुआ) मानो कोई महादरिद्री मनुष्य पारस पा गया हो। सब कोई (देखने वाले) कहने लगे कि मानो प्रेम और परमार्थ (परम तत्व) दोनों शरीर धारण करके मिल रहे हैं॥1॥

* बहुरि लखन पायन्ह सोइ लागा। लीन्ह उठाइ उमगि अनुरागा॥
पुनि सिय चरन धूरि धरि सीसा। जननि जानि सिसु दीन्हि असीसा॥2॥

भावार्थ:-फिर वह लक्ष्मणजी के चरणों लगा। उन्होंने प्रेम से उमंगकर उसको उठा लिया। फिर उसने सीताजी की चरण धूलि को अपने सिर पर धारण किया। माता सीताजी ने भी उसको अपना बच्चा जानकर आशीर्वाद दिया॥2॥

* कीन्ह निषाद दंडवत तेही। मिलेउ मुदित लखि राम सनेही॥
पिअत नयन पुट रूपु पियुषा। मुदित सुअसनु पाइ जिमि भूखा॥3॥

भावार्थ:-फिर निषादराज ने उसको दण्डवत की। श्री रामचन्द्रजी का प्रेमी जानकर वह उस (निषाद) से आनंदित होकर मिला।

वह तपस्वी अपने नेत्र रूपी दोनों से श्री रामजी की सौंदर्य सुधा का पान करने लगा और ऐसा आनंदित हुआ जैसे कोई भूखा आदमी सुंदर भोजन पाकर आनंदित होता है॥3॥

* ते पितु मातु कहहु सखि कैसे। जिन्ह पठए बन बालक ऐसे॥
राम लखन सिय रूपु निहारी। होहिं सनेह बिकल नर नारी॥4॥

भावार्थ:-(इधर गाँव की स्त्रियाँ कह रही हैं) हे सखी! कहो तो, वे माता-पिता कैसे हैं, जिन्होंने ऐसे (सुंदर सुकुमार) बालकों को वन में भेज दिया है। श्री रामजी, लक्ष्मणजी और सीताजी के रूप को देखकर सब स्त्री-पुरुष स्नेह से व्याकुल हो जाते हैं॥4॥

गीताप्रेस गोरखपुर

गीताप्रेस गोरखपुर

यमुना को प्रणाम, वनवासियों का प्रेम

दोहा :

* तब रघुबीर अनेक बिधि सखहि सिखावनु दीन्ह।।
राम रजायसु सीस धरि भवन गवनु तेइँ कीन्ह॥111॥

भावार्थ:-तब श्री रामचन्द्रजी ने सखा गुह को अनेकों तरह से (घर लौट जाने के लिए) समझाया। श्री रामचन्द्रजी की आज्ञा को सिर चढ़ाकर उसने अपने घर को गमन किया॥111॥

चौपाई :

* पुनि सियँ राम लखन कर जोरी। जमुनहि कीन्ह प्रनामु
बहोरी॥
चले ससीय मुदित दोउ भाई। रबितनुजा कइ करत बड़ाई॥1॥

भावार्थ:-फिर सीताजी, श्री रामजी और लक्ष्मणजी ने हाथ जोड़कर यमुनाजी को पुनः प्रणाम किया और सूर्यकन्या यमुनाजी की बड़ाई करते हुए सीताजी सहित दोनों भाई प्रसन्नतापूर्वक आगे चले॥1॥

* पथिक अनेक मिलहिं मग जाता। कहहिं सप्रेम देखि दोउ
भ्राता॥
राज लखन सब अंग तुम्हारें। देखि सोचु अति हृदय हमारें॥2॥

भावार्थ:-रास्ते में जाते हुए उन्हें अनेकों यात्री मिलते हैं। वे दोनों भाइयों को देखकर उनसे प्रेमपूर्वक कहते हैं कि तुम्हारे सब अंगों में राज चिह्न देखकर हमारे हृदय में बड़ा सोच होता है॥2॥

* मारग चलहु पयादेहि पाएँ। ज्योतिषु झूठ हमारें भाएँ॥
अगमु पंथु गिरि कानन भारी। तेहि महँ साथ नारि सुकुमारी॥3॥

भावार्थ:-(ऐसे राजचिह्नों के होते हुए भी) तुम लोग रास्ते में पैदल ही चल रहे हो, इससे हमारी समझ में आता है कि ज्योतिष शास्त्र झूठा ही है। भारी जंगल और बड़े-बड़े पहाड़ों का दुर्गम रास्ता है। तिस पर तुम्हारे साथ सुकुमारी स्त्री है॥3॥

* करि केहरि बन जाइ न जोई। हम सँग चलहिं जो आयसु
होई॥
जाब जहाँ लगि तहँ पहुँचाई। फिरब बहोरि तुम्हहि सिरु
नाई॥4॥

भावार्थ:-हाथी और सिंहों से भरा यह भयानक वन देखा तक नहीं जाता। यदि आज्ञा हो तो हम साथ चलें। आप जहाँ तक

जाएँगे, वहाँ तक पहुँचाकर, फिर आपको प्रणाम करके हम लौट आवेंगे॥4॥

दोहा :

* एहि बिधि पूँछहिं प्रेम बस पुलक गात जलु नैन।
कृपासिंधु फेरहिं तिन्हहि कहि बिनीत मृदु बैन॥112॥

भावार्थ:-इस प्रकार वे यात्री प्रेमवश पुलकित शरीर हो और नेत्रों में (प्रेमाश्रुओं का) जल भरकर पूछते हैं, किन्तु कृपा के समुद्र श्री रामचन्द्रजी कोमल विनययुक्त वचन कहकर उन्हें लौटा देते हैं॥112॥

चौपाई :

* जे पुर गाँव बसहिं मग माहीं। तिन्हहि नाग सुर नगर सिहाहीं॥
केहि सुकृतीं केहि घरीं बसाए। धन्य पुन्यमय परम सुहाए॥1॥

भावार्थ:-जो गाँव और पुरवे रास्ते में बसे हैं, नागों और देवताओं के नगर उनको देखकर प्रशंसा पूर्वक ईर्षा करते और ललचाते हुए कहते हैं कि किस पुण्यवान् ने किस शुभ घड़ी में इनको बसाया था, जो आज ये इतने धन्य और पुण्यमय तथा परम सुंदर हो रहे हैं॥1॥

* जहँ जहँ राम चरन चलि जाहीं। तिन्ह समान अमरावति नाहीं॥
पुन्यपुंज मग निकट निवासी। तिन्हहि सराहहिं सुरपुरबासी॥2॥

भावार्थ:-जहाँ-जहाँ श्री रामचन्द्रजी के चरण चले जाते हैं, उनके समान इन्द्र की पुरी अमरावती भी नहीं है। रास्ते के समीप

बसने वाले भी बड़े पुण्यात्मा हैं- स्वर्ग में रहने वाले देवता भी उनकी सराहना करते हैं-॥2॥

* जे भरि नयन बिलोकहिं रामहि। सीता लखन सहित घनस्यामहि॥
जे सर सरित राम अवगाहहिं। तिन्हहि देव सर सरित सराहहिं॥3॥
भावार्थ:-जो नेत्र भरकर सीताजी और लक्ष्मणजी सहित घनश्याम श्री रामजी के दर्शन करते हैं, जिन तालाबों और नदियों में श्री रामजी स्नान कर लेते हैं, देवसरोवर और देवनदियाँ भी उनकी बड़ाई करती हैं॥3॥

* जेहि तरु तर प्रभु बैठहिं जाई। करहिं कलपतरु तासु बड़ाई॥
परसि राम पद पदुम परागा। मानति भूमि भूरि निज भागा॥4॥

भावार्थ:-जिस वृक्ष के नीचे प्रभु जा बैठते हैं, कल्पवृक्ष भी उसकी बड़ाई करते हैं। श्री रामचन्द्रजी के चरणकमलों की रज का स्पर्श करके पृथ्वी अपना बड़ा सौभाग्य मानती है॥4॥
दोहा :

* छाँह करहिं घन बिबुधगन बरषहिं सुमन सिहाहिं।
देखत गिरि बन बिहग मृग रामु चले मग जाहिं॥113॥
भावार्थ:-रास्ते में बादल छाया करते हैं और देवता फूल बरसाते और सिहाते हैं। पर्वत, वन और पशु-पक्षियों को देखते हुए श्री रामजी रास्ते में चले जा रहे हैं॥113॥
चौपाई :

* सीता लखन सहित रघुराई। गाँव निकट जब निकसहिं जाई॥

सुनि सब बाल बृद्ध नर नारी। चलहिं तुरत गृह काजु
बिसारी॥1॥

भावार्थ:-सीताजी और लक्ष्मणजी सहित श्री रघुनाथजी जब किसी गाँव के पास जा निकलते हैं, तब उनका आना सुनते ही बालक-बूढ़े, स्त्री-पुरुष सब अपने घर और काम-काज को भूलकर तुरंत उन्हें देखने के लिए चल देते हैं॥1॥

* राम लखन सिय रूप निहारी। पाइ नयन फलु होहिं सुखारी॥
सजल बिलोचन पुलक सरीरा। सब भए मगन देखि दोउ
बीरा॥2॥

भावार्थ:-श्री राम, लक्ष्मण और सीताजी का रूप देखकर, नेत्रों का (परम) फल पाकर वे सुखी होते हैं। दोनों भाइयों को देखकर सब प्रेमानन्द में मग्न हो गए। उनके नेत्रों में जल भर आया और शरीर पुलकित हो गए॥2॥

* बरनि न जाइ दसा तिन्ह केरी। लहि जनु रंकन्ह सुरमनि ढेरी॥
एकन्ह एक बोलि सिख देहीं। लोचन लाहु लेहु छन एहीं॥3॥

भावार्थ:-उनकी दशा वर्णन नहीं की जाती। मानो दरिद्रों ने चिन्तामणि की ढेरी पा ली हो। वे एक-एक को पुकारकर सीख देते हैं कि इसी क्षण नेत्रों का लाभ ले लो॥3॥

* रामहि देखि एक अनुरागे। चितवत चले जाहिं सँग लागे॥
एक नयन मग छबि उर आनी। होहिं सिथिल तन मन बर
बानी॥4॥

भावार्थ:-कोई श्री रामचन्द्रजी को देखकर ऐसे अनुराग में भर गए हैं कि वे उन्हें देखते हुए उनके साथ लगे चले जा रहे हैं। कोई नेत्र मार्ग से उनकी छबि को हृदय में लाकर शरीर, मन और

श्रेष्ठ वाणी से शिथिल हो जाते हैं (अर्थात्‌ उनके शरीर, मन और वाणी का व्यवहार बंद हो जाता है)॥4॥

दोहा :

* एक देखि बट छाँह भलि डासि मृदुल तृन पात।
कहहिं गवाँइअ छिनुकु श्रमु गवनब अबहिंकि प्रात॥114॥

भावार्थ:-कोई बड़ की सुंदर छाया देखकर, वहाँ नरम घास और पत्ते बिछाकर कहते हैं कि क्षण भर यहाँ बैठकर थकावट मिटा लीजिए। फिर चाहे अभी चले जाइएगा, चाहे सबेरे॥114॥

चौपाई :

* एक कलस भरि आनहिं पानी। अँचइअ नाथ कहहिं मृदु बानी॥
सुनि प्रिय बचन प्रीति अति देखी। राम कृपाल सुसील बिसेषी॥1॥

भावार्थ:-कोई घड़ा भरकर पानी ले आते हैं और कोमल वाणी से कहते हैं- नाथ! आचमन तो कर लीजिए। उनके प्यारे वचन सुनकर और उनका अत्यन्त प्रेम देखकर दयालु और परम सुशील श्री रामचन्द्रजी ने-॥1॥

* जानी श्रमित सीय मन माहीं। घरिक बिलंबु कीन्ह बट छाहीं॥
मुदित नारि नर देखहिं सोभा। रूप अनूप नयन मनु लोभा॥2॥

भावार्थ:-मन में सीताजी को थकी हुई जानकर घड़ी भर बड़ की छाया में विश्राम किया। स्त्री-पुरुष आनंदित होकर शोभा देखते हैं। अनुपम रूप ने उनके नेत्र और मनों को लुभा लिया है॥2॥

* एकटक सब सोहहिं चहुँ ओरा। रामचन्द्र मुख चंद चकोरा॥
तरुन तमाल बरन तनु सोहा। देखत कोटि मदन मनु मोहा॥3॥

भावार्थ:-सब लोग टकटकी लगाए श्री रामचन्द्रजी के मुख चन्द्र को चकोर की तरह (तन्मय होकर) देखते हुए चारों ओर सुशोभित हो रहे हैं। श्री रामजी का नवीन तमाल वृक्ष के रंग का (श्याम) शरीर अत्यन्त शोभा दे रहा है, जिसे देखते ही करोड़ों कामदेवों के मन मोहित हो जाते हैं॥3॥

* दामिनि बरन लखन सुठि नीके। नख सिख सुभग भावते जी के॥
मुनि पट कटिन्ह कसें तूनीरा। सोहहिं कर कमलनि धनु तीरा॥4॥

भावार्थ:-बिजली के से रंग के लक्ष्मणजी बहुत ही भले मालूम होते हैं। वे नख से शिखा तक सुंदर हैं और मन को बहुत भाते हैं। दोनों मुनियों के (वल्कल आदि) वस्त्र पहने हैं और कमर में तरकस कसे हुए हैं। कमल के समान हाथों में धनुष-बाण शोभित हो रहे हैं॥4॥

दोहा :

* जटा मुकुट सीसनि सुभग उर भुज नयन बिसाल।
सरद परब बिधु बदन बर लसत स्वेद कन जाल॥115॥

भावार्थ:-उनके सिरों पर सुंदर जटाओं के मुकुट हैं, वक्षः स्थल, भुजा और नेत्र विशाल हैं और शरद पूर्णिमा के चन्द्रमा के समान सुंदर मुखों पर पसीने की बूँदों का समूह शोभित हो रहा है॥115॥

चौपाई :

* बरनि न जाइ मनोहर जोरी। सोभा बहुत थोरि मति मोरी॥
राम लखन सिय सुंदरताई। सब चितवहिं चित मन मति लाई॥1॥

भावार्थ:-उस मनोहर जोड़ी का वर्णन नहीं किया जा सकता, क्योंकि शोभा बहुत अधिक है और मेरी बुद्धि थोड़ी है। श्री राम, लक्ष्मण और सीताजी की सुंदरता को सब लोग मन, चित्त और बुद्धि तीनों को लगाकर देख रहे हैं॥1॥

* थके नारि नर प्रेम पिआसे। मनहुँ मृगी मृग देखि दिआ से॥
सीय समीप ग्रामतिय जाहीं। पूँछत अति सनेहँ सकुचाहीं॥2॥

भावार्थ:-प्रेम के प्यासे (वे गाँवों के) स्त्री-पुरुष (इनके सौंदर्य-माधुर्य की छटा देखकर) ऐसे थकित रह गए जैसे दीपक को देखकर हिरनी और हिरन (निस्तब्ध रह जाते हैं)! गाँवों की स्त्रियाँ सीताजी के पास जाती हैं, परन्तु अत्यन्त स्नेह के कारण पूछते सकुचाती हैं॥2॥

* बार बार सब लागहिं पाएँ। कहहिं बचन मृदु सरल सुभाएँ॥
राजकुमारि बिनय हम करहीं। तिय सुभायँ कछु पूँछत डरहीं॥3॥

भावार्थ:-बार-बार सब उनके पाँव लगतीं और सहज ही सीधे-सादे कोमल वचन कहती हैं- हे राजकुमारी! हम विनती करती (कुछ निवेदन करना चाहती) हैं, परन्तु स्त्री स्वभाव के कारण कुछ पूछते हुए डरती हैं॥3॥

* स्वामिनि अबिनय छमबि हमारी। बिलगु न मानब जानि गवाँरी॥
राजकुअँर दोउ सहज सलोने। इन्ह तें लही दुति मरकत सोने॥4॥

भावार्थ:-हे स्वामिनी! हमारी ढिठाई क्षमा कीजिएगा और हमको गँवारी जानकर बुरा न मानिएगा। ये दोनों राजकुमार स्वभाव से ही लावण्यमय (परम सुंदर) हैं। मरकतमणि (पन्ने) और सुवर्ण ने कांति इन्हीं से पाई है (अर्थात मरकतमणि में और स्वर्ण में जो

हरित और स्वर्ण वर्ण की आभा है, वह इनकी हरिताभ नील और स्वर्ण कान्ति के एक कण के बराबर भी नहीं है।)॥4॥

दोहा :

* स्यामल गौर किसोर बर सुंदर सुषमा ऐन।
सरद सर्बरीनाथ मुखु सरद सरोरुह नैन॥116॥

भावार्थ:-श्याम और गौर वर्ण है, सुंदर किशोर अवस्था है, दोनों ही परम सुंदर और शोभा के धाम हैं। शरद पूर्णिमा के चन्द्रमा के समान इनके मुख और शरद ऋतु के कमल के समान इनके नेत्र हैं॥116॥

मासपारायण, सोलहवाँ विश्राम

नवाह्नपारायण, चौथा विश्राम

चौपाई :

* कोटि मनोज लजावनिहारे। सुमुखि कहहु को आहिं तुम्हारे॥
सुनि सनेहमय मंजुल बानी। सकुची सिय मन महुँ मुसुकानी॥1॥

भावार्थ:-हे सुमुखि! कहो तो अपनी सुंदरता से करोड़ों कामदेवों को लजाने वाले ये तुम्हारे कौन हैं? उनकी ऐसी प्रेममयी सुंदर वाणी सुनकर सीताजी सकुचा गईं और मन ही मन मुस्कुराईं॥1॥

* तिन्हहि बिलोकि बिलोकति धरनी। दुहुँ सकोच सकुचति बरबरनी॥
सकुचि सप्रेम बाल मृग नयनी। बोली मधुर बचन पिकबयनी॥2॥

भावार्थ:-उत्तम (गौर) वर्णवाली सीताजी उनको देखकर (संकोचवश) पृथ्वी की ओर देखती हैं। वे दोनों ओर के संकोच से सकुचा रही हैं (अर्थात न बताने में ग्राम की स्त्रियों को दुःख

होने का संकोच है और बताने में लज्जा रूप संकोच)। हिरन के बच्चे के सदृश नेत्र वाली और कोकिल की सी वाणी वाली सीताजी सकुचाकर प्रेम सहित मधुर वचन बोलीं-॥2॥

* सहज सुभाय सुभग तन गोरे। नामु लखनु लघु देवर मोरे॥
बहुरि बदनु बिधु अंचल ढाँकी। पिय तन चितइ भौंह करि बाँकी॥3॥

भावार्थ:-ये जो सहज स्वभाव, सुंदर और गोरे शरीर के हैं, उनका नाम लक्ष्मण है, ये मेरे छोटे देवर हैं। फिर सीताजी ने (लज्जावश) अपने चन्द्रमुख को आँचल से ढँककर और प्रियतम (श्री रामजी) की ओर निहारकर भौंहें टेढ़ी करके,॥3॥

* खंजन मंजु तिरीछे नयननि। निज पति कहेउ तिन्हहि सियँ सयननि॥
भईं मुदित सब ग्रामबधूटीं। रंकन्ह राय रासि जनु लूटीं॥4॥

भावार्थ:-खंजन पक्षी के से सुंदर नेत्रों को तिरछा करके सीताजी ने इशारे से उन्हें कहा कि ये (श्री रामचन्द्रजी) मेरे पति हैं। यह जानकर गाँव की सब युवती स्त्रियाँ इस प्रकार आनंदित हुईं, मानो कंगालों ने धन की राशियाँ लूट ली हों॥4॥

दोहा :

* अति सप्रेम सिय पाँय परि बहुबिधि देहिं असीस।
सदा सोहागिनि होहु तुम्ह जब लगि महि अहि सीस॥117

भावार्थ:-वे अत्यन्त प्रेम से सीताजी के पैरों पड़कर बहुत प्रकार से आशीष देती हैं (शुभ कामना करती हैं), कि जब तक शेषजी के सिर पर पृथ्वी रहे, तब तक तुम सदा सुहागिनी बनी रहो,॥117॥

चौपाई :

* पारबती सम पतिप्रिय होहू। देबि न हम पर छाड़ब छोहू॥
पुनि पुनि बिनय करिअ कर जोरी। जौं एहि मारग फिरिअ बहोरी॥1॥

भावार्थ:-और पार्वतीजी के समान अपने पति की प्यारी होओ। हे देवी! हम पर कृपा न छोड़ना (बनाए रखना)। हम बार-बार हाथ जोड़कर विनती करती हैं, जिसमें आप फिर इसी रास्ते लौटें,॥1॥

* दरसनु देब जानि निज दासी। लखीं सीयँ सब प्रेम पिआसी॥
मधुर बचन कहि कहि परितोषीं। जनु कुमुदिनीं कौमुदीं पोषीं॥2॥

भावार्थ:-और हमें अपनी दासी जानकर दर्शन दें। सीताजी ने उन सबको प्रेम की प्यासी देखा और मधुर वचन कह-कहकर उनका भलीभाँति संतोष किया। मानो चाँदनी ने कुमुदिनियों को खिलाकर पुष्ट कर दिया हो॥2॥

* तबहिं लखन रघुबर रुख जानी। पूँछेउ मगु लोगन्हि मृदु बानी॥
सुनत नारि नर भए दुखारी। पुलकित गात बिलोचन बारी॥3॥

भावार्थ:-उसी समय श्री रामचन्द्रजी का रुख जानकर लक्ष्मणजी ने कोमल वाणी से लोगों से रास्ता पूछा। यह सुनते ही स्त्री-पुरुष दुःखी हो गए। उनके शरीर पुलकित हो गए और नेत्रों में (वियोग की सम्भावना से प्रेम का) जल भर आया॥3॥

* मिटा मोदु मन भए मलीने। बिधि निधि दीन्ह लेत जनु छीने॥
समुझि करम गति धीरजु कीन्हा। सोधि सुगम मगु तिन्ह कहि दीन्हा॥4॥

भावार्थ:-उनका आनंद मिट गया और मन ऐसे उदास हो गए मानो विधाता दी हुई सम्पत्ति छीने लेता हो। कर्म की गति समझकर उन्होंने धैर्य धारण किया और अच्छी तरह निर्णय करके सुगम मार्ग बतला दिया॥4॥

दोहा :

* लखन जानकी सहित तब गवनु कीन्ह रघुनाथ।
फेरे सब प्रिय बचन कहि लिए लाइ मन साथ॥118॥

भावार्थ:-तब लक्ष्मणजी और जानकीजी सहित श्री रघुनाथजी ने गमन किया और सब लोगों को प्रिय वचन कहकर लौटाया, किन्तु उनके मनों को अपने साथ ही लगा लिया॥118॥

चौपाई :

* फिरत नारि नर अति पछिताहीं। दैअहि दोषु देहिं मन माहीं॥
सहित बिषाद परसपर कहहीं। बिधि करतब उलटे सब अहहीं॥1॥

भावार्थ:-लौटते हुए वे स्त्री-पुरुष बहुत ही पछताते हैं और मन ही मन दैव को दोष देते हैं। परस्पर (बड़े ही) विषाद के साथ कहते हैं कि विधाता के सभी काम उलटे हैं॥1॥

* निपट निरंकुस निठुर निसंकू। जेहिं ससि कीन्ह सरुज सकलंकू॥
रूख कलपतरु सागरु खारा। तेहिं पठए बन राजकुमारा॥2॥

भावार्थ:-वह विधाता बिल्कुल निरंकुश (स्वतंत्र), निर्दय और निडर है, जिसने चन्द्रमा को रोगी (घटने-बढ़ने वाला) और कलंकी बनाया, कल्पवृक्ष को पेड़ और समुद्र को खारा बनाया। उसी ने इन राजकुमारों को वन में भेजा है॥2॥

* जौं पै इन्हहिं दीन्ह बनबासू। कीन्ह बादि बिधि भोग बिलासू॥
ए बिचरहिं मग बिनु पदत्राना। रचे बादि बिधि बाहन नाना॥3॥

भावार्थ:-जब विधाता ने इनको वनवास दिया है, तब उसने भोग-विलास व्यर्थ ही बनाए। जब ये बिना जूते के (नंगे ही पैरों) रास्ते में चल रहे हैं, तब विधाता ने अनेकों वाहन (सवारियाँ) व्यर्थ ही रचे॥3॥

* ए महि परहिं डासि कुस पाता। सुभग सेज कत सृजत बिधाता॥
तरुबर बास इन्हहि बिधि दीन्हा। धवल धाम रचि रचि श्रमु कीन्हा॥4॥

भावार्थ:-जब ये कुश और पत्ते बिछाकर जमीन पर ही पड़े रहते हैं, तब विधाता सुंदर सेज (पलंग और बिछौने) किसलिए बनाता है? विधाता ने जब इनको बड़े-बड़े पेड़ों (के नीचे) का निवास दिया, तब उज्ज्वल महलों को बना-बनाकर उसने व्यर्थ ही परिश्रम किया॥4॥

दोहा :

* जौं ए मुनि पट धर जटिल सुंदर सुठि सुकुमार।
बिबिध भाँति भूषन बसन बादि किए करतार॥119॥

भावार्थ:-जो ये सुंदर और अत्यन्त सुकुमार होकर मुनियों के (वल्कल) वस्त्र पहनते और जटा धारण करते हैं, तो फिर करतार (विधाता) ने भाँति-भाँति के गहने और कपड़े वृथा ही बनाए॥119॥

चौपाई :

* जौं ए कंदमूल फल खाहीं। बादि सुधादि असन जग माहीं॥
एक कहहिं ए सहज सुहाए। आपु प्रगट भए बिधि न बनाए॥1॥

भावार्थ:-जो ये कन्द, मूल, फल खाते हैं, तो जगत में अमृत आदि भोजन व्यर्थ ही हैं। कोई एक कहते हैं- ये स्वभाव से ही सुंदर हैं (इनका सौंदर्य-माधुर्य नित्य और स्वाभाविक है)। ये अपने-आप प्रकट हुए हैं, ब्रह्मा के बनाए नहीं हैं॥1॥

* जहँ लगिबेद कही बिधि करनी। श्रवन नयन मन गोचर बरनी॥
देखहु खोजि भुअन दस चारी। कहँ अस पुरुष कहाँ असि नारी॥2॥

भावार्थ:-हमारे कानों, नेत्रों और मन के द्वारा अनुभव में आने वाली विधाता की करनी को जहाँ तक वेदों ने वर्णन करके कहा है, वहाँ तक चौदहों लोकों में ढूँढ देखो, ऐसे पुरुष और ऐसी स्त्रियाँ कहाँ हैं? (कहीं भी नहीं हैं, इसी से सिद्ध है कि ये विधाता के चौदहों लोकों से अलग हैं और अपनी महिमा से ही आप निर्मित हुए हैं)॥2॥

* इन्हहि देखि बिधि मनु अनुरागा। पटतर जोग बनावै लागा॥
कीन्ह बहुत श्रम ऐक न आए। तेहिं इरिषा बन आनि दुराए॥3॥

भावार्थ:-इन्हें देखकर विधाता का मन अनुरक्त (मुग्ध) हो गया, तब वह भी इन्हीं की उपमा के योग्य दूसरे स्त्री-पुरुष बनाने लगा। उसने बहुत परिश्रम किया, परन्तु कोई उसकी अटकल में ही नहीं आए (पूरे नहीं उतरे)। इसी ईर्षा के मारे उसने इनको जंगल में लाकर छिपा दिया है॥3॥

* एक कहहिं हम बहुत न जानहिं। आपुहि परम धन्य करि मानहिं॥
ते पुनि पुन्यपुंज हम लेखे। जे देखहिं देखिहहिं जिन्ह देखे॥4॥

भावार्थ:-कोई एक कहते हैं- हम बहुत नहीं जानते। हाँ, अपने को परम धन्य अवश्य मानते हैं (जो इनके दर्शन कर रहे हैं) और हमारी समझ में वे भी बड़े पुण्यवान हैं, जिन्होंने इनको देखा है, जो देख रहे हैं और जो देखेंगे॥4॥

दोहा :

* एहि बिधि कहि कहि बचन प्रिय लेहिं नयन भरि नीर।
किमि चलिहहिं मारग अगम सुठि सुकुमार सरीर॥120॥

भावार्थ:-इस प्रकार प्रिय वचन कह-कहकर सब नेत्रों में (प्रेमाश्रुओं का) जल भर लेते हैं और कहते हैं कि ये अत्यन्त सुकुमार शरीर वाले दुर्गम (कठिन) मार्ग में कैसे चलेंगे॥120॥

चौपाई :

* नारि सनेह बिकल बस होहीं। चकईं साँझ समय जनु सोहीं॥
मृदु पद कमल कठिन मगु जानी। गहबरि हृदयँ कहहिं बर बानी॥1॥

भावार्थ:-स्त्रियाँ स्नेहवश विकल हो जाती हैं। मानो संध्या के समय चकवी (भावी वियोग की पीड़ा से) सोह रही हो। (दुःखी हो रही हो)। इनके चरणकमलों को कोमल तथा मार्ग को कठोर जानकर वे व्यथित हृदय से उत्तम वाणी कहती हैं-॥1॥

* परसत मृदुल चरन अरुनारे। सकुचति महि जिमि हृदय हमारे॥
जौं जगदीस इन्हहि बनु दीन्हा। कस न सुमनमय मारगु कीन्हा॥2॥

भावार्थ:-इनके कोमल और लाल-लाल चरणों (तलवों) को छूते ही पृथ्वी वैसे ही सकुचा जाती है, जैसे हमारे हृदय सकुचा रहे हैं।

जगदीश्वर ने यदि इन्हें वनवास ही दिया, तो सारे रास्ते को पुष्पमय क्यों नहीं बना दिया?॥2॥

* जौं मागा पाइअ बिधि पाहीं। ए रखिअहिं सखि आँखिन्ह माहीं॥
जे नर नारि न अवसर आए। तिन्ह सिय रामु न देखन पाए॥3॥

भावार्थ:-यदि ब्रह्मा से माँगे मिले तो हे सखी! (हम तो उनसे माँगकर) इन्हें अपनी आँखों में ही रखें! जो स्त्री-पुरुष इस अवसर पर नहीं आए, वे श्री सीतारामजी को नहीं देख सके॥3॥

* सुनि सुरूपु बूझहिं अकुलाई। अब लगि गए कहाँ लगि भाई॥
समरथ धाइ बिलोकहिं जाई। प्रमुदित फिरहिं जनमफलु पाई॥4॥

भावार्थ:-उनके सौंदर्य को सुनकर वे व्याकुल होकर पूछते हैं कि भाई! अब तक वे कहाँ तक गए होंगे? और जो समर्थ हैं, वे दौड़ते हुए जाकर उनके दर्शन कर लेते हैं और जन्म का परम फल पाकर, विशेष आनंदित होकर लौटते हैं॥4॥

दोहा :

* अबला बालक बृद्ध जन कर मीजहिं पछिताहिं।
होहिं प्रेमबस लोग इमि रामु जहाँ जहँ जाहिं॥121॥

भावार्थ:-(गर्भवती, प्रसूता आदि) अबला स्त्रियाँ, बच्चे और बूढ़े (दर्शन न पाने से) हाथ मलते और पछताते हैं। इस प्रकार जहाँ-जहाँ श्री रामचन्द्रजी जाते हैं, वहाँ-वहाँ लोग प्रेम के वश में हो जाते हैं॥121॥

चौपाई :

* गाँव गाँव अस होइ अनंदू। देखि भानुकुल कैरव चंदू॥
जे कछु समाचार सुनि पावहिं। ते नृप रानिहि दोसु लगावहिं॥1॥

भावार्थ:-सूर्यकुल रूपी कुमुदिनी को प्रफुल्लित करने वाले चन्द्रमा स्वरूप श्री रामचन्द्रजी के दर्शन कर गाँव-गाँव में ऐसा ही आनंद हो रहा है, जो लोग (वनवास दिए जाने का) कुछ भी समाचार सुन पाते हैं, वे राजा-रानी (दशरथ-कैकेयी) को दोष लगाते हैं॥1॥

* कहहिं एक अति भल नरनाहू। दीन्ह हमहि जोइ लोचन लाहू॥
कहहिं परसपर लोग लोगाईं। बातें सरल सनेह सुहाईं॥2॥

भावार्थ:-कोई एक कहते हैं कि राजा बहुत ही अच्छे हैं, जिन्होंने हमें अपने नेत्रों का लाभ दिया। स्त्री-पुरुष सभी आपस में सीधी, स्नेहभरी सुंदर बातें कह रहे हैं॥2॥

* ते पितु मातु धन्य जिन्ह जाए। धन्य सो नगरु जहाँ तें आए॥
धन्य सो देसु सैलु बन गाऊँ। जहँ-जहँ जाहिं धन्य सोइ ठाऊँ॥3॥

भावार्थ:-(कहते हैं-) वे माता-पिता धन्य हैं, जिन्होंने इन्हें जन्म दिया। वह नगर धन्य है, जहाँ से ये आए हैं। वह देश, पर्वत, वन और गाँव धन्य है और वही स्थान धन्य है, जहाँ-जहाँ ये जाते हैं॥3॥

* सुखु पायउ बिरंचि रचि तेही। ए जेहि के सब भाँति सनेही॥
राम लखन पथि कथा सुहाई। रही सकल मग कानन छाई॥4॥

भावार्थ:-ब्रह्मा ने उसी को रचकर सुख पाया है, जिसके ये (श्री रामचन्द्रजी) सब प्रकार से स्नेही हैं। पथिक रूप श्री राम-लक्ष्मण की सुंदर कथा सारे रास्ते और जंगल में छा गई है॥4॥

दोहा :

* एहि बिधि रघुकुल कमल रबि मग लोगन्ह सुख देत।

जाहिं चले देखत बिपिन सिय सौमित्रि समेत॥122॥
भावार्थ:-रघुकुल रूपी कमल को खिलाने वाले सूर्य श्री रामचन्द्रजी इस प्रकार मार्ग के लोगों को सुख देते हुए सीताजी और लक्ष्मणजी सहित वन को देखते हुए चले जा रहे हैं॥122॥

चौपाई :

* आगें रामु लखनु बने पाछें। तापस बेष बिराजत काछें॥
उभय बीच सिय सोहति कैसें। ब्रह्म जीव बिच माया जैसें॥1॥

भावार्थ:-आगे श्री रामजी हैं, पीछे लक्ष्मणजी सुशोभित हैं। तपस्वियों के वेष बनाए दोनों बड़ी ही शोभा पा रहे हैं। दोनों के बीच में सीताजी कैसी सुशोभित हो रही हैं, जैसे ब्रह्म और जीव के बीच में माया!॥1॥

* बहुरि कहउँ छबि जसि मन बसई। जनु मधु मदन मध्य रति लसई॥
उपमा बहुरि कहउँ जियँ जोही। जनु बुध बिधु बिच रोहिनि सोही॥2॥

भावार्थ:-फिर जैसी छबि मेरे मन में बस रही है, उसको कहता हूँ- मानो वसंत ऋतु और कामदेव के बीच में रति (कामेदव की स्त्री) शोभित हो। फिर अपने हृदय में खोजकर उपमा कहता हूँ कि मानो बुध (चंद्रमा के पुत्र) और चन्द्रमा के बीच में रोहिणी (चन्द्रमा की स्त्री) सोह रही हो॥2॥

* प्रभु पद रेख बीच बिच सीता। धरति चरन मग चलति सभीता॥
सीय राम पद अंक बराएँ। लखन चलहिं मगु दाहिन लाएँ॥3॥

भावार्थ:-प्रभु श्री रामचन्द्रजी के (जमीन पर अंकित होने वाले दोनों) चरण चिह्नों के बीच-बीच में पैर रखती हुई सीताजी

(कहीं भगवान के चरण चिह्नों पर पैर न टिक जाए इस बात से) डरती हुईं मार्ग में चल रही हैं और लक्ष्मणजी (मर्यादा की रक्षा के लिए) सीताजी और श्री रामचन्द्रजी दोनों के चरण चिह्नों को बचाते हुए दाहिने रखकर रास्ता चल रहे हैं॥3॥

* राम लखन सिय प्रीति सुहाई। बचन अगोचर किमि कहि जाई॥
खग मृग मगन देखि छबि होहीं। लिए चोरि चित राम बटोहीं॥4॥

भावार्थ:-श्री रामजी, लक्ष्मणजी और सीताजी की सुंदर प्रीति वाणी का विषय नहीं है (अर्थात अनिर्वचनीय है), अतः वह कैसे कही जा सकती है? पक्षी और पशु भी उस छबि को देखकर (प्रेमानंद में) मग्न हो जाते हैं। पथिक रूप श्री रामचन्द्रजी ने उनके भी चित्त चुरा लिए हैं॥4॥

दोहा :

* जिन्ह जिन्ह देखे पथिक प्रिय सिय समेत दोउ भाइ।
भव मगु अगमु अनंदु तेइ बिनु श्रम रहे सिराइ॥123॥

भावार्थ:-प्यारे पथिक सीताजी सहित दोनों भाइयों को जिन-जिन लोगों ने देखा, उन्होंने भव का अगम मार्ग (जन्म-मृत्यु रूपी संसार में भटकने का भयानक मार्ग) बिना ही परिश्रम आनंद के साथ तय कर लिया (अर्थात वे आवागमन के चक्र से सहज ही छूटकर मुक्त हो गए)॥123॥

चौपाई :

* अजहुँ जासु उर सपनेहुँ काऊ। बसहुँ लखनु सिय रामु बटाऊ॥
राम धाम पथ पाइहि सोई। जो पथ पाव कबहु मुनि कोई॥1॥

भावार्थ:-आज भी जिसके हृदय में स्वप्न में भी कभी लक्ष्मण, सीता, राम तीनों बटोही आ बसें, तो वह भी श्री रामजी के परमधाम के उस मार्ग को पा जाएगा, जिस मार्ग को कभी कोई बिरले ही मुनि पाते हैं॥1॥

* तब रघुबीर श्रमित सिय जानी। देखि निकट बटु सीतल पानी॥
तहँ बसि कंद मूल फल खाई। प्रात नहाइ चले रघुराई॥2॥

भावार्थ:-तब श्री रामचन्द्रजी सीताजी को थकी हुई जानकर और समीप ही एक बड़ का वृक्ष और ठंडा पानी देखकर उस दिन वहीं ठहर गए। कन्द, मूल, फल खाकर (रात भर वहाँ रहकर) प्रातःकाल स्नान करके श्री रघुनाथजी आगे चले॥2॥

गीताप्रेस गोरखपुर

श्री राम-वाल्मीकि संवाद

* देखत बन सर सैल सुहाए। बालमीकि आश्रम प्रभु आए॥
राम दीख मुनि बासु सुहावन। सुंदर गिरि काननु जलु पावन॥3॥

भावार्थ:-सुंदर वन, तालाब और पर्वत देखते हुए प्रभु श्री रामचन्द्रजी वाल्मीकिजी के आश्रम में आए। श्री रामचन्द्रजी ने देखा कि मुनि का निवास स्थान बहुत सुंदर है, जहाँ सुंदर पर्वत, वन और पवित्र जल है॥3॥

* सरनि सरोज बिटप बन फूले। गुंजत मंजु मधुप रस भूले॥
खग मृग बिपुल कोलाहल करहीं। बिरहित बैर मुदित मन चरहीं॥4॥

भावार्थ:-सरोवरों में कमल और वनों में वृक्ष फूल रहे हैं और मकरन्द रस में मस्त हुए भौंरे सुंदर गुंजार कर रहे हैं। बहुत से पक्षी और पशु कोलाहल कर रहे हैं और वैर से रहित होकर प्रसन्न मन से विचर रहे हैं॥4॥

दोहा :

* सुचि सुंदर आश्रमु निरखि हरषे राजिवनेन।
सुनि रघुबर आगमनु मुनि आगें आयउ लेन॥124॥

भावार्थ:-पवित्र और सुंदर आश्रम को देखकर कमल नयन श्री रामचन्द्रजी हर्षित हुए। रघु श्रेष्ठ श्री रामजी का आगमन सुनकर मुनि वाल्मीकिजी उन्हें लेने के लिए आगे आए॥124॥

चौपाई :

* मुनि कहुँ राम दंडवत कीन्हा। आसिरबादु बिप्रबर दीन्हा॥
देखि राम छबि नयन जुड़ाने। करि सनमानु आश्रमहिं आने॥1॥

भावार्थ:-श्री रामचन्द्रजी ने मुनि को दण्डवत किया। विप्र श्रेष्ठ मुनि ने उन्हें आशीर्वाद दिया। श्री रामचन्द्रजी की छबि देखकर मुनि के नेत्र शीतल हो गए। सम्मानपूर्वक मुनि उन्हें आश्रम में ले आए॥1॥

* मुनिबर अतिथि प्रानप्रिय पाए। कंद मूल फल मधुर मँगाए॥
सिय सौमिति्र राम फल खाए। तब मुनि आश्रम दिए सुहाए॥2॥

भावार्थ:-श्रेष्ठ मुनि वाल्मीकिजी ने प्राणप्रिय अतिथियों को पाकर उनके लिए मधुर कंद, मूल और फल मँगवाए। श्री सीताजी,

लक्ष्मणजी और रामचन्द्रजी ने फलों को खाया। तब मुनि ने उनको (विश्राम करने के लिए) सुंदर स्थान बतला दिए॥2॥

* बालमीकि मन आनँदु भारी। मंगल मूरति नयन निहारी॥
तब कर कमल जोरि रघुराई। बोले बचन श्रवन सुखदाई॥3॥

भावार्थ:-(मुनि श्री रामजी के पास बैठे हैं और उनकी) मंगल मूर्ति को नेत्रों से देखकर वाल्मीकिजी के मन में बड़ा भारी आनंद हो रहा है। तब श्री रघुनाथजी कमलसदृश हाथों को जोड़कर, कानों को सुख देने वाले मधुर वचन बोले-॥3॥

* तुम्ह त्रिकाल दरसी मुनिनाथा। बिस्व बदर जिमि तुम्हरें हाथा ॥
अस कहि प्रभु सब कथा बखानी। जेहि जेहि भाँति दीन्ह बनु रानी॥4॥

भावार्थ:-हे मुनिनाथ! आप त्रिकालदर्शी हैं। सम्पूर्ण विश्व आपके लिए हथेली पर रखे हुए बेर के समान है। प्रभु श्री रामचन्द्रजी ने ऐसा कहकर फिर जिस-जिस प्रकार से रानी कैकेयी ने वनवास दिया, वह सब कथा विस्तार से सुनाई॥4॥

दोहा :

* तात बचन पुनि मातु हित भाइ भरत अस राउ।
मो कहुँ दरस तुम्हार प्रभु सबु मम पुन्य प्रभाउ॥125॥

भावार्थ:-(और कहा-) हे प्रभो! पिता की आज्ञा (का पालन), माता का हित और भरत जैसे (स्नेही एवं धर्मात्मा) भाई का राजा होना और फिर मुझे आपके दर्शन होना, यह सब मेरे पुण्यों का प्रभाव है॥125॥

चौपाई :

* देखि पाय मुनिराय तुम्हारे। भए सुकृत सब सुफल हमारे॥॥

अब जहँ राउर आयसु होई। मुनि उदबेगु न पावै कोई॥1॥
भावार्थ:-हे मुनिराज! आपके चरणों का दर्शन करने से आज हमारे सब पुण्य सफल हो गए (हमें सारे पुण्यों का फल मिल गया)। अब जहाँ आपकी आज्ञा हो और जहाँ कोई भी मुनि उद्वेग को प्राप्त न हो-॥1॥

* मुनि तापस जिन्ह तें दुखु लहहीं। ते नरेस बिनु पावक दहहीं॥
मंगल मूल बिप्र परितोषू। दहइ कोटि कुल भूसुर रोषू॥2॥

भावार्थ:-क्योंकि जिनसे मुनि और तपस्वी दुःख पाते हैं, वे राजा बिना अग्नि के ही (अपने दुष्ट कर्मों से ही) जलकर भस्म हो जाते हैं। ब्राह्मणों का संतोष सब मंगलों की जड़ है और भूदेव ब्राह्मणों का क्रोध करोड़ों कुलों को भस्म कर देता है॥2॥

* अस जियँ जानि कहिअ सोइ ठाऊँ। सिय सौमित्रि सहित जहँ जाऊँ॥
तहँ रचि रुचिर परन तृन साला। बासु करौं कछु काल कृपाला॥3॥
भावार्थ:-ऐसा हृदय में समझकर- वह स्थान बतलाइए जहाँ मैं लक्ष्मण और सीता सहित जाऊँ और वहाँ सुंदर पत्तों और घास की कुटी बनाकर, हे दयालु! कुछ समय निवास करूँ॥3॥

* सहज सरल सुनि रघुबर बानी। साधु साधु बोले मुनि ग्यानी॥
कस न कहहु अस रघुकुलकेतू। तुम्ह पालक संतत श्रुति सेतू॥4॥
भावार्थ:-श्री रामजी की सहज ही सरल वाणी सुनकर ज्ञानी मुनि वाल्मीकि बोले- धन्य! धन्य! हे रघुकुल के ध्वजास्वरूप! आप ऐसा क्यों न कहेंगे? आप सदैव वेद की मर्यादा का पालन (रक्षण) करते हैं॥4॥

छन्द :

* श्रुति सेतु पालक राम तुम्ह जगदीस माया जानकी।
जो सृजति जगु पालति हरति रुख पाइ कृपानिधान की॥
जो सहससीसु अहीसु महिधरु लखनु सचराचर धनी।
सुर काज धरि नरराज तनु चले दलन खल निसिचर अनी॥

भावार्थ:-हे राम! आप वेद की मर्यादा के रक्षक जगदीश्वर हैं और जानकीजी (आपकी स्वरूप भूता) माया हैं, जो कृपा के भंडार आपका रुख पाकर जगत का सृजन, पालन और संहार करती हैं। जो हजार मस्तक वाले सर्पों के स्वामी और पृथ्वी को अपने सिर पर धारण करने वाले हैं, वही चराचर के स्वामी शेषजी लक्ष्मण हैं। देवताओं के कार्य के लिए आप राजा का शरीर धारण करके दुष्ट राक्षसों की सेना का नाश करने के लिए चले हैं।

सोरठा :

* राम सरूप तुम्हार बचन अगोचर बुद्धिपर।
अबिगत अकथ अपार नेति नेति नित निगम कह।126॥

भावार्थ:-हे राम! आपका स्वरूप वाणी के अगोचर, बुद्धि से परे, अव्यक्त, अकथनीय और अपार है। वेद निरंतर उसका 'नेति-नेति' कहकर वर्णन करते हैं॥126॥

चौपाई :

* जगु पेखन तुम्ह देखनिहारे। बिधि हरि संभु नचावनिहारे॥
तेउ न जानहिं मरमु तुम्हारा। औरु तुम्हहि को जाननिहारा॥1॥

भावार्थ:-हे राम! जगत दृश्य है, आप उसके देखने वाले हैं। आप ब्रह्मा, विष्णु और शंकर को भी नचाने वाले हैं। जब वे भी

आपके मर्म को नहीं जानते, तब और कौन आपको जानने वाला है?॥1॥

* सोइ जानइ जेहि देहु जनाई। जानत तुम्हहि तुम्हइ होइ जाई॥
तुम्हरिहि कृपाँ तुम्हहि रघुनंदन। जानहिं भगत भगत उर चंदन॥2॥

भावार्थ:-वही आपको जानता है, जिसे आप जना देते हैं और जानते ही वह आपका ही स्वरूप बन जाता है। हे रघुनंदन! हे भक्तों के हृदय को शीतल करने वाले चंदन! आपकी ही कृपा से भक्त आपको जान पाते हैं॥2॥

* चिदानंदमय देह तुम्हारी। बिगत बिकार जान अधिकारी॥
नर तनु धरेहु संत सुर काजा। कहहु करहु जस प्राकृत राजा॥3॥

भावार्थ:-आपकी देह चिदानन्दमय है (यह प्रकृतिजन्य पंच महाभूतों की बनी हुई कर्म बंधनयुक्त, त्रिदेह विशिष्ट मायिक नहीं है) और (उत्पत्ति-नाश, वृद्धि-क्षय आदि) सब विकारों से रहित है, इस रहस्य को अधिकारी पुरुष ही जानते हैं। आपने देवता और संतों के कार्य के लिए (दिव्य) नर शरीर धारण किया है और प्राकृत (प्रकृति के तत्वों से निर्मित देह वाले, साधारण) राजाओं की तरह से कहते और करते हैं॥3॥

* राम देखि सुनि चरित तुम्हारे। जड़ मोहहिं बुध होहिं सुखारे॥
तुम्ह जो कहहु करहु सबु साँचा। जस काछिअ तस चाहिअ नाचा॥4॥

भावार्थ:-हे राम! आपके चरित्रों को देख और सुनकर मूर्ख लोग तो मोह को प्राप्त होते हैं और ज्ञानीजन सुखी होते हैं। आप जो कुछ कहते, करते हैं, वह सब सत्य (उचित) ही है, क्योंकि जैसा

स्वाँग भरे वैसा ही नाचना भी तो चाहिए (इस समय आप मनुष्य रूप में हैं, अतः मनुष्योचित व्यवहार करना ठीक ही है।)॥4॥

दोहा :

* पूँछेहु मोहि कि रहौं कहँ मैं पूँछत सकुचाउँ।
जहँ न होहु तहँ देहु कहि तुम्हहि देखावौं ठाउँ॥127॥

भावार्थ:-आपने मुझसे पूछा कि मैं कहाँ रहूँ? परन्तु मैं यह पूछते सकुचाता हूँ कि जहाँ आप न हों, वह स्थान बता दीजिए। तब मैं आपके रहने के लिए स्थान दिखाऊँ॥127॥

चौपाई :

* सुनि मुनि बचन प्रेम रस साने। सकुचि राम मन महुँ मुसुकाने॥
बालमीकि हँसि कहहिं बहोरी। बानी मधुर अमिअ रस बोरी॥1॥

भावार्थ:-मुनि के प्रेमरस से सने हुए वचन सुनकर श्री रामचन्द्रजी रहस्य खुल जाने के डर से सकुचाकर मन में मुस्कुराए। वाल्मीकिजी हँसकर फिर अमृत रस में डुबोई हुई मीठी वाणी बोले-॥1॥

* सुनहु राम अब कहउँ निकेता। जहाँ बसहु सिय लखन समेता॥
जिन्ह के श्रवन समुद्र समाना। कथा तुम्हारि सुभग सरि नाना॥2॥

भावार्थ:-हे रामजी! सुनिए, अब मैं वे स्थान बताता हूँ, जहाँ आप, सीताजी और लक्ष्मणजी समेत निवास कीजिए। जिनके कान समुद्र की भाँति आपकी सुंदर कथा रूपी अनेक सुंदर नदियों से-॥2॥

* भरहिं निरंतर होहिं न पूरे। तिन्ह के हिय तुम्ह कहुँ गृह रूरे॥
लोचन चातक जिन्ह करि राखे। रहहिं दरस जलधर अभिलाषे॥3॥

भावार्थ:-निरंतर भरते रहते हैं, परन्तु कभी पूरे (तृप्त) नहीं होते, उनके हृदय आपके लिए सुंदर घर हैं और जिन्होंने अपने नेत्रों को चातक बना रखा है, जो आपके दर्शन रूपी मेघ के लिए सदा लालायित रहते हैं,॥3॥

* निदरहिं सरित सिंधु सर भारी। रूप बिंदु जल होहिं सुखारी॥
तिन्ह कें हृदय सदन सुखदायक। बसहु बंधु सिय सह रघुनायक॥4॥

भावार्थ:-तथा जो भारी-भारी नदियों, समुद्रों और झीलों का निरादर करते हैं और आपके सौंदर्य (रूपी मेघ) की एक बूँद जल से सुखी हो जाते हैं (अर्थात आपके दिव्य सच्चिदानन्दमय स्वरूप के किसी एक अंग की जरा सी भी झाँकी के सामने स्थूल, सूक्ष्म और कारण तीनों जगत के अर्थात पृथ्वी, स्वर्ग और ब्रह्मलोक तक के सौंदर्य का तिरस्कार करते हैं), हे रघुनाथजी! उन लोगों के हृदय रूपी सुखदायी भवनों में आप भाई लक्ष्मणजी और सीताजी सहित निवास कीजिए॥4॥

दोहा :

* जसु तुम्हार मानस बिमल हंसिनि जीहा जासु।
मुकताहल गुन गन चुनइ राम बसहु हियँ तासु॥128॥

भावार्थ:-आपके यश रूपी निर्मल मानसरोवर में जिसकी जीभ हंसिनी बनी हुई आपके गुण समूह रूपी मोतियों को चुगती रहती है, हे रामजी! आप उसके हृदय में बसिए॥128॥

चौपाई :

* प्रभु प्रसाद सुचि सुभग सुबासा। सादर जासु लहइ नित नासा॥
तुम्हहि निबेदित भोजन करहीं। प्रभु प्रसाद पट भूषन धरहीं॥1॥

भावार्थ:-जिसकी नासिका प्रभु (आप) के पवित्र और सुगंधित (पुष्पादि) सुंदर प्रसाद को नित्य आदर के साथ ग्रहण करती (सूँघती) है और जो आपको अर्पण करके भोजन करते हैं और आपके प्रसाद रूप ही वस्त्राभूषण धारण करते हैं,॥1॥

* सीस नवहिं सुर गुरु द्विज देखी। प्रीति सहित करि बिनय बिसेषी॥
कर नित करहिं राम पद पूजा। राम भरोस हृदयँ नहिं दूजा॥2॥

भावार्थ:-जिनके मस्तक देवता, गुरु और ब्राह्मणों को देखकर बड़ी नम्रता के साथ प्रेम सहित झुक जाते हैं, जिनके हाथ नित्य श्री रामचन्द्रजी (आप) के चरणों की पूजा करते हैं और जिनके हृदय में श्री रामचन्द्रजी (आप) का ही भरोसा है, दूसरा नहीं,॥2॥

* चरन राम तीरथ चलि जाहीं। राम बसहु तिन्ह के मन माहीं॥
मंत्रराजु नित जपहिं तुम्हारा। पूजहिं तुम्हहि सहित परिवारा॥3॥

भावार्थ:-तथा जिनके चरण श्री रामचन्द्रजी (आप) के तीर्थों में चलकर जाते हैं, हे रामजी! आप उनके मन में निवास कीजिए। जो नित्य आपके (राम नाम रूप) मंत्रराज को जपते हैं और परिवार (परिकर) सहित आपकी पूजा करते हैं॥3॥

* तरपन होम करहिं बिधि नाना। बिप्र जेवाँइ देहिं बहु दाना॥
तुम्ह तें अधिक गुरहि जियँ जानी। सकल भायँ सेवहिं सनमानी॥4॥

भावार्थ:-जो अनेक प्रकार से तर्पण और हवन करते हैं तथा ब्राह्मणों को भोजन कराकर बहुत दान देते हैं तथा जो गुरु को हृदय में आपसे भी अधिक (बड़ा) जानकर सर्वभाव से सम्मान करके उनकी सेवा करते हैं,॥4॥

दोहा :

* सबु करि मागहिं एक फलु राम चरन रति होउ।
तिन्ह कें मन मंदिर बसहु सिय रघुनंदन दोउ॥129॥

भावार्थ:-और ये सब कर्म करके सबका एक मात्र यही फल माँगते हैं कि श्री रामचन्द्रजी के चरणों में हमारी प्रीति हो, उन लोगों के मन रूपी मंदिरों में सीताजी और रघुकुल को आनंदित करने वाले आप दोनों बसिए॥129॥

चौपाई :

* काम कोह मद मान न मोहा। लोभ न छोभ न राग न द्रोहा॥
जिन्ह कें कपट दंभ नहिं माया। तिन्ह कें हृदय बसहु रघुराया॥1॥

भावार्थ:-जिनके न तो काम, क्रोध, मद, अभिमान और मोह हैं, न लोभ है, न क्षोभ है, न राग है, न द्वेष है और न कपट, दम्भ और माया ही है- हे रघुराज! आप उनके हृदय में निवास कीजिए॥1॥

* सब के प्रिय सब के हितकारी। दुख सुख सरिस प्रसंसा गारी॥
कहहिं सत्य प्रिय बचन बिचारी। जागत सोवत सरन तुम्हारी॥2॥

भावार्थ:-जो सबके प्रिय और सबका हित करने वाले हैं, जिन्हें दुःख और सुख तथा प्रशंसा (बड़ाई) और गाली (निंदा) समान

है, जो विचारकर सत्य और प्रिय वचन बोलते हैं तथा जो जागते-सोते आपकी ही शरण हैं,॥2॥

* तुम्हहि छाड़ि गति दूसरि नाहीं। राम बसहु तिन्ह के मन माहीं॥
जननी सम जानहिं परनारी। धनु पराव बिष तें बिष भारी॥3॥

भावार्थ:-और आपको छोड़कर जिनके दूसरे कोई गति (आश्रय) नहीं है, हे रामजी! आप उनके मन में बसिए। जो पराई स्त्री को जन्म देने वाली माता के समान जानते हैं और पराया धन जिन्हें विष से भी भारी विष है,॥3॥

* जे हरषहिं पर संपति देखी। दुखित होहिं पर बिपति बिसेषी॥
जिन्हहि राम तुम्ह प्रान पिआरे। तिन्ह के मन सुभ सदन तुम्हारे॥4॥

भावार्थ:-जो दूसरे की सम्पत्ति देखकर हर्षित होते हैं और दूसरे की विपत्ति देखकर विशेष रूप से दुःखी होते हैं और हे रामजी! जिन्हें आप प्राणों के समान प्यारे हैं, उनके मन आपके रहने योग्य शुभ भवन हैं॥4॥

दोहा :

* स्वामि सखा पितु मातु गुर जिन्ह के सब तुम्ह तात।
मन मंदिर तिन्ह कें बसहु सीय सहित दोउ भ्रात॥130॥

भावार्थ:-हे तात! जिनके स्वामी, सखा, पिता, माता और गुरु सब कुछ आप ही हैं, उनके मन रूपी मंदिर में सीता सहित आप दोनों भाई निवास कीजिए॥130॥

चौपाई :

* अवगुन तजि सब के गुन गहहीं। बिप्र धेनु हित संकट सहहीं॥

नीति निपुन जिन्ह कइ जग लीका। घर तुम्हार तिन्ह कर मनु नीका॥1॥

भावार्थ:-जो अवगुणों को छोड़कर सबके गुणों को ग्रहण करते हैं, ब्राह्मण और गो के लिए संकट सहते हैं, नीति-निपुणता में जिनकी जगत में मर्यादा है, उनका सुंदर मन आपका घर है॥1॥

* गुन तुम्हार समुझइ निज दोसा। जेहि सब भाँति तुम्हार भरोसा॥
राम भगत प्रिय लागहिं जेही। तेहि उर बसहु सहित बैदेही॥2॥

भावार्थ:-जो गुणों को आपका और दोषों को अपना समझता है, जिसे सब प्रकार से आपका ही भरोसा है और राम भक्त जिसे प्यारे लगते हैं, उसके हृदय में आप सीता सहित निवास कीजिए॥2॥

* जाति पाँति धनु धरमु बड़ाई। प्रिय परिवार सदन सुखदाई॥
सब तजि तुम्हहि रहइ उर लाई। तेहि के हृदयँ रहहु रघुराई॥3॥

भावार्थ:-जाति, पाँति, धन, धर्म, बड़ाई, प्यारा परिवार और सुख देने वाला घर, सबको छोड़कर जो केवल आपको ही हृदय में धारण किए रहता है, हे रघुनाथजी! आप उसके हृदय में रहिए॥3॥

* सरगु नरकु अपबरगु समाना। जहँ तहँ देख धरें धनु बाना॥
करम बचन मन राउर चेरा। राम करहु तेहि कें उर डेरा॥4॥

भावार्थ:-स्वर्ग, नरक और मोक्ष जिसकी दृष्टि में समान हैं, क्योंकि वह जहाँ-तहाँ (सब जगह) केवल धनुष-बाण धारण किए आपको

ही देखता है और जो कर्म से, वचन से और मन से आपका दास है, हे रामजी! आप उसके हृदय में डेरा कीजिए॥4॥

दोहा :

* जाहि न चाहिअ कबहुँ कछु तुम्ह सन सहज सनेहु।
बसहु निरंतर तासु मन सो राउर निज गेहु॥131॥

भावार्थ:-जिसको कभी कुछ भी नहीं चाहिए और जिसका आपसे स्वाभाविक प्रेम है, आप उसके मन में निरंतर निवास कीजिए, वह आपका अपना घर है॥131॥

चौपाई :

* एहि बिधि मुनिबर भवन देखाए। बचन सप्रेम राम मन भाए॥
कह मुनि सुनहु भानुकुलनायक। आश्रम कहउँ समय सुखदायक॥1॥

भावार्थ:-इस प्रकार मुनि श्रेष्ठ वाल्मीकिजी ने श्री रामचन्द्रजी को घर दिखाए। उनके प्रेमपूर्ण वचन श्री रामजी के मन को अच्छे लगे। फिर मुनि ने कहा- हे सूर्यकुल के स्वामी! सुनिए, अब मैं इस समय के लिए सुखदायक आश्रम कहता हूँ (निवास स्थान बतलाता हूँ)॥1॥

* चित्रकूट गिरि करहु निवासू। तहँ तुम्हार सब भाँति सुपासू॥
सैलु सुहावन कानन चारू। करि केहरि मृग बिहग बिहारू॥2॥

भावार्थ:-आप चित्रकूट पर्वत पर निवास कीजिए, वहाँ आपके लिए सब प्रकार की सुविधा है। सुहावना पर्वत है और सुंदर वन है। वह हाथी, सिंह, हिरन और पक्षियों का विहार स्थल है॥2॥

* नदी पुनीत पुरान बखानी। अत्रिप्रिया निज तप बल आनी॥
सुरसरि धार नाउँ मंदाकिनि। जो सब पातक पोतक डाकिनि॥3॥

भावार्थ:-वहाँ पवित्र नदी है, जिसकी पुराणों ने प्रशंसा की है और जिसको अत्रि ऋषि की पत्नी अनसुयाजी अपने तपोबल से लाई थीं। वह गंगाजी की धारा है, उसका मंदाकिनी नाम है। वह सब पाप रूपी बालकों को खा डालने के लिए डाकिनी (डायन) रूप है॥3॥

* अत्रि आदि मुनिबर बहु बसहीं। करहिं जोग जप तप तन कसहीं॥
चलहु सफल श्रम सब कर करहू। राम देहु गौरव गिरिबरहू॥4॥

भावार्थ:-अत्रि आदि बहुत से श्रेष्ठ मुनि वहाँ निवास करते हैं, जो योग, जप और तप करते हुए शरीर को कसते हैं। हे रामजी! चलिए, सबके परिश्रम को सफल कीजिए और पर्वत श्रेष्ठ चित्रकूट को भी गौरव दीजिए॥4॥

गीताप्रेस गोरखपुर

गीताप्रेस गोरखपुर

चित्रकूट में निवास, कोल-भीलों के द्वारा सेवा

दोहा :

* चित्रकूट महिमा अमित कही महामुनि गाइ।
आइ नहाए सरित बर सिय समेत दोउ भाइ॥132॥

भावार्थ:-महामुनि वाल्मीकिजी ने चित्रकूट की अपरिमित महिमा बखान कर कही। तब सीताजी सहित दोनों भाइयों ने आकर श्रेष्ठ नदी मंदाकिनी में स्नान किया॥132॥

चौपाई :

* रघुबर कहेउ लखन भल घाटू। करहु कतहुँ अब ठाहर ठाटू॥
लखन दीख पय उतर करारा। चहुँ दिसि फिरेउ धनुष जिमि नारा॥1॥

भावार्थ:-श्री रामचन्द्रजी ने कहा- लक्ष्मण! बड़ा अच्छा घाट है। अब यहीं कहीं ठहरने की व्यवस्था करो। तब लक्ष्मणजी ने पयस्विनी नदी के उत्तर के ऊँचे किनारे को देखा (और कहा कि-) इसके चारों ओर धनुष के जैसा एक नाला फिरा हुआ है॥।1॥

* नदी पनच सर सम दम दाना। सकल कलुष कलि साउज नाना॥
चित्रकूट जनु अचल अहेरी। चुकइ न घात मार मुठभेरी॥2॥

भावार्थ:-नदी (मंदाकिनी) उस धनुष की प्रत्यंचा (डोरी) है और शम, दम, दान बाण हैं। कलियुग के समस्त पाप उसके अनेक हिंसक पशु (रूप निशाने) हैं। चित्रकूट ही मानो अचल शिकारी है, जिसका निशाना कभी चूकता नहीं और जो सामने से मारता है॥2॥

* अस कहि लखन ठाउँ देखरावा। थलु बिलोकि रघुबर सुखु पावा॥
रमेउ राम मनु देवन्ह जाना। चले सहित सुर थपति प्रधाना॥3॥

भावार्थ:-ऐसा कहकर लक्ष्मणजी ने स्थान दिखाया। स्थान को देखकर श्री रामचन्द्रजी ने सुख पाया। जब देवताओं ने जाना कि श्री रामचन्द्रजी का मन यहाँ रम गया, तब वे देवताओं के

प्रधान थवई (मकान बनाने वाले) विश्वकर्मा को साथ लेकर चले॥3॥

* कोल किरात बेष सब आए। रचे परन तृन सदन सुहाए॥
बरनि न जाहिं मंजु दुइ साला। एक ललित लघु एक बिसाला॥4॥

भावार्थ:-सब देवता कोल-भीलों के वेष में आए और उन्होंने (दिव्य) पत्तों और घासों के सुंदर घर बना दिए। दो ऐसी सुंदर कुटिया बनाईं जिनका वर्णन नहीं हो सकता। उनमें एक बड़ी सुंदर छोटी सी थी और दूसरी बड़ी थी॥4॥

दोहा :

* लखन जानकी सहित प्रभु राजत रुचिर निकेत।
सोह मदनु मुनि बेष जनु रति रितुराज समेत॥133॥

भावार्थ:-लक्ष्मणजी और जानकीजी सहित प्रभु श्री रामचन्द्रजी सुंदर घास-पत्तों के घर में शोभायमान हैं। मानो कामदेव मुनि का वेष धारण करके पत्नी रति और वसंत ऋतु के साथ सुशोभित हो॥133॥

मासपारायण, सत्रहवाँ विश्राम

चौपाई :

* अमर नाग किंनर दिसिपाला। चित्रकूट आए तेहि काला॥
राम प्रनामु कीन्ह सब काहू। मुदित देव लहि लोचन लाहू॥1॥

भावार्थ:-उस समय देवता, नाग, किन्नर और दिक्पाल चित्रकूट में आए और श्री रामचन्द्रजी ने सब किसी को प्रणाम किया। देवता नेत्रों का लाभ पाकर आनंदित हुए॥1॥

गीताप्रेस गोरखपुर

* बरषि सुमन कह देव समाजू। नाथ सनाथ भए हम आजू॥
करि बिनती दुख दुसह सुनाए। हरषित निज निज सदन सिधाए॥2॥

भावार्थ:-फूलों की वर्षा करके देव समाज ने कहा- हे नाथ! आज (आपका दर्शन पाकर) हम सनाथ हो गए। फिर विनती करके उन्होंने अपने दुःसह दुःख सुनाए और (दुःखों के नाश का आश्वासन पाकर) हर्षित होकर अपने-अपने स्थानों को चले गए॥2॥

* चित्रकूट रघुनंदनु छाए। समाचार सुनि सुनि मुनि आए॥
आवत देखि मुदित मुनिबृंदा। कीन्ह दंडवत रघुकुल चंदा॥3॥

भावार्थ:-श्री रघुनाथजी चित्रकूट में आ बसे हैं, यह समाचार सुन-सुनकर बहुत से मुनि आए। रघुकुल के चन्द्रमा श्री रामचन्द्रजी ने मुदित हुई मुनि मंडली को आते देखकर दंडवत प्रणाम किया॥3॥

* मुनि रघुबरहि लाइ उर लेहीं। सुफल होन हित आसिष देहीं॥
सिय सौमित्रि राम छबि देखहिं। साधन सकल सफल करि लेखहिं॥4॥

भावार्थ:-मुनिगण श्री रामजी को हृदय से लगा लेते हैं और सफल होने के लिए आशीर्वाद देते हैं। वे सीताजी, लक्ष्मणजी और श्री रामचन्द्रजी की छबि देखते हैं और अपने सारे साधनों को सफल हुआ समझते हैं॥4॥

दोहा :

* जथाजोग सनमानि प्रभु बिदा किए मुनिबृंद।
करहिं जोग जप जाग तप निज आश्रमन्हि सुछंद॥134॥

भावार्थ:-प्रभु श्री रामचन्द्रजी ने यथायोग्य सम्मान करके मुनि मंडली को विदा किया। (श्री रामचन्द्रजी के आ जाने से) वे सब

अपने-अपने आश्रमों में अब स्वतंत्रता के साथ योग, जप, यज्ञ और तप करने लगे॥134॥

चौपाई :

* यह सुधि कोल किरातन्ह पाई। हरषे जनु नव निधि घर आई॥
कंद मूल फल भरि भरि दोना। चले रंक जनु लूटन सोना॥1॥

भावार्थ:-यह (श्री रामजी के आगमन का) समाचार जब कोल-भीलों ने पाया, तो वे ऐसे हर्षित हुए मानो नवों निधियाँ उनके घर ही पर आ गई हों। वे दोनों में कंद, मूल, फल भर-भरकर चले, मानो दरिद्र सोना लूटने चले हों॥1॥

* तिन्ह महँ जिन्ह देखे दोउ भ्राता। अपर तिन्हहि पूँछहिं मगु जाता॥
कहत सुनत रघुबीर निकाई। आइ सबन्हि देखे रघुराई॥2॥

भावार्थ:-उनमें से जो दोनों भाइयों को (पहले) देख चुके थे, उनसे दूसरे लोग रास्ते में जाते हुए पूछते हैं। इस प्रकार श्री रामचन्द्रजी की सुंदरता कहते-सुनते सबने आकर श्री रघुनाथजी के दर्शन किए॥2॥

* करहिं जोहारु भेंट धरि आगे। प्रभुहि बिलोकहिं अति अनुरागे॥
चित्र लिखे जनु जहँ तहँ ठाढ़े। पुलक सरीर नयन जल बाढ़े॥3॥

भावार्थ:-भेंट आगे रखकर वे लोग जोहार करते हैं और अत्यन्त अनुराग के साथ प्रभु को देखते हैं। वे मुग्ध हुए जहाँ के तहाँ मानो चित्र लिखे से खड़े हैं। उनके शरीर पुलकित हैं और नेत्रों में प्रेमाश्रुओं के जल की बाढ़ आ रही है॥3॥

* राम सनेह मगन सब जाने। कहि प्रिय बचन सकल सनमाने॥
प्रभुहि जोहारि बहोरि बहोरी। बचन बिनीत कहहिंकर जोरी॥4॥

भावार्थ:-श्री रामजी ने उन सबको प्रेम में मग्न जाना और प्रिय वचन कहकर सबका सम्मान किया। वे बार-बार प्रभु श्री रामचन्द्रजी को जोहार करते हुए हाथ जोड़कर विनीत वचन कहते हैं-॥4॥

दोहा :

* अब हम नाथ सनाथ सब भए देखि प्रभु पाय।
भाग हमारें आगमनु राउर कोसलराय॥135॥

भावार्थ:-हे नाथ! प्रभु (आप) के चरणों का दर्शन पाकर अब हम सब सनाथ हो गए। हे कोसलराज! हमारे ही भाग्य से आपका यहाँ शुभागमन हुआ है॥135॥

चौपाई :

* धन्य भूमि बन पंथ पहारा। जहँ जहँ नाथ पाउ तुम्ह धारा॥
धन्य बिहग मृग काननचारी। सफल जनम भए तुम्हहि निहारी॥1॥

भावार्थ:-हे नाथ! जहाँ-जहाँ आपने अपने चरण रखे हैं, वे पृथ्वी, वन, मार्ग और पहाड़ धन्य हैं, वे वन में विचरने वाले पक्षी और पशु धन्य हैं, जो आपको देखकर सफल जन्म हो गए॥1॥

* हम सब धन्य सहित परिवारा। दीख दरसु भरि नयन तुम्हारा॥
कीन्ह बासु भल ठाउँ बिचारी। इहाँ सकल रितु रहब सुखारी॥2॥

भावार्थ:-हम सब भी अपने परिवार सहित धन्य हैं, जिन्होंने नेत्र भरकर आपका दर्शन किया। आपने बड़ी अच्छी जगह विचारकर निवास किया है। यहाँ सभी ऋतुओं में आप सुखी रहिएगा॥2॥

* हम सब भाँति करब सेवकाई। करि केहरि अहि बाघ बराई॥

बन बेहड़ गिरि कंदर खोहा। सब हमार प्रभु पग पग जोहा॥3॥

भावार्थ:-हम लोग सब प्रकार से हाथी, सिंह, सर्प और बाघों से बचाकर आपकी सेवा करेंगे। हे प्रभो! यहाँ के बीहड़ वन, पहाड़, गुफाएँ और खोह (दर्रे) सब पग-पग हमारे देखे हुए हैं॥3॥

* तहँ तहँ तुम्हहि अहेर खेलाउब। सर निरझर जलठाउँ देखाउब॥
हम सेवक परिवार समेता। नाथ न सकुचब आयसु देता॥4॥

भावार्थ:-हम वहाँ-वहाँ (उन-उन स्थानों में) आपको शिकार खिलाएँगे और तालाब, झरने आदि जलाशयों को दिखाएँगे। हम कुटुम्ब समेत आपके सेवक हैं। हे नाथ! इसलिए हमें आज्ञा देने में संकोच न कीजिए॥4॥

दोहा :

* बेद बचन मुनि मन अगम ते प्रभु करुना ऐन।
बचन किरातन्ह के सुनत जिमि पितु बालक बैन॥136॥

भावार्थ:-जो वेदों के वचन और मुनियों के मन को भी अगम हैं, वे करुणा के धाम प्रभु श्री रामचन्द्रजी भीलों के वचन इस तरह सुन रहे हैं, जैसे पिता बालकों के वचन सुनता है॥136॥

चौपाई :

* रामहि केवल प्रेमु पिआरा। जानि लेउ जो जान निहारा॥
राम सकल बनचर तब तोषे। कहि मृदु बचन प्रेम परिपोषे॥1॥

भावार्थ:-श्री रामचन्द्रजी को केवल प्रेम प्यारा है, जो जानने वाला हो (जानना चाहता हो), वह जान ले। तब श्री रामचन्द्रजी ने प्रेम से परिपुष्ट हुए (प्रेमपूर्ण) कोमल वचन कहकर उन सब वन में विचरण करने वाले लोगों को संतुष्ट किया॥1॥

* बिदा किए सिर नाइ सिधाए। प्रभु गुन कहत सुनत घर आए॥
एहि बिधि सिय समेत दोउ भाई। बसहिं बिपिन सुर मुनि सुखदाई॥2॥

भावार्थ:-फिर उनको विदा किया। वे सिर नवाकर चले और प्रभु के गुण कहते-सुनते घर आए। इस प्रकार देवता और मुनियों को सुख देने वाले दोनों भाई सीताजी समेत वन में निवास करने लगे॥2॥

* जब तें आइ रहे रघुनायकु। तब तें भयउ बनु मंगलदायकु॥
फूलहिं फलहिं बिटप बिधि नाना। मंजु बलित बर बेलि बिताना॥3॥

भावार्थ:-जब से श्री रघुनाथजी वन में आकर रहे तब से वन मंगलदायक हो गया। अनेक प्रकार के वृक्ष फूलते और फलते हैं और उन पर लिपटी हुई सुंदर बेलों के मंडप तने हैं॥3॥

* सुरतरु सरिस सुभायँ सुहाए। मनहुँ बिबुध बन परिहरि आए॥
गुंज मंजुतर मधुकर श्रेनी। त्रिबिध बयारि बहइ सुख देनी॥4॥

भावार्थ:-वे कल्पवृक्ष के समान स्वाभाविक ही सुंदर हैं। मानो वे देवताओं के वन (नंदन वन) को छोड़कर आए हों। भौंरों की पंक्तियाँ बहुत ही सुंदर गुंजार करती हैं और सुख देने वाली शीतल, मंद, सुगंधित हवा चलती रहती है॥4॥

दोहा :

* नीलकंठ कलकंठ सुक चातक चक्क चकोर।
भाँति भाँति बोलहिं बिहग श्रवन सुखद चित चोर॥137॥

भावार्थ:-नीलकंठ, कोयल, तोते, पपीहे, चकवे और चकोर आदि पक्षी कानों को सुख देने वाली और चित्त को चुराने वाली तरह-तरह की बोलियाँ बोलते हैं॥137॥

चौपाई :

* करि केहरि कपि कोल कुरंगा। बिगतबैर बिचरहिं सब संगा॥
फिरत अहेर राम छबि देखी। होहिं मुदित मृग बृंद बिसेषी॥1॥

भावार्थ:-हाथी, सिंह, बंदर, सूअर और हिरन, ये सब वैर छोड़कर साथ-साथ विचरते हैं। शिकार के लिए फिरते हुए श्री रामचन्द्रजी की छबि को देखकर पशुओं के समूह विशेष आनंदित होते हैं॥1॥

* बिबुध बिपिन जहँ लगि जग माहीं। देखि रामबनु सकल सिहाहीं॥
सुरसरि सरसइ दिनकर कन्या। मेकलसुता गोदावरि धन्या॥2॥

भावार्थ:-जगत में जहाँ तक (जितने) देवताओं के वन हैं, सब श्री रामजी के वन को देखकर सिहाते हैं, गंगा, सरस्वती, सूर्यकुमारी यमुना, नर्मदा, गोदावरी आदि धन्य (पुण्यमयी) नदियाँ,॥2॥

* सब सर सिंधु नदीं नद नाना। मंदाकिनि कर करहिं बखाना॥
उदय अस्त गिरि अरु कैलासू। मंदर मेरु सकल सुरबासू॥3॥

भावार्थ:-सारे तालाब, समुद्र, नदी और अनेकों नद सब मंदाकिनी की बड़ाई करते हैं। उदयाचल, अस्ताचल, कैलास, मंदराचल और सुमेरु आदि सब, जो देवताओं के रहने के स्थान हैं,॥3॥

* सैल हिमाचल आदिक जेते। चित्रकूट जसु गावहिं तेते॥
बिंधि मुदित मन सुखु न समाई। श्रम बिनु बिपुल बड़ाई पाई॥4॥

भावार्थ:-और हिमालय आदि जितने पर्वत हैं, सभी चित्रकूट का यश गाते हैं। विन्ध्याचल बड़ा आनंदित है, उसके मन में सुख

समाता नहीं, क्योंकि उसने बिना परिश्रम ही बहुत बड़ी बड़ाई पा ली है॥4॥

दोहा :

* चित्रकूट के बिहग मृग बेलि बिटप तृन जाति।
पुन्य पुंज सब धन्य अस कहहिं देव दिन राति॥138॥

भावार्थ:-चित्रकूट के पक्षी, पशु, बेल, वृक्ष, तृण-अंकुरादि की सभी जातियाँ पुण्य की राशि हैं और धन्य हैं- देवता दिन-रात ऐसा कहते हैं॥138॥

चौपाई :

* नयनवंत रघुबरहि बिलोकी। पाइ जनम फल होहिं बिसोकी॥
परसि चरन रज अचर सुखारी। भए परम पद के अधिकारी॥1॥

भावार्थ:-आँखों वाले जीव श्री रामचन्द्रजी को देखकर जन्म का फल पाकर शोकरहित हो जाते हैं और अचर (पर्वत, वृक्ष, भूमि, नदी आदि) भगवान की चरण रज का स्पर्श पाकर सुखी होते हैं। यों सभी परम पद (मोक्ष) के अधिकारी हो गए॥1॥

* सो बनु सैलु सुभायँ सुहावन। मंगलमय अति पावन पावन॥
महिमा कहिअ कवनि बिधि तासू। सुखसागर जहँ कीन्ह निवासू॥2॥

भावार्थ:-वह वन और पर्वत स्वाभाविक ही सुंदर, मंगलमय और अत्यन्त पवित्रों को भी पवित्र करने वाला है। उसकी महिमा किस प्रकार कही जाए, जहाँ सुख के समुद्र श्री रामजी ने निवास किया है॥2॥

* पय पयोधि तजि अवध बिहाई। जहँ सिय लखनु रामु रहे आई॥

कहि न सकहिं सुषमा जसि कानन। जौं सत सहस होहिं सहसानन॥3॥

भावार्थ:-क्षीर सागर को त्यागकर और अयोध्या को छोड़कर जहाँ सीताजी, लक्ष्मणजी और श्री रामचन्द्रजी आकर रहे, उस वन की जैसी परम शोभा है, उसको हजार मुख वाले जो लाख शेषजी हों तो वे भी नहीं कह सकते॥3॥

* सो मैं बरनि कहौं बिधि केहीं। डाबर कमठ कि मंदर लेहीं॥
सेवहिं लखनु करम मन बानी। जाइ न सीलु सनेहु बखानी॥4॥

भावार्थ:-उसे भला, मैं किस प्रकार से वर्णन करके कह सकता हूँ। कहीं पोखरे का (क्षुद्र) कछुआ भी मंदराचल उठा सकता है? लक्ष्मणजी मन, वचन और कर्म से श्री रामचन्द्रजी की सेवा करते हैं। उनके शील और स्नेह का वर्णन नहीं किया जा सकता॥4॥

दोहा :

* छिनु छिनु लखि सिय राम पद जानि आपु पर नेहु।
करत न सपनेहुँ लखनु चितु बंधु मातु पितु गेहु॥139॥

भावार्थ:-क्षण-क्षण पर श्री सीता-रामजी के चरणों को देखकर और अपने ऊपर उनका स्नेह जानकर लक्ष्मणजी स्वप्न में भी भाइयों, माता-पिता और घर की याद नहीं करते॥139॥

चौपाई :

* राम संग सिय रहति सुखारी। पुर परिजन गृह सुरति बिसारी॥
छिनु छिनु पिय बिधु बदनु निहारी। प्रमुदित मनहुँ चकोर कुमारी॥1॥

भावार्थ:-श्री रामचन्द्रजी के साथ सीताजी अयोध्यापुरी, कुटुम्ब के लोग और घर की याद भूलकर बहुत ही सुखी रहती हैं। क्षण-

क्षण पर पति श्री रामचन्द्रजी के चन्द्रमा के समान मुख को देखकर वे वैसे ही परम प्रसन्न रहती हैं, जैसे चकोर कुमारी (चकोरी) चन्द्रमा को देखकर !॥1॥

* नाह नेहु नित बढ़त बिलोकी। हरषित रहति दिवस जिमि कोकी॥
सिय मनु राम चरन अनुरागा। अवध सहस सम बनु प्रिय लागा॥2॥

भावार्थ:-स्वामी का प्रेम अपने प्रति नित्य बढ़ता हुआ देखकर सीताजी ऐसी हर्षित रहती हैं, जैसे दिन में चकवी! सीताजी का मन श्री रामचन्द्रजी के चरणों में अनुरक्त है, इससे उनको वन हजारों अवध के समान प्रिय लगता है॥2॥

* परनकुटी प्रिय प्रियतम संगा। प्रिय परिवारु कुरंग बिहंगा॥
सासु ससुर सम मुनितिय मुनिबर। असनु अमिअ सम कंद मूल फर॥3॥

भावार्थ:-प्रियतम (श्री रामचन्द्रजी) के साथ पर्णकुटी प्यारी लगती है। मृग और पक्षी प्यारे कुटुम्बियों के समान लगते हैं। मुनियों की स्त्रियाँ सास के समान, श्रेष्ठ मुनि ससुर के समान और कंद-मूल-फलों का आहार उनको अमृत के समान लगता है॥3॥

* नाथ साथ साँथरी सुहाई। मयन सयन सय सम सुखदाई॥
लोकप होहिं बिलोकत जासू। तेहि कि मोहि सक बिषय बिलासू॥4॥

भावार्थ:-स्वामी के साथ सुंदर साथरी (कुश और पत्तों की सेज) सैकड़ों कामदेव की सेजों के समान सुख देने वाली है। जिनके

(कृपापूर्वक) देखने मात्र से जीव लोकपाल हो जाते हैं, उनको कहीं भोग-विलास मोहित कर सकते हैं!॥4॥

दोहा :

* सुमिरत रामहि तजहिं जन तृन सम बिषय बिलासु।
रामप्रिया जग जननि सिय कछु न आचरजु तासु॥140॥

भावार्थ:-जिन श्री रामचन्द्रजी का स्मरण करने से ही भक्तजन तमाम भोग-विलास को तिनके के समान त्याग देते हैं, उन श्री रामचन्द्रजी की प्रिय पत्नी और जगत की माता सीताजी के लिए यह (भोग-विलास का त्याग) कुछ भी आश्चर्य नहीं है॥140॥

चौपाई :

* सीय लखन जेहि बिधि सुखु लहहीं। सोइ रघुनाथ करहिं सोइ कहहीं॥
कहहिं पुरातन कथा कहानी। सुनहिं लखनु सिय अति सुखु मानी॥1॥

भावार्थ:-सीताजी और लक्ष्मणजी को जिस प्रकार सुख मिले, श्री रघुनाथजी वही करते और वही कहते हैं। भगवान प्राचीन कथाएँ और कहानियाँ कहते हैं और लक्ष्मणजी तथा सीताजी अत्यन्त सुख मानकर सुनते हैं॥1॥

* जब जब रामु अवध सुधि करहीं। तब तब बारि बिलोचन भरहीं॥
सुमिरि मातु पितु परिजन भाई। भरत सनेहु सीलु सेवकाई॥2॥

भावार्थ:-जब-जब श्री रामचन्द्रजी अयोध्या की याद करते हैं, तब-तब उनके नेत्रों में जल भर आता है। माता-पिता, कुटुम्बियों और

भाइयों तथा भरत के प्रेम, शील और सेवाभाव को याद करके-॥2॥

* कृपासिंधु प्रभु होहिं दुखारी। धीरजु धरहिं कुसमउ बिचारी॥
लखि सिय लखनु बिकल होइ जाहीं। जिमि पुरुषहि अनुसर परिछाहीं॥3॥

भावार्थ:-कृपा के समुद्र प्रभु श्री रामचन्द्रजी दुःखी हो जाते हैं, किन्तु फिर कुसमय समझकर धीरज धारण कर लेते हैं। श्री रामचन्द्रजी को दुःखी देखकर सीताजी और लक्ष्मणजी भी व्याकुल हो जाते हैं, जैसे किसी मनुष्य की परछाहीं उस मनुष्य के समान ही चेष्टा करती है॥3॥

* प्रिया बंधु गति लखि रघुनंदनु। धीर कृपाल भगत उर चंदनु॥
लगे कहन कछु कथा पुनीता। सुनि सुखु लहहिं लखनु अरु सीता॥4॥

भावार्थ:-तब धीर, कृपालु और भक्तों के हृदयों को शीतल करने के लिए चंदन रूप रघुकुल को आनंदित करने वाले श्री रामचन्द्रजी प्यारी पत्नी और भाई लक्ष्मण की दशा देखकर कुछ पवित्र कथाएँ कहने लगते हैं, जिन्हें सुनकर लक्ष्मणजी और सीताजी सुख प्राप्त करते हैं॥4॥

दोहा :

* रामु लखन सीता सहित सोहत परन निकेत।
जिमि बासव बस अमरपुर सची जयंत समेत॥141॥

भावार्थ:-लक्ष्मणजी और सीताजी सहित श्री रामचन्द्रजी पर्णकुटी में ऐसे सुशोभित हैं, जैसे अमरावती में इन्द्र अपनी पत्नी शची और पुत्र जयंत सहित बसता है॥141॥

चौपाई :

* जोगवहिं प्रभुसिय लखनहि कैसें। पलक बिलोचन गोलक जैसें॥
सेवहिं लखनु सीय रघुबीरहि। जिमि अबिबेकी पुरुष सरीरहि॥1॥

भावार्थ:-प्रभु श्री रामचन्द्रजी सीताजी और लक्ष्मणजी की कैसी सँभाल रखते हैं, जैसे पलकें नेत्रों के गोलकों की। इधर लक्ष्मणजी श्री सीताजी और श्री रामचन्द्रजी की (अथवा लक्ष्मणजी और सीताजी श्री रामचन्द्रजी की) ऐसी सेवा करते हैं, जैसे अज्ञानी मनुष्य शरीर की करते हैं॥1॥

* एहि बिधि प्रभु बन बसहिं सुखारी। खग मृग सुर तापस हितकारी॥
कहेउँ राम बन गवनु सुहावा। सुनहु सुमंत्र अवध जिमि आवा॥2॥

भावार्थ:-पक्षी, पशु, देवता और तपस्वियों के हितकारी प्रभु इस प्रकार सुखपूर्वक वन में निवास कर रहे हैं। तुलसीदासजी कहते हैं- मैंने श्री रामचन्द्रजी का सुंदर वनगमन कहा। अब जिस तरह सुमन्त्र अयोध्या में आए वह (कथा) सुनो॥2॥

* फिरेउ निषादु प्रभुहि पहुँचाई। सचिव सहित रथ देखेसि आई॥
मंत्री बिकल बिलोकि निषादू। कहि न जाइ जस भयउ बिषादू॥3॥

भावार्थ:-प्रभु श्री रामचन्द्रजी को पहुँचाकर जब निषादराज लौटा, तब आकर उसने रथ को मंत्री (सुमंत्र) सहित देखा। मंत्री को व्याकुल देखकर निषाद को जैसा दुःख हुआ, वह कहा नहीं जाता॥3॥

* राम राम सिय लखन पुकारी। परेउ धरनितल ब्याकुल भारी॥

देखि दखिन दिसि हय हिहिनाहीं। जनु बिनु पंख बिहग अकुलाहीं॥4॥

भावार्थ:-(निषाद को अकेले आया देखकर) सुमंत्र हा राम! हा राम! हा सीते! हा लक्ष्मण! पुकारते हुए, बहुत व्याकुल होकर धरती पर गिर पड़े। (रथ के) घोड़े दक्षिण दिशा की ओर (जिधर श्री रामचन्द्रजी गए थे) देख-देखकर हिनहिनाते हैं। मानो बिना पंख के पक्षी व्याकुल हो रहे हों॥4॥

दोहा :

* नहिं तृन चरहिं न पिअहिं जलु मोचहिं लोचन बारि।
ब्याकुल भए निषाद सब रघुबर बाजि निहारि॥142॥

भावार्थ:-वे न तो घास चरते हैं, न पानी पीते हैं। केवल आँखों से जल बहा रहे हैं। श्री रामचन्द्रजी के घोड़ों को इस दशा में देखकर सब निषाद व्याकुल हो गए॥142॥

चौपाई :

* धरि धीरजु तब कहइ निषादू। अब सुमंत्र परिहरहु बिषादू॥
तुम्ह पंडित परमारथ ग्याता। धरहु धीर लखि बिमुख बिधाता॥1॥

भावार्थ:-तब धीरज धरकर निषादराज कहने लगा- हे सुमंत्रजी! अब विषाद को छोड़िए। आप पंडित और परमार्थ के जानने वाले हैं। विधाता को प्रतिकूल जानकर धैर्य धारण कीजिए॥1॥

* बिबिधि कथा कहि कहि मृदु बानी। रथ बैठारेउ बरबस आनी॥
सोक सिथिल रथु सकइ न हाँकी। रघुबर बिरह पीर उर बाँकी॥2॥

भावार्थ:-कोमल वाणी से भाँति-भाँति की कथाएँ कहकर निषाद ने जबर्दस्ती लाकर सुमंत्र को रथ पर बैठाया, परन्तु शोक के

मारे वे इतने शिथिल हो गए कि रथ को हाँक नहीं सकते। उनके हृदय में श्री रामचन्द्रजी के विरह की बड़ी तीव्र वेदना है॥2॥

* चरफराहिं मग चलहिं न घोरे। बन मृग मनहुँ आनि रथ जोरे॥
अढ़ुकि परहिं फिरि हेरहिं पीछें। राम बियोगि बिकल दुख तीछें॥3॥

भावार्थ:-घोड़े तड़फड़ाते हैं और (ठीक) रास्ते पर नहीं चलते। मानो जंगली पशु लाकर रथ में जोत दिए गए हों। वे श्री रामचन्द्रजी के वियोगी घोड़े कभी ठोकर खाकर गिर पड़ते हैं, कभी घूमकर पीछे की ओर देखने लगते हैं। वे तीक्ष्ण दुःख से व्याकुल हैं॥3॥

*जो कह रामु लखनु बैदेही। हिंकरि हिंकरि हित हेरहिं तेही॥
बाजि बिरह गति कहि किमि जाती। बिनु मनि फनिक बिकल जेहिं भाँती॥4॥

भावार्थ:-जो कोई राम, लक्ष्मण या जानकी का नाम ले लेता है, घोड़े हिकर-हिकरकर उसकी ओर प्यार से देखने लगते हैं। घोड़ों की विरह दशा कैसे कही जा सकती है? वे ऐसे व्याकुल हैं, जैसे मणि के बिना साँप व्याकुल होता है॥4॥

गीताप्रेस गोरखपुर

सुमन्त्र का अयोध्या को लौटना और सर्वत्र शोक देखना

दोहा :

* भयउ निषादु बिषादबस देखत सचिव तुरंग।
बोलि सुसेवक चारि तब दिए सारथी संग॥143॥

भावार्थ:-मंत्री और घोड़ों की यह दशा देखकर निषादराज विषाद के वश हो गया। तब उसने अपने चार उत्तम सेवक बुलाकर सारथी के साथ कर दिए॥143॥

चौपाई :

* गुह सारथिहि फिरेउ पहुँचाई। बिरहु बिषादु बरनि नहिं जाई॥
चले अवध लेइ रथहि निषादा। होहिं छनहिं छन मगन बिषादा॥1॥

भावार्थ:-निषादराज गुह सारथी (सुमंत्रजी) को पहुँचाकर (विदा करके) लौटा। उसके विरह और दुःख का वर्णन नहीं किया जा सकता। वे चारों निषाद रथ लेकर अवध को चले। (सुमंत्र और घोड़ों को देख-देखकर) वे भी क्षण-क्षणभर विषाद में डूबे जाते थे॥1॥

* सोच सुमंत्र बिकल दुख दीना। धिग जीवन रघुबीर बिहीना॥
रहिहि न अंतहुँ अधम सरीरू। जसु न लहेउ बिछुरत रघुबीरू॥2॥

भावार्थ:-व्याकुल और दुःख से दीन हुए सुमंत्रजी सोचते हैं कि श्री रघुवीर के बिना जीना धिक्कार है। आखिर यह अधम शरीर रहेगा तो है ही नहीं। अभी श्री रामचन्द्रजी के बिछुड़ते ही छूटकर इसने यश (क्यों) नहीं ले लिया॥2॥

* भए अजस अघ भाजन प्राना। कवन हेतु नहिं करत पयाना॥
अहह मंद मनु अवसर चूका। अजहुँ न हृदय होत दुइ टूका॥3॥

भावार्थ:-ये प्राण अपयश और पाप के भाँडे हो गए। अब ये किस कारण कूच नहीं करते (निकलते नहीं)? हाय! नीच मन (बड़ा

अच्छा) मौका चूक गया। अब भी तो हृदय के दो टुकड़े नहीं हो जाते!॥3॥

* मीजि हाथ सिरु धुनि पछिताई। मनहुँ कृपन धन रासि गवाँई॥
बिरिद बाँधि बर बीरु कहाई। चलेउ समर जनु सुभट पराई॥4॥

भावार्थ:-सुमंत्र हाथ मल-मलकर और सिर पीट-पीटकर पछताते हैं। मानो कोई कंजूस धन का खजाना खो बैठा हो। वे इस प्रकार चले मानो कोई बड़ा योद्धा वीर का बाना पहनकर और उत्तम शूरवीर कहलाकर युद्ध से भाग चला हो!॥4॥

दोहा :

* बिप्र बिबेकी बेदबिद संमत साधु सुजाति।
जिमि धोखें मदपान कर सचिव सोच तेहि भाँति॥144॥

भावार्थ:-जैसे कोई विवेकशील, वेद का ज्ञाता, साधुसम्मत आचरणों वाला और उत्तम जाति का (कुलीन) ब्राह्मण धोखे से मदिरा पी ले और पीछे पछतावे, उसी प्रकार मंत्री सुमंत्र सोच कर रहे (पछता रहे) हैं॥144॥

चौपाई :

* जिमि कुलीन तिय साधु सयानी। पतिदेवता करम मन बानी॥
रहै करम बस परिहरि नाहू। सचिव हृदयँ तिमि दारुन दाहू॥1॥

भावार्थ:-जैसे किसी उत्तम कुलवाली, साधु स्वाभाव की, समझदार और मन, वचन, कर्म से पति को ही देवता मानने वाली पतिव्रता स्त्री को भाग्यवश पति को छोड़कर (पति से अलग) रहना पड़े, उस समय उसके हृदय में जैसे भयानक संताप होता है, वैसे ही मंत्री के हृदय में हो रहा है॥1॥

* लोचन सजल डीठि भइ थोरी। सुनइ न श्रवन बिकल मति भोरी॥
सूखहिं अधर लागि मुहँ लाटी। जिउ न जाइ उर अवधि कपाटी॥2॥

भावार्थ:-नेत्रों में जल भरा है, दृष्टि मंद हो गई है। कानों से सुनाई नहीं पड़ता, व्याकुल हुई बुद्धि बेठिकाने हो रही है। होठ सूख रहे हैं, मुँह में लाटी लग गई है, किन्तु (ये सब मृत्यु के लक्षण हो जाने पर भी) प्राण नहीं निकलते, क्योंकि हृदय में अवधि रूपी किवाड़ लगे हैं (अर्थात चौदह वर्ष बीत जाने पर भगवान फिर मिलेंगे, यही आशा रुकावट डाल रही है)॥2॥

* बिबरन भयउ न जाइ निहारी। मारेसि मनहुँ पिता महतारी॥
हानि गलानि बिपुल मन ब्यापी। जमपुर पंथ सोच जिमि पापी॥3॥

भावार्थ:-सुमंत्रजी के मुख का रंग बदल गया है, जो देखा नहीं जाता। ऐसा मालूम होता है मानो इन्होंने माता-पिता को मार डाला हो। उनके मन में रामवियोग रूपी हानि की महान ग्लानि (पीड़ा) छा रही है, जैसे कोई पापी मनुष्य नरक को जाता हुआ रास्ते में सोच कर रहा हो॥3॥

* बचनु न आव हृदयँ पछिताई। अवध काह मैं देखब जाई॥
राम रहित रथ देखिहि जोई। सकुचिहि मोहि बिलोकत सोई॥4॥

भावार्थ:-मुँह से वचन नहीं निकलते। हृदय में पछताते हैं कि मैं अयोध्या में जाकर क्या देखूँगा? श्री रामचन्द्रजी से शून्य रथ को

जो भी देखेगा, वही मुझे देखने में संकोच करेगा (अर्थात मेरा मुँह नहीं देखना चाहेगा)॥4॥

दोहा :

* धाइ पूँछिहहिं मोहि जब बिकल नगर नर नारि।
उतरु देब मैं सबहि तब हृदयँ बज्रु बैठारि॥145॥

भावार्थ:-नगर के सब व्याकुल स्त्री-पुरुष जब दौड़कर मुझसे पूछेंगे, तब मैं हृदय पर वज्र रखकर सबको उत्तर दूँगा॥145॥

चौपाई :

* पुछिहहिं दीन दुखित सब माता। कहब काह मैं तिन्हहि बिधाता।
पूछिहि जबहिं लखन महतारी। कहिहउँ कवन सँदेस सुखारी॥1॥

भावार्थ:-जब दीन-दुःखी सब माताएँ पूछेंगी, तब हे विधाता! मैं उन्हें क्या कहूँगा? जब लक्ष्मणजी की माता मुझसे पूछेंगी, तब मैं उन्हें कौन सा सुखदायी सँदेसा कहूँगा?॥1॥

* राम जननि जब आइहि धाई। सुमिरि बच्छु जिमि धेनु लवाई॥
पूँछत उतरु देब मैं तेही। गे बनु राम लखनु बैदेही॥2॥

भावार्थ:-श्री रामजी की माता जब इस प्रकार दौड़ी आवेंगी जैसे नई ब्यायी हुई गौ बछड़े को याद करके दौड़ी आती है, तब उनके पूछने पर मैं उन्हें यह उत्तर दूँगा कि श्री राम, लक्ष्मण, सीता वन को चले गए!॥2॥

* जोई पूँछिहि तेहि ऊतरु देबा। जाइ अवध अब यहु सुखु लेबा॥
पूँछिहि जबहिं राउ दुख दीना। जिवनु जासु रघुनाथ अधीना॥3॥

भावार्थ:-जो भी पूछेगा उसे यही उत्तर देना पड़ेगा! हाय! अयोध्या जाकर अब मुझे यही सुख लेना है! जब दुःख से दीन महाराज, जिनका जीवन श्री रघुनाथजी के (दर्शन के) ही अधीन है, मुझसे पूछेंगे,॥3॥

* देहउँ उतरु कौनु मुहु लाई। आयउँ कुसल कुअँर पहुँचाई॥
सुनत लखन सिय राम सँदेसू। तृन जिमि तनु परिहरिहि नरेसू॥4॥

भावार्थ:-तब मैं कौन सा मुँह लेकर उन्हें उत्तर दूँगा कि मैं राजकुमारों को कुशल पूर्वक पहुँचा आया हूँ! लक्ष्मण, सीता और श्रीराम का समाचार सुनते ही महाराज तिनके की तरह शरीर को त्याग देंगे॥4॥

दोहा :

* हृदउ न बिदरेउ पंक जिमि बिछुरत प्रीतमु नीरु।
जानत हौं मोहि दीन्ह बिधि यहु जातना सरीरु॥146॥

भावार्थ:-प्रियतम (श्री रामजी) रूपी जल के बिछुड़ते ही मेरा हृदय कीचड़ की तरह फट नहीं गया, इससे मैं जानता हूँ कि विधाता ने मुझे यह 'यातना शरीर' ही दिया है (जो पापी जीवों को नरक भोगने के लिए मिलता है)॥146॥

चौपाई :

* एहि बिधि करत पंथ पछितावा। तमसा तीर तुरत रथु आवा॥
बिदा किए करि बिनय निषादा। फिरे पायँ परि बिकल बिषादा॥1॥

भावार्थ:-सुमंत्र इस प्रकार मार्ग में पछतावा कर रहे थे, इतने में ही रथ तुरंत तमसा नदी के तट पर आ पहुँचा। मंत्री ने विनय

करके चारों निषादों को विदा किया। वे विषाद से व्याकुल होते हुए सुमंत्र के पैरों पड़कर लौटे॥1॥

* पैठत नगर सचिव सकुचाई। जनु मारेसि गुर बाँभन गाई॥
बैठि बिटप तर दिवसु गवाँवा। साँझ समय तब अवसरु पावा॥2॥

भावार्थ:-नगर में प्रवेश करते मंत्री (ग्लानि के कारण) ऐसे सकुचाते हैं, मानो गुरु, ब्राह्मण या गौ को मारकर आए हों। सारा दिन एक पेड़ के नीचे बैठकर बिताया। जब संध्या हुई तब मौका मिला॥2॥

* अवध प्रबेसु कीन्ह अँधिआरें। पैठ भवन रथु राखि दुआरें॥
जिन्ह जिन्ह समाचार सुनि पाए। भूप द्वार रथु देखन आए॥3॥

भावार्थ:-अँधेरा होने पर उन्होंने अयोध्या में प्रवेश किया और रथ को दरवाजे पर खड़ा करके वे (चुपके से) महल में घुसे। जिन-जिन लोगों ने यह समाचार सुना पाया, वे सभी रथ देखने को राजद्वार पर आए॥3॥

* रथु पहिचानि बिकल लखि घोरे। गरहिं गात जिमि आतप ओरे॥
नगर नारि नर ब्याकुल कैसें। निघटत नीर मीनगन जैसें॥4॥

भावार्थ:-रथ को पहचानकर और घोड़ों को व्याकुल देखकर उनके शरीर ऐसे गले जा रहे हैं (क्षीण हो रहे हैं) जैसे घाम में ओले! नगर के स्त्री-पुरुष कैसे व्याकुल हैं, जैसे जल के घटने पर मछलियाँ (व्याकुल होती हैं)॥4॥

दोहा :

* सचिव आगमनु सुनत सबु बिकल भयउ रनिवासु।
भवनु भयंकरु लाग तेहि मानहुँ प्रेत निवासु॥147॥

भावार्थ:-मंत्री का (अकेले ही) आना सुनकर सारा रनिवास व्याकुल हो गया। राजमहल उनको ऐसा भयानक लगा मानो प्रेतों का निवास स्थान (श्मशान) हो॥147॥

चौपाई :

* अति आरति सब पूँछहिं रानी। उतरु न आव बिकल भइ बानी॥
सुनइ न श्रवन नयन नहिं सूझा। कहहु कहाँ नृपु तेहि तेहि बूझा॥1॥

भावार्थ:-अत्यन्त आर्त होकर सब रानियाँ पूछती हैं, पर सुमंत्र को कुछ उत्तर नहीं आता, उनकी वाणी विकल हो गई (रुक गई) है। न कानों से सुनाई पड़ता है और न आँखों से कुछ सूझता है। वे जो भी सामने आता है उस-उससे पूछते हैं कहो, राजा कहाँ हैं ?॥1॥

* दासिन्ह दीख सचिव बिकलाई। कौसल्या गृहँ गईं लवाई॥
जाइ सुमंत्र दीख कस राजा। अमिअ रहित जनु चंदु बिराजा॥2॥

भावार्थ:-दासियाँ मंत्री को व्याकुल देखकर उन्हें कौसल्याजी के महल में लिवा गईं। सुमंत्र ने जाकर वहाँ राजा को कैसा (बैठे) देखा मानो बिना अमृत का चन्द्रमा हो॥2॥

* आसन सयन बिभूषन हीना। परेउ भूमितल निपट मलीना॥
लेइ उसासु सोच एहि भाँती। सुरपुर तें जनु खँसेउ जजाती॥3॥

भावार्थ:-राजा आसन, शय्या और आभूषणों से रहित बिलकुल मलिन (उदास) पृथ्वी पर पड़े हुए हैं। वे लंबी साँसें लेकर इस प्रकार सोच करते हैं, मानो राजा ययाति स्वर्ग से गिरकर सोच कर रहे हों॥3॥

* लेत सोच भरि छिनु छिनु छाती। जनु जरि पंख परेउ संपाती॥
राम राम कह राम सनेही। पुनि कह राम लखन बैदेही॥4॥

भावार्थ:-राजा क्षण-क्षण में सोच से छाती भर लेते हैं। ऐसी विकल दशा है मानो (गीध राज जटायु का भाई) सम्पाती पंखों के जल जाने पर गिर पड़ा हो। राजा (बार-बार) 'राम, राम' 'हा स्नेही (प्यारे) राम!' कहते हैं, फिर 'हा राम, हा लक्ष्मण, हा जानकी' ऐसा कहने लगते हैं॥4॥

गीताप्रेस गोरखपुर

दशरथ-सुमन्त्र संवाद, दशरथ मरण

दोहा :

* देखि सचिवँ जय जीव कहि कीन्हेउ दंड प्रनामु।
सुनत उठेउ ब्याकुल नृपति कहु सुमंत्र कहँ रामु॥148॥

भावार्थ:-मंत्री ने देखकर 'जयजीव' कहकर दण्डवत् प्रणाम किया। सुनते ही राजा व्याकुल होकर उठे और बोले- सुमंत्र! कहो, राम कहाँ हैं ?॥148॥

चौपाई :

* भूप सुमंत्रु लीन्ह उर लाई। बूड़त कछु अधार जनु पाई॥
सहित सनेह निकट बैठारी। पूँछत राउ नयन भरि बारी॥1॥

भावार्थ:-राजा ने सुमंत्र को हृदय से लगा लिया। मानो डूबते हुए आदमी को कुछ सहारा मिल गया हो। मंत्री को स्नेह के साथ पास बैठाकर नेत्रों में जल भरकर राजा पूछने लगे-॥1॥

* राम कुसल कहु सखा सनेही। कहँ रघुनाथु लखनु बैदेही॥
आने फेरि कि बनहि सिधाए। सुनत सचिव लोचन जल छाए॥2॥

भावार्थ:-हे मेरे प्रेमी सखा! श्री राम की कुशल कहो। बताओ, श्री राम, लक्ष्मण और जानकी कहाँ हैं? उन्हें लौटा लाए हो कि वे वन को चले गए? यह सुनते ही मंत्री के नेत्रों में जल भर आया॥2॥

* सोक बिकल पुनि पूँछ नरेसू। कहु सिय राम लखन संदेसू॥
राम रूप गुन सील सुभाऊ। सुमिरि सुमिरि उर सोचत राऊ॥3॥

भावार्थ:-शोक से व्याकुल होकर राजा फिर पूछने लगे- सीता, राम और लक्ष्मण का संदेसा तो कहो। श्री रामचन्द्रजी के रूप, गुण, शील और स्वभाव को याद कर-करके राजा हृदय में सोच करते हैं॥3॥

* राउ सुनाइ दीन्ह बनबासू। सुनि मन भयउ न हरषु हराँसू॥
सो सुत बिछुरत गए न प्राना। को पापी बड़ मोहि समाना॥4॥

भावार्थ:-(और कहते हैं-) मैंने राजा होने की बात सुनाकर वनवास दे दिया, यह सुनकर भी जिस (राम) के मन में हर्ष और विषाद नहीं हुआ, ऐसे पुत्र के बिछुड़ने पर भी मेरे प्राण नहीं गए, तब मेरे समान बड़ा पापी कौन होगा ?॥4॥

दोहा :

* सखा रामु सिय लखनु जहँ तहाँ मोहि पहुँचाउ।

नाहिं त चाहत चलन अब प्रान कहउँ सतिभाउ॥149॥

भावार्थ:-हे सखा! श्री राम, जानकी और लक्ष्मण जहाँ हैं, मुझे भी वहीं पहुँचा दो। नहीं तो मैं सत्य भाव से कहता हूँ कि मेरे प्राण अब चलना ही चाहते हैं॥149॥

चौपाई :

* पुनि पुनि पूँछत मंत्रिहि राऊ। प्रियतम सुअन सँदेस सुनाऊ॥
करहि सखा सोइ बेगि उपाऊ। रामु लखनु सिय नयन देखाऊ॥1॥

भावार्थ:-राजा बार-बार मंत्री से पूछते हैं- मेरे प्रियतम पुत्रों का संदेसा सुनाओ। हे सखा! तुम तुरंत वही उपाय करो जिससे श्री राम, लक्ष्मण और सीता को मुझे आँखों दिखा दो॥1॥

* सचिव धीर धरि कह मृदु बानी। महाराज तुम्ह पंडित ग्यानी॥
बीर सुधीर धुरंधर देवा। साधु समाजु सदा तुम्ह सेवा॥2॥

भावार्थ:-मंत्री धीरज धरकर कोमल वाणी बोले- महाराज! आप पंडित और ज्ञानी हैं। हे देव! आप शूरवीर तथा उत्तम धैर्यवान पुरुषों में श्रेष्ठ हैं। आपने सदा साधुओं के समाज की सेवा की है॥2॥

* जनम मरन सब दुख सुख भोगा। हानि लाभु प्रिय मिलन बियोगा॥
काल करम बस होहिं गोसाईं। बरबस राति दिवस की नाईं॥3॥

भावार्थ:-जन्म-मरण, सुख-दुःख के भोग, हानि-लाभ, प्यारों का मिलना-बिछुड़ना, ये सब हे स्वामी! काल और कर्म के अधीन रात और दिन की तरह बरबस होते रहते हैं॥3॥

* सुख हरषहिं जड़ दुख बिलखाहीं। दोउ सम धीर धरहिं मन माहीं॥

धीरज धरहु बिबेकु बिचारी। छाड़िअ सोच सकल हितकारी॥4॥

भावार्थ:-मूर्ख लोग सुख में हर्षित होते और दुःख में रोते हैं, पर धीर पुरुष अपने मन में दोनों को समान समझते हैं। हे सबके हितकारी (रक्षक)! आप विवेक विचारकर धीरज धरिए और शोक का परित्याग कीजिए॥4॥

दोहा :

* प्रथम बासु तमसा भयउ दूसर सुरसरि तीर।
न्हाइ रहे जलपानु करि सिय समेत दोउ बीर॥150॥

भावार्थ:-श्री रामजी का पहला निवास (मुकाम) तमसा के तट पर हुआ, दूसरा गंगातीर पर। सीताजी सहित दोनों भाई उस दिन स्नान करके जल पीकर ही रहे॥150॥

चौपाई :

* केवट कीन्हि बहुत सेवकाई। सो जामिनि सिंगरौर गवाँई॥
होत प्रात बट छीरु मगावा। जटा मुकुट निज सीस बनावा॥1॥

भावार्थ:-केवट (निषादराज) ने बहुत सेवा की। वह रात सिंगरौर (श्रृंगवेरपुर) में ही बिताई। दूसरे दिन सबेरा होते ही बड़ का दूध मँगवाया और उससे श्री राम-लक्ष्मण ने अपने सिरों पर जटाओं के मुकुट बनाए॥1॥

* राम सखाँ तब नाव मगाई। प्रिया चढ़ाई चढ़े रघुराई॥
लखन बान धनु धरे बनाई। आपु चढ़े प्रभु आयसु पाई॥2॥

भावार्थ:-तब श्री रामचन्द्रजी के सखा निषादराज ने नाव मँगवाई। पहले प्रिया सीताजी को उस पर चढ़ाकर फिर श्री रघुनाथजी चढ़े। फिर लक्ष्मणजी ने धनुष-बाण सजाकर रखे और प्रभु श्री रामचन्द्रजी की आज्ञा पाकर स्वयं चढ़े॥2॥

* बिकल बिलोकि मोहि रघुबीरा। बोले मधुर बचन धरि धीरा॥
तात प्रनामु तात सन कहेहू। बार बार पद पंकज गहेहू॥3॥

भावार्थ:-मुझे व्याकुल देखकर श्री रामचन्द्रजी धीरज धरकर मधुर वचन बोले- हे तात! पिताजी से मेरा प्रणाम कहना और मेरी ओर से बार-बार उनके चरण कमल पकड़ना॥3॥

* करबि पायँ परि बिनय बहोरी। तात करिअ जनि चिंता मोरी॥
बन मग मंगल कुसल हमारें। कृपा अनुग्रह पुन्य तुम्हारें॥4॥

भावार्थ:-फिर पाँव पकड़कर विनती करना कि हे पिताजी! आप मेरी चिंता न कीजिए। आपकी कृपा, अनुग्रह और पुण्य से वन में और मार्ग में हमारा कुशल-मंगल होगा॥4॥

छन्द :

* तुम्हरें अनुग्रह तात कानन जात सब सुखु पाइहौं।
प्रतिपालि आयसु कुसल देखन पाय पुनि फिरि आइहौं॥
जननीं सकल परितोषि परि परि पायँ करि बिनती घनी।
तुलसी करहु सोइ जतनु जेहिं कुसली रहहिं कोसलधनी॥

भावार्थ:-हे पिताजी! आपके अनुग्रह से मैं वन जाते हुए सब प्रकार का सुख पाऊँगा। आज्ञा का भलीभाँति पालन करके चरणों का दर्शन करने कुशल पूर्वक फिर लौट आऊँगा। सब माताओं के पैरों पड़-पड़कर उनका समाधान करके और उनसे बहुत विनती करके तुलसीदास कहते हैं- तुम वही प्रयत्न करना, जिसमें कोसलपति पिताजी कुशल रहें।

सोरठा :

* गुर सन कहब सँदेसु बार बार पद पदुम गहि।
करब सोइ उपदेसु जेहिं न सोच मोहि अवधपति॥151॥

भावार्थ:-बार-बार चरण कमलों को पकड़कर गुरु वशिष्ठजी से मेरा संदेसा कहना कि वे वही उपदेश दें, जिससे अवधपति पिताजी मेरा सोच न करें॥151॥

चौपाई :

* पुरजन परिजन सकल निहोरी। तात सुनाएहु बिनती मोरी॥
सोइ सब भाँति मोर हितकारी। जातें रह नरनाहु सुखारी॥1॥

भावार्थ:-हे तात! सब पुरवासियों और कुटुम्बियों से निहोरा (अनुरोध) करके मेरी विनती सुनाना कि वही मनुष्य मेरा सब प्रकार से हितकारी है, जिसकी चेष्टा से महाराज सुखी रहें॥1॥

* कहब सँदेसु भरत के आएँ। नीति न तजिअ राजपदु पाएँ॥
पालेहु प्रजहि करम मन बानी। सेएहु मातु सकल सम जानी॥2॥

भावार्थ:-भरत के आने पर उनको मेरा संदेसा कहना कि राजा का पद पा जाने पर नीति न छोड़ देना, कर्म, वचन और मन से प्रजा का पालन करना और सब माताओं को समान जानकर उनकी सेवा करना॥2॥

* ओर निबाहेहु भायप भाई। करि पितु मातु सुजन सेवकाई॥
तात भाँति तेहि राखब राऊ। सोच मोर जेहिं करै न काऊ॥3॥

भावार्थ:-और हे भाई! पिता, माता और स्वजनों की सेवा करके भाईपन को अंत तक निबाहना। हे तात! राजा (पिताजी) को उसी प्रकार से रखना जिससे वे कभी (किसी तरह भी) मेरा सोच न करें॥3॥

* लखन कहे कछु बचन कठोरा। बरजि राम पुनि मोहि निहोरा॥
बार बार निज सपथ देवाई। कहबि न तात लखन लरिकाई॥4॥

भावार्थ:-लक्ष्मणजी ने कुछ कठोर वचन कहे, किन्तु श्री रामजी ने उन्हें बरजकर फिर मुझसे अनुरोध किया और बार-बार अपनी सौगंध दिलाई (और कहा) हे तात! लक्ष्मण का लड़कपन वहाँ न कहना॥4॥

दोहा :

* कहि प्रनामु कछु कहन लिय सिय भइ सिथिल सनेह।
थकित बचन लोचन सजल पुलक पल्लवित देह॥152॥

भावार्थ:-प्रणाम कर सीताजी भी कुछ कहने लगी थीं, परन्तु स्नेहवश वे शिथिल हो गईं। उनकी वाणी रुक गई, नेत्रों में जल भर आया और शरीर रोमांच से व्याप्त हो गया॥152॥

चौपाई :

* तेहि अवसर रघुबर रुख पाई। केवट पारहि नाव चलाई॥
रघुकुलतिलक चले एहि भाँती। देखउँ ठाढ़ कुलिस धरि छाती॥1॥

भावार्थ:-उसी समय श्री रामचन्द्रजी का रुख पाकर केवट ने पार जाने के लिए नाव चला दी। इस प्रकार रघुवंश तिलक श्री रामचन्द्रजी चल दिए और मैं छाती पर वज्र रखकर खड़ा-खड़ा देखता रहा॥1॥

* मैं आपन किमि कहौं कलेसू। जिअत फिरेउँ लेइ राम सँदेसू॥
अस कहि सचिव बचन रहि गयऊ। हानि गलानि सोच बस भयऊ॥2॥

भावार्थ:-मैं अपने क्लेश को कैसे कहूँ, जो श्री रामजी का यह संदेसा लेकर जीता ही लौट आया! ऐसा कहकर मंत्री की वाणी रुक गई (वे चुप हो गए) और वे हानि की ग्लानि और सोच के वश हो गए॥2॥

* सूत बचन सुनतहिं नरनाहू। परेउ धरनि उर दारुन दाहू॥
तलफत बिषम मोह मन मापा। माजा मनहुँ मीन कहुँ ब्यापा॥3॥

भावार्थ:-सारथी सुमंत्र के वचन सुनते ही राजा पृथ्वी पर गिर पड़े, उनके हृदय में भयानक जलन होने लगी। वे तड़पने लगे, उनका मन भीषण मोह से व्याकुल हो गया। मानो मछली को माँजा व्याप गया हो (पहली वर्षा का जल लग गया हो)॥3॥

* करि बिलाप सब रोवहिं रानी। महा बिपति किमि जाइ बखानी॥
सुनि बिलाप दुखहू दुखु लागा। धीरजहू कर धीरजु भागा॥4॥

भावार्थ:-सब रानियाँ विलाप करके रो रही हैं। उस महान विपत्ति का कैसे वर्णन किया जाए? उस समय के विलाप को सुनकर दुःख को भी दुःख लगा और धीरज का भी धीरज भाग गया!॥4॥

दोहा :

* भयउ कोलाहलु अवध अति सुनि नृप राउर सोरु।
बिपुल बिहग बन परेउ निसि मानहुँ कुलिस कठोरु॥153॥

भावार्थ:-राजा के रावले (रनिवास) में (रोने का) शोर सुनकर अयोध्या भर में बड़ा भारी कुहराम मच गया! (ऐसा जान पड़ता था) मानो पक्षियों के विशाल वन में रात के समय कठोर वज्र गिरा हो॥153॥

चौपाई :

* प्रान कंठगत भयउ भुआलू। मनि बिहीन जनु ब्याकुल ब्यालू॥
इंद्रीं सकल बिकल भइँ भारी। जनु सर सरसिज बनु बिनु बारी॥1॥

भावार्थ:-राजा के प्राण कंठ में आ गए। मानो मणि के बिना साँप व्याकुल (मरणासन्न) हो गया हो। इन्द्रियाँ सब बहुत ही विकल हो गईं, मानो बिना जल के तालाब में कमलों का वन मुरझा गया हो॥1॥

* कौसल्याँ नृपु दीख मलाना। रबिकुल रबि अँथयउ जियँ जाना॥
उर धरि धीर राम महतारी। बोली बचन समय अनुसारी॥2॥

भावार्थ:-कौसल्याजी ने राजा को बहुत दुःखी देखकर अपने हृदय में जान लिया कि अब सूर्यकुल का सूर्य अस्त हो चला! तब श्री रामचन्द्रजी की माता कौसल्या हृदय में धीरज धरकर समय के अनुकूल वचन बोलीं-॥2॥

* नाथ समुझि मन करिअ बिचारू। राम बियोग पयोधि अपारू॥
करनधार तुम्ह अवध जहाजू। चढ़ेउ सकल प्रिय पथिक समाजू॥3॥

भावार्थ:-हे नाथ! आप मन में समझ कर विचार कीजिए कि श्री रामचन्द्र का वियोग अपार समुद्र है। अयोध्या जहाज है और आप उसके कर्णधार (खेने वाले) हैं। सब प्रियजन (कुटुम्बी और प्रजा) ही यात्रियों का समाज है, जो इस जहाज पर चढ़ा हुआ है॥3॥

* धीरजु धरिअ त पाइअ पारू। नाहिं त बूड़िहि सबु परिवारू॥
जौं जियँ धरिअ बिनय पिय मोरी। रामु लखनु सिय मिलहिं बहोरी॥4॥

भावार्थ:-आप धीरज धरिएगा, तो सब पार पहुँच जाएँगे। नहीं तो सारा परिवार डूब जाएगा। हे प्रिय स्वामी! यदि मेरी विनती हृदय में धारण कीजिएगा तो श्री राम, लक्ष्मण, सीता फिर आ मिलेंगे॥4॥

दोहा :

* प्रिया बचन मृदु सुनत नृपु चितयउ आँखि उघारि।
तलफत मीन मलीन जनु सींचत सीतल बारि॥154॥

भावार्थ:-प्रिय पत्नी कौसल्या के कोमल वचन सुनते हुए राजा ने आँखें खोलकर देखा! मानो तड़पती हुई दीन मछली पर कोई शीतल जल छिड़क रहा हो॥154॥

चौपाई :

* धरि धीरजु उठि बैठ भुआलू। कहु सुमंत्र कहँ राम कृपालू॥
कहाँ लखनु कहँ रामु सनेही। कहँ प्रिय पुत्रबधू बैदेही॥1॥

भावार्थ:-धीरज धरकर राजा उठ बैठे और बोले- सुमंत्र! कहो, कृपालु श्री राम कहाँ हैं? लक्ष्मण कहाँ हैं? स्नेही राम कहाँ हैं? और मेरी प्यारी बहू जानकी कहाँ है?॥1॥

* बिलपत राउ बिकल बहु भाँती। भइ जुग सरिस सिराति न राती॥
तापस अंध साप सुधि आई। कौसल्यहि सब कथा सुनाई॥2॥

भावार्थ:-राजा व्याकुल होकर बहुत प्रकार से विलाप कर रहे हैं। वह रात युग के समान बड़ी हो गई, बीतती ही नहीं। राजा को अंधे तपस्वी (श्रवणकुमार के पिता) के शाप की याद आ गई। उन्होंने सब कथा कौसल्या को कह सुनाई॥2॥

* भयउ बिकल बरनत इतिहासा। राम रहित धिग जीवन आसा॥
सो तनु राखि करब मैं काहा। जेहिं न प्रेम पनु मोर निबाहा॥3॥

भावार्थ:-उस इतिहास का वर्णन करते-करते राजा व्याकुल हो गए और कहने लगे कि श्री राम के बिना जीने की आशा को धिक्कार

है। मैं उस शरीर को रखकर क्या करूँगा, जिसने मेरा प्रेम का प्रण नहीं निबाहा?॥3॥

* हा रघुनंदन प्रान पिरीते। तुम्ह बिनु जिअत बहुत दिन बीते॥
हा जानकी लखन हा रघुबर। हा पितु हित चित चातक जलधर॥4॥

भावार्थ:-हा रघुकुल को आनंद देने वाले मेरे प्राण प्यारे राम! तुम्हारे बिना जीते हुए मुझे बहुत दिन बीत गए। हा जानकी, लक्ष्मण! हा रघुवीर! हा पिता के चित्त रूपी चातक के हित करने वाले मेघ!॥4॥

दोहा :

* राम राम कहि राम कहि राम राम कहि राम।
तनु परिहरि रघुबर बिरहँ राउ गयउ सुरधाम॥155॥

भावार्थ:-राम-राम कहकर, फिर राम कहकर, फिर राम-राम कहकर और फिर राम कहकर राजा श्री राम के विरह में शरीर त्याग कर सुरलोक को सिधार गए॥155॥

चौपाई :

* जिअन मरन फलु दसरथ पावा। अंड अनेक अमल जसु छावा॥
जिअत राम बिधु बदनु निहारा। राम बिरह करि मरनु सँवारा॥1॥

भावार्थ:-जीने और मरने का फल तो दशरथजी ने ही पाया, जिनका निर्मल यश अनेकों ब्रह्मांडों में छा गया। जीते जी तो श्री रामचन्द्रजी के चन्द्रमा के समान मुख को देखा और श्री राम के विरह को निमित्त बनाकर अपना मरण सुधार लिया॥1॥

* सोक बिकल सब रोवहिं रानी। रूपु सीलु बलु तेजु बखानी॥

करहिं बिलाप अनेक प्रकारा। परहिं भूमितल बारहिं बारा॥2॥
भावार्थ:-सब रानियाँ शोक के मारे व्याकुल होकर रो रही हैं। वे राजा के रूप, शील, बल और तेज का बखान कर-करके अनेकों प्रकार से विलाप कर रही हैं और बार-बार धरती पर गिर-गिर पड़ती हैं॥2॥

* बिलपहिं बिकल दास अरु दासी। घर घर रुदनु करहिं पुरबासी॥
अँथयउ आजु भानुकुल भानू। धरम अवधि गुन रूप निधानू॥3॥
भावार्थ:-दास-दासीगण व्याकुल होकर विलाप कर रहे हैं और नगर निवासी घर-घर रो रहे हैं। कहते हैं कि आज धर्म की सीमा, गुण और रूप के भंडार सूर्यकुल के सूर्य अस्त हो गए?॥3॥

* गारीं सकल कैकइहि देहीं। नयन बिहीन कीन्ह जग जेहीं॥
एहि बिधि बिलपत रैनि बिहानी। आए सकल महामुनि ग्यानी॥4॥
भावार्थ:-सब कैकेयी को गालियाँ देते हैं, जिसने संसार भर को बिना नेत्रों का (अंधा) कर दिया! इस प्रकार विलाप करते रात बीत गई। प्रातःकाल सब बड़े-बड़े ज्ञानी मुनि आए॥4॥

गीताप्रेस गोरखपुर

मुनि वशिष्ठ का भरतजी को बुलाने के लिए दूत भेजना

दोहा :

* तब बसिष्ठ मुनि समय सम कहि अनेक इतिहास।
सोक नेवारेउ सबहि कर निज बिग्यान प्रकास॥156॥

भावार्थ:-तब वशिष्ठ मुनि ने समय के अनुकूल अनेक इतिहास कहकर अपने विज्ञान के प्रकाश से सबका शोक दूर किया॥156॥

चौपाई :

* तेल नावँ भरि नृप तनु राखा। दूत बोलाइ बहुरि अस भाषा॥
धावहु बेगि भरत पहिं जाहू। नृप सुधि कतहुँ कहहु जनि काहू॥1॥

भावार्थ:-वशिष्ठजी ने नाव में तेल भरवाकर राजा के शरीर को उसमें रखवा दिया। फिर दूतों को बुलवाकर उनसे ऐसा कहा- तुम लोग जल्दी दौड़कर भरत के पास जाओ। राजा की मृत्यु का समाचार कहीं किसी से न कहना॥1॥

* एतनेइ कहेहु भरत सन जाई। गुर बोलाइ पठयउ दोउ भाई॥
सुनि मुनि आयसु धावन धाए। चले बेग बर बाजि लजाए॥2॥

भावार्थ:-जाकर भरत से इतना ही कहना कि दोनों भाइयों को गुरुजी ने बुलवा भेजा है। मुनि की आज्ञा सुनकर धावन (दूत) दौड़े। वे अपने वेग से उत्तम घोड़ों को भी लजाते हुए चले॥2॥

* अनरथु अवध अरंभेउ जब तें। कुसगुन होहिं भरत कहुँ तब तें॥
देखहिं राति भयानक सपना। जागि करहिं कटु कोटि कलपना॥3॥

भावार्थ:-जब से अयोध्या में अनर्थ प्रारंभ हुआ, तभी से भरतजी को अपशकुन होने लगे। वे रात को भयंकर स्वप्न देखते थे और जागने पर (उन स्वप्नों के कारण) करोड़ों (अनेकों) तरह की बुरी-बुरी कल्पनाएँ किया करते थे॥3॥

* बिप्र जेवाँइ देहिं दिन दाना। सिव अभिषेक करहिं बिधि नाना॥
मागहिं हृदयँ महेस मनाई। कुसल मातु पितु परिजन भाई॥4॥

भावार्थ:-(अनिष्टशान्ति के लिए) वे प्रतिदिन ब्राह्मणों को भोजन कराकर दान देते थे। अनेकों विधियों से रुद्राभिषेक करते थे। महादेवजी को हृदय में मनाकर उनसे माता-पिता, कुटुम्बी और भाइयों का कुशल-क्षेम माँगते थे॥4॥

दोहा :

* एहि बिधि सोचत भरत मन धावन पहुँचे आइ।
गुर अनुसासन श्रवन सुनि चले गनेसु मनाई॥157॥

भावार्थ:-भरतजी इस प्रकार मन में चिंता कर रहे थे कि दूत आ पहुँचे। गुरुजी की आज्ञा कानों से सुनते ही वे गणेशजी को मनाकर चल पड़े।157॥

चौपाई :

* चले समीर बेग हय हाँके। नाघत सरित सैल बन बाँके॥
हृदयँ सोचु बड़ कछु न सोहाई। अस जानहिं जियँ जाउँ उड़ाई॥1॥

भावार्थ:-हवा के समान वेग वाले घोड़ों को हाँकते हुए वे विकट नदी, पहाड़ तथा जंगलों को लाँघते हुए चले। उनके हृदय में बड़ा सोच था, कुछ सुहाता न था। मन में ऐसा सोचते थे कि उड़कर पहुँच जाऊँ॥1॥

* एक निमेष बरष सम जाई। एहि बिधि भरत नगर निअराई॥
असगुन होहिं नगर पैठारा। रटहिं कुभाँति कुखेत करारा॥2॥

भावार्थ:-एक-एक निमेष वर्ष के समान बीत रहा था। इस प्रकार भरतजी नगर के निकट पहुँचे। नगर में प्रवेश करते समय अपशकुन होने लगे। कौए बुरी जगह बैठकर बुरी तरह से काँव-काँव कर रहे हैं॥2॥

* खर सिआर बोलहिं प्रतिकूला। सुनि सुनि होइ भरत मन सूला॥
श्रीहत सर सरिता बन बागा। नगरु बिसेषि भयावनु लागा॥3॥

भावार्थ:-गदहे और सियार विपरीत बोल रहे हैं। यह सुन-सुनकर भरत के मन में बड़ी पीड़ा हो रही है। तालाब, नदी, वन, बगीचे सब शोभाहीन हो रहे हैं। नगर बहुत ही भयानक लग रहा है॥3॥

* खग मृग हय गय जाहिं न जोए। राम बियोग कुरोग बिगोए॥
नगर नारि नर निपट दुखारी। मनहुँ सबन्हि सब संपति हारी॥4॥

भावार्थ:-श्री रामजी के वियोग रूपी बुरे रोग से सताए हुए पक्षी-पशु, घोड़े-हाथी (ऐसे दुःखी हो रहे हैं कि) देखे नहीं जाते। नगर के स्त्री-पुरुष अत्यन्त दुःखी हो रहे हैं। मानो सब अपनी सारी सम्पत्ति हार बैठे हों॥4॥

* पुरजन मिलहिं न कहहिं कछु गवँहि जोहारहिं जाहिं।
भरत कुसल पूँछि न सकहिं भय बिषाद मन माहिं॥158॥

भावार्थ:-नगर के लोग मिलते हैं, पर कुछ कहते नहीं, गौं से (चुपके से) जोहार (वंदना) करके चले जाते हैं। भरतजी भी किसी से कुशल नहीं पूछ सकते, क्योंकि उनके मन में भय और विषाद छा रहा है॥158॥

गीताप्रेस गोरखपुर

श्री भरत-शत्रुघ्न का आगमन और शोक

* हाट बाट नहिं जाइ निहारी। जनु पुर दहँ दिसि लागि दवारी॥
आवत सुत सुनि कैकयनंदिनि। हरषी रबिकुल जलरुह चंदिनि॥1॥

भावार्थ:-बाजार और रास्ते देखे नहीं जाते। मानो नगर में दसों दिशाओं में दावाग्नि लगी है! पुत्र को आते सुनकर सूर्यकुल रूपी कमल के लिए चाँदनी रूपी कैकेयी (बड़ी) हर्षित हुई॥1॥

* सजि आरती मुदित उठि धाई। द्वारेहिं भेंटि भवन लेइ आई॥
भरत दुखित परिवारु निहारा॥ मानहुँ तुहिन बनज बनु मारा॥2॥

भावार्थ:-वह आरती सजाकर आनंद में भरकर उठ दौड़ी और दरवाजे पर ही मिलकर भरत-शत्रुघ्न को महल में ले आई। भरत ने सारे परिवार को दुःखी देखा। मानो कमलों के वन को पाला मार गया हो॥2॥

* कैकेई हरषित एहि भाँती। मनहुँ मुदित दव लाइ किराती॥
सुतहि ससोच देखि मनु मारें। पूँछति नैहर कुसल हमारें॥3॥

भावार्थ:-एक कैकेयी ही इस तरह हर्षित दिखती है मानो भीलनी जंगल में आग लगाकर आनंद में भर रही हो। पुत्र को सोच वश और मन मारे (बहुत उदास) देखकर वह पूछने लगी- हमारे नैहर में कुशल तो है?॥3॥

* सकल कुसल कहि भरत सुनाई। पूँछी निज कुल कुसल भलाई॥
कहु कहँ तात कहाँ सब माता। कहँ सिय राम लखन प्रिय भ्राता॥4॥

भावार्थ:-भरतजी ने सब कुशल कह सुनाई। फिर अपने कुल की कुशल-क्षेम पूछी। (भरतजी ने कहा-) कहो, पिताजी कहाँ हैं? मेरी सब माताएँ कहाँ हैं? सीताजी और मेरे प्यारे भाई राम-लक्ष्मण कहाँ हैं?॥4॥

दोहा :

* सुनि सुत बचन सनेहमय कपट नीर भरि नैन।
भरत श्रवन मन सूल सम पापिनि बोली बैन॥159॥

भावार्थ:-पुत्र के स्नेहमय वचन सुनकर नेत्रों में कपट का जल भरकर पापिनी कैकेयी भरत के कानों में और मन में शूल के समान चुभने वाले वचन बोली-॥159॥

चौपाई :

* तात बात मैं सकल सँवारी। भै मंथरा सहाय बिचारी॥
कछुक काज बिधि बीच बिगारेउ। भूपति सुरपति पुर पगु धारेउ॥1॥

भावार्थ:-हे तात! मैंने सारी बात बना ली थी। बेचारी मंथरा सहायक हुई। पर विधाता ने बीच में जरा सा काम बिगाड़ दिया। वह यह कि राजा देवलोक को पधार गए॥1॥

* सुनत भरतु भए बिबस बिषादा। जनु सहमेउ करि केहरि नादा॥
तात तात हा तात पुकारी। परे भूमितल ब्याकुल भारी॥2॥

भावार्थ:-भरत यह सुनते ही विषाद के मारे विवश (बेहाल) हो गए। मानो सिंह की गर्जना सुनकर हाथी सहम गया हो। वे

'तात! तात! हा तात!' पुकारते हुए अत्यन्त व्याकुल होकर जमीन पर गिर पड़े॥2॥

* चलत न देखन पायउँ तोही। तात न रामहि सौंपेहु मोही॥
बहुरि धीर धरि उठे सँभारी। कहु पितु मरन हेतु महतारी॥3॥

भावार्थ:-(और विलाप करने लगे कि) हे तात! मैं आपको (स्वर्ग के लिए) चलते समय देख भी न सका। (हाय!) आप मुझे श्री रामजी को सौंप भी नहीं गए! फिर धीरज धरकर वे सम्हलकर उठे और बोले- माता! पिता के मरने का कारण तो बताओ॥3॥

* सुनि सुत बचन कहति कैकेई। मरमु पाँछि जनु माहुर देई॥
आदिहु तें सब आपनि करनी। कुटिल कठोर मुदित मन बरनी॥4॥

भावार्थ:-पुत्र का वचन सुनकर कैकेयी कहने लगी। मानो मर्म स्थान को पाछकर (चाकू से चीरकर) उसमें जहर भर रही हो। कुटिल और कठोर कैकेयी ने अपनी सब करनी शुरू से (आखिर तक बड़े) प्रसन्न मन से सुना दी॥4॥

दोहा :

* भरतहि बिसरेउ पितु मरन सुनत राम बन गौनु।
हेतु अपनपउ जानि जियँ थकित रहे धरि मौनु॥160॥

भावार्थ:-श्री रामचन्द्रजी का वन जाना सुनकर भरतजी को पिता का मरण भूल गया और हृदय में इस सारे अनर्थ का कारण अपने को ही जानकर वे मौन होकर स्तम्भित रह गए (अर्थात उनकी बोली बंद हो गई और वे सन्न रह गए)॥160॥

* बिकल बिलोकि सुतहि समुझावति। मनहुँ जरे पर लोनु लगावति॥
तात राउ नहिं सोचै जोगू। बिढ़इ सुकृत जसु कीन्हेउ भोगू॥1॥

भावार्थ:-पुत्र को व्याकुल देखकर कैकेयी समझाने लगी। मानो जले पर नमक लगा रही हो। (वह बोली-) हे तात! राजा सोच करने योग्य नहीं हैं। उन्होंने पुण्य और यश कमाकर उसका पर्याप्त भोग किया॥1॥

* जीवत सकल जनम फल पाए। अंत अमरपति सदन सिधाए॥
अस अनुमानि सोच परिहरहू। सहित समाज राज पुर करहू॥2॥

भावार्थ:-जीवनकाल में ही उन्होंने जन्म लेने के सम्पूर्ण फल पा लिए और अंत में वे इन्द्रलोक को चले गए। ऐसा विचारकर सोच छोड़ दो और समाज सहित नगर का राज्य करो॥2॥

* सुनि सुठि सहमेउ राजकुमारू। पाकें छत जनु लाग अँगारू॥
धीरज धरि भरि लेहिं उसासा। पापिनि सबहि भाँति कुल नासा॥3॥

भावार्थ:-राजकुमार भरतजी यह सुनकर बहुत ही सहम गए। मानो पके घाव पर अँगार छू गया हो। उन्होंने धीरज धरकर बड़ी लम्बी साँस लेते हुए कहा- पापिनी! तूने सभी तरह से कुल का नाश कर दिया॥3॥

* जौं पै कुरुचि रही अति तोही। जनमत काहे न मारे मोही॥
पेड़ काटि तैं पालउ सींचा। मीन जिअन निति बारि उलीचा॥4॥

भावार्थ:-हाय! यदि तेरी ऐसी ही अत्यन्त बुरी रुचि (दुष्ट इच्छा) थी, तो तूने जन्मते ही मुझे मार क्यों नहीं डाला? तूने पेड़ को काटकर पत्ते को सींचा है और मछली के जीने के लिए पानी को उलीच डाला! (अर्थात मेरा हित करने जाकर उलटा तूने मेरा अहित कर डाला)॥4॥

दोहा :

* हंसबंसु दसरथु जनकु राम लखन से भाइ।

जननी तूँ जननी भई बिधि सन कछु न बसाइ॥161॥

भावार्थ:-मुझे सूर्यवंश (सा वंश), दशरथजी (सरीखे) पिता और राम-लक्ष्मण से भाई मिले। पर हे जननी! मुझे जन्म देने वाली माता तू हुई! (क्या किया जाए!) विधाता से कुछ भी वश नहीं चलता॥161॥

चौपाई :

* जब मैं कुमति कुमत जियँ ठयऊ। खंड खंड होइ हृदउ न गयऊ॥
बर मागत मन भइ नहिं पीरा। गरि न जीह मुँह परेउ न कीरा॥1॥

भावार्थ:-अरी कुमति! जब तूने हृदय में यह बुरा विचार (निश्चय) ठाना, उसी समय तेरे हृदय के टुकड़े-टुकड़े (क्यों) न हो गए? वरदान माँगते समय तेरे मन में कुछ भी पीड़ा नहीं हुई? तेरी जीभ गल नहीं गई? तेरे मुँह में कीड़े नहीं पड़ गए?॥1॥

* भूपँ प्रतीति तोरि किमि कीन्ही। मरन काल बिधि मति हरि लीन्ही॥
बिधिहुँ न नारि हृदय गति जानी। सकल कपट अघ अवगुन खानी॥2॥

भावार्थ:-राजा ने तेरा विश्वास कैसे कर लिया? (जान पड़ता है,) विधाता ने मरने के समय उनकी बुद्धि हर ली थी। स्त्रियों के हृदय की गति (चाल) विधाता भी नहीं जान सके। वह सम्पूर्ण कपट, पाप और अवगुणों की खान है॥2॥

* सरल सुसील धरम रत राऊ। सो किमि जानै तीय सुभाऊ॥
अस को जीव जंतु जग माहीं। जेहि रघुनाथ प्रानप्रिय नाहीं॥3॥

भावार्थ:-फिर राजा तो सीधे, सुशील और धर्मपरायण थे। वे भला, स्त्री स्वभाव को कैसे जानते? अरे, जगत के जीव-जन्तुओं में ऐसा कौन है, जिसे श्री रघुनाथजी प्राणों के समान प्यारे नहीं हैं॥3॥

* भे अति अहित रामु तेउ तोहीं। को तू अहसि सत्य कहु मोही॥
जो हसि सो हसि मुँह मसि लाई। आँखि ओट उठि बैठहि जाई॥4॥

भावार्थ:-वे श्री रामजी भी तुझे अहित हो गए (वैरी लगे)! तू कौन है? मुझे सच-सच कह! तू जो है, सो है, अब मुँह में स्याही पोतकर (मुँह काला करके) उठकर मेरी आँखों की ओट में जा बैठ॥4॥

दोहा :

* राम बिरोधी हृदय तें प्रगट कीन्ह बिधि मोहि।
मो समान को पातकी बादि कहउँ कछु तोहि॥162॥

भावार्थ:-विधाता ने मुझे श्री रामजी से विरोध करने वाले (तेरे) हृदय से उत्पन्न किया (अथवा विधाता ने मुझे हृदय से राम का विरोधी जाहिर कर दिया।) मेरे बराबर पापी दूसरा कौन है? मैं व्यर्थ ही तुझे कुछ कहता हूँ॥162॥

चौपाई :

* सुनि सत्रुघुन मातु कुटिलाई। जरहिं गात रिस कछु न बसाई॥
तेहि अवसर कुबरी तहँ आई। बसन बिभूषन बिबिध बनाई॥1॥

भावार्थ:-माता की कुटिलता सुनकर शत्रुघ्नजी के सब अंग क्रोध से जल रहे हैं, पर कुछ वश नहीं चलता। उसी समय भाँति-भाँति के कपड़ों और गहनों से सजकर कुबरी (मंथरा) वहाँ आई॥1॥

* लखि रिस भरेउ लखन लघु भाई। बरत अनल घृत आहुति पाई॥
हुमगि लात तकि कूबर मारा। परि मुँह भर महि करत पुकारा॥2॥

भावार्थ:-उसे (सजी) देखकर लक्ष्मण के छोटे भाई शत्रुघ्नजी क्रोध में भर गए। मानो जलती हुई आग को घी की आहुति मिल गई हो। उन्होंने जोर से तककर कूबड़ पर एक लात जमा दी। वह चिल्लाती हुई मुँह के बल जमीन पर गिर पड़ी॥2॥

* कूबर टूटेउ फूट कपारू। दलित दसन मुख रुधिर प्रचारू॥
आह दइअ मैं काह नसावा। करत नीक फलु अनइस पावा॥3॥

भावार्थ:-उसका कूबड़ टूट गया, कपाल फूट गया, दाँत टूट गए और मुँह से खून बहने लगा। (वह कराहती हुई बोली-) हाय दैव! मैंने क्या बिगाड़ा? जो भला करते बुरा फल पाया॥3॥

* सुनि रिपुहन लखि नख सिख खोटी। लगे घसीटन धरि धरि झोंटी॥
भरत दयानिधि दीन्हि छुड़ाई। कौसल्या पहिं गे दोउ भाई॥4॥

भावार्थ:-उसकी यह बात सुनकर और उसे नख से शिखा तक दुष्ट जानकर शत्रुघ्नजी झोंटा पकड़-पकड़कर उसे घसीटने लगे। तब दयानिधि भरतजी ने उसको छुड़ा दिया और दोनों भाई (तुरंत) कौसल्याजी के पास गए॥4॥

गीताप्रेस गोरखपुर

भरत-कौसल्या संवाद और दशरथजी की अन्त्येष्टि क्रिया

दोहा :

* मलिन बसन बिबरन बिकल कृस शरीर दुख भार।
कनक कलप बर बेलि बन मानहुँ हनी तुसार॥163॥

भावार्थ:-कौसल्याजी मैले वस्त्र पहने हैं, चेहरे का रंग बदला हुआ है, व्याकुल हो रही हैं, दुःख के बोझ से शरीर सूख गया है। ऐसी दिख रही हैं मानो सोने की सुंदर कल्पलता को वन में पाला मार गया हो॥163॥

चौपाई :

* भरतहि देखि मातु उठि धाई। मुरुचित अवनि परी झइँ आई॥
देखत भरतु बिकल भए भारी। परे चरन तन दसा बिसारी॥1॥

भावार्थ:-भरत को देखते ही माता कौसल्याजी उठ दौड़ीं। पर चक्कर आ जाने से मूर्च्छित होकर पृथ्वी पर गिर पड़ीं। यह देखते ही भरतजी बड़े व्याकुल हो गए और शरीर की सुध भुलाकर चरणों में गिर पड़े॥1॥

* मातु तात कहँ देहि देखाई। कहँ सिय रामु लखनु दोउ भाई॥
कैकइ कत जनमी जग माझा। जौं जनमि त भइ काहे न
बाँझा॥2॥

भावार्थ:-(फिर बोले-) माता! पिताजी कहाँ हैं? उन्हें दिखा दें। सीताजी तथा मेरे दोनों भाई श्री राम-लक्ष्मण कहाँ हैं? (उन्हें दिखा दें।) कैकेयी जगत में क्यों जनमी! और यदि जनमी ही तो फिर बाँझ क्यों न हुई?-॥2॥

* कुल कलंकु जेहिं जनमेउ मोही। अपजस भाजन प्रियजन द्रोही॥
को तिभुवन मोहि सरिस अभागी। गति असि तोरि मातुजेहि लागी॥3॥

भावार्थ:-जिसने कुल के कलंक, अपयश के भाँडे और प्रियजनों के द्रोही मुझ जैसे पुत्र को उत्पन्न किया। तीनों लोकों में मेरे समान अभागा कौन है? जिसके कारण हे माता! तेरी यह दशा हुई!॥3॥

* पितु सुरपुर बन रघुबर केतू। मैं केवल सब अनरथ हेतू॥
धिग मोहि भयउँ बेनु बन आगी। दुसह दाह दुख दूषन भागी॥4॥

भावार्थ:-पिताजी स्वर्ग में हैं और श्री रामजी वन में हैं। केतु के समान केवल मैं ही इन सब अनर्थों का कारण हूँ। मुझे धिक्कार है! मैं बाँस के वन में आग उत्पन्न हुआ और कठिन दाह, दुःख और दोषों का भागी बना॥4॥

दोहा :

* मातु भरत के बचन मृदु सुनि पुनि उठी सँभारि।
लिए उठाइ लगाइ उर लोचन मोचति बारि॥164॥

भावार्थ:-भरतजी के कोमल वचन सुनकर माता कौसल्याजी फिर सँभलकर उठीं। उन्होंने भरत को उठाकर छाती से लगा लिया और नेत्रों से आँसू बहाने लगीं॥164॥

चौपाई :

* सरल सुभाय मायँ हियँ लाए। अति हित मनहुँ राम फिरि आए॥
भेंटेउ बहुरि लखन लघु भाई। सोकु सनेहु न हृदयँ समाई॥1॥

भावार्थ:-सरल स्वभाव वाली माता ने बड़े प्रेम से भरतजी को छाती से लगा लिया, मानो श्री रामजी ही लौटकर आ गए हों। फिर लक्ष्मणजी के छोटे भाई शत्रुघ्न को हृदय से लगाया। शोक और स्नेह हृदय में समाता नहीं है॥1॥

* देखि सुभाउ कहत सबु कोई। राम मातु अस काहे न होई॥
माताँ भरतु गोद बैठारे। आँसु पोछिं मृदु बचन उचारे॥2॥

भावार्थ:-कौसल्याजी का स्वभाव देखकर सब कोई कह रहे हैं- श्री राम की माता का ऐसा स्वभाव क्यों न हो। माता ने भरतजी को गोद में बैठा लिया और उनके आँसू पोंछकर कोमल वचन बोलीं-॥2॥

* अजहुँ बच्छ बलि धीरज धरहू। कुसमउ समुझि सोक परिहरहू॥
जनि मानहु हियँ हानि गलानी। काल करम गति अघटित जानी॥3॥

भावार्थ:-हे वत्स! मैं बलैया लेती हूँ। तुम अब भी धीरज धरो। बुरा समय जानकर शोक त्याग दो। काल और कर्म की गति अमिट जानकर हृदय में हानि और ग्लानि मत मानो॥3॥

* काहुहि दोसु देहु जनि ताता। भा मोहि सब बिधि बाम बिधाता॥
जो एतेहुँ दुख मोहि जिआवा। अजहुँ को जानइ का तेहि भावा॥4॥

भावार्थ:-हे तात! किसी को दोष मत दो। विधाता मेरे लिए सब प्रकार से उलटा हो गया है, जो इतने दुःख पर भी मुझे

जिला रहा है। अब भी कौन जानता है, उसे क्या भा रहा है?॥4॥

दोहा :

* पितु आयस भूषन बसन तात तजे रघुबीर।
बिसमउ हरषु न हृदयँ कछु पहिरे बलकल चीर॥165॥

भावार्थ:-हे तात! पिता की आज्ञा से श्री रघुवीर ने भूषण-वस्त्र त्याग दिए और वल्कल वस्त्र पहन लिए। उनके हृदय में न कुछ विषाद था, न हर्ष!॥165॥

चौपाई :

* मुख प्रसन्न मन रंग न रोषू। सब कर सब बिधि करि परितोषू॥
चले बिपिन सुनि सिय सँग लागी। रहइ न राम चरन अनुरागी॥1॥

भावार्थ:-उनका मुख प्रसन्न था, मन में न आसक्ति थी, न रोष (द्वेष)। सबका सब तरह से संतोष कराकर वे वन को चले। यह सुनकर सीता भी उनके साथ लग गईं। श्रीराम के चरणों की अनुरागिणी वे किसी तरह न रहीं॥1॥

* सुनतहिं लखनु चले उठि साथा। रहहिं न जतन किए रघुनाथा॥
तब रघुपति सबही सिरु नाई। चले संग सिय अरु लघु भाई॥2॥

भावार्थ:-सुनते ही लक्ष्मण भी साथ ही उठ चले। श्री रघुनाथ ने उन्हें रोकने के बहुत यत्न किए, पर वे न रहे। तब श्री रघुनाथजी सबको सिर नवाकर सीता और छोटे भाई लक्ष्मण को साथ लेकर चले गए॥2॥

* रामु लखनु सिय बनहि सिधाए। गइउँ न संग न प्रान पठाए॥
यहु सबु भा इन्ह आँखिन्ह आगें। तउ न तजा तनु जीव अभागें॥3॥

भावार्थ:-श्री राम, लक्ष्मण और सीता वन को चले गए। मैं न तो साथ ही गई और न मैंने अपने प्राण ही उनके साथ भेजे। यह सब इन्हीं आँखों के सामने हुआ, तो भी अभागे जीव ने शरीर नहीं छोड़ा॥3॥

* मोहि न लाज निज नेहु निहारी। राम सरिस सुत मैं महतारी॥
जिऐ मरै भल भूपति जाना। मोर हृदय सत कुलिस समाना॥4॥

भावार्थ:-अपने स्नेह की ओर देखकर मुझे लाज नहीं आती; राम सरीखे पुत्र की मैं माता! जीना और मरना तो राजा ने खूब जाना। मेरा हृदय तो सैकड़ों वज्रों के समान कठोर है॥4॥

दोहा :

* कौसल्या के बचन सुनि भरत सहित रनिवासु।
ब्याकुल बिलपत राजगृह मानहुँ सोक नेवासु ॥166॥

भावार्थ:-कौसल्याजी के वचनों को सुनकर भरत सहित सारा रनिवास व्याकुल होकर विलाप करने लगा। राजमहल मानो शोक का निवास बन गया॥166॥

चौपाई :

* बिलपहिं बिकल भरत दोउ भाई। कौसल्याँ लिए हृदयँ लगाई॥
भाँति अनेक भरतु समुझाए। कहि बिबेकमय बचन सुनाए॥1॥

भावार्थ:-भरत, शत्रुघ्न दोनों भाई विकल होकर विलाप करने लगे। तब कौसल्याजी ने उनको हृदय से लगा लिया। अनेकों प्रकार से

भरतजी को समझाया और बहुत सी विवेकभरी बातें उन्हें कहकर सुनाईं॥1॥

* भरतहुँ मातु सकल समुझाईं। कहि पुरान श्रुति कथा सुहाईं॥
छल बिहीन सुचि सरल सुबानी। बोले भरत जोरि जुग पानी॥2॥

भावार्थ:-भरतजी ने भी सब माताओं को पुराण और वेदों की सुंदर कथाएँ कहकर समझाया। दोनों हाथ जोड़कर भरतजी छलरहित, पवित्र और सीधी सुंदर वाणी बोले-॥2॥

* जे अघ मातु पिता सुत मारें। गाइ गोठ महिसुर पुर जारें॥
जे अघ तिय बालक बध कीन्हें। मीत महीपति माहुर दीन्हें॥3॥

भावार्थ:-जो पाप माता-पिता और पुत्र के मारने से होते हैं और जो गोशाला और ब्राह्मणों के नगर जलाने से होते हैं, जो पाप स्त्री और बालक की हत्या करने से होते हैं और जो मित्र और राजा को जहर देने से होते हैं-॥3॥

* जे पातक उपपातक अहहीं। करम बचन मन भव कबि कहहीं॥
ते पातक मोहि होहुँ बिधाता। जौं यहु होइ मोर मत माता॥4॥

भावार्थ:-कर्म, वचन और मन से होने वाले जितने पातक एवं उपपातक (बड़े-छोटे पाप) हैं, जिनको कवि लोग कहते हैं, हे विधाता! यदि इस काम में मेरा मत हो, तो हे माता! वे सब पाप मुझे लगें॥4॥

दोहा :

* जे परिहरि हरि हर चरन भजहिं भूतगन घोर।
तेहि कइ गति मोहि देउ बिधि जौं जननी मत मोर॥167॥

भावार्थ:-जो लोग श्री हरि और श्री शंकरजी के चरणों को छोड़कर भयानक भूत-प्रेतों को भजते हैं, हे माता! यदि इसमें मेरा मत हो तो विधाता मुझे उनकी गति दे॥167॥

चौपाई :

* बेचहिं बेदु धरमु दुहि लेहीं। पिसुन पराय पाप कहि देहीं॥
कपटी कुटिल कलहप्रिय क्रोधी। बेद बिदूषक बिस्व बिरोधी॥1॥

भावार्थ:-जो लोग वेदों को बेचते हैं, धर्म को दुह लेते हैं, चुगलखोर हैं, दूसरों के पापों को कह देते हैं, जो कपटी, कुटिल, कलहप्रिय और क्रोधी हैं तथा जो वेदों की निंदा करने वाले और विश्वभर के विरोधी हैं,॥1॥

* लोभी लंपट लोलुपचारा। जे ताकहिं परधनु परदारा॥
पावौं मैं तिन्ह कै गति घोरा। जौं जननी यहु संमत मोरा॥2॥

भावार्थ:-जो लोभी, लम्पट और लालचियों का आचरण करने वाले हैं, जो पराए धन और पराई स्त्री की ताक में रहते हैं, हे जननी! यदि इस काम में मेरी सम्मति हो तो मैं उनकी भयानक गति को पाऊँ॥2॥

* जे नहिं साधुसंग अनुरागे। परमारथ पथ बिमुख अभागे॥
जे न भजहिं हरि नर तनु पाई। जिन्हहि न हरि हर सुजसु सोहाई॥3॥

भावार्थ:-जिनका सत्संग में प्रेम नहीं है, जो अभागे परमार्थ के मार्ग से विमुख हैं, जो मनुष्य शरीर पाकर श्री हरि का भजन नहीं करते, जिनको हरि-हर (भगवान विष्णु और शंकरजी) का सुयश नहीं सुहाता,॥3॥

* तजि श्रुतिपंथु बाम पथ चलहीं। बंचक बिरचि बेष जगु छलहीं॥
तिन्ह कै गति मोहि संकर देऊ। जननी जौं यहु जानौं भेऊ॥4॥

भावार्थ:-जो वेद मार्ग को छोड़कर वाम (वेद प्रतिकूल) मार्ग पर चलते हैं, जो ठग हैं और वेष बनाकर जगत को छलते हैं, हे माता! यदि मैं इस भेद को जानता भी होऊँ तो शंकरजी मुझे उन लोगों की गति दें॥4॥

दोहा :

* मातु भरत के बचन सुनि साँचे सरल सुभायँ।
कहति राम प्रिय तात तुम्ह सदा बचन मन कायँ॥168॥

भावार्थ:-माता कौसल्याजी भरतजी के स्वाभाविक ही सच्चे और सरल वचनों को सुनकर कहने लगीं- हे तात! तुम तो मन, वचन और शरीर से सदा ही श्री रामचन्द्र के प्यारे हो॥168॥

चौपाई :

* राम प्रानहु तें प्रान तुम्हारे। तुम्ह रघुपतिहि प्रानहु तें प्यारे॥
बिधु बिष चवै स्रवै हिमु आगी। होइ बारिचर बारि बिरागी॥1॥

भावार्थ:-श्री राम तुम्हारे प्राणों से भी बढ़कर प्राण (प्रिय) हैं और तुम भी श्री रघुनाथ को प्राणों से भी अधिक प्यारे हो। चन्द्रमा चाहे विष चुआने लगे और पाला आग बरसाने लगे, जलचर जीव जल से विरक्त हो जाए,॥1॥

* भएँ ग्यानु बरु मिटै न मोहू। तुम्ह रामहि प्रतिकूल न होहू॥
मत तुम्हार यहु जो जग कहहीं। सो सपनेहुँ सुख सुगति न लहहीं॥2॥

भावार्थ:-और ज्ञान हो जाने पर भी चाहे मोह न मिटे, पर तुम श्री रामचन्द्र के प्रतिकूल कभी नहीं हो सकते। इसमें तुम्हारी सम्मति है, जगत में जो कोई ऐसा कहते हैं, वे स्वप्न में भी सुख और शुभ गति नहीं पावेंगे॥2॥

* अस कहि मातु भरतु हिएँ लाए। थन पय स्रवहिं नयन जल छाए॥
करत बिलाप बहुत एहि भाँती। बैठेहिं बीति गई सब राती॥3॥

भावार्थ:-ऐसा कहकर माता कौसल्या ने भरतजी को हृदय से लगा लिया। उनके स्तनों से दूध बहने लगा और नेत्रों में (प्रेमाश्रुओं का) जल छा गया। इस प्रकार बहुत विलाप करते हुए सारी रात बैठे ही बैठे बीत गई॥3॥

* बामदेउ बसिष्ठ तब आए। सचिव महाजन सकल बोलाए॥
मुनि बहु भाँति भरत उपदेसे। कहि परमारथ बचन सुदेसे॥4॥

भावार्थ:-तब वामदेवजी और वशिष्ठजी आए। उन्होंने सब मंत्रियों तथा महाजनों को बुलाया। फिर मुनि वशिष्ठजी ने परमार्थ के सुंदर समयानुकूल वचन कहकर बहुत प्रकार से भरतजी को उपदेश दिया॥4॥

गीताप्रेस गोरखपुर

वशिष्ठ-भरत संवाद, श्री रामजी को लाने के लिए चित्रकूट जाने की तैयारी

दोहा :

* तात हृदयँ धीरजु धरहु करहु जो अवसर आजु।
उठे भरत गुर बचन सुनि करन कहेउ सबु साजु॥169॥

भावार्थ:-(वशिष्ठजी ने कहा-) हे तात! हृदय में धीरज धरो और आज जिस कार्य के करने का अवसर है, उसे करो। गुरुजी के वचन सुनकर भरतजी उठे और उन्होंने सब तैयारी करने के लिए कहा॥169॥

चौपाई :

* नृपतनु बेद बिदित अन्हवावा। परम बिचित्र बिमानु बनावा॥
गाहि पदभरत मातु सब राखी। रहीं रानि दरसन अभिलाषी॥1॥

भावार्थ:-वेदों में बताई हुई विधि से राजा की देह को स्नान कराया गया और परम विचित्र विमान बनाया गया। भरतजी ने सब माताओं को चरण पकड़कर रखा (अर्थात प्रार्थना करके उनको सती होने से रोक लिया)। वे रानियाँ भी (श्री राम के) दर्शन की अभिलाषा से रह गईं॥1॥

* चंदन अगर भार बहु आए। अमित अनेक सुगंध सुहाए॥
सरजु तीर रचि चिता बनाई। जनु सुरपुर सोपान सुहाई॥2॥

भावार्थ:-चंदन और अगर के तथा और भी अनेकों प्रकार के अपार (कपूर, गुग्गुल, केसर आदि) सुगंध द्रव्यों के बहुत से बोझ आए। सरयूजी के तट पर सुंदर चिता रचकर बनाई गई, (जो ऐसी मालूम होती थी) मानो स्वर्ग की सुंदर सीढ़ी हो॥2॥

* एहि बिधि दाह क्रिया सब कीन्ही। बिधिवत न्हाइ तिलांजुलि दीन्ही॥
सोधि सुमृति सब बेद पुराना। कीन्ह भरत दसगात बिधाना॥3॥

भावार्थ:-इस प्रकार सब दाह क्रिया की गई और सबने विधिपूर्वक स्नान करके तिलांजलि दी। फिर वेद, स्मृति और पुराण सबका मत निश्चय करके उसके अनुसार भरतजी ने पिता का दशगात्र विधान (दस दिनों के कृत्य) किया॥3॥

* जहँ जस मुनिबर आयसु दीन्हा। तहँ तस सहस भाँति सबु कीन्हा॥
भए बिसुद्ध दिए सब दाना। धेनु बाजि गज बाहन नाना॥4॥

भावार्थ:-मुनि श्रेष्ठ वशिष्ठजी ने जहाँ जैसी आज्ञा दी, वहाँ भरतजी ने सब वैसा ही हजारों प्रकार से किया। शुद्ध हो जाने पर (विधिपूर्वक) सब दान दिए। गायें तथा घोड़े, हाथी आदि अनेक प्रकार की सवारियाँ,॥4॥

दोहा :

* सिंघासन भूषन बसन अन्न धरनि धन धाम।
दिए भरत लहि भूमिसुर भे परिपूरन काम॥170॥

भावार्थ:-सिंहासन, गहने, कपड़े, अन्न, पृथ्वी, धन और मकान भरतजी ने दिए, भूदेव ब्राह्मण दान पाकर परिपूर्णकाम हो गए (अर्थात उनकी सारी मनोकामनाएँ अच्छी तरह से पूरी हो गईं)॥170॥

चौपाई :

* पितु हित भरत कीन्हि जसि करनी। सो मुख लाख जाइ नहिं बरनी॥
सुदिनु सोधि मुनिबर तब आए। सचिव महाजन सकल बोलाए॥1॥

भावार्थ:-पिताजी के लिए भरतजी ने जैसी करनी की वह लाखों मुखों से भी वर्णन नहीं की जा सकती। तब शुभ दिन शोधकर श्रेष्ठ मुनि वशिष्ठजी आए और उन्होंने मंत्रियों तथा सब महाजनों को बुलवाया॥1॥

* बैठे राजसभाँ सब जाई। पठए बोलि भरत दोउ भाई॥
भरतु बसिष्ठ निकट बैठारे। नीति धरममय बचन उचारे॥2॥

भावार्थ:-सब लोग राजसभा में जाकर बैठ गए। तब मुनि ने भरतजी तथा शत्रुघ्नजी दोनों भाइयों को बुलवा भेजा। भरतजी को वशिष्ठजी ने अपने पास बैठा लिया और नीति तथा धर्म से भरे हुए वचन कहे॥2॥

* प्रथम कथा सब मुनिबर बरनी। कैकइ कुटिल कीन्हि जसि करनी॥
भूप धरमुब्रतु सत्य सराहा। जेहिं तनु परिहरि प्रेमु निबाहा॥3॥

भावार्थ:-पहले तो कैकेयी ने जैसी कुटिल करनी की थी, श्रेष्ठ मुनि ने वह सारी कथा कही। फिर राजा के धर्मव्रत और सत्य की सराहना की, जिन्होंने शरीर त्याग कर प्रेम को निबाहा॥3॥

* कहत राम गुन सील सुभाऊ। सजल नयन पुलकेउ मुनिराऊ॥
बहुरि लखन सिय प्रीति बखानी। सोक सनेह मगन मुनि ग्यानी॥4॥

भावार्थ:-श्री रामचन्द्रजी के गुण, शील और स्वभाव का वर्णन करते-करते तो मुनिराज के नेत्रों में जल भर आया और वे शरीर से पुलकित हो गए। फिर लक्ष्मणजी और सीताजी के प्रेम की बड़ाई करते हुए ज्ञानी मुनि शोक और स्नेह में मग्न हो गए॥4॥

दोहा :

* सुनहु भरत भावी प्रबल बिलखि कहेउ मुनिनाथ।

हानि लाभु जीवनु मरनु जसु अपजसु बिधि हाथ॥171॥
भावार्थ:-मुनिनाथ ने बिलखकर (दुःखी होकर) कहा- हे भरत! सुनो, भावी (होनहार) बड़ी बलवान है। हानि-लाभ, जीवन-मरण और यश-अपयश, ये सब विधाता के हाथ हैं॥171॥

चौपाई :

* अस बिचारि केहि देइअ दोसू। ब्यरथ काहि पर कीजिअ रोसू॥
तात बिचारु करहु मन माहीं। सोच जोगु दसरथु नृपु नाहीं॥1॥

भावार्थ:-ऐसा विचार कर किसे दोष दिया जाए? और व्यर्थ किस पर क्रोध किया जाए? हे तात! मन में विचार करो। राजा दशरथ सोच करने के योग्य नहीं हैं॥1॥

* सोचिअ बिप्र जो बेद बिहीना। तजि निज धरमु बिषय लयलीना॥
सोचिअ नृपति जो नीति न जाना। जेहि न प्रजा प्रिय प्रान समाना॥2॥

भावार्थ:-सोच उस ब्राह्मण का करना चाहिए, जो वेद नहीं जानता और जो अपना धर्म छोड़कर विषय भोग में ही लीन रहता है। उस राजा का सोच करना चाहिए, जो नीति नहीं जानता और जिसको प्रजा प्राणों के समान प्यारी नहीं है॥2॥

* सोचिअ बयसु कृपन धनवानू। जो न अतिथि सिव भगति सुजानू॥
सोचिअ सूद्रु बिप्र अवमानी। मुखर मानप्रिय ग्यान गुमानी॥3॥

भावार्थ:-उस वैश्य का सोच करना चाहिए, जो धनवान होकर भी कंजूस है और जो अतिथि सत्कार तथा शिवजी की भक्ति

करने में कुशल नहीं है। उस शूद्र का सोच करना चाहिए, जो ब्राह्मणों का अपमान करने वाला, बहुत बोलने वाला, मान-बड़ाई चाहने वाला और ज्ञान का घमंड रखने वाला है॥3॥

* सोचिअ पुनि पति बंचक नारी। कुटिल कलहप्रिय इच्छाचारी॥
सोचिअ बटु निज ब्रतु परिहरई। जो नहिं गुर आयसु अनुसरई॥4॥

भावार्थ:-पुनः उस स्त्री का सोच करना चाहिए जो पति को छलने वाली, कुटिल, कलहप्रिय और स्वेच्छा चारिणी है। उस ब्रह्मचारी का सोच करना चाहिए, जो अपने ब्रह्मचर्य व्रत को छोड़ देता है और गुरु की आज्ञा के अनुसार नहीं चलता॥4॥

दोहा :

* सोचिअ गृही जो मोह बस करइ करम पथ त्याग।
सोचिअ जती प्रपंच रत बिगत बिबेक बिराग॥172॥

भावार्थ:-उस गृहस्थ का सोच करना चाहिए, जो मोहवश कर्म मार्ग का त्याग कर देता है, उस संन्यासी का सोच करना चाहिए, जो दुनिया के प्रपंच में फँसा हुआ और ज्ञान-वैराग्य से हीन है॥172॥

चौपाई :

* बैखानस सोइ सोचै जोगू। तपु बिहाइ जेहि भावइ भोगू॥
सोचिअ पिसुन अकारन क्रोधी। जननि जनक गुर बंधु बिरोधी॥1॥

भावार्थ:-वानप्रस्थ वही सोच करने योग्य है, जिसको तपस्या छोड़कर भोग अच्छे लगते हैं। सोच उसका करना चाहिए जो चुगलखोर है, बिना ही कारण क्रोध करने वाला है तथा माता, पिता, गुरु एवं भाई-बंधुओं के साथ विरोध रखने वाला है॥1॥

* सब बिधि सोचिअ पर अपकारी। निज तनु पोषक निरदय भारी॥
सोचनीय सबहीं बिधि सोई। जो न छाड़ि छलु हरि जन होई॥2॥

भावार्थ:-सब प्रकार से उसका सोच करना चाहिए, जो दूसरों का अनिष्ट करता है, अपने ही शरीर का पोषण करता है और बड़ा भारी निर्दयी है और वह तो सभी प्रकार से सोच करने योग्य है, जो छल छोड़कर हरि का भक्त नहीं होता॥2॥

* सोचनीय नहिं कोसलराऊ। भुवन चारिदस प्रगट प्रभाऊ॥
भयउ न अहइ न अब होनिहारा। भूप भरत जस पिता तुम्हारा॥3॥

भावार्थ:-कोसलराज दशरथजी सोच करने योग्य नहीं हैं, जिनका प्रभाव चौदहों लोकों में प्रकट है। हे भरत! तुम्हारे पिता जैसा राजा तो न हुआ, न है और न अब होने का ही है॥3॥

* बिधि हरि हरु सुरपति दिसिनाथा। बरनहिं सब दसरथ गुन गाथा॥4॥

भावार्थ:-हब्रह्मा, विष्णु, शिव, इन्द्र और दिक्पाल सभी दशरथजी के गुणों की कथाएँ कहा करते हैं॥4॥

दोहा :

* कहहु तात केहि भाँति कोउ करिहि बड़ाई तासु।
राम लखन तुम्ह सत्रुहन सरिस सुअन सुचि जासु॥173॥

भावार्थ:-हे तात! कहो, उनकी बड़ाई कोई किस प्रकार करेगा, जिनके श्री राम, लक्ष्मण, तुम और शत्रुघ्न-सरीखे पवित्र पुत्र हैं?॥173॥

चौपाई :

* सब प्रकार भूपति बड़भागी। बादि बिषादु करिअ तेहि लागी॥
यह सुनि समुझि सोचु परिहरहू। सिर धरि राज रजायसु
करहू॥1॥

भावार्थ:-राजा सब प्रकार से बड़भागी थे। उनके लिए विषाद करना व्यर्थ है। यह सुन और समझकर सोच त्याग दो और राजा की आज्ञा सिर चढ़ाकर तदनुसार करो॥1॥

* रायँ राजपदु तुम्ह कहुँ दीन्हा। पिता बचनु फुर चाहिअ
कीन्हा॥
तजे रामु जेहिं बचनहि लागी। तनु परिहरेउ राम बिरहागी॥2॥

भावार्थ:-राजा ने राज पद तुमको दिया है। पिता का वचन तुम्हें सत्य करना चाहिए, जिन्होंने वचन के लिए ही श्री रामचन्द्रजी को त्याग दिया और रामविरह की अग्नि में अपने शरीर की आहुति दे दी॥2॥

* नृपहि बचन प्रिय नहिं प्रिय प्राना। करहु तात पितु बचन
प्रवाना॥
करहु सीस धरि भूप रजाई। हइ तुम्ह कहँ सब भाँति भलाई॥3॥

भावार्थ:-राजा को वचन प्रिय थे, प्राण प्रिय नहीं थे, इसलिए हे तात! पिता के वचनों को प्रमाण (सत्य) करो! राजा की आज्ञा सिर चढ़ाकर पालन करो, इसमें तुम्हारी सब तरह भलाई है॥3॥

* परसुराम पितु अग्या राखी। मारी मातु लोक सब साखी॥
तनय जजातिहि जौबनु दयऊ। पितु अग्याँ अघ अजसु न
भयऊ॥4॥

भावार्थ:-परशुरामजी ने पिता की आज्ञा रखी और माता को मार डाला, सब लोक इस बात के साक्षी हैं। राजा ययाति के पुत्र ने पिता को अपनी जवानी दे दी। पिता की आज्ञा पालन करने से उन्हें पाप और अपयश नहीं हुआ॥4॥

दोहा :

* अनुचित उचित बिचारु तजि ते पालहिं पितु बैन।
ते भाजन सुख सुजस के बसहिं अमरपति ऐन॥174॥

भावार्थ:-जो अनुचित और उचित का विचार छोड़कर पिता के वचनों का पालन करते हैं, वे (यहाँ) सुख और सुयश के पात्र होकर अंत में इन्द्रपुरी (स्वर्ग) में निवास करते हैं॥174॥

चौपाई :

* अवसि नरेस बचन फुर करहू। पालहु प्रजा सोकु परिहरहू॥
सुरपुर नृपु पाइहि परितोषू। तुम्ह कहुँ सुकृतु सुजसु नहिं दोषू॥1॥

भावार्थ:-राजा का वचन अवश्य सत्य करो। शोक त्याग दो और प्रजा का पालन करो। ऐसा करने से स्वर्ग में राजा संतोष पावेंगे और तुम को पुण्य और सुंदर यश मिलेगा, दोष नहीं लगेगा॥1॥

* बेद बिदित संमत सबही का। जेहि पितु देइ सो पावइ टीका॥
करहु राजु परिहरहु गलानी। मानहु मोर बचन हित जानी॥2॥

भावार्थ:-यह वेद में प्रसिद्ध है और (स्मृति-पुराणादि) सभी शास्त्रों के द्वारा सम्मत है कि पिता जिसको दे वही राजतिलक पाता है, इसलिए तुम राज्य करो, ग्लानि का त्याग कर दो। मेरे वचन को हित समझकर मानो॥2॥

* सुनि सुखु लहब राम बैदेहीं। अनुचित कहब न पंडित केहीं॥
कौसल्यादि सकल महतारीं। तेउ प्रजा सुख होहिं सुखारीं॥3॥

भावार्थ:-इस बात को सुनकर श्री रामचन्द्रजी और जानकीजी सुख पावेंगे और कोई पंडित इसे अनुचित नहीं कहेगा। कौसल्याजी आदि तुम्हारी सब माताएँ भी प्रजा के सुख से सुखी होंगी॥

* परम तुम्हार राम कर जानिहि। सो सब बिधि तुम्ह सन भल मानिहि॥
सौंपेहु राजु राम के आएँ। सेवा करेहु सनेह सुहाएँ॥4॥

भावार्थ:-जो तुम्हारे और श्री रामचन्द्रजी के श्रेष्ठ संबंध को जान लेगा, वह सभी प्रकार से तुमसे भला मानेगा। श्री रामचन्द्रजी के लौट आने पर राज्य उन्हें सौंप देना और सुंदर स्नेह से उनकी सेवा करना॥4॥

दोहा :

* कीजिअ गुर आयसु अवसि कहहिं सचिव कर जोरि।
रघुपति आएँ उचित जस तस तब करब बहोरि॥175॥

भावार्थ:-मंत्री हाथ जोड़कर कह रहे हैं- गुरुजी की आज्ञा का अवश्य ही पालन कीजिए। श्री रघुनाथजी के लौट आने पर जैसा उचित हो, तब फिर वैसा ही कीजिएगा॥175॥

चौपाई :

* कौसल्या धरि धीरजु कहई। पूत पथ्य गुर आयसु अहई॥
सो आदरिअ करिअ हित मानी। तजिअ बिषादु काल गति जानी॥1॥

भावार्थ:-कौसल्याजी भी धीरज धरकर कह रही हैं- हे पुत्र! गुरुजी की आज्ञा पथ्य रूप है। उसका आदर करना चाहिए और हित मानकर उसका पालन करना चाहिए। काल की गति को जानकर विषाद का त्याग कर देना चाहिए॥1॥

* बन रघुपति सुरपति नरनाहू। तुम्ह एहि भाँति तात कदराहू॥

परिजन प्रजा सचिव सब अंबा। तुम्हहीं सुत सब कहँ अवलंबा॥2॥

भावार्थ:-श्री रघुनाथजी वन में हैं, महाराज स्वर्ग का राज्य करने चले गए और हे तात! तुम इस प्रकार कातर हो रहे हो। हे पुत्र! कुटुम्ब, प्रजा, मंत्री और सब माताओं के, सबके एक तुम ही सहारे हो॥2॥

* लखि बिधि बाम कालु कठिनाई। धीरजु धरहु मातु बलि जाई॥
सिर धरि गुर आयसु अनुसरहू। प्रजा पालि परिजन दुखु हरहू॥3॥

भावार्थ:-विधाता को प्रतिकूल और काल को कठोर देखकर धीरज धरो, माता तुम्हारी बलिहारी जाती है। गुरु की आज्ञा को सिर चढ़ाकर उसी के अनुसार कार्य करो और प्रजा का पालन कर कुटुम्बियों का दुःख हरो॥3॥

* गुरु के बचन सचिव अभिनंदनु। सुने भरत हिय हित जनु चंदनु॥
सुनी बहोरि मातु मृदु बानी। सील सनेह सरल रस सानी॥4॥

भावार्थ:-भरतजी ने गुरु के वचनों और मंत्रियों के अभिनंदन (अनुमोदन) को सुना, जो उनके हृदय के लिए मानो चंदन के समान (शीतल) थे। फिर उन्होंने शील, स्नेह और सरलता के रस में सनी हुई माता कौसल्या की कोमल वाणी सुनी॥4॥

छंद :

* सानी सरल रस मातु बानी सुनि भरतु ब्याकुल भए।
लोचन सरोरुह स्रवत सींचत बिरह उर अंकुर नए॥
सो दसा देखत समय तेहि बिसरी सबहि सुधि देह की।
तुलसी सराहत सकल सादर सीवँ सहज सनेह की॥

भावार्थ:-सरलता के रस में सनी हुई माता की वाणी सुनकर भरतजी व्याकुल हो गए। उनके नेत्र कमल जल (आँसू) बहाकर हृदय के विरह रूपी नवीन अंकुर को सींचने लगे। (नेत्रों के आँसुओं ने उनके वियोग-दुःख को बहुत ही बढ़ाकर उन्हें अत्यन्त व्याकुल कर दिया।) उनकी वह दशा देखकर उस समय सबको अपने शरीर की सुध भूल गई। तुलसीदासजी कहते हैं- स्वाभाविक प्रेम की सीमा श्री भरतजी की सब लोग आदरपूर्वक सराहना करने लगे।

सोरठा :

* भरतु कमल कर जोरि धीर धुरंधर धीर धरि।

बचन अमिअँ जनु बोरि देत उचित उत्तर सबहि॥176॥

भावार्थ:-धैर्य की धुरी को धारण करने वाले भरतजी धीरज धरकर, कमल के समान हाथों को जोड़कर, वचनों को मानो अमृत में डुबाकर सबको उचित उत्तर देने लगे-॥176॥

मासपारायण, अठारहवाँ विश्राम

चौपाई :

* मोहि उपदेसु दीन्ह गुरु नीका। प्रजा सचिव संमत सबही का॥
मातु उचित धरि आयसु दीन्हा। अवसि सीस धरि चाहउँ कीन्हा॥1॥

भावार्थ:-गुरुजी ने मुझे सुंदर उपदेश दिया। (फिर) प्रजा, मंत्री आदि सभी को यही सम्मत है। माता ने भी उचित समझकर ही आज्ञा दी है और मैं भी अवश्य उसको सिर चढ़ाकर वैसा ही करना चाहता हूँ॥1॥

* गुर पितु मातु स्वामि हित बानी। सुनि मन मुदित करिअ भलि जानी॥
उचित कि अनुचित किएँ बिचारू। धरमु जाइ सिर पातक भारू॥2॥

भावार्थ:-(क्योंकि) गुरु, पिता, माता, स्वामी और सुहृद् (मित्र) की वाणी सुनकर प्रसन्न मन से उसे अच्छी समझकर करना (मानना) चाहिए। उचित-अनुचित का विचार करने से धर्म जाता है और सिर पर पाप का भार चढ़ता है॥2॥

* तुम्ह तौ देहु सरल सिख सोई। जो आचरत मोर भल होई॥
जद्यपि यह समुझत हउँ नीकें। तदपि होत परितोष न जी कें॥3॥

भावार्थ:-आप तो मुझे वही सरल शिक्षा दे रहे हैं, जिसके आचरण करने में मेरा भला हो। यद्यपि मैं इस बात को भलीभाँति समझता हूँ, तथापि मेरे हृदय को संतोष नहीं होता॥3॥

* अब तुम्ह बिनय मोरि सुनि लेहू। मोहि अनुहरत सिखावनु देहू॥
ऊतरु देउँ छमब अपराधू। दुखित दोष गुन गनहिं न साधू॥4॥

भावार्थ:-अब आप लोग मेरी विनती सुन लीजिए और मेरी योग्यता के अनुसार मुझे शिक्षा दीजिए। मैं उत्तर दे रहा हूँ, यह अपराध क्षमा कीजिए। साधु पुरुष दुःखी मनुष्य के दोष-गुणों को नहीं गिनते।

दोहा :

* पितु सुरपुर सिय रामु बन करन कहहु मोहि राजु।
एहि तें जानहु मोर हित कै आपन बड़ काजु॥177॥

भावार्थ:-पिताजी स्वर्ग में हैं, श्री सीतारामजी वन में हैं और मुझे आप राज्य करने के लिए कह रहे हैं। इसमें आप मेरा कल्याण समझते हैं या अपना कोई बड़ा काम (होने की आशा रखते हैं)?॥177॥

चौपाई :

* हित हमार सियपति सेवकाईं। सो हरि लीन्ह मातु कुटिलाईं॥
मैं अनुमानि दीख मन माहीं। आन उपायँ मोर हित नाहीं॥1॥

भावार्थ:-मेरा कल्याण तो सीतापति श्री रामजी की चाकरी में है, सो उसे माता की कुटिलता ने छीन लिया। मैंने अपने मन में अनुमान करके देख लिया है कि दूसरे किसी उपाय से मेरा कल्याण नहीं है॥1॥

* सोक समाजु राजु केहि लेखें। लखन राम सिय बिनु पद देखें॥
बादि बसन बिनु भूषन भारू। बादि बिरति बिनु ब्रह्मबिचारू॥2॥

भावार्थ:-यह शोक का समुदाय राज्य लक्ष्मण, श्री रामचंद्रजी और सीताजी के चरणों को देखे बिना किस गिनती में है (इसका क्या मूल्य है)? जैसे कपड़ों के बिना गहनों का बोझ व्यर्थ है। वैराग्य के बिना ब्रह्मविचार व्यर्थ है॥2॥

* सरुज सरीर बादि बहु भोगा। बिनु हरिभगति जायँ जप जोगा॥
जायँ जीव बिनु देह सुहाई। बादि मोर सबु बिनु रघुराई॥3॥

भावार्थ:-रोगी शरीर के लिए नाना प्रकार के भोग व्यर्थ हैं। श्री हरि की भक्ति के बिना जप और योग व्यर्थ हैं। जीव के बिना सुंदर देह व्यर्थ है, वैसे ही श्री रघुनाथजी के बिना मेरा सब कुछ व्यर्थ है॥3॥

* जाउँ राम पहिं आयसु देहू। एकाहिं आँक मोर हित एहू॥
मोहि नृप करि भल आपन चहहू। सोउ सनेह जड़ता बस कहहू॥4॥

भावार्थ:-मुझे आज्ञा दीजिए, मैं श्री रामजी के पास जाऊँ! एक ही आँक (निश्चयपूर्वक) मेरा हित इसी में है। और मुझे राजा बनाकर आप अपना भला चाहते हैं, यह भी आप स्नेह की जड़ता (मोह) के वश होकर ही कह रहे हैं॥4॥

दोहा :

* कैकेई सुअ कुटिलमति राम बिमुख गतलाज।
तुम्ह चाहत सुखु मोहबस मोहि से अधम कें राज॥178॥

भावार्थ:-कैकेयी के पुत्र, कुटिलबुद्धि, रामविमुख और निर्लज्ज मुझ से अधम के राज्य से आप मोह के वश होकर ही सुख चाहते हैं॥178॥

चौपाई :

* कहउँ साँचु सब सुनि पतिआहू। चाहिअ धरमसील नरनाहू॥
मोहि राजु हठि देइहहु जबहीं। रसा रसातल जाइहि तबहीं॥1॥

भावार्थ:-मैं सत्य कहता हूँ, आप सब सुनकर विश्वास करें, धर्मशील को ही राजा होना चाहिए। आप मुझे हठ करके ज्यों ही राज्य देंगे, त्यों ही पृथ्वी पाताल में धँस जाएगी॥1॥

* मोहि समान को पाप निवासू। जेहि लगि सीय राम बनबासू॥
रायँ राम कहुँ काननु दीन्हा। बिछुरत गमनु अमरपुर कीन्हा॥2॥

भावार्थ:-मेरे समान पापों का घर कौन होगा, जिसके कारण सीताजी और श्री रामजी का वनवास हुआ? राजा ने श्री रामजी

को वन दिया और उनके बिछुड़ते ही स्वयं स्वर्ग को गमन किया॥2॥

* मैं सठु सब अनरथ कर हेतू। बैठ बात सब सुनउँ सचेतू॥
बिन रघुबीर बिलोकि अबासू। रहे प्रान सहि जग उपहासू॥3॥

भावार्थ:-और मैं दुष्ट, जो अनर्थों का कारण हूँ, होश-हवास में बैठा सब बातें सुन रहा हूँ। श्री रघुनाथजी से रहित घर को देखकर और जगत्‌ का उपहास सहकर भी ये प्राण बने हुए हैं॥3॥

* राम पुनीत बिषय रस रूखे। लोलुप भूमि भोग के भूखे॥
कहँ लगि कहौं हृदय कठिनाई। निदरि कुलिसु जेहिं लही बड़ाई॥4॥

भावार्थ:-(इसका यही कारण है कि ये प्राण) श्री राम रूपी पवित्र विषय रस में आसक्त नहीं हैं। ये लालची भूमि और भोगों के ही भूखे हैं। मैं अपने हृदय की कठोरता कहाँ तक कहूँ? जिसने वज्र का भी तिरस्कार करके बड़ाई पाई है॥4॥

दोहा :

* कारन तें कारजु कठिन होइ दोसु नहिं मोर।
कुलिस अस्थि तें उपल तें लोह कराल कठोर॥179॥

भावार्थ:-कारण से कार्य कठिन होता ही है, इसमें मेरा दोष नहीं। हड्डी से वज्र और पत्थर से लोहा भयानक और कठोर होता है॥179॥

चौपाई :

* कैकेई भव तनु अनुरागे। पावँर प्रान अघाइ अभागे॥
जौं प्रिय बिरहँ प्रान प्रिय लागे। देखब सुनब बहुत अब आगे॥1॥

भावार्थ:-कैकेयी से उत्पन्न देह में प्रेम करने वाले ये पामर प्राण भरपेट (पूरी तरह से) अभागे हैं। जब प्रिय के वियोग में भी मुझे प्राण प्रिय लग रहे हैं, तब अभी आगे मैं और भी बहुत कुछ देखूँ-सुनूँगा॥1॥

* लखन राम सिय कहुँ बनु दीन्हा। पठइ अमरपुर पति हित कीन्हा॥
लीन्ह बिधवपन अपजसु आपू। दीन्हेउ प्रजहि सोकु संतापू॥2॥

भावार्थ:-लक्ष्मण, श्री रामजी और सीताजी को तो वन दिया, स्वर्ग भेजकर पति का कल्याण किया, स्वयं विधवापन और अपयश लिया, प्रजा को शोक और संताप दिया,॥2॥

* मोहि दीन्ह सुखु सुजसु सुराजू। कीन्ह कैकईं सब कर काजू॥
ऐहि तें मोर काह अब नीका। तेहि पर देन कहहु तुम्ह टीका॥3॥

भावार्थ:-और मुझे सुख, सुंदर यश और उत्तम राज्य दिया! कैकेयी ने सभी का काम बना दिया! इससे अच्छा अब मेरे लिए और क्या होगा? उस पर भी आप लोग मुझे राजतिलक देने को कहते हैं!॥3॥

* कैकइ जठर जनमि जग माहीं। यह मोहि कहँ कछु अनुचित नाहीं॥
मोरि बात सब बिधिहिं बनाई। प्रजा पाँच कत करहु सहाई॥4॥

भावार्थ:-कैकयी के पेट से जगत् में जन्म लेकर यह मेरे लिए कुछ भी अनुचित नहीं है। मेरी सब बात तो विधाता ने ही बना दी है। (फिर) उसमें प्रजा और पंच (आप लोग) क्यों सहायता कर रहे हैं?॥4॥

दोहा :

* ग्रह ग्रहीत पुनि बात बस तेहि पुनि बीछी मार।
तेहि पिआइअ बारुनी कहहु काह उपचार॥180॥

भावार्थ:-जिसे कुग्रह लगे हों (अथवा जो पिशाचग्रस्त हो), फिर जो वायुरोग से पीड़ित हो और उसी को फिर बिच्छू डंक मार दे, उसको यदि मदिरा पिलाई जाए, तो कहिए यह कैसा इलाज है!॥180॥

चौपाई :

* कैकइ सुअन जोगु जग जोई। चतुर बिरंचि दीन्ह मोहि सोई॥
दसरथ तनय राम लघु भाई। दीन्हि मोहि बिधि बादि बड़ाई॥1॥

भावार्थ:-कैकेयी के लड़के के लिए संसार में जो कुछ योग्य था, चतुर विधाता ने मुझे वही दिया। पर 'दशरथजी का पुत्र' और 'राम का छोटा भाई' होने की बड़ाई मुझे विधाता ने व्यर्थ ही दी॥1॥

* तुम्ह सब कहहु कढ़ावन टीका। राय रजायसु सब कहँ नीका॥
उतरु देउँ केहि बिधि केहि केही। कहहु सुखेन जथा रुचि जेही॥2॥

भावार्थ:-आप सब लोग भी मुझे टीका कढ़ाने के लिए कह रहे हैं! राजा की आज्ञा सभी के लिए अच्छी है। मैं किस-किस को किस-किस प्रकार से उत्तर दूँ? जिसकी जैसी रुचि हो, आप लोग सुखपूर्वक वही कहें॥2॥

* मोहि कुमातु समेत बिहाई। कहहु कहिहि के कीन्ह भलाई॥
मो बिनु को सचराचर माहीं। जेहि सिय रामु प्रानप्रिय नाहीं॥3॥

भावार्थ:-मेरी कुमाता कैकेयी समेत मुझे छोड़कर, कहिए और कौन कहेगा कि यह काम अच्छा किया गया? जड़-चेतन जगत् में मेरे सिवा और कौन है, जिसको श्री सीता-रामजी प्राणों के समान प्यारे न हों॥3॥

* परम हानि सब कहँ बड़ लाहू। अदिनु मोर नहिं दूषन काहू॥
संसय सील प्रेम बस अहहू। सबुइ उचित सब जो कछु कहहू॥4॥

भावार्थ:-जो परम हानि है, उसी में सबको बड़ा लाभ दिख रहा है। मेरा बुरा दिन है किसी का दोष नहीं। आप सब जो कुछ कहते हैं सो सब उचित ही है, क्योंकि आप लोग संशय, शील और प्रेम के वश हैं॥4॥

दोहा :

* राम मातु सुठि सरलचित मो पर प्रेमु बिसेषि।
कहइ सुभाय सनेह बस मोरि दीनता देखि॥181॥

भावार्थ:-श्री रामचंद्रजी की माता बहुत ही सरल हृदय हैं और मुझ पर उनका विशेष प्रेम है, इसलिए मेरी दीनता देखकर वे स्वाभाविक स्नेहवश ही ऐसा कह रही हैं॥181॥

चौपाई :

* गुर बिबेक सागर जगु जाना। जिन्हहि बिस्व कर बदर समाना॥
मो कहँ तिलक साज सज सोऊ। भएँ बिधि बिमुख बिमुख सबु कोऊ॥1॥

भावार्थ:-गुरुजी ज्ञान के समुद्र हैं, इस बात को सारा जगत् जानता है, जिसके लिए विश्व हथेली पर रखे हुए बेर के समान

है, वे भी मेरे लिए राजतिलक का साज सज रहे हैं। सत्य है, विधाता के विपरीत होने पर सब कोई विपरीत हो जाते हैं॥1॥

* परिहरि रामु सीय जग माहीं। कोउ न कहिहि मोर मत नाहीं॥
सो मैं सुनब सहब सुखु मानी। अंतहुँ कीच तहाँ जहँ पानी॥2॥

भावार्थ:-श्री रामचंद्रजी और सीताजी को छोड़कर जगत्‌ में कोई यह नहीं कहेगा कि इस अनर्थ में मेरी सम्मति नहीं है। मैं उसे सुखपूर्वक सुनूँगा और सहूँगा, क्योंकि जहाँ पानी होता है, वहाँ अन्त में कीचड़ होता ही है॥2॥

* डरु न मोहि जग कहिहि कि पोचू। परलोकहु कर नाहिन सोचू॥
एकइ उर बस दुसह दवारी। मोहि लगि भे सिय रामु दुखारी॥3॥

भावार्थ:-मुझे इसका डर नहीं है कि जगत्‌ मुझे बुरा कहेगा और न मुझे परलोक का ही सोच है। मेरे हृदय में तो बस, एक ही दुःसह दावानल धधक रहा है कि मेरे कारण श्री सीता-रामजी दुःखी हुए॥3॥

* जीवन लाहु लखन भल पावा। सबु तजि राम चरन मनु लावा॥
मोर जनम रघुबर बन लागी। झूठ काह पछिताउँ अभागी॥4॥

भावार्थ:-जीवन का उत्तम लाभ तो लक्ष्मण ने पाया, जिन्होंने सब कुछ तजकर श्री रामजी के चरणों में मन लगाया। मेरा जन्म तो श्री रामजी के वनवास के लिए ही हुआ था। मैं अभागा झूठ-मूठ क्या पछताता हूँ?॥4॥

दोहा :

* आपनि दारुन दीनता कहउँ सबहि सिरु नाइ।
देखें बिनु रघुनाथ पद जिय कै जरनि न जाइ॥182॥

भावार्थ:-सबको सिर झुकाकर मैं अपनी दारुण दीनता कहता हूँ। श्री रघुनाथजी के चरणों के दर्शन किए बिना मेरे जी की जलन न जाएगी॥182॥

चौपाई :

* आन उपाउ मोहि नहिं सूझा। को जिय कै रघुबर बिनु बूझा॥
एकहिं आँक इहइ मन माहीं। प्रातकाल चलिहउँ प्रभु पाहीं॥1॥

भावार्थ:-मुझे दूसरा कोई उपाय नहीं सूझता। श्री राम के बिना मेरे हृदय की बात कौन जान सकता है? मन में एक ही आँक (निश्चयपूर्वक) यही है कि प्रातः काल श्री रामजी के पास चल दूँगा॥1॥

* जद्यपि मैं अनभल अपराधी। भै मोहि कारन सकल उपाधी॥
तदपि सरन सनमुख मोहि देखी। छमि सब करिहहिं कृपा बिसेषी॥2॥

भावार्थ:-यद्यपि मैं बुरा हूँ और अपराधी हूँ और मेरे ही कारण यह सब उपद्रव हुआ है, तथापि श्री रामजी मुझे शरण में सम्मुख आया हुआ देखकर सब अपराध क्षमा करके मुझ पर विशेष कृपा करेंगे॥2॥

* सील सकुच सुठि सरल सुभाऊ। कृपा सनेह सदन रघुराऊ॥
अरिहुक अनभल कीन्ह न रामा। मैं सिसु सेवक जद्यपि बामा॥3॥

भावार्थ:-श्री रघुनाथजी शील, संकोच, अत्यन्त सरल स्वभाव, कृपा और स्नेह के घर हैं। श्री रामजी ने कभी शत्रु का भी

अनिष्ट नहीं किया। मैं यद्यपि टेढ़ा हूँ, पर हूँ तो उनका बच्चा और गुलाम ही॥3॥

*तुम्ह पै पाँच मोर भल मानी। आयसु आसिष देहु सुबानी॥
जेहिं सुनि बिनय मोहि जनु जानी। आवहिं बहुरि रामु रजधानी॥4॥

भावार्थ:-आप पंच (सब) लोग भी इसी में मेरा कल्याण मानकर सुंदर वाणी से आज्ञा और आशीर्वाद दीजिए, जिसमें मेरी विनती सुनकर और मुझे अपना दास जानकर श्री रामचन्द्रजी राजधानी को लौट आवें॥4॥

दोहा :

* जद्यपि जनमु कुमातु तें मैं सठु सदा सदोस।
आपन जानि न त्यागिहहिं मोहि रघुबीर भरोस॥183॥

भावार्थ:-यद्यपि मेरा जन्म कुमाता से हुआ है और मैं दुष्ट तथा सदा दोषयुक्त भी हूँ, तो भी मुझे श्री रामजी का भरोसा है कि वे मुझे अपना जानकर त्यागेंगे नहीं॥183॥

चौपाई :

* भरत बचन सब कहँ प्रिय लागे। राम सनेह सुधाँ जनु पागे॥
लोग बियोग बिषम बिष दागे। मंत्र सबीज सुनत जनु जागे॥1॥

भावार्थ:-भरतजी के वचन सबको प्यारे लगे। मानो वे श्री रामजी के प्रेमरूपी अमृत में पगे हुए थे। श्री रामवियोग रूपी भीषण विष से सब लोग जले हुए थे। वे मानो बीज सहित मंत्र को सुनते ही जाग उठे॥1॥

* मातु सचिव गुर पुर नर नारी। सकल सनेहँ बिकल भए भारी॥

भरतहि कहहिं सराहि सराही। राम प्रेम मूरति तनु आही॥2॥

भावार्थ:-माता, मंत्री, गुरु, नगर के स्त्री-पुरुष सभी स्नेह के कारण बहुत ही व्याकुल हो गए। सब भरतजी को सराह-सराहकर कहते हैं कि आपका शरीर श्री रामप्रेम की साक्षात मूर्ति ही है॥2॥

* तात भरत अस काहे न कहहू। प्रान समान राम प्रिय अहहू॥
जो पावँरु अपनी जड़ताईं। तुम्हहि सुगाइ मातु कुटिलाईं॥3॥

भावार्थ:-हे तात भरत! आप ऐसा क्यों न कहें। श्री रामजी को आप प्राणों के समान प्यारे हैं। जो नीच अपनी मूर्खता से आपकी माता कैकेयी की कुटिलता को लेकर आप पर सन्देह करेगा,॥3॥

* सो सठु कोटिक पुरुष समेता। बसिहि कलप सत नरक निकेता॥
अहि अघ अवगुन नहिं मनि गहई। हरइ गरल दुख दारिद दहई॥4॥

भावार्थ:-वह दुष्ट करोड़ों पुरखों सहित सौ कल्पों तक नरक के घर में निवास करेगा। साँप के पाप और अवगुण को मणि नहीं ग्रहण करती, बल्कि वह विष को हर लेती है और दुःख तथा दरिद्रता को भस्म कर देती है॥4॥

दोहा :

* अवसि चलिअ बन रामु जहँ भरत मंत्रु भल कीन्ह।
सोक सिंधु बूड़त सबहि तुम्ह अवलंबनु दीन्ह॥184॥

भावार्थ:-हे भरतजी! वन को अवश्य चलिए, जहाँ श्री रामजी हैं, आपने बहुत अच्छी सलाह विचारी। शोक समुद्र में डूबते हुए सब लोगों को आपने (बड़ा) सहारा दे दिया॥184॥

चौपाई :

* भा सब कें मन मोदु न थोरा। जनु घन धुनि सुनि चातक मोरा॥
चलत प्रात लखि निरनउ नीके। भरतु प्रानप्रिय भे सबही के॥1॥

भावार्थ:-सबके मन में कम आनंद नहीं हुआ (अर्थात बहुत ही आनंद हुआ)! मानो मेघों की गर्जना सुनकर चातक और मोर आनंदित हो रहे हों। (दूसरे दिन) प्रातःकाल चलने का सुंदर निर्णय देखकर भरतजी सभी को प्राणप्रिय हो गए॥1॥

* मुनिहि बंदि भरतहि सिरु नाई। चले सकल घर बिदा कराई॥
धन्य भरत जीवनु जग माहीं। सीलु सनेहु सराहत जाहीं॥2॥

भावार्थ:-मुनि वशिष्ठजी की वंदना करके और भरतजी को सिर नवाकर, सब लोग विदा लेकर अपने-अपने घर को चले। जगत में भरतजी का जीवन धन्य है, इस प्रकार कहते हुए वे उनके शील और स्नेह की सराहना करते जाते हैं॥2॥

* कहहिं परसपर भा बड़ काजू। सकल चलै कर साजहिं साजू॥
जेहि राखहिं रहु घर रखवारी। सो जानइ जनु गरदनि मारी॥3॥

भावार्थ:-आपस में कहते हैं, बड़ा काम हुआ। सभी चलने की तैयारी करने लगे। जिसको भी घर की रखवाली के लिए रहो, ऐसा कहकर रखते हैं, वही समझता है मानो मेरी गर्दन मारी गई॥3॥

* कोउ कह रहन कहिअ नहिं काहू। को न चहइ जग जीवन लाहू॥4॥

भावार्थ:-कोई-कोई कहते हैं- रहने के लिए किसी को भी मत कहो, जगत में जीवन का लाभ कौन नहीं चाहता?॥4॥

गीताप्रेस गोरखपुर

अयोध्यावासियों सहित श्री भरत-शत्रुघ्न आदि का वनगमन

दोहा :

* जरउ सो संपति सदन सुखु सुहृद मातु पितु भाइ।

सनमुख होत जो राम पद करै न सहस सहाइ॥185॥

भावार्थ:-वह सम्पत्ति, घर, सुख, मित्र, माता, पिता, भाई जल जाए जो श्री रामजी के चरणों के सम्मुख होने में हँसते हुए (प्रसन्नतापूर्वक) सहायता न करे॥185॥

चौपाई :

* घर घर साजहिं बाहन नाना। हरषु हृदयँ परभात पयाना॥

भरत जाइ घर कीन्ह बिचारू। नगरु बाजि गज भवन भँडारू॥1॥

भावार्थ:-घर-घर लोग अनेकों प्रकार की सवारियाँ सजा रहे हैं। हृदय में (बड़ा) हर्ष है कि सबेरे चलना है। भरतजी ने घर जाकर विचार किया कि नगर घोड़े, हाथी, महल-खजाना आदि- ॥1॥

* संपति सब रघुपति कै आही। जौं बिनु जतन चलौं तजि ताही॥

तौ परिनाम न मोरि भलाई। पाप सिरोमनि साइँ दोहाई॥2॥

भावार्थ:-सारी सम्पत्ति श्री रघुनाथजी की है। यदि उसकी (रक्षा की) व्यवस्था किए बिना उसे ऐसे ही छोड़कर चल दूँ, तो परिणाम में मेरी भलाई नहीं है, क्योंकि स्वामी का द्रोह सब पापों में शिरोमणि (श्रेष्ठ) है॥2॥

* करइ स्वामि हित सेवकु सोई। दूषन कोटि देइ किन कोई॥
अस बिचारि सुचि सेवक बोले। जे सपनेहुँ निज धरम न डोले॥3॥

भावार्थ:-सेवक वही है, जो स्वामी का हित करे, चाहे कोई करोड़ों दोष क्यों न दे। भरतजी ने ऐसा विचारकर ऐसे विश्वासपात्र सेवकों को बुलाया, जो कभी स्वप्न में भी अपने धर्म से नहीं डिगे थे॥3॥

* कहि सबु मरमु धरमु भल भाषा। जो जेहि लायक सो तेहिं राखा॥
करि सबु जतनु राखि रखवारे। राम मातु पहिं भरतु सिधारे॥4॥

भावार्थ:-भरतजी ने उनको सब भेद समझाकर फिर उत्तम धर्म बतलाया और जो जिस योग्य था, उसे उसी काम पर नियुक्त कर दिया। सब व्यवस्था करके, रक्षकों को रखकर भरतजी राम माता कौसल्याजी के पास गए॥4॥

दोहा :

* आरत जननी जानि सब भरत सनेह सुजान।
कहेउ बनावन पालकीं सजन सुखासन जान॥186॥

भावार्थ:-स्नेह के सुजान (प्रेम के तत्व को जानने वाले) भरतजी ने सब माताओं को आर्त (दुःखी) जानकर उनके लिए पालकियाँ

तैयार करने तथा सुखासन यान (सुखपाल) सजाने के लिए कहा॥186॥

चौपाई :

* चक्क चक्कि जिमि पुर नर नारी। चहत प्रात उर आरत भारी॥
जागत सब निसि भयउ बिहाना। भरत बोलाए सचिव सुजाना॥1॥

भावार्थ:-नगर के नर-नारी चकवे-चकवी की भाँति हृदय में अत्यन्त आर्त होकर प्रातःकाल का होना चाहते हैं। सारी रात जागते-जागते सबेरा हो गया। तब भरतजी ने चतुर मंत्रियों को बुलवाया॥1॥

* कहेउ लेहु सबु तिलक समाजू। बनहिं देब मुनि रामहि राजू॥
बेगि चलहु सुनि सचिव जोहारे। तुरत तुरग रथ नाग सँवारे॥2॥

भावार्थ:-और कहा- तिलक का सब सामान ले चलो। वन में ही मुनि वशिष्ठजी श्री रामचन्द्रजी को राज्य देंगे, जल्दी चलो। यह सुनकर मंत्रियों ने वंदना की और तुरंत घोड़े, रथ और हाथी सजवा दिए॥2॥

* अरुंधती अरु अगिनि समाऊ। रथ चढ़ि चले प्रथम मुनिराऊ॥
बिप्र बृंद चढ़ि बाहन नाना। चले सकल तप तेज निधाना॥3॥

भावार्थ:-सबसे पहले मुनिराज वशिष्ठजी अरुंधती और अग्निहोत्र की सब सामग्री सहित रथ पर सवार होकर चले। फिर ब्राह्मणों के समूह, जो सब के सब तपस्या और तेज के भंडार थे, अनेकों सवारियों पर चढ़कर चले॥3॥

* नगर लोग सब सजि सजि जाना। चित्रकूट कहँ कीन्ह पयाना॥

सिबिका सुभग न जाहिं बखानी। चढ़ि चढ़ि चलत भईं सब रानी॥4॥

भावार्थ:-नगर के सब लोग रथों को सजा-सजाकर चित्रकूट को चल पड़े। जिनका वर्णन नहीं हो सकता, ऐसी सुंदर पालकियों पर चढ़-चढ़कर सब रानियाँ चलीं॥4॥

दोहा :

* सौंपि नगर सुचि सेवकनि सादर सकल चलाइ।
सुमिरि राम सिय चरन तब चले भरत दोउ भाइ॥187॥

भावार्थ:-विश्वासपात्र सेवकों को नगर सौंपकर और सबको आदरपूर्वक रवाना करके, तब श्री सीता-रामजी के चरणों को स्मरण करके भरत-शत्रुघ्न दोनों भाई चले॥187॥

चौपाई :

* राम दरस बस सब नर नारी। जनु करि करिनि चले तकि बारी॥
बन सिय रामु समुझि मन माहीं। सानुज भरत पयादेहिं जाहीं॥1॥

भावार्थ:-श्री रामचन्द्रजी के दर्शन के वश में हुए (दर्शन की अनन्य लालसा से) सब नर-नारी ऐसे चले मानो प्यासे हाथी-हथिनी जल को तककर (बड़ी तेजी से बावले से हुए) जा रहे हों। श्री सीताजी-रामजी (सब सुखों को छोड़कर) वन में हैं, मन में ऐसा विचार करके छोटे भाई शत्रुघ्नजी सहित भरतजी पैदल ही चले जा रहे हैं॥1॥

*देखि सनेहु लोग अनुरागे। उतरि चले हय गय रथ त्यागे॥
जाइ समीप राखि निज डोली। राम मातु मृदु बानी बोली॥2॥

भावार्थ:-उनका स्नेह देखकर लोग प्रेम में मग्न हो गए और सब घोड़े, हाथी, रथों को छोड़कर उनसे उतरकर पैदल चलने लगे। तब श्री रामचन्द्रजी की माता कौसल्याजी भरत के पास जाकर और अपनी पालकी उनके समीप खड़ी करके कोमल वाणी से बोलीं-॥2॥

* तात चढ़हु रथ बलि महतारी। होइहि प्रिय परिवारु दुखारी॥
तुम्हरें चलत चलिहि सबु लोगू। सकल सोक कृस नहिं मग जोगू॥3॥

भावार्थ:-हे बेटा! माता बलैया लेती है, तुम रथ पर चढ़ जाओ। नहीं तो सारा परिवार दुःखी हो जाएगा। तुम्हारे पैदल चलने से सभी लोग पैदल चलेंगे। शोक के मारे सब दुबले हो रहे हैं, पैदल रास्ते के (पैदल चलने के) योग्य नहीं हैं॥3॥

* सिर धरि बचन चरन सिरु नाई। रथ चढ़ि चलत भए दोउ भाई॥
तमसा प्रथम दिवस करि बासू। दूसर गोमति तीर निवासू॥4॥

भावार्थ:-माता की आज्ञा को सिर चढ़ाकर और उनके चरणों में सिर नवाकर दोनों भाई रथ पर चढ़कर चलने लगे। पहले दिन तमसा पर वास (मुकाम) करके दूसरा मुकाम गोमती के तीर पर किया॥4॥

दोहा :

* पय अहार फल असन एक निसि भोजन एक लोग।
करत राम हित नेम ब्रत परिहरि भूषन भोग॥188॥

भावार्थ:-कोई दूध ही पीते, कोई फलाहार करते और कुछ लोग रात को एक ही बार भोजन करते हैं। भूषण और भोग-विलास

को छोड़कर सब लोग श्री रामचन्द्रजी के लिए नियम और व्रत करते हैं॥188॥

गीताप्रेस गोरखपुर

निषाद की शंका और सावधानी

चौपाई :

* सई तीर बसि चले बिहाने। सृंगबेरपुर सब निअराने॥
समाचार सब सुने निषादा। हृदयँ बिचार करइ सबिषादा॥1॥

भावार्थ:-रात भर सई नदी के तीर पर निवास करके सबेरे वहाँ से चल दिए और सब श्रृंगवेरपुर के समीप जा पहुँचे। निषादराज ने सब समाचार सुने, तो वह दुःखी होकर हृदय में विचार करने लगा-॥1॥

* कारन कवन भरतु बन जाहीं। है कछु कपट भाउ मन माहीं॥
जौं पै जियँ न होति कुटिलाई। तौ कत लीन्ह संग कटकाई॥2॥

भावार्थ:-क्या कारण है जो भरत वन को जा रहे हैं, मन में कुछ कपट भाव अवश्य है। यदि मन में कुटिलता न होती, तो साथ में सेना क्यों ले चले हैं॥2॥

* जानहिं सानुज रामहि मारी। करउँ अकंटक राजु सुखारी॥
भरत न राजनीति उर आनी। तब कलंकु अब जीवन हानी॥3॥

भावार्थ:-समझते हैं कि छोटे भाई लक्ष्मण सहित श्री राम को मारकर सुख से निष्कण्टक राज्य करूँगा। भरत ने हृदय में राजनीति को स्थान नहीं दिया (राजनीति का विचार नहीं किया)। तब (पहले) तो कलंक ही लगा था, अब तो जीवन से ही हाथ धोना पड़ेगा॥3॥

* सकल सुरासुर जुरहिं जुझारा। रामहि समर न जीतनिहारा॥
का आचरजु भरतु अस करहीं। नहिं बिष बेलि अमिअ फल फरहीं॥4॥

भावार्थ:-सम्पूर्ण देवता और दैत्य वीर जुट जाएँ, तो भी श्री रामजी को रण में जीतने वाला कोई नहीं है। भरत जो ऐसा कर रहे हैं, इसमें आश्चर्य ही क्या है? विष की बेलें अमृतफल कभी नहीं फलतीं!॥4॥

दोहा :

* अस बिचारि गुहँ ग्याति सन कहेउ सजग सब होहु।
हथवाँसहु बोरहु तरनि कीजिअ घाटारोहु॥189॥

भावार्थ:-ऐसा विचारकर गुह (निषादराज) ने अपनी जाति वालों से कहा कि सब लोग सावधान हो जाओ। नावों को हाथ में (कब्जे में) कर लो और फिर उन्हें डुबा दो तथा सब घाटों को रोक दो॥189॥

चौपाई :

* होहु सँजोइल रोकहु घाटा। ठाटहु सकल मरै के ठाटा॥
सनमुख लोह भरत सन लेऊँ। जिअत न सुरसरि उतरन देऊँ॥1॥

भावार्थ:-सुसज्जित होकर घाटों को रोक लो और सब लोग मरने के साज सजा लो (अर्थात भरत से युद्ध में लड़कर मरने के लिए तैयार हो जाओ)। मैं भरत से सामने (मैदान में) लोहा लूँगा

(मुठभेड़ करूँगा) और जीते जी उन्हें गंगा पार न उतरने दूँगा॥1॥

* समर मरनु पुनि सुरसरि तीरा। राम काजु छनभंगु सरीरा॥
भरत भाइ नृपु मैं जन नीचू। बड़ें भाग असि पाइअ मीचू॥2॥

भावार्थ:-युद्ध में मरण, फिर गंगाजी का तट, श्री रामजी का काम और क्षणभंगुर शरीर (जो चाहे जब नाश हो जाए), भरत श्री रामजी के भाई और राजा (उनके हाथ से मरना) और मैं नीच सेवक- बड़े भाग्य से ऐसी मृत्यु मिलती है॥2॥

* स्वामि काज करिहउँ रन रारी। जस धवलिहउँ भुवन दस चारी॥
तजउँ प्रान रघुनाथ निहोरें। दुहूँ हाथ मुद मोदक मोरें॥3॥

भावार्थ:-मैं स्वामी के काम के लिए रण में लड़ाई करूँगा और चौदहों लोकों को अपने यश से उज्ज्वल कर दूँगा। श्री रघुनाथजी के निमित्त प्राण त्याग दूँगा। मेरे तो दोनों ही हाथों में आनंद के लड्डू हैं (अर्थात जीत गया तो राम सेवक का यश प्राप्त करूँगा और मारा गया तो श्री रामजी की नित्य सेवा प्राप्त करूँगा)॥3॥

* साधु समाज न जाकर लेखा। राम भगत महुँ जासु न रेखा॥
जायँ जिअत जग सो महि भारू। जननी जौबन बिटप कुठारू॥4॥

भावार्थ:-साधुओं के समाज में जिसकी गिनती नहीं और श्री रामजी के भक्तों में जिसका स्थान नहीं, वह जगत में पृथ्वी का भार होकर व्यर्थ ही जीता है। वह माता के यौवन रूपी वृक्ष के काटने के लिए कुल्हाड़ा मात्र है॥4॥

दोहा :

* बिगत बिषाद निषादपति सबहि बढ़ाइ उछाहु।

सुमिरि राम मागेउ तुरत तरकस धनुष सनाहु॥190॥

भावार्थ:-(इस प्रकार श्री रामजी के लिए प्राण समर्पण का निश्चय करके) निषादराज विषाद से रहित हो गया और सबका उत्साह बढ़ाकर तथा श्री रामचन्द्रजी का स्मरण करके उसने तुरंत ही तरकस, धनुष और कवच माँगा॥190॥

चौपाई :

* बेगहु भाइहु सजहु सँजोऊ। सुनि रजाइ कदराइ न कोऊ॥
भलेहिं नाथ सब कहहिं सहरषा। एकहिं एक बढ़ावइ करषा॥1॥

भावार्थ:-(उसने कहा-) हे भाइयों! जल्दी करो और सब सामान सजाओ। मेरी आज्ञा सुनकर कोई मन में कायरता न लावे। सब हर्ष के साथ बोल उठे- हे नाथ! बहुत अच्छा और आपस में एक-दूसरे का जोश बढ़ाने लगे॥1॥

* चले निषाद जोहारि जोहारी। सूर सकल रन रूचइ रारी॥
सुमिरि राम पद पंकज पनहीं। भाथीं बाँधि चढ़ाइन्हि धनहीं॥2॥

भावार्थ:-निषादराज को जोहार कर-करके सब निषाद चले। सभी बड़े शूरवीर हैं और संग्राम में लड़ना उन्हें बहुत अच्छा लगता है। श्री रामचन्द्रजी के चरणकमलों की जूतियों का स्मरण करके उन्होंने भाथियाँ (छोटे-छोटे तरकस) बाँधकर धनुहियों (छोटे-छोटे धनुषों) पर प्रत्यंचा चढ़ाई॥2॥

* अँगरी पहिरि कूँड़ि सिर धरहीं। फरसा बाँस सेल सम करहीं॥
एक कुसल अति ओड़न खाँड़े। कूदहिं गगन मनहुँ छिति छाँड़े॥3॥

भावार्थ:-कवच पहनकर सिर पर लोहे का टोप रखते हैं और फरसे, भाले तथा बरछों को सीधा कर रहे हैं (सुधार रहे हैं)। कोई तलवार के वार रोकने में अत्यन्त ही कुशल है। वे ऐसे

उमंग में भरे हैं, मानो धरती छोड़कर आकाश में कूद (उछल) रहे हों॥3॥

* निज निज साजु समाजु बनाई। गुह राउतहि जोहारे जाई॥
देखि सुभट सब लायक जाने। लै लै नाम सकल सनमाने॥4॥

भावार्थ:-अपना-अपना साज-समाज (लड़ाई का सामान और दल) बनाकर उन्होंने जाकर निषादराज गुह को जोहार की। निषादराज ने सुंदर योद्धाओं को देखकर, सबको सुयोग्य जाना और नाम ले-लेकर सबका सम्मान किया॥4॥

दोहा :

* भाइहु लावहु धोख जनि आजु काज बड़ मोहि।
सुनि सरोष बोले सुभट बीर अधीर न होहि॥191॥

भावार्थ:-(उसने कहा-) हे भाइयों! धोखा न लाना (अर्थात मरने से न घबड़ाना), आज मेरा बड़ा भारी काम है। यह सुनकर सब योद्धा बड़े जोश के साथ बोल उठे- हे वीर! अधीर मत हो॥191॥

चौपाई :

* राम प्रताप नाथ बल तोरे। करहिं कटकु बिनु भट बिनु घोरे॥
जीवन पाउ न पाछें धरहीं। रुंड मुंडमय मेदिनि करहीं॥1॥

भावार्थ:-हे नाथ! श्री रामचन्द्रजी के प्रताप से और आपके बल से हम लोग भरत की सेना को बिना वीर और बिना घोड़े की कर देंगे (एक-एक वीर और एक-एक घोड़े को मार डालेंगे)। जीते जी पीछे पाँव न रखेंगे। पृथ्वी को रुण्ड-मुण्डमयी कर देंगे (सिरों और धड़ों से छा देंगे)॥1॥

* दीख निषादनाथ भल टोलू। कहेउ बजाउ जुझाऊ ढोलू॥

एतना कहत छींक भइ बाँए। कहेउ सगुनिअन्ह खेत सुहाए॥2॥

भावार्थ:-निषादराज ने वीरों का बढ़िया दल देखकर कहा- जुझारू (लड़ाई का) ढोल बजाओ। इतना कहते ही बाईं ओर छींक हुई। शकुन विचारने वालों ने कहा कि खेत सुंदर हैं (जीत होगी)॥2॥

* बूढ़ु एकु कह सगुन बिचारी। भरतहि मिलिअ न होइहि रारी॥
रामहि भरतु मनावन जाहीं। सगुन कहइ अस बिग्रहु नाहीं॥3॥

भावार्थ:-एक बूढ़े ने शकुन विचारकर कहा- भरत से मिल लीजिए, उनसे लड़ाई नहीं होगी। भरत श्री रामचन्द्रजी को मनाने जा रहे हैं। शकुन ऐसा कह रहा है कि विरोध नहीं है॥3॥

* सुनि गुह कहइ नीक कह बूढ़ा। सहसा करि पछिताहिं बिमूढ़ा॥
भरत सुभाउ सीलु बिनु बूझें। बड़ि हित हानि जानि बिनु जूझें॥4॥

भावार्थ:-यह सुनकर निषादराज गुहने कहा- बूढ़ा ठीक कह रहा है। जल्दी में (बिना विचारे) कोई काम करके मूर्ख लोग पछताते हैं। भरतजी का शील स्वभाव बिना समझे और बिना जाने युद्ध करने में हित की बहुत बड़ी हानि है॥4॥

दोहा :

* गहहु घाट भट समिटि सब लेउँ मरम मिलि जाइ।
बूझि मित्र अरि मध्य गति तस तब करिहउँ आइ॥192॥

भावार्थ:-अतएव हे वीरों! तुम लोग इकट्ठे होकर सब घाटों को रोक लो, मैं जाकर भरतजी से मिलकर उनका भेद लेता हूँ। उनका भाव मित्र का है या शत्रु का या उदासीन का, यह जानकर तब आकर वैसा (उसी के अनुसार) प्रबंध करूँगा॥192॥

चौपाई :

* लखब सनेहु सुभायँ सुहाएँ। बैरु प्रीति नहिं दुरइँ दुराएँ॥
अस कहि भेंट सँजोवन लागे। कंद मूल फल खग मृग मागे॥1॥

भावार्थ:-उनके सुंदर स्वभाव से मैं उनके स्नेह को पहचान लूँगा। वैर और प्रेम छिपाने से नहीं छिपते। ऐसा कहकर वह भेंट का सामान सजाने लगा। उसने कंद, मूल, फल, पक्षी और हिरन मँगवाए॥1॥

* मीन पीन पाठीन पुराने। भरि भरि भार कहारन्ह आने॥
मिलन साजु सजि मिलन सिधाए। मंगल मूल सगुन सुभ पाए॥2॥

भावार्थ:-कहार लोग पुरानी और मोटी पहिना नामक मछलियों के भार भर-भरकर लाए। भेंट का सामान सजाकर मिलने के लिए चले तो मंगलदायक शुभ-शकुन मिले॥2॥

* देखि दूरि तें कहि निज नामू। कीन्ह मुनीसहि दंड प्रनामू॥
जानि रामप्रिय दीन्हि असीसा। भरतहि कहेउ बुझाइ मुनीसा॥3॥

भावार्थ:-निषादराज ने मुनिराज वशिष्ठजी को देखकर अपना नाम बतलाकर दूर ही से दण्डवत प्रणाम किया। मुनीश्वर वशिष्ठजी ने उसको राम का प्यारा जानकर आशीर्वाद दिया और भरतजी को समझाकर कहा (कि यह श्री रामजी का मित्र है)॥3॥

* राम सखा सुनि संदनु त्यागा। चले उचरि उमगत अनुरागा॥
गाउँ जाति गुहँ नाउँ सुनाई। कीन्ह जोहारु माथ महि लाई॥4॥

भावार्थ:-यह श्री राम का मित्र है, इतना सुनते ही भरतजी ने रथ त्याग दिया। वे रथ से उतरकर प्रेम में उमँगते हुए चले। निषादराज गुह ने अपना गाँव, जाति और नाम सुनाकर पृथ्वी पर माथा टेककर जोहार की॥4॥

गीताप्रेस गोरखपुर

भरत-निषाद मिलन और संवाद और भरतजी का तथा नगरवासियों का प्रेम

दोहा :

* करत दंडवत देखि तेहि भरत लीन्ह उर लाइ।
मनहुँ लखन सन भेंट भइ प्रेमु न हृदयँ समाइ॥193॥

भावार्थ:-दण्डवत करते देखकर भरतजी ने उठाकर उसको छाती से लगा लिया। हृदय में प्रेम समाता नहीं है, मानो स्वयं लक्ष्मणजी से भेंट हो गई हो॥193॥

चौपाई :

* भेंटत भरतु ताहि अति प्रीती। लोग सिहाहिं प्रेम कै रीती॥
धन्य धन्य धुनि मंगल मूला। सुर सराहि तेहि बरिसहिं फूला॥1॥

भावार्थ:-भरतजी गुह को अत्यन्त प्रेम से गले लगा रहे हैं। प्रेम की रीति को सब लोग सिहा रहे हैं (ईर्षापूर्वक प्रशंसा कर रहे हैं)। मंगल की मूल 'धन्य-धन्य' की ध्वनि करके देवता उसकी सराहना करते हुए फूल बरसा रहे हैं॥1॥

* लोक बेद सब भाँतिहिं नीचा। जासु छाँह छुइ लेइअ सींचा॥
तेहि भरि अंक राम लघु भ्राता। मिलत पुलक परिपूरित गाता॥2॥

भावार्थ:-(वे कहते हैं-) जो लोक और वेद दोनों में सब प्रकार से नीचा माना जाता है, जिसकी छाया के छू जाने से भी स्नान करना होता है, उसी निषाद से अँकवार भरकर (हृदय से चिपटाकर) श्री रामचन्द्रजी के छोटे भाई भरतजी (आनंद और प्रेमवश) शरीर में पुलकावली से परिपूर्ण हो मिल रहे हैं॥2॥

* राम राम कहि जे जमुहाहीं। तिन्हहि न पाप पुंज समुहाहीं॥
यह तौ राम लाइ उर लीन्हा। कुल समेत जगु पावन कीन्हा॥3॥

भावार्थ:-जो लोग राम-राम कहकर जँभाई लेते हैं (अर्थात आलस्य से भी जिनके मुँह से राम-नाम का उच्चारण हो जाता है), पापों के समूह (कोई भी पाप) उनके सामने नहीं आते। फिर इस गुह को तो स्वयं श्री रामचन्द्रजी ने हृदय से लगा लिया और कुल समेत इसे जगत्पावन (जगत को पवित्र करने वाला) बना दिया॥3॥

* करमनास जलु सुरसरि परई। तेहि को कहहु सीस नहिं धरेई॥
उलटा नामु जपत जगु जाना। बालमीकि भए ब्रह्म समाना॥4॥

भावार्थ:-कर्मनाशा नदी का जल गंगाजी में पड़ जाता है (मिल जाता है), तब कहिए, उसे कौन सिर पर धारण नहीं करता? जगत जानता है कि उलटा नाम (मरा-मरा) जपते-जपते वाल्मीकिजी ब्रह्म के समान हो गए॥4॥

दोहा :

* स्वपच सबर खस जमन जड़ पावँर कोल किरात।
रामु कहत पावन परम होत भुवन बिख्यात॥194॥

भावार्थ:-मूर्ख और पामर चाण्डाल, शबर, खस, यवन, कोल और किरात भी राम-नाम कहते ही परम पवित्र और त्रिभुवन में विख्यात हो जाते हैं॥194॥

चौपाई :

* नहिं अचिरिजु जुग जुग चलि आई। केहि न दीन्हि रघुबीर बड़ाई॥
राम नाम महिमा सुर कहहीं। सुनि सुनि अवध लोग सुखु लहहीं॥1॥

भावार्थ:-इसमें कोई आश्चर्य नहीं है, युग-युगान्तर से यही रीति चली आ रही है। श्री रघुनाथजी ने किसको बड़ाई नहीं दी? इस प्रकार देवता राम नाम की महिमा कह रहे हैं और उसे सुन-सुनकर अयोध्या के लोग सुख पा रहे हैं॥1॥

* रामसखहि मिलि भरत सप्रेमा। पूँछी कुसल सुमंगल खेमा॥
देखि भरत कर सीलु सनेहू। भा निषाद तेहि समय बिदेहू॥2॥

भावार्थ:-राम सखा निषादराज से प्रेम के साथ मिलकर भरतजी ने कुशल, मंगल और क्षेम पूछी। भरतजी का शील और प्रेम देखकर निषाद उस समय विदेह हो गया (प्रेममुग्ध होकर देह की सुध भूल गया)॥2॥

* सकुच सनेहु मोदु मन बाढ़ा। भरतहि चितवत एकटक ठाढ़ा॥
धरि धीरजु पद बंदि बहोरी। बिनय सप्रेम करत कर जोरी॥3॥

भावार्थ:-उसके मन में संकोच, प्रेम और आनंद इतना बढ़ गया कि वह खड़ा-खड़ा टकटकी लगाए भरतजी को देखता रहा। फिर धीरज धरकर भरतजी के चरणों की वंदना करके प्रेम के साथ हाथ जोड़कर विनती करने लगा-॥3॥

* कुसल मूल पद पंकज पेखी। मैं तिहुँ काल कुसल निज लेखी॥
अब प्रभु परम अनुग्रह तोरें। सहित कोटि कुल मंगल मोरें॥4॥

भावार्थ:-हे प्रभो! कुशल के मूल आपके चरण कमलों के दर्शन कर मैंने तीनों कालों में अपना कुशल जान लिया। अब आपके परम अनुग्रह से करोड़ों कुलों (पीढ़ियों) सहित मेरा मंगल (कल्याण) हो गया॥4॥

दोहा :

* समुझि मोरि करतूति कुलु प्रभु महिमा जियँ जोइ।
जो न भजइ रघुबीर पद जग बिधि बंचित सोइ॥195॥

भावार्थ:-मेरी करतूत और कुल को समझकर और प्रभु श्री रामचन्द्रजी की महिमा को मन में देख (विचार) कर (अर्थात कहाँ तो मैं नीच जाति और नीच कर्म करने वाला जीव, और कहाँ अनन्तकोटि ब्रह्माण्डों के स्वामी भगवान श्री रामचन्द्रजी! पर उन्होंने मुझ जैसे नीच को भी अपनी अहैतुकी कृपा वश अपना लिया- यह समझकर) जो रघुवीर श्री रामजी के चरणों का भजन नहीं करता, वह जगत में विधाता के द्वारा ठगा गया है॥195॥

चौपाई :

* कपटी कायर कुमति कुजाती। लोक बेद बाहेर सब भाँती॥
राम कीन्ह आपन जबही तें। भयउँ भुवन भूषन तबही तें॥1॥

भावार्थ:-मैं कपटी, कायर, कुबुद्धि और कुजाति हूँ और लोक-वेद दोनों से सब प्रकार से बाहर हूँ। पर जब से श्री रामचन्द्रजी ने मुझे अपनाया है, तभी से मैं विश्व का भूषण हो गया॥1॥

द्वितीय सोपान

* देखि प्रीति सुनि बिनय सुहाई। मिलेउ बहोरि भरत लघु भाई॥

कहि निषाद निज नाम सुबानीं। सादर सकल जोहारीं रानीं॥2॥

भावार्थ:-निषाद राज की प्रीति को देखकर और सुंदर विनय सुनकर फिर भरतजी के छोटे भाई शत्रुघ्नजी उससे मिले। फिर निषाद ने अपना नाम ले-लेकर सुंदर (नम्र और मधुर) वाणी से सब रानियों को आदरपूर्वक जोहार की॥2॥

* जानि लखन सम देहिं असीसा। जिअहु सुखी सय लाख बरीसा॥
निरखि निषादु नगर नर नारी। भए सुखी जनु लखनु निहारी॥3॥

भावार्थ:-रानियाँ उसे लक्ष्मणजी के समान समझकर आशीर्वाद देती हैं कि तुम सौ लाख वर्षों तक सुख पूर्वक जिओ। नगर के स्त्री-पुरुष निषाद को देखकर ऐसे सुखी हुए, मानो लक्ष्मणजी को देख रहे हों॥3॥

* कहहिं लहेउ एहिं जीवन लाहू। भेंटेउ रामभद्र भरि बाहू॥
सुनि निषादु निज भाग बड़ाई। प्रमुदित मन लइ चलेउ लेवाई॥4॥

भावार्थ:-सब कहते हैं कि जीवन का लाभ तो इसी ने पाया है, जिसे कल्याण स्वरूप श्री रामचन्द्रजी ने भुजाओं में बाँधकर गले लगाया है। निषाद अपने भाग्य की बड़ाई सुनकर मन में परम आनंदित हो सबको अपने साथ लिवा ले चला॥4॥

दोहा :

* सनकारे सेवक सकल चले स्वामि रुख पाइ।
घर तरु तर सर बाग बन बास बनाएन्हि जाइ॥196॥

भावार्थ:-उसने अपने सब सेवकों को इशारे से कह दिया। वे स्वामी का रुख पाकर चले और उन्होंने घरों में, वृक्षों के नीचे,

तालाबों पर तथा बगीचों और जंगलों में ठहरने के लिए स्थान बना दिए॥196॥

चौपाई :

* सृंगबेरपुर भरत दीख जब। भे सनेहँ सब अंग सिथिल तब॥
सोहत दिएँ निषादहि लागू। जनु तनु धरें बिनय अनुरागू॥1॥

भावार्थ:-भरतजी ने जब श्रृंगवेरपुर को देखा, तब उनके सब अंग प्रेम के कारण शिथिल हो गए। वे निषाद को लाग दिए (अर्थात उसके कंधे पर हाथ रखे चलते हुए) ऐसे शोभा दे रहे हैं, मानो विनय और प्रेम शरीर धारण किए हुए हों॥1॥

* एहि बिधि भरत सेनु सबु संगा। दीखि जाइ जग पावनि गंगा॥
रामघाट कहँ कीन्ह प्रनामू। भा मनु मगनु मिले जनु रामू॥2॥

भावार्थ:-इस प्रकार भरतजी ने सब सेना को साथ में लिए हुए जगत को पवित्र करने वाली गंगाजी के दर्शन किए। श्री रामघाट को (जहाँ श्री रामजी ने स्नान संध्या की थी) प्रणाम किया। उनका मन इतना आनंदमग्न हो गया, मानो उन्हें स्वयं श्री रामजी मिल गए हों॥2॥

* करहिं प्रनाम नगर नर नारी। मुदित ब्रह्ममय बारि निहारी॥
करि मज्जनु मागहिं कर जोरी। रामचन्द्र पद प्रीति न थोरी॥3॥

भावार्थ:-नगर के नर-नारी प्रणाम कर रहे हैं और गंगाजी के ब्रह्म रूप जल को देख-देखकर आनंदित हो रहे हैं। गंगाजी में स्नान कर हाथ जोड़कर सब यही वर माँगते हैं कि श्री रामचन्द्रजी के चरणों में हमारा प्रेम कम न हो (अर्थात बहुत अधिक हो)॥3॥

* भरत कहेउ सुरसरि तव रेनू। सकल सुखद सेवक सुरधेनू॥
जोरि पानि बर मागउँ एहू। सीय राम पद सहज सनेहू॥4॥

भावार्थ:-भरतजी ने कहा- हे गंगे! आपकी रज सबको सुख देने वाली तथा सेवक के लिए तो कामधेनु ही है। मैं हाथ जोड़कर यही वरदान माँगता हूँ कि श्री सीता-रामजी के चरणों में मेरा स्वाभाविक प्रेम हो॥4॥

दोहा :

* एहि बिधि मज्जनु भरतु करि गुर अनुसासन पाइ।
मातु नहानीं जानि सब डेरा चले लवाइ॥197॥

भावार्थ:-इस प्रकार भरतजी स्नान कर और गुरुजी की आज्ञा पाकर तथा यह जानकर कि सब माताएँ स्नान कर चुकी हैं, डेरा उठा ले चले॥197॥

चौपाई :

* जहँ तहँ लोगन्ह डेरा कीन्हा। भरत सोधु सबही कर लीन्हा॥
सुर सेवा करि आयसु पाई। राम मातु पहिं गे दोउ भाई॥1॥

भावार्थ:-लोगों ने जहाँ-तहाँ डेरा डाल दिया। भरतजी ने सभी का पता लगाया (कि सब लोग आकर आराम से टिक गए हैं या नहीं)। फिर देव पूजन करके आज्ञा पाकर दोनों भाई श्री रामचन्द्रजी की माता कौसल्याजी के पास गए॥1॥

* चरन चाँपि कहि कहि मृदु बानी। जननीं सकल भरत सनमानी॥
भाइहि सौंपि मातु सेवकाई। आपु निषादहि लीन्ह बोलाई॥2॥

भावार्थ:-चरण दबाकर और कोमल वचन कह-कहकर भरतजी ने सब माताओं का सत्कार किया। फिर भाई शत्रुघ्न को माताओं की सेवा सौंपकर आपने निषाद को बुला लिया॥2॥

* चले सखा कर सों कर जोरें। सिथिल सरीरु सनेह न थोरें॥
पूँछत सखहि सो ठाउँ देखाऊ। नेकु नयन मन जरनि जुड़ाऊ॥3॥

भावार्थ:-सखा निषाद राज के हाथ से हाथ मिलाए हुए भरतजी चले। प्रेम कुछ थोड़ा नहीं है (अर्थात बहुत अधिक प्रेम है), जिससे उनका शरीर शिथिल हो रहा है। भरतजी सखा से पूछते हैं कि मुझे वह स्थान दिखलाओ और नेत्र और मन की जलन कुछ ठंडी करो-॥3॥

* जहँ सिय रामु लखनु निसि सोए। कहत भरे जल लोचन कोए॥
भरत बचन सुनि भयउ बिषादू। तुरत तहाँ लइ गयउ निषादू॥4॥

भावार्थ:-जहाँ सीताजी, श्री रामजी और लक्ष्मण रात को सोए थे। ऐसा कहते ही उनके नेत्रों के कोयों में (प्रेमाश्रुओं का) जल भर आया। भरतजी के वचन सुनकर निषाद को बड़ा विषाद हुआ। वह तुरंत ही उन्हें वहाँ ले गया॥4॥

दोहा :

* जहँ सिंसुपा पुनीत तर रघुबर किय बिश्रामु।
अति सनेहँ सादर भरत कीन्हेउ दंड प्रनामु॥198॥

भावार्थ:-जहाँ पवित्र अशोक के वृक्ष के नीचे श्री रामजी ने विश्राम किया था। भरतजी ने वहाँ अत्यन्त प्रेम से आदरपूर्वक दण्डवत प्रणाम किया॥198॥

चौपाई :

* कुस साँथरी निहारि सुहाई। कीन्ह प्रनामु प्रदच्छिन जाई॥
चरन देख रज आँखिन्ह लाई। बनइ न कहत प्रीति अधिकाई॥1॥

भावार्थ:-कुशों की सुंदर साथरी देखकर उसकी प्रदक्षिणा करके प्रणाम किया। श्री रामचन्द्रजी के चरण चिह्नों की रज आँखों में लगाई। (उस समय के) प्रेम की अधिकता कहते नहीं बनती॥1॥

* कनक बिंदु दुइ चारिक देखे। राखे सीस सीय सम लेखे॥
सजल बिलोचन हृदयँ गलानी। कहत सखा सन बचन सुबानी॥2॥

भावार्थ:-भरतजी ने दो-चार स्वर्णबिन्दु (सोने के कण या तारे आदि जो सीताजी के गहने-कपड़ों से गिर पड़े थे) देखे तो उनको सीताजी के समान समझकर सिर पर रख लिया। उनके नेत्र (प्रेमाश्रु के) जल से भरे हैं और हृदय में ग्लानि भरी है। वे सखा से सुंदर वाणी में ये वचन बोले-॥2॥

* श्रीहत सीय बिरहँ दुतिहीना। जथा अवध नर नारि बिलीना॥
पिता जनक देउँ पटतर केही। करतल भोगु जोगु जग जेही॥3॥

भावार्थ:-ये स्वर्ण के कण या तारे भी सीताजी के विरह से ऐसे श्रीहत (शोभाहीन) एवं कान्तिहीन हो रहे हैं, जैसे (राम वियोग में) अयोध्या के नर-नारी विलीन (शोक के कारण क्षीण) हो रहे हैं। जिन सीताजी के पिता राजा जनक हैं, इस जगत में भोग और योग दोनों ही जिनकी मुट्ठी में हैं, उन जनकजी को मैं किसकी उपमा दूँ?॥3॥

* ससुर भानुकुल भानु भुआलू। जेहि सिहात अमरावतिपालू॥
प्राननाथु रघुनाथ गोसाईं। जो बड़ होत सो राम बड़ाईं॥4॥

भावार्थ:-सूर्यकुल के सूर्य राजा दशरथजी जिनके ससुर हैं, जिनको अमरावती के स्वामी इन्द्र भी सिहाते थे। (ईर्षापूर्वक उनके जैसा ऐश्वर्य और प्रताप पाना चाहते थे) और प्रभु श्री रघुनाथजी जिनके प्राणनाथ हैं, जो इतने बड़े हैं कि जो कोई भी बड़ा

होता है, वह श्री रामचन्द्रजी की (दी हुई) बड़ाई से ही होता है॥4॥

दोहा :

* पति देवता सुतीय मनि सीय साँथरी देखि।
बिहरत हृदउ न हहरि हर पबि तें कठिन बिसेषि॥199॥

भावार्थ:-उन श्रेष्ठ पतिव्रता स्त्रियों में शिरोमणि सीताजी की साथरी (कुश शय्या) देखकर मेरा हृदय हहराकर (दहलकर) फट नहीं जाता, हे शंकर! यह वज्र से भी अधिक कठोर है!॥199॥

चौपाई :

* लालन जोगु लखन लघु लोने। भे न भाइ अस अहहिं न होने॥
पुरजन प्रिय पितु मातु दुलारे। सिय रघुबीरहि प्रानपिआरे॥1॥

भावार्थ:-मेरे छोटे भाई लक्ष्मण बहुत ही सुंदर और प्यार करने योग्य हैं। ऐसे भाई न तो किसी के हुए, न हैं, न होने के ही हैं। जो लक्ष्मण अवध के लोगों को प्यारे, माता-पिता के दुलारे और श्री सीता-रामजी के प्राण प्यारे हैं,॥1॥

* मृदु मूरति सुकुमार सुभाऊ। तात बाउ तन लाग न काउ॥
ते बन सहहिं बिपति सब भाँती। निदरे कोटि कुलिस एहिं छाती॥2॥

भावार्थ:-जिनकी कोमल मूर्ति और सुकुमार स्वभाव है, जिनके शरीर में कभी गरम हवा भी नहीं लगी, वे वन में सब प्रकार की विपत्तियाँ सह रहे हैं। (हाय!) इस मेरी छाती ने (कठोरता में) करोड़ों वज्रों का भी निरादर कर दिया (नहीं तो यह कभी की फट गई होती)॥2॥

* राम जनमि जगु कीन्ह उजागर। रूप सील सुख सब गुन सागर॥
पुरजन परिजन गुरु पितु माता। राम सुभाउ सबहि सुखदाता॥3॥

भावार्थ:-श्री रामचंद्रजी ने जन्म (अवतार) लेकर जगत् को प्रकाशित (परम सुशोभित) कर दिया। वे रूप, शील, सुख और समस्त गुणों के समुद्र हैं। पुरवासी, कुटुम्बी, गुरु, पिता-माता सभी को श्री रामजी का स्वभाव सुख देने वाला है॥3॥

* बैरिउ राम बड़ाई करहीं। बोलनि मिलनि बिनय मन हरहीं॥
सारद कोटि कोटि सत सेषा। करि न सकहिं प्रभु गुन गन लेखा॥4॥

भावार्थ:-शत्रु भी श्री रामजी की बड़ाई करते हैं। बोल-चाल, मिलने के ढंग और विनय से वे मन को हर लेते हैं। करोड़ों सरस्वती और अरबों शेषजी भी प्रभु श्री रामचंद्रजी के गुण समूहों की गिनती नहीं कर सकते॥4॥

दोहा :

* सुखस्वरूप रघुबंसमनि मंगल मोद निधान।
ते सोवत कुस डासि महि बिधि गति अति बलवान॥200॥

भावार्थ:-जो सुख स्वरूप रघुवंश शिरोमणि श्री रामचंद्रजी मंगल और आनंद के भंडार हैं, वे पृथ्वी पर कुशा बिछाकर सोते हैं। विधाता की गति बड़ी ही बलवान है॥200॥

चौपाई :

* राम सुना दुखु कान न काऊ। जीवनतरु जिमि जोगवइ राऊ॥
पलक नयन फनि मनि जेहि भाँती। जोगवहिं जननि सकल दिन राती॥1॥

भावार्थ:-श्री रामचंद्रजी ने कानों से भी कभी दुःख का नाम नहीं सुना। महाराज स्वयं जीवन वृक्ष की तरह उनकी सार-सँभाल किया करते थे। सब माताएँ भी रात-दिन उनकी ऐसी सार-सँभाल करती थीं, जैसे पलक नेत्रों और साँप अपनी मणि की करते हैं॥1॥

* ते अब फिरत बिपिन पदचारी। कंद मूल फल फूल अहारी॥
धिग कैकई अमंगल मूला। भइसि प्रान प्रियतम प्रतिकूला॥2॥

भावार्थ:-वही श्री रामचंद्रजी अब जंगलों में पैदल फिरते हैं और कंद-मूल तथा फल-फूलों का भोजन करते हैं। अमंगल की मूल कैकेयी धिक्कार है, जो अपने प्राणप्रियतम पति से भी प्रतिकूल हो गई॥2॥

* मैं धिग धिग अघ उदधि अभागी। सबु उतपातु भयउ जेहि लागी॥
कुल कलंकु करि सृजेउ बिधाताँ। साइँदोह मोहि कीन्ह कुमाताँ॥3॥

भावार्थ:-मुझे पापों के समुद्र और अभागे को धिक्कार है, धिक्कार है, जिसके कारण ये सब उत्पात हुए। विधाता ने मुझे कुल का कलंक बनाकर पैदा किया और कुमाता ने मुझे स्वामी द्रोही बना दिया॥3॥

* सुनि सप्रेम समुझाव निषादू। नाथ करिअ कत बादि बिषादू॥
राम तुम्हहि प्रिय तुम्ह प्रिय रामहि। यह निरजोसु दोसु बिधि बामहि॥4॥

भावार्थ:-यह सुनकर निषादराज प्रेमपूर्वक समझाने लगा- हे नाथ! आप व्यर्थ विषाद किसलिए करते हैं? श्री रामचंद्रजी आपको

प्यारे हैं और आप श्री रामचंद्रजी को प्यारे हैं। यही निचोड़ (निश्चित सिद्धांत) है, दोष तो प्रतिकूल विधाता को है॥4॥

छंद- :

* बिधि बाम की करनी कठिन जेहिं मातु कीन्ही बावरी।
तेहि राति पुनि पुनि करहिं प्रभु सादर सरहना रावरी॥
तुलसी न तुम्ह सो राम प्रीतमु कहतु हौं सौंहे किएँ।
परिनाम मंगल जानि अपने आनिए धीरजु हिएँ॥

भावार्थ:-प्रतिकूल विधाता की करनी बड़ी कठोर है, जिसने माता कैकेयी को बावली बना दिया (उसकी मति फेर दी)। उस रात को प्रभु श्री रामचंद्रजी बार-बार आदरपूर्वक आपकी बड़ी सराहना करते थे। तुलसीदासजी कहते हैं- (निषादराज कहता है कि-) श्री रामचंद्रजी को आपके समान अतिशय प्रिय और कोई नहीं है, मैं सौगंध खाकर कहता हूँ। परिणाम में मंगल होगा, यह जानकर आप अपने हृदय में धैर्य धारण कीजिए।

सोरठा :

* अंतरजामी रामु सकुच सप्रेम कृपायतन।
चलिअ करिअ बिश्रामु यह बिचारि दृढ़ आनि मन॥201॥

भावार्थ:-श्री रामचंद्रजी अंतर्यामी तथा संकोच, प्रेम और कृपा के धाम हैं, यह विचार कर और मन में दृढ़ता लाकर चलिए और विश्राम कीजिए॥201॥

चौपाई :

* सखा बचन सुनि उर धरि धीरा। बास चले सुमिरत रघुबीरा॥
यह सुधि पाइ नगर नर नारी। चले बिलोकन आरत भारी॥1॥

भावार्थ:-सखा के वचन सुनकर, हृदय में धीरज धरकर श्री रामचंद्रजी का स्मरण करते हुए भरतजी डेरे को चले। नगर के

सारे स्त्री-पुरुष यह (श्री रामजी के ठहरने के स्थान का) समाचार पाकर बड़े आतुर होकर उस स्थान को देखने चले॥1॥

* परदखिना करि करहिं प्रनामा। देहिं कैकइहि खोरि निकामा।
भरि भरि बारि बिलोचन लेंहीं। बाम बिधातहि दूषन देहीं॥2॥

भावार्थ:-वे उस स्थान की परिक्रमा करके प्रणाम करते हैं और कैकेयी को बहुत दोष देते हैं। नेत्रों में जल भर-भर लेते हैं और प्रतिकूल विधाता को दूषण देते हैं॥2॥

* एक सराहहिं भरत सनेहू। कोउ कह नृपति निबाहेउ नेहू॥
निंदहिं आपु सराहि निषादहि। को कहि सकइ बिमोह बिषादहि॥3॥

भावार्थ:-कोई भरतजी के स्नेह की सराहना करते हैं और कोई कहते हैं कि राजा ने अपना प्रेम खूब निबाहा। सब अपनी निंदा करके निषाद की प्रशंसा करते हैं। उस समय के विमोह और विषाद को कौन कह सकता है?॥3॥

* ऐहि बिधि राति लोगु सबु जागा। भा भिनुसार गुदारा लागा॥
गुरहि सुनावँ चढ़ाइ सुहाईं। नईं नाव सब मातु चढ़ाईं॥4॥

भावार्थ:-इस प्रकार रातभर सब लोग जागते रहे। सबेरा होते ही खेवा लगा। सुंदर नाव पर गुरुजी को चढ़ाकर फिर नई नाव पर सब माताओं को चढ़ाया॥4॥

* दंड चारि महँ भा सबु पारा। उतरि भरत तब सबहि सँभारा॥5॥

भावार्थ:-चार घड़ी में सब गंगाजी के पार उतर गए। तब भरतजी ने उतरकर सबको सँभाला॥5॥

दोहा :

* प्रातक्रिया करि मातु पद बंदि गुरहि सिरु नाइ।
आगें किए निषाद गन दीन्हेउ कटकु चलाइ॥202॥

भावार्थ:-प्रातःकाल की क्रियाओं को करके माता के चरणों की वंदना कर और गुरुजी को सिर नवाकर भरतजी ने विषाद गणों को (रास्ता दिखलाने के लिए) आगे कर लिया और सेना चला दी॥202॥141॥

चौपाई :

* कियउ निषादनाथु अगुआईं। मातु पालकीं सकल चलाईं॥
साथ बोलाइ भाइ लघु दीन्हा। बिप्रन्ह सहित गवनु गुर कीन्हा॥1॥

भावार्थ:-निषादराज को आगे करके पीछे सब माताओं की पालकियाँ चलाईं। छोटे भाई शत्रुघ्नजी को बुलाकर उनके साथ कर दिया। फिर ब्राह्मणों सहित गुरुजी ने गमन किया॥1॥

* आपु सुरसरिहि कीन्ह प्रनामू। सुमिरे लखन सहित सिय रामू॥
गवने भरत पयादेहिं पाए। कोतल संग जाहिं डोरिआए॥2॥

भावार्थ:-तदनन्तर आप (भरतजी) ने गंगाजी को प्रणाम किया और लक्ष्मण सहित श्री सीता-रामजी का स्मरण किया। भरतजी पैदल ही चले। उनके साथ कोतल (बिना सवार के) घोड़े बागडोर से बँधे हुए चले जा रहे हैं॥2॥

* कहहिं सुसेवक बारहिं बारा। होइअ नाथ अस्व असवारा॥
रामु पयादेहि पायँ सिधाए। हम कहँ रथ गज बाजि बनाए॥3॥

भावार्थ:-उत्तम सेवक बार-बार कहते हैं कि हे नाथ! आप घोड़े पर सवार हो लीजिए। (भरतजी जवाब देते हैं कि) श्री रामचंद्रजी तो पैदल ही गए और हमारे लिए रथ, हाथी और घोड़े बनाए गए हैं॥3॥

* सिर भर जाउँ उचित अस मोरा। सब तें सेवक धरमु कठोरा॥
देखि भरत गति सुनि मृदु बानी। सब सेवक गन गरहिं गलानी॥4॥

भावार्थ:-मुझे उचित तो ऐसा है कि मैं सिर के बल चलकर जाऊँ। सेवक का धर्म सबसे कठिन होता है। भरतजी की दशा देखकर और कोमल वाणी सुनकर सब सेवकगण ग्लानि के मारे गले जा रहे हैं॥4॥

गीताप्रेस गोरखपुर

भरतजी का प्रयाग जाना और भरत-भरद्वाज संवाद

दोहा :

* भरत तीसरे पहर कहँ कीन्ह प्रबेसु प्रयाग।
कहत राम सिय राम सिय उमगि उमगि अनुराग॥203॥

भावार्थ:-प्रेम में उमँग-उमँगकर सीताराम-सीताराम कहते हुए भरतजी ने तीसरे पहर प्रयाग में प्रवेश किया॥203॥

चौपाई :

* झलका झलकत पायन्ह कैसें। पंकज कोस ओस कन जैसें॥
भरत पयादेहिं आए आजू। भयउ दुखित सुनि सकल समाजू॥1॥

भावार्थ:-उनके चरणों में छाले कैसे चमकते हैं, जैसे कमल की कली पर ओस की बूँदें चमकती हों। भरतजी आज पैदल ही

चलकर आए हैं, यह समाचार सुनकर सारा समाज दुःखी हो गया॥1॥

* खबरि लीन्ह सब लोग नहाए। कीन्ह प्रनामु त्रिबेनिहिं आए॥
सबिधि सितासित नीर नहाने। दिए दान महिसुर सनमाने॥2॥

भावार्थ:-जब भरतजी ने यह पता पा लिया कि सब लोग स्नान कर चुके, तब त्रिवेणी पर आकर उन्हें प्रणाम किया। फिर विधिपूर्वक (गंगा-यमुना के) श्वेत और श्याम जल में स्नान किया और दान देकर ब्राह्मणों का सम्मान किया॥2॥

* देखत स्यामल धवल हलोरे। पुलकि सरीर भरत कर जोरे॥
सकल काम प्रद तीरथराऊ। बेद बिदित जग प्रगट प्रभाऊ॥3॥

भावार्थ:-श्याम और सफेद (यमुनाजी और गंगाजी की) लहरों को देखकर भरतजी का शरीर पुलकित हो उठा और उन्होंने हाथ जोड़कर कहा- हे तीर्थराज! आप समस्त कामनाओं को पूर्ण करने वाले हैं। आपका प्रभाव वेदों में प्रसिद्ध और संसार में प्रकट है॥3॥

* मागउँ भीख त्यागि निज धरमू। आरत काह न करइ कुकरमू॥
अस जियँ जानि सुजान सुदानी। सफल करहिं जग जाचक बानी॥4॥

भावार्थ:-मैं अपना धर्म (न माँगने का क्षत्रिय धर्म) त्यागकर आप से भीख माँगता हूँ। आर्त्त मनुष्य कौन सा कुकर्म नहीं करता? ऐसा हृदय में जानकर सुजान उत्तम दानी जगत् में माँगने वाले की वाणी को सफल किया करते हैं (अर्थात् वह जो माँगता है, सो दे देते हैं)॥4॥

दोहा :

* अरथ न धरम न काम रुचि गति न चहउँ निरबान।
जनम-जनम रति राम पद यह बरदानु न आन॥204॥

भावार्थ:-मुझे न अर्थ की रुचि (इच्छा) है, न धर्म की, न काम की और न मैं मोक्ष ही चाहता हूँ। जन्म-जन्म में मेरा श्री रामजी के चरणों में प्रेम हो, बस, यही वरदान माँगता हूँ, दूसरा कुछ नहीं॥204॥

चौपाई :

* जानहुँ रामु कुटिल करि मोही। लोग कहउ गुर साहिब द्रोही॥
सीता राम चरन रति मोरें। अनुदिन बढ़उ अनुग्रह तोरें॥1॥

भावार्थ:-स्वयं श्री रामचंद्रजी भी भले ही मुझे कुटिल समझें और लोग मुझे गुरुद्रोही तथा स्वामी द्रोही भले ही कहें, पर श्री सीता-रामजी के चरणों में मेरा प्रेम आपकी कृपा से दिन-दिन बढ़ता ही रहे॥1॥

* जलदु जनम भरि सुरति बिसारउ। जाचत जलु पबि पाहन डारउ॥
चातकु रटनि घटें घटि जाई। बढ़ें प्रेमु सब भाँति भलाई॥2॥

भावार्थ:-मेघ चाहे जन्मभर चातक की सुध भुला दे और जल माँगने पर वह चाहे वज्र और पत्थर (ओले) ही गिरावे, पर चातक की रटन घटने से तो उसकी बात ही घट जाएगी (प्रतिष्ठा ही नष्ट हो जाएगी)। उसकी तो प्रेम बढ़ने में ही सब तरह से भलाई है॥2॥

* कनकहिं बान चढ़इ जिमि दाहें। तिमि प्रियतम पद नेम निबाहें॥
भरत बचन सुनि माझ त्रिबेनी। भइ मृदु बानि सुमंगल देनी॥3॥

भावार्थ:-जैसे तपाने से सोने पर आब (चमक) आ जाती है, वैसे ही प्रियतम के चरणों में प्रेम का नियम निबाहने से प्रेमी सेवक का गौरव बढ़ जाता है। भरतजी के वचन सुनकर बीच त्रिवेणी में से सुंदर मंगल देने वाली कोमल वाणी हुई॥3॥

* तात भरत तुम्ह सब बिधि साधू। राम चरन अनुराग अगाधू॥
बादि गलानि करहु मन माहीं। तुम्ह सम रामहि कोउ प्रिय नाहीं॥4॥

भावार्थ:-हे तात भरत! तुम सब प्रकार से साधु हो। श्री रामचंद्रजी के चरणों में तुम्हारा अथाह प्रेम है। तुम व्यर्थ ही मन में ग्लानि कर रहे हो। श्री रामचंद्रजी को तुम्हारे समान प्रिय कोई नहीं है॥4॥

दोहा :

* तनु पुलकेउ हियँ हरषु सुनि बेनि बचन अनुकूल।
भरत धन्य कहि धन्य सुर हरषित बरषहिं फूल॥205॥

भावार्थ:-त्रिवेणीजी के अनुकूल वचन सुनकर भरतजी का शरीर पुलकित हो गया, हृदय में हर्ष छा गया। भरतजी धन्य हैं, कहकर देवता हर्षित होकर फूल बरसाने लगे॥205॥

चौपाई :

* प्रमुदित तीरथराज निवासी। बैखानस बटु गृही उदासी॥
कहहिं परसपर मिलि दस पाँचा। भरत सनेहु सीलु सुचि साँचा॥1॥

भावार्थ:-तीर्थराज प्रयाग में रहने वाले वनप्रस्थ, ब्रह्मचारी, गृहस्थ और उदासीन (संन्यासी) सब बहुत ही आनंदित हैं और दस-पाँच मिलकर आपस में कहते हैं कि भरतजी का प्रेम और शील पवित्र और सच्चा है॥1॥

* सुनत राम गुन ग्राम सुहाए। भरद्वाज मुनिबर पहिं आए॥
दंड प्रनामु करत मुनि देखे। मूरतिमंत भाग्य निज लेखे॥2॥

भावार्थ:-श्री रामचन्द्रजी के सुंदर गुण समूहों को सुनते हुए वे मुनिश्रेष्ठ भरद्वाजजी के पास आए। मुनि ने भरतजी को दण्डवत प्रणाम करते देखा और उन्हें अपना मूर्तिमान सौभाग्य समझा॥2॥

* धाइ उठाइ लाइ उर लीन्हे। दीन्हि असीस कृतारथ कीन्हे॥
आसनु दीन्ह नाइ सिरु बैठे। चहत सकुच गृहँ जनु भजि पैठे॥3॥

भावार्थ:-उन्होंने दौड़कर भरतजी को उठाकर हृदय से लगा लिया और आशीर्वाद देकर कृतार्थ किया। मुनि ने उन्हें आसन दिया। वे सिर नवाकर इस तरह बैठे मानो भागकर संकोच के घर में घुस जाना चाहते हैं॥3॥

* मुनि पूँछब कछु यह बड़ सोचू। बोले रिषि लखि सीलु सँकोचू॥
सुनहु भरत हम सब सुधि पाई। बिधि करतब पर किछु न बसाई॥4॥

भावार्थ:-उनके मन में यह बड़ा सोच है कि मुनि कुछ पूछेंगे (तो मैं क्या उत्तर दूँगा)। भरतजी के शील और संकोच को देखकर ऋषि बोले- भरत! सुनो, हम सब खबर पा चुके हैं। विधाता के कर्तव्य पर कुछ वश नहीं चलता॥4॥

दोहा :

* तुम्ह गलानि जियँ जनि करहु समुझि मातु करतूति।
तात कैकइहि दोसु नहिं गई गिरा मति धूति॥206॥

भावार्थ:-माता की करतूत को समझकर (याद करके) तुम हृदय में ग्लानि मत करो। हे तात! कैकेयी का कोई दोष नहीं है, उसकी बुद्धि तो सरस्वती बिगाड़ गई थी॥206॥

चौपाई :

* यहउ कहत भल कहिहि न कोऊ। लोकु बेदु बुध संमत दोऊ॥
तात तुम्हार बिमल जसु गाई। पाइहि लोकउ बेदु बड़ाई॥1॥

भावार्थ:-यह कहते भी कोई भला न कहेगा, क्योंकि लोक और वेद दोनों ही विद्वानों को मान्य है, किन्तु हे तात! तुम्हारा निर्मल यश गाकर तो लोक और वेद दोनों बड़ाई पावेंगे॥1॥

* लोक बेद संमत सबु कहई। जेहि पितु देइ राजु सो लहई॥
राउ सत्यब्रत तुम्हहि बोलाई। देत राजु सुखु धरमु बड़ाई॥2॥

भावार्थ:-यह लोक और वेद दोनों को मान्य है और सब यही कहते हैं कि पिता जिसको राज्य दे वही पाता है। राजा सत्यव्रती थे, तुमको बुलाकर राज्य देते, तो सुख मिलता, धर्म रहता और बड़ाई होती॥2॥

* राम गवनु बन अनरथ मूला। जो सुनि सकल बिस्व भइ सूला॥
सो भावी बस रानि अयानी। करि कुचालि अंतहुँ पछितानी॥3॥

भावार्थ:-सारे अनर्थ की जड़ तो श्री रामचन्द्रजी का वनगमन है, जिसे सुनकर समस्त संसार को पीड़ा हुई। वह श्री राम का वनगमन भी भावीवश हुआ। बेसमझ रानी तो भावीवश कुचाल करके अंत में पछताई॥3॥

* तहँउँ तुम्हार अलप अपराधू। कहै सो अधम अयान असाधू॥

करतेहु राजु त तुम्हहि ना दोषू। रामहि होत सुनत संतोषू॥4॥

भावार्थ:-उसमें भी तुम्हारा कोई तनिक सा भी अपराध कहे, तो वह अधम, अज्ञानी और असाधु है। यदि तुम राज्य करते तो भी तुम्हें दोष न होता। सुनकर श्री रामचन्द्रजी को भी संतोष ही होता॥4॥

दोहा :

* अब अति कीन्हेहु भरत भल तुम्हहि उचित मत एहु।
सकल सुमंगल मूल जग रघुबर चरन सनेहु॥207॥

भावार्थ:-हे भरत! अब तो तुमने बहुत ही अच्छा किया, यही मत तुम्हारे लिए उचित था। श्री रामचन्द्रजी के चरणों में प्रेम होना ही संसार में समस्त सुंदर मंगलों का मूल है॥207॥

चौपाई :

* सो तुम्हार धनु जीवनु प्राना। भूरिभाग को तुम्हहि समाना॥
यह तुम्हार आचरजु न ताता। दसरथ सुअन राम प्रिय भ्राता॥1॥

भावार्थ:-सो वह (श्री रामचन्द्रजी के चरणों का प्रेम) तो तुम्हारा धन, जीवन और प्राण ही है, तुम्हारे समान बड़भागी कौन है? हे तात! तुम्हारे लिए यह आश्चर्य की बात नहीं है, क्योंकि तुम दशरथजी के पुत्र और श्री रामचन्द्रजी के प्यारे भाई हो॥1॥

* सुनहु भरत रघुबर मन माहीं। पेम पात्रु तुम्ह सम कोउ नाहीं॥
लखन राम सीतहि अति प्रीती। निसि सब तुम्हहि सराहत बीती॥2॥

भावार्थ:-हे भरत! सुनो, श्री रामचन्द्र के मन में तुम्हारे समान प्रेम पात्र दूसरा कोई नहीं है। लक्ष्मणजी, श्री रामजी और

सीताजी तीनों की सारी रात उस दिन अत्यन्त प्रेम के साथ तुम्हारी सराहना करते ही बीती॥2॥

* जाना मरमु नहात प्रयागा। मगन होहिं तुम्हरें अनुरागा॥
तुम्ह पर अस सनेहु रघुबर कें। सुख जीवन जग जस जड़ नर कें॥3॥

भावार्थ:-प्रयागराज में जब वे स्नान कर रहे थे, उस समय मैंने उनका यह मर्म जाना। वे तुम्हारे प्रेम में मग्न हो रहे थे। तुम पर श्री रामचन्द्रजी का ऐसा ही (अगाध) स्नेह है, जैसा मूर्ख (विषयासक्त) मनुष्य का संसार में सुखमय जीवन पर होता है॥3॥

* यह न अधिक रघुबीर बड़ाई। प्रनत कुटुंब पाल रघुराई॥
तुम्ह तौ भरत मोर मत एहू। धरें देह जनु राम सनेहू॥4॥

भावार्थ:-यह श्री रघुनाथजी की बहुत बड़ाई नहीं है, क्योंकि श्री रघुनाथजी तो शरणागत के कुटुम्ब भर को पालने वाले हैं। हे भरत! मेरा यह मत है कि तुम तो मानो शरीरधारी श्री रामजी के प्रेम ही हो॥4॥

दोहा :

* तुम्ह कहँ भरत कलंक यह हम सब कहँ उपदेसु।
राम भगति रस सिद्धि हित भा यह समउ गनेसु॥208॥

भावार्थ:-हे भरत! तुम्हारे लिए (तुम्हारी समझ में) यह कलंक है, पर हम सबके लिए तो उपदेश है। श्री रामभक्ति रूपी रस की सिद्धि के लिए यह समय गणेश (बड़ा शुभ) हुआ है॥208॥

चौपाई :

* नव बिधु बिमल तात जसु तोरा। रघुबर किंकर कुमुद चकोरा॥

उदित सदा अँथइहि कबहूँ ना। घटिहि न जग नभ दिन दिन दूना॥1॥

भावार्थ:-हे तात! तुम्हारा यश निर्मल नवीन चन्द्रमा है और श्री रामचन्द्रजी के दास कुमुद और चकोर हैं (वह चन्द्रमा तो प्रतिदिन अस्त होता और घटता है, जिससे कुमुद और चकोर को दुःख होता है), परन्तु यह तुम्हारा यश रूपी चन्द्रमा सदा उदय रहेगा, कभी अस्त होगा ही नहीं! जगत रूपी आकाश में यह घटेगा नहीं, वरन दिन-दिन दूना होगा॥1॥

* कोक तिलोक प्रीति अति करिही। प्रभु प्रताप रबि छबिहि न हरिही॥
निसि दिन सुखद सदा सब काहू। ग्रसिहि न कैकइ करतबु राहू॥2॥

भावार्थ:-त्रैलोक्य रूपी चकवा इस यश रूपी चन्द्रमा पर अत्यन्त प्रेम करेगा और प्रभु श्री रामचन्द्रजी का प्रताप रूपी सूर्य इसकी छबि को हरण नहीं करेगा। यह चन्द्रमा रात-दिन सदा सब किसी को सुख देने वाला होगा। कैकेयी का कुकर्म रूपी राहु इसे ग्रास नहीं करेगा॥2॥

* पूरन राम सुपेम पियूषा। गुर अवमान दोष नहिं दूषा॥
राम भगत अब अमिअँ अघाहूँ। कीन्हेहु सुलभ सुधा बसुधाहूँ॥3॥

भावार्थ:-यह चन्द्रमा श्री रामचन्द्रजी के सुंदर प्रेम रूपी अमृत से पूर्ण है। यह गुरु के अपमान रूपी दोष से दूषित नहीं है। तुमने इस यश रूपी चन्द्रमा की सृष्टि करके पृथ्वी पर भी अमृत को सुलभ कर दिया। अब श्री रामजी के भक्त इस अमृत से तृप्त हो लें॥3॥

* भूप भगीरथ सुरसरि आनी। सुमिरत सकल सुमंगल खानी॥

दसरथ गुन गन बरनि न जाहीं। अधिकु कहा जेहि सम जग नाहीं॥4॥

भावार्थ:-राजा भगीरथ गंगाजी को लाए, जिन (गंगाजी) का स्मरण ही सम्पूर्ण सुंदर मंगलों की खान है। दशरथजी के गुण समूहों का तो वर्णन ही नहीं किया जा सकता, अधिक क्या, जिनकी बराबरी का जगत में कोई नहीं है॥4॥

दोहा :

* जासु सनेह सकोच बस राम प्रगट भए आई।
जे हर हिय नयननि कबहुँ निरखे नहीं अघाइ॥209॥

भावार्थ:-जिनके प्रेम और संकोच (शील) के वश में होकर स्वयं (सच्चिदानंदघन) भगवान श्री राम आकर प्रकट हुए, जिन्हें श्री महादेवजी अपने हृदय के नेत्रों से कभी अघाकर नहीं देख पाए (अर्थात जिनका स्वरूप हृदय में देखते-देखते शिवजी कभी तृप्त नहीं हुए)॥209॥

चौपाई :

* कीरति बिधु तुम्ह कीन्ह अनूपा। जहँ बस राम पेम मृगरूपा॥
तात गलानि करहु जियँ जाएँ। डरहु दरिद्रहि पारसु पाएँ॥1॥

भावार्थ:-(परन्तु उनसे भी बढ़कर) तुमने कीर्ति रूपी अनुपम चंद्रमा को उत्पन्न किया, जिसमें श्री राम प्रेम ही हिरन के (चिह्न के) रूप में बसता है। हे तात! तुम व्यर्थ ही हृदय में ग्लानि कर रहे हो। पारस पाकर भी तुम दरिद्रता से डर रहे हो!॥1॥

* सुनहु भरत हम झूठ न कहहीं। उदासीन तापस बन रहहीं॥
सब साधन कर सुफल सुहावा। लखन राम सिय दरसनु पावा॥2॥

भावार्थ:-हे भरत! सुनो, हम झूठ नहीं कहते। हम उदासीन हैं (किसी का पक्ष नहीं करते), तपस्वी हैं (किसी की मुँह देखी नहीं कहते) और वन में रहते हैं (किसी से कुछ प्रयोजन नहीं रखते)। सब साधनों का उत्तम फल हमें लक्ष्मणजी, श्री रामजी और सीताजी का दर्शन प्राप्त हुआ॥2॥

* तेहि फल कर फलु दरस तुम्हारा। सहित प्रयाग सुभाग हमारा॥
भरत धन्य तुम्ह जसु जगु जयऊ। कहि अस प्रेम मगन मुनि भयऊ॥3॥

भावार्थ:-(सीता-लक्ष्मण सहित श्री रामदर्शन रूप) उस महान फल का परम फल यह तुम्हारा दर्शन है! प्रयागराज समेत हमारा बड़ा भाग्य है। हे भरत! तुम धन्य हो, तुमने अपने यश से जगत को जीत लिया है। ऐसा कहकर मुनि प्रेम में मग्न हो गए॥3॥

* सुनि मुनि बचन सभासद हरषे। साधु सराहि सुमन सुर बरषे॥
धन्य धन्य धुनि गगन प्रयागा। सुनि सुनि भरतु मगन अनुरागा॥4

भावार्थ:-भरद्वाज मुनि के वचन सुनकर सभासद् हर्षित हो गए। 'साधु-साधु' कहकर सराहना करते हुए देवताओं ने फूल बरसाए। आकाश में और प्रयागराज में 'धन्य, धन्य' की ध्वनि सुन-सुनकर भरतजी प्रेम में मग्न हो रहे हैं॥4॥

दोहा :

* पुलक गात हियँ रामु सिय सजल सरोरुह नैन।
करि प्रनामु मुनि मंडलिहि बोले गदगद बैन॥210॥

भावार्थ:-भरतजी का शरीर पुलकित है, हृदय में श्री सीता-रामजी हैं और कमल के समान नेत्र (प्रेमाश्रु के) जल से भरे हैं। वे मुनियों की मंडली को प्रणाम करके गद्गद वचन बोले-॥210॥

चौपाई :

* मुनि समाजु अरु तीरथराजू। साँचिहुँ सपथ अघाइ अकाजू॥
एहिं थल जौं किछु कहिअ बनाई। एहि सम अधिक न अघ अधमाई॥1॥

भावार्थ:-मुनियों का समाज है और फिर तीर्थराज है। यहाँ सच्ची सौगंध खाने से भी भरपूर हानि होती है। इस स्थान में यदि कुछ बनाकर कहा जाए, तो इसके समान कोई बड़ा पाप और नीचता न होगी॥1॥

* तुम्ह सर्बग्य कहउँ सतिभाऊ। उर अंतरजामी रघुराऊ॥
मोहि न मातु करतब कर सोचू। नहिं दुखु जियँ जगु जानिहि पोचू॥2॥

भावार्थ:-मैं सच्चे भाव से कहता हूँ। आप सर्वज्ञ हैं और श्री रघुनाथजी हृदय के भीतर की जानने वाले हैं (मैं कुछ भी असत्य कहूँगा तो आपसे और उनसे छिपा नहीं रह सकता)। मुझे माता कैकेयी की करनी का कुछ भी सोच नहीं है और न मेरे मन में इसी बात का दुःख है कि जगत मुझे नीच समझेगा॥2॥

* नाहिन डरु बिगरिहि परलोकू। पितहु मरन कर मोहि न सोकू॥
सुकृत सुजस भरि भुअन सुहाए। लछिमन राम सरिस सुत पाए॥3॥

भावार्थ:-न यही डर है कि मेरा परलोक बिगड़ जाएगा और न पिताजी के मरने का ही मुझे शोक है, क्योंकि उनका सुंदर पुण्य

और सुयश विश्व भर में सुशोभित है। उन्होंने श्री राम-लक्ष्मण सरीखे पुत्र पाए॥3॥

* राम बिरहँ तजि तनु छनभंगू। भूप सोच कर कवन प्रसंगू॥
राम लखन सिय बिनु पग पनहीं। करि मुनि बेष फिरहिं बन बनहीं॥4॥

भावार्थ:-फिर जिन्होंने श्री रामचन्द्रजी के विरह में अपने क्षणभंगुर शरीर को त्याग दिया, ऐसे राजा के लिए सोच करने का कौन प्रसंग है? (सोच इसी बात का है कि) श्री रामजी, लक्ष्मणजी और सीताजी पैरों में बिना जूती के मुनियों का वेष बनाए वन-वन में फिरते हैं॥4॥

दोहा :

* अजिन बसन फल असन महि सयन डासि कुस पात।
बसि तरु तर नित सहत हिम आतप बरषा बात॥211॥

भावार्थ:-वे वल्कल वस्त्र पहनते हैं, फलों का भोजन करते हैं, पृथ्वी पर कुश और पत्ते बिछाकर सोते हैं और वृक्षों के नीचे निवास करके नित्य सर्दी, गर्मी, वर्षा और हवा सहते हैं। 211॥

चौपाई :

* एहि दुख दाहँ दहइ दिन छाती। भूख न बासर नीद न राती॥
एहि कुरोग कर औषधु नाहीं। सोधेउँ सकल बिस्व मन माहीं॥1॥

भावार्थ:-इसी दुःख की जलन से निरंतर मेरी छाती जलती रहती है। मुझे न दिन में भूख लगती है, न रात को नींद आती है। मैंने मन ही मन समस्त विश्व को खोज डाला, पर इस कुरोग की औषध कहीं नहीं है॥1॥

* मातु कुमत बढ़ई अघ मूला। तेहिं हमार हित कीन्ह बँसूला॥

कलि कुकाठ कर कीन्ह कुजंत्रू। गाड़ि अवधि पढ़ि कठिन कुमंत्रू॥2॥

भावार्थ:-माता का कुमत (बुरा विचार) पापों का मूल बढ़ई है। उसने हमारे हित का बसूला बनाया। उससे कलह रूपी कुकाठ का कुयंत्र बनाया और चौदह वर्ष की अवधि रूपी कठिन कुमंत्र पढ़कर उस यंत्र को गाड़ दिया। (यहाँ माता का कुविचार बढ़ई है, भरत को राज्य बसूला है, राम का वनवास कुयंत्र है और चौदह वर्ष की अवधि कुमंत्र है)॥2॥

* मोहि लगि यहु कुठाटु तेहिं ठाटा। घालेसि सब जगु बारहबाटा॥
मिटइ कुजोगु राम फिरि आएँ। बसइ अवध नहिं आन उपाएँ॥3॥

भावार्थ:-मेरे लिए उसने यह सारा कुठाट (बुरा साज) रचा और सारे जगत को बारहबाट (छिन्न-भिन्न) करके नष्ट कर डाला। यह कुयोग श्री रामचन्द्रजी के लौट आने पर ही मिट सकता है और तभी अयोध्या बस सकती है, दूसरे किसी उपाय से नहीं॥3॥

* भरत बचन सुनि मुनि सुखु पाई। सबहिं कीन्हि बहु भाँति बड़ाई॥
तात करहु जनि सोचु बिसेषी। सब दुखु मिटिहि राम पग देखी॥4॥

भावार्थ:-भरतजी के वचन सुनकर मुनि ने सुख पाया और सभी ने उनकी बहुत प्रकार से बड़ाई की। (मुनि ने कहा-) हे तात! अधिक सोच मत करो। श्री रामचन्द्रजी के चरणों का दर्शन करते ही सारा दुःख मिट जाएगा॥4॥

गीताप्रेस गोरखपुर

भरद्वाज द्वारा भरत का सत्कार

दोहा :

* करि प्रबोधु मुनिबर कहेउ अतिथि पेमप्रिय होहु।
कंद मूल फल फूल हम देहिं लेहु करि छोहु॥212॥

भावार्थ:-इस प्रकार मुनिश्रेष्ठ भरद्वाजजी ने उनका समाधान करके कहा- अब आप लोग हमारे प्रेम प्रिय अतिथि बनिए और कृपा करके कंद-मूल, फल-फूल जो कुछ हम दें, स्वीकार कीजिए॥212॥

चौपाई :

* सुनि मुनि बचन भरत हियँ सोचू। भयउ कुअवसर कठिन सँकोचू॥
जानि गुरुइ गुर गिरा बहोरी। चरन बंदि बोले कर जोरी॥1॥

भावार्थ:-मुनि के वचन सुनकर भरत के हृदय में सोच हुआ कि यह बेमौके बड़ा बेढब संकोच आ पड़ा! फिर गुरुजनों की वाणी को महत्वपूर्ण (आदरणीय) समझकर, चरणों की वंदना करके हाथ जोड़कर बोले-॥1॥

* सिर धरि आयसु करिअ तुम्हारा। परम धरम यहु नाथ हमारा॥
भरत बचन मुनिबर मन भाए। सुचि सेवक सिष निकट बोलाए॥2॥

भावार्थ:-हे नाथ! आपकी आज्ञा को सिर चढ़ाकर उसका पालन करना, यह हमारा परम धर्म है। भरतजी के ये वचन मुनिश्रेष्ठ

के मन को अच्छे लगे। उन्होंने विश्वासपात्र सेवकों और शिष्यों को पास बुलाया॥2॥

* चाहिअ कीन्हि भरत पहुनाई। कंद मूल फल आनहु जाई।
भलेहिं नाथ कहि तिन्ह सिर नाए। प्रमुदित निज निज काज सिधाए॥3॥

भावार्थ:-(और कहा कि) भरत की पहुनाई करनी चाहिए। जाकर कंद, मूल और फल लाओ। उन्होंने 'हे नाथ! बहुत अच्छा' कहकर सिर नवाया और तब वे बड़े आनंदित होकर अपने-अपने काम को चल दिए॥3॥

* मुनिहि सोच पाहुन बड़ नेवता। तसि पूजा चाहिअ जस देवता॥
सुनि रिधि सिधि अनिमादिक आईं। आयसु होइ सो करहिं गोसाईं॥4॥

भावार्थ:-मुनि को चिंता हुई कि हमने बहुत बड़े मेहमान को न्योता है। अब जैसा देवता हो, वैसी ही उसकी पूजा भी होनी चाहिए। यह सुनकर ऋद्धियाँ और अणिमादि सिद्धियाँ आ गईं (और बोलीं-) हे गोसाईं! जो आपकी आज्ञा हो सो हम करें॥4॥

दोहा :

* राम बिरह ब्याकुल भरतु सानुज सहित समाज।
पहुनाई करि हरहु श्रम कहा मुदित मुनिराज॥213॥

भावार्थ:-मुनिराज ने प्रसन्न होकर कहा- छोटे भाई शत्रुघ्न और समाज सहित भरतजी श्री रामचन्द्रजी के विरह में व्याकुल हैं, इनकी पहुनाई (आतिथ्य सत्कार) करके इनके श्रम को दूर करो॥213॥

चौपाई :

* रिधि सिधि सिर धरि मुनिबर बानी। बड़भागिनि आपुहि अनुमानी॥
कहहिं परसपर सिधि समुदाई। अतुलित अतिथि राम लघु भाई॥1॥

भावार्थ:-ऋद्धि-सिद्धि ने मुनिराज की आज्ञा को सिर चढ़ाकर अपने को बड़भागिनी समझा। सब सिद्धियाँ आपस में कहने लगीं- श्री रामचन्द्रजी के छोटे भाई भरत ऐसे अतिथि हैं, जिनकी तुलना में कोई नहीं आ सकता॥1॥

* मुनि पद बंदि करिअ सोइ आजू। होइ सुखी सब राज समाजू॥
अस कहि रचेउ रुचिर गृह नाना। जेहि बिलोकि बिलखाहिं बिमाना॥2॥

भावार्थ:-अतः मुनि के चरणों की वंदना करके आज वही करना चाहिए, जिससे सारा राज-समाज सुखी हो। ऐसा कहकर उन्होंने बहुत से सुंदर घर बनाए, जिन्हें देखकर विमान भी विलखते हैं (लजा जाते हैं)॥2॥

* भोग बिभूति भूरि भरि राखे। देखत जिन्हहि अमर अभिलाषे॥
दासीं दास साजु सब लीन्हें। जोगवत रहहिं मनहि मनु दीन्हें॥3॥

भावार्थ:-उन घरों में बहुत से भोग (इन्द्रियों के विषय) और ऐश्वर्य (ठाट-बाट) का सामान भरकर रख दिया, जिन्हें देखकर देवता भी ललचा गए। दासी-दास सब प्रकार की सामग्री लिए हुए मन लगाकर उनके मनों को देखते रहते हैं (अर्थात उनके मन की रुचि के अनुसार करते रहते हैं)॥3॥

* सब समाजु सजि सिधि पल माहीं। जे सुख सुरपुर सपनेहुँ नाहीं॥

प्रथमहिं बास दिए सब केही। सुंदर सुखद जथा रुचि जेही॥4॥

भावार्थ:-जो सुख के सामान स्वर्ग में भी स्वप्न में भी नहीं हैं, ऐसे सब सामान सिद्धियों ने पल भर में सजा दिए। पहले तो उन्होंने सब किसी को, जिसकी जैसी रुचि थी, वैसे ही, सुंदर सुखदायक निवास स्थान दिए॥4॥

दोहा :

* बहुरि सपरिजन भरत कहुँ रिषि अस आयसु दीन्ह।
बिधि बिसमय दायकु बिभव मुनिबर तपबल कीन्ह॥214॥

भावार्थ:-और फिर कुटुम्ब सहित भरतजी को दिए, क्योंकि ऋषि भरद्वाजजी ने ऐसी ही आज्ञा दे रखी थी। (भरतजी चाहते थे कि उनके सब संगियों को आराम मिले, इसलिए उनके मन की बात जानकर मुनि ने पहले उन लोगों को स्थान देकर पीछे सपरिवार भरतजी को स्थान देने के लिए आज्ञा दी थी।) मुनि श्रेष्ठ ने तपोबल से ब्रह्मा को भी चकित कर देने वाला वैभव रच दिया॥214॥

चौपाई :

* मुनि प्रभाउ जब भरत बिलोका। सब लघु लगे लोकपति लोका॥
सुख समाजु नहिं जाइ बखानी। देखत बिरति बिसारहिं ग्यानी॥1॥

भावार्थ:-जब भरतजी ने मुनि के प्रभाव को देखा, तो उसके सामने उन्हें (इन्द्र, वरुण, यम, कुबेर आदि) सभी लोकपालों के लोक तुच्छ जान पड़े। सुख की सामग्री का वर्णन नहीं हो सकता, जिसे देखकर ज्ञानी लोग भी वैराग्य भूल जाते हैं॥1॥

* आसन सयन सुबसन बिताना। बन बाटिका बिहग मृग नाना॥
सुरभि फूल फल अमिअ समाना। बिमल जलासय बिबिध बिधाना॥2॥

भावार्थ:-आसन, सेज, सुंदर वस्त्र, चँदोवे, वन, बगीचे, भाँति-भाँति के पक्षी और पशु, सुगंधित फूल और अमृत के समान स्वादिष्ट फल, अनेकों प्रकार के (तालाब, कुएँ, बावली आदि) निर्मल जलाशय,॥2॥

* असन पान सुचि अमिअ अमी से। देखि लोग सकुचात जमी से॥
सुर सुरभी सुरतरु सबही कें। लखि अभिलाषु सुरेस सची कें॥3॥

भावार्थ:-तथा अमृत के भी अमृत-सरीखे पवित्र खान-पान के पदार्थ थे, जिन्हें देखकर सब लोग संयमी पुरुषों (विरक्त मुनियों) की भाँति सकुचा रहे हैं। सभी के डेरों में (मनोवांछित वस्तु देने वाले) कामधेनु और कल्पवृक्ष हैं, जिन्हें देखकर इन्द्र और इन्द्राणी को भी अभिलाषा होती है (उनका भी मन ललचा जाता है)॥3॥

* रितु बसंत बह त्रिबिध बयारी। सब कहँ सुलभ पदारथ चारी॥
स्रक चंदन बनितादिक भोगा। देखि हरष बिसमय बस लोगा॥4॥

भावार्थ:-वसन्त ऋतु है। शीतल, मंद, सुगंध तीन प्रकार की हवा बह रही है। सभी को (धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष) चारों पदार्थ सुलभ हैं। माला, चंदन, स्त्री आदि भोगों को देखकर सब लोग हर्ष और विषाद के वश हो रहे हैं। (हर्ष तो भोग सामग्रियों को और मुनि के तप प्रभाव को देखकर होता है और विषाद इस बात से होता है कि श्री राम के वियोग में नियम-व्रत से रहने

वाले हम लोग भोग-विलास में क्यों आ फँसे, कहीं इनमें आसक्त होकर हमारा मन नियम-व्रतों को न त्याग दे)॥4॥

दोहा :

* संपति चकई भरतु चक मुनि आयस खेलवार।
तेहि निसि आश्रम पिंजराँ राखे भा भिनुसार॥215॥

भावार्थ:-सम्पत्ति (भोग-विलास की सामग्री) चकवी है और भरतजी चकवा हैं और मुनि की आज्ञा खेल है, जिसने उस रात को आश्रम रूपी पिंजड़े में दोनों को बंद कर रखा और ऐसे ही सबेरा हो गया। (जैसे किसी बहेलिए के द्वारा एक पिंजड़े में रखे जाने पर भी चकवी-चकवे का रात को संयोग नहीं होता, वैसे ही भरद्वाजजी की आज्ञा से रात भर भोग सामग्रियों के साथ रहने पर भी भरतजी ने मन से भी उनका स्पर्श तक नहीं किया।)॥215॥

मासपारायण, उन्नीसवाँ विश्राम

चौपाई :

* कीन्ह निमज्जनु तीरथराजा। नाई मुनिहि सिरु सहित समाजा।
रिषि आयसु असीस सिर राखी। करि दंडवत बिनय बहु भाषी॥1॥

भावार्थ:-(प्रातःकाल) भरतजी ने तीर्थराज में स्नान किया और समाज सहित मुनि को सिर नवाकर और ऋषि की आज्ञा तथा आशीर्वाद को सिर चढ़ाकर दण्डवत् करके बहुत विनती की॥1॥

* पथ गति कुसल साथ सब लीन्हें। चले चित्रकूटहिं चितु दीन्हें॥
रामसखा कर दीन्हें लागू। चलत देह धरि जनु अनुरागू॥2॥

भावार्थ:-तदनन्तर रास्ते की पहचान रखने वाले लोगों (कुशल पथप्रदर्शकों) के साथ सब लोगों को लिए हुए भरतजी त्रिकूट में चित्त लगाए चले। भरतजी रामसखा गुह के हाथ में हाथ दिए हुए ऐसे जा रहे हैं, मानो साक्षात् प्रेम ही शरीर धारण किए हुए हो॥2॥

* नहिं पद त्रान सीस नहिं छाया। पेमु नेमु ब्रतु धरमु अमाया॥
लखन राम सिय पंथ कहानी। पूँछत सखहि कहत मृदु बानी॥3॥

भावार्थ:-न तो उनके पैरों में जूते हैं और न सिर पर छाया है, उनका प्रेम नियम, व्रत और धर्म निष्कपट (सच्चा) है। वे सखा निषादराज से लक्ष्मणजी, श्री रामचंद्रजी और सीताजी के रास्ते की बातें पूछते हैं और वह कोमल वाणी से कहता है॥3॥

* राम बास थल बिटप बिलोकें। उर अनुराग रहत नहिं रोकें॥
देखि दसा सुर बरिसहिं फूला। भइ मृदु महि मगु मंगल मूला॥4॥

भावार्थ:-श्री रामचंद्रजी के ठहरने की जगहों और वृक्षों को देखकर उनके हृदय में प्रेम रोके नहीं रुकता। भरतजी की यह दशा देखकर देवता फूल बरसाने लगे। पृथ्वी कोमल हो गई और मार्ग मंगल का मूल बन गया॥4॥

दोहा :

* किएँ जाहिं छाया जलद सुखद बहइ बर बात।
तस मगु भयउ न राम कहँ जस भा भरतहि जात॥216॥

भावार्थ:-बादल छाया किए जा रहे हैं, सुख देने वाली सुंदर हवा बह रही है। भरतजी के जाते समय मार्ग जैसा सुखदायक हुआ, वैसा श्री रामचंद्रजी को भी नहीं हुआ था॥216॥

चौपाई :

* जड़ चेतन मग जीव घनेरे। जे चितए प्रभु जिन्ह प्रभु हेरे॥
ते सब भए परम पद जोगू। भरत दरस मेटा भव रोगू॥1॥

भावार्थ:-रास्ते में असंख्य जड़-चेतन जीव थे। उनमें से जिनको प्रभु श्री रामचंद्रजी ने देखा, अथवा जिन्होंने प्रभु श्री रामचंद्रजी को देखा, वे सब (उसी समय) परमपद के अधिकारी हो गए, परन्तु अब भरतजी के दर्शन ने तो उनका भव (जन्म-मरण) रूपी रोग मिटा ही दिया। (श्री रामदर्शन से तो वे परमपद के अधिकारी ही हुए थे, परन्तु भरत दर्शन से उन्हें वह परमपद प्राप्त हो गया)॥1॥

* यह बड़ि बात भरत कइ नाहीं। सुमिरत जिनहि रामु मन माहीं॥
बारक राम कहत जग जेऊ। होत तरन तारन नर तेऊ॥2॥

भावार्थ:-भरतजी के लिए यह कोई बड़ी बात नहीं है, जिन्हें श्री रामजी स्वयं अपने मन में स्मरण करते रहते हैं। जगत् में जो भी मनुष्य एक बार 'राम' कह लेते हैं, वे भी तरने-तारने वाले हो जाते हैं॥2॥

* भरतु राम प्रिय पुनि लघु भ्राता। कस न होइ मगु मंगलदाता॥
सिद्ध साधु मुनिबर अस कहहीं। भरतहि निरखि हरषु हियँ लहहीं॥3॥

भावार्थ:-फिर भरतजी तो श्री रामचंद्रजी के प्यारे तथा उनके छोटे भाई ठहरे। तब भला उनके लिए मार्ग मंगल (सुख) दायक कैसे न हो? सिद्ध, साधु और श्रेष्ठ मुनि ऐसा कह रहे हैं और भरतजी को देखकर हृदय में हर्ष लाभ करते हैं॥3॥

गीताप्रेस गोरखपुर

इंद्र-बृहस्पति संवाद

* देखि प्रभाउ सुरेसहि सोचू। जगु भल भलेहि पोच कहुँ पोचू॥
गुर सन कहेउ करिअ प्रभु सोई। रामहि भरतहि भेंट न होई॥4॥

भावार्थ:-भरतजी के (इस प्रेम के) प्रभाव को देखकर देवराज इन्द्र को सोच हो गया (कि कहीं इनके प्रेमवश श्री रामजी लौट न जाएँ और हमारा बना-बनाया काम बिगड़ जाए)। संसार भले के लिए भला और बुरे के लिए बुरा है (मनुष्य जैसा आप होता है जगत् उसे वैसा ही दिखता है)। उसने गुरु बृहस्पतिजी से कहा- हे प्रभो! वही उपाय कीजिए जिससे श्री रामचंद्रजी और भरतजी की भेंट ही न हो॥4॥

दोहा :

* रामु सँकोची प्रेम बस भरत सप्रेम पयोधि।
बनी बात बेगरन चहति करिअ जतनु छलु सोधि॥217॥

भावार्थ:-श्री रामचंद्रजी संकोची और प्रेम के वश हैं और भरतजी प्रेम के समुद्र हैं। बनी-बनाई बात बिगड़ना चाहती है, इसलिए कुछ छल ढूँढकर इसका उपाय कीजिए॥217॥

चौपाई :

* बचन सुनत सुरगुरु मुसुकाने। सहसनयन बिनु लोचन जाने॥
मायापति सेवक सन माया। करइ त उलटि परइ सुरराया॥1॥

भावार्थ:-इंद्र के वचन सुनते ही देवगुरु बृहस्पतिजी मुस्कुराए। उन्होंने हजार नेत्रों वाले इंद्र को (ज्ञान रूपी) नेत्रोंरहित (मूर्ख) समझा और कहा- हे देवराज! माया के स्वामी श्री रामचंद्रजी के सेवक के साथ कोई माया करता है तो वह उलटकर अपने ही ऊपर आ पड़ती है॥1॥

* तब किछु कीन्ह राम रुख जानी। अब कुचालि करि होइहि हानी।
सुनु सुरेस रघुनाथ सुभाऊ। निज अपराध रिसाहिं न काऊ॥2॥

भावार्थ:-उस समय (पिछली बार) तो श्री रामचंद्रजी का रुख जानकर कुछ किया था, परन्तु इस समय कुचाल करने से हानि ही होगी। हे देवराज! श्री रघुनाथजी का स्वभाव सुनो, वे अपने प्रति किए हुए अपराध से कभी रुष्ट नहीं होते॥2॥

* जो अपराधु भगत कर करई। राम रोष पावक सो जरई॥
लोकहुँ बेद बिदित इतिहासा। यह महिमा जानहिं दुरबासा॥3॥

भावार्थ:-पर जो कोई उनके भक्त का अपराध करता है, वह श्री राम की क्रोधाग्नि में जल जाता है। लोक और वेद दोनों में इतिहास (कथा) प्रसिद्ध है। इस महिमा को दुर्वासाजी जानते हैं॥3॥

* भरत सरिस को राम सनेही। जगु जप राम रामु जप जेही॥4॥

भावार्थ:-सारा जगत् श्री राम को जपता है, वे श्री रामजी जिनको जपते हैं, उन भरतजी के समान श्री रामचंद्रजी का प्रेमी कौन होगा?॥4॥

दोहा :

* मनहुँ न आनिअ अमरपति रघुबर भगत अकाजु।

गीताप्रेस गोरखपुर

अजसु लोक परलोक दुख दिन दिन सोक समाजु॥218॥

भावार्थ:-हे देवराज! रघुकुलश्रेष्ठ श्री रामचंद्रजी के भक्त का काम बिगाड़ने की बात मन में भी न लाइए। ऐसा करने से लोक में अपयश और परलोक में दुःख होगा और शोक का सामान दिनोंदिन बढ़ता ही चला जाएगा॥218॥

चौपाई :

* सुनु सुरेस उपदेसु हमारा। रामहि सेवकु परम पिआरा॥
मानत सुखु सेवक सेवकाईं। सेवक बैर बैरु अधिकाईं॥1॥

भावार्थ:-हे देवराज! हमारा उपदेश सुनो। श्री रामजी को अपना सेवक परम प्रिय है। वे अपने सेवक की सेवा से सुख मानते हैं और सेवक के साथ वैर करने से बड़ा भारी वैर मानते हैं॥1॥

* जद्यपि सम नहिं राग न रोषू। गहहिं न पाप पूनु गुन दोषू॥
करम प्रधान बिस्व करि राखा। जो जस करइ सो तस फलु चाखा॥2॥

भावार्थ:-यद्यपि वे सम हैं- उनमें न राग है, न रोष है और न वे किसी का पाप-पुण्य और गुण-दोष ही ग्रहण करते हैं। उन्होंने विश्व में कर्म को ही प्रधान कर रखा है। जो जैसा करता है, वह वैसा ही फल भोगता है॥2॥

* तदपि करहिं सम बिषम बिहारा। भगत अभगत हृदय अनुसारा॥
अगनु अलेप अमान एकरस। रामु सगुन भए भगत प्रेम बस॥3॥

भावार्थ:-तथापि वे भक्त और अभक्त के हृदय के अनुसार सम और विषम व्यवहार करते हैं (भक्त को प्रेम से गले लगा लेते हैं और अभक्त को मारकर तार देते हैं)। गुणरहित, निर्लेप,

मानरहित और सदा एकरस भगवान् श्री राम भक्त के प्रेमवश ही सगुण हुए हैं॥3॥

* राम सदा सेवक रुचि राखी। बेद पुरान साधु सुर साखी॥
अस जियँ जानि तजहु कुटिलाई। करहु भरत पद प्रीति सुहाई॥4॥

भावार्थ:-श्री रामजी सदा अपने सेवकों (भक्तों) की रुचि रखते आए हैं। वेद, पुराण, साधु और देवता इसके साक्षी हैं। ऐसा हृदय में जानकर कुटिलता छोड़ दो और भरतजी के चरणों में सुंदर प्रीति करो॥4॥

दोहा :

* राम भगत परहित निरत पर दुख दुखी दयाल।
भगत सिरोमनि भरत तें जनि डरपहु सुरपाल॥219॥

भावार्थ:-हे देवराज इंद्र! श्री रामचंद्रजी के भक्त सदा दूसरों के हित में लगे रहते हैं, वे दूसरों के दुःख से दुःखी और दयालु होते हैं। फिर भरतजी तो भक्तों के शिरोमणि हैं, उनसे बिलकुल न डरो॥219॥

चौपाई :

* सत्यसंध प्रभु सुर हितकारी। भरत राम आयस अनुसारी॥
स्वारथ बिबस बिकल तुम्ह होहू। भरत दोसु नहिं राउर मोहू॥1॥

भावार्थ:-प्रभु श्री रामचंद्रजी सत्यप्रतिज्ञ और देवताओं का हित करने वाले हैं और भरतजी श्री रामजी की आज्ञा के अनुसार चलने वाले हैं। तुम व्यर्थ ही स्वार्थ के विशेष वश होकर व्याकुल हो रहे हो। इसमें भरतजी का कोई दोष नहीं, तुम्हारा ही मोह है॥1॥

* सुनि सुरबर सुरगुर बर बानी। भा प्रमोदु मन मिटी गलानी॥

बरषि प्रसून हरषि सुरराऊ। लगे सराहन भरत सुभाऊ॥2॥

भावार्थ:-देवगुरु बृहस्पतिजी की श्रेष्ठ वाणी सुनकर इंद्र के मन में बड़ा आनंद हुआ और उनकी चिंता मिट गई। तब हर्षित होकर देवराज फूल बरसाकर भरतजी के स्वभाव की सराहना करने लगे॥2॥

गीताप्रेस गोरखपुर

भरतजी चित्रकूट के मार्ग में

* एहि बिधि भरत चले मग जाहीं। दसा देखि मुनि सिद्ध सिहाहीं॥
जबहि रामु कहि लेहिं उसासा। उमगत प्रेमु मनहुँ चहु पासा॥3॥

भावार्थ:-इस प्रकार भरतजी मार्ग में चले जा रहे हैं। उनकी (प्रेममयी) दशा देखकर मुनि और सिद्ध लोग भी सिहाते हैं। भरतजी जब भी 'राम' कहकर लंबी साँस लेते हैं, तभी मानो चारों ओर प्रेम उमड़ पड़ता है॥3॥

* द्रवहिं बचन सुनि कुलिस पषाना। पुरजन पेमु न जाइ बखाना॥
बीच बास करि जमुनहिं आए। निरखि नीरु लोचन जल छाए॥4॥

भावार्थ:-उनके (प्रेम और दीनता से पूर्ण) वचनों को सुनकर वज्र और पत्थर भी पिघल जाते हैं। अयोध्यावासियों का प्रेम कहते नहीं बनता। बीच में निवास (मुकाम) करके भरतजी यमुनाजी के

तट पर आए। यमुनाजी का जल देखकर उनके नेत्रों में जल भर आया॥4॥

दोहा :

* रघुबर बरन बिलोकि बर बारि समेत समाज।
होत मगन बारिधि बिरह चढ़े बिबेक जहाज॥220॥

भावार्थ:-श्री रघुनाथजी के (श्याम) रंग का सुंदर जल देखकर सारे समाज सहित भरतजी (प्रेम विह्वल होकर) श्री रामजी के विरह रूपी समुद्र में डूबते-डूबते विवेक रूपी जहाज पर चढ़ गए (अर्थात् यमुनाजी का श्यामवर्ण जल देखकर सब लोग श्यामवर्ण भगवान के प्रेम में विह्वल हो गए और उन्हें न पाकर विरह व्यथा से पीड़ित हो गए, तब भरतजी को यह ध्यान आया कि जल्दी चलकर उनके साक्षात् दर्शन करेंगे, इस विवेक से वे फिर उत्साहित हो गए)॥220॥

चौपाई :

* जमुन तीर तेहि दिन करि बासू। भयउ समय सम सबहि सुपासू॥
रातिहिं घाट घाट की तरनी। आईं अगनित जाहिं न बरनी॥1॥

भावार्थ:-उस दिन यमुनाजी के किनारे निवास किया। समयानुसार सबके लिए (खान-पान आदि की) सुंदर व्यवस्था हुई (निषादराज का संकेत पाकर) रात ही रात में घाट-घाट की अगणित नावें वहाँ आ गईं, जिनका वर्णन नहीं किया जा सकता॥1॥

* प्रात पार भए एकहि खेवाँ। तोषे रामसखा की सेवाँ॥
चले नहाइ नदिहि सिर नाई। साथ निषादनाथ दोउ भाई॥2॥

भावार्थ:-सबेरे एक ही खेवे में सब लोग पार हो गए और श्री रामचंद्रजी के सखा निषादराज की इस सेवा से संतुष्ट हुए। फिर

स्नान करके और नदी को सिर नवाकर निषादराज के साथ दोनों भाई चले॥2॥

* आगें मुनिबर बाहन आछें। राजसमाज जाइ सबु पाछें॥
तेहि पाछें दोउ बंधु पयादें। भूषन बसन बेष सुठि सादें॥3॥

भावार्थ:-आगे अच्छी-अच्छी सवारियों पर श्रेष्ठ मुनि हैं, उनके पीछे सारा राजसमाज जा रहा है। उसके पीछे दोनों भाई बहुत सादे भूषण-वस्त्र और वेष से पैदल चल रहे हैं॥3॥

* सेवक सुहृद सचिवसुत साथा। सुमिरत लखनु सीय रघुनाथा॥
जहँ जहँ राम बास बिश्रामा। तहँ तहँ करहिं सप्रेम प्रनामा॥4॥

भावार्थ:-सेवक, मित्र और मंत्री के पुत्र उनके साथ हैं। लक्ष्मण, सीताजी और श्री रघुनाथजी का स्मरण करते जा रहे हैं। जहाँ-जहाँ श्री रामजी ने निवास और विश्राम किया था, वहाँ-वहाँ वे प्रेमसहित प्रणाम करते हैं॥4॥

दोहा :

* मगबासी नर नारि सुनि धाम काम तजि धाइ।
देखि सरूप सनेह सब मुदित जनम फलु पाइ॥221॥

भावार्थ:-मार्ग में रहने वाले स्त्री-पुरुष यह सुनकर घर और काम-काज छोड़कर दौड़ पड़ते हैं और उनके रूप (सौंदर्य) और प्रेम को देखकर वे सब जन्म लेने का फल पाकर आनंदित होते हैं॥221॥

चौपाई :

* कहहिं सप्रेम एक एक पाहीं। रामु लखनु सखि होहिं कि नाहीं॥
बय बपु बरन रूपु सोइ आली। सीलु सनेहु सरिस सम चाली॥1॥

भावार्थ:-गाँवों की स्त्रियाँ एक-दूसरे से प्रेमपूर्वक कहती हैं- सखी! ये राम-लक्ष्मण हैं कि नहीं? हे सखी! इनकी अवस्था, शरीर और रंग-रूप तो वही है। शील, स्नेह उन्हीं के सदृश है और चाल भी उन्हीं के समान है॥1॥

* बेषु न सो सखि सीय न संगा। आगें अनी चली चतुरंगा॥
नहिं प्रसन्न मुख मानस खेदा। सखि संदेहु होइ एहिं भेदा॥2॥

भावार्थ:-परन्तु सखी! इनका न तो वह वेष (वल्कल वस्त्रधारी मुनिवेष) है, न सीताजी ही संग हैं और इनके आगे चतुरंगिणी सेना चली जा रही है। फिर इनके मुख प्रसन्न नहीं हैं, इनके मन में खेद है। हे सखी! इसी भेद के कारण संदेह होता है॥2॥

* तासु तरक तियगन मन मानी। कहहिं सकल तेहि सम न सयानी॥
तेहि सराहि बानी फुरि पूजी। बोली मधुर बचन तिय दूजी॥3॥

भावार्थ:-उसका तर्क (युक्ति) अन्य स्त्रियों के मन भाया। सब कहती हैं कि इसके समान सयानी (चतुर) कोई नहीं है। उसकी सराहना करके और 'तेरी वाणी सत्य है' इस प्रकार उसका सम्मान करके दूसरी स्त्री मीठे वचन बोली॥3॥

* कहि सप्रेम बस कथाप्रसंगू। जेहि बिधि राम राज रस भंगू॥
भरतहि बहुरि सराहन लागी। सील सनेह सुभाय सुभागी॥4॥

भावार्थ:-श्री रामजी के राजतिलक का आनंद जिस प्रकार से भंग हुआ था, वह सब कथाप्रसंग प्रेमपूर्वक कहकर फिर वह भाग्यवती स्त्री श्री भरतजी के शील, स्नेह और स्वभाव की सराहना करने लगी॥4॥

दोहा :

* चलत पयादें खात फल पिता दीन्ह तजि राजु।
जात मनावन रघुबरहि भरत सरिस को आजु॥222॥

भावार्थ:-(वह बोली-) देखो, ये भरतजी पिता के दिए हुए राज्य को त्यागकर पैदल चलते और फलाहार करते हुए श्री रामजी को मनाने के लिए जा रहे हैं। इनके समान आज कौन है?॥222॥।

चौपाई :

* भायप भगति भरत आचरनू। कहत सुनत दुख दूषन हरनू॥
जो किछु कहब थोर सखि सोई। राम बंधु अस काहे न होई॥1॥

भावार्थ:-भरतजी का भाईपना, भक्ति और इनके आचरण कहने और सुनने से दुःख और दोषों के हरने वाले हैं। हे सखी! उनके संबंध में जो कुछ भी कहा जाए, वह थोड़ा है। श्री रामचंद्रजी के भाई ऐसे क्यों न हों॥1॥

* हम सब सानुज भरतहि देखें। भइन्ह धन्य जुबती जन लेखें॥
सुनि गुन देखि दसा पछिताहीं। कैकइ जननि जोगु सुतु नाहीं॥2॥

भावार्थ:-छोटे भाई शत्रुघ्न सहित भरतजी को देखकर हम सब भी आज धन्य (बड़भागिनी) स्त्रियों की गिनती में आ गईं। इस प्रकार भरतजी के गुण सुनकर और उनकी दशा देखकर स्त्रियाँ पछताती हैं और कहती हैं- यह पुत्र कैकयी जैसी माता के योग्य नहीं है॥2॥

* कोउ कह दूषनु रानिहि नाहिन। बिधि सबु कीन्ह हमहि जो दाहिन॥
कहँ हम लोक बेद बिधि हीनी। लघु तिय कुल करतूति मलीनी॥3॥

भावार्थ:-कोई कहती है- इसमें रानी का भी दोष नहीं है। यह सब विधाता ने ही किया है, जो हमारे अनुकूल है। कहाँ तो हम लोक और वेद दोनों की विधि (मर्यादा) से हीन, कुल और करतूत दोनों से मलिन तुच्छ स्त्रियाँ,॥3॥

* बसहिं कुदेस कुगाँव कुबामा। कहँ यह दरसु पुन्य परिनामा॥
अस अनंदु अचिरिजु प्रति ग्रामा। जनु मरुभूमि कलपतरु जामा॥4॥

भावार्थ:-जो बुरे देश (जंगली प्रान्त) और बुरे गाँव में बसती हैं और (स्त्रियों में भी) नीच स्त्रियाँ हैं! और कहाँ यह महान्‌ पुण्यों का परिणामस्वरूप इनका दर्शन! ऐसा ही आनंद और आश्चर्य गाँव-गाँव में हो रहा है। मानो मरुभूमि में कल्पवृक्ष उग गया हो॥4॥

दोहा :

* भरत दरसु देखत खुलेउ मग लोगन्ह कर भागु।
जनु सिंघलबासिन्ह भयउ बिधि बस सुलभ प्रयागु॥223॥

भावार्थ:-भरतजी का स्वरूप देखते ही रास्ते में रहने वाले लोगों के भाग्य खुल गए! मानो दैवयोग से सिंहलद्वीप के बसने वालों को तीर्थराज प्रयाग सुलभ हो गया हो!॥223॥

चौपाई :

* निज गुन सहित राम गुन गाथा। सुनत जाहिं सुमिरत रघुनाथा॥
तीरथ मुनि आश्रम सुरधामा। निरखि निमज्जहिं करहिं प्रनामा॥1॥

भावार्थ:-(इस प्रकार) अपने गुणों सहित श्री रामचंद्रजी के गुणों की कथा सुनते और श्री रघुनाथजी को स्मरण करते हुए भरतजी

चले जा रहे हैं। वे तीर्थ देखकर स्नान और मुनियों के आश्रम तथा देवताओं के मंदिर देखकर प्रणाम करते हैं॥1॥

* मनहीं मन मागहिं बरु एहू। सीय राम पद पदुम सनेहू॥
मिलहिं किरात कोल बनबासी। बैखानस बटु जती उदासी॥2॥

भावार्थ:-और मन ही मन यह वरदान माँगते हैं कि श्री सीता-रामजी के चरण कमलों में प्रेम हो। मार्ग में भील, कोल आदि वनवासी तथा वानप्रस्थ, ब्रह्मचारी, संन्यासी और विरक्त मिलते हैं॥2॥

* करि प्रनामु पूँछहिं जेहि तेही। केहि बन लखनु रामु बैदेही॥
ते प्रभु समाचार सब कहहीं। भरतहि देखि जनम फलु लहहीं॥3॥

भावार्थ:-उनमें से जिस-तिस से प्रणाम करके पूछते हैं कि लक्ष्मणजी, श्री रामजी और जानकीजी किस वन में हैं? वे प्रभु के सब समाचार कहते हैं और भरतजी को देखकर जन्म का फल पाते हैं॥3॥

* जे जन कहहिं कुसल हम देखे। ते प्रिय राम लखन सम लेखे॥
एहि बिधि बूझत सबहि सुबानी। सुनत राम बनबास कहानी॥4॥

भावार्थ:-जो लोग कहते हैं कि हमने उनको कुशलपूर्वक देखा है, उनको ये श्री राम-लक्ष्मण के समान ही प्यारे मानते हैं। इस प्रकार सबसे सुंदर वाणी से पूछते और श्री रामजी के वनवास की कहानी सुनते जाते हैं॥4॥

दोहा :

* तेहि बासर बसि प्रातहीं चले सुमिरि रघुनाथ।
राम दरस की लालसा भरत सरिस सब साथ॥224॥

भावार्थ:-उस दिन वहीं ठहरकर दूसरे दिन प्रातःकाल ही श्री रघुनाथजी का स्मरण करके चले। साथ के सब लोगों को भी भरतजी के समान ही श्री रामजी के दर्शन की लालसा (लगी हुई) है॥224॥

चौपाई :

* मंगल सगुन होहिं सब काहू। फरकहिं सुखद बिलोचन बाहू॥
भरतहि सहित समाज उछाहू। मिलिहहिं रामु मिटिहि दुख दाहू॥1॥

भावार्थ:-सबको मंगलसूचक शकुन हो रहे हैं। सुख देने वाले (पुरुषों के दाहिने और स्त्रियों के बाएँ) नेत्र और भुजाएँ फड़क रही हैं। समाज सहित भरतजी को उत्साह हो रहा है कि श्री रामचंद्रजी मिलेंगे और दुःख का दाह मिट जाएगा॥1॥

* करत मनोरथ जस जियँ जाके। जाहिं सनेह सुराँ सब छाके।
सिथिल अंग पग मग डगि डोलहिं। बिहबल बचन प्रेम बस बोलहिं॥2॥

भावार्थ:-जिसके जी में जैसा है, वह वैसा ही मनोरथ करता है। सब स्नेही रूपी मदिरा से छके (प्रेम में मतवाले हुए) चले जा रहे हैं। अंग शिथिल हैं, रास्ते में पैर डगमगा रहे हैं और प्रेमवश विह्वल वचन बोल रहे हैं॥2॥

* रामसखाँ तेहि समय देखावा। सैल सिरोमनि सहज सुहावा॥
जासु समीप सरित पय तीरा। सीय समेत बसहिं दोउ बीरा॥3॥

भावार्थ:-रामसखा निषादराज ने उसी समय स्वाभाविक ही सुहावना पर्वतशिरोमणि कामदगिरि दिखलाया, जिसके निकट ही पयस्विनी नदी के तट पर सीताजी समेत दोनों भाई निवास करते हैं॥3॥

* देखि करहिं सब दंड प्रनामा। कहि जय जानकि जीवन रामा॥
प्रेम मगन अस राज समाजू। जनु फिरि अवध चले रघुराजू॥4॥

भावार्थ:-सब लोग उस पर्वत को देखकर 'जानकी जीवन श्री रामचंद्रजी की जय हो।' ऐसा कहकर दण्डवत प्रणाम करते हैं। राजसमाज प्रेम में ऐसा मग्न है मानो श्री रघुनाथजी अयोध्या को लौट चले हों॥4॥

दोहा :

* भरत प्रेमु तेहि समय जस तस कहि सकइ न सेषु।
कबिहि अगम जिमि ब्रह्मसुखु अह मम मलिन जनेषु॥225॥

भावार्थ:-भरतजी का उस समय जैसा प्रेम था, वैसा शेषजी भी नहीं कह सकते। कवि के लिए तो वह वैसा ही अगम है, जैसा अहंता और ममता से मलिन मनुष्यों के लिए ब्रह्मानंद!॥225॥

चौपाई :

* सकल सनेह सिथिल रघुबर कें। गए कोस दुइ दिनकर ढरकें॥
जलु थलु देखि बसे निसि बीतें। कीन्ह गवन रघुनाथ पिरीतें॥1॥

भावार्थ:-सब लोग श्री रामचंद्रजी के प्रेम के मारे शिथिल होने के कारण सूर्यास्त होने तक (दिनभर में) दो ही कोस चल पाए और जल-स्थल का सुपास देखकर रात को वहीं (बिना खाए-पीए ही) रह गए। रात बीतने पर श्री रघुनाथजी के प्रेमी भरतजी ने आगे गमन किया॥1॥

गीताप्रेस गोरखपुर

श्री सीताजी का स्वप्न, श्री रामजी को कोल-किरातों द्वारा भरतजी के आगमन की सूचना, रामजी का शोक, लक्ष्मणजी का क्रोध

* उहाँ रामु रजनी अवसेषा। जागे सीयँ सपन अस देखा॥
सहित समाज भरत जनु आए। नाथ बियोग ताप तन ताए॥2॥

भावार्थ:-उधर श्री रामचंद्रजी रात शेष रहते ही जागे। रात को सीताजी ने ऐसा स्वप्न देखा (जिसे वे श्री रामचंद्रजी को सुनाने लगीं) मानो समाज सहित भरतजी यहाँ आए हैं। प्रभु के वियोग की अग्नि से उनका शरीर संतप्त है॥2॥

* सकल मलिन मन दीन दुखारी। देखीं सासु आन अनुहारी॥
सुनि सिय सपन भरे जल लोचन। भए सोचबस सोच बिमोचन॥3॥

भावार्थ:-सभी लोग मन में उदास, दीन और दुःखी हैं। सासुओं को दूसरी ही सूरत में देखा। सीताजी का स्वप्न सुनकर श्री रामचंद्रजी के नेत्रों में जल भर गया और सबको सोच से छुड़ा देने वाले प्रभु स्वयं (लीला से) सोच के वश हो गए॥3॥

* लखन सपन यह नीक न होई। कठिन कुचाह सुनाइहि कोई॥
अस कहि बंधु समेत नहाने पूजि पुरारि साधु सनमाने॥4॥

भावार्थ:-(और बोले-) लक्ष्मण! यह स्वप्न अच्छा नहीं है। कोई भीषण कुसमाचार (बहुत ही बुरी खबर) सुनावेगा। ऐसा कहकर

उन्होंने भाई सहित स्नान किया और त्रिपुरारी महादेवजी का पूजन करके साधुओं का सम्मान किया॥4॥

छंद :

* सनमानि सुर मुनि बंदि बैठे उतर दिसि देखत भए।
नभ धूरि खग मृग भूरि भागे बिकल प्रभु आश्रम गए॥
तुलसी उठे अवलोकि कारनु काह चित सचकित रहे।
सब समाचार किरात कोलन्हि आइ तेहि अवसर कहे॥

भावार्थ:-देवताओं का सम्मान (पूजन) और मुनियों की वंदना करके श्री रामचंद्रजी बैठ गए और उत्तर दिशा की ओर देखने लगे। आकाश में धूल छा रही है, बहुत से पक्षी और पशु व्याकुल होकर भागे हुए प्रभु के आश्रम को आ रहे हैं। तुलसीदासजी कहते हैं कि प्रभु श्री रामचंद्रजी यह देखकर उठे और सोचने लगे कि क्या कारण है? वे चित्त में आश्चर्ययुक्त हो गए। उसी समय कोल-भीलों ने आकर सब समाचार कहे।

सोरठा :

* सुनत सुमंगल बैन मन प्रमोद तन पुलक भर।
सरद सरोरुह नैन तुलसी भरे सनेह जल॥226॥

भावार्थ:-तुलसीदासजी कहते हैं कि सुंदर मंगल वचन सुनते ही श्री रामचंद्रजी के मन में बड़ा आनंद हुआ। शरीर में पुलकावली छा गई और शरद् ऋतु के कमल के समान नेत्र प्रेमाश्रुओं से भर गए॥226॥

चौपाई :

* बहुरि सोचबस भे सियरवनू। कारन कवन भरत आगवनू॥
एक आइ अस कहा बहोरी। सेन संग चतुरंग न थोरी॥1॥

भावार्थ:-सीतापति श्री रामचंद्रजी पुनः सोच के वश हो गए कि भरत के आने का क्या कारण है? फिर एक ने आकर ऐसा कहा कि उनके साथ में बड़ी भारी चतुरंगिणी सेना भी है॥1॥

* सो सुनि रामहि भा अति सोचू। इत पितु बच इत बंधु सकोचू॥
भरत सुभाउ समुझि मन माहीं। प्रभु चित हित थिति पावत नाहीं॥2॥

भावार्थ:-यह सुनकर श्री रामचंद्रजी को अत्यंत सोच हुआ। इधर तो पिता के वचन और उधर भाई भरतजी का संकोच! भरतजी के स्वभाव को मन में समझकर तो प्रभु श्री रामचंद्रजी चित्त को ठहराने के लिए कोई स्थान ही नहीं पाते हैं॥2॥

* समाधान तब भा यह जाने। भरतु कहे महुँ साधु सयाने॥
लखन लखेउ प्रभु हृदयँ खभारू। कहत समय सम नीति बिचारू॥3॥

भावार्थ:-तब यह जानकर समाधान हो गया कि भरत साधु और सयाने हैं तथा मेरे कहने में (आज्ञाकारी) हैं। लक्ष्मणजी ने देखा कि प्रभु श्री रामजी के हृदय में चिंता है तो वे समय के अनुसार अपना नीतियुक्त विचार कहने लगे-॥3॥

* बिनु पूछें कछु कहउँ गोसाईं। सेवकु समयँ न ढीठ ढिठाईं॥
तुम्ह सर्बग्य सिरोमनि स्वामी। आपनि समुझि कहउँ अनुगामी॥4॥

भावार्थ:-हे स्वामी! आपके बिना ही पूछे मैं कुछ कहता हूँ, सेवक समय पर ढिठाई करने से ढीठ नहीं समझा जाता (अर्थात् आप पूछें तब मैं कहूँ, ऐसा अवसर नहीं है, इसलिए यह मेरा कहना ढिठाई नहीं होगा)। हे स्वामी! आप सर्वज्ञों में शिरोमणि हैं (सब जानते ही हैं)। मैं सेवक तो अपनी समझ की बात कहता हूँ॥4॥

दोहा :

* नाथ सुहृद सुठि सरल चित सील सनेह निधान।
सब पर प्रीति प्रतीति जियँ जानिअ आपु समान॥227॥

भावार्थ:-हे नाथ! आप परम सुहृद् (बिना ही कारण परम हित करने वाले), सरल हृदय तथा शील और स्नेह के भंडार हैं, आपका सभी पर प्रेम और विश्वास है, और अपने हृदय में सबको अपने ही समान जानते हैं॥227॥

चौपाई :

* बिषई जीव पाइ प्रभुताई। मूढ़ मोह बस होहिं जनाई॥
भरतु नीति रत साधु सुजाना। प्रभु पद प्रेमु सकल जगु जाना॥1॥

भावार्थ:-परंतु मूढ़ विषयी जीव प्रभुता पाकर मोहवश अपने असली स्वरूप को प्रकट कर देते हैं। भरत नीतिपरायण, साधु और चतुर हैं तथा प्रभु (आप) के चरणों में उनका प्रेम है, इस बात को सारा जगत् जानता है॥1॥

* तेऊ आजु राम पदु पाई। चले धरम मरजाद मेटाई॥
कुटिल कुबंधु कुअवसरु ताकी। जानि राम बनबास एकाकी॥2॥

भावार्थ:-वे भरतजी आज श्री रामजी (आप) का पद (सिंहासन या अधिकार) पाकर धर्म की मर्यादा को मिटाकर चले हैं। कुटिल खोटे भाई भरत कुसमय देखकर और यह जानकर कि रामजी (आप) वनवास में अकेले (असहाय) हैं,॥2॥

* करि कुमंत्रु मन साजि समाजू। आए करै अकंटक राजू॥
कोटि प्रकार कलपि कुटिलाई। आए दल बटोरि दोउ भाई॥3॥

भावार्थ:-अपने मन में बुरा विचार करके, समाज जोड़कर राज्यों को निष्कण्टक करने के लिए यहाँ आए हैं। करोड़ों (अनेकों)

प्रकार की कुटिलताएँ रचकर सेना बटोरकर दोनों भाई आए हैं॥3॥

* जौं जियँ होति न कपट कुचाली। केहि सोहाति रथ बाजि गजाली॥
भरतहि दोसु देइ को जाएँ। जग बौराइ राज पदु पाएँ॥4॥

भावार्थ:-यदि इनके हृदय में कपट और कुचाल न होती, तो रथ, घोड़े और हाथियों की कतार (ऐसे समय) किसे सुहाती? परन्तु भरत को ही व्यर्थ कौन दोष दे? राजपद पा जाने पर सारा जगत् ही पागल (मतवाला) हो जाता है॥4॥

दोहा :

* ससि गुर तिय गामी नघुषु चढ़ेउ भूमिसुर जान।
लोक बेद तें बिमुख भा अधम न बेन समान॥228॥

भावार्थ:-चंद्रमा गुरुपत्नी गामी हुआ, राजा नहुष ब्राह्मणों की पालकी पर चढ़ा और राजा वेन के समान नीच तो कोई नहीं होगा, जो लोक और वेद दोनों से विमुख हो गया॥228॥

चौपाई :

* सहसबाहु सुरनाथु त्रिसंकू। केहि न राजमद दीन्ह कलंकू॥
भरत कीन्ह यह उचित उपाऊ। रिपु रिन रंच न राखब काउ॥1॥

भावार्थ:-सहस्रबाहु, देवराज इंद्र और त्रिशंकु आदि किसको राजमद ने कलंक नहीं दिया? भरत ने यह उपाय उचित ही किया है, क्योंकि शत्रु और ऋण को कभी जरा भी शेष नहीं रखना चाहिए॥1॥

* एक कीन्हि नहिं भरत भलाई। निदरे रामु जानि असहाई॥

समुझि परिहि सोउ आजु बिसेषी। समर सरोष राम मुखु पेखी॥2॥

भावार्थ:-हाँ, भरत ने एक बात अच्छी नहीं की, जो रामजी (आप) को असहाय जानकर उनका निरादर किया! पर आज संग्राम में श्री रामजी (आप) का क्रोधपूर्ण मुख देखकर यह बात भी उनकी समझ में विशेष रूप से आ जाएगी (अर्थात् इस निरादर का फल भी वे अच्छी तरह पा जाएँगे)॥2॥

* एतना कहत नीति रस भूला। रन रस बिटपु पुलक मिस फूला॥
प्रभु पद बंदि सीस रज राखी। बोले सत्य सहज बलु भाषी॥3॥

भावार्थ:-इतना कहते ही लक्ष्मणजी नीतिरस भूल गए और युद्धरस रूपी वृक्ष पुलकावली के बहाने से फूल उठा (अर्थात् नीति की बात कहते-कहते उनके शरीर में वीर रस छा गया)। वे प्रभु श्री रामचंद्रजी के चरणों की वंदना करके, चरण रज को सिर पर रखकर सच्चा और स्वाभाविक बल कहते हुए बोले॥3॥

* अनुचित नाथ न मानब मोरा। भरत हमहि उपचार न थोरा॥
कहँ लगि सहिअ रहिअ मनु मारें। नाथ साथ धनु हाथ हमारें॥4॥

भावार्थ:-हे नाथ! मेरा कहना अनुचित न मानिएगा। भरत ने हमें कम नहीं प्रचारा है (हमारे साथ कम छेड़छाड़ नहीं की है)। आखिर कहाँ तक सहा जाए और मन मारे रहा जाए, जब स्वामी हमारे साथ हैं और धनुष हमारे हाथ में है!॥4॥

दोहा :

* छत्रि जाति रघुकुल जनमु राम अनुग जगु जान।
लातहुँ मारें चढ़ति सिर नीच को धूरि समान॥229॥

भावार्थ:-क्षत्रिय जाति, रघुकुल में जन्म और फिर मैं श्री रामजी (आप) का अनुगामी (सेवक) हूँ, यह जगत् जानता है। (फिर भला कैसे सहा जाए?) धूल के समान नीच कौन है, परन्तु वह भी लात मारने पर सिर ही चढ़ती है॥229॥

चौपाई :

* उठि कर जोरि रजायसु मागा। मनहुँ बीर रस सोवत जागा॥
बाँधि जटा सिर कसि कटि भाथा। साजि सरासनु सायकु हाथा॥1॥

भावार्थ:-यों कहकर लक्ष्मणजी ने उठकर, हाथ जोड़कर आज्ञा माँगी। मानो वीर रस सोते से जाग उठा हो। सिर पर जटा बाँधकर कमर में तरकस कस लिया और धनुष को सजाकर तथा बाण को हाथ में लेकर कहा-॥1॥

* आजु राम सेवक जसु लेऊँ। भरतहि समर सिखावन देऊँ॥
राम निरादर कर फलु पाई। सोवहुँ समर सेज दोउ भाई॥2॥

भावार्थ:-आज मैं श्री राम (आप) का सेवक होने का यश लूँ और भरत को संग्राम में शिक्षा दूँ। श्री रामचंद्रजी (आप) के निरादर का फल पाकर दोनों भाई (भरत-शत्रुघ्न) रण शय्या पर सोवें॥2॥

* आइ बना भल सकल समाजू। प्रगट करउँ रिस पाछिल आजू॥
जिमि करि निकर दलइ मृगराजू। लेइ लपेटि लवा जिमि बाजू॥3॥

भावार्थ:-अच्छा हुआ जो सारा समाज आकर एकत्र हो गया। आज मैं पिछला सब क्रोध प्रकट करूँगा। जैसे सिंह हाथियों के झुंड को कुचल डालता है और बाज जैसे लवे को लपेट में ले लेता है॥3॥

* तैसेहिं भरतहि सेन समेता। सानुज निदरि निपातउँ खेता॥
जौं सहाय कर संकरु आई। तौ मारउँ रन राम दोहाई॥4॥

भावार्थ:-वैसे ही भरत को सेना समेत और छोटे भाई सहित तिरस्कार करके मैदान में पछाड़ूँगा। यदि शंकरजी भी आकर उनकी सहायता करें, तो भी, मुझे रामजी की सौगंध है, मैं उन्हें युद्ध में (अवश्य) मार डालूँगा (छोड़ूँगा नहीं)॥4॥

दोहा :

* अति सरोष माखे लखनु लखि सुनि सपथ प्रवान।
सभय लोक सब लोकपति चाहत भभरि भगान॥230॥

भावार्थ:-लक्ष्मणजी को अत्यंत क्रोध से तमतमाया हुआ देखकर और उनकी प्रामाणिक (सत्य) सौगंध सुनकर सब लोग भयभीत हो जाते हैं और लोकपाल घबड़ाकर भागना चाहते हैं॥230।

चौपाई :

* जगु भय मगन गगन भइ बानी। लखन बाहुबलु बिपुल बखानी॥
तात प्रताप प्रभाउ तुम्हारा। को कहि सकइ को जाननिहारा॥1॥

भावार्थ:-सारा जगत्‌ भय में डूब गया। तब लक्ष्मणजी के अपार बाहुबल की प्रशंसा करती हुई आकाशवाणी हुई- हे तात! तुम्हारे प्रताप और प्रभाव को कौन कह सकता है और कौन जान सकता है?॥1॥

* अनुचित उचित काजु किछु होऊ। समुझि करिअ भल कह सबु कोऊ।
सहसा करि पाछे पछिताहीं। कहहिं बेद बुध ते बुध नाहीं॥2॥

भावार्थ:-परन्तु कोई भी काम हो, उसे अनुचित-उचित खूब समझ-बूझकर किया जाए तो सब कोई अच्छा कहते हैं। वेद और

विद्वान कहते हैं कि जो बिना विचारे जल्दी में किसी काम को करके पीछे पछताते हैं, वे बुद्धिमान् नहीं हैं॥2॥

गीताप्रेस गोरखपुर

श्री रामजी का लक्ष्मणजी को समझाना एवं भरतजी की महिमा कहना

* सुनि सुर बचन लखन सकुचाने। राम सीयँ सादर सनमाने॥
कही तात तुम्ह नीति सुहाई। सब तें कठिन राजमदु भाई॥3॥

भावार्थ:-देववाणी सुनकर लक्ष्मणजी सकुचा गए। श्री रामचंद्रजी और सीताजी ने उनका आदर के साथ सम्मान किया (और कहा-) हे तात! तुमने बड़ी सुंदर नीति कही। हे भाई! राज्य का मद सबसे कठिन मद है॥3॥

* जो अचवँत नृप मातहिं तेई। नाहिन साधुसभा जेहिं सेई॥
सुनहु लखन भल भरत सरीसा। बिधि प्रपंच महँ सुना न दीसा॥4॥

भावार्थ:-जिन्होंने साधुओं की सभा का सेवन (सत्संग) नहीं किया, वे ही राजा राजमद रूपी मदिरा का आचमन करते ही (पीते ही) मतवाले हो जाते हैं। हे लक्ष्मण! सुनो, भरत सरीखा उत्तम पुरुष ब्रह्मा की सृष्टि में न तो कहीं सुना गया है, न देखा ही गया है॥4॥

दोहा :

* भरतहि होइ न राजमदु बिधि हरि हर पद पाइ।
कबहुँ कि काँजी सीकरनि छीरसिंधु बिनसाइ॥231॥

भावार्थ:-(अयोध्या के राज्य की तो बात ही क्या है) ब्रह्मा, विष्णु और महादेव का पद पाकर भी भरत को राज्य का मद नहीं होने का! क्या कभी काँजी की बूँदों से क्षीरसमुद्र नष्ट हो सकता (फट सकता) है?॥231॥

चौपाई :

* तिमिरु तरुन तरनिहि मकु गिलई। गगनु मगन मकु मेघहिं मिलई॥
गोपद जल बूड़हिं घटजोनी। सहज छमा बरु छाड़ै छोनी॥1॥

भावार्थ:-अन्धकार चाहे तरुण (मध्याह्न के) सूर्य को निगल जाए। आकाश चाहे बादलों में समाकर मिल जाए। गो के खुर इतने जल में अगस्त्यजी डूब जाएँ और पृथ्वी चाहे अपनी स्वाभाविक क्षमा (सहनशीलता) को छोड़ दे॥1॥

* मसक फूँक मकु मेरु उड़ाई। होइ न नृपमदु भरतहि भाई॥
लखन तुम्हार सपथ पितु आना। सुचि सुबंधु नहिं भरत समाना॥2॥

भावार्थ:-मच्छर की फूँक से चाहे सुमेरु उड़ जाए, परन्तु हे भाई! भरत को राजमद कभी नहीं हो सकता। हे लक्ष्मण! मैं तुम्हारी शपथ और पिताजी की सौगंध खाकर कहता हूँ, भरत के समान पवित्र और उत्तम भाई संसार में नहीं है॥2॥

* सगुनु खीरु अवगुन जलु ताता। मिलइ रचइ परपंचु बिधाता॥
भरतु हंस रबिबंस तड़ागा। जनमि कीन्ह गुन दोष बिभागा॥3॥

भावार्थ:-हे तात! गुरु रूपी दूध और अवगुण रूपी जल को मिलाकर विधाता इस दृश्य प्रपंच (जगत्) को रचता है, परन्तु भरत ने सूर्यवंश रूपी तालाब में हंस रूप जन्म लेकर गुण और दोष का विभाग कर दिया (दोनों को अलग-अलग कर दिया)॥3॥

* गहि गुन पय तजि अवगुण बारी। निज जस जगत कीन्हि उजिआरी॥
कहत भरत गुन सीलु सुभाऊ। पेम पयोधि मगन रघुराऊ॥4॥

भावार्थ:-गुणरूपी दूध को ग्रहण कर और अवगुण रूपी जल को त्यागकर भरत ने अपने यश से जगत् में उजियाला कर दिया है। भरतजी के गुण, शील और स्वभाव को कहते-कहते श्री रघुनाथजी प्रेमसमुद्र में मग्न हो गए॥4॥

दोहा :

* सुनि रघुबर बानी बिबुध देखि भरत पर हेतु।
सकल सराहत राम सो प्रभु को कृपानिकेतु॥232॥

भावार्थ:-श्री रामचंद्रजी की वाणी सुनकर और भरतजी पर उनका प्रेम देखकर समस्त देवता उनकी सराहना करने लगे (और कहने लगे) कि श्री रामचंद्रजी के समान कृपा के धाम प्रभु और कौन है?॥232॥

चौपाई :

* जौं न होत जग जनम भरत को। सकल धरम धुर धरनि धरत को॥
कबि कुल अगम भरत गुन गाथा। को जानइ तुम्ह बिनु रघुनाथा॥1॥

भावार्थ:-यदि जगत् में भरत का जन्म न होता, तो पृथ्वी पर संपूर्ण धर्मों की धुरी को कौन धारण करता? हे रघुनाथजी!

कविकुल के लिए अगम (उनकी कल्पना से अतीत) भरतजी के गुणों की कथा आपके सिवा और कौन जान सकता है?॥1॥

गीताप्रेस गोरखपुर

भरतजी का मन्दाकिनी स्नान, चित्रकूट में पहुँचना, भरतादि सबका परस्पर मिलाप, पिता का शोक और श्राद्ध

* लखन राम सियँ सुनि सुर बानी। अति सुखु लहेउ न जाइ बखानी॥
इहाँ भरतु सब सहित सहाए। मंदाकिनीं पुनीत नहाए॥2॥

भावार्थ:-लक्ष्मणजी, श्री रामचंद्रजी और सीताजी ने देवताओं की वाणी सुनकर अत्यंत सुख पाया, जो वर्णन नहीं किया जा सकता। यहाँ भरतजी ने सारे समाज के साथ पवित्र मंदाकिनी में स्नान किया॥2॥

* सरित समीप राखि सब लोगा। मागि मातु गुर सचिव नियोगा॥
चले भरतु जहँ सिय रघुराई। साथ निषादनाथु लघु भाई॥3॥

भावार्थ:-फिर सबको नदी के समीप ठहराकर तथा माता, गुरु और मंत्री की आज्ञा म

भरतजी का मन्दाकिनी स्नान, चित्रकूट में पहुँचना, भरतादि सबका परस्पर मिलाप, पिता का शोक और श्राद्ध

* लखन राम सियँ सुनि सुर बानी। अति सुखु लहेउ न जाइ बखानी॥
इहाँ भरतु सब सहित सहाए। मंदाकिनीं पुनीत नहाए॥2॥

भावार्थ:-लक्ष्मणजी, श्री रामचंद्रजी और सीताजी ने देवताओं की वाणी सुनकर अत्यंत सुख पाया, जो वर्णन नहीं किया जा सकता। यहाँ भरतजी ने सारे समाज के साथ पवित्र मंदाकिनी में स्नान किया॥2॥

* सरित समीप राखि सब लोगा। मागि मातु गुर सचिव नियोगा॥
चले भरतु जहँ सिय रघुराई। साथ निषादनाथु लघु भाई॥3॥

भावार्थ:-फिर सबको नदी के समीप ठहराकर तथा माता, गुरु और मंत्री की आज्ञा माँगकर निषादराज और शत्रुघ्न को साथ लेकर भरतजी वहाँ चले जहाँ श्री सीताजी और श्री रघुनाथजी थे॥3॥।

* समुझि मातु करतब सकुचाहीं। करत कुतरक कोटि मन माहीं॥
रामु लखनु सिय सुनि मम नाऊँ। उठि जनि अनत जाहिं तजि ठाऊँ॥4॥

भावार्थ:-भरतजी अपनी माता कैकेयी की करनी को समझकर (याद करके) सकुचाते हैं और मन में करोड़ों (अनेकों) कुतर्क करते हैं (सोचते हैं) श्री राम, लक्ष्मण और सीताजी मेरा नाम सुनकर स्थान छोड़कर कहीं दूसरी जगह उठकर न चले जाएँ॥4॥

दोहा :

* मातु मते महुँ मानि मोहि जो कछु करहिं सो थोर।
अघ अवगुन छमि आदरहिं समुझि आपनी ओर॥233॥

भावार्थ:-मुझे माता के मत में मानकर वे जो कुछ भी करें सो थोड़ा है, पर वे अपनी ओर समझकर (अपने विरद और संबंध को देखकर) मेरे पापों और अवगुणों को क्षमा करके मेरा आदर ही करेंगे॥233॥

चौपाई :

* जौं परिहरहिं मलिन मनु जानी। जौं सनमानहिं सेवकु मानी॥
मोरें सरन रामहि की पनही। राम सुस्वामि दोसु सब जनही॥1॥

भावार्थ:-चाहे मलिन मन जानकर मुझे त्याग दें, चाहे अपना सेवक मानकर मेरा सम्मान करें, (कुछ भी करें), मेरे तो श्री रामचंद्रजी की जूतियाँ ही शरण हैं। श्री रामचंद्रजी तो अच्छे स्वामी हैं, दोष तो सब दास का ही है॥1॥

* जग जग भाजन चातक मीना। नेम पेम निज निपुन नबीना॥
अस मन गुनत चले मग जाता। सकुच सनेहँ सिथिल सब
गाता॥2॥

भावार्थ:-जगत् में यश के पात्र तो चातक और मछली ही हैं, जो अपने नेम और प्रेम को सदा नया बनाए रखने में निपुण हैं। ऐसा मन में सोचते हुए भरतजी मार्ग में चले जाते हैं। उनके सब अंग संकोच और प्रेम से शिथिल हो रहे हैं॥2॥

* फेरति मनहुँ मातु कृत खोरी। चलत भगति बल धीरज धोरी॥
जब समुझत रघुनाथ सुभाऊ। तब पथ परत उताइल पाऊ॥3॥

भावार्थ:-माता की हुई बुराई मानो उन्हें लौटाती है, पर धीरज की धुरी को धारण करने वाले भरतजी भक्ति के बल से चले जाते हैं। जब श्री रघुनाथजी के स्वभाव को समझते (स्मरण करते) हैं तब मार्ग में उनके पैर जल्दी-जल्दी पड़ने लगते हैं॥3॥

* भरत दसा तेहि अवसर कैसी। जल प्रबाहँ जल अलि गति
जैसी॥
देखि भरत कर सोचु सनेहू। भा निषाद तेहि समयँ बिदेहू॥4॥

भावार्थ:-उस समय भरत की दशा कैसी है? जैसी जल के प्रवाह में जल के भौंरे की गति होती है। भरतजी का सोच और प्रेम देखकर उस समय निषाद विदेह हो गया (देह की सुध-बुध भूल गया)॥4॥

दोहा :

* लगे होन मंगल सगुन सुनि गुनि कहत निषादु।
मिटिहि सोचु होइहि हरषु पुनि परिनाम बिषादु॥234॥

भावार्थ:-मंगल शकुन होने लगे। उन्हें सुनकर और विचारकर निषाद कहने लगा- सोच मिटेगा, हर्ष होगा, पर फिर अन्त में दुःख होगा॥234॥

चौपाई :

* सेवक बचन सत्य सब जाने। आश्रम निकट जाइ निअराने॥
भरत दीख बन सैल समाजू। मुदित छुधित जनु पाइ सुनाजू॥1॥

भावार्थ:-भरतजी ने सेवक (गुह) के सब वचन सत्य जाने और वे आश्रम के समीप जा पहुँचे। वहाँ के वन और पर्वतों के समूह को देखा तो भरतजी इतने आनंदित हुए मानो कोई भूखा अच्छा अन्न (भोजन) पा गया हो॥1॥

* ईति भीति जनु प्रजा दुखारी। त्रिबिध ताप पीड़ित ग्रह मारी॥
जाइ सुराज सुदेस सुखारी। होहिं भरत गति तेहि अनुहारी॥2॥

भावार्थ:-जैसे *ईति के भय से दुःखी हुई और तीनों (आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक) तापों तथा क्रूर ग्रहों और महामारियों से पीड़ित प्रजा किसी उत्तम देश और उत्तम राज्य में जाकर सुखी हो जाए, भरतजी की गति (दशा) ठीक उसी प्रकार हो रही है॥2॥ (*अधिक जल बरसना, न बरसना, चूहों का उत्पात, टिड्डियाँ, तोते और दूसरे राजा की चढ़ाई- खेतों में बाधा देने वाले इन छह उपद्रवों को 'ईति' कहते हैं)।

* राम बास बन संपति भ्राजा। सुखी प्रजा जनु पाइ सुराजा॥
सचिव बिरागु बिबेकु नरेसू। बिपिन सुहावन पावन देसू॥3॥

भावार्थ:-श्री रामचंद्रजी के निवास से वन की सम्पत्ति ऐसी सुशोभित है मानो अच्छे राजा को पाकर प्रजा सुखी हो। सुहावना वन ही पवित्र देश है। विवेक उसका राजा है और वैराग्य मंत्री है॥3॥

* भट जम नियम सैल रजधानी। सांति सुमति सुचि सुंदर रानी॥
सकल अंग संपन्न सुराऊ। राम चरन आश्रित चित चाऊ॥4॥

भावार्थ:-यम (अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह) तथा नियम (शौच, संतोष, तप, स्वाध्याय और ईश्वर प्रणिधान) योद्धा हैं। पर्वत राजधानी है, शांति तथा सुबुद्धि दो सुंदर पवित्र रानियाँ हैं। वह श्रेष्ठ राजा राज्य के सब अंगों से पूर्ण है और श्री रामचंद्रजी के चरणों के आश्रित रहने से उसके चित्त में चाव (आनंद या उत्साह) है॥4॥ (स्वामी, आमत्य, सुहृद, कोष, राष्ट्र, दुर्ग और सेना- राज्य के सात अंग हैं।)

दोहा :

* जीति मोह महिपालु दल सहित बिबेक भुआलु।
करत अकंटक राजु पुरँ सुख संपदा सुकालु॥235॥

भावार्थ:-मोह रूपी राजा को सेना सहित जीतकर विवेक रूपी राजा निष्कण्टक राज्य कर रहा है। उसके नगर में सुख, सम्पत्ति और सुकाल वर्तमान है॥235॥

चौपाई :

* बन प्रदेस मुनि बास घनेरे। जनु पुर नगर गाउँ गन खेरे॥
बिपुल बिचित्र बिहग मृग नाना। प्रजा समाजु न जाइ बखाना॥1॥

भावार्थ:-वन रूपी प्रांतों में जो मुनियों के बहुत से निवास स्थान हैं, वही मानो शहरों, नगरों, गाँवों और खेड़ों का समूह है। बहुत से विचित्र पक्षी और अनेकों पशु ही मानो प्रजाओं का समाज है, जिसका वर्णन नहीं किया जा सकता॥1॥

* खगहा करि हरि बाघ बराहा। देखि महिष बृष साजु सराहा॥
बयरु बिहाइ चरहिं एक संगा। जहँ तहँ मनहुँ सेन चतुरंगा॥2॥

भावार्थ:-गैंडा, हाथी, सिंह, बाघ, सूअर, भैंसे और बैलों को देखकर राजा के साज को सराहते ही बनता है। ये सब आपस का वैर छोड़कर जहाँ-तहाँ एक साथ विचरते हैं। यही मानो चतुरंगिणी सेना है॥2॥

* झरना झरहिं मत्त गज गाजहिं। मनहुँ निसान बिबिधि बिधि बाजहिं॥
चक चकोर चातक सुक पिक गन। कूजत मंजु मराल मुदित मन॥3॥

भावार्थ:-पानी के झरने झर रहे हैं और मतवाले हाथी चिंघाड़ रहे हैं। मानो वहाँ अनेकों प्रकार के नगाड़े बज रहे हैं। चकवा, चकोर, पपीहा, तोता तथा कोयलों के समूह और सुंदर हंस प्रसन्न मन से कूज रहे हैं॥3॥

* अलिगन गावत नाचत मोरा। जनु सुराज मंगल चहु ओरा॥
बेलि बिटप तृन सफल सफूला। सब समाजु मुद मंगल मूला॥4॥

भावार्थ:-भौंरों के समूह गुंजार कर रहे हैं और मोर नाच रहे हैं। मानो उस अच्छे राज्य में चारों ओर मंगल हो रहा है। बेल, वृक्ष, तृण सब फल और फूलों से युक्त हैं। सारा समाज आनंद और मंगल का मूल बन रहा है॥4॥

दोहा :

* राम सैल सोभा निरखि भरत हृदयँ अति पेमु।
तापस तप फलु पाइ जिमि सुखी सिरानें नेमु॥236॥

भावार्थ:-श्री रामजी के पर्वत की शोभा देखकर भरतजी के हृदय में अत्यंत प्रेम हुआ। जैसे तपस्वी नियम की समाप्ति होने पर तपस्या का फल पाकर सुखी होता है॥236॥

मासपारायण, बीसवाँ विश्राम

नवाह्नपारायण, पाँचवाँ विश्राम

चौपाई :

* तब केवट ऊँचे चढ़ि धाई। कहेउ भरत सन भुजा उठाई॥
नाथ देखिअहिं बिटप बिसाला। पाकरि जंबु रसाल तमाला॥1॥

भावार्थ:-तब केवट दौड़कर ऊँचे चढ़ गया और भुजा उठाकर भरजी से कहने लगा- हे नाथ! ये जो पाकर, जामुन, आम और तमाल के विशाल वृक्ष दिखाई देते हैं,॥1॥

* जिन्ह तरुबरन्ह मध्य बटु सोहा। मंजु बिसाल देखि मनु मोहा॥
नील सघन पल्लव फल लाला। अबिरल छाहँ सुखद सब काला॥2॥

भावार्थ:-जिन श्रेष्ठ वृक्षों के बीच में एक सुंदर विशाल बड़ का वृक्ष सुशोभित है, जिसको देखकर मन मोहित हो जाता है, उसके पत्ते नीले और सघन हैं और उसमें लाल फल लगे हैं। उसकी घनी छाया सब ऋतुओं में सुख देने वाली है॥2॥

* मानहुँ तिमिर अरुनमय रासी। बिरची बिधि सँकेलि सुषमा सी॥

ए तरु सरित समीप गोसाँई। रघुबर परनकुटी जहँ छाई॥3॥

भावार्थ:-मानो ब्रह्माजी ने परम शोभा को एकत्र करके अंधकार और लालिमामयी राशि सी रच दी है। हे गुसाईं! ये वृक्ष नदी के समीप हैं, जहाँ श्री राम की पर्णकुटी छाई है॥3॥

* तुलसी तरुबर बिबिध सुहाए। कहुँ कहुँ सियँ कहुँ लखन लगाए॥
बट छायाँ बेदिका बनाई। सियँ निज पानि सरोज सुहाई॥4॥

भावार्थ:-वहाँ तुलसीजी के बहुत से सुंदर वृक्ष सुशोभित हैं, जो कहीं-कहीं सीताजी ने और कहीं लक्ष्मणजी ने लगाए हैं। इसी बड़ की छाया में सीताजी ने अपने करकमलों से सुंदर वेदी बनाई है॥4॥

दोहा :

* जहाँ बैठि मुनिगन सहित नित सिय रामु सुजान।
सुनहिं कथा इतिहास सब आगम निगम पुरान॥237॥

भावार्थ:-जहाँ सुजान श्री सीता-रामजी मुनियों के वृन्द समेत बैठकर नित्य शास्त्र, वेद और पुराणों के सब कथा-इतिहास सुनते हैं॥237॥

चौपाई :

* सखा बचन सुनि बिटप निहारी। उमगे भरत बिलोचन बारी॥
करत प्रनाम चले दोउ भाई। कहत प्रीति सारद सकुचाई॥1॥

भावार्थ:-सखा के वचन सुनकर और वृक्षों को देखकर भरतजी के नेत्रों में जल उमड़ आया। दोनों भाई प्रणाम करते हुए चले। उनके प्रेम का वर्णन करने में सरस्वतीजी भी सकुचाती हैं॥1॥

* हरषहिं निरखि राम पद अंका। मानहुँ पारसु पायउ रंका॥

रज सिर धरि हियँ नयनन्हि लावहिं। रघुबर मिलन सरिस सुख पावहिं॥2॥

भावार्थ:-श्री रामचन्द्रजी के चरणचिह्न देखकर दोनों भाई ऐसे हर्षित होते हैं, मानो दरिद्र पारस पा गया हो। वहाँ की रज को मस्तक पर रखकर हृदय में और नेत्रों में लगाते हैं और श्री रघुनाथजी के मिलने के समान सुख पाते हैं॥2॥

* देखि भरत गति अकथ अतीवा। प्रेम मगन मृग खग जड़ जीवा॥
सखहि सनेह बिबस मग भूला। कहि सुपंथ सुर बरषहिं फूला॥3॥

भावार्थ:-भरतजी की अत्यन्त अनिर्वचनीय दशा देखकर वन के पशु, पक्षी और जड़ (वृक्षादि) जीव प्रेम में मग्न हो गए। प्रेम के विशेष वश होने से सखा निषादराज को भी रास्ता भूल गया। तब देवता सुंदर रास्ता बतलाकर फूल बरसाने लगे॥3॥

* निरखि सिद्ध साधक अनुरागे। सहज सनेहु सराहन लागे॥
होत न भूतल भाउ भरत को। अचर सचर चर अचर करत को॥4॥

भावार्थ:-भरत के प्रेम की इस स्थिति को देखकर सिद्ध और साधक लोग भी अनुराग से भर गए और उनके स्वाभाविक प्रेम की प्रशंसा करने लगे कि यदि इस पृथ्वी तल पर भरत का जन्म (अथवा प्रेम) न होता, तो जड़ को चेतन और चेतन को जड़ कौन करता?॥4॥

दोहा :

* पेम अमिअ मंदरु बिरहु भरतु पयोधि गँभीर।
मथि प्रगटेउ सुर साधु हित कृपासिंधु रघुबीर॥238॥

भावार्थ:-प्रेम अमृत है, विरह मंदराचल पर्वत है, भरतजी गहरे समुद्र हैं। कृपा के समुद्र श्री रामचन्द्रजी ने देवता और साधुओं के हित के लिए स्वयं (इस भरत रूपी गहरे समुद्र को अपने विरह रूपी मंदराचल से) मथकर यह प्रेम रूपी अमृत प्रकट किया है॥238॥

चौपाई :

* सखा समेत मनोहर जोटा। लखेउ न लखन सघन बन ओटा॥
भरत दीख प्रभु आश्रमु पावन। सकल सुमंगल सदनु सुहावन॥1॥

भावार्थ:-सखा निषादराज सहित इस मनोहर जोड़ी को सघन वन की आड़ के कारण लक्ष्मणजी नहीं देख पाए। भरतजी ने प्रभु श्री रामचन्द्रजी के समस्त सुमंगलों के धाम और सुंदर पवित्र आश्रम को देखा॥1॥

* करत प्रबेस मिटे दुख दावा। जनु जोगीं परमारथु पावा॥
देखे भरत लखन प्रभु आगे। पूँछे बचन कहत अनुरागे॥2॥

भावार्थ:-आश्रम में प्रवेश करते ही भरतजी का दुःख और दाह (जलन) मिट गया, मानो योगी को परमार्थ (परमतत्व) की प्राप्ति हो गई हो। भरतजी ने देखा कि लक्ष्मणजी प्रभु के आगे खड़े हैं और पूछे हुए वचन प्रेमपूर्वक कह रहे हैं (पूछी हुई बात का प्रेमपूर्वक उत्तर दे रहे हैं)॥2॥

* सीस जटा कटि मुनि पट बाँधें। तून कसें कर सरु धनु काँधें॥
बेदी पर मुनि साधु समाजू। सीय सहित राजत रघुराजू॥3॥

भावार्थ:-सिर पर जटा है, कमर में मुनियों का (वल्कल) वस्त्र बाँधे हैं और उसी में तरकस कसे हैं। हाथ में बाण तथा कंधे

पर धनुष है, वेदी पर मुनि तथा साधुओं का समुदाय बैठा है और सीताजी सहित श्री रघुनाथजी विराजमान हैं॥3॥

* बलकल बसन जटिल तनु स्यामा। जनु मुनिबेष कीन्ह रति कामा॥
कर कमलनि धनु सायकु फेरत। जिय की जरनि हरत हँसि हेरत॥4॥

भावार्थ:-श्री रामजी के वल्कल वस्त्र हैं, जटा धारण किए हैं, श्याम शरीर है। (सीता-रामजी ऐसे लगते हैं) मानो रति और कामदेव ने मुनि का वेष धारण किया हो। श्री रामजी अपने करकमलों से धनुष-बाण फेर रहे हैं और हँसकर देखते ही जी की जलन हर लेते हैं (अर्थात जिसकी ओर भी एक बार हँसकर देख लेते हैं, उसी को परम आनंद और शांति मिल जाती है।)॥4॥

दोहा :

* लसत मंजु मुनि मंडली मध्य सीय रघुचंदु।
ग्यान सभाँ जनु तनु धरें भगति सच्चिदानंदु॥239॥

भावार्थ:-सुंदर मुनि मंडली के बीच में सीताजी और रघुकुलचंद्र श्री रामचन्द्रजी ऐसे सुशोभित हो रहे हैं मानो ज्ञान की सभा में साक्षात् भक्ति और सच्चिदानंद शरीर धारण करके विराजमान हैं॥239॥

चौपाई :

* सानुज सखा समेत मगन मन। बिसरे हरष सोक सुख दुख गन॥
पाहि नाथ कहि पाहि गोसाईं। भूतल परे लकुट की नाईं॥1॥

भावार्थ:-छोटे भाई शत्रुघ्न और सखा निषादराज समेत भरतजी का मन (प्रेम में) मग्न हो रहा है। हर्ष-शोक, सुख-दुःख आदि सब भूल गए। हे नाथ! रक्षा कीजिए, हे गुसाईं! रक्षा कीजिए' ऐसा कहकर वे पृथ्वी पर दण्ड की तरह गिर पड़े॥1॥

* बचन सप्रेम लखन पहिचाने। करत प्रनामु भरत जियँ जाने॥
बंधु सनेह सरस एहि ओरा। उत साहिब सेवा बस जोरा॥2॥

भावार्थ:-प्रेमभरे वचनों से लक्ष्मणजी ने पहचान लिया और मन में जान लिया कि भरतजी प्रणाम कर रहे हैं। (वे श्री रामजी की ओर मुँह किए खड़े थे, भरतजी पीठ पीछे थे, इससे उन्होंने देखा नहीं।) अब इस ओर तो भाई भरतजी का सरस प्रेम और उधर स्वामी श्री रामचन्द्रजी की सेवा की प्रबल परवशता॥2॥

* मिलि न जाइ नहिं गुदरत बनई। सुकबि लखन मन की गति भनई॥
रहे राखि सेवा पर भारू। चढ़ी चंग जनु खैंच खेलारू॥3॥

भावार्थ:-न तो (क्षणभर के लिए भी सेवा से पृथक होकर) मिलते ही बनता है और न (प्रेमवश) छोड़ते (उपेक्षा करते) ही। कोई श्रेष्ठ कवि ही लक्ष्मणजी के चित्त की इस गति (दुविधा) का वर्णन कर सकता है। वे सेवा पर भार रखकर रह गए (सेवा को ही विशेष महत्वपूर्ण समझकर उसी में लगे रहे) मानो चढ़ी हुई पतंग को खिलाड़ी (पतंग उड़ाने वाला) खींच रहा हो॥3॥

* कहत सप्रेम नाइ महि माथा। भरत प्रनाम करत रघुनाथा॥
उठे रामु सुनि पेम अधीरा। कहुँ पट कहुँ निषंग धनु तीरा॥4॥

भावार्थ:-लक्ष्मणजी ने प्रेम सहित पृथ्वी पर मस्तक नवाकर कहा- हे रघुनाथजी! भरतजी प्रणाम कर रहे हैं। यह सुनते ही श्री

रघुनाथजी प्रेम में अधीर होकर उठे। कहीं वस्त्र गिरा, कहीं तरकस, कहीं धनुष और कहीं बाण॥4॥

दोहा :

* बरबस लिए उठाइ उर लाए कृपानिधान।
भरत राम की मिलनि लखि बिसरे सबहि अपान॥240॥

भावार्थ:-कृपा निधान श्री रामचन्द्रजी ने उनको जबरदस्ती उठाकर हृदय से लगा लिया! भरतजी और श्री रामजी के मिलन की रीति को देखकर सबको अपनी सुध भूल गई॥240॥

चौपाई :

* मिलनि प्रीति किमि जाइ बखानी। कबिकुल अगम करम मन बानी॥
परम प्रेम पूरन दोउ भाई। मन बुधि चित अहमिति बिसराई॥1॥

भावार्थ:-मिलन की प्रीति कैसे बखानी जाए? वह तो कविकुल के लिए कर्म, मन, वाणी तीनों से अगम है। दोनों भाई (भरतजी और श्री रामजी) मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार को भुलाकर परम प्रेम से पूर्ण हो रहे हैं॥1॥

* कहहु सुपेम प्रगट को करई। केहि छाया कबि मति अनुसरई॥
कबिहि अरथ आखर बलु साँचा। अनुहरि ताल गतिहि नटु नाचा॥2॥

भावार्थ:-कहिए, उस श्रेष्ठ प्रेम को कौन प्रकट करे? कवि की बुद्धि किसकी छाया का अनुसरण करे? कवि को तो अक्षर और अर्थ का ही सच्चा बल है। नट ताल की गति के अनुसार ही नाचता है!॥2॥

* अगम सनेह भरत रघुबर को। जहँ न जाइ मनु बिधि हरि हर को॥
सो मैं कुमति कहौं केहि भाँति। बाज सुराग कि गाँडर ताँती॥3॥

भावार्थ:-भरतजी और श्री रघुनाथजी का प्रेम अगम्य है, जहाँ ब्रह्मा, विष्णु और महादेव का भी मन नहीं जा सकता। उस प्रेम को मैं कुबुद्धि किस प्रकार कहूँ! भला, *गाँडर की ताँत से भी कहीं सुंदर राग बज सकता है?॥3॥ (*तालाबों और झीलों में एक तरह की घास होती है, उसे गाँडर कहते हैं।)

* मिलनि बिलोकि भरत रघुबर की। सुरगन सभय धकधकी धरकी॥
समुझाए सुरगुरु जड़ जागे। बरषि प्रसून प्रसंसन लागे॥4॥

भावार्थ:-भरतजी और श्री रामचन्द्रजी के मिलने का ढंग देखकर देवता भयभीत हो गए, उनकी धुकधुकी धड़कने लगी। देव गुरु बृहस्पतिजी ने समझाया, तब कहीं वे मूर्ख चेते और फूल बरसाकर प्रशंसा करने लगे॥4॥

दोहा :

* मिलि सपेम रिपुसूदनहि केवटु भेंटेउ राम।
भूरि भायँ भेंटे भरत लछिमन करत प्रनाम॥241॥

भावार्थ:-फिर श्री रामजी प्रेम के साथ शत्रुघ्न से मिलकर तब केवट (निषादराज) से मिले। प्रणाम करते हुए लक्ष्मणजी से भरतजी बड़े ही प्रेम से मिले॥241॥

चौपाई :

* भेंटेउ लखन ललकि लघु भाई। बहुरि निषादु लीन्ह उर लाई॥

पुनि मुनिगन दुहुँ भाइन्ह बंदे। अभिमत आसिष पाइ अनंदे॥1॥
भावार्थ:-तब लक्ष्मणजी ललककर (बड़ी उमंग के साथ) छोटे भाई शत्रुघ्न से मिले। फिर उन्होंने निषादराज को हृदय से लगा लिया। फिर भरत-शत्रुघ्न दोनों भाइयों ने (उपस्थित) मुनियों को प्रणाम किया और इच्छित आशीर्वाद पाकर वे आनंदित हुए॥1॥

* सानुज भरत उमगि अनुरागा। धरि सिर सिय पद पदुम परागा॥
पुनि पुनि करत प्रनाम उठाए। सिर कर कमल परसि बैठाए॥2॥
भावार्थ:-छोटे भाई शत्रुघ्न सहित भरतजी प्रेम में उमँगकर सीताजी के चरण कमलों की रज सिर पर धारण कर बार-बार प्रणाम करने लगे। सीताजी ने उन्हें उठाकर उनके सिर को अपने करकमल से स्पर्श कर (सिर पर हाथ फेरकर) उन दोनों को बैठाया॥2॥

* सीयँ असीस दीन्हि मन माहीं। मगन सनेहँ देह सुधि नाहीं॥
सब बिधि सानुकूल लखि सीता। भे निसोच उर अपडर बीता॥3॥
भावार्थ:-सीताजी ने मन ही मन आशीर्वाद दिया, क्योंकि वे स्नेह में मग्न हैं, उन्हें देह की सुध-बुध नहीं है। सीताजी को सब प्रकार से अपने अनुकूल देखकर भरतजी सोचरहित हो गए और उनके हृदय का कल्पित भय जाता रहा॥3॥

* कोउ किछु कहई न कोउ किछु पूँछा। प्रेम भरा मन निज गति छूँछा॥
तेहि अवसर केवटु धीरजु धरि। जोरि पानि बिनवत प्रनामु करि॥4॥

भावार्थ:-उस समय न तो कोई कुछ कहता है, न कोई कुछ पूछता है! मन प्रेम से परिपूर्ण है, वह अपनी गति से खाली है (अर्थात संकल्प-विकल्प और चांचल्य से शून्य है)। उस अवसर पर केवट (निषादराज) धीरज धर और हाथ जोड़कर प्रणाम करके विनती करने लगा-॥4॥

दोहा :

* नाथ साथ मुनिनाथ के मातु सकल पुर लोग।
सेवक सेनप सचिव सब आए बिकल बियोग॥242॥

भावार्थ:-हे नाथ! मुनिनाथ वशिष्ठजी के साथ सब माताएँ, नगरवासी, सेवक, सेनापति, मंत्री- सब आपके वियोग से व्याकुल होकर आए हैं॥242॥

चौपाई :

* सीलसिंधु सुनि गुर आगवनू। सिय समीप राखे रिपुदवनू॥
चले सबेग रामु तेहि काला। धीर धरम धुर दीनदयाला॥1॥

भावार्थ:-गुरु का आगमन सुनकर शील के समुद्र श्री रामचन्द्रजी ने सीताजी के पास शत्रुघ्नजी को रख दिया और वे परम धीर, धर्मधुरंधर, दीनदयालु श्री रामचन्द्रजी उसी समय वेग के साथ चल पड़े॥1॥

* गुरहि देखि सानुज अनुरागे। दंड प्रनाम करन प्रभु लागे॥
मुनिबर धाइ लिए उर लाई। प्रेम उमगि भेंटे दोउ भाई॥2॥

भावार्थ:-गुरुजी के दर्शन करके लक्ष्मणजी सहित प्रभु श्री रामचन्द्रजी प्रेम में भर गए और दण्डवत प्रणाम करने लगे। मुनिश्रेष्ठ वशिष्ठजी ने दौड़कर उन्हें हृदय से लगा लिया और प्रेम में उमँगकर वे दोनों भाइयों से मिले॥2॥

* प्रेम पुलकि केवट कहि नामू। कीन्ह दूरि तें दंड प्रनामू॥
राम सखा रिषि बरबस भेंटा। जनु महि लुठत सनेह समेटा॥3॥

भावार्थ:-फिर प्रेम से पुलकित होकर केवट (निषादराज) ने अपना नाम लेकर दूर से ही वशिष्ठजी को दण्डवत प्रणाम किया। ऋषि वशिष्ठजी ने रामसखा जानकर उसको जबर्दस्ती हृदय से लगा लिया। मानो जमीन पर लोटते हुए प्रेम को समेट लिया हो॥3॥

* रघुपति भगति सुमंगल मूला। नभ सराहि सुर बरिसहिं फूला॥
एहि सम निपट नीच कोउ नाहीं। बड़ बसिष्ठ सम को जग माहीं॥4॥

भावार्थ:-श्री रघुनाथजी की भक्ति सुंदर मंगलों का मूल है, इस प्रकार कहकर सराहना करते हुए देवता आकाश से फूल बरसाने लगे। वे कहने लगे- जगत में इसके समान सर्वथा नीच कोई नहीं और वशिष्ठजी के समान बड़ा कौन है?॥4॥

दोहा :

* जेहि लखि लखनहु तें अधिक मिले मुदित मुनिराउ।
सो सीतापति भजन को प्रगट प्रताप प्रभाउ॥243॥

भावार्थ:-जिस (निषाद) को देखकर मुनिराज वशिष्ठजी लक्ष्मणजी से भी अधिक उससे आनंदित होकर मिले। यह सब सीतापति श्री रामचन्द्रजी के भजन का प्रत्यक्ष प्रताप और प्रभाव है॥243॥

चौपाई :

* आरत लोग राम सबु जाना। करुनाकर सुजान भगवाना॥
जो जेहि भायँ रहा अभिलाषी। तेहि तेहि कै तसि तसि रुख राखी॥1॥

भावार्थ:-दया की खान, सुजान भगवान श्री रामजी ने सब लोगों को दुःखी (मिलने के लिए व्याकुल) जाना। तब जो जिस भाव से

मिलने का अभिलाषी था, उस-उस का उस-उस प्रकार का रुख रखते हुए (उसकी रुचि के अनुसार)॥1॥

* सानुज मिलि पल महुँ सब काहू। कीन्ह दूरि दुखु दारुन दाहू॥
यह बड़ि बात राम कै नाहीं। जिमि घट कोटि एक रबि छाहीं॥2॥

भावार्थ:-उन्होंने लक्ष्मणजी सहित पल भर में सब किसी से मिलकर उनके दुःख और कठिन संताप को दूर कर दिया। श्री रामचन्द्रजी के लिए यह कोई बड़ी बात नहीं है। जैसे करोड़ों घड़ों में एक ही सूर्य की (पृथक-पृथक) छाया (प्रतिबिम्ब) एक साथ ही दिखती है॥2॥

* मिलि केवटहि उमगि अनुरागा। पुरजन सकल सराहहिं भागा॥
देखीं राम दुखित महतारीं। जनु सुबेलि अवलीं हिम मारीं॥3॥

भावार्थ:-समस्त पुरवासी प्रेम में उमँगकर केवट से मिलकर (उसके) भाग्य की सराहना करते हैं। श्री रामचन्द्रजी ने सब माताओं को दुःखी देखा। मानो सुंदर लताओं की पंक्तियों को पाला मार गया हो॥3॥

*प्रथम राम भेंटी कैकेई। सरल सुभायँ भगति मति भेई॥
पग परि कीन्ह प्रबोधु बहोरी। काल करम बिधि सिर धरि खोरी॥4॥

भावार्थ:-सबसे पहले रामजी कैकेयी से मिले और अपने सरल स्वभाव तथा भक्ति से उसकी बुद्धि को तर कर दिया। फिर चरणों में गिरकर काल, कर्म और विधाता के सिर दोष मढ़कर, श्री रामजी ने उनको सान्त्वना दी॥4॥

दोहा :

* भेटीं रघुबर मातु सब करि प्रबोधु परितोषु।

अंब ईस आधीन जगु काहु न देइअ दोषु॥244॥

भावार्थ:-फिर श्री रघुनाथजी सब माताओं से मिले। उन्होंने सबको समझा-बुझाकर संतोष कराया कि हे माता! जगत ईश्वर के अधीन है। किसी को भी दोष नहीं देना चाहिए॥244॥

* गुरतिय पद बंदे दुहु भाईं। सहित बिप्रतिय जे सँग आईं॥
गंग गौरिसम सब सनमानीं। देहिं असीस मुदित मृदु बानीं॥1॥

भावार्थ:-फिर दोनों भाइयों ने ब्राह्मणों की स्त्रियों सहित- जो भरतजी के साथ आई थीं, गुरुजी की पत्नी अरुंधतीजी के चरणों की वंदना की और उन सबका गंगाजी तथा गौरीजी के समान सम्मान किया। वे सब आनंदित होकर कोमल वाणी से आशीर्वाद देने लगीं॥1॥

* गहि पद लगे सुमित्रा अंका। जनु भेंटी संपति अति रंका॥
पुनि जननी चरननि दोउ भ्राता। परे पेम ब्याकुल सब गाता॥2॥

भावार्थ:-तब दोनों भाई पैर पकड़कर सुमित्राजी की गोद में जा चिपटे। मानो किसी अत्यन्त दरिद्र की सम्पत्ति से भेंट हो गई हो। फिर दोनों भाई माता कौसल्याजी के चरणों में गिर पड़े। प्रेम के मारे उनके सारे अंग शिथिल हैं॥2॥

* अति अनुराग अंब उर लाए। नयन सनेह सलिल अन्हवाए॥
तेहि अवसर कर हरष बिषादू। किमि कबि कहै मूक जिमि स्वादू॥3॥

भावार्थ:-बड़े ही स्नेह से माता ने उन्हें हृदय से लगा लिया और नेत्रों से बहे हुए प्रेमाश्रुओं के जल से उन्हें नहला दिया। उस समय के हर्ष और विषाद को कवि कैसे कहे? जैसे गूँगा स्वाद को कैसे बतावे?॥3॥

* मिलि जननिहि सानुज रघुराऊ। गुर सन कहेउ कि धारिअ पाऊ॥
पुरजन पाइ मुनीस नियोगू। जल थल तकि तकि उतरेउ लोगू॥4॥

भावार्थ:-श्री रघुनाथजी ने छोटे भाई लक्ष्मणजी सहित माता कौसल्या से मिलकर गुरु से कहा कि आश्रम पर पधारिए। तदनन्तर मुनीश्वर वशिष्ठजी की आज्ञा पाकर अयोध्यावासी सब लोग जल और थल का सुभीता देख-देखकर उतर गए॥4॥

दोहा :

* महिसुर मंत्री मातु गुरु गने लोग लिए साथ।
पावन आश्रम गवनु किए भरत लखन रघुनाथ॥245॥

भावार्थ:-ब्राह्मण, मंत्री, माताएँ और गुरु आदि गिने-चुने लोगों को साथ लिए हुए, भरतजी, लक्ष्मणजी और श्री रघुनाथजी पवित्र आश्रम को चले॥245॥

चौपाई :

* सीय आइ मुनिबर पग लागी। उचित असीस लही मन मागी॥
गुरपतिनिहि मुनितियन्ह समेता। मिली पेमु कहि जाइ न जेता॥1॥

भावार्थ:-सीताजी आकर मुनि श्रेष्ठ वशिष्ठजी के चरणों लगीं और उन्होंने मन माँगी उचित आशीष पाई। फिर मुनियों की स्त्रियों सहित गुरु पत्नी अरुन्धतीजी से मिलीं। उनका जितना प्रेम था, वह कहा नहीं जाता॥1॥

* बंदि बंदि पग सिय सबही के। आसिरबचन लहे प्रिय जी के।
सासु सकल सब सीयँ निहारीं। मूदे नयन सहमि सुकुमारीं॥2॥

भावार्थ:-सीताजी ने सभी के चरणों की अलग-अलग वंदना करके अपने हृदय को प्रिय (अनुकूल) लगने वाले आशीर्वाद पाए। जब सुकुमारी सीताजी ने सब सासुओं को देखा, तब उन्होंने सहमकर अपनी आँखें बंद कर लीं॥2॥

* परीं बधिक बस मनहुँ मरालीं। काह कीन्ह करतार कुचालीं॥
तिन्ह सिय निरखि निपट दुखु पावा। सो सबु सहिअ जो दैउ सहावा॥3॥

भावार्थ:-(सासुओं की बुरी दशा देखकर) उन्हें ऐसा प्रतीत हुआ मानो राजहंसिनियाँ बधिक के वश में पड़ गई हों। (मन में सोचने लगीं कि) कुचाली विधाता ने क्या कर डाला? उन्होंने भी सीताजी को देखकर बड़ा दुःख पाया। (सोचा) जो कुछ दैव सहावे, वह सब सहना ही पड़ता है॥3॥

* जनकसुता तब उर धरि धीरा। नील नलिन लोयन भरि नीरा॥
मिली सकल सासुन्ह सिय जाई। तेहि अवसर करुना महि छाई॥4॥

भावार्थ:-तब जानकीजी हृदय में धीरज धरकर, नील कमल के समान नेत्रों में जल भरकर, सब सासुओं से जाकर मिलीं। उस समय पृथ्वी पर करुणा (करुण रस) छा गई॥4॥

दोहा :

* लागि लागि पग सबनि सिय भेंटति अति अनुराग।
हृदयँ असीसहिं पेम बस रहिअहु भरी सोहाग॥246॥

भावार्थ:-सीताजी सबके पैरों लग-लगकर अत्यन्त प्रेम से मिल रही हैं और सब सासुएँ स्नेहवश हृदय से आशीर्वाद दे रही हैं

कि तुम सुहाग से भरी रहो (अर्थात सदा सौभाग्यवती रहो)॥246॥

चौपाई :

* बिकल सनेहँ सीय सब रानीं। बैठन सबहि कहेउ गुर ग्यानीं॥
कहि जग गति मायिक मुनिनाथा॥ कहे कछुक परमारथ गाथा॥1॥

भावार्थ:-सीताजी और सब रानियाँ स्नेह के मारे व्याकुल हैं। तब ज्ञानी गुरु ने सबको बैठ जाने के लिए कहा। फिर मुनिनाथ वशिष्ठजी ने जगत की गति को मायिक कहकर (अर्थात जगत माया का है, इसमें कुछ भी नित्य नहीं है, ऐसा कहकर) कुछ परमार्थ की कथाएँ (बातें) कहीं॥1॥

* नृप कर सुरपुर गवनु सुनावा। सुनि रघुनाथ दुसह दुखु पावा॥
मरन हेतु निज नेहु बिचारी। भे अति बिकल धीर धुर धारी॥2॥

भावार्थ:-तदनन्तर वशिष्ठजी ने राजा दशरथजी के स्वर्ग गमन की बात सुनाई। जिसे सुनकर रघुनाथजी ने दुःसह दुःख पाया और अपने प्रति उनके स्नेह को उनके मरने का कारण विचारकर धीरधुरन्धर श्री रामचन्द्रजी अत्यन्त व्याकुल हो गए॥2॥

* कुलिस कठोर सुनत कटु बानी। बिलपत लखन सीय सब रानी॥
सोक बिकल अति सकल समाजू। मानहुँ राजु अकाजेउ आजू॥3॥

भावार्थ:-वज्र के समान कठोर, कड़वी वाणी सुनकर लक्ष्मणजी, सीताजी और सब रानियाँ विलाप करने लगीं। सारा समाज शोक से अत्यन्त व्याकुल हो गया! मानो राजा आज ही मरे हों॥3॥

* मुनिबर बहुरि राम समुझाए। सहित समाज सुसरित नहाए॥

व्रत निरंबु तेहि दिन प्रभु कीन्हा। मुनिहु कहें जलु काहुँ न लीन्हा॥4॥

भावार्थ:-फिर मुनिश्रेष्ठ वशिष्ठजी ने श्री रामजी को समझाया। तब उन्होंने समाज सहित श्रेष्ठ नदी मंदाकिनीजी मंल स्नान किया। उस दिन प्रभु श्री रामचन्द्रजी ने निर्जल व्रत किया। मुनि वशिष्ठजी के कहने पर भी किसी ने जल ग्रहण नहीं किया॥4॥

दोहा :

* भोरु भएँ रघुनंदनहि जो मुनि आयसु दीन्ह।
श्रद्धा भगति समेत प्रभु सो सबु सादरु कीन्ह॥247॥

भावार्थ:-दूसरे दिन सबेरा होने पर मुनि वशिष्ठजी ने श्री रघुनाथजी को जो-जो आज्ञा दी, वह सब कार्य प्रभु श्री रामचन्द्रजी ने श्रद्धा-भक्ति सहित आदर के साथ किया॥247॥

चौपाई :

* करि पितु क्रिया बेद जसि बरनी। भे पुनीत पातक तम तरनी॥
जासु नाम पावक अघ तूला। सुमिरत सकल सुमंगल मूला॥1॥

भावार्थ:-वेदों में जैसा कहा गया है, उसी के अनुसार पिता की क्रिया करके, पाप रूपी अंधकार के नष्ट करने वाले सूर्यरूप श्री रामचन्द्रजी शुद्ध हुए! जिनका नाम पाप रूपी रूई के (तुरंत जला डालने के) लिए अग्नि है और जिनका स्मरण मात्र समस्त शुभ मंगलों का मूल है,॥1॥

* सुद्ध सो भयउ साधु संमत अस। तीरथ आवाहन सुसरिजस॥
सुद्ध भएँ दुइ बासर बीते। बोले गुर सनराम पिरीते॥2॥

भावार्थ:-वे (नित्य शुद्ध-बुद्ध) भगवान श्री रामजी शुद्ध हुए! साधुओं की ऐसी सम्मति है कि उनका शुद्ध होना वैसे ही है जैसा तीर्थों के आवाहन से गंगाजी शुद्ध होती हैं! (गंगाजी तो

स्वभाव से ही शुद्ध हैं, उनमें जिन तीर्थों का आवाहन किया जाता है, उलटे वे ही गंगाजी के सम्पर्क में आने से शुद्ध हो जाते हैं। इसी प्रकार सच्चिदानंद रूप श्रीराम तो नित्य शुद्ध हैं, उनके संसर्ग से कर्म ही शुद्ध हो गए।) जब शुद्ध हुए दो दिन बीत गए तब श्री रामचन्द्रजी प्रीति के साथ गुरुजी से बोले-॥2॥

* नाथ लोग सब निपट दुखारी। कंद मूल फल अंबु आहारी॥
सानुज भरतु सचिव सब माता। देखि मोहि पल जिमि जुग जाता॥3॥

भावार्थ:-हे नाथ! सब लोग यहाँ अत्यन्त दुःखी हो रहे हैं। कंद, मूल, फल और जल का ही आहार करते हैं। भाई शत्रुघ्न सहित भरत को, मंत्रियों को और सब माताओं को देखकर मुझे एक-एक पल युग के समान बीत रहा है॥3॥

* सब समेत पुर धारिअ पाऊ। आपु इहाँ अमरावति राऊ॥
बहुत कहेउँ सब कियउँ ढिठाई। उचित होइ तस करिअ गोसाँई॥4॥

भावार्थ:-अतः सबके साथ आप अयोध्यापुरी को पधारिए (लौट जाइए)। आप यहाँ हैं और राजा अमरावती (स्वर्ग) में हैं (अयोध्या सूनी है)! मैंने बहुत कह डाला, यह सब बड़ी ढिठाई की है। हे गोसाईं! जैसा उचित हो, वैसा ही कीजिए॥4॥

दोहा :

* धर्म सेतु करुनायतन कस न कहु अस राम।
लोग दुखित दिन दुइ दरस देखि लहहुँ बिश्राम॥248॥

भावार्थ:-(वशिष्ठजी ने कहा-) हे राम! तुम धर्म के सेतु और दया के धाम हो, तुम भला ऐसा क्यों न कहो? लोग दुःखी हैं। दो दिन तुम्हारा दर्शन कर शांति लाभ कर लें॥248॥

चौपाई :

* राम बचन सुनि सभय समाजू। जनु जलनिधि महुँ बिकल जहाजू॥
सुनि गुर गिरा सुमंगल मूला। भयउ मनहुँ मारुत अनुकूला॥1॥

भावार्थ:-श्री रामजी के वचन सुनकर सारा समाज भयभीत हो गया। मानो बीच समुद्र में जहाज डगमगा गया हो, परन्तु जब उन्होंने गुरु वशिष्ठजी की श्रेष्ठ कल्याणमूलक वाणी सुनी, तो उस जहाज के लिए मानो हवा अनुकूल हो गई॥1॥

* पावन पयँ तिहुँ काल नहाहीं। जो बिलोकि अघ ओघ नसाहीं॥
मंगलमूरति लोचन भरि भरि। निरखहिं हरषि दंडवत करि करि॥2॥

भावार्थ:-सब लोग पवित्र पयस्विनी नदी में (अथवा पयस्विनी नदी के पवित्र जल में) तीनों समय (सबेरे, दोपहर और सायंकाल) स्नान करते हैं, जिसके दर्शन से ही पापों के समूह नष्ट हो जाते हैं और मंगल मूर्ति श्री रामचन्द्रजी को दण्डवत प्रणाम कर-करके उन्हें नेत्र भर-भरकर देखते हैं॥2॥

* राम सैल बन देखन जाहीं। जहँ सुख सकल सकल दुख नाहीं॥
झरना झरहिं सुधासम बारी। त्रिबिध तापहर त्रिबिध बयारी॥3॥

भावार्थ:-सब श्री रामचन्द्रजी के पर्वत (कामदगिरि) और वन को देखने जाते हैं, जहाँ सभी सुख हैं और सभी दुःखों का अभाव है। झरने अमृत के समान जल झरते हैं और तीन प्रकार की

(शीतल, मंद, सुगंध) हवा तीनों प्रकार के (आध्यात्मिक, आधिभौतिक, आधिदैविक) तापों को हर लेती है॥3॥

* बिटप बेलि तृन अगनित जाती। फल प्रसून पल्लव बहु भाँती॥
सुंदर सिला सुखद तरु छाहीं। जाइ बरनि बन छबि केहि पाहीं॥4॥

भावार्थ:-असंख्य जात के वृक्ष, लताएँ और तृण हैं तथा बहुत तरह के फल, फूल और पत्ते हैं। सुंदर शिलाएँ हैं। वृक्षों की छाया सुख देने वाली है। वन की शोभा किससे वर्णन की जा सकती है?॥4॥

गीताप्रेस गोरखपुर

गीताप्रेस गोरखपुर

वनवासियों द्वारा भरतजी की मंडली का सत्कार, कैकेयी का पश्चाताप

दोहा :

* सरनि सरोरुह जल बिहग कूजत गुंजत भृंग।
बैर बिगत बिहरत बिपिन मृग बिहंग बहुरंग॥249॥

भावार्थ:-तालाबों में कमल खिल रहे हैं, जल के पक्षी कूज रहे हैं, भौंरे गुंजार कर रहे हैं और बहुत रंगों के पक्षी और पशु वन में वैररहित होकर विहार कर रहे हैं॥249॥

चौपाई :

* कोल किरात भिल्ल बनबासी। मधु सुचि सुंदर स्वादु सुधा सी॥
भरि भरि परन पुटीं रचि रूरी। कंद मूल फल अंकुर जूरी॥1॥

भावार्थ:-कोल, किरात और भील आदि वन के रहने वाले लोग पवित्र, सुंदर एवं अमृत के समान स्वादिष्ट मधु (शहद) को सुंदर दोने बनाकर और उनमें भर-भरकर तथा कंद, मूल, फल और अंकुर आदि की जूड़ियों (अँटियों) को॥1॥

* सबहि देहिं करि बिनय प्रनामा। कहि कहि स्वाद भेद गुन नामा॥
देहिं लोग बहु मोल न लेहीं। फेरत राम दोहाई देहीं॥2॥

भावार्थ:-सबको विनय और प्रणाम करके उन चीजों के अलग-अलग स्वाद, भेद (प्रकार), गुण और नाम बता-बताकर देते हैं। लोग उनका बहुत दाम देते हैं, पर वे नहीं लेते और लौटा देने में श्री रामजी की दुहाई देते हैं॥2॥

* कहहिं सनेह मगन मृदु बानी। मानत साधु पेम पहिचानी॥
तुम्ह सुकृती हम नीच निषादा। पावा दरसनु राम प्रसादा॥3॥

भावार्थ:-प्रेम में मग्न हुए वे कोमल वाणी से कहते हैं कि साधु लोग प्रेम को पहचानकर उसका सम्मान करते हैं (अर्थात आप साधु हैं, आप हमारे प्रेम को देखिए, दाम देकर या वस्तुएँ लौटाकर हमारे प्रेम का तिरस्कार न कीजिए)। आप तो पुण्यात्मा

हैं, हम नीच निषाद हैं। श्री रामजी की कृपा से ही हमने आप लोगों के दर्शन पाए हैं॥3॥

* हमहि अगम अति दरसु तुम्हारा। जस मरु धरनि देवधुनि धारा॥
राम कृपाल निषाद नेवाजा। परिजन प्रजउ चहिअ जस राजा॥4॥

भावार्थ:-हम लोगों को आपके दर्शन बड़े ही दुर्लभ हैं, जैसे मरुभूमि के लिए गंगाजी की धारा दुर्लभ है! (देखिए) कृपालु श्री रामचन्द्रजी ने निषाद पर कैसी कृपा की है। जैसे राजा हैं वैसा ही उनके परिवार और प्रजा को भी होना चाहिए॥4॥

दोहा :

* यह जियँ जानि सँकोचु तजि करिअ छोहु लखि नेहु।
हमहि कृतारथ करनलगि फल तृन अंकुर लेहु॥250॥

भावार्थ:-हृदय में ऐसा जानकर संकोच छोड़कर और हमारा प्रेम देखकर कृपा कीजिए और हमको कृतार्थ करने के लिए ही फल, तृण और अंकुर लीजिए॥250॥

चौपाई :

* तुम्ह प्रिय पाहुने बन पगु धारे। सेवा जोगु न भाग हमारे॥
देब काह हम तुम्हहि गोसाँई। ईंधनु पात किरात मिताई॥1॥

भावार्थ:-आप प्रिय पाहुने वन में पधारे हैं। आपकी सेवा करने के योग्य हमारे भाग्य नहीं हैं। हे स्वामी! हम आपको क्या देंगे? भीलों की मित्रता तो बस, ईंधन (लकड़ी) और पत्तों ही तक है॥1॥

* यह हमारि अति बड़ि सेवकाई। लेहिं न बासन बसन चोराई॥

हम जड़ जीव जीव गन घाती। कुटिल कुचाली कुमति कुजाती॥2॥

भावार्थ:-हमारी तो यही बड़ी भारी सेवा है कि हम आपके कपड़े और बर्तन नहीं चुरा लेते। हम लोग जड़ जीव हैं, जीवों की हिंसा करने वाले हैं, कुटिल, कुचाली, कुबुद्धि और कुजाति हैं॥2॥

* पाप करत निसि बासर जाहीं। नहिं पट कटि नहिं पेट अघाहीं॥

सपनेहुँ धरमबुद्धि कस काऊ। यह रघुनंदन दरस प्रभाऊ॥3॥

भावार्थ:-हमारे दिन-रात पाप करते ही बीतते हैं। तो भी न तो हमारी कमर में कपड़ा है और न पेट ही भरते हैं। हममें स्वप्न में भी कभी धर्मबुद्धि कैसी? यह सब तो श्री रघुनाथजी के दर्शन का प्रभाव है॥3॥

* जब तें प्रभु पद पदुम निहारे। मिटे दुसह दुख दोष हमारे॥

बचन सुनत पुरजन अनुरागे। तिन्ह के भाग सराहन लागे॥4॥

भावार्थ:-जब से प्रभु के चरण कमल देखे, तब से हमारे दुःसह दुःख और दोष मिट गए। वनवासियों के वचन सुनकर अयोध्या के लोग प्रेम में भर गए और उनके भाग्य की सराहना करने लगे॥4॥

छन्द :

* लागे सराहन भाग सब अनुराग बचन सुनावहीं

बोलनि मिलनि सिय राम चरन सनेहु लखि सुखु पावहीं॥

नर नारि निदरहिं नेहु निज सुनि कोल भिल्लनि की गिरा।

तुलसी कृपा रघुबंसमनि की लोह लै लौका तिरा॥

भावार्थ:-सब उनके भाग्य की सराहना करने लगे और प्रेम के वचन सुनाने लगे। उन लोगों के बोलने और मिलने का ढंग तथा

श्री सीता-रामजी के चरणों में उनका प्रेम देखकर सब सुख पा रहे हैं। उन कोल-भीलों की वाणी सुनकर सभी नर-नारी अपने प्रेम का निरादर करते हैं (उसे धिक्कार देते हैं)। तुलसीदासजी कहते हैं कि यह रघुवंशमणि श्री रामचन्द्रजी की कृपा है कि लोहा नौका को अपने ऊपर लेकर तैर गया॥

सोरठा :

* बिहरहिं बन चहु ओर प्रतिदिन प्रमुदित लोग सब।
जल ज्यों दादुर मोर भए पीन पावस प्रथम॥251॥

भावार्थ:-सब लोग दिनोंदिन परम आनंदित होते हुए वन में चारों ओर विचरते हैं। जैसे पहली वर्षा के जल से मेंढक और मोर मोटे हो जाते हैं (प्रसन्न होकर नाचते-कूदते हैं)॥251॥

चौपाई :

* पुर जन नारि मगन अति प्रीती। बासर जाहिं पलक सम बीती॥
सीय सासु प्रति बेष बनाई। सादर करइ सरिस सेवकाई॥1॥

भावार्थ:-अयोध्यापुरी के पुरुष और स्त्री सभी प्रेम में अत्यन्त मग्न हो रहे हैं। उनके दिन पल के समान बीत जाते हैं। जितनी सासुएँ थीं, उतने ही वेष (रूप) बनाकर सीताजी सब सासुओं की आदरपूर्वक एक सी सेवा करती हैं॥1॥

* लखा न मरमु राम बिनु काहूँ। माया सब सिय माया माहूँ॥
सीयँ सासु सेवा बस कीन्हीं। तिन्ह लहि सुख सिख आसिष दीन्हीं॥2॥

भावार्थ:-श्री रामचन्द्रजी के सिवा इस भेद को और किसी ने नहीं जाना। सब मायाएँ (पराशक्ति महामाया) श्री सीताजी की माया

में ही हैं। सीताजी ने सासुओं को सेवा से वश में कर लिया। उन्होंने सुख पाकर सीख और आशीर्वाद दिए॥2॥

* लखि सिय सहित सरल दोउ भाई। कुटिल रानि पछितानि अघाई॥
अवनि जमहि जाचति कैकेई। महि न बीचु बिधि मीचु न देई॥3॥

भावार्थ:-सीताजी समेत दोनों भाइयों (श्री राम-लक्ष्मण) को सरल स्वभाव देखकर कुटिल रानी कैकेयी भरपेट पछताई। वह पृथ्वी तथा यमराज से याचना करती है, किन्तु धरती बीच (फटकर समा जाने के लिए रास्ता) नहीं देती और विधाता मौत नहीं देता॥3॥

* लोकहुँ बेद बिदित कबि कहहीं। राम बिमुख थलु नरक न लहहीं॥
यहु संसउ सब के मन माहीं। राम गवनु बिधि अवध कि नाहीं॥4॥

भावार्थ:-लोक और वेद में प्रसिद्ध है और कवि (ज्ञानी) भी कहते हैं कि जो श्री रामजी से विमुख हैं, उन्हें नरक में भी ठौर नहीं मिलती। सबके मन में यह संदेह हो रहा था कि हे विधाता! श्री रामचन्द्रजी का अयोध्या जाना होगा या नहीं॥4॥

दोहा :

* निसि न नीद नहिं भूख दिन भरतु बिकल सुचि सोच।
नीच कीच बिच मगन जस मीनहि सलिल सँकोच॥252॥

भावार्थ:-भरतजी को न तो रात को नींद आती है, न दिन में भूख ही लगती है। वे पवित्र सोच में ऐसे विकल हैं, जैसे नीचे

(तल) के कीचड़ में डूबी हुई मछली को जल की कमी से व्याकुलता होती है॥252॥

चौपाई :

* कीन्हि मातु मिस काल कुचाली। ईति भीति जस पाकत साली॥
केहि बिधि होइ राम अभिषेकू। मोहि अवकलत उपाउ न एकू॥1॥

भावार्थ:-(भरतजी सोचते हैं कि) माता के मिस से काल ने कुचाल की है। जैसे धान के पकते समय ईति का भय आ उपस्थित हो। अब श्री रामचन्द्रजी का राज्याभिषेक किस प्रकार हो, मुझे तो एक भी उपाय नहीं सूझ पड़ता॥1॥

* अवसि फिरहिं गुर आयसु मानी। मुनि पुनि कहब राम रुचि जानी॥
मातु कहेहुँ बहुरहिं रघुराऊ। राम जननि हठ करबि कि काऊ॥2॥

भावार्थ:-गुरुजी की आज्ञा मानकर तो श्री रामजी अवश्य ही अयोध्या को लौट चलेंगे, परन्तु मुनि वशिष्ठजी तो श्री रामचन्द्रजी की रुचि जानकर ही कुछ कहेंगे। (अर्थात वे श्री रामजी की रुचि देखे बिना जाने को नहीं कहेंगे)। माता कौसल्याजी के कहने से भी श्री रघुनाथजी लौट सकते हैं, पर भला, श्री रामजी को जन्म देने वाली माता क्या कभी हठ करेगी?॥2॥

* मोहि अनुचर कर केतिक बाता। तेहि महँ कुसमउ बाम बिधाता॥
जौं हठ करउँ त निपट कुकरमू। हरगिरि तें गुरु सेवक धरमू॥3॥

भावार्थ:-मुझ सेवक की तो बात ही कितनी है? उसमें भी समय खराब है (मेरे दिन अच्छे नहीं हैं) और विधाता प्रतिकूल है। यदि मैं हठ करता हूँ तो यह घोर कुकर्म (अधर्म) होगा, क्योंकि सेवक का धर्म शिवजी के पर्वत कैलास से भी भारी (निबाहने में कठिन) है॥3॥

* एकउ जुगुति न मन ठहरानी। सोचत भरतहि रैनि बिहानी॥
प्रात नहाइ प्रभुहि सिर नाई। बैठत पठए रिषयँ बोलाई॥4॥

भावार्थ:-एक भी युक्ति भरतजी के मन में न ठहरी। सोचते ही सोचते रात बीत गई। भरतजी प्रातःकाल स्नान करके और प्रभु श्री रामचन्द्रजी को सिर नवाकर बैठे ही थे कि ऋषि वशिष्ठजी ने उनको बुलवा भेजा॥4॥

गीताप्रेस गोरखपुर

गीताप्रेस गोरखपुर

श्री वशिष्ठजी का भाषण

दोहा :

* गुर पद कमल प्रनामु करि बैठे आयसु पाइ।
बिप्र महाजन सचिव सब जुरे सभासद आइ॥253॥

भावार्थ:-भरतजी गुरु के चरणकमलों में प्रणाम करके आज्ञा पाकर बैठ गए। उसी समय ब्राह्मण, महाजन, मंत्री आदि सभी सभासद आकर जुट गए॥253॥

चौपाई :

* बोले मुनिबरु समय समाना। सुनहु सभासद भरत सुजाना॥
धरम धुरीन भानुकुल भानू। राजा रामु स्वबस भगवानू॥1॥

भावार्थ:-श्रेष्ठ मुनि वशिष्ठजी समयोचित वचन बोले- हे सभासदों! हे सुजान भरत! सुनो। सूर्यकुल के सूर्य महाराज श्री रामचन्द्र धर्मधुरंधर और स्वतंत्र भगवान हैं॥1॥

* सत्यसंध पालक श्रुति सेतू। राम जनमु जग मंगल हेतू॥
गुर पितु मातु बचन अनुसारी। खल दलु दलन देव हितकारी॥2॥

भावार्थ:-वे सत्य प्रतिज्ञ हैं और वेद की मर्यादा के रक्षक हैं। श्री रामजी का अवतार ही जगत के कल्याण के लिए हुआ है। वे गुरु, पिता और माता के वचनों के अनुसार चलने वाले हैं। दुष्टों के दल का नाश करने वाले और देवताओं के हितकारी हैं॥2॥

* नीति प्रीति परमारथ स्वारथु। कोउ न राम सम जान जथारथु॥
बिधि हरि हरु ससि रबि दिसिपाला। माया जीव करम कुलि काला॥3॥

भावार्थ:-नीति, प्रेम, परमार्थ और स्वार्थ को श्री रामजी के समान यथार्थ (तत्त्व से) कोई नहीं जानता। ब्रह्मा, विष्णु, महादेव, चन्द्र, सूर्य, दिक्पाल, माया, जीव, सभी कर्म और काल,॥3॥

* अहिप महिप जहँ लगि प्रभुताई। जोग सिद्धि निगमागम गाई॥
करि बिचार जियँ देखहु नीकें। राम रजाइ सीस सबही कें॥4॥

भावार्थ:-शेषजी और (पृथ्वी एवं पाताल के अन्यान्य) राजा आदि जहाँ तक प्रभुता है और योग की सिद्धियाँ, जो वेद और शास्त्रों में गाई गई हैं, हृदय में अच्छी तरह विचार कर देखो, (तो यह स्पष्ट दिखाई देगा कि) श्री रामजी की आज्ञा इन सभी के सिर

पर है (अर्थात श्री रामजी ही सबके एक मात्र महान महेश्वर हैं)॥4॥

दोहा :

* राखें राम रजाइ रुख हम सब कर हित होइ।
समुझि सयाने करहु अब सब मिलि संमत सोइ॥254॥

भावार्थ:-अतएव श्री रामजी की आज्ञा और रुख रखने में ही हम सबका हित होगा। (इस तत्त्व और रहस्य को समझकर) अब तुम सयाने लोग जो सबको सम्मत हो, वही मिलकर करो॥254॥

चौपाई :

* सब कहुँ सुखद राम अभिषेकू। मंगल मोद मूल मग एकू॥
केहि बिधि अवध चलहिं रघुराऊ। कहहु समुझि सोइ करिअ उपाऊ॥1॥

भावार्थ:-श्री रामजी का राज्याभिषेक सबके लिए सुखदायक है। मंगल और आनंद का मूल यही एक मार्ग है। (अब) श्री रघुनाथजी अयोध्या किस प्रकार चलें? विचारकर कहो, वही उपाय किया जाए॥1॥

* सब सादर सुनि मुनिबर बानी। नय परमारथ स्वारथ सानी॥
उतरु न आव लोग भए भोरे। तब सिरु नाइ भरत कर जोरे॥2॥

भावार्थ:-मुनिश्रेष्ठ वशिष्ठजी की नीति, परमार्थ और स्वार्थ (लौकिक हित) में सनी हुई वाणी सबने आदरपूर्वक सुनी। पर किसी को कोई उत्तर नहीं आता, सब लोग भोले (विचार शक्ति से रहित) हो गए। तब भरत ने सिर नवाकर हाथ जोड़े॥2॥

* भानुबंस भए भूप घनेरे। अधिक एक तें एक बड़ेरे॥
जनम हेतु सब कहँ कितु माता। करम सुभासुभ देइ बिधाता॥3॥

भावार्थ:-(और कहा-) सूर्यवंश में एक से एक अधिक बड़े बहुत से राजा हो गए हैं। सभी के जन्म के कारण पिता-माता होते हैं और शुभ-अशुभ कर्मों को (कर्मों का फल) विधाता देते हैं॥3॥

* दलि दुख सजइ सकल कल्याना। अस असीस राउरि जगु जाना॥
सो गोसाइँ बिधि गति जेहिं छेंकी। सकइ को टारि टेक जो टेकी॥4॥

भावार्थ:-आपकी आशीष ही एक ऐसी है, जो दुःखों का दमन करके, समस्त कल्याणों को सज देती है, यह जगत जानता है। हे स्वामी! आप ही हैं, जिन्होंने विधाता की गति (विधान) को भी रोक दिया। आपने जो टेक टेक दी (जो निश्चय कर दिया) उसे कौन टाल सकता है?॥4॥

* बूझिअ मोहि उपाउ अब सो सब मोर अभागु।
सुनि सनेहमय बचनगुर उर उमगा अनुरागु॥255॥

भावार्थ:-अब आप मुझसे उपाय पूछते हैं, यह सब मेरा अभाग्य है। भरतजी के प्रेममय वचनों को सुनकर गुरुजी के हृदय में प्रेम उमड़ आया॥255॥

चौपाई :

* तात बात फुरि राम कृपाहीं। राम बिमुख सिधि सपनेहुँ नाहीं॥
सकुचउँ तात कहत एक बाता। अरध तजहिं बुध सरबस जाता॥1।

भावार्थ:-(वे बोले-) हे तात! बात सत्य है, पर है रामजी की कृपा से ही। राम विमुख को तो स्वप्न में भी सिद्धि नहीं मिलती। हे तात! मैं एक बात कहने में सकुचाता हूँ। बुद्धिमान

लोग सर्वस्व जाता देखकर (आधे की रक्षा के लिए) आधा छोड़ दिया करते हैं॥1॥

* तुम्ह कानन गवनहु दोउ भाई। फेरिअहिं लखन सीय रघुराई॥
सुनि सुबचन हरषे दोउ भ्राता। भे प्रमोद परिपूरन गाता॥2॥

भावार्थ:-अतः तुम दोनों भाई (भरत-शत्रुघ्न) वन को जाओ और लक्ष्मण, सीता और श्री रामचन्द्र को लौटा दिया जाए। ये सुंदर वचन सुनकर दोनों भाई हर्षित हो गए। उनके सारे अंग परमानंद से परिपूर्ण हो गए॥2॥

* मन प्रसन्न तन तेजु बिराजा। जनु जिय राउ रामु भए राजा॥
बहुत लाभ लोगन्ह लघु हानी। सम दुख सुख सब रोवहिं रानी॥3॥

भावार्थ:-उनके मन प्रसन्न हो गए। शरीर में तेज सुशोभित हो गया। मानो राजा दशरथजी उठे हों और श्री रामचन्द्रजी राजा हो गए हों! अन्य लोगों को तो इसमें लाभ अधिक और हानि कम प्रतीत हुई, परन्तु रानियों को दुःख-सुख समान ही थे (राम-लक्ष्मण वन में रहें या भरत-शत्रुघ्न, दो पुत्रों का वियोग तो रहेगा ही), यह समझकर वे सब रोने लगीं॥3॥

* कहहिं भरतु मुनि कहा सो कीन्हे। फलु जग जीवन्ह अभिमत दीन्हे॥
कानन करउँ जनम भरि बासू। एहि तें अधिक न मोर सुपासू॥4॥

भावार्थ:-भरतजी कहने लगे- मुनि ने जो कहा, वह करने से जगतभर के जीवों को उनकी इच्छित वस्तु देने का फल होगा। (चौदह वर्ष की कोई अवधि नहीं) मैं जन्मभर वन में वास करूँगा। मेरे लिए इससे बढ़कर और कोई सुख नहीं है॥4॥

दोहा :

* अंतरजामी रामु सिय तुम्ह सरबग्य सुजान।
जौं फुर कहहु त नाथ निज कीजिअ बचनु प्रवान॥256॥

भावार्थ:-श्री रामचन्द्रजी और सीताजी हृदय की जानने वाले हैं और आप सर्वज्ञ तथा सुजान हैं। यदि आप यह सत्य कह रहे हैं तो हे नाथ! अपने वचनों को प्रमाण कीजिए (उनके अनुसार व्यवस्था कीजिए)॥256॥

चौपाई :

* भरत बचन सुनि देखि सनेहू। सभा सहित मुनि भए बिदेहू॥
भरत महा महिमा जलरासी। मुनि मति ठाढ़ि तीर अबला सी॥1॥

भावार्थ:-भरतजी के वचन सुनकर और उनका प्रेम देखकर सारी सभा सहित मुनि वशिष्ठजी विदेह हो गए (किसी को अपने देह की सुधि न रही)। भरतजी की महान महिमा समुद्र है, मुनि की बुद्धि उसके तट पर अबला स्त्री के समान खड़ी है॥1॥

* गा चह पार जतनु हियँ हेरा। पावति नाव न बोहितु बेरा॥
औरु करिहि को भरत बड़ाई। सरसी सीपि कि सिंधु समाई॥2॥

भावार्थ:-वह (उस समुद्र के) पार जाना चाहती है, इसके लिए उसने हृदय में उपाय भी ढूँढे! पर (उसे पार करने का साधन) नाव, जहाज या बेड़ा कुछ भी नहीं पाती। भरतजी की बड़ाई और कौन करेगा? तलैया की सीपी में भी कहीं समुद्र समा सकता है?॥2॥

* भरतु मुनिहि मन भीतर भाए। सहित समाज राम पहिं आए॥

प्रभु प्रनामु करि दीन्ह सुआसनु। बैठे सब सुनि मुनि अनुसासनु॥3॥

भावार्थ:-मुनि वशिष्ठजी की अन्तरात्मा को भरतजी बहुत अच्छे लगे और वे समाज सहित श्री रामजी के पास आए। प्रभु श्री रामचन्द्रजी ने प्रणाम कर उत्तम आसन दिया। सब लोग मुनि की आज्ञा सुनकर बैठ गए॥3॥

* बोले मुनिबरु बचन बिचारी। देस काल अवसर अनुहारी॥
सुनहु राम सरबग्य सुजाना। धरम नीति गुन ग्यान निधाना॥4॥

भावार्थ:-श्रेष्ठ मुनि देश, काल और अवसर के अनुसार विचार करके वचन बोले- हे सर्वज्ञ! हे सुजान! हे धर्म, नीति, गुण और ज्ञान के भण्डार राम! सुनिए-॥4॥

दोहा :

* सब के उर अंतर बसहु जानहु भाउ कुभाउ।
पुरजन जननी भरत हित होइ सो कहिअ उपाउ॥257॥

भावार्थ:-आप सबके हृदय के भीतर बसते हैं और सबके भले-बुरे भाव को जानते हैं, जिसमें पुरवासियों का, माताओं का और भरत का हित हो, वही उपाय बतलाइए॥257॥

चौपाई :

* आरत कहहिं बिचारि न काऊ। सूझ जुआरिहि आपन दाऊ॥
सुनि मुनि बचन कहत रघुराऊ॥ नाथ तुम्हारेहि हाथ उपाऊ॥1॥

भावार्थ:-आर्त (दुःखी) लोग कभी विचारकर नहीं कहते। जुआरी को अपना ही दाँव सूझता है। मुनि के वचन सुनकर श्री रघुनाथजी कहने लगे- हे नाथ! उपाय तो आप ही के हाथ है॥1॥

* सब कर हित रुख राउरि राखें। आयसु किए मुदित फुर भाषें॥
प्रथम जो आयसु मो कहुँ होई। माथें मानि करौं सिख सोई॥2॥

भावार्थ:-आपका रुख रखने में और आपकी आज्ञा को सत्य कहकर प्रसन्नता पूर्वक पालन करने में ही सबका हित है। पहले तो मुझे जो आज्ञा हो, मैं उसी शिक्षा को माथे पर चढ़ाकर करूँ॥2॥

* पुनि जेहि कहँ जस कहब गोसाईं। सो सब भाँति घटिहि सेवकाईं॥
कह मुनि राम सत्य तुम्ह भाषा। भरत सनेहँ बिचारु न राखा॥3॥

भावार्थ:-फिर हे गोसाईं! आप जिसको जैसा कहेंगे वह सब तरह से सेवा में लग जाएगा (आज्ञा पालन करेगा)। मुनि वशिष्ठजी कहने लगे- हे राम! तुमने सच कहा। पर भरत के प्रेम ने विचार को नहीं रहने दिया॥3॥

* तेहि तें कहउँ बहोरि बहोरी। भरत भगति बस भइ मति मोरी॥
मोरें जान भरत रुचि राखी। जो कीजिअ सो सुभ सिव साखी॥4॥

भावार्थ:-इसीलिए मैं बार-बार कहता हूँ, मेरी बुद्धि भरत की भक्ति के वश हो गई है। मेरी समझ में तो भरत की रुचि रखकर जो कुछ किया जाएगा, शिवजी साक्षी हैं, वह सब शुभ ही होगा॥4॥

गीताप्रेस गोरखपुर

श्री राम-भरतादि का संवाद

दोहा :

* भरत बिनय सादर सुनिअ करिअ बिचारु बहोरि।
करब साधुमत लोकमत नृपनय निगम निचोरि॥258॥

भावार्थ:-पहले भरत की विनती आदरपूर्वक सुन लीजिए, फिर उस पर विचार कीजिए। तब साधुमत, लोकमत, राजनीति और वेदों का निचोड़ (सार) निकालकर वैसा ही (उसी के अनुसार) कीजिए॥258॥

चौपाई :

* गुर अनुरागु भरत पर देखी। राम हृदयँ आनंदु बिसेषी॥
भरतहि धरम धुरंधर जानी। निज सेवक तन मानस बानी॥1॥

भावार्थ:-भरतजी पर गुरुजी का स्नेह देखकर श्री रामचन्द्रजी के हृदय में विशेष आनंद हुआ। भरतजी को धर्मधुरंधर और तन, मन, वचन से अपना सेवक जानकर-॥1॥

* बोले गुरु आयस अनुकूला। बचन मंजु मृदु मंगलमूला॥
नाथ सपथ पितु चरन दोहाई। भयउ न भुअन भरत सम भाई॥2॥

भावार्थ:-श्री रामचन्द्रजी गुरु की आज्ञा अनुकूल मनोहर, कोमल और कल्याण के मूल वचन बोले- हे नाथ! आपकी सौगंध और पिताजी के चरणों की दुहाई है (मैं सत्य कहता हूँ कि) विश्वभर में भरत के समान कोई भाई हुआ ही नहीं॥2॥

* जे गुर पद अंबुज अनुरागी। ते लोकहुँ बेदहुँ बड़भागी॥
राउर जा पर अस अनुरागू। को कहि सकइ भरत कर भागू॥3॥

भावार्थ:-जो लोग गुरु के चरणकमलों के अनुरागी हैं, वे लोक में (लौकिक दृष्टि से) भी और वेद में (परमार्थिक दृष्टि से) भी बड़भागी होतें हैं! (फिर) जिस पर आप (गुरु) का ऐसा स्नेह है, उस भरत के भाग्य को कौन कह सकता है?॥3॥

* लखि लघु बंधु बुद्धि सकुचाई। करत बदन पर भरत बड़ाई॥
भरतु कहहिं सोइ किएँ भलाई। अस कहि राम रहे अरगाई॥4॥

भावार्थ:-छोटा भाई जानकर भरत के मुँह पर उसकी बड़ाई करने में मेरी बुद्धि सकुचाती है। (फिर भी मैं तो यही कहूँगा कि) भरत जो कुछ कहें, वही करने में भलाई है। ऐसा कहकर श्री रामचन्द्रजी चुप हो रहे॥4॥

दोहा :

* तब मुनि बोले भरत सन सब सँकोचु तजि तात।
कृपासिंधु प्रिय बंधु सन कहहु हृदय कै बात॥259॥

भावार्थ:-तब मुनि भरतजी से बोले- हे तात! सब संकोच त्यागकर कृपा के समुद्र अपने प्यारे भाई से अपने हृदय की बात कहो॥259॥

चौपाई :

* सुनि मुनि बचन राम रुख पाई। गुरु साहिब अनुकूल अघाई॥
लखि अपनें सिर सबु छरु भारू। कहि न सकहिं कछु करहिं बिचारू॥1॥

भावार्थ:-मुनि के वचन सुनकर और श्री रामचन्द्रजी का रुख पाकर गुरु तथा स्वामी को भरपेट अपने अनुकूल जानकर सारा

बोझ अपने ही ऊपर समझकर भरतजी कुछ कह नहीं सकते। वे विचार करने लगे॥1॥

* पुलकि सरीर सभाँ भए ठाढ़े। नीरज नयन नेह जल बाढ़े॥
कहब मोर मुनिनाथ निबाहा। एहि तें अधिक कहौं मैं काहा॥2॥

भावार्थ:-शरीर से पुलकित होकर वे सभा में खड़े हो गए। कमल के समान नेत्रों में प्रेमाश्रुओं की बाढ़ आ गई। (वे बोले-) मेरा कहना तो मुनिनाथ ने ही निबाह दिया (जो कुछ मैं कह सकता था वह उन्होंने ही कह दिया)। इससे अधिक मैं क्या कहूँ?॥2॥

* मैं जानउँ निज नाथ सुभाऊ। अपराधिहु पर कोह न काऊ॥
मो पर कृपा सनेहु बिसेषी। खेलत खुनिस न कबहूँ देखी॥3॥

भावार्थ:-अपने स्वामी का स्वभाव मैं जानता हूँ। वे अपराधी पर भी कभी क्रोध नहीं करते। मुझ पर तो उनकी विशेष कृपा और स्नेह है। मैंने खेल में भी कभी उनकी रीस (अप्रसन्नता) नहीं देखी॥3॥

* सिसुपन तें परिहरेउँ न संगू। कबहुँ न कीन्ह मोर मन भंगू॥
मैं प्रभु कृपा रीति जियँ जोही। हारेहूँ खेल जितावहिं मोही॥4॥

भावार्थ:-बचपन में ही मैंने उनका साथ नहीं छोड़ा और उन्होंने भी मेरे मन को कभी नहीं तोड़ा (मेरे मन के प्रतिकूल कोई काम नहीं किया)। मैंने प्रभु की कृपा की रीति को हृदय में भलीभाँति देखा है (अनुभव किया है)। मेरे हारने पर भी खेल में प्रभु मुझे जिता देते रहे हैं॥4॥

दोहा :

* महूँ सनेह सकोच बस सनमुख कही न बैन।
दरसन तृपित न आजु लगि प्रेम पिआसे नैन॥260॥

भावार्थ:-मैंने भी प्रेम और संकोचवश कभी सामने मुँह नहीं खोला। प्रेम के प्यासे मेरे नेत्र आज तक प्रभु के दर्शन से तृप्त नहीं हुए॥260॥

चौपाई :

* बिधि न सकेऊ सहि मोर दुलारा। नीच बीचु जननी मिस पारा॥
यहउ कहत मोहि आजु न सोभा। अपनीं समुझि साधु सुचि को भा॥1॥

भावार्थ:-परन्तु विधाता मेरा दुलार न सह सका। उसने नीच माता के बहाने (मेरे और स्वामी के बीच) अंतर डाल दिया। यह भी कहना आज मुझे शोभा नहीं देता, क्योंकि अपनी समझ से कौन साधु और पवित्र हुआ है? (जिसको दूसरे साधु और पवित्र मानें, वही साधु है)॥1॥

* मातु मंदि मैं साधु सुचाली। उर अस आनत कोटि कुचाली॥
फरइ कि कोदव बालि सुसाली। मुकता प्रसव कि संबुक काली॥2॥

भावार्थ:-माता नीच है और मैं सदाचारी और साधु हूँ, ऐसा हृदय में लाना ही करोड़ों दुराचारों के समान है। क्या कोदों की बाली उत्तम धान फल सकती है? क्या काली घोंघी मोती उत्पन्न कर सकती है?॥2॥

* सपनेहूँ दोसक लेसु न काहू। मोर अभाग उदधि अवगाहू॥
बिनु समुझें निज अघ परिपाकू। जारिउँ जायँ जननि कहि काकू॥3॥

भावार्थ:-स्वप्न में भी किसी को दोष का लेश भी नहीं है। मेरा अभाग्य ही अथाह समुद्र है। मैंने अपने पापों का परिणाम समझे बिना ही माता को कटु वचन कहकर व्यर्थ ही जलाया॥3॥

* हृदयँ हेरि हारेउँ सब ओरा। एकहि भाँति भलेहिं भल मोरा॥
गुर गोसाइँ साहिब सिय रामू। लागत मोहि नीक परिनामू॥4॥

भावार्थ:-मैं अपने हृदय में सब ओर खोज कर हार गया (मेरी भलाई का कोई साधन नहीं सूझता)। एक ही प्रकार भले ही (निश्चय ही) मेरा भला है। वह यह है कि गुरु महाराज सर्वसमर्थ हैं और श्री सीता-रामजी मेरे स्वामी हैं। इसी से परिणाम मुझे अच्छा जान पड़ता है॥4॥

दोहा :

* साधु सभाँ गुर प्रभु निकट कहउँ सुथल सतिभाउ।
प्रेम प्रपंचु कि झूठ फुर जानहिं मुनि रघुराउ॥261॥

भावार्थ:-साधुओं की सभा में गुरुजी और स्वामी के समीप इस पवित्र तीर्थ स्थान में मैं सत्य भाव से कहता हूँ। यह प्रेम है या प्रपंच (छल-कपट)? झूठ है या सच? इसे (सर्वज्ञ) मुनि वशिष्ठजी और (अन्तर्यामी) श्री रघुनाथजी जानते हैं॥261॥

चौपाई :

* भूपति मरन प्रेम पनु राखी। जननी कुमति जगतु सबु साखी॥
देखि न जाहिं बिकल महतारीं। जरहिं दुसह जर पुर नर नारीं॥1॥

भावार्थ:-प्रेम के प्रण को निबाहकर महाराज (पिताजी) का मरना और माता की कुबुद्धि, दोनों का सारा संसार साक्षी है। माताएँ व्याकुल हैं, वे देखी नहीं जातीं। अवधपुरी के नर-नारी दुःसह ताप से जल रहे हैं॥1॥

* महीं सकल अनरथ कर मूला। सो सुनि समुझि सहिउँ सब सूला॥
सुनि बन गवनु कीन्ह रघुनाथा। करि मुनि बेष लखन सिय साथा॥2॥
बिनु पानहिन्ह पयादेहि पाएँ। संकरु साखि रहेउँ एहि घाएँ॥
बहुरि निहारि निषाद सनेहू। कुलिस कठिन उर भयउ न बेहू॥3॥

भावार्थ:-मैं ही इन सारे अनर्थों का मूल हूँ, यह सुन और समझकर मैंने सब दुःख सहा है। श्री रघुनाथजी लक्ष्मण और सीताजी के साथ मुनियों का सा वेष धारणकर बिना जूते पहने पाँव-प्यादे (पैदल) ही वन को चले गए, यह सुनकर, शंकरजी साक्षी हैं, इस घाव से भी मैं जीता रह गया (यह सुनते ही मेरे प्राण नहीं निकल गए)! फिर निषादराज का प्रेम देखकर भी इस वज्र से भी कठोर हृदय में छेद नहीं हुआ (यह फटा नहीं)॥2-3॥

*अब सबु आँखिन्ह देखेउँ आई। जिअत जीव जड़ सबइ सहाई॥
जिन्हहि निरखि मग साँपिनि बीछी। तजहिं बिषम बिषु तामस तीछी॥4॥

भावार्थ:-अब यहाँ आकर सब आँखों देख लिया। यह जड़ जीव जीता रह कर सभी सहावेगा। जिनको देखकर रास्ते की साँपिनी और बीछी भी अपने भयानक विष और तीव्र क्रोध को त्याग देती हैं-॥4॥

दोहा :

* तेइ रघुनंदनु लखनु सिय अनहित लागे जाहि।
तासु तनय तजि दुसह दुख दैउ सहावइ काहि॥262॥

भावार्थ:-वे ही श्री रघुनंदन, लक्ष्मण और सीता जिसको शत्रु जान पड़े, उस कैकेयी के पुत्र मुझको छोड़कर दैव दुःसह दुःख और किसे सहावेगा?॥262॥

चौपाई :

* सुनि अति बिकल भरत बर बानी। आरति प्रीति बिनय नय सानी॥
सोक मगन सब सभाँ खभारू। मनहुँ कमल बन परेउ तुसारू॥1॥

भावार्थ:-अत्यन्त व्याकुल तथा दुःख, प्रेम, विनय और नीति में सनी हुई भरतजी की श्रेष्ठ वाणी सुनकर सब लोग शोक में मग्न हो गए, सारी सभा में विषाद छा गया। मानो कमल के वन पर पाला पड़ गया हो॥1॥

* कहि अनेक बिधि कथा पुरानी। भरत प्रबोधु कीन्ह मुनि ग्यानी॥
बोले उचित बचन रघुनंदू। दिनकर कुल कैरव बन चंदू॥2॥

भावार्थ:-तब ज्ञानी मुनि वशिष्ठजी ने अनेक प्रकार की पुरानी (ऐतिहासिक) कथाएँ कहकर भरतजी का समाधान किया। फिर सूर्यकुल रूपी कुमुदवन के प्रफुल्लित करने वाले चन्द्रमा श्री रघुनंदन उचित वचन बोले-॥2॥

* तात जायँ जियँ करहु गलानी। ईस अधीन जीव गति जानी॥
तीनि काल तिभुअन मत मोरें। पुन्यसिलोक तात तर तोरें॥3॥

भावार्थ:-हे तात! तुम अपने हृदय में व्यर्थ ही ग्लानि करते हो। जीव की गति को ईश्वर के अधीन जानो। मेरे मत में (भूत, भविष्य, वर्तमान) तीनों कालों और (स्वर्ग, पृथ्वी और पाताल) तीनों लोकों के सब पुण्यात्मा पुरुष तुम से नीचे हैं॥3॥

* उर आनत तुम्ह पर कुटिलाई। जाइ लोकु परलोकु नसाई॥
दोसु देहिं जननिहि जड़ तेई। जिन्ह गुर साधु सभा नहिं सेई॥4॥

भावार्थ:-हृदय में भी तुम पर कुटिलता का आरोप करने से यह लोक (यहाँ के सुख, यश आदि) बिगड़ जाता है और परलोक भी नष्ट हो जाता है (मरने के बाद भी अच्छी गति नहीं मिलती)। माता कैकेयी को तो वे ही मूर्ख दोष देते हैं, जिन्होंने गुरु और साधुओं की सभा का सेवन नहीं किया है॥4॥

दोहा :

* मिटिहहिं पाप प्रपंच सब अखिल अमंगल भार।
लोक सुजसु परलोक सुखु सुमिरत नामु तुम्हार॥263॥

भावार्थ:-हे भरत! तुम्हारा नाम स्मरण करते ही सब पाप, प्रपंच (अज्ञान) और समस्त अमंगलों के समूह मिट जाएँगे तथा इस लोक में सुंदर यश और परलोक में सुख प्राप्त होगा॥263॥

चौपाई :

* कहउँ सुभाउ सत्य सिव साखी। भरत भूमि रह राउरि राखी॥
तात कुतरक करहु जनि जाएँ। बैर पेम नहिं दुरइ दुराएँ॥1॥

भावार्थ:-हे भरत! मैं स्वभाव से ही सत्य कहता हूँ, शिवजी साक्षी हैं, यह पृथ्वी तुम्हारी ही रखी रह रही है। हे तात! तुम व्यर्थ कुतर्क न करो। वैर और प्रेम छिपाए नहीं छिपते॥1॥

* मुनिगन निकट बिहग मृग जाहीं। बाधक बधिक बिलोकि पराहीं॥
हित अनहित पसु पच्छिउ जाना। मानुष तनु गुन ग्यान निधाना॥2॥

भावार्थ:-पक्षी और पशु मुनियों के पास (बेधड़क) चले जाते हैं, पर हिंसा करने वाले बधिकों को देखते ही भाग जाते हैं। मित्र और शत्रु को पशु-पक्षी भी पहचानते हैं। फिर मनुष्य शरीर तो गुण और ज्ञान का भंडार ही है॥2॥

* तात तुम्हहि मैं जानउँ नीकें। करौं काह असमंजस जीकें॥
राखेउ रायँ सत्य मोहि त्यागी। तनु परिहरेउ पेम पन लागी॥3॥

भावार्थ:-हे तात! मैं तुम्हें अच्छी तरह जानता हूँ। क्या करूँ? जी में बड़ा असमंजस (दुविधा) है। राजा ने मुझे त्याग कर सत्य को रखा और प्रेम-प्रण के लिए शरीर छोड़ दिया॥3॥

* तासु बचन मेटत मन सोचू। तेहि तें अधिक तुम्हार सँकोचू॥
ता पर गुर मोहि आयसु दीन्हा। अवसि जो कहहु चहउँ सोइ कीन्हा॥4॥

भावार्थ:-उनके वचन को मेटते मन में सोच होता है। उससे भी बढ़कर तुम्हारा संकोच है। उस पर भी गुरुजी ने मुझे आज्ञा दी है, इसलिए अब तुम जो कुछ कहो, अवश्य ही मैं वही करना चाहता हूँ॥4॥

दोहा :

* मनु प्रसन्न करि सकुच तजि कहहु करौं सोइ आजु।
सत्यसंध रघुबर बचन सुनि भा सुखी समाजु॥264॥

भावार्थ:-तुम मन को प्रसन्न कर और संकोच को त्याग कर जो कुछ कहो, मैं आज वही करूँ। सत्य प्रतिज्ञ रघुकुल श्रेष्ठ श्री रामजी का यह वचन सुनकर सारा समाज सुखी हो गया॥264॥

चौपाई :

* सुर गन सहित सभय सुरराजू। सोचहिं चाहत होन अकाजू॥

बनत उपाउ करत कछु नाहीं। राम सरन सब गे मन माहीं॥1॥

भावार्थ:-देवगणों सहित देवराज इन्द्र भयभीत होकर सोचने लगे कि अब बना-बनाया काम बिगड़ना ही चाहता है। कुछ उपाय करते नहीं बनता। तब वे सब मन ही मन श्री रामजी की शरण गए॥1॥

*बहुरि बिचारि परस्पर कहहीं। रघुपति भगत भगति बस अहहीं॥
सुधि करि अंबरीष दुरबासा। भे सुर सुरपति निपट निरासा॥2॥

भावार्थ:-फिर वे विचार करके आपस में कहने लगे कि श्री रघुनाथजी तो भक्त की भक्ति के वश हैं। अम्बरीष और दुर्वासा की (घटना) याद करके तो देवता और इन्द्र बिल्कुल ही निराश हो गए॥2॥

* सहे सुरन्ह बहु काल बिषादा। नरहरि किए प्रगट प्रहलादा॥
लगि लगि कान कहहिं धुनि माथा। अब सुर काज भरत के हाथा॥3॥

भावार्थ:-पहले देवताओं ने बहुत समय तक दुःख सहे। तब भक्त प्रह्लाद ने ही नृसिंह भगवान को प्रकट किया था। सब देवता परस्पर कानों से लग-लगकर और सिर धुनकर कहते हैं कि अब (इस बार) देवताओं का काम भरतजी के हाथ है॥3॥

* आन उपाउ न देखिअ देवा। मानत रामु सुसेवक सेवा॥
हियँ सपेम सुमिरहु सब भरतहि। निज गुन सील राम बस करतहि॥4॥

भावार्थ:-हे देवताओं! और कोई उपाय नहीं दिखाई देता। श्री रामजी अपने श्रेष्ठ सेवकों की सेवा को मानते हैं (अर्थात उनके भक्त की कोई सेवा करता है, तो उस पर बहुत प्रसन्न होते हैं)। अतएव अपने गुण और शील से श्री रामजी को वश में करने

वाले भरतजी का ही सब लोग अपने-अपने हृदय में प्रेम सहित स्मरण करो॥4॥

दोहा :

* सुनि सुर मत सुरगुर कहेउ भल तुम्हार बड़ भागु।
सकल सुमंगल मूल जग भरत चरन अनुरागु॥265॥

भावार्थ:-देवताओं का मत सुनकर देवगुरु बृहस्पतिजी ने कहा- अच्छा विचार किया, तुम्हारे बड़े भाग्य हैं। भरतजी के चरणों का प्रेम जगत में समस्त शुभ मंगलों का मूल है॥265॥

चौपाई :

* सीतापति सेवक सेवकाई। कामधेनु सय सरिस सुहाई॥
भरत भगति तुम्हरें मन आई। तजहु सोचु बिधि बात बनाई॥1॥

भावार्थ:-सीतानाथ श्री रामजी के सेवक की सेवा सैकड़ों कामधेनुओं के समान सुंदर है। तुम्हारे मन में भरतजी की भक्ति आई है, तो अब सोच छोड़ दो। विधाता ने बात बना दी॥1॥

* देखु देवपति भरत प्रभाऊ। सजह सुभायँ बिबस रघुराऊ॥
मन थिर करहु देव डरु नाहीं। भरतहि जानि राम परिछाहीं॥2॥

भावार्थ:-हे देवराज! भरतजी का प्रभाव तो देखो। श्री रघुनाथजी सहज स्वभाव से ही उनके पूर्णरूप से वश में हैं। हे देवताओं ! भरतजी को श्री रामचन्द्रजी की परछाईं (परछाईं की भाँति उनका अनुसरण करने वाला) जानकर मन स्थिर करो, डर की बात नहीं है॥2॥

* सुनि सुरगुर सुर संमत सोचू। अंतरजामी प्रभुहि सकोचू॥
निज सिर भारु भरत जियँ जाना। करत कोटि बिधि उर अनुमाना॥3॥

भावार्थ:-देवगुरु बृहस्पतिजी और देवताओं की सम्मति (आपस का विचार) और उनका सोच सुनकर अन्तर्यामी प्रभु श्री रामजी को संकोच हुआ। भरतजी ने अपने मन में सब बोझा अपने ही सिर जाना और वे हृदय में करोड़ों (अनेकों) प्रकार के अनुमान (विचार) करने लगे॥3॥

* करि बिचारु मन दीन्ही ठीका। राम रजायस आपन नीका॥
निज पन तजि राखेउ पनु मोरा। छोहु सनेहु कीन्ह नहिं थोरा॥4॥

भावार्थ:-सब तरह से विचार करके अंत में उन्होंने मन में यही निश्चय किया कि श्री रामजी की आज्ञा में ही अपना कल्याण है। उन्होंने अपना प्रण छोड़कर मेरा प्रण रखा। यह कुछ कम कृपा और स्नेह नहीं किया (अर्थात अत्यन्त ही अनुग्रह और स्नेह किया)॥4॥

दोहा :

* कीन्ह अनुग्रह अमित अति सब बिधि सीतानाथ।
करि प्रनामु बोले भरतु जोरि जलज जुग हाथ॥266॥

भावार्थ:-श्री जानकीनाथजी ने सब प्रकार से मुझ पर अत्यन्त अपार अनुग्रह किया। तदनन्तर भरतजी दोनों करकमलों को जोड़कर प्रणाम करके बोले-॥266॥

चौपाई :

* कहौं कहावौं का अब स्वामी। कृपा अंबुनिधि अंतरजामी॥
गुर प्रसन्न साहिब अनुकूला। मिटी मलिन मन कलपित सूला॥1॥

भावार्थ:-हे स्वामी! हे कृपा के समुद्र! हे अन्तर्यामी! अब मैं (अधिक) क्या कहूँ और क्या कहाऊँ? गुरु महाराज को प्रसन्न

और स्वामी को अनुकूल जानकर मेरे मलिन मन की कल्पित पीड़ा मिट गई॥1॥

* अपडर डरेउँ न सोच समूलें। रबिहि न दोसु देव दिसि भूलें॥
मोर अभागु मातु कुटिलाई। बिधि गति बिषम काल कठिनाई॥2॥

भावार्थ:-मैं मिथ्या डर से ही डर गया था। मेरे सोच की जड़ ही न थी। दिशा भूल जाने पर हे देव! सूर्य का दोष नहीं है। मेरा दुर्भाग्य, माता की कुटिलता, विधाता की टेढ़ी चाल और काल की कठिनता,॥2॥

* पाउ रोपि सब मिलि मोहि घाला। प्रनतपाल पन आपन पाला॥
यह नइ रीति न राउरि होई। लोकहुँ बेद बिदित नहिं गोई॥3॥

भावार्थ:-इन सबने मिलकर पैर रोपकर (प्रण करके) मुझे नष्ट कर दिया था, परन्तु शरणागत के रक्षक आपने अपना (शरणागत की रक्षा का) प्रण निबाहा (मुझे बचा लिया)। यह आपकी कोई नई रीति नहीं है। यह लोक और वेदों में प्रकट है, छिपी नहीं है॥3॥

* जगु अनभल भल एकु गोसाईं। कहिअ होइ भल कासु भलाईं॥
देउ देवतरु सरिस सुभाऊ। सनमुख बिमुख न काहुहि काऊ॥4॥

भावार्थ:-सारा जगत बुरा (करने वाला) हो, किन्तु हे स्वामी! केवल एक आप ही भले (अनुकूल) हों, तो फिर कहिए, किसकी भलाई से भला हो सकता है? हे देव! आपका स्वभाव कल्पवृक्ष के समान है, वह न कभी किसी के सम्मुख (अनुकूल) है, न विमुख (प्रतिकूल)॥4॥

दोहा :

* जाइ निकट पहिचानि तरु छाहँ समनि सब सोच।
मागत अभिमत पाव जग राउ रंकु भल पोच॥267॥

भावार्थ:-उस वृक्ष (कल्पवृक्ष) को पहचानकर जो उसके पास जाए, तो उसकी छाया ही सारी चिंताओं का नाश करने वाली है। राजा-रंक, भले-बुरे, जगत में सभी उससे माँगते ही मनचाही वस्तु पाते हैं॥267॥

चौपाई :

* लखि सब बिधि गुर स्वामि सनेहू। मिटेउ छोभु नहिं मन संदेहू॥
अब करुनाकर कीजिअ सोई। जन हित प्रभु चित छोभु न होई॥1॥

भावार्थ:-गुरु और स्वामी का सब प्रकार से स्नेह देखकर मेरा क्षोभ मिट गया, मन में कुछ भी संदेह नहीं रहा। हे दया की खान! अब वही कीजिए जिससे दास के लिए प्रभु के चित्त में क्षोभ (किसी प्रकार का विचार) न हो॥1॥

* जो सेवकु साहिबहि सँकोची। निज हित चहइ तासु मति पोची॥
सेवक हित साहिब सेवकाई। करै सकल सुख लोभ बिहाई॥2॥

भावार्थ:-जो सेवक स्वामी को संकोच में डालकर अपना भला चाहता है, उसकी बुद्धि नीच है। सेवक का हित तो इसी में है कि वह समस्त सुखों और लोभों को छोड़कर स्वामी की सेवा ही करे॥2॥

* स्वारथु नाथ फिरें सबही का। किएँ रजाइ कोटि बिधि नीका॥
यह स्वारथ परमारथ सारू। सकल सुकृत फल सुगति सिंगारू॥3॥

भावार्थ:-हे नाथ! आपके लौटने में सभी का स्वार्थ है और आपकी आज्ञा पालन करने में करोड़ों प्रकार से कल्याण है। यही स्वार्थ और परमार्थ का सार (निचोड़) है, समस्त पुण्यों का फल और सम्पूर्ण शुभ गतियों का श्रृंगार है॥3॥

* देव एक बिनती सुनि मोरी। उचित होइ तस करब बहोरी॥
तिलक समाजु साजि सबु आना। करिअ सुफल प्रभु जौं मनु माना॥4॥

भावार्थ:-हे देव! आप मेरी एक विनती सुनकर, फिर जैसा उचित हो वैसा ही कीजिए। राजतिलक की सब सामग्री सजाकर लाई गई है, जो प्रभु का मन माने तो उसे सफल कीजिए (उसका उपयोग कीजिए)॥4॥

दोहा :

* सानुज पठइअ मोहि बन कीजिअ सबहि सनाथ।
नतरु फेरिअहिं बंधु दोउ नाथ चलौं मैं साथ॥268॥

भावार्थ:-छोटे भाई शत्रुघ्न समेत मुझे वन में भेज दीजिए और (अयोध्या लौटकर) सबको सनाथ कीजिए। नहीं तो किसी तरह भी (यदि आप अयोध्या जाने को तैयार न हों) हे नाथ! लक्ष्मण और शत्रुघ्न दोनों भाइयों को लौटा दीजिए और मैं आपके साथ चलूँ॥268॥

चौपाई :

* नतरु जाहिं बन तीनिउ भाई। बहुरिअ सीय सहित रघुराई॥
जेहि बिधि प्रभु प्रसन्न मन होई। करुना सागर कीजिअ सोई॥1॥

भावार्थ:-अथवा हम तीनों भाई वन चले जाएँ और हे श्री रघुनाथजी! आप श्री सीताजी सहित (अयोध्या को) लौट जाइए।

हे दयासागर! जिस प्रकार से प्रभु का मन प्रसन्न हो, वही कीजिए॥1॥

* देवँ दीन्ह सबु मोहि अभारू। मोरें नीति न धरम बिचारू॥
कहउँ बचन सब स्वारथ हेतू। रहत न आरत के चित चेतू॥2॥

भावार्थ:-हे देव! आपने सारा भार (जिम्मेवारी) मुझ पर रख दिया। पर मुझमें न तो नीति का विचार है, न धर्म का। मैं तो अपने स्वार्थ के लिए सब बातें कह रहा हूँ। आर्त (दुःखी) मनुष्य के चित्त में चेत (विवेक) नहीं रहता॥2॥

* उतरु देइ सुनि स्वामि रजाई। सो सेवकु लखि लाज लजाई॥
अस मैं अवगुन उदधि अगाधू। स्वामि सनेहँ सराहत साधू॥3॥

भावार्थ:-स्वामी की आज्ञा सुनकर जो उत्तर दे, ऐसे सेवक को देखकर लज्जा भी लजा जाती है। मैं अवगुणों का ऐसा अथाह समुद्र हूँ (कि प्रभु को उत्तर दे रहा हूँ), किन्तु स्वामी (आप) स्नेह वश साधु कहकर मुझे सराहते हैं!॥3॥

* अब कृपाल मोहि सो मत भावा। सकुच स्वामि मन जाइँ न पावा॥
प्रभु पद सपथ कहउँ सति भाऊ। जग मंगल हित एक उपाऊ॥4॥

भावार्थ:-हे कृपालु! अब तो वही मत मुझे भाता है, जिससे स्वामी का मन संकोच न पावे। प्रभु के चरणों की शपथ है, मैं सत्यभाव से कहता हूँ, जगत के कल्याण के लिए एक यही उपाय है॥4॥

दोहा :

* प्रभु प्रसन्न मन सकुच तजि जो जेहि आयसु देब।

सो सिर धरि धरि करिहि सबु मिटिहि अनट अवरेब॥269॥

भावार्थ:-प्रसन्न मन से संकोच त्यागकर प्रभु जिसे जो आज्ञा देंगे, उसे सब लोग सिर चढ़ा-चढ़ाकर (पालन) करेंगे और सब उपद्रव और उलझनें मिट जाएँगी॥269॥

चौपाई :

* भरत बचन सुचि सुनि सुर हरषे। साधु सराहि सुमन सुर बरषे॥
असमंजस बस अवध नेवासी। प्रमुदित मन तापस बनबासी॥1॥

भावार्थ:-भरतजी के पवित्र वचन सुनकर देवता हर्षित हुए और 'साधु-साधु' कहकर सराहना करते हुए देवताओं ने फूल बरसाए। अयोध्या निवासी असमंजस के वश हो गए (कि देखें अब श्री रामजी क्या कहते हैं) तपस्वी तथा वनवासी लोग (श्री रामजी के वन में बने रहने की आशा से) मन में परम आनन्दित हुए॥1॥

* चुपहिं रहे रघुनाथ सँकोची। प्रभु गति देखि सभा सब सोची॥
जनक दूत तेहि अवसर आए। मुनि बसिष्ठँ सुनि बेगि बोलाए॥2॥

भावार्थ:-किन्तु संकोची श्री रघुनाथजी चुप ही रह गए। प्रभु की यह स्थिति (मौन) देख सारी सभा सोच में पड़ गई। उसी समय जनकजी के दूत आए, यह सुनकर मुनि वशिष्ठजी ने उन्हें तुरंत बुलवा लिया॥2॥

* करि प्रनाम तिन्ह रामु निहारे। बेषु देखि भए निपट दुखारे॥
दूतन्ह मुनिबर बूझी बाता। कहहु बिदेह भूप कुसलाता॥3॥

भावार्थ:-उन्होंने (आकर) प्रणाम करके श्री रामचन्द्रजी को देखा। उनका (मुनियों का सा) वेष देखकर वे बहुत ही दुःखी हुए।

मुनिश्रेष्ठ वशिष्ठजी ने दूतों से बात पूछी कि राजा जनक का कुशल समाचार कहो॥3॥

* सुनि सकुचाइ नाइ महि माथा। बोले चरबर जोरें हाथा॥
बूझब राउर सादर साईं। कुसल हेतु सो भयउ गोसाईं॥4॥

भावार्थ:-यह (मुनि का कुशल प्रश्न) सुनकर सकुचाकर पृथ्वी पर मस्तक नवाकर वे श्रेष्ठ दूत हाथ जोड़कर बोले- हे स्वामी! आपका आदर के साथ पूछना, यही हे गोसाईं! कुशल का कारण हो गया॥4॥

दोहा :

* नाहिं त कोसलनाथ कें साथ कुसल गइ नाथ।
मिथिला अवध बिसेष तें जगु सब भयउ अनाथ॥270॥

भावार्थ:-नहीं तो हे नाथ! कुशल-क्षेम तो सब कोसलनाथ दशरथजी के साथ ही चली गई। (उनके चले जाने से) यों तो सारा जगत ही अनाथ (स्वामी के बिना असहाय) हो गया, किन्तु मिथिला और अवध तो विशेष रूप से अनाथ हो गया॥270॥

चौपाई :

* कोसलपति गति सुनि जनकौरा। भे सब लोक सोकबस बौरा॥
जेहिं देखे तेहि समय बिदेहू। नामु सत्य अस लाग न केहू॥1॥

भावार्थ:-अयोध्यानाथ की गति (दशरथजी का मरण) सुनकर जनकपुर वासी सभी लोग शोकवश बावले हो गए (सुध-बुध भूल गए)। उस समय जिन्होंने विदेह को (शोकमग्न) देखा, उनमें से किसी को ऐसा न लगा कि उनका विदेह (देहाभिमानरहित) नाम सत्य है! (क्योंकि देहभिमान से शून्य पुरुष को शोक कैसा?)॥1॥

* रानि कुचालि सुनत नरपालहि। सूझ न कछु जस मनि बिनु ब्यालहि॥
भरत राज रघुबर बनबासू। भा मिथिलेसहि हृदयँ हराँसू॥2॥

भावार्थ:-रानी की कुचाल सुनकर राजा जनकजी को कुछ सूझ न पड़ा, जैसे मणि के बिना साँप को नहीं सूझता। फिर भरतजी को राज्य और श्री रामचन्द्रजी को वनवास सुनकर मिथिलेश्वर जनकजी के हृदय में बड़ा दुःख हुआ॥2॥

* नृप बूझे बुध सचिव समाजू। कहहु बिचारि उचित का आजू॥
समुझि अवध असमंजस दोऊ। चलिअ कि रहिअ न कह कछु कोऊ॥3॥

भावार्थ:-राजा ने विद्वानों और मंत्रियों के समाज से पूछा कि विचारकर कहिए, आज (इस समय) क्या करना उचित है? अयोध्या की दशा समझकर और दोनों प्रकार से असमंजस जानकर 'चलिए या रहिए?' किसी ने कुछ नहीं कहा॥3॥

* नृपहिं धीर धरि हृदयँ बिचारी। पठए अवध चतुर चर चारी॥
बूझि भरत सति भाउ कुभाऊ। आएहु बेगि न होइ लखाऊ॥4॥

भावार्थ:-(जब किसी ने कोई सम्मति नहीं दी) तब राजा ने धीरज धर हृदय में विचारकर चार चतुर गुप्तचर (जासूस) अयोध्या को भेजे (और उनसे कह दिया कि) तुम लोग (श्री रामजी के प्रति) भरतजी के सद्भाव (अच्छे भाव, प्रेम) या दुर्भाव (बुरा भाव, विरोध) का (यथार्थ) पता लगाकर जल्दी लौट आना, किसी को तुम्हारा पता न लगने पावे॥4॥

दोहा :

* गए अवध चर भरत गति बूझि देखि करतूति।

चले चित्रकूटहि भरतु चार चले तेरहूति॥271॥

भावार्थ:-गुप्तचर अवध को गए और भरतजी का ढंग जानकर और उनकी करनी देखकर, जैसे ही भरतजी चित्रकूट को चले, वे तिरहुत (मिथिला) को चल दिए॥271॥

चौपाई :

* दूतन्ह आइ भरत कइ करनी। जनक समाज जथामति बरनी॥
सुनि गुर परिजन सचिव महीपति। भे सब सोच सनेहँ बिकल अति॥1॥

भावार्थ:-(गुप्त) दूतों ने आकर राजा जनकजी की सभा में भरतजी की करनी का अपनी बुद्धि के अनुसार वर्णन किया। उसे सुनकर गुरु, कुटुम्बी, मंत्री और राजा सभी सोच और स्नेह से अत्यन्त व्याकुल हो गए॥1॥

* धरि धीरजु करि भरत बड़ाई। लिए सुभट साहनी बोलाई॥
घर पुर देस राखि रखवारे। हय गय रथ बहु जान सँवारे॥2॥

भावार्थ:-फिर जनकजी ने धीरज धरकर और भरतजी की बड़ाई करके अच्छे योद्धाओं और साहनियों को बुलाया। घर, नगर और देश में रक्षकों को रखकर, घोड़े, हाथी, रथ आदि बहुत सी सवारियाँ सजवाईं॥2॥

* दुघरी साधि चले ततकाला। किए बिश्रामु न मग महिपाला॥
भोरहिं आजु नहाइ प्रयागा। चले जमुन उतरन सबु लागा॥3॥

भावार्थ:-वे दुघड़िया मुहूर्त साधकर उसी समय चल पड़े। राजा ने रास्ते में कहीं विश्राम भी नहीं किया। आज ही सबेरे प्रयागराज में स्नान करके चले हैं। जब सब लोग यमुनाजी उतरने लगे,॥3॥

* खबरि लेन हम पठए नाथा। तिन्ह कहि अस महि नायउ माथा॥
साथ किरात छ सातक दीन्हे। मुनिबर तुरत बिदा चर कीन्हे॥4॥

भावार्थ:-तब हे नाथ! हमें खबर लेने को भेजा। उन्होंने (दूतों ने) ऐसा कहकर पृथ्वी पर सिर नवाया। मुनिश्रेष्ठ वशिष्ठजी ने कोई छह-सात भीलों को साथ देकर दूतों को तुरंत विदा कर दिया॥4॥

दोहा :

* सुनत जनक आगवनु सबु हरषेउ अवध समाजु।
रघुनंदनहि सकोचु बड़ सोच बिबस सुरराजु॥272॥

भावार्थ:-जनकजी का आगमन सुनकर अयोध्या का सारा समाज हर्षित हो गया। श्री रामजी को बड़ा संकोच हुआ और देवराज इन्द्र तो विशेष रूप से सोच के वश में हो गए॥272॥

चौपाई :

* गरइ गलानि कुटिल कैकेई। काहि कहै केहि दूषनु देई॥
अस मन आनि मुदित नर नारी। भयउ बहोरि रहब दिन चारी॥1॥

भावार्थ:-कुटिल कैकेयी मन ही मन ग्लानि (पश्चाताप) से गली जाती है। किससे कहे और किसको दोष दे? और सब नर-नारी मन में ऐसा विचार कर प्रसन्न हो रहे हैं कि (अच्छा हुआ, जनकजी के आने से) चार (कुछ) दिन और रहना हो गया॥1॥

* एहि प्रकार गत बासर सोऊ। प्रात नहान लाग सबु कोऊ॥
करि मज्जनु पूजहिं नर नारी। गनप गौरि तिपुरारि तमारी॥2॥

भावार्थ:-इस तरह वह दिन भी बीत गया। दूसरे दिन प्रातःकाल सब कोई स्नान करने लगे। स्नान करके सब नर-नारी गणेशजी, गौरीजी, महादेवजी और सूर्य भगवान की पूजा करते हैं॥2॥

* रमा रमन पद बंदि बहोरी। बिनवहिं अंजुलि अंचल जोरी॥
राजा रामु जानकी रानी। आनँद अवधि अवध रजधानी॥3॥

भावार्थ:-फिर लक्ष्मीपति भगवान विष्णु के चरणों की वंदना करके, दोनों हाथ जोड़कर, आँचल पसारकर विनती करते हैं कि श्री रामजी राजा हों, जानकीजी रानी हों तथा राजधानी अयोध्या आनंद की सीमा होकर-॥3॥

* सुबस बसउ फिरि सहित समाजा। भरतहि रामु करहुँ जुबराजा॥
एहि सुख सुधाँ सींचि सब काहू। देव देहु जग जीवन लाहू॥4॥

भावार्थ:-फिर समाज सहित सुखपूर्वक बसे और श्री रामजी भरतजी को युवराज बनावें। हे देव! इस सुख रूपी अमृत से सींचकर सब किसी को जगत में जीने का लाभ दीजिए॥4॥

दोहा :

* गुर समाज भाइन्ह सहित राम राजु पुर होउ।
अछत राम राजा अवध मरिअ माग सबु कोउ॥273॥

भावार्थ:-गुरु, समाज और भाइयों समेत श्री रामजी का राज्य अवधपुरी में हो और श्री रामजी के राजा रहते ही हम लोग अयोध्या में मरें। सब कोई यही माँगते हैं॥273॥

चौपाई :

* सुनि सनेहमय पुरजन बानी। निंदहिं जोग बिरति मुनि ग्यानी॥

एहि बिधि नित्यकरम करि पुरजन। रामहि करहिं प्रनाम पुलकि तन॥1॥

भावार्थ:-अयोध्या वासियों की प्रेममयी वाणी सुनकर ज्ञानी मुनि भी अपने योग और वैराग्य की निंदा करते हैं। अवधवासी इस प्रकार नित्यकर्म करके श्री रामजी को पुलकित शरीर हो प्रणाम करते हैं॥1॥

* ऊँच नीच मध्यम नर नारी। लहहिं दरसु निज निज अनुहारी॥
सावधान सबही सनमानहिं। सकल सराहत कृपानिधानहिं॥2॥

भावार्थ:-ऊँच, नीच और मध्यम सभी श्रेणियों के स्त्री-पुरुष अपने-अपने भाव के अनुसार श्री रामजी का दर्शन प्राप्त करते हैं। श्री रामचन्द्रजी सावधानी के साथ सबका सम्मान करते हैं और सभी कृपानिधान श्री रामचन्द्रजी की सराहना करते हैं॥2॥

* लरिकाइहि तें रघुबर बानी। पालत नीति प्रीति पहिचानी॥
सील सकोच सिंधु रघुराऊ। सुमुख सुलोचन सरल सुभाऊ॥3॥

भावार्थ:-श्री रामजी की लड़कपन से ही यह बान है कि वे प्रेम को पहचानकर नीति का पालन करते हैं। श्री रघुनाथजी शील और संकोच के समुद्र हैं। वे सुंदर मुख के (या सबके अनुकूल रहने वाले), सुंदर नेत्र वाले (या सबको कृपा और प्रेम की दृष्टि से देखने वाले) और सरल स्वभाव हैं॥3॥

* कहत राम गुन गन अनुरागे। सब निज भाग सराहन लागे॥
हम सम पुन्य पुंज जग थोरे। जिन्हहि रामु जानत करि मोरे॥4॥

भावार्थ:-श्री रामजी के गुण समूहों को कहते-कहते सब लोग प्रेम में भर गए और अपने भाग्य की सराहना करने लगे कि जगत

में हमारे समान पुण्य की बड़ी पूँजी वाले थोड़े ही हैं, जिन्हें श्री रामजी अपना करके जानते हैं (ये मेरे हैं ऐसा जानते हैं)॥4॥

गीताप्रेस गोरखपुर

जनकजी का पहुँचना, कोल किरातादि की भेंट, सबका परस्पर मिलाप

दोहा :

* प्रेम मगन तेहि समय सब सुनि आवत मिथिलेसु।
सहित सभा संभ्रम उठेउ रबिकुल कमल दिनेसु॥274॥

भावार्थ:-उस समय सब लोग प्रेम में मग्न हैं। इतने में ही मिथिलापति जनकजी को आते हुए सुनकर सूर्यकुल रूपी कमल के सूर्य श्री रामचन्द्रजी सभा सहित आदरपूर्वक जल्दी से उठ खड़े हुए॥274॥

चौपाई :

* भाइ सचिव गुर पुरजन साथा। आगें गवनु कीन्ह रघुनाथा॥
गिरिबरु दीख जनकपति जबहीं। करि प्रनामु रथ त्यागेउ तबहीं॥1॥

भावार्थ:-भाई, मंत्री, गुरु और पुरवासियों को साथ लेकर श्री रघुनाथजी आगे (जनकजी की अगवानी में) चले। जनकजी ने ज्यों ही पर्वत श्रेष्ठ कामदनाथ को देखा, त्यों ही प्रणाम करके उन्होंने रथ छोड़ दिया। (पैदल चलना शुरू कर दिया)॥1॥

* राम दरस लालसा उछाहू। पथ श्रम लेसु कलेसु न काहू॥
मन तहँ जहँ रघुबर बैदेही। बिनु मन तन दुख सुख सुधि केही॥2॥

भावार्थ:-श्री रामजी के दर्शन की लालसा और उत्साह के कारण किसी को रास्ते की थकावट और क्लेश जरा भी नहीं है। मन तो वहाँ है जहाँ श्री राम और जानकीजी हैं। बिना मन के शरीर के सुख-दुःख की सुध किसको हो?॥2॥

* आवत जनकु चले एहि भाँती। सहित समाज प्रेम मति माती॥
आए निकट देखि अनुरागे। सादर मिलन परसपर लागे॥3॥

भावार्थ:-जनकजी इस प्रकार चले आ रहे हैं। समाज सहित उनकी बुद्धि प्रेम में मतवाली हो रही है। निकट आए देखकर सब प्रेम में भर गए और आदरपूर्वक आपस में मिलने लगे॥3॥

* लगे जनक मुनिजन पद बंदन। रिषिन्ह प्रनामु कीन्ह रघुनंदन॥
भाइन्ह सहित रामु मिलि राजहि। चले लवाइ समेत समाजहि॥4॥

भावार्थ:-जनकजी (वशिष्ठ आदि अयोध्यावासी) मुनियों के चरणों की वंदना करने लगे और श्री रामचन्द्रजी ने (शतानंद आदि जनकपुरवासी) ऋषियों को प्रणाम किया। फिर भाइयों समेत श्री रामजी राजा जनकजी से मिलकर उन्हें समाज सहित अपने आश्रम को लिवा चले॥4॥

दोहा :

* आश्रम सागर सांत रस पूरन पावन पाथु।
सेन मनहुँ करुना सरित लिएँ जाहिं रघुनाथु॥275॥

भावार्थ:-श्री रामजी का आश्रम शांत रस रूपी पवित्र जल से परिपूर्ण समुद्र है। जनकजी की सेना (समाज) मानो करुणा

(करुण रस) की नदी है, जिसे श्री रघुनाथजी (उस आश्रम रूपी शांत रस के समुद्र में मिलाने के लिए) लिए जा रहे हैं॥275॥

चौपाई :

* बोरति ग्यान बिराग करारे। बचन ससोक मिलत नद नारे॥
सोच उसास समीर तरंगा। धीरज तट तरुबर कर भंगा॥1॥

भावार्थ:-यह करुणा की नदी (इतनी बढ़ी हुई है कि) ज्ञान-वैराग्य रूपी किनारों को डुबाती जाती है। शोक भरे वचन नद और नाले हैं, जो इस नदी में मिलते हैं और सोच की लंबी साँसें (आहें) ही वायु के झकोरों से उठने वाली तरंगें हैं, जो धैर्य रूपी किनारे के उत्तम वृक्षों को तोड़ रही हैं॥1॥

* बिषम बिषाद तोरावति धारा। भय भ्रम भवँर अबर्त अपारा॥
केवट बुध बिद्या बड़ि नावा। सकहिं न खेइ ऐक नहिं आवा॥2॥

भावार्थ:-भयानक विषाद (शोक) ही उस नदी की तेज धारा है। भय और भ्रम (मोह) ही उसके असंख्य भँवर और चक्र हैं। विद्वान मल्लाह हैं, विद्या ही बड़ी नाव है, परन्तु वे उसे खे नहीं सकते हैं, (उस विद्या का उपयोग नहीं कर सकते हैं) किसी को उसकी अटकल ही नहीं आती है॥2॥

* बनचर कोल किरात बिचारे। थके बिलोकि पथिक हियँ हारे॥
आश्रम उदधि मिली जब जाई। मनहुँ उठेउ अंबुधि अकुलाई॥3॥

भावार्थ:-वन में विचरने वाले बेचारे कोल-किरात ही यात्री हैं, जो उस नदी को देखकर हृदय में हारकर थक गए हैं। यह करुणा नदी जब आश्रम-समुद्र में जाकर मिली, तो मानो वह समुद्र अकुला उठा (खौल उठा)॥3॥

* सोक बिकल दोउ राज समाजा। रहा न ग्यानु न धीरजु लाजा॥
भूप रूप गुन सील सराही। रोवहिं सोक सिंधु अवगाही॥4॥

भावार्थ:-दोनों राज समाज शोक से व्याकुल हो गए। किसी को न ज्ञान रहा, न धीरज और न लाज ही रही। राजा दशरथजी के रूप, गुण और शील की सराहना करते हुए सब रो रहे हैं और शोक समुद्र में डुबकी लगा रहे हैं॥4॥

छन्द :

* अवगाहि सोक समुद्र सोचहिं नारि नर ब्याकुल महा।
दै दोष सकल सरोष बोलहिं बाम बिधि कीन्हो कहा॥
सुर सिद्ध तापस जोगिजन मुनि देखि दसा बिदेह की।
तुलसी न समरथु कोउ जो तरि सकै सरित सनेह की॥

भावार्थ:-शोक समुद्र में डुबकी लगाते हुए सभी स्त्री-पुरुष महान व्याकुल होकर सोच (चिंता) कर रहे हैं। वे सब विधाता को दोष देते हुए क्रोधयुक्त होकर कह रहे हैं कि प्रतिकूल विधाता ने यह क्या किया? तुलसीदासजी कहते हैं कि देवता, सिद्ध, तपस्वी, योगी और मुनिगणों में कोई भी समर्थ नहीं है, जो उस समय विदेह (जनकराज) की दशा देखकर प्रेम की नदी को पार कर सके (प्रेम में मग्न हुए बिना रह सके)।

सोरठा :

* किए अमित उपदेस जहँ तहँ लोगन्ह मुनिबरन्ह।
धीरजु धरिअ नरेस कहेउ बसिष्ठ बिदेह सन॥276॥

भावार्थ:-जहाँ-तहाँ श्रेष्ठ मुनियों ने लोगों को अपरिमित उपदेश दिए और वशिष्ठजी ने विदेह (जनकजी) से कहा- हे राजन्! आप धैर्य धारण कीजिए॥276॥

चौपाई :

* जासु ग्यान रबि भव निसि नासा। बचन किरन मुनि कमल बिकासा॥
तेहि कि मोह ममता निअराई। यह सिय राम सनेह बड़ाई॥1॥

भावार्थ:-जिन राजा जनक का ज्ञान रूपी सूर्य भव (आवागमन) रूपी रात्रि का नाश कर देता है और जिनकी वचन रूपी किरणें मुनि रूपी कमलों को खिला देती हैं (आनंदित करती हैं), क्या मोह और ममता उनके निकट भी आ सकते हैं? यह तो श्री सीता-रामजी के प्रेम की महिमा है! (अर्थात राजा जनक की यह दशा श्री सीता-रामजी के अलौकिक प्रेम के कारण हुई, लौकिक मोह-ममता के कारण नहीं। जो लौकिक मोह-ममता को पार कर चुके हैं, उन पर भी श्री सीता-रामजी का प्रेम अपना प्रभाव दिखाए बिना नहीं रहता)॥1॥

* बिषई साधक सिद्ध सयाने। त्रिबिध जीव जग बेद बखाने॥
राम सनेह सरस मन जासू। साधु सभाँ बड़ आदर तासू॥2॥

भावार्थ:-विषयी, साधक और ज्ञानवान सिद्ध पुरुष- जगत में तीन प्रकार के जीव वेदों ने बताए हैं। इन तीनों में जिसका चित्त श्री रामजी के स्नेह से सरस (सराबोर) रहता है, साधुओं की सभा में उसी का बड़ा आदर होता है॥2॥

* सोह न राम पेम बिनु ग्यानू। करनधार बिनु जिमि जलजानू॥
मुनि बहुबिधि बिदेहु समुझाए। राम घाट सब लोग नहाए॥3॥

भावार्थ:-श्री रामजी के प्रेम के बिना ज्ञान शोभा नहीं देता, जैसे कर्णधार के बिना जहाज। वशिष्ठजी ने विदेहराज (जनकजी) को

बहुत प्रकार से समझाया। तदनंतर सब लोगों ने श्री रामजी के घाट पर स्नान किया॥3॥

* सकल सोक संकुल नर नारी। सो बासरु बीतेउ बिनु बारी॥
पसु खग मृगन्ह न कीन्ह अहारू। प्रिय परिजन कर कौन बिचारू॥4॥

भावार्थ:-स्त्री-पुरुष सब शोक से पूर्ण थे। वह दिन बिना ही जल के बीत गया (भोजन की बात तो दूर रही, किसी ने जल तक नहीं पिया)। पशु-पक्षी और हिरनों तक ने कुछ आहार नहीं किया। तब प्रियजनों एवं कुटुम्बियों का तो विचार ही क्या किया जाए?॥4॥

दोहा :

* दोउ समाज निमिराजु रघुराजु नहाने प्रात।
बैठे सब बट बिटप तर मन मलीन कृस गात॥277॥

भावार्थ:- निमिराज जनकजी और रघुराज रामचन्द्रजी तथा दोनों ओर के समाज ने दूसरे दिन सबेरे स्नान किया और सब बड़ के वृक्ष के नीचे जा बैठे। सबके मन उदास और शरीर दुबले हैं॥277॥

चौपाई :

* जे महिसुर दसरथ पुर बासी। जे मिथिलापति नगर निवासी॥
हंस बंस गुर जनक पुरोधा। जिन्ह जग मगु परमारथु सोधा॥1॥

भावार्थ:-जो दशरथजी की नगरी अयोध्या के रहने वाले और जो मिथिलापति जनकजी के नगर जनकपुर के रहने वाले ब्राह्मण थे तथा सूर्यवंश के गुरु वशिष्ठजी तथा जनकजी के पुरोहित शतानंदजी, जिन्होंने सांसारिक अभ्युदय का मार्ग तथा परमार्थ का मार्ग छान डाला था,॥1॥

* लगे कहन उपदेस अनेका। सहित धरम नय बिरति बिबेका॥

कौसिक कहि कहि कथा पुरानीं। समुझाई सब सभा सुबानीं॥2॥

भावार्थ:-वे सब धर्म, नीति वैराग्य तथा विवेकयुक्त अनेकों उपदेश देने लगे। विश्वामित्रजी ने पुरानी कथाएँ (इतिहास) कह-कहकर सारी सभा को सुंदर वाणी से समझाया॥2॥

* तब रघुनाथ कौसिकहि कहेऊ। नाथ कालि जल बिनु सुब रहेऊ॥

मुनि कह उचित कहत रघुराई। गयउ बीति दिन पहर अढ़ाई॥3॥

भावार्थ:-तब श्री रघुनाथजी ने विश्वामित्रजी से कहा कि हे नाथ! कल सब लोग बिना जल पिए ही रह गए थे। (अब कुछ आहार करना चाहिए)। विश्वामित्रजी ने कहा कि श्री रघुनाथजी उचित ही कह रहे हैं। ढाई पहर दिन (आज भी) बीत गया॥3॥

* रिषि रुख लखि कह तेरहुतिराजू। इहाँ उचित नहिं असन अनाजू॥

कहा भूप भल सबहि सोहाना। पाइ रजायसु चले नहाना॥4॥

भावार्थ:-विश्वामित्रजी का रुख देखकर तिरहुत राज जनकजी ने कहा- यहाँ अन्न खाना उचित नहीं है। राजा का सुंदर कथन सबके मन को अच्छा लगा। सब आज्ञा पाकर नहाने चले॥4॥

दोहा :

* तेहि अवसर फल फूल दल मूल अनेक प्रकार।

लइ आए बनचर बिपुल भरि भरि काँवरि भार॥278॥

भावार्थ:-उसी समय अनेकों प्रकार के बहुत से फल, फूल, पत्ते, मूल आदि बहँगियों और बोझों में भर-भरकर वनवासी (कोल-किरात) लोग ले आए॥278॥

चौपाई :

* कामद भे गिरि राम प्रसादा। अवलोकत अपहरत बिषादा॥
सर सरिता बन भूमि बिभागा। जनु उमगत आनँद अनुरागा॥1॥

भावार्थ:-श्री रामचन्द्रजी की कृपा से सब पर्वत मनचाही वस्तु देने वाले हो गए। वे देखने मात्र से ही दुःखों को सर्वथा हर लेते थे। वहाँ के तालाबों, नदियों, वन और पृथ्वी के सभी भागों में मानो आनंद और प्रेम उमड़ रहा है॥1॥

* बेलि बिटप सब सफल सफूला। बोलत खग मृग अलि अनुकूला॥
तेहि अवसर बन अधिक उछाहू। त्रिबिध समीर सुखद सब काहू॥2॥

भावार्थ:-बेलें और वृक्ष सभी फल और फूलों से युक्त हो गए। पक्षी, पशु और भौंरें अनुकूल बोलने लगे। उस अवसर पर वन में बहुत उत्साह (आनंद) था, सब किसी को सुख देने वाली शीतल, मंद, सुगंध हवा चल रही थी॥2॥

* जाइ न बरनि मनोहरताई। जनु महि करति जनक पहुनाई॥
तब सब लोग नहाइ नहाई। राम जनक मुनि आयसु पाई॥3॥
देखि देखि तरुबर अनुरागे। जहँ तहँ पुरजन उतरन लागे॥
दल फल मूल कंद बिधि नाना। पावन सुंदर सुधा समाना॥4॥

भावार्थ:-वन की मनोहरता वर्णन नहीं की जा सकती, मानो पृथ्वी जनकजी की पहुनाई कर रही है। तब जनकपुर वासी सब लोग नहा-नहाकर श्री रामचन्द्रजी, जनकजी और मुनि की आज्ञा पाकर, सुंदर वृक्षों को देख-देखकर प्रेम में भरकर जहाँ-तहाँ

उतरने लगे। पवित्र, सुंदर और अमृत के समान (स्वादिष्ट) अनेकों प्रकार के पत्ते, फल, मूल और कंद-॥3-4॥

दोहा :

* सादर सब कहँ रामगुर पठए भरि भरि भार।
पूजि पितर सुर अतिथि गुर लगे करन फरहार॥279॥

भावार्थ:-श्री रामजी के गुरु वशिष्ठजी ने सबके पास बोझे भर-भरकर आदरपूर्वक भेजे। तब वे पितर-देवता, अतिथि और गुरु की पूजा करके फलाहार करने लगे॥279॥

चौपाई :

* एहि बिधि बासर बीते चारी। रामु निरखि नर नारि सुखारी॥
दुहु समाज असि रुचि मन माहीं। बिनु सिय राम फिरब भल नाहीं॥1॥

भावार्थ:-इस प्रकार चार दिन बीत गए। श्री रामचन्द्रजी को देखकर सभी नर-नारी सुखी हैं। दोनों समाजों के मन में ऐसी इच्छा है कि श्री सीता-रामजी के बिना लौटना अच्छा नहीं है॥1॥

* सीता राम संग बनबासू। कोटि अमरपुर सरिस सुपासू॥
परिहरि लखन रामु बैदेही। जेहि घरु भाव बाम बिधि तेही॥2॥

भावार्थ:-श्री सीता-रामजी के साथ वन में रहना करोड़ों देवलोकों के (निवास के) समान सुखदायक है। श्री लक्ष्मणजी, श्री रामजी और श्री जानकीजी को छोड़कर जिसको घर अच्छा लगे, विधाता उसके विपरीत हैं॥2॥

* दाहिन दइउ होइ जब सबही। राम समीप बसिअ बन तबही॥
मंदाकिनि मज्जनु तिहु काला। राम दरसु मुद मंगल माला॥3॥

भावार्थ:-जब दैव सबके अनुकूल हो, तभी श्री रामजी के पास वन में निवास हो सकता है। मंदाकिनीजी का तीनों समय स्नान और आनंद तथा मंगलों की माला (समूह) रूप श्री राम का दर्शन,॥3॥

* अटनु राम गिरि बन तापस थल। असनु अमिअ सम कंद मूल फल॥
सुख समेत संबत दुइ साता। पल सम होहिं न जनिअहिं जाता॥4॥

भावार्थ:-श्री रामजी के पर्वत (कामदनाथ), वन और तपस्वियों के स्थानों में घूमना और अमृत के समान कंद, मूल, फलों का भोजन। चौदह वर्ष सुख के साथ पल के समान हो जाएँगे (बीत जाएँगे), जाते हुए जान ही न पड़ेंगे॥4॥

गीताप्रेस गोरखपुर

गीताप्रेस गोरखपुर

कौसल्या सुनयना-संवाद, श्री सीताजी का शील

दोहा :

* एहि सुख जोग न लोग सब कहहिं कहाँ अस भागु।
सहज सुभायँ समाज दुहु राम चरन अनुरागु॥280॥

भावार्थ:-सब लोग कह रहे हैं कि हम इस सुख के योग्य नहीं हैं, हमारे ऐसे भाग्य कहाँ? दोनों समाजों का श्री रामचन्द्रजी के चरणों में सहज स्वभाव से ही प्रेम है॥280॥

चौपाई :

* एहि बिधि सकल मनोरथ करहीं। बचन सप्रेम सुनत मन हरहीं॥
सीय मातु तेहि समय पठाईं। दासीं देखि सुअवसरु आईं॥1॥

भावार्थ:-इस प्रकार सब मनोरथ कर रहे हैं। उनके प्रेमयुक्त वचन सुनते ही (सुनने वालों के) मनों को हर लेते हैं। उसी समय सीताजी की माता श्री सुनयनाजी की भेजी हुई दासियाँ (कौसल्याजी आदि के मिलने का) सुंदर अवसर देखकर आईं॥1॥

* सावकास सुनि सब सिय सासू। आयउ जनकराज रनिवासू॥
कौसल्याँ सादर सनमानी। आसन दिए समय सम आनी॥2॥

भावार्थ:-उनसे यह सुनकर कि सीता की सब सासुएँ इस समय फुरसत में हैं, जनकराज का रनिवास उनसे मिलने आया। कौसल्याजी ने आदरपूर्वक उनका सम्मान किया और समयोचित आसन लाकर दिए॥2॥

* सीलु सनेहु सकल दुहु ओरा। द्रवहिं देखि सुनि कुलिस कठोरा॥
पुलक सिथिल तन बारि बिलोचन। महि नख लिखन लगीं सब सोचन॥3॥

भावार्थ:-दोनों ओर सबके शील और प्रेम को देखकर और सुनकर कठोर वज्र भी पिघल जाते हैं। शरीर पुलकित और शिथिल हैं और नेत्रों में (शोक और प्रेम के) आँसू हैं। सब अपने (पैरों के) नखों से जमीन कुरेदने और सोचने लगीं॥3॥

* सब सिय राम प्रीति की सि मूरति। जनु करुना बहु बेष बिसूरति॥
सीय मातु कह बिधि बुधि बाँकी। जो पय फेनु फोर पबि टाँकी॥4॥

भावार्थ:-सभी श्री सीता-रामजी के प्रेम की मूर्ति सी हैं, मानो स्वयं करुणा ही बहुत से वेष (रूप) धारण करके विसूर रही हो (दुःख कर रही हो)। सीताजी की माता सुनयनाजी ने कहा- विधाता की बुद्धि बड़ी टेढ़ी है, जो दूध के फेन जैसी कोमल वस्तु को वज्र की टाँकी से फोड़ रहा है (अर्थात जो अत्यन्त कोमल और निर्दोष हैं उन पर विपत्ति पर विपत्ति ढहा रहा है)॥4॥

दोहा :

* सुनिअ सुधा देखिअहिं गरल सब करतूति कराल।
जहँ तहँ काक उलूक बक मानस सकृत मराल॥281॥

भावार्थ:-अमृत केवल सुनने में आता है और विष जहाँ-तहाँ प्रत्यक्ष देखे जाते हैं। विधाता की सभी करतूतें भयंकर हैं। जहाँ-तहाँ कौए, उल्लू और बगुले ही (दिखाई देते) हैं, हंस तो एक मानसरोवर में ही हैं॥281॥

चौपाई :

* सुनि ससोच कह देबि सुमित्रा। बिधि गति बड़ि बिपरीत बिचित्रा॥
जो सृजि पालइ हरइ बहोरी। बालकेलि सम बिधि मति भोरी॥1॥

भावार्थ:-यह सुनकर देवी सुमित्राजी शोक के साथ कहने लगीं- विधाता की चाल बड़ी ही विपरीत और विचित्र है, जो सृष्टि

को उत्पन्न करके पालता है और फिर नष्ट कर डालता है। विधाता की बुद्धि बालकों के खेल के समान भोली (विवेक शून्य) है॥1॥

* कौसल्या कह दोसु न काहू। करम बिबस दुख सुख छति लाहू॥
कठिन करम गति जान बिधाता। जो सुभ असुभ सकल फल दाता॥2॥

भावार्थ:-कौसल्याजी ने कहा- किसी का दोष नहीं है, दुःख-सुख, हानि-लाभ सब कर्म के अधीन हैं। कर्म की गति कठिन (दुर्विज्ञेय) है, उसे विधाता ही जानता है, जो शुभ और अशुभ सभी फलों का देने वाला है॥2॥

* ईस रजाइ सीस सबही कें। उतपति थिति लय बिषहु अमी कें॥
देबि मोह बस सोचिअ बादी। बिधि प्रपंचु अस अचल अनादी॥3॥

भावार्थ:-ईश्वर की आज्ञा सभी के सिर पर है। उत्पत्ति, स्थिति (पालन) और लय (संहार) तथा अमृत और विष के भी सिर पर है (ये सब भी उसी के अधीन हैं)। हे देवि! मोहवश सोच करना व्यर्थ है। विधाता का प्रपंच ऐसा ही अचल और अनादि है॥3॥

* भूपति जिअब मरब उर आनी। सोचिअ सखि लखि निज हित हानी॥
सीय मातु कह सत्य सुबानी। सुकृती अवधि अवधपति रानी॥4॥

भावार्थ:-महाराज के मरने और जीने की बात को हृदय में याद करके जो चिन्ता करती हैं, वह तो हे सखी! हम अपने ही हित की हानि देखकर (स्वार्थवश) करती हैं। सीताजी की माता ने कहा- आपका कथन उत्तम है और सत्य है। आप पुण्यात्माओं के

सीमा रूप अवधपति (महाराज दशरथजी) की ही तो रानी हैं। (फिर भला, ऐसा क्यों न कहेंगी)॥4॥

दोहा :

* लखनु रामु सिय जाहुँ बन भल परिनाम न पोचु।
गहबरि हियँ कह कौसिला मोहि भरत कर सोचु॥282॥

भावार्थ:-कौसल्याजी ने दुःख भरे हृदय से कहा- श्री राम, लक्ष्मण और सीता वन में जाएँ, इसका परिणाम तो अच्छा ही होगा, बुरा नहीं। मुझे तो भरत की चिन्ता है॥282॥

चौपाई :

* ईस प्रसाद असीस तुम्हारी। सुत सुतबधू देवसरि बारी॥
राम सपथ मैं कीन्हि न काऊ। सो करि कहउँ सखी सति भाऊ॥1॥

भावार्थ:-ईश्वर के अनुग्रह और आपके आशीर्वाद से मेरे (चारों) पुत्र और (चारों) बहुएँ गंगाजी के जल के समान पवित्र हैं। हे सखी! मैंने कभी श्री राम की सौगंध नहीं की, सो आज श्री राम की शपथ करके सत्य भाव से कहती हूँ-॥1॥

* भरत सील गुन बिनय बड़ाई। भायप भगति भरोस भलाई॥
कहत सारदहु कर मति हीचे। सागर सीप कि जाहिं उलीचे॥2॥

भावार्थ:-भरत के शील, गुण, नम्रता, बड़प्पन, भाईपन, भक्ति, भरोसे और अच्छेपन का वर्णन करने में सरस्वतीजी की बुद्धि भी हिचकती है। सीप से कहीं समुद्र उलीचे जा सकते हैं?॥2॥

* जानउँ सदा भरत कुलदीपा। बार बार मोहि कहेउ महीपा॥
कसें कनकु मनि पारिखि पाएँ। पुरुष परिखिअहिं समयँ सुभाएँ॥3॥

भावार्थ:-मैं भरत को सदा कुल का दीपक जानती हूँ। महाराज ने भी बार-बार मुझे यही कहा था। सोना कसौटी पर कसे जाने पर और रत्न पारखी (जौहरी) के मिलने पर ही पहचाना जाता है। वैसे ही पुरुष की परीक्षा समय पड़ने पर उसके स्वभाव से ही (उसका चरित्र देखकर) हो जाती है॥3॥

* अनुचित आजु कहब अस मोरा। सोक सनेहँ सयानप थोरा॥
सुनि सुरसरि सम पावनि बानी। भईं सनेह बिकल सब रानी॥4॥

भावार्थ:-किन्तु आज मेरा ऐसा कहना भी अनुचित है। शोक और स्नेह में सयानापन (विवेक) कम हो जाता है (लोग कहेंगे कि मैं स्नेहवश भरत की बड़ाई कर रही हूँ)। कौसल्याजी की गंगाजी के समान पवित्र करने वाली वाणी सुनकर सब रानियाँ स्नेह के मारे विकल हो उठीं॥4॥

दोहा :

* कौसल्या कह धीर धरि सुनहु देबि मिथिलेसि।
को बिबेकनिधि बल्लभहि तुम्हहि सकइ उपदेसि॥283॥

भावार्थ:-कौसल्याजी ने फिर धीरज धरकर कहा- हे देवी मिथिलेश्वरी! सुनिए, ज्ञान के भंडार श्री जनकजी की प्रिया आपको कौन उपदेश दे सकता है?॥283॥

चौपाई :

* रानि राय सन अवसरु पाई। अपनी भाँति कहब समुझाई॥
रखिअहिं लखनु भरतु गवनहिं बन। जौं यह मत मानै महीप मन॥1॥

भावार्थ:-हे रानी! मौका पाकर आप राजा को अपनी ओर से जहाँ तक हो सके समझाकर कहिएगा कि लक्ष्मण को घर रख

लिया जाए और भरत वन को जाएँ। यदि यह राय राजा के मन में (ठीक) जँच जाए,॥1॥

* तौ भल जतनु करब सुबिचारी। मोरें सोचु भरत कर भारी॥
गूढ़ सनेह भरत मन माहीं। रहें नीक मोहि लागत नाहीं॥2॥

भावार्थ:-तो भलीभाँति खूब विचारकर ऐसा यत्न करें। मुझे भरत का अत्यधिक सोच है। भरत के मन में गूढ़ प्रेम है। उनके घर रहने में मुझे भलाई नहीं जान पड़ती (यह डर लगता है कि उनके प्राणों को कोई भय न हो जाए)॥2॥

* लखि सुभाउ सुनि सरल सुबानी। सब भइ मगन करुन रस रानी॥
नभ प्रसून झरि धन्य धन्य धुनि। सिथिल सनेहँ सिद्ध जोगी मुनि॥3॥

भावार्थ:-कौसल्याजी का स्वभाव देखकर और उनकी सरल और उत्तम वाणी को सुनकर सब रानियाँ करुण रस में निमग्न हो गईं। आकाश से पुष्प वर्षा की झड़ी लग गई और धन्य-धन्य की ध्वनि होने लगी। सिद्ध, योगी और मुनि स्नेह से शिथिल हो गए॥3॥

* सबु रनिवासु बिथकि लखि रहेऊ। तब धरि धीर सुमित्राँ कहेऊ॥
देबि दंड जुग जामिनि बीती। राम मातु सुनि उठी सप्रीती॥4॥

भावार्थ:-सारा रनिवास देखकर थकित रह गया (निस्तब्ध हो गया), तब सुमित्राजी ने धीरज करके कहा कि हे देवी! दो घड़ी रात बीत गई है। यह सुनकर श्री रामजी की माता कौसल्याजी प्रेमपूर्वक उठीं-॥4॥

* दोहाथ बेगि पाउ धारिअ थलहि कह सनेहँ सतिभाय।

हमरें तौ अब ईस गति कै मिथिलेस सहाय॥284॥

भावार्थ:-और प्रेम सहित सद्भाव से बोलीं- अब आप शीघ्र डेरे को पधारिए। हमारे तो अब ईश्वर ही गति हैं, अथवा मिथिलेश्वर जनकजी सहायक हैं॥284॥

चौपाई :

* लखि सनेह सुनि बचन बिनीता। जनकप्रिया गह पाय पुनीता॥
देबि उचित असि बिनय तुम्हारी। दसरथ घरिनि राम महतारी॥1॥

भावार्थ:-कौसल्याजी के प्रेम को देखकर और उनके विनम्र वचनों को सुनकर जनकजी की प्रिय पत्नी ने उनके पवित्र चरण पकड़ लिए और कहा- हे देवी! आप राजा दशरथजी की रानी और श्री रामजी की माता हैं। आपकी ऐसी नम्रता उचित ही है॥1॥

* प्रभु अपने नीचहु आदरहीं। अगिनि धूम गिरि सिर तिनु धरहीं॥
सेवकु राउ करम मन बानी। सदा सहाय महेसु भवानी॥2॥

भावार्थ:-प्रभु अपने निज जनों का भी आदर करते हैं। अग्नि धुएँ को और पर्वत तृण (घास) को अपने सिर पर धारण करते हैं। हमारे राजा तो कर्म, मन और वाणी से आपके सेवक हैं और सदा सहायक तो श्री महादेव-पार्वतीजी हैं॥2॥

* रउरे अंग जोगु जग को है। दीप सहाय की दिनकर सोहै॥
रामु जाइ बनु करि सुर काजू। अचल अवधपुर करिहहिं राजू॥3॥

भावार्थ:-आपका सहायक होने योग्य जगत में कौन है? दीपक सूर्य की सहायता करने जाकर कहीं शोभा पा सकता है? श्री

रामचन्द्रजी वन में जाकर देवताओं का कार्य करके अवधपुरी में अचल राज्य करेंगे॥3॥

* अमर नाग नर राम बाहुबल। सुख बसिहहिं अपनें अपनें थल॥
यह सब जागबलिक कहि राखा। देबि न होइ मुधा मुनि भाषा॥4॥

भावार्थ:-देवता, नाग और मनुष्य सब श्री रामचन्द्रजी की भुजाओं के बल पर अपने-अपने स्थानों (लोकों) में सुखपूर्वक बसेंगे। यह सब याज्ञवल्क्य मुनि ने पहले ही से कह रखा है। हे देवि! मुनि का कथन व्यर्थ (झूठा) नहीं हो सकता॥4॥

दोहा :

* अस कहि पग परि प्रेम अति सिय हित बिनय सुनाइ।
सिय समेत सियमातु तब चली सुआयसु पाइ॥285॥

भावार्थ:-ऐसा कहकर बड़े प्रेम से पैरों पड़कर सीताजी (को साथ भेजने) के लिए विनती करके और सुंदर आज्ञा पाकर तब सीताजी समेत सीताजी की माता डेरे को चलीं॥285॥

चौपाई :

* प्रिय परिजनहि मिली बैदेही। जो जेहि जोगु भाँति तेहि तेही॥
तापस बेष जानकी देखी। भा सबु बिकल बिषाद बिसेषी॥1॥

भावार्थ:-जानकीजी अपने प्यारे कुटुम्बियों से- जो जिस योग्य था, उससे उसी प्रकार मिलीं। जानकीजी को तपस्विनी के वेष में देखकर सभी शोक से अत्यन्त व्याकुल हो गए॥1॥

* जनक राम गुर आयसु पाई। चले थलहि सिय देखी आई॥
लीन्हि लाइ उर जनक जानकी। पाहुनि पावन प्रेम प्रान की॥2॥

भावार्थ:-जनकजी श्री रामजी के गुरु वशिष्ठजी की आज्ञा पाकर डेरे को चले और आकर उन्होंने सीताजी को देखा। जनकजी ने अपने पवित्र प्रेम और प्राणों की पाहुनी जानकीजी को हृदय से लगा लिया॥2॥

* उर उमगेउ अंबुधि अनुरागू। भयउ भूप मनु मनहुँ पयागू॥
सिय सनेह बटु बाढ़त जोहा। ता पर राम पेम सिसु सोहा॥3॥

भावार्थ:-उनके हृदय में (वात्सल्य) प्रेम का समुद्र उमड़ पड़ा। राजा का मन मानो प्रयाग हो गया। उस समुद्र के अंदर उन्होंने (आदि शक्ति) सीताजी के (अलौकिक) स्नेह रूपी अक्षयवट को बढ़ते हुए देखा। उस (सीताजी के प्रेम रूपी वट) पर श्री रामजी का प्रेम रूपी बालक (बाल रूप धारी भगवान) सुशोभित हो रहा है॥3॥

* चिरजीवी मुनि ग्यान बिकल जनु। बूड़त लहेउ बाल अवलंबनु॥
मोह मगन मति नहिं बिदेह की। महिमा सिय रघुबर सनेह की॥4॥

भावार्थ:-जनकजी का ज्ञान रूपी चिरंजीवी (मार्कण्डेय) मुनि व्याकुल होकर डूबते-डूबते मानो उस श्री राम प्रेम रूपी बालक का सहारा पाकर बच गया। वस्तुतः (ज्ञानिशिरोमणि) विदेहराज की बुद्धि मोह में मग्न नहीं है। यह तो श्री सीता-रामजी के प्रेम की महिमा है (जिसने उन जैसे महान ज्ञानी के ज्ञान को भी विकल कर दिया)॥4॥

दोहा :

* सिय पितु मातु सनेह बस बिकल न सकी सँभारि।
धरनिसुताँ धीरजु धरेउ समउ सुधरमु बिचारि॥286॥

भावार्थ:-पिता-माता के प्रेम के मारे सीताजी ऐसी विकल हो गईं कि अपने को सँभाल न सकीं। (परन्तु परम धैर्यवती) पृथ्वी की

कन्या सीताजी ने समय और सुंदर धर्म का विचार कर धैर्य धारण किया॥286॥

चौपाई :

* तापस बेष जनक सिय देखी। भयउ पेमु परितोषु बिसेषी॥
पुत्रि पबित्र किए कुल दोऊ। सुजस धवल जगु कह सबु कोऊ॥1॥

भावार्थ:-सीताजी को तपस्विनी वेष में देखकर जनकजी को विशेष प्रेम और संतोष हुआ। (उन्होंने कहा-) बेटी! तूने दोनों कुल पवित्र कर दिए। तेरे निर्मल यश से सारा जगत उज्ज्वल हो रहा है, ऐसा सब कोई कहते हैं॥1॥

* जिति सुरसरि कीरति सरि तोरी। गवनु कीन्ह बिधि अंड करोरी॥
गंग अवनि थल तीनि बड़ेरे। एहिं किए साधु समाज घनेरे॥2॥

भावार्थ:-तेरी कीर्ति रूपी नदी देवनदी गंगाजी को भी जीतकर (जो एक ही ब्रह्माण्ड में बहती है) करोड़ों ब्रह्माण्डों में बह चली है। गंगाजी ने तो पृथ्वी पर तीन ही स्थानों (हरिद्वार, प्रयागराज और गंगासागर) को बड़ा (तीर्थ) बनाया है। पर तेरी इस कीर्ति नदी ने तो अनेकों संत समाज रूपी तीर्थ स्थान बना दिए हैं॥2॥

* पितु कह सत्य सनेहँ सुबानी। सीय सकुच महुँ मनहुँ समानी॥
पुनि पितु मातु लीन्हि उर लाई। सिख आसिष हित दीन्हि सुहाई॥3॥

भावार्थ:-पिता जनकजी ने तो स्नेह से सच्ची सुंदर वाणी कही, परन्तु अपनी बड़ाई सुनकर सीताजी मानो संकोच में समा गईं। पिता-माता ने उन्हें फिर हृदय से लगा लिया और हितभरी सुंदर सीख और आशीष दिया॥3॥

* कहति न सीय सकुचि मन माहीं। इहाँ बसब रजनीं भल नाहीं॥
लखि रुख रानि जनायउ राऊ। हृदयँ सराहत सीलु सुभाऊ॥4॥

भावार्थ:-सीताजी कुछ कहती नहीं हैं, परन्तु सकुचा रही हैं कि रात में (सासुओं की सेवा छोड़कर) यहाँ रहना अच्छा नहीं है। रानी सुनयनाजी ने जानकीजी का रुख देखकर (उनके मन की बात समझकर) राजा जनकजी को जना दिया। तब दोनों अपने हृदयों में सीताजी के शील और स्वभाव की सराहना करने लगे॥4॥

गीताप्रेस गोरखपुर

जनक-सुनयना संवाद, भरतजी की महिमा

दोहा :

* बार बार मिलि भेंटि सिय बिदा कीन्हि सनमानि।
कही समय सिर भरत गति रानि सुबानि सयानि॥287॥

भावार्थ:-राजा-रानी ने बार-बार मिलकर और हृदय से लगाकर तथा सम्मान करके सीताजी को विदा किया। चतुर रानी ने समय पाकर राजा से सुंदर वाणी में भरतजी की दशा का वर्णन किया॥287॥

चौपाई :

* सुनि भूपाल भरत ब्यवहारू। सोन सुगंध सुधा ससि सारू॥

मूदे सजन नयन पुलके तन। सुजसु सराहन लगे मुदित मन॥1॥

भावार्थ:-सोने में सुगंध और (समुद्र से निकली हुई) सुधा में चन्द्रमा के सार अमृत के समान भरतजी का व्यवहार सुनकर राजा ने (प्रेम विह्वल होकर) अपने (प्रेमाश्रुओं के) जल से भरे नेत्रों को मूँद लिया (वे भरतजी के प्रेम में मानो ध्यानस्थ हो गए)। वे शरीर से पुलकित हो गए और मन में आनंदित होकर भरतजी के सुंदर यश की सराहना करने लगे॥1॥

* सावधान सुनु सुमुखि सुलोचनि। भरत कथा भव बंध बिमोचनि॥
धरम राजनय ब्रह्मबिचारू। इहाँ जथामति मोर प्रचारू॥2॥

भावार्थ:-(वे बोले-) हे सुमुखि! हे सुनयनी! सावधान होकर सुनो। भरतजी की कथा संसार के बंधन से छुड़ाने वाली है। धर्म, राजनीति और ब्रह्मविचार- इन तीनों विषयों में अपनी बुद्धि के अनुसार मेरी (थोड़ी-बहुत) गति है (अर्थात इनके संबंध में मैं कुछ जानता हूँ)॥2॥

* सो मति मोरि भरत महिमाही। कहै काह छलि छुअति न छाँही॥
बिधि गनपति अहिपति सिव सारद। कबि कोबिद बुध बुद्धि बिसारद॥3॥

भावार्थ:-वह (धर्म, राजनीति और ब्रह्मज्ञान में प्रवेश रखने वाली) मेरी बुद्धि भरतजी की महिमा का वर्णन तो क्या करे, छल करके भी उसकी छाया तक को नहीं छू पाती! ब्रह्माजी, गणेशजी, शेषजी, महादेवजी, सरस्वतीजी, कवि, ज्ञानी, पण्डित और बुद्धिमान-॥3॥

* भरत चरित कीरति करतूती। धरम सील गुन बिमल बिभूती॥
समुझत सुनत सुखद सब काहू। सुचि सुरसरि रुचि निदर सुधाहू॥4॥

भावार्थ:-सब किसी को भरतजी के चरित्र, कीर्ति, करनी, धर्म, शील, गुण और निर्मल ऐश्वर्य समझने में और सुनने में सुख देने वाले हैं और पवित्रता में गंगाजी का तथा स्वाद (मधुरता) में अमृत का भी तिरस्कार करने वाले हैं॥4॥

दोहा :

* निरवधि गुन निरुपम पुरुषु भरतु भरत सम जानि।
कहिअ सुमेरु कि सेर सम कबिकुल मति सकुचानि॥288॥

भावार्थ:-भरतजी असीम गुण सम्पन्न और उपमारहित पुरुष हैं। भरतजी के समान बस, भरतजी ही हैं, ऐसा जानो। सुमेरु पर्वत को क्या सेर के बराबर कह सकते हैं? इसलिए (उन्हें किसी पुरुष के साथ उपमा देने में) कवि समाज की बुद्धि भी सकुचा गई!॥288॥

चौपाई :

* अगम सबहि बरनत बरबरनी। जिमि जलहीन मीन गमु धरनी॥
भरत अमित महिमा सुनु रानी। जानहिं रामु न सकहिं बखानी॥1॥

भावार्थ:-हे श्रेष्ठ वर्णवाली! भरतजी की महिमा का वर्णन करना सभी के लिए वैसे ही अगम है जैसे जलरहित पृथ्वी पर मछली का चलना। हे रानी! सुनो, भरतजी की अपरिमित महिमा को

एक श्री रामचन्द्रजी ही जानते हैं, किन्तु वे भी उसका वर्णन नहीं कर सकते॥1॥

* बरनि सप्रेम भरत अनुभाऊ। तिय जिय की रुचि लखि कह राऊ॥
बहुरहिं लखनु भरतु बन जाहीं। सब कर भल सब के मन माहीं॥2॥

भावार्थ:-इस प्रकार प्रेमपूर्वक भरतजी के प्रभाव का वर्णन करके, फिर पत्नी के मन की रुचि जानकर राजा ने कहा- लक्ष्मणजी लौट जाएँ और भरतजी वन को जाएँ, इसमें सभी का भला है और यही सबके मन में है॥2॥

* देबि परन्तु भरत रघुबर की। प्रीति प्रतीति जाइ नहिं तरकी॥
भरतु अवधि सनेह ममता की। जद्यपि रामु सीम समता की॥3॥

भावार्थ:-परन्तु हे देवि! भरतजी और श्री रामचन्द्रजी का प्रेम और एक-दूसरे पर विश्वास, बुद्धि और विचार की सीमा में नहीं आ सकता। यद्यपि श्री रामचन्द्रजी समता की सीमा हैं, तथापि भरतजी प्रेम और ममता की सीमा हैं॥3॥

* परमारथ स्वारथ सुख सारे। भरत न सपनेहुँ मनहुँ निहारे॥
साधन सिद्धि राम पग नेहू। मोहि लखि परत भरत मत एहू॥4॥

भावार्थ:-(श्री रामचन्द्रजी के प्रति अनन्य प्रेम को छोड़कर) भरतजी ने समस्त परमार्थ, स्वार्थ और सुखों की ओर स्वप्न में भी मन से भी नहीं ताका है। श्री रामजी के चरणों का प्रेम ही उनका साधन है और वही सिद्धि है। मुझे तो भरतजी का बस, यही एक मात्र सिद्धांत जान पड़ता है॥4॥

दोहा :

* भोरेहुँ भरत न पेलिहहिं मनसहुँ राम रजाइ।
करिअ न सोचु सनेह बस कहेउ भूप बिलखाइ॥289॥

भावार्थ:-राजा ने बिलखकर (प्रेम से गद्गद होकर) कहा- भरतजी भूलकर भी श्री रामचन्द्रजी की आज्ञा को मन से भी नहीं टालेंगे। अतः स्नेह के वश होकर चिंता नहीं करनी चाहिए॥289॥

चौपाई :

* राम भरत गुन गनत सप्रीती। निसि दंपतिहि पलक सम बीती॥
राज समाज प्रात जुग जागे। न्हाइ न्हाइ सुर पूजन लागे॥1॥

भावार्थ:-श्री रामजी और भरतजी के गुणों की प्रेमपूर्वक गणना करते (कहते-सुनते) पति-पत्नी को रात पलक के समान बीत गई। प्रातःकाल दोनों राजसमाज जागे और नहा-नहाकर देवताओं की पूजा करने लगे॥1॥

* गे नहाइ गुर पहिं रघुराई। बंदि चरन बोले रुख पाई॥
नाथ भरतु पुरजन महतारी। सोक बिकल बनबास दुखारी॥2॥

भावार्थ:-श्री रघुनाथजी स्नान करके गुरु वशिष्ठजी के पास गए और चरणों की वंदना करके उनका रुख पाकर बोले- हे नाथ! भरत, अवधपुर वासी तथा माताएँ, सब शोक से व्याकुल और वनवास से दुःखी हैं॥2॥

* सहित समाज राउ मिथिलेसू। बहुत दिवस भए सहत कलेसू॥
उचित होइ सोइ कीजिअ नाथा। हित सबही कर रौरें हाथा॥3॥

भावार्थ:-मिथिलापति राजा जनकजी को भी समाज सहित क्लेश सहते बहुत दिन हो गए, इसलिए हे नाथ! जो उचित हो वही कीजिए। आप ही के हाथ सभी का हित है॥3॥

* अस कहि अति सकुचे रघुराऊ। मुनि पुल के लखि सीलु सुभाऊ॥
तुम्ह बिनु राम सकल सुख साजा। नरक सरिस दुहु राज समाजा॥4॥

भावार्थ:-ऐसा कहकर श्री रघुनाथजी अत्यन्त ही सकुचा गए। उनका शील स्वभाव देखकर (प्रेम और आनंद से) मुनि वशिष्ठजी पुलकित हो गए। (उन्होंने खुलकर कहा-) हे राम! तुम्हारे बिना (घर-बार आदि) सम्पूर्ण सुखों के साज दोनों राजसमाजों को नरक के समान हैं॥4॥

दोहा :

* प्रान-प्रान के जीव के जिव सुख के सुख राम।
तुम्ह तजि तात सोहात गृह जिन्हहि तिन्हहि बिधि बाम॥290॥

भावार्थ:-हे राम! तुम प्राणों के भी प्राण, आत्मा के भी आत्मा और सुख के भी सुख हो। हे तात! तुम्हें छोड़कर जिन्हें घर सुहाता है, उन्हे विधाता विपरीत है॥290॥

चौपाई :

* सो सुखु करमु धरमु जरि जाऊ। जहँ न राम पद पंकज भाऊ॥
जोगु कुजोगु ग्यानु अग्यानू। जहँ नहिं राम प्रेम परधानू॥1॥

भावार्थ:-जहाँ श्री राम के चरण कमलों में प्रेम नहीं है, वह सुख, कर्म और धर्म जल जाए, जिसमें श्री राम प्रेम की प्रधानता नहीं है, वह योग कुयोग है और वह ज्ञान अज्ञान है॥1॥

* तुम्ह बिनु दुखी सुखी तुम्ह तेहीं। तुम्ह जानहु जिय जो जेहि केहीं॥
राउर आयसु सिर सबही कें। बिदित कृपालहि गति सब नीकें॥2॥

भावार्थ:-तुम्हारे बिना ही सब दुःखी हैं और जो सुखी हैं वे तुम्हीं से सुखी हैं। जिस किसी के जी में जो कुछ है तुम सब जानते हो। आपकी आज्ञा सभी के सिर पर है। कृपालु (आप) को सभी की स्थिति अच्छी तरह मालूम है॥2॥

गीताप्रेस गोरखपुर

जनक-वशिष्ठादि संवाद, इंद्र की चिंता, सरस्वती का इंद्र को समझाना

* आपु आश्रमहि धारिअ पाऊ। भयउ सनेह सिथिल मुनिराऊ॥
करि प्रनामु तब रामु सिधाए। रिषि धरि धीर जनक पहिं आए॥3॥

भावार्थ:-अतः आप आश्रम को पधारिए। इतना कह मुनिराज स्नेह से शिथिल हो गए। तब श्री रामजी प्रणाम करके चले गए और ऋषि वशिष्ठजी धीरज धरकर जनकजी के पास आए॥3॥

* राम बचन गुरु नृपहि सुनाए। सील सनेह सुभायँ सुहाए॥
महाराज अब कीजिअ सोई। सब कर धरम सहित हित होई॥4॥

भावार्थ:-गुरुजी ने श्री रामचन्द्रजी के शील और स्नेह से युक्त स्वभाव से ही सुंदर वचन राजा जनकजी को सुनाए (और कहा-)

हे महाराज! अब वही कीजिए, जिसमें सबका धर्म सहित हित हो॥4॥

दोहा :

* ग्यान निधान सुजान सुचि धरम धीर नरपाल।
तुम्ह बिनु असमंजस समन को समरथ एहि काल॥291॥

भावार्थ:-हे राजन्! तुम ज्ञान के भंडार, सुजान, पवित्र और धर्म में धीर हो। इस समय तुम्हारे बिना इस दुविधा को दूर करने में और कौन समर्थ है?॥291॥

चौपाई :

* सुनि मुनि बचन जनक अनुरागे। लखि गति ग्यानु बिरागु बिरागे॥
सिथिल सनेहँ गुनत मन माहीं। आए इहाँ कीन्ह भल नाहीं॥1॥

भावार्थ:-मुनि वशिष्ठजी के वचन सुनकर जनकजी प्रेम में मग्न हो गए। उनकी दशा देखकर ज्ञान और वैराग्य को भी वैराग्य हो गया (अर्थात उनके ज्ञान-वैराग्य छूट से गए)। वे प्रेम से शिथिल हो गए और मन में विचार करने लगे कि हम यहाँ आए, यह अच्छा नहीं किया॥1॥

* रामहि रायँ कहेउ बन जाना। कीन्ह आपु प्रिय प्रेम प्रवाना॥
हम अब बन तें बनहि पठाई। प्रमुदित फिरब बिबेक बड़ाई॥2॥

भावार्थ:-राजा दशरथजी ने श्री रामजी को वन जाने के लिए कहा और स्वयं अपने प्रिय के प्रेम को प्रमाणित (सच्चा) कर दिया (प्रिय वियोग में प्राण त्याग दिए), परन्तु हम अब इन्हें वन से (और गहन) वन को भेजकर अपने विवेक की बड़ाई में आनन्दित होते हुए लौटेंगे (कि हमें जरा भी मोह नहीं है, हम

श्री रामजी को वन में छोड़कर चले आए, दशरथजी की तरह मरे नहीं!)॥2॥

* तापस मुनि महिसुर सुनि देखी। भए प्रेम बस बिकल बिसेषी॥
समउ समुझि धरि धीरजु राजा। चले भरत पहिं सहित समाजा॥3॥

भावार्थ:-तपस्वी, मुनि और ब्राह्मण यह सब सुन और देखकर प्रेमवश बहुत ही व्याकुल हो गए। समय का विचार करके राजा जनकजी धीरज धरकर समाज सहित भरतजी के पास चले॥3॥

* भरत आइ आगें भइ लीन्हे। अवसर सरिस सुआसन दीन्हे॥
तात भरत कह तेरहुति राऊ। तुम्हहि बिदित रघुबीर सुभाऊ॥4॥

भावार्थ:-भरतजी ने आकर उन्हें आगे होकर लिया (सामने आकर उनका स्वागत किया) और समयानुकूल अच्छे आसन दिए। तिरहुतराज जनकजी कहने लगे- हे तात भरत! तुमको श्री रामजी का स्वभाव मालूम ही है॥4॥

दोहा :

* राम सत्यब्रत धरम रत सब कर सीलु सनेहु।
संकट सहत सकोच बस कहिअ जो आयसु देहु ॥292॥

भावार्थ:-श्री रामचन्द्रजी सत्यव्रती और धर्मपरायण हैं, सबका शील और स्नेह रखने वाले हैं, इसीलिए वे संकोचवश संकट सह रहे हैं, अब तुम जो आज्ञा दो, वह उनसे कही जाए॥292॥

चौपाई :

* सुनि तन पुलकि नयन भरि बारी। बोले भरतु धीर धरि भारी॥

प्रभु प्रिय पूज्य पिता सम आपू। कुलगुरु सम हित माय न बापू॥1॥

भावार्थ:-भरतजी यह सुनकर पुलकित शरीर हो नेत्रों में जल भरकर बड़ा भारी धीरज धरकर बोले- हे प्रभो! आप हमारे पिता के समान प्रिय और पूज्य हैं और कुल गुरु श्री वशिष्ठजी के समान हितैषी तो माता-पिता भी नहीं है॥1॥

* कौसिकादि मुनि सचिव समाजू। ग्यान अंबुनिधि आपुनु आजू॥
सिसु सेवकु आयसु अनुगामी। जानि मोहि सिख देइअ स्वामी॥2॥

भावार्थ:-विश्वामित्रजी आदि मुनियों और मंत्रियों का समाज है और आज के दिन ज्ञान के समुद्र आप भी उपस्थित हैं। हे स्वामी! मुझे अपना बच्चा, सेवक और आज्ञानुसार चलने वाला समझकर शिक्षा दीजिए॥2॥

* एहिं समाज थल बूझब राउर। मौन मलिन मैं बोलब बाउर॥
छोटे बदन कहउँ बड़ि बाता। छमब तात लखि बाम बिधाता॥3॥

भावार्थ:-इस समाज और (पुण्य) स्थल में आप (जैसे ज्ञानी और पूज्य) का पूछना! इस पर यदि मैं मौन रहता हूँ तो मलिन समझा जाऊँगा और बोलना पागलपन होगा तथापि मैं छोटे मुँह बड़ी बात कहता हूँ। हे तात! विधाता को प्रतिकूल जानकर क्षमा कीजिएगा॥3॥

* आगम निगम प्रसिद्ध पुराना। सेवाधरमु कठिन जगु जाना॥
स्वामि धरम स्वारथहि बिरोधू। बैरु अंध प्रेमहि न प्रबोधू॥4॥

भावार्थ:-वेद, शास्त्र और पुराणों में प्रसिद्ध है और जगत जानता है कि सेवा धर्म बड़ा कठिन है। स्वामी धर्म में (स्वामी के प्रति कर्तव्य पालन में) और स्वार्थ में विरोध है (दोनों एक साथ नहीं निभ सकते) वैर अंधा होता है और प्रेम को ज्ञान नहीं रहता (मैं

स्वार्थवश कहूँगा या प्रेमवश, दोनों में ही भूल होने का भय है)॥4॥

दोहा :

* राखि राम रुख धरमु ब्रतु पराधीन मोहि जानि।
सब कें संमत सर्ब हित करिअ प्रेमु पहिचानि॥293॥

भावार्थ:-अतएव मुझे पराधीन जानकर (मुझसे न पूछकर) श्री रामचन्द्रजी के रुख (रुचि), धर्म और (सत्य के) व्रत को रखते हुए, जो सबके सम्मत और सबके लिए हितकारी हो आप सबका प्रेम पहचानकर वही कीजिए॥293॥

चौपाई :

* भरत बचन सुनि देखि सुभाऊ। सहित समाज सराहत राऊ॥
सुगम अगम मृदु मंजु कठोरे। अरथु अमित अति आखर थोरे॥1॥

भावार्थ:-भरतजी के वचन सुनकर और उनका स्वभाव देखकर समाज सहित राजा जनक उनकी सराहना करने लगे। भरतजी के वचन सुगम और अगम, सुंदर, कोमल और कठोर हैं। उनमें अक्षर थोड़े हैं, परन्तु अर्थ अत्यन्त अपार भरा हुआ है॥1॥

* ज्यों मुखु मुकुर मुकुरु निज पानी। गहि न जाइ अस अदभुत बानी॥
भूप भरतू मुनि सहित समाजू। गे जहँ बिबुध कुमुद द्विजराजू॥2॥

भावार्थ:-जैसे मुख (का प्रतिबिम्ब) दर्पण में दिखता है और दर्पण अपने हाथ में है, फिर भी वह (मुख का प्रतिबिम्ब) पकड़ा नहीं जाता, इसी प्रकार भरतजी की यह अद्भुत वाणी भी पकड़ में नहीं आती (शब्दों से उसका आशय समझ में नहीं आता)। (किसी से कुछ उत्तर देते नहीं बना) तब राजा जनकजी, भरतजी तथा

मुनि वशिष्ठजी समाज के साथ वहाँ गए, जहाँ देवता रूपी कुमुदों को खिलाने वाले (सुख देने वाले) चन्द्रमा श्री रामचन्द्रजी थे॥2॥

* सुनि सुधि सोच बिकल सब लोगा। मनहुँ मीनगन नव जल जोगा॥
देवँ प्रथम कुलगुर गति देखी। निरखि बिदेह सनेह बिसेषी॥3॥

भावार्थ:-यह समाचार सुनकर सब लोग सोच से व्याकुल हो गए, जैसे नए (पहली वर्षा के) जल के संयोग से मछलियाँ व्याकुल होती हैं। देवताओं ने पहले कुलगुरु वशिष्ठजी की (प्रेमविह्वल) दशा देखी, फिर विदेहजी के विशेष स्नेह को देखा,॥3॥

* राम भगतिमय भरतु निहारे। सुर स्वारथी हहरि हियँ हारे॥
सब कोउ राम प्रेममय पेखा। भए अलेख सोच बस लेखा॥4॥

भावार्थ:-और तब श्री रामभक्ति से ओतप्रोत भरतजी को देखा। इन सबको देखकर स्वार्थी देवता घबड़ाकर हृदय में हार मान गए (निराश हो गए)। उन्होंने सब किसी को श्री राम प्रेम में सराबोर देखा। इससे देवता इतने सोच के वश हो गए कि जिसका कोई हिसाब नहीं॥4॥

दोहा :

* रामु सनेह सकोच बस कह ससोच सुरराजु।
रचहु प्रपंचहि पंच मिलि नाहिं त भयउ अकाजु॥294॥

भावार्थ:-देवराज इन्द्र सोच में भरकर कहने लगे कि श्री रामचन्द्रजी तो स्नेह और संकोच के वश में हैं, इसलिए सब लोग मिलकर कुछ प्रपंच (माया) रचो, नहीं तो काम बिगड़ा (ही समझो)॥294॥

चौपाई :

* सुरन्ह सुमिरि सारदा सराही। देबि देव सरनागत पाही॥
फेरि भरत मति करि निज माया। पालु बिबुध कुल करि छल छाया॥1॥

भावार्थ:-देवताओं ने सरस्वती का स्मरण कर उनकी सराहना (स्तुति) की और कहा- हे देवी! देवता आपके शरणागत हैं, उनकी रक्षा कीजिए। अपनी माया रचकर भरतजी की बुद्धि को फेर दीजिए और छल की छाया कर देवताओं के कुल का पालन (रक्षा) कीजिए॥1॥

* बिबुध बिनय सुनि देबि सयानी। बोली सुर स्वारथ जड़ जानी॥
मो सन कहहु भरत मति फेरू। लोचन सहस न सूझ सुमेरू॥2॥

भावार्थ:-देवताओं की विनती सुनकर और देवताओं को स्वार्थ के वश होने से मूर्ख जानकर बुद्धिमती सरस्वतीजी बोलीं- मुझसे कह रहे हो कि भरतजी की मति पलट दो! हजार नेत्रों से भी तुमको सुमेरू नहीं सूझ पड़ता!॥2॥

* बिधि हरि हर माया बड़ि भारी। सोउ न भरत मति सकइ निहारी॥
सो मति मोहि कहत करु भोरी। चंदिनि कर कि चंडकर चोरी॥3॥

भावार्थ:-ब्रह्मा, विष्णु और महेश की माया बड़ी प्रबल है! किन्तु वह भी भरतजी की बुद्धि की ओर ताक नहीं सकती। उस बुद्धि को, तुम मुझसे कह रहे हो कि, भोली कर दो (भुलावे में डाल दो)! अरे! चाँदनी कहीं प्रचंड किरण वाले सूर्य को चुरा सकती है?॥3॥

* भरत हृदयँ सिय राम निवासू। तहँ कि तिमिर जहँ तरनि प्रकासू॥
अस कहि सारद गइ बिधि लोका। बिबुध बिकल निसि मानहुँ कोका॥4॥

भावार्थ:-भरतजी के हृदय में श्री सीता-रामजी का निवास है। जहाँ सूर्य का प्रकाश है, वहाँ कहीं अँधेरा रह सकता है? ऐसा कहकर सरस्वतीजी ब्रह्मलोक को चली गईं। देवता ऐसे व्याकुल हुए जैसे रात्रि में चकवा व्याकुल होता है॥4॥

दोहा :

* सुर स्वारथी मलीन मन कीन्ह कुमंत्र कुठाटु।
रचि प्रपंच माया प्रबल भय भ्रम अरति उचाटु॥295॥

भावार्थ:-मलिन मन वाले स्वार्थी देवताओं ने बुरी सलाह करके बुरा ठाट (षड्यन्त्र) रचा। प्रबल माया-जाल रचकर भय, भ्रम, अप्रीति और उच्चाटन फैला दिया॥295॥

चौपाई :

* करि कुचालि सोचत सुरराजू। भरत हाथ सबु काजु अकाजू॥
गए जनकु रघुनाथ समीपा। सनमाने सब रबिकुल दीपा॥1॥

भावार्थ:-कुचाल करके देवराज इन्द्र सोचने लगे कि काम का बनना-बिगड़ना सब भरतजी के हाथ है। इधर राजा जनकजी (मुनि वशिष्ठ आदि के साथ) श्री रघुनाथजी के पास गए। सूर्यकुल के दीपक श्री रामचन्द्रजी ने सबका सम्मान किया,॥1॥

* समय समाज धरम अबिरोधा। बोले तब रघुबंस पुरोधा॥
जनक भरत संबादु सुनाई। भरत कहाउति कही सुहाई॥2॥

भावार्थ:-तब रघुकुल के पुरोहित वशिष्ठजी समय, समाज और धर्म के अविरोधी (अर्थात अनुकूल) वचन बोले। उन्होंने पहले जनकजी और भरतजी का संवाद सुनाया। फिर भरतजी की कही हुई सुंदर बातें कह सुनाईं॥2॥

* तात राम जस आयसु देहू। सो सबु करै मोर मत एहू॥
सुनि रघुनाथ जोरि जुग पानी। बोले सत्य सरल मृदु बानी॥3॥

भावार्थ:-(फिर बोले-) हे तात राम! मेरा मत तो यह है कि तुम जैसी आज्ञा दो, वैसा ही सब करें! यह सुनकर दोनों हाथ जोड़कर श्री रघुनाथजी सत्य, सरल और कोमल वाणी बोले-॥3॥

* बिद्यमान आपुनि मिथिलेसू। मोर कहब सब भाँति भदेसू॥
राउर राय रजायसु होई। राउरि सपथ सही सिर सोई॥4॥

भावार्थ:-आपके और मिथिलेश्वर जनकजी के विद्यमान रहते मेरा कुछ कहना सब प्रकार से भद्दा (अनुचित) है। आपकी और महाराज की जो आज्ञा होगी, मैं आपकी शपथ करके कहता हूँ वह सत्य ही सबको शिरोधार्य होगी॥4॥

गीताप्रेस गोरखपुर

गीताप्रेस गोरखपुर

श्री राम-भरत संवाद

दोहा :

* राम सपथ सुनि मुनि जनकु सकुचे सभा समेत।

सकल बिलोकत भरत मुखु बनइ न ऊतरु देत॥296॥

भावार्थ:-श्री रामचन्द्रजी की शपथ सुनकर सभा समेत मुनि और जनकजी सकुचा गए (स्तम्भित रह गए)। किसी से उत्तर देते नहीं बनता, सब लोग भरतजी का मुँह ताक रहे हैं॥296॥

चौपाई :

* सभा सकुच बस भरत निहारी। राम बंधु धरि धीरजु भारी॥
कुसमउ देखि सनेहु सँभारा। बढ़त बिंधि जिमि घटज निवारा॥1॥

भावार्थ:-भरतजी ने सभा को संकोच के वश देखा। रामबंधु (भरतजी) ने बड़ा भारी धीरज धरकर और कुसमय देखकर अपने (उमड़ते हुए) प्रेम को संभाला, जैसे बढ़ते हुए विन्ध्याचल को अगस्त्यजी ने रोका था॥1॥

* सोक कनकलोचन मति छोनी। हरी बिमल गुन गन जगजोनी॥
भरत बिबेक बराहँ बिसाला। अनायास उधरी तेहि काला॥2॥

भावार्थ:-शोक रूपी हिरण्याक्ष ने (सारी सभा की) बुद्धि रूपी पृथ्वी को हर लिया जो विमल गुण समूह रूपी जगत की योनि (उत्पन्न करने वाली) थी। भरतजी के विवेक रूपी विशाल वराह (वराह रूप धारी भगवान) ने (शोक रूपी हिरण्याक्ष को नष्ट कर) बिना ही परिश्रम उसका उद्धार कर दिया!॥2॥

* करि प्रनामु सब कहँ कर जोरे। रामु राउ गुर साधु निहोरे॥
छमब आजु अति अनुचित मोरा। कहउँ बदन मृदु बचन कठोरा॥3॥

भावार्थ:-भरतजी ने प्रणाम करके सबके प्रति हाथ जोड़े तथा श्री रामचन्द्रजी, राजा जनकजी, गुरु वशिष्ठजी और साधु-संत सबसे विनती की और कहा- आज मेरे इस अत्यन्त अनुचित बर्ताव को

क्षमा कीजिएगा। मैं कोमल (छोटे) मुख से कठोर (धृष्टतापूर्ण) वचन कह रहा हूँ॥3॥

* हियँ सुमिरी सारदा सुहाई। मानस तें मुख पंकज आई॥
बिमल बिबेक धरम नय साली। भरत भारती मंजु मराली॥4॥

भावार्थ:-फिर उन्होंने हृदय में सुहावनी सरस्वती का स्मरण किया। वे मानस से (उनके मन रूपी मानसरोवर से) उनके मुखारविंद पर आ विराजीं। निर्मल विवेक, धर्म और नीति से युक्त भरतजी की वाणी सुंदर हंसिनी (के समान गुण-दोष का विवेचन करने वाली) है॥4॥

दोहा :

* निरखि बिबेक बिलोचनन्हि सिथिल सनेहँ समाजु।
करि प्रनामु बोले भरतु सुमिरि सीय रघुराजु॥297॥

भावार्थ:-विवेक के नेत्रों से सारे समाज को प्रेम से शिथिल देख, सबको प्रणाम कर, श्री सीताजी और श्री रघुनाथजी का स्मरण करके भरतजी बोले-॥297॥

चौपाई :

* प्रभु पितु मातु सुहृद गुर स्वामी। पूज्य परम हित अंतरजामी॥
सरल सुसाहिबु सील निधानू। प्रनतपाल सर्बग्य सुजानू॥1॥

भावार्थ:-हे प्रभु! आप पिता, माता, सुहृद् (मित्र), गुरु, स्वामी, पूज्य, परम हितैषी और अन्तर्यामी हैं। सरल हृदय, श्रेष्ठ मालिक, शील के भंडार, शरणागत की रक्षा करने वाले, सर्वज्ञ, सुजान,॥1॥

* समरथ सरनागत हितकारी। गुनगाहकु अवगुन अघ हारी॥

स्वामि गोसाँइहि सरिस गोसाईं। मोहि समान मैं साइँ दोहाईं॥2॥

भावार्थ:-समर्थ, शरणागत का हित करने वाले, गुणों का आदर करने वाले और अवगुणों तथा पापों को हरने वाले हैं। हे गोसाईं! आप सरीखे स्वामी आप ही हैं और स्वामी के साथ द्रोह करने में मेरे समान मैं ही हूँ॥2॥

* प्रभु पितु बचन मोह बस पेली। आयउँ इहाँ समाजु सकेली॥
जग भल पोच ऊँच अरु नीचू। अमिअ अमरपद माहुरु मीचू॥3॥

भावार्थ:-मैं मोहवश प्रभु (आप) के और पिताजी के वचनों का उल्लंघन कर और समाज बटोरकर यहाँ आया हूँ। जगत में भले-बुरे, ऊँचे और नीचे, अमृत और अमर पद (देवताओं का पद), विष और मृत्यु आदि-॥3॥

* राम रजाइ मेट मन माहीं। देखा सुना कतहुँ कोउ नाहीं॥
सो मैं सब बिधि कीन्हि ढिठाई। प्रभु मानी सनेह सेवकाई॥4॥

भावार्थ:-किसी को भी कहीं ऐसा नहीं देखा-सुना जो मन में भी श्री रामचन्द्रजी (आप) की आज्ञा को मेट दे। मैंने सब प्रकार से वही ढिठाई की, परन्तु प्रभु ने उस ढिठाई को स्नेह और सेवा मान लिया!॥4॥

दोहा :

* कृपाँ भलाईं आपनी नाथ कीन्ह भल मोर।
दूषन भे भूषन सरिस सुजसु चारु चहुँ ओर॥298॥

भावार्थ:-हे नाथ! आपने अपनी कृपा और भलाई से मेरा भला किया, जिससे मेरे दूषण (दोष) भी भूषण (गुण) के समान हो गए और चारों ओर मेरा सुंदर यश छा गया॥298॥

चौपाई :

* राउरि रीति सुबानि बड़ाई। जगत बिदित निगमागम गाई॥
कूर कुटिल खल कुमति कलंकी। नीच निसील निरीस निसंकी॥1॥

भावार्थ:-हे नाथ! आपकी रीति और सुंदर स्वभाव की बड़ाई जगत में प्रसिद्ध है और वेद-शास्त्रों ने गाई है। जो क्रूर, कुटिल, दुष्ट, कुबुद्धि, कलंकी, नीच, शीलरहित, निरीश्वरवादी (नास्तिक) और निःशंक (निडर) है॥1॥

* तेउ सुनि सरन सामुहें आए। सकृत प्रनामु किहें अपनाए॥
देखि दोष कबहुँ न उर आने। सुनि गुन साधु समाज बखाने॥2॥

भावार्थ:-उन्हें भी आपने शरण में सम्मुख आया सुनकर एक बार प्रणाम करने पर ही अपना लिया। उन (शरणागतों) के दोषों को देखकर भी आप कभी हृदय में नहीं लाए और उनके गुणों को सुनकर साधुओं के समाज में उनका बखान किया॥2॥

* को साहिब सेवकहि नेवाजी। आपु समाज साज सब साजी॥
निज करतूति न समुझिअ सपनें। सेवक सकुच सोचु उर अपनें॥3॥

भावार्थ:-ऐसा सेवक पर कृपा करने वाला स्वामी कौन है, जो आप ही सेवक का सारा साज-सामान सज दे (उसकी सारी आवश्यकताओं को पूर्ण कर दे) और स्वप्न में भी अपनी कोई करनी न समझकर (अर्थात मैंने सेवक के लिए कुछ किया है, ऐसा न जानकर) उलटा सेवक को संकोच होगा, इसका सोच अपने हृदय में रखे!॥3॥

* सो गोसाइँ नहिं दूसर कोपी। भुजा उठाइ कहउँ पन रोपी॥
पसु नाचत सुक पाठ प्रबीना। गुन गति नट पाठक आधीना॥4॥

भावार्थ:-मैं भुजा उठाकर और प्रण रोपकर (बड़े जोर के साथ) कहता हूँ, ऐसा स्वामी आपके सिवा दूसरा कोई नहीं है। (बंदर आदि) पशु नाचते और तोते (सीखे हुए) पाठ में प्रवीण हो जाते हैं, परन्तु तोते का (पाठ प्रवीणता रूप) गुण और पशु के नाचने की गति (क्रमशः) पढ़ाने वाले और नचाने वाले के अधीन है॥4॥

दोहा :

* यों सुधारि सनमानि जन किए साधु सिरमोर।
को कृपाल बिनु पालिहै बिरिदावलि बरजोर॥299॥

भावार्थ:-इस प्रकार अपने सेवकों की (बिगड़ी) बात सुधारकर और सम्मान देकर आपने उन्हें साधुओं का शिरोमणि बना दिया। कृपालु (आप) के सिवा अपनी विरदावली का और कौन जबर्दस्ती (हठपूर्वक) पालन करेगा?॥299॥

चौपाई :

* सोक सनेहँ कि बाल सुभाएँ। आयउँ लाइ रजायसु बाएँ॥
तबहुँ कृपाल हेरि निज ओरा। सबहि भाँति भल मानेउ मोरा॥1॥

भावार्थ:-मैं शोक से या स्नेह से या बालक स्वभाव से आज्ञा को बाएँ लाकर (न मानकर) चला आया, तो भी कृपालु स्वामी (आप) ने अपनी ओर देखकर सभी प्रकार से मेरा भला ही माना (मेरे इस अनुचित कार्य को अच्छा ही समझा)॥1॥

* देखेउँ पाय सुमंगल मूला। जानेउँ स्वामि सहज अनुकूला।
बड़ें समाज बिलोकेउँ भागू। बड़ीं चूक साहिब अनुरागू॥2॥

भावार्थ:-मैंने सुंदर मंगलों के मूल आपके चरणों का दर्शन किया और यह जान लिया कि स्वामी मुझ पर स्वभाव से ही अनुकूल हैं। इस बड़े समाज में अपने भाग्य को देखा कि इतनी बड़ी चूक होने पर भी स्वामी का मुझ पर कितना अनुराग है!॥2॥

* कृपा अनुग्रहु अंगु अघाई। कीन्हि कृपानिधि सब अधिकाई॥
राखा मोर दुलार गोसाईं। अपनें सील सुभायँ भलाईं॥3॥

भावार्थ:-कृपानिधान ने मुझ पर सांगोपांग भरपेट कृपा और अनुग्रह, सब अधिक ही किए हैं (अर्थात मैं जिसके जरा भी लायक नहीं था, उतनी अधिक सर्वांगपूर्ण कृपा आपने मुझ पर की है)। हे गोसाईं! आपने अपने शील, स्वभाव और भलाई से मेरा दुलार रखा॥3॥

* नाथ निपट मैं कीन्हि ढिठाई। स्वामि समाज सकोच बिहाई॥
अबिनय बिनय जथारुचि बानी। छमिहि देउ अति आरति जानी॥4॥

भावार्थ:-हे नाथ! मैंने स्वामी और समाज के संकोच को छोड़कर अविनय या विनय भरी जैसी रुचि हुई वैसी ही वाणी कहकर सर्वथा ढिठाई की है। हे देव! मेरे आर्तभाव (आतुरता) को जानकर आप क्षमा करेंगे॥4॥

दोहा :

* सुहृद सुजान सुसाहिबहि बहुत कहब बड़ि खोरि।
आयसु देइअ देव अब सबइ सुधारी मोरि॥300॥

भावार्थ:-सुहृद् (बिना ही हेतु के हित करने वाले), बुद्धिमान और श्रेष्ठ मालिक से बहुत कहना बड़ा अपराध है, इसलिए हे देव! अब मुझे आज्ञा दीजिए, आपने मेरी सभी बात सुधार दी॥300॥

चौपाई :

* प्रभु पद पदुम पराग दोहाई। सत्य सुकृत सुख सीवँ सुहाई॥
सो करि कहउँ हिए अपने की। रुचि जागत सोवत सपने की॥1॥

भावार्थ:-प्रभु (आप) के चरणकमलों की रज, जो सत्य, सुकृत (पुण्य) और सुख की सुहावनी सीमा (अवधि) है, उसकी दुहाई करके मैं अपने हृदय को जागते, सोते और स्वप्न में भी बनी रहने वाली रुचि (इच्छा) कहता हूँ॥1॥

* सहज सनेहँ स्वामि सेवकाई। स्वारथ छल फल चारि बिहाई॥
अग्यासम न सुसाहिब सेवा। सो प्रसादु जन पावै देवा॥2॥

भावार्थ:-वह रुचि है- कपट, स्वार्थ और (अर्थ-धर्म-काम-मोक्ष रूप) चारों फलों को छोड़कर स्वाभाविक प्रेम से स्वामी की सेवा करना। और आज्ञा पालन के समान श्रेष्ठ स्वामी की और कोई सेवा नहीं है। हे देव! अब वही आज्ञा रूप प्रसाद सेवक को मिल जाए॥2॥

* अस कहि प्रेम बिबस भए भारी। पुलक सरीर बिलोचन बारी॥
प्रभु पद कमल गहे अकुलाई। समउ सनेहु न सो कहि जाई॥3॥

भावार्थ:-भरतजी ऐसा कहकर प्रेम के बहुत ही विवश हो गए। शरीर पुलकित हो उठा, नेत्रों में (प्रेमाश्रुओं का) जल भर आया। अकुलाकर (व्याकुल होकर) उन्होंने प्रभु श्री रामचन्द्रजी के चरणकमल पकड़ लिए। उस समय को और स्नेह को कहा नहीं जा सकता॥3॥

* कृपासिंधु सनमानि सुबानी। बैठाए समीप गहि पानी॥
भरत बिनय सुनिदेखि सुभाऊ। सिथिल सनेहँ सभा रघुराऊ॥4॥

भावार्थ:-कृपासिन्धु श्री रामचन्द्रजी ने सुंदर वाणी से भरतजी का सम्मान करके हाथ पकड़कर उनको अपने पास बिठा लिया। भरतजी की विनती सुनकर और उनका स्वभाव देखकर सारी सभा और श्री रघुनाथजी स्नेह से शिथिल हो गए॥4॥

छन्द :

* रघुराउ सिथिल सनेहँ साधु समाज मुनि मिथिला धनी।
मन महुँ सराहत भरत भायप भगति की महिमा घनी॥
भरतहि प्रसंसत बिबुध बरषत सुमन मानस मलिन से।
तुलसी बिकल सब लोग सुनि सकुचे निसागम नलिन से॥

भावार्थ:-श्री रघुनाथजी, साधुओं का समाज, मुनि वशिष्ठजी और मिथिलापति जनकजी स्नेह से शिथिल हो गए। सब मन ही मन भरतजी के भाईपन और उनकी भक्ति की अतिशय महिमा को सराहने लगे। देवता मलिन से मन से भरतजी की प्रशंसा करते हुए उन पर फूल बरसाने लगे। तुलसीदासजी कहते हैं- सब लोग भरतजी का भाषण सुनकर व्याकुल हो गए और ऐसे सकुचा गए जैसे रात्रि के आगमन से कमल!

सोरठा :

* देखि दुखारी दीन दुहु समाज नर नारि सब।
मघवा महा मलीन मुए मारि मंगल चहत॥301॥

भावार्थ:-दोनों समाजों के सभी नर-नारियों को दीन और दुःखी देखकर महामलिन मन इन्द्र मरे हुओं को मारकर अपना मंगल चाहता है॥301॥

चौपाई :

* कपट कुचालि सीवँ सुरराजू। पर अकाज प्रिय आपन काजू॥
काक समान पाकरिपु रीती। छली मलीन कतहुँ न प्रतीती॥1॥

भावार्थ:-देवराज इन्द्र कपट और कुचाल की सीमा है। उसे पराई हानि और अपना लाभ ही प्रिय है। इन्द्र की रीति कौए के समान है। वह छली और मलिन मन है, उसका कहीं किसी पर विश्वास नहीं है॥1॥

* प्रथम कुमत करि कपटु सँकेला। सो उचाटु सब कें सिर मेला॥
सुरमायाँ सब लोग बिमोहे। राम प्रेम अतिसय न बिछोहे॥2॥

भावार्थ:-पहले तो कुमत (बुरा विचार) करके कपट को बटोरा (अनेक प्रकार के कपट का साज सजा)। फिर वह (कपटजनित) उचाट सबके सिर पर डाल दिया। फिर देवमाया से सब लोगों को विशेष रूप से मोहित कर दिया, किन्तु श्री रामचन्द्रजी के प्रेम से उनका अत्यन्त बिछोह नहीं हुआ (अर्थात उनका श्री रामजी के प्रति प्रेम कुछ तो बना ही रहा)॥2॥

* भय उचाट बस मन थिर नाहीं। छन बन रुचि छन सदन सोहाहीं॥
दुबिध मनोगति प्रजा दुखारी। सरित सिंधु संगम जनु बारी॥3॥

भावार्थ:-भय और उचाट के वश किसी का मन स्थिर नहीं है। क्षण में उनकी वन में रहने की इच्छा होती है और क्षण में उन्हें घर अच्छे लगने लगते हैं। मन की इस प्रकार की दुविधामयी स्थिति से प्रजा दुःखी हो रही है। मानो नदी और समुद्र के संगम का जल क्षुब्ध हो रहा हो। (जैसे नदी और समुद्र के संगम का जल स्थिर नहीं रहता, कभी इधर आता और कभी उधर जाता है, उसी प्रकार की दशा प्रजा के मन की हो गई)॥3॥

* दुचित कतहुँ परितोषु न लहहीं। एक एक सन मरमु न कहहीं॥
लखि हियँ हँसि कह कृपानिधानू। सरिस स्वान मघवान जुबानू॥4॥

भावार्थ:-चित्त दो तरफा हो जाने से वे कहीं संतोष नहीं पाते और एक-दूसरे से अपना मर्म भी नहीं कहते। कृपानिधान श्री रामचन्द्रजी यह दशा देखकर हृदय में हँसकर कहने लगे- कुत्ता,

इन्द्र और नवयुवक (कामी पुरुष) एक सरीखे (एक ही स्वभाव के) हैं। (पाणिनीय व्याकरण के अनुसार, श्वन, युवन और मघवन शब्दों के रूप भी एक सरीखे होते हैं)॥4॥

दोहा :

* भरतु जनकु मुनिजन सचिव साधु सचेत बिहाइ।
लागि देवमाया सबहि जथाजोगु जनु पाइ॥302॥

भावार्थ:-भरतजी, जनकजी, मुनिजन, मंत्री और ज्ञानी साधु-संतों को छोड़कर अन्य सभी पर जिस मनुष्य को जिस योग्य (जिस प्रकृति और जिस स्थिति का) पाया, उस पर वैसे ही देवमाया लग गई॥302॥

चौपाई :

* कृपासिंधु लखि लोग दुखारे। निज सनेहँ सुरपति छल भारे॥
सभा राउ गुर महिसुर मंत्री। भरत भगति सब कै मति जंत्री॥1॥

भावार्थ:-कृपासिंधु श्री रामचन्द्रजी ने लोगों को अपने स्नेह और देवराज इन्द्र के भारी छल से दुःखी देखा। सभा, राजा जनक, गुरु, ब्राह्मण और मंत्री आदि सभी की बुद्धि को भरतजी की भक्ति ने कील दिया॥1॥

* रामहि चितवत चित्र लिखे से। सकुचत बोलत बचन सिखे से॥
भरत प्रीति नति बिनय बड़ाई। सुनत सुखद बरनत कठिनाई॥2॥

भावार्थ:-सब लोग चित्रलिखे से श्री रामचन्द्रजी की ओर देख रहे हैं। सकुचाते हुए सिखाए हुए से वचन बोलते हैं। भरतजी की प्रीति, नम्रता, विनय और बड़ाई सुनने में सुख देने वाली है, पर उसका वर्णन करने में कठिनता है॥2॥

* जासु बिलोकि भगति लवलेसू। प्रेम मगन मुनिगन मिथिलेसू॥
महिमा तासु कहै किमि तुलसी। भगति सुभायँ सुमति हियँ हुलसी॥3॥

भावार्थ:-जिनकी भक्ति का लवलेश देखकर मुनिगण और मिथिलेश्वर जनकजी प्रेम में मग्न हो गए, उन भरतजी की महिमा तुलसीदास कैसे कहे? उनकी भक्ति और सुंदर भाव से (कवि के) हृदय में सुबुद्धि हुलस रही है (विकसित हो रही है)॥3॥

* आपु छोटि महिमा बड़ि जानी। कबिकुल कानि मानि सकुचानी॥
कहि न सकति गुन रुचि अधिकाई। मति गति बाल बचन की नाई॥4॥

भावार्थ:-परन्तु वह बुद्धि अपने को छोटी और भरतजी की महिमा को बड़ी जानकर कवि परम्परा की मर्यादा को मानकर सकुचा गई (उसका वर्णन करने का साहस नहीं कर सकी)। उसकी गुणों में रुचि तो बहुत है, पर उन्हें कह नहीं सकती। बुद्धि की गति बालक के वचनों की तरह हो गई (वह कुण्ठित हो गई)!॥4॥

दोहा :

* भरत बिमल जसु बिमल बिधु सुमति चकोरकुमारि।
उदित बिमल जन हृदय नभ एकटक रही निहारि॥303॥

भावार्थ:-भरतजी का निर्मल यश निर्मल चन्द्रमा है और कवि की सुबुद्धि चकोरी है, जो भक्तों के हृदय रूपी निर्मल आकाश में उस चन्द्रमा को उदित देखकर उसकी ओर टकटकी लगाए देखती ही रह गई है (तब उसका वर्णन कौन करे?)॥303॥

गीताप्रेस गोरखपुर

चौपाई :

* भरत सुभाउ न सुगम निगमहूँ। लघु मति चापलता कबि छमहूँ॥
कहत सुनत सति भाउ भरत को। सीय राम पद होइ न रत को॥1॥

भावार्थ:-भरतजी के स्वभाव का वर्णन वेदों के लिए भी सुगम नहीं है। (अतः) मेरी तुच्छ बुद्धि की चंचलता को कवि लोग क्षमा करें! भरतजी के सद्भाव को कहते-सुनते कौन मनुष्य श्री सीता-रामजी के चरणों में अनुरक्त न हो जाएगा॥1॥

* सुमिरत भरतहि प्रेमु राम को। जेहि न सुलभु तेहि सरिस बाम को॥
देखि दयाल दसा सबही की। राम सुजान जानि जन जी की॥2॥

भावार्थ:-भरतजी का स्मरण करने से जिसको श्री रामजी का प्रेम सुलभ न हुआ, उसके समान वाम (अभागा) और कौन होगा? दयालु और सुजान श्री रामजी ने सभी की दशा देखकर और भक्त (भरतजी) के हृदय की स्थिति जानकर,॥2॥

* धरम धुरीन धीर नय नागर। सत्य सनेह सील सुख सागर॥
देसु कालु लखि समउ समाजू। नीति प्रीति पालक रघुराजू॥3॥

भावार्थ:-धर्मधुरंधर, धीर, नीति में चतुर, सत्य, स्नेह, शील और सुख के समुद्र, नीति और प्रीति के पालन करने वाले श्री रघुनाथजी देश, काल, अवसर और समाज को देखकर,॥3॥

* बोले बचन बानि सरबसु से। हित परिनाम सुनत ससि रसु से॥
तात भरत तुम्ह धरम धुरीना। लोक बेद बिद प्रेम प्रबीना॥4॥

भावार्थ:-(तदनुसार) ऐसे वचन बोले जो मानो वाणी के सर्वस्व ही थे, परिणाम में हितकारी थे और सुनने में चन्द्रमा के रस (अमृत) सरीखे थे। (उन्होंने कहा-) हे तात भरत! तुम धर्म की धुरी को धारण करने वाले हो, लोक और वेद दोनों के जानने वाले और प्रेम में प्रवीण हो॥4॥

दोहा :

* करम बचन मानस बिमल तुम्ह समान तुम्ह तात।
गुर समाज लघु बंधु गुन कुसमयँ किमि कहि जात॥304॥

भावार्थ:-हे तात! कर्म से, वचन से और मन से निर्मल तुम्हारे समान तुम्हीं हो। गुरुजनों के समाज में और ऐसे कुसमय में छोटे भाई के गुण किस तरह कहे जा सकते हैं?॥304॥

चौपाई :

* जानहु तात तरनि कुल रीती। सत्यसंध पितु कीरति प्रीती॥
समउ समाजु लाज गुरजन की। उदासीन हित अनहित मन की॥1॥

भावार्थ:-हे तात! तुम सूर्यकुल की रीति को, सत्यप्रतिज्ञ पिताजी की कीर्ति और प्रीति को, समय, समाज और गुरुजनों की लज्जा (मर्यादा) को तथा उदासीन, मित्र और शत्रु सबके मन की बात को जानते हो॥1॥

* तुम्हहि बिदित सबही कर करमू। आपन मोर परम हित धरमू॥
मोहि सब भाँति भरोस तुम्हारा। तदपि कहउँ अवसर अनुसारा॥2॥

भावार्थ:-तुमको सबके कर्मों (कर्तव्यों) का और अपने तथा मेरे परम हितकारी धर्म का पता है। यद्यपि मुझे तुम्हारा सब प्रकार से भरोसा है, तथापि मैं समय के अनुसार कुछ कहता हूँ॥2॥

* तात तात बिनु बात हमारी। केवल गुरकुल कृपाँ सँभारी॥
नतरु प्रजा परिजन परिवारू। हमहि सहित सबु होत खुआरू॥3॥

भावार्थ:-हे तात! पिताजी के बिना (उनकी अनुपस्थिति में) हमारी बात केवल गुरुवंश की कृपा ने ही सम्हाल रखी है, नहीं तो हमारे समेत प्रजा, कुटुम्ब, परिवार सभी बर्बाद हो जाते॥3॥

* जौं बिनु अवसर अथवँ दिनेसू। जग केहि कहहु न होइ कलेसू॥
तस उतपातु तात बिधि कीन्हा। मुनि मिथिलेस राखि सबु लीन्हा॥4॥

भावार्थ:-यदि बिना समय के (सन्ध्या से पूर्व ही) सूर्य अस्त हो जाए, तो कहो जगत में किस को क्लेश न होगा? हे तात! उसी प्रकार का उत्पात विधाता ने यह (पिता की असामयिक मृत्यु) किया है। पर मुनि महाराज ने तथा मिथिलेश्वर ने सबको बचा लिया॥4॥

दोहा :

* राज काज सब लाज पति धरम धरनि धन धाम।
गुर प्रभाउ पालिहि सबहि भल होइहि परिनाम॥305॥

भावार्थ:-राज्य का सब कार्य, लज्जा, प्रतिष्ठा, धर्म, पृथ्वी, धन, घर- इन सभी का पालन (रक्षण) गुरुजी का प्रभाव (सामर्थ्य) करेगा और परिणाम शुभ होगा॥305॥

चौपाई :

* सहित समाज तुम्हार हमारा। घर बन गुर प्रसाद रखवारा॥

मातु पिता गुर स्वामि निदेसू। सकल धरम धरनीधर सेसू॥1॥
भावार्थ:-गुरुजी का प्रसाद (अनुग्रह) ही घर में और वन में समाज सहित तुम्हारा और हमारा रक्षक है। माता, पिता, गुरु और स्वामी की आज्ञा (का पालन) समस्त धर्म रूपी पृथ्वी को धारण करने में शेषजी के समान है॥1॥

* सो तुम्ह करहु करावहु मोहू। तात तरनिकुल पालक होहू॥
साधक एक सकल सिधि देनी। कीरति सुगति भूतिमय बेनी॥2॥
भावार्थ:-हे तात! तुम वही करो और मुझसे भी कराओ तथा सूर्यकुल के रक्षक बनो। साधक के लिए यह एक ही (आज्ञा पालन रूपी साधना) सम्पूर्ण सिद्धियों की देने वाली, कीर्तिमयी, सद्गतिमयी और ऐश्वर्यमयी त्रिवेणी है॥2॥

* सो बिचारि सहि संकटु भारी। करहु प्रजा परिवारू सुखारी॥
बाँटी बिपति सबहिं मोहि भाई। तुम्हहि अवधि भरि बड़ि कठिनाई॥3॥
भावार्थ:-इसे विचारकर भारी संकट सहकर भी प्रजा और परिवार को सुखी करो। हे भाई! मेरी विपत्ति सभी ने बाँट ली है, परन्तु तुमको तो अवधि (चौदह वर्ष) तक बड़ी कठिनाई है (सबसे अधिक दुःख है)॥3॥

* जानि तुम्हहि मृदु कहउँ कठोरा। कुसमयँ तात न अनुचित मोरा॥
होहिं कुठायँ सुबंधु सहाए। ओड़िअहिं हाथ असनिहु के धाए॥4॥
भावार्थ:-तुमको कोमल जानकर भी मैं कठोर (वियोग की बात) कह रहा हूँ। हे तात! बुरे समय में मेरे लिए यह कोई अनुचित

बात नहीं है। कुठौर (कुअवसर) में श्रेष्ठ भाई ही सहायक होते हैं। वज्र के आघात भी हाथ से ही रोके जाते हैं॥4॥

दोहा :

* सेवक कर पद नयन से मुख सो साहिबु होइ।
तुलसी प्रीति कि रीति सुनि सुकबि सराहहिं सोइ॥306॥

भावार्थ:-सेवक हाथ, पैर और नेत्रों के समान और स्वामी मुख के समान होना चाहिए। तुलसीदासजी कहते हैं कि सेवक-स्वामी की ऐसी प्रीति की रीति सुनकर सुकवि उसकी सराहना करते हैं॥306॥

चौपाई :

* सभा सकल सुनि रघुबर बानी। प्रेम पयोधि अमिअँ जनु सानी॥
सिथिल समाज सनेह समाधी। देखि दसा चुप सारद साधी॥1॥

भावार्थ:-श्री रघुनाथजी की वाणी सुनकर, जो मानो प्रेम रूपी समुद्र के (मंथन से निकले हुए) अमृत में सनी हुई थी, सारा समाज शिथिल हो गया, सबको प्रेम समाधि लग गई। यह दशा देखकर सरस्वती ने चुप साध ली॥1॥

* भरतहि भयउ परम संतोषू। सनमुख स्वामि बिमुख दुख दोषू॥
मुख प्रसन्न मन मिटा बिषादू। भा जनु गूँगेहि गिरा प्रसादू॥2॥

भावार्थ:-भरतजी को परम संतोष हुआ। स्वामी के सम्मुख (अनुकूल) होते ही उनके दुःख और दोषों ने मुँह मोड़ लिया (वे उन्हें छोड़कर भाग गए)। उनका मुख प्रसन्न हो गया और मन का विषाद मिट गया। मानो गूँगे पर सरस्वती की कृपा हो गई हो॥2॥

* कीन्ह सप्रेम प्रनामु बहोरी। बोले पानि पंकरुह जोरी॥
नाथ भयउ सुखु साथ गए को। लहेउँ लाहु जग जनमु भए को॥3॥

भावार्थ:-उन्होंने फिर प्रेमपूर्वक प्रणाम किया और करकमलों को जोड़कर वे बोले- हे नाथ! मुझे आपके साथ जाने का सुख प्राप्त हो गया और मैंने जगत में जन्म लेने का लाभ भी पा लिया।3॥

* अब कृपाल जस आयसु होई। करौं सीस धरि सादर सोई॥
सो अवलंब देव मोहि देई। अवधि पारु पावौं जेहि सेई॥4॥

भावार्थ:-हे कृपालु! अब जैसी आज्ञा हो, उसी को मैं सिर पर धर कर आदरपूर्वक करूँ! परन्तु देव! आप मुझे वह अवलम्बन (कोई सहारा) दें, जिसकी सेवा कर मैं अवधि का पार पा जाऊँ (अवधि को बिता दूँ)॥4॥

दोहा :

* देव देव अभिषेक हित गुर अनुसासनु पाइ।
आनेउँ सब तीरथ सलिलु तेहि कहँ काह रजाइ॥307॥

भावार्थ:-हे देव! स्वामी (आप) के अभिषेक के लिए गुरुजी की आज्ञा पाकर मैं सब तीर्थों का जल लेता आया हूँ, उसके लिए क्या आज्ञा होती है?॥307॥

चौपाई :

* एकु मनोरथु बड़ मन माहीं। सभयँ सकोच जात कहि नाहीं॥
कहहु तात प्रभु आयसु पाई। बोले बानि सनेह सुहाई॥1॥

भावार्थ:-मेरे मन में एक और बड़ा मनोरथ है, जो भय और संकोच के कारण कहा नहीं जाता। (श्री रामचन्द्रजी ने कहा-) हे

भाई! कहो। तब प्रभु की आज्ञा पाकर भरतजी स्नेहपूर्ण सुंदर वाणी बोले-॥1॥

* चित्रकूट सुचि थल तीरथ बन। खग मृग सर सरि निर्झर गिरिगन॥
प्रभु पद अंकित अवनि बिसेषी। आयसु होइ त आवौं देखी॥2॥

भावार्थ:-आज्ञा हो तो चित्रकूट के पवित्र स्थान, तीर्थ, वन, पक्षी-पशु, तालाब-नदी, झरने और पर्वतों के समूह तथा विशेष कर प्रभु (आप) के चरण चिह्नों से अंकित भूमि को देख आऊँ॥2॥

* अवसि अत्रि आयसु सिर धरहू। तात बिगतभय कानन चरहू॥
मुनि प्रसाद बनु मंगल दाता। पावन परम सुहावन भ्राता॥3॥

भावार्थ:-(श्री रघुनाथजी बोले-) अवश्य ही अत्रि ऋषि की आज्ञा को सिर पर धारण करो (उनसे पूछकर वे जैसा कहें वैसा करो) और निर्भय होकर वन में विचरो। हे भाई! अत्रि मुनि के प्रसाद से वन मंगलों का देने वाला, परम पवित्र और अत्यन्त सुंदर है-॥3॥

* रिषिनायकु जहँ आयसु देहीं। राखेहु तीरथ जलु थल तेहीं॥
सुनि प्रभु बचन भरत सुखु पावा। मुनि पद कमल मुदित सिरु नावा॥4॥

भावार्थ:-और ऋषियों के प्रमुख अत्रिजी जहाँ आज्ञा दें, वहीं (लाया हुआ) तीर्थों का जल स्थापित कर देना। प्रभु के वचन सुनकर भरतजी ने सुख पाया और आनंदित होकर मुनि अत्रिजी के चरणकमलों में सिर नवाया॥4॥

दोहा :

* भरत राम संबादु सुनि सकल सुमंगल मूल।

सुर स्वारथी सराहि कुल बरषत सुरतरु फूल॥308॥

भावार्थ:-समस्त सुंदर मंगलों का मूल भरतजी और श्री रामचन्द्रजी का संवाद सुनकर स्वार्थी देवता रघुकुल की सराहना करके कल्पवृक्ष के फूल बरसाने लगे॥308॥

चौपाई :

* धन्य भरत जय राम गोसाईं। कहत देव हरषत बरिआईं॥
मुनि मिथिलेस सभाँ सब काहू। भरत बचन सुनि भयउ उछाहू॥1॥

भावार्थ:-'भरतजी धन्य हैं, स्वामी श्री रामजी की जय हो!' ऐसा कहते हुए देवता बलपूर्वक (अत्यधिक) हर्षित होने लगे। भरतजी के वचन सुनकर मुनि वशिष्ठजी, मिथिलापति जनकजी और सभा में सब किसी को बड़ा उत्साह (आनंद) हुआ॥1॥

* भरत राम गुन ग्राम सनेहू। पुलकि प्रसंसत राउ बिदेहू॥
सेवक स्वामि सुभाउ सुहावन। नेमु पेमु अति पावन पावन॥2॥

भावार्थ:-भरतजी और श्री रामचन्द्रजी के गुण समूह की तथा प्रेम की विदेहराज जनकजी पुलकित होकर प्रशंसा कर रहे हैं। सेवक और स्वामी दोनों का सुंदर स्वभाव है। इनके नियम और प्रेम पवित्र को भी अत्यन्त पवित्र करने वाले हैं॥2॥

* मति अनुसार सराहन लागे। सचिव सभासद सब अनुरागे॥
सुनि सुनि राम भरत संबादू। दुहु समाज हियँ हरषु विषादू॥3

भावार्थ:-मंत्री और सभासद् सभी प्रेममुग्ध होकर अपनी-अपनी बुद्धि के अनुसार सराहना करने लगे। श्री रामचन्द्रजी और भरतजी का संवाद सुन-सुनकर दोनों समाजों के हृदयों में हर्ष और विषाद (भरतजी के सेवा धर्म को देखकर हर्ष और रामवियोग की सम्भावना से विषाद) दोनों हुए॥3॥

* राम मातु दुखु सुखु सम जानी। कहि गुन राम प्रबोधीं रानी॥
एक कहहिं रघुबीर बड़ाई। एक सराहत भरत भलाई॥4॥

भावार्थ:-श्री रामचन्द्रजी की माता कौसल्याजी ने दुःख और सुख को समान जानकर श्री रामजी के गुण कहकर दूसरी रानियों को धैर्य बँधाया। कोई श्री रामजी की बड़ाई (बड़प्पन) की चर्चा कर रहे हैं, तो कोई भरतजी के अच्छेपन की सराहना करते हैं॥4॥

गीताप्रेस गोरखपुर

भरतजी का तीर्थ जल स्थापन तथा चित्रकूट भ्रमण

दोहा :

* अत्रि कहेउ तब भरत सन सैल समीप सुकूप।
राखिअ तीरथ तोय तहँ पावन अमिअ अनूप॥309॥

भावार्थ:-तब अत्रिजी ने भरतजी से कहा- इस पर्वत के समीप ही एक सुंदर कुआँ है। इस पवित्र, अनुपम और अमृत जैसे तीर्थजल को उसी में स्थापित कर दीजिए॥309॥

चौपाई :

* भरत अत्रि अनुसासन पाई। जल भाजन सब दिए चलाई॥
सानुज आपु अत्रि मुनि साधू। सहित गए जहँ कूप अगाधू॥1॥

भावार्थ:-भरतजी ने अत्रिमुनि की आज्ञा पाकर जल के सब पात्र रवाना कर दिए और छोटे भाई शत्रुघ्न, अत्रि मुनि तथा अन्य साधु-संतों सहित आप वहाँ गए, जहाँ वह अथाह कुआँ था॥1॥

* पावन पाथ पुन्यथल राखा। प्रमुदित प्रेम अत्रि अस भाषा॥
तात अनादि सिद्ध थल एहू। लोपेउ काल बिदित नहिं केहू॥2॥

भावार्थ:-और उस पवित्र जल को उस पुण्य स्थल में रख दिया। तब अत्रि ऋषि ने प्रेम से आनंदित होकर ऐसा कहा- हे तात! यह अनादि सिद्धस्थल है। कालक्रम से यह लोप हो गया था, इसलिए किसी को इसका पता नहीं था॥2॥

* तब सेवकन्ह सरस थलुदेखा। कीन्ह सुजल हित कूप बिसेषा॥
बिधि बस भयउ बिस्व उपकारू। सुगम अगम अति धरम बिचारू॥3॥

भावार्थ:-तब (भरतजी के) सेवकों ने उस जलयुक्त स्थान को देखा और उस सुंदर (तीर्थों के) जल के लिए एक खास कुआँ बना लिया। दैवयोग से विश्वभर का उपकार हो गया। धर्म का विचार जो अत्यन्त अगम था, वह (इस कूप के प्रभाव से) सुगम हो गया॥3॥

* भरतकूप अब कहिहहिं लोगा। अति पावन तीरथ जल जोगा॥
प्रेम सनेम निमज्जत प्रानी। होइहहिं बिमल करम मन बानी॥4॥

भावार्थ:-अब इसको लोग भरतकूप कहेंगे। तीर्थों के जल के संयोग से तो यह अत्यन्त ही पवित्र हो गया। इसमें प्रेमपूर्वक नियम से स्नान करने पर प्राणी मन, वचन और कर्म से निर्मल हो जाएँगे॥4॥

दोहा :

* कहत कूप महिमा सकल गए जहाँ रघुराउ।
अत्रि सुनायउ रघुबरहि तीरथ पुन्य प्रभाउ॥310॥

भावार्थ:-कूप की महिमा कहते हुए सब लोग वहाँ गए जहाँ श्री रघुनाथजी थे। श्री रघुनाथजी को अत्रिजी ने उस तीर्थ का पुण्य प्रभाव सुनाया॥310॥

चौपाई :

* कहत धरम इतिहास सप्रीती। भयउ भोरु निसि सो सुख बीती॥
नित्य निबाहि भरत दोउ भाई। राम अत्रि गुर आयसु पाई॥1॥

भावार्थ:-प्रेमपूर्वक धर्म के इतिहास कहते वह रात सुख से बीत गई और सबेरा हो गया। भरत-शत्रुघ्न दोनों भाई नित्यक्रिया पूरी करके, श्री रामजी, अत्रिजी और गुरु वशिष्ठजी की आज्ञा पाकर,॥1॥

* सहित समाज साज सब सादें। चले राम बन अटन पयादें॥
कोमल चरन चलत बिनु पनहीं। भइ मृदु भूमि सकुचि मन मनहीं॥2॥

भावार्थ:-समाज सहित सब सादे साज से श्री रामजी के वन में भ्रमण (प्रदक्षिणा) करने के लिए पैदल ही चले। कोमल चरण हैं और बिना जूते के चल रहे हैं, यह देखकर पृथ्वी मन ही मन सकुचाकर कोमल हो गई॥2॥

* कुस कंटक काँकरीं कुराईं। कटुक कठोर कुबस्तु दुराईं॥
महि मंजुल मृदु मारग कीन्हे। बहत समीर त्रिबिध सुख लीन्हे॥3॥

भावार्थ:-कुश, काँटे, कंकड़ी, दरारों आदि कड़वी, कठोर और बुरी वस्तुओं को छिपाकर पृथ्वी ने सुंदर और कोमल मार्ग कर दिए।

सुखों को साथ लिए (सुखदायक) शीतल, मंद, सुगंध हवा चलने लगी॥3॥

* सुमन बरषि सुर घन करि छाहीं। बिटप फूलि फलि तृन मृदुताहीं॥
मृग बिलोकि खग बोलि सुबानी। सेवहिं सकल राम प्रिय जानी॥4॥

भावार्थ:-रास्ते में देवता फूल बरसाकर, बादल छाया करके, वृक्ष फूल-फलकर, तृण अपनी कोमलता से, मृग (पशु) देखकर और पक्षी सुंदर वाणी बोलकर सभी भरतजी को श्री रामचन्द्रजी के प्यारे जानकर उनकी सेवा करने लगे॥4॥

दोहा :

* सुलभ सिद्धि सब प्राकृतहु राम कहत जमुहात।
राम प्रानप्रिय भरत कहुँ यह न होइ बड़ि बात॥311॥

भावार्थ:-जब एक साधारण मनुष्य को भी (आलस्य से) जँभाई लेते समय 'राम' कह देने से ही सब सिद्धियाँ सुलभ हो जाती हैं, तब श्री रामचन्द्रजी के प्राण प्यारे भरतजी के लिए यह कोई बड़ी (आश्चर्य की) बात नहीं है॥311॥

चौपाई :

* एहि बिधि भरतु फिरत बन माहीं। नेमु प्रेमु लखि मुनि सकुचाहीं॥
पुन्य जलाश्रय भूमि बिभागा। खग मृग तरु तृन गिरि बन बागा॥1॥

भावार्थ:-इस प्रकार भरतजी वन में फिर रहे हैं। उनके नियम और प्रेम को देखकर मुनि भी सकुचा जाते हैं। पवित्र जल के

स्थान (नदी, बावली, कुंड आदि) पृथ्वी के पृथक-पृथक भाग, पक्षी, पशु, वृक्ष, तृण (घास), पर्वत, वन और बगीचे-॥1॥

* चारु बिचित्र पबित्र बिसेषी। बूझत भरतु दिब्य सब देखी॥
सुनि मन मुदित कहत रिषिराऊ। हेतु नाम गुन पुन्य प्रभाऊ॥2॥

भावार्थ:-सभी विशेष रूप से सुंदर, विचित्र, पवित्र और दिव्य देखकर भरतजी पूछते हैं और उनका प्रश्न सुनकर ऋषिराज अत्रिजी प्रसन्न मन से सबके कारण, नाम, गुण और पुण्य प्रभाव को कहते हैं॥2॥

* कतहुँ निमज्जन कतहुँ प्रनामा। कतहुँ बिलोकत मन अभिरामा॥
कतहुँ बैठि मुनि आयसु पाई। सुमिरत सीय सहित दोउ भाई॥3॥

भावार्थ:-भरतजी कहीं स्नान करते हैं, कहीं प्रणाम करते हैं, कहीं मनोहर स्थानों के दर्शन करते हैं और कहीं मुनि अत्रिजी की आज्ञा पाकर बैठकर, सीताजी सहित श्री राम-लक्ष्मण दोनों भाइयों का स्मरण करते हैं॥3॥ तो इसमें लाभ अधिक और हानि कम प्रतीत हुई, परन्तु रानियों को दुःख-सुख समान ही थे (राम-लक्ष्मण वन में रहें या भरत-शत्रुघ्न, दो पुत्रों का वियोग तो रहेगा ही), यह समझकर वे सब रोने लगीं॥3॥

* देखि सुभाउ सनेहु सुसेवा। देहिं असीस मुदित बनदेवा॥
फिरहिं गएँ दिनु पहर अढ़ाई। प्रभु पद कमल बिलोकहिं आई॥4॥

भावार्थ:-भरतजी के स्वभाव, प्रेम और सुंदर सेवाभाव को देखकर वनदेवता आनंदित होकर आशीर्वाद देते हैं। यों घूम-फिरकर ढाई पहर दिन बीतने पर लौट पड़ते हैं और आकर प्रभु श्री रघुनाथजी के चरणकमलों का दर्शन करते हैं॥4॥

दोहा :

* देखे थल तीरथ सकल भरत पाँच दिन माझ।

कहत सुनत हरि हर सुजसु गयउ दिवसु भइ साँझ॥312॥

भावार्थ:-भरतजी ने पाँच दिन में सब तीर्थ स्थानों के दर्शन कर लिए। भगवान विष्णु और महादेवजी का सुंदर यश कहते-सुनते वह (पाँचवाँ) दिन भी बीत गया, संध्या हो गई॥312॥

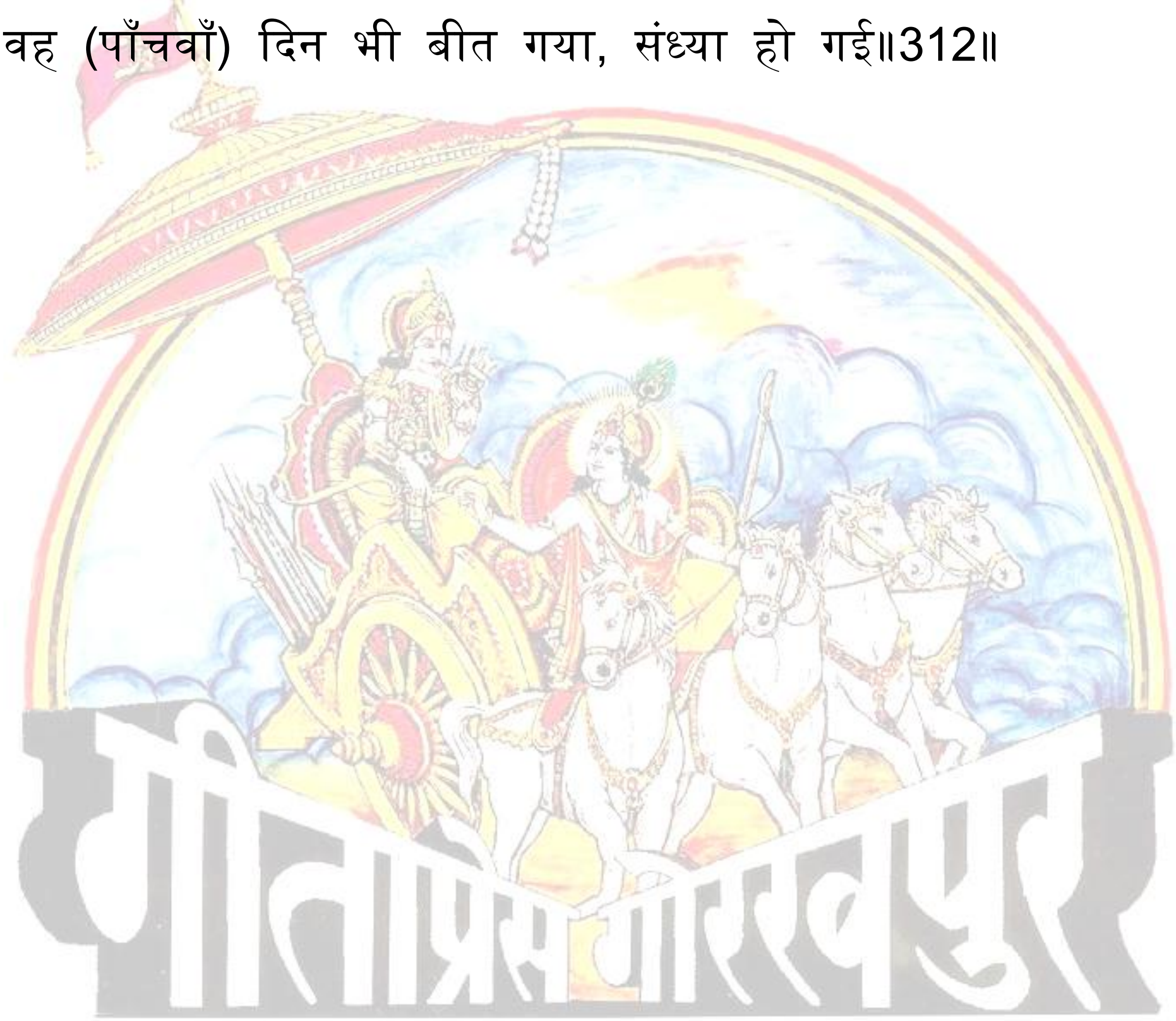

श्री राम-भरत-संवाद, पादुका प्रदान, भरतजी की बिदाई

चौपाई :

* भोर न्हाइ सबु जुरा समाजू। भरत भूमिसुर तेरहुति राजू॥
भल दिन आजु जानि मन माहीं। रामु कृपाल कहत सकुचाहीं॥1॥

भावार्थ:-(अगले छठे दिन) सबेरे स्नान करके भरतजी, ब्राह्मण, राजा जनक और सारा समाज आ जुटा। आज सबको विदा करने के लिए अच्छा दिन है, यह मन में जानकर भी कृपालु श्री रामजी कहने में सकुचा रहे हैं॥1॥

* गुर नृप भरत सभा अवलोकी। सकुचि राम फिरि अवनि बिलोकी॥
सील सराहि सभा सब सोची। कहुँ न राम सम स्वामि सँकोची॥2॥

भावार्थ:-श्री रामचन्द्रजी ने गुरु वशिष्ठजी, राजा जनकजी, भरतजी और सारी सभा की ओर देखा, किन्तु फिर सकुचाकर दृष्टि फेरकर वे पृथ्वी की ओर ताकने लगे। सभा उनके शील की सराहना करके सोचती है कि श्री रामचन्द्रजी के समान संकोची स्वामी कहीं नहीं है॥2॥

* भरत सुजान राम रुख देखी। उठि सप्रेम धरि धीर बिसेषी॥
करि दंडवत कहत कर जोरी। राखीं नाथ सकल रुचि मोरी॥3॥

भावार्थ:-सुजान भरतजी श्री रामचन्द्रजी का रुख देखकर प्रेमपूर्वक उठकर, विशेष रूप से धीरज धारण कर दण्डवत करके हाथ जोड़कर कहने लगे- हे नाथ! आपने मेरी सभी रुचियाँ रखीं॥3॥

* मोहि लगि सहेउ सबहिं संतापू। बहुत भाँति दुखु पावा आपू॥
अब गोसाइँ मोहि देउ रजाई। सेवौं अवध अवधि भरि जाई॥4॥

भावार्थ:-मेरे लिए सब लोगों ने संताप सहा और आपने भी बहुत प्रकार से दुःख पाया। अब स्वामी मुझे आज्ञा दें। मैं जाकर अवधि भर (चौदह वर्ष तक) अवध का सेवन करूँ॥4॥

दोहा :

* जेहिं उपाय पुनि पाय जनु देखै दीनदयाल।
सो सिख देइअ अवधि लगि कोसलपाल कृपाल॥313॥

भावार्थ:-हे दीनदयालु! जिस उपाय से यह दास फिर चरणों का दर्शन करे- हे कोसलाधीश! हे कृपालु! अवधिभर के लिए मुझे वही शिक्षा दीजिए॥313॥

चौपाई :

* पुरजन परिजन प्रजा गोसाईं। सब सुचि सरस सनेहँ सगाईं॥

राउर बदि भल भव दुख दाहू। प्रभु बिनु बादि परम पद लाहू॥1॥

भावार्थ:-हे गोसाईं! आपके प्रेम और संबंध में अवधपुर वासी, कुटुम्बी और प्रजा सभी पवित्र और रस (आनंद) से युक्त हैं। आपके लिए भवदुःख (जन्म-मरण के दुःख) की ज्वाला में जलना भी अच्छा है और प्रभु (आप) के बिना परमपद (मोक्ष) का लाभ भी व्यर्थ है॥1॥

* स्वामि सुजानु जानि सब ही की। रुचि लालसा रहनि जन जी की॥
प्रनतपालु पालिहि सब काहू। देउ दुहू दिसि ओर निबाहू॥2॥

भावार्थ:-हे स्वामी! आप सुजान हैं, सभी के हृदय की और मुझ सेवक के मन की रुचि, लालसा (अभिलाषा) और रहनी जानकर, हे प्रणतपाल! आप सब किसी का पालन करेंगे और हे देव! दोनों ओर अन्त तक निबाहेंगे॥2॥

* अस मोहि सब बिधि भूरि भरोसो। किएँ बिचारु न सोचु खरो सो॥
आरति मोर नाथ कर छोहू। दुहुँ मिलि कीन्ह ढीठु हठि मोहू॥3॥

भावार्थ:-मुझे सब प्रकार से ऐसा बहुत बड़ा भरोसा है। विचार करने पर तिनके के बराबर (जरा सा) भी सोच नहीं रह जाता! मेरी दीनता और स्वामी का स्नेह दोनों ने मिलकर मुझे जबर्दस्ती ढीठ बना दिया है॥3॥

* यह बड़ दोषु दूरि करि स्वामी। तजि सकोच सिखइअ अनुगामी॥
भरत बिनय सुनि सबहिं प्रसंसी। खीर नीर बिबरन गति हंसी॥4॥

भावार्थ:-हे स्वामी! इस बड़े दोष को दूर करके संकोच त्याग कर मुझ सेवक को शिक्षा दीजिए। दूध और जल को अलग-अलग करने में हंसिनी की सी गति वाली भरतजी की विनती सुनकर उसकी सभी ने प्रशंसा की॥4॥

दोहा :

* दीनबंधु सुनि बंधु के बचन दीन छलहीन।
देस काल अवसर सरिस बोले रामु प्रबीन॥314॥

भावार्थ:-दीनबन्धु और परम चतुर श्री रामजी ने भाई भरतजी के दीन और छलरहित वचन सुनकर देश, काल और अवसर के अनुकूल वचन बोले-॥314॥

चौपाई :

* तात तुम्हारि मोरि परिजन की। चिंता गुरहि नृपहि घर बन की॥
माथे पर गुर मुनि मिथिलेसू। हमहि तुम्हहि सपनेहूँ न कलेसू॥1॥

भावार्थ:-हे तात! तुम्हारी, मेरी, परिवार की, घर की और वन की सारी चिंता गुरु वशिष्ठजी और महाराज जनकजी को है। हमारे सिर पर जब गुरुजी, मुनि विश्वामित्रजी और मिथिलापति जनकजी हैं, तब हमें और तुम्हें स्वप्न नें भी क्लेश नहीं है॥1॥

* मोर तुम्हार परम पुरुषारथु। स्वारथु सुजसु धरमु परमारथु॥
पितु आयसु पालिहिं दुहु भाईं। लोक बेद भल भूप भलाईं॥2॥

भावार्थ:-मेरा और तुम्हारा तो परम पुरुषार्थ, स्वार्थ, सुयश, धर्म और परमार्थ इसी में है कि हम दोनों भाई पिताजी की आज्ञा का पालन करें। राजा की भलाई (उनके व्रत की रक्षा) से ही लोक और वेद दोनों में भला है॥2॥

* गुर पितु मातु स्वामि सिख पालें। चलेहुँ कुमग पग परहिं न खालें॥
अस बिचारि सब सोच बिहाई। पालहु अवध अवधि भरि जाई॥3॥

भावार्थ:-गुरु, पिता, माता और स्वामी की शिक्षा (आज्ञा) का पालन करने से कुमार्ग पर भी चलने पर पैर गड्ढे में नहीं पड़ता (पतन नहीं होता)। ऐसा विचार कर सब सोच छोड़कर अवध जाकर अवधिभर उसका पालन करो॥3॥

* देसु कोसु परिजन परिवारू। गुर पद रजहिं लाग छरुभारू॥
तुम्ह मुनि मातु सचिव सिख मानी। पालेहु पुहुमि प्रजा रजधानी॥4॥

भावार्थ:-देश, खजाना, कुटुम्ब, परिवार आदि सबकी जिम्मेदारी तो गुरुजी की चरण रज पर है। तुम तो मुनि वशिष्ठजी, माताओं और मन्त्रियों की शिक्षा मानकर तदनुसार पृथ्वी, प्रजा और राजधानी का पालन (रक्षा) भर करते रहना॥4॥

दोहा :

* मुखिआ मुखु सो चाहिऐ खान पान कहुँ एक।
पालइ पोषइ सकल अँग तुलसी सहित बिबेक॥315॥

भावार्थ:-तुलसीदासजी कहते हैं- (श्री रामजी ने कहा-) मुखिया मुख के समान होना चाहिए, जो खाने-पीने को तो एक (अकेला) है, परन्तु विवेकपूर्वक सब अंगों का पालन-पोषण करता है॥315॥

चौपाई :

* राजधरम सरबसु एतनोई। जिमि मन माहँ मनोरथ गोई॥
बंधु प्रबोधु कीन्ह बहु भाँती। बिनु अधार मन तोषु न साँती॥1॥

भावार्थ:-राजधर्म का सर्वस्व (सार) भी इतना ही है। जैसे मन के भीतर मनोरथ छिपा रहता है। श्री रघुनाथजी ने भाई भरत को बहुत प्रकार से समझाया, परन्तु कोई अवलम्बन पाए बिना उनके मन में न संतोष हुआ, न शान्ति॥1॥

* भरत सील गुर सचिव समाजू। सकुच सनेह बिबस रघुराजू॥
प्रभु करि कृपा पाँवरीं दीन्हीं। सादर भरत सीस धरि लीन्हीं॥2॥

भावार्थ:-इधर तो भरतजी का शील (प्रेम) और उधर गुरुजनों, मंत्रियों तथा समाज की उपस्थिति! यह देखकर श्री रघुनाथजी संकोच तथा स्नेह के विशेष वशीभूत हो गए (अर्थात भरतजी के प्रेमवश उन्हें पाँवरी देना चाहते हैं, किन्तु साथ ही गुरु आदि का संकोच भी होता है।) आखिर (भरतजी के प्रेमवश) प्रभु श्री रामचन्द्रजी ने कृपा कर खड़ाऊँ दे दीं और भरतजी ने उन्हें आदरपूर्वक सिर पर धारण कर लिया॥2॥

* चरनपीठ करुनानिधान के। जनु जुग जामिक प्रजा प्रान के॥
संपुट भरत सनेह रतन के। आखर जुग जनु जीव जतन के॥3॥

भावार्थ:-करुणानिधान श्री रामचंद्रजी के दोनों ख़ड़ाऊँ प्रजा के प्राणों की रक्षा के लिए मानो दो पहरेदार हैं। भरतजी के प्रेमरूपी रत्न के लिए मानो डिब्बा है और जीव के साधन के लिए मानो राम-नाम के दो अक्षर हैं॥3॥

* कुल कपाट कर कुसल करम के। बिमल नयन सेवा सुधरम के॥
भरत मुदित अवलंब लहे तें। अस सुख जस सिय रामु रहे तें॥4॥

भावार्थ:-रघुकुल (की रक्षा) के लिए दो किवाड़ हैं। कुशल (श्रेष्ठ) कर्म करने के लिए दो हाथ की भाँति (सहायक) हैं और सेवा रूपी श्रेष्ठ धर्म के सुझाने के लिए निर्मल नेत्र हैं। भरतजी इस

अवलंब के मिल जाने से परम आनंदित हैं। उन्हें ऐसा ही सुख हुआ, जैसा श्री सीता-रामजी के रहने से होता है॥4॥

दोहा :

* मागेउ बिदा प्रनामु करि राम लिए उर लाइ।
लोग उचाटे अमरपति कुटिल कुअवसरु पाइ॥316॥

भावार्थ:-भरतजी ने प्रणाम करके विदा माँगी, तब श्री रामचंद्रजी ने उन्हें हृदय से लगा लिया। इधर कुटिल इंद्र ने बुरा मौका पाकर लोगों का उच्चाटन कर दिया॥316॥

चौपाई :

* सो कुचालि सब कहँ भइ नीकी। अवधि आस सम जीवनि जी की॥
नतरु लखन सिय राम बियोगा। हहरि मरत सब लोग कुरोगा॥1॥

भावार्थ:-वह कुचाल भी सबके लिए हितकर हो गई। अवधि की आशा के समान ही वह जीवन के लिए संजीवनी हो गई। नहीं तो (उच्चाटन न होता तो) लक्ष्मणजी, सीताजी और श्री रामचंद्रजी के वियोग रूपी बुरे रोग से सब लोग घबड़ाकर (हाय-हाय करके) मर ही जाते॥1॥

* रामकृपाँ अवरेब सुधारी। बिबुध धारि भइ गुनद गोहारी॥
भेंटत भुज भरि भाइ भरत सो। राम प्रेम रसु न कहि न परत सो॥2॥

भावार्थ:-श्री रामजी की कृपा ने सारी उलझन सुधार दी। देवताओं की सेना जो लूटने आई थी, वही गुणदायक (हितकरी) और रक्षक बन गई। श्री रामजी भुजाओं में भरकर भाई भरत से

मिल रहे हैं। श्री रामजी के प्रेम का वह रस (आनंद) कहते नहीं बनता॥2॥

* तन मन बचन उमग अनुरागा। धीर धुरंधर धीरजु त्यागा॥

बारिज लोचन मोचत बारी। देखि दसा सुर सभा दुखारी॥3॥

भावार्थ:-तन, मन और वचन तीनों में प्रेम उमड़ पड़ा। धीरज की धुरी को धारण करने वाले श्री रघुनाथजी ने भी धीरज त्याग दिया। वे कमल सदृश नेत्रों से (प्रेमाश्रुओं का) जल बहाने लगे। उनकी यह दशा देखकर देवताओं की सभा (समाज) दुःखी हो गई॥3॥

* मुनिगन गुर धुर धीर जनक से। ग्यान अनल मन कसें कनक से॥

जे बिरंचि निरलेप उपाए। पदुम पत्र जिमि जग जल जाए॥4॥

भावार्थ:-मुनिगण, गुरु वशिष्ठजी और जनकजी सरीखे धीरधुरन्धर जो अपने मनों को ज्ञान रूपी अग्नि में सोने के समान कस चुके थे, जिनको ब्रह्माजी ने निर्लेप ही रचा और जो जगत्‌ रूपी जल में कमल के पत्ते की तरह ही (जगत्‌ में रहते हुए भी जगत्‌ से अनासक्त) पैदा हुए॥4॥

दोहा :

* तेउ बिलोकि रघुबर भरत प्रीति अनूप अपार।

भए मगन मन तन बचन सहित बिराग बिचार॥317॥

भावार्थ:-वे भी श्री रामजी और भरतजी के उपमारहित अपार प्रेम को देखकर वैराग्य और विवेक सहित तन, मन, वचन से उस प्रेम में मग्न हो गए॥317॥

चौपाई :

* जहाँ जनक गुरु गति मति भोरी। प्राकृत प्रीति कहत बड़ि खोरी॥
बरनत रघुबर भरत बियोगू। सुनि कठोर कबि जानिहि लोगू॥1॥

भावार्थ:-जहाँ जनकजी और गुरु वशिष्ठजी की बुद्धि की गति कुण्ठित हो, उस दिव्य प्रेम को प्राकृत (लौकिक) कहने में बड़ा दोष है। श्री रामचंद्रजी और भरतजी के वियोग का वर्णन करते सुनकर लोग कवि को कठोर हृदय समझेंगे॥1॥

* सो सकोच रसु अकथ सुबानी। समउ सनेहु सुमिरि सकुचानी॥
भेंटि भरतु रघुबर समुझाए। पुनि रिपुदवनु हरषि हियँ लाए॥2॥

भावार्थ:-वह संकोच रस अकथनीय है। अतएव कवि की सुंदर वाणी उस समय उसके प्रेम को स्मरण करके सकुचा गई। भरतजी को भेंट कर श्री रघुनाथजी ने उनको समझाया। फिर हर्षित होकर शत्रुघ्नजी को हृदय से लगा लिया॥2॥

* सेवक सचिव भरत रुख पाई। निज निज काज लगे सब जाई॥
सुनि दारुन दुखु दुहूँ समाजा। लगे चलन के साजन साजा॥3॥

भावार्थ:-सेवक और मंत्री भरतजी का रुख पाकर सब अपने-अपने काम में जा लगे। यह सुनकर दोनों समाजों में दारुण दुःख छा गया। वे चलने की तैयारियाँ करने लगे॥3॥

* प्रभु पद पदुम बंदि दोउ भाई। चले सीस धरि राम रजाई॥
मुनि तापस बनदेव निहोरी। सब सनमानि बहोरि बहोरी॥4॥

भावार्थ:-प्रभु के चरणकमलों की वंदना करके तथा श्री रामजी की आज्ञा को सिर पर रखकर भरत-शत्रुघ्न दोनों भाई चले। मुनि, तपस्वी और वनदेवता सबका बार-बार सम्मान करके उनकी विनती की॥4॥

दोहा :

* लखनहि भेंटि प्रनामु करि सिर धरि सिय पद धूरि।
चले सप्रेम असीस सुनि सकल सुमंगल मूरि॥318॥

भावार्थ:-फिर लक्ष्मणजी को क्रमशः भेंटकर तथा प्रणाम करके और सीताजी के चरणों की धूलि को सिर पर धारण करके और समस्त मंगलों के मूल आशीर्वाद सुनकर वे प्रेमसहित चले॥318॥

चौपाई :

* सानुज राम नृपहि सिर नाई। कीन्हि बहुत बिधि बिनय बड़ाई॥
देव दया बस बड़ दुखु पायउ। सहित समाज काननहिं आयउ॥1॥

भावार्थ:-छोटे भाई लक्ष्मणजी समेत श्री रामजी ने राजा जनकजी को सिर नवाकर उनकी बहुत प्रकार से विनती और बड़ाई की (और कहा-) हे देव! दयावश आपने बहुत दुःख पाया। आप समाज सहित वन में आए॥1॥

* पुर पगु धारिअ देइ असीसा। कीन्ह धीर धरि गवनु महीसा॥
मुनि महिदेव साधु सनमाने। बिदा किए हरि हर सम जाने॥2॥

भावार्थ:-अब आशीर्वाद देकर नगर को पधारिए। यह सुन राजा जनकजी ने धीरज धरकर गमन किया। फिर श्री रामचंद्रजी ने मुनि, ब्राह्मण और साधुओं को विष्णु और शिव के समान जानकर सम्मान करके उनको विदा किया॥2॥

* सासु समीप गए दोउ भाई। फिरे बंदि पग आसिष पाई॥
कौसिक बामदेव जाबाली। पुरजन परिजन सचिव सुचाली॥3॥

भावार्थ:-तब श्री राम-लक्ष्मण दोनों भाई सास (सुनयनाजी) के पास गए और उनके चरणों की वंदना करके आशीर्वाद पाकर

लौट आए। फिर विश्वामित्र, वामदेव, जाबालि और शुभ आचरण वाले कुटुम्बी, नगर निवासी और मंत्री-॥3॥

* जथा जोगु करि बिनय प्रनामा। बिदा किए सब सानुज रामा॥
नारि पुरुष लघु मध्य बड़ेरे। सब सनमानि कृपानिधि फेरे॥4॥

भावार्थ:-सबको छोटे भाई लक्ष्मणजी सहित श्री रामचंद्रजी ने यथायोग्य विनय एवं प्रणाम करके विदा किया। कृपानिधान श्री रामचंद्रजी ने छोटे, मध्यम (मझले) और बड़े सभी श्रेणी के स्त्री-पुरुषों का सम्मान करके उनको लौटाया॥4॥

दोहा :

* भरत मातु पद बंदि प्रभु सुचि सनेहँ मिलि भेंटि।
बिदा कीन्ह सजि पालकी सकुच सोच सब मेटि॥319॥

भावार्थ:-भरत की माता कैकेयी के चरणों की वंदना करके प्रभु श्री रामचंद्रजी ने पवित्र (निश्छल) प्रेम के साथ उनसे मिल-भेंट कर तथा उनके सारे संकोच और सोच को मिटाकर पालकी सजाकर उनको विदा किया॥319॥

चौपाई :

* परिजन मातु पितहि मिलि सीता। फिरी प्रानप्रिय प्रेम पुनीता॥
करि प्रनामु भेंटीं सब सासू। प्रीति कहत कबि हियँ न हुलासू॥1॥

भावार्थ:-प्राणप्रिय पति श्री रामचंद्रजी के साथ पवित्र प्रेम करने वाली सीताजी नैहर के कुटुम्बियों से तथा माता-पिता से मिलकर लौट आईं। फिर प्रणाम करके सब सासुओं से गले लगकर मिलीं। उनके प्रेम का वर्णन करने के लिए कवि के हृदय में हुलास (उत्साह) नहीं होता॥1॥

* सुनि सिख अभिमत आसिष पाई। रही सीय दुहु प्रीति समाई॥

रघुपति पटु पालकीं मगाईं। करि प्रबोध सब मातु चढ़ाईं॥2॥

भावार्थ:-उनकी शिक्षा सुनकर और मनचाहा आशीर्वाद पाकर सीताजी सासुओं तथा माता-पिता दोनों ओर की प्रीति में समाई (बहुत देर तक निमग्न) रहीं! (तब) श्री रघुनाथजी ने सुंदर पालकियाँ मँगवाईं और सब माताओं को आश्वासन देकर उन पर चढ़ाया॥2॥

* बार बार हिलि मिलि दुहु भाईं। सम सनेहँ जननीं पहुँचाईं॥
साजि बाजि गज बाहन नाना। भरत भूप दल कीन्ह पयाना॥3॥

भावार्थ:-दोनों भाइयों ने माताओं से समान प्रेम से बार-बार मिल-जुलकर उनको पहुँचाया। भरतजी और राजा जनकजी के दलों ने घोड़े, हाथी और अनेकों तरह की सवारियाँ सजाकर प्रस्थान किया॥3॥

* हृदयँ रामु सिय लखन समेता। चले जाहिं सब लोग अचेता॥
बसह बाजि गज पसु हियँ हारें। चले जाहिं परबस मन मारें॥4॥

भावार्थ:-सीताजी एवं लक्ष्मणजी सहित श्री रामचंद्रजी को हृदय में रखकर सब लोग बेसुध हुए चले जा रहे हैं। बैल-घोड़े, हाथी आदि पशु हृदय में हारे (शिथिल) हुए परवश मन मारे चले जा रहे हैं॥4॥

दोहा :

* गुर गुरतिय पद बंदि प्रभु सीता लखन समेत।
फिरे हरष बिसमय सहित आए परन निकेत॥320॥

भावार्थ:-गुरु वशिष्ठजी और गुरु पत्नी अरुन्धतीजी के चरणों की वंदना करके सीताजी और लक्ष्मणजी सहित प्रभु श्री रामचंद्रजी हर्ष और विषाद के साथ लौटकर पर्णकुटी पर आए॥320॥

चौपाई :

गीताप्रेस गोरखपुर

* बिदा कीन्ह सनमानि निषादू। चलेउ हृदयँ बड़ बिरह बिषादू॥
कोल किरात भिल्ल बनचारी। फेरे फिरे जोहारि जोहारी॥1॥

भावार्थ:-फिर सम्मान करके निषादराज को विदा किया। वह चला तो सही, किन्तु उसके हृदय में विरह का भारी विषाद था। फिर श्री रामजी ने कोल, किरात, भील आदि वनवासी लोगों को लौटाया। वे सब जोहार-जोहार कर (वंदना कर-करके) लौटे॥1॥

* प्रभु सिय लखन बैठि बट छाहीं। प्रिय परिजन बियोग बिलखाहीं॥
भरत सनेह सुभाउ सुबानी। प्रिया अनुज सन कहत बखानी॥2॥

भावार्थ:-प्रभु श्री रामचंद्रजी, सीताजी और लक्ष्मणजी बड़ की छाया में बैठकर प्रियजन एवं परिवार के वियोग से दुःखी हो रहे हैं। भरतजी के स्नेह, स्वभाव और सुंदर वाणी को बखान-बखान कर वे प्रिय पत्नी सीताजी और छोटे भाई लक्ष्मणजी से कहने लगे॥2॥

* प्रीति प्रतीति बचन मन करनी। श्रीमुख राम प्रेम बस बरनी॥
तेहि अवसर खग मृग जल मीना। चित्रकूट चर अचर मलीना॥3॥

भावार्थ:-श्री रामचंद्रजी ने प्रेम के वश होकर भरतजी के वचन, मन, कर्म की प्रीति तथा विश्वास का अपने श्रीमुख से वर्णन किया। उस समय पक्षी, पशु और जल की मछलियाँ, चित्रकूट के सभी चेतन और जड़ जीव उदास हो गए॥3॥

* बिबुध बिलोकि दसा रघुबर की। बरषि सुमन कहि गति घर घर की॥

प्रभु प्रनामु करि दीन्ह भरोसो। चले मुदित मन डर न खरो सो॥4॥

भावार्थ:-श्री रघुनाथजी की दशा देखकर देवताओं ने उन पर फूल बरसाकर अपनी घर-घर की दशा कही (दुखड़ा सुनाया)। प्रभु श्री रामचंद्रजी ने उन्हें प्रणाम कर आश्वासन दिया। तब वे प्रसन्न होकर चले, मन में जरा सा भी डर न रहा॥4॥

गीताप्रेस गोरखपुर

भरतजी का अयोध्या लौटना, भरतजी द्वारा पादुका की स्थापना, नन्दिग्राम में निवास और श्री भरतजी के चरित्र श्रवण की महिमा

दोहा :

* सानुज सीय समेत प्रभु राजत परन कुटीर।
भगति ग्यानु बैराग्य जनु सोहत धरें सरीर॥321॥

भावार्थ:-छोटे भाई लक्ष्मणजी और सीताजी समेत प्रभु श्री रामचंद्रजी पर्णकुटी में ऐसे सुशोभित हो रहे हैं मानो वैराग्य, भक्ति और ज्ञान शरीर धारण कर के शोभित हो रहे हों॥321॥

चौपाई :

* मुनि महिसुर गुर भरत भुआलू। राम बिरहँ सबु साजु बिहालू।
प्रभु गुन ग्राम गनत मन माहीं। सब चुपचाप चले मग जाहीं॥1॥

भावार्थ:-मुनि, ब्राह्मण, गुरु वशिष्ठजी, भरतजी और राजा जनकजी सारा समाज श्री रामचन्द्रजी के विरह में विह्वल है। प्रभु के गुण समूहों का मन में स्मरण करते हुए सब लोग मार्ग में चुपचाप चले जा रहे हैं॥1॥

* जमुना उतरि पार सबु भयऊ। सो बासरु बिनु भोजन गयऊ॥
उतरि देवसरि दूसर बासू। रामसखाँ सब कीन्ह सुपासू॥2॥

भावार्थ:-(पहले दिन) सब लोग यमुनाजी उतरकर पार हुए। वह दिन बिना भोजन के ही बीत गया। दूसरा मुकाम गंगाजी उतरकर (गंगापार श्रृंगवेरपुर में) हुआ। वहाँ राम सखा निषादराज ने सब सुप्रबंध कर दिया॥2॥

* सई उतरि गोमतीं नहाए। चौथें दिवस अवधपुर आए॥
जनकु रहे पुर बासर चारी। राज काज सब साज सँभारी॥3॥

भावार्थ:-फिर सई उतरकर गोमतीजी में स्नान किया और चौथे दिन सब अयोध्याजी जा पहुँचे। जनकजी चार दिन अयोध्याजी में रहे और राजकाज एवं सब साज-सामान को सम्हालकर,॥3॥

* सौंपि सचिव गुर भरतहिं राजू। तेरहुति चले साजि सबु साजू॥
नगर नारि नर गुर सिख मानी। बसे सुखेन राम रजधानी॥4॥

भावार्थ:-तथा मंत्री, गुरुजी तथा भरतजी को राज्य सौंपकर, सारा साज-सामान ठीक करके तिरहुत को चले। नगर के स्त्री-पुरुष गुरुजी की शिक्षा मानकर श्री रामजी की राजधानी अयोध्याजी में सुखपूर्वक रहने लगे॥4॥

दोहा :

* राम दरस लगि लोग सब करत नेम उपबास।
तजि तजि भूषन भोग सुख जिअत अवधि कीं आस॥322॥

भावार्थ:-सब लोग श्री रामचन्द्रजी के दर्शन के लिए नियम और उपवास करने लगे। वे भूषण और भोग-सुखों को छोड़-छाड़कर अवधि की आशा पर जी रहे हैं॥322॥

चौपाई :

* सचिव सुसेवक भरत प्रबोधे। निज निज काज पाइ सिख ओधे॥
पुनि सिख दीन्हि बोलि लघु भाई। सौंपी सकल मातु सेवकाई॥1॥

भावार्थ:-भरतजी ने मंत्रियों और विश्वासी सेवकों को समझाकर उद्यत किया। वे सब सीख पाकर अपने-अपने काम में लग गए। फिर छोटे भाई शत्रुघ्नजी को बुलाकर शिक्षा दी और सब माताओं की सेवा उनको सौंपी॥1॥

* भूसुर बोलि भरत कर जोरे। करि प्रनाम बय बिनय निहोरे॥
ऊँच नीच कारजु भल पोचू। आयसु देब न करब सँकोचू॥2॥

भावार्थ:-ब्राह्मणों को बुलाकर भरतजी ने हाथ जोड़कर प्रणाम कर अवस्था के अनुसार विनय और निहोरा किया कि आप लोग ऊँचा-नीचा (छोटा-बड़ा), अच्छा-मन्दा जो कुछ भी कार्य हो, उसके लिए आज्ञा दीजिएगा। संकोच न कीजिएगा॥2॥

* परिजन पुरजन प्रजा बोलाए। समाधानु करि सुबस बसाए॥
सानुज गे गुर गेहँ बहोरी। करि दंडवत कहत कर जोरी॥3॥

भावार्थ:-भरतजी ने फिर परिवार के लोगों को, नागरिकों को तथा अन्य प्रजा को बुलाकर, उनका समाधान करके उनको सुखपूर्वक बसाया। फिर छोटे भाई शत्रुघ्नजी सहित वे गुरुजी के घर गए और दंडवत करके हाथ जोड़कर बोले-॥3॥

* आयसु होइ त रहौं सनेमा। बोले मुनि तन पुलकि सपेमा॥
समुझब कहब करब तुम्ह जोई। धरम सारु जग होइहि सोई॥4॥

भावार्थ:-आज्ञा हो तो मैं नियमपूर्वक रहूँ! मुनि वशिष्ठजी पुलकित शरीर हो प्रेम के साथ बोले- हे भरत! तुम जो कुछ समझोगे, कहोगे और करोगे, वही जगत में धर्म का सार होगा॥4॥

दोहा :

* सुनि सिख पाइ असीस बड़ि गनक बोलि दिनु साधि।
सिंघासन प्रभु पादुका बैठारे निरुपाधि॥323॥

भावार्थ:-भरतजी ने यह सुनकर और शिक्षा तथा बड़ा आशीर्वाद पाकर ज्योतिषियों को बुलाया और दिन (अच्छा मुहूर्त) साधकर प्रभु की चरणपादुकाओं को निर्विघ्नतापूर्वक सिंहासन पर विराजित कराया॥323॥

चौपाई :

* राम मातु गुर पद सिरु नाई। प्रभु पद पीठ रजायसु पाई॥
नंदिगाँव करि परन कुटीरा। कीन्ह निवासु धरम धुर धीरा॥1॥

भावार्थ:-फिर श्री रामजी की माता कौसल्याजी और गुरुजी के चरणों में सिर नवाकर और प्रभु की चरणपादुकाओं की आज्ञा पाकर धर्म की धुरी धारण करने में धीर भरतजी ने नन्दिग्राम में पर्णकुटी बनाकर उसी में निवास किया॥1॥

* जटाजूट सिर मुनिपट धारी। महि खनि कुस साँथरी सँवारी॥
असन बसन बासन ब्रत नेमा। करत कठिन रिषिधरम सप्रेमा॥2॥

भावार्थ:-सिर पर जटाजूट और शरीर में मुनियों के (वल्कल) वस्त्र धारण कर, पृथ्वी को खोदकर उसके अंदर कुश की आसनी बिछाई। भोजन, वस्त्र, बरतन, व्रत, नियम सभी बातों में वे ऋषियों के कठिन धर्म का प्रेम सहित आचरण करने लगे॥2॥

* भूषन बसन भोग सुख भूरी। मन तन बचन तजे तिन तूरी॥

अवध राजु सुर राजु सिहाई। दसरथ धनु सुनि धनदु लजाई॥3॥

भावार्थ:-गहने-कपड़े और अनेकों प्रकार के भोग-सुखों को मन, तन और वचन से तृण तोड़कर (प्रतिज्ञा करके) त्याग दिया। जिस अयोध्या के राज्य को देवराज इन्द्र सिहाते थे और (जहाँ के राजा) दशरथजी की सम्पत्ति सुनकर कुबेर भी लजा जाते थे,॥3॥

* तेहिं पुर बसत भरत बिनु रागा। चंचरीक जिमि चंपक बागा॥
रमा बिलासु राम अनुरागी। तजत बमन जिमि जन बड़भागी॥4॥

भावार्थ:-उसी अयोध्यापुरी में भरतजी अनासक्त होकर इस प्रकार निवास कर रहे हैं, जैसे चम्पा के बाग में भौंरा। श्री रामचन्द्रजी के प्रेमी बड़भागी पुरुष लक्ष्मी के विलास (भोगैश्वर्य) को वमन की भाँति त्याग देते हैं (फिर उसकी ओर ताकते भी नहीं)॥4॥

दोहा :

* राम प्रेम भाजन भरतु बड़े न एहिं करतूति।
चातक हंस सराहिअत टेंक बिबेक बिभूति॥324॥

भावार्थ:-फिर भरतजी तो (स्वयं) श्री रामचन्द्रजी के प्रेम के पात्र हैं। वे इस (भोगैश्वर्य त्याग रूप) करनी से बड़े नहीं हुए (अर्थात उनके लिए यह कोई बड़ी बात नहीं है)। (पृथ्वी पर का जल न पीने की) टेक से चातक की और नीर-क्षीर-विवेक की विभूति (शक्ति) से हंस की भी सराहना होती है॥324॥

चौपाई :

* देह दिनहुँ दिन दूबरि होई। घटइ तेजु बलु मुखछबि सोई॥
नित नव राम प्रेम पनु पीना। बढ़त धरम दलु मनु न मलीना॥1॥

भावार्थ:-भरतजी का शरीर दिनों-दिन दुबला होता जाता है। तेज (अन्न, घृत आदि से उत्पन्न होने वाला मेद*) घट रहा है। बल

और मुख छबि (मुख की कान्ति अथवा शोभा) वैसी ही बनी हुई है। राम प्रेम का प्रण नित्य नया और पुष्ट होता है, धर्म का दल बढ़ता है और मन उदास नहीं है (अर्थात प्रसन्न है)॥1॥

* संस्कृत कोष में 'तेज' का अर्थ मेद मिलता है और यह अर्थ लेने से 'घटइ' के अर्थ में भी किसी प्रकार की खींच-तान नहीं करनी पड़ती।

* जिमि जलु निघटत सरद प्रकासे। बिलसत बेतस बनज बिकासे॥
सम दम संजम नियम उपासा। नखत भरत हिय बिमल अकासा॥2॥

भावार्थ:-जैसे शरद ऋतु के प्रकाश (विकास) से जल घटता है, किन्तु बेंत शोभा पाते हैं और कमल विकसित होते हैं। शम, दम, संयम, नियम और उपवास आदि भरतजी के हृदयरूपी निर्मल आकाश के नक्षत्र (तारागण) हैं॥2॥

* ध्रुव बिस्वासु अवधि राका सी। स्वामि सुरति सुरबीथि बिकासी॥
राम पेम बिधु अचल अदोषा। सहित समाज सोह नित चोखा॥3॥

भावार्थ:-विश्वास ही (उस आकाश में) ध्रुव तारा है, चौदह वर्ष की अवधि (का ध्यान) पूर्णिमा के समान है और स्वामी श्री रामजी की सुरति (स्मृति) आकाशगंगा सरीखी प्रकाशित है। राम प्रेम ही अचल (सदा रहने वाला) और कलंकरहित चन्द्रमा है। वह अपने समाज (नक्षत्रों) सहित नित्य सुंदर सुशोभित है॥3॥

* भरत रहनि समुझनि करतूती। भगति बिरति गुन बिमल बिभूती॥
बरनत सकल सुकबि सकुचाहीं। सेस गनेस गिरा गमु नाहीं॥4॥

भावार्थ:-भरतजी की रहनी, समझ, करनी, भक्ति, वैराग्य, निर्मल, गुण और ऐश्वर्य का वर्णन करने में सभी सुकवि सकुचाते हैं, क्योंकि वहाँ (औरों की तो बात ही क्या) स्वयं शेष, गणेश और सरस्वती की भी पहुँच नहीं है॥4॥

दोहा :

* नित पूजत प्रभु पाँवरी प्रीति न हृदयँ समाति।
मागि मागि आयसु करत राज काज बहु भाँति॥325॥

भावार्थ:-वे नित्य प्रति प्रभु की पादुकाओं का पूजन करते हैं, हृदय में प्रेम समाता नहीं है। पादुकाओं से आज्ञा माँग-माँगकर वे बहुत प्रकार (सब प्रकार के) राज-काज करते हैं॥325॥

चौपाई :

* पुलक गात हियँ सिय रघुबीरू। जीह नामु जप लोचन नीरू॥
लखन राम सिय कानन बसहीं। भरतु भवन बसि तप तनु कसहीं॥1॥

भावार्थ:-शरीर पुलकित है, हृदय में श्री सीता-रामजी हैं। जीभ राम नाम जप रही है, नेत्रों में प्रेम का जल भरा है। लक्ष्मणजी, श्री रामजी और सीताजी तो वन में बसते हैं, परन्तु भरतजी घर ही में रहकर तप के द्वारा शरीर को कस रहे हैं॥1॥

* दोउ दिसि समुझि कहत सबु लोगू। सब बिधि भरत सराहन जोगू॥

सुनि ब्रत नेम साधु सकुचाहीं। देखि दसा मुनिराज लजाहीं॥2॥

भावार्थ:-दोनों ओर की स्थिति समझकर सब लोग कहते हैं कि भरतजी सब प्रकार से सराहने योग्य हैं। उनके व्रत और नियमों को सुनकर साधु-संत भी सकुचा जाते हैं और उनकी स्थिति देखकर मुनिराज भी लज्जित होते हैं॥2॥

* परम पुनीत भरत आचरनू। मधुर मंजु मुद मंगल करनू॥
हरन कठिन कलि कलुष कलेसू। महामोह निसि दलन दिनेसू॥3॥

भावार्थ:-भरतजी का परम पवित्र आचरण (चरित्र) मधुर, सुंदर और आनंद-मंगलों का करने वाला है। कलियुग के कठिन पापों और क्लेशों को हरने वाला है। महामोह रूपी रात्रि को नष्ट करने के लिए सूर्य के समान है॥3॥

* पाप पुंज कुंजर मृगराजू। समन सकल संताप समाजू॥
जन रंजन भंजन भव भारू। राम सनेह सुधाकर सारू॥4॥

भावार्थ:-पाप समूह रूपी हाथी के लिए सिंह है। सारे संतापों के दल का नाश करने वाला है। भक्तों को आनंद देने वाला और भव के भार (संसार के दुःख) का भंजन करने वाला तथा श्री राम प्रेम रूपी चन्द्रमा का सार (अमृत) है॥4॥

छन्द :

* सिय राम प्रेम पियूष पूरन होत जनमु न भरत को।
मुनि मन अगम जम नियम सम दम बिषम ब्रत आचरत को॥
दुख दाह दारिद दंभ दूषन सुजस मिस अपहरत को।
कलिकाल तुलसी से सठन्हि हठि राम सनमुख करत को॥

भावार्थ:-श्री सीतारामजी के प्रेमरूपी अमृत से परिपूर्ण भरतजी का जन्म यदि न होता, तो मुनियों के मन को भी अगम यम, नियम, शम, दम आदि कठिन व्रतों का आचरण कौन करता?

दुःख, संताप, दरिद्रता, दम्भ आदि दोषों को अपने सुयश के बहाने कौन हरण करता? तथा कलिकाल में तुलसीदास जैसे शठों को हठपूर्वक कौन श्री रामजी के सम्मुख करता?

सोरठा :

* भरत चरित करि नेमु तुलसी जो सादर सुनहिं।
सीय राम पद पेमु अवसि होइ भव रस बिरति॥326॥

भावार्थ:-तुलसीदासजी कहते हैं- जो कोई भरतजी के चरित्र को नियम से आदरपूर्वक सुनेंगे, उनको अवश्य ही श्रीसीतारामजी के चरणों में प्रेम होगा और सांसारिक विषय रस से वैराग्य होगा॥326॥

मासपारायण, इक्कीसवाँ विश्राम

इति श्रीमद्रामचरितमानसे सकलकलिकलुषविध्वंसने द्वितीयः सोपानः समाप्तः। कलियुग के सम्पूर्ण पापों को विध्वंस करने वाले श्री रामचरित मानस का यह दूसरा सोपान समाप्त हुआ॥

अयोध्याकाण्ड समाप्त

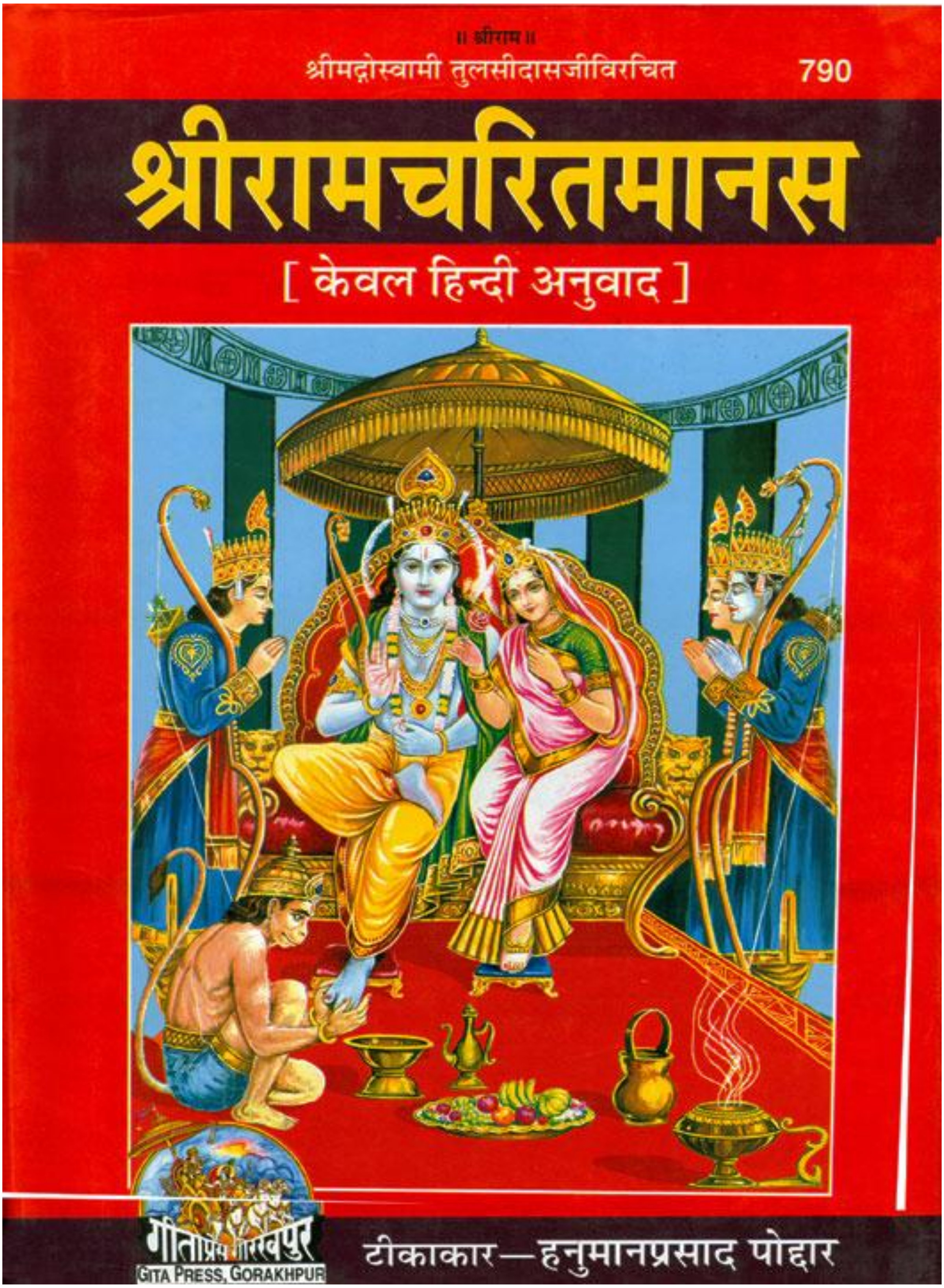

॥ श्रीराम ॥

श्रीमद्गोस्वामी तुलसीदासजीविरचित 790

श्रीरामचरितमानस

[केवल हिन्दी अनुवाद]

गीताप्रेस गोरखपुर
GITA PRESS, GORAKHPUR

टीकाकार—हनुमानप्रसाद पोद्दार

श्रीरामचरितमानस

अरण्यकाण्ड

तृतीय सोपान-मंगलाचरण

श्लोक :

* मूलं धर्मतरोर्विवेकजलधेः पूर्णेन्दुमानन्ददं
वैराग्याम्बुजभास्करं ह्यघघनध्वान्तापहं तापहम्।
मोहाम्भोधरपूगपाटनविधौ स्वःसम्भवं शंकरं
वंदे ब्रह्मकुलं कलंकशमनं श्री रामभूपप्रियम्॥1॥

भावार्थ:-धर्म रूपी वृक्ष के मूल, विवेक रूपी समुद्र को आनंद देने वाले पूर्णचन्द्र, वैराग्य रूपी कमल के (विकसित करने वाले) सूर्य, पाप रूपी घोर अंधकार को निश्चय ही मिटाने वाले, तीनों तापों को हरने वाले, मोह रूपी बादलों के समूह को छिन्न-भिन्न करने की विधि (क्रिया) में आकाश से उत्पन्न पवन स्वरूप, ब्रह्माजी के वंशज (आत्मज) तथा कलंकनाशक, महाराज श्री रामचन्द्रजी के प्रिय श्री शंकरजी की मैं वंदना करता हूँ॥1॥

* सान्द्रानन्दपयोदसौभगतनुं पीताम्बरं सुंदरं
पाणौ बाणशरासनं कटिलसत्तूणीरभारं वरम्।

राजीवायतलोचनं धृतजटाजूटेन संशोभितं

सीतालक्ष्मणसंयुतं पथिगतं रामाभिरामं भजे॥2॥

भावार्थ:-जिनका शरीर जलयुक्त मेघों के समान सुंदर (श्यामवर्ण) एवं आनंदघन है, जो सुंदर (वल्कल का) पीत वस्त्र धारण किए हैं, जिनके हाथों में बाण और धनुष हैं, कमर उत्तम तरकस के भार से सुशोभित है, कमल के समान विशाल नेत्र हैं और मस्तक पर जटाजूट धारण किए हैं, उन अत्यन्त शोभायमान श्री सीताजी और लक्ष्मणजी सहित मार्ग में चलते हुए आनंद देने वाले श्री रामचन्द्रजी को मैं भजता हूँ॥2॥

सोरठा :

* उमा राम गुन गूढ़ पंडित मुनि पावहिं बिरति।

पावहिं मोह बिमूढ़ जे हरि बिमुख न धर्म रति॥

भावार्थ:-हे पार्वती! श्री रामजी के गुण गूढ़ हैं, पण्डित और मुनि उन्हें समझकर वैराग्य प्राप्त करते हैं, परन्तु जो भगवान से विमुख हैं और जिनका धर्म में प्रेम नहीं है, वे महामूढ़ (उन्हें सुनकर) मोह को प्राप्त होते हैं।

*चौपाई :

पुर नर भरत प्रीति मैं गाई। मति अनुरूप अनूप सुहाई॥

अब प्रभु चरित सुनहु अति पावन। करत जे बन सुर नर मुनि भावन॥1॥

भावार्थ:-पुरवासियों के और भरतजी के अनुपम और सुंदर प्रेम का मैंने अपनी बुद्धि के अनुसार गान किया। अब देवता, मनुष्य और मुनियों के मन को भाने वाले प्रभु श्री रामचन्द्रजी के वे अत्यन्त पवित्र चरित्र सुनो, जिन्हें वे वन में कर रहे है

जयंत की कुटिलता और फल प्राप्ति

* एक बार चुनि कुसुम सुहाए। निज कर भूषन राम बनाए॥

सीतहि पहिराए प्रभु सादर। बैठे फटिक सिला पर सुंदर॥2॥

भावार्थ:-एक बार सुंदर फूल चुनकर श्री रामजी ने अपने हाथों से भाँति-भाँति के गहने बनाए और सुंदर स्फटिक शिला पर बैठे हुए प्रभु ने आदर के साथ वे गहने श्री सीताजी को पहनाए॥2॥

* सुरपति सुत धरि बायस बेषा। सठ चाहत रघुपति बल देखा॥

जिमि पिपीलिका सागर थाहा। महा मंदमति पावन चाहा॥3॥

भावार्थ:-देवराज इन्द्र का मूर्ख पुत्र जयन्त कौए का रूप धरकर श्री रघुनाथजी का बल देखना चाहता है। जैसे महान मंदबुद्धि चींटी समुद्र का थाह पाना चाहती हो॥3॥

*सीता चरन चोंच हति भागा। मूढ़ मंदमति कारन कागा॥

चला रुधिर रघुनायक जाना। सींक धनुष सायक संधाना॥4॥

भावार्थ:-वह मूढ़, मंदबुद्धि कारण से (भगवान के बल की परीक्षा करने के लिए) बना हुआ कौआ सीताजी के चरणों में चोंच मारकर भागा। जब

रक्त बह चला, तब श्री रघुनाथजी ने जाना और धनुष पर सींक (सरकंडे) का बाण संधान किया॥4॥

दोहा :

* अति कृपाल रघुनायक सदा दीन पर नेह।
ता सन आइ कीन्ह छलु मूरख अवगुन गेह॥1॥

भावार्थ:-श्री रघुनाथजी, जो अत्यन्त ही कृपालु हैं और जिनका दीनों पर सदा प्रेम रहता है, उनसे भी उस अवगुणों के घर मूर्ख जयन्त ने आकर छल किया॥1॥

चौपाई :

*प्रेरित मंत्र ब्रह्मसर धावा। चला भाजि बायस भय पावा॥
धरि निज रूप गयउ पितु पाहीं। राम बिमुख राखा तेहि नाहीं॥1॥

भावार्थ:-मंत्र से प्रेरित होकर वह ब्रह्मबाण दौड़ा। कौआ भयभीत होकर भाग चला। वह अपना असली रूप धरकर पिता इन्द्र के पास गया, पर श्री रामजी का विरोधी जानकर इन्द्र ने उसको नहीं रखा॥1॥

*भा निरास उपजी मन त्रासा। जथा चक्र भय रिषि दुर्बासा॥
ब्रह्मधाम सिवपुर सब लोका। फिरा श्रमित ब्याकुल भय सोका॥2॥

भावार्थ:-तब वह निराश हो गया, उसके मन में भय उत्पन्न हो गया, जैसे दुर्वासा ऋषि को चक्र से भय हुआ था। वह ब्रह्मलोक, शिवलोक आदि

समस्त लोकों में थका हुआ और भय-शोक से व्याकुल होकर भागता फिरा॥2॥

*काहूँ बैठन कहा न ओही। राखि को सकइ राम कर द्रोही ॥

मातु मृत्यु पितु समन समाना। सुधा होइ बिष सुनु हरिजाना॥3॥

भावार्थ:-(पर रखना तो दूर रहा) किसी ने उसे बैठने तक के लिए नहीं कहा। श्री रामजी के द्रोही को कौन रख सकता है? (काकभुशुण्डिजी कहते हैं-) है गरुड़ ! सुनिए, उसके लिए माता मृत्यु के समान, पिता यमराज के समान और अमृत विष के समान हो जाता है॥3॥

*मित्र करइ सत रिपु कै करनी। ता कहँ बिबुधनदी बैतरनी॥

सब जगु ताहि अनलहु ते ताता। जो रघुबीर बिमुख सुनु भ्राता॥4॥

भावार्थ:-मित्र सैकड़ों शत्रुओं की सी करनी करने लगता है। देवनदी गंगाजी उसके लिए वैतरणी (यमपुरी की नदी) हो जाती है। हे भाई! सुनिए, जो श्री रघुनाथजी के विमुख होता है, समस्त जगत उनके लिए अग्नि से भी अधिक गरम (जलाने वाला) हो जाता है॥4॥

*नारद देखा बिकल जयंता। लगि दया कोमल चित संता॥

पठवा तुरत राम पहिं ताही। कहेसि पुकारि प्रनत हित पाही॥5॥

भावार्थ:-नारदजी ने जयन्त को व्याकुल देखा तो उन्हें दया आ गई, क्योंकि संतों का चित्त बड़ा कोमल होता है। उन्होंने उसे (समझाकर) तुरंत श्री रामजी के पास भेज दिया। उसने (जाकर) पुकारकर कहा- हे शरणागत के हितकारी! मेरी रक्षा कीजिए॥5॥

*आतुर सभय गहेसि पद जाई। त्राहि त्राहि दयाल रघुराई॥

अतुलित बल अतुलित प्रभुताई। मैं मतिमंद जानि नहीं पाई॥6॥

भावार्थ:-आतुर और भयभीत जयन्त ने जाकर श्री रामजी के चरण पकड़ लिए (और कहा-) हे दयालु रघुनाथजी! रक्षा कीजिए, रक्षा कीजिए। आपके अतुलित बल और आपकी अतुलित प्रभुता (सामर्थ्य) को मैं मन्दबुद्धि जान नहीं पाया था॥6॥

*निज कृत कर्म जनित फल पायउँ। अब प्रभु पाहि सरन तकि आयउँ॥

सुनि कृपाल अति आरत बानी। एकनयन करि तजा भवानी॥7॥

भावार्थ:-अपने कर्म से उत्पन्न हुआ फल मैंने पा लिया। अब हे प्रभु! मेरी रक्षा कीजिए। मैं आपकी शरण तक कर आया हूँ। (शिवजी कहते हैं-) हे पार्वती! कृपालु श्री रघुनाथजी ने उसकी अत्यंत आर्त्त (दुःख भरी) वाणी सुनकर उसे एक आँख का काना करके छोड़ दिया॥7॥

सोरठा :

*कीन्ह मोह बस द्रोह जद्यपि तेहि कर बध उचित।

प्रभु छाड़ेउ करि छोह को कृपाल रघुबीर सम॥2॥

भावार्थ:-उसने मोहवश द्रोह किया था, इसलिए यद्यपि उसका वध ही उचित था, पर प्रभु ने कृपा करके उसे छोड़ दिया। श्री रामजी के समान कृपालु और कौन होगा?॥2॥

चौपाई :

*रघुपति चित्रकूट बसि नाना। चरित किए श्रुति सुधा समाना॥

बहुरि राम अस मन अनुमाना। होइहि भीर सबहिं मोहि जाना॥1॥

भावार्थ:-चित्रकूट में बसकर श्री रघुनाथजी ने बहुत से चरित्र किए, जो कानों को अमृत के समान (प्रिय) हैं। फिर (कुछ समय पश्चात) श्री रामजी ने मन में ऐसा अनुमान किया कि मुझे सब लोग जान गए हैं, इससे (यहाँ) बड़ी भीड़ हो जाएगी॥1॥

अत्रि मिलन एवं स्तुति

* सकल मुनिन्ह सन बिदा कराई। सीता सहित चले द्वौ भाई॥
अत्रि के आश्रम जब प्रभु गयऊ। सुनत महामुनि हरषित भयऊ॥2॥

भावार्थ:-(इसलिए) सब मुनियों से विदा लेकर सीताजी सहित दोनों भाई चले! जब प्रभु अत्रिजी के आश्रम में गए, तो उनका आगमन सुनते ही महामुनि हर्षित हो गए॥2॥

* पुलकित गात अत्रि उठि धाए। देखि रामु आतुर चलि आए॥
करत दंडवत मुनि उर लाए। प्रेम बारि द्वौ जन अन्हवाए॥3॥

भावार्थ:-शरीर पुलकित हो गया, अत्रिजी उठकर दौड़े। उन्हें दौड़े आते देखकर श्री रामजी और भी शीघ्रता से चले आए। दण्डवत करते हुए ही श्री रामजी को (उठाकर) मुनि ने हृदय से लगा लिया और प्रेमाश्रुओं के जल से दोनों जनों को (दोनों भाइयों को) नहला दिया॥3॥

*देखि राम छबि नयन जुड़ाने। सादर निज आश्रम तब आने॥

करि पूजा कहि बचन सुहाए। दिए मूल फल प्रभु मन भाए॥4॥

भावार्थ:-श्री रामजी की छवि देखकर मुनि के नेत्र शीतल हो गए। तब वे उनको आदरपूर्वक अपने आश्रम में ले आए। पूजन करके सुंदर वचन कहकर मुनि ने मूल और फल दिए, जो प्रभु के मन को बहुत रुचे॥4॥

सोरठा :

* प्रभु आसन आसीन भरि लोचन सोभा निरखि।

मुनिबर परम प्रबीन जोरि पानि अस्तुति करत॥3॥

भावार्थ:-प्रभु आसन पर विराजमान हैं। नेत्र भरकर उनकी शोभा देखकर परम प्रवीण मुनि श्रेष्ठ हाथ जोड़कर स्तुति करने लगे॥3॥

छन्द :

*नमामि भक्त वत्सलं। कृपालु शील कोमलं॥

भजामि ते पदांबुजं। अकामिनां स्वधामदं॥1॥

भावार्थ:-हे भक्त वत्सल! हे कृपालु! हे कोमल स्वभाव वाले! मैं आपको नमस्कार करता हूँ। निष्काम पुरुषों को अपना परमधाम देने वाले आपके चरण कमलों को मैं भजता हूँ॥1॥

*निकाम श्याम सुंदरं। भवांबुनाथ मंदरं॥

प्रफुल्ल कंज लोचनं। मदादि दोष मोचनं॥2॥

भावार्थ:-आप नितान्त सुंदर श्याम, संसार (आवागमन) रूपी समुद्र को मथने के लिए मंदराचल रूप, फूले हुए कमल के समान नेत्रों वाले और मद आदि दोषों से छुड़ाने वाले हैं॥2॥

*प्रलंब बाहु विक्रमं। प्रभोऽप्रमेय वैभवं॥
निषंग चाप सायकं। धरं त्रिलोक नायकं॥3॥

भावार्थ:-हे प्रभो! आपकी लंबी भुजाओं का पराक्रम और आपका ऐश्वर्य अप्रमेय (बुद्धि के परे अथवा असीम) है। आप तरकस और धनुष-बाण धारण करने वाले तीनों लोकों के स्वामी,॥3॥

*दिनेश वंश मंडनं। महेश चाप खंडनं॥
मुनींद्र संत रंजनं। सुरारि वृंद भंजनं॥4॥

भावार्थ:-सूर्यवंश के भूषण, महादेवजी के धनुष को तोड़ने वाले, मुनिराजों और संतों को आनंद देने वाले तथा देवताओं के शत्रु असुरों के समूह का नाश करने वाले हैं॥4॥

*मनोज वैरि वंदितं। अजादि देव सेवितं॥
विशुद्ध बोध विग्रहं। समस्त दूषणापहं॥5॥

भावार्थ:-आप कामदेव के शत्रु महादेवजी के द्वारा वंदित, ब्रह्मा आदि देवताओं से सेवित, विशुद्ध ज्ञानमय विग्रह और समस्त दोषों को नष्ट करने वाले हैं॥5॥

*नमामि इंदिरा पतिं। सुखाकरं सतां गतिं॥

भजे सशक्ति सानुजं। शची पति प्रियानुजं॥6॥

भावार्थ:-हे लक्ष्मीपते! हे सुखों की खान और सत्पुरुषों की एकमात्र गति! मैं आपको नमस्कार करता हूँ! हे शचीपति (इन्द्र) के प्रिय छोटे भाई (वामनजी)! स्वरूपा-शक्ति श्री सीताजी और छोटे भाई लक्ष्मणजी सहित आपको मैं भजता हूँ॥6॥

*त्वदंघ्रि मूल ये नराः। भजंति हीन मत्सराः॥

पतंति नो भवार्णवे। वितर्क वीचि संकुले॥7॥

भावार्थ:-जो मनुष्य मत्सर (डाह) रहित होकर आपके चरण कमलों का सेवन करते हैं, वे तर्क-वितर्क (अनेक प्रकार के संदेह) रूपी तरंगों से पूर्ण संसार रूपी समुद्र में नहीं गिरते (आवागमन के चक्कर में नहीं पड़ते)॥7॥

*विविक्त वासिनः सदा। भजंति मुक्तये मुदा॥

निरस्य इंद्रियादिकं। प्रयांतिते गतिं स्वकं॥8॥

भावार्थ:-जो एकान्तवासी पुरुष मुक्ति के लिए, इन्द्रियादि का निग्रह करके (उन्हें विषयों से हटाकर) प्रसन्नतापूर्वक आपको भजते हैं, वे स्वकीय गति को (अपने स्वरूप को) प्राप्त होते हैं॥8॥

*तमेकमद्‍भुतं प्रभुं। निरीहमीश्वरं विभुं॥

जगद्‍गुरुं च शाश्वतं। तुरीयमेव केवलं॥9॥

भावार्थ:-उन (आप) को जो एक (अद्वितीय), अद्‍भुत (मायिक जगत से विलक्षण), प्रभु (सर्वसमर्थ), इच्छारहित, ईश्वर (सबके स्वामी), व्यापक,

जगद्‌गुरु, सनातन (नित्य), तुरीय (तीनों गुणों से सर्वथा परे) और केवल (अपने स्वरूप में स्थित) हैं॥9॥

*भजामि भाव वल्लभं। कुयोगिनां सुदुर्लभं॥

स्वभक्त कल्प पादपं। समं सुसेव्यमन्वहं॥10॥

भावार्थ:-(तथा) जो भावप्रिय, कुयोगियों (विषयी पुरुषों) के लिए अत्यन्त दुर्लभ, अपने भक्तों के लिए कल्पवृक्ष (अर्थात्‌ उनकी समस्त कामनाओं को पूर्ण करने वाले), सम (पक्षपातरहित) और सदा सुखपूर्वक सेवन करने योग्य हैं, मैं निरंतर भजता हूँ॥10॥

*अनूप रूप भूपतिं। नतोऽहमुर्विजा पतिं॥

प्रसीद मे नमामि ते। पदाब्ज भक्ति देहि मे॥11॥

भावार्थ:-हे अनुपम सुंदर! हे पृथ्वीपति! हे जानकीनाथ! मैं आपको प्रणाम करता हूँ। मुझ पर प्रसन्न होइए, मैं आपको नमस्कार करता हूँ। मुझे अपने चरण कमलों की भक्ति दीजिए॥11॥

*पठंति ये स्तवं इदं। नरादरेण ते पदं॥

व्रजंति नात्र संशयं। त्वदीय भक्ति संयुताः॥12॥

भावार्थ:-जो मनुष्य इस स्तुति को आदरपूर्वक पढ़ते हैं, वे आपकी भक्ति से युक्त होकर आपके परम पद को प्राप्त होते हैं, इसमें संदेह नहीं॥12॥

दोहा :

*बिनती करि मुनि नाइ सिरु कह कर जोरि बहोरि।

चरन सरोरुह नाथ जनि कबहुँ तजै मति मोरि॥4॥

भावार्थ:-मुनि ने (इस प्रकार) विनती करके और फिर सिर नवाकर, हाथ जोड़कर कहा- हे नाथ! मेरी बुद्धि आपके चरण कमलों को कभी न छोड़े॥4॥

श्री सीता-अनसूया मिलन और श्री सीताजी को अनसूयाजी का पतिव्रत धर्म कहना

चौपाई :

* अनुसुइया के पद गहि सीता। मिली बहोरि सुसील बिनीता॥

रिषिपतिनी मन सुख अधिकाई। आसिष देइ निकट बैठाई॥1॥

भावार्थ:-फिर परम शीलवती और विनम्र श्री सीताजी अनसूयाजी (आत्रिजी की पत्नी) के चरण पकड़कर उनसे मिलीं। ऋषि पत्नी के मन में बड़ा सुख हुआ। उन्होंने आशीष देकर सीताजी को पास बैठा लिया॥1॥

* दिब्य बसन भूषन पहिराए। जे नित नूतन अमल सुहाए॥

कह रिषिबधू सरस मृदु बानी। नारिधर्म कछु ब्याज बखानी॥2॥

भावार्थ:-और उन्हें ऐसे दिव्य वस्त्र और आभूषण पहनाए, जो नित्य-नए निर्मल और सुहावने बने रहते हैं। फिर ऋषि पत्नी उनके बहाने मधुर और कोमल वाणी से स्त्रियों के कुछ धर्म बखान कर कहने लगीं॥2॥

*मातु पिता भ्राता हितकारी। मितप्रद सब सुनु राजकुमारी॥

अमित दानि भर्ता बयदेही। अधम सो नारि जो सेव न तेही॥3॥

भावार्थ:-हे राजकुमारी! सुनिए- माता, पिता, भाई सभी हित करने वाले हैं, परन्तु ये सब एक सीमा तक ही (सुख) देने वाले हैं, परन्तु हे जानकी! पति तो (मोक्ष रूप) असीम (सुख) देने वाला है। वह स्त्री अधम है, जो ऐसे पति की सेवा नहीं करती॥3॥

* धीरज धर्म मित्र अरु नारी। आपद काल परिखिअहिं चारी॥

बृद्ध रोगबस जड़ धनहीना। अंध बधिर क्रोधी अति दीना॥4॥

भावार्थ:-धैर्य, धर्म, मित्र और स्त्री- इन चारों की विपत्ति के समय ही परीक्षा होती है। वृद्ध, रोगी, मूर्ख, निर्धन, अंधा, बहरा, क्रोधी और अत्यन्त ही दीन-॥4॥

*ऐसेहु पति कर किएँ अपमाना। नारि पाव जमपुर दुख नाना॥

एकइ धर्म एक ब्रत नेमा। कायँ बचन मन पति पद प्रेमा॥5॥

भावार्थ:-ऐसे भी पति का अपमान करने से स्त्री यमपुर में भाँति-भाँति के दुःख पाती है। शरीर, वचन और मन से पति के चरणों में प्रेम करना स्त्री के लिए, बस यह एक ही धर्म है, एक ही व्रत है और एक ही नियम है॥5॥

*जग पतिब्रता चारि बिधि अहहीं। बेद पुरान संत सब कहहीं॥

उत्तम के अस बस मन माहीं। सपनेहुँ आन पुरुष जग नाहीं॥6॥

भावार्थ:-जगत में चार प्रकार की पतिव्रताएँ हैं। वेद, पुराण और संत सब ऐसा कहते हैं कि उत्तम श्रेणी की पतिव्रता के मन में ऐसा भाव बसा रहता है कि जगत में (मेरे पति को छोड़कर) दूसरा पुरुष स्वप्न में भी नहीं है॥6॥

*मध्यम परपति देखइ कैसें। भ्राता पिता पुत्र निज जैसें॥

धर्म बिचारि समुझि कुल रहई। सो निकिष्ट त्रिय श्रुति अस कहई॥7॥

भावार्थ:-मध्यम श्रेणी की पतिव्रता पराए पति को कैसे देखती है, जैसे वह अपना सगा भाई, पिता या पुत्र हो (अर्थात समान अवस्था वाले को वह भाई के रूप में देखती है, बड़े को पिता के रूप में और छोटे को पुत्र के रूप में देखती है।) जो धर्म को विचारकर और अपने कुल की मर्यादा समझकर बची रहती है, वह निकृष्ट (निम्न श्रेणी की) स्त्री है, ऐसा वेद कहते हैं॥7॥

*बिनु अवसर भय तें रह जोई। जानेहु अधम नारि जग सोई॥

पति बंचक परपति रति करई। रौरव नरक कल्प सत परई॥8॥

भावार्थ:-और जो स्त्री मौका न मिलने से या भयवश पतिव्रता बनी रहती है, जगत में उसे अधम स्त्री जानना। पति को धोखा देने वाली जो स्त्री पराए पति से रति करती है, वह तो सौ कल्प तक रौरव नरक में पड़ी रहती है॥8॥

*छन सुख लागि जनम सत कोटी। दुख न समुझ तेहि सम को खोटी॥

बिनु श्रम नारि परम गति लहई। पतिब्रत धर्म छाड़ि छल गहई॥9॥

भावार्थ:-क्षणभर के सुख के लिए जो सौ करोड़ (असंख्य) जन्मों के दुःख को नहीं समझती, उसके समान दुष्टा कौन होगी। जो स्त्री छल छोड़कर पतिव्रत धर्म को ग्रहण करती है, वह बिना ही परिश्रम परम गति को प्राप्त करती है॥9॥

*पति प्रतिकूल जनम जहँ जाई। बिधवा होइ पाइ तरुनाई॥10॥

भावार्थ:-किन्तु जो पति के प्रतिकूल चलती है, वह जहाँ भी जाकर जन्म लेती है, वहीं जवानी पाकर (भरी जवानी में) विधवा हो जाती है॥10॥

सोरठा :

* सहज अपावनि नारि पति सेवत सुभ गति लहइ।

जसु गावत श्रुति चारि अजहुँ तुलसिका हरिहि प्रिय॥5 क॥

भावार्थ:-स्त्री जन्म से ही अपवित्र है, किन्तु पति की सेवा करके वह अनायास ही शुभ गति प्राप्त कर लेती है। (पतिव्रत धर्म के कारण ही) आज भी 'तुलसीजी' भगवान को प्रिय हैं और चारों वेद उनका यश गाते हैं॥5 (क)॥

*सुनु सीता तव नाम सुमिरि नारि पतिब्रत करहिं।

तोहि प्रानप्रिय राम कहिउँ कथा संसार हित॥5 ख॥

भावार्थ:-हे सीता! सुनो, तुम्हारा तो नाम ही ले-लेकर स्त्रियाँ पतिव्रत धर्म का पालन करेंगी। तुम्हें तो श्री रामजी प्राणों के समान प्रिय हैं, यह (पतिव्रत धर्म की) कथा तो मैंने संसार के हित के लिए कही है॥5 (ख)॥

चौपाई :

* सुनि जानकीं परम सुखु पावा। सादर तासु चरन सिरु नावा॥

तब मुनि सन कह कृपानिधाना। आयसु होइ जाउँ बन आना॥1॥

भावार्थ:-जानकीजी ने सुनकर परम सुख पाया और आदरपूर्वक उनके चरणों में सिर नवाया। तब कृपा की खान श्री रामजी ने मुनि से कहा- आज्ञा हो तो अब दूसरे वन में जाऊँ॥1॥

*संतत मो पर कृपा करेहू। सेवक जानि तजेहु जनि नेहू॥

धर्म धुरंधर प्रभु कै बानी। सुनि सप्रेम बोले मुनि ग्यानी॥2॥

भावार्थ:-मुझ पर निरंतर कृपा करते रहिएगा और अपना सेवक जानकर स्नेह न छोड़िएगा। धर्म धुरंधर प्रभु श्री रामजी के वचन सुनकर ज्ञानी मुनि प्रेमपूर्वक बोले-॥2॥

*जासु कृपा अज सिव सनकादी। चहत सकल परमारथ बादी॥

ते तुम्ह राम अकाम पिआरे। दीन बंधु मृदु बचन उचारे॥3॥

भावार्थ:-ब्रह्मा, शिव और सनकादि सभी परमार्थवादी (तत्ववेत्ता) जिनकी कृपा चाहते हैं, हे रामजी! आप वही निष्काम पुरुषों के भी प्रिय और दीनों के बंधु भगवान हैं, जो इस प्रकार कोमल वचन बोल रहे हैं॥3॥

*अब जानी मैं श्री चतुराई। भजी तुम्हहि सब देव बिहाई॥

जेहि समान अतिसय नहिं कोई। ता कर सील कस न अस होई॥4॥

भावार्थ:-अब मैंने लक्ष्मीजी की चतुराई समझी, जिन्होंने सब देवताओं को छोड़कर आप ही को भजा। जिसके समान (सब बातों में) अत्यन्त बड़ा और कोई नहीं है, उसका शील भला, ऐसा क्यों न होगा?॥4॥

*केहि बिधि कहौं जाहु अब स्वामी। कहहु नाथ तुम्ह अंतरजामी॥

अस कहि प्रभु बिलोकि मुनि धीरा। लोचन जल बह पुलक सरीरा॥5॥

भावार्थ:-मैं किस प्रकार कहूँ कि हे स्वामी! आप अब जाइए? हे नाथ! आप अन्तर्यामी हैं, आप ही कहिए। ऐसा कहकर धीर मुनि प्रभु को देखने लगे। मुनि के नेत्रों से (प्रेमाश्रुओं का) जल बह रहा है और शरीर पुलकित है॥5॥

छन्द :

* तन पुलक निर्भर प्रेम पूरन नयन मुख पंकज दिए।

मन ग्यान गुन गोतीत प्रभु मैं दीख जप तप का किए॥

जप जोग धर्म समूह तें नर भगति अनुपम पावई।

रघुबीर चरित पुनीत निसि दिन दास तुलसी गावई॥

भावार्थ:-मुनि अत्यन्त प्रेम से पूर्ण हैं, उनका शरीर पुलकित है और नेत्रों को श्री रामजी के मुखकमल में लगाए हुए हैं। (मन में विचार रहे हैं कि) मैंने ऐसे कौन से जप-तप किए थे, जिसके कारण मन, ज्ञान, गुण और इन्द्रियों से परे प्रभु के दर्शन पाए। जप, योग और धर्म समूह से मनुष्य

अनुपम भक्ति को पाता है। श्री रघुवीर के पवित्र चरित्र को तुलसीदास रात-दिन गाता है।

दोहा :

* कलिमल समन दमन मन राम सुजस सुखमूल।

सादर सुनहिं जे तिन्ह पर राम रहहिं अनुकूल॥6 क॥

भावार्थ:-श्री रामचन्द्रजी का सुंदर यश कलियुग के पापों का नाश करने वाला, मन को दमन करने वाला और सुख का मूल है, जो लोग इसे आदरपूर्वक सुनते हैं, उन पर श्री रामजी प्रसन्न रहते हैं॥6 (क)॥

सोरठा :

* कठिन काल मल कोस धर्म न ग्यान न जोग जप।

परिहरि सकल भरोस रामहि भजहिं ते चतुर नर॥6 ख॥

भावार्थ:-यह कठिन कलि काल पापों का खजाना है, इसमें न धर्म है, न ज्ञान है और न योग तथा जप ही है। इसमें तो जो लोग सब भरोसों को छोड़कर श्री रामजी को ही भजते हैं, वे ही चतुर हैं॥6 (ख)॥

श्री रामजी का आगे प्रस्थान, विराध वध और शरभंग प्रसंग

चौपाई :

* मुनि पद कमल नाइ करि सीसा। चले बनहि सुर नर मुनि ईसा॥

आगें राम अनुज पुनि पाछें। मुनि बर बेष बने अति काछें॥1॥

भावार्थ:-मुनि के चरण कमलों में सिर नवाकर देवता, मनुष्य और मुनियों के स्वामी श्री रामजी वन को चले। आगे श्री रामजी हैं और उनके पीछे छोटे भाई लक्ष्मणजी हैं। दोनों ही मुनियों का सुंदर वेष बनाए अत्यन्त सुशोभित हैं॥1॥

* उभय बीच श्री सोहइ कैसी। ब्रह्म जीव बिच माया जैसी॥

सरिता बन गिरि अवघट घाटा। पति पहिचानि देहिं बर बाटा॥2॥

भावार्थ:-दोनों के बीच में श्री जानकीजी कैसी सुशोभित हैं, जैसे ब्रह्म और जीव के बीच माया हो। नदी, वन, पर्वत और दुर्गम घाटियाँ, सभी अपने स्वामी को पहचानकर सुंदर रास्ता दे देते हैं॥2॥

* जहँ जहँ जाहिं देव रघुराया। करहिं मेघ तहँ तहँ नभ छाया॥

मिला असुर बिराध मग जाता। आवतहीं रघुबीर निपाता॥3॥

भावार्थ:-जहाँ-जहाँ देव श्री रघुनाथजी जाते हैं, वहाँ-वहाँ बादल आकाश में छाया करते जाते हैं। रास्ते में जाते हुए विराध राक्षस मिला। सामने आते ही श्री रघुनाथजी ने उसे मार डाला॥3॥

* तुरतहिं रुचिर रूप तेहिं पावा। देखि दुखी निज धाम पठावा॥

पुनि आए जहँ मुनि सरभंगा। सुंदर अनुज जानकी संगा॥4॥

भावार्थ:-(श्री रामजी के हाथ से मरते ही) उसने तुरंत सुंदर (दिव्य) रूप प्राप्त कर लिया। दुःखी देखकर प्रभु ने उसे अपने परम धाम को भेज

दिया। फिर वे सुंदर छोटे भाई लक्ष्मणजी और सीताजी के साथ वहाँ आए जहाँ मुनि शरभंगजी थे॥4॥

दोहा :

* देखि राम मुख पंकज मुनिबर लोचन भृंग।

सादर पान करत अति धन्य जन्म सरभंग॥7॥

भावार्थ:-श्री रामचन्द्रजी का मुखकमल देखकर मुनिश्रेष्ठ के नेत्र रूपी भौंरे अत्यन्त आदरपूर्वक उसका (मकरन्द रस) पान कर रहे हैं। शरभंगजी का जन्म धन्य है॥7॥

चौपाई :

* कह मुनि सुनु रघुबीर कृपाला। संकर मानस राजमराला॥

जात रहेउँ बिरंचि के धामा। सुनेउँ श्रवन बन ऐहहिं रामा॥1॥

भावार्थ:-मुनि ने कहा- हे कृपालु रघुवीर! हे शंकरजी मन रूपी मानसरोवर के राजहंस! सुनिए, मैं ब्रह्मलोक को जा रहा था। (इतने में) कानों से सुना कि श्री रामजी वन में आवेंगे॥1॥

* चितवत पंथ रहेउँ दिन राती। अब प्रभु देखि जुड़ानी छाती॥

नाथ सकल साधन मैं हीना। कीन्ही कृपा जानि जन दीना॥2॥

भावार्थ:-तब से मैं दिन-रात आपकी राह देखता रहा हूँ। अब (आज) प्रभु को देखकर मेरी छाती शीतल हो गई। हे नाथ! मैं सब साधनों से हीन हूँ। आपने अपना दीन सेवक जानकर मुझ पर कृपा की है॥2॥

* सो कछु देव न मोहि निहोरा। निज पन राखेउ जन मन चोरा॥

तब लगि रहहु दीन हित लागी। जब लगि मिलौं तुम्हहि तनु त्यागी॥3॥

भावार्थ:-हे देव! यह कुछ मुझ पर आपका एहसान नहीं है। हे भक्त-मनचोर! ऐसा करके आपने अपने प्रण की ही रक्षा की है। अब इस दीन के कल्याण के लिए तब तक यहाँ ठहरिए, जब तक मैं शरीर छोड़कर आपसे (आपके धाम में न) मिलूँ॥3॥

* जोग जग्य जप तप ब्रत कीन्हा। प्रभु कहँ देइ भगति बर लीन्हा॥

एहि बिधि सर रचि मुनि सरभंगा। बैठे हृदयँ छाड़ि सब संगा॥4॥

भावार्थ:-योग, यज्ञ, जप, तप जो कुछ व्रत आदि भी मुनि ने किया था, सब प्रभु को समर्पण करके बदले में भक्ति का वरदान ले लिया। इस प्रकार (दुर्लभ भक्ति प्राप्त करके फिर) चिता रचकर मुनि शरभंगजी हृदय से सब आसक्ति छोड़कर उस पर जा बैठे॥4॥

दोहा :

* सीता अनुज समेत प्रभु नील जलद तनु स्याम।

मम हियँ बसहु निरंतर सगुनरूप श्री राम॥8॥

भावार्थ:-हे नीले मेघ के समान श्याम शरीर वाले सगुण रूप श्री रामजी! सीताजी और छोटे भाई लक्ष्मणजी सहित प्रभु (आप) निरंतर मेरे हृदय में निवास कीजिए॥8॥

चौपाई :

* अस कहि जोग अगिनि तनु जारा। राम कृपाँ बैकुंठ सिधारा॥

ताते मुनि हरि लीन न भयऊ। प्रथमहिं भेद भगति बर लयऊ॥1॥

भावार्थ:-ऐसा कहकर शरभंगजी ने योगाग्नि से अपने शरीर को जला डाला और श्री रामजी की कृपा से वे वैकुंठ को चले गए। मुनि भगवान में लीन इसलिए नहीं हुए कि उन्होंने पहले ही भेद-भक्ति का वर ले लिया था॥1॥

* रिषि निकाय मुनिबर गति देखी। सुखी भए निज हृदयँ बिसेषी॥

अस्तुति करहिं सकल मुनि बृंदा। जयति प्रनत हित करुना कंदा॥2॥

भावार्थ:-ऋषि समूह मुनि श्रेष्ठ शरभंगजी की यह (दुर्लभ) गति देखकर अपने हृदय में विशेष रूप से सुखी हुए। समस्त मुनिवृंद श्री रामजी की स्तुति कर रहे हैं (और कह रहे हैं) शरणागत हितकारी करुणा कन्द (करुणा के मूल) प्रभु की जय हो!॥2॥

* पुनि रघुनाथ चले बन आगे। मुनिबर बृंद बिपुल सँग लागे॥

अस्थि समूह देखि रघुराया। पूछी मुनिन्ह लागि अति दाया॥3॥

भावार्थ:-फिर श्री रघुनाथजी आगे वन में चले। श्रेष्ठ मुनियों के बहुत से समूह उनके साथ हो लिए। हड्डियों का ढेर देखकर श्री रघुनाथजी को बड़ी दया आई, उन्होंने मुनियों से पूछा॥3॥

* जानतहूँ पूछिअ कस स्वामी। सबदरसी तुम्ह अंतरजामी॥

निसिचर निकर सकल मुनि खाए। सुनि रघुबीर नयन जल छाए॥4॥

भावार्थ:-(मुनियों ने कहा) हे स्वामी! आप सर्वदर्शी (सर्वज्ञ) और अंतर्यामी (सबके हृदय की जानने वाले) हैं। जानते हुए भी (अनजान की तरह) हमसे कैसे पूछ रहे हैं? राक्षसों के दलों ने सब मुनियों को खा

डाला है। (ये सब उन्हीं की हड्डियों के ढेर हैं)। यह सुनते ही श्री रघुवीर के नेत्रों में जल छा गया (उनकी आँखों में करुणा के आँसू भर आए)॥4॥

राक्षस वध की प्रतिज्ञा करना, सुतीक्ष्णजी का प्रेम, अगस्त्य मिलन, अगस्त्य संवाद

दोहा :

* निसिचर हीन करउँ महि भुज उठाइ पन कीन्ह।

सकल मुनिन्ह के आश्रमन्हि जाइ जाइ सुख दीन्ह॥9॥

भावार्थ:-श्री रामजी ने भुजा उठाकर प्रण किया कि मैं पृथ्वी को राक्षसों से रहित कर दूँगा। फिर समस्त मुनियों के आश्रमों में जा-जाकर उनको (दर्शन एवं सम्भाषण का) सुख दिया॥9॥

चौपाई :

* मुनि अगस्ति कर सिष्य सुजाना। नाम सुतीछन रति भगवाना॥

मन क्रम बचन राम पद सेवक। सपनेहुँ आन भरोस न देवक॥1॥

भावार्थ:-मुनि अगस्त्यजी के एक सुतीक्ष्ण नामक सुजान (ज्ञानी) शिष्य थे, उनकी भगवान में प्रीति थी। वे मन, वचन और कर्म से श्री रामजी के चरणों के सेवक थे। उन्हें स्वप्न में भी किसी दूसरे देवता का भरोसा नहीं था॥1॥

* प्रभु आगवनु श्रवन सुनि पावा। करत मनोरथ आतुर धावा॥

हे बिधि दीनबंधु रघुराया। मो से सठ पर करिहहिं दाया॥2॥

भावार्थ:-उन्होंने ज्यों ही प्रभु का आगमन कानों से सुन पाया, त्यों ही अनेक प्रकार के मनोरथ करते हुए वे आतुरता (शीघ्रता) से दौड़ चले। हे विधाता! क्या दीनबन्धु श्री रघुनाथजी मुझ जैसे दुष्ट पर भी दया करेंगे?॥2॥

* सहित अनुज मोहि राम गोसाईं। मिलिहहिं निज सेवक की नाईं॥

मोरे जियँ भरोस दृढ़ नाहीं। भगति बिरति न ग्यान मन माहीं॥3॥

भावार्थ:-क्या स्वामी श्री रामजी छोटे भाई लक्ष्मणजी सहित मुझसे अपने सेवक की तरह मिलेंगे? मेरे हृदय में दृढ़ विश्वास नहीं होता, क्योंकि मेरे मन में भक्ति, वैराग्य या ज्ञान कुछ भी नहीं है॥3॥

* नहिं सतसंग जोग जप जागा। नहिं दृढ़ चरन कमल अनुरागा॥

एक बानि करुनानिधान की। सो प्रिय जाकें गति न आन की॥4॥

भावार्थ:-मैंने न तो सत्संग, योग, जप अथवा यज्ञ ही किए हैं और न प्रभु के चरणकमलों में मेरा दृढ़ अनुराग ही है। हाँ, दया के भंडार प्रभु की एक बान है कि जिसे किसी दूसरे का सहारा नहीं है, वह उन्हें प्रिय होता है॥4॥

* होइहैं सुफल आजु मम लोचन। देखि बदन पंकज भव मोचन॥

निर्भर प्रेम मगन मुनि ग्यानी। कहि न जाइ सो दसा भवानी॥5॥

भावार्थ:-(भगवान की इस बान का स्मरण आते ही मुनि आनंदमग्न होकर मन ही मन कहने लगे-) अहा! भव बंधन से छुड़ाने वाले प्रभु के मुखारविंद को देखकर आज मेरे नेत्र सफल होंगे। (शिवजी कहते हैं-) हे भवानी! ज्ञानी मुनि प्रेम में पूर्ण रूप से निमग्न हैं। उनकी वह दशा कही नहीं जाती॥5॥

* दिसि अरु बिदिसि पंथ नहिं सूझा। को मैं चलेउँ कहाँ नहिं बूझा॥

कबहुँक फिरि पाछें पुनि जाई। कबहुँक नृत्य करइ गुन गाई॥6॥

भावार्थ:-उन्हें दिशा-विदिशा (दिशाएँ और उनके कोण आदि) और रास्ता, कुछ भी नहीं सूझ रहा है। मैं कौन हूँ और कहाँ जा रहा हूँ, यह भी नहीं जानते (इसका भी ज्ञान नहीं है)। वे कभी पीछे घूमकर फिर आगे चलने लगते हैं और कभी (प्रभु के) गुण गा-गाकर नाचने लगते हैं॥6॥

* अबिरल प्रेम भगति मुनि पाई। प्रभु देखैं तरु ओट लुकाई॥

अतिसय प्रीति देखि रघुबीरा। प्रगटे हृदयँ हरन भव भीरा॥7॥

भावार्थ:-मुनि ने प्रगाढ़ प्रेमाभक्ति प्राप्त कर ली। प्रभु श्री रामजी वृक्ष की आड़ में छिपकर (भक्त की प्रेमोन्मत्त दशा) देख रहे हैं। मुनि का अत्यन्त प्रेम देखकर भवभय (आवागमन के भय) को हरने वाले श्री रघुनाथजी मुनि के हृदय में प्रकट हो गए॥7॥

* मुनि मग माझ अचल होइ बैसा। पुलक सरीर पनस फल जैसा॥

तब रघुनाथ निकट चलि आए। देखि दसा निज जन मन भाए॥8॥

भावार्थ:-(हृदय में प्रभु के दर्शन पाकर) मुनि बीच रास्ते में अचल (स्थिर) होकर बैठ गए। उनका शरीर रोमांच से कटहल के फल के समान (कण्टकित) हो गया। तब श्री रघुनाथजी उनके पास चले आए और अपने भक्त की प्रेम दशा देखकर मन में बहुत प्रसन्न हुए॥8॥

* मुनिहि राम बहु भाँति जगावा। जाग न ध्यान जनित सुख पावा॥

भूप रूप तब राम दुरावा। हृदयँ चतुर्भुज रूप देखावा॥9॥

भावार्थ:-श्री रामजी ने मुनि को बहुत प्रकार से जगाया, पर मुनि नहीं जागे, क्योंकि उन्हें प्रभु के ध्यान का सुख प्राप्त हो रहा था। तब श्री रामजी ने अपने राजरूप को छिपा लिया और उनके हृदय में अपना चतुर्भुज रूप प्रकट किया॥9॥

* मुनि अकुलाइ उठा तब कैसें। बिकल हीन मनि फनिबर जैसें॥

आगें देखि राम तन स्यामा। सीता अनुज सहित सुख धामा॥10॥

भावार्थ:-तब (अपने ईष्ट स्वरूप के अंतर्धान होते ही) मुनि ऐसे व्याकुल होकर उठे, जैसे श्रेष्ठ (मणिधर) सर्प मणि के बिना व्याकुल हो जाता है। मुनि ने अपने सामने सीताजी और लक्ष्मणजी सहित श्यामसुंदर विग्रह सुखधाम श्री रामजी को देखा॥10॥

* परेउ लकुट इव चरनन्हि लागी। प्रेम मगन मुनिबर बड़भागी॥

भुज बिसाल गहि लिए उठाई। परम प्रीति राखे उर लाई॥11॥

भावार्थ:-प्रेम में मग्न हुए वे बड़भागी श्रेष्ठ मुनि लाठी की तरह गिरकर श्री रामजी के चरणों में लग गए। श्री रामजी ने अपनी विशाल भुजाओं से पकड़कर उन्हें उठा लिया और बड़े प्रेम से हृदय से लगा रखा॥11॥

* मुनिहि मिलत अस सोह कृपाला। कनक तरुहि जनु भेंट तमाला॥

राम बदनु बिलोक मुनि ठाढ़ा। मानहुँ चित्र माझ लिखि काढ़ा॥12॥

भावार्थ:-कृपालु श्री रामचन्द्रजी मुनि से मिलते हुए ऐसे शोभित हो रहे हैं, मानो सोने के वृक्ष से तमाल का वृक्ष गले लगकर मिल रहा हो। मुनि (निस्तब्ध) खड़े हुए (टकटकी लगाकर) श्री रामजी का मुख देख रहे हैं, मानो चित्र में लिखकर बनाए गए हों॥12॥

दोहा :

* तब मुनि हृदयँ धीर धरि गहि पद बारहिं बार।

निज आश्रम प्रभु आनि करि पूजा बिबिध प्रकार॥10॥

भावार्थ:-तब मुनि ने हृदय में धीरज धरकर बार-बार चरणों को स्पर्श किया। फिर प्रभु को अपने आश्रम में लाकर अनेक प्रकार से उनकी पूजा की॥10॥

चौपाई :

* कह मुनि प्रभु सुनु बिनती मोरी। अस्तुति करौं कवन बिधि तोरी॥

महिमा अमित मोरि मति थोरी। रबि सन्मुख खद्योत अँजोरी॥1॥

भावार्थ:-मुनि कहने लगे- हे प्रभो! मेरी विनती सुनिए। मैं किस प्रकार से आपकी स्तुति करूँ? आपकी महिमा अपार है और मेरी बुद्धि अल्प है। जैसे सूर्य के सामने जुगनू का उजाला!॥1॥

* श्याम तामरस दाम शरीरं। जटा मुकुट परिधन मुनिचीरं॥

पाणि चाप शर कटि तूणीरं। नौमि निरंतर श्रीरघुवीरं॥2॥

भावार्थ:-हे नीलकमल की माला के समान श्याम शरीर वाले! हे जटाओं का मुकुट और मुनियों के (वल्कल) वस्त्र पहने हुए, हाथों में धनुष-बाण लिए तथा कमर में तरकस कसे हुए श्री रामजी! मैं आपको निरंतर नमस्कार करता हूँ॥2॥

* मोह विपिन घन दहन कृशानुः। संत सरोरुह कानन भानुः॥

निसिचर करि वरूथ मृगराजः। त्रास सदा नो भव खग बाजः॥3॥

भावार्थ:-जो मोह रूपी घने वन को जलाने के लिए अग्नि हैं, संत रूपी कमलों के वन को प्रफुल्लित करने के लिए सूर्य हैं, राक्षस रूपी हाथियों के समूह को पछाड़ने के लिए सिंह हैं और भव (आवागमन) रूपी पक्षी को मारने के लिए बाज रूप हैं, वे प्रभु सदा हमारी रक्षा करें॥3॥

* अरुण नयन राजीव सुवेशं। सीता नयन चकोर निशेशं॥

हर हृदि मानस बाल मरालं। नौमि राम उर बाहु विशालं॥4॥

भावार्थ:-हे लाल कमल के समान नेत्र और सुंदर वेश वाले! सीताजी के नेत्र रूपी चकोर के चंद्रमा, शिवजी के हृदय रूपी मानसरोवर के बालहंस, विशाल हृदय और भुजा वाले श्री रामचंद्रजी! मैं आपको नमस्कार करता हूँ॥4॥

* संशय सर्प ग्रसन उरगादः। शमन सुकर्कश तर्क विषादः॥

भव भंजन रंजन सुर यूथः। त्रातु सदा नो कृपा वरूथः॥5॥

भावार्थ:-जो संशय रूपी सर्प को ग्रसने के लिए गरुड़ हैं, अत्यंत कठोर तर्क से उत्पन्न होने वाले विषाद का नाश करने वाले हैं, आवागमन को मिटाने वाले और देवताओं के समूह को आनंद देने वाले हैं, वे कृपा के समूह श्री रामजी सदा हमारी रक्षा करें॥5॥

* निर्गुण सगुण विषम सम रूपं। ज्ञान गिरा गोतीतमनूपं॥

अमलमखिलमनवद्यमपारं। नौमि राम भंजन महि भारं॥6॥

भावार्थ:-हे निर्गुण, सगुण, विषम और समरूप! हे ज्ञान, वाणी और इंद्रियों से अतीत! हे अनुपम, निर्मल, संपूर्ण दोषरहित, अनंत एवं पृथ्वी का भार उतारने वाले श्री रामचंद्रजी! मैं आपको नमस्कार करता हूँ॥6॥

* भक्त कल्पपादप आरामः। तर्जन क्रोध लोभ मद कामः॥

अति नागर भव सागर सेतुः। त्रातु सदा दिनकर कुल केतुः॥7॥

भावार्थ:-जो भक्तों के लिए कल्पवृक्ष के बगीचे हैं, क्रोध, लोभ, मद और काम को डराने वाले हैं, अत्यंत ही चतुर और संसार रूपी समुद्र से तरने के लिए सेतु रूप हैं, वे सूर्यकुल की ध्वजा श्री रामजी सदा मेरी रक्षा करें॥7॥

* अतुलित भुज प्रताप बल धामः। कलि मल विपुल विभंजन नामः॥

धर्म वर्म नर्मद गुण ग्रामः। संतत शं तनोतु मम रामः॥8॥

भावार्थ:-जिनकी भुजाओं का प्रताप अतुलनीय है, जो बल के धाम हैं, जिनका नाम कलियुग के बड़े भारी पापों का नाश करने वाला है, जो

धर्म के कवच (रक्षक) हैं और जिनके गुण समूह आनंद देने वाले हैं, वे श्री रामजी निरंतर मेरे कल्याण का विस्तार करें॥8॥

* जदपि बिरज ब्यापक अबिनासी। सब के हृदयँ निरंतर बासी॥

तदपि अनुज श्री सहित खरारी। बसतु मनसि मम काननचारी॥9॥

भावार्थ:-यद्यपि आप निर्मल, व्यापक, अविनाशी और सबके हृदय में निरंतर निवास करने वाले हैं, तथापि हे खरारि श्री रामजी! लक्ष्मणजी और सीताजी सहित वन में विचरने वाले आप इसी रूप में मेरे हृदय में निवास कीजिए॥9॥

* जे जानहिं ते जानहुँ स्वामी। सगुन अगुन उर अंतरजामी॥

जो कोसलपति राजिव नयना। करउ सो राम हृदय मम अयना॥10॥

भावार्थ:-हे स्वामी! आपको जो सगुण, निर्गुण और अंतर्यामी जानते हों, वे जाना करें, मेरे हृदय में तो कोसलपति कमलनयन श्री रामजी ही अपना घर बनावें॥10॥

* अस अभिमान जाइ जनि भोरे। मैं सेवक रघुपति पति मोरे॥

सुनि मुनि बचन राम मन भाए। बहुरि हरषि मुनिबर उर लाए॥11॥

भावार्थ:-ऐसा अभिमान भूलकर भी न छूटे कि मैं सेवक हूँ और श्री रघुनाथजी मेरे स्वामी हैं। मुनि के वचन सुनकर श्री रामजी मन में बहुत प्रसन्न हुए। तब उन्होंने हर्षित होकर श्रेष्ठ मुनि को हृदय से लगा लिया॥11॥

* परम प्रसन्न जानु मुनि मोही। जो बर मागहु देउँ सो तोही॥

मुनि कह मैं बर कबहुँ न जाचा। समुझि न परइ झूठ का साचा॥12॥

भावार्थ:-(और कहा-) हे मुनि! मुझे परम प्रसन्न जानो। जो वर माँगो, वही मैं तुम्हें दूँ! मुनि सुतीक्ष्णजी ने कहा- मैंने तो वर कभी माँगा ही नहीं। मुझे समझ ही नहीं पड़ता कि क्या झूठ है और क्या सत्य है, (क्या माँगू, क्या नहीं)॥12॥

* तुम्हहि नीक लागै रघुराई। सो मोहि देहु दास सुखदाई॥
अबिरल भगति बिरति बिग्याना। होहु सकल गुन ग्यान निधाना॥13॥

भावार्थ:-((अतः) हे रघुनाथजी! हे दासों को सुख देने वाले! आपको जो अच्छा लगे, मुझे वही दीजिए। (श्री रामचंद्रजी ने कहा- हे मुने!) तुम प्रगाढ़ भक्ति, वैराग्य, विज्ञान और समस्त गुणों तथा ज्ञान के निधान हो जाओ॥13॥

* प्रभु जो दीन्ह सो बरु मैं पावा। अब सो देहु मोहि जो भावा॥14॥

भावार्थ:-(तब मुनि बोले-) प्रभु ने जो वरदान दिया, वह तो मैंने पा लिया। अब मुझे जो अच्छा लगता है, वह दीजिए॥14॥

दोहा :

* अनुज जानकी सहित प्रभु चाप बान धर राम।
मन हिय गगन इंदु इव बसहु सदा निहकाम॥11॥

भावार्थ:-हे प्रभो! हे श्री रामजी! छोटे भाई लक्ष्मणजी और सीताजी सहित धनुष-बाणधारी आप निष्काम (स्थिर) होकर मेरे हृदय रूपी आकाश में चंद्रमा की भाँति सदा निवास कीजिए॥11॥

चौपाई :

* एवमस्तु करि रमानिवासा। हरषि चले कुंभज रिषि पासा॥

बहुत दिवस गुर दरसनु पाएँ। भए मोहि एहिं आश्रम आएँ॥1॥

भावार्थ:-'एवमस्तु' (ऐसा ही हो) ऐसा उच्चारण कर लक्ष्मी निवास श्री रामचंद्रजी हर्षित होकर अगस्त्य ऋषि के पास चले। (तब सुतीक्ष्णजी बोले-) गुरु अगस्त्यजी का दर्शन पाए और इस आश्रम में आए मुझे बहुत दिन हो गए॥1॥

* अब प्रभु संग जाउँ गुर पाहीं। तुम्ह कहँ नाथ निहोरा नाहीं॥

देखि कृपानिधि मुनि चतुराई। लिए संग बिहसे द्वौ भाई॥2॥

भावार्थ:-अब मैं भी प्रभु (आप) के साथ गुरुजी के पास चलता हूँ। इसमें हे नाथ! आप पर मेरा कोई एहसान नहीं है। मुनि की चतुरता देखकर कृपा के भंडार श्री रामजी ने उनको साथ ले लिया और दोनो भाई हँसने लगे॥2॥

* पंथ कहत निज भगति अनूपा। मुनि आश्रम पहुँचे सुरभूपा॥

तुरत सुतीछन गुर पहिं गयऊ। करि दंडवत कहत अस भयऊ॥3॥

भावार्थ:-रास्ते में अपनी अनुपम भक्ति का वर्णन करते हुए देवताओं के राजराजेश्वर श्री रामजी अगस्त्य मुनि के आश्रम पर पहुँचे। सुतीक्ष्ण

तुरंत ही गुरु अगस्त्य के पास गए और दण्डवत् करके ऐसा कहने लगे॥3॥

* नाथ कोसलाधीस कुमारा। आए मिलन जगत आधारा॥

राम अनुज समेत बैदेही। निसि दिनु देव जपत हहु जेही॥4॥

भावार्थ:-हे नाथ! अयोध्या के राजा दशरथजी के कुमार जगदाधार श्री रामचंद्रजी छोटे भाई लक्ष्मणजी और सीताजी सहित आपसे मिलने आए हैं, जिनका हे देव! आप रात-दिन जप करते रहते हैं॥4॥

* सुनत अगस्ति तुरत उठि धाए। हरि बिलोकि लोचन जल छाए॥

मुनि पद कमल परे द्वौ भाई। रिषि अति प्रीति लिए उर लाई॥5॥

भावार्थ:-यह सुनते ही अगस्त्यजी तुरंत ही उठ दौड़े। भगवान् को देखते ही उनके नेत्रों में (आनंद और प्रेम के आँसुओं का) जल भर आया। दोनों भाई मुनि के चरण कमलों पर गिर पड़े। ऋषि ने (उठाकर) बड़े प्रेम से उन्हें हृदय से लगा लिया॥5॥

* सादर कुसल पूछि मुनि ग्यानी। आसन बर बैठारे आनी॥

पुनि करि बहु प्रकार प्रभु पूजा। मोहि सम भाग्यवंत नहिं दूजा॥6॥

भावार्थ:-ज्ञानी मुनि ने आदरपूर्वक कुशल पूछकर उनको लाकर श्रेष्ठ आसन पर बैठाया। फिर बहुत प्रकार से प्रभु की पूजा करके कहा- मेरे समान भाग्यवान् आज दूसरा कोई नहीं है॥6॥

* जहँ लगि रहे अपर मुनि बृंदा। हरषे सब बिलोकि सुखकंदा॥7॥

भावार्थ:-वहाँ जहाँ तक (जितने भी) अन्य मुनिगण थे, सभी आनंदकन्द श्री रामजी के दर्शन करके हर्षित हो गए॥7॥

दोहा :

* मुनि समूह महँ बैठे सन्मुख सब की ओर।

सरद इंदु तन चितवन मानहुँ निकर चकोर॥12॥

भावार्थ:-मुनियों के समूह में श्री रामचंद्रजी सबकी ओर सम्मुख होकर बैठे हैं (अर्थात्‌ प्रत्येक मुनि को श्री रामजी अपने ही सामने मुख करके बैठे दिखाई देते हैं और सब मुनि टकटकी लगाए उनके मुख को देख रहे हैं)। ऐसा जान पड़ता है मानो चकोरों का समुदाय शरत्पूर्णिमा के चंद्रमा की ओर देख रहा है॥12॥

चौपाई :

* तब रघुबीर कहा मुनि पाहीं। तुम्ह सन प्रभु दुराव कछु नाहीं॥

तुम्ह जानहु जेहि कारन आयउँ। ताते तात न कहि समुझायउँ॥1॥

भावार्थ:-तब श्री रामजी ने मुनि से कहा- हे प्रभो! आप से तो कुछ छिपाव है नहीं। मैं जिस कारण से आया हूँ, वह आप जानते ही हैं। इसी से हे तात! मैंने आपसे समझाकर कुछ नहीं कहा॥1॥

* अब सो मंत्र देहु प्रभु मोही। जेहि प्रकार मारौं मुनिद्रोही॥

मुनि मुसुकाने सुनि प्रभु बानी। पूछेहु नाथ मोहि का जानी॥2॥

भावार्थ:-हे प्रभो! अब आप मुझे वही मंत्र (सलाह) दीजिए, जिस प्रकार मैं मुनियों के द्रोही राक्षसों को मारूँ। प्रभु की वाणी सुनकर मुनि

मुस्कुराए और बोले- हे नाथ! आपने क्या समझकर मुझसे यह प्रश्न किया?॥2॥

* तुम्हरेइँ भजन प्रभाव अघारी। जानउँ महिमा कछुक तुम्हारी॥

ऊमरि तरु बिसाल तव माया। फल ब्रह्मांड अनेक निकाया॥3॥

भावार्थ:-हे पापों का नाश करने वाले! मैं तो आप ही के भजन के प्रभाव से आपकी कुछ थोड़ी सी महिमा जानता हूँ। आपकी माया गूलर के विशाल वृक्ष के समान है, अनेकों ब्रह्मांडों के समूह ही जिसके फल हैं॥3॥

* जीव चराचर जंतु समाना। भीतर बसहिं न जानहिं आना॥

ते फल भच्छक कठिन कराला। तव भयँ डरत सदा सोउ काला॥4॥

भावार्थ:-चर और अचर जीव (गूलर के फल के भीतर रहने वाले छोटे-छोटे) जंतुओं के समान उन (ब्रह्माण्ड रूपी फलों) के भीतर बसते हैं और वे (अपने उस छोटे से जगत् के सिवा) दूसरा कुछ नहीं जानते। उन फलों का भक्षण करने वाला कठिन और कराल काल है। वह काल भी सदा आपसे भयभीत रहता है॥4॥

* ते तुम्ह सकल लोकपति साईं। पूँछेहु मोहि मनुज की नाईं॥

यह बर मागउँ कृपानिकेता। बसहु हृदयँ श्री अनुज समेता॥5॥

भावार्थ:-उन्हीं आपने समस्त लोकपालों के स्वामी होकर भी मुझसे मनुष्य की तरह प्रश्न किया। हे कृपा के धाम! मैं तो यह वर माँगता हूँ कि आप श्री सीताजी और छोटे भाई लक्ष्मणजी सहित मेरे हृदय में (सदा) निवास कीजिए॥5॥

* अबिरल भगति बिरति सतसंगा। चरन सरोरुह प्रीति अभंगा॥

जद्यपि ब्रह्म अखंड अनंता। अनुभव गम्य भजहिं जेहि संता।6॥

भावार्थ:-मुझे प्रगाढ़ भक्ति, वैराग्य, सत्संग और आपके चरणकमलों में अटूट प्रेम प्राप्त हो। यद्यपि आप अखंड और अनंत ब्रह्म हैं, जो अनुभव से ही जानने में आते हैं और जिनका संतजन भजन करते हैं॥6॥

* अस तव रूप बखानउँ जानउँ। फिरि फिरि सगुन ब्रह्म रति मानउँ॥

संतत दासन्ह देहु बड़ाई। तातें मोहि पूँछेहु रघुराई॥7॥

भावार्थ:-यद्यपि मैं आपके ऐसे रूप को जानता हूँ और उसका वर्णन भी करता हूँ, तो भी लौट-लौटकर में सगुण ब्रह्म में (आपके इस सुंदर स्वरूप में) ही प्रेम मानता हूँ। आप सेवकों को सदा ही बड़ाई दिया करते हैं, इसी से हे रघुनाथजी! आपने मुझसे पूछा है॥7॥

गीताप्रेस गोरखपुर

गीताप्रेस गोरखपुर

राम का दंडकवन प्रवेश, जटायु मिलन, पंचवटी निवास और श्री राम-लक्ष्मण संवाद

* है प्रभु परम मनोहर ठाऊँ। पावन पंचबटी तेहि नाऊँ॥

दंडक बन पुनीत प्रभु करहू। उग्र साप मुनिबर कर हरहू॥8॥

भावार्थ:-हे प्रभो! एक परम मनोहर और पवित्र स्थान है, उसका नाम पंचवटी है। हे प्रभो! आप दण्डक वन को (जहाँ पंचवटी है) पवित्र कीजिए और श्रेष्ठ मुनि गौतमजी के कठोर शाप को हर लीजिए॥8॥

* बास करहु तहँ रघुकुल राया। कीजे सकल मुनिन्ह पर दाया॥

चले राम मुनि आयसु पाई। तुरतहिं पंचबटी निअराई॥9॥

भावार्थ:-हे रघुकुल के स्वामी! आप सब मुनियों पर दया करके वहीं निवास कीजिए। मुनि की आज्ञा पाकर श्री रामचंद्रजी वहाँ से चल दिए और शीघ्र ही पंचवटी के निकट पहुँच गए॥9॥

दोहा :

* गीधराज सै भेंट भइ बहु बिधि प्रीति बढ़ाइ।

गोदावरी निकट प्रभु रहे परन गृह छाइ॥13॥

भावार्थ:-वहाँ गृध्रराज जटायु से भेंट हुई। उसके साथ बहुत प्रकार से प्रेम बढ़ाकर प्रभु श्री रामचंद्रजी गोदावरीजी के समीप पर्णकुटी छाकर रहने लगे॥13॥

चौपाई :

* जब ते राम कीन्ह तहँ बासा। सुखी भए मुनि बीती त्रासा॥

गिरि बन नदीं ताल छबि छाए। दिन दिन प्रति अति होहिं सुहाए॥1॥

भावार्थ:-जब से श्री रामजी ने वहाँ निवास किया, तब से मुनि सुखी हो गए, उनका डर जाता रहा। पर्वत, वन, नदी और तालाब शोभा से छा गए। वे दिनोंदिन अधिक सुहावने (मालूम) होने लगे॥1॥

* खग मृग बृंद अनंदित रहहीं। मधुप मधुर गुंजत छबि लहहीं॥

सो बन बरनि न सक अहिराजा। जहाँ प्रगट रघुबीर बिराजा॥2॥

भावार्थ:-पक्षी और पशुओं के समूह आनंदित रहते हैं और भौंरे मधुर गुंजार करते हुए शोभा पा रहे हैं। जहाँ प्रत्यक्ष श्री रामजी विराजमान हैं, उस वन का वर्णन सर्पराज शेषजी भी नहीं कर सकते॥2॥

* एक बार प्रभु सुख आसीना। लछिमन बचन कहे छलहीना॥

सुर नर मुनि सचराचर साईं। मैं पूछउँ निज प्रभु की नाईं॥3॥

भावार्थ:-एक बार प्रभु श्री रामजी सुख से बैठे हुए थे। उस समय लक्ष्मणजी ने उनसे छलरहित (सरल) वचन कहे- हे देवता, मनुष्य, मुनि और चराचर के स्वामी! मैं अपने प्रभु की तरह (अपना स्वामी समझकर) आपसे पूछता हूँ॥3॥

* मोहि समुझाइ कहहु सोइ देवा। सब तजि करौं चरन रज सेवा॥

कहहु ग्यान बिराग अरु माया। कहहु सो भगति करहु जेहिं दाया॥4॥

भावार्थ:-हे देव! मुझे समझाकर वही कहिए, जिससे सब छोड़कर मैं आपकी चरणरज की ही सेवा करूँ। ज्ञान, वैराग्य और माया का वर्णन कीजिए और उस भक्ति को कहिए, जिसके कारण आप दया करते हैं॥4॥

दोहा :

* ईस्वर जीव भेद प्रभु सकल कहौ समुझाइ।

जातें होइ चरन रति सोक मोह भ्रम जाइ॥14॥

भावार्थ:-हे प्रभो! ईश्वर और जीव का भेद भी सब समझाकर कहिए, जिससे आपके चरणों में मेरी प्रीति हो और शोक, मोह तथा भ्रम नष्ट हो जाएँ॥14॥

चौपाई :

* थोरेहि महँ सब कहउँ बुझाई। सुनहु तात मति मन चित लाई॥

मैं अरु मोर तोर तैं माया। जेहिं बस कीन्हे जीव निकाया॥1॥

भावार्थ:-(श्री रामजी ने कहा-) हे तात! मैं थोड़े ही में सब समझाकर कहे देता हूँ। तुम मन, चित्त और बुद्धि लगाकर सुनो! मैं और मेरा, तू और तेरा- यही माया है, जिसने समस्त जीवों को वश में कर रखा है॥1॥

* गो गोचर जहँ लगि मन जाई। सो सब माया जानेहु भाई॥

तेहि कर भेद सुनहु तुम्ह सोऊ। बिद्या अपर अबिद्या दोऊ॥2॥

भावार्थ:-इंद्रियों के विषयों को और जहाँ तक मन जाता है, हे भाई! उन सबको माया जानना। उसके भी एक विद्या और दूसरी अविद्या, इन दोनों भेदों को तुम सुनो-॥2॥

* एक दुष्ट अतिसय दुखरूपा। जा बस जीव परा भवकूपा॥

एक रचइ जग गुन बस जाकें। प्रभु प्रेरित नहिं निज बल ताकें॥3॥

भावार्थ:-एक (अविद्या) दुष्ट (दोषयुक्त) है और अत्यंत दुःखरूप है, जिसके वश होकर जीव संसार रूपी कुएँ में पड़ा हुआ है और एक (विद्या) जिसके वश में गुण है और जो जगत् की रचना करती है, वह प्रभु से ही प्रेरित होती है, उसके अपना बल कुछ भी नही है॥3॥

* ग्यान मान जहँ एकउ नाहीं। देख ब्रह्म समान सब माहीं॥

कहिअ तात सो परम बिरागी। तृन सम सिद्धि तीनि गुन त्यागी॥4॥

भावार्थ:-ज्ञान वह है, जहाँ (जिसमें) मान आदि एक भी (दोष) नहीं है और जो सबसे समान रूप से ब्रह्म को देखता है। हे तात! उसी को परम वैराग्यवान् कहना चाहिए, जो सारी सिद्धियों को और तीनों गुणों को तिनके के समान त्याग चुका हो॥4॥

(जिसमें मान, दम्भ, हिंसा, क्षमाराहित्य, टेढ़ापन, आचार्य सेवा का अभाव, अपवित्रता, अस्थिरता, मन का निगृहीत न होना, इंद्रियों के

विषय में आसक्ति, अहंकार, जन्म-मृत्यु-जरा-व्याधिमय जगत् में सुख-बुद्धि, स्त्री-पुत्र-घर आदि में आसक्ति तथा ममता, इष्ट और अनिष्ट की प्राप्ति में हर्ष-शोक, भक्ति का अभाव, एकान्त में मन न लगना, विषयी मनुष्यों के संग में प्रेम- ये अठारह न हों और नित्य अध्यात्म (आत्मा) में स्थिति तथा तत्त्व ज्ञान के अर्थ (तत्त्वज्ञान के द्वारा जानने योग्य) परमात्मा का नित्य दर्शन हो, वही ज्ञान कहलाता है। देखिए गीता अध्याय 13/ 7 से 11)

दोहा :

* माया ईस न आपु कहुँ जान कहिअ सो जीव।

बंध मोच्छ प्रद सर्बपर माया प्रेरक सीव॥15॥

भावार्थ:-जो माया को, ईश्वर को और अपने स्वरूप को नहीं जानता, उसे जीव कहना चाहिए। जो (कर्मानुसार) बंधन और मोक्ष देने वाला, सबसे परे और माया का प्रेरक है, वह ईश्वर है॥15॥

चौपाई

* धर्म तें बिरति जोग तें ग्याना। ग्यान मोच्छप्रद बेद बखाना॥

जातें बेगि द्रवउँ मैं भाई। सो मम भगति भगत सुखदाई॥1॥

भावार्थ:-धर्म (के आचरण) से वैराग्य और योग से ज्ञान होता है तथा ज्ञान मोक्ष का देने वाला है- ऐसा वेदों ने वर्णन किया है। और हे भाई! जिससे मैं शीघ्र ही प्रसन्न होता हूँ, वह मेरी भक्ति है जो भक्तों को सुख देने वाली है॥1॥

* सो सुतंत्र अवलंब न आना। तेहि आधीन ग्यान बिग्याना॥

भगति तात अनुपम सुखमूला। मिलइ जो संत होइँ अनुकूला॥2॥

भावार्थ:-वह भक्ति स्वतंत्र है, उसको (ज्ञान-विज्ञान आदि किसी) दूसरे साधन का सहारा (अपेक्षा) नहीं है। ज्ञान और विज्ञान तो उसके अधीन हैं। हे तात! भक्ति अनुपम एवं सुख की मूल है और वह तभी मिलती है, जब संत अनुकूल (प्रसन्न) होते हैं॥2॥

* भगति कि साधन कहउँ बखानी। सुगम पंथ मोहि पावहिं प्रानी॥

प्रथमहिं बिप्र चरन अति प्रीती। निज निज कर्म निरत श्रुति रीती॥3॥

भावार्थ:-अब मैं भक्ति के साधन विस्तार से कहता हूँ- यह सुगम मार्ग है, जिससे जीव मुझको सहज ही पा जाते हैं। पहले तो ब्राह्मणों के चरणों में अत्यंत प्रीति हो और वेद की रीति के अनुसार अपने-अपने (वर्णाश्रम के) कर्मों में लगा रहे॥3॥

* एहि कर फल पुनि बिषय बिरागा। तब मम धर्म उपज अनुरागा॥

श्रवनादिक नव भक्ति दृढ़ाहीं। मम लीला रति अति मन माहीं॥4॥

भावार्थ:-इसका फल, फिर विषयों से वैराग्य होगा। तब (वैराग्य होने पर) मेरे धर्म (भागवत धर्म) में प्रेम उत्पन्न होगा। तब श्रवण आदि नौ प्रकार की भक्तियाँ दृढ़ होंगी और मन में मेरी लीलाओं के प्रति अत्यंत प्रेम होगा॥4॥

* संत चरन पंकज अति प्रेमा। मन क्रम बचन भजन दृढ़ नेमा॥

गुरु पितु मातु बंधु पति देवा। सब मोहि कहँ जानै दृढ़ सेवा॥5॥

भावार्थ:-जिसका संतों के चरणकमलों में अत्यंत प्रेम हो, मन, वचन और कर्म से भजन का दृढ़ नियम हो और जो मुझको ही गुरु, पिता, माता, भाई, पति और देवता सब कुछ जाने और सेवा में दृढ़ हो,॥5॥

* मम गुन गावत पुलक सरीरा। गदगद गिरा नयन बह नीरा॥

काम आदि मद दंभ न जाकें। तात निरंतर बस मैं ताकें॥6॥

भावार्थ:-मेरा गुण गाते समय जिसका शरीर पुलकित हो जाए, वाणी गदगद हो जाए और नेत्रों से (प्रेमाश्रुओं का) जल बहने लगे और काम, मद और दम्भ आदि जिसमें न हों, हे भाई! मैं सदा उसके वश में रहता हूँ॥6॥

दोहा :

* बचन कर्म मन मोरि गति भजनु करहिं निःकाम।

तिन्ह के हृदय कमल महुँ करउँ सदा बिश्राम॥16॥

भावार्थ:-जिनको कर्म, वचन और मन से मेरी ही गति है और जो निष्काम भाव से मेरा भजन करते हैं, उनके हृदय कमल में मैं सदा विश्राम किया करता हूँ॥16॥

चौपाई :

* भगति जोग सुनि अति सुख पावा। लछिमन प्रभु चरनन्हि सिरु नावा॥

एहि बिधि कछुक दिन बीती। कहत बिराग ग्यान गुन नीती॥1॥

भावार्थ:-इस भक्ति योग को सुनकर लक्ष्मणजी ने अत्यंत सुख पाया और उन्होंने प्रभु श्री रामचंद्रजी के चरणों में सिर नवाया। इस प्रकार वैराग्य, ज्ञान, गुण और नीति कहते हुए कुछ दिन बीत गए॥1॥

शूर्पणखा की कथा, शूर्पणखा का खरदूषण के पास जाना और खरदूषणादि का वध

* सूपनखा रावन कै बहिनी। दुष्ट हृदय दारुन जस अहिनी॥

पंचबटी सो गइ एक बारा। देखि बिकल भइ जुगल कुमारा॥2॥

भावार्थ:-शूर्पणखा नामक रावण की एक बहिन थी, जो नागिन के समान भयानक और दुष्ट हृदय की थी। वह एक बार पंचवटी में गई और दोनों राजकुमारों को देखकर विकल (काम से पीड़ित) हो गई॥2॥

* भ्राता पिता पुत्र उरगारी। पुरुष मनोहर निरखत नारी॥

होइ बिकल सक मनहि न रोकी। जिमि रबिमनि द्रव रबिहि बिलोकी॥3॥

भावार्थ:-(काकभुशुण्डिजी कहते हैं-) हे गरुड़जी! (शूर्पणखा- जैसी राक्षसी, धर्मज्ञान शून्य कामान्ध) स्त्री मनोहर पुरुष को देखकर, चाहे वह भाई, पिता, पुत्र ही हो, विकल हो जाती है और मन को नहीं रोक सकती। जैसे सूर्यकान्तमणि सूर्य को देखकर द्रवित हो जाती है (ज्वाला से पिघल जाती है)॥3॥

* रुचिर रूप धरि प्रभु पहिं जाई। बोली बचन बहुत मुसुकाई॥
तुम्ह सम पुरुष न मो सम नारी। यह सँजोग बिधि रचा बिचारी॥4॥

भावार्थ:-वह सुन्दर रूप धरकर प्रभु के पास जाकर और बहुत मुस्कुराकर वचन बोली- न तो तुम्हारे समान कोई पुरुष है, न मेरे समान स्त्री। विधाता ने यह संयोग (जोड़ा) बहुत विचार कर रचा है॥4॥

* मम अनुरूप पुरुष जग माहीं। देखेउँ खोजि लोक तिहु नाहीं॥
तातें अब लगि रहिउँ कुमारी। मनु माना कछु तुम्हहि निहारी॥5॥

भावार्थ:-मेरे योग्य पुरुष (वर) जगत्‌भर में नहीं है, मैंने तीनों लोकों को खोज देखा। इसी से मैं अब तक कुमारी (अविवाहित) रही। अब तुमको देखकर कुछ मन माना (चित्त ठहरा) है॥5॥

* सीतहि चितइ कही प्रभु बाता। अहइ कुआर मोर लघु भ्राता॥
गइ लछिमन रिपु भगिनी जानी। प्रभु बिलोकि बोले मृदु बानी॥6॥

भावार्थ:-सीताजी की ओर देखकर प्रभु श्री रामजी ने यह बात कही कि मेरा छोटा भाई कुमार है। तब वह लक्ष्मणजी के पास गई। लक्ष्मणजी ने उसे शत्रु की बहिन समझकर और प्रभु की ओर देखकर कोमल वाणी से बोले-॥6॥

* सुंदरि सुनु मैं उन्ह कर दासा। पराधीन नहिं तोर सुपासा॥
प्रभु समर्थ कोसलपुर राजा। जो कछु करहिं उनहि सब छाजा॥7॥

भावार्थ:-हे सुंदरी! सुन, मैं तो उनका दास हूँ। मैं पराधीन हूँ, अतः तुम्हे सुभीता (सुख) न होगा। प्रभु समर्थ हैं, कोसलपुर के राजा है, वे जो कुछ करें, उन्हें सब फबता है॥7॥

* सेवक सुख चह मान भिखारी। ब्यसनी धन सुभ गति बिभिचारी॥
लोभी जसु चह चार गुमानी। नभ दुहि दूध चहत ए प्रानी॥8॥

भावार्थ:-सेवक सुख चाहे, भिखारी सम्मान चाहे, व्यसनी (जिसे जुए, शराब आदि का व्यसन हो) धन और व्यभिचारी शुभ गति चाहे, लोभी यश चाहे और अभिमानी चारों फल- अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष चाहे, तो ये सब प्राणी आकाश को दुहकर दूध लेना चाहते हैं (अर्थात् असंभव बात को संभव करना चाहते हैं)॥8॥

* पुनि फिरि राम निकट सो आई। प्रभु लछिमन पहिं बहुरि पठाई॥
लछिमन कहा तोहि सो बरई। जो तृन तोरि लाज परिहरई॥9॥

भावार्थ:-वह लौटकर फिर श्री रामजी के पास आई, प्रभु ने उसे फिर लक्ष्मणजी के पास भेज दिया। लक्ष्मणजी ने कहा- तुम्हें वही वरेगा, जो लज्जा को तृण तोड़कर (अर्थात् प्रतिज्ञा करके) त्याग देगा (अर्थात् जो निपट निर्लज्ज होगा)॥9॥

* तब खिसिआनि राम पहिं गई। रूप भयंकर प्रगटत भई॥
सीतहि सभय देखि रघुराई। कहा अनुज सन सयन बुझाई॥10॥

भावार्थ:-तब वह खिसियायी हुई (क्रुद्ध होकर) श्री रामजी के पास गई और उसने अपना भयंकर रूप प्रकट किया। सीताजी को भयभीत देखकर श्री रघुनाथजी ने लक्ष्मण को इशारा देकर कहा॥10॥

दोहा :

* लछिमन अति लाघवँ सो नाक कान बिनु कीन्हि।

ताके कर रावन कहँ मनौ चुनौती दीन्हि॥17॥

भावार्थ:-लक्ष्मणजी ने बड़ी फुर्ती से उसको बिना नाक-कान की कर दिया। मानो उसके हाथ रावण को चुनौती दी हो!॥17॥

चौपाई :

* नाक कान बिनु भइ बिकरारा। जनु स्रव सैल गेरु कै धारा॥

खर दूषन पहिं गइ बिलपाता। धिग धिग तव पौरुष बल भ्राता॥1॥

भावार्थ:-बिना नाक-कान के वह विकराल हो गई। (उसके शरीर से रक्त इस प्रकार बहने लगा) मानो (काले) पर्वत से गेरू की धारा बह रही हो। वह विलाप करती हुई खर-दूषण के पास गई (और बोली-) हे भाई! तुम्हारे पौरुष (वीरता) को धिक्कार है, तुम्हारे बल को धिक्कार है॥1॥

* तेहिं पूछा सब कहेसि बुझाई। जातुधान सुनि सेन बनाई॥

धाए निसिचर निकर बरूथा। जनु सपच्छ कज्जल गिरि जूथा॥2॥

भावार्थ:-उन्होंने पूछा, तब शूर्पणखा ने सब समझाकर कहा। सब सुनकर राक्षसों ने सेना तैयार की। राक्षस समूह झुंड के झुंड दौड़े। मानो पंखधारी काजल के पर्वतों का झुंड हो॥2॥

* नाना बाहन नानाकारा। नानायुध धर घोर अपारा॥

सूपनखा आगें करि लीनी। असुभ रूप श्रुति नासा हीनी॥3॥

भावार्थ:-वे अनेकों प्रकार की सवारियों पर चढ़े हुए तथा अनेकों आकार (सूरतों) के हैं। वे अपार हैं और अनेकों प्रकार के असंख्य भयानक हथियार धारण किए हुए हैं। उन्होंने नाक-कान कटी हुई अमंगलरूपिणी शूर्पणखा को आगे कर लिया॥3॥

* असगुन अमित होहिं भयकारी। गनहिं न मृत्यु बिबस सब झारी॥

गर्जहिं तर्जहिं गगन उड़ाहीं। देखि कटकु भट अति हरषाहीं॥4॥

भावार्थ:-अनगिनत भयंकर अशकुन हो रहे हैं, परंतु मृत्यु के वश होने के कारण वे सब के सब उनको कुछ गिनते ही नहीं। गरजते हैं, ललकारते हैं और आकाश में उड़ते हैं। सेना देखकर योद्धा लोग बहुत ही हर्षित होते हैं॥4॥

* कोउ कह जिअत धरहु द्वौ भाई। धरि मारहु तिय लेहु छड़ाई॥

धूरि पूरि नभ मंडल रहा। राम बोलाइ अनुज सन कहा॥5॥

भावार्थ:-कोई कहता है दोनों भाइयों को जीता ही पकड़ लो, पकड़कर मार डालो और स्त्री को छीन लो। आकाशमण्डल धूल से भर गया। तब श्री रामजी ने लक्ष्मणजी को बुलाकर उनसे कहा॥5॥

* लै जानकिहि जाहु गिरि कंदर। आवा निसिचर कटकु भयंकर॥

रहेहु सजग सुनि प्रभु कै बानी। चले सहित श्री सर धनु पानी॥6॥

भावार्थ:-राक्षसों की भयानक सेना आ गई है। जानकीजी को लेकर तुम पर्वत की कंदरा में चले जाओ। सावधान रहना। प्रभु श्री रामचंद्रजी के वचन सुनकर लक्ष्मणजी हाथ में धनुष-बाण लिए श्री सीताजी सहित चले॥6॥

* देखि राम रिपुदल चलि आवा।

बिहसि कठिन कोदंड चढ़ावा॥7॥

भावार्थ:-शत्रुओं की सेना (समीप) चली आई है, यह देखकर श्री रामजी ने हँसकर कठिन धनुष को चढ़ाया॥7॥

छंद :

* कोदंड कठिन चढ़ाइ सिर जट जूट बाँधत सोह क्यों।

मरकत सयल पर लरत दामिनि कोटि सों जुग भुजग ज्यों॥

कटि कसि निषंग बिसाल भुज गहि चाप बिसिख सुधारि कै।

चितवत मनहुँ मृगराज प्रभु गजराज घटा निहारि कै॥

भावार्थ:-कठिन धनुष चढ़ाकर सिर पर जटा का जूड़ा बाँधते हुए प्रभु कैसे शोभित हो रहे हैं, जैसे मरकतमणि (पन्ने) के पर्वत पर करोड़ों बिजलियों से दो साँप लड़ रहे हों। कमर में तरकस कसकर, विशाल भुजाओं में धनुष लेकर और बाण सुधारकर प्रभु श्री रामचंद्रजी राक्षसों की ओर देख रहे हैं। मानों मतवाले हाथियों के समूह को (आता) देखकर सिंह (उनकी ओर) ताक रहा हो।

सोरठा :

* आइ गए बगमेल धरहु धरहु धावत सुभट।

जथा बिलोकि अकेल बाल रबिहि घेरत दनुज॥18॥

भावार्थ:-'पकड़ो-पकड़ो' पुकारते हुए राक्षस योद्धा बाग छोड़कर (बड़ी तेजी से) दौड़े हुए आए (और उन्होंने श्री रामजी को चारों ओर से घेर लिया), जैसे बालसूर्य (उदयकालीन सूर्य) को अकेला देखकर मन्देह नामक दैत्य घेर लेते हैं॥18॥

चौपाई :

* प्रभु बिलोकि सर सकहिं न डारी। थकित भई रजनीचर धारी॥

सचिव बोलि बोले खर दूषन। यह कोउ नृपबालक नर भूषन॥1॥

भावार्थ:-(सौंदर्य-माधुर्यनिधि) प्रभु श्री रामजी को देखकर राक्षसों की सेना थकित रह गई। वे उन पर बाण नहीं छोड़ सके। मंत्री को बुलाकर खर-दूषण ने कहा- यह राजकुमार कोई मनुष्यों का भूषण है॥1॥

* नाग असुर सुर नर मुनि जेते। देखे जिते हते हम केते॥

हम भरि जन्म सुनहु सब भाई। देखी नहिं असि सुंदरताई॥2॥

भावार्थ:-जितने भी नाग, असुर, देवता, मनुष्य और मुनि हैं, उनमें से हमने न जाने कितने ही देखे, जीते और मार डाले हैं। पर हे सब भाइयों! सुनो, हमने जन्मभर में ऐसी सुंदरता कहीं नहीं देखी॥2॥

* जद्यपि भगिनी कीन्हि कुरूपा। बध लायक नहिं पुरुष अनूपा॥

देहु तुरत निज नारि दुराई। जीअत भवन जाहु द्वौ भाई॥3॥

भावार्थ:-यद्यपि इन्होंने हमारी बहिन को कुरूप कर दिया तथापि ये अनुपम पुरुष वध करने योग्य नहीं हैं। 'छिपाई हुई अपनी स्त्री हमें तुरंत दे दो और दोनों भाई जीते जी घर लौट जाओ'॥3॥

* मोर कहा तुम्ह ताहि सुनावहु। तासु बचन सुनि आतुर आवहु॥
दूतन्ह कहा राम सन जाई। सुनत राम बोले मुसुकाई॥4॥

भावार्थ:-मेरा यह कथन तुम लोग उसे सुनाओ और उसका वचन (उत्तर) सुनकर शीघ्र आओ। दूतों ने जाकर यह संदेश श्री रामचंद्रजी से कहा। उसे सुनते ही श्री रामचंद्रजी मुस्कुराकर बोले-॥4॥

* हम छत्री मृगया बन करहीं। तुम्ह से खल मृग खोजत फिरहीं॥
रिपु बलवंत देखि नहिं डरहीं। एक बार कालहु सन लरहीं॥5॥

भावार्थ:-हम क्षत्रिय हैं, वन में शिकार करते हैं और तुम्हारे सरीखे दुष्ट पशुओं को तो ढूँढते ही फिरते हैं। हम बलवान्‌ शत्रु देखकर नहीं डरते। (लड़ने को आवे तो) एक बार तो हम काल से भी लड़ सकते हैं॥5॥

* जद्यपि मनुज दनुज कुल घालक। मुनि पालक खल सालक बालक॥
जौं न होइ बल घर फिरि जाहू। समर बिमुख मैं हतउँ न काहू॥6॥

भावार्थ:-यद्यपि हम मनुष्य हैं, परन्तु दैत्यकुल का नाश करने वाले और मुनियों की रक्षा करने वाले हैं, हम बालक हैं, परन्तु दुष्टों को दण्ड देने वाले। यदि बल न हो तो घर लौट जाओ। संग्राम में पीठ दिखाने वाले किसी को मैं नहीं मारता॥6॥

* रन चढ़ि करिअ कपट चतुराई। रिपु पर कृपा परम कदराई॥

दूतन्ह जाइ तुरत सब कहेऊ। सुनि खर दूषन उर अति दहेऊ॥7॥

भावार्थ:-रण में चढ़ आकर कपट-चतुराई करना और शत्रु पर कृपा करना (दया दिखाना) तो बड़ी भारी कायरता है। दूतों ने लौटकर तुरंत सब बातें कहीं, जिन्हें सुनकर खर-दूषण का हृदय अत्यंत जल उठा॥7॥

छंद :

* उर दहेउ कहेउ कि धरहु धाए बिकट भट रजनीचरा।

सर चाप तोमर सक्ति सूल कृपान परिघ परसु धरा॥

प्रभु कीन्हि धनुष टकोर प्रथम कठोर घोर भयावहा।

भए बधिर ब्याकुल जातुधान न ग्यान तेहि अवसर रहा॥

भावार्थ:-(खर-दूषण का) हृदय जल उठा। तब उन्होंने कहा- पकड़ लो (कैद कर लो)। (यह सुनकर) भयानक राक्षस योद्धा बाण, धनुष, तोमर, शक्ति (साँग), शूल (बरछी), कृपाण (कटार), परिघ और फरसा धारण किए हुए दौड़ पड़े। प्रभु श्री रामजी ने पहले धनुष का बड़ा कठोर, घोर और भयानक टंकार किया, जिसे सुनकर राक्षस बहरे और व्याकुल हो गए। उस समय उन्हें कुछ भी होश न रहा।

दोहा :

* सावधान होइ धाए जानि सबल आराति।

लागे बरषन राम पर अस्त्र सस्त्र बहुभाँति॥19 क॥

भावार्थ:-फिर वे शत्रु को बलवान् जानकर सावधान होकर दौड़े और श्री रामचन्द्रजी के ऊपर बहुत प्रकार के अस्त्र-शस्त्र बरसाने लगे॥19 (क)॥

* तिन्ह के आयुध तिल सम करि काटे रघुबीर।

तानि सरासन श्रवन लगि पुनि छाँड़े निज तीर॥19 ख॥

भावार्थ:-श्री रघुवीरजी ने उनके हथियारों को तिल के समान (टुकड़े-टुकड़े) करके काट डाला। फिर धनुष को कान तक तानकर अपने तीर छोड़े॥19 (ख)॥

छन्द :

* तब चले बान कराल। फुंकरत जनु बहु ब्याल॥

कोपेउ समर श्रीराम। चले बिसिख निसित निकाम॥1॥

भावार्थ:-तब भयानक बाण ऐसे चले, मानो फुफकारते हुए बहुत से सर्प जा रहे हैं। श्री रामचन्द्रजी संग्राम में क्रुद्ध हुए और अत्यन्त तीक्ष्ण बाण चले॥1॥

* अवलोकि खरतर तीर। मुरि चले निसिचर बीर॥

भए क्रुद्ध तीनिउ भाइ। जो भागि रन ते जाइ॥2॥

भावार्थ:-अत्यन्त तीक्ष्ण बाणों को देखकर राक्षस वीर पीठ दिखाकर भाग चले। तब खर-दूषण और त्रिशिरा तीनों भाई क्रुद्ध होकर बोले- जो रण से भागकर जाएगा,॥2॥

* तेहि बधब हम निज पानि। फिरे मरन मन महुँ ठानि॥

आयुध अनेक प्रकार। सनमुख ते करहिं प्रहार॥3॥

भावार्थ:-उसका हम अपने हाथों वध करेंगे। तब मन में मरना ठानकर भागते हुए राक्षस लौट पड़े और सामने होकर वे अनेकों प्रकार के हथियारों से श्री रामजी पर प्रहार करने लगे॥3॥

* रिपु परम कोपे जानि। प्रभु धनुष सर संधानि॥

छाँड़े बिपुल नाराच। लगे कटन बिकट पिसाच॥4॥

भावार्थ:-शत्रु को अत्यन्त कुपित जानकर प्रभु ने धनुष पर बाण चढ़ाकर बहुत से बाण छोड़े, जिनसे भयानक राक्षस कटने लगे॥4॥

* उर सीस भुज कर चरन। जहँ तहँ लगे महि परन॥

चिक्करत लागत बान। धर परत कुधर समान॥5॥

भावार्थ:-उनकी छाती, सिर, भुजा, हाथ और पैर जहाँ-तहाँ पृथ्वी पर गिरने लगे। बाण लगते ही वे हाथी की तरह चिंग्घाड़ते हैं। उनके पहाड़ के समान धड़ कट-कटकर गिर रहे हैं॥5॥

* भट कटत तन सत खंड। पुनि उठत करि पाषंड॥

नभ उड़त बहु भुज मुंड। बिनु मौलि धावत रुंड॥6॥

भावार्थ:-योद्धाओं के शरीर कटकर सैकड़ों टुकड़े हो जाते हैं। वे फिर माया करके उठ खड़े होते हैं। आकाश में बहुत सी भुजाएँ और सिर उड़ रहे हैं तथा बिना सिर के धड़ दौड़ रहे हैं॥6॥

* खग कंक काक सृगाल। कटकटहिं कठिन कराल॥7॥

भावार्थ:-चील (या क्रौंच), कौए आदि पक्षी और सियार कठोर और भयंकर कट-कट शब्द कर रहे हैं॥7॥

छन्द :

* कटकटहिं जंबुक भूत प्रेत पिसाच खर्पर संचहीं।
बेताल बीर कपाल ताल बजाइ जोगिनि नंचहीं॥
रघुबीर बान प्रचंड खंडहिं भटन्ह के उर भुज सिरा।
जहँ तहँ परहिं उठि लरहिं धर धरु धरु करहिं भयंकर गिरा॥1॥

भावार्थ:-सियार कटकटाते हैं, भूत, प्रेत और पिशाच खोपड़ियाँ बटोर रहे हैं (अथवा खप्पर भर रहे हैं)। वीर-वैताल खोपड़ियों पर ताल दे रहे हैं और योगिनियाँ नाच रही हैं। श्री रघुवीर के प्रचंड बाण योद्धाओं के वक्षःस्थल, भुजा और सिरों के टुकड़े-टुकड़े कर डालते हैं। उनके धड़ जहाँ-तहाँ गिर पड़ते हैं, फिर उठते और लड़ते हैं और 'पकड़ो-पकड़ो' का भयंकर शब्द करते हैं॥1॥

* अंतावरीं गहि उड़त गीध पिसाच कर गहि धावहीं।
संग्राम पुर बासी मनहुँ बहु बाल गुड़ी उड़ावहीं॥
मारे पछारे उर बिदारे बिपुल भट कहँरत परे।
अवलोकि निज दल बिकल भट तिसिरादि खर दूषन फिरे॥2॥

भावार्थ:-अंतड़ियों के एक छोर को पकड़कर गीध उड़ते हैं और उन्हीं का दूसरा छोर हाथ से पकड़कर पिशाच दौड़ते हैं, ऐसा मालूम होता है मानो संग्राम रूपी नगर के निवासी बहुत से बालक पतंग उड़ा रहे हों। अनेकों योद्धा मारे और पछाड़े गए बहुत से, जिनके हृदय विदीर्ण हो गए

हैं, पड़े कराह रहे हैं। अपनी सेना को व्याकुल देखकर त्रिशिरा और खर-दूषण आदि योद्धा श्री रामजी की ओर मुड़े॥2॥

* सरसक्ति तोमर परसु सूल कृपान एकहि बारहीं।
करि कोप श्री रघुबीर पर अगनित निसाचर डारहीं॥
प्रभु निमिष महुँ रिपु सर निवारि पचारि डारे सायका।
दस दस बिसिख उर माझ मारे सकल निसिचर नायका॥3॥

भावार्थ:-अनगिनत राक्षस क्रोध करके बाण, शक्ति, तोमर, फरसा, शूल और कृपाण एक ही बार में श्री रघुवीर पर छोड़ने लगे। प्रभु ने पल भर में शत्रुओं के बाणों को काटकर, ललकारकर उन पर अपने बाण छोड़े। सब राक्षस सेनापतियों के हृदय में दस-दस बाण मारे॥3॥

* महि परत उठि भट भिरत मरत न करत माया अति घनी।
सुर डरत चौदह सहस प्रेत बिलोकि एक अवध धनी॥
सुर मुनि सभय प्रभु देखि मायानाथ अति कौतुक कर्‌यो।
देखहिं परसपर राम करि संग्राम रिपु दल लरि मर्‌यो॥4॥

भावार्थ:-योद्धा पृथ्वी पर गिर पड़ते हैं, फिर उठकर भिड़ते हैं। मरते नहीं, बहुत प्रकार की अतिशय माया रचते हैं। देवता यह देखकर डरते हैं कि प्रेत (राक्षस) चौदह हजार हैं और अयोध्यानाथ श्री रामजी अकेले हैं। देवता और मुनियों को भयभीत देखकर माया के स्वामी प्रभु ने एक बड़ा

कौतुक किया, जिससे शत्रुओं की सेना एक-दूसरे को राम रूप देखने लगी और आपस में ही युद्ध करके लड़ मरी॥4॥

दोहा :

* राम राम कहि तनु तजहिं पावहिं पद निर्बान।

करि उपाय रिपु मारे छन महुँ कृपानिधान॥20 क॥

भावार्थ:-सब ('यही राम है, इसे मारो' इस प्रकार) राम-राम कहकर शरीर छोड़ते हैं और निर्वाण (मोक्ष) पद पाते हैं। कृपानिधान श्री रामजी ने यह उपाय करके क्षण भर में शत्रुओं को मार डाला॥20 (क)॥

* हरषित बरषहिं सुमन सुर बाजहिं गगन निसान।

अस्तुति करि करि सब चले सोभित बिबिध बिमान॥20 ख॥

भावार्थ:-देवता हर्षित होकर फूल बरसाते हैं, आकाश में नगाड़े बज रहे हैं। फिर वे सब स्तुति कर-करके अनेकों विमानों पर सुशोभित हुए चले गए॥20 (ख)॥

चौपाई :

* जब रघुनाथ समर रिपु जीते। सुर नर मुनि सब के भय बीते॥

तब लछिमन सीतहि लै आए। प्रभु पद परत हरषि उर लाए॥1॥

भावार्थ:-जब श्री रघुनाथजी ने युद्ध में शत्रुओं को जीत लिया तथा देवता, मनुष्य और मुनि सबके भय नष्ट हो गए, तब लक्ष्मणजी सीताजी को ले आए। चरणों में पड़ते हुए उनको प्रभु ने प्रसन्नतापूर्वक उठाकर हृदय से लगा लिया॥1॥

गीताप्रेस गोरखपुर

* सीता चितव स्याम मृदु गाता। परम प्रेम लोचन न अघाता॥

पंचबटीं बसि श्री रघुनायक। करत चरित सुर मुनि सुखदायक॥2॥

भावार्थ:-सीताजी श्री रामजी के श्याम और कोमल शरीर को परम प्रेम के साथ देख रही हैं, नेत्र अघाते नहीं हैं। इस प्रकार पंचवटी में बसकर श्री रघुनाथजी देवताओं और मुनियों को सुख देने वाले चरित्र करने लगे॥2॥

शूर्पणखा का रावण के निकट जाना, श्री सीताजी का अग्नि प्रवेश और माया सीता

* धुआँ देखि खरदूषन केरा। जाइ सुपनखाँ रावन प्रेरा॥

बोली बचन क्रोध करि भारी। देस कोस कै सुरति बिसारी॥3॥

भावार्थ:-खर-दूषण का विध्वंस देखकर शूर्पणखा ने जाकर रावण को भड़काया। वह बड़ा क्रोध करके वचन बोली- तूने देश और खजाने की सुधि ही भुला दी॥3॥

* करसि पान सोवसि दिनु राती। सुधि नहिं तव सिर पर आराती॥

राज नीति बिनु धन बिनु धर्मा। हरिहि समर्पे बिनु सतकर्मा॥4॥

बिद्या बिनु बिबेक उपजाएँ। श्रम फल पढ़ें किएँ अरु पाएँ॥

संग तें जती कुमंत्र ते राजा। मान ते ग्यान पान तें लाजा॥5॥

भावार्थ:-शराब पी लेता है और दिन-रात पड़ा सोता रहता है। तुझे खबर नहीं है कि शत्रु तेरे सिर पर खड़ा है? नीति के बिना राज्य और धर्म के बिना धन प्राप्त करने से, भगवान को समर्पण किए बिना उत्तम कर्म करने से और विवेक उत्पन्न किए बिना विद्या पढ़ने से परिणाम में श्रम ही हाथ लगता है। विषयों के संग से संन्यासी, बुरी सलाह से राजा, मान से ज्ञान, मदिरा पान से लज्जा,॥4-5॥

* प्रीति प्रनय बिनु मद ते गुनी। नासहिं बेगि नीति अस सुनी॥6॥

भावार्थ:-नम्रता के बिना (नम्रता न होने से) प्रीति और मद (अहंकार) से गुणवान शीघ्र ही नष्ट हो जाते हैं, इस प्रकार नीति मैंने सुनी है॥6॥

सोरठा :

* रिपु रुज पावक पाप प्रभु अहि गनिअ न छोट करि।

अस कहि बिबिध बिलाप करि लागी रोदन करन॥21 क॥

भावार्थ:-शत्रु, रोग, अग्नि, पाप, स्वामी और सर्प को छोटा करके नहीं समझना चाहिए। ऐसा कहकर शूर्पणखा अनेक प्रकार से विलाप करके रोने लगी॥21 (क)॥

दोहा :

* सभा माझ परि ब्याकुल बहु प्रकार कह रोइ।

तोहि जिअत दसकंधर मोरि कि असि गति होइ॥21 ख॥

भावार्थ:-(रावण की) सभा के बीच वह व्याकुल होकर पड़ी हुई बहुत प्रकार से रो-रोकर कह रही है कि अरे दशग्रीव! तेरे जीते जी मेरी क्या ऐसी दशा होनी चाहिए?॥21 (ख)॥

चौपाई :

* सुनत सभासद उठे अकुलाई। समुझाई गहि बाँह उठाई॥

कह लंकेस कहसि निज बाता। केइँ तव नासा कान निपाता॥1॥

भावार्थ:-शूर्पणखा के वचन सुनते ही सभासद् अकुला उठे। उन्होंने शूर्पणखा की बाँह पकड़कर उसे उठाया और समझाया। लंकापति रावण ने कहा- अपनी बात तो बता, किसने तेरे नाक-कान काट लिए?॥1॥

* अवध नृपति दसरथ के जाए। पुरुष सिंघ बन खेलन आए॥

समुझि परी मोहि उन्ह कै करनी। रहित निसाचर करिहहिं धरनी॥2॥

भावार्थ:-(वह बोली-) अयोध्या के राजा दशरथ के पुत्र, जो पुरुषों में सिंह के समान हैं, वन में शिकार खेलने आए हैं। मुझे उनकी करनी ऐसी समझ पड़ी है कि वे पृथ्वी को राक्षसों से रहित कर देंगे॥2॥

* जिन्ह कर भुजबल पाइ दसानन। अभय भए बिचरत मुनि कानन॥

देखत बालक काल समाना। परम धीर धन्वी गुन नाना॥3॥

भावार्थ:-जिनकी भुजाओं का बल पाकर हे दशमुख! मुनि लोग वन में निर्भय होकर विचरने लगे हैं। वे देखने में तो बालक हैं, पर हैं काल के समान। वे परम धीर, श्रेष्ठ धनुर्धर और अनेकों गुणों से युक्त हैं॥3॥

* अतुलित बल प्रताप द्वौ भ्राता। खल बध रत सुर मुनि सुखदाता॥

सोभा धाम राम अस नामा। तिन्ह के संग नारि एक स्यामा॥4॥

भावार्थ:-दोनों भाइयों का बल और प्रताप अतुलनीय है। वे दुष्टों का वध करने में लगे हैं और देवता तथा मुनियों को सुख देने वाले हैं। वे शोभा के धाम हैं, 'राम' ऐसा उनका नाम है। उनके साथ एक तरुणी सुंदर स्त्री है॥4॥

* रूप रासि बिधि नारि सँवारी। रति सत कोटि तासु बलिहारी॥

तासु अनुज काटे श्रुति नासा। सुनि तव भगिनि करहिं परिहासा॥5॥

भावार्थ:-विधाता ने उस स्त्री को ऐसी रूप की राशि बनाया है कि सौ करोड़ रति (कामदेव की स्त्री) उस पर निछावर हैं। उन्हीं के छोटे भाई ने मेरे नाक-कान काट डाले। मैं तेरी बहिन हूँ, यह सुनकर वे मेरी हँसी करने लगे॥5॥

* खर दूषन सुनि लगे पुकारा। छन महुँ सकल कटक उन्ह मारा॥

खर दूषन तिसिरा कर घाता। सुनि दससीस जरे सब गाता॥6॥

भावार्थ:-मेरी पुकार सुनकर खर-दूषण सहायता करने आए। पर उन्होंने क्षण भर में सारी सेना को मार डाला। खर-दूषन और त्रिशिरा का वध सुनकर रावण के सारे अंग जल उठे॥6॥

दोहा :

* सूपनखहि समुझाइ करि बल बोलेसि बहु भाँति।

गयउ भवन अति सोचबस नीद परइ नहिं राति॥22॥

भावार्थ:-उसने शूर्पणखा को समझाकर बहुत प्रकार से अपने बल का बखान किया, किन्तु (मन में) वह अत्यन्त चिंतावश होकर अपने महल में गया, उसे रात भर नींद नहीं पड़ी॥22॥

चौपाई :

* सुर नर असुर नाग खग माहीं। मोरे अनुचर कहँ कोउ नाहीं॥
खर दूषन मोहि सम बलवंता। तिन्हहि को मारइ बिनु भगवंता॥1॥

भावार्थ:-(वह मन ही मन विचार करने लगा-) देवता, मनुष्य, असुर, नाग और पक्षियों में कोई ऐसा नहीं, जो मेरे सेवक को भी पा सके। खर-दूषण तो मेरे ही समान बलवान थे। उन्हें भगवान के सिवा और कौन मार सकता है?॥1॥

* सुर रंजन भंजन महि भारा। जौं भगवंत लीन्ह अवतारा॥
तौ मैं जाइ बैरु हठि करऊँ। प्रभु सर प्रान तजें भव तरऊँ॥2॥

भावार्थ:-देवताओं को आनंद देने वाले और पृथ्वी का भार हरण करने वाले भगवान ने ही यदि अवतार लिया है, तो मैं जाकर उनसे हठपूर्वक वैर करूँगा और प्रभु के बाण (के आघात) से प्राण छोड़कर भवसागर से तर जाऊँगा॥2॥

* होइहि भजनु न तामस देहा। मन क्रम बचन मंत्र दृढ़ एहा॥
जौं नररूप भूपसुत कोऊ। हरिहउँ नारि जीति रन दोऊ॥3॥

भावार्थ:-इस तामस शरीर से भजन तो होगा नहीं, अतएव मन, वचन और कर्म से यही दृढ़ निश्चय है। और यदि वे मनुष्य रूप कोई राजकुमार होंगे तो उन दोनों को रण में जीतकर उनकी स्त्री को हर लूँगा॥3॥

* चला अकेल जान चढ़ि तहवाँ। बस मारीच सिंधु तट जहवाँ॥

इहाँ राम जसि जुगुति बनाई। सुनहु उमा सो कथा सुहाई॥4॥

भावार्थ:-राक्षसों की भयानक सेना आ गई है। जानकीजी को लेकर तुम पर्वत की कंदरा में चले जाओ। सावधान रहना। प्रभु श्री रामचंद्रजी के वचन सुनकर लक्ष्मणजी हाथ में धनुष-बाण लिए श्री सीताजी सहित चले॥6॥

दोहा :

* लछिमन गए बनहिं जब लेन मूल फल कंद।

जनकसुता सन बोले बिहसि कृपा सुख बृंद॥23॥

भावार्थ:-लक्ष्मणजी जब कंद-मूल-फल लेने के लिए वन में गए, तब (अकेले में) कृपा और सुख के समूह श्री रामचंद्रजी हँसकर जानकीजी से बोले-॥23॥

चौपाई :

* सुनहु प्रिया ब्रत रुचिर सुसीला। मैं कछु करबि ललित नरलीला॥

तुम्ह पावक महुँ करहु निवासा। जौ लगि करौं निसाचर नासा॥1॥

गीताप्रेस गोरखपुर

भावार्थ:-हे प्रिये! हे सुंदर पतिव्रत धर्म का पालन करने वाली सुशीले! सुनो! मैं अब कुछ मनोहर मनुष्य लीला करूँगा, इसलिए जब तक मैं राक्षसों का नाश करूँ, तब तक तुम अग्नि में निवास करो॥1॥

* जबहिं राम सब कहा बखानी। प्रभु पद धरि हियँ अनल समानी॥
निज प्रतिबिंब राखि तहँ सीता। तैसइ सील रूप सुबिनीता॥2॥

भावार्थ:-श्री रामजी ने ज्यों ही सब समझाकर कहा, त्यों ही श्री सीताजी प्रभु के चरणों को हृदय में धरकर अग्नि में समा गईं। सीताजी ने अपनी ही छाया मूर्ति वहाँ रख दी, जो उनके जैसे ही शील-स्वभाव और रूपवाली तथा वैसे ही विनम्र थी॥2॥

* लछिमनहूँ यह मरमु न जाना। जो कछु चरित रचा भगवाना॥
दसमुख गयउ जहाँ मारीचा। नाइ माथ स्वारथ रत नीचा॥3॥

भावार्थ:-भगवान ने जो कुछ लीला रची, इस रहस्य को लक्ष्मणजी ने भी नहीं जाना। स्वार्थ परायण और नीच रावण वहाँ गया, जहाँ मारीच था और उसको सिर नवाया॥3॥

* नवनि नीच कै अति दुखदाई। जिमि अंकुस धनु उरग बिलाई॥
भयदायक खल कै प्रिय बानी। जिमि अकाल के कुसुम भवानी॥4॥

भावार्थ:- नीच का झुकना (नम्रता) भी अत्यन्त दुःखदायी होता है। जैसे अंकुश, धनुष, साँप और बिल्ली का झुकना। हे भवानी! दुष्ट की मीठी

वाणी भी (उसी प्रकार) भय देने वाली होती है, जैसे बिना ऋतु के फूल!॥4॥

मारीच प्रसंग और स्वर्णमृग रूप में मारीच का मारा जाना, सीताजी द्वारा लक्ष्मण को भेजना

दोहा :

* करि पूजा मारीच तब सादर पूछी बात।

कवन हेतु मन ब्यग्र अति अकसर आयहु तात॥24॥

भावार्थ:- तब मारीच ने उसकी पूजा करके आदरपूर्वक बात पूछी- हे तात! आपका मन किस कारण इतना अधिक व्यग्र है और आप अकेले आए हैं?॥24॥

चौपाई :

* दसमुख सकल कथा तेहि आगें। कही सहित अभिमान अभागें॥

होहु कपट मृग तुम्ह छलकारी। जेहि बिधि हरि आनौं नृपनारी॥1॥

भावार्थ:- भाग्यहीन रावण ने सारी कथा अभिमान सहित उसके सामने कही (और फिर कहा-) तुम छल करने वाले कपटमृग बनो, जिस उपाय से मैं उस राजवधू को हर लाऊँ॥1॥

* तेहिं पुनि कहा सुनहु दससीसा। ते नररूप चराचर ईसा॥

तासों तात बयरु नहिं कीजै। मारें मरिअ जिआएँ जीजै॥2॥

भावार्थ:- तब उसने (मारीच ने) कहा- हे दशशीश! सुनिए। वे मनुष्य रूप में चराचर के ईश्वर हैं। हे तात! उनसे वैर न कीजिए। उन्हीं के मारने से मरना और उनके जिलाने से जीना होता है (सबका जीवन-मरण उन्हीं के अधीन है)॥2॥

* मुनि मख राखन गयउ कुमारा। बिनु फर सर रघुपति मोहि मारा॥

सत जोजन आयउँ छन माहीं। तिन्ह सन बयरु किएँ भल नाहीं॥3॥

भावार्थ:- यही राजकुमार मुनि विश्वामित्र के यज्ञ की रक्षा के लिए गए थे। उस समय श्री रघुनाथजी ने बिना फल का बाण मुझे मारा था, जिससे मैं क्षणभर में सौ योजन पर आ गिरा। उनसे वैर करने में भलाई नहीं है॥3॥

* भइ मम कीट भृंग की नाई। जहँ तहँ मैं देखउँ दोउ भाई॥

जौं नर तात तदपि अति सूरा। तिन्हहि बिरोधि न आइहि पूरा॥4॥

भावार्थ:- मेरी दशा तो भृंगी के कीड़े की सी हो गई है। अब मैं जहाँ-तहाँ श्री राम-लक्ष्मण दोनों भाइयों को ही देखता हूँ। और हे तात! यदि वे मनुष्य हैं, तो भी बड़े शूरवीर हैं। उनसे विरोध करने में पूरा न पड़ेगा (सफलता नहीं मिलेगी)॥4॥

दोहा :

* जेहिं ताड़का सुबाहु हति खंडेउ हर कोदंड।

खर दूषन तिसिरा बधेउ मनुज कि अस बरिबंड॥25॥

भावार्थ:- जिसने ताड़का और सुबाहु को मारकर शिवजी का धनुष तोड़ दिया और खर, दूषण और त्रिशिरा का वध कर डाला, ऐसा प्रचंड बली भी कहीं मनुष्य हो सकता है?॥25॥

चौपाई :

* जाहु भवन कुल कुसल बिचारी। सुनत जरा दीन्हिसि बहु गारी॥
गुरु जिमि मूढ़ करसि मम बोधा। कहु जग मोहि समान को जोधा॥1॥

भावार्थ:- अतः अपने कुल की कुशल विचारकर आप घर लौट जाइए। यह सुनकर रावण जल उठा और उसने बहुत सी गालियाँ दीं (दुर्वचन कहे)। (कहा-) अरे मूर्ख! तू गुरु की तरह मुझे ज्ञान सिखाता है? बता तो संसार में मेरे समान योद्धा कौन है?॥1॥

* तब मारीच हृदयँ अनुमाना। नवहि बिरोधें नहिं कल्याना॥
सस्त्री मर्मी प्रभु सठ धनी। बैद बंदि कबि भानस गुनी॥2॥

भावार्थ:- तब मारीच ने हृदय में अनुमान किया कि शस्त्री (शस्त्रधारी), मर्मी (भेद जानने वाला), समर्थ स्वामी, मूर्ख, धनवान, वैद्य, भाट, कवि और रसोइया- इन नौ व्यक्तियों से विरोध (वैर) करने में कल्याण (कुशल) नहीं होता॥2॥

* उभय भाँति देखा निज मरना। तब ताकिसि रघुनायक सरना॥
उतरु देत मोहि बधब अभागें। कस न मरौं रघुपति सर लागें॥3॥

भावार्थ:- जब मारीच ने दोनों प्रकार से अपना मरण देखा, तब उसने श्री रघुनाथजी की शरण तकी (अर्थात उनकी शरण जाने में ही कल्याण समझा)। (सोचा कि) उत्तर देते ही (नाहीं करते ही) यह अभागा मुझे मार डालेगा। फिर श्री रघुनाथजी के बाण लगने से ही क्यों न मरूँ॥3॥

* अस जियँ जानि दसानन संगा। चला राम पद प्रेम अभंगा॥

मन अति हरष जनाव न तेही। आजु देखिहउँ परम सनेही॥4॥

भावार्थ:- हृदय में ऐसा समझकर वह रावण के साथ चला। श्री रामजी के चरणों में उसका अखंड प्रेम है। उसके मन में इस बात का अत्यन्त हर्ष है कि आज मैं अपने परम स्नेही श्री रामजी को देखूँगा, किन्तु उसने यह हर्ष रावण को नहीं जनाया॥4॥

छन्द :

* निज परम प्रीतम देखि लोचन सुफल करि सुख पाइहौं।

श्रीसहित अनुज समेत कृपानिकेत पद मन लाइहौं॥

निर्बान दायक क्रोध जा कर भगति अबसहि बसकरी।

निज पानि सर संधानि सो मोहि बधिहि सुखसागर हरी॥

भावार्थ:-(वह मन ही मन सोचने लगा-) अपने परम प्रियतम को देखकर नेत्रों को सफल करके सुख पाऊँगा। जानकीजी सहित और छोटे भाई लक्ष्मणजी समेत कृपानिधान श्री रामजी के चरणों में मन लगाऊँगा। जिनका क्रोध भी मोक्ष देने वाला है और जिनकी भक्ति उन अवश (किसी के वश में न होने वाले, स्वतंत्र भगवान) को भी वश में करने वाली है,

अब वे ही आनंद के समुद्र श्री हरि अपने हाथों से बाण सन्धानकर मेरा वध करेंगे।

दोहा :

* मम पाछें धर धावत धरें सरासन बान।

फिरि फिरि प्रभुहि बिलोकिहउँ धन्य न मो सम आन॥26॥

भावार्थ:- धनुष-बाण धारण किए मेरे पीछे-पीछे पृथ्वी पर (पकड़ने के लिए) दौड़ते हुए प्रभु को मैं फिर-फिरकर देखूँगा। मेरे समान धन्य दूसरा कोई नहीं है॥26॥

चौपाई :

* तेहि बननिकट दसानन गयऊ। तब मारीच कपटमृग भयऊ॥

अति बिचित्र कछु बरनि न जाई। कनक देह मनि रचित बनाई॥1॥

भावार्थ:- जब रावण उस वन के (जिस वन में श्री रघुनाथजी रहते थे) निकट पहुँचा, तब मारीच कपटमृग बन गया! वह अत्यन्त ही विचित्र था, कुछ वर्णन नहीं किया जा सकता। सोने का शरीर मणियों से जड़कर बनाया था॥1॥

* सीता परम रुचिर मृग देखा। अंग अंग सुमनोहर बेषा॥

सुनहु देव रघुबीर कृपाला। एहि मृग कर अति सुंदर छाला॥2॥

भावार्थ:- सीताजी ने उस परम सुंदर हिरन को देखा, जिसके अंग-अंग की छटा अत्यन्त मनोहर थी। (वे कहने लगीं-) हे देव! हे कृपालु रघुवीर! सुनिए। इस मृग की छाल बहुत ही सुंदर है॥2॥

गीताप्रेस गोरखपुर

* सत्यसंध प्रभु बधि करि एही। आनहु चर्म कहति बैदेही॥

तब रघुपति जानत सब कारन। उठे हरषि सुर काजु सँवारन॥3॥

भावार्थ:- जानकीजी ने कहा- हे सत्यप्रतिज्ञ प्रभो! इसको मारकर इसका चमड़ा ला दीजिए। तब श्री रघुनाथजी (मारीच के कपटमृग बनने का) सब कारण जानते हुए भी, देवताओं का कार्य बनाने के लिए हर्षित होकर उठे॥3॥

* मृग बिलोकि कटि परिकर बाँधा। करतल चाप रुचिर सर साँधा॥

प्रभु लछिमनहि कहा समुझाई। फिरत बिपिन निसिचर बहु भाई॥4॥

भावार्थ:- हिरन को देखकर श्री रामजी ने कमर में फेंटा बाँधा और हाथ में धनुष लेकर उस पर सुंदर (दिव्य) बाण चढ़ाया। फिर प्रभु ने लक्ष्मणजी को समझाकर कहा- हे भाई! वन में बहुत से राक्षस फिरते हैं॥4॥

* सीता केरि करेहु रखवारी। बुधि बिबेक बल समय बिचारी॥

प्रभुहि बिलोकि चला मृग भाजी। धाए रामु सरासन साजी॥5॥

भावार्थ:- तुम बुद्धि और विवेक के द्वारा बल और समय का विचार करके सीताजी की रखवाली करना। प्रभु को देखकर मृग भाग चला। श्री रामचन्द्रजी भी धनुष चढ़ाकर उसके पीछे दौड़े॥5॥

* निगम नेति सिव ध्यान न पावा। मायामृग पाछें सो धावा॥

कबहुँ निकट पुनि दूरि पराई। कबहुँक प्रगटइ कबहुँ छपाई॥6॥

भावार्थ:- वेद जिनके विषय में 'नेति-नेति' कहकर रह जाते हैं और शिवजी भी जिन्हें ध्यान में नहीं पाते (अर्थात जो मन और वाणी से नितान्त परे हैं), वे ही श्री रामजी माया से बने हुए मृग के पीछे दौड़ रहे हैं। वह कभी निकट आ जाता है और फिर दूर भाग जाता है। कभी तो प्रकट हो जाता है और कभी छिप जाता है॥6॥

* प्रगटत दुरत करत छल भूरी। एहि बिधि प्रभुहि गयउ लै दूरी॥

तब तकि राम कठिन सर मारा। धरनि परेउ करि घोर पुकारा॥7॥

भावार्थ:- इस प्रकार प्रकट होता और छिपता हुआ तथा बहुतेरे छल करता हुआ वह प्रभु को दूर ले गया। तब श्री रामचन्द्रजी ने तक कर (निशाना साधकर) कठोर बाण मारा, (जिसके लगते ही) वह घोर शब्द करके पृथ्वी पर गिर पड़ा॥7॥

* लछिमन कर प्रथमहिं लै नामा। पाछें सुमिरेसि मन महुँ रामा॥

प्रान तजत प्रगटेसि निज देहा। सुमिरेसि रामु समेत सनेहा॥8॥

भावार्थ:- पहले लक्ष्मणजी का नाम लेकर उसने पीछे मन में श्री रामजी का स्मरण किया। प्राण त्याग करते समय उसने अपना (राक्षसी) शरीर प्रकट किया और प्रेम सहित श्री रामजी का स्मरण किया॥8॥

* अंतर प्रेम तासु पहिचाना। मुनि दुर्लभ गति दीन्हि सुजाना॥9॥

भावार्थ:- सुजान (सर्वज्ञ) श्री रामजी ने उसके हृदय के प्रेम को पहचानकर उसे वह गति (अपना परमपद) दी जो मुनियों को भी दुर्लभ है॥9॥

दोहा :

* बिपुल सुमर सुर बरषहिं गावहिं प्रभु गुन गाथ।

निज पद दीन्ह असुर कहुँ दीनबंधु रघुनाथ॥27॥

भावार्थ:- देवता बहुत से फूल बरसा रहे हैं और प्रभु के गुणों की गाथाएँ (स्तुतियाँ) गा रहे हैं (कि) श्री रघुनाथजी ऐसे दीनबन्धु हैं कि उन्होंने असुर को भी अपना परम पद दे दिया॥27॥

चौपाई :

* खल बधि तुरत फिरे रघुबीरा। सोह चाप कर कटि तूनीरा॥

आरत गिरा सुनी जब सीता। कह लछिमन सन परम सभीता॥1॥

भावार्थ:- दुष्ट मारीच को मारकर श्री रघुवीर तुरंत लौट पड़े। हाथ में धनुष और कमर में तरकस शोभा दे रहा है। इधर जब सीताजी ने दुःखभरी वाणी (मरते समय मारीच की 'हा लक्ष्मण' की आवाज) सुनी तो वे बहुत ही भयभीत होकर लक्ष्मणजी से कहने लगीं॥1॥

* जाहु बेगि संकट अति भ्राता। लछिमन बिहसि कहा सुनु माता॥

भृकुटि बिलास सृष्टि लय होई। सपनेहुँ संकट परइ कि सोई॥2॥

भावार्थ:- तुम शीघ्र जाओ, तुम्हारे भाई बड़े संकट में हैं। लक्ष्मणजी ने हँसकर कहा- हे माता! सुनो, जिनके भ्रूकुटि विलास (भौं के इशारे) मात्र से सारी सृष्टि का लय (प्रलय) हो जाता है, वे श्री रामजी क्या कभी स्वप्न में भी संकट में पड़ सकते हैं?॥2॥

* मरम बचन जब सीता बोला। हरि प्रेरित लछिमन मन डोला॥

बन दिसि देव सौंपि सब काहू। चले जहाँ रावन ससि राहू॥3॥

भावार्थ:- इस पर जब सीताजी कुछ मर्म वचन (हृदय में चुभने वाले वचन) कहने लगीं, तब भगवान की प्रेरणा से लक्ष्मणजी का मन भी चंचल हो उठा। वे श्री सीताजी को वन और दिशाओं के देवताओं को सौंपकर वहाँ चले, जहाँ रावण रूपी चन्द्रमा के लिए राहु रूप श्री रामजी थे॥3॥

श्री सीताहरण और श्री सीता विलाप

* सून बीच दसकंधर देखा। आवा निकट जती कें बेषा॥
जाकें डर सुर असुर डेराहीं। निसि न नीद दिन अन्न न खाहीं॥4॥

भावार्थ:- रावण सूना मौका देखकर यति (संन्यासी) के वेष में श्री सीताजी के समीप आया, जिसके डर से देवता और दैत्य तक इतना डरते हैं कि रात को नींद नहीं आती और दिन में (भरपेट) अन्न नहीं खाते-॥4॥

* सो दससीस स्वान की नाईं। इत उत चितइ चला भड़िहाईं॥
इमि कुपंथ पग देत खगेसा। रह न तेज तन बुधि बल लेसा॥5॥

भावार्थ:- वही दस सिर वाला रावण कुत्ते की तरह इधर-उधर ताकता हुआ भड़िहाई * (चोरी) के लिए चला। (काकभुशुण्डिजी कहते हैं-) हे गरुड़जी! इस प्रकार कुमार्ग पर पैर रखते ही शरीर में तेज तथा बुद्धि एवं बल का लेश भी नहीं रह जाता॥5॥

* सूना पाकर कुत्ता चुपके से बर्तन-भाँड़ों में मुँह डालकर कुछ चुरा ले जाता है। उसे 'भड़िहाई' कहते हैं।

* नाना बिधि करि कथा सुहाई। राजनीति भय प्रीति देखाई॥

कह सीता सुनु जती गोसाईं। बोलेहु बचन दुष्ट की नाईं॥6॥

भावार्थ:- रावण ने अनेकों प्रकार की सुहावनी कथाएँ रचकर सीताजी को राजनीति, भय और प्रेम दिखलाया। सीताजी ने कहा- हे यति गोसाईं! सुनो, तुमने तो दुष्ट की तरह वचन कहे॥6।

* तब रावन निज रूप देखावा। भई सभय जब नाम सुनावा॥

कह सीता धरि धीरजु गाढ़ा। आइ गयउ प्रभु रहु खल ठाढ़ा॥7॥

भावार्थ:- तब रावण ने अपना असली रूप दिखलाया और जब नाम सुनाया तब तो सीताजी भयभीत हो गईं। उन्होंने गहरा धीरज धरकर कहा- 'अरे दुष्ट! खड़ा तो रह, प्रभु आ गए'॥7॥

* जिमि हरिबधुहि छुद्र सस चाहा। भएसि कालबस निसिचर नाहा॥

सुनत बचन दससीस रिसाना। मन महुँ चरन बंदि सुख माना॥8॥

भावार्थ:- जैसे सिंह की स्त्री को तुच्छ खरगोश चाहे, वैसे ही अरे राक्षसराज! तू (मेरी चाह करके) काल के वश हुआ है। ये वचन सुनते ही रावण को क्रोध आ गया, परन्तु मन में उसने सीताजी के चरणों की वंदना करके सुख माना॥8॥

दोहा :

* क्रोधवंत तब रावन लीन्हिसि रथ बैठाइ।

चला गगनपथ आतुर भयँ रथ हाँकि न जाइ॥28॥

भावार्थ:- फिर क्रोध में भरकर रावण ने सीताजी को रथ पर बैठा लिया और वह बड़ी उतावली के साथ आकाश मार्ग से चला, किन्तु डर के मारे उससे रथ हाँका नहीं जाता था॥28॥

चौपाई :

* हा जग एक बीर रघुराया। केहिं अपराध बिसारेहु दाया॥

आरति हरन सरन सुखदायक। हा रघुकुल सरोज दिननायक॥1॥

भावार्थ:- (सीताजी विलाप कर रही थीं-) हा जगत के अद्वितीय वीर श्री रघुनाथजी! आपने किस अपराध से मुझ पर दया भुला दी। हे दुःखों के हरने वाले, हे शरणागत को सुख देने वाले, हा रघुकुल रूपी कमल के सूर्य!॥1॥

* हा लछिमन तुम्हार नहिं दोसा। सो फलु पायउँ कीन्हेउँ रोसा॥

बिबिध बिलाप करति बैदेही। भूरि कृपा प्रभु दूरि सनेही॥2॥

भावार्थ:- हा लक्ष्मण! तुम्हारा दोष नहीं है। मैंने क्रोध किया, उसका फल पाया। श्री जानकीजी बहुत प्रकार से विलाप कर रही हैं- (हाय!) प्रभु की कृपा तो बहुत है, परन्तु वे स्नेही प्रभु बहुत दूर रह गए हैं॥2॥

* बिपति मोरि को प्रभुहि सुनावा। पुरोडास चह रासभ खावा॥

सीता कै बिलाप सुनि भारी। भए चराचर जीव दुखारी॥3॥

भावार्थ:- प्रभु को मेरी यह विपत्ति कौन सुनावे? यज्ञ के अन्न को गदहा खाना चाहता है। सीताजी का भारी विलाप सुनकर जड़-चेतन सभी जीव दुःखी हो गए॥3॥

जटायु-रावण-युद्ध, अशोक वाटिका में सीताजी को रखना

* गीधराज सुनि आरत बानी। रघुकुलतिलक नारि पहिचानी॥

अधम निसाचर लीन्हें जाई। जिमि मलेछ बस कपिला गाई॥4॥

भावार्थ:- गृध्रराज जटायु ने सीताजी की दुःखभरी वाणी सुनकर पहचान लिया कि ये रघुकुल तिलक श्री रामचन्द्रजी की पत्नी हैं। (उसने देखा कि) नीच राक्षस इनको (बुरी तरह) लिए जा रहा है, जैसे कपिला गाय म्लेच्छ के पाले पड़ गई हो॥4॥

* सीते पुत्रि करसि जनि त्रासा। करिहउँ जातुधान कर नासा॥

धावा क्रोधवंत खग कैसें। छूटइ पबि परबत कहुँ जैसें॥5॥

भावार्थ:- (वह बोला-) हे सीते पुत्री! भय मत कर। मैं इस राक्षस का नाश करूँगा। (यह कहकर) वह पक्षी क्रोध में भरकर ऐसे दौड़ा, जैसे पर्वत की ओर वज्र छूटता हो॥5॥

* रे रे दुष्ट ठाढ़ किन हो ही। निर्भय चलेसि न जानेहि मोही॥

आवत देखि कृतांत समाना। फिरि दसकंधर कर अनुमाना॥6॥

भावार्थ:- (उसने ललकारकर कहा-) रे रे दुष्ट! खड़ा क्यों नहीं होता? निडर होकर चल दिया! मुझे तूने नहीं जाना? उसको यमराज के समान आता हुआ देखकर रावण घूमकर मन में अनुमान करने लगा-॥6॥

* की मैनाक कि खगपति होई। मम बल जान सहित पति सोई॥

जाना जरठ जटायू एहा। मम कर तीरथ छाँड़िहि देहा॥7॥

भावार्थ:- यह या तो मैनाक पर्वत है या पक्षियों का स्वामी गरुड़। पर वह (गरुड़) तो अपने स्वामी विष्णु सहित मेरे बल को जानता है! (कुछ पास आने पर) रावण ने उसे पहचान लिया (और बोला-) यह तो बूढ़ा जटायु है। यह मेरे हाथ रूपी तीर्थ में शरीर छोड़ेगा॥7॥

* सुनत गीध क्रोधातुर धावा। कह सुनु रावन मोर सिखावा॥

तजि जानकिहि कुसल गृह जाहू। नाहिं त अस होइहि बहुबाहू॥8॥

भावार्थ:- यह सुनते ही गीध क्रोध में भरकर बड़े वेग से दौड़ा और बोला- रावण! मेरी सिखावन सुन। जानकीजी को छोड़कर कुशलपूर्वक अपने घर चला जा। नहीं तो हे बहुत भुजाओं वाले! ऐसा होगा कि-॥8॥

* राम रोष पावक अति घोरा। होइहि सकल सलभ कुल तोरा॥

उतरु न देत दसानन जोधा। तबहिं गीध धावा करि क्रोधा॥9॥

भावार्थ:- श्री रामजी के क्रोध रूपी अत्यन्त भयानक अग्नि में तेरा सारा वंश पतिंगा (होकर भस्म) हो जाएगा। योद्धा रावण कुछ उत्तर नहीं देता। तब गीध क्रोध करके दौड़ा॥9॥

* धरि कच बिरथ कीन्ह महि गिरा। सीतहि राखि गीध पुनि फिरा॥

चोचन्ह मारि बिदारेसि देही। दंड एक भइ मुरुछा तेही॥10॥

भावार्थ:- उसने (रावण के) बाल पकड़कर उसे रथ के नीचे उतार लिया, रावण पृथ्वी पर गिर पड़ा। गीध सीताजी को एक ओर बैठाकर फिर लौटा और चोंचों से मार-मारकर रावण के शरीर को विदीर्ण कर डाला। इससे उसे एक घड़ी के लिए मूर्च्छा हो गई॥10॥

* तब सक्रोध निसिचर खिसिआना। काढ़ेसि परम कराल कृपाना॥

काटेसि पंख परा खग धरनी। सुमिरि राम करि अदभुत करनी॥11॥

भावार्थ:- तब खिसियाए हुए रावण ने क्रोधयुक्त होकर अत्यन्त भयानक कटार निकाली और उससे जटायु के पंख काट डाले। पक्षी (जटायु) श्री रामजी की अद्भुत लीला का स्मरण करके पृथ्वी पर गिर पड़ा॥11॥

* सीतहि जान चढ़ाइ बहोरी। चला उताइल त्रास न थोरी॥

करति बिलाप जाति नभ सीता। ब्याध बिबस जनु मृगी सभीता॥12॥

भावार्थ:- सीताजी को फिर रथ पर चढ़ाकर रावण बड़ी उतावली के साथ चला। उसे भय कम न था। सीताजी आकाश में विलाप करती हुई जा रही हैं। मानो व्याधे के वश में पड़ी हुई (जाल में फँसी हुई) कोई भयभीत हिरनी हो!॥12॥

* गिरि पर बैठे कपिन्ह निहारी। कहि हरि नाम दीन्ह पट डारी॥

एहि बिधि सीतहि सो लै गयऊ। बन असोक महँ राखत भयऊ॥13॥

भावार्थ:- पर्वत पर बैठे हुए बंदरों को देखकर सीताजी ने हरिनाम लेकर वस्त्र डाल दिया। इस प्रकार वह सीताजी को ले गया और उन्हें अशोक वन में जा रखा॥13॥

दोहा :

* हारि परा खल बहु बिधि भय अरु प्रीति देखाइ।

तब असोक पादप तर राखिसि जतन कराइ॥29 क॥

भावार्थ:- सीताजी को बहुत प्रकार से भय और प्रीति दिखलाकर जब वह दुष्ट हार गया, तब उन्हें यत्न कराके (सब व्यवस्था ठीक कराके) अशोक वृक्ष के नीचे रख दिया॥29 (क)॥

नवाह्नपारायण, छठा विश्राम

श्री रामजी का विलाप, जटायु का प्रसंग, कबन्ध उद्धार

* जेहि बिधि कपट कुरंग सँग धाइ चले श्रीराम।

सो छबि सीता राखि उर रटति रहति हरिनाम॥29 ख॥

भावार्थ:- जिस प्रकार कपट मृग के साथ श्री रामजी दौड़ चले थे, उसी छवि को हृदय में रखकर वे हरिनाम (रामनाम) रटती रहती हैं॥29 (ख)॥

चौपाई :

* रघुपति अनुजहि आवत देखी। बाहिज चिंता कीन्हि बिसेषी॥

जनकसुता परिहरिहु अकेली। आयहु तात बचन मम पेली॥1॥

भावार्थ:- (इधर) श्री रघुनाथजी ने छोटे भाई लक्ष्मणजी को आते देखकर ब्राह्य रूप में बहुत चिंता की (और कहा-) हे भाई! तुमने जानकी को अकेली छोड़ दिया और मेरी आज्ञा का उल्लंघन कर यहाँ चले आए!॥1॥

* निसिचर निकर फिरहिं बन माहीं। मम मन सीता आश्रम नाहीं॥

गहि पद कमल अनुज कर जोरी। कहेउ नाथ कछु मोहि न खोरी॥2॥

भावार्थ:- राक्षसों के झुंड वन में फिरते रहते हैं। मेरे मन में ऐसा आता है कि सीता आश्रम में नहीं है। छोटे भाई लक्ष्मणजी ने श्री रामजी के चरणकमलों को पकड़कर हाथ जोड़कर कहा- हे नाथ! मेरा कुछ भी दोष नहीं है॥2॥

* अनुज समेत गए प्रभु तहवाँ। गोदावरि तट आश्रम जहवाँ॥

आश्रम देखि जानकी हीना। भए बिकल जस प्राकृत दीना॥3॥

भावार्थ:- लक्ष्मणजी सहित प्रभु श्री रामजी वहाँ गए, जहाँ गोदावरी के तट पर उनका आश्रम था। आश्रम को जानकीजी से रहित देखकर श्री रामजी साधारण मनुष्य की भाँति व्याकुल और दीन (दुःखी) हो गए॥3॥

* हा गुन खानि जानकी सीता। रूप सील ब्रत नेम पुनीता॥

लछिमन समुझाए बहु भाँति। पूछत चले लता तरु पाँती॥4॥

भावार्थ:- (वे विलाप करने लगे-) हा गुणों की खान जानकी! हा रूप, शील, व्रत और नियमों में पवित्र सीते! लक्ष्मणजी ने बहुत प्रकार से

समझाया। तब श्री रामजी लताओं और वृक्षों की पंक्तियों से पूछते हुए चले॥4॥

* हे खग मृग हे मधुकर श्रेनी। तुम्ह देखी सीता मृगनैनी॥

खंजन सुक कपोत मृग मीना। मधुप निकर कोकिला प्रबीना॥5॥

भावार्थ:- हे पक्षियों! हे पशुओं! हे भौंरों की पंक्तियों! तुमने कहीं मृगनयनी सीता को देखा है? खंजन, तोता, कबूतर, हिरन, मछली, भौंरों का समूह, प्रवीण कोयल,॥5॥

* कुंद कली दाड़िम दामिनी। कमल सरद ससि अहिभामिनी॥

बरुन पास मनोज धनु हंसा। गज केहरि निज सुनत प्रसंसा॥6॥

भावार्थ:- कुन्दकली, अनार, बिजली, कमल, शरद् का चंद्रमा और नागिनी, अरुण का पाश, कामदेव का धनुष, हंस, गज और सिंह- ये सब आज अपनी प्रशंसा सुन रहे हैं॥6॥

* श्री फल कनक कदलि हरषाहीं। नेकु न संक सकुच मन माहीं॥

सुनु जानकी तोहि बिनु आजू। हरषे सकल पाइ जनु राजू॥7॥

भावार्थ:- बेल, सुवर्ण और केला हर्षित हो रहे हैं। इनके मन में जरा भी शंका और संकोच नहीं है। हे जानकी! सुनो, तुम्हारे बिना ये सब आज ऐसे हर्षित हैं, मानो राज पा गए हों। (अर्थात् तुम्हारे अंगों के सामने ये सब तुच्छ, अपमानित और लज्जित थे। आज तुम्हें न देखकर ये अपनी शोभा के अभिमान में फूल रहे हैं)॥7॥

* किमि सहि जात अनख तोहि पाहीं। प्रिया बेगि प्रगटसि कस नाहीं॥

एहि बिधि खोजत बिलपत स्वामी। मनहुँ महा बिरही अति कामी॥8॥

भावार्थ:- तुमसे यह अनख (स्पर्धा) कैसे सही जाती है? हे प्रिये! तुम शीघ्र ही प्रकट क्यों नहीं होती? इस प्रकार (अनन्त ब्रह्माण्डों के अथवा महामहिमामयी स्वरूपाशक्ति श्री सीताजी के) स्वामी श्री रामजी सीताजी को खोजते हुए (इस प्रकार) विलाप करते हैं, मानो कोई महाविरही और अत्यंत कामी पुरुष हो॥8॥

* पूरकनाम राम सुख रासी। मनुजचरित कर अज अबिनासी॥

आगें परा गीधपति देखा। सुमिरत राम चरन जिन्ह रेखा॥9॥

भावार्थ:- पूर्णकाम, आनंद की राशि, अजन्मा और अविनाशी श्री रामजी मनुष्यों के चरित्र कर रहे हैं। आगे (जाने पर) उन्होंने गृध्रपति जटायु को पड़ा देखा। वह श्री रामजी के चरणों का स्मरण कर रहा था, जिनमें (ध्वजा, कुलिश आदि की) रेखाएँ (चिह्न) हैं॥9॥

दोहा :

* कर सरोज सिर परसेउ कृपासिंधु रघुबीर।

निरखि राम छबि धाम मुख बिगत भई सब पीर॥30॥

भावार्थ:-कृपा सागर श्री रघुवीर ने अपने करकमल से उसके सिर का स्पर्श किया (उसके सिर पर करकमल फेर दिया)। शोभाधाम श्री रामजी का (परम सुंदर) मुख देखकर उसकी सब पीड़ा जाती रही॥30॥

गीताप्रेस गोरखपुर

चौपाई :

* तब कह गीध बचन धरि धीरा। सुनहु राम भंजन भव भीरा॥

नाथ दसानन यह गति कीन्ही। तेहिं खल जनकसुता हरि लीन्ही॥1॥

भावार्थ:- तब धीरज धरकर गीध ने यह वचन कहा- हे भव (जन्म-मृत्यु) के भय का नाश करने वाले श्री रामजी! सुनिए। हे नाथ! रावण ने मेरी यह दशा की है। उसी दुष्ट ने जानकीजी को हर लिया है॥1॥

* लै दच्छिन दिसि गयउ गोसाईं। बिलपति अति कुररी की नाईं॥

दरस लाग प्रभु राखेउँ प्राना। चलन चहत अब कृपानिधाना॥2॥

भावार्थ:- हे गोसाईं! वह उन्हें लेकर दक्षिण दिशा को गया है। सीताजी कुररी (कुर्ज) की तरह अत्यंत विलाप कर रही थीं। हे प्रभो! आपके दर्शनों के लिए ही प्राण रोक रखे थे। हे कृपानिधान! अब ये चलना ही चाहते हैं॥2॥

* राम कहा तनु राखहु ताता। मुख मुसुकाइ कही तेहिं बाता॥

जाकर नाम मरत मुख आवा। अधमउ मुकुत होइ श्रुति गावा॥3॥

भावार्थ:- श्री रामचंद्रजी ने कहा- हे तात! शारीर को बनाए रखिए। तब उसने मुस्कुराते हुए मुँह से यह बात कही- मरते समय जिनका नाम मुख में आ जाने से अधम (महान् पापी) भी मुक्त हो जाता है, ऐसा वेद गाते हैं-॥3॥

* सो मम लोचन गोचर आगें। राखौं देह नाथ केहि खाँगें॥

जल भरि नयन कहहिं रघुराई। तात कर्म निज तें गति पाई॥4॥

भावार्थ:- वही (आप) मेरे नेत्रों के विषय होकर सामने खड़े हैं। हे नाथ! अब मैं किस कमी (की पूर्ति) के लिए देह को रखूँ? नेत्रों में जल भरकर श्री रघुनाथजी कहने लगे- हे तात! आपने अपने श्रेष्ठ कर्मों से (दुर्लभ) गति पाई है॥4॥

* परहित बस जिन्ह के मन माहीं। तिन्ह कहुँ जग दुर्लभ कछु नाहीं॥

तनु तिज तात जाहु मम धामा। देउँ काह तुम्ह पूरनकामा॥5॥

भावार्थ:- जिनके मन में दूसरे का हित बसता है (समाया रहता है), उनके लिए जगत् में कुछ भी (कोई भी गति) दुर्लभ नहीं है। हे तात! शरीर छोड़कर आप मेरे परम धाम में जाइए। मैं आपको क्या दूँ? आप तो पूर्णकाम हैं (सब कुछ पा चुके हैं)॥5॥

दोहा :

* सीता हरन तात जनि कहहु पिता सन जाइ।

जौं मैं राम त कुल सहित कहिहि दसानन आइ॥31॥

भावार्थ:- हे तात! सीता हरण की बात आप जाकर पिताजी से न कहिएगा। यदि मैं राम हूँ तो दशमुख रावण कुटुम्ब सहित वहाँ आकर स्वयं ही कहेगा॥31॥

चौपाई :

* गीध देह तजि धरि हरि रूपा। भूषन बहु पट पीत अनूपा॥

स्याम गात बिसाल भुज चारी। अस्तुति करत नयन भरि बारी॥1॥

भावार्थ:- जटायु ने गीध की देह त्यागकर हरि का रूप धारण किया और बहुत से अनुपम (दिव्य) आभूषण और (दिव्य) पीताम्बर पहन लिए। श्याम शरीर है, विशाल चार भुजाएँ हैं और नेत्रों में (प्रेम तथा आनंद के आँसुओं का) जल भरकर वह स्तुति कर रहा है-॥1॥

छंद :

* जय राम रूप अनूप निर्गुन सगुन गुन प्रेरक सही।

दससीस बाहु प्रचंड खंडन चंड सर मंडन मही॥

पाथोद गात सरोज मुख राजीव आयत लोचनं।

नित नौमि रामु कृपाल बाहु बिसाल भव भय मोचनं॥1॥

भावार्थ:- हे रामजी! आपकी जय हो। आपका रूप अनुपम है, आप निर्गुण हैं, सगुण हैं और सत्य ही गुणों के (माया के) प्रेरक हैं। दस सिर वाले रावण की प्रचण्ड भुजाओं को खंड-खंड करने के लिए प्रचण्ड बाण धारण करने वाले, पृथ्वी को सुशोभित करने वाले, जलयुक्त मेघ के समान श्याम शरीर वाले, कमल के समान मुख और (लाल) कमल के समान विशाल नेत्रों वाले, विशाल भुजाओं वाले और भव-भय से छुड़ाने वाले कृपालु श्री रामजी को मैं नित्य नमस्कार करता हूँ॥1॥

* बलमप्रमेयमनादिमजमब्यक्तमेकमगोचरं।

गोबिंद गोपर द्वंद्वहर बिग्यानघन धरनीधरं॥

जे राम मंत्र जपंत संत अनंत जन मन रंजनं।

नित नौमि राम अकाम प्रिय कामादि खल दल गंजनं॥2॥

भावार्थ:- आप अपरिमित बलवाले हैं, अनादि, अजन्मा, अव्यक्त (निराकार), एक अगोचर (अलक्ष्य), गोविंद (वेद वाक्यों द्वारा जानने योग्य), इंद्रियों से अतीत, (जन्म-मरण, सुख-दुःख, हर्ष-शोकादि) द्वंद्वों को हरने वाले, विज्ञान की घनमूर्ति और पृथ्वी के आधार हैं तथा जो संत राम मंत्र को जपते हैं, उन अनन्त सेवकों के मन को आनंद देने वाले हैं। उन निष्कामप्रिय (निष्कामजनों के प्रेमी अथवा उन्हें प्रिय) तथा काम आदि दुष्टों (दुष्ट वृत्तियों) के दल का दलन करने वाले श्री रामजी को मैं नित्य नमस्कार करता हूँ॥2॥

* जेहि श्रुति निरंजन ब्रह्म ब्यापक बिरज अज कहि गावहीं।

करि ध्यान ग्यान बिराग जोग अनेक मुनि जेहि पावहीं॥

सो प्रगट करुना कंद सोभा बृंद अग जग मोहई।

मम हृदय पंकज भृंग अंग अनंग बहु छबि सोहई॥3॥

भावार्थ:- जिनको श्रुतियाँ निरंजन (माया से परे), ब्रह्म, व्यापक, निर्विकार और जन्मरहित कहकर गान करती हैं। मुनि जिन्हें ध्यान, ज्ञान, वैराग्य और योग आदि अनेक साधन करके पाते हैं। वे ही करुणाकन्द, शोभा के समूह (स्वयं श्री भगवान्) प्रकट होकर जड़-चेतन समस्त जगत् को मोहित कर रहे हैं। मेरे हृदय कमल के भ्रमर रूप उनके अंग-अंग में बहुत से कामदेवों की छवि शोभा पा रही है॥3॥

* जो अगम सुगम सुभाव निर्मल असम सम सीतल सदा।

पस्यंति जं जोगी जतन करि करत मन गो बस सदा॥

सो राम रमा निवास संतत दास बस त्रिभुवन धनी।

मम उर बसउ सो समन संसृति जासु कीरति पावनी॥4॥

भावार्थ:- जो अगम और सुगम हैं, निर्मल स्वभाव हैं, विषम और सम हैं और सदा शीतल (शांत) हैं। मन और इंद्रियों को सदा वश में करते हुए योगी बहुत साधन करने पर जिन्हें देख पाते हैं। वे तीनों लोकों के स्वामी, रमानिवास श्री रामजी निरंतर अपने दासों के वश में रहते हैं। वे ही मेरे हृदय में निवास करें, जिनकी पवित्र कीर्ति आवागमन को मिटाने वाली है॥4॥

दोहा :

* अबिरल भगति मागि बर गीध गयउ हरिधाम।

तेहि की क्रिया जथोचित निज कर कीन्ही राम॥32॥

भावार्थ:- अखंड भक्ति का वर माँगकर गृध्रराज जटायु श्री हरि के परमधाम को चला गया। श्री रामचंद्रजी ने उसकी (दाहकर्म आदि सारी) क्रियाएँ यथायोग्य अपने हाथों से कीं॥32॥

चौपाई :

* कोमल चित अति दीनदयाला। कारन बिनु रघुनाथ कृपाला॥

गीध अधम खग आमिष भोगी। गति दीन्ही जो जाचत जोगी॥1॥

भावार्थ:- श्री रघुनाथजी अत्यंत कोमल चित्त वाले, दीनदयालु और बिना ही करण कृपालु हैं। गीध (पक्षियों में भी) अधम पक्षी और

मांसाहारी था, उसको भी वह दुर्लभ गति दी, जिसे योगीजन माँगते रहते हैं॥1॥

* सुनहू उमा ते लोग अभागी। हरि तजि होहिं बिषय अनुरागी।
पुनि सीतहि खोजत द्वौ भाई। चले बिलोकत बन बहुताई॥2॥

भावार्थ:- (शिवजी कहते हैं-) हे पार्वती! सुनो, वे लोग अभागे हैं, जो भगवान्‌ को छोड़कर विषयों से अनुराग करते हैं। फिर दोनों भाई सीताजी को खोजते हुए आगे चले। वे वन की सघनता देखते जाते हैं॥2॥

* संकुल लता बिटप घन कानन। बहु खग मृग तहँ गज पंचानन॥
आवत पंथ कबंध निपाता। तेहिं सब कही साप कै बाता॥3॥

भावार्थ:- वह सघन वन लताओं और वृक्षों से भरा है। उसमें बहुत से पक्षी, मृग, हाथी और सिंह रहते हैं। श्री रामजी ने रास्ते में आते हुए कबंध राक्षस को मार डाला। उसने अपने शाप की सारी बात कही॥3॥

* दुरबासा मोहि दीन्ही सापा। प्रभु पद पेखि मिटा सो पापा॥
सुनु गंधर्ब कहउँ मैं तोही। मोहि न सोहाइ ब्रह्मकुल द्रोही॥4॥

भावार्थ:- (वह बोला-) दुर्वासाजी ने मुझे शाप दिया था। अब प्रभु के चरणों को देखने से वह पाप मिट गया। (श्री रामजी ने कहा-) हे गंधर्व! सुनो, मैं तुम्हें कहता हूँ, ब्राह्मणकुल से द्रोह करने वाला मुझे नहीं सुहाता॥4॥

दोहा :

* मन क्रम बचन कपट तजि जो कर भूसुर सेव।

मोहि समेत बिरंचि सिव बस ताकें सब देव॥33॥

भावार्थ:- मन, वचन और कर्म से कपट छोड़कर जो भूदेव ब्राह्मणों की सेवा करता है, मुझ समेत ब्रह्मा, शिव आदि सब देवता उसके वश हो जाते हैं॥33॥

चौपाई :

* सापत ताड़त परुष कहंता। बिप्र पूज्य अस गावहिं संता॥
पूजिअ बिप्र सील गुन हीना। सूद्र न गुन गन ग्यान प्रबीना॥1॥

भावार्थ:- शाप देता हुआ, मारता हुआ और कठोर वचन कहता हुआ भी ब्राह्मण पूजनीय है, ऐसा संत कहते हैं। शील और गुण से हीन भी ब्राह्मण पूजनीय है। और गुण गणों से युक्त और ज्ञान में निपुण भी शूद्र पूजनीय नहीं है॥1॥

* कहि निज धर्म ताहि समुझावा। निज पद प्रीति देखि मन भावा॥
रघुपति चरन कमल सिरु नाई। गयउ गगन आपनि गति पाई॥2॥

भावार्थ:- श्री रामजी ने अपना धर्म (भागवत धर्म) कहकर उसे समझाया। अपने चरणों में प्रेम देखकर वह उनके मन को भाया। तदनन्तर श्री रघुनाथजी के चरणकमलों में सिर नवाकर वह अपनी गति (गंधर्व का स्वरूप) पाकर आकाश में चला गया॥2॥

शबरी पर कृपा, नवधा भक्ति उपदेश और पम्पासर की ओर प्रस्थान

* ताहि देइ गति राम उदारा। सबरी कें आश्रम पगु धारा॥

सबरी देखि राम गृहँ आए। मुनि के बचन समुझि जियँ भाए॥3॥

भावार्थ:- उदार श्री रामजी उसे गति देकर शबरीजी के आश्रम में पधारे। शबरीजी ने श्री रामचंद्रजी को घर में आए देखा, तब मुनि मतंगजी के वचनों को याद करके उनका मन प्रसन्न हो गया॥3॥

* सरसिज लोचन बाहु बिसाला। जटा मुकुट सिर उर बनमाला॥

स्याम गौर सुंदर दोउ भाई। सबरी परी चरन लपटाई॥4॥

भावार्थ:- कमल सदृश नेत्र और विशाल भुजाओं वाले, सिर पर जटाओं का मुकुट और हृदय पर वनमाला धारण किए हुए सुंदर, साँवले और गोरे दोनों भाइयों के चरणों में शबरीजी लिपट पड़ीं॥4॥

* प्रेम मगन मुख बचन न आवा। पुनि पुनि पद सरोज सिर नावा॥

सादर जल लै चरन पखारे। पुनि सुंदर आसन बैठारे॥5॥

भावार्थ:- वे प्रेम में मग्न हो गईं, मुख से वचन नहीं निकलता। बार-बार चरण-कमलों में सिर नवा रही हैं। फिर उन्होंने जल लेकर आदरपूर्वक दोनों भाइयों के चरण धोए और फिर उन्हें सुंदर आसनों पर बैठाया॥5॥

दोहा :

* कंद मूल फल सुरस अति दिए राम कहुँ आनि।

प्रेम सहित प्रभु खाए बारंबार बखानि॥34॥

भावार्थ:- उन्होंने अत्यंत रसीले और स्वादिष्ट कन्द, मूल और फल लाकर श्री रामजी को दिए। प्रभु ने बार-बार प्रशंसा करके उन्हें प्रेम सहित खाया॥34॥

चौपाई :

* पानि जोरि आगें भइ ठाढ़ी। प्रभुहि बिलोकि प्रीति अति बाढ़ी॥

केहि बिधि अस्तुति करौं तुम्हारी। अधम जाति मैं जड़मति भारी॥1॥

भावार्थ:- फिर वे हाथ जोड़कर आगे खड़ी हो गईं। प्रभु को देखकर उनका प्रेम अत्यंत बढ़ गया। (उन्होंने कहा-) मैं किस प्रकार आपकी स्तुति करूँ? मैं नीच जाति की और अत्यंत मूढ़ बुद्धि हूँ॥1॥

* अधम ते अधम अधम अति नारी। तिन्ह महँ मैं मतिमंद अघारी॥

कह रघुपति सुनु भामिनि बाता। मानउँ एक भगति कर नाता॥2॥

भावार्थ:- जो अधम से भी अधम हैं, स्त्रियाँ उनमें भी अत्यंत अधम हैं, और उनमें भी हे पापनाशन! मैं मंदबुद्धि हूँ। श्री रघुनाथजी ने कहा- हे भामिनि! मेरी बात सुन! मैं तो केवल एक भक्ति ही का संबंध मानता हूँ॥2॥

* जाति पाँति कुल धर्म बड़ाई। धन बल परिजन गुन चतुराई॥

भगति हीन नर सोहइ कैसा। बिनु जल बारिद देखिअ जैसा॥3॥

भावार्थ:- जाति, पाँति, कुल, धर्म, बड़ाई, धन, बल, कुटुम्ब, गुण और चतुरता- इन सबके होने पर भी भक्ति से रहित मनुष्य कैसा लगता है, जैसे जलहीन बादल (शोभाहीन) दिखाई पड़ता है॥3॥

गीताप्रेस गोरखपुर

* नवधा भगति कहउँ तोहि पाहीं। सावधान सुनु धरु मन माहीं॥

प्रथम भगति संतन्ह कर संगा। दूसरि रति मम कथा प्रसंगा॥4॥

भावार्थ:- मैं तुझसे अब अपनी नवधा भक्ति कहता हूँ। तू सावधान होकर सुन और मन में धारण कर। पहली भक्ति है संतों का सत्संग। दूसरी भक्ति है मेरे कथा प्रसंग में प्रेम॥4॥

दोहा :

* गुर पद पंकज सेवा तीसरि भगति अमान।

चौथि भगति मम गुन गन करइ कपट तजि गान॥35॥

भावार्थ:- तीसरी भक्ति है अभिमानरहित होकर गुरु के चरण कमलों की सेवा और चौथी भक्ति यह है कि कपट छोड़कर मेरे गुण समूहों का गान करें॥35॥

चौपाई :

* मंत्र जाप मम दृढ़ बिस्वासा। पंचम भजन सो बेद प्रकासा॥

छठ दम सील बिरति बहु करमा। निरत निरंतर सज्जन धरमा॥1॥

भावार्थ:- मेरे (राम) मंत्र का जाप और मुझमंर दृढ़ विश्वास- यह पाँचवीं भक्ति है, जो वेदों में प्रसिद्ध है। छठी भक्ति है इंद्रियों का निग्रह, शील (अच्छा स्वभाव या चरित्र), बहुत कार्यों से वैराग्य और निरंतर संत पुरुषों के धर्म (आचरण) में लगे रहना॥1॥

* सातवँ सम मोहि मय जग देखा। मोतें संत अधिक करि लेखा॥

आठवँ जथालाभ संतोषा। सपनेहुँ नहिं देखइ परदोषा॥2॥

भावार्थ:- सातवीं भक्ति है जगत् भर को समभाव से मुझमें ओतप्रोत (राममय) देखना और संतों को मुझसे भी अधिक करके मानना। आठवीं भक्ति है जो कुछ मिल जाए, उसी में संतोष करना और स्वप्न में भी पराए दोषों को न देखना॥2॥

* नवम सरल सब सन छलहीना। मम भरोस हियँ हरष न दीना॥

नव महुँ एकउ जिन्ह कें होई। नारि पुरुष सचराचर कोई॥3॥

भावार्थ:- नवीं भक्ति है सरलता और सबके साथ कपटरहित बर्ताव करना, हृदय में मेरा भरोसा रखना और किसी भी अवस्था में हर्ष और दैन्य (विषाद) का न होना। इन नवों में से जिनके एक भी होती है, वह स्त्री-पुरुष, जड़-चेतन कोई भी हो-॥3॥

* सोइ अतिसय प्रिय भामिनि मोरें। सकल प्रकार भगति दृढ़ तोरें॥

जोगि बृंद दुरलभ गति जोई। तो कहुँ आजु सुलभ भइ सोई॥4॥

भावार्थ:- हे भामिनि! मुझे वही अत्यंत प्रिय है। फिर तुझ में तो सभी प्रकार की भक्ति दृढ़ है। अतएव जो गति योगियों को भी दुर्लभ है, वही आज तेरे लिए सुलभ हो गई है॥4॥

* मम दरसन फल परम अनूपा। जीव पाव निज सहज सरूपा॥

जनकसुता कइ सुधि भामिनी। जानहि कहु करिबरगामिनी॥5॥

भावार्थ:- मेरे दर्शन का परम अनुपम फल यह है कि जीव अपने सहज स्वरूप को प्राप्त हो जाता है। हे भामिनि! अब यदि तू गजगामिनी जानकी की कुछ खबर जानती हो तो बता॥5॥

* पंपा सरहि जाहु रघुराई। तहँ होइहि सुग्रीव मिताई॥

सो सब कहिहि देव रघुबीरा। जानतहूँ पूछहु मतिधीरा॥6॥

भावार्थ:- (शबरी ने कहा-) हे रघुनाथजी! आप पंपा नामक सरोवर को जाइए। वहाँ आपकी सुग्रीव से मित्रता होगी। हे देव! हे रघुवीर! वह सब हाल बतावेगा। हे धीरबुद्धि! आप सब जानते हुए भी मुझसे पूछते हैं!॥6॥

* बार बार प्रभु पद सिरु नाई। प्रेम सहित सब कथा सुनाई॥7॥

भावार्थ:- बार-बार प्रभु के चरणों में सिर नवाकर, प्रेम सहित उसने सब कथा सुनाई॥7॥

छंद- :

* कहि कथा सकल बिलोकि हरि मुख हृदय पद पंकज धरे।

तजि जोग पावक देह परि पद लीन भइ जहँ नहिं फिरे॥

नर बिबिध कर्म अधर्म बहु मत सोकप्रद सब त्यागहू।

बिस्वास करि कह दास तुलसी राम पद अनुरागहू॥

भावार्थ:- सब कथा कहकर भगवान्‌ के मुख के दर्शन कर, उनके चरणकमलों को धारण कर लिया और योगाग्नि से देह को त्याग कर (जलाकर) वह उस दुर्लभ हरिपद में लीन हो गई, जहाँ से लौटना नहीं होता। तुलसीदासजी कहते हैं कि अनेकों प्रकार के कर्म, अधर्म और बहुत से मत- ये सब शोकप्रद हैं, हे मनुष्यों! इनका त्याग कर दो और विश्वास करके श्री रामजी के चरणों में प्रेम करो।

दोहा :

* जाति हीन अघ जन्म महि मुक्त कीन्हि असि नारि।

महामंद मन सुख चहसि ऐसे प्रभुहि बिसारि॥36॥

भावार्थ:- जो नीच जाति की और पापों की जन्मभूमि थी, ऐसी स्त्री को भी जिन्होंने मुक्त कर दिया, अरे महादुर्बुद्धि मन! तू ऐसे प्रभु को भूलकर सुख चाहता है?॥36॥

चौपाई :

* चले राम त्यागा बन सोऊ। अतुलित बल नर केहरि दोऊ॥

बिरही इव प्रभु करत बिषादा। कहत कथा अनेक संबादा॥1॥

भावार्थ:- श्री रामचंद्रजी ने उस वन को भी छोड़ दिया और वे आगे चले। दोनों भाई अतुलनीय बलवान् और मनुष्यों में सिंह के समान हैं। प्रभु विरही की तरह विषाद करते हुए अनेकों कथाएँ और संवाद कहते हैं-॥1॥

* लछिमन देखु बिपिन कइ सोभा। देखत केहि कर मन नहिं छोभा॥

नारि सहित सब खग मृग बृंदा। मानहुँ मोरि करत हहिं निंदा॥2॥

भावार्थ:- हे लक्ष्मण! जरा वन की शोभा तो देखो। इसे देखकर किसका मन क्षुब्ध नहीं होगा? पक्षी और पशुओं के समूह सभी स्त्री सहित हैं। मानो वे मेरी निंदा कर रहे हैं॥3॥

* हमहि देखि मृग निकर पराहीं। मृगीं कहहिं तुम्ह कहँ भय नाहीं॥

तुम्ह आनंद करहु मृग जाए। कंचन मृग खोजन ए आए॥3॥

भावार्थ:- हमें देखकर (जब डर के मारे) हिरनों के झुंड भागने लगते हैं, तब हिरनियाँ उनसे कहती हैं- तुमको भय नहीं है। तुम तो साधारण हिरनों से पैदा हुए हो, अतः तुम आनंद करो। ये तो सोने का हिरन खोजने आए हैं॥3॥

* संग लाइ करिनीं करि लेहीं। मानहुँ मोहि सिखावनु देहीं॥

सास्त्र सुचिंतित पुनि पुनि देखिअ। भूप सुसेवित बस नहिं लेखिअ॥4॥

भावार्थ:- हाथी हथिनियों को साथ लगा लेते हैं। वे मानो मुझे शिक्षा देते हैं (कि स्त्री को कभी अकेली नहीं छोड़ना चाहिए)। भलीभाँति चिंतन किए हुए शास्त्र को भी बार-बार देखते रहना चाहिए। अच्छी तरह सेवा किए हुए भी राजा को वश में नहीं समझना चाहिए॥4॥

* राखिअ नारि जदपि उर माहीं। जुबती सास्त्र नृपति बस नाहीं॥

देखहु तात बसंत सुहावा। प्रिया हीन मोहि भय उपजावा॥5॥

भावार्थ:- और स्त्री को चाहे हृदय में ही क्यों न रखा जाए, परन्तु युवती स्त्री, शास्त्र और राजा किसी के वश में नहीं रहते। हे तात! इस सुंदर वसंत को तो देखो। प्रिया के बिना मुझको यह भय उत्पन्न कर रहा है॥5॥

दोहा :

* बिरह बिकल बलहीन मोहि जानेसि निपट अकेल।

सहित बिपिन मधुकर खग मदन कीन्ह बगमेल॥37 क॥

भावार्थ:- मुझे विरह से व्याकुल, बलहीन और बिलकुल अकेला जानकर कामदेव ने वन, भौंरों और पक्षियों को साथ लेकर मुझ पर धावा बोल दिया॥37 (क)॥

* देखि गयउ भ्राता सहित तासु दूत सुनि बात।
डेरा कीन्हेउ मनहुँ तब कटकु हटकि मनजात॥37 ख॥

भावार्थ:- परन्तु जब उसका दूत यह देख गया कि मैं भाई के साथ हूँ (अकेला नहीं हूँ), तब उसकी बात सुनकर कामदेव ने मानो सेना को रोककर डेरा डाल दिया है॥37 (ख)॥

चौपाई :

* बिटप बिसाल लता अरुझानी। बिबिध बितान दिए जनु तानी॥
कदलि ताल बर धुजा पताका। देखि न मोह धीर मन जाका॥1॥

भावार्थ:- विशाल वृक्षों में लताएँ उलझी हुई ऐसी मालूम होती हैं मानो नाना प्रकार के तंबू तान दिए गए हैं। केला और ताड़ सुंदर ध्वजा पताका के समान हैं। इन्हें देखकर वही नहीं मोहित होता, जिसका मन धीर है॥1॥

* बिबिध भाँति फूले तरु नाना। जनु बानैत बने बहु बाना॥
कहुँ कहुँ सुंदर बिटप सुहाए। जनु भट बिलग बिलग होइ छाए॥2॥

भावार्थ:- अनेकों वृक्ष नाना प्रकार से फूले हुए हैं। मानो अलग-अलग बाना (वर्दी) धारण किए हुए बहुत से तीरंदाज हों। कहीं-कहीं सुंदर वृक्ष

शोभा दे रहे हैं। मानो योद्धा लोग अलग-अलग होकर छावनी डाले हों॥2॥

* कूजत पिक मानहुँ गज माते। ढेक महोख ऊँट बिसराते॥

मोर चकोर कीर बर बाजी। पारावत मराल सब ताजी॥3॥

भावार्थ:- कोयलें कूज रही हैं, वही मानो मतवाले हाथी (चिग्घाड़ रहे) हैं। ढेक और महोख पक्षी मानो ऊँट और खच्चर हैं। मोर, चकोर, तोते, कबूतर और हंस मानो सब सुंदर ताजी (अरबी) घोड़े हैं॥3॥

* तीतिर लावक पदचर जूथा। बरनि न जाइ मनोज बरूथा॥

रथ गिरि सिला दुंदुभीं झरना। चातक बंदी गुन गन बरना॥4॥

भावार्थ:- तीतर और बटेर पैदल सिपाहियों के झुंड हैं। कामदेव की सेना का वर्णन नहीं हो सकता। पर्वतों की शिलाएँ रथ और जल के झरने नगाड़े हैं। पपीहे भाट हैं, जो गुणसमूह (विरुदावली) का वर्णन करते हैं॥4॥

* मधुकर मुखर भेरि सहनाई। त्रिबिध बयारि बसीठीं आई॥

चतुरंगिनी सेन सँग लीन्हें। बिचरत सबहि चुनौती दीन्हें॥5॥

भावार्थ:-भौंरों की गुंजार भेरी और शहनाई है। शीतल, मंद और सुगंधित हवा मानो दूत का काम लेकर आई है। इस प्रकार चतुरंगिणी सेना साथ लिए कामदेव मानो सबको चुनौती देता हुआ विचर रहा है॥5॥

* लछिमन देखत काम अनीका। रहहिं धीर तिन्ह कै जग लीका॥

ऐहि कें एक परम बल नारी। तेहि तें उबर सुभट सोइ भारी॥6॥

भावार्थ:- हे लक्ष्मण! कामदेव की इस सेना को देखकर जो धीर बने रहते हैं, जगत् में उन्हीं की (वीरों में) प्रतिष्ठा होती है। इस कामदेव के एक स्त्री का बड़ा भारी बल है। उससे जो बच जाए, वही श्रेष्ठ योद्धा है॥6॥

दोहा :

* तात तीनि अति प्रबल खल काम क्रोध अरु लोभ।

मुनि बिग्यान धाम मन करहिं निमिष महुँ छोभ॥38 क॥

भावार्थ:- हे तात! काम, क्रोध और लोभ- ये तीन अत्यंत दुष्ट हैं। ये विज्ञान के धाम मुनियों के भी मनों को पलभर में क्षुब्ध कर देते हैं॥38 (क)॥

* लोभ कें इच्छा दंभ बल काम कें केवल नारि।

क्रोध कें परुष बचन बल मुनिबर कहहिं बिचारि॥38 ख॥

भावार्थ:- लोभ को इच्छा और दम्भ का बल है, काम को केवल स्त्री का बल है और क्रोध को कठोर वचनों का बाल है, श्रेष्ठ मुनि विचार कर ऐसा कहते हैं॥38 (ख)॥

चौपाई :

* गुनातीत सचराचर स्वामी। राम उमा सब अंतरजामी॥

कामिन्ह कै दीनता देखाई। धीरन्ह कें मन बिरति दृढ़ाई॥1॥

भावार्थ:- (शिवजी कहते हैं-) हे पार्वती! श्री रामचंद्रजी गुणातीत (तीनों गुणों से परे), चराचर जगत् के स्वामी और सबके अंतर की जानने वाले हैं। (उपर्युक्त बातें कहकर) उन्होंने कामी लोगों की दीनता (बेबसी) दिखलाई है और धीर (विवेकी) पुरुषों के मन में वैराग्य को दृढ़ किया है॥1॥

* क्रोध मनोज लोभ मद माया। छूटहिं सकल राम कीं दाया॥

सो नर इंद्रजाल नहिं भूला। जा पर होइ सो नट अनुकूला॥2॥

भावार्थ:- क्रोध, काम, लोभ, मद और माया- ये सभी श्री रामजी की दया से छूट जाते हैं। वह नट (नटराज भगवान्) जिस पर प्रसन्न होता है, वह मनुष्य इंद्रजाल (माया) में नहीं भूलता॥2॥

* उमा कहउँ मैं अनुभव अपना। सत हरि भजनु जगत सब सपना॥

पुनि प्रभु गए सरोबर तीरा। पंपा नाम सुभग गंभीरा॥3॥

भावार्थ:- हे उमा! मैं तुम्हें अपना अनुभव कहता हूँ- हरि का भजन ही सत्य है, यह सारा जगत् तो स्वप्न (की भाँति झूठा) है। फिर प्रभु श्री रामजी पंपा नामक सुंदर और गहरे सरोवर के तीर पर गए॥3॥

* संत हृदय जस निर्मल बारी। बाँधे घाट मनोहर चारी॥

जहँ तहँ पिअहिं बिबिध मृग नीरा। जनु उदार गृह जाचक भीरा॥4॥

भावार्थ:- उसका जल संतों के हृदय जैसा निर्मल है। मन को हरने वाले सुंदर चार घाट बँधे हुए हैं। भाँति-भाँति के पशु जहाँ-तहाँ जल पी रहे हैं। मानो उदार दानी पुरुषों के घर याचकों की भीड़ लगी हो!॥4॥

दोहा :

* पुरइनि सघन ओट जल बेगि न पाइअ मर्म।

मायाछन्न न देखिऐ जैसें निर्गुन ब्रह्म॥39 क॥

भावार्थ:- घनी पुरइनों (कमल के पत्तों) की आड़ में जल का जल्दी पता नहीं मिलता। जैसे माया से ढँके रहने के कारण निर्गुण ब्रह्म नहीं दिखता॥39 (क)॥

* सुखी मीन सब एकरस अति अगाध जल माहिं।

जथा धर्मसीलन्ह के दिन सुख संजुत जाहिं॥39 ख॥

भावार्थ:- उस सरोवर के अत्यंत अथाह जल में सब मछलियाँ सदा एकरस (एक समान) सुखी रहती हैं। जैसे धर्मशील पुरुषों के सब दिन सुखपूर्वक बीतते हैं॥39 (ख)॥

चौपाई :

* बिकसे सरसिज नाना रंगा। मधुर मुखर गुंजत बहु भृंगा॥

बोलत जलकुक्कुट कलहंसा। प्रभु बिलोकि जनु करत प्रसंसा॥1॥

भावार्थ:- उसमें रंग-बिरंगे कमल खिले हुए हैं। बहुत से भौंरे मधुर स्वर से गुंजार कर रहे हैं। जल के मुर्गे और राजहंस बोल रहे हैं, मानो प्रभु को देखकर उनकी प्रशंसा कर रहे हों॥1॥

* चक्रबाक बक खग समुदाई। देखत बनइ बरनि नहिं जाई॥

सुंदर खग गन गिरा सुहाई। जात पथिक जनु लेत बोलाई॥2॥

भावार्थ:- चक्रवाक, बगुले आदि पक्षियों का समुदाय देखते ही बनता है, उनका वर्णन नहीं किया जा सकता। सुंदर पक्षियों की बोली बड़ी सुहावनी लगती है, मानो (रास्ते में) जाते हुए पथिक को बुलाए लेती हो॥2॥

* ताल समीप मुनिन्ह गृह छाए। चहु दिसि कानन बिटप सुहाए॥

चंपक बकुल कदंब तमाला। पाटल पनस परास रसाला॥3॥

भावार्थ:- उस झील (पंपा सरोवर) के समीप मुनियों ने आश्रम बना रखे हैं। उसके चारों ओर वन के सुंदर वृक्ष हैं। चम्पा, मौलसिरी, कदम्ब, तमाल, पाटल, कटहल, ढाक और आम आदि-॥3॥

* नव पल्लव कुसुमित तरु नाना। चंचरीक पटली कर गाना॥

सीतल मंद सुगंध सुभाऊ। संतत बहइ मनोहर बाऊ॥4॥

भावार्थ:- बहुत प्रकार के वृक्ष नए-नए पत्तों और (सुगंधित) पुष्पों से युक्त हैं, (जिन पर) भौंरों के समूह गुंजार कर रहे हैं। स्वभाव से ही शीतल, मंद, सुगंधित एवं मन को हरने वाली हवा सदा बहती रहती है॥4॥

* कुहू कुहू कोकिल धुनि करहीं। सुनि रव सरस ध्यान मुनि टरहीं॥5॥

भावार्थ:- कोयलें 'कुहू' 'कुहू' का शब्द कर रही हैं। उनकी रसीली बोली सुनकर मुनियों का भी ध्यान टूट जाता है॥5॥

दोहा :

* फल भारन नमि बिटप सब रहे भूमि निअराइ।

पर उपकारी पुरुष जिमि नवहिं सुसंपति पाइ॥40॥

भावार्थ:- फलों के बोझ से झुककर सारे वृक्ष पृथ्वी के पास आ लगे हैं, जैसे परोपकारी पुरुष बड़ी सम्पत्ति पाकर (विनय से) झुक जाते हैं॥40॥

चौपाई :

* देखि राम अति रुचिर तलावा। मज्जनु कीन्ह परम सुख पावा॥

देखी सुंदर तरुबर छाया। बैठे अनुज सहित रघुराया॥1॥

भावार्थ:- श्री रामजी ने अत्यंत सुंदर तालाब देखकर स्नान किया और परम सुख पाया। एक सुंदर उत्तम वृक्ष की छाया देखकर श्री रघुनाथजी छोटे भाई लक्ष्मणजी सहित बैठ गए॥1॥

* तहँ पुनि सकल देव मुनि आए। अस्तुति करि निज धाम सिधाए॥

बैठे परम प्रसन्न कृपाला। कहत अनुज सन कथा रसाला॥2॥

भावार्थ:- फिर वहाँ सब देवता और मुनि आए और स्तुति करके अपने-अपने धाम को चले गए। कृपालु श्री रामजी परम प्रसन्न बैठे हुए छोटे भाई लक्ष्मणजी से रसीली कथाएँ कह रहे हैं॥2॥

गीताप्रेस गोरखपुर

नारद-राम संवाद

* बिरहवंत भगवंतहि देखी। नारद मन भा सोच बिसेषी॥

मोर साप करि अंगीकारा। सहत राम नाना दुख भारा॥3॥

भावार्थ:- भगवान्‌ को विरहयुक्त देखकर नारदजी के मन में विशेष रूप से सोच हुआ। (उन्होंने विचार किया कि) मेरे ही शाप को स्वीकार करके

श्री रामजी नाना प्रकार के दुःखों का भार सह रहे हैं (दुःख उठा रहे हैं)॥3॥

* ऐसे प्रभुहि बिलोकउँ जाई। पुनि न बनिहि अस अवसरु आई॥

यह बिचारि नारद कर बीना। गए जहाँ प्रभु सुख आसीना॥4॥

भावार्थ:- ऐसे (भक्त वत्सल) प्रभु को जाकर देखूँ। फिर ऐसा अवसर न बन आवेगा। यह विचार कर नारदजी हाथ में वीणा लिए हुए वहाँ गए, जहाँ प्रभु सुखपूर्वक बैठे हुए थे॥4॥

*गावत राम चरित मृदु बानी। प्रेम सहित बहु भाँति बखानी॥

करत दंडवत लिए उठाई। राखे बहुत बार उर लाई॥5॥

भावार्थ:- वे कोमल वाणी से प्रेम के साथ बहुत प्रकार से बखान-बखान कर रामचरित का गान कर (ते हुए चले आ) रहे थे। दण्डवत् करते देखकर श्री रामचंद्रजी ने नारदजी को उठा लिया और बहुत देर तक हृदय से लगाए रखा॥5॥

* स्वागत पूँछि निकट बैठारे। लछिमन सादर चरन पखारे॥6॥

भावार्थ:- फिर स्वागत (कुशल) पूछकर पास बैठा लिया। लक्ष्मणजी ने आदर के साथ उनके चरण धोए॥6॥

दोहा :

* नाना बिधि बिनती करि प्रभु प्रसन्न जियँ जानि।

नारद बोले बचन तब जोरि सरोरुह पानि॥41॥

भावार्थ:- बहुत प्रकार से विनती करके और प्रभु को मन में प्रसन्न जानकर तब नारदजी कमल के समान हाथों को जोड़कर वचन बोले-॥41॥

चौपाई :

* सुनहु उदार सहज रघुनायक। सुंदर अगम सुगम बर दायक॥
देहु एक बर मागउँ स्वामी। जद्यपि जानत अंतरजामी॥1॥

भावार्थ:- हे स्वभाव से ही उदार श्री रघुनाथजी! सुनिए। आप सुंदर अगम और सुगम वर के देने वाले हैं। हे स्वामी! मैं एक वर माँगता हूँ, वह मुझे दीजिए, यद्यपि आप अंतर्यामी होने के नाते सब जानते ही हैं॥1॥

* जानहु मुनि तुम्ह मोर सुभाऊ। जन सन कबहुँ कि करउँ दुराऊ॥
कवन बस्तु असि प्रिय मोहि लागी। जो मुनिबर न सकहुँ तुम्ह मागी॥2॥

भावार्थ:- (श्री रामजी ने कहा-) हे मुनि! तुम मेरा स्वभाव जानते ही हो। क्या मैं अपने भक्तों से कभी कुछ छिपाव करता हूँ? मुझे ऐसी कौन सी वस्तु प्रिय लगती है, जिसे हे मुनिश्रेष्ठ! तुम नहीं माँग सकते?॥2॥

* जन कहुँ कछु अदेय नहिं मोरें। अस बिस्वास तजहु जनि भोरें॥
तब नारद बोले हरषाई। अस बर मागउँ करउँ ढिठाई॥3॥

भावार्थ:- मुझे भक्त के लिए कुछ भी अदेय नहीं है। ऐसा विश्वास भूलकर भी मत छोड़ो। तब नारदजी हर्षित होकर बोले- मैं ऐसा वर माँगता हूँ, यह धृष्टता करता हूँ-॥3॥

* जद्यपि प्रभु के नाम अनेका। श्रुति कह अधिक एक तें एका॥

राम सकल नामन्ह ते अधिका। होउ नाथ अघ खग गन बधिका॥4॥

भावार्थ:- यद्यपि प्रभु के अनेकों नाम हैं और वेद कहते हैं कि वे सब एक से एक बढ़कर हैं, तो भी हे नाथ! रामनाम सब नामों से बढ़कर हो और पाप रूपी पक्षियों के समूह के लिए यह वधिक के समान हो॥4॥

दोहा :

* राका रजनी भगति तव राम नाम सोइ सोम।

अपर नाम उडगन बिमल बसहुँ भगत उर ब्योम॥42 क॥

भावार्थ:-आपकी भक्ति पूर्णिमा की रात्रि है, उसमें 'राम' नाम यही पूर्ण चंद्रमा होकर और अन्य सब नाम तारागण होकर भक्तों के हृदय रूपी निर्मल आकाश में निवास करें॥42 (क)॥

* एवमस्तु मुनि सन कहेउ कृपासिंधु रघुनाथ।

तब नारद मन हरष अति प्रभु पद नायउ माथ॥42 ख॥

भावार्थ:-कृपा सागर श्री रघुनाथजी ने मुनि से 'एवमस्तु' (ऐसा ही हो) कहा। तब नारदजी ने मन में अत्यंत हर्षित होकर प्रभु के चरणों में मस्तक नवाया॥42 (ख)॥

चौपाई :

* अति प्रसन्न रघुनाथहि जानी। पुनि नारद बोले मृदु बानी॥

राम जबहिं प्रेरेउ निज माया मोहेहु मोहि सुनहु रघुराया॥1॥

भावार्थ:- श्री रघुनाथजी को अत्यंत प्रसन्न जानकर नारदजी फिर कोमल वाणी बोले- हे रामजी! हे रघुनाथजी! सुनिए, जब आपने अपनी माया को प्रेरित करके मुझे मोहित किया था,॥1॥

* तब बिबाह मैं चाहउँ कीन्हा। प्रभु केहि कारन करै न दीन्हा॥
सुनु मुनि तोहि कहउँ सहरोसा। भजहिं जे मोहि तजि सकल भरोसा॥2॥

भावार्थ:- तब मैं विवाह करना चाहता था। हे प्रभु! आपने मुझे किस कारण विवाह नहीं करने दिया? (प्रभु बोले-) हे मुनि! सुनो, मैं तुम्हें हर्ष के साथ कहता हूँ कि जो समस्त आशा-भरोसा छोड़कर केवल मुझको ही भजते हैं,॥2॥

* करउँ सदा तिन्ह कै रखवारी। जिमि बालक राखइ महतारी॥
गह सिसु बच्छ अनल अहि धाई। तहँ राखइ जननी अरगाई॥3॥

भावार्थ:- मैं सदा उनकी वैसे ही रखवाली करता हूँ, जैसे माता बालक की रक्षा करती है। छोटा बच्चा जब दौड़कर आग और साँप को पकड़ने जाता है, तो वहाँ माता उसे (अपने हाथों) अलग करके बचा लेती है॥3॥

* प्रौढ़ भएँ तेहि सुत पर माता। प्रीति करइ नहिं पाछिलि बाता॥
मोरें प्रौढ़ तनय सम ग्यानी। बालक सुत सम दास अमानी॥4॥

भावार्थ:- सयाना हो जाने पर उस पुत्र पर माता प्रेम तो करती है, परन्तु पिछली बात नहीं रहती (अर्थात् मातृ परायण शिशु की तरह फिर उसको बचाने की चिंता नहीं करती, क्योंकि वह माता पर निर्भर न कर

अपनी रक्षा आप करने लगता है)। ज्ञानी मेरे प्रौढ़ (सयाने) पुत्र के समान है और (तुम्हारे जैसा) अपने बल का मान न करने वाला सेवक मेरे शिशु पुत्र के समान है॥4॥

* जनहि मोर बल निज बल ताही। दुहु कहँ काम क्रोध रिपु आही॥

यह बिचारि पंडित मोहि भजहीं। पाएहुँ ग्यान भगति नहिं तजहीं॥5॥

भावार्थ:- मेरे सेवक को केवल मेरा ही बल रहता है और उसे (ज्ञानी को) अपना बल होता है। पर काम-क्रोध रूपी शत्रु तो दोनों के लिए हैं।(भक्त के शत्रुओं को मारने की जिम्मेवारी मुझ पर रहती है, क्योंकि वह मेरे परायण होकर मेरा ही बल मानता है, परन्तु अपने बल को मानने वाले ज्ञानी के शत्रुओं का नाश करने की जिम्मेवारी मुझ पर नहीं है।) ऐसा विचार कर पंडितजन (बुद्धिमान लोग) मुझको ही भजते हैं। वे ज्ञान प्राप्त होने पर भी भक्ति को नहीं छोड़ते॥5॥

दोहा :

* काम क्रोध लोभादि मद प्रबल मोह कै धारि।

तिन्ह महँ अति दारुन दुखद मायारूपी नारि॥43॥

भावार्थ:- काम, क्रोध, लोभ और मद आदि मोह (अज्ञान) की प्रबल सेना है। इनमें मायारूपिणी (माया की साक्षात्‌ मूर्ति) स्त्री तो अत्यंत दारुण दुःख देने वाली है॥43॥

चौपाई :

* सुनु मुनि कह पुरान श्रुति संता। मोह बिपिन कहुँ नारि बसंता॥

जप तप नेम जलाश्रय झारी। होइ ग्रीषम सोषइ सब नारी॥1

भावार्थ:- हे मुनि! सुनो, पुराण, वेद और संत कहते हैं कि मोह रूपी वन (को विकसित करने) के लिए स्त्री वसंत ऋतु के समान है। जप, तप, नियम रूपी संपूर्ण जल के स्थानों को स्त्री ग्रीष्म रूप होकर सर्वथा सोख लेती है॥1॥

काम क्रोध मद मत्सर भेका। इन्हहि हरषप्रद बरषा एका॥

दुर्बासना कुमुद समुदाई। तिन्ह कहँ सरद सदा सुखदाई॥2॥

भावार्थ:- काम, क्रोध, मद और मत्सर (डाह) आदि मेंढक हैं। इनको वर्षा ऋतु होकर हर्ष प्रदान करने वाली एकमात्र यही (स्त्री) है। बुरी वासनाएँ कुमुदों के समूह हैं। उनको सदैव सुख देने वाली यह शरद् ऋतु है॥2॥

* धर्म सकल सरसीरुह बृंदा। होइ हिम तिन्हहि दहइ सुख मंदा॥

पुनि ममता जवास बहुताई। पलुहइ नारि सिसिर रितु पाई॥3॥

भावार्थ:- समस्त धर्म कमलों के झुंड हैं। यह नीच (विषयजन्य) सुख देने वाली स्त्री हिमऋतु होकर उन्हें जला डालती है। फिर ममतारूपी जवास का समूह (वन) स्त्री रूपी शिशिर ऋतु को पाकर हरा-भरा हो जाता है॥3॥

* पाप उलूक निकर सुखकारी। नारि निबिड़ रजनी अँधियारी॥

बुधि बल सील सत्य सब मीना। बनसी सम त्रिय कहहिं प्रबीना॥4॥

भावार्थ:- पाप रूपी उल्लुओं के समूह के लिए यह स्त्री सुख देने वाली घोर अंधकारमयी रात्रि है। बुद्धि, बल, शील और सत्य- ये सब मछलियाँ

हैं और उन (को फँसाकर नष्ट करने) के लिए स्त्री बंसी के समान है, चतुर पुरुष ऐसा कहते हैं॥4॥

दोहा :

* अवगुन मूल सूलप्रद प्रमदा सब दुख खानि।
ताते कीन्ह निवारन मुनि मैं यह जियँ जानि॥44॥

भावार्थ:- युवती स्त्री अवगुणों की मूल, पीड़ा देने वाली और सब दुःखों की खान है, इसलिए हे मुनि! मैंने जी में ऐसा जानकर तुमको विवाह करने से रोका था॥44॥

चौपाई :

* सुनि रघुपति के बचन सुहाए। मुनि तन पुलक नयन भरि आए॥
कहहु कवन प्रभु कै असि रीती। सेवक पर ममता अरु प्रीती॥1॥

भावार्थ:- श्री रघुनाथजी के सुंदर वचन सुनकर मुनि का शरीर पुलकित हो गया और नेत्र (प्रेमाश्रुओं के जल से) भर आए। (वे मन ही मन कहने लगे-) कहो तो किस प्रभु की ऐसी रीती है, जिसका सेवक पर इतना ममत्व और प्रेम हो॥1॥

संतों के लक्षण और सत्संग भजन के लिए प्रेरणा

* जे न भजहिं अस प्रभु भ्रम त्यागी। ग्यान रंक नर मंद अभागी॥
पुनि सादर बोले मुनि नारद। सुनहु राम बिग्यान बिसारद॥2॥

भावार्थ:- जो मनुष्य भ्रम को त्यागकर ऐसे प्रभु को नहीं भजते, वे ज्ञान के कंगाल, दुर्बुद्धि और अभागे हैं। फिर नारद मुनि आदर सहित बोले- हे विज्ञान-विशारद श्री रामजी! सुनिए-॥2॥

* संतन्ह के लच्छन रघुबीरा। कहहु नाथ भव भंजन भीरा॥

सुनु मुनि संतन्ह के गुन कहऊँ। जिन्ह ते मैं उन्ह कें बस रहऊँ॥3॥

भावार्थ:- हे रघुवीर! हे भव-भय (जन्म-मरण के भय) का नाश करने वाले मेरे नाथ! अब कृपा कर संतों के लक्षण कहिए! (श्री रामजी ने कहा-) हे मुनि! सुनो, मैं संतों के गुणों को कहता हूँ, जिनके कारण मैं उनके वश में रहता हूँ॥3॥

* षट बिकार जित अनघ अकामा। अचल अकिंचन सुचि सुखधामा॥

अमित बोध अनीह मितभोगी। सत्यसार कबि कोबिद जोगी॥4॥

भावार्थ:- वे संत (काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद और मत्सर- इन) छह विकारों (दोषों) को जीते हुए, पापरहित, कामनारहित, निश्चल (स्थिरबुद्धि), अकिंचन (सर्वत्यागी), बाहर-भीतर से पवित्र, सुख के धाम, असीम ज्ञानवान्, इच्छारहित, मिताहारी, सत्यनिष्ठ, कवि, विद्वान, योगी,॥4॥

* सावधान मानद मदहीना। धीर धर्म गति परम प्रबीना॥5॥

भावार्थ:- सावधान, दूसरों को मान देने वाले, अभिमानरहित, धैर्यवान, धर्म के ज्ञान और आचरण में अत्यंत निपुण,॥5॥

दोहा :

* गुनागार संसार दुख रहित बिगत संदेह।
तजि मम चरन सरोज प्रिय तिन्ह कहुँ देह न गेह॥45॥

भावार्थ:- गुणों के घर, संसार के दुःखों से रहित और संदेहों से सर्वथा छूटे हुए होते हैं। मेरे चरण कमलों को छोड़कर उनको न देह ही प्रिय होती है, न घर ही॥45॥

चौपाई :

* निज गुन श्रवन सुनत सकुचाहीं। पर गुन सुनत अधिक हरषाहीं॥
सम सीतल नहिं त्यागहिं नीती। सरल सुभाउ सबहि सन प्रीति॥1॥

भावार्थ:- कानों से अपने गुण सुनने में सकुचाते हैं, दूसरों के गुण सुनने से विशेष हर्षित होते हैं। सम और शीतल हैं, न्याय का कभी त्याग नहीं करते। सरल स्वभाव होते हैं और सभी से प्रेम रखते हैं॥1॥

* जप तप ब्रत दम संजम नेमा। गुरु गोबिंद बिप्र पद प्रेमा॥
श्रद्धा छमा मयत्री दाया। मुदिता मम पद प्रीति अमाया॥2॥

भावार्थ:- वे जप, तप, व्रत, दम, संयम और नियम में रत रहते हैं और गुरु, गोविंद तथा ब्राह्मणों के चरणों में प्रेम रखते हैं। उनमें श्रद्धा, क्षमा, मैत्री, दया, मुदिता (प्रसन्नता) और मेरे चरणों में निष्कपट प्रेम होता है॥2॥

* बिरति बिबेक बिनय बिग्याना। बोध जथारथ बेद पुराना॥

दंभ मान मद करहिं न काऊ। भूलि न देहिं कुमारग पाऊ॥3॥

भावार्थ:- तथा वैराग्य, विवेक, विनय, विज्ञान (परमात्मा के तत्व का ज्ञान) और वेद-पुराण का यथार्थ ज्ञान रहता है। वे दम्भ, अभिमान और मद कभी नहीं करते और भूलकर भी कुमार्ग पर पैर नहीं रखते॥3॥

* गावहिं सुनहिं सदा मम लीला। हेतु रहित परहित रत सीला॥
मुनि सुनु साधुन्ह के गुन जेते। कहि न सकहिं सादर श्रुति तेते॥4॥

भावार्थ:- सदा मेरी लीलाओं को गाते-सुनते हैं और बिना ही कारण दूसरों के हित में लगे रहने वाले होते हैं। हे मुनि! सुनो, संतों के जितने गुण हैं, उनको सरस्वती और वेद भी नहीं कह सकते॥4॥

छंद :

* कहि सक न सारद सेष नारद सुनत पद पंकज गहे।
अस दीनबंधु कृपाल अपने भगत गुन निज मुख कहे॥
सिरु नाइ बारहिं बार चरनन्हि ब्रह्मपुर नारद गए।
ते धन्य तुलसीदास आस बिहाइ जे हरि रँग रँए॥

भावार्थ:- 'शेष और शारदा भी नहीं कह सकते' यह सुनते ही नारदजी ने श्री रामजी के चरणकमल पकड़ लिए। दीनबंधु कृपालु प्रभु ने इस प्रकार अपने श्रीमुख से अपने भक्तों के गुण कहे। भगवान् के चरणों में बार-बार सिर नवाकर नारदजी ब्रह्मलोक को चले गए। तुलसीदासजी कहते हैं कि

वे पुरुष धन्य हैं, जो सब आशा छोड़कर केवल श्री हरि के रंग में रँग गए हैं।

दोहा :

* रावनारि जसु पावन गावहिं सुनहिं जे लोग।

राम भगति दृढ़ पावहिं बिनु बिराग जप जोग॥46 क॥

भावार्थ:- जो लोग रावण के शत्रु श्री रामजी का पवित्र यश गावेंगे और सुनेंगे, वे वैराग्य, जप और योग के बिना ही श्री रामजी की दृढ़ भक्ति पावेंगे॥46 (क)॥

* दीप सिखा सम जुबति तन मन जनि होसि पतंग।

भजहि राम तजि काम मद करहि सदा सतसंग॥46 ख॥

भावार्थ:- युवती स्त्रियों का शरीर दीपक की लौ के समान है, हे मन! तू उसका पतिंगा न बन। काम और मद को छोड़कर श्री रामचंद्रजी का भजन कर और सदा सत्संग कर॥46 (ख)॥

मासपारायण, बाईसवाँ विश्राम

इति श्रीमद्रामचरितमानसे सकलकलिकलुषविध्वंसने तृतीयः सोपानः समाप्तः।

कलियुग के संपूर्ण पापों को विध्वंस करने वाले श्री रामचरितमानस का यह तीसरा सोपान समाप्त हुआ।

(अरण्य-काण्ड समाप्त)

गीताप्रेस गोरखपुर

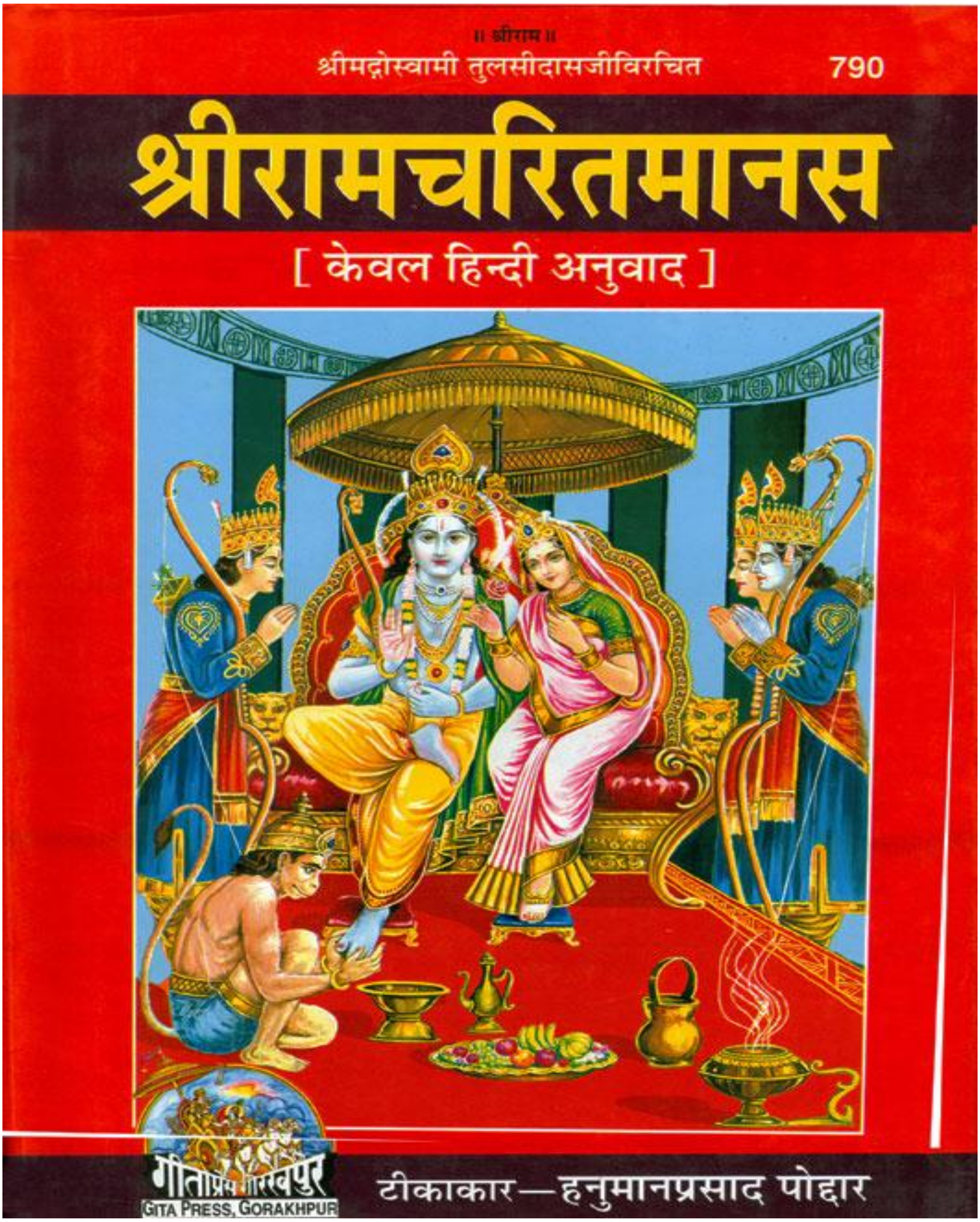

॥ श्रीराम ॥

श्रीमद्गोस्वामी तुलसीदासजीविरचित

790

श्रीरामचरितमानस

[केवल हिन्दी अनुवाद]

गीताप्रेस गोरखपुर

GITA PRESS, GORAKHPUR

टीकाकार—हनुमानप्रसाद पोद्दार

श्रीरामचरितमानस

किष्किंधाकांड

मंगलाचरण

श्लोक :

* कुन्देन्दीवरसुन्दरावतिबलौ विज्ञानधामावुभौ
शोभाढ्यौ वरधन्विनौ श्रुतिनुतौ गोविप्रवृन्दप्रियौ।
मायामानुषरूपिणौ रघुवरौ सद्धर्मवर्मौ हितौ
सीतान्वेषणतत्परौ पथिगतौ भक्तिप्रदौ तौ हि नः ॥1॥

भावार्थ:-कुन्दपुष्प और नीलकमल के समान सुंदर गौर एवं श्यामवर्ण, अत्यंत बलवान्, विज्ञान के धाम, शोभा संपन्न, श्रेष्ठ धनुर्धर, वेदों के द्वारा वन्दित, गौ एवं ब्राह्मणों के समूह के प्रिय (अथवा प्रेमी), माया से मनुष्य रूप धारण किए हुए, श्रेष्ठ धर्म के लिए कवचस्वरूप, सबके हितकारी, श्री सीताजी की खोज में लगे हुए, पथिक रूप रघुकुल के श्रेष्ठ श्री रामजी और श्री लक्ष्मणजी दोनों भाई निश्चय ही हमें भक्तिप्रद हों ॥1॥

* ब्रह्माम्भोधिसमुद्भवं कलिमलप्रध्वंसनं चाव्ययं

श्रीमच्छम्भुमुखेन्दुसुन्दरवरे संशोभितं सर्वदा।

संसारामयभेषजं सुखकरं श्रीजानकीजीवनं

धन्यास्ते कृतिनः पिबन्ति सततं श्रीरामनामामृतम्॥2॥

भावार्थ:-वे सुकृती (पुण्यात्मा पुरुष) धन्य हैं जो वेद रूपी समुद्र (के मथने) से उत्पन्न हुए कलियुग के मल को सर्वथा नष्ट कर देने वाले, अविनाशी, भगवान श्री शंभु के सुंदर एवं श्रेष्ठ मुख रूपी चंद्रमा में सदा शोभायमान, जन्म-मरण रूपी रोग के औषध, सबको सुख देने वाले और श्री जानकीजी के जीवनस्वरूप श्री राम नाम रूपी अमृत का निरंतर पान करते रहते हैं॥2॥

सोरठा :

मुक्ति जन्म महि जानि ग्यान खान अघ हानि कर।

जहँ बस संभु भवानि सो कासी सेइअ कस न ॥

भावार्थ:-जहाँ श्री शिव-पार्वती बसते हैं, उस काशी को मुक्ति की जन्मभूमि, ज्ञान की खान और पापों का नाश करने वाली जानकर उसका सेवन क्यों न किया जाए?

* जरत सकल सुर बृंद बिषम गरल जेहिं पान किय।

तेहि न भजसि मन मंद को कृपाल संकर सरिस॥

भावार्थ:-जिस भीषण हलाहल विष से सब देवतागण जल रहे थे उसको जिन्होंने स्वयं पान कर लिया, रे मन्द मन! तू उन शंकरजी को क्यों नहीं भजता? उनके समान कृपालु (और) कौन है?

श्री रामजी से हनुमानजी का मिलना और श्री राम-सुग्रीव की मित्रता

चौपाई :

* आगें चले बहुरि रघुराया। रिष्यमूक पर्बत निअराया॥

तहँ रह सचिव सहित सुग्रीवा। आवत देखि अतुल बल सींवा॥1॥

भावार्थ:-श्री रघुनाथजी फिर आगे चले। ऋष्यमूक पर्वत निकट आ गया। वहाँ (ऋष्यमूक पर्वत पर) मंत्रियों सहित सुग्रीव रहते थे। अतुलनीय बल की सीमा श्री रामचंद्रजी और लक्ष्मणजी को आते देखकर-॥1॥

* अति सभीत कह सुनु हनुमाना। पुरुष जुगल बल रूप निधाना॥

धरि बटु रूप देखु तैं जाई। कहेसु जानि जियँ सयन बुझाई॥2॥

भावार्थ:-सुग्रीव अत्यंत भयभीत होकर बोले- हे हनुमान्! सुनो, ये दोनों पुरुष बल और रूप के निधान हैं। तुम ब्रह्मचारी का रूप धारण करके

जाकर देखो। अपने हृदय में उनकी यथार्थ बात जानकर मुझे इशारे से समझाकर कह देना॥2॥

* पठए बालि होहिं मन मैला। भागौं तुरत तजौं यह सैला॥

बिप्र रूप धरि कपि तहँ गयऊ। माथ नाइ पूछत अस भयऊ॥3॥

भावार्थ:-यदि वे मन के मलिन बालि के भेजे हुए हों तो मैं तुरंत ही इस पर्वत को छोड़कर भाग जाऊँ (यह सुनकर) हनुमान्‌जी ब्राह्मण का रूप धरकर वहाँ गए और मस्तक नवाकर इस प्रकार पूछने लगे-॥3॥

* को तुम्ह स्यामल गौर सरीरा। छत्री रूप फिरहु बन बीरा ॥

कठिन भूमि कोमल पद गामी। कवन हेतु बिचरहु बन स्वामी॥4॥

भावार्थ:-हे वीर! साँवले और गोरे शरीर वाले आप कौन हैं, जो क्षत्रिय के रूप में वन में फिर रहे हैं? हे स्वामी! कठोर भूमि पर कोमल चरणों से चलने वाले आप किस कारण वन में विचर रहे हैं?॥4॥

* मृदुल मनोहर सुंदर गाता। सहत दुसह बन आतप बाता ॥

की तुम्ह तीनि देव महँ कोऊ। नर नारायन की तुम्ह दोऊ॥5॥

भावार्थ:-मन को हरण करने वाले आपके सुंदर, कोमल अंग हैं और आप वन के दुःसह धूप और वायु को सह रहे हैं क्या आप ब्रह्मा, विष्णु, महेश- इन तीन देवताओं में से कोई हैं या आप दोनों नर और नारायण हैं॥5॥

दोहा :

* जग कारन तारन भव भंजन धरनी भार।

की तुम्ह अखिल भुवन पति लीन्ह मनुज अवतार॥1॥

भावार्थ:-अथवा आप जगत् के मूल कारण और संपूर्ण लोकों के स्वामी स्वयं भगवान् हैं, जिन्होंने लोगों को भवसागर से पार उतारने तथा पृथ्वी का भार नष्ट करने के लिए मनुष्य रूप में अवतार लिया है?॥1॥

चौपाई :

* कोसलेस दसरथ के जाए। हम पितु बचन मानि बन आए॥

नाम राम लछिमन दोउ भाई। संग नारि सुकुमारि सुहाई॥1॥

भावार्थ:-(श्री रामचंद्रजी ने कहा-) हम कोसलराज दशरथजी के पुत्र हैं और पिता का वचन मानकर वन आए हैं। हमारे राम-लक्ष्मण नाम हैं, हम दोनों भाई हैं। हमारे साथ सुंदर सुकुमारी स्त्री थी॥1॥

* इहाँ हरी निसिचर बैदेही। बिप्र फिरहिं हम खोजत तेही॥

आपन चरित कहा हम गाई। कहहु बिप्र निज कथा बुझाई॥2॥

भावार्थ:-यहाँ (वन में) राक्षस ने (मेरी पत्नी) जानकी को हर लिया। हे ब्राह्मण! हम उसे ही खोजते फिरते हैं। हमने तो अपना चरित्र कह सुनाया। अब हे ब्राह्मण! अपनी कथा समझाकर कहिए ॥2॥

* प्रभु पहिचानि परेउ गहि चरना। सो सुख उमा जाइ नहिं बरना॥

पुलकित तन मुख आव न बचना। देखत रुचिर बेष कै रचना॥3॥

भावार्थ:-प्रभु को पहचानकर हनुमान्‌जी उनके चरण पकड़कर पृथ्वी पर गिर पड़े (उन्होंने साष्टांग दंडवत्‌ प्रणाम किया)। (शिवजी कहते हैं-) हे पार्वती! वह सुख वर्णन नहीं किया जा सकता। शरीर पुलकित है, मुख से वचन नहीं निकलता। वे प्रभु के सुंदर वेष की रचना देख रहे हैं!॥3॥

* पुनि धीरजु धरि अस्तुति कीन्ही। हरष हृदयँ निज नाथहि चीन्ही॥

मोर न्याउ मैं पूछा साईं। तुम्ह पूछहु कस नर की नाईं॥4॥

भावार्थ:-फिर धीरज धर कर स्तुति की। अपने नाथ को पहचान लेने से हृदय में हर्ष हो रहा है। (फिर हनुमान्‌जी ने कहा-) हे स्वामी! मैंने जो पूछा वह मेरा पूछना तो न्याय था, (वर्षों के बाद आपको देखा, वह भी तपस्वी के वेष में और मेरी वानरी बुद्धि इससे मैं तो आपको पहचान न सका और अपनी परिस्थिति के अनुसार मैंने आपसे पूछा), परंतु आप मनुष्य की तरह कैसे पूछ रहे हैं?॥4॥

* तव माया बस फिरउँ भुलाना। ताते मैं नहिं प्रभु पहिचाना॥5॥

भावार्थ:-मैं तो आपकी माया के वश भूला फिरता हूँ इसी से मैंने अपने स्वामी (आप) को नहीं पहचाना ॥5॥

दोहा :

*एकु मैं मंद मोहबस कुटिल हृदय अग्यान।

पुनि प्रभु मोहि बिसारेउ दीनबंधु भगवान॥2॥

भावार्थ:-एक तो मैं यों ही मंद हूँ, दूसरे मोह के वश में हूँ, तीसरे हृदय का कुटिल और अज्ञान हूँ, फिर हे दीनबंधु भगवान्! प्रभु (आप) ने भी मुझे भुला दिया!॥2॥

चौपाई :

* जदपि नाथ बहु अवगुन मोरें। सेवक प्रभुहि परै जनि भोरें॥

नाथ जीव तव मायाँ मोहा। सो निस्तरइ तुम्हारेहिं छोहा॥1॥

भावार्थ:-एहे नाथ! यद्यपि मुझ में बहुत से अवगुण हैं, तथापि सेवक स्वामी की विस्मृति में न पड़े (आप उसे न भूल जाएँ)। हे नाथ! जीव आपकी माया से मोहित है। वह आप ही की कृपा से निस्तार पा सकता है॥1॥

* ता पर मैं रघुबीर दोहाई। जानउँ नहिं कछु भजन उपाई॥

सेवक सुत पति मातु भरोसें। रहइ असोच बनइ प्रभु पोसें॥2॥

भावार्थ:-उस पर हे रघुवीर! मैं आपकी दुहाई (शपथ) करके कहता हूँ कि मैं भजन-साधन कुछ नहीं जानता। सेवक स्वामी के और पुत्र माता के भरोसे निश्चिंत रहता है। प्रभु को सेवक का पालन-पोषण करते ही बनता है (करना ही पड़ता है)॥2॥

* अस कहि परेउ चरन अकुलाई। निज तनु प्रगटि प्रीति उर छाई॥

तब रघुपति उठाई उर लावा। निज लोचन जल सींचि जुड़ावा॥3॥

भावार्थ:-ऐसा कहकर हनुमान्‌जी अकुलाकर प्रभु के चरणों पर गिर पड़े, उन्होंने अपना असली शरीर प्रकट कर दिया। उनके हृदय में प्रेम छा गया। तब श्री रघुनाथजी ने उन्हें उठाकर हृदय से लगा लिया और अपने नेत्रों के जल से सींचकर शीतल किया॥3॥

* सुनु कपि जियँ मानसि जनि ऊना। तैं मम प्रिय लछिमन ते दूना॥

समदरसी मोहि कह सब कोऊ। सेवक प्रिय अनन्य गति सोऊ॥4॥

भावार्थ:-(फिर कहा-) हे कपि! सुनो, मन में ग्लानि मत मानना (मन छोटा न करना)। तुम मुझे लक्ष्मण से भी दूने प्रिय हो। सब कोई मुझे समदर्शी कहते हैं (मेरे लिए न कोई प्रिय है न अप्रिय) पर मुझको सेवक प्रिय है, क्योंकि वह अनन्यगति होता है (मुझे छोड़कर उसको कोई दूसरा सहारा नहीं होता)॥4॥

दोहा :

* सो अनन्य जाकें असि मति न टरइ हनुमंत।

मैं सेवक सचराचर रूप स्वामि भगवंत॥3॥

भावार्थ:-और हे हनुमान्! अनन्य वही है जिसकी ऐसी बुद्धि कभी नहीं टलती कि मैं सेवक हूँ और यह चराचर (जड़-चेतन) जगत् मेरे स्वामी भगवान् का रूप है॥3॥

चौपाई :

* देखि पवनसुत पति अनुकूला। हृदयँ हरष बीती सब सूला॥

नाथ सैल पर कपिपति रहई। सो सुग्रीव दास तव अहई॥1॥

भावार्थ:-स्वामी को अनुकूल (प्रसन्न) देखकर पवन कुमार हनुमान्जी के हृदय में हर्ष छा गया और उनके सब दुःख जाते रहे। (उन्होंने कहा-) हे नाथ! इस पर्वत पर वानरराज सुग्रीव रहते हैं, वह आपका दास है॥1॥

* तेहि सन नाथ मयत्री कीजे। दीन जानि तेहि अभय करीजे॥

सो सीता कर खोज कराइहि। जहँ तहँ मरकट कोटि पठाइहि॥2॥

भावार्थ:-हे नाथ! उससे मित्रता कीजिए और उसे दीन जानकर निर्भय कर दीजिए। वह सीताजी की खोज करवाएगा और जहाँ-तहाँ करोड़ों वानरों को भेजेगा॥2॥

* एहि बिधि सकल कथा समुझाई। लिए दुऔ जन पीठि चढ़ाई॥

जब सुग्रीवँ राम कहुँ देखा। अतिसय जन्म धन्य करि लेखा॥3॥

भावार्थ:-इस प्रकार सब बातें समझाकर हनुमान्‌जी ने (श्री राम-लक्ष्मण) दोनों जनों को पीठ पर चढ़ा लिया। जब सुग्रीव ने श्री रामचंद्रजी को देखा तो अपने जन्म को अत्यंत धन्य समझा॥3॥

* सादर मिलेउ नाइ पद माथा। भेंटेउ अनुज सहित रघुनाथा॥

कपि कर मन बिचार एहि रीती। करिहहिं बिधि मो सन ए प्रीती॥4॥

भावार्थ:-सुग्रीव चरणों में मस्तक नवाकर आदर सहित मिले। श्री रघुनाथजी भी छोटे भाई सहित उनसे गले लगकर मिले। सुग्रीव मन में इस प्रकार सोच रहे हैं कि हे विधाता! क्या ये मुझसे प्रीति करेंगे?॥4॥

सुग्रीव का दुःख सुनाना, बालि वध की प्रतिज्ञा, श्री रामजी का मित्र लक्षण वर्णन

दोहा :

* तब हनुमंत उभय दिसि की सब कथा सुनाइ।

पावक साखी देइ करि जोरी प्रीति दृढ़ाइ॥4॥

भावार्थ:-तब हनुमान्‌जी ने दोनों ओर की सब कथा सुनाकर अग्नि को साक्षी देकर परस्पर दृढ़ करके प्रीति जोड़ दी (अर्थात्‌ अग्नि की साक्षी देकर प्रतिज्ञापूर्वक उनकी मैत्री करवा दी)॥4॥

चौपाई :

* कीन्हि प्रीति कछु बीच न राखा। लछिमन राम चरित् सब भाषा॥

कह सुग्रीव नयन भरि बारी। मिलिहि नाथ मिथिलेसकुमारी॥1॥

भावार्थ:-दोनों ने (हृदय से) प्रीति की, कुछ भी अंतर नहीं रखा। तब लक्ष्मणजी ने श्री रामचंद्रजी का सारा इतिहास कहा। सुग्रीव ने नेत्रों में जल भरकर कहा- हे नाथ! मिथिलेशकुमारी जानकीजी मिल जाएँगी॥1॥

* मंत्रिन्ह सहित इहाँ एक बारा। बैठ रहेउँ मैं करत बिचारा॥

गगन पंथ देखी मैं जाता। परबस परी बहुत बिलपाता॥2॥

भावार्थ:-मैं एक बार यहाँ मंत्रियों के साथ बैठा हुआ कुछ विचार कर रहा था। तब मैंने पराए (शत्रु) के वश में पड़ी बहुत विलाप करती हुई सीताजी को आकाश मार्ग से जाते देखा था॥2॥

* राम राम हा राम पुकारी। हमहि देखि दीन्हेउ पट डारी॥

मागा राम तुरत तेहिं दीन्हा। पट उर लाइ सोच अति कीन्हा॥3॥

भावार्थ:-हमें देखकर उन्होंने 'राम! राम! हा राम!' पुकारकर वस्त्र गिरा दिया था। श्री रामजी ने उसे माँगा, तब सुग्रीव ने तुरंत ही दे दिया। वस्त्र को हृदय से लगाकर रामचंद्रजी ने बहुत ही सोच किया॥3॥

* कह सुग्रीव सुनहु रघुबीरा। तजहु सोच मन आनहु धीरा॥

सब प्रकार करिहउँ सेवकाई। जेहि बिधि मिलिहि जानकी आई॥4॥

भावार्थ:-सुग्रीव ने कहा- हे रघुवीर! सुनिए। सोच छोड़ दीजिए और मन में धीरज लाइए। मैं सब प्रकार से आपकी सेवा करूँगा, जिस उपाय से जानकीजी आकर आपको मिलें॥4॥

दोहा :

* सखा बचन सुनि हरषे कृपासिंधु बलसींव।

कारन कवन बसहु बन मोहि कहहु सुग्रीव॥5॥

भावार्थ:-कृपा के समुद्र और बल की सीमा श्री रामजी सखा सुग्रीव के वचन सुनकर हर्षित हुए। (और बोले-) हे सुग्रीव! मुझे बताओ, तुम वन में किस कारण रहते हो?॥5॥

चौपाई :

* नाथ बालि अरु मैं द्वौ भाइ। प्रीति रही कछु बरनि न जाई॥

मयसुत मायावी तेहि नाऊँ। आवा सो प्रभु हमरें गाऊँ॥1॥

भावार्थ:-(सुग्रीव ने कहा-) हे नाथ! बालि और मैं दो भाई हैं, हम दोनों में ऐसी प्रीति थी कि वर्णन नहीं की जा सकती। हे प्रभो! मय दानव का एक पुत्र था, उसका नाम मायावी था। एक बार वह हमारे गाँव में आया॥1॥

* अर्ध राति पुर द्वार पुकारा। बाली रिपु बल सहै न पारा॥

धावा बालि देखि सो भागा। मैं पुनि गयउँ बंधु सँग लागा॥2॥

भावार्थ:-उसने आधी रात को नगर के फाटक पर आकर पुकारा (ललकारा)। बालि शत्रु के बल (ललकार) को सह नहीं सका। वह दौड़ा, उसे देखकर मायावी भागा। मैं भी भाई के संग लगा चला गया॥2॥

* गिरिबर गुहाँ पैठ सो जाई। तब बालीं मोहि कहा बुझाई॥

परिखेसु मोहि एक पखवारा। नहिं आवौं तब जानेसु मारा॥3॥

भावार्थ:-वह मायावी एक पर्वत की गुफा में जा घुसा। तब बालि ने मुझे समझाकर कहा- तुम एक पखवाड़े (पंद्रह दिन) तक मेरी बाट देखना। यदि मैं उतने दिनों में न आऊँ तो जान लेना कि मैं मारा गया॥3॥

* मास दिवस तहँ रहेउँ खरारी। निसरी रुधिर धार तहँ भारी॥

बालि हतेसि मोहि मारिहि आई। सिला देइ तहँ चलेउँ पराई॥4॥

भावार्थ:-हे खरारि! मैं वहाँ महीने भर तक रहा। वहाँ (उस गुफा में से) रक्त की बड़ी भारी धारा निकली। तब (मैंने समझा कि) उसने बालि को मार डाला, अब आकर मुझे मारेगा, इसलिए मैं वहाँ (गुफा के द्वार पर) एक शिला लगाकर भाग आया॥4॥

* मंत्रिन्ह पुर देखा बिनु साईं। दीन्हेउ मोहि राज बरिआईं॥

बाली ताहि मारि गृह आवा। देखि मोहि जियँ भेद बढ़ावा॥5॥

भावार्थ:-मंत्रियों ने नगर को बिना स्वामी (राजा) का देखा, तो मुझको जबर्दस्ती राज्य दे दिया। बालि उसे मारकर घर आ गया। मुझे (राजसिंहासन पर) देखकर उसने जी में भेद बढ़ाया (बहुत ही विरोध माना)। (उसने समझा कि यह राज्य के लोभ से ही गुफा के द्वार पर शिला दे आया था, जिससे मैं बाहर न निकल सकूँ और यहाँ आकर राजा बन बैठा)॥5॥

* रिपु सम मोहि मारेसि अति भारी। हरि लीन्हसि सर्बसु अरु नारी॥

ताकें भय रघुबीर कृपाला सकल भुवन मैं फिरेउँ बिहाला॥6॥

भावार्थ:-उसने मुझे शत्रु के समान बहुत अधिक मारा और मेरा सर्वस्व तथा मेरी स्त्री को भी छीन लिया। हे कृपालु रघुवीर! मैं उसके भय से समस्त लोकों में बेहाल होकर फिरता रहा॥6॥

* इहाँ साप बस आवत नाहीं। तदपि सभीत रहउँ मन माहीं॥

सुन सेवक दुःख दीनदयाला फरकि उठीं द्वै भुजा बिसाला॥7॥

भावार्थ:-वह शाप के कारण यहाँ नहीं आता, तो भी मैं मन में भयभीत रहता हूँ। सेवक का दुःख सुनकर दीनों पर दया करने वाले श्री रघुनाथजी की दोनों विशाल भुजाएँ फड़क उठीं॥7॥

दोहा :

* सुनु सुग्रीव मारिहउँ बालिहि एकहिं बान।

ब्रह्म रुद्र सरनागत गएँ न उबरिहिं प्रान॥6॥

भावार्थ:-(उन्होंने कहा-) हे सुग्रीव! सुनो, मैं एक ही बाण से बालि को मार डालूँगा। ब्रह्मा और रुद्र की शरण में जाने पर भी उसके प्राण न बचेंगे॥6॥

चौपाई :

* जे न मित्र दुख होहिं दुखारी। तिन्हहि बिलोकत पातक भारी॥

निज दुख गिरि सम रज करि जाना। मित्रक दुख रज मेरु समाना॥1॥

भावार्थ:-जो लोग मित्र के दुःख से दुःखी नहीं होते, उन्हें देखने से ही बड़ा पाप लगता है। अपने पर्वत के समान दुःख को धूल के समान और मित्र के धूल के समान दुःख को सुमेरु (बड़े भारी पर्वत) के समान जाने॥1॥

* जिन्ह कें असि मति सहज न आई। ते सठ कत हठि करत मिताई॥

कुपथ निवारि सुपंथ चलावा। गुन प्रगटै अवगुनन्हि दुरावा॥2॥

भावार्थ:-जिन्हें स्वभाव से ही ऐसी बुद्धि प्राप्त नहीं है, वे मूर्ख हठ करके क्यों किसी से मित्रता करते हैं? मित्र का धर्म है कि वह मित्र को बुरे मार्ग से रोककर अच्छे मार्ग पर चलावे। उसके गुण प्रकट करे और अवगुणों को छिपावे॥2॥

* देत लेत मन संक न धरई। बल अनुमान सदा हित करई॥

बिपति काल कर सतगुन नेहा। श्रुति कह संत मित्र गुन एहा॥3॥

भावार्थ:-देने-लेने में मन में शंका न रखे। अपने बल के अनुसार सदा हित ही करता रहे। विपत्ति के समय तो सदा सौगुना स्नेह करे। वेद कहते हैं कि संत (श्रेष्ठ) मित्र के गुण (लक्षण) ये हैं॥3॥

* आगें कह मृदु बचन बनाई। पाछें अनहित मन कुटिलाई॥

जाकर चित अहि गति सम भाई। अस कुमित्र परिहरेहिं भलाई॥4॥

भावार्थ:-जो सामने तो बना-बनाकर कोमल वचन कहता है और पीठ-पीछे बुराई करता है तथा मन में कुटिलता रखता है- हे भाई! (इस तरह) जिसका मन साँप की चाल के समान टेढ़ा है, ऐसे कुमित्र को तो त्यागने में ही भलाई है॥4॥

* सेवक सठ नृप कृपन कुनारी। कपटी मित्र सूल सम चारी॥

सखा सोच त्यागहु बल मोरें। सब बिधि घटब काज मैं तोरें॥5॥

भावार्थ:-मूर्ख सेवक, कंजूस राजा, कुलटा स्त्री और कपटी मित्र- ये चारों शूल के समान पीड़ा देने वाले हैं। हे सखा! मेरे बल पर अब तुम चिंता छोड़ दो। मैं सब प्रकार से तुम्हारे काम आऊँगा (तुम्हारी सहायता करूँगा)॥5॥

सुग्रीव का वैराग्य

* कह सुग्रीव सुनहु रघुबीरा। बालि महाबल अति रनधीरा॥

दुंदुभि अस्थि ताल देखराए। बिनु प्रयास रघुनाथ ढहाए॥6॥

भावार्थ:-सुग्रीव ने कहा- हे रघुवीर! सुनिए, बालि महान्‌ बलवान्‌ और अत्यंत रणधीर है। फिर सुग्रीव ने श्री रामजी को दुंदुभि राक्षस की हड्डियाँ व ताल के वृक्ष दिखलाए। श्री रघुनाथजी ने उन्हें बिना ही परिश्रम के (आसानी से) ढहा दिया।

* देखि अमित बल बाढ़ी प्रीती। बालि बधब इन्ह भइ परतीती॥

बार-बार नावइ पद सीसा। प्रभुहि जानि मन हरष कपीसा॥7॥

भावार्थ:-श्री रामजी का अपरिमित बल देखकर सुग्रीव की प्रीति बढ़ गई और उन्हें विश्वास हो गया कि ये बालि का वध अवश्य करेंगे। वे बार-बार चरणों में सिर नवाने लगे। प्रभु को पहचानकर सुग्रीव मन में हर्षित हो रहे थे॥7॥

* उपजा ग्यान बचन तब बोला। नाथ कृपाँ मन भयउ अलोला॥

सुख संपति परिवार बड़ाई। सब परिहरि करिहउँ सेवकाई॥8॥

भावार्थ:-जब ज्ञान उत्पन्न हुआ तब वे ये वचन बोले कि हे नाथ! आपकी कृपा से अब मेरा मन स्थिर हो गया। सुख, संपत्ति, परिवार और बड़ाई (बड़प्पन) सबको त्यागकर मैं आपकी सेवा ही करूँगा॥8॥

* ए सब राम भगति के बाधक। कहहिं संत तव पद अवराधक॥

सत्रु मित्र सुख, दुख जग माहीं। मायाकृत परमारथ नाहीं॥9॥

भावार्थ:-क्योंकि आपके चरणों की आराधना करने वाले संत कहते हैं कि ये सब (सुख-संपत्ति आदि) राम भक्ति के विरोधी हैं। जगत् में जितने भी शत्रु-मित्र और सुख-दुःख (आदि द्वंद्व) हैं, सब के सब मायारचित हैं, परमार्थतः (वास्तव में) नहीं हैं॥9॥

* बालि परम हित जासु प्रसादा। मिलेहु राम तुम्ह समन बिषादा॥

सपनें जेहि सन होइ लराई। जागें समुझत मन सकुचाई॥10॥

भावार्थ:-हे श्री रामजी! बालि तो मेरा परम हितकारी है, जिसकी कृपा से शोक का नाश करने वाले आप मुझे मिले और जिसके साथ अब स्वप्न में भी लड़ाई हो तो जागने पर उसे समझकर मन में संकोच होगा (कि स्वप्न में भी मैं उससे क्यों लड़ा)॥10॥

* अब प्रभु कृपा करहु एहि भाँति। सब तजि भजनु करौं दिन राती॥

सुनि बिराग संजुत कपि बानी। बोले बिहँसि रामु धनुपानी॥11॥

भावार्थ:-हे प्रभो अब तो इस प्रकार कृपा कीजिए कि सब छोड़कर दिन-रात मैं आपका भजन ही करूँ। सुग्रीव की वैराग्ययुक्त वाणी सुनकर (उसके क्षणिक वैराग्य को देखकर) हाथ में धनुष धारण करने वाले श्री रामजी मुस्कुराकर बोले- ॥11॥

* जो कछु कहेहु सत्य सब सोई। सखा बचन मम मृषा न होई॥

नट मरकट इव सबहि नचावत। रामु खगेस बेद अस गावत॥12॥

भावार्थ:-तुमने जो कुछ कहा है, वह सभी सत्य है, परंतु हे सखा! मेरा वचन मिथ्या नहीं होता (अर्थात्‌ बालि मारा जाएगा और तुम्हें राज्य मिलेगा)। (काकभुशुण्डिजी कहते हैं कि-) हे पक्षियों के राजा गरुड़! नट (मदारी) के बंदर की तरह श्री रामजी सबको नचाते हैं, वेद ऐसा कहते हैं॥12॥

* लै सुग्रीव संग रघुनाथा। चले चाप सायक गहि हाथा॥

तब रघुपति सुग्रीव पठावा। गर्जेसि जाइ निकट बल पावा॥13॥

भावार्थ:-तदनन्तर सुग्रीव को साथ लेकर और हाथों में धनुष-बाण धारण करके श्री रघुनाथजी चले। तब श्री रघुनाथजी ने सुग्रीव को बालि के पास भेजा। वह श्री रामजी का बल पाकर बालि के निकट जाकर गरजा॥13॥

* सुनत बालि क्रोधातुर धावा। गहि कर चरन नारि समुझावा॥

सुनु पति जिन्हहि मिलेउ सुग्रीवा। ते द्वौ बंधु तेज बल सींवा॥14॥

भावार्थ:-बालि सुनते ही क्रोध में भरकर वेग से दौड़ा। उसकी स्त्री तारा ने चरण पकड़कर उसे समझाया कि हे नाथ! सुनिए, सुग्रीव जिनसे मिले हैं वे दोनों भाई तेज और बल की सीमा हैं॥14॥

* कोसलेस सुत लछिमन रामा। कालहु जीति सकहिं संग्रामा॥15॥

भावार्थ:-वे कोसलाधीश दशरथजी के पुत्र राम और लक्ष्मण संग्राम में काल को भी जीत सकते हैं॥15॥

बालि-सुग्रीव युद्ध, बालि उद्धार, तारा का विलाप

दोहा :

* कह बाली सुनु भीरु प्रिय समदरसी रघुनाथ।

जौं कदाचि मोहि मारहिं तौ पुनि होउँ सनाथ॥7॥

भावार्थ:-बालि ने कहा- हे भीरु! (डरपोक) प्रिये! सुनो, श्री रघुनाथजी समदर्शी हैं। जो कदाचित्‌ वे मुझे मारेंगे ही तो मैं सनाथ हो जाऊँगा (परमपद पा जाऊँगा)॥7॥

चौपाई :

* अस कहि चला महा अभिमानी। तृन समान सुग्रीवहि जानी॥

भिरे उभौ बाली अति तर्जा। मुठिका मारि महाधुनि गर्जा॥1॥

भावार्थ:-ऐसा कहकर वह महान् अभिमानी बालि सुग्रीव को तिनके के समान जानकर चला। दोनों भिड़ गए। बालि ने सुग्रीव को बहुत धमकाया और घूँसा मारकर बड़े जोर से गरजा॥1॥

* तब सुग्रीव बिकल होइ भागा। मुष्टि प्रहार बज्र सम लागा॥

मैं जो कहा रघुबीर कृपाला। बंधु न होइ मोर यह काला॥2॥

भावार्थ:-तब सुग्रीव व्याकुल होकर भागा। घूँसे की चोट उसे वज्र के समान लगी (सुग्रीव ने आकर कहा-) हे कृपालु रघुवीर! मैंने आपसे पहले ही कहा था कि बालि मेरा भाई नहीं है, काल है॥2॥

* एक रूप तुम्ह भ्राता दोऊ तेहि भ्रम तें नहिं मारेउँ सोऊ॥

कर परसा सुग्रीव सरीरा। तनु भा कुलिस गई सब पीरा॥3॥

भावार्थ:-(श्री रामजी ने कहा-) तुम दोनों भाइयों का एक सा ही रूप है। इसी भ्रम से मैंने उसको नहीं मारा। फिर श्री रामजी ने सुग्रीव के शरीर को हाथ से स्पर्श किया, जिससे उसका शरीर वज्र के समान हो गया और सारी पीड़ा जाती रही॥3॥

* मेली कंठ सुमन कै माला। पठवा पुनि बल देइ बिसाला॥

पुनि नाना बिधि भई लराई। बिटप ओट देखहिं रघुराई॥4॥

गीताप्रेस गोरखपुर

भावार्थ:-तब श्री रामजी ने सुग्रीव के गले में फूलों की माला डाल दी और फिर उसे बड़ा भारी बल देकर भेजा। दोनों में पुनः अनेक प्रकार से युद्ध हुआ। श्री रघुनाथजी वृक्ष की आड़ से देख रहे थे॥4॥

दोहा :

* बहु छल बल सुग्रीव कर हियँ हारा भय मानि।

मारा बालि राम तब हृदय माझ सर तानि॥8॥

भावार्थ:-सुग्रीव ने बहुत से छल-बल किए, किंतु (अंत में) भय मानकर हृदय से हार गया। तब श्री रामजी ने तानकर बालि के हृदय में बाण मारा॥8॥

चौपाई :

* परा बिकल महि सर के लागें। पुनि उठि बैठ देखि प्रभु आगें॥

स्याम गात सिर जटा बनाएँ। अरुन नयन सर चाप चढ़ाएँ॥1॥

भावार्थ:-बाण के लगते ही बालि व्याकुल होकर पृथ्वी पर गिर पड़ा, किंतु प्रभु श्री रामचंद्रजी को आगे देखकर वह फिर उठ बैठा। भगवान्‌ का श्याम शरीर है, सिर पर जटा बनाए हैं, लाल नेत्र हैं, बाण लिए हैं और धनुष चढ़ाए हैं॥1॥

* पुनि पुनि चितइ चरन चित दीन्हा। सुफल जन्म माना प्रभु चीन्हा॥

हृदयँ प्रीति मुख बचन कठोरा। बोला चितइ राम की ओरा॥2॥

भावार्थ:-बालि ने बार-बार भगवान् की ओर देखकर चित्त को उनके चरणों में लगा दिया। प्रभु को पहचानकर उसने अपना जन्म सफल माना। उसके हृदय में प्रीति थी, पर मुख में कठोर वचन थे। वह श्री रामजी की ओर देखकर बोला- ॥2॥

* धर्म हेतु अवतरेहु गोसाईं। मारेहु मोहि ब्याध की नाईं॥

मैं बैरी सुग्रीव पिआरा। अवगुन कवन नाथ मोहि मारा॥3॥

भावार्थ:-हे गोसाईं। आपने धर्म की रक्षा के लिए अवतार लिया है और मुझे व्याध की तरह (छिपकर) मारा? मैं बैरी और सुग्रीव प्यारा? हे नाथ! किस दोष से आपने मुझे मारा?॥3॥

* अनुज बधू भगिनी सुत नारी। सुनु सठ कन्या सम ए चारी॥

इन्हहि कुदृष्टि बिलोकइ जोई। ताहि बधें कछु पाप न होई॥4॥

भावार्थ:-(श्री रामजी ने कहा-) हे मूर्ख! सुन, छोटे भाई की स्त्री, बहिन, पुत्र की स्त्री और कन्या- ये चारों समान हैं। इनको जो कोई बुरी दृष्टि से देखता है, उसे मारने में कुछ भी पाप नहीं होता॥4॥

* मूढ़ तोहि अतिसय अभिमाना। नारि सिखावन करसि न काना॥

मम भुज बल आश्रित तेहि जानी। मारा चहसि अधम अभिमानी॥5॥

भावार्थ:-हे मूढ़! तुझे अत्यंत अभिमान है। तूने अपनी स्त्री की सीख पर भी कान (ध्यान) नहीं दिया। सुग्रीव को मेरी भुजाओं के बल का आश्रित जानकर भी अरे अधम अभिमानी! तूने उसको मारना चाहा॥5॥

दोहा :

* सुनहु राम स्वामी सन चल न चातुरी मोरि।

प्रभु अजहूँ मैं पापी अंतकाल गति तोरि॥9॥

भावार्थ:-(बालि ने कहा-) हे श्री रामजी! सुनिए, स्वामी (आप) से मेरी चतुराई नहीं चल सकती। हे प्रभो! अंतकाल में आपकी गति (शरण) पाकर मैं अब भी पापी ही रहा?॥9॥

चौपाई :

* सुनत राम अति कोमल बानी। बालि सीस परसेउ निज पानी॥

अचल करौं तनु राखहु प्राना। बालि कहा सुनु कृपानिधाना॥1॥

भावार्थ:-बालि की अत्यंत कोमल वाणी सुनकर श्री रामजी ने उसके सिर को अपने हाथ से स्पर्श किया (और कहा-) मैं तुम्हारे शरीर को अचल कर दूँ, तुम प्राणों को रखो। बालि ने कहा- हे कृपानिधान! सुनिए॥1॥

* जन्म जन्म मुनि जतनु कराहीं। अंत राम कहि आवत नाहीं॥

जासु नाम बल संकर कासी। देत सबहि सम गति अबिनासी॥2॥

भावार्थ:-मुनिगण जन्म-जन्म में (प्रत्येक जन्म में) (अनेकों प्रकार का) साधन करते रहते हैं। फिर भी अंतकाल में उन्हें 'राम' नहीं कह आता (उनके मुख से राम नाम नहीं निकलता)। जिनके नाम के बल से शंकरजी काशी में सबको समान रूप से अविनाशिनी गति (मुक्ति) देते हैं॥2॥

* मम लोचन गोचर सोई आवा। बहुरि कि प्रभु अस बनिहि बनावा॥3॥

भावार्थ:-वह श्री रामजी स्वयं मेरे नेत्रों के सामने आ गए हैं। हे प्रभो! ऐसा संयोग क्या फिर कभी बन पड़ेगा॥3॥

छंद :

* सो नयन गोचर जासु गुन नित नेति कहि श्रुति गावहीं।

जिति पवन मन गो निरस करि मुनि ध्यान कबहुँक पावहीं॥

मोहि जानि अति अभिमान बस प्रभु कहेउ राखु सरीरही।

अस कवन सठ हठि काटि सुरतरु बारि करिहि बबूरही॥1॥

भावार्थ:-श्रुतियाँ 'नेति-नेति' कहकर निरंतर जिनका गुणगान करती रहती हैं तथा प्राण और मन को जीतकर एवं इंद्रियों को (विषयों के रस से सर्वथा) नीरस बनाकर मुनिगण ध्यान में जिनकी कभी क्वचित्‌ ही झलक पाते हैं, वे ही प्रभु (आप) साक्षात्‌ मेरे सामने प्रकट हैं। आपने मुझे अत्यंत अभिमानवश जानकर यह कहा कि तुम शरीर रख लो, परंतु ऐसा मूर्ख कौन होगा जो हठपूर्वक कल्पवृक्ष को काटकर उससे बबूर के

बाड़ लगाएगा (अर्थात् पूर्णकाम बना देने वाले आपको छोड़कर आपसे इस नश्वर शरीर की रक्षा चाहेगा?)॥1॥

* अब नाथ करि करुना बिलोकहु देहु जो बर मागऊँ।

जेहि जोनि जन्मौं कर्म बस तहँ राम पद अनुरागऊँ॥

यह तनय मम सम बिनय बल कल्यानप्रद प्रभु लीजिये।

गहि बाँह सुर नर नाह आपन दास अंगद कीजिये॥2॥

भावार्थ:-हे नाथ! अब मुझ पर दयादृष्टि कीजिए और मैं जो वर माँगता हूँ उसे दीजिए। मैं कर्मवश जिस योनि में जन्म लूँ, वहीं श्री रामजी (आप) के चरणों में प्रेम करूँ! हे कल्याणप्रद प्रभो! यह मेरा पुत्र अंगद विनय और बल में मेरे ही समान है, इसे स्वीकार कीजिए और हे देवता और मनुष्यों के नाथ! बाँह पकड़कर इसे अपना दास बनाइए ॥2॥

दोहा :

* राम चरन दृढ़ प्रीति करि बालि कीन्ह तनु त्याग।

सुमन माल जिमि कंठ ते गिरत न जानइ नाग॥10॥

भावार्थ:-श्री रामजी के चरणों में दृढ़ प्रीति करके बालि ने शरीर को वैसे ही (आसानी से) त्याग दिया जैसे हाथी अपने गले से फूलों की माला का गिरना न जाने॥10॥

चौपाई :

गीता प्रेस गोरखपुर

* राम बालि निज धाम पठावा। नगर लोग सब ब्याकुल धावा॥

नाना बिधि बिलाप कर तारा। छूटे केस न देह सँभारा॥1॥

भावार्थ:-श्री रामचंद्रजी ने बालि को अपने परम धाम भेज दिया। नगर के सब लोग व्याकुल होकर दौड़े। बालि की स्त्री तारा अनेकों प्रकार से विलाप करने लगी। उसके बाल बिखरे हुए हैं और देह की सँभाल नहीं है॥1॥

तारा को श्री रामजी द्वारा उपदेश और सुग्रीव का राज्याभिषेक तथा अंगद को युवराज पद

* तारा बिकल देखि रघुराया। दीन्ह ग्यान हरि लीन्ही माया॥

छिति जल पावक गगन समीरा। पंच रचित अति अधम सरीरा॥2॥

भावार्थ:-तारा को व्याकुल देखकर श्री रघुनाथजी ने उसे ज्ञान दिया और उसकी माया (अज्ञान) हर ली। (उन्होंने कहा-) पृथ्वी, जल, अग्नि, आकाश और वायु- इन पाँच तत्वों से यह अत्यंत अधम शरीर रचा गया है॥2॥

* प्रगट सो तनु तव आगे सोवा। जीव नित्य केहि लगि तुम्ह रोवा॥

उपजा ग्यान चरन तब लागी। लीन्हेसि परम भगति बर मागी॥3॥

भावार्थ:-वह शरीर तो प्रत्यक्ष तुम्हारे सामने सोया हुआ है, और जीव नित्य है। फिर तुम किसके लिए रो रही हो? जब ज्ञान उत्पन्न हो गया, तब वह भगवान् के चरणों लगी और उसने परम भक्ति का वर माँग लिया॥3॥

* उमा दारु जोषित की नाईं। सबहि नचावत रामु गोसाईं॥

तब सुग्रीवहि आयसु दीन्हा। मृतक कर्म बिधिवत सब कीन्हा॥4॥

भावार्थ:-(शिवजी कहते हैं-) हे उमा! स्वामी श्री रामजी सबको कठपुतली की तरह नचाते हैं। तदनन्तर श्री रामजी ने सुग्रीव को आज्ञा दी और सुग्रीव ने विधिपूर्वक बालि का सब मृतक कर्म किया॥4॥

* राम कहा अनुजहि समुझाई। राज देहु सुग्रीवहि जाई॥

रघुपति चरन नाइ करि माथा। चले सकल प्रेरित रघुनाथा॥5॥

भावार्थ:-तब श्री रामचंद्रजी ने छोटे भाई लक्ष्मण को समझाकर कहा कि तुम जाकर सुग्रीव को राज्य दे दो। श्री रघुनाथजी की प्रेरणा (आज्ञा) से सब लोग श्री रघुनाथजी के चरणों में मस्तक नवाकर चले॥5॥

दोहा :

* लछिमन तुरत बोलाए पुरजन बिप्र समाज।

राजु दीन्ह सुग्रीव कहँ अंगद कहँ जुबराज॥11॥

भावार्थ:-लक्ष्मणजी ने तुरंत ही सब नगरवासियों को और ब्राह्मणों के समाज को बुला लिया और (उनके सामने) सुग्रीव को राज्य और अंगद को युवराज पद दिया॥11॥

चौपाई :

* उमा राम सम हत जग माहीं। गुरु पितु मातु बंधु प्रभु नाहीं॥

सुर नर मुनि सब कै यह रीती। स्वारथ लागि करहिं सब प्रीति॥1॥

भावार्थ:-हे पार्वती! जगत में श्री रामजी के समान हित करने वाला गुरु, पिता, माता, बंधु और स्वामी कोई नहीं है। देवता, मनुष्य और मुनि सबकी यह रीति है कि स्वार्थ के लिए ही सब प्रीति करते हैं॥1॥

* बालि त्रास ब्याकुल दिन राती। तन बहु ब्रन चिंताँ जर छाती॥

सोइ सुग्रीव कीन्ह कपि राऊ। अति कृपाल रघुबीर सुभाऊ॥2॥

भावार्थ:-जो सुग्रीव दिन-रात बालि के भय से व्याकुल रहता था, जिसके शरीर में बहुत से घाव हो गए थे और जिसकी छाती चिंता के मारे जला करती थी, उसी सुग्रीव को उन्होंने वानरों का राजा बना दिया। श्री रामचंद्रजी का स्वभाव अत्यंत ही कृपालु है॥2॥

* जानतहूँ अस प्रभु परिहरहीं। काहे न बिपति जाल नर परहीं॥

पुनि सुग्रीवहि लीन्ह बोलाई। बहु प्रकार नृपनीति सिखाई॥3॥

भावार्थ:-जो लोग जानते हुए भी ऐसे प्रभु को त्याग देते हैं, वे क्यों न विपत्ति के जाल में फँसें? फिर श्री रामजी ने सुग्रीव को बुला लिया और बहुत प्रकार से उन्हें राजनीति की शिक्षा दी॥3॥

* कह प्रभु सुनु सुग्रीव हरीसा। पुर न जाउँ दस चारि बरीसा॥

गत ग्रीषम बरषा रितु आई। रहिहउँ निकट सैल पर छाई॥4॥

भावार्थ:-फिर प्रभु ने कहा- हे वानरपति सुग्रीव! सुनो, मैं चौदह वर्ष तक गाँव (बस्ती) में नहीं जाऊँगा। ग्रीष्मऋतु बीतकर वर्षाऋतु आ गई। अतः मैं यहाँ पास ही पर्वत पर टिक रहूँगा॥4॥

* अंगद सहित करहु तुम्ह राजू। संतत हृदयँ धरेहु मम काजू॥

जब सुग्रीव भवन फिरि आए। रामु प्रबरषन गिरि पर छाए॥5॥

भावार्थ:-तुम अंगद सहित राज्य करो। मेरे काम का हृदय में सदा ध्यान रखना। तदनन्तर जब सुग्रीवजी घर लौट आए, तब श्री रामजी प्रवर्षण पर्वत पर जा टिके॥5॥

वर्षा ऋतु वर्णन

दोहा :

* प्रथमहिं देवन्ह गिरि गुहा राखेउ रुचिर बनाइ।

राम कृपानिधि कछु दिन बास करहिंगे आइ॥12॥

भावार्थ:-देवताओं ने पहले से ही उस पर्वत की एक गुफा को सुंदर बना (सजा) रखा था। उन्होंने सोच रखा था कि कृपा की खान श्री रामजी कुछ दिन यहाँ आकर निवास करेंगे॥12॥

चौपाई :

* सुंदर बन कुसुमित अति सोभा। गुंजत मधुप निकर मधु लोभा॥

कंद मूल फल पत्र सुहाए। भए बहुत जब ते प्रभु आए॥1॥

भावार्थ:-सुंदर वन फूला हुआ अत्यंत सुशोभित है। मधु के लोभ से भौंरों के समूह गुंजार कर रहे हैं। जब से प्रभु आए, तब से वन में सुंदर कन्द, मूल, फल और पत्तों की बहुतायत हो गई॥1॥

* देखि मनोहर सैल अनूपा। रहे तहँ अनुज सहित सुरभूपा॥

मधुकर खग मृग तनु धरि देवा। करहिं सिद्ध मुनि प्रभु कै सेवा॥2॥

भावार्थ:-मनोहर और अनुपम पर्वत को देखकर देवताओं के सम्राट् श्री रामजी छोटे भाई सहित वहाँ रह गए। देवता, सिद्ध और मुनि भौंरों, पक्षियों और पशुओं के शरीर धारण करके प्रभु की सेवा करने लगे॥2॥

* मंगलरूप भयउ बन तब ते। कीन्ह निवास रमापति जब ते॥

फटिक सिला अति सुभ्र सुहाई। सुख आसीन तहाँ द्वौ भाई॥3॥

भावार्थ:-जब से रमापति श्री रामजी ने वहाँ निवास किया तब से वन मंगलस्वरूप हो गया। सुंदर स्फटिक मणि की एक अत्यंत उज्ज्वल शिला है, उस पर दोनों भाई सुखपूर्वक विराजमान हैं॥3॥

* कहत अनुज सन कथा अनेका। भगति बिरत नृपनीति बिबेका॥

बरषा काल मेघ नभ छाए। गरजत लागत परम सुहाए॥4॥

भावार्थ:-श्री राम छोटे भाई लक्ष्मणजी से भक्ति, वैराग्य, राजनीति और ज्ञान की अनेकों कथाएँ कहते हैं। वर्षाकाल में आकाश में छाए हुए बादल गरजते हुए बहुत ही सुहावने लगते हैं॥4॥

दोहा :

* लछिमन देखु मोर गन नाचत बारिद पेखि।

गृही बिरति रत हरष जस बिष्नुभगत कहुँ देखि॥13॥

भावार्थ:-(श्री रामजी कहने लगे-) हे लक्ष्मण! देखो, मोरों के झुंड बादलों को देखकर नाच रहे हैं जैसे वैराग्य में अनुरक्त गृहस्थ किसी विष्णुभक्त को देखकर हर्षित होते हैं॥13॥

चौपाई :

* घन घमंड नभ गरजत घोरा। प्रिया हीन डरपत मन मोरा॥

दामिनि दमक रह नघन माहीं। खल कै प्रीति जथा थिर नाहीं॥1॥

भावार्थ:-आकाश में बादल घुमड़-घुमड़कर घोर गर्जना कर रहे हैं, प्रिया (सीताजी) के बिना मेरा मन डर रहा है। बिजली की चमक बादलों में ठहरती नहीं, जैसे दुष्ट की प्रीति स्थिर नहीं रहती॥1॥

* बरषहिं जलद भूमि निअराएँ। जथा नवहिं बुध बिद्या पाएँ।

बूँद अघात सहहिं गिरि कैसे। खल के बचन संत सह जैसें॥2॥

भावार्थ:-बादल पृथ्वी के समीप आकर (नीचे उतरकर) बरस रहे हैं, जैसे विद्या पाकर विद्वान् नम्र हो जाते हैं। बूँदों की चोट पर्वत कैसे सहते हैं, जैसे दुष्टों के वचन संत सहते हैं॥2॥

* छुद्र नदीं भरि चलीं तोराई। जस थोरेहुँ धन खल इतराई॥

भूमि परत भा ढाबर पानी। जनु जीवहि माया लपटानी॥3॥

भावार्थ:-छोटी नदियाँ भरकर (किनारों को) तुड़ाती हुई चलीं, जैसे थोड़े धन से भी दुष्ट इतरा जाते हैं। (मर्यादा का त्याग कर देते हैं)। पृथ्वी पर पड़ते ही पानी गंदला हो गया है, जैसे शुद्ध जीव के माया लिपट गई हो॥3॥

* समिटि समिटि जल भरहिं तलावा। जिमि सदगुन सज्जन पहिं आवा॥

सरिता जल जलनिधि महुँ जोई। होइ अचल जिमि जिव हरि पाई॥4॥

भावार्थ:-जल एकत्र हो-होकर तालाबों में भर रहा है, जैसे सद्‌गुण (एक-एककर) सज्जन के पास चले आते हैं। नदी का जल समुद्र में जाकर वैसे ही स्थिर हो जाता है, जैसे जीव श्री हरि को पाकर अचल (आवागमन से मुक्त) हो जाता है॥4॥

दोहा :

* हरित भूमि तृन संकुल समुझि परहिं नहिं पंथ।

जिमि पाखंड बाद तें गुप्त होहिं सदग्रंथ॥14॥

भावार्थ:-पृथ्वी घास से परिपूर्ण होकर हरी हो गई है, जिससे रास्ते समझ नहीं पड़ते। जैसे पाखंड मत के प्रचार से सद्ग्रंथ गुप्त (लुप्त) हो जाते हैं॥14॥

चौपाई :

* दादुर धुनि चहु दिसा सुहाई। बेद पढ़हिं जनु बटु समुदाई॥

नव पल्लव भए बिटप अनेका। साधक मन जस मिलें बिबेका॥1॥

भावार्थ:-चारों दिशाओं में मेंढकों की ध्वनि ऐसी सुहावनी लगती है, मानो विद्यार्थियों के समुदाय वेद पढ़ रहे हों। अनेकों वृक्षों में नए पत्ते आ गए हैं, जिससे वे ऐसे हरे-भरे एवं सुशोभित हो गए हैं जैसे साधक का मन विवेक (ज्ञान) प्राप्त होने पर हो जाता है॥1॥

* अर्क जवास पात बिनु भयऊ। जस सुराज खल उद्यम गयऊ॥

खोजत कतहुँ मिलइ नहिं धूरी। करइ क्रोध जिमि धरमहि दूरी॥2॥

भावार्थ:-मदार और जवासा बिना पत्ते के हो गए (उनके पत्ते झड़ गए)। जैसे श्रेष्ठ राज्य में दुष्टों का उद्यम जाता रहा (उनकी एक भी नहीं चलती)। धूल कहीं खोजने पर भी नहीं मिलती, जैसे क्रोध धर्म को दूर कर देता है। (अर्थात् क्रोध का आवेश होने पर धर्म का ज्ञान नहीं रह जाता)॥2॥

* ससि संपन्न सोह महि कैसी। उपकारी कै संपति जैसी॥

निसि तम घन खद्योत बिराजा। जनु दंभिन्ह कर मिला समाजा॥3॥

भावार्थ:-अन्न से युक्त (लहराती हुई खेती से हरी-भरी) पृथ्वी कैसी शोभित हो रही है, जैसी उपकारी पुरुष की संपत्ति। रात के घने अंधकार में जुगनू शोभा पा रहे हैं, मानो दम्भियों का समाज आ जुटा हो॥3॥

* महाबृष्टि चलि फूटि किआरीं। जिमि सुतंत्र भएँ बिगरहिं नारीं॥

कृषी निरावहिं चतुर किसाना। जिमि बुध तजहिं मोह मद माना॥4॥

भावार्थ:-भारी वर्षा से खेतों की क्यारियाँ फूट चली हैं, जैसे स्वतंत्र होने से स्त्रियाँ बिगड़ जाती हैं। चतुर किसान खेतों को निरा रहे हैं (उनमें से घास आदि को निकालकर फेंक रहे हैं।) जैसे विद्वान् लोग मोह, मद और मान का त्याग कर देते हैं॥4॥

* देखिअत चक्रबाक खग नाहीं। कलिहि पाइ जिमि धर्म पराहीं॥

ऊषर बरषइ तृन नहिं जामा। जिमि हरिजन हियँ उपज न कामा॥5॥

भावार्थ:-चक्रवाक पक्षी दिखाई नहीं दे रहे हैं, जैसे कलियुग को पाकर धर्म भाग जाते हैं। ऊसर में वर्षा होती है, पर वहाँ घास तक नहीं उगती। जैसे हरिभक्त के हृदय में काम नहीं उत्पन्न होता॥5॥

* बिबिध जंतु संकुल महि भ्राजा। प्रजा बाढ़ जिमि पाइ सुराजा॥

जहँ तहँ रहे पथिक थकि नाना। जिमि इंद्रिय गन उपजें ग्याना॥6॥

भावार्थ:-पृथ्वी अनेक तरह के जीवों से भरी हुई उसी तरह शोभायमान है, जैसे सुराज्य पाकर प्रजा की वृद्धि होती है। जहाँ-तहाँ अनेक पथिक थककर ठहरे हुए हैं, जैसे ज्ञान उत्पन्न होने पर इंद्रियाँ (शिथिल होकर विषयों की ओर जाना छोड़ देती हैं)॥6॥

दोहा :

* कबहुँ प्रबल बह मारुत जहँ तहँ मेघ बिलाहिं।

जिमि कपूत के उपजें कुल सद्धर्म नसाहिं॥15 क॥

भावार्थ:-कभी-कभी वायु बड़े जोर से चलने लगती है, जिससे बादल जहाँ-तहाँ गायब हो जाते हैं। जैसे कुपुत्र के उत्पन्न होने से कुल के उत्तम धर्म (श्रेष्ठ आचरण) नष्ट हो जाते हैं॥15 (क)॥

* कबहु दिवस महँ निबिड़ तम कबहुँक प्रगट पतंग।

बिनसइ उपजइ ग्यान जिमि पाइ कुसंग सुसंग॥15ख॥

भावार्थ:-कभी (बादलों के कारण) दिन में घोर अंधकार छा जाता है और कभी सूर्य प्रकट हो जाते हैं। जैसे कुसंग पाकर ज्ञान नष्ट हो जाता है और सुसंग पाकर उत्पन्न हो जाता है॥15 (ख)॥

शरद ऋतु वर्णन

चौपाई :

* बरषा बिगत सरद रितु आई। लछमन देखहु परम सुहाई॥

फूलें कास सकल महि छाई। जनु बरषाँ कृत प्रगट बुढ़ाई॥1॥

भावार्थ:-हे लक्ष्मण! देखो, वर्षा बीत गई और परम सुंदर शरद् ऋतु आ गई। फूले हुए कास से सारी पृथ्वी छा गई। मानो वर्षा ऋतु ने (कास रूपी सफेद बालों के रूप में) अपना बुढ़ापा प्रकट किया है॥1॥

* उदित अगस्ति पंथ जल सोषा। जिमि लोभहिं सोषइ संतोषा॥

सरिता सर निर्मल जल सोहा। संत हृदय जस गत मद मोहा॥2॥

भावार्थ:-अगस्त्य के तारे ने उदय होकर मार्ग के जल को सोख लिया, जैसे संतोष लोभ को सोख लेता है। नदियों और तालाबों का निर्मल जल ऐसी शोभा पा रहा है जैसे मद और मोह से रहित संतों का हृदय!॥2॥

* रस रस सूख सरित सर पानी। ममता त्याग करहिं जिमि ग्यानी॥

जानि सरद रितु खंजन आए। पाइ समय जिमि सुकृत सुहाए॥3॥

भावार्थ:-नदी और तालाबों का जल धीरे-धीरे सूख रहा है। जैसे ज्ञानी (विवेकी) पुरुष ममता का त्याग करते हैं। शरद ऋतु जानकर खंजन पक्षी आ गए। जैसे समय पाकर सुंदर सुकृत आ सकते हैं। (पुण्य प्रकट हो जाते हैं)॥3॥

* पंक न रेनु सोह असि धरनी। नीति निपुन नृप कै जसि करनी॥

जल संकोच बिकल भइँ मीना। अबुध कुटुंबी जिमि धनहीना॥4॥

भावार्थ:-न कीचड़ है न धूल? इससे धरती (निर्मल होकर) ऐसी शोभा दे रही है जैसे नीतिनिपुण राजा की करनी! जल के कम हो जाने से मछलियाँ व्याकुल हो रही हैं, जैसे मूर्ख (विवेक शून्य) कुटुम्बी (गृहस्थ) धन के बिना व्याकुल होता है॥4॥

* बिनु घन निर्मल सोह अकासा। हरिजन इव परिहरि सब आसा॥

कहुँ कहुँ बृष्टि सारदी थोरी। कोउ एक भाव भगति जिमि मोरी॥5॥

भावार्थ:-बिना बादलों का निर्मल आकाश ऐसा शोभित हो रहा है जैसे भगवद्भक्त सब आशाओं को छोड़कर सुशोभित होते हैं। कहीं-कहीं (विरले ही स्थानों में) शरद् ऋतु की थोड़ी-थोड़ी वर्षा हो रही है। जैसे कोई विरले ही मेरी भक्ति पाते हैं॥5॥

गीताप्रेस गोरखपुर

दोहा :

* चले हरषि तजि नगर नृप तापस बनिक भिखारि।

जिमि हरिभगति पाइ श्रम तजहिं आश्रमी चारि॥16॥

भावार्थ:-(शरद् ऋतु पाकर) राजा, तपस्वी, व्यापारी और भिखारी (क्रमशः विजय, तप, व्यापार और भिक्षा के लिए) हर्षित होकर नगर छोड़कर चले। जैसे श्री हरि की भक्ति पाकर चारों आश्रम वाले (नाना प्रकार के साधन रूपी) श्रमों को त्याग देते हैं॥16॥

चौपाई :

* सुखी मीन जे नीर अगाधा। जिमि हरि सरन न एकउ बाधा॥

फूलें कमल सोह सर कैसा। निर्गुन ब्रह्म सगुन भएँ जैसा॥1॥

भावार्थ:-जो मछलियाँ अथाह जल में हैं, वे सुखी हैं, जैसे श्री हरि के शरण में चले जाने पर एक भी बाधा नहीं रहती। कमलों के फूलने से तालाब कैसी शोभा दे रहा है, जैसे निर्गुण ब्रह्म सगुण होने पर शोभित होता है॥1॥

* गुंजत मधुकर मुखर अनूपा। सुंदर खग रव नाना रूपा॥

चक्रबाक मन दुख निसि पेखी। जिमि दुर्जन पर संपति देखी॥2॥

भावार्थ:-भौंरे अनुपम शब्द करते हुए गूँज रहे हैं तथा पक्षियों के नाना प्रकार के सुंदर शब्द हो रहे हैं। रात्रि देखकर चकवे के मन में वैसे ही दुःख हो रहा है, जैसे दूसरे की संपत्ति देखकर दुष्ट को होता है॥2॥

* चातक रटत तृषा अति ओही। जिमि सुख लहइ न संकर द्रोही॥

सरदातप निसि ससि अपहरई। संत दरस जिमि पातक टरई॥3॥

भावार्थ:-पपीहा रट लगाए है, उसको बड़ी प्यास है, जैसे श्री शंकरजी का द्रोही सुख नहीं पाता (सुख के लिए झीखता रहता है) शरद् ऋतु के ताप को रात के समय चंद्रमा हर लेता है, जैसे संतों के दर्शन से पाप दूर हो जाते हैं॥3॥

* देखि इंदु चकोर समुदाई। चितवहिं जिमि हरिजन हरि पाई॥

मसक दंस बीते हिम त्रासा। जिमि द्विज द्रोह किएँ कुल नासा॥4॥

भावार्थ:-चकोरों के समुदाय चंद्रमा को देखकर इस प्रकार टकटकी लगाए हैं जैसे भगवद्भक्त भगवान् को पाकर उनके (निर्निमेष नेत्रों से) दर्शन करते हैं। मच्छर और डाँस जाड़े के डर से इस प्रकार नष्ट हो गए जैसे ब्राह्मण के साथ वैर करने से कुल का नाश हो जाता है॥4॥

दोहा :

* भूमि जीव संकुल रहे गए सरद रितु पाइ।

सदगुर मिलें जाहिं जिमि संसय भ्रम समुदाइ॥17॥

भावार्थ:-(वर्षा ऋतु के कारण) पृथ्वी पर जो जीव भर गए थे, वे शरद् ऋतु को पाकर वैसे ही नष्ट हो गए जैसे सद्‍गुरु के मिल जाने पर संदेह और भ्रम के समूह नष्ट हो जाते हैं॥17॥

श्री राम की सुग्रीव पर नाराजी, लक्ष्मणजी का कोप

चौपाई :

* बरषा गत निर्मल रितु आई। सुधि न तात सीता कै पाई॥

एक बार कैसेहुँ सुधि जानौं। कालुह जीति निमिष महुँ आनौं॥1॥

भावार्थ:-वर्षा बीत गई, निर्मल शरद्ऋतु आ गई, परंतु हे तात! सीता की कोई खबर नहीं मिली। एक बार कैसे भी पता पाऊँ तो काल को भी जीतकर पल भर में जानकी को ले आऊँ॥1॥

* कतहुँ रहउ जौं जीवति होई। तात जतन करि आनउँ सोई॥

सुग्रीवहुँ सुधि मोरि बिसारी। पावा राज कोस पुर नारी॥2॥

भावार्थ:-कहीं भी रहे, यदि जीती होगी तो हे तात! यत्न करके मैं उसे अवश्य लाऊँगा। राज्य, खजाना, नगर और स्त्री पा गया, इसलिए सुग्रीव ने भी मेरी सुध भुला दी॥2॥

* जेहिं सायक मारा मैं बाली। तेहिं सर हतौं मूढ़ कहँ काली॥

जासु कृपाँ छूटहिं मद मोहा। ता कहुँ उमा कि सपनेहुँ कोहा॥3॥

भावार्थ:-जिस बाण से मैंने बालि को मारा था, उसी बाण से कल उस मूढ़ को मारूँ! (शिवजी कहते हैं-) हे उमा! जिनकी कृपा से मद और मोह छूट जाते हैं उनको कहीं स्वप्न में भी क्रोध हो सकता है? (यह तो लीला मात्र है)॥3॥

* जानहिं यह चरित्र मुनि ग्यानी। जिन्ह रघुबीर चरन रति मानी॥

लछिमन क्रोधवंत प्रभु जाना। धनुष चढ़ाई गहे कर बाना॥4॥

भावार्थ:-ज्ञानी मुनि जिन्होंने श्री रघुनाथजी के चरणों में प्रीति मान ली है (जोड़ ली है), वे ही इस चरित्र (लीला रहस्य) को जानते हैं। लक्ष्मणजी ने जब प्रभु को क्रोधयुक्त जाना, तब उन्होंने धनुष चढ़ाकर बाण हाथ में ले लिए॥4॥

दोहा :

* तब अनुजहि समुझावा रघुपति करुना सींव।

भय देखाइ लै आवहु तात सखा सुग्रीव॥18॥

भावार्थ:-तब दया की सीमा श्री रघुनाथजी ने छोटे भाई लक्ष्मणजी को समझाया कि हे तात! सखा सुग्रीव को केवल भय दिखलाकर ले आओ (उसे मारने की बात नहीं है)॥18॥

चौपाई :

* इहाँ पवनसुत हृदयँ बिचारा। राम काजु सुग्रीवँ बिसारा॥

निकट जाइ चरनन्हि सिरु नावा। चारिहु बिधि तेहि कहि समुझावा॥1॥

भावार्थ:-यहाँ (किष्किन्धा नगरी में) पवनकुमार श्री हनुमान्‌जी ने विचार किया कि सुग्रीव ने श्री रामजी के कार्य को भुला दिया। उन्होंने सुग्रीव के पास जाकर चरणों में सिर नवाया। (साम, दान, दंड, भेद) चारों प्रकार की नीति कहकर उन्हें समझाया॥1॥

* सुनि सुग्रीवँ परम भय माना। बिषयँ मोर हरि लीन्हेउ ग्याना॥

अब मारुतसुत दूत समूहा। पठवहु जहँ तहँ बानर जूहा॥2॥

भावार्थ:- हनुमान्‌जी के वचन सुनकर सुग्रीव ने बहुत ही भय माना। (और कहा-) विषयों ने मेरे ज्ञान को हर लिया। अब हे पवनसुत! जहाँ-तहाँ वानरों के यूथ रहते हैं, वहाँ दूतों के समूहों को भेजो॥2॥

* कहहु पाख महुँ आव न जोई। मोरें कर ता कर बध होई॥

तब हनुमंत बोलाए दूता। सब कर करि सनमान बहूता॥3॥

भावार्थ:-और कहला दो कि एक पखवाड़े में (पंद्रह दिनों में) जो न आ जाएगा, उसका मेरे हाथों वध होगा। तब हनुमान्‌जी ने दूतों को बुलाया और सबका बहुत सम्मान करके-॥3॥

* भय अरु प्रीति नीति देखराई। चले सकल चरनन्हि सिर नाई॥

एहि अवसर लछिमन पुर आए। क्रोध देखि जहँ तहँ कपि धाए॥4॥

भावार्थ:-सबको भय, प्रीति और नीति दिखलाई। सब बंदर चरणों में सिर नवाकर चले। इसी समय लक्ष्मणजी नगर में आए। उनका क्रोध देखकर बंदर जहाँ-तहाँ भागे॥4॥

दोहा :

* धनुष चढ़ाइ कहा तब जारि करउँ पुर छार।

ब्याकुल नगर देखि तब आयउ बालिकुमार॥19॥

भावार्थ:-तदनन्तर लक्ष्मणजी ने धनुष चढ़ाकर कहा कि नगर को जलाकर अभी राख कर दूँगा। तब नगरभर को व्याकुल देखकर बालिपुत्र अंगदजी उनके पास आए॥19॥

चौपाई :

* चर नाइ सिरु बिनती कीन्ही। लछिमन अभय बाँह तेहि दीन्ही॥

क्रोधवंत लछिमन सुनि काना। कह कपीस अति भयँ अकुलाना॥1॥

भावार्थ:-अंगद ने उनके चरणों में सिर नवाकर विनती की (क्षमा-याचना की) तब लक्ष्मणजी ने उनको अभय बाँह दी (भुजा उठाकर कहा कि डरो मत)। सुग्रीव ने अपने कानों से लक्ष्मणजी को क्रोधयुक्त सुनकर भय से अत्यंत व्याकुल होकर कहा-॥1॥

* सुनु हनुमंत संग लै तारा। करि बिनती समुझाउ कुमारा॥

तारा सहित जाइ हनुमाना। चरन बंदि प्रभु सुजस बखाना॥2॥

भावार्थ:-हे हनुमान् सुनो, तुम तारा को साथ ले जाकर विनती करके राजकुमार को समझाओ (समझा-बुझाकर शांत करो)। हनुमान्‌जी ने तारा सहित जाकर लक्ष्मणजी के चरणों की वंदना की और प्रभु के सुंदर यश का बखान किया॥2॥

* करि बिनती मंदिर लै आए। चरन पखारि पलँग बैठाए॥

तब कपीस चरनन्हि सिरु नावा। गहि भुज लछिमन कंठ लगावा॥3॥

भावार्थ:-वे विनती करके उन्हें महल में ले आए तथा चरणों को धोकर उन्हें पलँग पर बैठाया। तब वानरराज सुग्रीव ने उनके चरणों में सिर नवाया और लक्ष्मणजी ने हाथ पकड़कर उनको गले से लगा लिया॥3॥

* नाथ विषय सम मद कछु नाहीं। मुनि मन मोह करइ छन माहीं।

सुनत बिनीत बचन सुख पावा। लछिमन तेहि बहु बिधि समुझावा॥4॥

भावार्थ:-(सुग्रीव ने कहा-) हे नाथ! विषय के समान और कोई मद नहीं है। यह मुनियों के मन में भी क्षणमात्र में मोह उत्पन्न कर देता है (फिर मैं तो विषयी जीव ही ठहरा)। सुग्रीव के विनययुक्त वचन सुनकर लक्ष्मणजी ने सुख पाया और उनको बहुत प्रकार से समझाया॥4॥

* पवन तनय सब कथा सुनाई। जेहि बिधि गए दूत समुदाई॥5॥

भावार्थ:-तब पवनसुत हनुमान्‌जी ने जिस प्रकार सब दिशाओं में दूतों के समूह गए थे वह सब हाल सुनाया॥5॥

सुग्रीव-राम संवाद और सीताजी की खोज के लिए बंदरों का प्रस्थान

दोहा :

* हरषि चले सुग्रीव तब अंगदादि कपि साथ।

रामानुज आगें करि आए जहँ रघुनाथ॥20॥

भावार्थ:-तब अंगद आदि वानरों को साथ लेकर और श्री रामजी के छोटे भाई लक्ष्मणजी को आगे करके (अर्थात्‌ उनके पीछे-पीछे) सुग्रीव हर्षित होकर चले और जहाँ रघुनाथजी थे वहाँ आए॥20॥

चौपाई :

* नाइ चरन सिरु कह कर जोरी॥ नाथ मोहि कछु नाहिन खोरी॥

अतिसय प्रबल देव तव माया॥ छूटइ राम करहु जौं दाया॥1॥

भावार्थ:-श्री रघुनाथजी के चरणों में सिर नवाकर हाथ जोड़कर सुग्रीव ने कहा- हे नाथ! मुझे कुछ भी दोष नहीं है। हे देव! आपकी माया अत्यंत ही प्रबल है। आप जब दया करते हैं, हे राम! तभी यह छूटती है॥1॥

* बिषय बस्य सुर नर मुनि स्वामी॥ मैं पावँर पसु कपि अति कामी॥

नारि नयन सर जाहि न लागा। घोर क्रोध तम निसि जो जागा॥2॥

भावार्थ:-हे स्वामी! देवता, मनुष्य और मुनि सभी विषयों के वश में हैं। फिर मैं तो पामर पशु और पशुओं में भी अत्यंत कामी बंदर हूँ। स्त्री का नयन बाण जिसको नहीं लगा, जो भयंकर क्रोध रूपी अँधेरी रात में भी जागता रहता है (क्रोधान्ध नहीं होता)॥2॥

* लोभ पाँस जेहिं गर न बँधाया। सो नर तुम्ह समान रघुराया॥

यह गुन साधन तें नहिं होई। तुम्हरी कृपा पाव कोइ कोई॥3॥

भावार्थ:-और लोभ की फाँसी से जिसने अपना गला नहीं बँधाया, हे रघुनाथजी! वह मनुष्य आप ही के समान है। ये गुण साधन से नहीं प्राप्त होते। आपकी कृपा से ही कोई-कोई इन्हें पाते हैं॥3॥

* तब रघुपति बोले मुसुकाई। तुम्ह प्रिय मोहि भरत जिमि भाई॥

अब सोइ जतनु करहु मन लाई। जेहि बिधि सीता कै सुधि पाई॥4॥

भावार्थ:-तब श्री रघुनाथजी मुस्कुराकर बोले- हे भाई! तुम मुझे भरत के समान प्यारे हो। अब मन लगाकर वही उपाय करो जिस उपाय से सीता की खबर मिले॥4॥

दोहा :

* एहि बिधि होत बतकही आए बानर जूथ।

नाना बरन सकल दिसि देखिअ कीस बरूथ॥21॥

भावार्थ:-इस प्रकार बातचीत हो रही थी कि वानरों के यूथ (झुंड) आ गए। अनेक रंगों के वानरों के दल सब दिशाओं में दिखाई देने लगे॥21॥

चौपाई :

* बानर कटक उमा मैं देखा। सो मूरुख जो करन चह लेखा॥

आइ राम पद नावहिं माथा। निरखि बदनु सब होहिं सनाथा॥1॥

भावार्थ:-(शिवजी कहते हैं-) हे उमा! वानरों की वह सेना मैंने देखी थी। उसकी जो गिनती करना चाहे वह महान्‌ मूर्ख है। सब वानर आ-आकर श्री रामजी के चरणों में मस्तक नवाते हैं और (सौंदर्य-माधुर्यनिधि) श्रीमुख के दर्शन करके कृतार्थ होते हैं॥1॥

* अस कपि एक न सेना माहीं। राम कुसल जेहि पूछी नाहीं॥

यह कछु नहिं प्रभु कइ अधिकाई। बिस्वरूप ब्यापक रघुराई॥2॥

भावार्थ:-सेना में एक भी वानर ऐसा नहीं था जिससे श्री रामजी ने कुशल न पूछी हो, प्रभु के लिए यह कोई बड़ी बात नहीं है, क्योंकि श्री रघुनाथजी विश्वरूप तथा सर्वव्यापक हैं (सारे रूपों और सब स्थानों में हैं)॥2॥

* ठाढ़े जहँ तहँ आयसु पाई। कह सुग्रीव सबहि समुझाई॥

राम काजु अरु मोर निहोरा। बानर जूथ जाहु चहुँ ओरा॥3॥

भावार्थ:-आज्ञा पाकर सब जहाँ-तहाँ खड़े हो गए। तब सुग्रीव ने सबको समझाकर कहा कि हे वानरों के समूहों! यह श्री रामचंद्रजी का कार्य है और मेरा निहोरा (अनुरोध) है, तुम चारों ओर जाओ॥3॥

* जनकसुता कहुँ खोजहु जाई। मास दिवस महँ आएहु भाई॥

अवधि मेटि जो बिनु सुधि पाएँ। आवइ बनिहि सो मोहि मराएँ॥4॥

भावार्थ:-और जाकर जानकीजी को खोजो। हे भाई! महीने भर में वापस आ जाना। जो (महीने भर की) अवधि बिताकर बिना पता लगाए ही लौट आएगा उसे मेरे द्वारा मरवाते ही बनेगा (अर्थात् मुझे उसका वध करवाना ही पड़ेगा)॥4॥

दोहा :

* बचन सुनत सब बानर जहँ तहँ चले तुरंत।

तब सुग्रीवँ बोलाए अंगद नल हनुमंत॥22॥

भावार्थ:-सुग्रीव के वचन सुनते ही सब वानर तुरंत जहाँ-तहाँ (भिन्न-भिन्न दिशाओं में) चल दिए। तब सुग्रीव ने अंगद, नल, हनुमान् आदि प्रधान-प्रधान योद्धाओं को बुलाया (और कहा-)॥22॥

चौपाई :

* सुनहु नील अंगद हनुमाना। जामवंत मतिधीर सुजाना॥

सकल सुभट मिलि दच्छिन जाहू। सीता सुधि पूँछेहु सब काहू॥1॥

भावार्थ:-हे धीरबुद्धि और चतुर नील, अंगद, जाम्बवान् और हनुमान! तुम सब श्रेष्ठ योद्धा मिलकर दक्षिण दिशा को जाओ और सब किसी से सीताजी का पता पूछना॥1॥

* मन क्रम बचन सो जतन बिचारेहु। रामचंद्र कर काजु सँवारेहु॥

भानु पीठि सेइअ उर आगी। स्वामिहि सर्ब भाव छल त्यागी॥2॥

भावार्थ:-मन, वचन तथा कर्म से उसी का (सीताजी का पता लगाने का) उपाय सोचना। श्री रामचंद्रजी का कार्य संपन्न (सफल) करना। सूर्य को पीठ से और अग्नि को हृदय से (सामने से) सेवन करना चाहिए, परंतु स्वामी की सेवा तो छल छोड़कर सर्वभाव से (मन, वचन, कर्म से) करनी चाहिए॥2॥

* तजि माया सेइअ परलोका। मिटहिं सकल भवसंभव सोका॥

देह धरे कर यह फलु भाई। भजिअ राम सब काम बिहाई॥3॥

भावार्थ:-माया (विषयों की ममता-आसक्ति) को छोड़कर परलोक का सेवन (भगवान के दिव्य धाम की प्राप्ति के लिए भगवत्सेवा रूप साधन) करना चाहिए, जिससे भव (जन्म-मरण) से उत्पन्न सारे शोक मिट जाएँ। हे भाई! देह धारण करने का यही फल है कि सब कामों (कामनाओं) को छोड़कर श्री रामजी का भजन ही किया जाए॥3॥

* सोइ गुनग्य सोई बड़भागी। जो रघुबीर चरन अनुरागी॥

आयसु मागि चरन सिरु नाई। चले हरषि सुमिरत रघुराई॥4॥

भावार्थ:-सद्‌गुणों को पहचानने वाला (गुणवान) तथा बड़भागी वही है जो श्री रघुनाथजी के चरणों का प्रेमी है। आज्ञा माँगकर और चरणों में फिर सिर नवाकर श्री रघुनाथजी का स्मरण करते हुए सब हर्षित होकर चले॥4॥

* पाछें पवन तनय सिरु नावा। जानि काज प्रभु निकट बोलावा॥

परसा सीस सरोरुह पानी। करमुद्रिका दीन्हि जन जानी॥5॥

भावार्थ:-सबके पीछे पवनसुत श्री हनुमान्‌जी ने सिर नवाया। कार्य का विचार करके प्रभु ने उन्हें अपने पास बुलाया। उन्होंने अपने करकमल से उनके सिर का स्पर्श किया तथा अपना सेवक जानकर उन्हें अपने हाथ की अँगूठी उतारकर दी॥5॥

* बहु प्रकार सीतहि समुझाएहु। कहि बल बिरह बेगि तुम्ह आएहु॥

हनुमत जन्म सुफल करि माना। चलेउ हृदयँ धरि कृपानिधाना॥6॥

भावार्थ:-(और कहा-) बहुत प्रकार से सीता को समझाना और मेरा बल तथा विरह (प्रेम) कहकर तुम शीघ्र लौट आना। हनुमान्‌जी ने अपना जन्म सफल समझा और कृपानिधान प्रभु को हृदय में धारण करके वे चले॥6॥

* जद्यपि प्रभु जानत सब बाता। राजनीति राखत सुरत्राता॥7॥

भावार्थ:-यद्यपि देवताओं की रक्षा करने वाले प्रभु सब बात जानते हैं, तो भी वे राजनीति की रक्षा कर रहे हैं (नीति की मर्यादा रखने के लिए सीताजी का पता लगाने को जहाँ-तहाँ वानरों को भेज रहे हैं)॥7॥

दोहा :

* चले सकल बन खोजत सरिता सर गिरि खोह।

राम काज लयलीन मन बिसरा तन कर छोह॥23॥

भावार्थ:-सब वानर वन, नदी, तालाब, पर्वत और पर्वतों की कन्दराओं में खोजते हुए चले जा रहे हैं। मन श्री रामजी के कार्य में लवलीन है। शरीर तक का प्रेम (ममत्व) भूल गया है॥23॥

चौपाई :

* कतहुँ होइ निसिचर सैं भेटा। प्रान लेहिं एक एक चपेटा॥

बहु प्रकार गिरि कानन हेरहिं। कोउ मुनि मिलइ ताहि सब घेरहिं॥1॥

भावार्थ:-कहीं किसी राक्षस से भेंट हो जाती है, तो एक-एक चपत में ही उसके प्राण ले लेते हैं। पर्वतों और वनों को बहुत प्रकार से खोज रहे हैं। कोई मुनि मिल जाता है तो पता पूछने के लिए उसे सब घेर लेते हैं॥1॥

गुफा में तपस्विनी के दर्शन, वानरों का समुद्र तट पर आना, सम्पाती से भेंट और बातचीत

* लागि तृषा अतिसय अकुलाने। मिलइ न जल घन गहन भुलाने॥

मन हनुमान् कीन्ह अनुमाना। मरन चहत सब बिनु जल पाना॥2॥

भावार्थ:-इतने में ही सबको अत्यंत प्यास लगी, जिससे सब अत्यंत ही व्याकुल हो गए, किंतु जल कहीं नहीं मिला। घने जंगल में सब भुला गए। हनुमान्जी ने मन में अनुमान किया कि जल पिए बिना सब लोग मरना ही चाहते हैं॥2॥

* चढ़ि गिरि सिखर चहूँ दिसि देखा। भूमि बिबर एक कौतुक पेखा॥

चक्रबाक बक हंस उड़ाहीं। बहुतक खग प्रबिसहिं तेहि माहीं॥3॥

भावार्थ:-उन्होंने पहाड़ की चोटी पर चढ़कर चारों ओर देखा तो पृथ्वी के अंदर एक गुफा में उन्हें एक कौतुक (आश्चर्य) दिखाई दिया। उसके ऊपर चकवे, बगुले और हंस उड़ रहे हैं और बहुत से पक्षी उसमें प्रवेश कर रहे हैं॥3॥

* गिरि ते उतरि पवनसुत आवा। सब कहुँ लै सोइ बिबर देखावा॥

आगें कै हनुमंतहि लीन्हा। पैठे बिबर बिलंबु न कीन्हा॥4॥

भावार्थ:-पवन कुमार हनुमान्जी पर्वत से उतर आए और सबको ले जाकर उन्होंने वह गुफा दिखलाई। सबने हनुमान्जी को आगे कर लिया और वे गुफा में घुस गए, देर नहीं की॥4॥

दोहा :

* दीख जाइ उपबन बर सर बिगसित बहु कंज।

मंदिर एक रुचिर तहँ बैठि नारि तप पुंज॥24॥

भावार्थ:-अंदर जाकर उन्होंने एक उत्तम उपवन (बगीचा) और तालाब देखा, जिसमें बहुत से कमल खिले हुए हैं। वहीं एक सुंदर मंदिर है, जिसमें एक तपोमूर्ति स्त्री बैठी है॥24॥

चौपाई :

* दूरि ते ताहि सबन्हि सिरु नावा। पूछें निज बृत्तांत सुनावा॥

तेहिं तब कहा करहु जल पाना। खाहु सुरस सुंदर फल नाना॥1॥

भावार्थ:-दूर से ही सबने उसे सिर नवाया और पूछने पर अपना सब वृत्तांत कह सुनाया। तब उसने कहा- जलपान करो और भाँति-भाँति के रसीले सुंदर फल खाओ॥1॥

* मज्जनु कीन्ह मधुर फल खाए। तासु निकट पुनि सब चलि आए॥

तेहिं सब आपनि कथा सुनाई। मैं अब जाब जहाँ रघुराई॥2॥

भावार्थ:-(आज्ञा पाकर) सबने स्नान किया, मीठे फल खाए और फिर सब उसके पास चले आए। तब उसने अपनी सब कथा कह सुनाई (और कहा-) मैं अब वहाँ जाऊँगी जहाँ श्री रघुनाथजी हैं॥2॥

* मूदहु नयन बिबर तजि जाहू। पैहहु सीतहि जनि पछिताहू॥

नयन मूदि पुनि देखहिं बीरा। ठाढ़े सकल सिंधु कें तीरा॥3॥

भावार्थ:-तुम लोग आँखें मूँद लो और गुफा को छोड़कर बाहर जाओ। तुम सीताजी को पा जाओगे, पछताओ नहीं (निराश न होओ)। आँखें मूँदकर फिर जब आँखें खोलीं तो सब वीर क्या देखते हैं कि सब समुद्र के तीर पर खड़े हैं॥3॥

* सो पुनि गई जहाँ रघुनाथा। जाइ कमल पद नाएसि माथा॥

नाना भाँति बिनय तेहिं कीन्हीं। अनपायनी भगति प्रभु दीन्हीं॥4॥

भावार्थ:-और वह स्वयं वहाँ गई जहाँ श्री रघुनाथजी थे। उसने जाकर प्रभु के चरण कमलों में मस्तक नवाया और बहुत प्रकार से विनती की। प्रभु ने उसे अपनी अनपायिनी (अचल) भक्ति दी॥4॥

दोहा :

* बदरीबन कहुँ सो गई प्रभु अग्या धरि सीस।

उर धरि राम चरन जुग जे बंदत अज ईस॥25॥

भावार्थ:-प्रभु की आज्ञा सिर पर धारण कर और श्री रामजी के युगल चरणों को, जिनकी ब्रह्मा और महेश भी वंदना करते हैं, हृदय में धारण कर वह (स्वयंप्रभा) बदरिकाश्रम को चली गई॥25॥

चौपाई :

* इहाँ बिचारहिं कपि मन माहीं। बीती अवधि काज कछु नाहीं॥

सब मिलि कहहिं परस्पर बाता। बिनु सुधि लएँ करब का भ्राता॥1॥

भावार्थ:-यहाँ वानरगण मन में विचार कर रहे हैं कि अवधि तो बीत गई, पर काम कुछ न हुआ। सब मिलकर आपस में बात करने लगे कि हे भाई! अब तो सीताजी की खबर लिए बिना लौटकर भी क्या करेंगे!॥1॥

* कह अंगद लोचन भरि बारी। दुहुँ प्रकार भइ मृत्यु हमारी॥

इहाँ न सुधि सीता कै पाई। उहाँ गएँ मारिहि कपिराई॥2॥

भावार्थ:-अंगद ने नेत्रों में जल भरकर कहा कि दोनों ही प्रकार से हमारी मृत्यु हुई। यहाँ तो सीताजी की सुध नहीं मिली और वहाँ जाने पर वानरराज सुग्रीव मार डालेंगे॥2॥

* पिता बधे पर मारत मोही। राखा राम निहोर न ओही॥

पुनि पुनि अंगद कह सब पाहीं। मरन भयउ कछु संसय नाहीं॥3॥

भावार्थ:-वे तो पिता के वध होने पर ही मुझे मार डालते। श्री रामजी ने ही मेरी रक्षा की, इसमें सुग्रीव का कोई एहसान नहीं है। अंगद बार-बार सबसे कह रहे हैं कि अब मरण हुआ, इसमें कुछ भी संदेह नहीं है॥3॥

* अंगद बचन सुन कपि बीरा। बोलि न सकहिं नयन बह नीरा॥

छन एक सोच मगन होइ रहे। पुनि अस बचन कहत सब भए॥4॥

भावार्थ:-वानर वीर अंगद के वचन सुनते हैं, किंतु कुछ बोल नहीं सकते। उनके नेत्रों से जल बह रहा है। एक क्षण के लिए सब सोच में मग्न हो रहे। फिर सब ऐसा वचन कहने लगे-॥4॥

* हम सीता कै सुधि लीन्हें बिना। नहिं जैहैं जुबराज प्रबीना॥

अस कहि लवन सिंधु तट जाई। बैठे कपि सब दर्भ डसाई॥5॥

भावार्थ:-हे सुयोग्य युवराज! हम लोग सीताजी की खोज लिए बिना नहीं लौटेंगे। ऐसा कहकर लवणसागर के तट पर जाकर सब वानर कुश बिछाकर बैठ गए॥5॥

* जामवंत अंगद दुख देखी। कहीं कथा उपदेस बिसेषी॥

तात राम कहुँ नर जनि मानहु। निर्गुन ब्रह्म अजित अज जानहु॥6॥

भावार्थ:-जाम्बवान्‌ ने अंगद का दुःख देखकर विशेष उपदेश की कथाएँ कहीं। (वे बोले-) हे तात! श्री रामजी को मनुष्य न मानो, उन्हें निर्गुण ब्रह्म, अजेय और अजन्मा समझो॥6॥

* हम सब सेवक अति बड़भागी। संतत सगुन ब्रह्म अनुरागी॥7॥

भावार्थ:-हम सब सेवक अत्यंत बड़भागी हैं, जो निरंतर सगुण ब्रह्म (श्री रामजी) में प्रीति रखते हैं॥7॥

दोहा :

गीताप्रेस गोरखपुर

* निज इच्छाँ प्रभु अवतरइ सुर मह गो द्विज लागि।

सगुन उपासक संग तहँ रहहिं मोच्छ सब त्यागि॥26॥

भावार्थ:-देवता, पृथ्वी, गो और ब्राह्मणों के लिए प्रभु अपनी इच्छा से (किसी कर्मबंधन से नहीं) अवतार लेते हैं। वहाँ सगुणोपासक (भक्तगण सालोक्य, सामीप्य, सारुप्य, सार्ष्टि और सायुज्य) सब प्रकार के मोक्षों को त्यागकर उनकी सेवा में साथ रहते हैं॥26॥

चौपाई :

* एहि बिधि कथा कहहिं बहु भाँती। गिरि कंदराँ सुनी संपाती॥

बाहेर होइ देखि बहु कीसा। मोहि अहार दीन्ह जगदीसा॥1॥

भावार्थ:-इस प्रकार जाम्बवान्‌ बहुत प्रकार से कथाएँ कह रहे हैं। इनकी बातें पर्वत की कन्दरा में सम्पाती ने सुनीं। बाहर निकलकर उसने बहुत से वानर देखे। (तब वह बोला-) जगदीश्वर ने मुझको घर बैठे बहुत सा आहार भेज दिया!॥1॥

* आजु सबहि कहँ भच्छन करऊँ। दिन हबु चले अहार बिनु मरऊँ॥

कबहुँ न मिल भरि उदर अहारा। आजु दीन्ह बिधि एकहिं बारा॥2॥

भावार्थ:-आज इन सबको खा जाऊँगा। बहुत दिन बीत गए, भोजन के बिना मर रहा था। पेटभर भोजन कभी नहीं मिलता। आज विधाता ने एक ही बार में बहुत सा भोजन दे दिया॥2॥

गीताप्रेस गोरखपुर

* डरपे गीध बचन सुनि काना। अब भा मरन सत्य हम जाना॥

कपि सब उठे गीध कहँ देखी। जामवंत मन सोच बिसेषी॥3॥

भावार्थ:-गीध के वचन कानों से सुनते ही सब डर गए कि अब सचमुच ही मरना हो गया। यह हमने जान लिया। फिर उस गीध (सम्पाती) को देखकर सब वानर उठ खड़े हुए। जाम्बवान् के मन में विशेष सोच हुआ॥3॥

* कह अंगद बिचारि मन माहीं। धन्य जटायू सम कोउ नाहीं॥

राम काज कारन तनु त्यागी। हरि पुर गयउ परम बड़भागी॥4॥

भावार्थ:-अंगद ने मन में विचार कर कहा- अहा! जटायु के समान धन्य कोई नहीं है। श्री रामजी के कार्य के लिए शरीर छोड़कर वह परम बड़भागी भगवान् के परमधाम को चला गया॥4॥

* सुनि खग हरष सोक जुत बानी। आवा निकट कपिन्ह भय मानी॥

तिन्हहि अभय करि पूछेसि जाई। कथा सकल तिन्ह ताहि सुनाई॥5॥

भावार्थ:-हर्ष और शोक से युक्त वाणी (समाचार) सुनकर वह पक्षी (सम्पाती) वानरों के पास आया। वानर डर गए। उनको अभय करके (अभय वचन देकर) उसने पास जाकर जटायु का वृत्तांत पूछा, तब उन्होंने सारी कथा उसे कह सुनाई॥5॥

* सुनि संपाति बंधु कै करनी। रघुपति महिमा बहुबिधि बरनी॥6॥

भावार्थ:-भाई जटायु की करनी सुनकर सम्पाती ने बहुत प्रकार से श्री रघुनाथजी की महिमा वर्णन की॥6॥

दोहा :

* मोहि लै जाहु सिंधुतट देउँ तिलांजलि ताहि।

बचन सहाइ करबि मैं पैहहु खोजहु जाहि॥27॥

भावार्थ:-(उसने कहा-) मुझे समुद्र के किनारे ले चलो, मैं जटायु को तिलांजलि दे दूँ। इस सेवा के बदले मैं तुम्हारी वचन से सहायता करूँगा (अर्थात् सीताजी कहाँ हैं सो बतला दूँगा), जिसे तुम खोज रहे हो उसे पा जाओगे॥27॥

चौपाई :

* अनुज क्रिया करि सागर तीरा। कहि निज कथा सुनहु कपि बीरा॥

हम द्वौ बंधु प्रथम तरुनाई। गगन गए रबि निकट उड़ाई॥1॥

भावार्थ:-समुद्र के तीर पर छोटे भाई जटायु की क्रिया (श्राद्ध आदि) करके सम्पाती अपनी कथा कहने लगा- हे वीर वानरों! सुनो, हम दोनों भाई उठती जवानी में एक बार आकाश में उड़कर सूर्य के निकट चले गए॥1॥

* तेज न सहि सक सो फिरि आवा। मैं अभिमानी रबि निअरावा॥

जरे पंख अति तेज अपारा। परेउँ भूमि करि घोर चिकारा॥2॥

भावार्थ:-वह (जटायु) तेज नहीं सह सका, इससे लौट आया (किंतु), मैं अभिमानी था इसलिए सूर्य के पास चला गया। अत्यंत अपार तेज से मेरे पंख जल गए। मैं बड़े जोर से चीख मारकर जमीन पर गिर पड़ा॥2॥

* मुनि एक नाम चंद्रमा ओही। लागी दया देखि करि मोही॥

बहु प्रकार तेहिं ग्यान सुनावा। देहजनित अभिमान छुड़ावा॥3॥

भावार्थ:-वहाँ चंद्रमा नाम के एक मुनि थे। मुझे देखकर उन्हें बड़ी दया लगी। उन्होंने बहुत प्रकार से मुझे ज्ञान सुनाया और मेरे देहजनित (देह संबंधी) अभिमान को छुड़ा दिया॥3॥

* त्रेताँ ब्रह्म मनुज तनु धरिही। तासु नारि निसिचर पति हरिही॥

तासु खोज पठइहि प्रभु दूता। तिन्हहि मिलें तैं होब पुनीता॥4॥

भावार्थ:-(उन्होंने कहा-) त्रेतायुग में साक्षात्‌ परब्रह्म मनुष्य शरीर धारण करेंगे। उनकी स्त्री को राक्षसों का राजा हर ले जाएगा। उसकी खोज में प्रभु दूत भेजेंगे। उनसे मिलने पर तू पवित्र हो जाएगा॥4॥

* जमिहहिं पंख करसि जनि चिंता। तिन्हहि देखाइ देहेसु तैं सीता॥

मुनि कइ गिरा सत्य भइ आजू। सुनि मम बचन करहु प्रभु काजू॥5॥

भावार्थ:-और तेरे पंख उग आएँगे, चिंता न कर। उन्हें तू सीताजी को दिखा देना। मुनि की वह वाणी आज सत्य हुई। अब मेरे वचन सुनकर तुम प्रभु का कार्य करो॥5॥

* गिरि त्रिकूट ऊपर बस लंका। तहँ रह रावन सहज असंका॥

तहँ असोक उपबन जहँ रहई। सीता बैठि सोच रत अहई॥6॥

भावार्थ:-त्रिकूट पर्वत पर लंका बसी हुई है। वहाँ स्वभाव से ही निडर रावण रहता है। वहाँ अशोक नाम का उपवन (बगीचा) है, जहाँ सीताजी रहती हैं। (इस समय भी) वे सोच में मग्न बैठी हैं॥6॥

समुद्र लाँघने का परामर्श, जाम्बवन्त का हनुमान्‌जी को बल याद दिलाकर उत्साहित करना, श्री राम-गुण का माहात्म्य

दोहा :

* मैं देखउँ तुम्ह नाहीं गीधहि दृष्टि अपार।

बूढ़ भयउँ न त करतेउँ कछुक सहाय तुम्हार॥28॥

भावार्थ:-मैं उन्हें देख रहा हूँ, तुम नहीं देख सकते, क्योंकि गीध की दृष्टि अपार होती है (बहुत दूर तक जाती है)। क्या करूँ? मैं बूढ़ा हो गया, नहीं तो तुम्हारी कुछ तो सहायता अवश्य करता॥28॥

चौपाई :

* जो नाघइ सत जोजन सागर। करइ सो राम काज मति आगर॥

मोहि बिलोकि धरहु मन धीरा। राम कृपाँ कस भयउ सरीरा॥1॥

भावार्थ:-जो सौ योजन (चार सौ कोस) समुद्र लाँघ सकेगा और बुद्धिनिधान होगा, वही श्री रामजी का कार्य कर सकेगा। (निराश होकर घबराओ मत) मुझे देखकर मन में धीरज धरो। देखो, श्री रामजी की कृपा से (देखते ही देखते) मेरा शरीर कैसा हो गया (बिना पाँख का बेहाल था, पाँख उगने से सुंदर हो गया) !॥1॥

* पापिउ जाकर नाम सुमिरहीं। अति अपार भवसागर तरहीं॥

तासु दूत तुम्ह तजि कदराई राम हृदयँ धरि करहु उपाई॥2॥

भावार्थ:-पापी भी जिनका नाम स्मरण करके अत्यंत पार भवसागर से तर जाते हैं। तुम उनके दूत हो, अतः कायरता छोड़कर श्री रामजी को हृदय में धारण करके उपाय करो॥2॥

* अस कहि गरुड़ गीध जब गयऊ। तिन्ह के मन अति बिसमय भयऊ॥

निज निज बल सब काहूँ भाषा। पार जाइ कर संसय राखा॥3॥

भावार्थ:-(काकभुशुण्डिजी कहते हैं-) हे गरुड़जी! इस प्रकार कहकर जब गीध चला गया, तब उन (वानरों) के मन में अत्यंत विस्मय हुआ। सब किसी ने अपना-अपना बल कहा। पर समुद्र के पार जाने में सभी ने संदेह प्रकट किया॥3॥

* जरठ भयउँ अब कहइ रिछेसा। नहिं तन रहा प्रथम बल लेसा॥

जबहिं त्रिबिक्रम भए खरारी। तब मैं तरुन रहेउँ बल भारी॥4॥

भावार्थ:-ऋक्षराज जाम्बवान् कहने लगे- मैं बूढ़ा हो गया। शरीर में पहले वाले बल का लेश भी नहीं रहा। जब खरारि (खर के शत्रु श्री राम) वामन बने थे, तब मैं जवान था और मुझ में बड़ा बल था॥4॥

दोहा :

* बलि बाँधत प्रभु बाढ़ेउ सो तनु बरनि न जाइ।

उभय घरी महँ दीन्हीं सात प्रदच्छिन धाइ॥29॥

भावार्थ:-बलि के बाँधते समय प्रभु इतने बढ़े कि उस शरीर का वर्णन नहीं हो सकता, किंतु मैंने दो ही घड़ी में दौड़कर (उस शरीर की) सात प्रदक्षिणाएँ कर लीं॥29॥

चौपाई :

* अंगद कहइ जाउँ मैं पारा। जियँ संसय कछु फिरती बारा॥

जामवंत कह तुम्ह सब लायक। पठइअ किमि सबही कर नायक॥1॥

भावार्थ:-अंगद ने कहा- मैं पार तो चला जाऊँगा, परंतु लौटते समय के लिए हृदय में कुछ संदेह है। जाम्बवान् ने कहा- तुम सब प्रकार से योग्य हो, परंतु तुम सबके नेता हो, तुम्हे कैसे भेजा जाए?॥1॥

* कहइ रीछपति सुनु हनुमाना। का चुप साधि रहेहु बलवाना॥

पवन तनय बल पवन समाना। बुधि बिबेक बिग्यान निधाना॥2॥

भावार्थ:-ऋक्षराज जाम्बवान् ने श्री हनुमानजी से कहा- हे हनुमान्! हे बलवान्! सुनो, तुमने यह क्या चुप साध रखी है? तुम पवन के पुत्र हो और बल में पवन के समान हो। तुम बुद्धि-विवेक और विज्ञान की खान हो॥2॥

* कवन सो काज कठिन जग माहीं। जो नहिं होइ तात तुम्ह पाहीं॥

राम काज लगि तव अवतारा। सुनतहिं भयउ पर्बताकारा॥3॥

भावार्थ:-जगत् में कौन सा ऐसा कठिन काम है जो हे तात! तुमसे न हो सके। श्री रामजी के कार्य के लिए ही तो तुम्हारा अवतार हुआ है। यह सुनते ही हनुमान्जी पर्वत के आकार के (अत्यंत विशालकाय) हो गए॥3॥

* कनक बरन तन तेज बिराजा। मानहुँ अपर गिरिन्ह कर राजा॥

सिंहनाद करि बारहिं बारा। लीलहिं नाघउँ जलनिधि खारा॥4॥

भावार्थ:-उनका सोने का सा रंग है, शरीर पर तेज सुशोभित है, मानो दूसरा पर्वतों का राजा सुमेरु हो। हनुमान्जी ने बार-बार सिंहनाद करके कहा- मैं इस खारे समुद्र को खेल में ही लाँघ सकता हूँ॥4॥

* सहित सहाय रावनहि मारी। आनउँ इहाँ त्रिकूट उपारी॥

जामवंत मैं पूँछउँ तोही। उचित सिखावनु दीजहु मोही॥5॥

भावार्थ:- और सहायकों सहित रावण को मारकर त्रिकूट पर्वत को उखाड़कर यहाँ ला सकता हूँ। हे जाम्बवान्! मैं तुमसे पूछता हूँ, तुम मुझे उचित सीख देना (कि मुझे क्या करना चाहिए)॥5॥

* एतना करहु तात तुम्ह जाई। सीतहि देखि कहहु सुधि आई॥

तब निज भुज बल राजिवनैना। कौतुक लागि संग कपि सेना॥6॥

भावार्थ:-(जाम्बवान् ने कहा-) हे तात! तुम जाकर इतना ही करो कि सीताजी को देखकर लौट आओ और उनकी खबर कह दो। फिर कमलनयन श्री रामजी अपने बाहुबल से (ही राक्षसों का संहार कर सीताजी को ले आएँगे, केवल) खेल के लिए ही वे वानरों की सेना साथ लेंगे॥6॥

छंद :

* कपि सेन संग सँघारि निसिचर रामु सीतहि आनि हैं।

त्रैलोक पावन सुजसु सुर मुनि नारदादि बखानि हैं॥

जो सुनत गावत कहत समुझत परमपद नर पावई।

रघुबीर पद पाथोज मधुकर दास तुलसी गावई॥

भावार्थ:-वानरों की सेना साथ लेकर राक्षसों का संहार करके श्री रामजी सीताजी को ले आएँगे। तब देवता और नारदादि मुनि भगवान् के तीनों लोकों को पवित्र करने वाले सुंदर यश का बखान करेंगे, जिसे सुनने,

गाने, कहने और समझने से मनुष्य परमपद पाते हैं और जिसे श्री रघुवीर के चरणकमल का मधुकर (भ्रमर) तुलसीदास गाता है।

दोहा :

* भव भेषज रघुनाथ जसु सुनहिं जे नर अरु नारि।

तिन्ह कर सकल मनोरथ सिद्ध करहिं त्रिसिरारि॥30 क॥

भावार्थ:-श्री रघुवीर का यश भव (जन्म-मरण) रूपी रोग की (अचूक) दवा है। जो पुरुष और स्त्री इसे सुनेंगे, त्रिशिरा के शत्रु श्री रामजी उनके सब मनोरथों को सिद्ध करेंगे॥30 (क)॥

सोरठा :

* नीलोत्पल तन स्याम काम कोटि सोभा अधिक।

सुनिअ तासु गुन ग्राम जासु नाम अघ खग बधिक॥30 ख॥

भावार्थ:-जिनका नीले कमल के समान श्याम शरीर है, जिनकी शोभा करोड़ों कामदेवों से भी अधिक है और जिनका नाम पापरूपी पक्षियों को मारने के लिए बधिक (व्याधा) के समान है, उन श्री राम के गुणों के समूह (लीला) को अवश्य सुनना चाहिए॥30 (ख)॥

मासपरायण, तेईसवाँ विश्राम

इति श्रीमद्रामचरितमानसे सकलकलिकलुषविध्वंसने चतुर्थ: सोपानः समाप्त :।

कलियुग के समस्त पापों के नाश करने वाले श्री रामचरित् मानस का यह चौथा सोपान समाप्त हुआ।

(किष्किंधाकांड समाप्त)

गीताप्रेस गोरखपुर

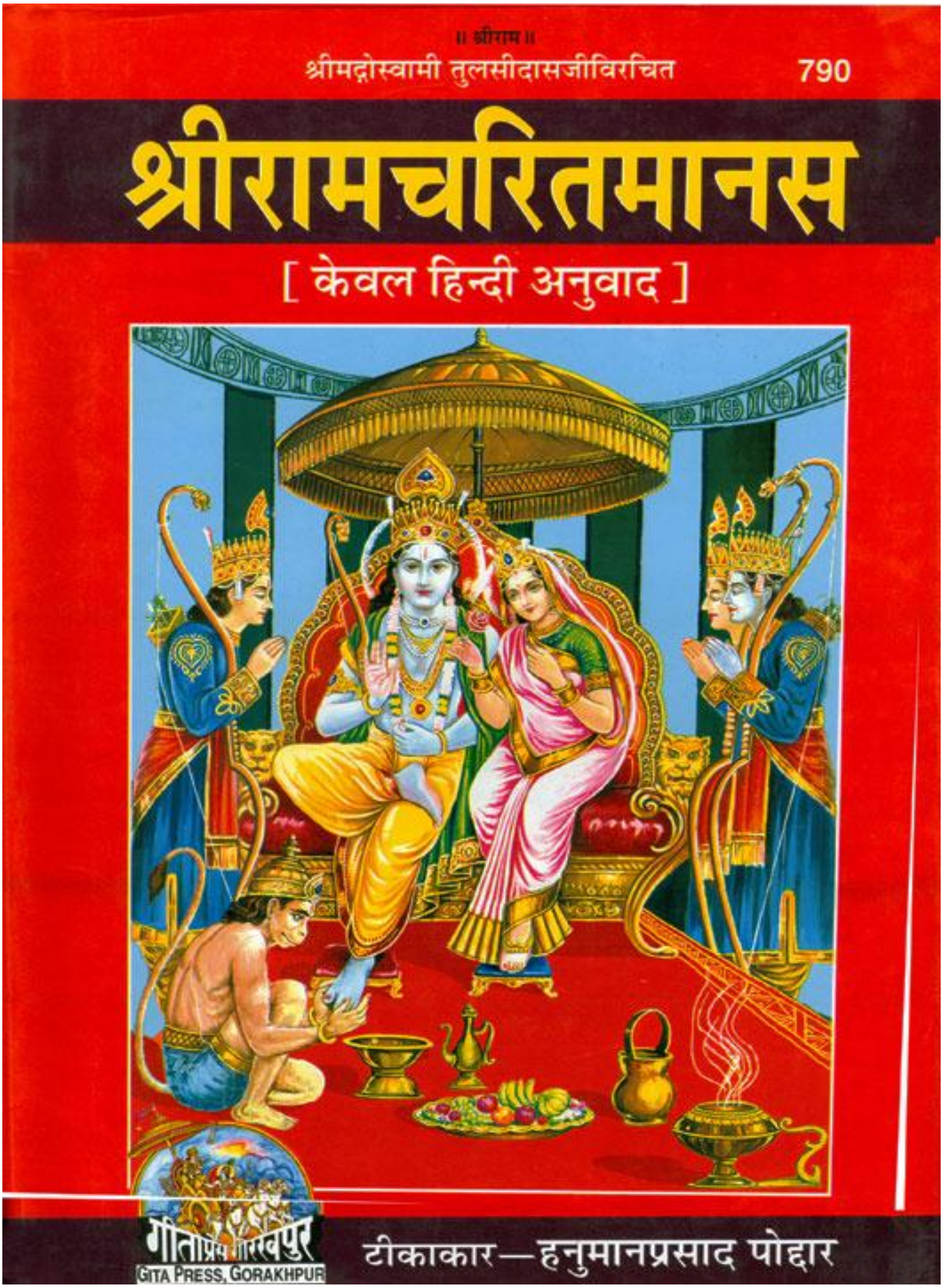

॥ श्रीराम ॥

श्रीमद्गोस्वामी तुलसीदासजीविरचित

790

श्रीरामचरितमानस

[केवल हिन्दी अनुवाद]

गीताप्रेस गोरखपुर
GITA PRESS, GORAKHPUR

टीकाकार—हनुमानप्रसाद पोद्दार

श्रीरामचरितमानस

सुंदरकाण्ड

पंचम सोपान-मंगलाचरण

श्लोक :

* शान्तं शाश्वतमप्रमेयमनघं निर्वाणशान्तिप्रदं
ब्रह्माशम्भुफणीन्द्रसेव्यमनिशं वेदान्तवेद्यं विभुम्।
रामाख्यं जगदीश्वरं सुरगुरुं मायामनुष्यं हरिं
वन्देऽहं करुणाकरं रघुवरं भूपालचूडामणिम्॥1॥

भावार्थ:-शान्त, सनातन, अप्रमेय (प्रमाणों से परे), निष्पाप, मोक्षरूप परमशान्ति देने वाले, ब्रह्मा, शम्भु और शेषजी से निरंतर सेवित, वेदान्त के द्वारा जानने योग्य, सर्वव्यापक, देवताओं में सबसे बड़े, माया से मनुष्य रूप में दिखने वाले, समस्त पापों को हरने वाले, करुणा की खान, रघुकुल में श्रेष्ठ तथा राजाओं के शिरोमणि राम कहलाने वाले जगदीश्वर की मैं वंदना करता हूँ॥1॥

* नान्या स्पृहा रघुपते हृदयेऽस्मदीये
सत्यं वदामि च भवानखिलान्तरात्मा।
भक्तिं प्रयच्छ रघुपुंगव निर्भरां मे
कामादिदोषरहितं कुरु मानसं च॥2॥

भावार्थ:-हे रघुनाथजी! मैं सत्य कहता हूँ और फिर आप सबके अंतरात्मा ही हैं (सब जानते ही हैं) कि मेरे हृदय में दूसरी कोई इच्छा नहीं है। हे

रघुकुलश्रेष्ठ! मुझे अपनी निर्भरा (पूर्ण) भक्ति दीजिए और मेरे मन को काम आदि दोषों से रहित कीजिए॥2॥

* अतुलितबलधामं हेमशैलाभदेहं
दनुजवनकृशानुं ज्ञानिनामग्रगण्यम्।
सकलगुणनिधानं वानराणामधीशं
रघुपतिप्रियभक्तं वातजातं नमामि॥3॥

भावार्थ:-अतुल बल के धाम, सोने के पर्वत (सुमेरु) के समान कान्तियुक्त शरीर वाले, दैत्य रूपी वन (को ध्वंस करने) के लिए अग्नि रूप, ज्ञानियों में अग्रगण्य, संपूर्ण गुणों के निधान, वानरों के स्वामी, श्री रघुनाथजी के प्रिय भक्त पवनपुत्र श्री हनुमान्जी को मैं प्रणाम करता हूँ॥3॥

हनुमान्जी का लंका को प्रस्थान, सुरसा से भेंट, छाया पकड़ने वाली राक्षसी का वध

चौपाई :

* जामवंत के बचन सुहाए। सुनि हनुमंत हृदय अति भाए॥
तब लगि मोहि परिखेहु तुम्ह भाई। सहि दुख कंद मूल फल खाई॥1॥

भावार्थ:-जाम्बवान् के सुंदर वचन सुनकर हनुमान्जी के हृदय को बहुत ही भाए। (वे बोले-) हे भाई! तुम लोग दुःख सहकर, कन्द-मूल-फल खाकर तब तक मेरी राह देखना॥1॥

* जब लगि आवौं सीतहि देखी। होइहि काजु मोहि हरष बिसेषी॥
यह कहि नाइ सबन्हि कहुँ माथा । चलेउ हरषि हियँ धरि रघुनाथा॥2॥

भावार्थ:-जब तक मैं सीताजी को देखकर (लौट) न आऊँ। काम अवश्य होगा, क्योंकि मुझे बहुत ही हर्ष हो रहा है। यह कहकर और सबको मस्तक नवाकर तथा हृदय में श्री रघुनाथजी को धारण करके हनुमान्जी हर्षित होकर चले॥2॥

* सिंधु तीर एक भूधर सुंदर। कौतुक कूदि चढ़ेउ ता ऊपर॥
बार-बार रघुबीर सँभारी। तरकेउ पवनतनय बल भारी॥3॥

भावार्थ:-समुद्र के तीर पर एक सुंदर पर्वत था। हनुमान्जी खेल से ही (अनायास ही) कूदकर उसके ऊपर जा चढ़े और बार-बार श्री रघुवीर का स्मरण करके अत्यंत बलवान् हनुमान्जी उस पर से बड़े वेग से उछले॥3॥

* जेहिं गिरि चरन देइ हनुमंता। चलेउ सो गा पाताल तुरंता॥
जिमि अमोघ रघुपति कर बाना। एही भाँति चलेउ हनुमाना॥4॥

भावार्थ:-जिस पर्वत पर हनुमान्जी पैर रखकर चले (जिस पर से वे उछले), वह तुरंत ही पाताल में धँस गया। जैसे श्री रघुनाथजी का अमोघ बाण चलता है, उसी तरह हनुमान्जी चले॥4॥

* जलनिधि रघुपति दूत बिचारी। तैं मैनाक होहि श्रम हारी॥5॥

भावार्थ:-समुद्र ने उन्हें श्री रघुनाथजी का दूत समझकर मैनाक पर्वत से कहा कि हे मैनाक! तू इनकी थकावट दूर करने वाला हो (अर्थात् अपने ऊपर इन्हें विश्राम दे)॥5॥

दोहा :

* हनूमान तेहि परसा कर पुनि कीन्ह प्रनाम।
राम काजु कीन्हें बिनु मोहि कहाँ बिश्राम॥1॥

भावार्थ:-हनुमान्जी ने उसे हाथ से छू दिया, फिर प्रणाम करके कहा- भाई! श्री रामचंद्रजी का काम किए बिना मुझे विश्राम कहाँ?॥1॥

चौपाई :

* जात पवनसुत देवन्ह देखा। जानैं कहुँ बल बुद्धि बिसेषा॥
सुरसा नाम अहिन्ह कै माता। पठइन्हि आइ कही तेहिं बाता॥1॥

भावार्थ:-देवताओं ने पवनपुत्र हनुमान्‌जी को जाते हुए देखा। उनकी विशेष बल-बुद्धि को जानने के लिए (परीक्षार्थ) उन्होंने सुरसा नामक सर्पों की माता को भेजा, उसने आकर हनुमान्‌जी से यह बात कही-॥1॥

* आजु सुरन्ह मोहि दीन्ह अहारा। सुनत बचन कह पवनकुमारा॥
राम काजु करि फिरि मैं आवौं। सीता कइ सुधि प्रभुहि सुनावौं॥2॥

भावार्थ:-आज देवताओं ने मुझे भोजन दिया है। यह वचन सुनकर पवनकुमार हनुमान्‌जी ने कहा- श्री रामजी का कार्य करके मैं लौट आऊँ और सीताजी की खबर प्रभु को सुना दूँ,॥2॥

* तब तव बदन पैठिहउँ आई। सत्य कहउँ मोहि जान दे माई॥
कवनेहुँ जतन देइ नहिं जाना। ग्रससि न मोहि कहेउ हनुमाना॥3॥

भावार्थ:-तब मैं आकर तुम्हारे मुँह में घुस जाऊँगा (तुम मुझे खा लेना)। हे माता! मैं सत्य कहता हूँ, अभी मुझे जाने दे। जब किसी भी उपाय से उसने जाने नहीं दिया, तब हनुमान्‌जी ने कहा- तो फिर मुझे खा न ले॥3॥

* जोजन भरि तेहिं बदनु पसारा। कपि तनु कीन्ह दुगुन बिस्तारा ॥
सोरह जोजन मुख तेहिं ठयऊ। तुरत पवनसुत बत्तिस भयऊ॥4॥

भावार्थ:-उसने योजनभर (चार कोस में) मुँह फैलाया। तब हनुमान्‌जी ने अपने शरीर को उससे दूना बढ़ा लिया। उसने सोलह योजन का मुख किया। हनुमान्‌जी तुरंत ही बत्तीस योजन के हो गए॥4॥

* जस जस सुरसा बदनु बढ़ावा। तासु दून कपि रूप देखावा॥
सत जोजन तेहिं आनन कीन्हा। अति लघु रूप पवनसुत लीन्हा॥5॥

भावार्थ:-जैसे-जैसे सुरसा मुख का विस्तार बढ़ाती थी, हनुमान्‌जी उसका दूना रूप दिखलाते थे। उसने सौ योजन (चार सौ कोस का) मुख किया। तब हनुमान्‌जी ने बहुत ही छोटा रूप धारण कर लिया॥5॥

* बदन पइठि पुनि बाहेर आवा। मागा बिदा ताहि सिरु नावा॥
मोहि सुरन्ह जेहि लागि पठावा। बुधि बल मरमु तोर मैं पावा॥6॥

भावार्थ:-और उसके मुख में घुसकर (तुरंत) फिर बाहर निकल आए और उसे सिर नवाकर विदा माँगने लगे। (उसने कहा-) मैंने तुम्हारे बुद्धि-बल का भेद पा लिया, जिसके लिए देवताओं ने मुझे भेजा था॥6॥

दोहा :

* राम काजु सबु करिहहु तुम्ह बल बुद्धि निधान।
आसिष देइ गई सो हरषि चलेउ हनुमान॥2॥

भावार्थ:-तुम श्री रामचंद्रजी का सब कार्य करोगे, क्योंकि तुम बल-बुद्धि के भंडार हो। यह आशीर्वाद देकर वह चली गई, तब हनुमान्‌जी हर्षित होकर चले॥2॥

चौपाई :

* निसिचरि एक सिंधु महुँ रहई। करि माया नभु के खग गहई॥
जीव जंतु जे गगन उड़ाहीं। जल बिलोकि तिन्ह कै परिछाहीं॥1॥

भावार्थ:-समुद्र में एक राक्षसी रहती थी। वह माया करके आकाश में उड़ते हुए पक्षियों को पकड़ लेती थी। आकाश में जो जीव-जंतु उड़ा करते थे, वह जल में उनकी परछाईं देखकर॥1॥

* गहइ छाहँ सक सो न उड़ाई। एहि बिधि सदा गगनचर खाई॥
सोइ छल हनूमान्‌ कहँ कीन्हा। तासु कपटु कपि तुरतहिं चीन्हा॥2॥

भावार्थ:-उस परछाईं को पकड़ लेती थी, जिससे वे उड़ नहीं सकते थे (और जल में गिर पड़ते थे) इस प्रकार वह सदा आकाश में उड़ने वाले

जीवों को खाया करती थी। उसने वही छल हनुमान्‌जी से भी किया। हनुमान्‌जी ने तुरंत ही उसका कपट पहचान लिया॥2॥

* ताहि मारि मारुतसुत बीरा। बारिधि पार गयउ मतिधीरा॥
तहाँ जाइ देखी बन सोभा। गुंजत चंचरीक मधु लोभा॥3॥

भावार्थ:-पवनपुत्र धीरबुद्धि वीर श्री हनुमान्‌जी उसको मारकर समुद्र के पार गए। वहाँ जाकर उन्होंने वन की शोभा देखी। मधु (पुष्प रस) के लोभ से भौंरे गुंजार कर रहे थे॥3॥

लंका वर्णन, लंकिनी वध, लंका में प्रवेश

* नाना तरु फल फूल सुहाए। खग मृग बृंद देखि मन भाए॥
सैल बिसाल देखि एक आगें। ता पर धाइ चढ़ेउ भय त्यागें॥4॥

भावार्थ:-अनेकों प्रकार के वृक्ष फल-फूल से शोभित हैं। पक्षी और पशुओं के समूह को देखकर तो वे मन में (बहुत ही) प्रसन्न हुए। सामने एक विशाल पर्वत देखकर हनुमान्‌जी भय त्यागकर उस पर दौड़कर जा चढ़े॥4॥

* उमा न कछु कपि कै अधिकाई। प्रभु प्रताप जो कालहि खाई॥
गिरि पर चढ़ि लंका तेहिं देखी। कहि न जाइ अति दुर्ग बिसेषी॥5॥

भावार्थ:-(शिवजी कहते हैं-) हे उमा! इसमें वानर हनुमान् की कुछ बड़ाई नहीं है। यह प्रभु का प्रताप है, जो काल को भी खा जाता है। पर्वत पर चढ़कर उन्होंने लंका देखी। बहुत ही बड़ा किला है, कुछ कहा नहीं जाता॥5॥

* अति उतंग जलनिधि चहुँ पासा। कनक कोट कर परम प्रकासा॥6॥

भावार्थ:-वह अत्यंत ऊँचा है, उसके चारों ओर समुद्र है। सोने के परकोटे (चहारदीवारी) का परम प्रकाश हो रहा है॥6॥

छंद :

* कनक कोटि बिचित्र मनि कृत सुंदरायतना घना।
चउहट्ट हट्ट सुबट्ट बीथीं चारु पुर बहु बिधि बना॥
गज बाजि खच्चर निकर पदचर रथ बरूथन्हि को गनै।
बहुरूप निसिचर जूथ अतिबल सेन बरनत नहिं बनै॥1॥

भावार्थ:-विचित्र मणियों से जड़ा हुआ सोने का परकोटा है, उसके अंदर बहुत से सुंदर-सुंदर घर हैं। चौराहे, बाजार, सुंदर मार्ग और गलियाँ हैं, सुंदर नगर बहुत प्रकार से सजा हुआ है। हाथी, घोड़े, खच्चरों के समूह तथा पैदल और रथों के समूहों को कौन गिन सकता है! अनेक रूपों के राक्षसों के दल हैं, उनकी अत्यंत बलवती सेना वर्णन करते नहीं बनती॥1॥

* बन बाग उपबन बाटिका सर कूप बापीं सोहहीं।
नर नाग सुर गंधर्ब कन्या रूप मुनि मन मोहहीं॥
कहुँ माल देह बिसाल सैल समान अतिबल गर्जहीं।
नाना अखारेन्ह भिरहिं बहुबिधि एक एकन्ह तर्जहीं॥2॥

भावार्थ:-वन, बाग, उपवन (बगीचे), फुलवाड़ी, तालाब, कुएँ और बावलियाँ सुशोभित हैं। मनुष्य, नाग, देवताओं और गंधर्वों की कन्याएँ अपने सौंदर्य से मुनियों के भी मन को मोहे लेती हैं। कहीं पर्वत के समान विशाल शरीर वाले बड़े ही बलवान् मल्ल (पहलवान) गरज रहे हैं। वे अनेकों अखाड़ों में बहुत प्रकार से भिड़ते और एक-दूसरे को ललकारते हैं॥2॥

* करि जतन भट कोटिन्ह बिकट तन नगर चहुँ दिसि रच्छहीं।
कहुँ महिष मानुष धेनु खर अज खल निसाचर भच्छहीं॥
एहि लागि तुलसीदास इन्ह की कथा कछु एक है कही।
रघुबीर सर तीरथ सरीरन्हि त्यागि गति पैहहिं सही॥3॥

भावार्थ:-भयंकर शरीर वाले करोड़ों योद्धा यत्न करके (बड़ी सावधानी से) नगर की चारों दिशाओं में (सब ओर से) रखवाली करते हैं। कहीं दुष्ट राक्षस भैंसों, मनुष्यों, गायों, गदहों और बकरों को खा रहे हैं। तुलसीदास ने इनकी कथा इसीलिए कुछ थोड़ी सी कही है कि ये निश्चय ही श्री रामचंद्रजी के बाण रूपी तीर्थ में शरीरों को त्यागकर परमगति पावेंगे॥3॥

दोहा-

*पुर रखवारे देखि बहु कपि मन कीन्ह बिचार।
अति लघु रूप धरों निसि नगर करौं पइसार॥3॥

भावार्थ:-नगर के बहुसंख्यक रखवालों को देखकर हनुमान्‌जी ने मन में विचार किया कि अत्यंत छोटा रूप धरूँ और रात के समय नगर में प्रवेश करूँ॥3॥

चौपाई :

* मसक समान रूप कपि धरी। लंकहि चलेउ सुमिरि नरहरी॥
नाम लंकिनी एक निसिचरी। सो कह चलेसि मोहि निंदरी॥1॥

भावार्थ:-हनुमान्‌जी मच्छड़ के समान (छोटा सा) रूप धारण कर नर रूप से लीला करने वाले भगवान्‌ श्री रामचंद्रजी का स्मरण करके लंका को चले (लंका के द्वार पर) लंकिनी नाम की एक राक्षसी रहती थी। वह बोली- मेरा निरादर करके (बिना मुझसे पूछे) कहाँ चला जा रहा है?॥1॥

* जानेहि नहीं मरमु सठ मोरा। मोर अहार जहाँ लगि चोरा॥

मुठिका एक महा कपि हनी। रुधिर बमत धरनीं ढनमनी॥2॥

भावार्थ:-हे मूर्ख! तूने मेरा भेद नहीं जाना जहाँ तक (जितने) चोर हैं, वे सब मेरे आहार हैं। महाकपि हनुमान्‌जी ने उसे एक घूँसा मारा, जिससे वह खून की उलटी करती हुई पृथ्वी पर ल़ुढक पड़ी॥2॥

* पुनि संभारि उठी सो लंका। जोरि पानि कर बिनय ससंका॥
जब रावनहि ब्रह्म बर दीन्हा। चलत बिरंच कहा मोहि चीन्हा॥3॥

भावार्थ:-वह लंकिनी फिर अपने को संभालकर उठी और डर के मारे हाथ जोड़कर विनती करने लगी। (वह बोली-) रावण को जब ब्रह्माजी ने वर दिया था, तब चलते समय उन्होंने मुझे राक्षसों के विनाश की यह पहचान बता दी थी कि-॥3॥

* बिकल होसि तैं कपि कें मारे। तब जानेसु निसिचर संघारे॥
तात मोर अति पुन्य बहूता। देखेउँ नयन राम कर दूता॥4॥

भावार्थ:-जब तू बंदर के मारने से व्याकुल हो जाए, तब तू राक्षसों का संहार हुआ जान लेना। हे तात! मेरे बड़े पुण्य हैं, जो मैं श्री रामचंद्रजी के दूत (आप) को नेत्रों से देख पाई॥4॥

दोहा :

* तात स्वर्ग अपबर्ग सुख धरिअ तुला एक अंग।
तूल न ताहि सकल मिलि जो सुख लव सतसंग॥4॥

भावार्थ:-हे तात! स्वर्ग और मोक्ष के सब सुखों को तराजू के एक पलड़े में रखा जाए, तो भी वे सब मिलकर (दूसरे पलड़े पर रखे हुए) उस सुख के बराबर नहीं हो सकते, जो लव (क्षण) मात्र के सत्संग से होता है॥4॥

चौपाई :

* प्रबिसि नगर कीजे सब काजा। हृदयँ राखि कोसलपुर राजा॥

गरल सुधा रिपु करहिं मिताई। गोपद सिंधु अनल सितलाई॥1॥

भावार्थ:-अयोध्यापुरी के राजा श्री रघुनाथजी को हृदय में रखे हुए नगर में प्रवेश करके सब काम कीजिए। उसके लिए विष अमृत हो जाता है, शत्रु मित्रता करने लगते हैं, समुद्र गाय के खुर के बराबर हो जाता है, अग्नि में शीतलता आ जाती है॥1॥

* गरुड़ सुमेरु रेनु सम ताही। राम कृपा करि चितवा जाही॥
अति लघु रूप धरेउ हनुमाना। पैठा नगर सुमिरि भगवाना॥2॥

भावार्थ:-और हे गरुड़जी! सुमेरु पर्वत उसके लिए रज के समान हो जाता है, जिसे श्री रामचंद्रजी ने एक बार कृपा करके देख लिया। तब हनुमान्‌जी ने बहुत ही छोटा रूप धारण किया और भगवान्‌ का स्मरण करके नगर में प्रवेश किया॥2॥

* मंदिर मंदिर प्रति करि सोधा। देखे जहँ तहँ अगनित जोधा॥
गयउ दसानन मंदिर माहीं। अति बिचित्र कहि जात सो नाहीं॥3॥

भावार्थ:-उन्होंने एक-एक (प्रत्येक) महल की खोज की। जहाँ-तहाँ असंख्य योद्धा देखे। फिर वे रावण के महल में गए। वह अत्यंत विचित्र था, जिसका वर्णन नहीं हो सकता॥3॥

* सयन किएँ देखा कपि तेही। मंदिर महुँ न दीखि बैदेही॥
भवन एक पुनि दीख सुहावा। हरि मंदिर तहँ भिन्न बनावा॥4॥

भावार्थ:-हनुमान्‌जी ने उस (रावण) को शयन किए देखा, परंतु महल में जानकीजी नहीं दिखाई दीं। फिर एक सुंदर महल दिखाई दिया। वहाँ (उसमें) भगवान्‌ का एक अलग मंदिर बना हुआ था॥4॥

हनुमान्-विभीषण संवाद

दोहा :

* रामायुध अंकित गृह सोभा बरनि न जाइ।
नव तुलसिका बृंद तहँ देखि हरष कपिराई॥5॥

भावार्थ:-वह महल श्री रामजी के आयुध (धनुष-बाण) के चिह्नों से अंकित था, उसकी शोभा वर्णन नहीं की जा सकती। वहाँ नवीन-नवीन तुलसी के वृक्ष-समूहों को देखकर कपिराज श्री हनुमान्जी हर्षित हुए॥5॥

चौपाई :

* लंका निसिचर निकर निवासा। इहाँ कहाँ सज्जन कर बासा॥
मन महुँ तरक करैं कपि लागा। तेहीं समय बिभीषनु जागा॥1॥

भावार्थ:-लंका तो राक्षसों के समूह का निवास स्थान है। यहाँ सज्जन (साधु पुरुष) का निवास कहाँ? हनुमान्जी मन में इस प्रकार तर्क करने लगे। उसी समय विभीषणजी जागे॥1॥

* राम राम तेहिं सुमिरन कीन्हा। हृदयँ हरष कपि सज्जन चीन्हा॥
एहि सन सठि करिहउँ पहिचानी। साधु ते होइ न कारज हानी॥2॥

भावार्थ:-उन्होंने (विभीषण ने) राम नाम का स्मरण (उच्चारण) किया। हनमान्जी ने उन्हें सज्जन जाना और हृदय में हर्षित हुए। (हनुमान्जी ने विचार किया कि) इनसे हठ करके (अपनी ओर से ही) परिचय करूँगा, क्योंकि साधु से कार्य की हानि नहीं होती। (प्रत्युत लाभ ही होता है)॥2॥

* बिप्र रूप धरि बचन सुनाए। सुनत बिभीषन उठि तहँ आए॥

करि प्रनाम पूँछी कुसलाई। बिप्र कहहु निज कथा बुझाई॥3॥

भावार्थ:-ब्राह्मण का रूप धरकर हनुमान्‌जी ने उन्हें वचन सुनाए (पुकारा)। सुनते ही विभीषणजी उठकर वहाँ आए। प्रणाम करके कुशल पूछी (और कहा कि) हे ब्राह्मणदेव! अपनी कथा समझाकर कहिए॥3॥

* की तुम्ह हरि दासन्ह महँ कोई। मोरें हृदय प्रीति अति होई॥

की तुम्ह रामु दीन अनुरागी। आयहु मोहि करन बड़भागी॥4॥

भावार्थ:-क्या आप हरिभक्तों में से कोई हैं? क्योंकि आपको देखकर मेरे हृदय में अत्यंत प्रेम उमड़ रहा है। अथवा क्या आप दीनों से प्रेम करने वाले स्वयं श्री रामजी ही हैं जो मुझे बड़भागी बनाने (घर-बैठे दर्शन देकर कृतार्थ करने) आए हैं?॥4॥

दोहा :

* तब हनुमंत कही सब राम कथा निज नाम।

सुनत जुगल तन पुलक मन मगन सुमिरि गुन ग्राम॥6॥

भावार्थ:-तब हनुमान्‌जी ने श्री रामचंद्रजी की सारी कथा कहकर अपना नाम बताया। सुनते ही दोनों के शरीर पुलकित हो गए और श्री रामजी के गुण समूहों का स्मरण करके दोनों के मन (प्रेम और आनंद में) मग्न हो गए॥6॥

चौपाई :

* सुनहु पवनसुत रहनि हमारी। जिमि दसनन्हि महुँ जीभ बिचारी॥

तात कबहुँ मोहि जानि अनाथा। करिहहिं कृपा भानुकुल नाथा॥1॥

भावार्थ:-(विभीषणजी ने कहा-) हे पवनपुत्र! मेरी रहनी सुनो। मैं यहाँ वैसे ही रहता हूँ जैसे दाँतों के बीच में बेचारी जीभ। हे तात! मुझे अनाथ जानकर सूर्यकुल के नाथ श्री रामचंद्रजी क्या कभी मुझ पर कृपा करेंगे?॥1॥

*तामस तनु कछु साधन नाहीं। प्रीत न पद सरोज मन माहीं॥

अब मोहि भा भरोस हनुमंता। बिनु हरिकृपा मिलहिं नहिं संता॥2॥

भावार्थ:-मेरा तामसी (राक्षस) शरीर होने से साधन तो कुछ बनता नहीं और न मन में श्री रामचंद्रजी के चरणकमलों में प्रेम ही है, परंतु हे हनुमान्! अब मुझे विश्वास हो गया कि श्री रामजी की मुझ पर कृपा है, क्योंकि हरि की कृपा के बिना संत नहीं मिलते॥2॥

* जौं रघुबीर अनुग्रह कीन्हा। तौ तुम्ह मोहि दरसु हठि दीन्हा॥

सुनहु बिभीषन प्रभु कै रीती। करहिं सदा सेवक पर प्रीति॥3॥

भावार्थ:-जब श्री रघुवीर ने कृपा की है, तभी तो आपने मुझे हठ करके (अपनी ओर से) दर्शन दिए हैं। (हनुमान्जी ने कहा-) हे विभीषणजी! सुनिए, प्रभु की यही रीति है कि वे सेवक पर सदा ही प्रेम किया करते हैं॥3॥

* कहहु कवन मैं परम कुलीना। कपि चंचल सबहीं बिधि हीना॥

प्रात लेइ जो नाम हमारा। तेहि दिन ताहि न मिलै अहारा॥4॥

भावार्थ:-भला कहिए, मैं ही कौन बड़ा कुलीन हूँ? (जाति का) चंचल वानर हूँ और सब प्रकार से नीच हूँ, प्रातःकाल जो हम लोगों (बंदरों) का नाम ले ले तो उस दिन उसे भोजन न मिले॥4॥

दोहा :

* अस मैं अधम सखा सुनु मोहू पर रघुबीर।

कीन्हीं कृपा सुमिरि गुन भरे बिलोचन नीर॥7॥

भावार्थ:-हे सखा! सुनिए, मैं ऐसा अधम हूँ, पर श्री रामचंद्रजी ने तो मुझ पर भी कृपा ही की है। भगवान् के गुणों का स्मरण करके हनुमान्जी के दोनों नेत्रों में (प्रेमाश्रुओं का) जल भर आया॥7॥

चौपाई :

* जानतहूँ अस स्वामि बिसारी। फिरहिं ते काहे न होहिं दुखारी॥
एहि बिधि कहत राम गुन ग्रामा। पावा अनिर्बाच्य बिश्रामा॥1॥

भावार्थ:-जो जानते हुए भी ऐसे स्वामी (श्री रघुनाथजी) को भुलाकर (विषयों के पीछे) भटकते फिरते हैं, वे दुःखी क्यों न हों? इस प्रकार श्री रामजी के गुण समूहों को कहते हुए उन्होंने अनिर्वचनीय (परम) शांति प्राप्त की॥1॥

* पुनि सब कथा बिभीषन कही। जेहि बिधि जनकसुता तहँ रही॥
तब हनुमंत कहा सुनु भ्राता। देखी चहउँ जानकी माता॥2॥

भावार्थ:-फिर विभीषणजी ने, श्री जानकीजी जिस प्रकार वहाँ (लंका में) रहती थीं, वह सब कथा कही। तब हनुमान्‌जी ने कहा- हे भाई सुनो, मैं जानकी माता को देखता चाहता हूँ॥2॥

हनुमान्‌जी का अशोक वाटिका में सीताजी को देकर दुःखी होना और रावण का सीताजी को भय दिखलाना

* जुगुति बिभीषन सकल सुनाई। चलेउ पवन सुत बिदा कराई॥
करि सोइ रूप गयउ पुनि तहवाँ। बन असोक सीता रह जहवाँ॥3॥

भावार्थ:-विभीषणजी ने (माता के दर्शन की) सब युक्तियाँ (उपाय) कह सुनाईं। तब हनुमान्‌जी विदा लेकर चले। फिर वही (पहले का मसक

सरीखा) रूप धरकर वहाँ गए, जहाँ अशोक वन में (वन के जिस भाग में) सीताजी रहती थीं॥3॥

* देखि मनहि महुँ कीन्ह प्रनामा। बैठेहिं बीति जात निसि जामा॥
कृस तनु सीस जटा एक बेनी। जपति हृदयँ रघुपति गुन श्रेनी॥4॥

भावार्थ:-सीताजी को देखकर हनुमान्‌जी ने उन्हें मन ही में प्रणाम किया। उन्हें बैठे ही बैठे रात्रि के चारों पहर बीत जाते हैं। शरीर दुबला हो गया है, सिर पर जटाओं की एक वेणी (लट) है। हृदय में श्री रघुनाथजी के गुण समूहों का जाप (स्मरण) करती रहती हैं॥4॥

दोहा :

* निज पद नयन दिएँ मन राम पद कमल लीन।
परम दुखी भा पवनसुत देखि जानकी दीन॥8॥

भावार्थ:-श्री जानकीजी नेत्रों को अपने चरणों में लगाए हुए हैं (नीचे की ओर देख रही हैं) और मन श्री रामजी के चरण कमलों में लीन है। जानकीजी को दीन (दुःखी) देखकर पवनपुत्र हनुमान्‌जी बहुत ही दुःखी हुए॥8॥

चौपाई :

* तरु पल्लव महँ रहा लुकाई। करइ बिचार करौं का भाई॥
तेहि अवसर रावनु तहँ आवा। संग नारि बहु किएँ बनावा॥1॥

भावार्थ:-हनुमान्‌जी वृक्ष के पत्तों में छिप रहे और विचार करने लगे कि हे भाई! क्या करूँ (इनका दुःख कैसे दूर करूँ)? उसी समय बहुत सी स्त्रियों को साथ लिए सज-धजकर रावण वहाँ आया॥1॥

* बहु बिधि खल सीतहि समुझावा। साम दान भय भेद देखावा॥
कह रावनु सुनु सुमुखि सयानी। मंदोदरी आदि सब रानी॥2॥

भावार्थ:-उस दुष्ट ने सीताजी को बहुत प्रकार से समझाया। साम, दान, भय और भेद दिखलाया। रावण ने कहा- हे सुमुखि! हे सयानी! सुनो! मंदोदरी आदि सब रानियों को-॥2॥

* तव अनुचरीं करउँ पन मोरा। एक बार बिलोकु मम ओरा॥
तृन धरि ओट कहति बैदेही। सुमिरि अवधपति परम सनेही॥3॥

भावार्थ:-मैं तुम्हारी दासी बना दूँगा, यह मेरा प्रण है। तुम एक बार मेरी ओर देखो तो सही! अपने परम स्नेही कोसलाधीश श्री रामचंद्रजी का स्मरण करके जानकीजी तिनके की आड़ (परदा) करके कहने लगीं-॥3॥

* सुनु दसमुख खद्योत प्रकासा। कबहुँ कि नलिनी करइ बिकासा॥
अस मन समुझु कहति जानकी। खल सुधि नहिं रघुबीर बान की॥4॥

भावार्थ:-हे दशमुख! सुन, जुगनू के प्रकाश से कभी कमलिनी खिल सकती है? जानकीजी फिर कहती हैं- तू (अपने लिए भी) ऐसा ही मन में समझ ले। रे दुष्ट! तुझे श्री रघुवीर के बाण की खबर नहीं है॥4॥

* सठ सूनें हरि आनेहि मोही। अधम निलज्ज लाज नहिं तोही॥5॥

भावार्थ:-रे पापी! तू मुझे सूने में हर लाया है। रे अधम! निर्लज्ज! तुझे लज्जा नहीं आती?॥5॥

दोहा :

* आपुहि सुनि खद्योत सम रामहि भानु समान।
परुष बचन सुनि काढ़ि असि बोला अति खिसिआन॥9॥

भावार्थ:-अपने को जुगनू के समान और रामचंद्रजी को सूर्य के समान सुनकर और सीताजी के कठोर वचनों को सुनकर रावण तलवार निकालकर बड़े गुस्से में आकर बोला-॥9॥

चौपाई :

गीताप्रेस गोरखपुर

* सीता तैं मम कृत अपमाना। कटिहउँ तव सिर कठिन कृपाना॥

नाहिं त सपदि मानु मम बानी। सुमुखि होति न त जीवन हानी॥1॥
भावार्थ:-सीता! तूने मेरा अपनाम किया है। मैं तेरा सिर इस कठोर कृपाण से काट डालूँगा। नहीं तो (अब भी) जल्दी मेरी बात मान ले। हे सुमुखि! नहीं तो जीवन से हाथ धोना पड़ेगा॥1॥

* स्याम सरोज दाम सम सुंदर। प्रभु भुज करि कर सम दसकंधर॥

सो भुज कंठ कि तव असि घोरा। सुनु सठ अस प्रवान पन मोरा॥2॥
भावार्थ:-(सीताजी ने कहा-) हे दशग्रीव! प्रभु की भुजा जो श्याम कमल की माला के समान सुंदर और हाथी की सूँड के समान (पुष्ट तथा विशाल) है, या तो वह भुजा ही मेरे कंठ में पड़ेगी या तेरी भयानक तलवार ही। रे शठ! सुन, यही मेरा सच्चा प्रण है॥2॥

* चंद्रहास हरु मम परितापं। रघुपति बिरह अनल संजातं॥

सीतल निसित बहसि बर धारा। कह सीता हरु मम दुख भारा॥3॥
भावार्थ:-सीताजी कहती हैं- हे चंद्रहास (तलवार)! श्री रघुनाथजी के विरह की अग्नि से उत्पन्न मेरी बड़ी भारी जलन को तू हर ले, हे तलवार! तू शीतल, तीव्र और श्रेष्ठ धारा बहाती है (अर्थात् तेरी धारा ठंडी और तेज है), तू मेरे दुःख के बोझ को हर ले॥3॥
चौपाई :
* सुनत बचन पुनि मारन धावा। मयतनयाँ कहि नीति बुझावा॥

कहेसि सकल निसिचरिन्ह बोलाई। सीतहि बहु बिधि त्रासहु जाई॥4॥
भावार्थ:-सीताजी के ये वचन सुनते ही वह मारने दौड़ा। तब मय दानव की पुत्री मन्दोदरी ने नीति कहकर उसे समझाया। तब रावण ने सब दासियों को बुलाकर कहा कि जाकर सीता को बहुत प्रकार से भय दिखलाओ॥4॥

* मास दिवस महुँ कहा न माना। तौ मैं मारबि काढ़ि कृपाना॥5॥

भावार्थ:-यदि महीने भर में यह कहा न माने तो मैं इसे तलवार निकालकर मार डालूँगा॥5॥

दोहा :

* भवन गयउ दसकंधर इहाँ पिसाचिनि बृंद।
सीतहि त्रास देखावहिं धरहिं रूप बहु मंद॥10॥

भावार्थ:-(यों कहकर) रावण घर चला गया। यहाँ राक्षसियों के समूह बहुत से बुरे रूप धरकर सीताजी को भय दिखलाने लगे॥10॥

चौपाई :

* त्रिजटा नाम राच्छसी एका। राम चरन रति निपुन बिबेका॥
सबन्हौ बोलि सुनाएसि सपना। सीतहि सेइ करहु हित अपना॥1॥

भावार्थ:-उनमें एक त्रिजटा नाम की राक्षसी थी। उसकी श्री रामचंद्रजी के चरणों में प्रीति थी और वह विवेक (ज्ञान) में निपुण थी। उसने सबों को बुलाकर अपना स्वप्न सुनाया और कहा- सीताजी की सेवा करके अपना कल्याण कर लो॥1॥

* सपनें बानर लंका जारी। जातुधान सेना सब मारी॥
खर आरूढ़ नगन दससीसा। मुंडित सिर खंडित भुज बीसा॥2॥

भावार्थ:-स्वप्न (मैंने देखा कि) एक बंदर ने लंका जला दी। राक्षसों की सारी सेना मार डाली गई। रावण नंगा है और गदहे पर सवार है। उसके सिर मुँडे हुए हैं, बीसों भुजाएँ कटी हुई हैं॥2॥

* एहि बिधि सो दच्छिन दिसि जाई। लंका मनहुँ बिभीषन पाई॥
नगर फिरी रघुबीर दोहाई। तब प्रभु सीता बोलि पठाई॥3॥

भावार्थ:-इस प्रकार से वह दक्षिण (यमपुरी की) दिशा को जा रहा है और मानो लंका विभीषण ने पाई है। नगर में श्री रामचंद्रजी की दुहाई फिर गई। तब प्रभु ने सीताजी को बुला भेजा॥3॥

* यह सपना मैं कहउँ पुकारी। होइहि सत्य गएँ दिन चारी॥

तासु बचन सुनि ते सब डरीं। जनकसुता के चरनन्हि परीं॥4॥

भावार्थ:-मैं पुकारकर (निश्चय के साथ) कहती हूँ कि यह स्वप्न चार (कुछ ही) दिनों बाद सत्य होकर रहेगा। उसके वचन सुनकर वे सब राक्षसियाँ डर गईं और जानकीजी के चरणों पर गिर पड़ीं॥4॥

श्री सीता-त्रिजटा संवाद

दोहा :

* जहँ तहँ गईं सकल तब सीता कर मन सोच।

मास दिवस बीतें मोहि मारिहि निसिचर पोच॥11॥

भावार्थ:-तब (इसके बाद) वे सब जहाँ-तहाँ चली गईं। सीताजी मन में सोच करने लगीं कि एक महीना बीत जाने पर नीच राक्षस रावण मुझे मारेगा॥11॥

चौपाई :

* त्रिजटा सन बोलीं कर जोरी। मातु बिपति संगिनि तैं मोरी॥

तजौं देह करु बेगि उपाई। दुसह बिरहु अब नहिं सहि जाई॥1॥

भावार्थ:-सीताजी हाथ जोड़कर त्रिजटा से बोलीं- हे माता! तू मेरी विपत्ति की संगिनी है। जल्दी कोई ऐसा उपाय कर जिससे मैं शरीर छोड़ सकूँ। विरह असह्म हो चला है, अब यह सहा नहीं जाता॥1॥

* आनि काठ रचु चिता बनाई। मातु अनल पुनि देहि लगाई॥
सत्य करहि मम प्रीति सयानी। सुनै को श्रवन सूल सम बानी॥2॥

भावार्थ:-काठ लाकर चिता बनाकर सजा दे। हे माता! फिर उसमें आग लगा दे। हे सयानी! तू मेरी प्रीति को सत्य कर दे। रावण की शूल के समान दुःख देने वाली वाणी कानों से कौन सुने?॥2॥

* सुनत बचन पद गहि समुझाएसि। प्रभु प्रताप बल सुजसु सुनाएसि॥
निसि न अनल मिल सुनु सुकुमारी। अस कहि सो निज भवन सिधारी।3॥

भावार्थ:-सीताजी के वचन सुनकर त्रिजटा ने चरण पकड़कर उन्हें समझाया और प्रभु का प्रताप, बल और सुयश सुनाया। (उसने कहा-) हे सुकुमारी! सुनो रात्रि के समय आग नहीं मिलेगी। ऐसा कहकर वह अपने घर चली गई॥3॥

* कह सीता बिधि भा प्रतिकूला। मिलिहि न पावक मिटिहि न सूला॥
देखिअत प्रगट गगन अंगारा। अवनि न आवत एकउ तारा॥4॥

भावार्थ:-सीताजी (मन ही मन) कहने लगीं- (क्या करूँ) विधाता ही विपरीत हो गया। न आग मिलेगी, न पीड़ा मिटेगी। आकाश में अंगारे प्रकट दिखाई दे रहे हैं, पर पृथ्वी पर एक भी तारा नहीं आता॥4॥

* पावकमय ससि स्रवत न आगी। मानहुँ मोहि जानि हतभागी॥
सुनहि बिनय मम बिटप असोका। सत्य नाम करु हरु मम सोका॥5॥

भावार्थ:-चंद्रमा अग्निमय है, किंतु वह भी मानो मुझे हतभागिनी जानकर आग नहीं बरसाता। हे अशोक वृक्ष! मेरी विनती सुन। मेरा शोक हर ले और अपना (अशोक) नाम सत्य कर॥5॥

*नूतन किसलय अनल समाना। देहि अगिनि जनि करहि निदाना॥
देखि परम बिरहाकुल सीता। सो छन कपिहि कलप सम बीता॥6॥

भावार्थ:-तेरे नए-नए कोमल पत्ते अग्नि के समान हैं। अग्नि दे, विरह रोग का अंत मत कर (अर्थात् विरह रोग को बढ़ाकर सीमा तक न पहुँचा) सीताजी को विरह से परम व्याकुल देखकर वह क्षण हनुमान्‌जी को कल्प के समान बीता॥6॥

श्री सीता-हनुमान् संवाद

सोरठा :
* कपि करि हृदयँ बिचार दीन्हि मुद्रिका डारि तब।
जनु असोक अंगार दीन्ह हरषि उठि कर गहेउ॥12॥

भावार्थ:-तब हनुमान्‌जी ने हृदय में विचार कर (सीताजी के सामने) अँगूठी डाल दी, मानो अशोक ने अंगारा दे दिया। (यह समझकर) सीताजी ने हर्षित होकर उठकर उसे हाथ में ले लिया॥12॥

चौपाई :
* तब देखी मुद्रिका मनोहर। राम नाम अंकित अति सुंदर॥
चकित चितव मुदरी पहिचानी। हरष बिषाद हृदयँ अकुलानी॥1॥

भावार्थ:-तब उन्होंने राम-नाम से अंकित अत्यंत सुंदर एवं मनोहर अँगूठी देखी। अँगूठी को पहचानकर सीताजी आश्चर्यचकित होकर उसे देखने लगीं और हर्ष तथा विषाद से हृदय में अकुला उठीं॥1॥

* जीति को सकइ अजय रघुराई। माया तें असि रचि नहिं जाई॥
सीता मन बिचार कर नाना। मधुर बचन बोलेउ हनुमाना॥2॥

भावार्थ:-(वे सोचने लगीं-) श्री रघुनाथजी तो सर्वथा अजेय हैं, उन्हें कौन जीत सकता है? और माया से ऐसी (माया के उपादान से सर्वथा रहित दिव्य, चिन्मय) अँगूठी बनाई नहीं जा सकती। सीताजी मन में अनेक प्रकार के विचार कर रही थीं। इसी समय हनुमान्‌जी मधुर वचन बोले-॥2॥

* रामचंद्र गुन बरनैं लागा। सुनतहिं सीता कर दुख भागा॥
लागीं सुनैं श्रवन मन लाई। आदिहु तें सब कथा सुनाई॥3॥

भावार्थ:-वे श्री रामचंद्रजी के गुणों का वर्णन करने लगे, (जिनके) सुनते ही सीताजी का दुःख भाग गया। वे कान और मन लगाकर उन्हें सुनने लगीं। हनुमान्‌जी ने आदि से लेकर अब तक की सारी कथा कह सुनाई॥3॥

* श्रवनामृत जेहिं कथा सुहाई। कही सो प्रगट होति किन भाई॥
तब हनुमंत निकट चलि गयऊ। फिरि बैठीं मन बिसमय भयऊ ॥4॥

भावार्थ:-(सीताजी बोलीं-) जिसने कानों के लिए अमृत रूप यह सुंदर कथा कही, वह हे भाई! प्रकट क्यों नहीं होता? तब हनुमान्‌जी पास चले गए। उन्हें देखकर सीताजी फिरकर (मुख फेरकर) बैठ गईं? उनके मन में आश्चर्य हुआ॥4॥

* राम दूत मैं मातु जानकी। सत्य सपथ करुनानिधान की॥
यह मुद्रिका मातु मैं आनी। दीन्हि राम तुम्ह कहँ सहिदानी॥5॥

भावार्थ:-(हनुमान्‌जी ने कहा-) हे माता जानकी मैं श्री रामजी का दूत हूँ। करुणानिधान की सच्ची शपथ करता हूँ, हे माता! यह अँगूठी मैं ही लाया

हूँ। श्री रामजी ने मुझे आपके लिए यह सहिदानी (निशानी या पहिचान) दी है॥5॥

* नर बानरहि संग कहु कैसें। कही कथा भइ संगति जैसें॥6॥

भावार्थ:-(सीताजी ने पूछा-) नर और वानर का संग कहो कैसे हुआ? तब हनुमानजी ने जैसे संग हुआ था, वह सब कथा कही॥6॥

दोहा :

* कपि के बचन सप्रेम सुनि उपजा मन बिस्वास
जाना मन क्रम बचन यह कृपासिंधु कर दास॥13॥

भावार्थ:-हनुमान्‌जी के प्रेमयक्त वचन सुनकर सीताजी के मन में विश्वास उत्पन्न हो गया, उन्होंने जान लिया कि यह मन, वचन और कर्म से कृपासागर श्री रघुनाथजी का दास है॥13॥

चौपाई :

* हरिजन जानि प्रीति अति गाढ़ी। सजल नयन पुलकावलि बाढ़ी॥
बूड़त बिरह जलधि हनुमाना। भयहु तात मो कहुँ जलजाना॥1॥

भावार्थ:-भगवान का जन (सेवक) जानकर अत्यंत गाढ़ी प्रीति हो गई। नेत्रों में (प्रेमाश्रुओं का) जल भर आया और शरीर अत्यंत पुलकित हो गया (सीताजी ने कहा-) हे तात हनुमान्! विरहसागर में डूबती हुई मुझको तुम जहाज हुए॥1॥

* अब कहु कुसल जाउँ बलिहारी। अनुज सहित सुख भवन खरारी॥
कोमलचित कृपाल रघुराई। कपि केहि हेतु धरी निठुराई॥2॥

भावार्थ:-मैं बलिहारी जाती हूँ, अब छोटे भाई लक्ष्मणजी सहित खर के शत्रु सुखधाम प्रभु का कुशल-मंगल कहो। श्री रघुनाथजी तो कोमल हृदय और कृपालु हैं। फिर हे हनुमान्! उन्होंने किस कारण यह निष्ठुरता धारण कर ली है?॥2॥

* सहज बानि सेवक सुखदायक। कबहुँक सुरति करत रघुनायक॥
कबहुँ नयन मम सीतल ताता। होइहहिं निरखि स्याम मृदु गाता॥3॥

भावार्थ:-सेवक को सुख देना उनकी स्वाभाविक बान है। वे श्री रघुनाथजी क्या कभी मेरी भी याद करते हैं? हे तात! क्या कभी उनके कोमल साँवले अंगों को देखकर मेरे नेत्र शीतल होंगे?॥3॥

* बचनु न आव नयन भरे बारी। अहह नाथ हौं निपट बिसारी॥
देखि परम बिरहाकुल सीता। बोला कपि मृदु बचन बिनीता॥4॥

भावार्थ:-(मुँह से) वचन नहीं निकलता, नेत्रों में (विरह के आँसुओं का) जल भर आया। (बड़े दुःख से वे बोलीं-) हा नाथ! आपने मुझे बिलकुल ही भुला दिया! सीताजी को विरह से परम व्याकुल देखकर हनुमान्‌जी कोमल और विनीत वचन बोले-॥4॥

* मातु कुसल प्रभु अनुज समेता। तव दुख दुखी सुकृपा निकेता॥
जनि जननी मानहु जियँ ऊना। तुम्ह ते प्रेमु राम कें दूना॥5॥

भावार्थ:-हे माता! सुंदर कृपा के धाम प्रभु भाई लक्ष्मणजी के सहित (शरीर से) कुशल हैं, परंतु आपके दुःख से दुःखी हैं। हे माता! मन में ग्लानि न मानिए (मन छोटा करके दुःख न कीजिए)। श्री रामचंद्रजी के हृदय में आपसे दूना प्रेम है॥5॥

दोहा :

* रघुपति कर संदेसु अब सुनु जननी धरि धीर।
अस कहि कपि गदगद भयउ भरे बिलोचन नीर॥14॥

भावार्थ:-हे माता! अब धीरज धरकर श्री रघुनाथजी का संदेश सुनिए। ऐसा कहकर हनुमान्‌जी प्रेम से गद्गद हो गए। उनके नेत्रों में (प्रेमाश्रुओं का) जल भर आया॥14॥

चौपाई :

* कहेउ राम बियोग तव सीता। मो कहुँ सकल भए बिपरीता॥
नव तरु किसलय मनहुँ कृसानू। कालनिसा सम निसि ससि भानू॥1॥

भावार्थ:-(हनुमान्‌जी बोले-) श्री रामचंद्रजी ने कहा है कि हे सीते! तुम्हारे वियोग में मेरे लिए सभी पदार्थ प्रतिकूल हो गए हैं। वृक्षों के नए-नए कोमल पत्ते मानो अग्नि के समान, रात्रि कालरात्रि के समान, चंद्रमा सूर्य के समान॥1॥

*कुबलय बिपिन कुंत बन सरिसा। बारिद तपत तेल जनु बरिसा॥
जे हित रहे करत तेइ पीरा। उरग स्वास सम त्रिबिध समीरा॥2॥

भावार्थ:-और कमलों के वन भालों के वन के समान हो गए हैं। मेघ मानो खौलता हुआ तेल बरसाते हैं। जो हित करने वाले थे, वे ही अब पीड़ा देने लगे हैं। त्रिविध (शीतल, मंद, सुगंध) वायु साँप के श्वास के समान (जहरीली और गरम) हो गई है॥2॥

* कहेहू तें कछु दुख घटि होई। काहि कहौं यह जान न कोई॥
तत्व प्रेम कर मम अरु तोरा। जानत प्रिया एकु मनु मोरा॥3॥

भावार्थ:-मन का दुःख कह डालने से भी कुछ घट जाता है। पर कहूँ किससे? यह दुःख कोई जानता नहीं। हे प्रिये! मेरे और तेरे प्रेम का तत्त्व (रहस्य) एक मेरा मन ही जानता है॥3॥

* सो मनु सदा रहत तोहि पाहीं। जानु प्रीति रसु एतनेहि माहीं॥
प्रभु संदेसु सुनत बैदेही। मगन प्रेम तन सुधि नहिं तेही॥4॥

भावार्थ:-और वह मन सदा तेरे ही पास रहता है। बस, मेरे प्रेम का सार इतने में ही समझ ले। प्रभु का संदेश सुनते ही जानकीजी प्रेम में मग्न हो गईं। उन्हें शरीर की सुध न रही॥4॥

* कह कपि हृदयँ धीर धरु माता। सुमिरु राम सेवक सुखदाता॥

उर आनहु रघुपति प्रभुताई। सुनि मम बचन तजहु कदराई॥5॥

भावार्थ:-हनुमान्‌जी ने कहा- हे माता! हृदय में धैर्य धारण करो और सेवकों को सुख देने वाले श्री रामजी का स्मरण करो। श्री रघुनाथजी की प्रभुता को हृदय में लाओ और मेरे वचन सुनकर कायरता छोड़ दो॥5॥

दोहा :

* निसिचर निकर पतंग सम रघुपति बान कृसानु।
जननी हृदयँ धीर धरु जरे निसाचर जानु॥15॥

भावार्थ:-राक्षसों के समूह पतंगों के समान और श्री रघुनाथजी के बाण अग्नि के समान हैं। हे माता! हृदय में धैर्य धारण करो और राक्षसों को जला ही समझो॥15॥

चौपाई :

* जौं रघुबीर होति सुधि पाई। करते नहिं बिलंबु रघुराई॥
राम बान रबि उएँ जानकी। तम बरुथ कहँ जातुधान की॥1॥

भावार्थ:-श्री रामचंद्रजी ने यदि खबर पाई होती तो वे बिलंब न करते। हे जानकीजी! रामबाण रूपी सूर्य के उदय होने पर राक्षसों की सेना रूपी अंधकार कहाँ रह सकता है?॥1॥

* अबहिं मातु मैं जाउँ लवाई। प्रभु आयुस नहिं राम दोहाई॥
कछुक दिवस जननी धरु धीरा। कपिन्ह सहित अइहहिं रघुबीरा॥2॥

भावार्थ:-हे माता! मैं आपको अभी यहाँ से लिवा जाऊँ, पर श्री रामचंद्रजी की शपथ है, मुझे प्रभु (उन) की आज्ञा नहीं है। (अतः) हे माता! कुछ दिन और धीरज धरो। श्री रामचंद्रजी वानरों सहित यहाँ आएँगे॥2॥

*निसिचर मारि तोहि लै जैहहिं। तिहुँ पुर नारदादि जसु गैहहिं॥
हैं सुत कपि सब तुम्हहि समाना। जातुधान अति भट बलवाना॥3॥

भावार्थ:-और राक्षसों को मारकर आपको ले जाएँगे। नारद आदि (ऋषि-मुनि) तीनों लोकों में उनका यश गाएँगे। (सीताजी ने कहा-) हे पुत्र! सब वानर तुम्हारे ही समान (नन्हें-नन्हें से) होंगे, राक्षस तो बड़े बलवान, योद्धा हैं॥3॥

* मोरें हृदय परम संदेहा। सुनि कपि प्रगट कीन्हि निज देहा॥
कनक भूधराकार सरीरा। समर भयंकर अतिबल बीरा॥4॥

भावार्थ:-अतः मेरे हृदय में बड़ा भारी संदेह होता है (कि तुम जैसे बंदर राक्षसों को कैसे जीतेंगे!)। यह सुनकर हनुमान्जी ने अपना शरीर प्रकट किया। सोने के पर्वत (सुमेरु) के आकार का (अत्यंत विशाल) शरीर था, जो युद्ध में शत्रुओं के हृदय में भय उत्पन्न करने वाला, अत्यंत बलवान् और वीर था॥4॥

* सीता मन भरोस तब भयऊ। पुनि लघु रूप पवनसुत लयऊ॥5॥

भावार्थ:-तब (उसे देखकर) सीताजी के मन में विश्वास हुआ। हनुमान्जी ने फिर छोटा रूप धारण कर लिया॥5॥

दोहा :

* सुनु माता साखामृग नहिं बल बुद्धि बिसाल।
प्रभु प्रताप तें गरुड़हि खाइ परम लघु ब्याल॥16॥

भावार्थ:-हे माता! सुनो, वानरों में बहुत बल-बुद्धि नहीं होती, परंतु प्रभु के प्रताप से बहुत छोटा सर्प भी गरुड़ को खा सकता है। (अत्यंत निर्बल भी महान् बलवान् को मार सकता है)॥16॥

चौपाई :

* मन संतोष सुनत कपि बानी। भगति प्रताप तेज बल सानी॥
आसिष दीन्हि राम प्रिय जाना। होहु तात बल सील निधाना॥1॥

भावार्थ:-भक्ति, प्रताप, तेज और बल से सनी हुई हनुमान्जी की वाणी सुनकर सीताजी के मन में संतोष हुआ। उन्होंने श्री रामजी के प्रिय जानकर हनुमान्जी को आशीर्वाद दिया कि हे तात! तुम बल और शील के निधान होओ॥1॥

*अजर अमर गुननिधि सुत होहू। करहुँ बहुत रघुनायक छोहू॥
करहुँ कृपा प्रभु अस सुनि काना। निर्भर प्रेम मगन हनुमाना॥2॥

भावार्थ:-हे पुत्र! तुम अजर (बुढ़ापे से रहित), अमर और गुणों के खजाने होओ। श्री रघुनाथजी तुम पर बहुत कृपा करें। 'प्रभु कृपा करें' ऐसा कानों से सुनते ही हनुमान्जी पूर्ण प्रेम में मग्न हो गए॥2॥

*बार बार नाएसि पद सीसा। बोला बचन जोरि कर कीसा॥
अब कृतकृत्य भयउँ मैं माता। आसिष तव अमोघ बिख्याता॥3॥

भावार्थ:-हनुमान्जी ने बार-बार सीताजी के चरणों में सिर नवाया और फिर हाथ जोड़कर कहा- हे माता! अब मैं कृतार्थ हो गया। आपका आशीर्वाद अमोघ (अचूक) है, यह बात प्रसिद्ध है॥3॥

हनुमान्जी द्वारा अशोक वाटिका विध्वंस, अक्षय कुमार वध और मेघनाद का हनुमान्जी को नागपाश में बाँधकर सभा में ले जाना

दोहा :

* देखि बुद्धि बल निपुन कपि कहेउ जानकीं जाहु।
रघुपति चरन हृदयँ धरि तात मधुर फल खाहु॥17॥

भावार्थ:-हनुमान्‌जी को बुद्धि और बल में निपुण देखकर जानकीजी ने कहा- जाओ। हे तात! श्री रघुनाथजी के चरणों को हृदय में धारण करके मीठे फल खाओ॥17॥

चौपाई :

* चलेउ नाइ सिरु पैठेउ बागा। फल खाएसि तरु तोरैं लागा॥

रहे तहाँ बहु भट रखवारे। कछु मारेसि कछु जाइ पुकारे॥1॥

भावार्थ:-वे सीताजी को सिर नवाकर चले और बाग में घुस गए। फल खाए और वृक्षों को तोड़ने लगे। वहाँ बहुत से योद्धा रखवाले थे। उनमें से कुछ को मार डाला और कुछ ने जाकर रावण से पुकार की-॥1॥

* नाथ एक आवा कपि भारी। तेहिं असोक बाटिका उजारी॥

खाएसि फल अरु बिटप उपारे। रच्छक मर्दि मर्दि महि डारे॥2॥

भावार्थ:-(और कहा-) हे नाथ! एक बड़ा भारी बंदर आया है। उसने अशोक वाटिका उजाड़ डाली। फल खाए, वृक्षों को उखाड़ डाला और रखवालों को मसल-मसलकर जमीन पर डाल दिया॥2॥

* सुनि रावन पठए भट नाना। तिन्हहि देखि गर्जेउ हनुमाना॥

सब रजनीचर कपि संघारे। गए पुकारत कछु अधमारे॥3॥

भावार्थ:-यह सुनकर रावण ने बहुत से योद्धा भेजे। उन्हें देखकर हनुमान्‌जी ने गर्जना की। हनुमान्‌जी ने सब राक्षसों को मार डाला, कुछ जो अधमरे थे, चिल्लाते हुए गए॥3॥

* पुनि पठयउ तेहिं अच्छकुमारा। चला संग लै सुभट अपारा॥

आवत देखि बिटप गहि तर्जा। ताहि निपाति महाधुनि गर्जा॥4॥

भावार्थ:-फिर रावण ने अक्षयकुमार को भेजा। वह असंख्य श्रेष्ठ योद्धाओं को साथ लेकर चला। उसे आते देखकर हनुमान्‌जी ने एक वृक्ष (हाथ में)

लेकर ललकारा और उसे मारकर महाध्वनि (बड़े जोर) से गर्जना की॥4॥

दोहा :

* कछु मारेसि कछु मर्देसि कछु मिलएसि धरि धूरि।

कछु पुनि जाइ पुकारे प्रभु मर्कट बल भूरि॥18॥

भावार्थ:-उन्होंने सेना में से कुछ को मार डाला और कुछ को मसल डाला और कुछ को पकड़-पकड़कर धूल में मिला दिया। कुछ ने फिर जाकर पुकार की कि हे प्रभु! बंदर बहुत ही बलवान्‌ है॥18॥

चौपाई :

* सुनि सुत बध लंकेस रिसाना। पठएसि मेघनाद बलवाना॥

मारसि जनि सुत बाँधेसु ताही। देखिअ कपिहि कहाँ कर आही॥1॥

भावार्थ:-पुत्र का वध सुनकर रावण क्रोधित हो उठा और उसने (अपने जेठे पुत्र) बलवान्‌ मेघनाद को भेजा। (उससे कहा कि-) हे पुत्र! मारना नहीं उसे बाँध लाना। उस बंदर को देखा जाए कि कहाँ का है॥1॥

* चला इंद्रजित अतुलित जोधा। बंधु निधन सुनि उपजा क्रोधा॥

कपि देखा दारुन भट आवा। कटकटाइ गर्जा अरु धावा॥2॥

भावार्थ:-इंद्र को जीतने वाला अतुलनीय योद्धा मेघनाद चला। भाई का मारा जाना सुन उसे क्रोध हो आया। हनुमान्‌जी ने देखा कि अबकी भयानक योद्धा आया है। तब वे कटकटाकर गर्जे और दौड़े॥3॥

* अति बिसाल तरु एक उपारा। बिरथ कीन्ह लंकेस कुमारा॥

रहे महाभट ताके संगा। गहि गहि कपि मर्दई निज अंगा॥3॥

भावार्थ:-उन्होंने एक बहुत बड़ा वृक्ष उखाड़ लिया और (उसके प्रहार से) लंकेश्वर रावण के पुत्र मेघनाद को बिना रथ का कर दिया। (रथ को

तोड़कर उसे नीचे पटक दिया)। उसके साथ जो बड़े-बड़े योद्धा थे, उनको पकड़-पकड़कर हनुमान्‌जी अपने शरीर से मसलने लगे॥3॥

* तिन्हहि निपाति ताहि सन बाजा। भिरे जुगल मानहुँ गजराजा॥
मुठिका मारि चढ़ा तरु जाई। ताहि एक छन मुरुछा आई॥4॥

भावार्थ:-उन सबको मारकर फिर मेघनाद से लड़ने लगे। (लड़ते हुए वे ऐसे मालूम होते थे) मानो दो गजराज (श्रेष्ठ हाथी) भिड़ गए हों। हनुमान्‌जी उसे एक घूँसा मारकर वृक्ष पर जा चढ़े। उसको क्षणभर के लिए मूर्च्छा आ गई॥4॥

* उठि बहोरि कीन्हिसि बहु माया। जीति न जाइ प्रभंजन जाया॥5॥

भावार्थ:-फिर उठकर उसने बहुत माया रची, परंतु पवन के पुत्र उससे जीते नहीं जाते॥5॥

दोहा :

* ब्रह्म अस्त्र तेहि साँधा कपि मन कीन्ह बिचार।
जौं न ब्रह्मसर मानउँ महिमा मिटइ अपार॥19॥

भावार्थ:-अंत में उसने ब्रह्मास्त्र का संधान (प्रयोग) किया, तब हनुमान्‌जी ने मन में विचार किया कि यदि ब्रह्मास्त्र को नहीं मानता हूँ तो उसकी अपार महिमा मिट जाएगी॥19॥

चौपाई :

* ब्रह्मबान कपि कहुँ तेहिं मारा। परतिहुँ बार कटकु संघारा॥
तेहिं देखा कपि मुरुछित भयऊ। नागपास बाँधेसि लै गयऊ॥1॥

भावार्थ:-उसने हनुमान्‌जी को ब्रह्मबाण मारा, (जिसके लगते ही वे वृक्ष से नीचे गिर पड़े), परंतु गिरते समय भी उन्होंने बहुत सी सेना मार

डाली। जब उसने देखा कि हनुमान्‌जी मूर्छित हो गए हैं, तब वह उनको नागपाश से बाँधकर ले गया॥1॥

* जासु नाम जपि सुनहु भवानी। भव बंधन काटहिं नर ग्यानी॥
तासु दूत कि बंध तरु आवा। प्रभु कारज लगि कपिहिं बँधावा॥2॥

भावार्थ:-(शिवजी कहते हैं-) हे भवानी सुनो, जिनका नाम जपकर ज्ञानी (विवेकी) मनुष्य संसार (जन्म-मरण) के बंधन को काट डालते हैं, उनका दूत कहीं बंधन में आ सकता है? किंतु प्रभु के कार्य के लिए हनुमान्‌जी ने स्वयं अपने को बँधा लिया॥2॥

* कपि बंधन सुनि निसिचर धाए। कौतुक लागि सभाँ सब आए॥
दसमुख सभा दीखि कपि जाई। कहि न जाइ कछु अति प्रभुताई॥3॥

भावार्थ:-बंदर का बाँधा जाना सुनकर राक्षस दौड़े और कौतुक के लिए (तमाशा देखने के लिए) सब सभा में आए। हनुमान्‌जी ने जाकर रावण की सभा देखी। उसकी अत्यंत प्रभुता (ऐश्वर्य) कुछ कही नहीं जाती॥3॥

* कर जोरें सुर दिसिप बिनीता। भृकुटि बिलोकत सकल सभीता॥
देखि प्रताप न कपि मन संका। जिमि अहिगन महुँ गरुड़ असंका॥4॥

भावार्थ:-देवता और दिक्पाल हाथ जोड़े बड़ी नम्रता के साथ भयभीत हुए सब रावण की भौं ताक रहे हैं। (उसका रुख देख रहे हैं) उसका ऐसा प्रताप देखकर भी हनुमान्‌जी के मन में जरा भी डर नहीं हुआ। वे ऐसे निःशंख खड़े रहे, जैसे सर्पों के समूह में गरुड़ निःशंख निर्भय) रहते हैं॥4॥

हनुमान्‌-रावण संवाद

दोहा :

* कपिहि बिलोकि दसानन बिहसा कहि दुर्बाद।

सुत बध सुरति कीन्हि पुनि उपजा हृदयँ बिसाद॥20॥

भावार्थ:-हनुमान्‌जी को देखकर रावण दुर्वचन कहता हुआ खूब हँसा। फिर पुत्र वध का स्मरण किया तो उसके हृदय में विषाद उत्पन्न हो गया॥20॥

चौपाई :

* कह लंकेस कवन तैं कीसा। केहि कें बल घालेहि बन खीसा॥

की धौं श्रवन सुनेहि नहिं मोही। देखउँ अति असंक सठ तोही॥1॥

भावार्थ:-लंकापति रावण ने कहा- रे वानर! तू कौन है? किसके बल पर तूने वन को उजाड़कर नष्ट कर डाला? क्या तूने कभी मुझे (मेरा नाम और यश) कानों से नहीं सुना? रे शठ! मैं तुझे अत्यंत निःशंख देख रहा हूँ॥1॥

* मारे निसिचर केहिं अपराधा। कहु सठ तोहि न प्रान कइ बाधा॥

सुनु रावन ब्रह्मांड निकाया। पाइ जासु बल बिरचति माया॥2॥

भावार्थ:-तूने किस अपराध से राक्षसों को मारा? रे मूर्ख! बता, क्या तुझे प्राण जाने का भय नहीं है? (हनुमान्‌जी ने कहा-) हे रावण! सुन, जिनका बल पाकर माया संपूर्ण ब्रह्मांडों के समूहों की रचना करती है,॥2॥

* जाकें बल बिरंचि हरि ईसा। पालत सृजत हरत दससीसा॥

जा बल सीस धरत सहसानन। अंडकोस समेत गिरि कानन॥3॥

भावार्थ:-जिनके बल से हे दशशीश! ब्रह्मा, विष्णु, महेश (क्रमशः) सृष्टि का सृजन, पालन और संहार करते हैं, जिनके बल से सहस्रमुख (फणों) वाले शेषजी पर्वत और वनसहित समस्त ब्रह्मांड को सिर पर धारण करते हैं,॥3॥

* धरइ जो बिबिध देह सुरत्राता। तुम्ह से सठन्ह सिखावनु दाता॥
हर कोदंड कठिन जेहिं भंजा। तेहि समेत नृप दल मद गंजा॥4॥

भावार्थ:-जो देवताओं की रक्षा के लिए नाना प्रकार की देह धारण करते हैं और जो तुम्हारे जैसे मूर्खों को शिक्षा देने वाले हैं, जिन्होंने शिवजी के कठोर धनुष को तोड़ डाला और उसी के साथ राजाओं के समूह का गर्व चूर्ण कर दिया॥4॥

* खर दूषन त्रिसिरा अरु बाली। बधे सकल अतुलित बलसाली॥5॥

भावार्थ:-जिन्होंने खर, दूषण, त्रिशिरा और बालि को मार डाला, जो सब के सब अतुलनीय बलवान् थे,॥5॥

दोहा :

* जाके बल लवलेस तें जितेहु चराचर झारि।
तास दूत मैं जा करि हरि आनेहु प्रिय नारि॥21॥

भावार्थ:-जिनके लेशमात्र बल से तुमने समस्त चराचर जगत् को जीत लिया और जिनकी प्रिय पत्नी को तुम (चोरी से) हर लाए हो, मैं उन्हीं का दूत हूँ॥21॥

चौपाई :

* जानउँ मैं तुम्हारि प्रभुताई। सहसबाहु सन परी लराई॥
समर बालि सन करि जसु पावा। सुनि कपि बचन बिहसि बिहरावा॥1॥

भावार्थ:-मैं तुम्हारी प्रभुता को खूब जानता हूँ सहस्रबाहु से तुम्हारी लड़ाई हुई थी और बालि से युद्ध करके तुमने यश प्राप्त किया था। हनुमान्‌जी के (मार्मिक) वचन सुनकर रावण ने हँसकर बात टाल दी॥1॥

* खायउँ फल प्रभु लागी भूँखा। कपि सुभाव तें तोरेउँ रूखा॥

सब कें देह परम प्रिय स्वामी। मारहिं मोहि कुमारग गामी॥2॥

भावार्थ:-हे (राक्षसों के) स्वामी मुझे भूख लगी थी, (इसलिए) मैंने फल खाए और वानर स्वभाव के कारण वृक्ष तोड़े। हे (निशाचरों के) मालिक! देह सबको परम प्रिय है। कुमार्ग पर चलने वाले (दुष्ट) राक्षस जब मुझे मारने लगे॥2

*जिन्ह मोहि मारा ते मैं मारे। तेहि पर बाँधेउँ तनयँ तुम्हारे॥

मोहि न कछु बाँधे कइ लाजा। कीन्ह चहउँ निज प्रभु कर काजा॥3॥

भावार्थ:-तब जिन्होंने मुझे मारा, उनको मैंने भी मारा। उस पर तुम्हारे पुत्र ने मुझको बाँध लिया (किंतु), मुझे अपने बाँधे जाने की कुछ भी लज्जा नहीं है। मैं तो अपने प्रभु का कार्य करना चाहता हूँ॥3॥

*बिनती करउँ जोरि कर रावन। सुनहु मान तजि मोर सिखावन॥

देखहु तुम्ह निज कुलहि बिचारी। भ्रम तजि भजहु भगत भय हारी॥4॥

भावार्थ:-हे रावण! मैं हाथ जोड़कर तुमसे विनती करता हूँ, तुम अभिमान छोड़कर मेरी सीख सुनो। तुम अपने पवित्र कुल का विचार करके देखो और भ्रम को छोड़कर भक्त भयहारी भगवान् को भजो॥4॥

* जाकें डर अति काल डेराई। जो सुर असुर चराचर खाई॥

तासों बयरु कबहुँ नहिं कीजै। मोरे कहें जानकी दीजै॥5॥

भावार्थ:-जो देवता, राक्षस और समस्त चराचर को खा जाता है, वह काल भी जिनके डर से अत्यंत डरता है, उनसे कदापि वैर न करो और मेरे कहने से जानकीजी को दे दो॥5॥

दोहा :

* प्रनतपाल रघुनायक करुना सिंधु खरारि।
गएँ सरन प्रभु राखिहैं तव अपराध बिसारि॥22॥

भावार्थ:-खर के शत्रु श्री रघुनाथजी शरणागतों के रक्षक और दया के समुद्र हैं। शरण जाने पर प्रभु तुम्हारा अपराध भुलाकर तुम्हें अपनी शरण में रख लेंगे॥22॥

चौपाई :

* राम चरन पंकज उर धरहू। लंका अचल राजु तुम्ह करहू॥
रिषि पुलस्ति जसु बिमल मयंका। तेहि ससि महुँ जनि होहु कलंका॥1॥

भावार्थ:-तुम श्री रामजी के चरण कमलों को हृदय में धारण करो और लंका का अचल राज्य करो। ऋषि पुलस्त्यजी का यश निर्मल चंद्रमा के समान है। उस चंद्रमा में तुम कलंक न बनो॥1॥

* राम नाम बिनु गिरा न सोहा। देखु बिचारि त्यागि मद मोहा॥
बसन हीन नहिं सोह सुरारी। सब भूषन भूषित बर नारी॥2॥

भावार्थ:-राम नाम के बिना वाणी शोभा नहीं पाती, मद-मोह को छोड़, विचारकर देखो। हे देवताओं के शत्रु! सब गहनों से सजी हुई सुंदरी स्त्री भी कपड़ों के बिना (नंगी) शोभा नहीं पाती॥2॥

* राम बिमुख संपति प्रभुताई। जाइ रही पाई बिनु पाई॥
सजल मूल जिन्ह सरितन्ह नाहीं। बरषि गएँ पुनि तबहिं सुखाहीं॥3॥

भावार्थ:-रामविमुख पुरुष की संपत्ति और प्रभुता रही हुई भी चली जाती है और उसका पाना न पाने के समान है। जिन नदियों के मूल में

कोई जलस्रोत नहीं है। (अर्थात् जिन्हें केवल बरसात ही आसरा है) वे वर्षा बीत जाने पर फिर तुरंत ही सूख जाती हैं॥3॥

* सुनु दसकंठ कहउँ पन रोपी। बिमुख राम त्राता नहिं कोपी॥
संकर सहस बिष्नु अज तोही। सकहिं न राखि राम कर द्रोही॥4॥

भावार्थ:-हे रावण! सुनो, मैं प्रतिज्ञा करके कहता हूँ कि रामविमुख की रक्षा करने वाला कोई भी नहीं है। हजारों शंकर, विष्णु और ब्रह्मा भी श्री रामजी के साथ द्रोह करने वाले तुमको नहीं बचा सकते॥4॥

दोहा :

* मोहमूल बहु सूल प्रद त्यागहु तम अभिमान।
भजहु राम रघुनायक कृपा सिंधु भगवान॥23॥

भावार्थ:-मोह ही जिनका मूल है ऐसे (अज्ञानजनित), बहुत पीड़ा देने वाले, तमरूप अभिमान का त्याग कर दो और रघुकुल के स्वामी, कृपा के समुद्र भगवान् श्री रामचंद्रजी का भजन करो॥23॥

चौपाई :

* जदपि कही कपि अति हित बानी। भगति बिबेक बिरति नय सानी॥
बोला बिहसि महा अभिमानी। मिला हमहि कपि गुर बड़ ग्यानी॥1॥

भावार्थ:-यद्यपि हनुमान्जी ने भक्ति, ज्ञान, वैराग्य और नीति से सनी हुई बहुत ही हित की वाणी कही, तो भी वह महान् अभिमानी रावण बहुत हँसकर (व्यंग्य से) बोला कि हमें यह बंदर बड़ा ज्ञानी गुरु मिला!॥1॥

* मृत्यु निकट आई खल तोही। लागेसि अधम सिखावन मोही॥
उलटा होइहि कह हनुमाना। मतिभ्रम तोर प्रगट मैं जाना॥2॥

भावार्थ:-रे दुष्ट! तेरी मृत्यु निकट आ गई है। अधम! मुझे शिक्षा देने चला है। हनुमान्‌जी ने कहा- इससे उलटा ही होगा (अर्थात्‌ मृत्यु तेरी निकट आई है, मेरी नहीं)। यह तेरा मतिभ्रम (बुद्धि का फेर) है, मैंने प्रत्यक्ष जान लिया है॥2॥

* सुनि कपि बचन बहुत खिसिआना। बेगि न हरहु मूढ़ कर प्राना॥
सुनत निसाचर मारन धाए। सचिवन्ह सहित बिभीषनु आए॥3॥

भावार्थ:-हनुमान्‌जी के वचन सुनकर वह बहुत ही कुपित हो गया। (और बोला-) अरे! इस मूर्ख का प्राण शीघ्र ही क्यों नहीं हर लेते? सुनते ही राक्षस उन्हें मारने दौड़े उसी समय मंत्रियों के साथ विभीषणजी वहाँ आ पहुँचे॥3॥

* नाइ सीस करि बिनय बहूता। नीति बिरोध न मारिअ दूता॥
आन दंड कछु करिअ गोसाँई। सबहीं कहा मंत्र भल भाई॥4॥

भावार्थ:-उन्होंने सिर नवाकर और बहुत विनय करके रावण से कहा कि दूत को मारना नहीं चाहिए, यह नीति के विरुद्ध है। हे गोसाईं। कोई दूसरा दंड दिया जाए। सबने कहा- भाई! यह सलाह उत्तम है॥4॥

* सुनत बिहसि बोला दसकंधर। अंग भंग करि पठइअ बंदर॥5॥

भावार्थ:-यह सुनते ही रावण हँसकर बोला- अच्छा तो, बंदर को अंग-भंग करके भेज (लौटा) दिया जाए॥5॥

लंकादहन

दोहा :

* कपि कें ममता पूँछ पर सबहि कहउँ समुझाइ।
तेल बोरि पट बाँधि पुनि पावक देहु लगाइ॥24॥

भावार्थ:-मैं सबको समझाकर कहता हूँ कि बंदर की ममता पूँछ पर होती है। अतः तेल में कपड़ा डुबोकर उसे इसकी पूँछ में बाँधकर फिर आग लगा दो॥24॥

चौपाई :

* पूँछहीन बानर तहँ जाइहि। तब सठ निज नाथहि लइ आइहि॥
जिन्ह कै कीन्हिसि बहुत बड़ाई। देखउ मैं तिन्ह कै प्रभुताई॥1॥

भावार्थ:-जब बिना पूँछ का यह बंदर वहाँ (अपने स्वामी के पास) जाएगा, तब यह मूर्ख अपने मालिक को साथ ले आएगा। जिनकी इसने बहुत बड़ाई की है, मैं जरा उनकी प्रभुता (सामर्थ्य) तो देखूँ!॥1॥

* बचन सुनत कपि मन मुसुकाना। भइ सहाय सारद मैं जाना॥
जातुधान सुनि रावन बचना। लागे रचैं मूढ़ सोइ रचना॥2॥

भावार्थ:-यह वचन सुनते ही हनुमान्‌जी मन में मुस्कुराए (और मन ही मन बोले कि) मैं जान गया, सरस्वतीजी (इसे ऐसी बुद्धि देने में) सहायक हुई हैं। रावण के वचन सुनकर मूर्ख राक्षस वही (पूँछ में आग लगाने की) तैयारी करने लगे॥2॥

* रहा न नगर बसन घृत तेला। बाढ़ी पूँछ कीन्ह कपि खेला॥
कौतुक कहँ आए पुरबासी। मारहिं चरन करहिं बहु हाँसी॥3॥

भावार्थ:-(पूँछ के लपेटने में इतना कपड़ा और घी-तेल लगा कि) नगर में कपड़ा, घी और तेल नहीं रह गया। हनुमान्‌जी ने ऐसा खेल किया कि

पूँछ बढ़ गई (लंबी हो गई)। नगरवासी लोग तमाशा देखने आए। वे हनुमान्‌जी को पैर से ठोकर मारते हैं और उनकी हँसी करते हैं॥3॥

* बाजहिं ढोल देहिं सब तारी। नगर फेरि पुनि पूँछ प्रजारी॥
पावक जरत देखि हनुमंता। भयउ परम लघुरूप तुरंता॥4॥

भावार्थ:-ढोल बजते हैं, सब लोग तालियाँ पीटते हैं। हनुमान्‌जी को नगर में फिराकर, फिर पूँछ में आग लगा दी। अग्नि को जलते हुए देखकर हनुमान्‌जी तुरंत ही बहुत छोटे रूप में हो गए॥4॥

* निबुकि चढ़ेउ कप कनक अटारीं। भईं सभीत निसाचर नारीं॥5॥

भावार्थ:-बंधन से निकलकर वे सोने की अटारियों पर जा चढ़े। उनको देखकर राक्षसों की स्त्रियाँ भयभीत हो गईं॥5॥

दोहा :

* हरि प्रेरित तेहि अवसर चले मरुत उनचास।
अट्टहास करि गर्जा कपि बढ़ि लाग अकास॥25॥

भावार्थ:-उस समय भगवान्‌ की प्रेरणा से उनचासों पवन चलने लगे। हनुमान्‌जी अट्टहास करके गर्जे और बढ़कर आकाश से जा लगे॥25॥

चौपाई :

* देह बिसाल परम हरुआई। मंदिर तें मंदिर चढ़ धाई॥
जरइ नगर भा लोग बिहाला। झपट लपट बहु कोटि कराला॥1॥

भावार्थ:-देह बड़ी विशाल, परंतु बहुत ही हल्की (फुर्तीली) है। वे दौड़कर एक महल से दूसरे महल पर चढ़ जाते हैं। नगर जल रहा है लोग बेहाल हो गए हैं। आग की करोड़ों भयंकर लपटें झपट रही हैं॥1॥

*तात मातु हा सुनिअ पुकारा। एहिं अवसर को हमहि उबारा॥
हम जो कहा यह कपि नहिं होई। बानर रूप धरें सुर कोई॥2॥

भावार्थ:-हाय बप्पा! हाय मैया! इस अवसर पर हमें कौन बचाएगा? (चारों ओर) यही पुकार सुनाई पड़ रही है। हमने तो पहले ही कहा था कि यह वानर नहीं है, वानर का रूप धरे कोई देवता है!॥2॥

* साधु अवग्या कर फलु ऐसा। जरइ नगर अनाथ कर जैसा॥
जारा नगरु निमिष एक माहीं। एक बिभीषन कर गृह नाहीं॥3॥

भावार्थ:-साधु के अपमान का यह फल है कि नगर, अनाथ के नगर की तरह जल रहा है। हनुमान्‌जी ने एक ही क्षण में सारा नगर जला डाला। एक विभीषण का घर नहीं जलाया॥3॥

* ताकर दूत अनल जेहिं सिरिजा। जरा न सो तेहि कारन गिरिजा॥
उलटि पलटि लंका सब जारी। कूदि परा पुनि सिंधु मझारी॥4॥

भावार्थ:-(शिवजी कहते हैं-) हे पार्वती! जिन्होंने अग्नि को बनाया, हनुमान्‌जी उन्हीं के दूत हैं। इसी कारण वे अग्नि से नहीं जले। हनुमान्‌जी ने उलट-पलटकर (एक ओर से दूसरी ओर तक) सारी लंका जला दी। फिर वे समुद्र में कूद पड़े॥

लंका जलाने के बाद हनुमान्‌जी का सीताजी से विदा माँगना और चूड़ामणि पाना

दोहा :

* पूँछ बुझाइ खोइ श्रम धरि लघु रूप बहोरि।

जनकसुता कें आगें ठाढ़ भयउ कर जोरि॥26॥

भावार्थ:-पूँछ बुझाकर, थकावट दूर करके और फिर छोटा सा रूप धारण कर हनुमान्‌जी श्री जानकीजी के सामने हाथ जोड़कर जा खड़े हुए॥26॥

चौपाई :

* मातु मोहि दीजे कछु चीन्हा। जैसें रघुनायक मोहि दीन्हा॥
चूड़ामनि उतारि तब दयऊ। हरष समेत पवनसुत लयऊ॥1॥

भावार्थ:-(हनुमान्‌जी ने कहा-) हे माता! मुझे कोई चिह्न (पहचान) दीजिए, जैसे श्री रघुनाथजी ने मुझे दिया था। तब सीताजी ने चूड़ामणि उतारकर दी। हनुमान्‌जी ने उसको हर्षपूर्वक ले लिया॥1॥

* कहेहु तात अस मोर प्रनामा। सब प्रकार प्रभु पूरनकामा॥
दीन दयाल बिरिदु संभारी। हरहु नाथ सम संकट भारी॥2॥

भावार्थ:-(जानकीजी ने कहा-) हे तात! मेरा प्रणाम निवेदन करना और इस प्रकार कहना- हे प्रभु! यद्यपि आप सब प्रकार से पूर्ण काम हैं (आपको किसी प्रकार की कामना नहीं है), तथापि दीनों (दुःखियों) पर दया करना आपका विरद है (और मैं दीन हूँ) अतः उस विरद को याद करके, हे नाथ! मेरे भारी संकट को दूर कीजिए॥2॥

* तात सक्रसुत कथा सनाएहु। बान प्रताप प्रभुहि समुझाएहु॥
मास दिवस महुँ नाथु न आवा। तौ पुनि मोहि जिअत नहिं पावा॥3॥

भावार्थ:-हे तात! इंद्रपुत्र जयंत की कथा (घटना) सुनाना और प्रभु को उनके बाण का प्रताप समझाना (स्मरण कराना)। यदि महीने भर में नाथ न आए तो फिर मुझे जीती न पाएँगे॥3॥

* कहु कपि केहि बिधि राखौं प्राना। तुम्हहू तात कहत अब जाना॥
तोहि देखि सीतलि भइ छाती। पुनि मो कहुँ सोइ दिनु सो राती॥4॥

भावार्थ:-हे हनुमान्! कहो, मैं किस प्रकार प्राण रखूँ! हे तात! तुम भी अब जाने को कह रहे हो। तुमको देखकर छाती ठंडी हुई थी। फिर मुझे वही दिन और वही रात!॥4॥

दोहा :

* जनकसुतहि समुझाइ करि बहु बिधि धीरजु दीन्ह।
चरन कमल सिरु नाइ कपि गवनु राम पहिं कीन्ह॥27॥

भावार्थ:-हनुमान्‌जी ने जानकीजी को समझाकर बहुत प्रकार से धीरज दिया और उनके चरणकमलों में सिर नवाकर श्री रामजी के पास गमन किया॥27॥

समुद्र के इस पार आना, सबका लौटना, मधुवन प्रवेश, सुग्रीव मिलन, श्री राम-हनुमान् संवाद

चौपाई :

* चलत महाधुनि गर्जेसि भारी। गर्भ स्रवहिं सुनि निसिचर नारी॥
नाघि सिंधु एहि पारहि आवा। सबद किलिकिला कपिन्ह सुनावा॥1॥

भावार्थ:-चलते समय उन्होंने महाध्वनि से भारी गर्जन किया, जिसे सुनकर राक्षसों की स्त्रियों के गर्भ गिरने लगे। समुद्र लाँघकर वे इस पार आए और उन्होंने वानरों को किलकिला शब्द (हर्षध्वनि) सुनाया॥1॥

* हरषे सब बिलोकि हनुमाना। नूतन जन्म कपिन्ह तब जाना॥

मुख प्रसन्न तन तेज बिराजा। कीन्हेसि रामचंद्र कर काजा॥2॥

भावार्थ:-हनुमान्‌जी को देखकर सब हर्षित हो गए और तब वानरों ने अपना नया जन्म समझा। हनुमान्‌जी का मुख प्रसन्न है और शरीर में तेज विराजमान है, (जिससे उन्होंने समझ लिया कि) ये श्री रामचंद्रजी का कार्य कर आए हैं॥2॥

* मिले सकल अति भए सुखारी। तलफत मीन पाव जिमि बारी॥
चले हरषि रघुनायक पासा। पूँछत कहत नवल इतिहासा॥3॥

भावार्थ:-सब हनुमान्‌जी से मिले और बहुत ही सुखी हुए, जैसे तड़पती हुई मछली को जल मिल गया हो। सब हर्षित होकर नए-नए इतिहास (वृत्तांत) पूछते- कहते हुए श्री रघुनाथजी के पास चले॥3॥

* तब मधुबन भीतर सब आए। अंगद संमत मधु फल खाए॥
रखवारे जब बरजन लागे। मुष्टि प्रहार हनत सब भागे॥4॥

भावार्थ:-तब सब लोग मधुवन के भीतर आए और अंगद की सम्मति से सबने मधुर फल (या मधु और फल) खाए। जब रखवाले बरजने लगे, तब घूँसों की मार मारते ही सब रखवाले भाग छूटे॥4॥

दोहा :

* जाइ पुकारे ते सब बन उजार जुबराज।
सुनि सुग्रीव हरष कपि करि आए प्रभु काज॥28॥

भावार्थ:-उन सबने जाकर पुकारा कि युवराज अंगद वन उजाड़ रहे हैं। यह सुनकर सुग्रीव हर्षित हुए कि वानर प्रभु का कार्य कर आए हैं॥28॥

चौपाई :

* जौं न होति सीता सुधि पाई। मधुबन के फल सकहिं कि काई॥
एहि बिधि मन बिचार कर राजा। आइ गए कपि सहित समाजा॥1॥

भावार्थ:-यदि सीताजी की खबर न पाई होती तो क्या वे मधुवन के फल खा सकते थे? इस प्रकार राजा सुग्रीव मन में विचार कर ही रहे थे कि समाज सहित वानर आ गए॥1॥

* आइ सबन्हि नावा पद सीसा। मिलेउ सबन्हि अति प्रेम कपीसा॥
पूँछी कुसल कुसल पद देखी। राम कृपाँ भा काजु बिसेषी॥2॥

भावार्थ:-(सबने आकर सुग्रीव के चरणों में सिर नवाया। कपिराज सुग्रीव सभी से बड़े प्रेम के साथ मिले। उन्होंने कुशल पूछी, (तब वानरों ने उत्तर दिया-) आपके चरणों के दर्शन से सब कुशल है। श्री रामजी की कृपा से विशेष कार्य हुआ (कार्य में विशेष सफलता हुई है)॥2॥

* नाथ काजु कीन्हेउ हनुमाना। राखे सकल कपिन्ह के प्राना॥
सुनि सुग्रीव बहुरि तेहि मिलेऊ कपिन्ह सहित रघुपति पहिं चलेऊ॥3॥

भावार्थ:-हे नाथ! हनुमान ने सब कार्य किया और सब वानरों के प्राण बचा लिए। यह सुनकर सुग्रीवजी हनुमान्‌जी से फिर मिले और सब वानरों समेत श्री रघुनाथजी के पास चले॥3॥

* राम कपिन्ह जब आवत देखा। किएँ काजु मन हरष बिसेषा॥
फटिक सिला बैठे द्वौ भाई। परे सकल कपि चरनन्हि जाई॥4॥

भावार्थ:-श्री रामजी ने जब वानरों को कार्य किए हुए आते देखा तब उनके मन में विशेष हर्ष हुआ। दोनों भाई स्फटिक शिला पर बैठे थे। सब वानर जाकर उनके चरणों पर गिर पड़े॥4॥

दोहा :

* प्रीति सहित सब भेंटे रघुपति करुना पुंज॥
पूछी कुसल नाथ अब कुसल देखि पद कंज॥29॥

भावार्थ:-दया की राशि श्री रघुनाथजी सबसे प्रेम सहित गले लगकर मिले और कुशल पूछी। (वानरों ने कहा-) हे नाथ! आपके चरण कमलों के दर्शन पाने से अब कुशल है॥29॥

चौपाई :

* जामवंत कह सुनु रघुराया। जा पर नाथ करहु तुम्ह दाया॥
ताहि सदा सुभ कुसल निरंतर। सुर नर मुनि प्रसन्न ता ऊपर॥1॥

भावार्थ:-जाम्बवान्‌ ने कहा- हे रघुनाथजी! सुनिए। हे नाथ! जिस पर आप दया करते हैं, उसे सदा कल्याण और निरंतर कुशल है। देवता, मनुष्य और मुनि सभी उस पर प्रसन्न रहते हैं॥1॥

* सोइ बिजई बिनई गुन सागर। तासु सुजसु त्रैलोक उजागर॥
प्रभु कीं कृपा भयउ सबु काजू। जन्म हमार सुफल भा आजू॥2॥

भावार्थ:-वही विजयी है, वही विनयी है और वही गुणों का समुद्र बन जाता है। उसी का सुंदर यश तीनों लोकों में प्रकाशित होता है। प्रभु की कृपा से सब कार्य हुआ। आज हमारा जन्म सफल हो गया॥2॥

* नाथ पवनसुत कीन्हि जो करनी। सहसहुँ मुख न जाइ सो बरनी॥
पवनतनय के चरित सुहाए। जामवंत रघुपतिहि सुनाए॥3॥

भावार्थ:-हे नाथ! पवनपुत्र हनुमान्‌ ने जो करनी की, उसका हजार मुखों से भी वर्णन नहीं किया जा सकता। तब जाम्बवान्‌ ने हनुमान्‌जी के सुंदर चरित्र (कार्य) श्री रघुनाथजी को सुनाए॥3॥

* सुनत कृपानिधि मन अति भाए। पुनि हनुमान हरषि हियँ लाए॥
कहहु तात केहि भाँति जानकी। रहति करति रच्छा स्वप्रान की॥4॥

भावार्थ:-(वे चरित्र) सुनने पर कृपानिधि श्री रामचंदजी के मन को बहुत ही अच्छे लगे। उन्होंने हर्षित होकर हनुमान्‌जी को फिर हृदय से लगा

लिया और कहा- हे तात! कहो, सीता किस प्रकार रहती और अपने प्राणों की रक्षा करती हैं?॥4॥

दोहा :

* नाम पाहरू दिवस निसि ध्यान तुम्हार कपाट।
लोचन निज पद जंत्रित जाहिं प्रान केहिं बाट॥30॥

भावार्थ:-(हनुमान्‌जी ने कहा-) आपका नाम रात-दिन पहरा देने वाला है, आपका ध्यान ही किंवाड़ है। नेत्रों को अपने चरणों में लगाए रहती हैं, यही ताला लगा है, फिर प्राण जाएँ तो किस मार्ग से?॥30॥

चौपाई :

* चलत मोहि चूड़ामनि दीन्हीं। रघुपति हृदयँ लाइ सोइ लीन्ही॥
नाथ जुगल लोचन भरि बारी। बचन कहे कछु जनककुमारी॥1॥

भावार्थ:-चलते समय उन्होंने मुझे चूड़ामणि (उतारकर) दी। श्री रघुनाथजी ने उसे लेकर हृदय से लगा लिया। (हनुमान्‌जी ने फिर कहा-) हे नाथ! दोनों नेत्रों में जल भरकर जानकीजी ने मुझसे कुछ वचन कहे- ॥1॥

* अनुज समेत गहेहु प्रभु चरना। दीन बंधु प्रनतारति हरना॥
मन क्रम बचन चरन अनुरागी। केहिं अपराध नाथ हौं त्यागी॥2॥

भावार्थ:-छोटे भाई समेत प्रभु के चरण पकड़ना (और कहना कि) आप दीनबंधु हैं, शरणागत के दुःखों को हरने वाले हैं और मैं मन, वचन और कर्म से आपके चरणों की अनुरागिणी हूँ। फिर स्वामी (आप) ने मुझे किस अपराध से त्याग दिया?॥2॥

* अवगुन एक मोर मैं माना। बिछुरत प्रान न कीन्ह पयाना॥
नाथ सो नयनन्हि को अपराधा। निसरत प्रान करहिं हठि बाधा॥3॥

भावार्थ:-(हाँ) एक दोष मैं अपना (अवश्य) मानती हूँ कि आपका वियोग होते ही मेरे प्राण नहीं चले गए, किंतु हे नाथ! यह तो नेत्रों का अपराध है जो प्राणों के निकलने में हठपूर्वक बाधा देते हैं॥3॥

* बिरह अगिनि तनु तूल समीरा। स्वास जरइ छन माहिं सरीरा॥
नयन स्रवहिं जलु निज हित लागी। जरैं न पाव देह बिरहागी॥4॥

भावार्थ:-विरह अग्नि है, शरीर रूई है और श्वास पवन है, इस प्रकार (अग्नि और पवन का संयोग होने से) यह शरीर क्षणमात्र में जल सकता है, परंतु नेत्र अपने हित के लिए प्रभु का स्वरूप देखकर (सुखी होने के लिए) जल (आँसू) बरसाते हैं, जिससे विरह की आग से भी देह जलने नहीं पाती॥4॥

* सीता कै अति बिपति बिसाला। बिनहिं कहें भलि दीनदयाला॥5॥

भावार्थ:-सीताजी की विपत्ति बहुत बड़ी है। हे दीनदयालु! वह बिना कही ही अच्छी है (कहने से आपको बड़ा क्लेश होगा)॥5॥

दोहा :

* निमिष निमिष करुनानिधि जाहिं कलप सम बीति।
बेगि चलिअ प्रभु आनिअ भुज बल खल दल जीति॥31॥

भावार्थ:-हे करुणानिधान! उनका एक-एक पल कल्प के समान बीतता है। अतः हे प्रभु! तुरंत चलिए और अपनी भुजाओं के बल से दुष्टों के दल को जीतकर सीताजी को ले आइए॥31॥

चौपाई :

* सुनि सीता दुख प्रभु सुख अयना। भरि आए जल राजिव नयना॥
बचन कायँ मन मम गति जाही। सपनेहुँ बूझिअ बिपति कि ताही॥1॥

भावार्थ:-सीताजी का दुःख सुनकर सुख के धाम प्रभु के कमल नेत्रों में जल भर आया (और वे बोले-) मन, वचन और शरीर से जिसे मेरी ही

गति (मेरा ही आश्रय) है, उसे क्या स्वप्न में भी विपत्ति हो सकती है?॥1॥

* कह हनुमंत बिपति प्रभु सोई। जब तव सुमिरन भजन न होई॥
केतिक बात प्रभु जातुधान की। रिपुहि जीति आनिबी जानकी॥2॥

भावार्थ:-हनुमान्‌जी ने कहा- हे प्रभु! विपत्ति तो वही (तभी) है जब आपका भजन-स्मरण न हो। हे प्रभो! राक्षसों की बात ही कितनी है? आप शत्रु को जीतकर जानकीजी को ले आवेंगे॥2॥

* सुनु कपि तोहि समान उपकारी। नहिं कोउ सुर नर मुनि तनुधारी॥
प्रति उपकार करौं का तोरा। सनमुख होइ न सकत मन मोरा॥3॥

भावार्थ:-(भगवान् कहने लगे-) हे हनुमान्! सुन, तेरे समान मेरा उपकारी देवता, मनुष्य अथवा मुनि कोई भी शरीरधारी नहीं है। मैं तेरा प्रत्युपकार (बदले में उपकार) तो क्या करूँ, मेरा मन भी तेरे सामने नहीं हो सकता॥3॥

* सुनु सुत तोहि उरिन मैं नाहीं। देखेउँ करि बिचार मन माहीं॥
पुनि पुनि कपिहि चितव सुरत्राता। लोचन नीर पुलक अति गाता॥4॥

भावार्थ:-हे पुत्र! सुन, मैंने मन में (खूब) विचार करके देख लिया कि मैं तुझसे उऋण नहीं हो सकता। देवताओं के रक्षक प्रभु बार-बार हनुमान्‌जी को देख रहे हैं। नेत्रों में प्रेमाश्रुओं का जल भरा है और शरीर अत्यंत पुलकित है॥4॥

दोहा :

* सुनि प्रभु बचन बिलोकि मुख गात हरषि हनुमंत।
चरन परेउ प्रेमाकुल त्राहि त्राहि भगवंत॥32॥

भावार्थ:-प्रभु के वचन सुनकर और उनके (प्रसन्न) मुख तथा (पुलकित) अंगों को देखकर हनुमान्‌जी हर्षित हो गए और प्रेम में विकल होकर 'हे भगवन्! मेरी रक्षा करो, रक्षा करो' कहते हुए श्री रामजी के चरणों में गिर पड़े॥32॥

चौपाई :

* बार बार प्रभु चहइ उठावा। प्रेम मगन तेहि उठब न भावा॥
प्रभु कर पंकज कपि कें सीसा। सुमिरि सो दसा मगन गौरीसा॥1॥

भावार्थ:-प्रभु उनको बार-बार उठाना चाहते हैं, परंतु प्रेम में डूबे हुए हनुमान्‌जी को चरणों से उठना सुहाता नहीं। प्रभु का करकमल हनुमान्‌जी के सिर पर है। उस स्थिति का स्मरण करके शिवजी प्रेममग्न हो गए॥1॥

* सावधान मन करि पुनि संकर। लागे कहन कथा अति सुंदर॥
कपि उठाई प्रभु हृदयँ लगावा। कर गहि परम निकट बैठावा॥2॥

भावार्थ:-फिर मन को सावधान करके शंकरजी अत्यंत सुंदर कथा कहने लगे- हनुमान्‌जी को उठाकर प्रभु ने हृदय से लगाया और हाथ पकड़कर अत्यंत निकट बैठा लिया॥2॥

* कहु कपि रावन पालित लंका। केहि बिधि दहेउ दुर्ग अति बंका॥
प्रभु प्रसन्न जाना हनुमाना। बोला बचन बिगत अभिमाना॥3॥

भावार्थ:-हे हनुमान्! बताओ तो, रावण के द्वारा सुरक्षित लंका और उसके बड़े बाँके किले को तुमने किस तरह जलाया? हनुमान्‌जी ने प्रभु को प्रसन्न जाना और वे अभिमानरहित वचन बोले- ॥3॥

* साखामग कै बड़ि मनुसाई। साखा तें साखा पर जाई॥
नाघि सिंधु हाटकपुर जारा। निसिचर गन बधि बिपिन उजारा॥4॥

भावार्थ:-बंदर का बस, यही बड़ा पुरुषार्थ है कि वह एक डाल से दूसरी डाल पर चला जाता है। मैंने जो समुद्र लाँघकर सोने का नगर जलाया और राक्षसगण को मारकर अशोक वन को उजाड़ डाला,॥4॥

* सो सब तव प्रताप रघुराई। नाथ न कछू मोरि प्रभुताई॥5॥

भावार्थ:-यह सब तो हे श्री रघुनाथजी! आप ही का प्रताप है। हे नाथ! इसमें मेरी प्रभुता (बड़ाई) कुछ भी नहीं है॥5॥

दोहा :

* ता कहुँ प्रभु कछु अगम नहिं जा पर तुम्ह अनुकूल।
तव प्रभावँ बड़वानलहि जारि सकइ खलु तूल॥33॥

भावार्थ:-हे प्रभु! जिस पर आप प्रसन्न हों, उसके लिए कुछ भी कठिन नहीं है। आपके प्रभाव से रूई (जो स्वयं बहुत जल्दी जल जाने वाली वस्तु है) बड़वानल को निश्चय ही जला सकती है (अर्थात् असंभव भी संभव हो सकता है)॥3॥

चौपाई :

* नाथ भगति अति सुखदायनी। देहु कृपा करि अनपायनी॥
सुनि प्रभु परम सरल कपि बानी। एवमस्तु तब कहेउ भवानी॥1॥

भावार्थ:-हे नाथ! मुझे अत्यंत सुख देने वाली अपनी निश्चल भक्ति कृपा करके दीजिए। हनुमान्‌जी की अत्यंत सरल वाणी सुनकर, हे भवानी! तब प्रभु श्री रामचंद्रजी ने 'एवमस्तु' (ऐसा ही हो) कहा॥1॥

* उमा राम सुभाउ जेहिं जाना। ताहि भजनु तजि भाव न आना॥
यह संबाद जासु उर आवा। रघुपति चरन भगति सोइ पावा॥2॥

भावार्थ:-हे उमा! जिसने श्री रामजी का स्वभाव जान लिया, उसे भजन छोड़कर दूसरी बात ही नहीं सुहाती। यह स्वामी-सेवक का संवाद

जिसके हृदय में आ गया, वही श्री रघुनाथजी के चरणों की भक्ति पा गया॥2॥

* सुनि प्रभु बचन कहहिं कपि बृंदा। जय जय जय कृपाल सुखकंदा॥
तब रघुपति कपिपतिहि बोलावा। कहा चलैं कर करहु बनावा॥3॥

भावार्थ:-प्रभु के वचन सुनकर वानरगण कहने लगे- कृपालु आनंदकंद श्री रामजी की जय हो जय हो, जय हो! तब श्री रघुनाथजी ने कपिराज सुग्रीव को बुलाया और कहा- चलने की तैयारी करो॥3॥

*अब बिलंबु केह कारन कीजे। तुरंत कपिन्ह कहँ आयसु दीजे॥
कौतुक देखि सुमन बहु बरषी। नभ तें भवन चले सुर हरषी॥4॥

भावार्थ:-अब विलंब किस कारण किया जाए। वानरों को तुरंत आज्ञा दो। (भगवान्‌ की) यह लीला (रावणवध की तैयारी) देखकर, बहुत से फूल बरसाकर और हर्षित होकर देवता आकाश से अपने-अपने लोक को चले॥4॥

गीताप्रेस गोरखपुर

श्री रामजी का वानरों की सेना के साथ चलकर समुद्र तट पर पहुँचना

दोहा :

* कपिपति बेगि बोलाए आए जूथप जूथ।
नाना बरन अतुल बल बानर भालु बरूथ॥34॥

भावार्थ:-वानरराज सुग्रीव ने शीघ्र ही वानरों को बुलाया, सेनापतियों के समूह आ गए। वानर-भालुओं के झुंड अनेक रंगों के हैं और उनमें अतुलनीय बल है॥34॥

चौपाई :

* प्रभु पद पंकज नावहिं सीसा। गर्जहिं भालु महाबल कीसा॥
देखी राम सकल कपि सेना। चितइ कृपा करि राजिव नैना॥1॥

भावार्थ:-वे प्रभु के चरण कमलों में सिर नवाते हैं। महान्‌ बलवान्‌ रीछ और वानर गरज रहे हैं। श्री रामजी ने वानरों की सारी सेना देखी। तब कमल नेत्रों से कृपापूर्वक उनकी ओर दृष्टि डाली॥1॥

* राम कृपा बल पाइ कपिंदा। भए पच्छजुत मनहुँ गिरिंदा॥
हरषि राम तब कीन्ह पयाना। सगुन भए सुंदर सुभ नाना॥2॥

भावार्थ:-राम कृपा का बल पाकर श्रेष्ठ वानर मानो पंखवाले बड़े पर्वत हो गए। तब श्री रामजी ने हर्षित होकर प्रस्थान (कूच) किया। अनेक सुंदर और शुभ शकुन हुए॥2॥

* जासु सकल मंगलमय कीती। तासु पयान सगुन यह नीती॥
प्रभु पयान जाना बैदेहीं। फरकि बाम अँग जनु कहि देहीं॥3॥

भावार्थ:-जिनकी कीर्ति सब मंगलों से पूर्ण है, उनके प्रस्थान के समय शकुन होना, यह नीति है (लीला की मर्यादा है)। प्रभु का प्रस्थान जानकीजी ने भी जान लिया। उनके बाएँ अंग फड़क-फड़ककर मानो कहे देते थे (कि श्री रामजी आ रहे हैं)॥3॥

* जोइ जोइ सगुन जानकिहि होई। असगुन भयउ रावनहिं सोई॥
चला कटकु को बरनैं पारा। गर्जहिं बानर भालु अपारा॥4॥

भावार्थ:-जानकीजी को जो-जो शकुन होते थे, वही-वही रावण के लिए अपशकुन हुए। सेना चली, उसका वर्णन कौन कर सकता है? असंख्य वानर और भालू गर्जना कर रहे हैं॥4॥

* नख आयुध गिरि पादपधारी। चले गगन महि इच्छाचारी॥
केहरिनाद भालु कपि करहीं। डगमगाहिं दिग्गज चिक्करहीं॥5॥

भावार्थ:-नख ही जिनके शस्त्र हैं, वे इच्छानुसार (सर्वत्र बेरोक-टोक) चलने वाले रीछ-वानर पर्वतों और वृक्षों को धारण किए कोई आकाश मार्ग से और कोई पृथ्वी पर चले जा रहे हैं। वे सिंह के समान गर्जना कर रहे हैं। (उनके चलने और गर्जने से) दिशाओं के हाथी विचलित होकर चिंग्घाड़ रहे हैं॥5॥

छंद :

* चिक्करहिं दिग्गज डोल महि गिरि लोल सागर खरभरे।
मन हरष सभ गंधर्ब सुर मुनि नाग किंनर दुख टरे॥
कटकटहिं मर्कट बिकट भट बहु कोटि कोटिन्ह धावहीं।
जय राम प्रबल प्रताप कोसलनाथ गुन गन गावहीं॥1॥

भावार्थ:-दिशाओं के हाथी चिंग्घाड़ने लगे, पृथ्वी डोलने लगी, पर्वत चंचल हो गए (काँपने लगे) और समुद्र खलबला उठे। गंधर्व, देवता, मुनि, नाग, किन्नर सब के सब मन में हर्षित हुए' कि (अब) हमारे दुःख टल गए। अनेकों करोड़ भयानक वानर योद्धा कटकटा रहे हैं और करोड़ों ही दौड़ रहे हैं। 'प्रबल प्रताप कोसलनाथ श्री रामचंद्रजी की जय हो' ऐसा पुकारते हुए वे उनके गुणसमूहों को गा रहे हैं॥1॥

* सहि सक न भार उदार अहिपति बार बारहिं मोहई।
गह दसन पुनि पुनि कमठ पृष्ठ कठोर सो किमि सोहई॥
रघुबीर रुचिर प्रयान प्रस्थिति जानि परम सुहावनी।

जनु कमठ खर्पर सर्पराज सो लिखत अबिचल पावनी॥2॥

भावार्थ:-उदार (परम श्रेष्ठ एवं महान्) सर्पराज शेषजी भी सेना का बोझ नहीं सह सकते, वे बार-बार मोहित हो जाते (घबड़ा जाते) हैं और पुनः- पुनः कच्छप की कठोर पीठ को दाँतों से पकड़ते हैं। ऐसा करते (अर्थात् बार-बार दाँतों को गड़ाकर कच्छप की पीठ पर लकीर सी खींचते हुए) वे कैसे शोभा दे रहे हैं मानो श्री रामचंद्रजी की सुंदर प्रस्थान यात्रा को परम सुहावनी जानकर उसकी अचल पवित्र कथा को सर्पराज शेषजी कच्छप की पीठ पर लिख रहे हों॥2॥

दोहा :

* एहि बिधि जाइ कृपानिधि उतरे सागर तीर।

जहँ तहँ लागे खान फल भालु बिपुल कपि बीर॥35॥

भावार्थ:-इस प्रकार कृपानिधान श्री रामजी समुद्र तट पर जा उतरे। अनेकों रीछ-वानर वीर जहाँ-तहाँ फल खाने लगे॥35॥

मंदोदरी-रावण संवाद

चौपाई :

*उहाँ निसाचर रहहिं ससंका। जब तें जारि गयउ कपि लंका॥

निज निज गृहँ सब करहिं बिचारा। नहिं निसिचर कुल केर उबारा।1॥

भावार्थ:-वहाँ (लंका में) जब से हनुमान्जी लंका को जलाकर गए, तब से राक्षस भयभीत रहने लगे। अपने-अपने घरों में सब विचार करते हैं कि अब राक्षस कुल की रक्षा (का कोई उपाय) नहीं है॥1॥

गीताप्रेस गोरखपुर

* जासु दूत बल बरनि न जाई। तेहि आएँ पुर कवन भलाई॥
दूतिन्ह सन सुनि पुरजन बानी। मंदोदरी अधिक अकुलानी॥2॥

भावार्थ:-जिसके दूत का बल वर्णन नहीं किया जा सकता, उसके स्वयं नगर में आने पर कौन भलाई है (हम लोगों की बड़ी बुरी दशा होगी)? दूतियों से नगरवासियों के वचन सुनकर मंदोदरी बहुत ही व्याकुल हो गई॥2॥

* रहसि जोरि कर पति पग लागी। बोली बचन नीति रस पागी॥
कंत करष हरि सन परिहरहू। मोर कहा अति हित हियँ धरहू॥3॥

भावार्थ:-वह एकांत में हाथ जोड़कर पति (रावण) के चरणों लगी और नीतिरस में पगी हुई वाणी बोली- हे प्रियतम! श्री हरि से विरोध छोड़ दीजिए। मेरे कहने को अत्यंत ही हितकर जानकर हृदय में धारण कीजिए॥3॥

* समुझत जासु दूत कइ करनी। स्रवहिं गर्भ रजनीचर घरनी॥
तासु नारि निज सचिव बोलाई। पठवहु कंत जो चहहु भलाई॥4॥

भावार्थ:-जिनके दूत की करनी का विचार करते ही (स्मरण आते ही) राक्षसों की स्त्रियों के गर्भ गिर जाते हैं, हे प्यारे स्वामी! यदि भला चाहते हैं, तो अपने मंत्री को बुलाकर उसके साथ उनकी स्त्री को भेज दीजिए॥4॥

दोहा :

*तव कुल कमल बिपिन दुखदाई। सीता सीत निसा सम आई॥
सुनहु नाथ सीता बिनु दीन्हें। हित न तुम्हार संभु अज कीन्हें॥5॥

भावार्थ:-सीता आपके कुल रूपी कमलों के वन को दुःख देने वाली जाड़े की रात्रि के समान आई है। हे नाथ। सुनिए, सीता को दिए (लौटाए) बिना शम्भु और ब्रह्मा के किए भी आपका भला नहीं हो सकता॥5॥

दोहा :

* राम बान अहि गन सरिस निकर निसाचर भेक।

जब लगि ग्रसत न तब लगि जतनु करहु तजि टेक॥36॥

भावार्थ:-श्री रामजी के बाण सर्पों के समूह के समान हैं और राक्षसों के समूह मेंढक के समान। जब तक वे इन्हें ग्रस नहीं लेते (निगल नहीं जाते) तब तक हठ छोड़कर उपाय कर लीजिए॥36॥

चौपाई :

* श्रवन सुनी सठ ता करि बानी। बिहसा जगत बिदित अभिमानी॥

सभय सुभाउ नारि कर साचा। मंगल महुँ भय मन अति काचा॥1॥

भावार्थ:-मूर्ख और जगत प्रसिद्ध अभिमानी रावण कानों से उसकी वाणी सुनकर खूब हँसा (और बोला-) स्त्रियों का स्वभाव सचमुच ही बहुत डरपोक होता है। मंगल में भी भय करती हो। तुम्हारा मन (हृदय) बहुत ही कच्चा (कमजोर) है॥1॥

* जौं आवइ मर्कट कटकाई। जिअहिं बिचारे निसिचर खाई॥

कंपहिं लोकप जाकीं त्रासा। तासु नारि सभीत बड़ि हासा॥2॥

भावार्थ:-यदि वानरों की सेना आवेगी तो बेचारे राक्षस उसे खाकर अपना जीवन निर्वाह करेंगे। लोकपाल भी जिसके डर से काँपते हैं, उसकी स्त्री डरती हो, यह बड़ी हँसी की बात है॥2॥

* अस कहि बिहसि ताहि उर लाई। चलेउ सभाँ ममता अधिकाई॥

फमंदोदरी हृदयँ कर चिंता। भयउ कंत पर बिधि बिपरीता॥3॥

भावार्थ:-रावण ने ऐसा कहकर हँसकर उसे हृदय से लगा लिया और ममता बढ़ाकर (अधिक स्नेह दर्शाकर) वह सभा में चला गया। मंदोदरी हृदय में चिंता करने लगी कि पति पर विधाता प्रतिकूल हो गए॥3॥

* बैठेउ सभाँ खबरि असि पाई। सिंधु पार सेना सब आई॥
बूझेसि सचिव उचित मत कहहू। ते सब हँसे मष्ट करि रहहू॥4॥

भावार्थ:-ज्यों ही वह सभा में जाकर बैठा, उसने ऐसी खबर पाई कि शत्रु की सारी सेना समुद्र के उस पार आ गई है, उसने मंत्रियों से पूछा कि उचित सलाह कहिए (अब क्या करना चाहिए?)। तब वे सब हँसे और बोले कि चुप किए रहिए (इसमें सलाह की कौन सी बात है?)॥4॥

* जितेहु सुरासुर तब श्रम नाहीं। नर बानर केहि लेखे माहीं॥5॥

भावार्थ:-आपने देवताओं और राक्षसों को जीत लिया, तब तो कुछ श्रम ही नहीं हुआ। फिर मनुष्य और वानर किस गिनती में हैं?॥5॥

रावण को विभीषण का समझाना और विभीषण का अपमान

दोहा :

* सचिव बैद गुर तीनि जौं प्रिय बोलहिं भय आस
राज धर्म तन तीनि कर होइ बेगिहीं नास॥37॥

भावार्थ:-मंत्री, वैद्य और गुरु- ये तीन यदि (अप्रसन्नता के) भय या (लाभ की) आशा से (हित की बात न कहकर) प्रिय बोलते हैं (ठकुर सुहाती

कहने लगते हैं), तो (क्रमशः) राज्य, शरीर और धर्म- इन तीन का शीघ्र ही नाश हो जाता है॥37॥

चौपाई :

* सोइ रावन कहुँ बनी सहाई। अस्तुति करहिं सुनाइ सुनाई॥
अवसर जानि बिभीषनु आवा। भ्राता चरन सीसु तेहिं नावा॥1॥

भावार्थ:-रावण के लिए भी वही सहायता (संयोग) आ बनी है। मंत्री उसे सुना-सुनाकर (मुँह पर) स्तुति करते हैं। (इसी समय) अवसर जानकर विभीषणजी आए। उन्होंने बड़े भाई के चरणों में सिर नवाया॥1॥

* पुनि सिरु नाइ बैठ निज आसन। बोला बचन पाइ अनुसासन॥
जौ कृपाल पूँछिहु मोहि बाता। मति अनुरूप कहउँ हित ताता॥2॥

भावार्थ:-फिर से सिर नवाकर अपने आसन पर बैठ गए और आज्ञा पाकर ये वचन बोले- हे कृपाल जब आपने मुझसे बात (राय) पूछी ही है, तो हे तात! मैं अपनी बुद्धि के अनुसार आपके हित की बात कहता हूँ- ॥2॥

* जो आपन चाहै कल्याना। सुजसु सुमति सुभ गति सुख नाना॥
सो परनारि लिलार गोसाईं। तजउ चउथि के चंद कि नाईं॥3॥

भावार्थ:-जो मनुष्य अपना कल्याण, सुंदर यश, सुबुद्धि, शुभ गति और नाना प्रकार के सुख चाहता हो, वह हे स्वामी! परस्त्री के ललाट को चौथ के चंद्रमा की तरह त्याग दे (अर्थात् जैसे लोग चौथ के चंद्रमा को नहीं देखते, उसी प्रकार परस्त्री का मुख ही न देखे)॥3॥

* चौदह भुवन एक पति होई। भूत द्रोह तिष्टइ नहिं सोई॥
गुन सागर नागर नर जोऊ। अलप लोभ भल कहइ न कोऊ॥4॥

भावार्थ:-चौदहों भुवनों का एक ही स्वामी हो, वह भी जीवों से वैर करके ठहर नहीं सकता (नष्ट हो जाता है) जो मनुष्य गुणों का समुद्र और चतुर हो, उसे चाहे थोड़ा भी लोभ क्यों न हो, तो भी कोई भला नहीं कहता॥4॥

दोहा :

* काम क्रोध मद लोभ सब नाथ नरक के पंथ।
सब परिहरि रघुबीरहि भजहु भजहिं जेहि संत॥38॥

भावार्थ:-हे नाथ! काम, क्रोध, मद और लोभ- ये सब नरक के रास्ते हैं, इन सबको छोड़कर श्री रामचंद्रजी को भजिए, जिन्हें संत (सत्पुरुष) भजते हैं॥38॥

चौपाई :

* तात राम नहिं नर भूपाला। भुवनेस्वर कालहु कर काला॥
ब्रह्म अनामय अज भगवंता। ब्यापक अजित अनादि अनंता॥1॥

भावार्थ:-हे तात! राम मनुष्यों के ही राजा नहीं हैं। वे समस्त लोकों के स्वामी और काल के भी काल हैं। वे (संपूर्ण ऐश्वर्य, यश, श्री, धर्म, वैराग्य एवं ज्ञान के भंडार) भगवान् हैं, वे निरामय (विकाररहित), अजन्मे, व्यापक, अजेय, अनादि और अनंत ब्रह्म हैं॥1॥

* गो द्विज धेनु देव हितकारी। कृपा सिंधु मानुष तनुधारी॥
जन रंजन भंजन खल ब्राता। बेद धर्म रच्छक सुनु भ्राता॥2॥

भावार्थ:-उन कृपा के समुद्र भगवान् ने पृथ्वी, ब्राह्मण, गो और देवताओं का हित करने के लिए ही मनुष्य शरीर धारण किया है। हे भाई! सुनिए, वे सेवकों को आनंद देने वाले, दुष्टों के समूह का नाश करने वाले और वेद तथा धर्म की रक्षा करने वाले हैं॥2॥

* ताहि बयरु तजि नाइअ माथा। प्रनतारति भंजन रघुनाथा॥
देहु नाथ प्रभु कहुँ बैदेही। भजहु राम बिनु हेतु सनेही॥3॥

भावार्थ:-वैर त्यागकर उन्हें मस्तक नवाइए। वे श्री रघुनाथजी शरणागत का दुःख नाश करने वाले हैं। हे नाथ! उन प्रभु (सर्वेश्वर) को जानकीजी दे दीजिए और बिना ही कारण स्नेह करने वाले श्री रामजी को भजिए॥3॥

दोहा :

* सरन गएँ प्रभु ताहु न त्यागा। बिस्व द्रोह कृत अघ जेहि लागा॥
जासु नाम त्रय ताप नसावन। सोइ प्रभु प्रगट समुझु जियँ रावन॥4॥

भावार्थ:-जिसे संपूर्ण जगत् से द्रोह करने का पाप लगा है, शरण जाने पर प्रभु उसका भी त्याग नहीं करते। जिनका नाम तीनों तापों का नाश करने वाला है, वे ही प्रभु (भगवान्) मनुष्य रूप में प्रकट हुए हैं। हे रावण! हृदय में यह समझ लीजिए॥4॥

दोहा :

* बार बार पद लागउँ बिनय करउँ दससीस।
परिहरि मान मोह मद भजहु कोसलाधीस॥39क॥

भावार्थ:-हे दशशीश! मैं बार-बार आपके चरणों लगता हूँ और विनती करता हूँ कि मान, मोह और मद को त्यागकर आप कोसलपति श्री रामजी का भजन कीजिए॥39 (क)॥

* मुनि पुलस्ति निज सिष्य सन कहि पठई यह बात।
तुरत सो मैं प्रभु सन कही पाइ सुअवसरु तात॥39ख॥

भावार्थ:-मुनि पुलस्त्यजी ने अपने शिष्य के हाथ यह बात कहला भेजी है। हे तात! सुंदर अवसर पाकर मैंने तुरंत ही वह बात प्रभु (आप) से कह दी॥39 (ख)॥

चौपाई :

* माल्यवंत अति सचिव सयाना। तासु बचन सुनि अति सुख माना॥
तात अनुज तव नीति बिभूषन। सो उर धरहु जो कहत बिभीषन॥1॥

भावार्थ:-माल्यवान् नाम का एक बहुत ही बुद्धिमान मंत्री था। उसने उन (विभीषण) के वचन सुनकर बहुत सुख माना (और कहा-) हे तात! आपके छोटे भाई नीति विभूषण (नीति को भूषण रूप में धारण करने वाले अर्थात् नीतिमान्) हैं। विभीषण जो कुछ कह रहे हैं उसे हृदय में धारण कर लीजिए॥1॥

* रिपु उतकरष कहत सठ दोऊ। दूरि न करहु इहाँ हइ कोऊ॥
माल्यवंत गह गयउ बहोरी। कहइ बिभीषनु पुनि कर जोरी॥2॥

भावार्थ:-(रावन ने कहा-) ये दोनों मूर्ख शत्रु की महिमा बखान रहे हैं। यहाँ कोई है? इन्हें दूर करो न! तब माल्यवान् तो घर लौट गया और विभीषणजी हाथ जोड़कर फिर कहने लगे-॥2॥

* सुमति कुमति सब कें उर रहहीं। नाथ पुरान निगम अस कहहीं॥
जहाँ सुमति तहँ संपति नाना। जहाँ कुमति तहँ बिपति निदाना॥3॥

भावार्थ:-हे नाथ! पुराण और वेद ऐसा कहते हैं कि सुबुद्धि (अच्छी बुद्धि) और कुबुद्धि (खोटी बुद्धि) सबके हृदय में रहती है, जहाँ सुबुद्धि है, वहाँ नाना प्रकार की संपदाएँ (सुख की स्थिति) रहती हैं और जहाँ कुबुद्धि है वहाँ परिणाम में विपत्ति (दुःख) रहती है॥3॥

* तव उर कुमति बसी बिपरीता। हित अनहित मानहु रिपु प्रीता॥
कालराति निसिचर कुल केरी। तेहि सीता पर प्रीति घनेरी॥4॥

भावार्थ:-आपके हृदय में उलटी बुद्धि आ बसी है। इसी से आप हित को अहित और शत्रु को मित्र मान रहे हैं। जो राक्षस कुल के लिए कालरात्रि (के समान) हैं, उन सीता पर आपकी बड़ी प्रीति है॥4॥

दोहा :

* तात चरन गहि मागउँ राखहु मोर दुलार।

सीता देहु राम कहुँ अहित न होइ तुम्हारा॥40॥

भावार्थ:-हे तात! मैं चरण पकड़कर आपसे भीख माँगता हूँ (विनती करता हूँ)। कि आप मेरा दुलार रखिए (मुझ बालक के आग्रह को स्नेहपूर्वक स्वीकार कीजिए) श्री रामजी को सीताजी दे दीजिए, जिसमें आपका अहित न हो॥40॥

चौपाई :

* बुध पुरान श्रुति संमत बानी। कही बिभीषन नीति बखानी॥

सुनत दसानन उठा रिसाई। खल तोहिं निकट मृत्यु अब आई॥1॥

भावार्थ:-विभीषण ने पंडितों, पुराणों और वेदों द्वारा सम्मत (अनुमोदित) वाणी से नीति बखानकर कही। पर उसे सुनते ही रावण क्रोधित होकर उठा और बोला कि रे दुष्ट! अब मृत्यु तेरे निकट आ गई है!॥1॥

* जिअसि सदा सठ मोर जिआवा। रिपु कर पच्छ मूढ़ तोहि भावा॥

कहसि न खल अस को जग माहीं। भुज बल जाहि जिता मैं नाहीं॥2॥

भावार्थ:-अरे मूर्ख! तू जीता तो है सदा मेरा जिलाया हुआ (अर्थात्‌ मेरे ही अन्न से पल रहा है), पर हे मूढ़! पक्ष तुझे शत्रु का ही अच्छा लगता है। अरे दुष्ट! बता न, जगत्‌ में ऐसा कौन है जिसे मैंने अपनी भुजाओं के बल से न जीता हो?॥2॥

* मम पुर बसि तपसिन्ह पर प्रीती। सठ मिलु जाइ तिन्हहि कहु नीती॥

अस कहि कीन्हेसि चरन प्रहारा। अनुज गहे पद बारहिं बारा॥3॥

भावार्थ:-मेरे नगर में रहकर प्रेम करता है तपस्वियों पर। मूर्ख! उन्हीं से जा मिल और उन्हीं को नीति बता। ऐसा कहकर रावण ने उन्हें लात

मारी, परंतु छोटे भाई विभीषण ने (मारने पर भी) बार-बार उसके चरण ही पकड़े॥3॥

* उमा संत कइ इहइ बड़ाई। मंद करत जो करइ भलाई॥
तुम्ह पितु सरिस भलेहिं मोहि मारा। रामु भजें हित नाथ तुम्हारा॥4॥

भावार्थ:-(शिवजी कहते हैं-) हे उमा! संत की यही बड़ाई (महिमा) है कि वे बुराई करने पर भी (बुराई करने वाले की) भलाई ही करते हैं। (विभीषणजी ने कहा-) आप मेरे पिता के समान हैं, मुझे मारा सो तो अच्छा ही किया, परंतु हे नाथ! आपका भला श्री रामजी को भजने में ही है॥4॥

* सचिव संग लै नभ पथ गयऊ। सबहि सुनाइ कहत अस भयऊ॥5॥

भावार्थ:-(इतना कहकर) विभीषण अपने मंत्रियों को साथ लेकर आकाश मार्ग में गए और सबको सुनाकर वे ऐसा कहने लगे-॥5॥

विभीषण का भगवान् श्री रामजी की शरण के लिए प्रस्थान और शरण प्राप्ति

दोहा :

* रामु सत्यसंकल्प प्रभु सभा कालबस तोरि।
मैं रघुबीर सरन अब जाउँ देहु जनि खोरि॥41॥

भावार्थ:-श्री रामजी सत्य संकल्प एवं (सर्वसमर्थ) प्रभु हैं और (हे रावण) तुम्हारी सभा काल के वश है। अतः मैं अब श्री रघुवीर की शरण जाता हूँ, मुझे दोष न देना॥41॥

चौपाई :

* अस कहि चला बिभीषनु जबहीं। आयू हीन भए सब तबहीं॥
साधु अवग्या तुरत भवानी। कर कल्यान अखिल कै हानी॥1॥

भावार्थ:-ऐसा कहकर विभीषणजी ज्यों ही चले, त्यों ही सब राक्षस आयुहीन हो गए। (उनकी मृत्यु निश्चित हो गई)। (शिवजी कहते हैं-) हे भवानी! साधु का अपमान तुरंत ही संपूर्ण कल्याण की हानि (नाश) कर देता है॥1॥

* रावन जबहिं बिभीषन त्यागा। भयउ बिभव बिनु तबहिं अभागा॥
चलेउ हरषि रघुनायक पाहीं। करत मनोरथ बहु मन माहीं॥2॥

भावार्थ:-रावण ने जिस क्षण विभीषण को त्यागा, उसी क्षण वह अभागा वैभव (ऐश्वर्य) से हीन हो गया। विभीषणजी हर्षित होकर मन में अनेकों मनोरथ करते हुए श्री रघुनाथजी के पास चले॥2॥

* देखिहउँ जाइ चरन जलजाता। अरुन मृदुल सेवक सुखदाता॥
जे पद परसि तरी रिषनारी। दंडक कानन पावनकारी॥3॥

भावार्थ:-(वे सोचते जाते थे-) मैं जाकर भगवान्‌ के कोमल और लाल वर्ण के सुंदर चरण कमलों के दर्शन करूँगा, जो सेवकों को सुख देने वाले हैं, जिन चरणों का स्पर्श पाकर ऋषि पत्नी अहल्या तर गईं और जो दंडकवन को पवित्र करने वाले हैं॥3॥

* जे पद जनकसुताँ उर लाए। कपट कुरंग संग धर धाए॥
हर उर सर सरोज पद जेई। अहोभाग्य मैं देखिहउँ तेई॥4॥

भावार्थ:-जिन चरणों को जानकीजी ने हृदय में धारण कर रखा है, जो कपटमृग के साथ पृथ्वी पर (उसे पकड़ने को) दौड़े थे और जो चरणकमल साक्षात् शिवजी के हृदय रूपी सरोवर में विराजते हैं, मेरा अहोभाग्य है कि उन्हीं को आज मैं देखूँगा॥4॥

दोहा :

* जिन्ह पायन्ह के पादुकन्हि भरतु रहे मन लाइ।
ते पद आजु बिलोकिहउँ इन्ह नयनन्हि अब जाइ॥42॥

भावार्थ:-जिन चरणों की पादुकाओं में भरतजी ने अपना मन लगा रखा है, अहा! आज मैं उन्हीं चरणों को अभी जाकर इन नेत्रों से देखूँगा॥42॥

चौपाई :

* ऐहि बिधि करत सप्रेम बिचारा। आयउ सपदि सिंदु एहिं पारा॥
कपिन्ह बिभीषनु आवत देखा। जाना कोउ रिपु दूत बिसेषा॥1॥

भावार्थ:-इस प्रकार प्रेमसहित विचार करते हुए वे शीघ्र ही समुद्र के इस पार (जिधर श्री रामचंद्रजी की सेना थी) आ गए। वानरों ने विभीषण को आते देखा तो उन्होंने जाना कि शत्रु का कोई खास दूत है॥1॥

* ताहि राखि कपीस पहिं आए। समाचार सब ताहि सुनाए॥
कह सुग्रीव सुनहु रघुराई। आवा मिलन दसानन भाई॥2॥

भावार्थ:-उन्हें (पहरे पर) ठहराकर वे सुग्रीव के पास आए और उनको सब समाचार कह सुनाए। सुग्रीव ने (श्री रामजी के पास जाकर) कहा- हे रघुनाथजी! सुनिए, रावण का भाई (आप से) मिलने आया है॥2॥

* कह प्रभु सखा बूझिए काहा। कहइ कपीस सुनहु नरनाहा॥
जानि न जाइ निसाचर माया। कामरूप केहि कारन आया॥3॥

भावार्थ:-प्रभु श्री रामजी ने कहा- हे मित्र! तुम क्या समझते हो (तुम्हारी क्या राय है)? वानरराज सुग्रीव ने कहा- हे महाराज! सुनिए, राक्षसों

की माया जानी नहीं जाती। यह इच्छानुसार रूप बदलने वाला (छली) न जाने किस कारण आया है॥3॥

* भेद हमार लेन सठ आवा। राखिअ बाँधि मोहि अस भावा॥
सखा नीति तुम्ह नीकि बिचारी। मम पन सरनागत भयहारी॥4॥

भावार्थ:-(जान पड़ता है) यह मूर्ख हमारा भेद लेने आया है, इसलिए मुझे तो यही अच्छा लगता है कि इसे बाँध रखा जाए। (श्री रामजी ने कहा-) हे मित्र! तुमने नीति तो अच्छी विचारी, परंतु मेरा प्रण तो है शरणागत के भय को हर लेना!॥4॥

* सुनि प्रभु बचन हरष हनुमाना। सरनागत बच्छल भगवाना॥5॥

भावार्थ:-प्रभु के वचन सुनकर हनुमान्‌जी हर्षित हुए (और मन ही मन कहने लगे कि) भगवान्‌ कैसे शरणागतवत्सल (शरण में आए हुए पर पिता की भाँति प्रेम करने वाले) हैं॥5॥

दोहा :

* सरनागत कहुँ जे तजहिं निज अनहित अनुमानि।
ते नर पावँर पापमय तिन्हहि बिलोकत हानि॥43॥

भावार्थ:-(श्री रामजी फिर बोले-) जो मनुष्य अपने अहित का अनुमान करके शरण में आए हुए का त्याग कर देते हैं, वे पामर (क्षुद्र) हैं, पापमय हैं, उन्हें देखने में भी हानि है (पाप लगता है)॥43॥

चौपाई :

* कोटि बिप्र बध लागहिं जाहू। आएँ सरन तजउँ नहिं ताहू॥
सनमुख होइ जीव मोहि जबहीं। जन्म कोटि अघ नासहिं तबहीं॥1॥

भावार्थ:-जिसे करोड़ों ब्राह्मणों की हत्या लगी हो, शरण में आने पर मैं उसे भी नहीं त्यागता। जीव ज्यों ही मेरे सम्मुख होता है, त्यों ही उसके करोड़ों जन्मों के पाप नष्ट हो जाते हैं॥1॥

* पापवंत कर सहज सुभाऊ। भजनु मोर तेहि भाव न काऊ॥
जौं पै दुष्ट हृदय सोइ होई। मोरें सनमुख आव कि सोई॥2॥

भावार्थ:-पापी का यह सहज स्वभाव होता है कि मेरा भजन उसे कभी नहीं सुहाता। यदि वह (रावण का भाई) निश्चय ही दुष्ट हृदय का होता तो क्या वह मेरे सम्मुख आ सकता था?॥2॥

* निर्मल मन जन सो मोहि पावा। मोहि कपट छल छिद्र न भावा॥
भेद लेन पठवा दससीसा। तबहुँ न कछु भय हानि कपीसा॥3॥

भावार्थ:-जो मनुष्य निर्मल मन का होता है, वही मुझे पाता है। मुझे कपट और छल-छिद्र नहीं सुहाते। यदि उसे रावण ने भेद लेने को भेजा है, तब भी हे सुग्रीव! अपने को कुछ भी भय या हानि नहीं है॥3॥

* जग महुँ सखा निसाचर जेते। लछिमनु हनइ निमिष महुँ तेते॥
जौं सभीत आवा सरनाईं। रखिहउँ ताहि प्रान की नाईं॥4॥

भावार्थ:-क्योंकि हे सखे! जगत में जितने भी राक्षस हैं, लक्ष्मण क्षणभर में उन सबको मार सकते हैं और यदि वह भयभीत होकर मेरी शरण आया है तो मैं तो उसे प्राणों की तरह रखूँगा॥4॥

दोहा :

* उभय भाँति तेहि आनहु हँसि कह कृपानिकेत।
जय कृपाल कहि कपि चले अंगद हनू समेत॥44॥

भावार्थ:-कृपा के धाम श्री रामजी ने हँसकर कहा- दोनों ही स्थितियों में उसे ले आओ। तब अंगद और हनुमान् सहित सुग्रीवजी 'कपालु श्री रामजी की जय हो' कहते हुए चले॥4॥

चौपाई :

* सादर तेहि आगें करि बानर। चले जहाँ रघुपति करुनाकर॥
दूरिहि ते देखे द्वौ भ्राता। नयनानंद दान के दाता॥1॥

भावार्थ:-विभीषणजी को आदर सहित आगे करके वानर फिर वहाँ चले, जहाँ करुणा की खान श्री रघुनाथजी थे। नेत्रों को आनंद का दान देने वाले (अत्यंत सुखद) दोनों भाइयों को विभीषणजी ने दूर ही से देखा॥1॥

* बहुरि राम छबिधाम बिलोकी। रहेउ ठटुकि एकटक पल रोकी॥
भुज प्रलंब कंजारुन लोचन। स्यामल गात प्रनत भय मोचन॥2॥

भावार्थ:-फिर शोभा के धाम श्री रामजी को देखकर वे पलक (मारना) रोककर ठिठककर (स्तब्ध होकर) एकटक देखते ही रह गए। भगवान् की विशाल भुजाएँ हैं लाल कमल के समान नेत्र हैं और शरणागत के भय का नाश करने वाला साँवला शरीर है॥2॥

* सघ कंध आयत उर सोहा। आनन अमित मदन मन मोहा॥
नयन नीर पुलकित अति गाता। मन धरि धीर कही मृदु बाता॥3॥

भावार्थ:-सिंह के से कंधे हैं, विशाल वक्षःस्थल (चौड़ी छाती) अत्यंत शोभा दे रहा है। असंख्य कामदेवों के मन को मोहित करने वाला मुख है। भगवान् के स्वरूप को देखकर विभीषणजी के नेत्रों में (प्रेमाश्रुओं का) जल भर आया और शरीर अत्यंत पुलकित हो गया। फिर मन में धीरज धरकर उन्होंने कोमल वचन कहे॥3॥

* नाथ दसानन कर मैं भ्राता। निसिचर बंस जनम सुरत्राता॥

सहज पापप्रिय तामस देहा। जथा उलूकहि तम पर नेहा॥4॥

भावार्थ:-हे नाथ! मैं दशमुख रावण का भाई हूँ। हे देवताओं के रक्षक! मेरा जन्म राक्षस कुल में हुआ है। मेरा तामसी शरीर है, स्वभाव से ही मुझे पाप प्रिय हैं, जैसे उल्लू को अंधकार पर सहज स्नेह होता है॥4॥

दोहा :

* श्रवन सुजसु सुनि आयउँ प्रभु भंजन भव भीर।
त्राहि त्राहि आरति हरन सरन सुखद रघुबीर॥45॥

भावार्थ:-मैं कानों से आपका सुयश सुनकर आया हूँ कि प्रभु भव (जन्म-मरण) के भय का नाश करने वाले हैं। हे दुखियों के दुःख दूर करने वाले और शरणागत को सुख देने वाले श्री रघुवीर! मेरी रक्षा कीजिए, रक्षा कीजिए॥45॥

चौपाई :

* अस कहि करत दंडवत देखा। तुरत उठे प्रभु हरष बिसेषा॥
दीन बचन सुनि प्रभु मन भावा। भुज बिसाल गहि हृदयँ लगावा॥1॥

भावार्थ:-प्रभु ने उन्हें ऐसा कहकर दंडवत् करते देखा तो वे अत्यंत हर्षित होकर तुरंत उठे। विभीषणजी के दीन वचन सुनने पर प्रभु के मन को बहुत ही भाए। उन्होंने अपनी विशाल भुजाओं से पकड़कर उनको हृदय से लगा लिया॥1॥

* अनुज सहित मिलि ढिग बैठारी। बोले बचन भगत भय हारी॥
कहु लंकेस सहित परिवारा। कुसल कुठाहर बास तुम्हारा॥2॥

भावार्थ:-छोटे भाई लक्ष्मणजी सहित गले मिलकर उनको अपने पास बैठाकर श्री रामजी भक्तों के भय को हरने वाले वचन बोले- हे लंकेश! परिवार सहित अपनी कुशल कहो। तुम्हारा निवास बुरी जगह पर है॥2॥

* खल मंडली बसहु दिनु राती। सखा धरम निबहइ केहि भाँती॥
मैं जानउँ तुम्हारि सब रीती। अति नय निपुन न भाव अनीती॥3॥

भावार्थ:-दिन-रात दुष्टों की मंडली में बसते हो। (ऐसी दशा में) हे सखे! तुम्हारा धर्म किस प्रकार निभता है? मैं तुम्हारी सब रीति (आचार-व्यवहार) जानता हूँ। तुम अत्यंत नीतिनिपुण हो, तुम्हें अनीति नहीं सुहाती॥3॥

* बरु भल बास नरक कर ताता। दुष्ट संग जनि देइ बिधाता॥
अब पद देखि कुसल रघुराया। जौं तुम्ह कीन्हि जानि जन दाया॥4॥

भावार्थ:-हे तात! नरक में रहना वरन् अच्छा है, परंतु विधाता दुष्ट का संग (कभी) न दे। (विभीषणजी ने कहा-) हे रघुनाथजी! अब आपके चरणों का दर्शन कर कुशल से हूँ, जो आपने अपना सेवक जानकर मुझ पर दया की है॥4॥

दोहा :

* तब लगि कुसल न जीव कहुँ सपनेहुँ मन बिश्राम।
जब लगि भजत न राम कहुँ सोक धाम तजि काम॥46॥

भावार्थ:-तब तक जीव की कुशल नहीं और न स्वप्न में भी उसके मन को शांति है, जब तक वह शोक के घर काम (विषय-कामना) को छोड़कर श्री रामजी को नहीं भजता॥46॥

चौपाई :

* तब लगि हृदयँ बसत खल नाना। लोभ मोह मच्छर मद माना॥
जब लगि उर न बसत रघुनाथा। धरें चाप सायक कटि भाथा॥1॥

भावार्थ:-लोभ, मोह, मत्सर (डाह), मद और मान आदि अनेकों दुष्ट तभी तक हृदय में बसते हैं, जब तक कि धनुष-बाण और कमर में तरकस धारण किए हुए श्री रघुनाथजी हृदय में नहीं बसते॥1॥

* ममता तरुन तमी अँधिआरी। राग द्वेष उलूक सुखकारी॥
तब लगि बसति जीव मन माहीं। जब लगि प्रभु प्रताप रबि नाहीं॥2॥

भावार्थ:-ममता पूर्ण अँधेरी रात है, जो राग-द्वेष रूपी उल्लुओं को सुख देने वाली है। वह (ममता रूपी रात्रि) तभी तक जीव के मन में बसती है, जब तक प्रभु (आप) का प्रताप रूपी सूर्य उदय नहीं होता॥2॥

* अब मैं कुसल मिटे भय भारे। देखि राम पद कमल तुम्हारे॥
तुम्ह कृपाल जा पर अनुकूला। ताहि न ब्याप त्रिबिध भव सूला॥3॥

भावार्थ:-हे श्री रामजी! आपके चरणारविन्द के दर्शन कर अब मैं कुशल से हूँ, मेरे भारी भय मिट गए। हे कृपालु! आप जिस पर अनुकूल होते हैं, उसे तीनों प्रकार के भवशूल (आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक ताप) नहीं व्यापते॥3॥

* मैं निसिचर अति अधम सुभाऊ। सुभ आचरनु कीन्ह नहिं काऊ॥
जासु रूप मुनि ध्यान न आवा। तेहिं प्रभु हरषि हृदयँ मोहि लावा॥4॥

भावार्थ:-मैं अत्यंत नीच स्वभाव का राक्षस हूँ। मैंने कभी शुभ आचरण नहीं किया। जिनका रूप मुनियों के भी ध्यान में नहीं आता, उन प्रभु ने स्वयं हर्षित होकर मुझे हृदय से लगा लिया॥4॥

दोहा :

* अहोभाग्य मम अमित अति राम कृपा सुख पुंज।
देखेउँ नयन बिरंचि सिव सेब्य जुगल पद कंज॥47॥

भावार्थ:-हे कृपा और सुख के पुंज श्री रामजी! मेरा अत्यंत असीम सौभाग्य है, जो मैंने ब्रह्मा और शिवजी के द्वारा सेवित युगल चरण कमलों को अपने नेत्रों से देखा॥47॥

चौपाई :

* सुनहु सखा निज कहउँ सुभाऊ। जान भुसुंडि संभु गिरिजाऊ॥
जौं नर होइ चराचर द्रोही। आवै सभय सरन तकि मोही॥1॥

भावार्थ:-(श्री रामजी ने कहा-) हे सखा! सुनो, मैं तुम्हें अपना स्वभाव कहता हूँ, जिसे काकभुशुण्डि, शिवजी और पार्वतीजी भी जानती हैं। कोई मनुष्य (संपूर्ण) जड़-चेतन जगत्‌ का द्रोही हो, यदि वह भी भयभीत होकर मेरी शरण तक कर आ जाए,॥1॥

* तजि मद मोह कपट छल नाना। करउँ सद्य तेहि साधु समाना॥
जननी जनक बंधु सुत दारा। तनु धनु भवन सुहृद परिवारा॥2॥

भावार्थ:-और मद, मोह तथा नाना प्रकार के छल-कपट त्याग दे तो मैं उसे बहुत शीघ्र साधु के समान कर देता हूँ। माता, पिता, भाई, पुत्र, स्त्री, शरीर, धन, घर, मित्र और परिवार॥2॥

* सब कै ममता ताग बटोरी। मम पद मनहि बाँध बरि डोरी॥
समदरसी इच्छा कछु नाहीं। हरष सोक भय नहिं मन माहीं॥3॥

भावार्थ:-इन सबके ममत्व रूपी तागों को बटोरकर और उन सबकी एक डोरी बनाकर उसके द्वारा जो अपने मन को मेरे चरणों में बाँध देता है। (सारे सांसारिक संबंधों का केंद्र मुझे बना लेता है), जो समदर्शी है, जिसे कुछ इच्छा नहीं है और जिसके मन में हर्ष, शोक और भय नहीं है॥3॥

* अस सज्जन मम उर बस कैसें। लोभी हृदयँ बसइ धनु जैसें॥
तुम्ह सारिखे संत प्रिय मोरें। धरउँ देह नहिं आन निहोरें॥4॥

भावार्थ:-ऐसा सज्जन मेरे हृदय में कैसे बसता है, जैसे लोभी के हृदय में धन बसा करता है। तुम सरीखे संत ही मुझे प्रिय हैं। मैं और किसी के निहोरे से (कृतज्ञतावश) देह धारण नहीं करता॥4॥

दोहा :

* सगुन उपासक परहित निरत नीति दृढ़ नेम।
ते नर प्रान समान मम जिन्ह कें द्विज पद प्रेम॥48॥

भावार्थ:-जो सगुण (साकार) भगवान् के उपासक हैं, दूसरे के हित में लगे रहते हैं, नीति और नियमों में दृढ़ हैं और जिन्हें ब्राह्मणों के चरणों में प्रेम है, वे मनुष्य मेरे प्राणों के समान हैं॥48॥

चौपाई :

* सुनु लंकेस सकल गुन तोरें। तातें तुम्ह अतिसय प्रिय मोरें॥।
राम बचन सुनि बानर जूथा। सकल कहहिं जय कृपा बरूथा॥1॥

भावार्थ:-हे लंकापति! सुनो, तुम्हारे अंदर उपर्युक्त सब गुण हैं। इससे तुम मुझे अत्यंत ही प्रिय हो। श्री रामजी के वचन सुनकर सब वानरों के समूह कहने लगे- कृपा के समूह श्री रामजी की जय हो॥1॥

* सुनत बिभीषनु प्रभु कै बानी। नहिं अघात श्रवनामृत जानी॥
पद अंबुज गहि बारहिं बारा। हृदयँ समात न प्रेमु अपारा॥2॥

भावार्थ:-प्रभु की वाणी सुनते हैं और उसे कानों के लिए अमृत जानकर विभीषणजी अघाते नहीं हैं। वे बार-बार श्री रामजी के चरण कमलों को पकड़ते हैं अपार प्रेम है, हृदय में समाता नहीं है॥2॥

* सुनहु देव सचराचर स्वामी। प्रनतपाल उर अंतरजामी॥
उर कछु प्रथम बासना रही। प्रभु पद प्रीति सरित सो बही॥3॥

भावार्थ:-(विभीषणजी ने कहा-) हे देव! हे चराचर जगत् के स्वामी! हे शरणागत के रक्षक! हे सबके हृदय के भीतर की जानने वाले! सुनिए, मेरे हृदय में पहले कुछ वासना थी। वह प्रभु के चरणों की प्रीति रूपी नदी में बह गई॥3॥

* अब कृपाल निज भगति पावनी। देहु सदा सिव मन भावनी॥
एवमस्तु कहि प्रभु रनधीरा। मागा तुरत सिंधु कर नीरा॥4॥

भावार्थ:-अब तो हे कृपालु! शिवजी के मन को सदैव प्रिय लगने वाली अपनी पवित्र भक्ति मुझे दीजिए। 'एवमस्तु' (ऐसा ही हो) कहकर रणधीर प्रभु श्री रामजी ने तुरंत ही समुद्र का जल माँगा॥4॥

* जदपि सखा तव इच्छा नाहीं। मोर दरसु अमोघ जग माहीं॥
अस कहि राम तिलक तेहि सारा। सुमन बृष्टि नभ भई अपारा॥5॥

भावार्थ:-(और कहा-) हे सखा! यद्यपि तुम्हारी इच्छा नहीं है, पर जगत् में मेरा दर्शन अमोघ है (वह निष्फल नहीं जाता)। ऐसा कहकर श्री रामजी ने उनको राजतिलक कर दिया। आकाश से पुष्पों की अपार वृष्टि हुई॥5॥

दोहा :

* रावन क्रोध अनल निज स्वास समीर प्रचंड।
जरत बिभीषनु राखेउ दीन्हेउ राजु अखंड॥49क॥

भावार्थ:-श्री रामजी ने रावण की क्रोध रूपी अग्नि में, जो अपनी (विभीषण की) श्वास (वचन) रूपी पवन से प्रचंड हो रही थी, जलते हुए विभीषण को बचा लिया और उसे अखंड राज्य दिया॥49 (क)॥

* जो संपति सिव रावनहि दीन्हि दिएँ दस माथ।
सोइ संपदा बिभीषनहि सकुचि दीन्हि रघुनाथ॥49ख॥

भावार्थ:-शिवजी ने जो संपत्ति रावण को दसों सिरों की बलि देने पर दी थी, वही संपत्ति श्री रघुनाथजी ने विभीषण को बहुत सकुचते हुए दी॥49 (ख)॥

चौपाई :

* अस प्रभु छाड़ि भजहिं जे आना। ते नर पसु बिनु पूँछ बिषाना॥
निज जन जानि ताहि अपनावा। प्रभु सुभाव कपि कुल मन भावा॥1॥

भावार्थ:-ऐसे परम कृपालु प्रभु को छोड़कर जो मनुष्य दूसरे को भजते हैं, वे बिना सींग-पूँछ के पशु हैं। अपना सेवक जानकर विभीषण को श्री रामजी ने अपना लिया। प्रभु का स्वभाव वानरकुल के मन को (बहुत) भाया॥1॥

* पुनि सर्बग्य सर्ब उर बासी। सर्बरूप सब रहित उदासी॥
बोले बचन नीति प्रतिपालक। कारन मनुज दनुज कुल घालक॥2॥

भावार्थ:-फिर सब कुछ जानने वाले, सबके हृदय में बसने वाले, सर्वरूप (सब रूपों में प्रकट), सबसे रहित, उदासीन, कारण से (भक्तों पर कृपा करने के लिए) मनुष्य बने हुए तथा राक्षसों के कुल का नाश करने वाले श्री रामजी नीति की रक्षा करने वाले वचन बोले-॥2॥

समुद्र पार करने के लिए विचार, रावणदूत शुक का आना और लक्ष्मणजी के पत्र को लेकर लौटना

* सुनु कपीस लंकापति बीरा। केहि बिधि तरिअ जलधि गंभीरा॥
संकुल मकर उरग झष जाती। अति अगाध दुस्तर सब भाँति॥3॥

भावार्थ:-हे वीर वानरराज सुग्रीव और लंकापति विभीषण! सुनो, इस गहरे समुद्र को किस प्रकार पार किया जाए? अनेक जाति के मगर, साँप और मछलियों से भरा हुआ यह अत्यंत अथाह समुद्र पार करने में सब प्रकार से कठिन है॥3॥

* कह लंकेस सुनहु रघुनायक। कोटि सिंधु सोषक तव सायक॥
जद्यपि तदपि नीति असि गाई। बिनय करिअ सागर सन जाई॥4॥

भावार्थ:-विभीषणजी ने कहा- हे रघुनाथजी! सुनिए, यद्यपि आपका एक बाण ही करोड़ों समुद्रों को सोखने वाला है (सोख सकता है), तथापि नीति ऐसी कही गई है (उचित यह होगा) कि (पहले) जाकर समुद्र से प्रार्थना की जाए॥4॥

दोहा :

* प्रभु तुम्हार कुलगुर जलधि कहिहि उपाय बिचारि॥
बिनु प्रयास सागर तरिहि सकल भालु कपि धारि॥50॥

भावार्थ:-हे प्रभु! समुद्र आपके कुल में बड़े (पूर्वज) हैं, वे विचारकर उपाय बतला देंगे। तब रीछ और वानरों की सारी सेना बिना ही परिश्रम के समुद्र के पार उतर जाएगी॥50॥

चौपाई :

* सखा कही तुम्ह नीति उपाई। करिअ दैव जौं होइ सहाई।
मंत्र न यह लछिमन मन भावा। राम बचन सुनि अति दुख पावा॥1॥

भावार्थ:-(श्री रामजी ने कहा-) हे सखा! तुमने अच्छा उपाय बताया। यही किया जाए, यदि दैव सहायक हों। यह सलाह लक्ष्मणजी के मन को

अच्छी नहीं लगी। श्री रामजी के वचन सुनकर तो उन्होंने बहुत ही दुःख पाया॥1॥

* नाथ दैव कर कवन भरोसा। सोषिअ सिंधु करिअ मन रोसा॥

कादर मन कहुँ एक अधारा। दैव दैव आलसी पुकारा॥2॥

भावार्थ:-(लक्ष्मणजी ने कहा-) हे नाथ! दैव का कौन भरोसा! मन में क्रोध कीजिए (ले आइए) और समुद्र को सुखा डालिए। यह दैव तो कायर के मन का एक आधार (तसल्ली देने का उपाय) है। आलसी लोग ही दैव-दैव पुकारा करते हैं॥2॥

* सुनत बिहसि बोले रघुबीरा। ऐसेहिं करब धरहु मन धीरा॥

अस कहि प्रभु अनुजहि समुझाई। सिंधु समीप गए रघुराई॥3॥

भावार्थ:-यह सुनकर श्री रघुवीर हँसकर बोले- ऐसे ही करेंगे, मन में धीरज रखो। ऐसा कहकर छोटे भाई को समझाकर प्रभु श्री रघुनाथजी समुद्र के समीप गए॥3॥

* प्रथम प्रनाम कीन्ह सिरु नाई। बैठे पुनि तट दर्भ डसाई॥

जबहिं बिभीषन प्रभु पहिं आए। पाछें रावन दूत पठाए॥4॥

भावार्थ:-उन्होंने पहले सिर नवाकर प्रणाम किया। फिर किनारे पर कुश बिछाकर बैठ गए। इधर ज्यों ही विभीषणजी प्रभु के पास आए थे, त्यों ही रावण ने उनके पीछे दूत भेजे थे॥51॥

दोहा :

* सकल चरित तिन्ह देखे धरें कपट कपि देह।

प्रभु गुन हृदयँ सराहहिं सरनागत पर नेह॥51॥

भावार्थ:-कपट से वानर का शरीर धारण कर उन्होंने सब लीलाएँ देखीं। वे अपने हृदय में प्रभु के गुणों की और शरणागत पर उनके स्नेह की सराहना करने लगे॥51॥

चौपाई :

* प्रगट बखानहिं राम सुभाऊ। अति सप्रेम गा बिसरि दुराऊ॥
रिपु के दूत कपिन्ह तब जाने। सकल बाँधि कपीस पहिं आने॥1॥

भावार्थ:-फिर वे प्रकट रूप में भी अत्यंत प्रेम के साथ श्री रामजी के स्वभाव की बड़ाई करने लगे उन्हें दुराव (कपट वेश) भूल गया। सब वानरों ने जाना कि ये शत्रु के दूत हैं और वे उन सबको बाँधकर सुग्रीव के पास ले आए॥1॥

* कह सुग्रीव सुनहु सब बानर। अंग भंग करि पठवहु निसिचर॥
सुनि सुग्रीव बचन कपि धाए। बाँधि कटक चहु पास फिराए॥2॥

भावार्थ:-सुग्रीव ने कहा- सब वानरों! सुनो, राक्षसों के अंग-भंग करके भेज दो। सुग्रीव के वचन सुनकर वानर दौड़े। दूतों को बाँधकर उन्होंने सेना के चारों ओर घुमाया॥2॥

* बहु प्रकार मारन कपि लागे। दीन पुकारत तदपि न त्यागे॥
जो हमार हर नासा काना। तेहि कोसलाधीस कै आना॥3॥

भावार्थ:-वानर उन्हें बहुत तरह से मारने लगे। वे दीन होकर पुकारते थे, फिर भी वानरों ने उन्हें नहीं छोड़ा। (तब दूतों ने पुकारकर कहा-) जो हमारे नाक-कान काटेगा, उसे कोसलाधीश श्री रामजी की सौगंध है॥3॥

* सुनि लछिमन सब निकट बोलाए। दया लागि हँसि तुरत छोड़ाए॥
रावन कर दीजहु यह पाती। लछिमन बचन बाचु कुलघाती॥4॥

भावार्थ:-यह सुनकर लक्ष्मणजी ने सबको निकट बुलाया। उन्हें बड़ी दया लगी, इससे हँसकर उन्होंने राक्षसों को तुरंत ही छुड़ा दिया। (और उनसे कहा-) रावण के हाथ में यह चिट्ठी देना (और कहना-) हे कुलघातक! लक्ष्मण के शब्दों (संदेसे) को बाँचो॥4॥

दोहा :

* कहेहु मुखागर मूढ़ सन मम संदेसु उदार।
सीता देइ मिलहु न त आवा कालु तुम्हार॥52॥

भावार्थ:-फिर उस मूर्ख से जबानी यह मेरा उदार (कृपा से भरा हुआ) संदेश कहना कि सीताजी को देकर उनसे (श्री रामजी से) मिलो, नहीं तो तुम्हारा काल आ गया (समझो)॥52॥

चौपाई :

* तुरत नाइ लछिमन पद माथा। चले दूत बरनत गुन गाथा॥
कहत राम जसु लंकाँ आए। रावन चरन सीस तिन्ह नाए॥1॥

भावार्थ:-लक्ष्मणजी के चरणों में मस्तक नवाकर, श्री रामजी के गुणों की कथा वर्णन करते हुए दूत तुरंत ही चल दिए। श्री रामजी का यश कहते हुए वे लंका में आए और उन्होंने रावण के चरणों में सिर नवाए॥1॥

* बिहसि दसानन पूँछी बाता। कहसि न सुक आपनि कुसलाता॥
पुन कहु खबरि बिभीषन केरी। जाहि मृत्यु आई अति नेरी॥2॥

भावार्थ:-दशमुख रावण ने हँसकर बात पूछी- अरे शुक! अपनी कुशल क्यों नहीं कहता? फिर उस विभीषण का समाचार सुना, मृत्यु जिसके अत्यंत निकट आ गई है॥2॥

* करत राज लंका सठ त्यागी। होइहि जव कर कीट अभागी॥
पुनि कहु भालु कीस कटकाई। कठिन काल प्रेरित चलि आई॥3॥

भावार्थ:-मूर्ख ने राज्य करते हुए लंका को त्याग दिया। अभागा अब जौ का कीड़ा (घुन) बनेगा (जौ के साथ जैसे घुन भी पिस जाता है, वैसे ही नर वानरों के साथ वह भी मारा जाएगा), फिर भालु और वानरों की सेना का हाल कह, जो कठिन काल की प्रेरणा से यहाँ चली आई है॥3॥

* जिन्ह के जीवन कर रखवारा। भयउ मृदुल चित सिंधु बिचारा॥

कहु तपसिन्ह कै बात बहोरी। जिन्ह के हृदयँ त्रास अति मोरी॥4॥

भावार्थ:-और जिनके जीवन का रक्षक कोमल चित्त वाला बेचारा समुद्र बन गया है (अर्थात्‌) उनके और राक्षसों के बीच में यदि समुद्र न होता तो अब तक राक्षस उन्हें मारकर खा गए होते। फिर उन तपस्वियों की बात बता, जिनके हृदय में मेरा बड़ा डर है॥4॥

दूत का रावण को समझाना और लक्ष्मणजी का पत्र देना

दोहा :

* की भइ भेंट कि फिरि गए श्रवन सुजसु सुनि मोर।

कहसि न रिपु दल तेज बल बहुत चकित चित तोर ॥53॥

भावार्थ:-उनसे तेरी भेंट हुई या वे कानों से मेरा सुयश सुनकर ही लौट गए? शत्रु सेना का तेज और बल बताता क्यों नहीं? तेरा चित्त बहुत ही चकित (भौंचक्का सा) हो रहा है॥53॥

चौपाई :

* नाथ कृपा करि पूँछेहु जैसें। मानहु कहा क्रोध तजि तैसें॥

मिला जाइ जब अनुज तुम्हारा। जातहिं राम तिलक तेहि सारा॥1॥

भावार्थ:-(दूत ने कहा-) हे नाथ! आपने जैसे कृपा करके पूछा है, वैसे ही क्रोध छोड़कर मेरा कहना मानिए (मेरी बात पर विश्वास कीजिए)। जब

आपका छोटा भाई श्री रामजी से जाकर मिला, तब उसके पहुँचते ही श्री रामजी ने उसको राजतिलक कर दिया॥1॥

दोहा :

* रावन दूत हमहि सुनि काना। कपिन्ह बाँधि दीन्हें दुख नाना॥
श्रवन नासिका काटैं लागे। राम सपथ दीन्हें हम त्यागे॥2॥

भावार्थ:-हम रावण के दूत हैं, यह कानों से सुनकर वानरों ने हमें बाँधकर बहुत कष्ट दिए, यहाँ तक कि वे हमारे नाक-कान काटने लगे। श्री रामजी की शपथ दिलाने पर कहीं उन्होंने हमको छोड़ा॥2॥

* पूँछिहु नाथ राम कटकाई। बदन कोटि सत बरनि न जाई॥
नाना बरन भालु कपि धारी। बिकटानन बिसाल भयकारी॥3॥

भावार्थ:-हे नाथ! आपने श्री रामजी की सेना पूछी, सो वह तो सौ करोड़ मुखों से भी वर्णन नहीं की जा सकती। अनेकों रंगों के भालु और वानरों की सेना है, जो भयंकर मुख वाले, विशाल शरीर वाले और भयानक हैं॥3॥

* जेहिं पुर दहेउ हतेउ सुत तोरा। सकल कपिन्ह महँ तेहि बलु थोरा॥
अमित नाम भट कठिन कराला। अमित नाग बल बिपुल बिसाला॥4॥

भावार्थ:-जिसने नगर को जलाया और आपके पुत्र अक्षय कुमार को मारा, उसका बल तो सब वानरों में थोड़ा है। असंख्य नामों वाले बड़े ही कठोर और भयंकर योद्धा हैं। उनमें असंख्य हाथियों का बल है और वे बड़े ही विशाल हैं॥4॥

दोहा :

* द्विबिद मयंद नील नल अंगद गद बिकटासि।
दधिमुख केहरि निसठ सठ जामवंत बलरासि॥54॥

भावार्थ:-द्विविद, मयंद, नील, नल, अंगद, गद, विकटास्य, दधिमुख, केसरी, निशठ, शठ और जाम्बवान् ये सभी बल की राशि हैं॥54॥

चौपाई :

* ए कपि सब सुग्रीव समाना। इन्ह सम कोटिन्ह गनइ को नाना॥
राम कृपाँ अतुलित बल तिन्हहीं। तृन समान त्रैलोकहि गनहीं॥1॥

भावार्थ:-ये सब वानर बल में सुग्रीव के समान हैं और इनके जैसे (एक-दो नहीं) करोड़ों हैं, उन बहुत सो को गिन ही कौन सकता है। श्री रामजी की कृपा से उनमें अतुलनीय बल है। वे तीनों लोकों को तृण के समान (तुच्छ) समझते हैं॥1॥

* अस मैं सुना श्रवन दसकंधर। पदुम अठारह जूथप बंदर॥
नाथ कटक महँ सो कपि नाहीं। जो न तुम्हहि जीतै रन माहीं॥2॥

भावार्थ:-हे दशग्रीव! मैंने कानों से ऐसा सुना है कि अठारह पद्म तो अकेले वानरों के सेनापति हैं। हे नाथ! उस सेना में ऐसा कोई वानर नहीं है, जो आपको रण में न जीत सके॥2॥

* परम क्रोध मीजहिं सब हाथा। आयसु पै न देहिं रघुनाथा॥
सोषहिं सिंधु सहित झष ब्याला। पूरहिं न त भरि कुधर बिसाला॥3॥

भावार्थ:-सब के सब अत्यंत क्रोध से हाथ मीजते हैं। पर श्री रघुनाथजी उन्हें आज्ञा नहीं देते। हम मछलियों और साँपों सहित समुद्र को सोख लेंगे। नहीं तो बड़े-बड़े पर्वतों से उसे भरकर पूर (पाट) देंगे॥3॥

* मर्दि गर्द मिलवहिं दससीसा। ऐसेइ बचन कहहिं सब कीसा॥
गर्जहिं तर्जहिं सहज असंका। मानहुँ ग्रसन चहत हहिं लंका॥4॥

भावार्थ:-और रावण को मसलकर धूल में मिला देंगे। सब वानर ऐसे ही वचन कह रहे हैं। सब सहज ही निडर हैं, इस प्रकार गरजते और डपटते हैं मानो लंका को निगल ही जाना चाहते हैं॥4॥

दोहा :

* सहज सूर कपि भालु सब पुनि सिर पर प्रभु राम।
रावन काल कोटि कहुँ जीति सकहिं संग्राम॥55॥

भावार्थ:-सब वानर-भालू सहज ही शूरवीर हैं फिर उनके सिर पर प्रभु (सर्वेश्वर) श्री रामजी हैं। हे रावण! वे संग्राम में करोड़ों कालों को जीत सकते हैं॥55॥

चौपाई :

* राम तेज बल बुधि बिपुलाई। सेष सहस सत सकहिं न गाई॥
सक सर एक सोषि सत सागर। तव भ्रातहि पूँछेउ नय नागर॥1॥

भावार्थ:-श्री रामचंद्रजी के तेज (सामर्थ्य), बल और बुद्धि की अधिकता को लाखों शेष भी नहीं गा सकते। वे एक ही बाण से सैकड़ों समुद्रों को सोख सकते हैं, परंतु नीति निपुण श्री रामजी ने (नीति की रक्षा के लिए) आपके भाई से उपाय पूछा॥1॥

* तासु बचन सुनि सागर पाहीं। मागत पंथ कृपा मन माहीं॥
सुनत बचन बिहसा दससीसा। जौं असि मति सहाय कृत कीसा॥2॥

भावार्थ:-उनके (आपके भाई के) वचन सुनकर वे (श्री रामजी) समुद्र से राह माँग रहे हैं, उनके मन में कृपा भी है (इसलिए वे उसे सोखते नहीं)। दूत के ये वचन सुनते ही रावण खूब हँसा (और बोला-) जब ऐसी बुद्धि है, तभी तो वानरों को सहायक बनाया है!॥2॥

* सहज भीरु कर बचन दृढ़ाई। सागर सन ठानी मचलाई॥
मूढ़ मृषा का करसि बड़ाई। रिपु बल बुद्धि थाह मैं पाई॥3॥

भावार्थ:-स्वाभाविक ही डरपोक विभीषण के वचन को प्रमाण करके उन्होंने समुद्र से मचलना (बालहठ) ठाना है। अरे मूर्ख! झूठी बड़ाई क्या करता है? बस, मैंने शत्रु (राम) के बल और बुद्धि की थाह पा ली॥3॥

* सचिव सभीत बिभीषन जाकें। बिजय बिभूति कहाँ जग ताकें॥

सुनि खल बचन दूत रिस बाढ़ी। समय बिचारि पत्रिका काढ़ी॥4॥

भावार्थ:-सुनि खल बचन दूत रिस बाढ़ी। समय बिचारि पत्रिका काढ़ी॥4॥

* रामानुज दीन्हीं यह पाती। नाथ बचाइ जुड़ावहु छाती॥

बिहसि बाम कर लीन्हीं रावन। सचिव बोलि सठ लाग बचावन॥5॥

भावार्थ:-(और कहा-) श्री रामजी के छोटे भाई लक्ष्मण ने यह पत्रिका दी है। हे नाथ! इसे बचवाकर छाती ठंडी कीजिए। रावण ने हँसकर उसे बाएँ हाथ से लिया और मंत्री को बुलवाकर वह मूर्ख उसे बँचाने लगा॥5॥

दोहा :

* बातन्ह मनहि रिझाइ सठ जनि घालसि कुल खीस।

राम बिरोध न उबरसि सरन बिष्नु अज ईस॥56क॥

भावार्थ:-(पत्रिका में लिखा था-) अरे मूर्ख! केवल बातों से ही मन को रिझाकर अपने कुल को नष्ट-भ्रष्ट न कर। श्री रामजी से विरोध करके तू विष्णु, ब्रह्मा और महेश की शरण जाने पर भी नहीं बचेगा॥56 (क)॥

* की तजि मान अनुज इव प्रभु पद पंकज भृंग।

होहि कि राम सरानल खल कुल सहित पतंग॥56ख॥

भावार्थ:-या तो अभिमान छोड़कर अपने छोटे भाई विभीषण की भाँति प्रभु के चरण कमलों का भ्रमर बन जा। अथवा रे दुष्ट! श्री रामजी के बाण रूपी अग्नि में परिवार सहित पतिंगा हो जा (दोनों में से जो अच्छा लगे सो कर)॥56 (ख)॥

चौपाई :

* सुनत सभय मन मुख मुसुकाई। कहत दसानन सबहि सुनाई॥

भूमि परा कर गहत अकासा। लघु तापस कर बाग बिलासा॥1॥

भावार्थ:-पत्रिका सुनते ही रावण मन में भयभीत हो गया, परंतु मुख से (ऊपर से) मुस्कुराता हुआ वह सबको सुनाकर कहने लगा- जैसे कोई पृथ्वी पर पड़ा हुआ हाथ से आकाश को पकड़ने की चेष्टा करता हो, वैसे ही यह छोटा तपस्वी (लक्ष्मण) वाग्विलास करता है (डींग हाँकता है)॥1॥

* कह सुक नाथ सत्य सब बानी। समुझहु छाड़ि प्रकृति अभिमानी॥
सुनहु बचन मम परिहरि क्रोधा। नाथ राम सन तजहु बिरोधा॥2॥

भावार्थ:-शुक (दूत) ने कहा- हे नाथ! अभिमानी स्वभाव को छोड़कर (इस पत्र में लिखी) सब बातों को सत्य समझिए। क्रोध छोड़कर मेरा वचन सुनिए। हे नाथ! श्री रामजी से वैर त्याग दीजिए॥2॥

* अति कोमल रघुबीर सुभाऊ। जद्यपि अखिल लोक कर राऊ॥
मिलत कृपा तुम्ह पर प्रभु करिही। उर अपराध न एकउ धरिही॥3॥

भावार्थ:-यद्यपि श्री रघुवीर समस्त लोकों के स्वामी हैं, पर उनका स्वभाव अत्यंत ही कोमल है। मिलते ही प्रभु आप पर कृपा करेंगे और आपका एक भी अपराध वे हृदय में नहीं रखेंगे॥3॥

* जनकसुता रघुनाथहि दीजे। एतना कहा मोर प्रभु कीजे॥
जब तेहिं कहा देन बैदेही। चरन प्रहार कीन्ह सठ तेही॥4॥

भावार्थ:-जानकीजी श्री रघुनाथजी को दे दीजिए। हे प्रभु! इतना कहना मेरा कीजिए। जब उस (दूत) ने जानकीजी को देने के लिए कहा, तब दुष्ट रावण ने उसको लात मारी॥4॥

* नाइ चरन सिरु चला सो तहाँ। कृपासिंधु रघुनायक जहाँ॥
करि प्रनामु निज कथा सुनाई। राम कृपाँ आपनि गति पाई॥5॥

भावार्थ:-वह भी (विभीषण की भाँति) चरणों में सिर नवाकर वहीं चला, जहाँ कृपासागर श्री रघुनाथजी थे। प्रणाम करके उसने अपनी कथा सुनाई और श्री रामजी की कृपा से अपनी गति (मुनि का स्वरूप) पाई॥5॥

* रिषि अगस्ति कीं साप भवानी। राछस भयउ रहा मुनि ग्यानी॥
बंदि राम पद बारहिं बारा। मुनि निज आश्रम कहुँ पगु धारा॥6॥

भावार्थ:-(शिवजी कहते हैं-) हे भवानी! वह ज्ञानी मुनि था, अगस्त्य ऋषि के शाप से राक्षस हो गया था। बार-बार श्री रामजी के चरणों की वंदना करके वह मुनि अपने आश्रम को चला गया॥6॥

समुद्र पर श्री रामजी का क्रोध और समुद्र की विनती, श्री राम गुणगान की महिमा

दोहा :

* बिनय न मानत जलधि जड़ गए तीनि दिन बीति।
बोले राम सकोप तब भय बिनु होइ न प्रीति॥57॥

भावार्थ:-इधर तीन दिन बीत गए, किंतु जड़ समुद्र विनय नहीं मानता। तब श्री रामजी क्रोध सहित बोले- बिना भय के प्रीति नहीं होती!॥57॥

चौपाई :

* लछिमन बान सरासन आनू। सोषौं बारिधि बिसिख कृसानु॥

गीताप्रेस गोरखपुर

सठ सन बिनय कुटिल सन प्रीति। सहज कृपन सन सुंदर नीति॥1॥

भावार्थ:-हे लक्ष्मण! धनुष-बाण लाओ, मैं अग्निबाण से समुद्र को सोख डालूँ। मूर्ख से विनय, कुटिल के साथ प्रीति, स्वाभाविक ही कंजूस से सुंदर नीति (उदारता का उपदेश),॥1॥

* ममता रत सन ग्यान कहानी। अति लोभी सन बिरति बखानी॥
क्रोधिहि सम कामिहि हरिकथा। ऊसर बीज बएँ फल जथा॥2॥

भावार्थ:-ममता में फँसे हुए मनुष्य से ज्ञान की कथा, अत्यंत लोभी से वैराग्य का वर्णन, क्रोधी से शम (शांति) की बात और कामी से भगवान् की कथा, इनका वैसा ही फल होता है जैसा ऊसर में बीज बोने से होता है (अर्थात् ऊसर में बीज बोने की भाँति यह सब व्यर्थ जाता है)॥2॥

* अस कहि रघुपति चाप चढ़ावा। यह मत लछिमन के मन भावा॥
संधानेउ प्रभु बिसिख कराला। उठी उदधि उर अंतर ज्वाला॥3॥

भावार्थ:-ऐसा कहकर श्री रघुनाथजी ने धनुष चढ़ाया। यह मत लक्ष्मणजी के मन को बहुत अच्छा लगा। प्रभु ने भयानक (अग्नि) बाण संधान किया, जिससे समुद्र के हृदय के अंदर अग्नि की ज्वाला उठी॥3॥

* मकर उरग झष गन अकुलाने। जरत जंतु जलनिधि जब जाने॥
कनक थार भरि मनि गन नाना। बिप्र रूप आयउ तजि माना॥4॥

भावार्थ:-मगर, साँप तथा मछलियों के समूह व्याकुल हो गए। जब समुद्र ने जीवों को जलते जाना, तब सोने के थाल में अनेक मणियों (रत्नों) को भरकर अभिमान छोड़कर वह ब्राह्मण के रूप में आया॥4॥

दोहा :

* काटेहिं पइ कदरी फरइ कोटि जतन कोउ सींच।

बिनय न मान खगेस सुनु डाटेहिं पइ नव नीच॥58॥

भावार्थ:-(काकभुशुण्डिजी कहते हैं-) हे गरुड़जी! सुनिए, चाहे कोई करोड़ों उपाय करके सींचे, पर केला तो काटने पर ही फलता है। नीच विनय से नहीं मानता, वह डाँटने पर ही झुकता है (रास्ते पर आता है)॥58॥

* सभय सिंधु गहि पद प्रभु केरे। छमहु नाथ सब अवगुन मेरे॥।
गगन समीर अनल जल धरनी। इन्ह कइ नाथ सहज जड़ करनी॥1॥

भावार्थ:-समुद्र ने भयभीत होकर प्रभु के चरण पकड़कर कहा- हे नाथ! मेरे सब अवगुण (दोष) क्षमा कीजिए। हे नाथ! आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी- इन सबकी करनी स्वभाव से ही जड़ है॥1॥

* तव प्रेरित मायाँ उपजाए। सृष्टि हेतु सब ग्रंथनि गाए॥
प्रभु आयसु जेहि कहँ जस अहई। सो तेहि भाँति रहें सुख लहई॥2॥

भावार्थ:-आपकी प्रेरणा से माया ने इन्हें सृष्टि के लिए उत्पन्न किया है, सब ग्रंथों ने यही गाया है। जिसके लिए स्वामी की जैसी आज्ञा है, वह उसी प्रकार से रहने में सुख पाता है॥2॥

* प्रभु भल कीन्ह मोहि सिख दीन्हीं। मरजादा पुनि तुम्हरी कीन्हीं॥
ढोल गवाँर सूद्र पसु नारी। सकल ताड़ना के अधिकारी॥3॥

भावार्थ:-प्रभु ने अच्छा किया जो मुझे शिक्षा (दंड) दी, किंतु मर्यादा (जीवों का स्वभाव) भी आपकी ही बनाई हुई है। ढोल, गँवार, शूद्र, पशु और स्त्री- ये सब शिक्षा के अधिकारी हैं॥3॥

* प्रभु प्रताप मैं जाब सुखाई। उतरिहि कटकु न मोरि बड़ाई॥
प्रभु अग्या अपेल श्रुति गाई। करौं सो बेगि जो तुम्हहि सोहाई॥4॥

भावार्थ:-प्रभु के प्रताप से मैं सूख जाऊँगा और सेना पार उतर जाएगी, इसमें मेरी बड़ाई नहीं है (मेरी मर्यादा नहीं रहेगी)। तथापि प्रभु की आज्ञा अपेल है (अर्थात् आपकी आज्ञा का उल्लंघन नहीं हो सकता) ऐसा वेद गाते हैं। अब आपको जो अच्छा लगे, मैं तुरंत वही करूँ॥4॥

दोहा :

*सुनत बिनीत बचन अति कह कृपाल मुसुकाइ।
जेहि बिधि उतरै कपि कटकु तात सो कहहु उपाइ॥59॥

भावार्थ:-समुद्र के अत्यंत विनीत वचन सुनकर कृपालु श्री रामजी ने मुस्कुराकर कहा- हे तात! जिस प्रकार वानरों की सेना पार उतर जाए, वह उपाय बताओ॥59॥

चौपाई :

* नाथ नील नल कपि द्वौ भाई। लरिकाईं रिषि आसिष पाई॥
तिन्ह कें परस किएँ गिरि भारे। तरिहहिं जलधि प्रताप तुम्हारे॥1॥

भावार्थ:-(समुद्र ने कहा)) हे नाथ! नील और नल दो वानर भाई हैं। उन्होंने लड़कपन में ऋषि से आशीर्वाद पाया था। उनके स्पर्श कर लेने से ही भारी-भारी पहाड़ भी आपके प्रताप से समुद्र पर तैर जाएँगे॥1॥

* मैं पुनि उर धरि प्रभु प्रभुताई। करिहउँ बल अनुमान सहाई॥
एहि बिधि नाथ पयोधि बँधाइअ। जेहिं यह सुजसु लोक तिहुँ गाइअ॥2॥

भावार्थ:-मैं भी प्रभु की प्रभुता को हृदय में धारण कर अपने बल के अनुसार (जहाँ तक मुझसे बन पड़ेगा) सहायता करूँगा। हे नाथ! इस प्रकार समुद्र को बँधाइए, जिससे तीनों लोकों में आपका सुंदर यश गाया जाए॥2॥

* एहि सर मम उत्तर तट बासी। हतहु नाथ खल नर अघ रासी॥
सुनि कृपाल सागर मन पीरा। तुरतहिं हरी राम रनधीरा॥3॥

भावार्थ:-इस बाण से मेरे उत्तर तट पर रहने वाले पाप के राशि दुष्ट मनुष्यों का वध कीजिए। कृपालु और रणधीर श्री रामजी ने समुद्र के मन की पीड़ा सुनकर उसे तुरंत ही हर लिया (अर्थात्‌ बाण से उन दुष्टों का वध कर दिया)॥3॥

* देखि राम बल पौरुष भारी। हरषि पयोनिधि भयउ सुखारी॥
सकल चरित कहि प्रभुहि सुनावा। चरन बंदि पाथोधि सिधावा॥4॥

भावार्थ:-श्री रामजी का भारी बल और पौरुष देखकर समुद्र हर्षित होकर सुखी हो गया। उसने उन दुष्टों का सारा चरित्र प्रभु को कह सुनाया। फिर चरणों की वंदना करके समुद्र चला गया॥4॥

छंद :

* निज भवन गवनेउ सिंधु श्रीरघुपतिहि यह मत भायऊ।
यह चरित कलि मल हर जथामति दास तुलसी गायऊ॥
सुख भवन संसय समन दवन बिषाद रघुपति गुन गना।
तजि सकल आस भरोस गावहि सुनहि संतत सठ मना॥

भावार्थ:-समुद्र अपने घर चला गया, श्री रघुनाथजी को यह मत (उसकी सलाह) अच्छा लगा। यह चरित्र कलियुग के पापों को हरने वाला है, इसे तुलसीदास ने अपनी बुद्धि के अनुसार गाया है। श्री रघुनाथजी के गुण समूह सुख के धाम, संदेह का नाश करने वाले और विषाद का दमन करने वाले हैं। अरे मूर्ख मन! तू संसार का सब आशा-भरोसा त्यागकर निरंतर इन्हें गा और सुन।

दोहा :

* सकल सुमंगल दायक रघुनायक गुन गान।
सादर सुनहिं ते तरहिं भव सिंधु बिना जलजान॥60॥

भावार्थ:-श्री रघुनाथजी का गुणगान संपूर्ण सुंदर मंगलों का देने वाला है। जो इसे आदर सहित सुनेंगे, वे बिना किसी जहाज (अन्य साधन) के ही भवसागर को तर जाएँगे॥60॥

मासपारायण, चौबीसवाँ विश्राम
इति श्रीमद्रामचरितमानसे सकलकलिकलुषविध्वंसने पंचमः सोपानः समाप्तः।
कलियुग के समस्त पापों का नाश करने वाले श्री रामचरित मानस का यह पाँचवाँ सोपान समाप्त हुआ।
(सुंदरकाण्ड समाप्त)

गीताप्रेस गोरखपुर

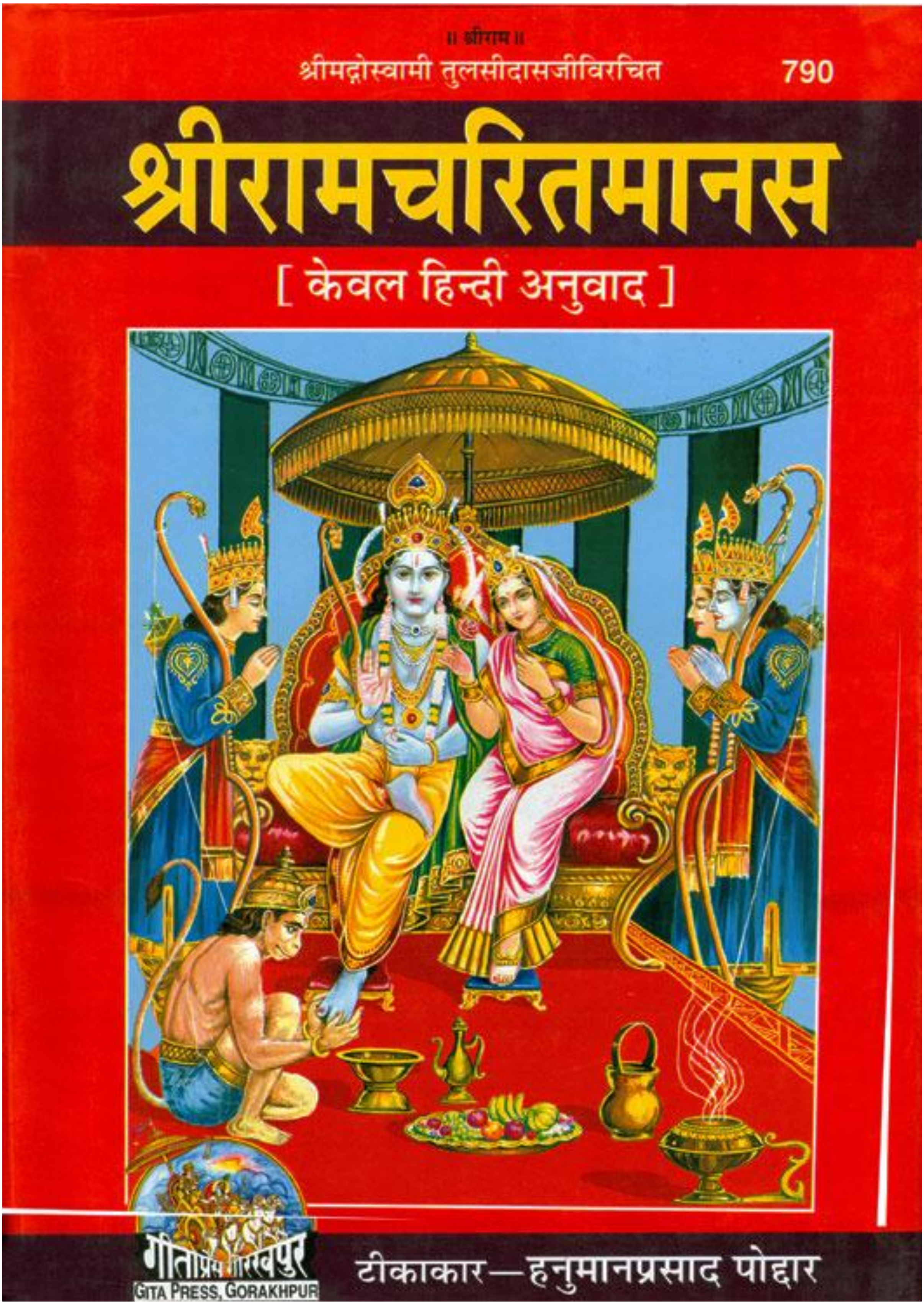

॥ श्रीराम ॥

श्रीमद्गोस्वामी तुलसीदासजीविरचित

790

श्रीरामचरितमानस

[केवल हिन्दी अनुवाद]

गीताप्रेस गोरखपुर

GITA PRESS, GORAKHPUR

टीकाकार—हनुमानप्रसाद पोद्दार

श्रीरामचरितमानस
लंकाकाण्ड
षष्ठ सोपान- मंगलाचरण

श्लोक :

* रामं कामारिसेव्यं भवभयहरणं कालमत्तेभसिंहं
योगीन्द्रं ज्ञानगम्यं गुणनिधिमजितं निर्गुणं निर्विकारम्।
मायातीतं सुरेशं खलवधनिरतं ब्रह्मवृन्दैकदेवं
वन्दे कन्दावदातं सरसिजनयनं देवमुर्वीशरूपम्॥1॥

भावार्थ:- कामदेव के शत्रु शिवजी के सेव्य, भव (जन्म-मृत्यु) के भय को हरने वाले, काल रूपी मतवाले हाथी के लिए सिंह के समान, योगियों के स्वामी (योगीश्वर), ज्ञान के द्वारा जानने योग्य, गुणों की निधि, अजेय, निर्गुण, निर्विकार, माया से परे, देवताओं के स्वामी, दुष्टों के वध में तत्पर, ब्राह्मणवृन्द के एकमात्र देवता (रक्षक), जल वाले मेघ के समान सुंदर श्याम, कमल के से नेत्र वाले, पृथ्वीपति (राजा) के रूप में परमदेव श्री रामजी की मैं वंदना करता हूँ॥1॥

* शंखेन्द्वाभमतीवसुन्दरतनुं शार्दूलचर्माम्बरं
कालव्यालकरालभूषणधरं गंगाशशांकप्रियम्।
काशीशं कलिकल्मषौघशमनं कल्याणकल्पद्रुमं
नौमीड्यं गिरिजापतिं गुणनिधिं कन्दर्पहं शंकरम्॥2॥

भावार्थ:- शंख और चंद्रमा की सी कांति के अत्यंत सुंदर शरीर वाले, व्याघ्रचर्म के वस्त्र वाले, काल के समान (अथवा काले रंग के) भयानक सर्पों का भूषण धारण करने वाले, गंगा और चंद्रमा के प्रेमी, काशीपति, कलियुग के पाप समूह का नाश करने वाले, कल्याण के कल्पवृक्ष, गुणों के निधान और कामदेव को भस्म करने वाले, पार्वती पति वन्दनीय श्री शंकरजी को मैं नमस्कार करता हूँ॥2॥

यो ददाति सतां शम्भुः कैवल्यमपि दुर्लभम्‌।
खलानां दण्डकृद्योऽसौ शंकरः शं तनोतु मे॥3॥

भावार्थ:- जो सत्‌ पुरुषों को अत्यंत दुर्लभ कैवल्यमुक्ति तक दे डालते हैं और जो दुष्टों को दण्ड देने वाले हैं, वे कल्याणकारी श्री शम्भु मेरे कल्याण का विस्तार करें॥3॥

दोहा :

* लव निमेष परमानु जुग बरष कलप सर चंड।
भजसि न मन तेहि राम को कालु जासु कोदंड॥

भावार्थ:- लव, निमेष, परमाणु, वर्ष, युग और कल्प जिनके प्रचण्ड बाण हैं और काल जिनका धनुष है, हे मन! तू उन श्री रामजी को क्यों नहीं भजता?

नल-नील द्वारा पुल बाँधना, श्री रामजी द्वारा श्री रामेश्वर की स्थापना

सोरठा :

* सिंधु बचन सुनि राम सचिव बोलि प्रभु अस कहेउ।

अब बिलंबु केहि काम करहु सेतु उतरै कटकु॥
भावार्थ:- समुद्र के वचन सुनकर प्रभु श्री रामजी ने मंत्रियों को बुलाकर ऐसा कहा- अब विलंब किसलिए हो रहा है? सेतु (पुल) तैयार करो, जिसमें सेना उतरे।

* सुनहु भानुकुल केतु जामवंत कर जोरि कह।
नाथ नाम तव सेतु नर चढ़ि भव सागर तरहिं॥
भावार्थ:- जाम्बवान्‌ ने हाथ जोड़कर कहा- हे सूर्यकुल के ध्वजास्वरूप (कीर्ति को बढ़ाने वाले) श्री रामजी! सुनिए। हे नाथ! (सबसे बड़ा) सेतु तो आपका नाम ही है, जिस पर चढ़कर (जिसका आश्रय लेकर) मनुष्य संसार रूपी समुद्र से पार हो जाते हैं।
चौपाई :

* यह लघु जलधि तरत कति बारा। अस सुनि पुनि कह पवनकुमारा॥
प्रभु प्रताप बड़वानल भारी। सोषेउ प्रथम पयोनिधि बारी॥1॥

भावार्थ:- फिर यह छोटा सा समुद्र पार करने में कितनी देर लगेगी? ऐसा सुनकर फिर पवनकुमार श्री हनुमान्‌जी ने कहा- प्रभु का प्रताप भारी बड़वानल (समुद्र की आग) के समान है। इसने पहले समुद्र के जल को सोख लिया था,॥1॥

* तव रिपु नारि रुदन जल धारा। भरेउ बहोरि भयउ तेहिं खारा॥
सुनि अति उकुति पवनसुत केरी। हरषे कपि रघुपति तन हेरी॥2॥
भावार्थ:- परन्तु आपके शत्रुओं की स्त्रियों के आँसुओं की धारा से यह फिर भर गया और उसी से खारा भी हो गया। हनुमान्‌जी की यह अत्युक्ति (अलंकारपूर्ण युक्ति) सुनकर वानर श्री रघुनाथजी की ओर देखकर हर्षित हो गए॥2॥

* जामवंत बोले दोउ भाई। नल नीलहि सब कथा सुनाई॥
राम प्रताप सुमिरि मन माहीं। करहु सेतु प्रयास कछु नाहीं॥3॥

भावार्थ:- जाम्बवान् ने नल-नील दोनों भाइयों को बुलाकर उन्हें सारी कथा कह सुनाई (और कहा-) मन में श्री रामजी के प्रताप को स्मरण करके सेतु तैयार करो, (रामप्रताप से) कुछ भी परिश्रम नहीं होगा॥3॥

* बोलि लिए कपि निकर बहोरी। सकल सुनहु बिनती कछु मोरी॥

राम चरन पंकज उर धरहू। कौतुक एक भालु कपि करहू॥4॥

भावार्थ:- फिर वानरों के समूह को बुला लिया (और कहा-) आप सब लोग मेरी कुछ विनती सुनिए। अपने हृदय में श्री रामजी के चरण-कमलों को धारण कर लीजिए और सब भालू और वानर एक खेल कीजिए॥4॥

* धावहु मर्कट बिकट बरूथा। आनहु बिटप गिरिन्ह के जूथा॥

सुनि कपि भालु चले करि हूहा। जय रघुबीर प्रताप समूहा॥5॥

भावार्थ:- विकट वानरों के समूह (आप) दौड़ जाइए और वृक्षों तथा पर्वतों के समूहों को उखाड़ लाइए। यह सुनकर वानर और भालू हूह (हुँकार) करके और श्री रघुनाथजी के प्रताप समूह की (अथवा प्रताप के पुंज श्री रामजी की) जय पुकारते हुए चले॥5॥

दोहा :

* अति उतंग गिरि पादप लीलहिं लेहिं उठाइ।

आनि देहिं नल नीलहि रचहिं ते सेतु बनाइ॥1॥

भावार्थ:- बहुत ऊँचे-ऊँचे पर्वतों और वृक्षों को खेल की तरह ही (उखाड़कर) उठा लेते हैं और ला-लाकर नल-नील को देते हैं। वे अच्छी तरह गढ़कर (सुंदर) सेतु बनाते हैं॥1॥

चौपाई :

* सैल बिसाल आनि कपि देहीं। कंदुक इव नल नील ते लेहीं॥

देखि सेतु अति सुंदर रचना। बिहसि कृपानिधि बोले बचना॥1॥

भावार्थ:- वानर बड़े-बड़े पहाड़ ला-लाकर देते हैं और नल-नील उन्हें गेंद की तरह ले लेते हैं। सेतु की अत्यंत सुंदर रचना देखकर कृपासिन्धु श्री रामजी हँसकर वचन बोले-॥1॥

* परम रम्य उत्तम यह धरनी। महिमा अमित जाइ नहिं बरनी॥

करिहउँ इहाँ संभु थापना। मोरे हृदयँ परम कलपना॥2॥

भावार्थ:- यह (यहाँ की) भूमि परम रमणीय और उत्तम है। इसकी असीम महिमा वर्णन नहीं की जा सकती। मैं यहाँ शिवजी की स्थापना करूँगा। मेरे हृदय में यह महान्‌ संकल्प है॥2॥

* सुनि कपीस बहु दूत पठाए। मुनिबर सकल बोलि लै आए॥

लिंग थापि बिधिवत करि पूजा। सिव समान प्रिय मोहि न दूजा॥3॥

भावार्थ:- श्री रामजी के वचन सुनकर वानरराज सुग्रीव ने बहुत से दूत भेजे, जो सब श्रेष्ठ मुनियों को बुलाकर ले आए। शिवलिंग की स्थापना करके विधिपूर्वक उसका पूजन किया (फिर भगवान बोले-) शिवजी के समान मुझको दूसरा कोई प्रिय नहीं है॥3॥

* सिव द्रोही मम भगत कहावा। सो नर सपनेहुँ मोहि न पावा॥

संकर बिमुख भगति चह मोरी। सो नारकी मूढ़ मति थोरी॥4॥

भावार्थ:- जो शिव से द्रोह रखता है और मेरा भक्त कहलाता है, वह मनुष्य स्वप्न में भी मुझे नहीं पाता। शंकरजी से विमुख होकर (विरोध करके) जो मेरी भक्ति चाहता है, वह नरकगामी, मूर्ख और अल्पबुद्धि है॥4॥

दोहा :

* संकरप्रिय मम द्रोही सिव द्रोही मम दास।

ते नर करहिं कलप भरि घोर नरक महुँ बास॥2॥

भावार्थ:- जिनको शंकरजी प्रिय हैं, परन्तु जो मेरे द्रोही हैं एवं जो शिवजी के द्रोही हैं और मेरे दास (बनना चाहते) हैं, वे मनुष्य कल्पभर घोर नरक में निवास करते हैं॥2॥

चौपाई :

* जे रामेस्वर दरसनु करिहहिं। ते तनु तजि मम लोक सिधरिहहिं॥
जो गंगाजलु आनि चढ़ाइहि। सो साजुज्य मुक्ति नर पाइहि॥1॥

भावार्थ:- जो मनुष्य (मेरे स्थापित किए हुए इन) रामेश्वरजी का दर्शन करेंगे, वे शरीर छोड़कर मेरे लोक को जाएँगे और जो गंगाजल लाकर इन पर चढ़ावेगा, वह मनुष्य सायुज्य मुक्ति पावेगा (अर्थात् मेरे साथ एक हो जाएगा)॥1॥

* होइ अकाम जो छल तजि सेइहि। भगति मोरि तेहि संकर देइहि॥
मम कृत सेतु जो दरसनु करिही। सो बिनु श्रम भवसागर तरिही॥2॥

भावार्थ:- जो छल छोड़कर और निष्काम होकर श्री रामेश्वरजी की सेवा करेंगे, उन्हें शंकरजी मेरी भक्ति देंगे और जो मेरे बनाए सेतु का दर्शन करेगा, वह बिना ही परिश्रम संसार रूपी समुद्र से तर जाएगा॥2॥

* राम बचन सब के जिय भाए। मुनिबर निज निज आश्रम आए॥
गिरिजा रघुपति कै यह रीती। संतत करहिं प्रनत पर प्रीती॥3॥

भावार्थ:- श्री रामजी के वचन सबके मन को अच्छे लगे। तदनन्तर वे श्रेष्ठ मुनि अपने-अपने आश्रमों को लौट आए। (शिवजी कहते हैं-) हे पार्वती! श्री रघुनाथजी की यह रीति है कि वे शरणागत पर सदा प्रीति करते हैं॥3॥

* बाँधा सेतु नील नल नागर। राम कृपाँ जसु भयउ उजागर॥
बूड़हिं आनहि बोरहिं जेई। भए उपल बोहित सम तेई॥4॥

भावार्थ:- चतुर नल और नील ने सेतु बाँधा। श्री रामजी की कृपा से उनका यह (उज्ज्वल) यश सर्वत्र फैल गया। जो पत्थर आप डूबते हैं और दूसरों को डुबा देते हैं, वे ही जहाज के समान (स्वयं तैरने वाले और दूसरों को पार ले जाने वाले) हो गए॥4॥

* महिमा यह न जलधि कइ बरनी। पाहन गुन न कपिन्ह कइ करनी॥5॥

भावार्थ:- यह न तो समुद्र की महिमा वर्णन की गई है, न पत्थरों का गुण है और न वानरों की ही कोई करामात है॥5॥

दोहा :

* श्री रघुबीर प्रताप ते सिंधु तरे पाषान।
ते मतिमंद जे राम तजि भजहिं जाइ प्रभु आन॥3॥

भावार्थ:- श्री रघुवीर के प्रताप से पत्थर भी समुद्र पर तैर गए। ऐसे श्री रामजी को छोड़कर जो किसी दूसरे स्वामी को जाकर भजते हैं वे (निश्चय ही) मंदबुद्धि हैं॥3॥

चौपाई :

* बाँधि सेतु अति सुदृढ़ बनावा। देखि कृपानिधि के मन भावा॥
चली सेन कछु बरनि न जाई। गर्जहिं मर्कट भट समुदाई॥1॥

भावार्थ:- नल-नील ने सेतु बाँधकर उसे बहुत मजबूत बनाया। देखने पर वह कृपानिधान श्री रामजी के मन को (बहुत ही) अच्छा लगा। सेना चली, जिसका कुछ वर्णन नहीं हो सकता। योद्धा वानरों के समुदाय गरज रहे हैं॥1॥

* सेतुबंध ढिग चढ़ि रघुराई। चितव कृपाल सिंधु बहुताई॥
देखन कहुँ प्रभु करुना कंदा। प्रगट भए सब जलचर बृंदा॥2॥

भावार्थ:- कृपालु श्री रघुनाथजी सेतुबन्ध के तट पर चढ़कर समुद्र का विस्तार देखने लगे। करुणाकन्द (करुणा के मूल) प्रभु के दर्शन के लिए सब जलचरों के समूह प्रकट हो गए (जल के ऊपर निकल आए)॥2॥

* मकर नक्र नाना झष ब्याला। सत जोजन तन परम बिसाला॥
अइसेउ एक तिन्हहि जे खाहीं। एकन्ह कें डर तेपि डेराहीं॥3॥

भावार्थ:-बहुत तरह के मगर, नाक (घड़ियाल), मच्छ और सर्प थे, जिनके सौ-सौ योजन के बहुत बड़े विशाल शरीर थे। कुछ ऐसे भी जन्तु थे, जो उनको भी खा जाएँ। किसी-किसी के डर से तो वे भी डर रहे थे॥3॥

* प्रभुहि बिलोकहिं टरहिं न टारे। मन हरषित सब भए सुखारे॥
तिन्ह कीं ओट न देखिअ बारी। मगन भए हरि रूप निहारी॥4॥

भावार्थ:-वे सब (वैर-विरोध भूलकर) प्रभु के दर्शन कर रहे हैं, हटाने से भी नहीं हटते। सबके मन हर्षित हैं, सब सुखी हो गए। उनकी आड़ के कारण जल नहीं दिखाई पड़ता। वे सब भगवान्‌ का रूप देखकर (आनंद और प्रेम में) मग्न हो गए॥4॥

चला कटकु प्रभु आयसु पाई। को कहि सक कपि दल बिपुलाई॥5॥

भावार्थ:- प्रभु श्री रामचंद्रजी की आज्ञा पाकर सेना चली। वानर सेना की विपुलता (अत्यधिक संख्या) को कौन कह सकता है?॥5॥

श्री रामजी का सेना सहित समुद्र पार उतरना, सुबेल पर्वत पर निवास, रावण की व्याकुलता

दोहा :

* सेतुबंध भइ भीर अति कपि नभ पंथ उड़ाहिं।
अपर जलचरन्हि ऊपर चढ़ि चढ़ि पारहि जाहिं॥4॥

भावार्थ:- सेतुबन्ध पर बड़ी भीड़ हो गई, इससे कुछ वानर आकाश मार्ग से उड़ने लगे और दूसरे (कितने ही) जलचर जीवों पर चढ़-चढ़कर पार जा रहे हैं॥4॥

चौपाई :

* अस कौतुक बिलोकि द्वौ भाई। बिहँसि चले कृपाल रघुराई॥
सेन सहित उतरे रघुबीरा। कहि न जाइ कपि जूथप भीरा॥1॥

भावार्थ:- कृपालु रघुनाथजी (तथा लक्ष्मणजी) दोनों भाई ऐसा कौतुक देखकर हँसते हुए चले। श्री रघुवीर सेना सहित समुद्र के पार हो गए। वानरों और उनके सेनापतियों की भीड़ कही नहीं जा सकती॥1॥

* सिंधु पार प्रभु डेरा कीन्हा। सकल कपिन्ह कहुँ आयसु दीन्हा॥
खाहु जाइ फल मूल सुहाए। सुनत भालू कपि जहँ तहँ धाए॥2॥

भावार्थ:- प्रभु ने समुद्र के पार डेरा डाला और सब वानरों को आज्ञा दी कि तुम जाकर सुंदर फल-मूल खाओ। यह सुनते ही रीछ-वानर जहाँ-तहाँ दौड़ पड़े॥2॥

* सब तरु फरे राम हित लागी। रितु अरु कुरितु काल गति त्यागी॥
खाहिं मधुर फल बिटप हलावहिं। लंका सन्मुख सिखर चलावहिं॥3॥

भावार्थ:- श्री रामजी के हित (सेवा) के लिए सब वृक्ष ऋतु-कुऋतु- समय की गति को छोड़कर फल उठे। वानर-भालू मीठे फल खा रहे हैं, वृक्षों को हिला रहे हैं और पर्वतों के शिखरों को लंका की ओर फेंक रहे हैं॥3॥

* जहँ कहुँ फिरत निसाचर पावहिं। घेरि सकल बहु नाच नचावहिं॥
दसनन्हि काटि नासिका काना। कहि प्रभु सुजसु देहिं तब जाना॥4॥

भावार्थ:- घूमते-घूमते जहाँ कहीं किसी राक्षस को पा जाते हैं तो सब उसे घेरकर खूब नाच नचाते हैं और दाँतों से उसके नाक-कान काटकर, प्रभु का सुयश कहकर (अथवा कहलाकर) तब उसे जाने देते हैं॥4॥

* जिन्ह कर नासा कान निपाता। तिन्ह रावनहि कही सब बाता॥
सुनत श्रवन बारिधि बंधाना। दस मुख बोलि उठा अकुलाना॥5॥

भावार्थ:- जिन राक्षसों के नाक और कान काट डाले गए, उन्होंने रावण से सब समाचार कहा। समुद्र (पर सेतु) का बाँधा जाना कानों से सुनते ही रावण घबड़ाकर दसों मुखों से बोल उठा-॥5॥

रावण को मन्दोदरी का समझाना, रावण-प्रहस्त संवाद

दोहा :

* बाँध्यो बननिधि नीरनिधि जलधि सिंधु बारीस।
सत्य तोयनिधि कंपति उदधि पयोधि नदीस॥5॥

भावार्थ:- वननिधि, नीरनिधि, जलधि, सिंधु, वारीश, तोयनिधि, कंपति, उदधि, पयोधि, नदीश को क्या सचमुच ही बाँध लिया?॥5॥

चौपाई :

* निज बिकलता बिचारि बहोरी॥ बिहँसि गयउ गृह करि भय भोरी॥
मंदोदरीं सुन्यो प्रभु आयो। कौतुकहीं पाथोधि बँधायो॥1॥

भावार्थ:- फिर अपनी व्याकुलता को समझकर (ऊपर से) हँसता हुआ, भय को भुलाकर, रावण महल को गया। (जब) मंदोदरी ने सुना कि प्रभु

श्री रामजी आ गए हैं और उन्होंने खेल में ही समुद्र को बँधवा लिया है,॥1॥

* कर गहि पतिहि भवन निज आनी। बोली परम मनोहर बानी॥
चरन नाइ सिरु अंचलु रोपा। सुनहु बचन पिय परिहरि कोपा॥2॥

भावार्थ:- (तब) वह हाथ पकड़कर, पति को अपने महल में लाकर परम मनोहर वाणी बोली। चरणों में सिर नवाकर उसने अपना आँचल पसारा और कहा- हे प्रियतम! क्रोध त्याग कर मेरा वचन सुनिए॥2॥

* नाथ बयरु कीजे ताही सों। बुधि बल सकिअ जीति जाही सों॥
तुम्हहि रघुपतिहि अंतर कैसा। खलु खद्योत दिनकरहि जैसा॥3॥

भावार्थ:- हे नाथ! वैर उसी के साथ करना चाहिए, जिससे बुद्धि और बल के द्वारा जीत सकें। आप में और श्री रघुनाथजी में निश्चय ही कैसा अंतर है, जैसा जुगनू और सूर्य में!॥3॥

* अति बल मधु कैटभ जेहिं मारे। महाबीर दितिसुत संघारे॥
जेहिं बलि बाँधि सहस भुज मारा। सोइ अवतरेउ हरन महि भारा॥4॥

भावार्थ:- जिन्होंने (विष्णु रूप से) अत्यन्त बलवान् मधु और कैटभ (दैत्य) मारे और (वराह और नृसिंह रूप से) महान् शूरवीर दिति के पुत्रों (हिरण्याक्ष और हिरण्यकशिपु) का संहार किया, जिन्होंने (वामन रूप से) बलि को बाँधा और (परशुराम रूप से) सहस्रबाहु को मारा, वे ही (भगवान्) पृथ्वी का भार हरण करने के लिए (रामरूप में) अवतीर्ण (प्रकट) हुए हैं!॥4॥

* तासु बिरोध न कीजिअ नाथा। काल करम जिव जाकें हाथा॥5॥

भावार्थ:- हे नाथ! उनका विरोध न कीजिए, जिनके हाथ में काल, कर्म और जीव सभी हैं॥5॥

दोहा :

* रामहि सौंपि जानकी नाइ कमल पद माथ।

सुत कहुँ राज समर्पि बन जाइ भजिअ रघुनाथ॥6॥

भावार्थ:- (श्री रामजी) के चरण कमलों में सिर नवाकर (उनकी शरण में जाकर) उनको जानकीजी सौंप दीजिए और आप पुत्र को राज्य देकर वन में जाकर श्री रघुनाथजी का भजन कीजिए॥6॥

चौपाई :

नाथ दीनदयाल रघुराई। बाघउ सनमुख गएँ न खाई॥

चाहिअ करन सो सब करि बीते। तुम्ह सुर असुर चराचर जीते॥1॥

भावार्थ:- हे नाथ! श्री रघुनाथजी तो दीनों पर दया करने वाले हैं। सम्मुख (शरण) जाने पर तो बाघ भी नहीं खाता। आपको जो कुछ करना चाहिए था, वह सब आप कर चुके। आपने देवता, राक्षस तथा चर-अचर सभी को जीत लिया॥1॥

* संत कहहिं असि नीति दसानन। चौथेंपन जाइहि नृप कानन॥

तासु भजनु कीजिअ तहँ भर्ता। जो कर्ता पालक संहर्ता॥2॥

भावार्थ:- हे दशमुख! संतजन ऐसी नीति कहते हैं कि चौथेपन (बुढ़ापे) में राजा को वन में चला जाना चाहिए। हे स्वामी! वहाँ (वन में) आप उनका भजन कीजिए जो सृष्टि के रचने वाले, पालने वाले और संहार करने वाले हैं॥2॥

* सोइ रघुबीर प्रनत अनुरागी। भजहु नाथ ममता सब त्यागी॥

मुनिबर जतनु करहिं जेहि लागी। भूप राजु तजि होहिं बिरागी॥3॥

भावार्थ:- हे नाथ! आप विषयों की सारी ममता छोड़कर उन्हीं शरणागत पर प्रेम करने वाले भगवान् का भजन कीजिए। जिनके लिए श्रेष्ठ मुनि साधन करते हैं और राजा राज्य छोड़कर वैरागी हो जाते हैं- ॥3॥

* सोइ कोसलाधीस रघुराया। आयउ करन तोहि पर दाया॥
जौं पिय मानहु मोर सिखावन। सुजसु होइ तिहुँ पुर अति पावन॥4॥

भावार्थ:- वही कोसलाधीश श्री रघुनाथजी आप पर दया करने आए हैं। हे प्रियतम! यदि आप मेरी सीख मान लेंगे, तो आपका अत्यंत पवित्र और सुंदर यश तीनों लोकों में फैल जाएगा॥4॥

दोहा :

* अस कहि नयन नीर भरि गहि पद कंपित गात।
नाथ भजहु रघुनाथहि अचल होइ अहिवात॥7॥

भावार्थ:- ऐसा कहकर, नेत्रों में (करुणा का) जल भरकर और पति के चरण पकड़कर, काँपते हुए शरीर से मंदोदरी ने कहा- हे नाथ! श्री रघुनाथजी का भजन कीजिए, जिससे मेरा सुहाग अचल हो जाए॥7॥

चौपाई :

* तब रावन मयसुता उठाई। कहै लाग खल निज प्रभुताई॥
सुनु तैं प्रिया बृथा भय माना। जग जोधा को मोहि समाना॥1॥

भावार्थ:- तब रावण ने मंदोदरी को उठाया और वह दुष्ट उससे अपनी प्रभुता कहने लगा- हे प्रिये! सुन, तूने व्यर्थ ही भय मान रखा है। बता तो जगत् में मेरे समान योद्धा है कौन?॥1॥

* बरुन कुबेर पवन जम काला। भुज बल जितेउँ सकल दिगपाला॥
देव दनुज नर सब बस मोरें। कवन हेतु उपजा भय तोरें॥2॥

भावार्थ:- वरुण, कुबेर, पवन, यमराज आदि सभी दिक्पालों को तथा काल को भी मैंने अपनी भुजाओं के बल से जीत रखा है। देवता, दानव और मनुष्य सभी मेरे वश में हैं। फिर तुझको यह भय किस कारण उत्पन्न हो गया?॥2॥

* नाना बिधि तेहि कहेसि बुझाई। सभाँ बहोरि बैठ सो जाई॥
मंदोदरीं हृदयँ अस जाना। काल बस्य उपजा अभिमाना॥3॥

भावार्थ:- मंदोदरी ने उसे बहुत तरह से समझाकर कहा (किन्तु रावण ने उसकी एक भी बात न सुनी) और वह फिर सभा में जाकर बैठ गया। मंदोदरी ने हृदय में ऐसा जान लिया कि काल के वश होने से पति को अभिमान हो गया है॥3॥

* सभाँ आइ मंत्रिन्ह तेहिं बूझा। करब कवन बिधि रिपु सैं जूझा॥
कहहिं सचिव सुनु निसिचर नाहा। बार बार प्रभु पूछहु काहा॥4॥

भावार्थ:- सभा में आकर उसने मंत्रियों से पूछा कि शत्रु के साथ किस प्रकार से युद्ध करना होगा? मंत्री कहने लगे- हे राक्षसों के नाथ! हे प्रभु! सुनिए, आप बार-बार क्या पूछते हैं?॥4॥

* कहहु कवन भय करिअ बिचारा। नर कपि भालु अहार हमारा॥5॥

भावार्थ:- कहिए तो (ऐसा) कौन-सा बड़ा भय है, जिसका विचार किया जाए? (भय की बात ही क्या है?) मनुष्य और वानर-भालू तो हमारे भोजन (की सामग्री) हैं॥

दोहा :

* सब के बचन श्रवन सुनि कह प्रहस्त कर जोरि।
नीति बिरोध न करिअ प्रभु मंत्रिन्ह मति अति थोरि॥8॥

भावार्थ:- कानों से सबके वचन सुनकर (रावण का पुत्र) प्रहस्त हाथ जोड़कर कहने लगा- हे प्रभु! नीति के विरुद्ध कुछ भी नहीं करना चाहिए, मन्त्रियों में बहुत ही थोड़ी बुद्धि है॥8॥

* कहहिं सचिव सठ ठकुर सोहाती। नाथ न पूर आव एहि भाँती॥
बारिधि नाघि एक कपि आवा। तासु चरित मन महुँ सबु गावा॥॥1॥

भावार्थ:- ये सभी मूर्ख (खुशामदी) मन्त्र ठकुरसुहाती (मुँहदेखी) कह रहे हैं। हे नाथ! इस प्रकार की बातों से पूरा नहीं पड़ेगा। एक ही बंदर समुद्र लाँघकर आया था। उसका चरित्र सब लोग अब भी मन-ही-मन गाया करते हैं (स्मरण किया करते हैं) ॥1॥

* छुधा न रही तुम्हहि तब काहू। जारत नगरु कस न धरि खाहू॥
सुनत नीक आगें दुख पावा। सचिवन अस मत प्रभुहि सुनावा॥॥2॥

भावार्थ:- उस समय तुम लोगों में से किसी को भूख न थी? (बंदर तो तुम्हारा भोजन ही हैं, फिर) नगर जलाते समय उसे पकड़कर क्यों नहीं खा लिया? इन मन्त्रियों ने स्वामी (आप) को ऐसी सम्मति सुनायी है जो सुनने में अच्छी है पर जिससे आगे चलकर दुःख पाना होगा॥2॥

* जेहिं बारीस बँधायउ हेला। उतरेउ सेन समेत सुबेला॥
सो भनु मनुज खाब हम भाई। बचन कहहिं सब गाल फुलाई॥3॥

भावार्थ:- जिसने खेल-ही-खेल में समुद्र बँधा लिया और जो सेना सहित सुबेल पर्वत पर आ उतरा है। हे भाई! कहो वह मनुष्य है, जिसे कहते हो कि हम खा लेंगे? सब गाल फुला-फुलाकर (पागलों की तरह) वचन कह रहे हैं!॥3॥

* तात बचन मम सुनु अति आदर। जनि मन गुनहु मोहि करि कादर।
प्रिय बानी जे सुनहिं जे कहहीं। ऐसे नर निकाय जग अहहीं॥4॥

भावार्थ:- हे तात! मेरे वचनों को बहुत आदर से (बड़े गौर से) सुनिए। मुझे मन में कायर न समझ लीजिएगा। जगत् में ऐसे मनुष्य झुंड-के-झुंड (बहुत अधिक) हैं, जो प्यारी (मुँह पर मीठी लगने वाली) बात ही सुनते और कहते हैं॥4॥

* बचन परम हित सुनत कठोरे। सुनहिं जे कहहिं ते नर प्रभु थोरे॥

प्रथम बसीठ पठउ सुनु नीती। सीता देइ करहु पुनि प्रीती॥5॥

भावार्थ:- हे प्रभो! सुनने में कठोर परन्तु (परिणाम में) परम हितकारी वचन जो सुनते और कहतेहैं,वे मनुष्य बहुत ही थोड़े हैं। नीति सुनिये, (उसके अनुसार) पहले दूत भेजिये, और (फिर) सीता को देकर श्रीरामजी से प्रीति (मेल) कर लीजिये॥5॥

दोहा :

* नारि पाइ फिरि जाहिं जौं तौ न बढ़ाइअ रारि।
नाहिं त सन्मुख समर महि तात करिअ हठि मारि॥9॥

भावार्थ:- यदि वे स्त्री पाकर लौट जाएँ, तब तो (व्यर्थ) झगड़ा न बढ़ाइये। नहीं तो (यदि न फिरें तो) हे तात! सम्मुख युद्धभूमि में उनसे हठपूर्वक (डटकर) मार-काट कीजिए॥9॥

* यह मत जौं मानहु प्रभु मोरा। उभय प्रकार सुजसु जग तोरा॥
सुत सन कह दसकंठ रिसाई। असि मति सठ केहिं तोहि सिखाई॥1॥

भावार्थ:- हे प्रभो! यदि आप मेरी यह सम्मति मानेंगे, तो जगत् में दोनों ही प्रकार से आपका सुयश होगा। रावण ने गुस्से में भरकर पुत्र से कहा- अरे मूर्ख! तुझे ऐसी बुद्धि किसने सिखायी?॥1॥

* अबहीं ते उर संसय होई। बेनुमूल सुत भयहु घमोई॥
सुनि पितु गिरा परुष अति घोरा। चला भवन कहि बचन कठोरा॥2॥

भावार्थ:- अभी से हृदय में सन्देह (भय) हो रहा है? हे पुत्र! तू तो बाँस की जड़ में घमोई हुआ (तू मेरे वंश के अनुकूल या अनुरूप नहीं हुआ)। पिता की अत्यन्त घोर और कठोर वाणी सुनकर प्रहस्त ये कड़े वचन कहता हुआ घर को चला गया॥2॥

* हित मत तोहि न लागत कैसें। काल बिबस कहुँ भेषज जैसें॥

संध्या समय जानि दससीसा। भवन चलेउ निरखत भुज बीसा॥3॥

भावार्थ:- हित की सलाह आपको कैसे नहीं लगती (आप पर कैसे असर नहीं करती), जैसे मृत्यु के वश हुए (रोगी) को दवा नहीं लगती। संध्या का समय जानकर रावण अपनी बीसों भुजाओं को देखता हुआ महल को चला॥3॥

* लंका सिखर उपर आगारा। अति बिचित्र तहँ होइ अखारा॥
बैठ जाइ तेहिं मंदिर रावन। लागे किंनर गुन गन गावन॥4॥

भावार्थ:- लंका की चोटी पर एक अत्यन्त विचित्र महल था। वहाँ नाच-गान का अखाड़ा जमता था। रावण उस महल में जाकर बैठ गया। किन्नर उसके गुण समूहों को गाने लगे॥4॥

* बाजहिं ताल पखाउज बीना। नृत्य करहिं अपछरा प्रबीना॥5॥

भावार्थ:- ताल (करताल), पखावज (मृदंग) और बीणा बज रहे हैं। नृत्य में प्रवीण अप्सराएँ नाच रही हैं॥5॥

दोहा :

* सुनासीर सत सरिस सो संतत करइ बिलास।
परम प्रबल रिपु सीस पर तद्यपि सोच न त्रास॥10॥

भावार्थ:- वह निरन्तर सैकड़ों इन्द्रों के समान भोग-विलास करता रहता है। यद्यपि (श्रीरामजी-सरीखा) अत्यन्त प्रबल शत्रु सिर पर है, फिर भी उसको न तो चिन्ता है और न डर ही है॥10॥

सुबेल पर श्री रामजी की झाँकी और चंद्रोदय वर्णन

चौपाई :

* इहाँ सुबेल सैल रघुबीरा। उतरे सेन सहित अति भीरा॥
सिखर एक उतंग अति देखी। परम रम्य सम सुभ्र बिसेषी॥1॥

भावार्थ:- यहाँ श्री रघुवीर सुबेल पर्वत पर सेना की बड़ी भीड़ (बड़े समूह) के साथ उतरे। पर्वत का एक बहुत ऊँचा, परम रमणीय, समतल और विशेष रूप से उज्ज्वल शिखर देखकर-॥1॥

* तहँ तरु किसलय सुमन सुहाए। लछिमन रचि निज हाथ डसाए॥
ता पर रुचिर मृदुल मृगछाला। तेहिं आसन आसीन कृपाला॥2॥

भावार्थ:- वहाँ लक्ष्मणजी ने वृक्षों के कोमल पत्ते और सुंदर फूल अपने हाथों से सजाकर बिछा दिए। उस पर सुंदर और कोमल मृग छाला बिछा दी। उसी आसन पर कृपालु श्री रामजी विराजमान थे॥2॥

* प्रभु कृत सीस कपीस उछंगा। बाम दहिन दिसि चाप निषंगा
दुहुँ कर कमल सुधारत बाना। कह लंकेस मंत्र लगि काना॥3॥

भावार्थ:- प्रभु श्री रामजी वानरराज सुग्रीव की गोद में अपना सिर रखे हैं। उनकी बायीं ओर धनुष तथा दाहिनी ओर तरकस (रखा) है। वे अपने दोनों करकमलों से बाण सुधार रहे हैं। विभीषणजी कानों से लगकर सलाह कर रहे हैं॥3॥

* बड़भागी अंगद हनुमाना। चरन कमल चापत बिधि नाना॥
प्रभु पाछें लछिमन बीरासन। कटि निषंग कर बान सरासन॥4॥

भावार्थ:- परम भाग्यशाली अंगद और हनुमान अनेकों प्रकार से प्रभु के चरण कमलों को दबा रहे हैं। लक्ष्मणजी कमर में तरकस कसे और हाथों में धनुष-बाण लिए वीरासन से प्रभु के पीछे सुशोभित हैं॥4॥

दोहा :

* ऐहि बिधि कृपा रूप गुन धाम रामु आसीन।
धन्य ते नर एहिं ध्यान जे रहत सदा लयलीन॥11 क॥

भावार्थ:- इस प्रकार कृपा, रूप (सौंदर्य) और गुणों के धाम श्री रामजी विराजमान हैं। वे मनुष्य धन्य हैं, जो सदा इस ध्यान में लौ लगाए रहते हैं॥11 (क)॥

* पूरब दिसा बिलोकि प्रभु देखा उदित मयंक।
कहत सबहि देखहु ससिहि मृगपति सरिस असंक॥11 ख॥

भावार्थ:- पूर्व दिशा की ओर देखकर प्रभु श्री रामजी ने चंद्रमा को उदय हुआ देखा। तब वे सबसे कहने लगे- चंद्रमा को तो देखो। कैसा सिंह के समान निडर है!॥11 (ख)॥

चौपाई :

* पूरब दिसि गिरिगुहा निवासी। परम प्रताप तेज बल रासी॥
मत्त नाग तम कुंभ बिदारी। ससि केसरी गगन बन चारी॥1॥

भावार्थ:- पूर्व दिशा रूपी पर्वत की गुफा में रहने वाला, अत्यंत प्रताप, तेज और बल की राशि यह चंद्रमा रूपी सिंह अंधकार रूपी मतवाले हाथी के मस्तक को विदीर्ण करके आकाश रूपी वन में निर्भय विचर रहा है॥1॥

बिथुरे नभ मुकुताहल तारा। निसि सुंदरी केर सिंगारा॥
कह प्रभु ससि महुँ मेचकताई। कहहु काह निज निज मति भाई॥2॥

भावार्थ:- आकाश में बिखरे हुए तारे मोतियों के समान हैं, जो रात्रि रूपी सुंदर स्त्री के श्रृंगार हैं। प्रभु ने कहा- भाइयो! चंद्रमा में जो कालापन है, वह क्या है? अपनी-अपनी बुद्धि के अनुसार कहो॥2॥

* कह सुग्रीव सुनहु रघुराई। ससि महुँ प्रगट भूमि कै झाँई॥

मारेउ राहु ससिहि कह कोई। उर महँ परी स्यामता सोई॥3॥

भावार्थ:- सुग्रीव ने कहा- हे रघुनाथजी! सुनिए! चंद्रमा में पृथ्वी की छाया दिखाई दे रही है। किसी ने कहा- चंद्रमा को राहु ने मारा था। वही (चोट का) काला दाग हृदय पर पड़ा हुआ है॥3॥

* कोउ कह जब बिधि रति मुख कीन्हा। सार भाग ससि कर हरि लीन्हा॥
छिद्र सो प्रगट इंदु उर माहीं। तेहि मग देखिअ नभ परिछाहीं॥4॥

भावार्थ:- कोई कहता है- जब ब्रह्मा ने (कामदेव की स्त्री) रति का मुख बनाया, तब उसने चंद्रमा का सार भाग निकाल लिया (जिससे रति का मुख तो परम सुंदर बन गया, परन्तु चंद्रमा के हृदय में छेद हो गया)। वही छेद चंद्रमा के हृदय में वर्तमान है, जिसकी राह से आकाश की काली छाया उसमें दिखाई पड़ती है॥4॥

* प्रभु कह गरल बंधु ससि केरा। अति प्रिय निज उर दीन्ह बसेरा॥
बिष संजुत कर निकर पसारी। जारत बिरहवंत नर नारी॥5॥

भावार्थ:- प्रभु श्री रामजी ने कहा- विष चंद्रमा का बहुत प्यारा भाई है, इसी से उसने विष को अपने हृदय में स्थान दे रखा है। विषयुक्त अपने किरण समूह को फैलाकर वह वियोगी नर-नारियों को जलाता रहता है॥5॥

दोहा :

* कह हनुमंत सुनहु प्रभु ससि तुम्हार प्रिय दास।
तव मूरति बिधु उर बसति सोइ स्यामता अभास॥12 क॥

भावार्थ:- हनुमान्‌जी ने कहा- हे प्रभो! सुनिए, चंद्रमा आपका प्रिय दास है। आपकी सुंदर श्याम मूर्ति चंद्रमा के हृदय में बसती है, वही श्यामता की झलक चंद्रमा में है॥12 (क)॥

नवाह्नपारायण, सातवाँ विश्राम

श्री रामजी के बाण से रावण के मुकुट-छत्रादि का गिरना
* पवन तनय के बचन सुनि बिहँसे रामु सुजान।
दच्छिन दिसि अवलोकि प्रभु बोले कृपा निधान॥12 ख॥
भावार्थ:- पवनपुत्र हनुमान्‌जी के वचन सुनकर सुजान श्री रामजी हँसे। फिर दक्षिण की ओर देखकर कृपानिधान प्रभु बोले-॥12 (ख)॥
चौपाई :
* देखु बिभीषन दच्छिन आसा। घन घमंड दामिनी बिलासा॥
मधुर मधुर गरजइ घन घोरा। होइ बृष्टि जनि उपल कठोरा॥1॥
भावार्थ:- हे विभीषण! दक्षिण दिशा की ओर देखो, बादल कैसा घुमड़ रहा है और बिजली चमक रही है। भयानक बादल मीठे-मीठे (हल्के-हल्के) स्वर से गरज रहा है। कहीं कठोर ओलों की वर्षा न हो!॥1॥
* कहत बिभीषन सुनहू कृपाला। होइ न तड़ित न बारिद माला॥
लंका सिखर उपर आगारा। तहँ दसकंधर देख अखारा॥2॥

भावार्थ:- विभीषण बोले- हे कृपालु! सुनिए, यह न तो बिजली है, न बादलों की घटा। लंका की चोटी पर एक महल है। दशग्रीव रावण वहाँ (नाच-गान का) अखाड़ा देख रहा है॥2॥

* छत्र मेघडंबर सिर धारी। सोइ जनु जलद घटा अति कारी॥
मंदोदरी श्रवन ताटंका। सोइ प्रभु जनु दामिनी दमंका॥3॥

भावार्थ:- रावण ने सिर पर मेघडंबर (बादलों के डंबर जैसा विशाल और काला) छत्र धारण कर रखा है। वही मानो बादलों की काली घटा है। मंदोदरी के कानों में जो कर्णफूल हिल रहे हैं, हे प्रभो! वही मानो बिजली चमक रही है॥3॥

* बाजहिं ताल मृदंग अनूपा। सोइ रव मधुर सुनहू सुरभूपा।
प्रभु मुसुकान समुझि अभिमाना। चाप चढ़ाव बान संधाना॥4॥

भावार्थ:- हे देवताओं के सम्राट! सुनिए, अनुपम ताल मृदंग बज रहे हैं। वही मधुर (गर्जन) ध्वनि है। रावण का अभिमान समझकर प्रभु मुस्कुराए। उन्होंने धनुष चढ़ाकर उस पर बाण का सन्धान किया॥4॥

दोहा :

* छत्र मुकुट तांटक तब हते एकहीं बान।
सब कें देखत महि परे मरमु न कोऊ जान॥13 क॥

भावार्थ:- और एक ही बाण से (रावण के) छत्र-मुकुट और (मंदोदरी के) कर्णफूल काट गिराए। सबके देखते-देखते वे जमीन पर आ पड़े, पर इसका भेद (कारण) किसी ने नहीं जाना॥13 (क)॥

* अस कौतुक करि राम सर प्रबिसेउ आई निषंग।
रावन सभा ससंक सब देखि महा रसभंग॥13 ख॥

भावार्थ:- ऐसा चमत्कार करके श्री रामजी का बाण (वापस) आकर (फिर) तरकस में जा घुसा। यह महान्‌ रस भंग (रंग में भंग) देखकर रावण की सारी सभा भयभीत हो गई॥13 (ख)॥

चौपाई :

कंप न भूमि न मरुत बिसेषा। अस्त्र सस्त्र कछु नयन न देखा।
सोचहिं सब निज हृदय मझारी। असगुन भयउ भयंकर भारी॥1॥

भावार्थ:- न भूकम्प हुआ, न बहुत जोर की हवा (आँधी) चली। न कोई अस्त्र-शस्त्र ही नेत्रों से देखे। (फिर ये छत्र, मुकुट और कर्णफूल जैसे कटकर गिर पड़े?) सभी अपने-अपने हृदय में सोच रहे हैं कि यह बड़ा भयंकर अपशकुन हुआ!॥1॥

* दसमुख देखि सभा भय पाई। बिहसि बचन कह जुगुति बनाई।
सिरउ गिरे संतत सुभ जाही। मुकुट परे कस असगुन ताही॥2॥

भावार्थ:- सभा को भयतीत देखकर रावण ने हँसकर युक्ति रचकर ये वचन कहे- सिरों का गिरना भी जिसके लिए निरंतर शुभ होता रहा है, उसके लिए मुकुट का गिरना अपशकुन कैसा?॥2॥

मन्दोदरी का फिर रावण को समझाना और श्री राम की महिमा कहना

* सयन करहु निज निज गृह जाईं। गवने भवन सकल सिर नाई॥
मंदोदरी सोच उर बसेऊ। जब ते श्रवनपूर महि खसेऊ॥3॥

भावार्थ:- अपने-अपने घर जाकर सो रहो (डरने की कोई बात नहीं है) तब सब लोग सिर नवाकर घर गए। जब से कर्णफूल पृथ्वी पर गिरा, तब से मंदोदरी के हृदय में सोच बस गया॥3॥

* सजल नयन कह जुग कर जोरी। सुनहु प्रानपति बिनती मोरी॥
कंत राम बिरोध परिहरहू। जानि मनुज जनि हठ लग धरहू॥4॥

भावार्थ:- नेत्रों में जल भरकर, दोनों हाथ जोड़कर वह (रावण से) कहने लगी- हे प्राणनाथ! मेरी विनती सुनिए। हे प्रियतम! श्री राम से विरोध छोड़ दीजिए। उन्हें मनुष्य जानकर मन में हठ न पकड़े रहिए॥4॥

दोहा :

* बिस्वरूप रघुबंस मनि करहु बचन बिस्वासु।
लोक कल्पना बेद कर अंग अंग प्रति जासु॥14॥

भावार्थ:- मेरे इन वचनों पर विश्वास कीजिए कि ये रघुकुल के शिरोमणि श्री रामचंद्रजी विश्व रूप हैं- (यह सारा विश्व उन्हीं का रूप है)। वेद जिनके अंग-अंग में लोकों की कल्पना करते हैं॥14॥

चौपाई :

* पद पाताल सीस अज धामा। अपर लोक अँग अँग बिश्रामा॥
भृकुटि बिलास भयंकर काला। नयन दिवाकर कच घन माला॥1॥

भावार्थ:- पाताल (जिन विश्व रूप भगवान्‌ का) चरण है, ब्रह्म लोक सिर है, अन्य (बीच के सब) लोकों का विश्राम (स्थिति) जिनके अन्य भिन्न-भिन्न अंगों पर है। भयंकर काल जिनका भृकुटि संचालन (भौंहों का चलना) है। सूर्य नेत्र हैं, बादलों का समूह बाल है॥1॥

* जासु घ्रान अस्विनीकुमारा। निसि अरु दिवस निमेष अपारा॥
श्रवन दिसा दस बेद बखानी। मारुत स्वास निगम निज बानी॥2॥

भावार्थ:- अश्विनी कुमार जिनकी नासिका हैं, रात और दिन जिनके अपार निमेष (पलक मारना और खोलना) हैं। दसों दिशाएँ कान हैं, वेद ऐसा कहते हैं। वायु श्वास है और वेद जिनकी अपनी वाणी है॥2॥

* अधर लोभ जम दसन कराला। माया हास बाहु दिगपाला॥
आनन अनल अंबुपति जीहा। उतपति पालन प्रलय समीहा॥3॥

भावार्थ:- लोभ जिनका अधर (होठ) है, यमराज भयानक दाँत हैं। माया हँसी है, दिक्पाल भुजाएँ हैं। अग्नि मुख है, वरुण जीभ है। उत्पत्ति, पालन और प्रलय जिनकी चेष्टा (क्रिया) है॥3॥

* रोम राजि अष्टादस भारा। अस्थि सैल सरिता नस जारा॥
उदर उदधि अधगो जातना। जगमय प्रभु का बहु कलपना॥4॥

भावार्थ:- अठारह प्रकार की असंख्य वनस्पतियाँ जिनकी रोमावली हैं, पर्वत अस्थियाँ हैं, नदियाँ नसों का जाल है, समुद्र पेट है और नरक जिनकी नीचे की इंद्रियाँ हैं। इस प्रकार प्रभु विश्वमय हैं, अधिक कल्पना (ऊहापोह) क्या की जाए?॥4॥

दोहा :
अहंकार सिव बुद्धि अज मन ससि चित्त महान।
मनुज बास सचराचर रूप राम भगवान॥15 क॥

भावार्थ:- शिव जिनका अहंकार हैं, ब्रह्मा बुद्धि हैं, चंद्रमा मन हैं और महान (विष्णु) ही चित्त हैं। उन्हीं चराचर रूप भगवान श्री रामजी ने मनुष्य रूप में निवास किया है॥15 (क)॥

* अस बिचारि सुनु प्रानपति प्रभु सन बयरु बिहाइ।
प्रीति करहु रघुबीर पद मम अहिवात न जाइ॥15 ख॥

भावार्थ:- हे प्राणपति सुनिए, ऐसा विचार कर प्रभु से वैर छोड़कर श्री रघुवीर के चरणों में प्रेम कीजिए, जिससे मेरा सुहाग न जाए॥15 (ख)॥

चौपाई :

* बिहँसा नारि बचन सुनि काना। अहो मोह महिमा बलवाना॥
नारि सुभाउ सत्य सब कहहीं। अवगुन आठ सदा उर रहहीं॥1॥

भावार्थ:- पत्नी के वचन कानों से सुनकर रावण खूब हँसा (और बोला-) अहो! मोह (अज्ञान) की महिमा बड़ी बलवान् है। स्त्री का स्वभाव सब सत्य ही कहते हैं कि उसके हृदय में आठ अवगुण सदा रहते हैं-॥1॥

* साहस अनृत चपलता माया। भय अबिबेक असौच अदाया॥
रिपु कर रूप सकल तैं गावा। अति बिसाल भय मोहि सुनावा॥2॥

भावार्थ:- साहस, झूठ, चंचलता, माया (छल), भय (डरपोकपन) अविवेक (मूर्खता), अपवित्रता और निर्दयता। तूने शत्रु का समग्र (विराट) रूप गाया और मुझे उसका बड़ा भारी भय सुनाया॥2॥

* सो सब प्रिया सहज बस मोरें। समुझि परा अब प्रसाद तोरें॥
जानिउँ प्रिया तोरि चतुराई। एहि बिधि कहहु मोरि प्रभुताई॥3॥

भावार्थ:- हे प्रिये! वह सब (यह चराचर विश्व तो) स्वभाव से ही मेरे वश में है। तेरी कृपा से मुझे यह अब समझ पड़ा। हे प्रिये! तेरी चतुराई मैं जान गया। तू इस प्रकार (इसी बहाने) मेरी प्रभुता का बखान कर रही है॥3॥

* तव बतकही गूढ़ मृगलोचनि। समुझत सुखद सुनत भय मोचनि॥
मंदोदरि मन महुँ अस ठयऊ। पियहि काल बस मति भ्रम भयउ॥4॥

भावार्थ:- हे मृगनयनी! तेरी बातें बड़ी गूढ़ (रहस्यभरी) हैं, समझने पर सुख देने वाली और सुनने से भय छुड़ाने वाली हैं। मंदोदरी ने मन में ऐसा निश्चय कर लिया कि पति को कालवश मतिभ्रम हो गया है॥4॥

दोहा :

* ऐहि बिधि करत बिनोद बहु प्रात प्रगट दसकंध।
सहज असंक लंकपति सभाँ गयउ मद अंध॥16 क॥

भावार्थ:- इस प्रकार (अज्ञानवश) बहुत से विनोद करते हुए रावण को सबेरा हो गया। तब स्वभाव से ही निडर और घमंड में अंधा लंकापति सभा में गया॥16 (क)॥

सोरठा :

* फूलइ फरइ न बेत जदपि सुधा बरषहिं जलद।
मूरुख हृदयँ न चेत जौं गुर मिलहिं बिरंचि सम॥16 ख॥

भावार्थ:- यद्यपि बादल अमृत सा जल बरसाते हैं तो भी बेत फूलता-फलता नहीं। इसी प्रकार चाहे ब्रह्मा के समान भी ज्ञानी गुरु मिलें, तो भी मूर्ख के हृदय में चेत (ज्ञान) नहीं होता॥16 (ख)॥

गीताप्रेस गोरखपुर

अंगदजी का लंका जाना और रावण की सभा में अंगद-रावण संवाद

चौपाई :

* इहाँ प्रात जागे रघुराई। पूछा मत सब सचिव बोलाई॥
कहहु बेगि का करिअ उपाई। जामवंत कह पद सिरु नाई॥1॥

भावार्थ:- यहाँ (सुबेल पर्वत पर) प्रातःकाल श्री रघुनाथजी जागे और उन्होंने सब मंत्रियों को बुलाकर सलाह पूछी कि शीघ्र बताइए, अब क्या उपाय करना चाहिए? जाम्बवान् ने श्री रामजी के चरणों में सिर नवाकर कहा-॥1॥

* सुनु सर्बग्य सकल उर बासी। बुधि बल तेज धर्म गुन रासी॥
मंत्र कहउँ निज मति अनुसारा। दूत पठाइअ बालि कुमारा॥2॥

भावार्थ:- हे सर्वज्ञ (सब कुछ जानने वाले)! हे सबके हृदय में बसने वाले (अंतर्यामी)! हे बुद्धि, बल, तेज, धर्म और गुणों की राशि! सुनिए! मैं अपनी बुद्धि के अनुसार सलाह देता हूँ कि बालिकुमार अंगद को दूत बनाकर भेजा जाए!॥2॥

* नीक मंत्र सब के मन माना। अंगद सन कह कृपानिधाना॥
बालितनय बुधि बल गुन धामा। लंका जाहु तात मम कामा॥3॥

भावार्थ:- यह अच्छी सलाह सबके मन में जँच गई। कृपा के निधान श्री रामजी ने अंगद से कहा- हे बल, बुद्धि और गुणों के धाम बालिपुत्र! हे तात! तुम मेरे काम के लिए लंका जाओ॥3॥

* बहुत बुझाइ तुम्हहि का कहऊँ। परम चतुर मैं जानत अहऊँ॥
काजु हमार तासु हित होई। रिपु सन करेहु बतकही सोई॥4॥

भावार्थ:- तुमको बहुत समझाकर क्या कहूँ! मैं जानता हूँ, तुम परम चतुर हो। शत्रु से वही बातचीत करना, जिससे हमारा काम हो और उसका कल्याण हो॥4॥

सोरठा :

* प्रभु अग्या धरि सीस चरन बंदि अंगद उठेउ।
सोइ गुन सागर ईस राम कृपा जा कर करहु॥17 क॥

भावार्थ:-प्रभु की आज्ञा सिर चढ़कर और उनके चरणों की वंदना करके अंगदजी उठे (और बोले-) हे भगवान्‌ श्री रामजी! आप जिस पर कृपा करें, वही गुणों का समुद्र हो जाता है॥17 (क)॥

* स्वयंसिद्ध सब काज नाथ मोहि आदरु दियउ।

अस बिचारि जुबराज तन पुलकित हरषित हियउ॥17 ख॥

भावार्थ:-स्वामी सब कार्य अपने-आप सिद्ध हैं, यह तो प्रभु ने मुझ को आदर दिया है (जो मुझे अपने कार्य पर भेज रहे हैं)। ऐसा विचार कर युवराज अंगद का हृदय हर्षित और शरीर पुलकित हो गया॥17 (ख)॥
चौपाई :

* बंदि चरन उर धरि प्रभुताई। अंगद चलेउ सबहि सिरु नाई॥

प्रभु प्रताप उर सहज असंका। रन बाँकुरा बालिसुत बंका॥1॥
भावार्थ:- चरणों की वंदना करके और भगवान्‌ की प्रभुता हृदय में धरकर अंगद सबको सिर नवाकर चले। प्रभु के प्रताप को हृदय में धारण किए हुए रणबाँकुरे वीर बालिपुत्र स्वाभाविक ही निर्भय हैं॥1॥

* पुर पैठत रावन कर बेटा। खेलत रहा सो होइ गै भेंटा॥

बातहिं बात करष बढ़ि आई। जुगल अतुल बल पुनि तरुनाई॥2॥
भावार्थ:-लंका में प्रवेश करते ही रावण के पुत्र से भेंट हो गई, जो वहाँ खेल रहा था। बातों ही बातों में दोनों में झगड़ा बढ़ गया (क्योंकि) दोनों ही अतुलनीय बलवान्‌ थे और फिर दोनों की युवावस्था थी॥2॥

* तेहिं अंगद कहुँ लात उठाई। गहि पद पटकेउ भूमि भवाँई॥

निसिचर निकर देखि भट भारी। जहँ तहँ चले न सकहिं पुकारी॥3॥
भावार्थ:- उसने अंगद पर लात उठाई। अंगद ने (वही) पैर पकड़कर उसे घुमाकर जमीन पर दे पटका (मार गिराया)। राक्षस के समूह भारी

योद्धा देखकर जहाँ-तहाँ (भाग) चले, वे डर के मारे पुकार भी न मचा सके॥3॥

* एक एक सन मरमु न कहहीं। समुझि तासु बध चुप करि रहहीं॥
भयउ कोलाहल नगर मझारी। आवा कपि लंका जेहिं जारी॥4॥

भावार्थ:-एक-दूसरे को मर्म (असली बात) नहीं बतलाते, उस (रावण के पुत्र) का वध समझकर सब चुप मारकर रह जाते हैं। (रावण पुत्र की मृत्यु जानकर और राक्षसों को भय के मारे भागते देखकर) नगरभर में कोलाहल मच गया कि जिसने लंका जलाई थी, वही वानर फिर आ गया है॥4॥

* अब धौं कहा करिहि करतारा। अति सभीत सब करहिं बिचारा॥
बिनु पूछें मगु देहिं दिखाई। जेहि बिलोक सोइ जाइ सुखाई॥5॥

भावार्थ:- सब अत्यंत भयभीत होकर विचार करने लगे कि विधाता अब न जाने क्या करेगा। वे बिना पूछे ही अंगद को (रावण के दरबार की) राह बता देते हैं। जिसे ही वे देखते हैं, वही डर के मारे सूख जाता है॥5॥

दोहा :

* गयउ सभा दरबार तब सुमिरि राम पद कंज।
सिंह ठवनि इत उत चितव धीर बीर बल पुंज॥18॥

भावार्थ:- श्री रामजी के चरणकमलों का स्मरण करके अंगद रावण की सभा के द्वार पर गए और वे धीर, वीर और बल की राशि अंगद सिंह की सी ऐंड़ (शान) से इधर-उधर देखने लगे॥18॥

चौपाई :

* तुरत निसाचर एक पठावा। समाचार रावनहि जनावा॥
सुनत बिहँसि बोला दससीसा। आनहु बोलि कहाँ कर कीसा॥1॥

भावार्थ:- तुरंत ही उन्होंने एक राक्षस को भेजा और रावण को अपने आने का समाचार सूचित किया। सुनते ही रावण हँसकर बोला- बुला लाओ, (देखें) कहाँ का बंदर है॥1॥

* आयसु पाइ दूत बहु धाए। कपिकुंजरहि बोलि लै आए॥
अंगद दीख दसानन बैसें। सहित प्रान कज्जलगिरि जैसें॥2॥

भावार्थ:- आज्ञा पाकर बहुत से दूत दौड़े और वानरों में हाथी के समान अंगद को बुला लाए। अंगद ने रावण को ऐसे बैठे हुए देखा, जैसे कोई प्राणयुक्त (सजीव) काजल का पहाड़ हो!॥2॥

* भुजा बिटप सिर सृंग समाना। रोमावली लता जनु नाना॥
मुख नासिका नयन अरु काना। गिरि कंदरा खोह अनुमाना॥3॥

भावार्थ:- भुजाएँ वृक्षों के और सिर पर्वतों के शिखरों के समान हैं। रोमावली मानो बहुत सी लताएँ हैं। मुँह, नाक, नेत्र और कान पर्वत की कन्दराओं और खोहों के बराबर हैं॥3॥

* गयउ सभाँ मन नेकु न मुरा। बालितनय अतिबल बाँकुरा॥
उठे सभासद कपि कहुँ देखी। रावन उर भा क्रोध बिसेषी॥4॥

भावार्थ:- अत्यंत बलवान्‌ बाँके वीर बालिपुत्र अंगद सभा में गए, वे मन में जरा भी नहीं झिझके। अंगद को देखते ही सब सभासद्‌ उठ खड़े हुए। यह देखकर रावण के हृदय में बड़ा क्रोध हुआ॥4॥

दोहा :

* जथा मत्त गज जूथ महुँ पंचानन चलि जाइ।
राम प्रताप सुमिरि मन बैठ सभाँ सिरु नाइ॥19॥

भावार्थ:- जैसे मतवाले हाथियों के झुंड में सिंह (निःशंक होकर) चला जाता है, वैसे ही श्री रामजी के प्रताप का हृदय में स्मरण करके वे (निर्भय) सभा में सिर नवाकर बैठ गए॥19॥

चौपाई :

* कह दसकंठ कवन तैं बंदर। मैं रघुबीर दूत दसकंधर॥
मम जनकहि तोहि रही मिताई। तव हित कारन आयउँ भाई॥1॥

भावार्थ:- रावण ने कहा- अरे बंदर! तू कौन है? (अंगद ने कहा-) हे दशग्रीव! मैं श्री रघुवीर का दूत हूँ। मेरे पिता से और तुमसे मित्रता थी, इसलिए हे भाई! मैं तुम्हारी भलाई के लिए ही आया हूँ॥1॥

* उत्तम कुल पुलस्ति कर नाती। सिव बिरंचि पूजेहु बहु भाँती॥
बर पायहु कीन्हेहु सब काजा। जीतेहु लोकपाल सब राजा॥2॥

भावार्थ:- तुम्हारा उत्तम कुल है, पुलस्त्य ऋषि के तुम पौत्र हो। शिवजी की और ब्रह्माजी की तुमने बहुत प्रकार से पूजा की है। उनसे वर पाए हैं और सब काम सिद्ध किए हैं। लोकपालों और सब राजाओं को तुमने जीत लिया है॥2॥

* नृप अभिमान मोह बस किंबा। हरि आनिहु सीता जगदंबा॥
अब सुभ कहा सुनहु तुम्ह मोरा। सब अपराध छमिहि प्रभु तोरा॥3॥

भावार्थ:- राजमद से या मोहवश तुम जगज्जननी सीताजी को हर लाए हो। अब तुम मेरे शुभ वचन (मेरी हितभरी सलाह) सुनो! (उसके अनुसार चलने से) प्रभु श्री रामजी तुम्हारे सब अपराध क्षमा कर देंगे॥3॥

* दसन गहहु तृन कंठ कुठारी। परिजन सहित संग निज नारी॥
सादर जनकसुता करि आगें। एहि बिधि चलहु सकल भय त्यागें॥4॥

भावार्थ:-दाँतों में तिनका दबाओ, गले में कुल्हाड़ी डालो और कुटुम्बियों सहित अपनी स्त्रियों को साथ लेकर, आदरपूर्वक जानकीजी को आगे करके, इस प्रकार सब भय छोड़कर चलो-॥4॥

दोहा :

* प्रनतपाल रघुबंसमनि त्राहि त्राहि अब मोहि।
आरत गिरा सुनत प्रभु अभय करेंगे तोहि॥20॥

भावार्थ:- और 'हे शरणागत के पालन करने वाले रघुवंश शिरोमणि श्री रामजी! मेरी रक्षा कीजिए, रक्षा कीजिए।' (इस प्रकार आर्त प्रार्थना करो।) आर्त पुकार सुनते ही प्रभु तुमको निर्भय कर देंगे॥20॥

चौपाई :

* रे कपिपोत बोलु संभारी। मूढ़ न जानेहि मोहि सुरारी॥
कहु निज नाम जनक कर भाई। केहि नातें मानिऐ मिताई॥1॥

भावार्थ:- (रावण ने कहा-) अरे बंदर के बच्चे! सँभालकर बोल! मूर्ख! मुझ देवताओं के शत्रु को तूने जाना नहीं? अरे भाई! अपना और अपने बाप का नाम तो बता। किस नाते से मित्रता मानता है?॥1॥

* अंगद नाम बालि कर बेटा। तासों कबहुँ भई ही भेंटा॥
अंगद बचन सुनत सकुचाना। रहा बालि बानर मैं जाना॥2॥

भावार्थ:-(अंगद ने कहा-) मेरा नाम अंगद है, मैं बालि का पुत्र हूँ। उनसे कभी तुम्हारी भेंट हुई थी? अंगद का वचन सुनते ही रावण कुछ सकुचा गया (और बोला-) हाँ, मैं जान गया (मुझे याद आ गया), बालि नाम का एक बंदर था॥2॥

* अंगद तहीं बालि कर बालक। उपजेहु बंस अनल कुल घालक॥

गर्भ न गयहु ब्यर्थ तुम्ह जायहु। निज मुख तापस दूत कहायहु॥3॥

भावार्थ:- अरे अंगद! तू ही बालि का लड़का है? अरे कुलनाशक! तू तो अपने कुलरूपी बाँस के लिए अग्नि रूप ही पैदा हुआ! गर्भ में ही क्यों न नष्ट हो गया तू? व्यर्थ ही पैदा हुआ जो अपने ही मुँह से तपस्वियों का दूत कहलाया!॥3॥

* अब कहु कुसल बालि कहँ अहई। बिहँसि बचन तब अंगद कहई॥
दिन दस गएँ बालि पहिं जाई। बूझेहु कुसल सखा उर लाई॥4॥

भावार्थ:- अब बालि की कुशल तो बता, वह (आजकल) कहाँ है? तब अंगद ने हँसकर कहा- दस (कुछ) दिन बीतने पर (स्वयं ही) बालि के पास जाकर, अपने मित्र को हृदय से लगाकर, उसी से कुशल पूछ लेना॥4॥

* राम बिरोध कुसल जसि होई। सो सब तोहि सुनाइहि सोई॥
सुनु सठ भेद होइ मन ताकें। श्री रघुबीर हृदय नहिं जाकें॥5॥

भावार्थ:-श्री रामजी से विरोध करने पर जैसी कुशल होती है, वह सब तुमको वे सुनावेंगे। हे मूर्ख! सुन, भेद उसी के मन में पड़ सकता है, (भेद नीति उसी पर अपना प्रभाव डाल सकती है) जिसके हृदय में श्री रघुवीर न हों॥5॥

दोहा :

* हम कुल घालक सत्य तुम्ह कुल पालक दससीस।
अंधउ बधिर न अस कहहिं नयन कान तव बीस॥21॥

भावार्थ:- सच है, मैं तो कुल का नाश करने वाला हूँ और हे रावण! तुम कुल के रक्षक हो। अंधे-बहरे भी ऐसी बात नहीं कहते, तुम्हारे तो बीस नेत्र और बीस कान हैं!॥21॥

चौपाई :

* सिव बिरंचि सुर मुनि समुदाई। चाहत जासु चरन सेवकाई॥
तासु दूत होइ हम कुल बोरा। अइसिहुँ मति उर बिहर न तोरा॥1॥

भावार्थ:- शिव, ब्रह्मा (आदि) देवता और मुनियों के समुदाय जिनके चरणों की सेवा (करना) चाहते हैं, उनका दूत होकर मैंने कुल को डुबा दिया? अरे ऐसी बुद्धि होने पर भी तुम्हारा हृदय फट नहीं जाता?॥1॥

* सुनि कठोर बानी कपि केरी। कहत दसानन नयन तरेरी॥
खल तव कठिन बचन सब सहऊँ। नीति धर्म मैं जानत अहऊँ॥2॥

भावार्थ:- वानर (अंगद) की कठोर वाणी सुनकर रावण आँखें तरेरकर (तिरछी करके) बोला- अरे दुष्ट! मैं तेरे सब कठोर वचन इसीलिए सह रहा हूँ कि मैं नीति और धर्म को जानता हूँ (उन्हीं की रक्षा कर रहा हूँ)॥2॥

* कह कपि धर्मसीलता तोरी। हमहुँ सुनी कृत पर त्रिय चोरी॥
देखी नयन दूत रखवारी। बूड़ि न मरहु धर्म ब्रतधारी॥3॥

भावार्थ:- अंगद ने कहा- तुम्हारी धर्मशीलता मैंने भी सुनी है। (वह यह कि) तुमने पराई स्त्री की चोरी की है! और दूत की रक्षा की बात तो अपनी आँखों से देख ली। ऐसे धर्म के व्रत को धारण (पालन) करने वाले तुम डूबकर मर नहीं जाते!॥3॥

* कान नाक बिनु भगिनि निहारी। छमा कीन्हि तुम्ह धर्म बिचारी॥
धर्मसीलता तव जग जागी। पावा दरसु हमहुँ बड़भागी॥4॥

भावार्थ:-नाक-कान से रहित बहिन को देखकर तुमने धर्म विचारकर ही तो क्षमा कर दिया था! तुम्हारी धर्मशीलता जगजाहिर है। मैं भी बड़ा भाग्यवान् हूँ, जो मैंने तुम्हारा दर्शन पाया?॥4॥

दोहा :

* जनि जल्पसि जड़ जंतु कपि सठ बिलोकु मम बाहु।
लोकपाल बल बिपुल ससि ग्रसन हेतु सब राहु॥22 क॥

भावार्थ:- (रावण ने कहा-) अरे जड़ जन्तु वानर! व्यर्थ बक-बक न कर, अरे मूर्ख! मेरी भुजाएँ तो देख। ये सब लोकपालों के विशाल बल रूपी चंद्रमा को ग्रसने के लिए राहु हैं॥22 (क)॥

* पुनि नभ सर मम कर निकर कमलन्हि पर करि बास।
सोभत भयउ मराल इव संभु सहित कैलास॥22 ख॥

भावार्थ:- फिर (तूने सुना ही होगा कि) आकाश रूपी तालाब में मेरी भुजाओं रूपी कमलों पर बसकर शिवजी सहित कैलास हंस के समान शोभा को प्राप्त हुआ था!॥22 (ख)॥

चौपाई :

* तुम्हरे कटक माझ सुनु अंगद। मो सन भिरिहि कवन जोधा बद॥
तब प्रभु नारि बिरहँ बलहीना। अनुज तासु दुख दुखी मलीना॥1॥

भावार्थ:- अरे अंगद! सुन, तेरी सेना में बता, ऐसा कौन योद्धा है, जो मुझसे भिड़ सकेगा। तेरा मालिक तो स्त्री के वियोग में बलहीन हो रहा है और उसका छोटा भाई उसी के दुःख से दुःखी और उदास है॥1॥

* तुम्ह सुग्रीव कूलद्रुम दोऊ। अनुज हमार भीरु अति सोऊ॥
जामवंत मंत्री अति बूढ़ा। सो कि होइ अब समरारूढ़ा॥2॥

भावार्थ:- तुम और सुग्रीव, दोनों (नदी) तट के वृक्ष हो (रहा) मेरा छोटा भाई विभीषण, (सो) वह भी बड़ा डरपोक है। मंत्री जाम्बवान् बहुत बूढ़ा है। वह अब लड़ाई में क्या चढ़ (उद्यत हो) सकता है?॥2॥

* सिल्पि कर्म जानहिं नल नीला। है कपि एक महा बलसीला॥
आवा प्रथम नगरु जेहिं जारा। सुनत बचन कह बालिकुमारा॥3॥

भावार्थ:- नल-नील तो शिल्प-कर्म जानते हैं (वे लड़ना क्या जानें?)। हाँ, एक वानर जरूर महान् बलवान् है, जो पहले आया था और जिसने लंका जलाई थी। यह वचन सुनते ही बालि पुत्र अंगद ने कहा-॥3॥

* सत्य बचन कहु निसिचर नाहा। साँचेहुँ कीस कीन्ह पुर दाहा॥
रावण नगर अल्प कपि दहई। सुनि अस बचन सत्य को कहई॥4॥

भावार्थ:- हे राक्षसराज! सच्ची बात कहो! क्या उस वानर ने सचमुच तुम्हारा नगर जला दिया? रावण (जैसे जगद्विजयी योद्धा) का नगर एक छोटे से वानर ने जला दिया। ऐसे वचन सुनकर उन्हें सत्य कौन कहेगा?॥4॥

* जो अति सुभट सराहेहु रावन। सो सुग्रीव केर लघु धावन॥
चलइ बहुत सो बीर न होई। पठवा खबरि लेन हम सोई॥5॥

भावार्थ:- हे रावण! जिसको तुमने बहुत बड़ा योद्धा कहकर सराहा है, वह तो सुग्रीव का एक छोटा सा दौड़कर चलने वाला हरकारा है। वह बहुत चलता है, वीर नहीं है। उसको तो हमने (केवल) खबर लेने के लिए भेजा था॥5॥

दोहा :

* सत्य नगरु कपि जारेउ बिनु प्रभु आयसु पाइ।
फिरि न गयउ सुग्रीव पहिं तेहिं भय रहा लुकाइ॥23 क॥

भावार्थ:- क्या सचमुच ही उस वानर ने प्रभु की आज्ञा पाए बिना ही तुम्हारा नगर जला डाला? मालूम होता है, इसी डर से वह लौटकर सुग्रीव के पास नहीं गया और कहीं छिप रहा!॥23 (क)॥

* सत्य कहहि दसकंठ सब मोहि न सुनि कछु कोह।
कोउ न हमारें कटक अस तो सन लरत जो सोह॥23 ख॥

भावार्थ:- हे रावण! तुम सब सत्य ही कहते हो, मुझे सुनकर कुछ भी क्रोध नहीं है। सचमुच हमारी सेना में कोई भी ऐसा नहीं है, जो तुमसे लड़ने में शोभा पाए॥23 (ख)॥

* प्रीति बिरोध समान सन करिअ नीति असि आहि।
जौं मृगपति बध मेडुकन्हि भल कि कहइ कोउ ताहि॥23 ग॥

भावार्थ:- प्रीति और वैर बराबरी वाले से ही करना चाहिए, नीति ऐसी ही है। सिंह यदि मेंढकों को मारे, तो क्या उसे कोई भला कहेगा?॥23 (ग)॥

* जद्यपि लघुता राम कहुँ तोहि बधें बड़ दोष।
तदपि कठिन दसकंठ सुनु छत्र जाति कर रोष॥23 घ॥

भावार्थ:-यद्यपि तुम्हें मारने में श्री रामजी की लघुता है और बड़ा दोष भी है तथापि हे रावण! सुनो, क्षत्रिय जाति का क्रोध बड़ा कठिन होता है॥23 (घ)॥

* बक्र उक्ति धनु बचन सर हृदय दहेउ रिपु कीस।
प्रतिउत्तर सड़सिन्ह मनहुँ काढ़त भट दससीस॥23 ङ॥

भावार्थ:-वक्रोक्ति रूपी धनुष से वचन रूपी बाण मारकर अंगद ने शत्रु का हृदय जला दिया। वीर रावण उन बाणों को मानो प्रत्युत्तर रूपी सँड़सियों से निकाल रहा है॥ 23 (ङ)॥

* हँसि बोलेउ दसमौलि तब कपि कर बड़ गुन एक।
जो प्रतिपालइ तासु हित करइ उपाय अनेक॥23 च॥

भावार्थ:- तब रावण हँसकर बोला- बंदर में यह एक बड़ा गुण है कि जो उसे पालता है, उसका वह अनेकों उपायों से भला करने की चेष्टा करता है॥23 (च)॥

चौपाई :

* धन्य कीस जो निज प्रभु काजा। जहँ तहँ नाचइ परिहरि लाजा॥
नाचि कूदि करि लोग रिझाई। पति हित करइ धर्म निपुनाई॥1॥

भावार्थ:- बंदर को धन्य है, जो अपने मालिक के लिए लाज छोड़कर जहाँ-तहाँ नाचता है। नाच-कूदकर, लोगों को रिझाकर, मालिक का हित करता है। यह उसके धर्म की निपुणता है॥1॥

* अंगद स्वामिभक्त तव जाती। प्रभु गुन कस न कहसि एहि भाँती॥
मैं गुन गाहक परम सुजाना। तव कटु रटनि करउँ नहिं काना॥2॥

भावार्थ:-हे अंगद! तेरी जाति स्वामिभक्त है (फिर भला) तू अपने मालिक के गुण इस प्रकार कैसे न बखानेगा? मैं गुण ग्राहक (गुणों का आदर करने वाला) और परम सुजान (समझदार) हूँ, इसी से तेरी जली-कटी बक-बक पर कान (ध्यान) नहीं देता॥2॥

* कह कपि तव गुन गाहकताई। सत्य पवनसुत मोहि सुनाई॥
बन बिधंसि सुत बधि पुर जारा। तदपि न तेहिं कछु कृत अपकारा॥3॥

भावार्थ:- अंगद ने कहा- तुम्हारी सच्ची गुण ग्राहकता तो मुझे हनुमान् ने सुनाई थी। उसने अशोक वन में विध्वंस (तहस-नहस) करके, तुम्हारे पुत्र को मारकर नगर को जला दिया था। तो भी (तुमने अपनी गुण ग्राहकता के कारण यही समझा कि) उसने तुम्हारा कुछ भी अपकार नहीं किया॥3॥

* सोइ बिचारि तव प्रकृति सुहाई। दसकंधर मैं कीन्हि ढिठाई॥
देखेउँ आइ जो कछु कपि भाषा। तुम्हरें लाज न रोष न माखा॥4॥

भावार्थ:- तुम्हारा वही सुंदर स्वभाव विचार कर, हे दशग्रीव! मैंने कुछ धृष्टता की है। हनुमान् ने जो कुछ कहा था, उसे आकर मैंने प्रत्यक्ष देख लिया कि तुम्हें न लज्जा है, न क्रोध है और न चिढ़ है॥4॥

*जौं असि मति पितु खाए कीसा। कहि अस बचन हँसा दससीसा॥
पितहि खाइ खातेउँ पुनि तोही। अबहीं समुझि परा कछु मोही॥5॥

भावार्थ:- (रावण बोला-) अरे वानर! जब तेरी ऐसी बुद्धि है, तभी तो तू बाप को खा गया। ऐसा वचन कहकर रावण हँसा। अंगद ने कहा- पिता को खाकर फिर तुमको भी खा डालता, परन्तु अभी तुरंत कुछ और ही बात मेरी समझ में आ गई!॥5॥

* बालि बिमल जस भाजन जानी। हतउँ न तोहि अधम अभिमानी॥
कहु रावन रावन जग केते। मैं निज श्रवन सुने सुनु जेते॥6॥

भावार्थ:- अरे नीच अभिमानी! बालि के निर्मल यश का पात्र (कारण) जानकर तुम्हें मैं नहीं मारता। रावण! यह तो बता कि जगत् में कितने रावण हैं? मैंने जितने रावण अपने कानों से सुन रखे हैं, उन्हें सुन-॥6॥

* बलिहि जितन एक गयउ पताला। राखेउ बाँधि सिसुन्ह हयसाला॥
खेलहिं बालक मारहिं जाई। दया लागि बलि दीन्ह छोड़ाई॥7॥

भावार्थ:- एक रावण तो बलि को जीतने पाताल में गया था, तब बच्चों ने उसे घुड़साल में बाँध रखा। बालक खेलते थे और जा-जाकर उसे मारते थे। बलि को दया लगी, तब उन्होंने उसे छुड़ा दिया॥7॥

* एक बहोरि सहसभुज देखा। धाइ धरा जिमि जंतु बिसेषा॥
कौतुक लागि भवन लै आवा। सो पुलस्ति मुनि जाइ छोड़ावा॥8॥

भावार्थ:- फिर एक रावण को सहस्रबाहु ने देखा, और उसने दौड़कर उसको एक विशेष प्रकार के (विचित्र) जन्तु की तरह (समझकर) पकड़

लिया। तमाशे के लिए वह उसे घर ले आया। तब पुलस्त्य मुनि ने जाकर उसे छुड़ाया॥8॥

दोहा :

* एक कहत मोहि सकुच अति रहा बालि कीं काँख।
इन्ह महुँ रावन तैं कवन सत्य बदहि तजि माख॥24॥

भावार्थ:- एक रावण की बात कहने में तो मुझे बड़ा संकोच हो रहा है- वह (बहुत दिनों तक) बालि की काँख में रहा था। इनमें से तुम कौन से रावण हो? खीझना छोड़कर सच-सच बताओ॥24॥

चौपाई : :

* सुनु सठ सोइ रावन बलसीला। हरगिरि जान जासु भुज लीला॥
जान उमापति जासु सुराई। पूजेउँ जेहि सिर सुमन चढ़ाई॥1॥

भावार्थ:-(रावण ने कहा-) अरे मूर्ख! सुन, मैं वही बलवान् रावण हूँ, जिसकी भुजाओं की लीला (करामात) कैलास पर्वत जानता है। जिसकी शूरता उमापति महादेवजी जानते हैं, जिन्हें अपने सिर रूपी पुष्प चढ़ा-चढ़ाकर मैंने पूजा था॥1॥

* सिर सरोज निज करन्हि उतारी। पूजेउँ अमित बार त्रिपुरारी॥
भुज बिक्रम जानहिं दिगपाला। सठ अजहूँ जिन्ह कें उर साला॥2॥

भावार्थ:- सिर रूपी कमलों को अपने हाथों से उतार-उतारकर मैंने अगणित बार त्रिपुरारि शिवजी की पूजा की है। अरे मूर्ख! मेरी भुजाओं का पराक्रम दिक्पाल जानते हैं, जिनके हृदय में वह आज भी चुभ रहा है॥2॥

* जानहिं दिग्गज उर कठिनाई। जब जब भिरउँ जाइ बरिआई॥
जिन्ह के दसन कराल न फूटे। उर लागत मूलक इव टूटे॥3॥

भावार्थ:- दिग्गज (दिशाओं के हाथी) मेरी छाती की कठोरता को जानते हैं। जिनके भयानक दाँत, जब-जब जाकर मैं उनसे जबरदस्ती भिड़ा, मेरी छाती में कभी नहीं फूटे (अपना चिह्न भी नहीं बना सके), बल्कि मेरी छाती से लगते ही वे मूली की तरह टूट गए॥3॥

* जासु चलत डोलति इमि धरनी। चढ़त मत्त गज जिमि लघु तरनी॥
सोइ रावन जग बिदित प्रतापी। सुनेहि न श्रवन अलीक प्रलापी॥4॥

भावार्थ:- जिसके चलते समय पृथ्वी इस प्रकार हिलती है जैसे मतवाले हाथी के चढ़ते समय छोटी नाव! मैं वही जगत प्रसिद्ध प्रतापी रावण हूँ। अरे झूठी बकवास करने वाले! क्या तूने मुझको कानों से कभी सुना?॥4॥

दोहा :

* तेहि रावन कहँ लघु कहसि नर कर करसि बखान।
रे कपि बर्बर खर्ब खल अब जाना तव ग्यान॥25॥

भावार्थ:- उस (महान प्रतापी और जगत प्रसिद्ध) रावण को (मुझे) तू छोटा कहता है और मनुष्य की बड़ाई करता है? अरे दुष्ट, असभ्य, तुच्छ बंदर! अब मैंने तेरा ज्ञान जान लिया॥25॥

चौपाई :

* सुनि अंगद सकोप कह बानी। बोलु संभारि अधम अभिमानी॥
सहसबाहु भुज गहन अपारा। दहन अनल सम जासु कुठारा॥1॥

भावार्थ:- रावण के ये वचन सुनकर अंगद क्रोध सहित वचन बोले- अरे नीच अभिमानी! सँभलकर (सोच-समझकर) बोल। जिनका फरसा सहस्रबाहु की भुजाओं रूपी अपार वन को जलाने के लिए अग्नि के समान था,॥1॥

* जासु परसु सागर खर धारा। बूड़े नृप अगनित बहु बारा॥
तासु गर्ब जेहि देखत भागा। सो नर क्यों दससीस अभागा॥2॥

भावार्थ:- जिनके फरसा रूपी समुद्र की तीव्र धारा में अनगिनत राजा अनेकों बार डूब गए, उन परशुरामजी का गर्व जिन्हें देखते ही भाग गया, अरे अभागे दशशीश! वे मनुष्य क्यों कर हैं?॥2॥

* राम मनुज कस रे सठ बंगा। धन्वी कामु नदी पुनि गंगा॥
पसु सुरधेनु कल्पतरु रूखा। अन्न दान अरु रस पीयूषा॥3॥

भावार्थ:- क्यों रे मूर्ख उद्दण्ड! श्री रामचंद्रजी मनुष्य हैं? कामदेव भी क्या धनुर्धारी है? और गंगाजी क्या नदी हैं? कामधेनु क्या पशु है? और कल्पवृक्ष क्या पेड़ है? अन्न भी क्या दान है? और अमृत क्या रस है?॥3॥

* बैनतेय खग अहि सहसानन। चिंतामनि पुनि उपल दसानन॥
सुनु मतिमंद लोक बैकुंठा। लाभ कि रघुपति भगति अकुंठा॥4॥

भावार्थ:- गरुड़जी क्या पक्षी हैं? शेषजी क्या सर्प हैं? अरे रावण! चिंतामणि भी क्या पत्थर है? अरे ओ मूर्ख! सुन, वैकुण्ठ भी क्या लोक है? और श्री रघुनाथजी की अखण्ड भक्ति क्या (और लाभों जैसा ही) लाभ है?॥4॥

दोहा :

* सेन सहित तव मान मथि बन उजारि पुर जारि।
कस रे सठ हनुमान कपि गयउ जो तव सुत मारि॥26॥

भावार्थ:- सेना समेत तेरा मान मथकर, अशोक वन को उजाड़कर, नगर को जलाकर और तेरे पुत्र को मारकर जो लौट गए (तू उनका कुछ भी न बिगाड़ सका), क्यों रे दुष्ट! वे हनुमान्‌जी क्या वानर हैं?॥26॥

चौपाई :

* सुनु रावन परिहरि चतुराई। भजसि न कृपासिंधु रघुराई॥

जौं खल भएसि राम कर द्रोही। ब्रह्म रुद्र सक राखि न तोही॥1॥

भावार्थ:-अरे रावण! चतुराई (कपट) छोड़कर सुन। कृपा के समुद्र श्री रघुनाथजी का तू भजन क्यों नहीं करता? अरे दुष्ट! यदि तू श्री रामजी का वैरी हुआ तो तुझे ब्रह्मा और रुद्र भी नहीं बचा सकेंगे।

* मूढ़ बृथा जनि मारसि गाला। राम बयर अस होइहि हाला॥
तव सिर निकर कपिन्ह के आगें। परिहहिं धरनि राम सर लागें॥2॥

भावार्थ:- हे मूढ़! व्यर्थ गाल न मार (डींग न हाँक)। श्री रामजी से वैर करने पर तेरा ऐसा हाल होगा कि तेरे सिर समूह श्री रामजी के बाण लगते ही वानरों के आगे पृथ्वी पर पड़ेंगे,॥2॥

* ते तव सिर कंदुक सम नाना। खेलिहहिं भालु कीस चौगाना॥
जबहिं समर कोपिहि रघुनायक। छुटिहहिं अति कराल बहु सायक॥3॥

भावार्थ:- और रीछ-वानर तेरे उन गेंद के समान अनेकों सिरों से चौगान खेलेंगे। जब श्री रघुनाथजी युद्ध में कोप करेंगे और उनके अत्यंत तीक्ष्ण बहुत से बाण छूटेंगे,॥3॥

* तब कि चलिहि अस गाल तुम्हारा। अस बिचारि भजु राम उदारा॥
सुनत बचन रावन परजरा। जरत महानल जनु घृत परा॥4॥

भावार्थ:- तब क्या तेरा गाल चलेगा? ऐसा विचार कर उदार (कृपालु) श्री रामजी को भज। अंगद के ये वचन सुनकर रावण बहुत अधिक जल उठा। मानो जलती हुई प्रचण्ड अग्नि में घी पड़ गया हो॥4॥

दोहा :

* कुंभकरन अस बंधु मम सुत प्रसिद्ध सक्रारि।
मोर पराक्रम नहिं सुनेहि जितेउँ चराचर झारि॥27॥

भावार्थ:- (वह बोला- अरे मूर्ख!) कुंभकर्ण- ऐसा मेरा भाई है, इन्द्र का शत्रु सुप्रसिद्ध मेघनाद मेरा पुत्र है! और मेरा पराक्रम तो तूने सुना ही नहीं कि मैंने संपूर्ण जड़-चेतन जगत् को जीत लिया है!॥27॥

चौपाई :

* सठ साखामृग जोरि सहाई। बाँधा सिंधु इहइ प्रभुताई॥
नाघहिं खग अनेक बारीसा। सूर न होहिं ते सुनु सब कीसा॥1॥

भावार्थ:- रे दुष्ट! वानरों की सहायता जोड़कर राम ने समुद्र बाँध लिया, बस, यही उसकी प्रभुता है। समुद्र को तो अनेकों पक्षी भी लाँघ जाते हैं। पर इसी से वे सभी शूरवीर नहीं हो जाते। अरे मूर्ख बंदर! सुन-॥1॥

* मम भुज सागर बल जल पूरा। जहँ बूड़े बहु सुर नर सूरा॥
बीस पयोधि अगाध अपारा। को अस बीर जो पाइहि पारा॥2॥

भावार्थ:- मेरा एक-एक भुजा रूपी समुद्र बल रूपी जल से पूर्ण है, जिसमें बहुत से शूरवीर देवता और मनुष्य डूब चूके हैं। (बता,) कौन ऐसा शूरवीर है, जो मेरे इन अथाह और अपार बीस समुद्रों का पार पा जाएगा?॥2॥

* दिगपालन्ह मैं नीर भरावा। भूप सुजस खल मोहि सुनावा॥
जौं पै समर सुभट तव नाथा। पुनि पुनि कहसि जासु गुन गाथा॥3॥

भावार्थ:- अरे दुष्ट! मैंने दिक्पालों तक से जल भरवाया और तू एक राजा का मुझे सुयश सुनाता है! यदि तेरा मालिक, जिसकी गुणगाथा तू बार-बार कह रहा है, संग्राम में लड़ने वाला योद्धा है-॥3॥

* तौ बसीठ पठवत केहि काजा। रिपु सन प्रीति करत नहिं लाजा॥
हरगिरि मथन निरखु मम बाहू। पुनि सठ कपि निज प्रभुहि सराहू॥4॥

भावार्थ:- तो (फिर) वह दूत किसलिए भेजता है? शत्रु से प्रीति (सन्धि) करते उसे लाज नहीं आती? (पहले) कैलास का मथन करने वाली मेरी भुजाओं को देख। फिर अरे मूर्ख वानर! अपने मालिक की सराहना करना॥4॥

दोहा :

* सूर कवन रावन सरिस स्वकर काटि जेहिं सीस।
हुने अनल अति हरष बहु बार साखि गौरीस॥28॥

भावार्थ:- रावण के समान शूरवीर कौन है? जिसने अपने हाथों से सिर काट-काटकर अत्यंत हर्ष के साथ बहुत बार उन्हें अग्नि में होम दिया! स्वयं गौरीपति शिवजी इस बात के साक्षी हैं॥28॥

चौपाई :

* जरत बिलोकेउँ जबहि कपाला। बिधि के लिखे अंक निज भाला॥
नर कें कर आपन बध बाँची। हसेउँ जानि बिधि गिरा असाँची॥1॥

भावार्थ:- मस्तकों के जलते समय जब मैंने अपने ललाटों पर लिखे हुए विधाता के अक्षर देखे, तब मनुष्य के हाथ से अपनी मृत्यु होना बाँचकर, विधाता की वाणी (लेख को) असत्य जानकर मैं हँसा॥1॥

* सोउ मन समुझि त्रास नहिं मोरें। लिखा बिरंचि जरठ मति भोरें॥
आन बीर बल सठ मम आगें। पुनि पुनि कहसि लाज पति त्यागें॥2॥

भावार्थ:- उस बात को समझकर (स्मरण करके) भी मेरे मन में डर नहीं है। (क्योंकि मैं समझता हूँ कि) बूढ़े ब्रह्मा ने बुद्धि भ्रम से ऐसा लिख दिया है। अरे मूर्ख! तू लज्जा और मर्यादा छोड़कर मेरे आगे बार-बार दूसरे वीर का बल कहता है!॥2॥

* कह अंगद सलज्ज जग माहीं। रावन तोहि समान कोउ नाहीं॥
लाजवंत तव सहज सुभाऊ। निज मुख निज गुन कहसि न काऊ॥3॥

भावार्थ:- अंगद ने कहा- अरे रावण! तेरे समान लज्जावान् जगत् में कोई नहीं है। लज्जाशीलता तो तेरा सहज स्वभाव ही है। तू अपने मुँह से अपने गुण कभी नहीं कहता॥3॥

* सिर अरु सैल कथा चित रही। ताते बार बीस तैं कहीं॥

सो भुजबल राखेहु उर घाली। जीतेहु सहसबाहु बलि बाली॥4॥

भावार्थ:- सिर काटने और कैलास उठाने की कथा चित्त में चढ़ी हुई थी, इससे तूने उसे बीसों बार कहा। भुजाओं के उस बल को तूने हृदय में ही टाल (छिपा) रखा है, जिससे तूने सहस्रबाहु, बलि और बालि को जीता था॥4॥

* सुनु मतिमंद देहि अब पूरा। काटें सीस कि होइअ सूरा॥

इंद्रजालि कहुँ कहिअ न बीरा। काटइ निज कर सकल सरीरा॥5॥

भावार्थ:- अरे मंद बुद्धि! सुन, अब बस कर। सिर काटने से भी क्या कोई शूरवीर हो जाता है? इंद्रजाल रचने वाले को वीर नहीं कहा जाता, यद्यपि वह अपने ही हाथों अपना सारा शरीर काट डालता है!॥5॥

दोहा :

* जरहिं पतंग मोह बस भार बहहिं खर बृंद।

ते नहिं सूर कहावहिं समुझि देखु मतिमंद॥29॥

भावार्थ:-अरे मंद बुद्धि! समझकर देख। पतंगे मोहवश आग में जल मरते हैं, गदहों के झुंड बोझ लादकर चलते हैं, पर इस कारण वे शूरवीर नहीं कहलाते॥29॥

चौपाई :

* अब जनि बतबढ़ाव खल करही। सुनु मम बचन मान परिहरही॥

दसमुख मैं न बसीठीं आयउँ। अस बिचारि रघुबीर पठायउँ॥1॥

भावार्थ:- अरे दुष्ट! अब बतबढ़ाव मत कर, मेरा वचन सुन और अभिमान त्याग दे! हे दशमुख! मैं दूत की तरह (सन्धि करने) नहीं आया हूँ। श्री रघुवीर ने ऐसा विचार कर मुझे भेजा है-॥1॥

* बार बार अस कहइ कृपाला। नहिं गजारि जसु बंधे सृकाला॥
मन महुँ समुझि बचन प्रभु केरे। सहेउँ कठोर बचन सठ तेरे॥2॥

भावार्थ:- कृपालु श्री रामजी बार-बार ऐसा कहते हैं कि स्यार के मारने से सिंह को यश नहीं मिलता। अरे मूर्ख! प्रभु के (उन) वचनों को मन में समझकर (याद करके) ही मैंने तेरे कठोर वचन सहे हैं॥2॥

* नाहिं त करि मुख भंजन तोरा। लैं जातेउँ सीतहि बरजोरा॥
जानेउँ तव बल अधम सुरारी। सूनें हरि आनिहि परनारी॥3॥

भावार्थ:- नहीं तो तेरे मुँह तोड़कर मैं सीताजी को जबरदस्ती ले जाता। अरे अधम! देवताओं के शत्रु! तेरा बल तो मैंने तभी जान लिया, जब तू सूने में पराई स्त्री को हर (चुरा) लाया॥3॥

* तै निसिचर पति गर्ब बहूता। मैं रघुपति सेवक कर दूता॥
जौं न राम अपमानहिं डरऊँ। तोहि देखत अस कौतुक करउँ॥4॥

भावार्थ:- तू राक्षसों का राजा और बड़ा अभिमानी है, परन्तु मैं तो श्री रघुनाथजी के सेवक (सुग्रीव) का दूत (सेवक का भी सेवक) हूँ। यदि मैं श्री रामजी के अपमान से न डरूँ तो तेरे देखते-देखते ऐसा तमाशा करूँ कि-॥4॥

दोहा :

* तोहि पटकि महि सेन हति चौपट करि तव गाउँ।
तव जुबतिन्ह समेत सठ जनकसुतहि लै जाउँ॥30॥

भावार्थ:- तुझे जमीन पर पटककर, तेरी सेना का संहार कर और तेरे गाँव को चौपट (नष्ट-भ्रष्ट) करके, अरे मूर्ख! तेरी युवती स्त्रियों सहित जानकीजी को ले जाऊँ॥30॥

चौपाई :

* जौं अस करौं तदपि न बड़ाई। मुएहि बधें नहिं कछु मनुसाई॥
कौल कामबस कृपिन बिमूढ़ा। अति दरिद्र अजसी अति बूढ़ा॥1॥

भावार्थ:- यदि ऐसा करूँ, तो भी इसमें कोई बड़ाई नहीं है। मरे हुए को मारने में कुछ भी पुरुषत्व (बहादुरी) नहीं है। वाममार्गी, कामी, कंजूस, अत्यंत मूढ़, अति दरिद्र, बदनाम, बहुत बूढ़ा,॥1॥

* सदा रोगबस संतत क्रोधी। बिष्नु बिमुख श्रुति संत बिरोधी॥
तनु पोषक निंदक अघ खानी जीवत सव सम चौदह प्रानी॥2॥

भावार्थ:-नित्य का रोगी, निरंतर क्रोधयुक्त रहने वाला, भगवान्‌ विष्णु से विमुख, वेद और संतों का विरोधी, अपना ही शरीर पोषण करने वाला, पराई निंदा करने वाला और पाप की खान (महान्‌ पापी)- ये चौदह प्राणी जीते ही मुरदे के समान हैं॥2॥

* अस बिचारि खल बधउँ न तोही। अब जनि रिस उपजावसि मोही॥
सुनि सकोप कह निसिचर नाथा। अधर दसन दसि मीजत हाथा॥3॥

भावार्थ:- अरे दुष्ट! ऐसा विचार कर मैं तुझे नहीं मारता। अब तू मुझमें क्रोध न पैदा कर (मुझे गुस्सा न दिला)। अंगद के वचन सुनकर राक्षस राज रावण दाँतों से होठ काटकर, क्रोधित होकर हाथ मलता हुआ बोला-॥3॥

* रे कपि अधम मरन अब चहसी। छोटे बदन बात बड़ि कहसी॥

कटु जल्पसि जड़ कपि बल जाकें। बल प्रताप बुधि तेज न ताकें॥4॥

भावार्थ:- अरे नीच बंदर! अब तू मरना ही चाहता है! इसी से छोटे मुँह बड़ी बात कहता है। अरे मूर्ख बंदर! तू जिसके बल पर कड़ुए वचन बक रहा है, उसमें बल, प्रताप, बुद्धि अथवा तेज कुछ भी नहीं है॥4॥

दोहा :

* अगुन अमान जानि तेहि दीन्ह पिता बनबास।
सो दुख अरु जुबती बिरह पुनि निसि दिन मम त्रास॥31 क॥

भावार्थ:-उसे गुणहीन और मानहीन समझकर ही तो पिता ने वनवास दे दिया। उसे एक तो वह (उसका) दुःख, उस पर युवती स्त्री का विरह और फिर रात-दिन मेरा डर बना रहता है॥31 (क)॥

* जिन्ह के बल कर गर्ब तोहि अइसे मनुज अनेक।
खाहिं निसाचर दिवस निसि मूढ़ समुझु तजि टेक॥31 ख॥

भावार्थ:-जिनके बल का तुझे गर्व है, ऐसे अनेकों मनुष्यों को तो राक्षस रात-दिन खाया करते हैं। अरे मूढ़! जिद्द छोड़कर समझ (विचार कर)॥ 31 (ख)॥

चौपाई :

* जब तेहिं कीन्हि राम कै निंदा। क्रोधवंत अति भयउ कपिंदा॥
हरि हर निंदा सुनइ जो काना। होइ पाप गोघात समाना॥1॥

भावार्थ:-जब उसने श्री रामजी की निंदा की, तब तो कपिश्रेष्ठ अंगद अत्यंत क्रोधित हुए, क्योंकि (शास्त्र ऐसा कहते हैं कि) जो अपने कानों से भगवान् विष्णु और शिव की निंदा सुनता है, उसे गो वध के समान पाप होता है॥1॥

* कटकटान कपिकुंजर भारी। दुहु भुजदंड तमकि महि मारी॥

डोलत धरनि सभासद खसे। चले भाजि भय मारुत ग्रसे॥2॥

भावार्थ:-वानर श्रेष्ठ अंगद बहुत जोर से कटकटाए (शब्द किया) और उन्होंने तमककर (जोर से) अपने दोनों भुजदण्डों को पृथ्वी पर दे मारा। पृथ्वी हिलने लगी, (जिससे बैठे हुए) सभासद् गिर पड़े और भय रूपी पवन (भूत) से ग्रस्त होकर भाग चले॥2॥

* गिरत सँभारि उठा दसकंधर। भूतल परे मुकुट अति सुंदर॥

कछु तेहिं लै निज सिरन्हि सँवारे। कछु अंगद प्रभु पास पबारे॥3॥

भावार्थ:-रावण गिरते-गिरते सँभलकर उठा। उसके अत्यंत सुंदर मुकुट पृथ्वी पर गिर पड़े। कुछ तो उसने उठाकर अपने सिरों पर सुधाकर रख लिए और कुछ अंगद ने उठाकर प्रभु श्री रामचंद्रजी के पास फेंक दिए॥3॥

* आवत मुकुट देखि कपि भागे। दिनहीं लूक परन बिधि लागे॥

की रावन करि कोप चलाए। कुलिस चारि आवत अति धाए॥4॥

भावार्थ:- मुकुटों को आते देखकर वानर भागे। (सोचने लगे) विधाता! क्या दिन में ही उल्कापात होने लगा (तारे टूटकर गिरने लगे)? अथवा क्या रावण ने क्रोध करके चार वज्र चलाए हैं, जो बड़े धाए के साथ (वेग से) आ रहे हैं?॥4॥

* कह प्रभु हँसि जनि हृदयँ डेराहू। लूक न असनि केतु नहिं राहू॥

ए किरीट दसकंधर केरे। आवत बालितनय के प्रेरे॥5॥

भावार्थ:- प्रभु ने (उनसे) हँसकर कहा- मन में डरो नहीं। ये न उल्का हैं, न वज्र हैं और न केतु या राहु ही हैं। अरे भाई! ये तो रावण के मुकुट हैं, जो बालिपुत्र अंगद के फेंके हुए आ रहे हैं॥5॥

दोहा :

* तरकि पवनसुत कर गहे आनि धरे प्रभु पास।

कौतुक देखहिं भालु कपि दिनकर सरिस प्रकास॥32 क॥

भावार्थ:-पवन पुत्र श्री हनुमान्‌जी ने उछलकर उनको हाथ से पकड़ लिया और लाकर प्रभु के पास रख दिया। रीछ और वानर तमाशा देखने लगे। उनका प्रकाश सूर्य के समान था॥32 (क)॥

* उहाँ सकोपि दसानन सब सन कहत रिसाइ।

धरहु कपिहि धरि मारहु सुनि अंगद मुसुकाइ॥32 ख॥

भावार्थ:- वहाँ (सभा में) क्रोधयुक्त रावण सबसे क्रोधित होकर कहने लगा कि- बंदर को पकड़ लो और पकड़कर मार डालो। अंगद यह सुनकर मुस्कुराने लगे॥32 (ख)॥

चौपाई :

* एहि बधि बेगि सुभट सब धावहु। खाहु भालु कपि जहँ जहँ पावहु॥

मर्कटहीन करहु महि जाई। जिअत धरहु तापस द्वौ भाई॥1॥

भावार्थ:- (रावण फिर बोला-) इसे मारकर सब योद्धा तुरंत दौड़ो और जहाँ कहीं रीछ-वानरों को पाओ, वहीं खा डालो। पृथ्वी को बंदरों से रहित कर दो और जाकर दोनों तपस्वी भाइयों (राम-लक्ष्मण) को जीते जी पकड़ लो॥1॥

* पुनि सकोप बोलेउ जुबराजा। गाल बजावत तोहि न लाजा॥

मरु गर काटि निलज कुलघाती। बल बिलोकि बिहरति नहिं छाती॥2॥

भावार्थ:-(रावण के ये कोपभरे वचन सुनकर) तब युवराज अंगद क्रोधित होकर बोले- तुझे गाल बजाते लाज नहीं आती! अरे निर्लज्ज! अरे कुलनाशक! गला काटकर (आत्महत्या करके) मर जा! मेरा बल देखकर भी क्या तेरी छाती नहीं फटती!॥2॥

* रे त्रिय चोर कुमारग गामी। खल मल रासि मंदमति कामी॥

सन्यपात जल्पसि दुर्बादा। भएसि कालबस खल मनुजादा॥3॥

भावार्थ:- अरे स्त्री के चोर! अरे कुमार्ग पर चलने वाले! अरे दुष्ट, पाप की राशि, मन्द बुद्धि और कामी! तू सन्निपात में क्या दुर्वचन बक रहा है? अरे दुष्ट राक्षस! तू काल के वश हो गया है!॥3॥

* याको फलु पावहिगो आगें। बानर भालु चपेटन्हि लागें॥

रामु मनुज बोलत असि बानी। गिरहिं न तव रसना अभिमानी॥4॥

भावार्थ:- इसका फल तू आगे वानर और भालुओं के चपेटे लगने पर पावेगा। राम मनुष्य हैं, ऐसा वचन बोलते ही, अरे अभिमानी! तेरी जीभें नहीं गिर पड़तीं?॥4॥

* गिरिहहिं रसना संसय नाहीं। सिरन्हि समेत समर महि माहीं॥5॥

भावार्थ:- इसमें संदेह नहीं है कि तेरी जीभें (अकेले नहीं वरन) सिरों के साथ रणभूमि में गिरेंगी॥5॥

सोरठा :

* सो नर क्यों दसकंध बालि बध्यो जेहिं एक सर।

बीसहुँ लोचन अंध धिग तव जन्म कुजाति जड़॥33 क॥

भावार्थ:- रे दशकन्ध! जिसने एक ही बाण से बालि को मार डाला, वह मनुष्य कैसे है? अरे कुजाति, अरे जड़! बीस आँखें होने पर भी तू अंधा है। तेरे जन्म को धिक्कार है॥33 (क)॥

* तव सोनित कीं प्यास तृषित राम सायक निकर।

तजउँ तोहि तेहि त्रास कटु जल्पक निसिचर अधम॥33 ख॥

भावार्थ:-श्री रामचंद्रजी के बाण समूह तेरे रक्त की प्यास से प्यासे हैं। (वे प्यासे ही रह जाएँगे) इस डर से, अरे कड़वी बकवाद करने वाले नीच राक्षस! मैं तुझे छोड़ता हूँ॥33 (ख)॥

चौपाई :

* मैं तव दसन तोरिबे लायक। आयसु मोहि न दीन्ह रघुनायक॥
असि रिस होति दसउ मुख तोरौं। लंका गहि समुद्र महँ बोरौं॥1॥

भावार्थ:-मैं तेरे दाँत तोड़ने में समर्थ हूँ। पर क्या करूँ? श्री रघुनाथजी ने मुझे आज्ञा नहीं दी। ऐसा क्रोध आता है कि तेरे दसों मुँह तोड़ डालूँ और (तेरी) लंका को पकड़कर समुद्र में डुबो दूँ॥1॥

* गूलरि फल समान तव लंका। बसहु मध्य तुम्ह जंतु असंका॥
मैं बानर फल खात न बारा। आयसु दीन्ह न राम उदारा॥2॥

भावार्थ:-तेरी लंका गूलर के फल के समान है। तुम सब कीड़े उसके भीतर (अज्ञानवश) निडर होकर बस रहे हो। मैं बंदर हूँ, मुझे इस फल को खाते क्या देर थी? पर उदार (कृपालु) श्री रामचंद्रजी ने वैसी आज्ञा नहीं दी॥2॥

* जुगुति सुनत रावन मुसुकाई। मूढ़ सिखिहि कहँ बहुत झुठाई॥
बालि न कबहुँ गाल अस मारा। मिलि तपसिन्ह तैं भएसि लबारा॥3॥

भावार्थ:-अंगद की युक्ति सुनकर रावण मुस्कुराया (और बोला-) अरे मूर्ख! बहुत झूठ बोलना तूने कहाँ से सीखा? बालि ने तो कभी ऐसा गाल नहीं मारा। जान पड़ता है तू तपस्वियों से मिलकर लबार हो गया है॥3॥

*साँचेहुँ मैं लबार भुज बीहा। जौं न उपारिउँ तव दस जीहा॥
समुझि राम प्रताप कपि कोपा। सभा माझ पन करि पद रोपा॥4॥

भावार्थ:-(अंगद ने कहा-) अरे बीस भुजा वाले! यदि तेरी दसों जीभें मैंने नहीं उखाड़ लीं तो सचमुच मैं लबार ही हूँ। श्री रामचंद्रजी के प्रताप को समझकर (स्मरण करके) अंगद क्रोधित हो उठे और उन्होंने रावण की सभा में प्रण करके (दृढ़ता के साथ) पैर रोप दिया॥4॥

* जौं मम चरन सकसि सठ टारी। फिरहिं रामु सीता मैं हारी॥
सुनहु सुभट सब कह दससीसा। पद गहि धरनि पछारहु कीसा॥5॥

भावार्थ:-(और कहा-) अरे मूर्ख! यदि तू मेरा चरण हटा सके तो श्री रामजी लौट जाएँगे, मैं सीताजी को हार गया। रावण ने कहा- हे सब वीरो! सुनो, पैर पकड़कर बंदर को पृथ्वी पर पछाड़ दो॥5॥

* इंद्रजीत आदिक बलवाना। हरषि उठे जहँ तहँ भट नाना॥
झपटहिं करि बल बिपुल उपाई। पद न टरइ बैठहिं सिरु नाई॥6॥

भावार्थ:-इंद्रजीत (मेघनाद) आदि अनेकों बलवान् योद्धा जहाँ-तहाँ से हर्षित होकर उठे। वे पूरे बल से बहुत से उपाय करके झपटते हैं। पर पैर टलता नहीं, तब सिर नीचा करके फिर अपने-अपने स्थान पर जा बैठ जाते हैं॥6॥

* पुनि उठि झपटहिं सुर आराती। टरइ न कीस चरन एहि भाँती॥
पुरुष कुजोगी जिमि उरगारी। मोह बिटप नहिं सकहिं उपारी॥7॥

भावार्थ:-(काकभुशुण्डिजी कहते हैं-) वे देवताओं के शत्रु (राक्षस) फिर उठकर झपटते हैं, परन्तु हे सर्पों के शत्रु गरुड़जी! अंगद का चरण उनसे वैसे ही नहीं टलता जैसे कुयोगी (विषयी) पुरुष मोह रूपी वृक्ष को नहीं उखाड़ सकते॥7॥

दोहा :

* कोटिन्ह मेघनाद सम सुभट उठे हरषाइ।
झपटहिं टरै न कपि चरन पुनि बैठहिं सिर नाइ॥34 क॥

भावार्थ:-करोड़ों वीर योद्धा जो बल में मेघनाद के समान थे, हर्षित होकर उठे, वे बार-बार झपटते हैं, पर वानर का चरण नहीं उठता, तब लज्जा के मारे सिर नवाकर बैठ जाते हैं॥34 (क)॥

* भूमि न छाँड़त कपि चरन देखत रिपु मद भाग।
कोटि बिघ्न ते संत कर मन जिमि नीति न त्याग॥34 ख॥

भावार्थ:-जैसे करोड़ों विघ्न आने पर भी संत का मन नीति को नहीं छोड़ता, वैसे ही वानर (अंगद) का चरण पृथ्वी को नहीं छोड़ता। यह देखकर शत्रु (रावण) का मद दूर हो गया!॥34 (ख)॥

चौपाई :

* कपि बल देखि सकल हियँ हारे। उठा आपु कपि कें परचारे॥
गहत चरन कह बालिकुमारा। मम पद गहें न तोर उबारा॥1॥

भावार्थ:-अंगद का बल देखकर सब हृदय में हार गए। तब अंगद के ललकारने पर रावण स्वयं उठा। जब वह अंगद का चरण पकड़ने लगा, तब बालि कुमार अंगद ने कहा- मेरा चरण पकड़ने से तेरा बचाव नहीं होगा!॥1॥

*गहसि न राम चरन सठ जाई॥ सुनत फिरा मन अति सकुचाई॥
भयउ तेजहत श्री सब गई। मध्य दिवस जिमि ससि सोहई॥2॥

भावार्थ:-अरे मूर्ख- तू जाकर श्री रामजी के चरण क्यों नहीं पकड़ता? यह सुनकर वह मन में बहुत ही सकुचाकर लौट गया। उसकी सारी श्री जाती रही। वह ऐसा तेजहीन हो गया जैसे मध्याह्न में चंद्रमा दिखाई देता है॥2॥

* सिंघासन बैठेउ सिर नाई। मानहुँ संपति सकल गँवाई॥
जगदातमा प्रानपति रामा। तासु बिमुख किमि लह बिश्रामा॥3॥

भावार्थ:-वह सिर नीचा करके सिंहासन पर जा बैठा। मानो सारी सम्पत्ति गँवाकर बैठा हो। श्री रामचंद्रजी जगत्‌भर के आत्मा और प्राणों के स्वामी हैं। उनसे विमुख रहने वाला शांति कैसे पा सकता है?॥3॥

* उमा राम की भृकुटि बिलासा। होइ बिस्व पुनि पावइ नासा॥

तृन ते कुलिस कुलिस तृन करई। तासु दूत पन कहु किमि टरई॥4॥
भावार्थ:-(शिवजी कहते हैं-) हे उमा! जिन श्री रामचंद्रजी के भ्रूविलास (भौंह के इशारे) से विश्व उत्पन्न होता है और फिर नाश को प्राप्त होता है, जो तृण को वज्र और वज्र को तृण बना देते हैं (अत्यंत निर्बल को महान् प्रबल और महान् प्रबल को अत्यंत निर्बल कर देते हैं), उनके दूत का प्रण कहो, कैसे टल सकता है?॥4॥

* पुनि कपि कही नीति बिधि नाना। मान न ताहि कालु निअराना॥
रिपु मद मथि प्रभु सुजसु सुनायो। यह कहि चल्यो बालि नृप जायो॥5॥
भावार्थ:-फिर अंगद ने अनेकों प्रकार से नीति कही। पर रावण नहीं माना, क्योंकि उसका काल निकट आ गया था। शत्रु के गर्व को चूर करके अंगद ने उसको प्रभु श्री रामचंद्रजी का सुयश सुनाया और फिर वह राजा बालि का पुत्र यह कहकर चल दिया-॥5॥

* हतौं न खेत खेलाइ खेलाई। तोहि अबहिं का करौं बड़ाई॥
प्रथमहिं तासु तनय कपि मारा। सो सुनि रावन भयउ दुखारा॥6॥
भावार्थ:-रणभूमि में तुझे खेला-खेलाकर न मारूँ तब तक अभी (पहले से) क्या बड़ाई करूँ। अंगद ने पहले ही (सभा में आने से पूर्व ही) उसके पुत्र को मार डाला था। वह संवाद सुनकर रावण दुःखी हो गया॥6॥

* जातुधान अंगद पन देखी। भय ब्याकुल सब भए बिसेषी॥7॥
भावार्थ:-अंगद का प्रण (सफल) देखकर सब राक्षस भय से अत्यन्त ही व्याकुल हो गए॥7॥

दोहा :

* रिपु बल धरषि हरषि कपि बालितनय बल पुंज।
पुलक सरीर नयन जल गहे राम पद कंज॥35 क॥

भावार्थ:-शत्रु के बल का मर्दन कर, बल की राशि बालि पुत्र अंगदजी ने हर्षित होकर आकर श्री रामचंद्रजी के चरणकमल पकड़ लिए। उनका शरीर पुलकित है और नेत्रों में (आनंदाश्रुओं का) जल भरा है॥35 (क)॥

रावण को पुनः मन्दोदरी का समझाना

* साँझ जानि दसकंधर भवन गयउ बिलखाइ।

मंदोदरीं रावनहिं बहुरि कहा समुझाइ॥35 ख॥

भावार्थ:- सन्ध्या हो गई जानकर दशग्रीव बिलखता हुआ (उदास होकर) महल में गया। मन्दोदरी ने रावण को समझाकर फिर कहा-॥35 (ख)॥

चौपाई :

* कंत समुझि मन तजहु कुमतिही। सोह न समर तुम्हहि रघुपतिही॥

रामानुज लघु रेख खचाई। सोउ नहिं नाघेहु असि मनुसाई॥1॥

भावार्थ:- हे कान्त! मन में समझकर (विचारकर) कुबुद्धि को छोड़ दो। आप से और श्री रघुनाथजी से युद्ध शोभा नहीं देता। उनके छोटे भाई ने एक जरा सी रेखा खींच दी थी, उसे भी आप नहीं लाँघ सके, ऐसा तो आपका पुरुषत्व है॥1॥

* पिय तुम्ह ताहि जितब संग्रामा। जाके दूत केर यह कामा॥

कौतुक सिंधु नाघि तव लंका। आयउ कपि केहरी असंका॥2॥

भावार्थ:- हे प्रियतम! आप उन्हें संग्राम में जीत पाएँगे, जिनके दूत का ऐसा काम है? खेल से ही समुद्र लाँघकर वह वानरों में सिंह (हनुमान्) आपकी लंका में निर्भय चला आया!॥2॥

* रखवारे हति बिपिन उजारा। देखत तोहि अच्छ तेहिं मारा॥
जारि सकल पुर कीन्हेसि छारा। कहाँ रहा बल गर्ब तुम्हारा॥3॥

भावार्थ:- रखवालों को मारकर उसने अशोक वन उजाड़ डाला। आपके देखते-देखते उसने अक्षयकुमार को मार डाला और संपूर्ण नगर को जलाकर राख कर दिया। उस समय आपके बल का गर्व कहाँ चला गया था?॥3॥

* अब पति मृषा गाल जनि मारहु। मोर कहा कछु हृदयँ बिचारहु॥
पति रघुपतिहि नृपति जनि मानहु। अग जग नाथ अतुलबल जानहु॥4॥

भावार्थ:- अब हे स्वामी! झूठ (व्यर्थ) गाल न मारिए (डींग न हाँकिए) मेरे कहने पर हृदय में कुछ विचार कीजिए। हे पति! आप श्री रघुपति को (निरा) राजा मत समझिए, बल्कि अग-जगनाथ (चराचर के स्वामी) और अतुलनीय बलवान् जानिए॥4॥

* बान प्रताप जान मारीचा। तासु कहा नहिं मानेहि नीचा॥
जनक सभाँ अगनित भूपाला। रहे तुम्हउ बल अतुल बिसाला॥5॥

भावार्थ:- श्री रामजी के बाण का प्रताप तो नीच मारीच भी जानता था, परन्तु आपने उसका कहना भी नहीं माना। जनक की सभा में अगणित राजागण थे। वहाँ विशाल और अतुलनीय बल वाले आप भी थे॥5॥

* भंजि धनुष जानकी बिआही। तब संग्राम जितेहु किन ताही॥
सुरपति सुत जानइ बल थोरा। राखा जिअत आँखि गहि फोरा॥6॥

भावार्थ:- वहाँ शिवजी का धनुष तोड़कर श्री रामजी ने जानकी को ब्याहा, तब आपने उनको संग्राम में क्यों नहीं जीता? इंद्रपुत्र जयन्त उनके बल को कुछ-कुछ जानता है। श्री रामजी ने पकड़कर, केवल उसकी एक आँख ही फोड़ दी और उसे जीवित ही छोड़ दिया॥6॥

* सूपनखा कै गति तुम्ह देखी। तदपि हृदयँ नहिं लाज बिसेषी॥7॥

भावार्थ:- शूर्पणखा की दशा तो आपने देख ही ली। तो भी आपके हृदय में (उनसे लड़ने की बात सोचते) विशेष (कुछ भी) लज्जा नहीं आती!॥7॥

दोहा :

* बधि बिराध खर दूषनहि लीलाँ हत्यो कबंध।
बालि एक सर मार्‍यो तेहि जानहु दसकंध॥36॥

भावार्थ:- जिन्होंने विराध और खर-दूषण को मारकर लीला से ही कबन्ध को भी मार डाला और जिन्होंने बालि को एक ही बाण से मार दिया, हे दशकन्ध! आप उन्हें (उनके महत्व को) समझिए!॥36॥

चौपाई :

* जेहिं जलनाथ बँधायउ हेला। उतरे प्रभु दल सहित सुबेला॥
कारुनीक दिनकर कुल केतू। दूत पठायउ तव हित हेतू॥1॥

भावार्थ:-जिन्होंने खेल से ही समुद्र को बँधा लिया और जो प्रभु सेना सहित सुबेल पर्वत पर उतर पड़े, उन सूर्यकुल के ध्वजास्वरूप (कीर्ति को बढ़ाने वाले) करुणामय भगवान्‌ ने आप ही के हित के लिए दूत भेजा॥1॥

* सभा माझ जेहिं तव बल मथा। करि बरूथ महुँ मृगपति जथा॥
अंगद हनुमत अनुचर जाके। रन बाँकुरे बीर अति बाँके॥2॥

भावार्थ:- जिसने बीच सभा में आकर आपके बल को उसी प्रकार मथ डाला जैसे हाथियों के झुंड में आकर सिंह (उसे छिन्न-भिन्न कर डालता

है) रण में बाँके अत्यंत विकट वीर अंगद और हनुमान् जिनके सेवक हैं,॥2॥

* तेहि कहँ पिय पुनि पुनि नर कहहू। मुधा मान ममता मद बहहू॥
अहह कंत कृत राम बिरोधा। काल बिबस मन उपज न बोधा॥3॥

भावार्थ:- हे पति! उन्हें आप बार-बार मनुष्य कहते हैं। आप व्यर्थ ही मान, ममता और मद का बोझ ढो रहे हैं! हा प्रियतम! आपने श्री रामजी से विरोध कर लिया और काल के विशेष वश होने से आपके मन में अब भी ज्ञान नहीं उत्पन्न होता॥3॥

* काल दंड गहि काहु न मारा। हरइ धर्म बल बुद्धि बिचारा॥
निकट काल जेहि आवत साईं। तेहि भ्रम होइ तुम्हारिहि नाईं॥4॥

भावार्थ:- काल दण्ड (लाठी) लेकर किसी को नहीं मारता। वह धर्म, बल, बुद्धि और विचार को हर लेता है। हे स्वामी! जिसका काल (मरण समय) निकट आ जाता है, उसे आप ही की तरह भ्रम हो जाता है॥4॥

दोहा :

* दुइ सुत मरे दहेउ पुर अजहुँ पूर पिय देहु।
कृपासिंधु रघुनाथ भजि नाथ बिमल जसु लेहु॥37॥

भावार्थ:- आपके दो पुत्र मारे गए और नगर जल गया। (जो हुआ सो हुआ) हे प्रियतम! अब भी (इस भूल की) पूर्ति (समाप्ति) कर दीजिए (श्री रामजी से वैर त्याग दीजिए) और हे नाथ! कृपा के समुद्र श्री रघुनाथजी को भजकर निर्मल यश लीजिए॥37॥

चौपाई :

* नारि बचन सुनि बिसिख समाना। सभाँ गयउ उठि होत बिहाना॥
बैठ जाइ सिंघासन फूली। अति अभिमान त्रास सब भूली॥1॥

भावार्थ:- स्त्री के बाण के समान वचन सुनकर वह सबेरा होते ही उठकर सभा में चला गया और सारा भय भुलाकर अत्यंत अभिमान में फूलकर सिंहासन पर जा बैठा॥1॥

अंगद-राम संवाद, युद्ध की तैयारी

* इहाँ राम अंगदहि बोलावा। आइ चरन पंकज सिरु नावा॥
अति आदर समीप बैठारी। बोले बिहँसि कृपाल खरारी॥2॥

भावार्थ:- यहाँ (सुबेल पर्वत पर) श्री रामजी ने अंगद को बुलाया। उन्होंने आकर चरणकमलों में सिर नवाया। बड़े आदर से उन्हें पास बैठाकर खर के शत्रु कृपालु श्री रामजी हँसकर बोले॥2॥

* बालितनय कौतुक अति मोही। तात सत्य कहुँ पूछउँ तोही॥
रावनु जातुधान कुल टीका। भुज बल अतुल जासु जग लीका॥3॥

भावार्थ:- हे बालि के पुत्र! मुझे बड़ा कौतूहल है। हे तात! इसी से मैं तुमसे पूछता हूँ, सत्य कहना। जो रावण राक्षसों के कुल का तिलक है और जिसके अतुलनीय बाहुबल की जगत्‌भर में धाक है,॥3॥

* तासु मुकुट तुम्ह चारि चलाए। कहहु तात कवनी बिधि पाए॥
सुनु सर्बग्य प्रनत सुखकारी। मुकुट न होहिं भूप न गुन चारी॥4॥

भावार्थ:-उसके चार मुकुट तुमने फेंके। हे तात! बताओ, तुमने उनको किस प्रकार से पाया! (अंगद ने कहा-) हे सर्वज्ञ! हे शरणागत को सुख देने वाले! सुनिए। वे मुकुट नहीं हैं। वे तो राजा के चार गुण हैं॥4॥

* साम दान अरु दंड बिभेदा। नृप उर बसहिं नाथ कह बेदा॥
नीति धर्म के चरन सुहाए। अस जियँ जानि पहिं आए॥5॥

भावार्थ:- हे नाथ! वेद कहते हैं कि साम, दान, दण्ड और भेद- ये चारों राजा के हृदय में बसते हैं। ये नीति-धर्म के चार सुंदर चरण हैं, (किन्तु रावण में धर्म का अभाव है) ऐसा जी में जानकर ये नाथ के पास आ गए हैं॥5॥

दोहा :

* धर्महीन प्रभु पद बिमुख काल बिबस दससीस।
तेहि परिहरि गुन आए सुनहु कोसलाधीस॥38 क॥

भावार्थ:- दशशीश रावण धर्महीन, प्रभु के पद से विमुख और काल के वश में है, इसलिए हे कोसलराज! सुनिए, वे गुण रावण को छोड़कर आपके पास आ गए हैं॥ 38 (क)॥

* परम चतुरता श्रवन सुनि बिहँसे रामु उदार।
समाचार पुनि सब कहे गढ़ के बालिकुमार॥38 ख॥

भावार्थ:- अंगद की परम चतुरता (पूर्ण उक्ति) कानों से सुनकर उदार श्री रामचंद्रजी हँसने लगे। फिर बालि पुत्र ने किले के (लंका के) सब समाचार कहे॥38 (ख)॥

चौपाई :

* रिपु के समाचार जब पाए। राम सचिव सब निकट बोलाए॥
लंका बाँके चारि दुआरा। केहि बिधि लागिअ करहु बिचारा॥1॥

भावार्थ:- जब शत्रु के समाचार प्राप्त हो गए, तब श्री रामचंद्रजी ने सब मंत्रियों को पास बुलाया (और कहा-) लंका के चार बड़े विकट दरवाजे हैं। उन पर किस तरह आक्रमण किया जाए, इस पर विचार करो॥1॥

* तब कपीस रिच्छेस बिभीषन। सुमरि हृदयँ दिनकर कुल भूषन॥
करि बिचार तिन्ह मंत्र दृढ़ावा। चारि अनी कपि कटकु बनावा॥2॥

भावार्थ:- तब वानरराज सुग्रीव, ऋक्षपति जाम्बवान् और विभीषण ने हृदय में सूर्य कुल के भूषण श्री रघुनाथजी का स्मरण किया और विचार करके उन्होंने कर्तव्य निश्चित किया। वानरों की सेना के चार दल बनाए॥2॥

* जथाजोग सेनापति कीन्हे। जूथप सकल बोलि तब लीन्हे॥
प्रभु प्रताप कहि सब समुझाए। सुनि कपि सिंघनाद करि धाए॥3॥

भावार्थ:-और उनके लिए यथायोग्य (जैसे चाहिए वैसे) सेनापति नियुक्त किए। फिर सब यूथपतियों को बुला लिया और प्रभु का प्रताप कहकर सबको समझाया, जिसे सुनकर वानर, सिंह के समान गर्जना करके दौड़े॥3॥

* हरषित राम चरन सिर नावहिं। गहि गिरि सिखर बीर सब धावहिं॥
गर्जहिं तर्जहिं भालु कपीसा। जय रघुबीर कोसलाधीसा॥4॥

भावार्थ:-वे हर्षित होकर श्री रामजी के चरणों में सिर नवाते हैं और पर्वतों के शिखर ले-लेकर सब वीर दौड़ते हैं। 'कोसलराज श्री रघुवीरजी की जय हो' पुकारते हुए भालू और वानर गरजते और ललकारते हैं॥4॥

* जानत परम दुर्ग अति लंका। प्रभु प्रताप कपि चले असंका॥
घटाटोप करि चहुँ दिसि घेरी॥ मुखहिं निसार बजावहिं भेरी॥5॥

भावार्थ:- लंका को अत्यंत श्रेष्ठ (अजेय) किला जानते हुए भी वानर प्रभु श्री रामचंद्रजी के प्रताप से निडर होकर चले। चारों ओर से घिरी हुई बादलों की घटा की तरह लंका को चारों दिशाओं से घेरकर वे मुँह से डंके और भेरी बजाने लगे॥5॥

युद्धारम्भ

दोहा :

* जयति राम जय लछिमन जय कपीस सुग्रीव।
गर्जहिं सिंहनाद कपि भालु महा बल सींव॥39॥

भावार्थ:- महान् बल की सीमा वे वानर-भालू सिंह के समान ऊँचे स्वर से 'श्री रामजी की जय', 'लक्ष्मणजी की जय', 'वानरराज सुग्रीव की जय'- ऐसी गर्जना करने लगे॥39॥

चौपाई :

* लंकाँ भयउ कोलाहल भारी। सुना दसानन अति अहँकारी॥
देखहु बनरन्ह केरि ढिठाई। बिहँसि निसाचर सेन बोलाई॥1॥

भावार्थ:- लंका में बड़ा भारी कोलाहल (कोहराम) मच गया। अत्यंत अहंकारी रावण ने उसे सुनकर कहा- वानरों की ढिठाई तो देखो! यह कहते हुए हँसकर उसने राक्षसों की सेना बुलाई॥1॥

* आए कीस काल के प्रेरे। छुधावंत सब निसिचर मेरे॥
बअस कहि अट्टहास सठ कीन्हा। गृह बैठें अहार बिधि दीन्हा॥2॥

भावार्थ:- बंदर काल की प्रेरणा से चले आए हैं। मेरे राक्षस सभी भूखे हैं। विधाता ने इन्हें घर बैठे भोजन भेज दिया। ऐसा कहकर उस मूर्ख ने अट्टहास किया (वह बड़े जोर से ठहाका मारकर हँसा)॥2॥

* सुभट सकल चारिहुँ दिसि जाहू। धरि धरि भालु कीस सब खाहू॥
उमा रावनहि अस अभिमाना। जिमि टिट्टिभ खग सूत उताना॥3॥

भावार्थ:- (और बोला-) हे वीरों! सब लोग चारों दिशाओं में जाओ और रीछ-वानर सबको पकड़-पकड़कर खाओ। (शिवजी कहते हैं-) हे उमा! रावण को ऐसा अभिमान था जैसा टिटिहिरी पक्षी पैर ऊपर की ओर करके सोता है (मानो आकाश को थाम लेगा)॥3॥

* चले निसाचर आयसु मागी। गहि कर भिंडिपाल बर साँगी॥

तोमर मुद्गर परसु प्रचंडा। सूल कृपान परिघ गिरिखंडा॥4॥

भावार्थ:-आज्ञा माँगकर और हाथों में उत्तम भिंदिपाल, साँगी (बरछी), तोमर, मुद्गर, प्रचण्ड फरसे, शूल, दोधारी तलवार, परिघ और पहाड़ों के टुकड़े लेकर राक्षस चले॥4॥

* जिमि अरुनोपल निकर निहारी। धावहिं सठ खग मांस अहारी॥

चोंच भंग दुख तिन्हहि न सूझा। तिमि धाए मनुजाद अबूझा॥5॥

भावार्थ:-जैसे मूर्ख मांसाहारी पक्षी लाल पत्थरों का समूह देखकर उस पर टूट पड़ते हैं, (पत्थरों पर लगने से) चोंच टूटने का दुःख उन्हें नहीं सूझता, वैसे ही ये बेसमझ राक्षस दौड़े॥5॥

दोहा :

* नानायुध सर चाप धर जातुधान बल बीर।

कोट कँगूरन्हि चढ़ि गए कोटि कोटि रनधीर॥40॥

भावार्थ:- अनेकों प्रकार के अस्त्र-शस्त्र और धनुष-बाण धारण किए करोड़ों बलवान् और रणधीर राक्षस वीर परकोटे के कँगूरों पर चढ़ गए॥40॥

चौपाई :

* कोट कँगूरन्हि सोहहिं कैसे। मेरु के सृंगनि जनु घन बैसे॥

बाजहिं ढोल निसान जुझाऊ। सुनि धुनि होइ भटन्हि मन चाऊ॥1॥

भावार्थ:-वे परकोटे के कँगूरों पर कैसे शोभित हो रहे हैं, मानो सुमेरु के शिखरों पर बादल बैठे हों। जुझाऊ ढोल और डंके आदि बज रहे हैं, (जिनकी) ध्वनि सुनकर योद्धाओं के मन में (लड़ने का) चाव होता है॥1॥

* बाजहिं भेरि नफीरि अपारा। सुनि कादर उर जाहिं दरारा॥
देखिन्ह जाइ कपिन्ह के ठट्टा। अति बिसाल तनु भालु सुभट्टा॥2॥

भावार्थ:- अगणित नफीरी और भेरी बज रही है, (जिन्हें) सुनकर कायरों के हृदय में दरारें पड़ जाती हैं। उन्होंने जाकर अत्यन्त विशाल शरीर वाले महान्‌ योद्धा वानर और भालुओं के ठट्ट (समूह) देखे॥2॥

* धावहिं गनहिं न अवघट घाटा। पर्बत फोरि करहिं गहि बाटा॥
कटकटाहिं कोटिन्ह भट गर्जहिं। दसन ओठ काटहिं अति तर्जहिं॥3॥

भावार्थ:-(देखा कि) वे रीछ-वानर दौड़ते हैं, औघट (ऊँची-नीची, विकट) घाटियों को कुछ नहीं गिनते। पकड़कर पहाड़ों को फोड़कर रास्ता बना लेते हैं। करोड़ों योद्धा कटकटाते और गर्जते हैं। दाँतों से होठ काटते और खूब डपटते हैं॥3॥

* उत रावन इत राम दोहाई। जयति जयति जय परी लराई॥
निसिचर सिखर समूह ढहावहिं। कूदि धरहिं कपि फेरि चलावहिं॥4॥

भावार्थ:- उधर रावण की और इधर श्री रामजी की दुहाई बोली जा रही है। 'जय' 'जय' 'जय' की ध्वनि होते ही लड़ाई छिड़ गई। राक्षस पहाड़ों के ढेर के ढेर शिखरों को फेंकते हैं। वानर कूदकर उन्हें पकड़ लेते हैं और वापस उन्हीं की ओर चलाते हैं॥4॥

छंद :

* धरि कुधर खंड प्रचंड मर्कट भालु गढ़ पर डारहीं।
झपटहिं चरन गहि पटकि महि भजि चलत बहुरि पचारहीं॥
अति तरल तरुन प्रताप तरपहिं तमकि गढ़ चढ़ि चढ़ि गए।

कपि भालु चढ़ि मंदिरन्ह जहँ तहँ राम जसु गावत भए॥
भावार्थ:- प्रचण्ड वानर और भालू पर्वतों के टुकड़े ले-लेकर किले पर डालते हैं। वे झपटते हैं और राक्षसों के पैर पकड़कर उन्हें पृथ्वी पर पटककर भाग चलते हैं और फिर ललकारते हैं। बहुत ही चंचल और बड़े तेजस्वी वानर-भालू बड़ी फुर्ती से उछलकर किले पर चढ़-चढ़कर गए और जहाँ-तहाँ महलों में घुसकर श्री रामजी का यश गाने लगे।

दोहा :

* एकु एकु निसिचर गहि पुनि कपि चले पराइ।

ऊपर आपु हेठ भट गिरहिं धरनि पर आइ॥41॥

भावार्थ:- फिर एक-एक राक्षस को पकड़कर वे वानर भाग चले। ऊपर आप और नीचे (राक्षस) योद्धा- इस प्रकार वे (किले से) धरती पर आ गिरते हैं॥41॥

चौपाई :

* राम प्रताप प्रबल कपिजूथा। मर्दहिं निसिचर सुभट बरूथा॥

चढ़े दुर्ग पुनि जहँ तहँ बानर। जय रघुबीर प्रताप दिवाकर॥1॥

भावार्थ:- श्री रामजी के प्रताप से प्रबल वानरों के झुंड राक्षस योद्धाओं के समूह के समूह मसल रहे हैं। वानर फिर जहाँ-तहाँ किले पर चढ़ गए और प्रताप में सूर्य के समान श्री रघुवीर की जय बोलने लगे॥1॥

* चले निसाचर निकर पराई। प्रबल पवन जिमि घन समुदाई॥

हाहाकार भयउ पुर भारी। रोवहिं बालक आतुर नारी॥2॥

भावार्थ:- राक्षसों के झुंड वैसे ही भाग चले जैसे जोर की हवा चलने पर बादलों के समूह तितर-बितर हो जाते हैं। लंका नगरी में बड़ा भारी हाहाकार मच गया। बालक, स्त्रियाँ और रोगी (असमर्थता के कारण) रोने लगे॥2॥

* सब मिलि देहिं रावनहि गारी। राज करत एहिं मृत्यु हँकारी॥

निज दल बिचल सुनी तेहिं काना। फेरि सुभट लंकेस रिसाना॥3॥
भावार्थ:- सब मिलकर रावण को गालियाँ देने लगे कि राज्य करते हुए इसने मृत्यु को बुला लिया। रावण ने जब अपनी सेना का विचलित होना कानों से सुना, तब (भागते हुए) योद्धाओं को लौटाकर वह क्रोधित होकर बोला-॥3॥

* जो रन बिमुख सुना मैं काना। सो मैं हतब कराल कृपाना॥
सर्बसु खाइ भोग करि नाना। समर भूमि भए बल्लभ प्राना॥4॥

भावार्थ:- मैं जिसे रण से पीठ देकर भागा हुआ अपने कानों सुनूँगा, उसे स्वयं भयानक दोधारी तलवार से मारूँगा। मेरा सब कुछ खाया, भाँति-भाँति के भोग किए और अब रणभूमि में प्राण प्यारे हो गए!॥4॥

* उग्र बचन सुनि सकल डेराने। चले क्रोध करि सुभट लजाने॥
सन्मुख मरन बीर कै सोभा। तब तिन्ह तजा प्रान कर लोभा॥5॥
भावार्थ:- रावण के उग्र (कठोर) वचन सुनकर सब वीर डर गए और लज्जित होकर क्रोध करके युद्ध के लिए लौट चले। रण में (शत्रु के) सम्मुख (युद्ध करते हुए) मरने में ही वीर की शोभा है। (यह सोचकर) तब उन्होंने प्राणों का लोभ छोड़ दिया॥5॥
दोहा :
* बहु आयुध धर सुभट सब भिरहिं पचारि पचारि।
ब्याकुल किए भालु कपि परिघ त्रिसूलन्हि मारि॥42॥

भावार्थ:-बहुत से अस्त्र-शस्त्र धारण किए, सब वीर ललकार-ललकारकर भिड़ने लगे। उन्होंने परिघों और त्रिशूलों से मार-मारकर सब रीछ-वानरों को व्याकुल कर दिया॥42॥
चौपाई :
* भय आतुर कपि भागत लागे। जद्यपि उमा जीतिहहिं आगे॥

कोउ कह कहँ अंगद हनुमंता। कहँ नल नील दुबिद बलवंता॥1॥

भावार्थ:- (शिवजी कहते हैं-) वानर भयातुर होकर (डर के मारे घबड़ाकर) भागने लगे, यद्यपि हे उमा! आगे चलकर (वे ही) जीतेंगे। कोई कहता है- अंगद-हनुमान् कहाँ हैं? बलवान् नल, नील और द्विविद कहाँ हैं?॥1॥

*निज दल बिकल सुना हनुमाना। पच्छिम द्वार रहा बलवाना॥
मेघनाद तहँ करइ लराई। टूट न द्वार परम कठिनाई॥2॥

भावार्थ:-हनुमान्‌जी ने जब अपने दल को विकल (भयभीत) हुआ सुना, उस समय वे बलवान् पश्चिम द्वार पर थे। वहाँ उनसे मेघनाद युद्ध कर रहा था। वह द्वार टूटता न था, बड़ी भारी कठिनाई हो रही थी॥2॥

* पवनतनय मन भा अति क्रोधा। गर्जेउ प्रबल काल सम जोधा॥
कूदि लंक गढ़ ऊपर आवा। गहि गिरि मेघनाद कहुँ धावा॥3॥

भावार्थ:-तब पवनपुत्र हनुमान्‌जी के मन में बड़ा भारी क्रोध हुआ। वे काल के समान योद्धा बड़े जोर से गरजे और कूदकर लंका के किले पर आ गए और पहाड़ लेकर मेघनाद की ओर दौड़े॥3॥

* भंजेउ रथ सारथी निपाता। ताहि हृदय महुँ मारेसि लाता॥
दुसरें सूत बिकल तेहि जाना। स्यंदन घालि तुरत गृह आना॥4॥

भावार्थ:- रथ तोड़ डाला, सारथी को मार गिराया और मेघनाद की छाती में लात मारी। दूसरा सारथी मेघनाद को व्याकुल जानकर, उसे रथ में डालकर, तुरंत घर ले आया॥4॥

दोहा :

* अंगद सुना पवनसुत गढ़ पर गयउ अकेल।
रन बाँकुरा बालिसुत तरकि चढ़ेउ कपि खेल॥43॥

भावार्थ:- इधर अंगद ने सुना कि पवनपुत्र हनुमान् किले पर अकेले ही गए हैं, तो रण में बाँके बालि पुत्र वानर के खेल की तरह उछलकर किले पर चढ़ गए॥43॥

चौपाई :

* जुद्ध बिरुद्ध क्रुद्ध द्वौ बंदर। राम प्रताप सुमिरि उर अंतर॥
रावन भवन चढ़े द्वौ धाई। करहिं कोसलाधीस दोहाई॥1॥

भावार्थ:- युद्ध में शत्रुओं के विरुद्ध दोनों वानर क्रुद्ध हो गए। हृदय में श्री रामजी के प्रताप का स्मरण करके दोनों दौड़कर रावण के महल पर जा चढ़े और कोसलराज श्री रामजी की दुहाई बोलने लगे॥1॥

* कलस सहित गहि भवनु ढहावा। देखि निसाचरपति भय पावा॥
नारि बृंद कर पीटहिं छाती। अब दुइ कपि आए उतपाती॥2॥

भावार्थ:- उन्होंने कलश सहित महल को पकड़कर ढहा दिया। यह देखकर राक्षस राज रावण डर गया। सब स्त्रियाँ हाथों से छाती पीटने लगीं (और कहने लगीं-) अब की बार दो उत्पाती वानर (एक साथ) आ गए हैं॥2॥

* कपिलीला करि तिन्हहि डेरावहिं। रामचंद्र कर सुजसु सुनावहिं॥
पुनि कर गहि कंचन के खंभा। कहेन्हि करिअ उतपात अरंभा॥3॥

भावार्थ:- वानरलीला करके (घुड़की देकर) दोनों उनको डराते हैं और श्री रामचंद्रजी का सुंदर यश सुनाते हैं। फिर सोने के खंभों को हाथों से पकड़कर उन्होंने (परस्पर) कहा कि अब उत्पात आरंभ किया जाए॥3॥

* गर्जि परे रिपु कटक मझारी। लागे मर्दै भुज बल भारी॥
काहुहि लात चपेटन्हि केहू। भजहु न रामहि सो फल लेहू॥4॥

भावार्थ:-वे गर्जकर शत्रु की सेना के बीच में कूद पड़े और अपने भारी भुजबल से उसका मर्दन करने लगे। किसी की लात से और किसी की

थप्पड़ से खबर लेते हैं (और कहते हैं कि) तुम श्री रामजी को नहीं भजते, उसका यह फल लो॥4॥

दोहा :

* एक एक सों मर्दहिं तोरि चलावहिं मुंड।
रावन आगें परहिं ते जनु फूटहिं दधि कुंड॥44॥

भावार्थ:- एक को दूसरे से (रगड़कर) मसल डालते हैं और सिरों को तोड़कर फेंकते हैं। वे सिर जाकर रावण के सामने गिरते हैं और ऐसे फूटते हैं, मानो दही के कूंडे फूट रहे हों॥4॥

चौपाई :

* महा महा मुखिआ जे पावहिं। ते पद गहि प्रभु पास चलावहिं॥
कहइ बिभीषनु तिन्ह के नामा। देहिं राम तिन्हहू निज धामा॥1॥

भावार्थ:- जिन बड़े-बड़े मुखियों (प्रधान सेनापतियों) को पकड़ पाते हैं, उनके पैर पकड़कर उन्हें प्रभु के पास फेंक देते हैं। विभीषणजी उनके नाम बतलाते हैं और श्री रामजी उन्हें भी अपना धाम (परम पद) दे देते हैं॥1॥

* खल मनुजाद द्विजामिष भोगी। पावहिं गति जो जाचत जोगी॥
उमा राम मृदुचित करुनाकर। बयर भाव सुमिरत मोहि निसिचर॥2॥

भावार्थ:- ब्राह्मणों का मांस खाने वाले वे नरभोजी दुष्ट राक्षस भी वह परम गति पाते हैं, जिसकी योगी भी याचना किया करते हैं, (परन्तु सहज में नहीं पाते)। (शिवजी कहते हैं-) हे उमा! श्री रामजी बड़े ही कोमल हृदय और करुणा की खान हैं। (वे सोचते हैं कि) राक्षस मुझे वैरभाव से ही सही, स्मरण तो करते ही हैं॥2॥

* देहिं परम गति सो जियँ जानी। अस कृपाल को कहहु भवानी॥
अस प्रभु सुनि न भजहिं भ्रम त्यागी। नर मतिमंद ते परम अभागी॥3॥

भावार्थ:- ऐसा हृदय में जानकर वे उन्हें परमगति (मोक्ष) देते हैं। हे भवानी! कहो तो ऐसे कृपालु (और) कौन हैं? प्रभु का ऐसा स्वभाव सुनकर भी जो मनुष्य भ्रम त्याग कर उनका भजन नहीं करते, वे अत्यंत मंदबुद्धि और परम भाग्यहीन हैं॥3॥

* अंगद अरु हनुमंत प्रबेसा। कीन्ह दुर्ग अस कह अवधेसा॥
लंकाँ द्वौ कपि सोहहिं कैसें। मथहिं सिंधु दुइ मंदर जैसें॥4॥

भावार्थ:- श्री रामजी ने कहा कि अंगद और हनुमान किले में घुस गए हैं। दोनों वानर लंका में (विध्वंस करते) कैसे शोभा देते हैं, जैसे दो मन्दराचल समुद्र को मथ रहे हों॥4॥ दोहा :

दोहा :

* भुज बल रिपु दल दलमलि देखि दिवस कर अंत।
कूदे जुगल बिगत श्रम आए जहँ भगवंत॥45॥

भावार्थ:- भुजाओं के बल से शत्रु की सेना को कुचलकर और मसलकर, फिर दिन का अंत होता देखकर हनुमान् और अंगद दोनों कूद पड़े और श्रम थकावट रहित होकर वहाँ आ गए, जहाँ भगवान् श्री रामजी थे॥45॥

चौपाई :

* प्रभु पद कमल सीस तिन्ह नाए। देखि सुभट रघुपति मन भाए॥
राम कृपा करि जुगल निहारे। भए बिगतश्रम परम सुखारे॥1॥

भावार्थ:- उन्होंने प्रभु के चरण कमलों में सिर नवाए। उत्तम योद्धाओं को देखकर श्री रघुनाथजी मन में बहुत प्रसन्न हुए। श्री रामजी ने कृपा करके दोनों को देखा, जिससे वे श्रमरहित और परम सुखी हो गए॥1॥

* गए जानि अंगद हनुमाना। फिरे भालु मर्कट भट नाना॥

जातुधान प्रदोष बल पाई। धाए करि दससीस दोहाई॥2॥

भावार्थ:- अंगद और हनुमान् को गए जानकर सभी भालू और वानर वीर लौट पड़े। राक्षसों ने प्रदोष (सायं) काल का बल पाकर रावण की दुहाई देते हुए वानरों पर धावा किया॥2॥

* निसिचर अनी देखि कपि फिरे। जहँ तहँ कटकटाइ भट भिरे॥

द्वौ दल प्रबल पचारि पचारी। लरत सुभट नहिं मानहिं हारी॥3॥

भावार्थ:- राक्षसों की सेना आती देखकर वानर लौट पड़े और वे योद्धा जहाँ-तहाँ कटकटाकर भिड़ गए। दोनों ही दल बड़े बलवान् हैं। योद्धा ललकार-ललकारकर ल़ड़ते हैं, कोई हार नहीं मानते॥3॥

* महाबीर निसिचर सब कारे। नाना बरन बलीमुख भारे॥

सबल जुगल दल समबल जोधा। कौतुक करत लरत करि क्रोधा॥4॥

भावार्थ:-सभी राक्षस महान् वीर और अत्यंत काले हैं और वानर विशालकाय तथा अनेकों रंगों के हैं। दोनों ही दल बलवान् हैं और समान बल वाले योद्धा हैं। वे क्रोध करके लड़ते हैं और खेल करते (वीरता दिखलाते) हैं॥4॥

* प्राबिट सरद पयोद घनेरे। लरत मनहुँ मारुत के प्रेरे॥

अनिप अकंपन अरु अतिकाया। बिचलत सेन कीन्हि इन्ह माया॥5॥

भावार्थ:-(राक्षस और वानर युद्ध करते हुए ऐसे जान पड़ते हैं) मानो क्रमशः वर्षा और शरद् ऋतु में बहुत से बादल पवन से प्रेरित होकर लड़ रहे हों। अकंपन और अतिकाय इन सेनापतियों ने अपनी सेना को विचलित होते देखकर माया की॥5॥

* भयउ निमिष महँ अति अँधिआरा। बृष्टि होइ रुधिरोपल छारा॥6॥

भावार्थ:- पलभर में अत्यंत अंधकार हो गया। खून, पत्थर और राख की वर्षा होने लगी॥6॥

दोहा :

* देखि निबिड़ तम दसहुँ दिसि कपिदल भयउ खभार।

एकहि एक न देखई जहँ तहँ करहिं पुकार॥46॥

भावार्थ:- दसों दिशाओं में अत्यंत घना अंधकार देखकर वानरों की सेना में खलबली पड़ गई। एक को एक (दूसरा) नहीं देख सकता और सब जहाँ-तहाँ पुकार रहे हैं॥46॥

चौपाई :

* सकल मरमु रघुनायक जाना। लिए बोलि अंगद हनुमाना॥

समाचार सब कहि समुझाए। सुनत कोपि कपिकुंजर धाए॥1॥

भावार्थ:- श्री रघुनाथजी सब रहस्य जान गए। उन्होंने अंगद और हनुमान् को बुला लिया और सब समाचार कहकर समझाया। सुनते ही वे दोनों कपिश्रेष्ठ क्रोध करके दौड़े॥1॥

*पुनि कृपाल हँसि चाप चढ़ावा। पावक सायक सपदि चलावा॥

भयउ प्रकास कतहुँ तम नाहीं। ग्यान उदयँ जिमि संसय जाहीं॥2॥

भावार्थ:-फिर कृपालु श्री रामजी ने हँसकर धनुष चलाया और तुरंत ही अग्निबाण चलाया, जिससे प्रकाश हो गया, कहीं अँधेरा नहीं रह गया। जैसे ज्ञान के उदय होने पर (सब प्रकार के) संदेह दूर हो जाते हैं॥2॥

* भालु बलीमुख पाई प्रकासा। धाए हरष बिगत श्रम त्रासा॥

हनूमान अंगद रन गाजे। हाँक सुनत रजनीचर भाजे॥3॥

भावार्थ:-भालू और वानर प्रकाश पाकर श्रम और भय से रहित तथा प्रसन्न होकर दौड़े। हनुमान् और अंगद रण में गरज उठे। उनकी हाँक सुनते ही राक्षस भाग छूटे॥3॥

* भागत भट पटकहिं धरि धरनी। करहिं भालु कपि अद्भुत करनी॥

गहि पद डारहिं सागर माहीं। मकर उरग झष धरि धरि खाहीं॥4॥

भावार्थ:- भागते हुए राक्षस योद्धाओं को वानर और भालू पकड़कर पृथ्वी पर दे मारते हैं और अद्‌भुत (आश्चर्यजनक) करनी करते हैं (युद्धकौशल दिखलाते हैं)। पैर पकड़कर उन्हें समुद्र में डाल देते हैं। वहाँ मगर, साँप और मच्छ उन्हें पकड़-पकड़कर खा डालते हैं॥4॥

माल्यवान का रावण को समझाना

दोहा :

* कछु मारे कछु घायल कछु गढ़ चढ़े पराइ।
गर्जहिं भालु बलीमुख रिपु दल बल बिचलाइ॥47॥

भावार्थ:- कुछ मारे गए, कुछ घायल हुए, कुछ भागकर गढ़ पर चढ़ गए। अपने बल से शत्रुदल को विचलित करके रीछ और वानर (वीर) गरज रहे हैं॥47॥

चौपाई :

* निसा जानि कपि चारिउ अनी। आए जहाँ कोसला धनी॥
राम कृपा करि चितवा सबही। भए बिगतश्रम बानर तबही॥1॥

भावार्थ:- रात हुई जानकर वानरों की चारों सेनाएँ (टुकड़ियाँ) वहाँ आईं, जहाँ कोसलपति श्री रामजी थे। श्री रामजी ने ज्यों ही सबको कृपा करके देखा त्यों ही ये वानर श्रमरहित हो गए॥1॥

* उहाँ दसानन सचिव हँकारे। सब सन कहेसि सुभट जे मारे॥
आधा कटकु कपिन्ह संघारा। कहहु बेगि का करिअ बिचारा॥2॥

भावार्थ:- वहाँ (लंका में) रावण ने मंत्रियों को बुलाया और जो योद्धा मारे गए थे, उन सबको सबसे बताया। (उसने कहा-) वानरों ने आधी सेना का संहार कर दिया! अब शीघ्र बताओ, क्या विचार (उपाय) करना चाहिए?॥2॥

* माल्यवंत अति जरठ निसाचर। रावन मातु पिता मंत्री बर॥
बोला बचन नीति अति पावन। सुनहु तात कछु मोर सिखावन॥3॥

भावार्थ:- माल्यवंत (नाम का एक) अत्यंत बूढ़ा राक्षस था। वह रावण की माता का पिता (अर्थात् उसका नाना) और श्रेष्ठ मंत्री था। वह अत्यंत पवित्र नीति के वचन बोला- हे तात! कुछ मेरी सीख भी सुनो-॥3॥

* जब ते तुम्ह सीता हरि आनी। असगुन होहिं न जाहिं बखानी॥
बेद पुरान जासु जसु गायो। राम बिमुख काहुँ न सुख पायो॥4॥

भावार्थ:-जब से तुम सीता को हर लाए हो, तब से इतने अपशकुन हो रहे हैं कि जो वर्णन नहीं किए जा सकते। वेद-पुराणों ने जिनका यश गाया है, उन श्री राम से विमुख होकर किसी ने सुख नहीं पाया॥4॥

दोहा :

* हिरन्याच्छ भ्राता सहित मधु कैटभ बलवान।
जेहिं मारे सोइ अवतरेउ कृपासिंधु भगवान॥48 क॥

भावार्थ:-भाई हिरण्यकशिपु सहित हिरण्याक्ष को बलवान् मधु-कैटभ को जिन्होंने मारा था, वे ही कृपा के समुद्र भगवान् (रामरूप से) अवतरित हुए हैं॥ 48 (क)॥

मासपारायण, पचीसवाँ विश्राम

लक्ष्मण-मेघनाद युद्ध, लक्ष्मणजी को शक्ति लगना

*कालरूप खल बन दहन गुनागार घनबोध।
सिव बिरंचि जेहि सेवहिं तासों कवन बिरोध॥48 ख॥

भावार्थ:- जो कालस्वरूप हैं, दुष्टों के समूह रूपी वन के भस्म करने वाले (अग्नि) हैं, गुणों के धाम और ज्ञानघन हैं एवं शिवजी और ब्रह्माजी भी जिनकी सेवा करते हैं, उनसे वैर कैसा?॥48 (ख)॥

चौपाई :

* परिहरि बयरु देहु बैदेही। भजहु कृपानिधि परम सनेही॥
ताके बचन बान सम लागे। करिआ मुँह करि जाहि अभागे॥1॥

भावार्थ:- (अत:) वैर छोड़कर उन्हें जानकीजी को दे दो और कृपानिधान परम स्नेही श्री रामजी का भजन करो। रावण को उसके वचन बाण के समान लगे। (वह बोला-) अरे अभागे! मुँह काला करके (यहाँ से) निकल जा॥1॥

* बूढ़ भएसि न त मरतेउँ तोही। अब जनि नयन देखावसि मोही॥
तेहिं अपने मन अस अनुमाना। बध्यो चहत एहि कृपानिधाना॥2॥

भावार्थ:-तू बूढ़ा हो गया, नहीं तो तुझे मार ही डालता। अब मेरी आँखों को अपना मुँह न दिखला। रावण के ये वचन सुनकर उसने (माल्यवान् ने) अपने मन में ऐसा अनुमान किया कि इसे कृपानिधान श्री रामजी अब मारना ही चाहते हैं॥2॥

* सो उठि गयउ कहत दुर्बादा। तब सकोप बोलेउ घननादा॥

कौतुक प्रात देखिअहु मोरा। करिहउँ बहुत कहौं का थोरा॥3॥
भावार्थ:- वह रावण को दुर्वचन कहता हुआ उठकर चला गया। तब मेघनाद क्रोधपूर्वक बोला- सबेरे मेरी करामात देखना। मैं बहुत कुछ करूँगा, थोड़ा क्या कहूँ? (जो कुछ वर्णन करूँगा थोड़ा ही होगा)॥3॥

* सुनि सुत बचन भरोसा आवा। प्रीति समेत अंक बैठावा॥

करत बिचार भयउ भिनुसारा। लागे कपि पुनि चहूँ दुआरा॥4॥
भावार्थ:- पुत्र के वचन सुनकर रावण को भरोसा आ गया। उसने प्रेम के साथ उसे गोद में बैठा लिया। विचार करते-करते ही सबेरा हो गया। वानर फिर चारों दरवाजों पर जा लगे॥4॥

* कोपि कपिन्ह दुर्घट गढ़ु घेरा। नगर कोलाहलु भयउ घनेरा॥

बिबिधायुध धर निसिचर धाए। गढ़ ते पर्बत सिखर ढहाए॥5॥
भावार्थ:- वानरों ने क्रोध करके दुर्गम किले को घेर लिया। नगर में बहुत ही कोलाहल (शोर) मच गया। राक्षस बहुत तरह के अस्त्र-शस्त्र धारण करके दौड़े और उन्होंने किले पर पहाड़ों के शिखर ढहाए॥5॥
छंद :
* ढाहे महीधर सिखर कोटिन्ह बिबिध बिधि गोला चले।
घहरात जिमि पबिपात गर्जत जनु प्रलय के बादले॥
मर्कट बिकट भट जुटत कटत न लटत तन जर्जर भए।
गहि सैल तेहि गढ़ पर चलावहि जहँ सो तहँ निसिचर हए॥
भावार्थ:- उन्होंने पर्वतों के करोड़ों शिखर ढहाए, अनेक प्रकार से गोले चलने लगे। वे गोले ऐसा घहराते हैं जैसे वज्रपात हुआ हो (बिजली गिरी हो) और योद्धा ऐसे गरजते हैं, मानो प्रलयकाल के बादल हों। विकट वानर योद्धा भिड़ते हैं, कट जाते हैं (घायल हो जाते हैं), उनके शरीर जर्जर (चलनी) हो जाते हैं, तब भी वे लटते नहीं (हिम्मत नहीं हारते)।

वे पहाड़ उठाकर उसे किले पर फेंकते हैं। राक्षस जहाँ के तहाँ (जो जहाँ होते हैं, वहीं) मारे जाते हैं।

दोहा :

* मेघनाद सुनि श्रवन अस गढ़ु पुनि छेंका आइ।
उतर्‌यो बीर दुर्ग तें सन्मुख चल्यो बजाइ॥49॥

भावार्थ:- मेघनाद ने कानों से ऐसा सुना कि वानरों ने आकर फिर किले को घेर लिया है। तब वह वीर किले से उतरा और डंका बजाकर उनके सामने चला॥49॥

चौपाई :

* कहँ कोसलाधीस द्वौ भ्राता। धन्वी सकल लोत बिख्याता॥
कहँ नल नील दुबिद सुग्रीवा। अंगद हनूमंत बल सींवा॥1॥

भावार्थ:-(मेघनाद ने पुकारकर कहा-) समस्त लोकों में प्रसिद्ध धनुर्धर कोसलाधीश दोनों भाई कहाँ हैं? नल, नील, द्विविद, सुग्रीव और बल की सीमा अंगद और हनुमान् कहाँ हैं?॥1॥

* कहाँ बिभीषनु भ्राताद्रोही। आजु सबहि हठि मारउँ ओही॥
अस कहि कठिन बान संधाने। अतिसय क्रोध श्रवन लगि ताने॥2॥

भावा

गीताप्रेस गोरखपुर

लक्ष्मण-मेघनाद युद्ध, लक्ष्मणजी को शक्ति लगना

*कालरूप खल बन दहन गुनागार घनबोध।
सिव बिरंचि जेहि सेवहिं तासों कवन बिरोध॥48 ख॥

भावार्थ:- जो कालस्वरूप हैं, दुष्टों के समूह रूपी वन के भस्म करने वाले (अग्नि) हैं, गुणों के धाम और ज्ञानघन हैं एवं शिवजी और ब्रह्माजी भी जिनकी सेवा करते हैं, उनसे वैर कैसा?॥48 (ख)॥

चौपाई :

* परिहरि बयरु देहु बैदेही। भजहु कृपानिधि परम सनेही॥
ताके बचन बान सम लागे। करिआ मुँह करि जाहि अभागे॥1॥

भावार्थ:- (अतः) वैर छोड़कर उन्हें जानकीजी को दे दो और कृपानिधान परम स्नेही श्री रामजी का भजन करो। रावण को उसके वचन बाण के समान लगे। (वह बोला-) अरे अभागे! मुँह काला करके (यहाँ से) निकल जा॥1॥

* बूढ़ भएसि न त मरतेउँ तोही। अब जनि नयन देखावसि मोही॥
तेहिं अपने मन अस अनुमाना। बध्यो चहत एहि कृपानिधाना॥2॥

भावार्थ:-तू बूढ़ा हो गया, नहीं तो तुझे मार ही डालता। अब मेरी आँखों को अपना मुँह न दिखला। रावण के ये वचन सुनकर उसने (माल्यवान् ने) अपने मन में ऐसा अनुमान किया कि इसे कृपानिधान श्री रामजी अब मारना ही चाहते हैं॥2॥

* सो उठि गयउ कहत दुर्बादा। तब सकोप बोलेउ घननादा॥
कौतुक प्रात देखिअहु मोरा। करिहउँ बहुत कहौं का थोरा॥3॥

भावार्थ:- वह रावण को दुर्वचन कहता हुआ उठकर चला गया। तब मेघनाद क्रोधपूर्वक बोला- सबेरे मेरी करामात देखना। मैं बहुत कुछ करूँगा, थोड़ा क्या कहूँ? (जो कुछ वर्णन करूँगा थोड़ा ही होगा)॥3॥

* सुनि सुत बचन भरोसा आवा। प्रीति समेत अंक बैठावा॥
करत बिचार भयउ भिनुसारा। लागे कपि पुनि चहूँ दुआरा॥4॥

भावार्थ:- पुत्र के वचन सुनकर रावण को भरोसा आ गया। उसने प्रेम के साथ उसे गोद में बैठा लिया। विचार करते-करते ही सबेरा हो गया। वानर फिर चारों दरवाजों पर जा लगे॥4॥

* कोपि कपिन्ह दुर्घट गढ़ु घेरा। नगर कोलाहलु भयउ घनेरा॥
बिबिधायुध धर निसिचर धाए। गढ़ ते पर्बत सिखर ढहाए॥5॥

भावार्थ:- वानरों ने क्रोध करके दुर्गम किले को घेर लिया। नगर में बहुत ही कोलाहल (शोर) मच गया। राक्षस बहुत तरह के अस्त्र-शस्त्र धारण करके दौड़े और उन्होंने किले पर पहाड़ों के शिखर ढहाए॥5॥

छंद :

* ढाहे महीधर सिखर कोटिन्ह बिबिध बिधि गोला चले।
घहरात जिमि पबिपात गर्जत जनु प्रलय के बादले॥
मर्कट बिकट भट जुटत कटत न लटत तन जर्जर भए।
गहि सैल तेहि गढ़ पर चलावहि जहँ सो तहँ निसिचर हए॥

भावार्थ:- उन्होंने पर्वतों के करोड़ों शिखर ढहाए, अनेक प्रकार से गोले चलने लगे। वे गोले ऐसा घहराते हैं जैसे वज्रपात हुआ हो (बिजली गिरी हो) और योद्धा ऐसे गरजते हैं, मानो प्रलयकाल के बादल हों। विकट वानर योद्धा भिड़ते हैं, कट जाते हैं (घायल हो जाते हैं), उनके शरीर जर्जर (चलनी) हो जाते हैं, तब भी वे लटते नहीं (हिम्मत नहीं हारते)। वे पहाड़ उठाकर उसे किले पर फेंकते हैं। राक्षस जहाँ के तहाँ (जो जहाँ होते हैं, वहीं) मारे जाते हैं।

दोहा :

* मेघनाद सुनि श्रवन अस गढ़ु पुनि छेंका आइ।
उतर्‌यो बीर दुर्ग तें सन्मुख चल्यो बजाइ॥49॥

भावार्थ:- मेघनाद ने कानों से ऐसा सुना कि वानरों ने आकर फिर किले को घेर लिया है। तब वह वीर किले से उतरा और डंका बजाकर उनके सामने चला॥49॥

चौपाई :

* कहँ कोसलाधीस द्वौ भ्राता। धन्वी सकल लोत बिख्याता॥
कहँ नल नील दुबिद सुग्रीवा। अंगद हनूमंत बल सींवा॥1॥

भावार्थ:-(मेघनाद ने पुकारकर कहा-) समस्त लोकों में प्रसिद्ध धनुर्धर कोसलाधीश दोनों भाई कहाँ हैं? नल, नील, द्विविद, सुग्रीव और बल की सीमा अंगद और हनुमान् कहाँ हैं?॥1॥

* कहाँ बिभीषनु भ्राताद्रोही। आजु सबहि हठि मारउँ ओही॥
अस कहि कठिन बान संधाने। अतिसय क्रोध श्रवन लगि ताने॥2॥

भावार्थ:-भाई से द्रोह करने वाला विभीषण कहाँ है? आज मैं सबको और उस दुष्ट को तो हठपूर्वक (अवश्य ही) मारूँगा। ऐसा कहकर उसने धनुष पर कठिन बाणों का सन्धान किया और अत्यंत क्रोध करके उसे कान तक खींचा॥2॥

* सर समूह सो छाड़ै लागा। जनु सपच्छ धावहिं बहु नागा॥
जहँ तहँ परत देखिअहिं बानर। सन्मुख होइ न सके तेहि अवसर॥3॥

भावार्थ:- वह बाणों के समूह छोड़ने लगा। मानो बहुत से पंखवाले साँप दौड़े जा रहे हों। जहाँ-तहाँ वानर गिरते दिखाई पड़ने लगे। उस समय कोई भी उसके सामने न हो सके॥3॥

* जहँ तहँ भागि चले कपि रीछा। बिसरी सबहि जुद्ध कै ईछा॥
सो कपि भालु न रन महँ देखा। कीन्हेसि जेहि न प्रान अवसेषा॥4॥

भावार्थ:- रीछ-वानर जहाँ-तहाँ भाग चले। सबको युद्ध की इच्छा भूल गई। रणभूमि में ऐसा एक भी वानर या भालू नहीं दिखाई पड़ा, जिसको

उसने प्राणमात्र अवशेष न कर दिया हो (अर्थात् जिसके केवल प्राणमात्र ही न बचे हों, बल, पुरुषार्थ सारा जाता न रहा हो)॥4॥

दोहा :

* दस दस सर सब मारेसि परे भूमि कपि बीर।

सिंहनाद करि गर्जा मेघनाद बल धीर॥50॥

भावार्थ:- फिर उसने सबको दस-दस बाण मारे, वानर वीर पृथ्वी पर गिर पड़े। बलवान् और धीर मेघनाद सिंह के समान नाद करके गरजने लगा॥50॥

चौपाई :

* देखि पवनसुत कटक बिहाला। क्रोधवंत जनु धायउ काला॥

महासैल एक तुरत उपारा। अति रिस मेघनाद पर डारा॥1॥

भावार्थ:- सारी सेना को बेहाल (व्याकुल) देखकर पवनसुत हनुमान् क्रोध करके ऐसे दौड़े मानो स्वयं काल दौड़ आता हो। उन्होंने तुरंत एक बड़ा भारी पहाड़ उखाड़ लिया और बड़े ही क्रोध के साथ उसे मेघनाद पर छोड़ा॥1॥

* आवत देखि गयउ नभ सोई। रथ सारथी तुरग सब खोई॥

बार बार पचार हनुमाना। निकट न आव मरमु सो जाना॥2॥

भावार्थ:- पहाड़ों को आते देखकर वह आकाश में उड़ गया। (उसके) रथ, सारथी और घोड़े सब नष्ट हो गए (चूर-चूर हो गए) हनुमान्जी उसे बार-बार ललकारते हैं। पर वह निकट नहीं आता, क्योंकि वह उनके बल का मर्म जानता था॥2॥

* रघुपति निकट गयउ घननादा। नाना भाँति करेसि दुर्बादा॥

अस्त्र सस्त्र आयुध सब डारे। कौतुकहीं प्रभु काटि निवारे॥3॥

भावार्थ:- (तब) मेघनाद श्री रघुनाथजी के पास गया और उसने (उनके प्रति) अनेकों प्रकार के दुर्वचनों का प्रयोग किया। (फिर) उसने उन पर अस्त्र-शस्त्र तथा और सब हथियार चलाए। प्रभु ने खेल में ही सबको काटकर अलग कर दिया॥3॥

* देखि प्रताप मूढ़ खिसिआना। करै लाग माया बिधि नाना॥

जिमि कोउ करै गरुड़ सैं खेला। डरपावै गहि स्वल्प सपेला॥4॥

भावार्थ:- श्री रामजी का प्रताप (सामर्थ्य) देखकर वह मूर्ख लज्जित हो गया और अनेकों प्रकार की माया करने लगा। जैसे कोई व्यक्ति छोटा सा साँप का बच्चा हाथ में लेकर गरुड़ को डरावे और उससे खेल करे॥4॥

दोहा :

* जासु प्रबल माया बस सिव बिरंचि बड़ छोट।

ताहि दिखावइ निसिचर निज माया मति खोट॥51॥

भावार्थ:- शिवजी और ब्रह्माजी तक बड़े-छोटे (सभी) जिनकी अत्यंत बलवान् माया के वश में हैं, नीच बुद्धि निशाचर उनको अपनी माया दिखलाता है॥51॥

चौपाई : :

* नभ चढ़ि बरष बिपुल अंगारा। महि ते प्रगट होहिं जलधारा॥

नाना भाँति पिसाच पिसाची। मारु काटु धुनि बोलहिं नाची॥1॥

भावार्थ:- आकाश में (ऊँचे) चढ़कर वह बहुत से अंगारे बरसाने लगा। पृथ्वी से जल की धाराएँ प्रकट होने लगीं। अनेक प्रकार के पिशाच तथा पिशाचिनियाँ नाच-नाचकर 'मारो, काटो' की आवाज करने लगीं॥1॥

* बिष्टा पूय रुधिर कच हाड़ा। बरषइ कबहुँ उपल बहु छाड़ा॥

बरषि धूरि कीन्हेसि अँधिआरा। सूझ न आपन हाथ पसारा॥2॥

भावार्थ:- वह कभी तो विष्टा, पीब, खून, बाल और हड्डियाँ बरसाता था और कभी बहुत से पत्थर फेंक देता था। फिर उसने धूल बरसाकर ऐसा अँधेरा कर दिया कि अपना ही पसारा हुआ हाथ नहीं सूझता था॥2॥

* कपि अकुलाने माया देखें। सब कर मरन बना ऐहि लेखें॥

कौतुक देखि राम मुसुकाने। भए सभीत सकल कपि जाने॥3॥

भावार्थ:- माया देखकर वानर अकुला उठे। वे सोचने लगे कि इस हिसाब से (इसी तरह रहा) तो सबका मरण आ बना। यह कौतुक देखकर श्री रामजी मुस्कुराए। उन्होंने जान लिया कि सब वानर भयभीत हो गए हैं॥3॥

* एक बान काटी सब माया। जिमि दिनकर हर तिमिर निकाया॥

कृपादृष्टि कपि भालु बिलोके। भए प्रबल रन रहहिं न रोके॥4॥

भावार्थ:- तब श्री रामजी ने एक ही बाण से सारी माया काट डाली, जैसे सूर्य अंधकार के समूह को हर लेता है। तदनन्तर उन्होंने कृपाभरी दृष्टि से वानर-भालुओं की ओर देखा, (जिससे) वे ऐसे प्रबल हो गए कि रण में रोकने पर भी नहीं रुकते थे॥4॥

दोहा :

* आयसु मागि राम पहिं अंगदादि कपि साथ।

लछिमन चले क्रुद्ध होइ बान सरासन हाथ॥52॥

भावार्थ:- श्री रामजी से आज्ञा माँगकर, अंगद आदि वानरों के साथ हाथों में धनुष-बाण लिए हुए श्री लक्ष्मणजी क्रुद्ध होकर चले॥।52॥

चौपाई :

* छतज नयन उर बाहु बिसाला। हिमगिरि निभ तनु कछु एक लाला॥

इहाँ दसानन सुभट पठाए। नाना अस्त्र सस्त्र गहि धाए॥1॥

भावार्थ:- उनके लाल नेत्र हैं, चौड़ी छाती और विशाल भुजाएँ हैं। हिमाचल पर्वत के समान उज्ज्वल (गौरवर्ण) शरीर कुछ ललाई लिए हुए है। इधर रावण ने भी बड़े-बड़े योद्धा भेजे, जो अनेकों अस्त्र-शस्त्र लेकर दौड़े॥1॥

* भूधर नख बिटपायुध धारी। धाए कपि जय राम पुकारी॥
भिरे सकल जोरिहि सन जोरी। इत उत जय इच्छा नहिं थोरी॥2॥

भावार्थ:- पर्वत, नख और वृक्ष रूपी हथियार धारण किए हुए वानर 'श्री रामचंद्रजी की जय' पुकारकर दौड़े। वानर और राक्षस सब जोड़ी से जोड़ी भिड़ गए। इधर और उधर दोनों ओर जय की इच्छा कम न थी (अर्थात् प्रबल थी)॥2॥

* मुठिकन्ह लातन्ह दातन्ह काटहिं। कपि जयसील मारि पुनि डाटहिं॥
मारु मारु धरु धरु धरु मारू। सीस तोरि गहि भुजा उपारू॥3॥

भावार्थ:- वानर उनको घूँसों और लातों से मारते हैं, दाँतों से काटते हैं। विजयशील वानर उन्हें मारकर फिर डाँटते भी हैं। 'मारो, मारो, पकड़ो, पकड़ो, पकड़कर मार दो, सिर तोड़ दो और भुजाएँ पकड़कर उखाड़ लो'॥3॥

* असि रव पूरि रही नव खंडा। धावहिं जहँ तहँ रुंड प्रचंडा॥
देखहिं कौतुक नभ सुर बृंदा। कबहुँक बिसमय कबहुँ अनंदा॥4॥

भावार्थ:-नवों खंडों में ऐसी आवाज भर रही है। प्रचण्ड रुण्ड (धड़) जहाँ-तहाँ दौड़ रहे हैं। आकाश में देवतागण यह कौतुक देख रहे हैं। उन्हें कभी खेद होता है और कभी आनंद॥4॥

दोहा :

* रुधिर गाड़ भरि भरि जम्यो ऊपर धूरि उड़ाइ।

जनु अँगार रासिन्ह पर मृतक धूम रह्यो छाइ॥53॥

भावार्थ:- खून गड्ढों में भर-भरकर जम गया है और उस पर धूल उड़कर पड़ रही है (वह दृश्य ऐसा है) मानो अंगारों के ढेरों पर राख छा रही हो॥53॥

चौपाई :

* घायल बीर बिराजहिं कैसे। कुसुमति किंसुक के तरु जैसे॥
लछिमन मेघनाद द्वौ जोधा। भिरहिं परसपर करि अति क्रोधा॥1॥

भावार्थ:- घायल वीर कैसे शोभित हैं, जैसे फूले हुए पलास के पेड़। लक्ष्मण और मेघनाद दोनों योद्धा अत्यंत क्रोध करके एक-दूसरे से भिड़ते हैं॥1॥

* एकहि एक सकइ नहिं जीती। निसिचर छल बल करइ अनीती॥
क्रोधवंत तब भयउ अनंता। भंजेउ रथ सारथी तुरंता॥2॥

भावार्थ:- एक-दूसरे को (कोई किसी को) जीत नहीं सकता। राक्षस छल-बल (माया) और अनीति (अधर्म) करता है, तब भगवान् अनन्तजी (लक्ष्मणजी) क्रोधित हुए और उन्होंने तुरंत उसके रथ को तोड़ डाला और सारथी को टुकड़े-टुकड़े कर दिया!॥2॥

* नाना बिधि प्रहार कर सेषा। राच्छस भयउ प्रान अवसेषा॥
रावन सुत निज मन अनुमाना। संकठ भयउ हरिहि मम प्राना॥3॥

भावार्थ:- शेषजी (लक्ष्मणजी) उस पर अनेक प्रकार से प्रहार करने लगे। राक्षस के प्राणमात्र शेष रह गए। रावणपुत्र मेघनाद ने मन में अनुमान किया कि अब तो प्राण संकट आ बना, ये मेरे प्राण हर लेंगे॥3॥

* बीरघातिनी छाड़िसि साँगी। तेजपुंज लछिमन उर लागी॥
मुरुछा भई सक्ति के लागें। तब चलि गयउ निकट भय त्यागें॥4॥

भावार्थ:-तब उसने वीरघातिनी शक्ति चलाई। वह तेजपूर्ण शक्ति लक्ष्मणजी की छाती में लगी। शक्ति लगने से उन्हें मूर्छा आ गई। तब मेघनाद भय छोड़कर उनके पास चला गया॥4॥

दोहा :

* मेघनाद सम कोटि सत जोधा रहे उठाइ।
जगदाधार सेष किमि उठै चले खिसिआइ॥54॥

भावार्थ:- मेघनाद के समान सौ करोड़ (अगणित) योद्धा उन्हें उठा रहे हैं, परन्तु जगत् के आधार श्री शेषजी (लक्ष्मणजी) उनसे कैसे उठते? तब वे लजाकर चले गए॥54॥

चौपाई :

* सुनु गिरिजा क्रोधानल जासू। जारइ भुवन चारिदस आसू॥
सक संग्राम जीति को ताही। सेवहिं सुर नर अग जग जाही॥1॥

भावार्थ:- (शिवजी कहते हैं-) हे गिरिजे! सुनो, (प्रलयकाल में) जिन (शेषनाग) के क्रोध की अग्नि चौदहों भुवनों को तुरंत ही जला डालती है और देवता, मनुष्य तथा समस्त चराचर (जीव) जिनकी सेवा करते हैं, उनको संग्राम में कौन जीत सकता है?॥1॥

* यह कौतूहल जानइ सोई। जा पर कृपा राम कै होई॥
संध्या भय फिरि द्वौ बाहनी। लगे सँभारन निज निज अनी॥2॥

भावार्थ:-इस लीला को वही जान सकता है, जिस पर श्री रामजी की कृपा हो। संध्या होने पर दोनों ओर की सेनाएँ लौट पड़ीं, सेनापति अपनी-अपनी सेनाएँ संभालने लगे॥2॥

* व्यापक ब्रह्म अजित भुवनेस्वर। लछिमन कहाँ बूझ करुनाकर॥
तब लगि लै आयउ हनुमाना। अनुज देखि प्रभु अति दुख माना॥3॥

भावार्थ:- व्यापक, ब्रह्म, अजेय, संपूर्ण ब्रह्मांड के ईश्वर और करुणा की खान श्री रामचंद्रजी ने पूछा- लक्ष्मण कहाँ है? तब तक हनुमान् उन्हें ले आए। छोटे भाई को (इस दशा में) देखकर प्रभु ने बहुत ही दुःख माना॥3॥

लक्ष्मण-मेघनाद युद्ध, लक्ष्मणजी को शक्ति लगना

*कालरूप खल बन दहन गुनागार घनबोध।
सिव बिरंचि जेहि सेवहिं तासों कवन बिरोध॥48 ख॥

भावार्थ:- जो कालस्वरूप हैं, दुष्टों के समूह रूपी वन के भस्म करने वाले (अग्नि) हैं, गुणों के धाम और ज्ञानघन हैं एवं शिवजी और ब्रह्माजी भी जिनकी सेवा करते हैं, उनसे वैर कैसा?॥48 (ख)॥

चौपाई :

* परिहरि बयरु देहु बैदेही। भजहु कृपानिधि परम सनेही॥
ताके बचन बान सम लागे। करिआ मुँह करि जाहि अभागे॥1॥

भावार्थ:- (अतः) वैर छोड़कर उन्हें जानकीजी को दे दो और कृपानिधान परम स्नेही श्री रामजी का भजन करो। रावण को उसके वचन बाण के समान लगे। (वह बोला-) अरे अभागे! मुँह काला करके (यहाँ से) निकल जा॥1॥

* बूढ़ भएसि न त मरतेउँ तोही। अब जनि नयन देखावसि मोही॥
तेहिं अपने मन अस अनुमाना। बध्यो चहत एहि कृपानिधाना॥2॥

भावार्थ:-तू बूढ़ा हो गया, नहीं तो तुझे मार ही डालता। अब मेरी आँखों को अपना मुँह न दिखला। रावण के ये वचन सुनकर उसने (माल्यवान् ने) अपने मन में ऐसा अनुमान किया कि इसे कृपानिधान श्री रामजी अब मारना ही चाहते हैं॥2॥

* सो उठि गयउ कहत दुर्बादा। तब सकोप बोलेउ घननादा॥

कौतुक प्रात देखिअहु मोरा। करिहउँ बहुत कहौं का थोरा॥3॥

भावार्थ:- वह रावण को दुर्वचन कहता हुआ उठकर चला गया। तब मेघनाद क्रोधपूर्वक बोला- सबेरे मेरी करामात देखना। मैं बहुत कुछ करूँगा, थोड़ा क्या कहूँ? (जो कुछ वर्णन करूँगा थोड़ा ही होगा)॥3॥

* सुनि सुत बचन भरोसा आवा। प्रीति समेत अंक बैठावा॥

करत बिचार भयउ भिनुसारा। लागे कपि पुनि चहूँ दुआरा॥4॥

भावार्थ:- पुत्र के वचन सुनकर रावण को भरोसा आ गया। उसने प्रेम के साथ उसे गोद में बैठा लिया। विचार करते-करते ही सबेरा हो गया। वानर फिर चारों दरवाजों पर जा लगे॥4॥

* कोपि कपिन्ह दुर्घट गढ़ु घेरा। नगर कोलाहलु भयउ घनेरा॥

बिबिधायुध धर निसिचर धाए। गढ़ ते पर्बत सिखर ढहाए॥5॥

भावार्थ:- वानरों ने क्रोध करके दुर्गम किले को घेर लिया। नगर में बहुत ही कोलाहल (शोर) मच गया। राक्षस बहुत तरह के अस्त्र-शस्त्र धारण करके दौड़े और उन्होंने किले पर पहाड़ों के शिखर ढहाए॥5॥

छंद :

* ढाहे महीधर सिखर कोटिन्ह बिबिध बिधि गोला चले।
घहरात जिमि पबिपात गर्जत जनु प्रलय के बादले॥
मर्कट बिकट भट जुटत कटत न लटत तन जर्जर भए।
गहि सैल तेहि गढ़ पर चलावहि जहँ सो तहँ निसिचर हए॥

भावार्थ:- उन्होंने पर्वतों के करोड़ों शिखर ढहाए, अनेक प्रकार से गोले चलने लगे। वे गोले ऐसा घहराते हैं जैसे वज्रपात हुआ हो (बिजली गिरी हो) और योद्धा ऐसे गरजते हैं, मानो प्रलयकाल के बादल हों। विकट वानर योद्धा भिड़ते हैं, कट जाते हैं (घायल हो जाते हैं), उनके शरीर जर्जर (चलनी) हो जाते हैं, तब भी वे लटते नहीं (हिम्मत नहीं हारते)। वे पहाड़ उठाकर उसे किले पर फेंकते हैं। राक्षस जहाँ के तहाँ (जो जहाँ होते हैं, वहीं) मारे जाते हैं।

दोहा :

* मेघनाद सुनि श्रवन अस गढ़ पुनि छेंका आइ।
उतर्‌यो बीर दुर्ग तें सन्मुख चल्यो बजाइ॥49॥

भावार्थ:- मेघनाद ने कानों से ऐसा सुना कि वानरों ने आकर फिर किले को घेर लिया है। तब वह वीर किले से उतरा और डंका बजाकर उनके सामने चला॥49॥

चौपाई :

* कहँ कोसलाधीस द्वौ भ्राता। धन्वी सकल लोत बिख्याता॥
कहँ नल नील दुबिद सुग्रीवा। अंगद हनूमंत बल सींवा॥1॥

भावार्थ:-(मेघनाद ने पुकारकर कहा-) समस्त लोकों में प्रसिद्ध धनुर्धर कोसलाधीश दोनों भाई कहाँ हैं? नल, नील, द्विविद, सुग्रीव और बल की सीमा अंगद और हनुमान्‌ कहाँ हैं?॥1॥

* कहाँ बिभीषनु भ्राताद्रोही। आजु सबहि हठि मारउँ ओही॥
अस कहि कठिन बान संधाने। अतिसय क्रोध श्रवन लगि ताने॥2॥

भावा

लक्ष्मण-मेघनाद युद्ध, लक्ष्मणजी को शक्ति लगना

*कालरूप खल बन दहन गुनागार घनबोध।
सिव बिरंचि जेहि सेवहिं तासों कवन बिरोध॥48 ख॥

भावार्थ:- जो कालस्वरूप हैं, दुष्टों के समूह रूपी वन के भस्म करने वाले (अग्नि) हैं, गुणों के धाम और ज्ञानघन हैं एवं शिवजी और ब्रह्माजी भी जिनकी सेवा करते हैं, उनसे वैर कैसा?॥48 (ख)॥

चौपाई :

* परिहरि बयरु देहु बैदेही। भजहु कृपानिधि परम सनेही॥
ताके बचन बान सम लागे। करिआ मुँह करि जाहि अभागे॥1॥

भावार्थ:- (अतः) वैर छोड़कर उन्हें जानकीजी को दे दो और कृपानिधान परम स्नेही श्री रामजी का भजन करो। रावण को उसके वचन बाण के समान लगे। (वह बोला-) अरे अभागे! मुँह काला करके (यहाँ से) निकल जा॥1॥

* बूढ़ भएसि न त मरतेउँ तोही। अब जनि नयन देखावसि मोही॥
तेहिं अपने मन अस अनुमाना। बध्यो चहत एहि कृपानिधाना॥2॥

भावार्थ:-तू बूढ़ा हो गया, नहीं तो तुझे मार ही डालता। अब मेरी आँखों को अपना मुँह न दिखला। रावण के ये वचन सुनकर उसने (माल्यवान् ने) अपने मन में ऐसा अनुमान किया कि इसे कृपानिधान श्री रामजी अब मारना ही चाहते हैं॥2॥

* सो उठि गयउ कहत दुर्बादा। तब सकोप बोलेउ घननादा॥
कौतुक प्रात देखिअहु मोरा। करिहउँ बहुत कहौं का थोरा॥3॥

भावार्थ:- वह रावण को दुर्वचन कहता हुआ उठकर चला गया। तब मेघनाद क्रोधपूर्वक बोला- सबेरे मेरी करामात देखना। मैं बहुत कुछ करूँगा, थोड़ा क्या कहूँ? (जो कुछ वर्णन करूँगा थोड़ा ही होगा)॥3॥

* सुनि सुत बचन भरोसा आवा। प्रीति समेत अंक बैठावा॥

करत बिचार भयउ भिनुसारा। लागे कपि पुनि चहूँ दुआरा॥4॥

भावार्थ:- पुत्र के वचन सुनकर रावण को भरोसा आ गया। उसने प्रेम के साथ उसे गोद में बैठा लिया। विचार करते-करते ही सबेरा हो गया। वानर फिर चारों दरवाजों पर जा लगे॥4॥

* कोपि कपिन्ह दुर्घट गढ़ु घेरा। नगर कोलाहलु भयउ घनेरा॥

बिबिधायुध धर निसिचर धाए। गढ़ ते पर्बत सिखर ढहाए॥5॥

भावार्थ:- वानरों ने क्रोध करके दुर्गम किले को घेर लिया। नगर में बहुत ही कोलाहल (शोर) मच गया। राक्षस बहुत तरह के अस्त्र-शस्त्र धारण करके दौड़े और उन्होंने किले पर पहाड़ों के शिखर ढहाए॥5॥

छंद :

* ढाहे महीधर सिखर कोटिन्ह बिबिध बिधि गोला चले।
घहरात जिमि पबिपात गर्जत जनु प्रलय के बादले॥
मर्कट बिकट भट जुटत कटत न लटत तन जर्जर भए।
गहि सैल तेहि गढ़ पर चलावहि जहँ सो तहँ निसिचर हए॥

भावार्थ:- उन्होंने पर्वतों के करोड़ों शिखर ढहाए, अनेक प्रकार से गोले चलने लगे। वे गोले ऐसा घहराते हैं जैसे वज्रपात हुआ हो (बिजली गिरी हो) और योद्धा ऐसे गरजते हैं, मानो प्रलयकाल के बादल हों। विकट वानर योद्धा भिड़ते हैं, कट जाते हैं (घायल हो जाते हैं), उनके शरीर जर्जर (चलनी) हो जाते हैं, तब भी वे लटते नहीं (हिम्मत नहीं हारते)। वे पहाड़ उठाकर उसे किले पर फेंकते हैं। राक्षस जहाँ के तहाँ (जो जहाँ होते हैं, वहीं) मारे जाते हैं।

दोहा :

* मेघनाद सुनि श्रवन अस गढ़ु पुनि छेंका आइ।

उतर्‌यो बीर दुर्ग तें सन्मुख चल्यो बजाइ॥49॥

भावार्थ:- मेघनाद ने कानों से ऐसा सुना कि वानरों ने आकर फिर किले को घेर लिया है। तब वह वीर किले से उतरा और डंका बजाकर उनके सामने चला॥49॥

चौपाई :

* कहँ कोसलाधीस द्वौ भ्राता। धन्वी सकल लोत बिख्याता॥
कहँ नल नील दुबिद सुग्रीवा। अंगद हनूमंत बल सींवा॥1॥

भावार्थ:-(मेघनाद ने पुकारकर कहा-) समस्त लोकों में प्रसिद्ध धनुर्धर कोसलाधीश दोनों भाई कहाँ हैं? नल, नील, द्विविद, सुग्रीव और बल की सीमा अंगद और हनुमान् कहाँ हैं?॥1॥

* कहाँ बिभीषनु भ्राताद्रोही। आजु सबहि हठि मारउँ ओही॥
अस कहि कठिन बान संधाने। अतिसय क्रोध श्रवन लगि ताने॥2॥

भावार्थ:-भाई से द्रोह करने वाला विभीषण कहाँ है? आज मैं सबको और उस दुष्ट को तो हठपूर्वक (अवश्य ही) मारूँगा। ऐसा कहकर उसने धनुष पर कठिन बाणों का सन्धान किया और अत्यंत क्रोध करके उसे कान तक खींचा॥2॥

* सर समूह सो छाड़ै लागा। जनु सपच्छ धावहिं बहु नागा॥
जहँ तहँ परत देखिअहिं बानर। सन्मुख होइ न सके तेहि अवसर॥3॥

भावार्थ:- वह बाणों के समूह छोड़ने लगा। मानो बहुत से पंखवाले साँप दौड़े जा रहे हों। जहाँ-तहाँ वानर गिरते दिखाई पड़ने लगे। उस समय कोई भी उसके सामने न हो सके॥3॥

* जहँ तहँ भागि चले कपि रीछा। बिसरी सबहि जुद्ध कै ईछा॥
सो कपि भालु न रन महँ देखा। कीन्हेसि जेहि न प्रान अवसेषा॥4॥

भावार्थ:- रीछ-वानर जहाँ-तहाँ भाग चले। सबको युद्ध की इच्छा भूल गई। रणभूमि में ऐसा एक भी वानर या भालू नहीं दिखाई पड़ा, जिसको

उसने प्राणमात्र अवशेष न कर दिया हो (अर्थात् जिसके केवल प्राणमात्र ही न बचे हों, बल, पुरुषार्थ सारा जाता न रहा हो)॥4॥

दोहा :

* दस दस सर सब मारेसि परे भूमि कपि बीर।

सिंहनाद करि गर्जा मेघनाद बल धीर॥50॥

भावार्थ:- फिर उसने सबको दस-दस बाण मारे, वानर वीर पृथ्वी पर गिर पड़े। बलवान् और धीर मेघनाद सिंह के समान नाद करके गरजने लगा॥50॥

चौपाई :

* देखि पवनसुत कटक बिहाला। क्रोधवंत जनु धायउ काला॥

महासैल एक तुरत उपारा। अति रिस मेघनाद पर डारा॥1॥

भावार्थ:- सारी सेना को बेहाल (व्याकुल) देखकर पवनसुत हनुमान् क्रोध करके ऐसे दौड़े मानो स्वयं काल दौड़ आता हो। उन्होंने तुरंत एक बड़ा भारी पहाड़ उखाड़ लिया और बड़े ही क्रोध के साथ उसे मेघनाद पर छोड़ा॥1॥

* आवत देखि गयउ नभ सोई। रथ सारथी तुरग सब खोई॥

बार बार पचार हनुमाना। निकट न आव मरमु सो जाना॥2॥

भावार्थ:- पहाड़ों को आते देखकर वह आकाश में उड़ गया। (उसके) रथ, सारथी और घोड़े सब नष्ट हो गए (चूर-चूर हो गए) हनुमान्‌जी उसे बार-बार ललकारते हैं। पर वह निकट नहीं आता, क्योंकि वह उनके बल का मर्म जानता था॥2॥

* रघुपति निकट गयउ घननादा। नाना भाँति करेसि दुर्बादा॥

अस्त्र सस्त्र आयुध सब डारे। कौतुकहीं प्रभु काटि निवारे॥3॥

भावार्थ:- (तब) मेघनाद श्री रघुनाथजी के पास गया और उसने (उनके प्रति) अनेकों प्रकार के दुर्वचनों का प्रयोग किया। (फिर) उसने उन पर अस्त्र-शस्त्र तथा और सब हथियार चलाए। प्रभु ने खेल में ही सबको काटकर अलग कर दिया॥3॥

* देखि प्रताप मूढ़ खिसिआना। करै लाग माया बिधि नाना॥
जिमि कोउ करै गरुड़ सैं खेला। डरपावै गहि स्वल्प सपेला॥4॥

भावार्थ:- श्री रामजी का प्रताप (सामर्थ्य) देखकर वह मूर्ख लज्जित हो गया और अनेकों प्रकार की माया करने लगा। जैसे कोई व्यक्ति छोटा सा साँप का बच्चा हाथ में लेकर गरुड़ को डरावे और उससे खेल करे॥4॥

दोहा :

* जासु प्रबल माया बस सिव बिरंचि बड़ छोट।
ताहि दिखावइ निसिचर निज माया मति खोट॥51॥

भावार्थ:- शिवजी और ब्रह्माजी तक बड़े-छोटे (सभी) जिनकी अत्यंत बलवान् माया के वश में हैं, नीच बुद्धि निशाचर उनको अपनी माया दिखलाता है॥51॥

चौपाई : :

* नभ चढ़ि बरष बिपुल अंगारा। महि ते प्रगट होहिं जलधारा॥
नाना भाँति पिसाच पिसाची। मारु काटु धुनि बोलहिं नाची॥1॥

भावार्थ:- आकाश में (ऊँचे) चढ़कर वह बहुत से अंगारे बरसाने लगा। पृथ्वी से जल की धाराएँ प्रकट होने लगीं। अनेक प्रकार के पिशाच तथा पिशाचिनियाँ नाच-नाचकर 'मारो, काटो' की आवाज करने लगीं॥1॥

* बिष्टा पूय रुधिर कच हाड़ा। बरषइ कबहुँ उपल बहु छाड़ा॥
बरषि धूरि कीन्हेसि अँधिआरा। सूझ न आपन हाथ पसारा॥2॥

भावार्थ:- वह कभी तो विष्टा, पीब, खून, बाल और हड्डियाँ बरसाता था और कभी बहुत से पत्थर फेंक देता था। फिर उसने धूल बरसाकर ऐसा अँधेरा कर दिया कि अपना ही पसारा हुआ हाथ नहीं सूझता था॥2॥

* कपि अकुलाने माया देखें। सब कर मरन बना ऐहि लेखें॥

कौतुक देखि राम मुसुकाने। भए सभीत सकल कपि जाने॥3॥

भावार्थ:- माया देखकर वानर अकुला उठे। वे सोचने लगे कि इस हिसाब से (इसी तरह रहा) तो सबका मरण आ बना। यह कौतुक देखकर श्री रामजी मुस्कुराए। उन्होंने जान लिया कि सब वानर भयभीत हो गए हैं॥3॥

* एक बान काटी सब माया। जिमि दिनकर हर तिमिर निकाया॥

कृपादृष्टि कपि भालु बिलोके। भए प्रबल रन रहहिं न रोके॥4॥

भावार्थ:- तब श्री रामजी ने एक ही बाण से सारी माया काट डाली, जैसे सूर्य अंधकार के समूह को हर लेता है। तदनन्तर उन्होंने कृपाभरी दृष्टि से वानर-भालुओं की ओर देखा, (जिससे) वे ऐसे प्रबल हो गए कि रण में रोकने पर भी नहीं रुकते थे॥4॥

दोहा :

* आयसु मागि राम पहिं अंगदादि कपि साथ।

लछिमन चले क्रुद्ध होइ बान सरासन हाथ॥52॥

भावार्थ:- श्री रामजी से आज्ञा माँगकर, अंगद आदि वानरों के साथ हाथों में धनुष-बाण लिए हुए श्री लक्ष्मणजी क्रुद्ध होकर चले॥।52॥

चौपाई :

* छतज नयन उर बाहु बिसाला। हिमगिरि निभ तनु कछु एक लाला॥

इहाँ दसानन सुभट पठाए। नाना अस्त्र सस्त्र गहि धाए॥1॥

भावार्थ:- उनके लाल नेत्र हैं, चौड़ी छाती और विशाल भुजाएँ हैं। हिमाचल पर्वत के समान उज्ज्वल (गौरवर्ण) शरीर कुछ ललाई लिए हुए है। इधर रावण ने भी बड़े-बड़े योद्धा भेजे, जो अनेकों अस्त्र-शस्त्र लेकर दौड़े॥1॥

* भूधर नख बिटपायुध धारी। धाए कपि जय राम पुकारी॥
भिरे सकल जोरिहि सन जोरी। इत उत जय इच्छा नहिं थोरी॥2॥

भावार्थ:- पर्वत, नख और वृक्ष रूपी हथियार धारण किए हुए वानर 'श्री रामचंद्रजी की जय' पुकारकर दौड़े। वानर और राक्षस सब जोड़ी से जोड़ी भिड़ गए। इधर और उधर दोनों ओर जय की इच्छा कम न थी (अर्थात् प्रबल थी)॥2॥

* मुठिकन्ह लातन्ह दातन्ह काटहिं। कपि जयसील मारि पुनि डाटहिं॥
मारु मारु धरु धरु धरु मारू। सीस तोरि गहि भुजा उपारू॥3॥

भावार्थ:- वानर उनको घूँसों और लातों से मारते हैं, दाँतों से काटते हैं। विजयशील वानर उन्हें मारकर फिर डाँटते भी हैं। 'मारो, मारो, पकड़ो, पकड़ो, पकड़कर मार दो, सिर तोड़ दो और भुजाएँ पकड़कर उखाड़ लो'॥3॥

* असि रव पूरि रही नव खंडा। धावहिं जहँ तहँ रुंड प्रचंडा॥
देखहिं कौतुक नभ सुर बृंदा। कबहुँक बिसमय कबहुँ अनंदा॥4॥

भावार्थ:-नवों खंडों में ऐसी आवाज भर रही है। प्रचण्ड रुण्ड (धड़) जहाँ-तहाँ दौड़ रहे हैं। आकाश में देवतागण यह कौतुक देख रहे हैं। उन्हें कभी खेद होता है और कभी आनंद॥4॥

दोहा :

* रुधिर गाड़ भरि भरि जम्यो ऊपर धूरि उड़ाइ।

जनु अँगार रासिन्ह पर मृतक धूम रह्यो छाइ॥53॥

भावार्थ:- खून गड्ढों में भर-भरकर जम गया है और उस पर धूल उड़कर पड़ रही है (वह दृश्य ऐसा है) मानो अंगारों के ढेरों पर राख छा रही हो॥53॥

चौपाई :

* घायल बीर बिराजहिं कैसे। कुसुमति किंसुक के तरु जैसे॥
लछिमन मेघनाद द्वौ जोधा। भिरहिं परसपर करि अति क्रोधा॥1॥

भावार्थ:- घायल वीर कैसे शोभित हैं, जैसे फूले हुए पलास के पेड़। लक्ष्मण और मेघनाद दोनों योद्धा अत्यंत क्रोध करके एक-दूसरे से भिड़ते हैं॥1॥

* एकहि एक सकइ नहिं जीती। निसिचर छल बल करइ अनीती॥
क्रोधवंत तब भयउ अनंता। भंजेउ रथ सारथी तुरंता॥2॥

भावार्थ:- एक-दूसरे को (कोई किसी को) जीत नहीं सकता। राक्षस छल-बल (माया) और अनीति (अधर्म) करता है, तब भगवान्‌ अनन्तजी (लक्ष्मणजी) क्रोधित हुए और उन्होंने तुरंत उसके रथ को तोड़ डाला और सारथी को टुकड़े-टुकड़े कर दिया!॥2॥

* नाना बिधि प्रहार कर सेषा। राच्छस भयउ प्रान अवसेषा॥
रावन सुत निज मन अनुमाना। संकठ भयउ हरिहि मम प्राना॥3॥

भावार्थ:- शेषजी (लक्ष्मणजी) उस पर अनेक प्रकार से प्रहार करने लगे। राक्षस के प्राणमात्र शेष रह गए। रावणपुत्र मेघनाद ने मन में अनुमान किया कि अब तो प्राण संकट आ बना, ये मेरे प्राण हर लेंगे॥3॥

* बीरघातिनी छाड़िसि साँगी। तेजपुंज लछिमन उर लागी॥
मुरुछा भई सक्ति के लागें। तब चलि गयउ निकट भय त्यागें॥4॥

भावार्थ:-तब उसने वीरघातिनी शक्ति चलाई। वह तेजपूर्ण शक्ति लक्ष्मणजी की छाती में लगी। शक्ति लगने से उन्हें मूर्छा आ गई। तब मेघनाद भय छोड़कर उनके पास चला गया॥4॥

दोहा :

* मेघनाद सम कोटि सत जोधा रहे उठाइ।
जगदाधार सेष किमि उठै चले खिसिआइ॥54॥

भावार्थ:- मेघनाद के समान सौ करोड़ (अगणित) योद्धा उन्हें उठा रहे हैं, परन्तु जगत् के आधार श्री शेषजी (लक्ष्मणजी) उनसे कैसे उठते? तब वे लजाकर चले गए॥54॥

चौपाई :

* सुनु गिरिजा क्रोधानल जासू। जारइ भुवन चारिदस आसू॥
सक संग्राम जीति को ताही। सेवहिं सुर नर अग जग जाही॥1॥

भावार्थ:- (शिवजी कहते हैं-) हे गिरिजे! सुनो, (प्रलयकाल में) जिन (शेषनाग) के क्रोध की अग्नि चौदहों भुवनों को तुरंत ही जला डालती है और देवता, मनुष्य तथा समस्त चराचर (जीव) जिनकी सेवा करते हैं, उनको संग्राम में कौन जीत सकता है?॥1॥

* यह कौतूहल जानइ सोई। जा पर कृपा राम कै होई॥
संध्या भय फिरि द्वौ बाहनी। लगे सँभारन निज निज अनी॥2॥

भावार्थ:-इस लीला को वही जान सकता है, जिस पर श्री रामजी की कृपा हो। संध्या होने पर दोनों ओर की सेनाएँ लौट पड़ीं, सेनापति अपनी-अपनी सेनाएँ संभालने लगे॥2॥

* व्यापक ब्रह्म अजित भुवनेस्वर। लछिमन कहाँ बूझ करुनाकर॥
तब लगि लै आयउ हनुमाना। अनुज देखि प्रभु अति दुख माना॥3॥

भावार्थ:- व्यापक, ब्रह्म, अजेय, संपूर्ण ब्रह्मांड के ईश्वर और करुणा की खान श्री रामचंद्रजी ने पूछा- लक्ष्मण कहाँ है? तब तक हनुमान् उन्हें ले आए। छोटे भाई को (इस दशा में) देखकर प्रभु ने बहुत ही दुःख माना॥3॥

हनुमानजी का सुषेण वैद्य को लाना एवं संजीवनी के लिए जाना, कालनेमि-रावण संवाद, मकरी उद्धार, कालनेमि उद्धार

* जामवंत कह बैद सुषेना। लंकाँ रहइ को पठई लेना॥
धरि लघु रूप गयउ हनुमंता। आनेउ भवन समेत तुरंता॥4॥

भावार्थ:- जाम्बवान् ने कहा- लंका में सुषेण वैद्य रहता है, उसे लाने के लिए किसको भेजा जाए? हनुमान्‌जी छोटा रूप धरकर गए और सुषेण को उसके घर समेत तुरंत ही उठा लाए॥4॥

दोहा :

* राम पदारबिंद सिर नायउ आइ सुषेन।
कहा नाम गिरि औषधी जाहु पवनसुत लेन ॥55॥

भावार्थ:- सुषेण ने आकर श्री रामजी के चरणारविन्दों में सिर नवाया। उसने पर्वत और औषध का नाम बताया, (और कहा कि) हे पवनपुत्र! औषधि लेने जाओ॥55॥

चौपाई :

* राम चरन सरसिज उर राखी। चला प्रभंजनसुत बल भाषी॥
उहाँ दूत एक मरमु जनावा। रावनु कालनेमि गृह आवा॥1॥

भावार्थ:-श्री रामजी के चरणकमलों को हृदय में रखकर पवनपुत्र हनुमान्‌जी अपना बल बखानकर (अर्थात्‌ मैं अभी लिए आता हूँ, ऐसा कहकर) चले। उधर एक गुप्तचर ने रावण को इस रहस्य की खबर दी। तब रावण कालनेमि के घर आया॥1॥

* दसमुख कहा मरमु तेहिं सुना। पुनि पुनि कालनेमि सिरु धुना॥
देखत तुम्हहि नगरु जेहिं जारा। तासु पंथ को रोकन पारा॥2॥

भावार्थ:-रावण ने उसको सारा मर्म (हाल) बतलाया। कालनेमि ने सुना और बार-बार सिर पीटा (खेद प्रकट किया)। (उसने कहा-) तुम्हारे देखते-देखते जिसने नगर जला डाला, उसका मार्ग कौन रोक सकता है?॥2॥

* भजि रघुपति करु हित आपना। छाँड़हु नाथ मृषा जल्पना॥
नील कंज तनु सुंदर स्यामा। हृदयँ राखु लोचनाभिरामा॥3॥

भावार्थ:- श्री रघुनाथजी का भजन करके तुम अपना कल्याण करो! हे नाथ! झूठी बकवाद छोड़ दो। नेत्रों को आनंद देने वाले नीलकमल के समान सुंदर श्याम शरीर को अपने हृदय में रखो॥3॥

* मैं तैं मोर मूढ़ता त्यागू। महा मोह निसि सूतत जागू॥
काल ब्याल कर भच्छक जोई। सपनेहुँ समर कि जीतिअ सोई॥4॥

भावार्थ:- मैं-तू (भेद-भाव) और ममता रूपी मूढ़ता को त्याग दो। महामोह (अज्ञान) रूपी रात्रि में सो रहे हो, सो जाग उठो, जो काल रूपी सर्प का भी भक्षक है, कहीं स्वप्न में भी वह रण में जीता जा सकता है?॥4॥

दोहा :

* सुनि दसकंठ रिसान अति तेहिं मन कीन्ह बिचार।
राम दूत कर मरौं बरु यह खल रत मल भार॥56॥

भावार्थ:- उसकी ये बातें सुनकर रावण बहुत ही क्रोधित हुआ। तब कालनेमि ने मन में विचार किया कि (इसके हाथ से मरने की अपेक्षा) श्री रामजी के दूत के हाथ से ही मरूँ तो अच्छा है। यह दुष्ट तो पाप समूह में रत है॥56॥

चौपाई :

* अस कहि चला रचिसि मग माया। सर मंदिर बर बाग बनाया॥
मारुतसुत देखा सुभ आश्रम। मुनिहि बूझि जल पियौं जाइ श्रम॥1॥

भावार्थ:- वह मन ही मन ऐसा कहकर चला और उसने मार्ग में माया रची। तालाब, मंदिर और सुंदर बाग बनाया। हनुमान्‌जी ने सुंदर आश्रम देखकर सोचा कि मुनि से पूछकर जल पी लूँ, जिससे थकावट दूर हो जाए॥1॥

* राच्छस कपट बेष तहँ सोहा। मायापति दूतहि चह मोहा॥
जाइ पवनसुत नायउ माथा। लाग सो कहै राम गुन गाथा॥2॥

भावार्थ:-राक्षस वहाँ कपट (से मुनि) का वेष बनाए विराजमान था। वह मूर्ख अपनी माया से मायापति के दूत को मोहित करना चाहता था। मारुति ने उसके पास जाकर मस्तक नवाया। वह श्री रामजी के गुणों की कथा कहने लगा॥2॥

* होत महा रन रावन रामहिं। जितिहहिं राम न संसय या महिं॥
इहाँ भएँ मैं देखउँ भाई। ग्यान दृष्टि बल मोहि अधिकाई॥3॥

भावार्थ:-(वह बोला-) रावण और राम में महान्‌ युद्ध हो रहा है। रामजी जीतेंगे, इसमें संदेह नहीं है। हे भाई! मैं यहाँ रहता हुआ ही सब देख रहा हूँ। मुझे ज्ञानदृष्टि का बहुत बड़ा बल है॥3॥

* मागा जल तेहिं दीन्ह कमंडल। कह कपि नहिं अघाउँ थोरें जल॥
सर मज्जन करि आतुर आवहु। दिच्छा देउँ ग्यान जेहिं पावहु॥4॥

भावार्थ:- हनुमान्‌जी ने उससे जल माँगा, तो उसने कमण्डलु दे दिया। हनुमान्‌जी ने कहा- थोड़े जल से मैं तृप्त नहीं होने का। तब वह बोला- तालाब में स्नान करके तुरंत लौट आओ तो मैं तुम्हे दीक्षा दूँ, जिससे तुम ज्ञान प्राप्त करो॥4॥

दोहा :

* सर पैठत कपि पद गहा मकरीं तब अकुलान।
मारी सो धरि दिब्य तनु चली गगन चढ़ि जान॥57॥

भावार्थ:- तालाब में प्रवेश करते ही एक मगरी ने अकुलाकर उसी समय हनुमान्‌जी का पैर पकड़ लिया। हनुमान्‌जी ने उसे मार डाला। तब वह दिव्य देह धारण करके विमान पर चढ़कर आकाश को चली॥57॥

चौपाई :

* कपि तव दरस भइउँ निष्पापा। मिटा तात मुनिबर कर सापा॥
मुनि न होइ यह निसिचर घोरा। मानहु सत्य बचन कपि मोरा॥1॥

भावार्थ:- (उसने कहा-) हे वानर! मैं तुम्हारे दर्शन से पापरहित हो गई। हे तात! श्रेष्ठ मुनि का शाप मिट गया। हे कपि! यह मुनि नहीं है, घोर निशाचर है। मेरा वचन सत्य मानो॥1॥

* अस कहि गई अपछरा जबहीं। निसिचर निकट गयउ कपि तबहीं॥
कह कपि मुनि गुरदछिना लेहू। पाछें हमहिं मंत्र तुम्ह देहू॥2॥

भावार्थ:- ऐसा कहकर ज्यों ही वह अप्सरा गई, त्यों ही हनुमान्‌जी निशाचर के पास गए। हनुमान्‌जी ने कहा- हे मुनि! पहले गुरुदक्षिणा ले लीजिए। पीछे आप मुझे मंत्र दीजिएगा॥2॥

* सिर लंगूर लपेटि पछारा। निज तनु प्रगटेसि मरती बारा॥
राम राम कहि छाड़ेसि प्राना। सुनि मन हरषि चलेउ हनुमाना॥3॥

भावार्थ:- हनुमान्‌जी ने उसके सिर को पूँछ में लपेटकर उसे पछाड़ दिया। मरते समय उसने अपना (राक्षसी) शरीर प्रकट किया। उसने राम-राम कहकर प्राण छोड़े। यह (उसके मुँह से राम-राम का उच्चारण) सुनकर हनुमान्‌जी मन में हर्षित होकर चले॥3॥

* देखा सैल न औषध चीन्हा। सहसा कपि उपारि गिरि लीन्हा॥

गहि गिरि निसि नभ धावक भयऊ। अवधपुरी ऊपर कपि गयऊ॥4॥

भावार्थ:- उन्होंने पर्वत को देखा, पर औषध न पहचान सके। तब हनुमान्‌जी ने एकदम से पर्वत को ही उखाड़ लिया। पर्वत लेकर हनुमान्‌जी रात ही में आकाश मार्ग से दौड़ चले और अयोध्यापुरी के ऊपर पहुँच गए॥4॥

भरतजी के बाण से हनुमान्‌ का मूर्च्छित होना, भरत-हनुमान्‌ संवाद

दोहा :

*देखा भरत बिसाल अति निसिचर मन अनुमानि।

बिनु फर सायक मारेउ चाप श्रवन लगि तानि॥58॥

भावार्थ:- भरतजी ने आकाश में अत्यंत विशाल स्वरूप देखा, तब मन में अनुमान किया कि यह कोई राक्षस है। उन्होंने कान तक धनुष को खींचकर बिना फल का एक बाण मारा॥58॥

चौपाई :

* परेउ मुरुछि महि लागत सायक। सुमिरत राम राम रघुनायक॥

सुनि प्रिय बचन भरत तब धाए। कपि समीप अति आतुर आए॥1॥

भावार्थ:- बाण लगते ही हनुमान्‌जी 'राम, राम, रघुपति' का उच्चारण करते हुए मूर्च्छित होकर पृथ्वी पर गिर पड़े। प्रिय वचन (रामनाम) सुनकर भरतजी उठकर दौड़े और बड़ी उतावली से हनुमान्‌जी के पास आए॥1॥

* बिकल बिलोकि कीस उर लावा। जागत नहिं बहु भाँति जगावा॥
मुख मलीन मन भए दुखारी। कहत बचन भरि लोचन बारी॥2॥

भावार्थ:-हनुमान्‌जी को व्याकुल देखकर उन्होंने हृदय से लगा लिया। बहुत तरह से जगाया, पर वे जागते न थे! तब भरतजी का मुख उदास हो गया। वे मन में बड़े दुःखी हुए और नेत्रों में (विषाद के आँसुओं का) जल भरकर ये वचन बोले-॥2॥

* जेहिं बिधि राम बिमुख मोहि कीन्हा। तेहिं पुनि यह दारुन दुख दीन्हा॥
जौं मोरें मन बच अरु काया॥ प्रीति राम पद कमल अमाया॥3॥

भावार्थ:- जिस विधाता ने मुझे श्री राम से विमुख किया, उसी ने फिर यह भयानक दुःख भी दिया। यदि मन, वचन और शरीर से श्री रामजी के चरणकमलों में मेरा निष्कपट प्रेम हो,॥3॥

* तौ कपि होउ बिगत श्रम सूला। जौं मो पर रघुपति अनुकूला॥
सुनत बचन उठि बैठ कपीसा। कहि जय जयति कोसलाधीसा॥4॥

भावार्थ:- और यदि श्री रघुनाथजी मुझ पर प्रसन्न हों तो यह वानर थकावट और पीड़ा से रहित हो जाए। यह वचन सुनते ही कपिराज हनुमान्‌जी 'कोसलपति श्री रामचंद्रजी की जय हो, जय हो' कहते हुए उठ बैठे॥4॥

सोरठा :

* लीन्ह कपिहि उर लाइ पुलकित तनु लोचन सजल।

प्रीति न हृदय समाइ सुमिरि राम रघुकुल तिलक॥59॥

भावार्थ:- भरतजी ने वानर (हनुमान्‌जी) को हृदय से लगा लिया, उनका शरीर पुलकित हो गया और नेत्रों में (आनंद तथा प्रेम के आँसुओं का) जल भर आया। रघुकुलतिलक श्री रामचंद्रजी का स्मरण करके भरतजी के हृदय में प्रीति समाती न थी॥59॥

चौपाई :

* तात कुसल कहु सुखनिधान की। सहित अनुज अरु मातु जानकी॥
लकपि सब चरित समास बखाने। भए दुखी मन महुँ पछिताने॥1॥

भावार्थ:- (भरतजी बोले-) हे तात! छोटे भाई लक्ष्मण तथा माता जानकी सहित सुखनिधान श्री रामजी की कुशल कहो। वानर (हनुमान्‌जी) ने संक्षेप में सब कथा कही। सुनकर भरतजी दुःखी हुए और मन में पछताने लगे॥1॥

* अहह दैव मैं कत जग जायउँ। प्रभु के एकहु काज न आयउँ॥
जानि कुअवसरु मन धरि धीरा। पुनि कपि सन बोले बलबीरा॥2॥

भावार्थ:- हा दैव! मैं जगत्‌ में क्यों जन्मा? प्रभु के एक भी काम न आया। फिर कुअवसर (विपरीत समय) जानकर मन में धीरज धरकर बलवीर भरतजी हनुमान्‌जी से बोले-॥2॥

* तात गहरु होइहि तोहि जाता। काजु नसाइहि होत प्रभाता॥
चढ़ु मम सायक सैल समेता। पठवौं तोहि जहँ कृपानिकेता॥3॥

भावार्थ:-हे तात! तुमको जाने में देर होगी और सबेरा होते ही काम बिगड़ जाएगा। (अतः) तुम पर्वत सहित मेरे बाण पर चढ़ जाओ, मैं तुमको वहाँ भेज दूँ जहाँ कृपा के धाम श्री रामजी हैं॥3॥

* सुनि कपि मन उपजा अभिमाना। मोरें भार चलिहि किमि बाना॥
राम प्रभाव बिचारि बहोरी। बंदि चरन कह कपि कर जोरी॥4॥

भावार्थ:-भरतजी की यह बात सुनकर (एक बार तो) हनुमान्‌जी के मन में अभिमान उत्पन्न हुआ कि मेरे बोझ से बाण कैसे चलेगा? (किन्तु) फिर श्री रामचंद्रजी के प्रभाव का विचार करके वे भरतजी के चरणों की वंदना करके हाथ जोड़कर बोले-॥4॥

दोहा :

* तव प्रताप उर राखि प्रभु जैहउँ नाथ तुरंत।
अस कहि आयसु पाइ पद बंदि चलेउ हनुमंत॥60 क॥

भावार्थ:- हे नाथ! हे प्रभो! मैं आपका प्रताप हृदय में रखकर तुरंत चला जाऊँगा। ऐसा कहकर आज्ञा पाकर और भरतजी के चरणों की वंदना करके हनुमान्‌जी चले॥60 (क)॥

* भरत बाहु बल सील गुन प्रभु पद प्रीति अपार।
मन महुँ जात सराहत पुनि पुनि पवनकुमार॥60 ख॥

भावार्थ:-भरतजी के बाहुबल, शील (सुंदर स्वभाव), गुण और प्रभु के चरणों में अपार प्रेम की मन ही मन बारंबार सराहना करते हुए मारुति श्री हनुमान्‌जी चले जा रहे हैं॥60 (ख)॥

गीताप्रेस गोरखपुर

श्री रामजी की प्रलापलीला, हनुमान्‌जी का लौटना, लक्ष्मणजी का उठ बैठना

चौपाई :

* उहाँ राम लछिमनहि निहारी। बोले बचन मनुज अनुसारी॥
अर्ध राति गइ कपि नहिं आयउ। राम उठाइ अनुज उर लायउ॥1॥

भावार्थ:- वहाँ लक्ष्मणजी को देखकर श्री रामजी साधारण मनुष्यों के अनुसार (समान) वचन बोले- आधी रात बीत चुकी है, हनुमान् नहीं आए। यह कहकर श्री रामजी ने छोटे भाई लक्ष्मणजी को उठाकर हृदय से लगा लिया॥1॥

* सकहु न दुखित देखि मोहि काउ। बंधु सदा तव मृदुल सुभाऊ॥
मम हित लागि तजेहु पितु माता। सहेहु बिपिन हिम आतप बाता॥2॥

भावार्थ:- (और बोले-) हे भाई! तुम मुझे कभी दुःखी नहीं देख सकते थे। तुम्हारा स्वभाव सदा से ही कोमल था। मेरे हित के लिए तुमने माता-पिता को भी छोड़ दिया और वन में जाड़ा, गरमी और हवा सब सहन किया॥2॥

*सो अनुराग कहाँ अब भाई। उठहु न सुनि मम बच बिकलाई॥
जौं जनतेउँ बन बंधु बिछोहू। पिता बचन मनतेउँ नहिं ओहू॥3॥

भावार्थ:-हे भाई! वह प्रेम अब कहाँ है? मेरे व्याकुलतापूर्वक वचन सुनकर उठते क्यों नहीं? यदि मैं जानता कि वन में भाई का विछोह होगा तो मैं पिता का वचन (जिसका मानना मेरे लिए परम कर्तव्य था) उसे भी न मानता॥3॥

* सुत बित नारि भवन परिवारा। होहिं जाहिं जग बारहिं बारा॥
अस बिचारि जियँ जागहु ताता। मिलइ न जगत सहोदर भ्राता॥4॥

भावार्थ:-पुत्र, धन, स्त्री, घर और परिवार- ये जगत् में बार-बार होते और जाते हैं, परन्तु जगत् में सहोदर भाई बार-बार नहीं मिलता। हृदय में ऐसा विचार कर हे तात! जागो॥4॥

* जथा पंख बिनु खग अति दीना। मनि बिनु फनि करिबर कर हीना॥
अस मम जिवन बंधु बिनु तोही। जौं जड़ दैव जिआवै मोही॥5॥

भावार्थ:- जैसे पंख बिना पक्षी, मणि बिना सर्प और सूँड बिना श्रेष्ठ हाथी अत्यंत दीन हो जाते हैं, हे भाई! यदि कहीं जड़ दैव मुझे जीवित रखे तो तुम्हारे बिना मेरा जीवन भी ऐसा ही होगा॥5॥

* जैहउँ अवध कौन मुहु लाई। नारि हेतु प्रिय भाई गँवाई॥
बरु अपजस सहतेउँ जग माहीं। नारि हानि बिसेष छति नाहीं॥6॥

भावार्थ:- स्त्री के लिए प्यारे भाई को खोकर, मैं कौन सा मुँह लेकर अवध जाऊँगा? मैं जगत् में बदनामी भले ही सह लेता (कि राम में कुछ भी वीरता नहीं है जो स्त्री को खो बैठे)। स्त्री की हानि से (इस हानि को देखते) कोई विशेष क्षति नहीं थी॥6॥

* अब अपलोकु सोकु सुत तोरा। सहिहि निठुर कठोर उर मोरा॥
निज जननी के एक कुमारा। तात तासु तुम्ह प्रान अधारा॥7॥

भावार्थ:- अब तो हे पुत्र! मेरे निष्ठुर और कठोर हृदय यह अपयश और तुम्हारा शोक दोनों ही सहन करेगा। हे तात! तुम अपनी माता के एक ही पुत्र और उसके प्राणाधार हो॥7॥

* सौंपेसि मोहि तुम्हहि गहि पानी। सब बिधि सुखद परम हित जानी॥
उतरु काह दैहउँ तेहि जाई। उठि किन मोहि सिखावहु भाई॥8॥

भावार्थ:- सब प्रकार से सुख देने वाला और परम हितकारी जानकर उन्होंने तुम्हें हाथ पकड़कर मुझे सौंपा था। मैं अब जाकर उन्हें क्या उत्तर दूँगा? हे भाई! तुम उठकर मुझे सिखाते (समझाते) क्यों नहीं?॥8॥

* बहु बिधि सोचत सोच बिमोचन। स्रवत सलिल राजिव दल लोचन॥
उमा एक अखंड रघुराई। नर गति भगत कृपाल देखाई॥9॥

भावार्थ:-सोच से छुड़ाने वाले श्री रामजी बहुत प्रकार से सोच कर रहे हैं। उनके कमल की पंखुड़ी के समान नेत्रों से (विषाद के आँसुओं का) जल बह रहा है। (शिवजी कहते हैं-) हे उमा! श्री रघुनाथजी एक (अद्वितीय)

और अखंड (वियोगरहित) हैं। भक्तों पर कृपा करने वाले भगवान्‌ ने (लीला करके) मनुष्य की दशा दिखलाई है॥9॥

सोरठा :

* प्रभु प्रलाप सुनि कान बिकल भए बानर निकर।
आइ गयउ हनुमान जिमि करुना महँ बीर रस॥61॥

भावार्थ:-प्रभु के (लीला के लिए किए गए) प्रलाप को कानों से सुनकर वानरों के समूह व्याकुल हो गए। (इतने में ही) हनुमान्‌जी आ गए, जैसे करुणरस (के प्रसंग) में वीर रस (का प्रसंग) आ गया हो॥61॥

चौपाई :

* हरषि राम भेंटेउ हनुमाना। अति कृतग्य प्रभु परम सुजाना॥
तुरत बैद तब कीन्ह उपाई। उठि बैठे लछिमन हरषाई॥1॥

भावार्थ:-श्री रामजी हर्षित होकर हनुमान्‌जी से गले मिले। प्रभु परम सुजान (चतुर) और अत्यंत ही कृतज्ञ हैं। तब वैद्य (सुषेण) ने तुरंत उपाय किया, (जिससे) लक्ष्मणजी हर्षित होकर उठ बैठे॥1॥

* हृदयँ लाइ प्रभु भेंटेउ भ्राता। हरषे सकल भालु कपि ब्राता॥
कपि पुनि बैद तहाँ पहुँचावा। जेहि बिधि तबहिं ताहि लइ आवा॥2॥

भावार्थ:-प्रभु भाई को हृदय से लगाकर मिले। भालू और वानरों के समूह सब हर्षित हो गए। फिर हनुमान्‌जी ने वैद्य को उसी प्रकार वहाँ पहुँचा दिया, जिस प्रकार वे उस बार (पहले) उसे ले आए थे॥2॥

रावण का कुम्भकर्ण को जगाना, कुम्भकर्ण का रावण को उपदेश और विभीषण-कुम्भकर्ण संवाद

चौपाई :

* यह बृत्तांत दसानन सुनेऊ। अति बिषाद पुनि पुनि सिर धुनेऊ॥
ब्याकुल कुंभकरन पहिं आवा। बिबिध जतन करि ताहि जगावा॥3॥

भावार्थ:- यह समाचार जब रावण ने सुना, तब उसने अत्यंत विषाद से बार-बार सिर पीटा। वह व्याकुल होकर कुंभकर्ण के पास गया और बहुत से उपाय करके उसने उसको जगाया॥3॥

* जागा निसिचर देखिअ कैसा। मानहुँ कालु देह धरि बैसा॥
कुंभकरन बूझा कहु भाई। काहे तव मुख रहे सुखाई॥4॥

भावार्थ:- कुंभकर्ण जगा (उठ बैठा) वह कैसा दिखाई देता है मानो स्वयं काल ही शरीर धारण करके बैठा हो। कुंभकर्ण ने पूछा- हे भाई! कहो तो, तुम्हारे मुख सूख क्यों रहे हैं?॥4॥

* कथा कही सब तेहिं अभिमानी। जेहि प्रकार सीता हरि आनी॥
तात कपिन्ह सब निसिचर मारे। महा महा जोधा संघारे॥5॥

भावार्थ:-उस अभिमानी (रावण) ने उससे जिस प्रकार से वह सीता को हर लाया था (तब से अब तक की) सारी कथा कही। (फिर कहा-) हे तात! वानरों ने सब राक्षस मार डाले। बड़े-बड़े योद्धाओं का भी संहार कर डाला॥5॥

* दुर्मुख सुररिपु मनुज अहारी। भट अतिकाय अकंपन भारी॥
अपर महोदर आदिक बीरा। परे समर महि सब रनधीरा॥6॥

भावार्थ:-दुर्मुख, देवशत्रु (देवान्तक), मनुष्य भक्षक (नरान्तक), भारी योद्धा अतिकाय और अकम्पन तथा महोदर आदि दूसरे सभी रणधीर वीर रणभूमि में मारे गए॥6॥

दोहा :

* सुनि दसकंधर बचन तब कुंभकरन बिलखान।
जगदंबा हरि आनि अब सठ चाहत कल्यान॥62॥

भावार्थ:- तब रावण के वचन सुनकर कुंभकर्ण बिलखकर (दुःखी होकर) बोला- अरे मूर्ख! जगज्जननी जानकी को हर लाकर अब कल्याण चाहता है?॥62॥

चौपाई :

* भल न कीन्ह तैं निसिचर नाहा। अब मोहि आइ जगाएहि काहा॥
अजहूँ तात त्यागि अभिमाना। भजहु राम होइहि कल्याना॥1॥

भावार्थ:- हे राक्षसराज! तूने अच्छा नहीं किया। अब आकर मुझे क्यों जगाया? हे तात! अब भी अभिमान छोड़कर श्री रामजी को भजो तो कल्याण होगा॥1॥

* हैं दससीस मनुज रघुनायक। जाके हनूमान से पायक॥
अहह बंधु तैं कीन्हि खोटाई। प्रथमहिं मोहि न सुनाएहि आई॥2॥

भावार्थ:- हे रावण! जिनके हनुमान् सरीखे सेवक हैं, वे श्री रघुनाथजी क्या मनुष्य हैं? हाय भाई! तूने बुरा किया, जो पहले ही आकर मुझे यह हाल नहीं सुनाया॥2॥

* कीन्हेहु प्रभु बिरोध तेहि देवक। सिव बिरंचि सुर जाके सेवक॥
नारद मुनि मोहि ग्यान जो कहा। कहतेउँ तोहि समय निरबाहा॥3॥

भावार्थ:- हे स्वामी! तुमने उस परम देवता का विरोध किया, जिसके शिव, ब्रह्मा आदि देवता सेवक हैं। नारद मुनि ने मुझे जो ज्ञान कहा था, वह मैं तुझसे कहता, पर अब तो समय जाता रहा॥3॥

* अब भरि अंक भेंटु मोहि भाई। लोचन सुफल करौं मैं जाई॥

स्याम गात सरसीरुह लोचन। देखौं जाइ ताप त्रय मोचन॥4॥

भावार्थ:-हे भाई! अब तो (अन्तिम बार) अँकवार भरकर मुझसे मिल ले। मैं जाकर अपने नेत्र सफल करूँ। तीनों तापों को छुड़ाने वाले श्याम शरीर, कमल नेत्र श्री रामजी के जाकर दर्शन करूँ॥4॥

दोहा :

* राम रूप गुन सुमिरत मगन भयउ छन एक।
रावन मागेउ कोटि घट मद अरु महिष अनेक॥63॥

भावार्थ:-श्री रामचंद्रजी के रूप और गुणों को स्मरण करके वह एक क्षण के लिए प्रेम में मग्न हो गया। फिर रावण से करोड़ों घड़े मदिरा और अनेकों भैंसे मँगवाए॥63॥

चौपाई :

* महिषखाइ करि मदिरा पाना। गर्जा बज्राघात समाना॥
कुंभकरन दुर्मद रन रंगा। चला दुर्ग तजि सेन न संगा॥1॥

भावार्थ:-भैंसे खाकर और मदिरा पीकर वह वज्रघात (बिजली गिरने) के समान गरजा। मद से चूर रण के उत्साह से पूर्ण कुंभकर्ण किला छोड़कर चला। सेना भी साथ नहीं ली॥1॥

* देखि बिभीषनु आगें आयउ। परेउ चरन निज नाम सुनायउ॥
अनुज उठाइ हृदयँ तेहि लायो। रघुपति भक्त जानि मन भायो॥2॥

भावार्थ:-उसे देखकर विभीषण आगे आए और उसके चरणों पर गिरकर अपना नाम सुनाया। छोटे भाई को उठाकर उसने हृदय से लगा लिया और श्री रघुनाथजी का भक्त जानकर वे उसके मन को प्रिय लगे॥2॥

* तात लात रावन मोहि मारा। कहत परम हित मंत्र बिचारा॥
तेहिं गलानि रघुपति पहिं आयउँ। देखि दीन प्रभु के मन भायउँ॥3॥

भावार्थ:-(विभीषण ने कहा-) हे तात! परम हितकर सलाह एवं विचार करने पर रावण ने मुझे लात मारी। उसी ग्लानि के मारे मैं श्री

रघुनाथजी के पास चला आया। दीन देखकर प्रभु के मन को मैं (बहुत) प्रिय लगा॥3॥

* सुनु भयउ कालबस रावन। सो कि मान अब परम सिखावन॥
धन्य धन्य तैं धन्य विभीषन। भयहु तात निसिचर कुल भूषन॥4॥

भावार्थ:-(कुंभकर्ण ने कहा-) हे पुत्र! सुन, रावण तो काल के वश हो गया है (उसके सिर पर मृत्यु नाच रही है)। वह क्या अब उत्तम शिक्षा मान सकता है? हे विभीषण! तू धन्य है, धन्य है। हे तात! तू राक्षस कुल का भूषण हो गया॥4॥

* बंधु बंस तैं कीन्ह उजागर। भजेहु राम सोभा सुख सागर॥5॥

भावार्थ:-हे भाई! तूने अपने कुल को दैदीप्यमान कर दिया, जो शोभा और सुख के समुद्र श्री रामजी को भजा॥5॥

दोहा :

* बचन कर्म मन कपट तजि भजेहु राम रनधीर।
जाहु न निज पर सूझ मोहि भयउँ कालबस बीर॥64॥

भावार्थ:-मन, वचन और कर्म से कपट छोड़कर रणधीर श्री रामजी का भजन करना। हे भाई! मैं काल (मृत्यु) के वश हो गया हूँ, मुझे अपना-पराया नहीं सूझता, इसलिए अब तुम जाओ॥64॥

कुम्भकर्ण युद्ध और उसकी परमगति

चौपाई :

* बंधु बचन सुनि चला बिभीषन। आयउ जहँ त्रैलोक बिभूषन॥
नाथ भूधराकार सरीरा। कुंभकरन आवत रनधीरा॥1॥॥

भावार्थ:- भाई के वचन सुनकर विभीषण लौट गए और वहाँ आए, जहाँ त्रिलोकी के भूषण श्री रामजी थे। (विभीषण ने कहा-) हे नाथ! पर्वत के समान (विशाल) देह वाला रणधीर कुंभकर्ण आ रहा है॥1॥

* एतना कपिन्ह सुना जब काना। किलकिलाइ धाए बलवाना॥
लिए उठाइ बिटप अरु भूधर। कटकटाइ डारहिं ता ऊपर॥2॥

भावार्थ:- वानरों ने जब कानों से इतना सुना, तब वे बलवान् किलकिलाकर (हर्षध्वनि करके) दौड़े। वृक्ष और पर्वत (उखाड़कर) उठा लिए और (क्रोध से) दाँत कटकटाकर उन्हें उसके ऊपर डालने लगे॥2॥

* कोटि कोटि गिरि सिखर प्रहारा। करहिं भालु कपि एक एक बारा॥
मुर्‍यो न मनु तनु टर्‍यो न टार्‍यो। जिमि गज अर्क फलनि को मार्‍यो॥3॥

भावार्थ:- रीछ-वानर एक-एक बार में ही करोड़ों पहाड़ों के शिखरों से उस पर प्रहार करते हैं, परन्तु इससे न तो उसका मन ही मुड़ा (विचलित हुआ) और न शरीर ही टाले टला, जैसे मदार के फलों की मार से हाथी पर कुछ भी असर नहीं होता!॥3॥

* तब मारुतसुत मुठिका हन्यो। परयो धरनि ब्याकुल सिर धुन्यो॥
पुनि उठि तेहिं मारेउ हनुमंता। घुर्मित भूतल परेउ तुरंता॥4॥

भावार्थ:- तब हनुमान्‌जी ने उसे एक घूँसा मारा, जिससे वह व्याकुल होकर पृथ्वी पर गिर पड़ा और सिर पीटने लगा। फिर उसने उठकर हनुमान्‌जी को मारा। वे चक्कर खाकर तुरंत ही पृथ्वी पर गिर पड़े॥4॥

* पुनि नल नीलहि अवनि पछारेसि। जहँ तहँ पटकि पटकि भट डारेसि॥

चली बलीमुख सेन पराई। अति भय त्रसित न कोउ समुहाई॥5॥
भावार्थ:-फिर उसने नल-नील को पृथ्वी पर पछाड़ दिया और दूसरे योद्धाओं को भी जहाँ-तहाँ पटककर डाल दिया। वानर सेना भाग चली। सब अत्यंत भयभीत हो गए, कोई सामने नहीं आता॥5॥

दोहा :

*अंगदादि कपि मुरुछित करि समेत सुग्रीव।
काँख दाबि कपिराज कहुँ चला अमित बल सींव॥65॥
भावार्थ:-सुग्रीव समेत अंगदादि वानरों को मूर्छित करके फिर वह अपरिमित बल की सीमा कुंभकर्ण वानरराज सुग्रीव को काँख में दाबकर चला॥65॥

चौपाई :

* उमा करत रघुपति नरलीला। खेलत गरुड़ जिमि अहिगन मीला॥
भृकुटि भंग जो कालहि खाई। ताहि कि सोहइ ऐसि लराई॥1॥
भावार्थ:- (शिवजी कहते हैं-) हे उमा! श्री रघुनाथजी वैसे ही नरलीला कर रहे हैं, जैसे गरुड़ सर्पों के समूह में मिलकर खेलता हो। जो भौंह के इशारे मात्र से (बिना परिश्रम के) काल को भी खा जाता है, उसे कहीं ऐसी लड़ाई शोभा देती है?॥1॥

* जग पावनि कीरति बिस्तरिहहिं। गाइ गाइ भवनिधि नर तरिहहिं॥
मुरुछा गइ मारुतसुत जागा। सुग्रीवहि तब खोजन लागा॥2॥
भावार्थ:-भगवान् (इसके द्वारा) जगत् को पवित्र करने वाली वह कीर्ति फैलाएँगे, जिसे गा-गाकर मनुष्य भवसागर से तर जाएँगे। मूर्च्छा जाती रही, तब मारुति हनुमान्‌जी जागे और फिर वे सुग्रीव को खोजने लगे॥2॥

* सुग्रीवहु कै मुरुछा बीती। निबुकि गयउ तेहि मृतक प्रतीती॥

काटेसि दसन नासिका काना। गरजि अकास चलेउ तेहिं जाना॥3॥

भावार्थ:- सुग्रीव की भी मूर्च्छा दूर हुई, तब वे (मुर्दे से होकर) खिसक गए (काँख से नीचे गिर पड़े)। कुम्भकर्ण ने उनको मृतक जाना। उन्होंने कुम्भकर्ण के नाक-कान दाँतों से काट लिए और फिर गरज कर आकाश की ओर चले, तब कुम्भकर्ण ने जाना॥3॥

* गहेउ चरन गहि भूमि पछारा। अति लाघवँ उठि पुनि तेहि मारा॥
पुनि आयउ प्रभु पहिं बलवाना। जयति जयति जय कृपानिधाना॥4॥

भावार्थ:-उसने सुग्रीव का पैर पकड़कर उनको पृथ्वी पर पछाड़ दिया। फिर सुग्रीव ने बड़ी फुर्ती से उठकर उसको मारा और तब बलवान्‌ सुग्रीव प्रभु के पास आए और बोले- कृपानिधान प्रभु की जय हो, जय हो, जय हो॥4॥

* नाक कान काटे जियँ जानी। फिरा क्रोध करि भइ मन ग्लानी॥
सहज भीम पुनि बिनु श्रुति नासा। देखत कपि दल उपजी त्रासा॥5॥

भावार्थ:- नाक-कान काटे गए, ऐसा मन में जानकर बड़ी ग्लानि हुई और वह क्रोध करके लौटा। एक तो वह स्वभाव (आकृति) से ही भयंकर था और फिर बिना नाक-कान का होने से और भी भयानक हो गया। उसे देखते ही वानरों की सेना में भय उत्पन्न हो गया॥5॥

दोहा :

* जय जय जय रघुबंस मनि धाए कपि दै हूह।
एकहि बार तासु पर छाड़ेन्हि गिरि तरु जूह॥66॥

भावार्थ:-'रघुवंशमणि की जय हो, जय हो' ऐसा पुकारकर वानर हूह करके दौड़े और सबने एक ही साथ उस पर पहाड़ और वृक्षों के समूह छोड़े॥66॥

चौपाई :

* कुंभकरन रन रंग बिरुद्धा। सन्मुख चला काल जनु क्रुद्धा॥
कोटि कोटि कपि धरि धरि खाई। जनु टीड़ी गिरि गुहाँ समाई॥1॥

भावार्थ:-रण के उत्साह में कुंभकर्ण विरुद्ध होकर (उनके) सामने ऐसा चला मानो क्रोधित होकर काल ही आ रहा हो। वह करोड़-करोड़ वानरों को एक साथ पकड़कर खाने लगा! (वे उसके मुँह में इस तरह घुसने लगे) मानो पर्वत की गुफा में टिड्डियाँ समा रही हों॥1॥

* कोटिन्ह गहि सरीर सन मर्दा। कोटिन्ह मीजि मिलव महि गर्दा॥
मुख नासा श्रवनन्हि कीं बाटा। निसरि पराहिं भालु कपि ठाटा॥2॥

भावार्थ:- करोड़ों (वानरों) को पकड़कर उसने शरीर से मसल डाला। करोड़ों को हाथों से मलकर पृथ्वी की धूल में मिला दिया। (पेट में गए हुए) भालू और वानरों के ठट्ट के ठट्ट उसके मुख, नाक और कानों की राह से निकल-निकलकर भाग रहे हैं॥2॥

* रन मद मत्त निसाचर दर्पा। बिस्व ग्रसिहि जनु ऐहि बिधि अर्पा॥
मुरे सुभट सब फिरहिं न फेरे। सूझ न नयन सुनहिं नहिं टेरे॥3॥

भावार्थ:-रण के मद में मत्त राक्षस कुंभकर्ण इस प्रकार गर्वित हुआ, मानो विधाता ने उसको सारा विश्व अर्पण कर दिया हो और उसे वह ग्रास कर जाएगा। सब योद्धा भाग खड़े हुए, वे लौटाए भी नहीं लौटते। आँखों से उन्हें सूझ नहीं पड़ता और पुकारने से सुनते नहीं!॥3॥

* कुंभकरन कपि फौज बिडारी। सुनि धाई रजनीचर धारी॥
देखी राम बिकल कटकाई। रिपु अनीक नाना बिधि आई॥4॥

भावार्थ:- कुंभकर्ण ने वानर सेना को तितर-बितर कर दिया। यह सुनकर राक्षस सेना भी दौड़ी। श्री रामचंद्रजी ने देखा कि अपनी सेना व्याकुल है और शत्रु की नाना प्रकार की सेना आ गई है॥4॥

दोहा :

* सुनु सुग्रीव बिभीषन अनुज सँभारेहु सैन।
मैं देखउँ खल बल दलहि बोले राजिवनैन॥67॥

भावार्थ:- तब कमलनयन श्री रामजी बोले- हे सुग्रीव! हे विभीषण! और हे लक्ष्मण! सुनो, तुम सेना को संभालना। मैं इस दुष्ट के बल और सेना को देखता हूँ॥67॥

चौपाई :

* कर सारंग साजि कटि भाथा। अरि दल दलन चले रघुनाथा॥
प्रथम कीन्हि प्रभु धनुष टंकोरा। रिपु दल बधिर भयउ सुनि सोरा॥1॥

भावार्थ:- हाथ में शार्गंधनुष और कमर में तरकस सजाकर श्री रघुनाथजी शत्रु सेना को दलन करने चले। प्रभु ने पहले तो धनुष का टंकार किया, जिसकी भयानक आवाज सुनते ही शत्रु दल बहरा हो गया॥1॥

* सत्यसंध छाँड़े सर लच्छा। कालसर्प जनु चले सपच्छा॥
जहँ तहँ चले बिपुल नाराचा। लगे कटन भट बिकट पिसाचा॥2॥

भावार्थ:- फिर सत्यप्रतिज्ञ श्री रामजी ने एक लाख बाण छोड़े। वे ऐसे चले मानो पंखवाले काल सर्प चले हों। जहाँ-तहाँ बहुत से बाण चले, जिनसे भयंकर राक्षस योद्धा कटने लगे॥2॥

* कटहिं चरन उर सिर भुजदंडा। बहुतक बीर होहिं सत खंडा॥
घुर्मि घुर्मि घायल महि परहीं। उठि संभारि सुभट पुनि लरहीं॥3॥

भावार्थ:- उनके चरण, छाती, सिर और भुजदण्ड कट रहे हैं। बहुत से वीरों के सौ-सौ टुकड़े हो जाते हैं। घायल चक्कर खा-खाकर पृथ्वी पर पड़ रहे हैं। उत्तम योद्धा फिर संभलकर उठते और लड़ते हैं॥3॥

* लागत बान जलद जिमि गाजहिं। बहुतक देखि कठिन सर भाजहिं॥

रुंड प्रचंड मुंड बिनु धावहिं। धरु धरु मारु मारु धुनि गावहिं॥4॥

भावार्थ:-बाण लगते ही वे मेघ की तरह गरजते हैं। बहुत से तो कठिन बाणों को देखकर ही भाग जाते हैं। बिना मुण्ड (सिर) के प्रचण्ड रुण्ड (धड़) दौड़ रहे हैं और 'पकड़ो, पकड़ो, मारो, मारो' का शब्द करते हुए गा (चिल्ला) रहे हैं॥4॥

दोहा :

* छन महुँ प्रभु के सायकन्हि काटे बिकट पिसाच।
पुनि रघुबीर निषंग महुँ प्रबिसे सब नाराच॥68॥

भावार्थ:- प्रभु के बाणों ने क्षण मात्र में भयानक राक्षसों को काटकर रख दिया। फिर वे सब बाण लौटकर श्री रघुनाथजी के तरकस में घुस गए॥68॥

चौपाई :

* कुंभकरन मन दीख बिचारी। हति छन माझ निसाचर धारी॥
भा अति क्रुद्ध महाबल बीरा। कियो मृगनायक नाद गँभीरा॥1॥

भावार्थ:-कुंभकर्ण ने मन में विचार कर देखा कि श्री रामजी ने क्षण मात्र में राक्षसी सेना का संहार कर डाला। तब वह महाबली वीर अत्यंत क्रोधित हुआ और उसने गंभीर सिंहनाद किया॥1॥

* कोपि महीधर लेइ उपारी। डारइ जहँ मर्कट भट भारी॥
आवत देखि सैल प्रभु भारे। सरन्हि काटि रज सम करि डारे॥2॥

भावार्थ:-वह क्रोध करके पर्वत उखाड़ लेता है और जहाँ भारी-भारी वानर योद्धा होते हैं, वहाँ डाल देता है। बड़े-बड़े पर्वतों को आते देखकर प्रभु ने उनको बाणों से काटकर धूल के समान (चूर-चूर) कर डाला॥2॥

* पुनि धनु तानि कोपि रघुनायक। छाँड़े अति कराल बहु सायक॥
तनु महुँ प्रबिसि निसरि सर जाहीं। जिमि दामिनि घन माझ समाहीं॥3॥

भावार्थ:-फिर श्री रघुनाथजी ने क्रोध करके धनुष को तानकर बहुत से अत्यंत भयानक बाण छोड़े। वे बाण कुंभकर्ण के शरीर में घुसकर (पीछे से इस प्रकार) निकल जाते हैं (कि उनका पता नहीं चलता), जैसे बिजलियाँ बादल में समा जाती हैं॥3॥

* सोनित स्रवत सोह तन कारे। जनु कज्जल गिरि गेरु पनारे॥

बिकल बिलोकि भालु कपि धाए। बिहँसा जबहिं निकट कपि आए॥4॥

भावार्थ:- उसके काले शरीर से रुधिर बहता हुआ ऐसे शोभा देता है, मानो काजल के पर्वत से गेरु के पनाले बह रहे हों। उसे व्याकुल देखकर रीछ वानर दौड़े। वे ज्यों ही निकट आए, त्यों ही वह हँसा,॥4॥

दोहा :

* महानाद करि गर्जा कोटि कोटि गहि कीस।

महि पटकइ गजराज इव सपथ करइ दससीस॥69॥

भावार्थ:- और बड़ा घोर शब्द करके गरजा तथा करोड़-करोड़ वानरों को पकड़कर वह गजराज की तरह उन्हें पृथ्वी पर पटकने लगा और रावण की दुहाई देने लगा॥69॥

चौपाई :

* भागे भालु बलीमुख जूथा। बृकु बिलोकि जिमि मेष बरूथा॥

चले भागि कपि भालु भवानी। बिकल पुकारत आरत बानी॥1॥

भावार्थ:-यह देखकर रीछ-वानरों के झुंड ऐसे भागे जैसे भेड़िये को देखकर भेड़ों के झुंड! (शिवजी कहते हैं-) हे भवानी! वानर-भालू व्याकुल होकर आर्तवाणी से पुकारते हुए भाग चले॥1॥

* यह निसिचर दुकाल सम अहई। कपिकुल देस परन अब चहई॥

कृपा बारिधर राम खरारी। पाहि पाहि प्रनतारति हारी॥2॥

भावार्थ:-(वे कहने लगे-) यह राक्षस दुर्भिक्ष के समान है, जो अब वानर कुल रूपी देश में पड़ना चाहता है। हे कृपा रूपी जल के धारण करने वाले मेघ रूप श्री राम! हे खर के शत्रु! हे शरणागत के दुःख हरने वाले! रक्षा कीजिए, रक्षा कीजिए!॥2॥।

* सकरुन बचन सुनत भगवाना। चले सुधारि सरासन बाना॥

राम सेन निज पाछें घाली। चले सकोप महा बलसाली॥3॥

भावार्थ:- करुणा भरे वचन सुनते ही भगवान् धनुष-बाण सुधारकर चले। महाबलशाली श्री रामजी ने सेना को अपने पीछे कर लिया और वे (अकेले) क्रोधपूर्वक चले (आगे बढ़े)॥3॥

* खैंचि धनुष सर सत संधाने। छूटे तीर सरीर समाने॥

लागत सर धावा रिस भरा। कुधर डगमगत डोलति धरा॥4॥

भावार्थ:- उन्होंने धनुष को खींचकर सौ बाण संधान किए। बाण छूटे और उसके शरीर में समा गए। बाणों के लगते ही वह क्रोध में भरकर दौड़ा। उसके दौड़ने से पर्वत डगमगाने लगे और पृथ्वी हिलने लगी॥4॥

* लीन्ह एक तेंहि सैल उपाटी। रघुकुलतिलक भुजा सोइ काटी॥

धावा बाम बाहु गिरि धारी। प्रभु सोउ भुजा काटि महि पारी॥5॥

भावार्थ:-उसने एक पर्वत उखाड़ लिया। रघुकुल तिलक श्री रामजी ने उसकी वह भुजा ही काट दी। तब वह बाएँ हाथ में पर्वत को लेकर दौड़ा। प्रभु ने उसकी वह भुजा भी काटकर पृथ्वी पर गिरा दी॥5॥

* काटें भुजा सोह खल कैसा। पच्छहीन मंदर गिरि जैसा॥

उग्र बिलोकनि प्रभुहि बिलोका। ग्रसन चहत मानहुँ त्रैलोका॥6॥

भावार्थ:-भुजाओं के कट जाने पर वह दुष्ट कैसी शोभा पाने लगा, जैसे बिना पंख का मंदराचल पहाड़ हो। उसने उग्र दृष्टि से प्रभु को देखा। मानो तीनों लोकों को निगल जाना चाहता हो॥6॥

दोहा :

* करि चिक्कार घोर अति धावा बदनु पसारि।
गगन सिद्ध सुर त्रासित हा हा हेति पुकारि॥70॥

भावार्थ:- वह बड़े जोर से चिग्घाड़ करके मुँह फैलाकर दौड़ा। आकाश में सिद्ध और देवता डरकर हा! हा! हा! इस प्रकार पुकारने लगे॥70॥

चौपाई :

* सभय देव करुनानिधि जान्यो। श्रवन प्रजंत सरासुन तान्यो॥
बिसिख निकर निसिचर मुख भरेऊ। तदपि महाबल भूमि न परेऊ॥1॥

भावार्थ:- करुणानिधान भगवान् ने देवताओं को भयभीत जाना। तब उन्होंने धनुष को कान तक तानकर राक्षस के मुख को बाणों के समूह से भर दिया। तो भी वह महाबली पृथ्वी पर न गिरा॥1॥

* सरन्हि भरा मुख सन्मुख धावा। काल त्रोन सजीव जनु आवा॥
तब प्रभु कोपि तीब्र सर लीन्हा। धर ते भिन्न तासु सिर कीन्हा॥2॥

भावार्थ:-मुख में बाण भरे हुए वह (प्रभु के) सामने दौड़ा। मानो काल रूपी सजीव तरकस ही आ रहा हो। तब प्रभु ने क्रोध करके तीक्ष्ण बाण लिया और उसके सिर को धड़ से अलग कर दिया॥2॥

* सो सिर परेउ दसानन आगें। बिकल भयउ जिमि फनि मनि त्यागें॥
धरनि धसइ धर धाव प्रचंडा। तब प्रभु काटि कीन्ह दुइ खंडा॥3॥

भावार्थ:- वह सिर रावण के आगे जा गिरा उसे देखकर रावण ऐसा व्याकुल हुआ जैसे मणि के छूट जाने पर सर्प। कुंभकर्ण का प्रचण्ड धड़ दौड़ा, जिससे पृथ्वी धँसी जाती थी। तब प्रभु ने काटकर उसके दो टुकड़े कर दिए॥3॥

* परे भूमि जिमि नभ तें भूधर। हेठ दाबि कपि भालु निसाचर॥
तासु तेज प्रभु बदन समाना। सुर मुनि सबहिं अचंभव माना॥4॥

भावार्थ:-वानर-भालू और निशाचरों को अपने नीचे दबाते हुए वे दोनों टुकड़े पृथ्वी पर ऐसे पड़े जैसे आकाश से दो पहाड़ गिरे हों। उसका तेज प्रभु श्री रामचंद्रजी के मुख में समा गया। (यह देखकर) देवता और मुनि सभी ने आश्चर्य माना॥4॥

* सुर दुंदुभीं बजावहिं हरषहिं। अस्तुति करहिं सुमन बहु बरषहिं॥

करि बिनती सुर सकल सिधाए। तेही समय देवरिषि आए॥5॥

भावार्थ:- देवता नगाड़े बजाते, हर्षित होते और स्तुति करते हुए बहुत से फूल बरसा रहे हैं। विनती करके सब देवता चले गए। उसी समय देवर्षि नारद आए॥5॥

* गगनोपरि हरि गुन गन गाए। रुचिर बीररस प्रभु मन भाए॥

बेगि हतहु खल कहि मुनि गए। राम समर महि सोभत भए॥6॥

भावार्थ:-आकाश के ऊपर से उन्होंने श्री हरि के सुंदर वीर रसयुक्त गुण समूह का गान किया, जो प्रभु के मन को बहुत ही भाया। मुनि यह कहकर चले गए कि अब दुष्ट रावण को शीघ्र मारिए। (उस समय) श्री रामचंद्रजी रणभूमि में आकर (अत्यंत) सुशोभित हुए॥6॥

छंद :

* संग्राम भूमि बिराज रघुपति अतुल बल कोसल धनी।
श्रम बिंदु मुख राजीव लोचन अरुन तन सोनित कनी॥
भुज जुगल फेरत सर सरासन भालु कपि चहु दिसि बने।
कह दास तुलसी कहि न सक छबि सेष जेहि आनन घने॥

भावार्थ:- अतुलनीय बल वाले कोसलपति श्री रघुनाथजी रणभूमि में सुशोभित हैं। मुख पर पसीने की बूँदें हैं, कमल समान नेत्र कुछ लाल हो रहे हैं। शरीर पर रक्त के कण हैं, दोनों हाथों से धनुष-बाण फिरा रहे हैं। चारों ओर रीछ-वानर सुशोभित हैं। तुलसीदासजी कहते हैं कि प्रभु की

इस छबि का वर्णन शेषजी भी नहीं कर सकते, जिनके बहुत से (हजार) मुख हैं।

दोहा :

* निसिचर अधम मलाकर ताहि दीन्ह निज धाम।
गिरिजा ते नर मंदमति जे न भजहिं श्रीराम॥71॥

भावार्थ:-(शिवजी कहते हैं-) हे गिरिजे! कुंभकर्ण, जो नीच राक्षस और पाप की खान था, उसे भी श्री रामजी ने अपना परमधाम दे दिया। अतः वे मनुष्य (निश्चय ही) मंदबुद्धि हैं, जो उन श्री रामजी को नहीं भजते॥71॥

चौपाई :

*दिन के अंत फिरीं द्वौ अनी। समर भई सुभटन्ह श्रम घनी॥
राम कृपाँ कपि दल बल बाढ़ा। जिमि तृन पाइ लाग अति डाढ़ा॥1॥

भावार्थ:- दिन का अन्त होने पर दोनों सेनाएँ लौट पड़ीं। (आज के युद्ध में) योद्धाओं को बड़ी थकावट हुई, परन्तु श्री रामजी की कृपा से वानर सेना का बल उसी प्रकार बढ़ गया, जैसे घास पाकर अग्नि बहुत बढ़ जाती है॥1॥(घ)॥

* छीजहिं निसिचर दिनु अरु राती। निज मुख कहें सुकृत जेहि भाँती॥
बहु बिलाप दसकंधर करई। बंधु सीस पुनि पुनि उर धरई॥2॥

भावार्थ:-उधर राक्षस दिन-रात इस प्रकार घटते जा रहे हैं, जिस प्रकार अपने ही मुख से कहने पर पुण्य घट जाते हैं। रावण बहुत विलाप कर रहा है। बार-बार भाई (कुंभकर्ण) का सिर कलेजे से लगाता है॥2॥

* रोवहिं नारि हृदय हति पानी। तासु तेज बल बिपुल बखानी॥
मेघनाद तेहि अवसर आयउ। कहि बहु कथा पिता समुझायउ॥3॥

भावार्थ:-स्त्रियाँ उसके बड़े भारी तेज और बल को बखान करके हाथों से छाती पीट-पीटकर रो रही हैं। उसी समय मेघनाद आया और उसने बहुत सी कथाएँ कहकर पिता को समझाया॥3॥

* देखेहु कालि मोरि मनुसाई। अबहिं बहुत का करौं बड़ाई॥
इष्टदेव सैं बल रथ पायउँ। सो बल तात न तोहि देखायउँ॥4॥

भावार्थ:- (और कहा-) कल मेरा पुरुषार्थ देखिएगा। अभी बहुत बड़ाई क्या करूँ? हे तात! मैंने अपने इष्टदेव से जो बल और रथ पाया था, वह बल (और रथ) अब तक आपको नहीं दिखलाया था॥4॥

* एहि बिधि जल्पत भयउ बिहाना। चहुँ दुआर लागे कपि नाना॥
इति कपि भालु काल सम बीरा। उत रजनीचर अति रनधीरा॥5॥

भावार्थ:-इस प्रकार डींग मारते हुए सबेरा हो गया। लंका के चारों दरवाजों पर बहुत से वानर आ डटे। इधर काल के समान वीर वानर-भालू हैं और उधर अत्यंत रणधीर राक्षस॥5॥

* लरहिं सुभट निज निज जय हेतू। बरनि न जाइ समर खगकेतू॥6॥

भावार्थ:->दोनों ओर के योद्धा अपनी-अपनी जय के लिए लड़ रहे हैं। हे गरुड़ उनके युद्ध का वर्णन नहीं किया जा सकता॥6॥

मेघनाद का युद्ध, रामजी का लीला से नागपाश में बँधना

दोहा :

* मेघनाद मायामय रथ चढ़ि गयउ अकास।

गीताप्रेस गोरखपुर

गर्जेउ अट्टहास करि भइ कपि कटकहि त्रास॥72॥

भावार्थ:-मेघनाद उसी (पूर्वोक्त) मायामय रथ पर चढ़कर आकाश में चला गया और अट्टहास करके गरजा, जिससे वानरों की सेना में भय छा गया॥72॥

चौपाई :

* सक्ति सूल तरवारि कृपाना। अस्त्र सस्त्र कुलिसायुध नाना॥
डारइ परसु परिघ पाषाना। लागेउ बृष्टि करै बहु बाना॥1॥

भावार्थ:- वह शक्ति, शूल, तलवार, कृपाण आदि अस्त्र, शास्त्र एवं वज्र आदि बहुत से आयुध चलाने तथा फरसे, परिघ, पत्थर आदि डालने और बहुत से बाणों की वृष्टि करने लगा॥1॥

* दस दिसि रहे बान नभ छाई। मानहुँ मघा मेघ झरि लाई॥
धरु धरु मारु सुनिअ धुनि काना। जो मारइ तेहि कोउ न जाना॥2॥

भावार्थ:- आकाश में दसों दिशाओं में बाण छा गए, मानो मघा नक्षत्र के बादलों ने झड़ी लगा दी हो। 'पकड़ो, पकड़ो, मारो' ये शब्द सुनाई पड़ते हैं। पर जो मार रहा है, उसे कोई नहीं जान पाता॥2॥

* गहि गिरि तरु अकास कपि धावहिं। देखहिं तेहि न दुखित फिरि आवहिं॥
अवघट घाट बाट गिरि कंदर। माया बल कीन्हेसि सर पंजर॥3॥

भावार्थ:- पर्वत और वृक्षों को लेकर वानर आकाश में दौड़कर जाते हैं। पर उसे देख नहीं पाते, इससे दुःखी होकर लौट आते हैं। मेघनाद ने माया के बल से अटपटी घाटियों, रास्तों और पर्वतों-कन्दराओं को बाणों के पिंजरे बना दिए (बाणों से छा दिया)॥3॥

* जाहिं कहाँ ब्याकुल भए बंदर। सुरपति बंदि परे जनु मंदर॥

मारुतसुत अंगद नल नीला। कीन्हेसि बिकल सकल बलसीला॥4॥

भावार्थ:-अब कहाँ जाएँ, यह सोचकर (रास्ता न पाकर) वानर व्याकुल हो गए। मानो पर्वत इंद्र की कैद में पड़े हों। मेघनाद ने मारुति हनुमान्, अंगद, नल और नील आदि सभी बलवानों को व्याकुल कर दिया॥4॥

* पुनि लछिमन सुग्रीव बिभीषन। सरन्हि मारि कीन्हेसि जर्जर तन॥
पुनि रघुपति सैं जूझै लागा। सर छाँड़इ होइ लागहिं नागा॥5॥

भावार्थ:-फिर उसने लक्ष्मणजी, सुग्रीव और विभीषण को बाणों से मारकर उनके शरीर को छलनी कर दिया। फिर वह श्री रघुनाथजी से लड़ने लगा। वह जो बाण छोड़ता है, वे साँप होकर लगते हैं॥5॥

* ब्याल पास बस भए खरारी। स्वबस अनंत एक अबिकारी॥
नट इव कपट चरित कर नाना। सदा स्वतंत्र एक भगवाना॥6॥

भावार्थ:- जो स्वतंत्र, अनन्त, एक (अखंड) और निर्विकार हैं, वे खर के शत्रु श्री रामजी (लीला से) नागपाश के वश में हो गए (उससे बँध गए) श्री रामचंद्रजी सदा स्वतंत्र, एक, (अद्वितीय) भगवान् हैं। वे नट की तरह अनेकों प्रकार के दिखावटी चरित्र करते हैं॥6॥

* रन सोभा लगि प्रभुहिं बँधायो। नागपास देवन्ह भय पायो॥7॥

भावार्थ:-रण की शोभा के लिए प्रभु ने अपने को नागपाश में बाँध लिया, किन्तु उससे देवताओं को बड़ा भय हुआ॥7॥

दोहा :

* गिरिजा जासु नाम जपि मुनि काटहिं भव पास।
सो कि बंध तर आवइ ब्यापक बिस्व निवास॥73॥

भावार्थ:- (शिवजी कहते हैं-) हे गिरिजे! जिनका नाम जपकर मुनि भव (जन्म-मृत्यु) की फाँसी को काट डालते हैं, वे सर्वव्यापक और विश्व निवास (विश्व के आधार) प्रभु कहीं बंधन में आ सकते हैं?॥73॥

चौपाई :

* चरित राम के सगुन भवानी। तर्कि न जाहिं बुद्धि बल बानी॥
अस बिचारि जे तग्य बिरागी। रामहि भजहिं तर्क सब त्यागी॥1॥

भावार्थ:-हे भवानी! श्री रामजी की इस सगुण लीलाओं के विषय में बुद्धि और वाणी के बल से तर्क (निर्णय) नहीं किया जा सकता। ऐसा विचार कर जो तत्त्वज्ञानी और विरक्त पुरुष हैं, वे सब तर्क (शंका) छोड़कर श्री रामजी का भजन ही करते हैं॥।1॥

* ब्याकुल कटकु कीन्ह घननादा। पुनि भा प्रगट कहइ दुर्बादा॥
जामवंत कह खल रहु ठाढ़ा। सुनि करि ताहि क्रोध अति बाढ़ा॥2॥

भावार्थ:- मेघनाद ने सेना को व्याकुल कर दिया। फिर वह प्रकट हो गया और दुर्वचन कहने लगा। इस पर जाम्बवान्‌ ने कहा- अरे दुष्ट! खड़ा रह। यह सुनकर उसे बड़ा क्रोध बढ़ा॥2॥

* बूढ़ जानि सठ छाँड़ेउँ तोही। लागेसि अधम पचारै मोही॥
अस कहि तरल त्रिसूल चलायो। जामवंत कर गहि सोइ धायो॥3॥

भावार्थ:-अरे मूर्ख! मैंने बूढ़ा जानकर तुझको छोड़ दिया था। अरे अधम! अब तू मुझे ही ललकारने लगा है? ऐसा कहकर उसने चमकता हुआ त्रिशूल चलाया। जाम्बवान्‌ उसी त्रिशूल को हाथ से पकड़कर दौड़ा॥3॥

* मारिसि मेघनाद कै छाती। परा भूमि घुर्मित सुरघाती॥
पुनि रिसान गहि चरन फिरायो। महि पछारि निज बल देखरायो॥4॥

भावार्थ:-और उसे मेघनाद की छाती पर दे मारा। वह देवताओं का शत्रु चक्कर खाकर पृथ्वी पर गिर पड़ा। जाम्बवान्‌ ने फिर क्रोध में भरकर पैर

पकड़कर उसको घुमाया और पृथ्वी पर पटककर उसे अपना बल दिखलाया॥4॥

* बर प्रसाद सो मरइ न मारा। तब गहि पद लंका पर डारा॥

इहाँ देवरिषि गरुड़ पठायो। राम समीप सपदि सो आयो॥5॥

भावार्थ:-(किन्तु) वरदान के प्रताप से वह मारे नहीं मरता। तब जाम्बवान्‌ ने उसका पैर पकड़कर उसे लंका पर फेंक दिया। इधर देवर्षि नारदजी ने गरुड़ को भेजा। वे तुरंत ही श्री रामजी के पास आ पहुँचे॥5॥

दोहा :

* खगपति सब धरि खाए माया नाग बरुथ।

माया बिगत भए सब हरषे बानर जूथ॥74 क॥

भावार्थ:-पक्षीराज गरुड़जी सब माया-सर्पों के समूहों को पकड़कर खा गए। तब सब वानरों के झुंड माया से रहित होकर हर्षित हुए॥74 (क)॥

* गहि गिरि पादप उपल नख धाए कीस रिसाइ।

चले तमीचर बिकलतर गढ़ पर चढ़े पराइ॥74 ख॥

भावार्थ:- पर्वत, वृक्ष, पत्थर और नख धारण किए वानर क्रोधित होकर दौड़े। निशाचर विशेष व्याकुल होकर भाग चले और भागकर किले पर चढ़ गए॥74 (ख)॥

मेघनाद यज्ञ विध्वंस, युद्ध और मेघनाद उद्धार

चौपाई :

गीताप्रेस गोरखपुर

* मेघनाद कै मुरछा जागी। पितहि बिलोकि लाज अति लागी॥
तुरत गयउ गिरिबर कंदरा। करौं अजय मख अस मन धरा॥1॥

भावार्थ:- मेघनाद की मूर्च्छा छूटी, (तब) पिता को देखकर उसे बड़ी शर्म लगी। मैं अजय (अजेय होने को) यज्ञ करूँ, ऐसा मन में निश्चय करके वह तुरंत श्रेष्ठ पर्वत की गुफा में चला गया॥1॥

* इहाँ बिभीषन मंत्र बिचारा। सुनहु नाथ बल अतुल उदारा॥
मेघनाद मख करइ अपावन। खल मायावी देव सतावन॥2॥

भावार्थ:- यहाँ विभीषण ने सलाह विचारी (और श्री रामचंद्रजी से कहा-) हे अतुलनीय बलवान्‌ उदार प्रभो! देवताओं को सताने वाला दुष्ट, मायावी मेघनाद अपवित्र यज्ञ कर रहा है॥2॥

* जौं प्रभु सिद्ध होइ सो पाइहि। नाथ बेगि पुनि जीति न जाइहि॥
सुनि रघुपति अतिसय सुख माना। बोले अंगदादि कपि नाना॥3॥

भावार्थ:- हे प्रभो! यदि वह यज्ञ सिद्ध हो पाएगा तो हे नाथ! फिर मेघनाद जल्दी जीता न जा सकेगा। यह सुनकर श्री रघुनाथजी ने बहुत सुख माना और अंगदादि बहुत से वानरों को बुलाया (और कहा-)॥3॥

* लछिमन संग जाहु सब भाई। करहु बिधंस जग्य कर जाई॥
तुम्ह लछिमन मारेहु रन ओही। देखि सभय सुर दुख अति मोही॥4॥

भावार्थ:- हे भाइयों! सब लोग लक्ष्मण के साथ जाओ और जाकर यज्ञ को विध्वंस करो। हे लक्ष्मण! संग्राम में तुम उसे मारना। देवताओं को भयभीत देखकर मुझे बड़ा दुःख है॥4॥

* मारेहु तेहि बल बुद्धि उपाई। जेहिं छीजै निसिचर सुनु भाई॥
जामवंत सुग्रीव बिभीषन। सेन समेत रहेहु तीनिउ जन॥5॥

भावार्थ:-हे भाई! सुनो, उसको ऐसे बल और बुद्धि के उपाय से मारना, जिससे निशाचर का नाश हो। हे जाम्बवान, सुग्रीव और विभीषण! तुम तीनों जन सेना समेत (इनके) साथ रहना॥5॥

* जब रघुबीर दीन्हि अनुसासन। कटि निषंग कसि साजि सरासन॥
प्रभु प्रताप उर धरि रनधीरा। बोले घन इव गिरा गँभीरा॥6॥

भावार्थ:-(इस प्रकार) जब श्री रघुवीर ने आज्ञा दी, तब कमर में तरकस कसकर और धनुष सजाकर (चढ़ाकर) रणधीर श्री लक्ष्मणजी प्रभु के प्रताप को हृदय में धारण करके मेघ के समान गंभीर वाणी बोले-॥6॥

* जौं तेहि आजु बंधे बिनु आवौं। तौ रघुपति सेवक न कहावौं॥
जौं सत संकर करहिं सहाई। तदपि हतउँ रघुबीर दोहाई॥7॥

भावार्थ:- यदि मैं आज उसे बिना मारे आऊँ, तो श्री रघुनाथजी का सेवक न कहलाऊँ। यदि सैकड़ों शंकर भी उसकी सहायता करें तो भी श्री रघुवीर की दुहाई है, आज मैं उसे मार ही डालूँगा॥7॥

दोहा :

* रघुपति चरन नाइ सिरु चलेउ तुरंत अनंत।
अंगद नील मयंद नल संग सुभट हनुमंत॥75॥

भावार्थ:-श्री रघुनाथजी के चरणों में सिर नवाकर शेषावतार श्री लक्ष्मणजी तुरंत चले। उनके साथ अंगद, नील, मयंद, नल और हनुमान आदि उत्तम योद्धा थे॥75॥

चौपाई :

* जाइ कपिन्ह सो देखा बैसा। आहुति देत रुधिर अरु भैंसा॥
कीन्ह कपिन्ह सब जग्य बिधंसा। जब न उठइ तब करहिं प्रसंसा॥1॥

भावार्थ:- वानरों ने जाकर देखा कि वह बैठा हुआ खून और भैंसे की आहुति दे रहा है। वानरों ने सब यज्ञ विध्वंस कर दिया। फिर भी वह नहीं उठा, तब वे उसकी प्रशंसा करने लगे॥1॥

* तदपि न उठइ धरेन्हि कच जाई। लातन्हि हति हति चले पराई॥

लै त्रिसूल धावा कपि भागे। आए जहँ रामानुज आगे॥2॥

भावार्थ:-इतने पर भी वह न उठा, (तब) उन्होंने जाकर उसके बाल पकड़े और लातों से मार-मारकर वे भाग चले। वह त्रिशूल लेकर दौड़ा, तब वानर भागे और वहाँ आ गए, जहाँ आगे लक्ष्मणजी खड़े थे॥2॥

* आवा परम क्रोध कर मारा। गर्ज घोर रव बारहिं बारा॥

कोपि मरुतसुत अंगद धाए। हति त्रिसूल उर धरनि गिराए॥3॥

भावार्थ:- वह अत्यंत क्रोध का मारा हुआ आया और बार-बार भयंकर शब्द करके गरजने लगा। मारुति (हनुमान्) और अंगद क्रोध करके दौड़े। उसने छाती में त्रिशूल मारकर दोनों को धरती पर गिरा दिया॥3॥

* प्रभु कहँ छाँड़ेसि सूल प्रचंडा। सर हति कृत अनंत जुग खंडा॥

उठि बहोरि मारुति जुबराजा। हतहिं कोपि तेहि घाउ न बाजा॥4॥

भावार्थ:-फिर उसने प्रभु श्री लक्ष्मणजी पर त्रिशूल छोड़ा। अनन्त (श्री लक्ष्मणजी) ने बाण मारकर उसके दो टुकड़े कर दिए। हनुमान्जी और युवराज अंगद फिर उठकर क्रोध करके उसे मारने लगे, उसे चोट न लगी॥4॥

* फिरे बीर रिपु मरइ न मारा। तब धावा करि घोर चिकारा॥

आवत देखि कुरद्ध जनु काला। लछिमन छाड़े बिसिख कराला॥5॥

भावार्थ:-शत्रु (मेघनाद) मारे नहीं मरता, यह देखकर जब वीर लौटे, तब वह घोर चिग्घाड़ करके दौड़ा। उसे क्रुद्ध काल की तरह आता देखकर लक्ष्मणजी ने भयानक बाण छोड़े॥5॥

* देखेसि आवत पबि सम बाना। तुरत भयउ खल अंतरधाना॥

बिबिध बेष धरि करइ लराई। कबहुँक प्रगट कबहुँ दुरि जाई॥6॥

भावार्थ:- वज्र के समान बाणों को आते देखकर वह दुष्ट तुरंत अंतर्धान हो गया और फिर भाँति-भाँति के रूप धारण करके युद्ध करने लगा। वह कभी प्रकट होता था और कभी छिप जाता था॥6॥

* देखि अजय रिपु डरपे कीसा। परम क्रुद्ध तब भयउ अहीसा॥

लछिमन मन अस मंत्र दृढ़ावा। ऐहि पापिहि मैं बहुत खेलावा॥7॥

भावार्थ:-शत्रु को पराजित न होता देखकर वानर डरे। तब सर्पराज शेषजी (लक्ष्मणजी) बहुत क्रोधित हुए। लक्ष्मणजी ने मन में यह विचार दृढ़ किया कि इस पापी को मैं बहुत खेला चुका (अब और अधिक खेलाना अच्छा नहीं, अब तो इसे समाप्त ही कर देना चाहिए।)॥7॥

* सुमिरि कोसलाधीस प्रतापा। सर संधान कीन्ह करि दापा॥

छाड़ा बान माझ उर लागा। मरती बार कपटु सब त्यागा॥8॥

भावार्थ:- कोसलपति श्री रामजी के प्रताप का स्मरण करके लक्ष्मणजी ने वीरोचित दर्प करके बाण का संधान किया। बाण छोड़ते ही उसकी छाती के बीच में लगा। मरते समय उसने सब कपट त्याग दिया॥8॥

दोहा :

* रामानुज कहँ रामु कहँ अस कहि छाँड़ेसि प्रान।

धन्य धन्य तव जननी कह अंगद हनुमान॥76॥

भावार्थ:- राम के छोटे भाई लक्ष्मण कहाँ हैं? राम कहाँ हैं? ऐसा कहकर उसने प्राण छोड़ दिए। अंगद और हनुमान कहने लगे- तेरी माता धन्य

है, धन्य है (जो तू लक्ष्मणजी के हाथों मरा और मरते समय श्री राम-लक्ष्मण को स्मरण करके तूने उनके नामों का उच्चारण किया।)॥76॥

चौपाई :

* बिनु प्रयास हनुमान उठायो। लंका द्वार राखि पुनि आयो॥
तासु मरन सुनि सुर गंधर्बा। चढ़ि बिमान आए नभ सर्बा॥1॥

भावार्थ:- हनुमान्‌जी ने उसको बिना ही परिश्रम के उठा लिया और लंका के दरवाजे पर रखकर वे लौट आए। उसका मरना सुनकर देवता और गंधर्व आदि सब विमानों पर चढ़कर आकाश में आए॥1॥

* बरषि सुमन दुंदुभीं बजावहिं। श्रीरघुनाथ बिमल जसु गावहिं॥
जय अनंत जय जगदाधारा। तुम्ह प्रभु सब देवन्हि निस्तारा॥2॥

भावार्थ:- वे फूल बरसाकर नगाड़े बजाते हैं और श्री रघुनाथजी का निर्मल यश गाते हैं। हे अनन्त! आपकी जय हो, हे जगदाधार! आपकी जय हो। हे प्रभो! आपने सब देवताओं का (महान्‌ विपत्ति से) उद्धार किया॥2॥

* अस्तुति करि सुर सिद्ध सिधाए। लछिमन कृपासिंधु पहिं आए॥
सुत बध सुना दसानन जबहीं। मुरुछित भयउ परेउ महि तबहीं॥3॥

भावार्थ:-देवता और सिद्ध स्तुति करके चले गए, तब लक्ष्मणजी कृपा के समुद्र श्री रामजी के पास आए। रावण ने ज्यों ही पुत्रवध का समाचार सुना, त्यों ही वह मूर्च्छित होकर पृथ्वी पर गिर पड़ा॥3॥

* मंदोदरी रुदन कर भारी। उर ताड़न बहु भाँति पुकारी॥
रनगर लोग सब ब्याकुल सोचा। सकल कहहिं दसकंधर पोचा॥4॥

भावार्थ:-मंदोदरी छाती पीट-पीटकर और बहुत प्रकार से पुकार-पुकारकर बड़ा भारी विलाप करने लगी। नगर के सब लोग शोक से व्याकुल हो गए। सभी रावण को नीच कहने लगे॥4॥

दोहा :

* तब दसकंठ बिबिधि बिधि समुझाईं सब नारि।
नस्वर रूप जगत सब देखहु हृदयँ बिचारि॥77॥

भावार्थ:- तब रावण ने सब स्त्रियों को अनेकों प्रकार से समझाया कि समस्त जगत् का यह (दृश्य)रूप नाशवान् है, हृदय में विचारकर देखो॥77॥

चौपाई :

* तिन्हहि ग्यान उपदेसा रावन। आपुन मंद कथा सुभ पावन॥
पर उपदेस कुसल बहुतेरे। जे आचरहिं ते नर न घनेरे॥1॥

भावार्थ:- रावण ने उनको ज्ञान का उपदेश किया। वह स्वयं तो नीच है, पर उसकी कथा (बातें) शुभ और पवित्र हैं। दूसरों को उपदेश देने में तो बहुत लोग निपुण होते हैं। पर ऐसे लोग अधिक नहीं हैं, जो उपदेश के अनुसार आचरण भी करते हैं॥1॥

* निसा सिरानि भयउ भिनुसारा। लगे भालु कपि चारिहुँ द्वारा॥
सुभट बोलाइ दसानन बोला। रन सन्मुख जाकर मन डोला॥2॥

भावार्थ:- रात बीत गई, सबेरा हुआ। रीछ-वानर (फिर) चारों दरवाजों पर जा डटे। योद्धाओं को बुलाकर दशमुख रावण ने कहा- लड़ाई में शत्रु के सम्मुख मन डाँवाडोल हो,॥2॥

* सो अबहीं बरु जाउ पराई। संजुग बिमुख भएँ न भलाई॥
निज भुज बल मैं बयरु बढ़ावा। देहउँ उतरु जो रिपु चढ़ि आवा॥3॥

भावार्थ:- अच्छा है वह अभी भाग जाए। युद्ध में जाकर विमुख होने (भागने) में भलाई नहीं है। मैंने अपनी भुजाओं के बल पर बैर बढ़ाया है। जो शत्रु चढ़ आया है, उसको मैं (अपने ही) उत्तर दे लूँगा॥3॥

* अस कहि मरुत बेग रथ साजा। बाजे सकल जुझाऊ बाजा॥
चले बीर सब अतुलित बली। जनु कज्जल कै आँधी चली॥4॥

भावार्थ:-ऐसा कहकर उसने पवन के समान तेज चलने वाला रथ सजाया। सारे जुझाऊ (लड़ाई के) बाजे बजने लगे। सब अतुलनीय बलवान् वीर ऐसे चले मानो काजल की आँधी चली हो॥4॥

दोहा :

*असगुन अमित होहिं तेहि काला। गनइ न भुज बल गर्ब बिसाला॥5॥

भावार्थ:- उस समय असंख्य अपशकुन होने लगे। पर अपनी भुजाओं के बल का बड़ा गर्व होने से रावण उन्हें गिनता नहीं है॥5॥

छंद :

* अति गर्ब गनइ न सगुन असगुन स्रवहिं आयुध हाथ ते।
भट गिरत रथ ते बाजि गज चिक्करत भाजहिं साथ ते॥
गोमाय गीध कराल खर रव स्वान बोलहिं अति घने।
जनु कालदूत उलूक बोलहिं बचन परम भयावने॥

भावार्थ:-अत्यंत गर्व के कारण वह शकुन-अपशकुन का विचार नहीं करता। हथियार हाथों से गिर रहे हैं। योद्धा रथ से गिर पड़ते हैं। घोड़े, हाथी साथ छोड़कर चिग्घाड़ते हुए भाग जाते हैं। स्यार, गीध, कौए और गदहे शब्द कर रहे हैं। बहुत अधिक कुत्ते बोल रहे हैं। उल्लू ऐसे अत्यंत भयानक शब्द कर रहे हैं, मानो काल के दूत हों। (मृत्यु का संदेसा सुना रहे हों)।

रावण का युद्ध के लिए प्रस्थान और श्री रामजी का विजयरथ तथा वानर-राक्षसों का युद्ध

दोहा :

* ताहि कि संपति सगुन सुभ सपनेहुँ मन बिश्राम।

भूत द्रोह रत मोहबस राम बिमुख रति काम॥78॥

भावार्थ:- जो जीवों के द्रोह में रत है, मोह के बस हो रहा है, रामविमुख है और कामासक्त है, उसको क्या कभी स्वप्न में भी सम्पत्ति, शुभ शकुन और चित्त की शांति हो सकती है?॥78॥

चौपाई :

* चलेउ निसाचर कटकु अपारा। चतुरंगिनी अनी बहु धारा॥

बिबिधि भाँति बाहन रथ जाना। बिपुल बरन पताक ध्वज नाना॥1॥

भावार्थ:- राक्षसों की अपार सेना चली। चतुरंगिणी सेना की बहुत सी Uटुकड़ियाँ हैं। अनेकों प्रकार के वाहन, रथ और सवारियाँ हैं तथा बहुत से रंगों की अनेकों पताकाएँ और ध्वजाएँ हैं॥1॥

* चले मत्त गज जूथ घनेरे। प्राबिट जलद मरुत जनु प्रेरे॥

बरन बरन बिरदैत निकाया। समर सूर जानहिं बहु माया॥2॥

भावार्थ:- मतवाले हाथियों के बहुत से झुंड चले। मानो पवन से प्रेरित हुए वर्षा ऋतु के बादल हों। रंग-बिरंगे बाना धारण करने वाले वीरों के समूह हैं, जो युद्ध में बड़े शूरवीर हैं और बहुत प्रकार की माया जानते हैं॥2॥

* अति बिचित्र बाहिनी बिराजी। बीर बसंत सेन जनु साजी॥

चलत कटक दिगसिंधुर डगहीं। छुभित पयोधि कुधर डगमगहीं॥3॥

भावार्थ:- अत्यंत विचित्र फौज शोभित है। मानो वीर वसंत ने सेना सजाई हो। सेना के चलने से दिशाओं के हाथी डिगने लगे, समुद्र क्षुभित हो गए और पर्वत डगमगाने लगे॥3॥

* उठी रेनु रबि गयउ छपाई। मरुत थकित बसुधा अकुलाई॥
पनव निसान घोर रव बाजहिं। प्रलय समय के घन जनु गाजहिं॥4॥

भावार्थ:-इतनी धूल उड़ी कि सूर्य छिप गए। (फिर सहसा) पवन रुक गया और पृथ्वी अकुला उठी। ढोल और नगाड़े भीषण ध्वनि से बज रहे हैं, जैसे प्रलयकाल के बादल गरज रहे हों॥4॥

* भेरि नफीरि बाज सहनाई। मारू राग सुभट सुखदाई॥
केहरि नाद बीर सब करहीं। निज निज बल पौरुष उच्चरहीं॥5॥

भावार्थ:-भेरी, नफीरी (तुरही) और शहनाई में योद्धाओं को सुख देने वाला मारू राग बज रहा है। सब वीर सिंहनाद करते हैं और अपने-अपने बल पौरुष का बखान कर रहे हैं॥5॥

* कहइ दसानन सुनहू सुभट्टा। मर्दहु भालु कपिन्ह के ठट्टा॥
हौं मारिहउँ भूप द्वौ भाई। अस कहि सन्मुख फौज रेंगाई॥6॥

भावार्थ:- रावण ने कहा- हे उत्तम योद्धाओं! सुनो तुम रीछ-वानरों के ठट्ट को मसल डालो और मैं दोनों राजकुमार भाइयों को मारूँगा। ऐसा कहकर उसने अपनी सेना सामने चलाई॥6॥

* यह सुधि सकल कपिन्ह जब पाई। धाए करि रघुबीर दोहाई॥7॥

भावार्थ:-जब सब वानरों ने यह खबर पाई, तब वे श्री राम की दुहाई देते हुए दौड़े॥7॥

छंद :

* धाए बिसाल कराल मर्कट भालु काल समान ते।
मानहुँ सपच्छ उड़ाहिं भूधर बृंद नाना बान ते॥

नख दसन सैल महाद्रुमायुध सबल संक न मानहीं।
जय राम रावन मत्त गज मृगराज सुजसु बखानहीं॥

भावार्थ:- वे विशाल और काल के समान कराल वानर-भालू दौड़े। मानो पंख वाले पर्वतों के समूह उड़ रहे हों। वे अनेक वर्णों के हैं। नख, दाँत, पर्वत और बड़े-बड़े वृक्ष ही उनके हथियार हैं। वे बड़े बलवान् हैं और किसी का भी डर नहीं मानते। रावण रूपी मतवाले हाथी के लिए सिंह रूप श्री रामजी का जय-जयकार करके वे उनके सुंदर यश का बखान करते हैं।

दोहा :

* दुहु दिसि जय जयकार करि निज जोरी जानि।
भिरे बीर इत रामहि उत रावनहि बखानि॥79॥

भावार्थ:-दोनों ओर के योद्धा जय-जयकार करके अपनी-अपनी जोड़ी जान (चुन) कर इधर श्री रघुनाथजी का और उधर रावण का बखान करके परस्पर भिड़ गए॥79॥

चौपाई :

* रावनु रथी बिरथ रघुबीरा। देखि बिभीषन भयउ अधीरा॥
अधिक प्रीति मन भा संदेहा। बंदि चरन कह सहित सनेहा॥1॥

भावार्थ:- रावण को रथ पर और श्री रघुवीर को बिना रथ के देखकर विभीषण अधीर हो गए। प्रेम अधिक होने से उनके मन में सन्देह हो गया (कि वे बिना रथ के रावण को कैसे जीत सकेंगे)। श्री रामजी के चरणों की वंदना करके वे स्नेह पूर्वक कहने लगे॥1॥

* नाथ न रथ नहि तन पद त्राना। केहि बिधि जितब बीर बलवाना॥
सुनहु सखा कह कृपानिधाना। जेहिं जय होइ सो स्यंदन आना॥2॥

भावार्थ:-हे नाथ! आपके न रथ है, न तन की रक्षा करने वाला कवच है और न जूते ही हैं। वह बलवान् वीर रावण किस प्रकार जीता जाएगा?

कृपानिधान श्री रामजी ने कहा- हे सखे! सुनो, जिससे जय होती है, वह रथ दूसरा ही है॥2॥

* सौरज धीरज तेहि रथ चाका। सत्य सील दृढ़ ध्वजा पताका॥
बल बिबेक दम परहित घोरे। छमा कृपा समता रजु जोरे॥3॥

भावार्थ:-शौर्य और धैर्य उस रथ के पहिए हैं। सत्य और शील (सदाचार) उसकी मजबूत ध्वजा और पताका हैं। बल, विवेक, दम (इंद्रियों का वश में होना) और परोपकार- ये चार उसके घोड़े हैं, जो क्षमा, दया और समता रूपी डोरी से रथ में जोड़े हुए हैं॥3॥

* ईस भजनु सारथी सुजाना। बिरति चर्म संतोष कृपाना॥
दान परसु बुधि सक्ति प्रचंडा। बर बिग्यान कठिन कोदंडा॥4॥

भावार्थ:- ईश्वर का भजन ही (उस रथ को चलाने वाला) चतुर सारथी है। वैराग्य ढाल है और संतोष तलवार है। दान फरसा है, बुद्धि प्रचण्ड शक्ति है, श्रेष्ठ विज्ञान कठिन धनुष है॥4॥

* अमल अचल मन त्रोन समाना। सम जम नियम सिलीमुख नाना॥
कवच अभेद बिप्र गुर पूजा। एहि सम बिजय उपाय न दूजा॥5॥

भावार्थ:-निर्मल (पापरहित) और अचल (स्थिर) मन तरकस के समान है। शम (मन का वश में होना), (अहिंसादि) यम और (शौचादि) नियम- ये बहुत से बाण हैं। ब्राह्मणों और गुरु का पूजन अभेद्य कवच है। इसके समान विजय का दूसरा उपाय नहीं है॥5॥

* सखा धर्ममय अस रथ जाकें। जीतन कहँ न कतहुँ रिपु ताकें॥6॥

भावार्थ:- हे सखे! ऐसा धर्ममय रथ जिसके हो उसके लिए जीतने को कहीं शत्रु ही नहीं है॥6॥

दोहा :

* महा अजय संसार रिपु जीति सकइ सो बीर।

जाकें अस रथ होइ दृढ़ सुनहु सखा मतिधीर॥80 क॥

भावार्थ:- हे धीरबुद्धि वाले सखा! सुनो, जिसके पास ऐसा दृढ़ रथ हो, वह वीर संसार (जन्म-मृत्यु) रूपी महान् दुर्जय शत्रु को भी जीत सकता है (रावण की तो बात ही क्या है)॥80 (क)॥

* सुनि प्रभु बचन बिभीषन हरषि गहे पद कंज।

एहि मिस मोहि उपदेसेहु राम कृपा सुख पुंज॥80 ख

भावार्थ:- प्रभु के वचन सुनकर विभीषणजी ने हर्षित होकर उनके चरण कमल पकड़ लिए (और कहा-) हे कृपा और सुख के समूह श्री रामजी! आपने इसी बहाने मुझे (महान्) उपदेश दिया॥80 (ख)॥

* उत पचार दसकंधर इत अंगद हनुमान।

लरत निसाचर भालु कपि करि निज निज प्रभु आन॥80 ग॥

भावार्थ:- उधर से रावण ललकार रहा है और इधर से अंगद और हनुमान्। राक्षस और रीछ-वानर अपने-अपने स्वामी की दुहाई देकर लड़ रहे हैं॥80 (ग)॥

चौपाई :

* सुर ब्रह्मादि सिद्ध मुनि नाना। देखत रन नभ चढ़े बिमाना॥

हमहू उमा रहे तेहिं संगा। देखत राम चरित रन रंगा॥1॥

भावार्थ:-ब्रह्मा आदि देवता और अनेकों सिद्ध तथा मुनि विमानों पर चढ़े हुए आकाश से युद्ध देख रहे हैं। (शिवजी कहते हैं-) हे उमा! मैं भी उस समाज में था और श्री रामजी के रण-रंग (रणोत्साह) की लीला देख रहा था॥1॥

* सुभट समर रस दुहु दिसि माते। कपि जयसील राम बल ताते॥

एक एक सन भिरहिं पचारहिं। एकन्ह एक मर्दि महि पारहिं॥2॥

भावार्थ:-दोनों ओर के योद्धा रण रस में मतवाले हो रहे हैं। वानरों को श्री रामजी का बल है, इससे वे जयशील हैं (जीत रहे हैं)। एक-दूसरे से भिड़ते और ललकारते हैं और एक-दूसरे को मसल-मसलकर पृथ्वी पर डाल देते हैं॥2॥

* मारहिं काटहिं धरहिं पछारहिं। सीस तोरि सीसन्ह सन मारहिं॥
उदर बिदारहिं भुजा उपारहिं। गहि पद अवनि पटकि भट डारहिं॥3॥

भावार्थ:- वे मारते, काटते, पकड़ते और पछाड़ देते हैं और सिर तोड़कर उन्हीं सिरों से दूसरों को मारते हैं। पेट फाड़ते हैं, भुजाएँ उखाड़ते हैं और योद्धाओं को पैर पकड़कर पृथ्वी पर पटक देते हैं॥3॥

* निसिचर भट महि गाड़हिं भालू। ऊपर ढारि देहिं बहु बालू॥
बीर बलीमुख जुद्ध बिरुद्धे। देखिअत बिपुल काल जनु क्रुद्धे॥4॥

भावार्थ:- राक्षस योद्धाओं को भालू पृथ्वी में गाड़ देते हैं और ऊपर से बहुत सी बालू डाल देते हैं। युद्ध में शत्रुओं से विरुद्ध हुए वीर वानर ऐसे दिखाई पड़ते हैं मानो बहुत से क्रोधित काल हों॥4॥

छंद :

* क्रुद्धे कृतांत समान कपि तन स्रवत सोनित राजहीं।
मर्दहिं निसाचर कटक भट बलवंत घन जिमि गाजहीं॥
मारहिं चपेटन्हि डाटि दातन्ह काटि लातन्ह मीजहीं।
चिक्करहिं मर्कट भालु छल बल करहिं जेहिं खल छीजहीं॥1॥

भावार्थ:- क्रोधित हुए काल के समान वे वानर खून बहते हुए शरीरों से शोभित हो रहे हैं। वे बलवान् वीर राक्षसों की सेना के योद्धाओं को मसलते और मेघ की तरह गरजते हैं। डाँटकर चपेटों से मारते, दाँतों से काटकर लातों से पीस डालते हैं। वानर-भालू चिग्घाड़ते और ऐसा छल-बल करते हैं, जिससे दुष्ट राक्षस नष्ट हो जाएँ॥1॥

* धरि गाल फारहिं उर बिदारहिं गल अँतावरि मेलहीं।
प्रह्लादपति जनु बिबिध तनु धरि समर अंगन खेलहीं॥
धरु मारु काटु पछारु घोर गिरा गगन महि भरि रही।
जय राम जो तृन ते कुलिस कर कुलिस ते कर तृन सही॥2॥

भावार्थ:- वे राक्षसों के गाल पकड़कर फाड़ डालते हैं, छाती चीर डालते हैं और उनकी अँतड़ियाँ निकालकर गले में डाल लेते हैं। वे वानर ऐसे दिख पड़ते हैं मानो प्रह्लाद के स्वामी श्री नृसिंह भगवान्‌ अनेकों शरीर धारण करके युद्ध के मैदान में क्रीड़ा कर रहे हों। पकड़ो, मारो, काटो, पछाड़ो आदि घोर शब्द आकाश और पृथ्वी में भर (छा) गए हैं। श्री रामचंद्रजी की जय हो, जो सचमुच तृण से वज्र और वज्र से तृण कर देते हैं (निर्बल को सबल और सबल को निर्बल कर देते हैं)॥2॥

दोहा :

* निज दल बिचलत देखेसि बीस भुजाँ दस चाप।
रथ चढ़ि चलेउ दसानन फिरहु फिरहु करि दाप॥81॥

भावार्थ:-अपनी सेना को विचलित होते हुए देखा, तब बीस भुजाओं में दस धनुष लेकर रावण रथ पर चढ़कर गर्व करके 'लौटो, लौटो' कहता हुआ चला॥81॥

चौपाई :

* धायउ परम क्रुद्ध दसकंधर। सन्मुख चले हूह दै बंदर॥
गहि कर पादप उपल पहारा। डारेन्हि ता पर एकहिं बारा॥1॥

भावार्थ:-रावण अत्यंत क्रोधित होकर दौड़ा। वानर हुँकार करते हुए (लड़ने के लिए) उसके सामने चले। उन्होंने हाथों में वृक्ष, पत्थर और पहाड़ लेकर रावण पर एक ही साथ डाले॥1॥

* लागहिं सैल बज्र तन तासू। खंड खंड होइ फूटहिं आसू॥

चला न अचल रहा रथ रोपी। रन दुर्मद रावन अति कोपी॥2॥

भावार्थ:-पर्वत उसके वज्रतुल्य शरीर में लगते ही तुरंत टुकड़े-टुकड़े होकर फूट जाते हैं। अत्यंत क्रोधी रणोन्मत्त रावण रथ रोककर अचल खड़ा रहा, (अपने स्थान से) जरा भी नहीं हिला॥2॥

* इत उत झपटि दपटि कपि जोधा। मर्दै लाग भयउ अति क्रोधा॥
चले पराइ भालु कपि नाना। त्राहि त्राहि अंगद हनुमाना॥3॥

भावार्थ:-उसे बहुत ही क्रोध हुआ। वह इधर-उधर झपटकर और डपटकर वानर योद्धाओं को मसलने लगा। अनेकों वानर-भालू 'हे अंगद! हे हनुमान्! रक्षा करो, रक्षा करो' (पुकारते हुए) भाग चले॥3॥

* पाहि पाहि रघुबीर गोसाईं। यह खल खाइ काल की नाईं॥
तेहिं देखे कपि सकल पराने। दसहुँ चाप सायक संधाने॥4॥

भावार्थ:-हे रघुवीर! हे गोसाईं! रक्षा कीजिए, रक्षा कीजिए। यह दुष्ट काल की भाँति हमें खा रहा है। उसने देखा कि सब वानर भाग छूटे, तब (रावण ने) दसों धनुषों पर बाण संधान किए॥4॥

छंद :

* संधानि धनु सर निकर छाड़ेसि उरग जिमि उड़ि लागहीं।
रहे पूरि सर धरनी गगन दिसि बिदिसि कहँ कपि भागहीं॥
भयो अति कोलाहल बिकल कपि दल भालु बोलहिं आतुरे।
रघुबीर करुना सिंधु आरत बंधु जन रच्छक हरे॥

भावार्थ:-उसने धनुष पर सन्धान करके बाणों के समूह छोड़े। वे बाण सर्प की तरह उड़कर जा लगते थे। पृथ्वी-आकाश और दिशा-विदिशा सर्वत्र बाण भर रहे हैं। वानर भागें तो कहाँ? अत्यंत कोलाहल मच गया। वानर-भालुओं की सेना व्याकुल होकर आर्त्त पुकार करने लगी- हे रघुवीर! हे करुणासागर! हे पीड़ितों के बन्धु! हे सेवकों की रक्षा करके उनके दुःख हरने वाले हरि!

लक्ष्मण-रावण युद्ध

दोहा :

* निज दल बिकल देखि कटि कसि निषंग धनु हाथ।

लछिमन चले क्रुद्ध होइ नाइ राम पद माथ॥82॥

भावार्थ:- अपनी सेना को व्याकुल देखकर कमर में तरकस कसकर और हाथ में धनुष लेकर श्री रघुनाथजी के चरणों पर मस्तक नवाकर लक्ष्मणजी क्रोधित होकर चले॥82॥

चौपाई :

* रे खल का मारसि कपि भालू। मोहि बिलोकु तोर मैं कालू॥

खोजत रहेउँ तोहि सुतघाती। आजु निपाति जुड़ावउँ छाती॥1॥

भावार्थ:- (लक्ष्मणजी ने पास जाकर कहा-) अरे दुष्ट! वानर भालुओं को क्या मार रहा है? मुझे देख, मैं तेरा काल हूँ। (रावण ने कहा-) अरे मेरे पुत्र के घातक! मैं तुझी को ढूँढ रहा था। आज तुझे मारकर (अपनी) छाती ठंडी करूँगा॥1॥

* अस कहि छाड़ेसि बान प्रचंडा। लछिमन किए सकल सत खंडा॥

कोटिन्ह आयुध रावन डारे। तिल प्रवान करि काटि निवारे॥2॥

भावार्थ:- ऐसा कहकर उसने प्रचण्ड बाण छोड़े। लक्ष्मणजी ने सबके सैकड़ों टुकड़े कर डाले। रावण ने करोड़ों अस्त्र-शस्त्र चलाए। लक्ष्मणजी ने उनको तिल के बराबर करके काटकर हटा दिया॥2॥

* पुनि निज बानन्ह कीन्ह प्रहारा। स्यंदनु भंजि सारथी मारा॥

सत सत सर मारे दस भाला। गिरि सृंगन्ह जनु प्रबिसहिं ब्याला॥3॥
भावार्थ:- फिर अपने बाणों से (उस पर) प्रहार किया और (उसके) रथ को तोड़कर सारथी को मार डाला। (रावण के) दसों मस्तकों में सौ-सौ बाण मारे। वे सिरों में ऐसे पैठ गए मानो पहाड़ के शिखरों में सर्प प्रवेश कर रहे हों॥3॥

* पुनि सुत सर मारा उर माहीं। परेउ धरनि तल सुधि कछु नाहीं॥
उठा प्रबल पुनि मुरुछा जागी। छाड़िसि ब्रह्म दीन्हि जो साँगी॥4॥

भावार्थ:-फिर सौ बाण उसकी छाती में मारे। वह पृथ्वी पर गिर पड़ा, उसे कुछ भी होश न रहा। फिर मूर्च्छा छूटने पर वह प्रबल रावण उठा और उसने वह शक्ति चलाई जो ब्रह्माजी ने उसे दी थी॥4॥

छंद :

* सो ब्रह्म दत्त प्रचंड सक्ति अनंत उर लागी सही।
पर्‌यो बीर बिकल उठाव दसमुख अतुल बल महिमा रही॥
ब्रह्मांड भवन बिराज जाकें एक सिर जिमि रज कनी।
तेहि चह उठावन मूढ़ रावन जान नहिं त्रिभुअन धनी॥

भावार्थ:-वह ब्रह्मा की दी हुई प्रचण्ड शक्ति लक्ष्मणजी की ठीक छाती में लगी। वीर लक्ष्मणजी व्याकुल होकर गिर पड़े। तब रावण उन्हें उठाने लगा, पर उसके अतुलित बल की महिमा यों ही रह गई, (व्यर्थ हो गई, वह उन्हें उठा न सका)। जिनके एक ही सिर पर ब्रह्मांड रूपी भवन धूल के एक कण के समान विराजता है, उन्हें मूर्ख रावण उठाना चाहता है! वह तीनों भुवनों के स्वामी लक्ष्मणजी को नहीं जानता।

षष्ठ सोपान- रावण मूर्च्छा, रावण यज्ञ विध्वंस, राम-रावण युद्ध

दोहा :

* देखि पवनसुत धायउ बोलत बचन कठोर।

आवत कपिहि हन्यो तेहिं मुष्टि प्रहार प्रघोर॥83॥

भावार्थ:- यह देखकर पवनपुत्र हनुमान्‌जी कठोर वचन बोलते हुए दौड़े। हनुमान्‌जी के आते ही रावण ने उन पर अत्यंत भयंकर घूँसे का प्रहार किया॥83॥

चौपाई:

* जानु टेकि कपि भूमि न गिरा। उठा सँभारि बहुत रिस भरा॥

मुठिका एक ताहि कपि मारा। परेउ सैल जनु बज्र प्रहारा॥1॥

भावार्थ:- हनुमान्‌जी घुटने टेककर रह गए, पृथ्वी पर गिरे नहीं और फिर क्रोध से भरे हुए संभलकर उठे। हनुमान्‌जी ने रावण को एक घूँसा मारा। वह ऐसा गिर पड़ा जैसे वज्र की मार से पर्वत गिरा हो॥1॥

* मुरुछा गै बहोरि सो जागा। कपि बल बिपुल सराहन लागा॥

धिग धिग मम पौरुष धिग मोही। जौं तैं जिअत रहेसि सुरद्रोही॥2॥

भावार्थ:-मूर्च्छा भंग होने पर फिर वह जागा और हनुमान्‌जी के बड़े भारी बल को सराहने लगा। (हनुमान्‌जी ने कहा-) मेरे पौरुष को धिक्कार है, धिक्कार है और मुझे भी धिक्कार है, जो हे देवद्रोही! तू अब भी जीता रह गया॥2॥

* अस कहि लछिमन कहुँ कपि ल्यायो। देखि दसानन बिसमय पायो॥

कह रघुबीर समुझु जियँ भ्राता। तुम्ह कृतांत भच्छक सुर त्राता॥3॥

भावार्थ:-ऐसा कहकर और लक्ष्मणजी को उठाकर हनुमान्‌जी श्री रघुनाथजी के पास ले आए। यह देखकर रावण को आश्चर्य हुआ। श्री

रघुवीर ने (लक्ष्मणजी से) कहा- हे भाई! हृदय में समझो, तुम काल के भी भक्षक और देवताओं के रक्षक हो॥3॥

* सुनत बचन उठि बैठ कृपाला। गई गगन सो सकति कराला॥
पुनि कोदंड बान गहि धाए। रिपु सन्मुख अति आतुर आए॥4॥

भावार्थ:-ये वचन सुनते ही कृपालु लक्ष्मणजी उठ बैठे। वह कराल शक्ति आकाश को चली गई। लक्ष्मणजी फिर धनुष-बाण लेकर दौड़े और बड़ी शीघ्रता से शत्रु के सामने आ पहुँचे॥4॥

छंद :

* आतुर बहोरि बिभंजि स्यंदन सूत हति ब्याकुल कियो।
गिर्‌यो धरनि दसकंधर बिकलतर बान सत बेध्यो हियो॥
सारथी दूसर घालि रथ तेहि तुरत लंका लै गयो।
रघुबीर बंधु प्रताप पुंज बहोरि प्रभु चरनन्हि नयो॥

भावार्थ:-फिर उन्होंने बड़ी ही शीघ्रता से रावण के रथ को चूर-चूर कर और सारथी को मारकर उसे (रावण को) व्याकुल कर दिया। सौ बाणों से उसका हृदय बेध दिया, जिससे रावण अत्यंत व्याकुल होकर पृथ्वी पर गिर पड़ा। तब दूसरा सारथी उसे रथ में डालकर तुरंत ही लंका को ले गया। प्रताप के समूह श्री रघुवीर के भाई लक्ष्मणजी ने फिर आकर प्रभु के चरणों में प्रणाम किया।

दोहा:

* उहाँ दसानन जागि करि करै लाग कछु जग्य।
राम बिरोध बिजय चह सठ हठ बस अति अग्य॥84॥

भावार्थ:- वहाँ (लंका में) रावण मूर्छा से जागकर कुछ यज्ञ करने लगा। वह मूर्ख और अत्यंत अज्ञानी हठवश श्री रघुनाथजी से विरोध करके विजय चाहता है॥84॥

चौपाई :

* इहाँ बिभीषन सब सुधि पाई। सपदि जाइ रघुपतिहि सुनाई॥
नाथ करइ रावन एक जागा। सिद्ध भएँ नहिं मरिहि अभागा॥1॥

भावार्थ:-यहाँ विभीषणजी ने सब खबर पाई और तुरंत जाकर श्री रघुनाथजी को कह सुनाई कि हे नाथ! रावण एक यज्ञ कर रहा है। उसके सिद्ध होने पर वह अभागा सहज ही नहीं मरेगा॥1॥

* पठवहु नाथ बेगि भट बंदर। करहिं बिधंस आव दसकंधर॥
प्रात होत प्रभु सुभट पठाए। हनुमदादि अंगद सब धाए॥2।

भावार्थ:- हे नाथ! तुरंत वानर योद्धाओं को भेजिए, जो यज्ञ का विध्वंस करें, जिससे रावण युद्ध में आवे। प्रातःकाल होते ही प्रभु ने वीर योद्धाओं को भेजा। हनुमान् और अंगद आदि सब (प्रधान वीर) दौड़े॥2॥

* कौतुक कूदि चढ़े कपि लंका। पैठे रावन भवन असंका॥
जग्य करत जबहीं सो देखा। सकल कपिन्ह भा क्रोध बिसेषा॥3॥

भावार्थ:-वानर खेल से ही कूदकर लंका पर जा चढ़े और निर्भय होकर रावण के महल में जा घुसे। ज्यों ही उसको यज्ञ करते देखा, त्यों ही सब वानरों को बहुत क्रोध हुआ॥3॥

* रन ते निलज भाजि गृह आवा। इहाँ आइ बक ध्यान लगावा।
अस कहि अंगद मारा लाता। चितव न सठ स्वारथ मन राता॥4॥

भावार्थ:- (उन्होंने कहा-) अरे ओ निर्लज्ज! रणभूमि से घर भाग आया और यहाँ आकर बगुले का सा ध्यान लगाकर बैठा है? ऐसा कहकर अंगद ने लात मारी। पर उसने इनकी ओर देखा भी नहीं, उस दुष्ट का मन स्वार्थ में अनुरक्त था॥4॥

छंद :

* नहिं चितव जब करि कोप कपि गहि दसन लातन्ह मारहीं।

धरि केस नारि निकारि बाहेर तेऽतिदीन पुकारहीं॥
तब उठेउ क्रुद्ध कृतांत सम गहि चरन बानर डारई।
एहि बीच कपिन्ह बिधंस कृत मख देखि मन महुँ हारई॥

भावार्थ:-जब उसने नहीं देखा, तब वानर क्रोध करके उसे दाँतों से पकड़कर (काटने और) लातों से मारने लगे। स्त्रियों को बाल पकड़कर घर से बाहर घसीट लाए, वे अत्यंत ही दीन होकर पुकारने लगीं। तब रावण काल के समान क्रोधित होकर उठा और वानरों को पैर पकड़कर पटकने लगा। इसी बीच में वानरों ने यज्ञ विध्वंस कर डाला, यह देखकर वह मन में हारने लगा। (निराश होने लगा)।

दोहा :

* जग्य बिधंसि कुसल कपि आए रघुपति पास।
चलेउ निसाचर कुरद्ध होइ त्यागि जिवन कै आस॥85॥

भावार्थ:-यज्ञ विध्वंस करके सब चतुर वानर रघुनाथजी के पास आ गए। तब रावण जीने की आश छोड़कर क्रोधित होकर चला॥85॥

चौपाई :

* चलत होहिं अति असुभ भयंकर। बैठहिं गीध उड़ाइ सिरन्ह पर॥
भयउ कालबस काहु न माना। कहेसि बजावहु जुद्ध निसाना॥1॥

भावार्थ:- चलते समय अत्यंत भयंकर अमंगल (अपशकुन) होने लगे। गीध उड़-उड़कर उसके सिरों पर बैठने लगे, किन्तु वह काल के वश था, इससे किसी भी अपशकुन को नहीं मानता था। उसने कहा- युद्ध का डंका बजाओ॥1॥

* चली तमीचर अनी अपारा। बहु गज रथ पदाति असवारा॥
प्रभु सन्मुख धाए खल कैसें। सलभ समूह अनल कहँ जैसें॥2॥

भावार्थ:-निशाचरों की अपार सेना चली। उसमें बहुत से हाथी, रथ, घुड़सवार और पैदल हैं। वे दुष्ट प्रभु के सामने कैसे दौड़े, जैसे पतंगों के समूह अग्नि की ओर (जलने के लिए) दौड़ते हैं॥।2॥

* इहाँ देवतन्ह अस्तुति कीन्ही। दारुन बिपति हमहि एहिं दीन्ही॥
अब जनि राम खेलावहु एही। अतिसय दुखित होति बैदेही॥3॥

भावार्थ:- इधर देवताओं ने स्तुति की कि हे श्री रामजी! इसने हमको दारुण दुःख दिए हैं। अब आप इसे (अधिक) न खेलाइए। जानकीजी बहुत ही दुःखी हो रही हैं॥3॥

दोहा :

* देव बचन सुनि प्रभु मुसुकाना। उठि रघुबीर सुधारे बाना॥
जटा जूट दृढ़ बाँधें माथे। सोहहिं सुमन बीच बिच गाथे॥4॥

भावार्थ:-देवताओं के वचन सुनकर प्रभु मुस्कुराए। फिर श्री रघुवीर ने उठकर बाण सुधारे। मस्तक पर जटाओं के जूड़े को कसकर बाँधे हुए हैं, उसके बीच-बीच में पुष्प गूँथे हुए शोभित हो रहे हैं॥4॥

* अरुन नयन बारिद तनु स्यामा। अखिल लोक लोचनाभिरामा॥
कटितट परिकर कस्यो निषंगा। कर कोदंड कठिन सारंगा॥5॥

भावार्थ:- लाल नेत्र और मेघ के समान श्याम शरीर वाले और संपूर्ण लोकों के नेत्रों को आनंद देने वाले हैं। प्रभु ने कमर में फेंटा तथा तरकस कस लिया और हाथ में कठोर शार्गं धनुष ले लिया॥5॥

छंद :

* सारंग कर सुंदर निषंग सिलीमुखाकर कटि कस्यो।
भुजदंड पीन मनोहरायत उर धरासुर पद लस्यो॥
कह दास तुलसी जबहिं प्रभु सर चाप कर फेरन लगे।
ब्रह्मांड दिग्गज कमठ अहि महि सिंधु भूधर डगमगे॥

भावार्थ:- प्रभु ने हाथ में शार्ंग धनुष लेकर कमर में बाणों की खान (अक्षय) सुंदर तरकस कस लिया। उनके भुजदण्ड पुष्ट हैं और मनोहर चौड़ी छाती पर ब्राह्मण (भृगुजी) के चरण का चिह्न शोभित है। तुलसीदासजी कहते हैं, ज्यों ही प्रभु धनुष-बाण हाथ में लेकर फिराने लगे, त्यों ही ब्रह्माण्ड, दिशाओं के हाथी, कच्छप, शेषजी, पृथ्वी, समुद्र और पर्वत सभी डगमगा उठे।

दोहा :

* सोभा देखि हरषि सुर बरषहिं सुमन अपार।
जय जय जय करुनानिधि छबि बल गुन आगार॥86॥

भावार्थ:- (भगवान्‌ की) शोभा देखकर देवता हर्षित होकर फूलों की अपार वर्षा करने लगे और शोभा, शक्ति और गुणों के धाम करुणानिधान प्रभु की जय हो, जय हो, जय हो (ऐसा पुकारने लगे)॥86॥

चौपाई :

* एहीं बीच निसाचर अनी। कसमसात आई अति घनी॥
देखि चले सन्मुख कपि भट्टा। प्रलयकाल के जनु घन घट्टा॥1॥

भावार्थ:-इसी बीच में निशाचरों की अत्यंत घनी सेना कसमसाती हुई (आपस में टकराती हुई) आई। उसे देखकर वानर योद्धा इस प्रकार (उसके) सामने चले जैसे प्रलयकाल के बादलों के समूह हों॥1॥

* बहु कृपान तरवारि चमंकहिं। जनु दहँ दिसि दामिनीं दमंकहिं॥
गज रथ तुरग चिकार कठोरा। गर्जहिं मनहुँ बलाहक घोरा॥2॥

भावार्थ:- बहुत से कृपाल और तलवारें चमक रही हैं। मानो दसों दिशाओं में बिजलियाँ चमक रही हों। हाथी, रथ और घोड़ों का कठोर चिंग्घाड़ ऐसा लगता है मानो बादल भयंकर गर्जन कर रहे हों॥2॥

* कपि लंगूर बिपुल नभ छाए। मनहुँ इंद्रधनु उए सुहाए॥
उठइ धूरि मानहुँ जलधारा। बान बुंद भै बृष्टि अपारा॥3॥

भावार्थ:-वानरों की बहुत सी पूँछें आकाश में छाई हुई हैं। (वे ऐसी शोभा दे रही हैं) मानो सुंदर इंद्रधनुष उदय हुए हों। धूल ऐसी उठ रही है मानो जल की धारा हो। बाण रूपी बूँदों की अपार वृष्टि हुई॥3॥

* दुहुँ दिसि पर्बत करहिं प्रहारा। बज्रपात जनु बारहिं बारा॥
रघुपति कोपि बान झरि लाई। घायल भै निसिचर समुदाई॥4॥

भावार्थ:-दोनों ओर से योद्धा पर्वतों का प्रहार करते हैं। मानो बारंबार वज्रपात हो रहा हो। श्री रघुनाथजी ने क्रोध करके बाणों की झड़ी लगा दी, (जिससे) राक्षसों की सेना घायल हो गई॥4॥

* लागत बान बीर चिक्करहीं। घुर्मि घुर्मि जहँ तहँ महि परहीं॥
स्रवहिं सैल जनु निर्झर भारी। सोनित सरि कादर भयकारी॥5॥

भावार्थ:- बाण लगते ही वीर चीत्कार कर उठते हैं और चक्कर खा-खाकर जहाँ-तहाँ पृथ्वी पर गिर पड़ते हैं। उनके शरीर से ऐसे खून बह रहा है मानो पर्वत के भारी झरनों से जल बह रहा हो। इस प्रकार डरपोकों को भय उत्पन्न करने वाली रुधिर की नदी बह चली॥5॥

छंद :

* कादर भयंकर रुधिर सरिता चली परम अपावनी।
दोउ कूल दल रथ रेत चक्र अबर्त बहति भयावनी॥
जलजंतु गज पदचर तुरग खर बिबिध बाहन को गने।
सर सक्ति तोमर सर्प चाप तरंग चर्म कमठ घने॥

भावार्थ:- डरपोकों को भय उपजाने वाली अत्यंत अपवित्र रक्त की नदी बह चली। दोनों दल उसके दोनों किनारे हैं। रथ रेत है और पहिए भँवर हैं। वह नदी बहुत भयावनी बह रही है। हाथी, पैदल, घोड़े, गदहे तथा अनेकों सवारियाँ ही, जिनकी गिनती कौन करे, नदी के जल जन्तु हैं।

बाण, शक्ति और तोमर सर्प हैं, धनुष तरंगें हैं और ढाल बहुत से कछुवे हैं।

दोहा :

* बीर परहिं जनु तीर तरु मज्जा बहु बह फेन।
कादर देखि डरहिं तहँ सुभटन्ह के मन चेन॥87॥

भावार्थ:- वीर पृथ्वी पर इस तरह गिर रहे हैं, मानो नदी-किनारे के वृक्ष ढह रहे हों। बहुत सी मज्जा बह रही है, वही फेन है। डरपोक जहाँ इसे देखकर डरते हैं, वहाँ उत्तम योद्धाओं के मन में सुख होता है॥87॥

चौपाई :

* मज्जहिं भूत पिसाच बेताला। प्रमथ महा झोटिंग कराला॥
काक कंक लै भुजा उड़ाहीं। एक ते छीनि एक लै खाहीं॥1॥

भावार्थ:-भूत, पिशाच और बेताल, बड़े-बड़े झोंटों वाले महान् भयंकर झोटिंग और प्रमथ (शिवगण) उस नदी में स्नान करते हैं। कौए और चील भुजाएँ लेकर उड़ते हैं और एक-दूसरे से छीनकर खा जाते हैं॥1॥

* एक कहहिं ऐसिउ सौंघाई। सठहु तुम्हार दरिद्र न जाई॥
कहँरत भट घायल तट गिरे। जहँ तहँ मनहुँ अर्धजल परे॥2॥

भावार्थ:- एक (कोई) कहते हैं, अरे मूर्खो! ऐसी सस्ती (बहुतायत) है, फिर भी तुम्हारी दरिद्रता नहीं जाती? घायल योद्धा तट पर पड़े कराह रहे हैं, मानो जहाँ-तहाँ अर्धजल (वे व्यक्ति जो मरने के समय आधे जल में रखे जाते हैं) पड़े हों॥2॥

* खैचहिं गीध आँत तट भए। जनु बंसी खेलत चित दए॥
बहु भट बहहिं चढ़े खग जाहीं। जनु नावरि खेलहिं सरि माहीं॥3॥

भावार्थ:- गीध आँतें खींच रहे हैं, मानो मछली मार नदी तट पर से चित्त लगाए हुए (ध्यानस्थ होकर) बंसी खेल रहे हों (बंसी से मछली पकड़ रहे हों)। बहुत से योद्धा बहे जा रहे हैं और पक्षी उन पर चढ़े चले जा रहे हैं। मानो वे नदी में नावरि (नौका क्रीड़ा) खेल रहे हों॥3॥

* जोगिनि भरि भरि खप्पर संचहिं। भूति पिसाच बधू नभ नंचहिं॥

भट कपाल करताल बजावहिं। चामुंडा नाना बिधि गावहिं॥4॥

भावार्थ:- योगिनियाँ खप्परों में भर-भरकर खून जमा कर रही हैं। भूत-पिशाचों की स्त्रियाँ आकाश में नाच रही हैं। चामुण्डाएँ योद्धाओं की खोपड़ियों का करताल बजा रही हैं और नाना प्रकार से गा रही हैं॥4॥

* जंबुक निकर कटक्कट कट्टहिं। खाहिं हुआहिं अघाहिं दपट्टहिं॥

कोटिन्ह रुंड मुंड बिनु डोल्लहिं। सीस परे महि जय जय बोल्लहिं॥5॥

भावार्थ:- गीदड़ों के समूह कट-कट शब्द करते हुए मुरदों को काटते, खाते, हुआँ-हुआँ करते और पेट भर जाने पर एक-दूसरे को डाँटते हैं। करोड़ों धड़ बिना सिर के घूम रहे हैं और सिर पृथ्वी पर पड़े जय-जय बोल रहे है॥5॥

छंद :

* बोल्लहिं जो जय जय मुंड रुंड प्रचंड सिर बिनु धावहीं।
खप्परिन्ह खग्ग अलुज्झि जुज्झहिं सुभट भटन्ह ढहावहीं॥
बानर निसाचर निकर मर्दहिं राम बल दर्पित भए।
संग्राम अंगन सुभट सोवहिं राम सर निकरन्हि हए॥

भावार्थ:-मुण्ड (कटे सिर) जय-जय बोल बोलते हैं और प्रचण्ड रुण्ड (धड़) बिना सिर के दौड़ते हैं। पक्षी खोपड़ियों में उलझ-उलझकर परस्पर लड़े मरते हैं, उत्तम योद्धा दूसरे योद्धाओं को ढहा रहे हैं। श्री रामचंद्रजी बल से दर्पित हुए वानर राक्षसों के झुंडों को मसले डालते हैं।

श्री रामजी के बाण समूहों से मरे हुए योद्धा लड़ाई के मैदान में सो रहे हैं।

दोहा :

* रावन हृदयँ बिचारा भा निसिचर संघार।

मैं अकेल कपि भालु बहु माया करौं अपार॥88॥

भावार्थ:- रावण ने हृदय में विचारा कि राक्षसों का नाश हो गया है। मैं अकेला हूँ और वानर-भालू बहुत हैं, इसलिए मैं अब अपार माया रचूँ॥88॥

इंद्र का श्री रामजी के लिए रथ भेजना, राम-रावण युद्ध

चौपाई :

* देवन्ह प्रभुहि पयादें देखा। उपजा उर अति छोभ बिसेषा॥

सुरपति निज रथ तुरत पठावा। हरष सहित मातलि लै आवा॥1॥

भावार्थ:- देवताओं ने प्रभु को पैदल (बिना सवारी के युद्ध करते) देखा, तो उनके हृदय में बड़ा भारी क्षोभ (दुःख) उत्पन्न हुआ। (फिर क्या था) इंद्र ने तुरंत अपना रथ भेज दिया। (उसका सारथी) मातलि हर्ष के साथ उसे ले आया॥1॥

* तेज पुंज रथ दिब्य अनूपा। हरषि चढ़े कोसलपुर भूपा॥

चंचल तुरग मनोहर चारी। अजर अमर मन सम गतिकारी॥2॥

भावार्थ:- उस दिव्य अनुपम और तेज के पुंज (तेजोमय) रथ पर कोसलपुरी के राजा श्री रामचंद्रजी हर्षित होकर चढ़े। उसमें चार चंचल,

मनोहर, अजर, अमर और मन की गति के समान शीघ्र चलने वाले (देवलोक के) घोड़े जुते थे॥2॥

* रथारूढ़ रघुनाथहि देखी। धाए कपि बलु पाइ बिसेषी॥
सही न जाइ कपिन्ह कै मारी। तब रावन माया बिस्तारी॥3॥

भावार्थ:-श्री रघुनाथजी को रथ पर चढ़े देखकर वानर विशेष बल पाकर दौड़े। वानरों की मार सही नहीं जाती। तब रावण ने माया फैलाई॥3॥

* सो माया रघुबीरहि बाँची। लछिमन कपिन्ह सो मानी साँची॥
देखी कपिन्ह निसाचर अनी। अनुज सहित बहु कोसलधनी॥4॥

भावार्थ:-एक श्री रघुवीर के ही वह माया नहीं लगी। सब वानरों ने और लक्ष्मणजी ने भी उस माया को सच मान लिया। वानरों ने राक्षसी सेना में भाई लक्ष्मणजी सहित बहुत से रामों को देखा॥4॥

छंद :

* बहु राम लछिमन देखि मर्कट भालु मन अति अपडरे।
जनु चित्र लिखित समेत लछिमन जहँ सो तहँ चितवहिं खरे॥
निज सेन चकित बिलोकि हँसि सर चाप सजि कोसलधनी।
माया हरी हरि निमिष महुँ हरषी सकल मर्कट अनी॥

भावार्थ:-बहुत से राम-लक्ष्मण देखकर वानर-भालू मन में मिथ्या डर से बहुत ही डर गए। लक्ष्मणजी सहित वे मानो चित्र लिखे से जहाँ के तहाँ खड़े देखने लगे। अपनी सेना को आश्चर्यचकित देखकर कोसलपति भगवान्‌ हरि (दुःखों के हरने वाले श्री रामजी) ने हँसकर धनुष पर बाण चढ़ाकर, पल भर में सारी माया हर ली। वानरों की सारी सेना हर्षित हो गई।

दोहा :

* बहुरि राम सब तन चितइ बोले बचन गँभीर।
द्वंदजुद्ध देखहु सकल श्रमित भए अति बीर॥89॥

भावार्थ:-फिर श्री रामजी सबकी ओर देखकर गंभीर वचन बोले- हे वीरों! तुम सब बहुत ही थक गए हो, इसलिए अब (मेरा और रावण का) द्वंद्व युद्ध देखो॥89॥

चौपाई :

* अस कहि रथ रघुनाथ चलावा। बिप्र चरन पंकज सिरु नावा॥
तब लंकेस क्रोध उर छावा। गर्जत तर्जत सम्मुख धावा॥1॥

भावार्थ:- ऐसा कहकर श्री रघुनाथजी ने ब्राह्मणों के चरणकमलों में सिर नवाया और फिर रथ चलाया। तब रावण के हृदय में क्रोध छा गया और वह गरजता तथा ललकारता हुआ सामने दौड़ा॥1॥

* जीतेहु जे भट संजुग माहीं। सुनु तापस मैं तिन्ह सम नाहीं॥
रावन नाम जगत जस जाना। लोकप जाकें बंदीखाना॥2॥

भावार्थ:-(उसने कहा-) अरे तपस्वी! सुनो, तुमने युद्ध में जिन योद्धाओं को जीता है, मैं उनके समान नहीं हूँ। मेरा नाम रावण है, मेरा यश सारा जगत् जानता है, लोकपाल तक जिसके कैद खाने में पड़े हैं॥2॥

* खर दूषन बिराध तुम्ह मारा। बधेहु ब्याध इव बालि बिचारा॥
निसिचर निकर सुभट संघारेहु। कुंभकरन घननादहि मारेहु॥3॥

भावार्थ:- तुमने खर, दूषण और विराध को मारा! बेचारे बालि का व्याध की तरह वध किया। बड़े-बड़े राक्षस योद्धाओं के समूह का संहार किया और कुंभकर्ण तथा मेघनाद को भी मारा॥3॥

* आजु बयरु सबु लेउँ निबाही। जौं रन भूप भाजि नहिं जाही॥
आजु करउँ खलु काल हवाले। परेहु कठिन रावन के पाले॥4॥

भावार्थ:-अरे राजा! यदि तुम रण से भाग न गए तो आज मैं (वह) सारा वैर निकाल लूँगा। आज मैं तुम्हें निश्चय ही काल के हवाले कर दूँगा। तुम कठिन रावण के पाले पड़े हो॥4॥

* सुनि दुर्बचन कालबस जाना। बिहँसि बचन कह कृपानिधाना॥

सत्य सत्य सब तव प्रभुताई। जल्पसि जनि देखाउ मनुसाई॥5॥

भावार्थ:- रावण के दुर्वचन सुनकर और उसे कालवश जान कृपानिधान श्री रामजी ने हँसकर यह वचन कहा- तुम्हारी सारी प्रभुता, जैसा तुम कहते हो, बिल्कुल सच है। पर अब व्यर्थ बकवाद न करो, अपना पुरुषार्थ दिखलाओ॥5॥

छंद :

* जनि जल्पना करि सुजसु नासहि नीति सुनहि करहि छमा।
संसार महँ पूरुष त्रिबिध पाटल रसाल पनस समा॥
एक सुमनप्रद एक सुमन फल एक फलइ केवल लागहीं।
एक कहहिं कहहिं करहिं अपर एक करहिं कहत न बागहीं॥

भावार्थ:-व्यर्थ बकवाद करके अपने सुंदर यश का नाश न करो। क्षमा करना, तुम्हें नीति सुनाता हूँ, सुनो! संसार में तीन प्रकार के पुरुष होते हैं- पाटल (गुलाब), आम और कटहल के समान। एक (पाटल) फूल देते हैं, एक (आम) फूल और फल दोनों देते हैं एक (कटहल) में केवल फल ही लगते हैं। इसी प्रकार (पुरुषों में) एक कहते हैं (करते नहीं), दूसरे कहते और करते भी हैं और एक (तीसरे) केवल करते हैं, पर वाणी से कहते नहीं॥

दोहा :

* राम बचन सुनि बिहँसा मोहि सिखावत ग्यान।

बयरु करत नहिं तब डरे अब लागे प्रिय प्रान॥90॥

भावार्थ:-श्री रामजी के वचन सुनकर वह खूब हँसा (और बोला-) मुझे ज्ञान सिखाते हो? उस समय वैर करते तो नहीं डरे, अब प्राण प्यारे लग रहे हैं॥90॥

चौपाई :

*कहि दुर्बचन क्रुद्ध दसकंधर। कुलिस समान लाग छाँड़ै सर॥॥
नानाकार सिलीमुख धाए। दिसि अरु बिदिसि गगन महि छाए॥1॥

भावार्थ:- दुर्वचन कहकर रावण क्रुद्ध होकर वज्र के समान बाण छोड़ने लगा। अनेकों आकार के बाण दौड़े और दिशा, विदिशा तथा आकाश और पृथ्वी में, सब जगह छा गए॥1॥

*पावक सर छाँड़ेउ रघुबीरा। छन महुँ जरे निसाचर तीरा॥
छाड़िसि तीब्र सक्ति खिसिआई। बान संग प्रभु फेरि चलाई॥2॥

भावार्थ:-श्री रघुवीर ने अग्निबाण छोड़ा, (जिससे) रावण के सब बाण क्षणभर में भस्म हो गए। तब उसने खिसियाकर तीक्ष्ण शक्ति छोड़ी, (किन्तु) श्री रामचंद्रजी ने उसको बाण के साथ वापस भेज दिया॥2॥

* कोटिन्ह चक्र त्रिसूल पबारै। बिनु प्रयास प्रभु काटि निवारै॥
निफल होहिं रावन सर कैसें। खल के सकल मनोरथ जैसें॥3॥

भावार्थ:- वह करोड़ों चक्र और त्रिशूल चलाता है, परन्तु प्रभु उन्हें बिना ही परिश्रम काटकर हटा देते हैं। रावण के बाण किस प्रकार निष्फल होते हैं, जैसे दुष्ट मनुष्य के सब मनोरथ!॥3॥

* तब सत बान सारथी मारेसि। परेउ भूमि जय राम पुकारेसि॥
राम कृपा करि सूत उठावा। तब प्रभु परम क्रोध कहुँ पावा॥4॥

भावार्थ:-तब उसने श्री रामजी के सारथी को सौ बाण मारे। वह श्री रामजी की जय पुकारकर पृथ्वी पर गिर पड़ा। श्री रामजी ने कृपा करके सारथी को उठाया। तब प्रभु अत्यंत क्रोध को प्राप्त हुए॥4॥

छंद :

* भए क्रुद्ध जुद्ध बिरुद्ध रघुपति त्रोन सायक कसमसे।
कोदंड धुनि अति चंड सुनि मनुजाद सब मारुत ग्रसे॥
मंदोदरी उर कंप कंपति कमठ भू भूधर त्रसे।
चिक्करहिं दिग्गज दसन गहि महि देखि कौतुक सुर हँसे॥

भावार्थ:- युद्ध में शत्रु के विरुद्ध श्री रघुनाथजी क्रोधित हुए, तब तरकस में बाण कसमसाने लगे (बाहर निकलने को आतुर होने लगे)। उनके धनुष का अत्यंत प्रचण्ड शब्द (टंकार) सुनकर मनुष्यभक्षी सब राक्षस वातग्रस्त हो गए (अत्यंत भयभीत हो गए)। मंदोदरी का हृदय काँप उठा, समुद्र, कच्छप, पृथ्वी और पर्वत डर गए। दिशाओं के हाथी पृथ्वी को दाँतों से पकड़कर चिग्घाड़ने लगे। यह कौतुक देखकर देवता हँसे।

दोहा :

* तानेउ चाप श्रवन लगि छाँड़े बिसिख कराल।
राम मारगन गन चले लहलहात जनु ब्याल॥91॥

भावार्थ:- धनुष को कान तक तानकर श्री रामचंद्रजी ने भयानक बाण छोड़े। श्री रामजी के बाण समूह ऐसे चले मानो सर्प लहलहाते (लहराते) हुए जा रहे हों॥91॥

चौपाई :

* चले बान सपच्छ जनु उरगा। प्रथमहिं हतेउ सारथी तुरगा॥
रथ बिभंजि हति केतु पताका। गर्जा अति अंतर बल थाका॥1॥

भावार्थ:-बाण ऐसे चले मानो पंख वाले सर्प उड़ रहे हों। उन्होंने पहले सारथी और घोड़ों को मार डाला। फिर रथ को चूर-चूर करके ध्वजा

और पताकाओं को गिरा दिया। तब रावण बड़े जोर से गरजा, पर भीतर से उसका बल थक गया था॥1॥

* तुरत आन रथ चढ़ि खिसिआना। अस्त्र सस्त्र छाँड़ेसि बिधि नाना॥
बिफल होहिं सब उद्यम ताके। जिमि परद्रोह निरत मनसा के॥2॥

भावार्थ:-तुरंत दूसरे रथ पर चढ़कर खिसियाकर उसने नाना प्रकार के अस्त्र-शस्त्र छोड़े। उसके सब उद्योग वैसे ही निष्फल हो गए, जैसे परद्रोह में लगे हुए चित्त वाले मनुष्य के होते हैं॥2॥

* तब रावन दस सूल चलावा। बाजि चारि महि मारि गिरावा॥
तुरग उठाइ कोपि रघुनायक। खैंचि सरासन छाँड़े सायक॥3॥

भावार्थ:-तब रावण ने दस त्रिशूल चलाए और श्री रामजी के चारों घोड़ों को मारकर पृथ्वी पर गिरा दिया। घोड़ों को उठाकर श्री रघुनाथजी ने क्रोध करके धनुष खींचकर बाण छोड़े॥3॥

* रावन सिर सरोज बनचारी। चलि रघुबीर सिलीमुख धारी॥
दस दस बान भाल दस मारे। निसरि गए चले रुधिर पनारे॥4॥

भावार्थ:-रावण के सिर रूपी कमल वन में विचरण करने वाले श्री रघुवीर के बाण रूपी भ्रमरों की पंक्ति चली। श्री रामचंद्रजी ने उसके दसों सिरों में दस-दस बाण मारे, जो आर-पार हो गए और सिरों से रक्त के पनाले बह चले॥4॥

* स्रवत रुधिर धायउ बलवाना। प्रभु पुनि कृत धनु सर संधाना॥
तीस तीर रघुबीर पबारे। भुजन्हि समेत सीस महि पारे॥5॥

भावार्थ:-रुधिर बहते हुए ही बलवान् रावण दौड़ा। प्रभु ने फिर धनुष पर बाण संधान किया। श्री रघुवीर ने तीस बाण मारे और बीसों भुजाओं समेत दसों सिर काटकर पृथ्वी पर गिरा दिए॥5॥

* काटतहीं पुनि भए नबीने। राम बहोरि भुजा सिर छीने॥

प्रभु बहु बार बाहु सिर हए। कटत झटिति पुनि नूतन भए॥6॥

भावार्थ:- (सिर और हाथ) काटते ही फिर नए हो गए। श्री रामजी ने फिर भुजाओं और सिरों को काट गिराया। इस तरह प्रभु ने बहुत बार भुजाएँ और सिर काटे, परन्तु काटते ही वे तुरंत फिर नए हो गए॥6॥

* पुनि पुनि प्रभु काटत भुज सीसा। अति कौतुकी कोसलाधीसा॥

रहे छाइ नभ सिर अरु बाहू। मानहुँ अमित केतु अरु राहू॥7॥

भावार्थ:-प्रभु बार-बार उसकी भुजा और सिरों को काट रहे हैं, क्योंकि कोसलपति श्री रामजी बड़े कौतुकी हैं। आकाश में सिर और बाहु ऐसे छा गए हैं, मानो असंख्य केतु और राहु हों॥7॥

छंद :

* जनु राहु केतु अनेक नभ पथ स्रवत सोनित धावहीं।
रघुबीर तीर प्रचंड लागहिं भूमि गिरत न पावहीं॥
एक एक सर सिर निकर छेदे नभ उड़त इमि सोहहीं।
जनु कोपि दिनकर कर निकर जहँ तहँ बिधुंतुद पोहहीं॥

भावार्थ:-मानो अनेकों राहु और केतु रुधिर बहाते हुए आकाश मार्ग से दौड़ रहे हों। श्री रघुवीर के प्रचण्ड बाणों के (बार-बार) लगने से वे पृथ्वी पर गिरने नहीं पाते। एक-एक बाण से समूह के समूह सिर छिदे हुए आकाश में उड़ते ऐसे शोभा दे रहे हैं मानो सूर्य की किरणें क्रोध करके जहाँ-तहाँ राहुओं को पिरो रही हों।

दोहा :

* जिमि जिमि प्रभु हर तासु सिर तिमि होहिं अपार।

सेवत बिषय बिबर्ध जिमि नित नित नूतन मार॥92॥

भावार्थ:- जैसे-जैसे प्रभु उसके सिरों को काटते हैं, वैसे ही वैसे वे अपार होते जाते हैं। जैसे विषयों का सेवन करने से काम (उन्हें भोगने की इच्छा) दिन-प्रतिदिन नया-नया बढ़ता जाता है॥92॥

चौपाई :

* दसमुख देखि सिरन्ह कै बाढ़ी। बिसरा मरन भई रिस गाढ़ी॥
गर्जेउ मूढ़ महा अभिमानी। धायउ दसहु सरासन तानी॥1॥

भावार्थ:- सिरों की बाढ़ देखकर रावण को अपना मरण भूल गया और बड़ा गहरा क्रोध हुआ। वह महान्‌ अभिमानी मूर्ख गरजा और दसों धनुषों को तानकर दौड़ा॥1॥

* समर भूमि दसकंधर कोप्यो। बरषि बान रघुपति रथ तोप्यो॥
दंड एक रथ देखि न परेउ। जनु निहार महुँ दिनकर दुरेऊ॥2॥

भावार्थ:-रणभूमि में रावण ने क्रोध किया और बाण बरसाकर श्री रघुनाथजी के रथ को ढँक दिया। एक दण्ड (घड़ी) तक रथ दिखलाई न पड़ा, मानो कुहरे में सूर्य छिप गया हो॥2॥

* हाहाकार सुरन्ह जब कीन्हा। तब प्रभु कोपि कारमुक लीन्हा॥
सर निवारि रिपु के सिर काटे। ते दिसि बिदिसि गगन महि पाटे॥3॥

भावार्थ:- जब देवताओं ने हाहाकार किया, तब प्रभु ने क्रोध करके धनुष उठाया और शत्रु के बाणों को हटाकर उन्होंने शत्रु के सिर काटे और उनसे दिशा, विदिशा, आकाश और पृथ्वी सबको पाट दिया॥3॥

* काटे सिर नभ मारग धावहिं। जय जय धुनि करि भय उपजावहिं॥
कहँ लछिमन सुग्रीव कपीसा। कहँ रघुबीर कोसलाधीसा॥4॥

भावार्थ:-काटे हुए सिर आकाश मार्ग से दौड़ते हैं और जय-जय की ध्वनि करके भय उत्पन्न करते हैं। 'लक्ष्मण और वानरराज सुग्रीव कहाँ हैं? कोसलपति रघुवीर कहाँ हैं?'॥4॥

छंद :

* कहँ रामु कहि सिर निकर धाए देखि मर्कट भजि चले।
संधानि धनु रघुबंसमनि हँसि सरन्हि सिर बेधे भले॥
सिर मालिका कर कालिका गहि बृंद बृंदन्हि बहु मिलीं।
करि रुधिर सरि मज्जनु मनहुँ संग्राम बट पूजन चलीं॥

भावार्थ:-'राम कहाँ हैं?' यह कहकर सिरों के समूह दौड़े, उन्हें देखकर वानर भाग चले। तब धनुष सन्धान करके रघुकुलमणि श्री रामजी ने हँसकर बाणों से उन सिरों को भलीभाँति बेध डाला। हाथों में मुण्डों की मालाएँ लेकर बहुत सी कालिकाएँ झुंड की झुंड मिलकर इकट्ठी हुईं और वे रुधिर की नदी में स्नान करके चलीं। मानो संग्राम रूपी वटवृक्ष की पूजा करने जा रही हों।

षष्ठ सोपान- रावण का विभीषण पर शक्ति छोड़ना, रामजी का शक्ति को अपने ऊपर लेना, विभीषण-रावण युद्ध

दोहा :

* पुनि दसकंठ क्रुद्ध होइ छाँड़ी सक्ति प्रचंड।
चली बिभीषन सन्मुख मनहुँ काल कर दंड॥93॥

भावार्थ:- फिर रावण ने क्रोधित होकर प्रचण्ड शक्ति छोड़ी। वह विभीषण के सामने ऐसी चली जैसे काल (यमराज) का दण्ड हो॥93॥

चौपाई :

* आवत देखि सक्ति अति घोरा। प्रनतारति भंजन पन मोरा॥
तुरत बिभीषन पाछें मेला। सन्मुख राम सहेउ सोइ सेला॥1॥

भावार्थ:- अत्यंत भयानक शक्ति को आती देख और यह विचार कर कि मेरा प्रण शरणागत के दुःख का नाश करना है, श्री रामजी ने तुरंत ही विभीषण को पीछे कर लिया और सामने होकर वह शक्ति स्वयं सह ली॥1॥

* लागि सक्ति मुरुछा कछु भई। प्रभु कृत खेल सुरन्ह बिकलई॥
देखि बिभीषन प्रभु श्रम पायो। गहि कर गदा क्रुद्ध होइ धायो॥2॥

भावार्थ:-शक्ति लगने से उन्हें कुछ मूर्छा हो गई। प्रभु ने तो यह लीला की, पर देवताओं को व्याकुलता हुई। प्रभु को श्रम (शारीरिक कष्ट) प्राप्त हुआ देखकर विभीषण क्रोधित हो हाथ में गदा लेकर दौड़े॥2॥

* रे कुभाग्य सठ मंद कुबुद्धे। तैं सुर नर मुनि नाग बिरुद्धे॥
सादर सिव कहुँ सीस चढ़ाए। एक एक के कोटिन्ह पाए॥3॥

भावार्थ:-(और बोले-) अरे अभागे! मूर्ख, नीच दुर्बुद्धि! तूने देवता, मनुष्य, मुनि, नाग सभी से विरोध किया। तूने आदर सहित शिवजी को सिर चढ़ाए। इसी से एक-एक के बदले में करोड़ों पाए॥3॥

* तेहि कारन खल अब लगि बाँच्यो। अब तव कालु सीस पर नाच्यो॥
राम बिमुख सठ चहसि संपदा। अस कहि हनेसि माझ उर गदा॥4॥

भावार्थ:-उसी कारण से अरे दुष्ट! तू अब तक बचा है, (किन्तु) अब काल तेरे सिर पर नाच रहा है। अरे मूर्ख! तू राम विमुख होकर सम्पत्ति (सुख) चाहता है? ऐसा कहकर विभीषण ने रावण की छाती के बीचों-बीच गदा मारी॥4॥

छंद :

* उर माझ गदा प्रहार घोर कठोर लागत महि पर्‌यो।
दस बदन सोनित स्रवत पुनि संभारि धायो रिस भर्‌यो॥

द्वौ भिरे अतिबल मल्लजुद्ध बिरुद्ध एकु एकहि हनै।
रघुबीर बल दर्पित बिभीषनु घालि नहिं ता कहुँ गनै॥

भावार्थ:-बीच छाती में कठोर गदा की घोर और कठिन चोट लगते ही वह पृथ्वी पर गिर पड़ा। उसके दसों मुखों से रुधिर बहने लगा, वह अपने को फिर संभालकर क्रोध में भरा हुआ दौड़ा। दोनों अत्यंत बलवान् योद्धा भिड़ गए और मल्लयुद्ध में एक-दूसरे के विरुद्ध होकर मारने लगे। श्री रघुवीर के बल से गर्वित विभीषण उसको (रावण जैसे जगद्विजयी योद्धा को) पासंग के बराबर भी नहीं समझते।

दोहा :

* उमा बिभीषनु रावनहि सन्मुख चितव कि काउ।
सो अब भिरत काल ज्यों श्री रघुबीर प्रभाउ॥94॥

भावार्थ:- (शिवजी कहते हैं-) हे उमा! विभीषण क्या कभी रावण के सामने आँख उठाकर भी देख सकता था? परन्तु अब वही काल के समान उससे भिड़ रहा है। यह श्री रघुवीर का ही प्रभाव है॥94॥

रावण-हनुमान् युद्ध, रावण का माया रचना, रामजी द्वारा माया नाश

चौपाई :

* देखा श्रमित बिभीषनु भारी। धायउ हनूमान गिरि धारी॥
रथ तुरंग सारथी निपाता। हृदय माझ तेहि मारेसि लाता॥1॥

भावार्थ:- विभीषण को बहुत ही थका हुआ देखकर हनुमान्जी पर्वत धारण किए हुए दौड़े। उन्होंने उस पर्वत से रावण के रथ, घोड़े और सारथी का संहार कर डाला और उसके सीने पर लात मारी॥1॥

* ठाढ़ रहा अति कंपित गाता। गयउ बिभीषनु जहँ जनत्राता॥
पुनि रावन कपि हतेउ पचारी। चलेउ गगन कपि पूँछ पसारी॥2॥

भावार्थ:- रावण खड़ा रहा, पर उसका शरीर अत्यंत काँपने लगा। विभीषण वहाँ गए, जहाँ सेवकों के रक्षक श्री रामजी थे। फिर रावण ने ललकारकर हनुमान्जी को मारा। वे पूँछ फैलाकर आकाश में चले गए॥2॥

* गहिसि पूँछ कपि सहित उड़ाना। पुनि फिरि भिरेउ प्रबल हनुमाना॥
लरत अकास जुगल सम जोधा। एकहि एकु हनत करि क्रोधा॥3॥

भावार्थ:-रावण ने पूँछ पकड़ ली, हनुमान्जी उसको साथ लिए ऊपर उड़े। फिर लौटकर महाबलवान् हनुमान्जी उससे भिड़ गए। दोनों समान योद्धा आकाश में लड़ते हुए एक-दूसरे को क्रोध करके मारने लगे॥3॥

* सोहहिं नभ छल बल बहु करहीं। कज्जलगिरि सुमेरु जनु लरहीं॥
बुधि बल निसिचर परइ न पार्यो। तब मारुतसुत प्रभु संभार्यो॥4॥

भावार्थ:-दोनों बहुत से छल-बल करते हुए आकाश में ऐसे शोभित हो रहे हैं मानो कज्जलगिरि और सुमेरु पर्वत लड़ रहे हों। जब बुद्धि और बल से राक्षस गिराए न गिरा तब मारुति श्री हनुमान्जी ने प्रभु को स्मरण किया॥4॥

छंद :

* संभारि श्रीरघुबीर धीर पचारि कपि रावनु हन्यो।
महि परत पुनि उठि लरत देवन्ह जुगल कहुँ जय जय भन्यो॥
हनुमंत संकट देखि मर्कट भालु क्रोधातुर चले।

रन मत्त रावन सकल सुभट प्रचण्ड भुज बल दलमले॥

भावार्थ:-श्री रघुवीर का स्मरण करके धीर हनुमान्‌जी ने ललकारकर रावण को मारा। वे दोनों पृथ्वी पर गिरते और फिर उठकर लड़ते हैं, देवताओं ने दोनों की 'जय-जय' पुकारी। हनुमान्‌जी पर संकट देखकर वानर-भालू क्रोधातुर होकर दौड़े, किन्तु रण-मद-माते रावण ने सब योद्धाओं को अपनी प्रचण्ड भुजाओं के बल से कुचल और मसल डाला।

दोहा :

* तब रघुबीर पचारे धाए कीस प्रचंड।

कपि बल प्रबल देखि तेहिं कीन्ह प्रगट पाषंड॥95॥

भावार्थ:-तब श्री रघुवीर के ललकारने पर प्रचण्ड वीर वानर दौड़े। वानरों के प्रबल दल को देखकर रावण ने माया प्रकट की॥95॥

चौपाई :

* अंतरधान भयउ छन एका। पुनि प्रगटे खल रूप अनेका॥

रघुपति कटक भालु कपि जेते। जहँ तहँ प्रगट दसानन तेते॥1॥

भावार्थ:- क्षणभर के लिए वह अदृश्य हो गया। फिर उस दुष्ट ने अनेकों रूप प्रकट किए। श्री रघुनाथजी की सेना में जितने रीछ-वानर थे, उतने ही रावण जहाँ-तहाँ (चारों ओर) प्रकट हो गए॥1॥

* देखे कपिन्ह अमित दससीसा। जहँ तहँ भजे भालु अरु कीसा॥

भागे बानर धरहिं न धीरा। त्राहि त्राहि लछिमन रघुबीरा॥2॥

भावार्थ:-वानरों ने अपरिमित रावण देखे। भालू और वानर सब जहाँ-तहाँ (इधर-उधर) भाग चले। वानर धीरज नहीं धरते। हे लक्ष्मणजी! हे रघुवीर! बचाइए, बचाइए, यों पुकारते हुए वे भागे जा रहे हैं॥2॥

* दहँ दिसि धावहिं कोटिन्ह रावन। गर्जहिं घोर कठोर भयावन॥

डरे सकल सुर चले पराई। जय कै आस तजहु अब भाई॥3॥

भावार्थ:-दसों दिशाओं में करोड़ों रावण दौड़ते हैं और घोर, कठोर भयानक गर्जन कर रहे हैं। सब देवता डर गए और ऐसा कहते हुए भाग चले कि हे भाई! अब जय की आशा छोड़ दो!॥3॥

* सब सुर जिते एक दसकंधर। अब बहु भए तकहु गिरि कंदर॥

रहे बिरंचि संभु मुनि ग्यानी। जिन्ह जिन्ह प्रभु महिमा कछु जानी॥4॥

भावार्थ:-एक ही रावण ने सब देवताओं को जीत लिया था, अब तो बहुत से रावण हो गए हैं। इससे अब पहाड़ की गुफाओं का आश्रय लो (अर्थात् उनमें छिप रहो)। वहाँ ब्रह्मा, शम्भु और ज्ञानी मुनि ही डटे रहे, जिन्होंने प्रभु की कुछ महिमा जानी थी॥4॥

छंद :

* जाना प्रताप ते रहे निर्भय कपिन्ह रिपु माने फुरे।
चले बिचलि मर्कट भालु सकल कृपाल पाहि भयातुरे॥
हनुमंत अंगद नील नल अतिबल लरत रन बाँकुरे।
मर्दहिं दसानन कोटि कोटिन्ह कपट भू भट अंकुरे॥

भावार्थ:-जो प्रभु का प्रताप जानते थे, वे निर्भय डटे रहे। वानरों ने शत्रुओं (बहुत से रावणों) को सच्चा ही मान लिया। (इससे) सब वानर-भालू विचलित होकर 'हे कृपालु! रक्षा कीजिए' (यों पुकारते हुए) भय से व्याकुल होकर भाग चले। अत्यंत बलवान् रणबाँकुरे हनुमान्‌जी, अंगद, नील और नल लड़ते हैं और कपट रूपी भूमि से अंकुर की भाँति उपजे हुए कोटि-कोटि योद्धा रावणों को मसलते हैं।

दोहा :

* सुर बानर देखे बिकल हँस्यो कोसलाधीस।

सजि सारंग एक सर हते सकल दससीस॥96॥

भावार्थ:-देवताओं और वानरों को विकल देखकर कोसलपति श्री रामजी हँसे और शार्गं धनुष पर एक बाण चढ़ाकर (माया के बने हुए) सब रावणों को मार डाला॥96॥

चौपाई :

* प्रभु छन महुँ माया सब काटी। जिमि रबि उएँ जाहिं तम फाटी॥
रावनु एकु देखि सुर हरषे। फिरे सुमन बहु प्रभु पर बरषे॥1॥

भावार्थ:-प्रभु ने क्षणभर में सब माया काट डाली। जैसे सूर्य के उदय होते ही अंधकार की राशि फट जाती है (नष्ट हो जाती है)। अब एक ही रावण को देखकर देवता हर्षित हुए और उन्होंने लौटकर प्रभु पर बहुत से पुष्प बरसाए॥1॥

* भुज उठाइ रघुपति कपि फेरे। फिरे एक एकन्ह तब टेरे॥
प्रभु बलु पाइ भालु कपि धाए। तरल तमकि संजुग महि आए॥2॥

भावार्थ:-श्री रघुनाथजी ने भुजा उठाकर सब वानरों को लौटाया। तब वे एक-दूसरे को पुकार-पुकार कर लौट आए। प्रभु का बल पाकर रीछ-वानर दौड़ पड़े। जल्दी से कूदकर वे रणभूमि में आ गए॥2॥

* अस्तुति करत देवतन्हि देखें। भयउँ एक मैं इन्ह के लेखें॥
सठहु सदा तुम्ह मोर मरायल। अस कहि कोपि गगन पर धायल॥3॥

भावार्थ:-देवताओं को श्री रामजी की स्तुति करते देख कर रावण ने सोचा, मैं इनकी समझ में एक हो गया, (परन्तु इन्हें यह पता नहीं कि इनके लिए मैं एक ही बहुत हूँ) और कहा- अरे मूर्खों! तुम तो सदा के ही मेरे मरैल (मेरी मार खाने वाले) हो। ऐसा कहकर वह क्रोध करके आकाश पर (देवताओं की ओर) दौड़ा॥3॥

घोरयुद्ध, रावण की मूर्च्छा

चौपाई :

* हाहाकार करत सुर भागे। खलहु जाहु कहँ मोरें आगे॥
देखि बिकल सुर अंगद धायो। कूदि चरन गहि भूमि गिरायो॥4॥

भावार्थ:-देवता हाहाकार करते हुए भागे। (रावण ने कहा-) दुष्टों! मेरे आगे से कहाँ जा सकोगे? देवताओं को व्याकुल देखकर अंगद दौड़े और उछलकर रावण का पैर पकड़कर (उन्होंने) उसको पृथ्वी पर गिरा दिया॥4॥

छंद :

* गहि भूमि पार्‌यो लात मार्‌यो बालिसुत प्रभु पहिं गयो।
संभारि उठि दसकंठ घोर कठोर रव गर्जत भयो॥
करि दाप चाप चढ़ाइ दस संधानि सर बहु बरषई।
किए सकल भट घायल भयाकुल देखि निज बल हरषई॥

भावार्थ:- उसे पकड़कर पृथ्वी पर गिराकर लात मारकर बालिपुत्र अंगद प्रभु के पास चले गए। रावण संभलकर उठा और बड़े भंयकर कठोर शब्द से गरजने लगा। वह दर्प करके दसों धनुष चढ़ाकर उन पर बहुत से बाण संधान करके बरसाने लगा। उसने सब योद्धाओं को घायल और भय से व्याकुल कर दिया और अपना बल देखकर वह हर्षित होने लगा।

दोहा :

* तब रघुपति रावन के सीस भुजा सर चाप।
काटे बहुत बढ़े पुनि जिमि तीरथ कर पाप॥97॥

भावार्थ:-तब श्री रघुनाथजी ने रावण के सिर, भुजाएँ, बाण और धनुष काट डाले। पर वे फिर बहुत बढ़ गए, जैसे तीर्थ में किए हुए पाप बढ़ जाते हैं (कई गुना अधिक भयानक फल उत्पन्न करते हैं)!॥97॥

चौपाई :

* सिर भुज बाढ़ि देखि रिपु केरी। भालु कपिन्ह रिस भई घनेरी॥
मरत न मूढ़ कटेहुँ भुज सीसा। धाए कोपि भालु भट कीसा॥1॥

भावार्थ:-शत्रु के सिर और भुजाओं की बढ़ती देखकर रीछ-वानरों को बहुत ही क्रोध हुआ। यह मूर्ख भुजाओं के और सिरों के कटने पर भी नहीं मरता, (ऐसा कहते हुए) भालू और वानर योद्धा क्रोध करके दौड़े॥1॥

* बालितनय मारुति नल नीला। बानरराज दुबिद बलसीला॥
बिटप महीधर करहिं प्रहारा। सोइ गिरि तरु गहि कपिन्ह सो मारा॥2॥

भावार्थ:-बालिपुत्र अंगद, मारुति हनुमान्‌जी, नल, नील, वानरराज सुग्रीव और द्विविद आदि बलवान्‌ उस पर वृक्ष और पर्वतों का प्रहार करते हैं। वह उन्हीं पर्वतों और वृक्षों को पकड़कर वानरों को मारता है॥2॥

* एक नखन्हि रिपु बपुष बिदारी। भागि चलहिं एक लातन्ह मारी।
तब नल नील सिरन्हि चढ़ि गयऊ। नखन्हि लिलार बिदारत भयऊ॥3॥

भावार्थ:-कोई एक वानर नखों से शत्रु के शरीर को फाड़कर भाग जाते हैं, तो कोई उसे लातों से मारकर। तब नल और नील रावण के सिरों पर चढ़ गए और नखों से उसके ललाट को फाड़ने लगे॥3॥

* रुधिर देखि बिषाद उर भारी। तिन्हहि धरन कहुँ भुजा पसारी॥
गहे न जाहिं करन्हि पर फिरहीं। जनु जुग मधुप कमल बन चरहीं॥4॥

भावार्थ:- खून देखकर उसे हृदय में बड़ा दुःख हुआ। उसने उनको पकड़ने के लिए हाथ फैलाए, पर वे पकड़ में नहीं आते, हाथों के ऊपर-ऊपर ही फिरते हैं मानो दो भौंरे कमलों के वन में विचरण कर रहे हों॥4॥

* कोपि कूदि द्वौ धरेसि बहोरी। महि पटकत भजे भुजा मरोरी॥
पुनि सकोप दस धनु कर लीन्हे। सरन्हि मारि घायल कपि कीन्हे॥5॥

भावार्थ:-तब उसने क्रोध करके उछलकर दोनों को पकड़ लिया। पृथ्वी पर पटकते समय वे उसकी भुजाओं को मरोड़कर भाग छूटे। फिर उसने क्रोध करके हाथों में दसों धनुष लिए और वानरों को बाणों से मारकर घायल कर दिया॥5॥

* हनुमदादि मुरुछित करि बंदर। पाइ प्रदोष हरष दसकंधर॥
मुरुछित देखि सकल कपि बीरा। जामवंत धायउ रनधीरा॥6॥

भावार्थ:-हनुमान्‌जी आदि सब वानरों को मूर्च्छित करके और संध्या का समय पाकर रावण हर्षित हुआ। समस्त वानर-वीरों को मूर्च्छित देखकर रणधीर जाम्बवत्‌ दौड़े॥6॥

* संग भालु भूधर तरु धारी। मारन लगे पचारि पचारी॥
भयउ क्रुद्ध रावन बलवाना। गहि पद महि पटकइ भट नाना॥7॥

भावार्थ:-जाम्बवान्‌ के साथ जो भालू थे, वे पर्वत और वृक्ष धारण किए रावण को ललकार-ललकार कर मारने लगे। बलवान्‌ रावण क्रोधित हुआ और पैर पकड़-पकड़कर वह अनेकों योद्धाओं को पृथ्वी पर पटकने लगा॥7॥

* देखि भालुपति निज दल घाता। कोपि माझ उर मारेसि लाता॥8॥

भावार्थ:-जाम्बवान्‌ ने अपने दल का विध्वंस देखकर क्रोध करके रावण की छाती में लात मारी॥8॥

छंद :

* उर लात घात प्रचंड लागत बिकल रथ ते महि परा।
गहि भालु बीसहुँ कर मनहुँ कमलन्हि बसे निसि मधुकरा॥
मुरुछित बिलोकि बहोरि पद हति भालुपति प्रभु पहिं गयो॥
निसि जानि स्यंदन घालि तेहि तब सूत जतनु करय भयो॥

भावार्थ:-छाती में लात का प्रचण्ड आघात लगते ही रावण व्याकुल होकर रथ से पृथ्वी पर गिर पड़ा। उसने बीसों हाथों में भालुओं को पकड़ रखा था। (ऐसा जान पड़ता था) मानो रात्रि के समय भौंरे कमलों में बसे हुए हों। उसे मूर्च्छित देखकर, फिर लात मारकर ऋक्षराज जाम्बवान् प्रभु के पास चले। रात्रि जानकर सारथी रावण को रथ में डालकर उसे होश में लाने का उपाय करने लगा॥

दोहा :

* मुरुछा बिगत भालु कपि सब आए प्रभु पास।
निसिचर सकल रावनहि घेरि रहे अति त्रास॥98॥

भावार्थ:-मूर्च्छा दूर होने पर सब रीछ-वानर प्रभु के पास आए। उधर सब राक्षसों ने बहुत ही भयभीत होकर रावण को घेर लिया॥98॥

मासपारायण, छब्बीसवाँ विश्राम

गीताप्रेस गोरखपुर

त्रिजटा-सीता संवाद

चौपाई :

* तेही निसि सीता पहिं जाई। त्रिजटा कहि सब कथा सुनाई॥
सिर भुज बाढ़ि सुनत रिपु केरी। सीता उर भइ त्रास घनेरी॥1॥

भावार्थ:-उसी रात त्रिजटा ने सीताजी के पास जाकर उन्हें सब कथा कह सुनाई। शत्रु के सिर और भुजाओं की बढ़ती का संवाद सुनकर सीताजी के हृदय में बड़ा भय हुआ॥1॥

* मुख मलीन उपजी मन चिंता। त्रिजटा सन बोली तब सीता॥

होइहि कहा कहसि किन माता। केहि बिधि मरिहि बिस्व दुखदाता॥2॥

भावार्थ:- (उनका) मुख उदास हो गया, मन में चिंता उत्पन्न हो गई। तब सीताजी त्रिजटा से बोलीं- हे माता! बताती क्यों नहीं? क्या होगा? संपूर्ण विश्व को दुःख देने वाला यह किस प्रकार मरेगा?॥2॥

* रघुपति सर सिर कटेहुँ न मरई। बिधि बिपरीत चरित सब करई॥

मोर अभाग्य जिआवत ओही। जेहिं हौं हरि पद कमल बिछोही॥3॥

भावार्थ:-श्री रघुनाथजी के बाणों से सिर कटने पर भी नहीं मरता। विधाता सारे चरित्र विपरीत (उलटे) ही कर रहा है। (सच बात तो यह है कि) मेरा दुर्भाग्य ही उसे जिला रहा है, जिसने मुझे भगवान् के चरणकमलों से अलग कर दिया है॥3॥

* जेहिं कृत कपट कनक मृग झूठा। अजहुँ सो दैव मोहि पर रूठा॥

जेहिं बिधि मोहि दुख दुसह सहाए। लछिमन कहुँ कटु बचन कहाए॥4॥

भावार्थ:-जिसने कपट का झूठा स्वर्ण मृग बनाया था, वही दैव अब भी मुझ पर रूठा हुआ है, जिस विधाता ने मुझसे दुःसह दुःख सहन कराए और लक्ष्मण को कड़ुवे वचन कहलाए,॥4॥

* रघुपति बिरह सबिष सर भारी। तकि तकि मार बार बहु मारी॥

ऐसेहुँ दुख जो राख मम प्राना। सोइ बिधि ताहि जिआव न आना॥5॥

भावार्थ:-जो श्री रघुनाथजी के विरह रूपी बड़े विषैले बाणों से तक-तककर मुझे बहुत बार मारकर, अब भी मार रहा है और ऐसे दुःख में

भी जो मेरे प्राणों को रख रहा है, वही विधाता उस (रावण) को जिला रहा है, दूसरा कोई नहीं॥5॥

* बहु बिधि कर बिलाप जानकी। करि करि सुरति कृपानिधान की॥
कह त्रिजटा सुनु राजकुमारी। उर सर लागत मरइ सुरारी॥6॥

भावार्थ:-कृपानिधान श्री रामजी की याद कर-करके जानकीजी बहुत प्रकार से विलाप कर रही हैं। त्रिजटा ने कहा- हे राजकुमारी! सुनो, देवताओं का शत्रु रावण हृदय में बाण लगते ही मर जाएगा॥6॥

* प्रभु ताते उर हतइ न तेही। एहि के हृदयँ बसति बैदेही॥7॥

भावार्थ:- परन्तु प्रभु उसके हृदय में बाण इसलिए नहीं मारते कि इसके हृदय में जानकीजी (आप) बसती हैं॥7॥

छंद :

* एहि के हृदयँ बस जानकी जानकी उर मम बास है।
मम उदर भुअन अनेक लागत बान सब कर नास है॥
सुनि बचन हरष बिषाद मन अति देखि पुनि त्रिजटाँ कहा।
अब मरिहि रिपु एहि बिधि सुनहि सुंदरि तजहि संसय महा॥

भावार्थ:-वे यही सोचकर रह जाते हैं कि) इसके हृदय में जानकी का निवास है, जानकी के हृदय में मेरा निवास है और मेरे उदर में अनेकों भुवन हैं। अतः रावण के हृदय में बाण लगते ही सब भुवनों का नाश हो जाएगा। यह वचन सुनकर सीताजी के मन में अत्यंत हर्ष और विषाद हुआ देखकर त्रिजटा ने फिर कहा- हे सुंदरी! महान् संदेह का त्याग कर दो, अब सुनो, शत्रु इस प्रकार मरेगा-

दोहा :

* काटत सिर होइहि बिकल छुटि जाइहि तव ध्यान।
तब रावनहि हृदय महुँ मरिहहिं रामु सुजान॥99॥

भावार्थ:-सिरों के बार-बार काटे जाने से जब वह व्याकुल हो जाएगा और उसके हृदय से तुम्हारा ध्यान छूट जाएगा, तब सुजान (अंतर्यामी) श्री रामजी रावण के हृदय में बाण मारेंगे॥99॥

चौपाई :

* अस कहि बहुत भाँति समुझाई। पुनि त्रिजटा निज भवन सिधाई॥
राम सुभाउ सुमिरि बैदेही। उपजी बिरह बिथा अति तेही॥1॥

भावार्थ:-ऐसा कहकर और सीताजी को बहुत प्रकार से समझाकर फिर त्रिजटा अपने घर चली गई। श्री रामचंद्रजी के स्वभाव का स्मरण करके जानकीजी को अत्यंत विरह व्यथा उत्पन्न हुई॥1॥

* निसिहि ससिहि निंदति बहु भाँति। जुग सम भई सिराति न राती॥
करति बिलाप मनहिं मन भारी। राम बिरहँ जानकी दुखारी॥2॥

भावार्थ:-वे रात्रि की और चंद्रमा की बहुत प्रकार से निंदा कर रही हैं (और कह रही हैं-) रात युग के समान बड़ी हो गई, वह बीतती ही नहीं। जानकीजी श्री रामजी के विरह में दुःखी होकर मन ही मन भारी विलाप कर रही हैं॥2॥

* जब अति भयउ बिरह उर दाहू। फरकेउ बाम नयन अरु बाहू॥
सगुन बिचारि धरी मन धीरा। अब मिलिहहिं कृपाल रघुबीरा॥3॥

भावार्थ:-जब विरह के मारे हृदय में दारुण दाह हो गया, तब उनका बायाँ नेत्र और बाहु फड़क उठे। शकुन समझकर उन्होंने मन में धैर्य धारण किया कि अब कृपालु श्री रघुवीर अवश्य मिलेंगे॥3॥

रावण का मूर्च्छा टूटना, राम-रावण युद्ध, रावण वध, सर्वत्र जयध्वनि

* इहाँ अर्धनिसि रावनु जागा। निज सारथि सन खीझन लागा।
सठ रनभूमि छड़ाइसि मोही। धिग धिग अधम मंदमति तोही॥4॥

भावार्थ:- यहाँ आधी रात को रावण (मूर्च्छा से) जागा और अपने सारथी पर रुष्ट होकर कहने लगा- अरे मूर्ख! तूने मुझे रणभूमि से अलग कर दिया। अरे अधम! अरे मंदबुद्धि! तुझे धिक्कार है, धिक्कार है!॥4॥

* तेहिं पद गहि बहु बिधि समुझावा। भोरु भएँ रथ चढ़ि पुनि धावा॥
सुनि आगवनु दसानन केरा। कपि दल खरभर भयउ घनेरा॥5॥

भावार्थ:- सारथि ने चरण पकड़कर रावण को बहुत प्रकार से समझाया। सबेरा होते ही वह रथ पर चढ़कर फिर दौड़ा। रावण का आना सुनकर वानरों की सेना में बड़ी खलबली मच गई॥5॥

*जहँ तहँ भूधर बिटप उपारी। धाए कटकटाइ भट भारी॥6॥

भावार्थ:- वे भारी योद्धा जहाँ-तहाँ से पर्वत और वृक्ष उखाड़कर (क्रोध से) दाँत कटकटाकर दौड़े॥6॥

छंद :

* धाए जो मर्कट बिकट भालु कराल कर भूधर धरा।
अति कोप करहिं प्रहार मारत भजि चले रजनीचरा॥
बिचलाइ दल बलवंत कीसन्ह घेरि पुनि रावनु लियो।
चहुँ दिसि चपेटन्हि मारि नखन्हि बिदारि तन ब्याकुल कियो॥

भावार्थ:-विकट और विकराल वानर-भालू हाथों में पर्वत लिए दौड़े। वे अत्यंत क्रोध करके प्रहार करते हैं। उनके मारने से राक्षस भाग चले। बलवान् वानरों ने शत्रु की सेना को विचलित करके फिर रावण को घेर लिया। चारों ओर से चपेटे मारकर और नखों से शरीर विदीर्ण कर वानरों ने उसको व्याकुल कर दिया॥

दोहा :
* देखि महा मर्कट प्रबल रावन कीन्ह बिचार।
अंतरहित होइ निमिष महुँ कृत माया बिस्तार॥100॥
भावार्थ:-वानरों को बड़ा ही प्रबल देखकर रावण ने विचार किया और अंतर्धान होकर क्षणभर में उसने माया फैलाई॥100॥

छंद :
* जब कीन्ह तेहिं पाषंड। भए प्रगट जंतु प्रचंड॥
बेताल भूत पिसाच। कर धरें धनु नाराच॥1॥
भावार्थ:-जब उसने पाखंड (माया) रचा, तब भयंकर जीव प्रकट हो गए। बेताल, भूत और पिशाच हाथों में धनुष-बाण लिए प्रकट हुए!॥1॥

* जोगिनि गहें करबाल। एक हाथ मनुज कपाल॥
करि सद्य सोनित पान। नाचहिं करहिं बहु गान॥2॥
भावार्थ:- योगिनियाँ एक हाथ में तलवार और दूसरे हाथ में मनुष्य की खोपड़ी लिए ताजा खून पीकर नाचने और बहुत तरह के गीत गाने लगीं॥2॥

* धरु मारु बोलहिं घोर। रहि पूरि धुनि चहुँ ओर॥
मुख बाइ धावहिं खान। तब लगे कीस परान॥3॥
भावार्थ:-वे 'पकड़ो, मारो' आदि घोर शब्द बोल रही हैं। चारों ओर (सब दिशाओं में) यह ध्वनि भर गई। वे मुख फैलाकर खाने दौड़ती हैं। तब वानर भागने लगे॥3॥

* जहँ जाहिं मर्कट भागि। तहँ बरत देखहिं आगि॥
भए बिकल बानर भालु। पुनि लाग बरषै बालु॥4॥

भावार्थ:-वानर भागकर जहाँ भी जाते हैं, वहीं आग जलती देखते हैं। वानर-भालू व्याकुल हो गए। फिर रावण बालू बरसाने लगा॥4॥

* जहँ तहँ थकित करि कीस। गर्जेउ बहुरि दससीस॥
लछिमन कपीस समेत। भए सकल बीर अचेत॥5॥

भावार्थ:-वानरों को जहाँ-तहाँ थकित (शिथिल) कर रावण फिर गरजा। लक्ष्मणजी और सुग्रीव सहित सभी वीर अचेत हो गए॥5॥

* हा राम हा रघुनाथ। कहि सुभट मीजहिं हाथ॥
ऐहि बिधि सकल बल तोरि। तेहिं कीन्ह कपट बहोरि॥6॥

भावार्थ:- हा राम! हा रघुनाथ पुकारते हुए श्रेष्ठ योद्धा अपने हाथ मलते (पछताते) हैं। इस प्रकार सब का बल तोड़कर रावण ने फिर दूसरी माया रची॥6॥

* प्रगटेसि बिपुल हनुमान। धाए गहे पाषान॥
तिन्ह रामु घेरे जाइ। चहुँ दिसि बरूथ बनाइ॥7॥

भावार्थ:-उसने बहुत से हनुमान् प्रकट किए, जो पत्थर लिए दौड़े। उन्होंने चारों ओर दल बनाकर श्री रामचंद्रजी को जा घेरा॥7॥

* मारहु धरहु जनि जाइ। कटकटहिं पूँछ उठाइ॥
दहँ दिसि लँगूर बिराज। तेहिं मध्य कोसलराज॥8॥

भावार्थ:-वे पूँछ उठाकर कटकटाते हुए पुकारने लगे, 'मारो, पकड़ो, जाने न पावे'। उनके लंगूर (पूँछ) दसों दिशाओं में शोभा दे रहे हैं और उनके बीच में कोसलराज श्री रामजी हैं॥8॥

छंद :

* तेहिं मध्य कोसलराज सुंदर स्याम तन सोभा लही।
जनु इंद्रधनुष अनेक की बर बारि तुंग तमालही॥

प्रभु देखि हरष बिषाद उर सुर बदत जय जय जय करी।
रघुबीर एकहिं तीर कोपि निमेष महुँ माया हरी॥1॥

भावार्थ:- उनके बीच में कोसलराज का सुंदर श्याम शरीर ऐसी शोभा पा रहा है, मानो ऊँचे तमाल वृक्ष के लिए अनेक इंद्रधनुषों की श्रेष्ठ बाढ़ (घेरा) बनाई गई हो। प्रभु को देखकर देवता हर्ष और विषादयुक्त हृदय से 'जय, जय, जय' ऐसा बोलने लगे। तब श्री रघुवीर ने क्रोध करके एक ही बाण में निमेषमात्र में रावण की सारी माया हर ली॥1॥

* माया बिगत कपि भालु हरषे बिटप गिरि गहि सब फिरे।
सर निकर छाड़े राम रावन बाहु सिर पुनि महि गिरे॥
श्रीराम रावन समर चरित अनेक कल्प जो गावहीं।
सत सेष सारद निगम कबि तेउ तदपि पार न पावहीं॥2॥

भावार्थ:- माया दूर हो जाने पर वानर-भालू हर्षित हुए और वृक्ष तथा पर्वत ले-लेकर सब लौट पड़े। श्री रामजी ने बाणों के समूह छोड़े, जिनसे रावण के हाथ और सिर फिर कट-कटकर पृथ्वी पर गिर पड़े। श्री रामजी और रावण के युद्ध का चरित्र यदि सैकड़ों शेष, सरस्वती, वेद और कवि अनेक कल्पों तक गाते रहें, तो भी उसका पार नहीं पा सकते॥2॥

दोहा :

* ताके गुन गन कछु कहे जड़मति तुलसीदास।
जिमि निज बल अनुरूप ते माछी उड़इ अकास॥101 क॥

भावार्थ:-उसी चरित्र के कुछ गुणगण मंदबुद्धि तुलसीदास ने कहे हैं, जैसे मक्खी भी अपने पुरुषार्थ के अनुसार आकाश में उड़ती है॥101 (क)॥

* काटे सिर भुज बार बहु मरत न भट लंकेस।
प्रभु क्रीड़त सुर सिद्ध मुनि ब्याकुल देखि कलेस॥101 ख॥

भावार्थ:- सिर और भुजाएँ बहुत बार काटी गईं। फिर भी वीर रावण मरता नहीं। प्रभु तो खेल कर रहे हैं, परन्तु मुनि, सिद्ध और देवता उस क्लेश को देखकर (प्रभु को क्लेश पाते समझकर) व्याकुल हैं॥101 (ख)॥

चौपाई :

* काटत बढ़हिं सीस समुदाई। जिमि प्रति लाभ लोभ अधिकाई॥
मरइ न रिपु श्रम भयउ बिसेषा। राम बिभीषन तन तब देखा॥1॥

भावार्थ:- काटते ही सिरों का समूह बढ़ जाता है, जैसे प्रत्येक लाभ पर लोभ बढ़ता है। शत्रु मरता नहीं और परिश्रम बहुत हुआ। तब श्री रामचंद्रजी ने विभीषण की ओर देखा॥1॥

* उमा काल मर जाकीं ईछा। सो प्रभु जन कर प्रीति परीछा॥
सुनु सरबग्य चराचर नायक। प्रनतपाल सुर मुनि सुखदायक॥2॥

भावार्थ:- (शिवजी कहते हैं-) हे उमा! जिसकी इच्छा मात्र से काल भी मर जाता है, वही प्रभु सेवक की प्रीति की परीक्षा ले रहे हैं। (विभीषणजी ने कहा-) हे सर्वज्ञ! हे चराचर के स्वामी! हे शरणागत के पालन करने वाले! हे देवता और मुनियों को सुख देने वाले! सुनिए-॥2॥

* नाभिकुंड पियूष बस याकें। नाथ जिअत रावनु बल ताकें॥
सुनत बिभीषन बचन कृपाला। हरषि गहे कर बान कराला॥3॥

भावार्थ:-इसके नाभिकुंड में अमृत का निवास है। हे नाथ! रावण उसी के बल पर जीता है। विभीषण के वचन सुनते ही कृपालु श्री रघुनाथजी ने हर्षित होकर हाथ में विकराल बाण लिए॥3॥

* असुभ होन लागे तब नाना। रोवहिं खर सृकाल बहु स्वाना॥
बोलहिं खग जग आरति हेतू। प्रगट भए नभ जहँ तहँ केतू॥4॥

भावार्थ:- उस समय नाना प्रकार के अपशकुन होने लगे। बहुत से गदहे, स्यार और कुत्ते रोने लगे। जगत् के दुःख (अशुभ) को सूचित करने के

लिए पक्षी बोलने लगे। आकाश में जहाँ-तहाँ केतु (पुच्छल तारे) प्रकट हो गए॥4॥

* दस दिसि दाह होन अति लागा। भयउ परब बिनु रबि उपरागा॥
मंदोदरि उर कंपति भारी। प्रतिमा स्रवहिं नयन मग बारी॥5॥

भावार्थ:-दसों दिशाओं में अत्यंत दाह होने लगा (आग लगने लगी) बिना ही पर्व (योग) के सूर्यग्रहण होने लगा। मंदोदरी का हृदय बहुत काँपने लगा। मूर्तियाँ नेत्र मार्ग से जल बहाने लगीं॥5॥

छंद :

* प्रतिमा रुदहिं पबिपात नभ अति बात बह डोलति मही।
बरषहिं बलाहक रुधिर कच रज असुभ अति सक को कही॥
उतपात अमित बिलोकि नभ सुर बिकल बोलहिं जय जए।
सुर सभय जानि कृपाल रघुपति चाप सर जोरत भए॥

भावार्थ:-मूर्तियाँ रोने लगीं, आकाश से वज्रपात होने लगे, अत्यंत प्रचण्ड वायु बहने लगी, पृथ्वी हिलने लगी, बादल रक्त, बाल और धूल की वर्षा करने लगे। इस प्रकार इतने अधिक अमंगल होने लगे कि उनको कौन कह सकता है? अपरिमित उत्पात देखकर आकाश में देवता व्याकुल होकर जय-जय पुकार उठे। देवताओं को भयभीत जानकर कृपालु श्री रघुनाथजी धनुष पर बाण सन्धान करने लगे।

दोहा :

* खैंचि सरासन श्रवन लगि छाड़े सर एकतीस।
रघुनायक सायक चले मानहुँ काल फनीस॥102॥

भावार्थ:- कानों तक धनुष को खींचकर श्री रघुनाथजी ने इकतीस बाण छोड़े। वे श्री रामचंद्रजी के बाण ऐसे चले मानो कालसर्प हों॥102॥

चौपाई :

* सायक एक नाभि सर सोषा। अपर लगे भुज सिर करि रोषा॥

लै सिर बाहु चले नाराचा। सिर भुज हीन रुंड महि नाचा॥1॥

भावार्थ:- एक बाण ने नाभि के अमृत कुंड को सोख लिया। दूसरे तीस बाण कोप करके उसके सिरों और भुजाओं में लगे। बाण सिरों और भुजाओं को लेकर चले। सिरों और भुजाओं से रहित रुण्ड (धड़) पृथ्वी पर नाचने लगा॥1॥

* धरनि धसइ धर धाव प्रचंडा। तब सर हति प्रभु कृत दुइ खंडा॥
गर्जेउ मरत घोर रव भारी। कहाँ रामु रन हतौं पचारी॥2॥

भावार्थ:- धड़ प्रचण्ड वेग से दौड़ता है, जिससे धरती धँसने लगी। तब प्रभु ने बाण मारकर उसके दो टुकड़े कर दिए। मरते समय रावण बड़े घोर शब्द से गरजकर बोला- राम कहाँ हैं? मैं ललकारकर उनको युद्ध में मारूँ!॥2॥

* डोली भूमि गिरत दसकंधर। छुभित सिंधु सरि दिग्गज भूधर॥
धरनि परेउ द्वौ खंड बढ़ाई। चापि भालु मर्कट समुदाई॥3॥

भावार्थ:- रावण के गिरते ही पृथ्वी हिल गई। समुद्र, नदियाँ, दिशाओं के हाथी और पर्वत क्षुब्ध हो उठे। रावण धड़ के दोनों टुकड़ों को फैलाकर भालू और वानरों के समुदाय को दबाता हुआ पृथ्वी पर गिर पड़ा॥3॥

* मंदोदरि आगें भुज सीसा। धरि सर चले जहाँ जगदीसा॥
प्रबिसे सब निषंग महुँ जाई। देखि सुरन्ह दुंदुभीं बजाई॥4॥

भावार्थ:- रावण की भुजाओं और सिरों को मंदोदरी के सामने रखकर रामबाण वहाँ चले, जहाँ जगदीश्वर श्री रामजी थे। सब बाण जाकर तरकस में प्रवेश कर गए। यह देखकर देवताओं ने नगाड़े बजाए॥4॥

* तासु तेज समान प्रभु आनन। हरषे देखि संभु चतुरानन॥
जय जय धुनि पूरी ब्रह्मंडा। जय रघुबीर प्रबल भुजदंडा॥5॥

भावार्थ:-रावण का तेज प्रभु के मुख में समा गया। यह देखकर शिवजी और ब्रह्माजी हर्षित हुए। ब्रह्माण्डभर में जय-जय की ध्वनि भर गई। प्रबल भुजदण्डों वाले श्री रघुवीर की जय हो॥5॥

* बरषहिं सुमन देव मुनि बृंदा। जय कृपाल जय जयति मुकुंदा॥6॥

भावार्थ:- देवता और मुनियों के समूह फूल बरसाते हैं और कहते हैं- कृपालु की जय हो, मुकुन्द की जय हो, जय हो!॥6॥

छंद :

* जय कृपा कंद मुकुंद द्वंद हरन सरन सुखप्रद प्रभो।
खल दल बिदारन परम कारन कारुनीक सदा बिभो॥
सुर सुमन बरषहिं हरष संकुल बाज दुंदुभि गहगही।
संग्राम अंगन राम अंग अनंग बहु सोभा लही॥1॥

भावार्थ:- हे कृपा के कंद! हे मोक्षदाता मुकुन्द! हे (राग-द्वेष, हर्ष-शोक, जन्म-मृत्यु आदि) द्वंद्वों के हरने वाले! हे शरणागत को सुख देने वाले प्रभो! हे दुष्ट दल को विदीर्ण करने वाले! हे कारणों के भी परम कारण! हे सदा करुणा करने वाले! हे सर्वव्यापक विभो! आपकी जय हो। देवता हर्ष में भरे हुए पुष्प बरसाते हैं, घमाघम नगाड़े बज रहे हैं। रणभूमि में श्री रामचंद्रजी के अंगों ने बहुत से कामदेवों की शोभा प्राप्त की॥1॥

* सिर जटा मुकुट प्रसून बिच बिच अति मनोहर राजहीं।
जनु नीलगिरि पर तड़ित पटल समेत उडुगन भ्राजहीं॥
भुजदंड सर कोदंड फेरत रुधिर कन तन अति बने।
जनु रायमुनीं तमाल पर बैठीं बिपुल सुख आपने॥2॥

भावार्थ:- सिर पर जटाओं का मुकुट है, जिसके बीच में अत्यंत मनोहर पुष्प शोभा दे रहे हैं। मानो नीले पर्वत पर बिजली के समूह सहित नक्षत्र सुशोभित हो रहे हैं। श्री रामजी अपने भुजदण्डों से बाण और धनुष फिरा रहे हैं। शरीर पर रुधिर के कण अत्यंत सुंदर लगते हैं। मानो तमाल

के वृक्ष पर बहुत सी ललमुनियाँ चिड़ियाँ अपने महान् सुख में मग्न हुई निश्चल बैठी हों॥2॥

दोहा :

* कृपादृष्टि करि बृष्टि प्रभु अभय किए सुर बृंद।
भालु कीस सब हरषे जय सुख धाम मुकुंद॥103॥

भावार्थ:- प्रभु श्री रामचंद्रजी ने कृपा दृष्टि की वर्षा करके देव समूह को निर्भय कर दिया। वानर-भालू सब हर्षित हुए और सुखधाम मुकुन्द की जय हो, ऐसा पुकारने लगे॥103॥

मन्दोदरी-विलाप, रावण की अन्त्येष्टि क्रिया

चौपाई :

* पति सिर देखत मंदोदरी। मुरुछित बिकल धरनि खसि परी॥
जुबति बृंद रोवत उठि धाईं। तेहि उठाइ रावन पहिं आईं॥1॥

भावार्थ:- पति के सिर देखते ही मंदोदरी व्याकुल और मूर्च्छित होकर धरती पर गिर पड़ी। स्त्रियाँ रोती हुई दौड़ीं और उस (मंदोदरी) को उठाकर रावण के पास आईं॥1॥

* पति गति देखि ते करहिं पुकारा। छूटे कच नहिं बपुष सँभारा॥
उर ताड़ना करहिं बिधि नाना। रोवत करहिं प्रताप बखाना॥2॥

भावार्थ:- पति की दशा देखकर वे पुकार-पुकारकर रोने लगीं। उनके बाल खुल गए, देह की संभाल नहीं रही। वे अनेकों प्रकार से छाती पीटती हैं और रोती हुई रावण के प्रताप का बखान करती हैं॥2॥

* तव बल नाथ डोल नित धरनी। तेज हीन पावक ससि तरनी॥
सेष कमठ सहि सकहिं न भारा। सो तनु भूमि परेउ भरि छारा॥3॥

भावार्थ:- (वे कहती हैं-) हे नाथ! तुम्हारे बल से पृथ्वी सदा काँपती रहती थी। अग्नि, चंद्रमा और सूर्य तुम्हारे सामने तेजहीन थे। शेष और कच्छप भी जिसका भार नहीं सह सकते थे, वही तुम्हारा शरीर आज धूल में भरा हुआ पृथ्वी पर पड़ा है!॥3॥

* बरुन कुबेर सुरेस समीरा। रन सन्मुख धरि काहुँ न धीरा॥
भुजबल जितेहु काल जम साईं। आजु परेहु अनाथ की नाईं॥4॥

भावार्थ:-वरुण, कुबेर, इंद्र और वायु, इनमें से किसी ने भी रण में तुम्हारे सामने धैर्य धारण नहीं किया। हे स्वामी! तुमने अपने भुजबल से काल और यमराज को भी जीत लिया था। वही तुम आज अनाथ की तरह पड़े हो॥4॥

* जगत बिदित तुम्हारि प्रभुताई। सुत परिजन बल बरनि न जाई॥
राम बिमुख अस हाल तुम्हारा। रहा न कोउ कुल रोवनिहारा॥5॥

भावार्थ:-तुम्हारी प्रभुता जगत् भर में प्रसिद्ध है। तुम्हारे पुत्रों और कुटुम्बियों के बल का हाय! वर्णन ही नहीं हो सकता। श्री रामचंद्रजी के विमुख होने से तुम्हारी ऐसी दुर्दशा हुई कि आज कुल में कोई रोने वाला भी न रह गया॥5॥

* तव बस बिधि प्रचंड सब नाथा। सभय दिसिप नित नावहिं माथा॥
अब तव सिर भुज जंबुक खाहीं। राम बिमुख यह अनुचित नाहीं॥6॥

भावार्थ:-हे नाथ! विधाता की सारी सृष्टि तुम्हारे वश में थी। लोकपाल सदा भयभीत होकर तुमको मस्तक नवाते थे, किन्तु हाय! अब तुम्हारे सिर और भुजाओं को गीदड़ खा रहे हैं। राम विमुख के लिए ऐसा होना अनुचित भी नहीं है (अर्थात् उचित ही है)॥6॥

* काल बिबस पति कहा न माना। अग जग नाथु मनुज करि जाना॥7॥

भावार्थ:- हे पति! काल के पूर्ण वश में होने से तुमने (किसी का) कहना नहीं माना और चराचर के नाथ परमात्मा को मनुष्य करके जाना॥7॥

छंद :

* जान्यो मनुज करि दनुज कानन दहन पावक हरि स्वयं।
जेहि नमत सिव ब्रह्मादि सुर पिय भजेहु नहिं करुनामयं॥
आजन्म ते परद्रोह रत पापौघमय तव तनु अयं।
तुम्हहू दियो निज धाम राम नमामि ब्रह्म निरामयं॥

भावार्थ:-दैत्य रूपी वन को जलाने के लिए अग्निस्वरूप साक्षात् श्री हरि को तुमने मनुष्य करके जाना। शिव और ब्रह्मा आदि देवता जिनको नमस्कार करते हैं, उन करुणामय भगवान् को हे प्रियतम! तुमने नहीं भजा। तुम्हारा यह शरीर जन्म से ही दूसरों से द्रोह करने में तत्पर तथा पाप समूहमय रहा! इतने पर भी जिन निर्विकार ब्रह्म श्री रामजी ने तुमको अपना धाम दिया, उनको मैं नमस्कार करती हूँ।

दोहा :

* अहह नाथ रघुनाथ सम कृपासिंधु नहिं आन।
जोगि बृंद दुर्लभ गति तोहि दीन्हि भगवान॥104॥

भावार्थ:-अहह! नाथ! श्री रघुनाथजी के समान कृपा का समुद्र दूसरा कोई नहीं है, जिन भगवान् ने तुमको वह गति दी, जो योगि समाज को भी दुर्लभ है॥104॥

चौपाई :

* मंदोदरी बचन सुनि काना। सुर मुनि सिद्ध सबन्हि सुख माना॥
अज महेस नारद सनकादी। जे मुनिबर परमारथबादी॥1॥

भावार्थ:-मंदोदरी के वचन कानों में सुनकर देवता, मुनि और सिद्ध सभी ने सुख माना। ब्रह्मा, महादेव, नारद और सनकादि तथा और भी जो

परमार्थवादी (परमात्मा के तत्त्व को जानने और कहने वाले) श्रेष्ठ मुनि थे॥1॥

* भरि लोचन रघुपतिहि निहारी। प्रेम मगन सब भए सुखारी॥

रुदन करत देखीं सब नारी। गयउ बिभीषनु मनु दुख भारी॥2॥

भावार्थ:- वे सभी श्री रघुनाथजी को नेत्र भरकर निरखकर प्रेममग्न हो गए और अत्यंत सुखी हुए। अपने घर की सब स्त्रियों को रोती हुई देखकर विभीषणजी के मन में बड़ा भारी दुःख हुआ और वे उनके पास गए॥2॥

* बंधु दसा बिलोकि दुख कीन्हा। तब प्रभु अनुजहि आयसु दीन्हा॥

लछिमन तेहि बहु बिधि समुझायो। बहुरि बिभीषन प्रभु पहिं आयो॥3॥

भावार्थ:-उन्होंने भाई की दशा देखकर दुःख किया। तब प्रभु श्री रामजी ने छोटे भाई को आज्ञा दी (कि जाकर विभीषण को धैर्य बँधाओ)। लक्ष्मणजी ने उन्हें बहुत प्रकार से समझाया। तब विभीषण प्रभु के पास लौट आए॥3॥

* कृपादृष्टि प्रभु ताहि बिलोका। करहु क्रिया परिहरि सब सोका॥

कीन्हि क्रिया प्रभु आयसु मानी। बिधिवत देस काल जियँ जानी॥4॥

भावार्थ:-प्रभु ने उनको कृपापूर्ण दृष्टि से देखा (और कहा-) सब शोक त्यागकर रावण की अंत्येष्टि क्रिया करो। प्रभु की आज्ञा मानकर और हृदय में देश और काल का विचार करके विभीषणजी ने विधिपूर्वक सब क्रिया की॥4॥

दोहा :

* मंदोदरी आदि सब देह तिलांजलि ताहि।

भवन गईं रघुपति गुन गन बरनत मन माहि॥105॥

भावार्थ:- मंदोदरी आदि सब स्त्रियाँ उसे (रावण को) तिलांजलि देकर मन में श्री रघुनाथजी के गुण समूहों का वर्णन करती हुई महल को गईं॥105॥

विभीषण का राज्याभिषेक

चौपाई :

* आइ बिभीषन पुनि सिरु नायो। कृपासिंधु तब अनुज बोलायो॥
तुम्ह कपीस अंगद नल नीला। जामवंत मारुति नयसीला॥1॥
सब मिलि जाहु बिभीषन साथा। सारेहु तिलक कहेउ रघुनाथा॥
पिता बचन मैं नगर न आवउँ। आपु सरिस कपि अनुज पठावउँ॥2॥

भावार्थ:-सब क्रिया-कर्म करने के बाद विभीषण ने आकर पुनः सिर नवाया। तब कृपा के समुद्र श्री रामजी ने छोटे भाई लक्ष्मणजी को बुलाया। श्री रघुनाथजी ने कहा कि तुम, वानरराज सुग्रीव, अंगद, नल, नील जाम्बवान् और मारुति सब नीतिनिपुण लोग मिलकर विभीषण के साथ जाओ और उन्हें राजतिलक कर दो। पिताजी के वचनों के कारण मैं नगर में नहीं आ सकता। पर अपने ही समान वानर और छोटे भाई को भेजता हूँ॥1-2॥

* तुरत चले कपि सुनि प्रभु बचना। कीन्ही जाइ तिलक की रचना॥
सादर सिंहासन बैठारी। तिलक सारि अस्तुति अनुसारी॥3॥

भावार्थ:- प्रभु के वचन सुनकर वानर तुरंत चले और उन्होंने जाकर राजतिलक की सारी व्यवस्था की। आदर के साथ विभीषण को सिंहासन पर बैठाकर राजतिलक किया और स्तुति की॥3॥

* जोरि पानि सबहीं सिर नाए। सहित बिभीषन प्रभु पहिं आए॥
तब रघुबीर बोलि कपि लीन्हे। कहि प्रिय बचन सुखी सब कीन्हे॥4॥

भावार्थ:-सभी ने हाथ जोड़कर उनको सिर नवाए। तदनन्तर विभीषणजी सहित सब प्रभु के पास आए। तब श्री रघुवीर ने वानरों को बुला लिया और प्रिय वचन कहकर सबको सुखी किया॥4॥

छंद- :

* किए सुखी कहि बानी सुधा सम बल तुम्हारें रिपु हयो।
पायो बिभीषन राज तिहुँ पुर जसु तुम्हारो नित नयो॥
मोहि सहित सुभ कीरति तुम्हारी परम प्रीति जो गाइहैं।
संसार सिंधु अपार पार प्रयास बिनु नर पाइहैं॥

भावार्थ:- भगवान् ने अमृत के समान यह वाणी कहकर सबको सुखी किया कि तुम्हारे ही बल से यह प्रबल शत्रु मारा गया और विभीषण ने राज्य पाया। इसके कारण तुम्हारा यश तीनों लोकों में नित्य नया बना रहेगा। जो लोग मेरे सहित तुम्हारी शुभ कीर्ति को परम प्रेम के साथ गाएँगे, वे बिना ही परिश्रम इस अपार संसार का पार पा जाएँगे।

दोहा :

प्रभु के बचन श्रवन सुनि नहिं अघाहिं कपि पुंज।
बार बार सिर नावहिं गहहिं सकल पद कंज॥106॥

भावार्थ:- प्रभु के वचन कानों से सुनकर वानर समूह तृप्त नहीं होते। वे सब बार-बार सिर नवाते हैं और चरणकमलों को पकड़ते हैं॥106॥

हनुमान्‌जी का सीताजी को कुशल सुनाना, सीताजी का आगमन और अग्नि परीक्षा

चौपाई :

* पुनि प्रभु बोलि लियउ हनुमाना। लंका जाहु कहेउ भगवाना॥
समाचार जानकिहि सुनावहु। तासु कुसल लै तुम्ह चलि आवहु॥1॥

भावार्थ:-फिर प्रभु ने हनुमान्‌जी को बुला लिया। भगवान्‌ ने कहा- तुम लंका जाओ। जानकी को सब समाचार सुनाओ और उसका कुशल समाचार लेकर तुम चले आओ॥1॥

* तब हनुमंत नगर महुँ आए। सुनि निसिचरीं निसाचर धाए॥
बहु प्रकार तिन्ह पूजा कीन्ही। जनकसुता देखाइ पुनि दीन्ही॥2॥

भावार्थ:-तब हनुमान्‌जी नगर में आए। यह सुनकर राक्षस-राक्षसी (उनके सत्कार के लिए) दौड़े। उन्होंने बहुत प्रकार से हनुमान्‌जी की पूजा की और फिर श्री जानकीजी को दिखला दिया॥2॥

* दूरिहि ते प्रनाम कपि कीन्हा। रघुपति दूत जानकीं चीन्हा॥
कहहु तात प्रभु कृपानिकेता। कुसल अनुज कपि सेन समेता॥3॥

भावार्थ:-हनुमान्‌जी ने (सीताजी को) दूर से ही प्रणाम किया। जानकीजी ने पहचान लिया कि यह वही श्री रघुनाथजी का दूत है (और पूछा-) हे तात! कहो, कृपा के धाम मेरे प्रभु छोटे भाई और वानरों की सेना सहित कुशल से तो हैं?॥3॥

* सब बिधि कुसल कोसलाधीसा। मातु समर जीत्यो दससीसा॥
अबिचल राजु बिभीषन पायो। सुनि कपि बचन हरष उर छायो॥4॥

भावार्थ:-(हनुमान्‌जी ने कहा-) हे माता! कोसलपति श्री रामजी सब प्रकार से सकुशल हैं। उन्होंने संग्राम में दस सिर वाले रावण को जीत

लिया है और विभीषण ने अचल राज्य प्राप्त किया है। हनुमान्‌जी के वचन सुनकर सीताजी के हृदय में हर्ष छा गया॥4॥

छंद- :

* अति हरष मन तन पुलक लोचन सजल कह पुनि पुनि रमा।
का देउँ तोहि त्रैलोक महुँ कपि किमपि नहिं बानी समा॥
सुनु मातु मैं पायो अखिल जग राजु आजु न संसयं।
रन जीति रिपुदल बंधु जुत पस्यामि राममनामयं॥

भावार्थ:-श्री जानकीजी के हृदय में अत्यंत हर्ष हुआ। उनका शरीर पुलकित हो गया और नेत्रों में (आनंदाश्रुओं का) जल छा गया। वे बार-बार कहती हैं- हे हनुमान्! मैं तुझे क्या दूँ? इस वाणी (समाचार) के समान तीनों लोकों में और कुछ भी नहीं है! (हनुमान्‌जी ने कहा-) हे माता! सुनिए, मैंने आज नि:संदेह सारे जगत् का राज्य पा लिया, जो मैं रण में शत्रु को जीतकर भाई सहित निर्विकार श्री रामजी को देख रहा हूँ।

दोहा :

सुनु सुत सदगुन सकल तव हृदयँ बसहुँ हनुमंत।
सानुकूल कोसलपति रहहुँ समेत अनंत॥107॥

भावार्थ:-(जानकीजी ने कहा-) हे पुत्र! सुन, समस्त सद्‌गुण तेरे हृदय में बसें और हे हनुमान्! शेष (लक्ष्मणजी) सहित कोसलपति प्रभु सदा तुझ पर प्रसन्न रहें॥107॥

चौपाई :

अब सोइ जतन करहु तुम्ह ताता। देखौं नयन स्याम मृदु गाता॥
तब हनुमान राम पहिं जाई। जनकसुता कै कुसल सुनाई॥1॥

भावार्थ:-हे तात! अब तुम वही उपाय करो, जिससे मैं इन नेत्रों से प्रभु के कोमल श्याम शरीर के दर्शन करूँ। तब श्री रामचंद्रजी के पास जाकर हनुमान्‌जी ने जानकीजी का कुशल समाचार सुनाया॥1॥

* सुनि संदेसु भानुकुलभूषन। बोलि लिए जुबराज बिभीषन॥
मारुतसुत के संग सिधावहु। सादर जनकसुतहि लै आवहु॥2॥

भावार्थ:-

हनुमान्‌जी का सीताजी को कुशल सुनाना, सीताजी का आगमन और अग्नि परीक्षा

चौपाई :

* पुनि प्रभु बोलि लियउ हनुमाना। लंका जाहु कहेउ भगवाना॥
समाचार जानकिहि सुनावहु। तासु कुसल लै तुम्ह चलि आवहु॥1॥

भावार्थ:-फिर प्रभु ने हनुमान्‌जी को बुला लिया। भगवान्‌ ने कहा- तुम लंका जाओ। जानकी को सब समाचार सुनाओ और उसका कुशल समाचार लेकर तुम चले आओ॥1॥

* तब हनुमंत नगर महुँ आए। सुनि निसिचरीं निसाचर धाए॥
बहु प्रकार तिन्ह पूजा कीन्ही। जनकसुता देखाइ पुनि दीन्ही॥2॥

भावार्थ:-तब हनुमान्‌जी नगर में आए। यह सुनकर राक्षस-राक्षसी (उनके सत्कार के लिए) दौड़े। उन्होंने बहुत प्रकार से हनुमान्‌जी की पूजा की और फिर श्री जानकीजी को दिखला दिया॥2॥

* दूरिहि ते प्रनाम कपि कीन्हा। रघुपति दूत जानकीं चीन्हा॥
कहहु तात प्रभु कृपानिकेता। कुसल अनुज कपि सेन समेता॥3॥

भावार्थ:-हनुमान्‌जी ने (सीताजी को) दूर से ही प्रणाम किया। जानकीजी ने पहचान लिया कि यह वही श्री रघुनाथजी का दूत है (और पूछा-) हे

तात! कहो, कृपा के धाम मेरे प्रभु छोटे भाई और वानरों की सेना सहित कुशल से तो हैं?॥3॥

* सब बिधि कुसल कोसलाधीसा। मातु समर जीत्यो दससीसा॥
अबिचल राजु बिभीषन पायो। सुनि कपि बचन हरष उर छायो॥4॥

भावार्थ:-(हनुमान्‌जी ने कहा-) हे माता! कोसलपति श्री रामजी सब प्रकार से सकुशल हैं। उन्होंने संग्राम में दस सिर वाले रावण को जीत लिया है और विभीषण ने अचल राज्य प्राप्त किया है। हनुमान्‌जी के वचन सुनकर सीताजी के हृदय में हर्ष छा गया॥4॥

छंद- :

* अति हरष मन तन पुलक लोचन सजल कह पुनि पुनि रमा।
का देउँ तोहि त्रैलोक महुँ कपि किमपि नहिं बानी समा॥
सुनु मातु मैं पायो अखिल जग राजु आजु न संसयं।
रन जीति रिपुदल बंधु जुत पस्यामि राममनामयं॥

भावार्थ:-श्री जानकीजी के हृदय में अत्यंत हर्ष हुआ। उनका शरीर पुलकित हो गया और नेत्रों में (आनंदाश्रुओं का) जल छा गया। वे बार-बार कहती हैं- हे हनुमान्! मैं तुझे क्या दूँ? इस वाणी (समाचार) के समान तीनों लोकों में और कुछ भी नहीं है! (हनुमान्‌जी ने कहा-) हे माता! सुनिए, मैंने आज निःसंदेह सारे जगत्‌ का राज्य पा लिया, जो मैं रण में शत्रु को जीतकर भाई सहित निर्विकार श्री रामजी को देख रहा हूँ।

दोहा :

सुनु सुत सदगुन सकल तव हृदयँ बसहुँ हनुमंत।
सानुकूल कोसलपति रहहुँ समेत अनंत॥107॥

भावार्थ:-(जानकीजी ने कहा-) हे पुत्र! सुन, समस्त सद्‍गुण तेरे हृदय में बसें और हे हनुमान्! शेष (लक्ष्मणजी) सहित कोसलपति प्रभु सदा तुझ पर प्रसन्न रहें॥107॥

चौपाई :

अब सोइ जतन करहु तुम्ह ताता। देखौं नयन स्याम मृदु गाता॥
तब हनुमान राम पहिं जाई। जनकसुता कै कुसल सुनाई॥1॥

भावार्थ:-हे तात! अब तुम वही उपाय करो, जिससे मैं इन नेत्रों से प्रभु के कोमल श्याम शरीर के दर्शन करूँ। तब श्री रामचंद्रजी के पास जाकर हनुमान्‌जी ने जानकीजी का कुशल समाचार सुनाया॥1॥

* सुनि संदेसु भानुकुलभूषन। बोलि लिए जुबराज बिभीषन॥
मारुतसुत के संग सिधावहु। सादर जनकसुतहि लै आवहु॥2॥

भावार्थ:-सूर्य कुलभूषण श्री रामजी ने संदेश सुनकर युवराज अंगद और विभीषण को बुला लिया (और कहा-) पवनपुत्र हनुमान् के साथ जाओ और जानकी को आदर के साथ ले आओ॥2॥

* तुरतहिं सकल गए जहँ सीता। सेवहिं सब निसिचरीं बिनीता॥
बेगि बिभीषन तिन्हहि सिखायो। तिन्ह बहु बिधि मज्जन करवायो॥3॥

भावार्थ:-वे सब तुरंत ही वहाँ गए, जहाँ सीताजी थीं। सब की सब राक्षसियाँ नम्रतापूर्वक उनकी सेवा कर रही थीं। विभीषणजी ने शीघ्र ही उन लोगों को समझा दिया। उन्होंने बहुत प्रकार से सीताजी को स्नान कराया,॥3॥

* बहु प्रकार भूषन पहिराए। सिबिका रुचिर साजि पुनि ल्याए॥
ता पर हरषि चढ़ी बैदेही। सुमिरि राम सुखधाम सनेही॥4॥

भावार्थ:-बहुत प्रकार के गहने पहनाए और फिर वे एक सुंदर पालकी सजाकर ले आए। सीताजी प्रसन्न होकर सुख के धाम प्रियतम श्री रामजी का स्मरण करके उस पर हर्ष के साथ चढ़ीं॥4॥

बेतपानि रच्छक चहु पासा। चले सकल मन परम हुलासा॥
देखन भालु कीस सब आए। रच्छक कोपि निवारन धाए॥5॥

भावार्थ:-चारों ओर हाथों में छड़ी लिए रक्षक चले। सबके मनों में परम उल्लास (उमंग) है। रीछ-वानर सब दर्शन करने के लिए आए, तब रक्षक क्रोध करके उनको रोकने दौड़े॥5॥

कह रघुबीर कहा मम मानहु। सीतहि सखा पयादें आनहु॥
देखहुँ कपि जननी की नाईं। बिहसि कहा रघुनाथ गोसाईं॥6॥

भावार्थ:-श्री रघुवीर ने कहा- हे मित्र! मेरा कहना मानो और सीता को पैदल ले आओ, जिससे वानर उसको माता की तरह देखें। गोसाईं श्री रामजी ने हँसकर ऐसा कहा॥6॥

* सुनि प्रभु बचन भालु कपि हरषे। नभ ते सुरन्ह सुमन बहु बरषे॥
सीता प्रथम अनल महुँ राखी। प्रगट कीन्हि चह अंतर साखी॥7॥

भावार्थ:-प्रभु के वचन सुनकर रीछ-वानर हर्षित हो गए। आकाश से देवताओं ने बहुत से फूल बरसाए। सीताजी (के असली स्वरूप) को पहिले अग्नि में रखा था। अब भीतर के साक्षी भगवान् उनको प्रकट करना चाहते हैं॥7॥

दोहा :

* तेहि कारन करुनानिधि कहे कछुक दुर्बाद।
सुनत जातुधानीं सब लागीं करै बिषाद॥108॥

भावार्थ:-इसी कारण करुणा के भंडार श्री रामजी ने लीला से कुछ कड़े वचन कहे, जिन्हे सुनकर सब राक्षसियाँ विषाद करने लगीं॥108॥

चौपाई :

* प्रभु के बचन सीस धरि सीता। बोली मन क्रम बचन पुनीता॥
लछिमन होहु धरम के नेगी। पावक प्रगट करहु तुम्ह बेगी॥1॥

भावार्थ:-प्रभु के वचनों को सिर चढ़ाकर मन, वचन और कर्म से पवित्र श्री सीताजी बोलीं- हे लक्ष्मण! तुम मेरे धर्म के नेगी (धर्माचरण में सहायक) बनो और तुरंत आग तैयार करो॥1॥

सुनि लछिमन सीता कै बानी। बिरह बिबेक धरम निति सानी॥
लोचन सजल जोरि कर दोऊ। प्रभु सन कछु कहि सकत न ओऊ॥2॥

भावार्थ:-श्री सीताजी की विरह, विवेक, धर्म और नीति से सनी हुई वाणी सुनकर लक्ष्मणजी के नेत्रों में (विषाद के आँसुओं का) जल भर आया। वे हाथ जोड़े खड़े रहे। वे भी प्रभु से कुछ कह नहीं सकते॥2॥

देखि राम रुख लछिमन धाए। पावक प्रगटि काठ बहु लाए॥
पावक प्रबल देखि बैदेही। हृदयँ हरष नहिं भय कछु तेही॥3॥

भावार्थ:-फिर श्री रामजी का रुख देखकर लक्ष्मणजी दौड़े और आग तैयार करके बहुत सी लकड़ी ले आए। अग्नि को खूब बढ़ी हुई देखकर जानकीजी के हृदय में हर्ष हुआ। उन्हें भय कुछ भी नहीं हुआ॥3॥

* जौं मन बच क्रम मम उर माहीं। तजि रघुबीर आन गति नाहीं॥
तौ कृसानु सब कै गति जाना। मो कहुँ होउ श्रीखंड समाना॥4॥

भावार्थ:-(सीताजी ने लीला से कहा-) यदि मन, वचन और कर्म से मेरे हृदय में श्री रघुवीर को छोड़कर दूसरी गति (अन्य किसी का आश्रय) नहीं है, तो अग्निदेव जो सबके मन की गति जानते हैं, (मेरे भी मन की गति जानकर) मेरे लिए चंदन के समान शीतल हो जाएँ॥4॥

छंद- :

* श्रीखंड सम पावक प्रबेस कियो सुमिरि प्रभु मैथिली।
जय कोसलेस महेस बंदित चरन रति अति निर्मली॥

प्रतिबिंब अरु लौकिक कलंक प्रचंड पावक महुँ जरे।
प्रभु चरित काहुँ न लखे नभ सुर सिद्ध मुनि देखहिं खरे॥1॥

भावार्थ:-प्रभु श्री रामजी का स्मरण करके और जिनके चरण महादेवजी के द्वारा वंदित हैं तथा जिनमें सीताजी की अत्यंत विशुद्ध प्रीति है, उन कोसलपति की जय बोलकर जानकीजी ने चंदन के समान शीतल हुई अग्नि में प्रवेश किया। प्रतिबिम्ब (सीताजी की छायामूर्ति) और उनका लौकिक कलंक प्रचण्ड अग्नि में जल गए। प्रभु के इन चरित्रों को किसी ने नहीं जाना। देवता, सिद्ध और मुनि सब आकाश में खड़े देखते हैं॥1॥

* धरि रूप पावक पानि गहि श्री सत्य श्रुति जग बिदित जो।
जिमि छीरसागर इंदिरा रामहि समर्पी आनि सो॥
सो राम बाम बिभाग राजति रुचिर अति सोभा भली।
नव नील नीरज निकट मानहुँ कनक पंकज की कली॥2॥

भावार्थ:-तब अग्नि ने शरीर धारण करके वेदों में और जगत् में प्रसिद्ध वास्तविक श्री (सीताजी) का हाथ पकड़ उन्हें श्री रामजी को वैसे ही समर्पित किया जैसे क्षीरसागर ने विष्णु भगवान् को लक्ष्मी समर्पित की थीं। वे सीताजी श्री रामचंद्रजी के वाम भाग में विराजित हुईं। उनकी उत्तम शोभा अत्यंत ही सुंदर है। मानो नए खिले हुए नीले कमल के पास सोने के कमल की कली सुशोभित हो॥2॥

गीताप्रेस गोरखपुर

देवताओं की स्तुति, इंद्र की अमृत वर्षा

दोहा :

* बरषहिं सुमन हरषि सुर बाजहिं गगन निसान।

गावहिं किंनर सुरबधू नाचहिं चढ़ीं बिमान॥109 क॥

भावार्थ:-देवता हर्षित होकर फूल बरसाने लगे। आकाश में डंके बजने लगे। किन्नर गाने लगे। विमानों पर चढ़ी अप्सराएँ नाचने लगीं॥109 (क)॥

* जनकसुता समेत प्रभु सोभा अमित अपार।
देखि भालु कपि हरषे जय रघुपति सुख सार॥109 ख॥

भावार्थ:-श्री जानकीजी सहित प्रभु श्री रामचंद्रजी की अपरिमित और अपार शोभा देखकर रीछ-वानर हर्षित हो गए और सुख के सार श्री रघुनाथजी की जय बोलने लगे॥109 (ख)॥

चौपाई :

* तब रघुपति अनुसासन पाई। मातलि चलेउ चरन सिरु नाई॥
आए देव सदा स्वारथी। बचन कहहिं जनु परमारथी॥1॥

भावार्थ:-तब श्री रघुनाथजी की आज्ञा पाकर इंद्र का सारथी मातलि चरणों में सिर नवाकर (रथ लेकर) चला गया। तदनन्तर सदा के स्वार्थी देवता आए। वे ऐसे वचन कह रहे हैं मानो बड़े परमार्थी हों॥1॥

* दीन बंधु दयाल रघुराया। देव कीन्हि देवन्ह पर दाया॥
बिस्व द्रोह रत यह खल कामी। निज अघ गयउ कुमारगगामी॥2॥

भावार्थ:-हे दीनबन्धु! हे दयालु रघुराज! हे परमदेव! आपने देवताओं पर बड़ी दया की। विश्व के द्रोह में तत्पर यह दुष्ट, कामी और कुमार्ग पर चलने वाला रावण अपने ही पाप से नष्ट हो गया॥2॥

* तुम्ह समरूप ब्रह्म अबिनासी। सदा एकरस सहज उदासी॥
अकल अगुन अज अनघ अनामय। अजित अमोघसक्ति करुनामय॥3॥

भावार्थ:-आप समरूप, ब्रह्म, अविनाशी, नित्य, एकरस, स्वभाव से ही उदासीन (शत्रु-मित्र-भावरहित), अखंड, निर्गुण (मायिक गुणों से रहित), अजन्मे, निष्पाप, निर्विकार, अजेय, अमोघशक्ति (जिनकी शक्ति कभी व्यर्थ नहीं जाती) और दयामय हैं॥3॥

* मीन कमठ सूकर नरहरी। बामन परसुराम बपु धरी॥
जब जब नाथ सुरन्ह दुखु पायो। नाना तनु धरि तुम्हइँ नसायो॥4॥

भावार्थ:-आपने ही मत्स्य, कच्छप, वराह, नृसिंह, वामन और परशुराम के शरीर धारण किए। हे नाथ! जब-जब देवताओं ने दुःख पाया, तब-तब अनेकों शरीर धारण करके आपने ही उनका दुःख नाश किया॥4॥

* यह खल मलिन सदा सुरद्रोही। काम लोभ मद रत अति कोही।
अधम सिरोमनि तव पद पावा। यह हमरें मन बिसमय आवा॥5॥

भावार्थ:-यह दुष्ट मलिन हृदय, देवताओं का नित्य शत्रु, काम, लोभ और मद के परायण तथा अत्यंत क्रोधी था। ऐसे अधमों के शिरोमणि ने भी आपका परम पद पा लिया। इस बात का हमारे मन में आश्चर्य हुआ।।5।।

* हम देवता परम अधिकारी। स्वारथ रत प्रभु भगति बिसारी।।
भव प्रबाहँ संतत हम परे। अब प्रभु पाहि सरन अनुसरे॥6॥

भावार्थ:-हम देवता श्रेष्ठ अधिकारी होकर भी स्वार्थपरायण हो आपकी भक्ति को भुलाकर निरंतर भवसागर के प्रवाह (जन्म-मृत्यु के चक्र) में पड़े हैं। अब हे प्रभो! हम आपकी शरण में आ गए हैं, हमारी रक्षा कीजिए॥6॥

दोहा-

* करि बिनती सुर सिद्ध सब रहे जहँ तहँ कर जोरि।
अति सप्रेम तन पुलकि बिधि अस्तुति करत बहोरि॥110॥

भावार्थ:-विनती करके देवता और सिद्ध सब जहाँ के तहाँ हाथ जोड़े खड़े रहे। तब अत्यंत प्रेम से पुलकित शरीर होकर ब्रह्माजी स्तुति करने लगे--॥110॥

छंद-

* जय राम सदा सुख धाम हरे। रघुनायक सायक चाप धरे।।
भव बारन दारन सिंह प्रभो। गुन सागर नागर नाथ बिभो॥1॥

भावार्थ:-हे नित्य सुखधाम और (दु:खों को हरने वाले) हरि! हे धनुष-बाण धारण किए हुए रघुनाथजी! आपकी जय हो। हे प्रभो! आप भव (जन्म-मरण) रूपी हाथी को विदीर्ण करने के लिए सिंह के समान हैं। हे नाथ! हे सर्वव्यापक! आप गुणों के समुद्र और परम चतुर हैं॥1॥

* तन काम अनेक अनूप छबी। गुन गावत सिद्ध मुनींद्र कबी।।
जसु पावन रावन नाग महा। खगनाथ जथा करि कोप गहा॥2॥

भावार्थ:-आपके शरीर की अनेकों कामदेवों के समान, परंतु अनुपम छवि है। सिद्ध, मुनीश्वर और कवि आपके गुण गाते रहते हैं। आपका यश पवित्र है। आपने रावणरूपी महासर्प को गरुड़ की तरह क्रोध करके पकड़ लिया।।2।।

* जन रंजन भंजन सोक भयं। गत क्रोध सदा प्रभु बोधमयं।।
अवतार उदार अपार गुनं। महि भार बिभंजन ग्यानघनं।।3।।

भावार्थ:-हे प्रभो! आप सेवकों को आनंद देने वाले, शोक और भय का नाश करने वाले, सदा क्रोधरहित और नित्य ज्ञान स्वरूप हैं। आपका अवतार श्रेष्ठ, अपार दिव्य गुणों वाला, पृथ्वी का भार उतारने वाला और ज्ञान का समूह है।।3।।

* अज ब्यापकमेकमनादि सदा। करुनाकर राम नमामि मुदा।।

रघुबंस बिभूषन दूषन हा। कृत भूप बिभीषन दीन रहा।।4।।

भावार्थ:-(किंतु अवतार लेने पर भी) आप नित्य, अजन्मा, व्यापक, एक (अद्वितीय) और अनादि हैं। हे करुणा की खान श्रीरामजी! मैं आपको बड़े ही हर्ष के साथ नमस्कार करता हूँ। हे रघुकुल के आभूषण! हे दूषण राक्षस को मारने वाले तथा समस्त दोषों को हरने वाले! विभिषण दीन था, उसे आपने (लंका का) राजा बना दिया।।4।।

* गुन ध्यान निधान अमान अजं। नित राम नमामि बिभुं बिरजं।।

भुजदंड प्रचंड प्रताप बलं। खल बृंद निकंद महा कुसलं।।5।।

भावार्थ:-हे गुण और ज्ञान के भंडार! हे मानरहित! हे अजन्मा, व्यापक और मायिक विकारों से रहित श्रीराम! मैं आपको नित्य नमस्कार करता हूँ। आपके भुजदंडों का प्रताप और बल प्रचंड है। दुष्ट समूह के नाश करने में आप परम निपुण हैं।।5।।

* बिनु कारन दीन दयाल हितं। छबि धाम नमामि रमा सहितं।।

भव तारन कारन काज परं। मन संभव दारुन दोष हरं।।6।।

भावार्थ:-हे बिना ही कारण दीनों पर दया तथा उनका हित करने वाले और शोभा के धाम! मैं श्रीजानकीजी सहित आपको नमस्कार करता हूँ। आप भवसागर से तारने वाले हैं, कारणरूपा प्रकृति और कार्यरूप जगत दोनों से परे हैं और मन से उत्पन्न होने वाले कठिन दोषों को हरने वाले हैं।।6।।

* सर चाप मनोहर त्रोन धरं। जलजारुन लोचन भूपबरं।।

सुख मंदिर सुंदर श्रीरमनं। मद मार मुधा ममता समनं।।7।।

भावार्थ:-आप मनोहर बाण, धनुष और तरकस धारण करने वाले हैं। (लाल) कमल के समान रक्तवर्ण आपके नेत्र हैं। आप राजाओं में श्रेष्ठ,

सुख के मंदिर, सुंदर, श्री (लक्ष्मीजी) के वल्लभ तथा मद (अहंकार), काम और झूठी ममता के नाश करने वाले हैं।।7।।

*अनवद्य अखंड न गोचर गो। सब रूप सदा सब होइ न गो।।
इति बेद बदंति न दंतकथा। रबि आतप भिन्नमभिन्न जथा।।8।।

भावार्थ:-आप अनिन्द्य या दोषरहित हैं, अखंड हैं, इंद्रियों के विषय नहीं हैं। सदा सर्वरूप होते हुए भी आप वह सब कभी हुए ही नहीं, ऐसा वेद कहते हैं। यह (कोई) दंतकथा (कोरी कल्पना) नहीं है। जैसे सूर्य और सूर्य का प्रकाश अलग-अलग हैं और अलग नहीं भी है, वैसे ही आप भी संसार से भिन्न तथा अभिन्न दोनों ही हैं।।8।।

* कृतकृत्य बिभो सब बानर ए। निरखंति तनानन सादर ए।।
धिग जीवन देव सरीर हरे। तव भक्ति बिना भव भूलि परे।।9।।

भावार्थ:-हे व्यापक प्रभो! ये सब वानर कृतार्थ रूप हैं, जो आदरपूर्वक ये आपका मुख देख रहे हैं। (और) हे हरे! हमारे (अमर) जीवन और देव (दिव्य) शरीर को धिक्कार है, जो हम आपकी भक्ति से रहित हुए संसार में (सांसारिक विषयों में) भूले पड़े हैं।।9।।

* अब दीनदयाल दया करिऐ। मति मोरि बिभेदकरी हरिऐ।।
जेहि ते बिपरीत क्रिया करिऐ। दुख सो सुख मानि सुखी चरिऐ।।10।।

भावार्थ:-हे दीनदयालु! अब दया कीजिए और मेरी उस विभेद उत्पन्न करने वाली बुद्धि को हर लीजिए, जिससे मैं विपरीत कर्म करता हूँ और जो दुःख है, उसे सुख मानकर आनंद से विचरता हूँ।।10।।

* खल खंडन मंडन रम्य छमा। पद पंकज सेवित संभु उमा।।
नृप नायक दे बरदानमिदं। चरनांबुज प्रेमु सदा सुभदं।।11।।

भावार्थ:-आप दुष्टों का खंडन करने वाले और पृथ्वी के रमणीय आभूषण हैं। आपके चरणकमल श्री शिव-पार्वती द्वारा सेवित हैं। हे राजाओं के महाराज! मुझे यह वरदान दीजिए कि आपके चरणकमलों में सदा मेरा कल्याणदायक (अनन्य) प्रेम हो।।11।।

दोहा-

* बिनय कीन्ह चतुरानन प्रेम पुलक अति गात।

सोभासिंधु बिलोकत लोचन नहीं अघात।।111।।

भावार्थ:-इस प्रकार ब्रह्माजी ने अत्यंत प्रेम-पुलकित शरीर से विनती की। शोभा के समुद्र श्रीरामजी के दर्शन करते-करते उनके नेत्र तृप्त ही नहीं होते थे।।111।।

* तेहि अवसर दसरथ तहँ आए। तनय बिलोकि नयन जल छाए।।

अनुज सहित प्रभु बंदन कीन्हा। आसिरबाद पिताँ तब दीन्हा।।1 ।।

भावार्थ:-उसी समय दशरथजी वहाँ आए। पुत्र (श्रीरामजी) को देखकर उनके नेत्रों में (प्रेमाश्रुओं का) जल छा गया। छोटे भाई लक्ष्मणजी सहित प्रभु ने उनकी वंदना की और तब पिता ने उनको आशीर्वाद दिया।।1।।

* तात सकल तव पुन्य प्रभाऊ। जीत्यों अजय निसाचर राऊ।।

सुनि सुत बचन प्रीति अति बाढ़ी। नयन सलिल रोमावलि ठाढ़ी।।2।।

भावार्थ:-(श्रीरामजी ने कहा-) हे तात! यह सब आपके पुण्यों का प्रभाव है, जो मैंने अजेय राक्षसराज को जीत लिया। पुत्र के वचन सुनकर उनकी प्रीति अत्यंत बढ़ गई। नेत्रों में जल छा गया और रोमावली खड़ी हो गई।।2।।

* रघुपति प्रथम प्रेम अनुमाना। चितइ पितहि दीन्हेउ दृढ़ ग्याना।।

ताते उमा मोच्छ नहिं पायो। दसरथ भेद भगति मन लायो।।3।।

भावार्थ:-श्री रघुनाथजी ने पहले के (जीवितकाल के) प्रेम को विचारकर, पिता की ओर देखकर ही उन्हें अपने स्वरूप का दृढ़ ज्ञान करा दिया। हे उमा! दशरथजी ने भेद-भक्ति में अपना मन लगाया था, इसी से उन्होंने (कैवल्य) मोक्ष नहीं पाया।।3।।

* सगुनोपासक मोच्छ न लेहीं। तिन्ह कहुँ राम भगति निज देहीं।।
बार बार करि प्रभुहि प्रनामा। दसरथ हरषि गए सुरधामा।।4।।

भावार्थ:-(मायारहित सच्चिदानंदमय स्वरूपभूत दिव्यगुणयुक्त) सगुण स्वरूप की उपासना करने वाले भक्त इस प्रकार मोक्ष लेते भी नहीं। उनको श्रीरामजी अपनी भक्ति देते हैं। प्रभु को (इष्टबुद्धि से) बार-बार प्रणाम करके दशरथजी हर्षित होकर देवलोक को चले गए।।4।।

दोहा-

* अनुज जानकी सहित प्रभु कुसल कोसलाधीस।
सोभा देखि हरषि मन अस्तुति कर सुर ईस।।112।।

भावार्थ:-छोटे भाई लक्ष्मणजी और जानकीजी सहित परम कुशल प्रभु श्रीकोसलाधीश की शोभा देखकर देवराज इंद्र मन में हर्षित होकर स्तुति करने लगे- ।।112।।

छंद -

* जय राम सोभा धाम। दायक प्रनत बिश्राम।।
धृत त्रोन बर सर चाप। भुजदंड प्रबल प्रताप।।1।।

भावार्थ:-शोभा के धाम, शरणागत को विश्राम देने वाले, श्रेष्ठ तरकस, धनुष और बाण धारण किए हुए, प्रबल प्रतापी भुज दंडों वाले श्रीरामचंद्रजी की जय हो! ।।1।।

* जय दूषनारि खरारि। मर्दन निसाचर धारि।।
यह दुष्ट मारेउ नाथ। भए देव सकल नाथ।।2।।

भावार्थ:-हे खरदूषण के शत्रु और राक्षसों की सेना के मर्दन करने वाले! आपकी जय हो! हे नाथ! आपने इस दुष्ट को मारा, जिससे सब देवता सनाथ (सुरक्षित) हो गए।।2।।

* जय हरन धरनी भार। महिमा उदार अपार।।
जय रावनारि कृपाल। किए जातुधान बिहाल।।3।।

भावार्थ:-हे भूमि का भार हरने वाले! हे अपार श्रेष्ठ महिमावाले! आपकी जय हो। हे रावण के शत्रु! हे कृपालु! आपकी जय हो। आपने राक्षसों को बेहाल (तहस-नहस) कर दिया।।3।।

* लंकेस अति बल गर्ब। किए बस्य सुर गंधर्ब।।
मुनि सिद्ध नर खग नाग। हठि पंथ सब कें लाग।।4।।

भावार्थ:-लंकापति रावण को अपने बल का बहुत घमंड था। उसने देवता और गंधर्व सभी को अपने वश में कर लिया था और वह मुनि, सिद्ध, मनुष्य, पक्षी और नाग आदि सभी के हठपूर्वक (हाथ धोकर) पीछे पड़ गया था।।4।।

* परद्रोह रत अति दुष्ट। पायो सो फलु पापिष्ट।।
अब सुनहु दीन दयाल। राजीव नयन बिसाल।।5।।

भावार्थ:-वह दूसरों से द्रोह करने में तत्पर और अत्यंत दुष्ट था। उस पापी ने वैसा ही फल पाया। अब हे दीनों पर दया करने वाले! हे कमल के समान विशाल नेत्रों वाले! सुनिए।।5।।

* मोहि रहा अति अभिमान। नहिं कोउ मोहि समान।।
अब देखि प्रभु पद कंज। गत मान प्रद दुख पुंज।।6।।

भावार्थ:-मुझे अत्यंत अभिमान था कि मेरे समान कोई नहीं है, पर अब प्रभु (आप) के चरण कमलों के दर्शन करने से दु:ख समूह का देने वाला मेरा वह अभिमान जाता रहा।।6।।

* कोउ ब्रह्म निर्गुन ध्याव। अब्यक्त जेहि श्रुति गाव।।

मोहि भाव कोसल भूप। श्रीराम सगुन सरूप।।7।।

भावार्थ:-कोई उन निर्गुन ब्रह्म का ध्यान करते हैं जिन्हें वेद अव्यक्त (निराकार) कहते हैं। परंतु हे रामजी! मुझे तो आपका यह सगुण कोसलराज-स्वरूप ही प्रिय लगता है।।7।।

* बैदेहि अनुज समेत। मम हृदयँ करहु निकेत।।

मोहि जानिऐ निज दास। दे भक्ति रमानिवास।।8।।

भावार्थ:-श्रीजानकीजी और छोटे भाई लक्ष्मणजी सहित मेरे हृदय में अपना घर बनाइए। हे रमानिवास! मुझे अपना दास समझिए और अपनी भक्ति दीजिए।।8।।

छंद -

* दे भक्ति रमानिवास त्रास हरन सरन सुखदायकं।
सुख धाम राम नमामि काम अनेक छबि रघुनायकं।।
सुर बृंद रंजन द्वंद भंजन मनुजतनु अतुलितबलं।
ब्रह्मादि संकर सेब्य राम नमामि करुना कोमलं।।

भावार्थ:-हे रमानिवास! हे शरणागत के भय को हरने वाले और उसे सब प्रकार का सुख देने वाले! मुझे अपनी भक्ति दीजिए। हे सुख के धाम! हे अनेकों कामदेवों की छबिवाले रघुकुल के स्वामी श्रीरामचंद्रजी! मैं आपको नमस्कार करता हूँ। हे देवसमूह को आनंद देने वाले, (जन्म-मृत्यु, हर्ष-विषाद, सुख-दु:ख आदि) द्वंद्वों के नाश करने वाले, मनुष्य शरीरधारी, अतुलनीय बलवाले, ब्रह्मा और शिव आदि से सेवनीय, करुणा से कोमल श्रीरामजी! मैं आपको नमस्कार करता हूँ।

दोहा -

* अब करि कृपा बिलोकि मोहि आयसु देहु कृपाल।
काह करौं सुनि प्रिय बचन बोले दीनदयाल।।113।।

भावार्थ:-हे कृपालु! अब मेरी ओर कृपा करके (कृपा दृष्टि से) देखकर आज्ञा दीजिए कि मैं क्या (सेवा) करूँ! इंद्र के ये प्रिय वचन सुनकर दीनदयालु श्रीरामजी बोले ।।113।।

चौपाई

* सुन सुरपति कपि भालु हमारे। परे भूमि निसिचरन्हि जे मारे।।
मम हित लागि तजे इन्ह प्राना। सकल जिआउ सुरेस सुजाना।।1।।

भावार्थ:-हे देवराज! सुनो, हमारे वानर-भालू, जिन्हें निशाचरों ने मार डाला है, पृथ्वी पर पड़े हैं। इन्होंने मेरे हित के लिए अपने प्राण त्याग दिए। हे सुजान देवराज! इन सबको जिला दो।।1।।

* सुनु खगेस प्रभु कै यह बानी। अति अगाध जानहिं मुनि ग्यानी।।
प्रभु सक त्रिभुअन मारि जिआई। केवल सक्रहि दीन्हि बड़ाई।।2।।

भावार्थ:-(काकभुशुण्डिजी कहते हैं -) हे गरुड़! सुनिए प्रभु के ये वचन अत्यंत गहन (गूढ़) हैं। ज्ञानी मुनि ही इन्हें जान सकते हैं। प्रभु श्रीरामजी त्रिलोकी को मारकर जिला सकते हैं। यहाँ तो उन्होंने केवल इंद्र को बड़ाई दी है।।2।।

* सुधा बरषि कपि भालु जियाए। हरषि उठे सब प्रभु पहिं आए।।
सुधाबृष्टि भै दुहु दल ऊपर। जिए भालु कपि नहिं रजनीचर।।3।।

भावार्थ:-इंद्र ने अमृत बरसाकर वानर-भालुओं को जिला दिया। सब हर्षित होकर उठे और प्रभु के पास आए। अमृत की वर्षा दोनों ही दलों पर हुई। पर रीछ-वानर ही जीवित हुए, राक्षस नहीं।।3।।

* रामाकार भए तिन्ह के मन। मुक्त भए छूट भव बंधन।।

सुर अंसिक सब कपि अरु रीछा। जिए सकल रघुपति कीं ईछा।।4।।
भावार्थ:-क्योंकि राक्षस के मन तो मरते समय रामाकार हो गए थे। अत: वे मुक्त हो गए, उनके भवबंधन छूट गए। किंतु वानर और भालू तो सब देवांश (भगवान् की लीला के परिकर) थे। इसलिए वे सब श्रीरघुनाथजी की इच्छा से जीवित हो गए।।4।।

* राम सरिस को दीन हितकारी। कीन्हे मुकुत निसाचर झारी।।

खल मल धाम काम रत रावन। गति पाई जो मुनिबर पाव न।।5।।

भावार्थ:-श्रीरामचंद्रजी के समान दीनों का हित करने वाला कौन है? जिन्होंने सारे राक्षसों को मुक्त कर दिया! दुष्ट, पापों के घर और कामी रावण ने भी वह गति पाई जिसे श्रेष्ठ मुनि भी नहीं पाते।।5।।
दोहा -
* सुमन बरषि सब सुर चले चढ़ि चढ़ि रुचिर बिमान।

देखि सुअवसर प्रभु पहिं आयउ संभु सुजान।।114।। (क) ।।
भावार्थ:-फूलों की वर्षा करके सब देवता सुंदर विमानों पर चढ़-चढ़कर चले। तब सुअवसर जानकार सुजान शिवजी प्रभु श्रीरामचंद्रजी के पास आए- ।।114 (क)।।

* परम प्रीति कर जोरि जुग नलिन नयन भरि बारि।

पुलकित तन गदगद गिराँ बिनय करत त्रिपुरारि।। 114 (ख)।।

भावार्थ:-और परम प्रेम से दोनों हाथ जोड़कर, कमल के समान नेत्रों में जल भरकर, पुलकित शरीर और गद्‍गद्‍ वाणी से त्रिपुरारी शिवजी विनती करने लगे - ।।114 (ख) ।।
छंद
* मामभिरक्षय रघुकुल नायक। धृत बर चाप रुचिर कर सायक।।

मोह महा घन पटल प्रभंजन। संसय बिपिन अनल सुर रंजन।।1।।

भावार्थ:-हे रघुकुल के स्वामी! सुंदर हाथों में श्रेष्ठ धनुष और सुंदर बाण धारण किए हुए आप मेरी रक्षा कीजिए। आप महामोहरूपी मेघसमूह के (उड़ाने के) लिए प्रचंड पवन हैं, संशयरूपी वन के (भस्म करने के) लिए अग्नि हैं और देवताओं को आनंद देने वाले हैं।।1।।

* अगुन सगुन गुन मंदिर सुंदर। भ्रम तम प्रबल प्रताप दिवाकर।।
काम क्रोध मद गज पंचानन। बसहु निरंतर जन मन कानन।।2।।

भावार्थ:-आप निर्गुण, सगुण, दिव्य गुणों के धाम और परम सुंदर हैं। भ्रमरूपी अंधकार के (नाश के) लिए प्रबल प्रतापी सूर्य हैं। काम, क्रोध और मदरूपी हाथियों के (वध के) लिए सिंह के समान आप इस सेवक के मनरूपी वन में निरंतर वास कीजिए।।2।।

* बिषय मनोरथ पुंज कुंज बन। प्रबल तुषार उदार पार मन।।
भव बारिधि मंदर परमं दर। बारय तारय संसृति दुस्तर।।3।।

भावार्थ:-विषयकामनाओं के समूह रूपी कमलवन के (नाश के) लिए आप प्रबल पाला हैं, आप उदार और मन से परे हैं। भवसागर (को मथने) के लिए आप मंदराचल पर्वत हैं। आप हमारे परम भय को दूर कीजिए और हमें दुस्तर संसार सागर से पार कीजिए।।3।।

* स्याम गात राजीव बिलोचन। दीन बंधु प्रनतारति मोचन।।
अनुज जानकी सहित निरंतर। बसहु राम नृप मम उर अंतर।।
मुनि रंजन महि मंडल मंडन। तुलसिदास प्रभु त्रास बिखंडन।। 4-5।।

भावार्थ:-हे श्यामसुंदर-शरीर! हे कमलनयन! हे दीनबंधु! हे शरणागत को दु:ख से छुड़ाने वाले! हे राजा रामचंद्रजी! आप छोटे भाई लक्ष्मण और जानकीजी सहित निरंतर मेरे हृदय के अंदर निवास कीजिए। आप

मुनियों को आनंद देने वाले, पृथ्वीमंडल के भूषण, तुलसीदास के प्रभु और भय का नाश करने वाले हैं।। 4-5।।

दोहा

* नाथ जबहिं कोसलपुरीं होइहि तिलक तुम्हार।
कृपासिंधु मैं आउब देखन चरित उदार ।।115।।

भावार्थ:-हे नाथ! जब अयोध्यापुरी में आपका राजतिलक होगा, तब हे कृपासागर! मैं आपकी उदार लीला देखने आऊँगा ।।115।।

विभीषण की प्रार्थना, श्री रामजी के द्वारा भरतजी की प्रेमदशा का वर्णन, शीघ्र अयोध्या पहुँचने का अनुरोध

चौपाई :

* करि बिनती जब संभु सिधाए। तब प्रभु निकट बिभीषनु आए॥
नाइ चरन सिरु कह मृदु बानी। बिनय सुनहु प्रभु सारँगपानी॥1॥

भावार्थ:-जब शिवजी विनती करके चले गए, तब विभीषणजी प्रभु के पास आए और चरणों में सिर नवाकर कोमल वाणी से बोले- हे शार्गं धनुष के धारण करने वाले प्रभो! मेरी विनती सुनिए-॥1॥

* सकुल सदल प्रभु रावन मार्‍यो। पावन जस त्रिभुवन विस्तार्‍यो॥
दीन मलीन हीन मति जाती। मो पर कृपा कीन्हि बहु भाँती॥2॥

भावार्थ:-आपने कुल और सेना सहित रावण का वध किया, त्रिभुवन में अपना पवित्र यश फैलाया और मुझ दीन, पापी, बुद्धिहीन और जातिहीन पर बहुत प्रकार से कृपा की॥2॥

* अब जन गृह पुनीत प्रभु कीजे। मज्जन करिअ समर श्रम छीजे॥
देखि कोस मंदिर संपदा। देहु कृपाल कपिन्ह कहुँ मुदा॥3॥

भावार्थ:-अब हे प्रभु! इस दास के घर को पवित्र कीजिए और वहाँ चलकर स्नान कीजिए, जिससे युद्ध की थकावट दूर हो जाए। हे कृपालु! खजाना, महल और सम्पत्ति का निरीक्षण कर प्रसन्नतापूर्वक वानरों को दीजिए॥3॥

* सब बिधि नाथ मोहि अपनाइअ। पुनि मोहि सहित अवधपुर जाइअ॥
सुनत बचन मृदु दीनदयाला। सजल भए द्वौ नयन बिसाला॥4॥

भावार्थ:-हे नाथ! मुझे सब प्रकार से अपना लीजिए और फिर हे प्रभो! मुझे साथ लेकर अयोध्यापुरी को पधारिए। विभीषणजी के कोमल वचन सुनते ही दीनदयालु प्रभु के दोनों विशाल नेत्रों में (प्रेमाश्रुओं का) जल भर आया॥4॥

दोहा :

* तोर कोस गृह मोर सब सत्य बचन सुनु भ्रात।
भरत दसा सुमिरत मोहि निमिष कल्प सम जात॥116 क॥

भावार्थ:-(श्री रामजी ने कहा-) हे भाई! सुनो, तुम्हारा खजाना और घर सब मेरा ही है, यह सच बात है। पर भरत की दशा याद करके मुझे एक-एक पल कल्प के समान बीत रहा है॥116 (क)॥

तापस बेष गात कृस जपत निरंतर मोहि।
देखौं बेगि सो जतनु करु सखा निहोरउँ तोहि॥116 ख॥

भावार्थ:-तपस्वी के वेष में कृश (दुबले) शरीर से निरंतर मेरा नाम जप कर रहे हैं। हे सखा! वही उपाय करो जिससे मैं जल्दी से जल्दी उन्हें देख सकूँ। मैं तुमसे निहोरा (अनुरोध) करता हूँ॥116 (ख)॥

बीतें अवधि जाउँ जौं जिअत न पावउँ बीर।
सुमिरत अनुज प्रीति प्रभु पुनि पुनि पुलक सरीर॥116 ग॥

भावार्थ:-यदि अवधि बीत जाने पर जाता हूँ तो भाई को जीता न पाऊँगा। छोटे भाई भरतजी की प्रीति का स्मरण करके प्रभु का शरीर बार-बार पुलकित हो रहा है॥166 (ग)॥

करेहु कल्प भरि राजु तुम्ह मोहि सुमिरेहु मन माहिं।
पुनि मम धाम पाइहहु जहाँ संत सब जाहिं॥116 घ॥

भावार्थ:-(श्री रामजी ने फिर कहा-) हे विभीषण! तुम कल्पभर राज्य करना, मन में मेरा निरंतर स्मरण करते रहना। फिर तुम मेरे उस धाम को पा जाओगे, जहाँ सब संत जाते हैं॥116 (घ)॥

चौपाई :

* सुनत बिभीषन बचन राम के। हरषि गहे पद कृपाधाम के॥
बानर भालु सकल हरषाने। गहि प्रभु पद गुन बिमल बखाने॥1॥

भावार्थ:-श्री रामचंद्रजी के वचन सुनते ही विभीषणजी ने हर्षित होकर कृपा के धाम श्री रामजी के चरण पकड़ लिए। सभी वानर-भालू हर्षित हो गए और प्रभु के चरण पकड़कर उनके निर्मल गुणों का बखान करने लगे॥1॥

विभीषण का वस्त्राभूषण बरसाना और वानर-भालुओं का उन्हें पहनना

* बहुरि विभीषन भवन सिधायो। मनि गन बसन बिमान भरायो॥
लै पुष्पक प्रभु आगें राखा। हँसि करि कृपासिंधु तब भाषा॥2॥

भावार्थ:-फिर विभीषणजी महल को गए और उन्होंने मणियों के समूहों (रत्नों) से और वस्त्रों से विमान को भर लिया। फिर उस पुष्पक विमान को लाकर प्रभु के सामने रखा। तब कृपासागर श्री रामजी ने हँसकर कहा-॥2॥

* चढ़ि बिमान सुनु सखा बिभीषन। गगन जाइ बरषहु पट भूषन॥
नभ पर जाइ बिभीषन तबही। बरषि दिए मनि अंबर सबही॥3॥

भावार्थ:-हे सखा विभीषण! सुनो, विमान पर चढ़कर, आकाश में जाकर वस्त्रों और गहनों को बरसा दो। तब (आज्ञा सुनते) ही विभीषणजी ने आकाश में जाकर सब मणियों और वस्त्रों को बरसा दिया॥3॥

* जोइ जोइ मन भावइ सोइ लेहीं। मनि मुख मेलि डारि कपि देहीं॥
हँसे रामु श्री अनुज समेता। परम कौतुकी कृपा निकेता॥4॥

भावार्थ:-जिसके मन को जो अच्छा लगता है, वह वही ले लेता है। मणियों को मुँह में लेकर वानर फिर उन्हें खाने की चीज न समझकर उगल देते हैं। यह तमाशा देखकर परम विनोदी और कृपा के धाम श्री रामजी, सीताजी और लक्ष्मणजी सहित हँसने लगे॥4॥

दोहा:

* मुनि जेहि ध्यान न पावहिं नेति नेति कह बेद।
कृपासिंधु सोइ कपिन्ह सन करत अनेक बिनोद॥117 क॥

भावार्थ:-जिनको मुनि ध्यान में भी नहीं पाते, जिन्हें वेद नेति-नेति कहते हैं, वे ही कृपा के समुद्र श्री रामजी वानरों के साथ अनेकों प्रकार के विनोद कर रहे हैं॥117 (क)॥

* उमा जोग जप दान तप नाना मख ब्रत नेम।
राम कृपा नहिं करहिं तसि जसि निष्केवल प्रेम॥117 ख॥

भावार्थ:-(शिवजी कहते हैं-) हे उमा! अनेकों प्रकार के योग, जप, दान, तप, यज्ञ, व्रत और नियम करने पर भी श्री रामचंद्रजी वैसी कृपा नहीं करते जैसी अनन्य प्रेम होने पर करते हैं॥117 (ख)॥

चौपाई :

भालु कपिन्ह पट भूषन पाए। पहिरि पहिरि रघुपति पहिं आए॥
नाना जिनस देखि सब कीसा। पुनि पुनि हँसत कोसलाधीसा॥1॥

भावार्थ:-भालुओं और वानरों ने कपड़े-गहने पाए और उन्हें पहन-पहनकर वे श्री रघुनाथजी के पास आए। अनेकों जातियों के वानरों को देखकर कोसलपति श्री रामजी बार-बार हँस रहे हैं॥1॥

चितइ सबन्हि पर कीन्ही दाया। बोले मृदुल बचन रघुराया॥
तुम्हरें बल मैं रावनु मार्‌यो। तिलक बिभीषन कहँ पुनि सार्‌यो॥2॥

भावार्थ:-श्री रघुनाथजी ने कृपा दृष्टि से देखकर सब पर दया की। फिर वे कोमल वचन बोले- हे भाइयो! तुम्हारे ही बल से मैंने रावण को मारा और फिर विभीषण का राजतिलक किया॥2॥

निज निज गृह अब तुम्ह सब जाहू। सुमिरेहु मोहि डरपहु जनि काहू॥
सुनत बचन प्रेमाकुल बानर। जोरि पानि बोले सब सादर॥3॥

भावार्थ:-अब तुम सब अपने-अपने घर जाओ। मेरा स्मरण करते रहना और किसी से डरना नहीं। ये वचन सुनते ही सब वानर प्रेम में विह्वल होकर हाथ जोड़कर आदरपूर्वक बोले-॥3॥

* प्रभु जोइ कहहु तुम्हहि सब सोहा। हमरें होत बचन सुनि मोहा॥
दीन जानि कपि किए सनाथा। तुम्ह त्रैलोक ईस रघुनाथा॥4॥

भावार्थ:-प्रभो! आप जो कुछ भी कहें, आपको सब सोहता है। पर आपके वचन सुनकर हमको मोह होता है। हे रघुनाथजी! आप तीनों लोकों के ईश्वर हैं। हम वानरों को दीन जानकर ही आपने सनाथ (कृतार्थ) किया है॥4॥

* सुनि प्रभु बचन लाज हम मरहीं। मसक कहूँ खगपति हित करहीं॥
देखि राम रुख बानर रीछा। प्रेम मगन नहिं गृह कै ईछा॥5॥

भावार्थ:-प्रभु के (ऐसे) वचन सुनकर हम लाज के मारे मरे जा रहे हैं। कहीं मच्छर भी गरुड़ का हित कर सकते हैं? श्री रामजी का रुख देखकर रीछ-वानर प्रेम में मग्न हो गए। उनकी घर जाने की इच्छा नहीं है॥5॥

पुष्पक विमान पर चढ़कर श्री सीता-रामजी का अवध के लिए प्रस्थान, श्री रामचरित्र की महिमा

दोहा :

* प्रभु प्रेरित कपि भालु सब राम रूप उर राखि।
हरष बिषाद सहित चले बिनय बिबिध बिधि भाषि॥118 क॥

भावार्थ:-परन्तु प्रभु की प्रेरणा (आज्ञा) से सब वानर-भालू श्री रामजी के रूप को हृदय में रखकर और अनेकों प्रकार से विनती करके हर्ष और विषाद सहित घर को चले॥118 (क)॥

* कपिपति नील रीछपति अंगद नल हनुमान।
सहित बिभीषन अपर जे जूथप कपि बलवान॥118 ख॥

गीताप्रेस गोरखपुर

भावार्थ:-वानरराज सुग्रीव, नील, ऋक्षराज जाम्बवान्, अंगद, नल और हनुमान् तथा विभीषण सहित और जो बलवान् वानर सेनापति हैं,॥118 (ख)॥

* कहि न सकहिं कछु प्रेम बस भरि भरि लोचन बारि॥

सन्मुख चितवहिं राम तन नयन निमेष निवारि॥118 ग॥

भावार्थ:-वे कुछ कह नहीं सकते, प्रेमवश नेत्रों में जल भर-भरकर, नेत्रों का पलक मारना छोड़कर (टकटकी लगाए) सम्मुख होकर श्री रामजी की ओर देख रहे हैं॥118 (ग)॥

चौपाई :

* अतिसय प्रीति देखि रघुराई। लीन्हे सकल बिमान चढ़ाई॥

मन महुँ बिप्र चरन सिरु नायो। उत्तर दिसिहि बिमान चलायो॥1॥

भावार्थ:-श्री रघुनाथजी ने उनका अतिशय प्रेम देखकर सबको विमान पर चढ़ा लिया। तदनन्तर मन ही मन विप्रचरणों में सिर नवाकर उत्तर दिशा की ओर विमान चलाया॥1॥

* चलत बिमान कोलाहल होई। जय रघुबीर कहइ सबु कोई॥

सिंहासन अति उच्च मनोहर। श्री समेत प्रभु बैठे ता पर॥2॥

भावार्थ:-विमान के चलते समय बड़ा शोर हो रहा है। सब कोई श्री रघुवीर की जय कह रहे हैं। विमान में एक अत्यंत ऊँचा मनोहर सिंहासन है। उस पर सीताजी सहित प्रभु श्री रामचंद्रजी विराजमान हो गए॥2॥

राजत रामु सहित भामिनी। मेरु सृंग जनु घन दामिनी॥

रुचिर बिमानु चलेउ अति आतुर। कीन्ही सुमन बृष्टि हरषे सुर॥3॥

भावार्थ:-पत्नी सहित श्री रामजी ऐसे सुशोभित हो रहे हैं मानो सुमेरु के शिखर पर बिजली सहित श्याम मेघ हो। सुंदर विमान बड़ी शीघ्रता से चला। देवता हर्षित हुए और उन्होंने फूलों की वर्षा की॥3॥

परम सुखद चलि त्रिबिध बयारी। सागर सर सरि निर्मल बारी॥
सगुन होहिं सुंदर चहुँ पासा। मन प्रसन्न निर्मल नभ आसा॥4॥

भावार्थ:-अत्यंत सुख देने वाली तीन प्रकार की (शीतल, मंद, सुगंधित) वायु चलने लगी। समुद्र, तालाब और नदियों का जल निर्मल हो गया। चारों ओर सुंदर शकुन होने लगे। सबके मन प्रसन्न हैं, आकाश और दिशाएँ निर्मल हैं॥4॥

* कह रघुबीर देखु रन सीता। लछिमन इहाँ हत्यो इँद्रजीता॥
हनूमान अंगद के मारे। रन महि परे निसाचर भारे॥5॥

भावार्थ:-श्री रघुवीरजी ने कहा- हे सीते! रणभूमि देखो। लक्ष्मण ने यहाँ इंद्र को जीतने वाले मेघनाद को मारा था। हनुमान् और अंगद के मारे हुए ये भारी-भारी निशाचर रणभूमि में पड़े हैं॥5॥

* कुंभकरन रावन द्वौ भाई। इहाँ हते सुर मुनि दुखदाई॥6॥

भावार्थ:-देवताओं और मुनियों को दुःख देने वाले कुंभकर्ण और रावण दोनों भाई यहाँ मारे गए॥6॥

दोहा :

* इहाँ सेतु बाँध्यों अरु थापेउँ सिव सुख धाम।
सीता सहित कृपानिधि संभुहि कीन्ह प्रनाम॥119 क॥

भावार्थ:-मैंने यहाँ पुल बाँधा (बँधवाया) और सुखधाम श्री शिवजी की स्थापना की। तदनन्तर कृपानिधान श्री रामजी ने सीताजी सहित श्री रामेश्वर महादेव को प्रणाम किया॥119 (क)॥

जहँ जहँ कृपासिंधु बन कीन्ह बास बिश्राम।

सकल देखाए जानकिहि कहे सबन्हि के नाम॥119 ख॥

भावार्थ:-वन में जहाँ-तहाँ करुणा सागर श्री रामचंद्रजी ने निवास और विश्राम किया था, वे सब स्थान प्रभु ने जानकीजी को दिखलाए और सबके नाम बतलाए॥119 (ख)॥

चौपाई :

तुरत बिमान तहाँ चलि आवा। दंडक बन जहँ परम सुहावा॥
कुंभजादि मुनिनायक नाना। गए रामु सब कें अस्थाना॥1॥

भावार्थ:-विमान शीघ्र ही वहाँ चला आया, जहाँ परम सुंदर दण्डकवन था और अगस्त्य आदि बहुत से मुनिराज रहते थे। श्री रामजी इन सबके स्थानों में गए॥1॥

* सकल रिषिन्ह सन पाइ असीसा। चित्रकूट आए जगदीसा॥
तहँ करि मुनिन्ह केर संतोषा। चला बिमानु तहाँ ते चोखा॥2॥

भावार्थ:-संपूर्ण ऋषियों से आशीर्वाद पाकर जगदीश्वर श्री रामजी चित्रकूट आए। वहाँ मुनियों को संतुष्ट किया। (फिर) विमान वहाँ से आगे तेजी के साथ चला॥2॥

* बहुरि राम जानकिहि देखाई। जमुना कलि मल हरनि सुहाई॥
पुनि देखी सुरसरी पुनीता। राम कहा प्रनाम करु सीता॥3॥

भावार्थ:-फिर श्री रामजी ने जानकीजी को कलियुग के पापों का हरण करने वाली सुहावनी यमुनाजी के दर्शन कराए। फिर पवित्र गंगाजी के दर्शन किए। श्री रामजी ने कहा- हे सीते! इन्हें प्रणाम करो॥3॥

* तीरथपति पुनि देखु प्रयागा। निरखत जन्म कोटि अघ भागा॥
देखु परम पावनि पुनि बेनी। हरनि सोक हरि लोक निसेनी॥4॥
पुनि देखु अवधपुरि अति पावनि। त्रिबिध ताप भव रोग नसावनि॥5॥

भावार्थ:-फिर तीर्थराज प्रयाग को देखो, जिसके दर्शन से ही करोड़ों जन्मों के पाप भाग जाते हैं। फिर परम पवित्र त्रिवेणीजी के दर्शन करो, जो शोकों को हरने वाली और श्री हरि के परम धाम (पहुँचने) के लिए सीढ़ी के समान है। फिर अत्यंत पवित्र अयोध्यापुरी के दर्शन करो, जो तीनों प्रकार के तापों और भव (आवागमन रूपी) रोग का नाश करने वाली है॥4-5॥

दोहा :

सीता सहित अवध कहुँ कीन्ह कृपाल प्रनाम।
सजल नयन तन पुलकित पुनि पुनि हरषित राम॥120 क॥

भावार्थ:-यों कहकर कृपालु श्री रामजी ने सीताजी सहित अवधपुरी को प्रणाम किया। सजल नेत्र और पुलकित शरीर होकर श्री रामजी बार-बार हर्षित हो रहे हैं॥120 (क)॥

पुनि प्रभु आइ त्रिबेनीं हरषित मज्जनु कीन्ह।
कपिन्ह सहित बिप्रन्ह कहुँ दान बिबिध बिधि दीन्ह॥120 ख॥

भावार्थ:-फिर त्रिवेणी में आकर प्रभु ने हर्षित होकर स्नान किया और वानरों सहित ब्राह्मणों को अनेकों प्रकार के दान दिए॥120 (ख)॥

चौपाई :

* प्रभु हनुमंतहि कहा बुझाई। धरि बटु रूप अवधपुर जाई॥
भरतहि कुसल हमारि सुनाएहु। समाचार लै तुम्ह चलि आएहु॥1॥

भावार्थ:-तदनन्तर प्रभु ने हनुमान्‌जी को समझाकर कहा- तुम ब्रह्मचारी का रूप धरकर अवधपुरी को जाओ। भरत को हमारी कुशल सुनाना और उनका समाचार लेकर चले आना॥1॥

* तुरत पवनसुत गवनत भयऊ। तब प्रभु भरद्वाज पहिं गयऊ॥
नाना बिधि मुनि पूजा कीन्ही। अस्तुति करि पुनि आसिष दीन्ही॥2॥

भावार्थ:-पवनपुत्र हनुमान्‌जी तुरंत ही चल दिए। तब प्रभु भरद्वाजजी के पास गए। मुनि ने (इष्ट बुद्धि से) उनकी अनेकों प्रकार से पूजा की और स्तुति की और फिर (लीला की दृष्टि से) आशीर्वाद दिया॥2॥

* मुनि पद बंदि जुगल कर जोरी। चढ़ि बिमान प्रभु चले बहोरी॥
इहाँ निषाद सुना प्रभु आए। नाव नाव कहँ लोग बोलाए॥3॥

भावार्थ:-दोनों हाथ जोड़कर तथा मुनि के चरणों की वंदना करके प्रभु विमान पर चढ़कर फिर (आगे) चले। यहाँ जब निषादराज ने सुना कि प्रभु आ गए, तब उसने 'नाव कहाँ है? नाव कहाँ है?' पुकारते हुए लोगों को बुलाया॥3॥

सुरसरि नाघि जान तब आयो। उतरेउ तट प्रभु आयसु पायो॥
तब सीताँ पूजी सुरसरी। बहु प्रकार पुनि चरनन्हि परी॥4॥

भावार्थ:-इतने में ही विमान गंगाजी को लाँघकर (इस पार) आ गया और प्रभु की आज्ञा पाकर वह किनारे पर उतरा। तब सीताजी बहुत प्रकार से गंगाजी की पूजा करके फिर उनके चरणों पर गिरीं॥4॥

दीन्हि असीस हरषि मन गंगा। सुंदरि तव अहिवात अभंगा॥
सुनत गुहा धायउ प्रेमाकुल। आयउ निकट परम सुख संकुल॥5॥

भावार्थ:-गंगाजी ने मन में हर्षित होकर आशीर्वाद दिया- हे सुंदरी! तुम्हारा सुहाग अखंड हो। भगवान्‌ के तट पर उतरने की बात सुनते ही निषादराज गुह प्रेम में विह्वल होकर दौड़ा। परम सुख से परिपूर्ण होकर वह प्रभु के समीप आया,॥5॥

* प्रभुहि सहित बिलोकि बैदेही। परेउ अवनि तन सुधि नहिं तेही॥
प्रीति परम बिलोकि रघुराई। हरषि उठाइ लियो उर लाई॥6॥

भावार्थ:-और श्री जानकीजी सहित प्रभु को देखकर वह (आनंद-समाधि में मग्न होकर) पृथ्वी पर गिर पड़ा, उसे शरीर की सुधि न रही। श्री

रघुनाथजी ने उसका परम प्रेम देखकर उसे उठाकर हर्ष के साथ हृदय से लगा लिया॥6॥

छंद- :

* लियो हृदयँ लाइ कृपा निधान सुजान रायँ रमापति।
बैठारि परम समीप बूझी कुसल सो कर बीनती॥
अब कुसल पद पंकज बिलोकि बिरंचि संकर सेब्य जे।
सुख धाम पूरनकाम राम नमामि राम नमामि ते॥1॥

भावार्थ:-सुजानों के राजा (शिरोमणि), लक्ष्मीकांत, कृपानिधान भगवान् ने उसको हृदय से लगा लिया और अत्यंत निकट बैठकर कुशल पूछी। वह विनती करने लगा- आपके जो चरणकमल ब्रह्माजी और शंकरजी से सेवित हैं, उनके दर्शन करके मैं अब सकुशल हूँ। हे सुखधाम! हे पूर्णकाम श्री रामजी! मैं आपको नमस्कार करता हूँ, नमस्कार करता हूँ॥1॥

* सब भाँति अधम निषाद सो हरि भरत ज्यों उर लाइयो।
मतिमंद तुलसीदास सो प्रभु मोह बस बिसराइयो॥
यह रावनारि चरित्र पावन राम पद रतिप्रद सदा।
कामादिहर बिग्यानकर सुर सिद्ध मुनि गावहिं मुदा॥2॥

भावार्थ:-सब प्रकार से नीच उस निषाद को भगवान् ने भरतजी की भाँति हृदय से लगा लिया। तुलसीदासजी कहते हैं- इस मंदबुद्धि ने (मैंने) मोहवश उस प्रभु को भुला दिया। रावण के शत्रु का यह पवित्र करने वाला चरित्र सदा ही श्री रामजी के चरणों में प्रीति उत्पन्न करने वाला है। यह कामादि विकारों को हरने वाला और (भगवान् के स्वरूप का) विशेष ज्ञान उत्पन्न करने वाला है। देवता, सिद्ध और मुनि आनंदित होकर इसे गाते हैं॥2॥

दोहा :

समर बिजय रघुबीर के चरित जे सुनहिं सुजान।

बिजय बिबेक बिभूति नित तिन्हहि देहिं भगवान॥121 क॥

भावार्थ:-जो सुजान लोग श्री रघुवीर की समर विजय संबंधी लीला को सुनते हैं, उनको भगवान् नित्य विजय, विवेक और विभूति (ऐश्वर्य) देते हैं॥।121 (क)॥

यह कलिकाल मलायतन मन करि देखु बिचार।
श्री रघुनाथ नाम तजि नाहिन आन अधार॥121 ख॥

भावार्थ:-अरे मन! विचार करके देख! यह कलिकाल पापों का घर है। इसमें श्री रघुनाथजी के नाम को छोड़कर (पापों से बचने के लिए) दूसरा कोई आधार नहीं है॥121 (ख)॥

मासपारायण, सत्ताईसवाँ विश्राम

इति श्रीमद्रामचरितमानसे सकलकलिकलुषविध्वंसने षष्ठः सोपानः समाप्तः।

कलियुग के समस्त पापों का नाश करने वाले श्री रामचरित मानस का यह छठा सोपान समाप्त हुआ।

(लंकाकाण्ड समाप्त)

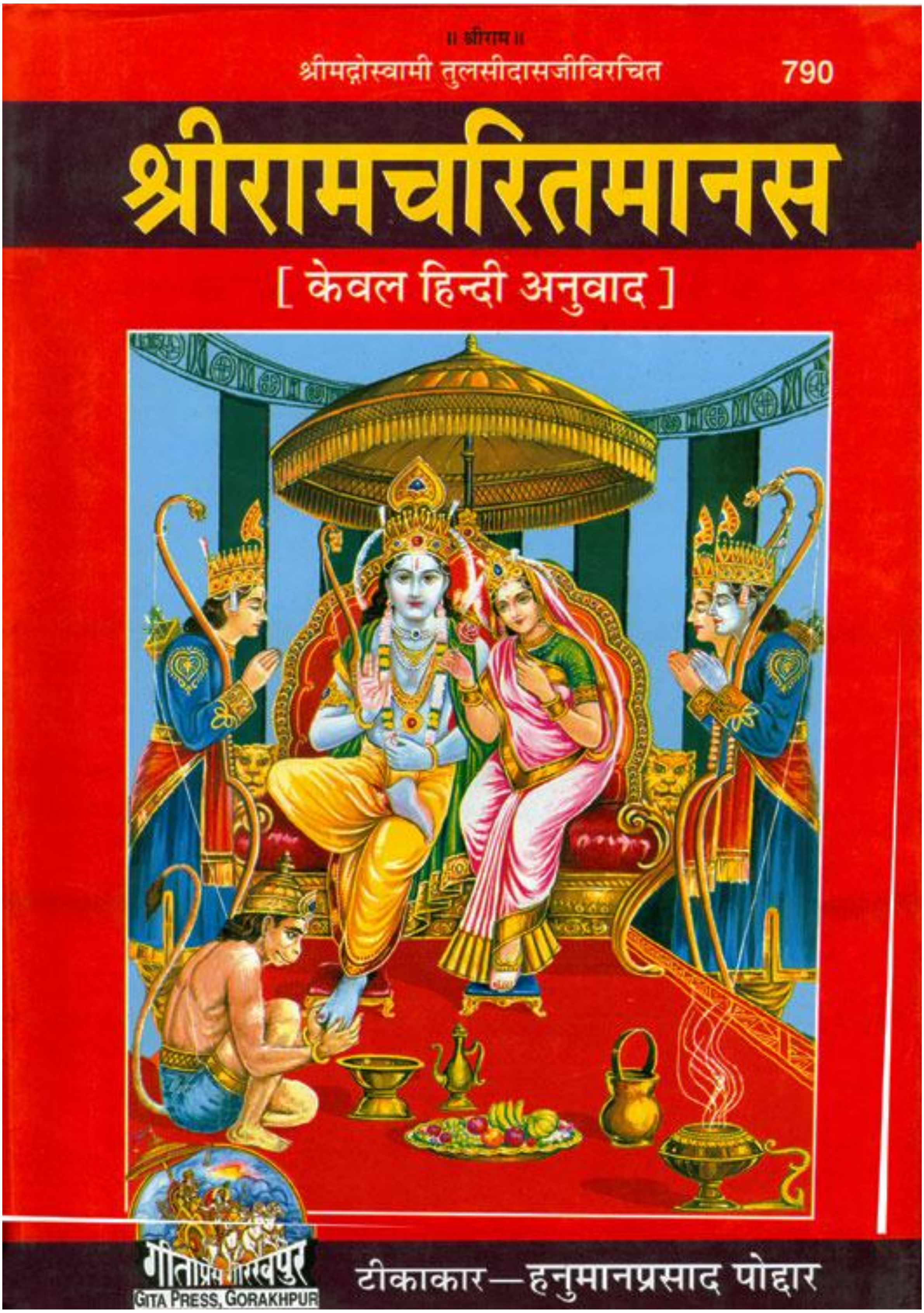

॥ श्रीराम ॥

श्रीमद्गोस्वामी तुलसीदासजीविरचित

790

श्रीरामचरितमानस

[केवल हिन्दी अनुवाद]

गीताप्रेस गोरखपुर

GITA PRESS, GORAKHPUR

टीकाकार—हनुमानप्रसाद पोद्दार

श्रीगणेशाय नमः
श्रीजानकीवल्लभो विजयते

श्रीरामचरितमानस

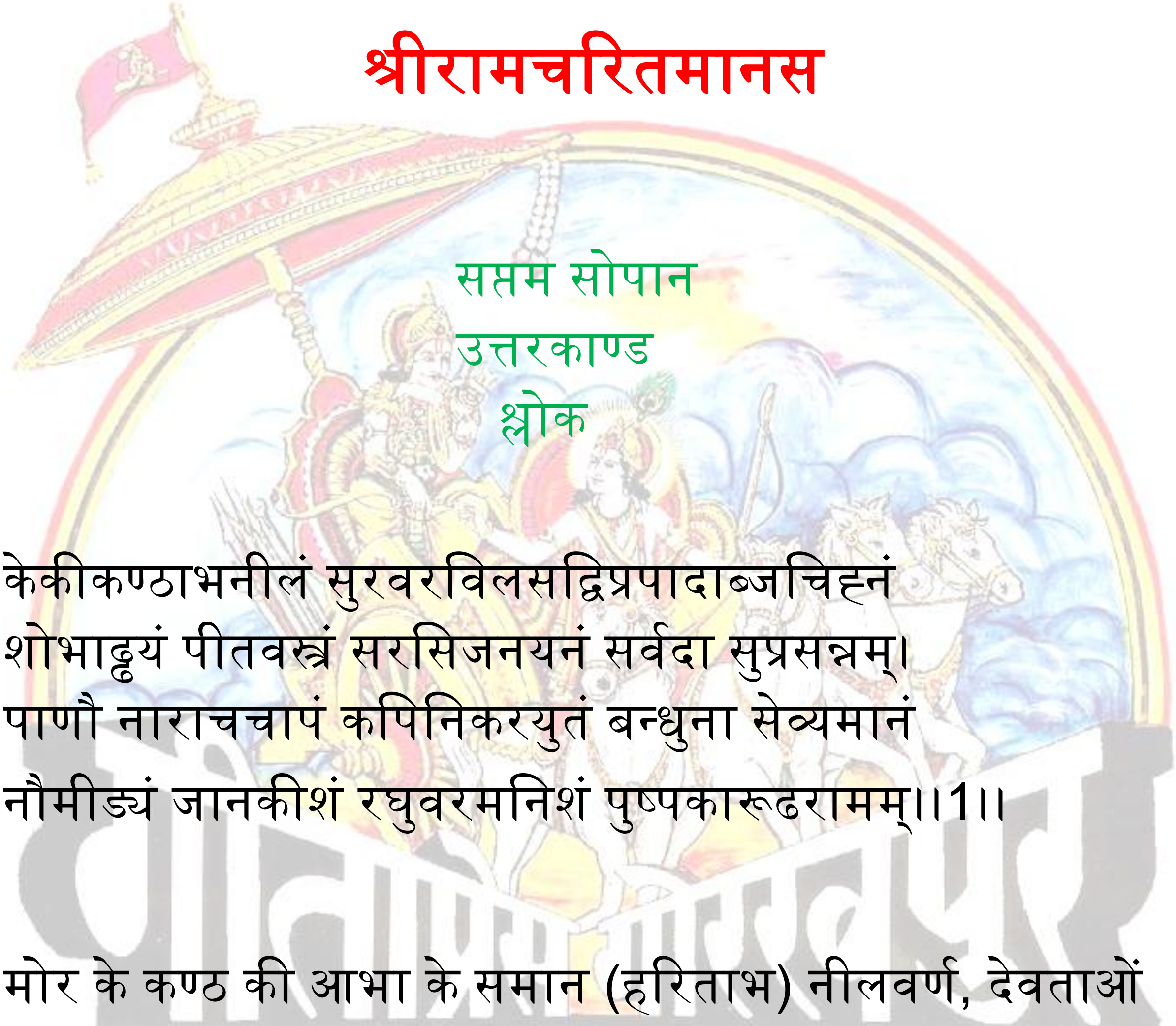

सप्तम सोपान
उत्तरकाण्ड
श्लोक

केकीकण्ठाभनीलं सुरवरविलसद्विप्रपादाब्जचिह्नं
शोभाढ्यं पीतवस्त्रं सरसिजनयनं सर्वदा सुप्रसन्नम्।
पाणौ नाराचचापं कपिनिकरयुतं बन्धुना सेव्यमानं
नौमीड्यं जानकीशं रघुवरमनिशं पुष्पकारूढरामम्।।1।।

मोर के कण्ठ की आभा के समान (हरिताभ) नीलवर्ण, देवताओं में श्रेष्ठ, ब्राह्मण (भृगुजी) के चरणकमल के चिह्न से सुशोभित, शोभा से पूर्ण, पीताम्बरधारी, कमलनेत्र, सदा परम प्रसन्न, हाथों में बाण और धनुष धारण किये हुए वानरसमूह से युक्त भाई लक्ष्मणजी से सेवित स्तुति किये जाने योग्य, श्रीजानकीजी के

पति रघुकुल श्रेष्ठ पुष्पक-विमान पर सवार श्रीरामचन्द्रजी को मैं निरन्तर नमस्कार करता हूँ।।1।।

कोसलेन्द्रपदकंजमजंलौ कोमलावजमहेशवन्दितौ।
जानकीकरसरोजलालितौ चिन्तकस्य मनभृंगसंगनौ।।2।।

कोसलपुरी के स्वामी श्रीरामचन्द्रजी के सुन्दर और कोमल दोनों चरणकमल ब्रह्माजी और शिवजी के द्वारा वन्दित हैं, श्रीजानकीजी के करकमलों से दुलराये हुए हैं और चिन्तन करने वाले मनरूपी भौंरे के नित्य संगी हैं अर्थात् चिन्तन करने वालों का मनरूपी भ्रमर सदा उन चरणकमलों में बसा रहता है।।2।।

कुन्दइन्दुरगौरसुन्दरं अम्बिकापतिमभीष्टसिद्धिदम्।
कारुणीककलकंजलोचनं नौमि शंकरमनंगमोचनम्।।3।।

कुन्द के फूल, चन्द्रमा और शंख के समान सुन्दर गौरवर्ण, जगज्जननी श्रीपार्वतीजी के पति, वांछित फलके देनेवाले, [दुखियोंपर सदा] दया करनेवाले, सुन्दर कमलके समान नेत्रवाले, कामदेव से छुड़ानेवाले, [कल्याणकारी] श्रीशंकरजीको मैं नमस्कार करता हूँ।।3।।

दो.-रहा एक दिन अवधि कर अति आरत पुर लोग।
जहँ तहँ सोचहिं नारि नर कृस तन राम बियोग।।

[श्रीरामजीके लौटने की] अवधिका एक ही दिन बाकी रह गया, अतएव नगरके लोग बहुत आतुर (अधीर) हो रहे हैं। राम के वियोग में दुबले हुए स्त्री-पुरुष जहाँ-तहाँ सोच (विचार) कर रहे हैं [कि क्या बात है, श्रीरामजी क्यों नहीं आये]।

सगुन होहिं सुंदर सकल मन प्रसन्न सब केर।
प्रभु आगवन जनाव जनु नगर रम्य चहुँ फेर।।

इतने में ही सब सुन्दर शकुन होने लगे और सबके मन प्रसन्न हो गये। नगर भी चारो ओर से रमणीक हो गया। मानो ये सब-के-सब चिह्न प्रभु के [शुभ] आगमन को जना रहे हैं।

कौसल्यादि मातु सब मन अनंद अस होइ।
आयउ प्रभु श्री अनुज जुत कहन चहत अब कोई।।

कौसल्या आदि सब माताओं के मन में ऐसा आनन्द हो रहा है जैसे अभी कोई कहना ही चाहता है कि सीताजी और लक्ष्मणजीसहित प्रभु श्रीरामचन्द्रजी आ गये।।

भरत नयन भुज दच्छिन फरकत बारहिं बार।
जानि सगुन मन हरष अति लागे करन बिचार।।

भरतजी की दाहिनी आँख और दाहिनी भुजा बार-बार फड़क रही है। इसे शुभ शकुन जानकर उनके मनमें अत्यन्त हर्ष हुआ और वे विचार करने लगे-

चौ.-रहेउ एक दिन अवधि अधारा। समुझत मन दुख भयउ अपारा।।
कारन कवन नाथ नहिं आयउ। जानि कुटिल किधौं मोहि बिसरायउ।।1।।

प्राणों की आधाररूप अवधि का एक दिन शेष रह गया! यह सोचते ही भरत जी के मनमें अपार दुःख हुआ। क्या कारण हुआ कि नाथ नहीं आये ? प्रभु ने कुटिल जानकर मुझे कहीं भुला तो नहीं दिया ?।।1।।

अहह धन्य लछिमन बड़भागी। राम पदारबिंदु अनुरागी।।
कपटी कुटिल मोहि प्रभु चीन्हा। ताते नाथ संग नहिं लीन्हा।।2।।

अहा ! लक्ष्मण बड़े धन्य एवं बड़भागी हैं; जो श्रीरामचन्द्रजी के चरणारविन्द के प्रेमी हैं (अर्थात् उनसे अलग नहीं हुए)। मुझे तो

प्रभु ने कपटी और कुटिल पहचान लिया, इसी से नाथ ने मुझे साथ नहीं लिया!।।2।।

जौं करनी समुझै प्रभु मोरी। नहिं निस्तार कलप सत कोरी।।
जन अवगुन प्रभु मान न काऊ। दीन बंधु अति मृदुल सुभाऊ।।3।।

[बात भी ठीक ही है, क्योंकि] यदि प्रभु मेरी करनी पर ध्यान दें तो सौ करोड़ (असंख्य) कल्पोंतक भी मेरा निस्तार (छुटकारा) नहीं हो सकता। [परन्तु आशा इतनी ही है कि] प्रभु सेवक का अवगुण कभी नहीं मानते। वे दीनबन्धु हैं और अत्यन्त ही कोमल स्वभाव के हैं।।3।।

मोरे जियँ भरोस दृढ़ सोई। मिलिहहिं राम सगुन सुभ होई।।
बीतें अवधि रहहिं जौं प्राना। अधम कवन जग मोहि समाना।।4।।

अतएव मेरे हृदय में ऐसा पक्का भरोसा है कि श्रीरामजी अवश्य मिलेंगे [क्योंकि] मुझे शकुन बड़े शुभ हो रहे हैं। किन्तु अवधि बीत जानेपर यदि मेरे प्राण रह गये तो जगत् में मेरे समान नीच कौन होगा ?।।4।।

दो.-राम बिरह सागर महँ भरत मगन मन होत।
बिप्र रूप धरि पवनसुत आइ गयउ जनु पोत।।1क।।

श्रीरामजी के विरह-समुद्र में भरत जी का मन डूब रहा था, उसी समय पवन पुत्र हनुमान् जी ब्राह्मण का रूप धरकर इस प्रकार आ गये, मानो [उन्हें डूबने से बचाने के लिये] नाव आ गयी हो।।1(क)।।

बैठे देखि कुसासन जटा मुकुट कृस गात।
राम राम रघुपति जपत स्रवत नयन जलपात।।1ख।।

हनुमान् जी ने दुर्बल शरीर भरतजी को जटाओं का मुकुट बनाये, राम ! राम ! रघुपति ! जपते और कमल के समान नेत्रों से [प्रेमाश्रुओंका] जल बहाते कुश के आसन पर बैठे देखा।।1(ख)।।

चौ.-देखत हनूमान अति हरषेउ। पुलक गात लोचन जल बरषेउ।।
मन महँ बहुत भाँति सुख मानी। बोलेउ श्रवन सुधा सम बानी।।1।।

उन्हें देखते ही हनुमान् जी अत्यन्त हर्षित हुए। उनका शरीर पुलकित हो गया, नेत्रोंसे [प्रेमाश्रुओंका] जल बरसने लगा। मन में

बहुत प्रकार से सुख मानकर वे कानों के लिये अमृतके समान वाणी बोले-।।1।।

जासु बिरहँ सोचहु दिन राती। रटहु निरंतर गुन गन पाँती।।
रघुकुल तिलक सुजन सुखादात। आयउ कुसल देव मुनि त्राता।।2।।

जिनके विरह में आप दिन-रात सोच करते (घुलते) रहते हैं और जिनके गुण-समूहोंकी पंक्तियोंको आप निरन्तर रटते रहते हैं, वे ही रघुकुल के तिलक, सज्जनों को सुख देनेवाले और देवताओं तथा मुनियों के रक्षक श्रीरामजी सकुशल आ गये।।2।।

रिपु रन जीति सुजस सुर गावत। सीता सहित अनुज प्रभु आवत।।
सुनत बचन बिसरे सब दूखा। तृषावंत जिमि पाइ पियूषा।।3।।

शत्रु को रण में जीतकर सीताजी और लक्ष्मणजीसहित प्रभु आ रहे हैं; देवता उनका सुन्दर यश गान कर रहे हैं। ये वचन सुनते ही [भरतजीको] सारे दुःख भूल गये। जैसे प्यासा आदमी अमृत पाकर प्यासके दुःख को भूल जाय।।3।।

गीताप्रेस गोरखपुर

को तुम्ह तात कहाँ ते आए। मोहि परम प्रिय बचन सुनाए।।
मारुत सुत मैं कपि हनूमाना। नामु मोर सुनु कृपानिधाना।।4।

[भरतजीने पूछा-] हे तात ! तुम कौन हो ? और कहाँ से आये हो ? [जो] तुमने मुझको [ये] परम प्रिय (अत्यन्त आनन्द देने वाले वचन सुनाये [हनुमान् जी ने कहा-] हे कृपानिधान ! सुनिये; मैं पवन का पुत्र और जाति का वानर हूँ; मेरा नाम हनुमान् है।।4।।

दीनबंधु रघुपति कर किंकर। सुनत भरत भेंटेउ उठि सादर।।
मिलत प्रेम नहिं हृदय समाता। नयन स्रवत जल पुलकित गाता।।5।।

मैं दीनों के बन्धु श्रीरघुनाथजी का दास हूँ। यह सुनते ही भरत जी उठकर आदरपूर्वक हनुमान् जी से गले लगकर मिले। मिलते समय प्रेम हृदय में नहीं समाता। नेत्रों से [आनन्द और प्रेमके आँसुओंका] जल बहने लगा और शरीर पुलकित हो गया।।5।।

कपि तव दरस सकल दुख बीते। मिले आजु मोहि राम पिरीते।।
बार बार बूझी कुसलाता। तो कहुँ देउँ काह सुनु भ्राता।।6।।

[भरतजीने कहा-] हे हनुमान् ! तुम्हारे दर्शन से मेरे समस्त दुःख समाप्त हो गये (दुःखों का अन्त हो गया)। [तुम्हारे रूपमें] आज मुझे प्यारे राम जी मिल गये। भरतजी ने बार बार कुशल पूछी [और कहा-] हे भाई ! सुनो; [इस शुभ संवाद के बदले में] तुम्हें क्या दूँ ?।।6।।

एहि संदेस सरिस जग माहीं। करि बिचार देखेउँ कछु नाहीं।।
नाहिन तात उरिन मैं तोही। अब प्रभु चरित सुनावहु मोही।।7।।

इस सन्देश के समान (इसके बदल में देने लायक पदार्थ) जगत् में कुछ भी नहीं है, मैंने यह विचार कर देख लिया है। [इसलिये] हे तात ! मैं तुमसे किसी प्रकार भी उऋण नहीं हो सकता। अब मुझे प्रभु का चरित्र (हाल) सुनाओ।।7।।

तब हनुमंत नाइ पद माथा। कहे सकल रघुपति गुन गाथा।।
कहु कपि कबहुँ कृपाल गोसाईं। सुमिरहिं मोहि दास की नाईं।।8।।

तब हनुमान् जी ने भरत जी के चरणों में मस्तक नवाकर श्रीरघुनाथजी की सारी गुणगाथा कही। [भरतजीने पूछा-] हे हनुमान् ! कहो, कृपालु स्वामी श्रीरामचन्द्रजी कभी मुझे अपने दास की तरह याद भी करते हैं ?।।8।।

छं.-निज दास ज्यों रघुबंसभूषन कबहुँ मम सुमिरन कर्यो।
सुनि भरत बचन बिनीत अति कपि पुलकि तन चरनन्हि पर्यो।।
रघुबीर निज मुख जासु गुन गन कहत अग जग नाथ जो।
काहे न होइ बिनीत परम पुनीत सदगुन सिंध सो।।

रघुवंश के भूषण श्रीरामजी क्या कभी अपने दासकी भाँति मेरा स्मरण करते रहे हैं? भरतजी के अत्यन्त नम्र वचन सुनकर हनुमान् जी पुलकित शरीर होकर उनके चरणोंपर गिर पड़े [और मन में विचारने लगे कि] जो चराचर के स्वामी हैं वे श्रीरघुवीर अपने श्रीमुख से जिनके गुणसमूहों का वर्णन करते हैं, वे भरतजी ऐसे विनम्र, परम पवित्र और सद्गुणों के समुद्र क्यों न हों?

दो.-राम प्रान प्रिय नाथ तुम्ह सत्य बचन मम तात।
पुनि पुनि मिलत भरत सुनि हरष न हृदय समात।।2क।।

[हनुमान् जी ने कहा-] हे नाथ! आप श्रीरामजी को प्राणों के समान प्रिय हैं, हे तात! मेरा वचन सत्य है। यह सुनकर भरत जी बार-बार मिलते हैं, हृदय हर्ष समाता नहीं है।।2(क)।।

सो.- भरत चरन सिरु नाइ तुरित गयउ कपि राम पहिं।
कही कुसल सब जाइ हरषि चलेउ प्रभु जान चढ़ि।।2ख।।

फिर भरत जी के चरणों में सिर नवाकर हनुमान् जी तुरंत ही श्रीरामजी के पास [लौट] गये और जाकर उन्होंने सब कुशल कही। तब प्रभु हर्षित होकर विमान पर चढ़कर चले।।2(ख)।।

चौ.-हरषि भरत कोसलपुर आए। समाचार सब गुरहि सुनाए।।
पुनि मंदिर महँ बात जनाई। आवत नगर कुसल रघुराई।।1।।

इधर भरतजी हर्षित होकर अयोध्यापुरी आये और उन्होंने गुरु जी को सब समाचार सुनाया ! फिर राजमहल में खबर जनायी कि श्रीरघुनाथजी कुशलपूर्वक नगरको आ रहे हैं।।1।।

सुनत सकल जननीं उठि धाईं। कहि प्रभु कुसल भरत समुझाईं।।
समाचार पुरबासिन्ह पाए। नर अरु नारि हरषि सब धाए।।2।।

खबर सुनते ही सब माताएँ उठ दौड़ीं। भरत जीने प्रभु की कुशल कहकर सबको समझाया। नगरवासियों ने यह समाचार पाया, तो स्त्री-पुरुष सभी हर्षित होकर दौड़े।।2।।

दधि दुर्बा रोचन फल फूला। नव तुलसी दल मंगल मूला।।
भरि भरि हेम थार भामिनी। गावत चलि सिंधुरगामिनि।।3।।

[श्रीरघुनाथजी के स्वागत के लिये] दही, दूब, गोरोचन, फल, फूल और मंगल के मूल नवीन तुलसीदल आदि वस्तुएँ सोने के थालोंमें भर-भरकर हथिनीकी-सी चालवली सौभाग्यवती स्त्रियाँ] उन्हें लेकर] गाती हुई चलीं।।3।।

जे जैसेहिं तैसेहिं उठि धावहिं। बाल बृद्ध कहँ संग न लावहिं।।
एक एकन्ह कहँ बूझहिं भाई। तुम्ह देखे दयाल रघुराई।।4।।

जो जैसे हैं (जहाँ जिस दशामें हैं)। वे वैसे ही (वहीं उसी दशामें) उठ दौड़ते हैं। [देर हो जाने के डर से] सबालकों और बूढ़ों को कोई साथ नहीं लाते। एक दूसरे से पूछते हैं-भाई ! तुमने दयालु श्रीरघुनाथजीको देखा है?।।4।।

अवधपुरी प्रभु आवत जानी। भई सकल शोभा कै खानी।।
बहइ सुहावन त्रिबिध समीरा। भइ सरजू अति निर्मल नीरा।।5।।

प्रभुको आते जानकर अवधपुरी सम्पूर्ण शोभाओंकी खान हो गयी। तीनों प्रकारकी सुन्दर वायु बहने लगी। सरयूजी अति जलवाली हो गयीं (अर्थात् सरयूजीका जल अत्यन्त निर्मल हो गया)।।5।।

दो.-हरषित गुर परिजन अनुज भूसुर बृंद समेत।
चले भरत मन प्रेम अति सन्मुख कृपानिकेत।।3क।।

गुरु वसिष्ठजी, कुटुम्बी, छोटे भाई शत्रुघ्न तथा ब्राह्मणों के समूहके साथ हर्षित होकर भरतजी अत्यन्त प्रेमपूर्ण मन से कृपाधाम श्रीरामजीके सामने (अर्थात् अगवानीके लिये) चले।।3(क)।।

बहुतक चढ़ी अटारिन्ह निरखहिं गगन बिमान।
देखि मधुर सुर हरषित करहिं सुमंगल गान।।3ख।।

बहुत-सी स्त्रियाँ अटारियों पर चढ़ी आकाशमें विमान देख रही है और उसे देखकर हर्षित होकर मीठे स्वर से सुन्दर मंगलगीत गा रही हैं।।3(ख)।।

राका ससि रघुपति पुर सिंधु देखु हरषान।
बढ़यो कोलाहल करत जनु नारि तरंग समान।।3ग।।

श्रीरघुनाथजी पूर्णिमा के चन्द्रमा हैं, तथा अवधपुर समुद्र है, जो उस पूर्णचन्द्रको देखकर हर्षित हो रहा है और शोक करता हुआ बढ़ रहा है [इधर-उधर दौड़ती हुई] स्त्रियाँ उसी तरंगोंके समान लगती है।।3(ग)।।

चौ.-इहाँ भानुकुल कमल दिवाकर। कपिन्ह देखावत नगर मनोहर।।
सुनु कपीस अंगद लंकेसा। पावन पुरी रुचिर यह देसा।।1।।

यहाँ (विमान पर से) सूर्यकुलरूपी कमल के प्रफुल्लित करनेवाले सूर्य श्रीरामजी वानरोंको मनोहर नगर दिखला रहे हैं। [वे कहते है-] हे सुग्रीव ! हे अंगद ! हे लंकापति विभीषण ! सुनो। यह पुरी पवित्र है और यह देश सुन्दर है।।1।।

जद्यपि सब बैकुंठ बखाना। बेद पुरान बिदितजगु जाना।।
अवधपुरी सम प्रिय नहिं सोऊ। यह प्रसंग जानइ कोउ कोऊ।।2।।

यद्यपि सबने वैकुण्ठकी बड़ाई की है-यह वेद पुराणोंमें प्रसिद्ध है और जगत् जानता है, परन्तु अवधपुरीके समान मुझे वह भी प्रिय नहीं है। यह बात (भेद) कोई-कोई (विरले ही) जानते हैं।।2।।

जन्मभूमि मम पुरी सुहावनी। उत्तर दिसि बह सरजू पावनि।।
जा मज्जन ते बिनहिं प्रयासा। मम समीप नर पावहिं बासा।।3।।

यह सुहावनी पुरी मेरी जन्मभूमि है। उसके उत्तर दिशामें [जीवोंको] पवित्र करने वाली सरयू नदी बहती है, जिसमें स्नान

करने से मनुष्य बिना ही परिश्रम मेरे समीप निवास (सामीप्य मुक्ति) पा जाते हैं।।3।।

अति प्रिय मोहि इहाँ के बासी। मम धामदा पुरी सुख रासी।।
हरषे सब कपि सुनि प्रभु बानी। धन्य अवध जो राम बखानी।।4।।

यहाँ के निवासी मुझे बहुत ही प्रिय हैं। यह पुरी सुख की राशि और मेरे परमधामको देनेवाली है। प्रभुकी वाणी सुनकर सब वानर हर्षित हुए [और कहने लगे कि] जिस अवध की स्वयं श्रीरामजीने बड़ाई की, वह [अवश्य ही] धन्य है।।4।।

दो.-आवत देखि लोग सब कृपासिंधु भगवान।
नगर निकट प्रभु प्रेरेउ भूमि बिमान।।4क।।

कृपासागर भगवान् श्रीरामचन्द्रजीने सब लोगों को आते देखा, तो प्रभुने विमानको नगरके समीप उतरने की प्रेरणा की। तब वह पृथ्वी पर उतरा।।4(क)।।

उतरि कहेउ प्रभु पुष्पकहि तुम्ह कुबेर पहिं जाहु।
प्रेरित राम चलेउ सो हरषु बिरहु अति ताहु।।4ख।।

विमान से उतरकर प्रभुने पुष्पकविमानसे कहा कि तुम अब कुबेर के पास जाओ। श्रीरामजीकी प्रेरणा से वाहक चले। उसे, [अपने स्वमीके पास जानेका] हर्ष है और प्रभु श्रीरामचन्द्रजीसे अलग होनेका अत्यन्त दुःख भी।।4(ख)।।

चौ.-आए भरत संग सब लोगा। कृस तन श्रीरघुबीर बियोगा।।
बामदेव बसिष्ट मुनिनायक। देखे प्रभु महि धरि धनु सायक।।1।।

भरतजीके साथ सब लोग आये। श्रीरघुवीरके वियोगसे सबके शरीर दुबले हो रहे हैं। प्रभुने वामदेव, वसिष्ठ आदि मुनिश्रेष्ठोंको देखा, तो उन्होंने धनुष-बाण पृथ्वीपर रखकर-।।1।।

धाइ धरे गुर चरन सरोरूह। अनुज सहित अति पुलक तनोरुह।।
भेंटि कुसल बूझी मुनिराया। हमरें कुसल तुम्हारिहिं दाया।।2।।

छोटे भाई लक्ष्मणजी सहित दौड़कर गुरु जी के चरणकमल पकड़ लिये; उनके रोम-रोम अत्यन्त पुलकित हो गये हैं। मुनिराज वसिष्ठजी ने [उठाकर] उन्हें गले लगाकर कुशल पूछी। [प्रभु ने कहा-] आपहीकी दयामें हमारी कुशल है।।2।।

सकल द्विजन्ह मिलि नायउ माथा। धर्म धुरंधर रघुकुलनाथा।।
गहे भरत पुनि प्रभु पद पंकज। नमत जिन्हहि सुर मुनि संकर अज।।3।।

धर्मकी धुरी धारण करनेवाले रघुकुलके स्वामी श्रीरामजीने सब ब्राह्मणों से मिलकर उन्हें मस्तक नवाया। फिर भरतजीने प्रभुके चरणकमल पकड़े जिन्हें देवता, मुनि, शंकरजी और ब्रह्मा जी [भी] नमस्कार करते हैं।।3।।

परे भूमि नहिं उठत उठाए। बर करि कृपासिंधु उर लाए।।
स्यामल गात रोम भए ठाढ़े। नव राजीव नयन जल बाढ़े।।4।।

भरतजी पृथ्वी पर पड़े हैं, उठाये उठते नहीं। तब कृपासिंधु श्रीरामजीने उन्हें जबर्दस्ती उठाकर हृदय से लगा लिया। [उनके] साँवले शरीर पर रोएँ खड़े हो गये। नवीन कमलके समान नेत्रओंमें [प्रेमाश्रुओंके] जलकी बाढ़ आ गयी।।4।।

छं.-राजीव लोचन स्रवत जल तन ललित पुलकावलि बनी।
अति प्रेम हृदयँ लगाइ अनुजहि मिले प्रभु त्रिभुअन धनी।।
प्रभु मिलत अनुजहि सोह मो पहिं जाति नहिं उपमा कही।
जनु प्रेम अरु सिंगार तनु धरि मिले बर सुषमा लही।।1।।

कमलके समान नेत्रों से जल बह रहा है। सुन्दर शरीर से पुलकावली [अत्यन्त] शोभा दे रही है। त्रिलोकी के स्वामी प्रभु श्रीरामजी छोटे भाई भरत जी को अत्यन्त प्रेमसे हृदय से लगाकर मिले। भाई से मिलते समय प्रभु जैसे शोभित हो रहे हैं उसकी उपमा मुझसे कहीं नहीं जाती। मानो प्रेम और श्रृंगार शरीर धारण करके मिले और श्रेष्ठ शोभाको प्राप्त हुए।।1।।

बूझत कृपानिधि कुसल भरतहि बचन बेगि न आवई।
सुनु सिवा सो सुख बचन मन ते भिन्न जान जो पावई।।
अब कुसल कौसलनाथ आरत जानि जन दरसन दियो।
बूड़त बिरह बारीस कृपानिधान मोहि कर गहि लियो।।2।।

कृपानिधान श्रीरामजी भरतजी से कुशल पूछते हैं; परन्तु आनन्दवश भरतजीके मुखसे वचन शीघ्र नहीं निकलते। [शिवजीने कहा-] हे पार्वती ! सुनो, वह सुख (जो उस समय भरतजीको मिल रहा था) वचन और मन से परे हैं; उसे वही जानता है जो उसे पाता है। [भरतजीने कहा-] हे कोसलनाथ ! आपने आर्त (दुखी) जानकर दासको दर्शन दिये है, इससे अब कुशल है। विरहसमुद्रमें डूबते हुए मुझको कृपानिधान हाथ पकड़कर बचा लिया !।।2।।

दो.-पुनि प्रभु हरषि सत्रुहन भेंटे हृदय लगाइ।।
लछिमन भरत मिले तब परम प्रेम दोउ भाइ।।5।।

फिर प्रभु हर्षित होकर शत्रुघ्नजीको हृदय से लगाकर उनसे मिले। तब लक्ष्मणजी और भरतजी दोनों भाई परम प्रेम से मिले।।5।।

चौ.-भरतानुज लछिमन पुनि भेंटे। दुसह बिरह संभव दुख मेटे।।
सीता चरन भरत सिरु नावा। अनुज समेत परम सुख पावा।।1।।

फिर लक्ष्मणजी शत्रुघ्न जी से गले लगकर मिले और इस प्रकार विरहसे उत्पन्न दुःखका नाश किया। फिर भाई शत्रुघ्नजीसहित भरतजीने सीताजीके चरणोंमें सिर नवाया और परम सुख प्राप्त किया।।1।।

प्रभु बिलोकि हरषे पुरबासी। जनित बियोगबिपति सब नासी।।
प्रेमातुर सब लोग निहारी। कौतुक कीन्ह कृपाल खरारी।।2।।

प्रभुको देखकर अयोध्यावासी सब हर्षित हुए। वियोगसे उत्पन्न सब दुःख नष्ट हो गये। सब लोगों को प्रेमविह्लय [और मिलनेके लिये अत्यन्त आतुर] देखकर खरके शत्रु कृपालु श्रीरामजीने एक चमत्कार किया।।2।।

अमित रूप प्रगटे तेहि काला। जथाजोग मिले सबहि कृपाला।।
कृपादृष्टि रघुबीर बिलोकी। किए सकल नर नारि बिसोकी।।3।।

उसी समय कृपालु श्रीरामजी असंख्य रूपों में प्रकट हो गये और सबसे [एक ही साथ] यथायोग्य मिले। श्रीरघुवीरने कृपाकी दृष्टिसे देखकर सब नर-नारियों को शोकसे रहित कर दिया।।3।।

छन महिं सबहिं मिले भगवाना। उमा मरम यह काहुँ न जाना।।
एहि बिधि सबहि सुखी करि रामा। आगें चले सील गुन
धामा।।4।।

भगवान् क्षण मात्र में सबसे मिल लिये। हे उमा! यह रहस्य किसी ने नहीं जाना। इस प्रकार शील और गुणों के धाम श्रीरामजी सबको सुखी करके आगे बढ़े।।4।।

कौसल्यादि मातु सब धाई। निरखि बच्छ जनु धेनु लवाई।।5।।

कौसल्या आदि माताएँ ऐसे दौड़ीं मानो नयी ब्यायी हुई गौएँ अपने बछड़ों को देखकर दौंड़ी हों।।5।।

छं.-जनु धेनु बालक बच्छ तजि गृहँ चरन बन परबस गईं।
दिन अंत पुर रुख स्रवत थन हुंकार करि धावत भईं।।

अति प्रेम प्रभु सब मातु भेटीं बचन मृदु बहुबिधि कहे।
गइ बिषम बिपति बियोगभव तिन्ह हरष सुख अगनित लहे।।

मानो नयी ब्यायी हुई गौएँ अपने छोटे बछड़ों को घर पर छोड़ परवश होकर वनमें चरने गयी हों और दिन का अन्त होने पर [बछड़ोंसे मिलने के लिये] हुंकार करके थन से दूध गिराती हुई नगर की ओर दौड़ीं हों। प्रभु ने अत्यन्त प्रेमसे सब माताओंसे मिलकर उनसे बहुत प्रकार के कोलल वचन कहे। वियोगसे उत्पन्न भयानक विपत्ति दूर हो गयी और सबने [भगवान् से मिलकर और उनके वचन सुनकर] अगणित सुख और हर्ष प्राप्त किये।

दो.-भेटेउ तनय सुमित्राँ राम चरन रति जानि।
रामहि मिलत कैकई हृदय बहुत सकुचानि।।6क।।

सुमित्राजी अपने पुत्र लक्ष्मणजीकी श्रीरामजीके चरणों में प्रीति जानकर उनसे मिलीं। श्रीरामजीसे मिलते समय कैकेयीजी हृदय में बहुत सकुचायीं।।6(क)।।

लछिमन सब मातन्ह मिलि हरषे आसिष पाइ।
कैकइ कहँ पुनि पुनि मिले मन कर छोभु न जाइ।।6ख।।

लक्ष्मणजी भी सब माताओंसे मिलकर और आशीर्वाद पाकर हर्षित हुए। वे कैकेयी जी से बार-बार मिले, परन्तु उनके मनका क्षोभ (रोष) नहीं जाता।।6(ख)।।

चौ.-सासुन्ह सबनि मिली बैदेही। चरनन्हि लागि हरषु अति तेही।।
देहिं असीस बूझि कुसलाता। होइ अचल तुम्हार अहिवाता।।1।।

जानकीजी सब सासुओं से मिलीं और उनके चरणों लगकर उन्हें अत्यन्त हर्ष हुआ। सासुएँ कुशल पूछकर आशिष दे रही हैं कि तुम्हारा सुहाग अचल हो।।1।।

सब रघुपति मुख कमल बिलोकहिं। मंगल जानि नयन जल रोकहिं।।
कनक थार आरती उतारहिं। बार बार प्रभु गात निहारहिं।।2।।

सब मातएँ श्रीरघुनाथजीका कमल-सा मुखड़ा देख रही हैं। [नेत्रोंसे प्रेमके आँसू उमड़े आते हैं; परन्तु] मंगलका समय जानकर वे आँसुओंके जलको नेत्रोंमें ही रोक रखती हैं। सोनेके थाल से आरती उतारती हैं और बार-बार प्रभुके श्री अंगोकी ओर देखती हैं।।2।।

नाना भाँति निछावरि करहीं। परमानंद हरष उर भरहीं।।
कौसल्या पुनि पुनि रघुबीरहि। चितवति कृपासिंधु
रनधीरहि।।3।।

अनेकों प्रकार की निछावरें करती हैं और हृदय में परमानन्द तथा हर्ष भर रही हैं। कौसल्याजी बार-बार कृपाके समुद्र और रणधीर श्रीरघुवीर को देख रही हैं।।3।।

हृदय बिचारति बारहिं बारा। कवन भाँति लंकापति मारा।।
अति सुकुमार जुगल मेरे बारे। निसिचर सुभट महाबल भारे।।4।।

वे बार-बार हृदय में विचारती हैं कि इन्होंने लंका पति रावणको कैसे मारा ? मेरे ये दोनों बच्चे बड़े ही सुकुमार हैं और राक्षस तो बड़े भारी योद्धा और महान् बली थे।।4।।

दो.-लछिमन अरु सीता सहित प्रभुहि बिलोकित मातु।
परमानंद मगन मन पुनि पुनि पुलकित गातु।।7।।

लक्ष्मणजी और सीताजीसहित प्रभु श्रीरामचन्द्रजीको माता देख रही हैं। उनका मन परमानन्द में मग्न है और शरीर बार बार पुलकित हो रहा है।।7।।

चौ.- लंकापति कपीस नल नीला। जामवंत अंगद सुभसीला।।
हनुमदादि सब बानर बीरा। धरे मनोहर मनुज सरीरा।।1।।

लंकापति विभीषण, वानरराज सुग्रीव, नल, नील, जाम्बवान् और अंगद तथा हनुमान् जी आदि सभी उत्तम स्वभाव वाले वीर वानरोंने मनुष्योंके मनोहर शरीर धारण कर लिये।।1।।

भरत सनेह सील ब्रत नेमा। सादर सब बरनहिं अति प्रेमा।।
देखि नगरबासिन्ह कै रीती। सकल सराहहिं प्रभु पद प्रीती।।2।।

वे सब भरत जी के प्रेम, सुन्दर स्वभाव, [त्यागके] व्रत और नियमों की अत्यन्त प्रेमसे आदरपूर्वक बड़ाई कर रहे हैं। और नगरनिवासियों की [प्रेम, शील और विनयसे पूर्ण] रीति देखकर वे सब प्रभुके चरणोंमें उनके प्रेमकी सराहना कर रहे हैं।।2।।

पुनि रघुपति सब सखा बोलाए। मुनि पद लागहु सकल सिखाए।।
गुर बसिष्ट कुलपूज्य हमारे। इन्ह की कृपाँ दनुज रन मारे।।3।।

फिर श्रीरघुनाथजीने सब सखाओंको बुलाया और सबको सिखाया कि मुनि के चरणों में लगो। ये गुरु वसिष्ठजी हमारे

कुलभर के पूज्य हैं। इन्हीं की कृपा से रणमें राक्षस मारे गये हैं।।3।।

ए सब सखा सुनहु मुनि मेरे। भए समर सागर कहँ बेरे।।
मम हित लागि जन्म इन्ह हारे। भरतहु ते मोहि अधिक पिआरे।।4।।

[फिर गुरुजीसे कहा-] हे मुनि ! सुनिये। ये सब मेरे सखा हैं। ये संग्रामरूपी समुद्र में मेरे लिये बेड़े (जहाज) के समान हुए। मेरे हित के लिये इन्होंने अपने जन्मतक हार दिये। (अपने प्राणोंतक को होम दिया)। ये मुझे भरतसे भी अधिक प्रिय हैं।।4।।

सुनि प्रभु बचन मगन सब भए। निमि। निमिष उपजत सुख नए।।5।।

प्रभुके वचन सुनकर सब प्रेम और आनन्द में मग्न हो गये। इस प्रकार पल-पल में उन्हें नये-नये सुख उत्पन्न हो रहे हैं।।5।।

दो.-कौसल्या के चरनन्हि पुनि तिन्ह नायउ माथ।
आसिष दीन्हे हरषि तुम्ह प्रिय मम जिमि रघुनाथ ।।8क।।

फिर उन लोगों ने कौसल्या जी के चरणोंमें मस्तक नवाये। कौसल्याजीने हर्षित होकर आशिषें दीं [और कहा-] तुम मुझे रघुनाथ के समान प्यारे हो।।8(क)।।

सुमन बृष्टि नभ संकुल भवन चले सुखकंद।
चढ़ी अटारिन्ह देखहिं नगर नारि नर बृंद।।8ख।।

आनन्दकन्द श्रीरामजी अपने महल को चले, आकाश फूलों की बृष्टि से छा गया। नगरके स्त्री-पुरुषों के समूह अटारियों पर चढ़कर उनके दर्शन कर रहे हैं।।8(ख)।।

चौ.-कंचन कलस बिचित्र संवारे। सबहिं धरे सजि निज निज द्वारे।।
बंदनवार पताका केतू। सबन्हि बनाए मंगल हेतू।।1।।

सोनेके कलशों को विचित्र रीतिसे [मणि-रत्नादिसे] अलंकृत कर और सजाकर सब लोगोंने अपने-अपने दरवाजों पर रख लिया। सब लोगों ने मंगलके लिये बंदनवार, ध्वजा और पताकाएँ लगायीं।।1।।

बीथीं सकल सुगंध सिंचाई। गजमनि रचि बहु चौक पुराईं।।
नाना भाँति सुमंगल साजे। हरषि नगर निसान बहु बाजे।।2।।

सारी गलियाँ सुगन्धित द्रवोंसे सिंचायी गयीं। गजमुक्ताओंसे रचकर बहुत-सी चौकें पुरायी गयीं अनेकों प्रकारके के सुन्दर मंगल-साज सजाये गये और हर्षपूर्वक नगरमें बहुत-से डंके बजने लगे।।2।।

जहँ तहँ नारि निछावरि करहीं। देहिं असीस हरष उर भरहीं।।
कंचन थार आरतीं नाना। जुबतीं सजें करहिं सुभ गाना।।3।।

स्त्रियाँ जहाँ-तहाँ निछावर कर रही है, और हृदय में हर्षित होकर आशीर्वाद देती है। बहुत-सी युवती [सौभाग्यवती] स्त्रियाँ सोने के थालोंमें अनेकों प्रकारकी आरती सजकर मंगलगान कर रही है।।3।।

गीताप्रेस गोरखपुर

करहिं आरती आरतिहर कें। रघुकुल कमल बिपिन दिनकर कें।।
पुर शोभा संपति कल्याना। निगम सेष सारदा बखाना।।4।।

वे आर्तिहर (दुःखोंको हरनेवाले) और सूर्यकुलरूपी कमलवनके प्रफुल्लित करनेवाले सूर्य श्रीरामजीकी आरती कर रही हैं।

नगरकी शोभा, सम्पत्ति और कल्याणका वेद शेषजी और सरस्वती वर्णन करते हैं-।।4।।

तेउ यह चरित देखि ठगि रहहीं। उमा तासु गुन नर किमि कहहीं।।5।।

परन्तु वे भी यह चरित्र देखकर ठगे-से रह जाते हैं (स्तम्भित हो रहते हैं)। [शिवजी कहते हैं-] हे उमा ! तब भला मनुष्य उनके गुणोंको कैसे कह सकते हैं।।5।।

दो.-नारि कुमुदिनीं अवध सर रघुपति बिरह दिनेस।
अस्त भएँ बिगसत भईं निरखि राम राकेस।।9क।।

स्त्रियाँ कुमुदनीं हैं, अयोध्या सरोवर है और श्रीरघुनाथजीका विरह सूर्य है [इस विरह सूर्य के ताप से वे मुरझा गयी थीं]। अब उस विरह रूपी सूर्य के अस्त होनेपर श्रीरामरूपी पूर्णचन्द्रको निरखकर वे खिल उठीं।।9(क)।।

होहिं सगुन सुभ बिबिधि बिधि बाजहिं गगन निसान।
पुर नर नारि सनाथ करि भवन चले भगवान।।9ख।।

अनेक प्रकार के शुभ शकुन हो रहे हैं, आकाशमें नगाड़े बज रहे हैं। नगर के पुरुषों और स्त्रियों को सनाथ (दर्शनद्वारा कृतार्थ) करके भगवान् श्रीरामचन्द्रजी महल को चले ।।9(ख)।।

चौ.-प्रभु जानी कैकई लजानी। प्रथम तासु गृह गए भवानी।।
ताहि प्रबोधि बहुत सुख दीन्हा। पुनि निज भवन गवन हरि कीन्हा।।1।।

[शिवजी कहते हैं-] हे भवानी ! प्रभुने जान लिया कि माता कैकेयी लज्जित हो गयी हैं। [इसलिये] वे पहले उन्हीं के महल को गये और उन्हें समझा-बुझाकर बहुत सुख दिया। फिर श्रीहरिने अपने महलको गमन किया।।1।।

कृपासिंधु जब मंदिर गए। पुर नर नारि सुखी सब भए।।
गुर बसिष्ट द्विज लिए बुलाई। आजु सुघरी सुदिन समुदाई।।2।।

कृपाके समुद्र श्रीरामजी जब अपने महल को गये, तब नगरके स्त्री-पुरुष सब सुखी हुए। गुरु वसिष्ठ जीने ब्राह्मणों को बुला लिया [और कहा-] आज शुभ घड़ी, सुन्दर दिन आदि सभी शुभ योग हैं।।2।।

सब द्विज देहु हरषि अनुसासन। रामचंद्र बैठहिं सिंघासन।।
मुनि बसिष्ट के बचन सुहाए। सुनत सकल बिप्रन्ह अति भाए।।3।।

आप सब ब्राह्मण हर्षित होकर आज्ञा दीजिये, जिसमें श्रीरामचन्द्रजी सिंहासनपर विराजमान हों। वसिष्ठ मुनिके सुहावने वचन सुनते ही सब ब्राह्मणोंको बहुत ही अच्छे लगे।।3।।

कहहिं बचन मृदु बिप्र अनेका। जग अभिराम राम अभिषेका।।
अब मुनिबर बिलंब नहिं कीजै। महाराज कहँ तिलक करीजै।।4।।

वे सब अनेकों ब्राह्मण कोमल वचन कहने लगे कि श्रीरामजीका राज्याभिषेक सम्पूर्ण जगत् को आनन्द देनेवाला है। हे मुनिश्रेष्ठ ! अब विलम्ब न कीजिये और महाराजका तिलक शीघ्र कीजिये।।4।।

दो.-तब मुनि कहेउ सुमंत्र सन सुनत चलेउ हरषाइ।
रथ अनेक बहु बाजि गज तुरत सँवारे जाइ।।10क।।

तब मुनिने सुमन्त्र जी से कहा, वे सुनते ही हर्षित हो चले। उन्होंने तुरंत ही जाकर अनेकों रथ, घोड़े और हाथी सजाये; ।।10(क)।।

जहँ तहँ धावन पठइ पुनि मंगल द्रब्य मगाइ।
हरष समेत बसिष्ट पद पुनि सिरु नायउ आइ।।10ख।।

और तहाँ-तहाँ [सूचना देनेवाले] दूतों को भेजकर मांगलिक वस्तुएँ मँगाकर फिर हर्षके साथ आकर वसिष्ठ जी के चरणों में सिर नवाया।।10(ख)।।

नवाह्नपारायण, आठवाँ विश्राम

चौ.-अवधपुरी अति रुचिर बनाई। देवन्ह सुमन बृष्टि झरि लाई।।
राम कहा सेवकन्ह बुलाई। प्रथम सखन्ह अन्हवावहु जाई।।1।।

अवधपुरी बहुत ही सुन्दर सजायी गयी देवताओंने पुष्पों की वर्षा की झड़ी लगा दी। श्रीरामन्द्रजीने सेवकोंको बुलाकर कहा कि तुमलोग जाकर पहले मेरे सखाओंको स्नान कराओ।।1।।

सुनत बचन जहँ तहँ जन धाए। सुग्रीवादि तुरत अन्हवाए।।
पुनि करुनानिधि भरतु हँकारे। निज कर राम जटा निरुआरे।।2।।

भगवान् के वचन सुनते ही सेवक जहाँ-तहाँ और तुरंत ही उन्होंने सुग्रीवादि को स्नान कराया। फिर करुणानिधान श्रीरामजीने भरतजी को बुलाया और उनकी जटाओंको अपने हाथोंसे सुलझाया।।2।।

अन्हवाए प्रभु तीनिउ भाई। भगत बछल कृपाल रघुराई।।
भरत भाग्य प्रभु कोमलताई। सेष कोटि सत सकहिं न गाई।।3।।

तदनन्तर भक्तवत्सल कृपालु प्रभु श्रीरघुनाथजीने तीनों भाइयों को स्नान कराया। भरत जी का भाग्य कोमलताका वर्णन अरबों शेषजी भी नहीं कर सकते।।3।।

पुनि निज जटा राम बिबराए। गुर अनुसासन मागि नहाए।।
करि मज्जन प्रभु भूषण साजे। अंग अनंग देखि सत लाजे।।4।।

फिर श्रीरामजीने अपनी जटाएँ खोलीं और गुरुजीकी आज्ञा माँगकर स्नान किया। स्नान करके प्रभुने आभूषण धारण किये। उनके [सुशोभित] अंगोंको देखकर सैकड़ों (असंख्य) कामदेव लजा गये।।4।।

दो.-सासुन्ह सादर जानकिहि मज्जन तुरत कराइ।।
दिब्य बसन बर भूषन अँग अँग सजे बनाइ।।11क।।

[इधर] सासुओंने जानकीजी को आदरके साथ तुरंत ही स्नान कराके उनके अंग-अंगमें दिव्य वस्त्र और श्रेष्ठ आभूषण भलीभाँति सजा दिये (पहना दिये)।।11(क)।।

राम बाम दिसि सोभति रमा रुप गुन खानि।
देखि मातु सब हरषीं जन्म सुफल निज जानि।।11ख।।

श्रीरामजीके बायीं ओर रूप और गुणोंकी खान रमा (श्रीजानकीजी) शोभित हो रही हैं। उन्हें देखकर सब माताएँ अपना जन्म (जीवन) सफल समझकर हर्षित हुईं।।11(ख)।।

सुनु खगेस तेहि अवसर ब्रह्मा सिव मुनि बृंद।
चढ़ि बिमान आए सब सुर देखन सुखकंद।।11ग।।

[काकभुशुण्डिजी कहते हैं-] हे पक्षिराज गरुड़जी ! सुनिये; उस समय ब्रह्माजी, शिवजी और मुनियों के समूह तथा विमानोंपर चढ़कर सब देवता आनन्दकन्द भगवान् के दर्शन करने के लिये आये।।11(ग)।।

चौ.-प्रभु बिलोकि मुनि मन अनुरागा। तुरत दिब्य सिंघासन मागा।।
रबि सम तेज सो बरनि न जाई। बैठे राम द्विजन्ह सिरु नाई।।1।।

प्रभुको देखकर मुनि वसिष्ठ जी के मन में प्रेम भर आया। उन्होंने तुरंत ही दिव्य सिंहासन मँगवाया, जिसका तेज सूर्यके समान था। उसका सौन्दर्य वर्णन नहीं किया जा सकता। ब्राह्मणों को सिर नवाकर श्रीरामचन्द्रजी उसपर विराज गये।।1।।

जनकसुता समेत रघुराई। पेखि प्रहरषे मुनि समुदाई।।
बेद मंत्र तब द्विजन्ह उचारे। नभ सुर मुनि जय जयति पुकारे।।2।।

श्रीजानकीजीके सहित श्रीरघुनाथजीको देखकर मुनियों का समुदाय अत्यन्त ही हर्षित हुआ। तब ब्राह्मणों ने वेदमन्त्रोंका उच्चारण किया। आकाशमें देवता और मुनि जय हो, जय हो ऐसी पुकार करने लगे।।2।।

प्रथम तिलक बसिष्ट मुनि कीन्हा। पुनि सब बिप्रन्ह आयसु दीन्हा।।
सुत बिलोकि हरषीं महतारी। बार बार आरती उतारी।।3।।

[सबसे] पहले मुनि वसिष्ठजीने तिलक किया। फिर उन्होंने सब ब्राह्मणों को [तिलक करनेकी] आज्ञा दी। पुत्रको राजसिंहासनपर देखकर माताएँ हर्षित हुईं और उन्होंने बार-बार आरती उतारी।।3।।

बिप्रन्ह दान बिबिधि बिधि दीन्हे। जाचक सकल अजाचक कीन्हे।।
सिंघासन पर त्रिभुवन साईं। देखि सुरन्ह दुंदुभीं बजाईं।।4।।

उन्होंने ब्राह्मणों को अनेकों प्रकारके दान दिये और सम्पूर्ण याचकों को अयाचक बना दिया (मालामाल कर दिया)। त्रिभुवन के स्वामी श्रीरामचन्द्रजीको [अयोध्या के] सिंहासन पर [विराजित] देखकर देवताओंने नगाड़े बजाये।।4।।

छं.-नभ दुंदुभीं बाजहिं बिपुल गंधर्ब किंनर गावहीं।
नाचहिं अपछरा बृंद परमानंद सुर मुनि पावहीं।।
भरतादि अनुज बिभीषनांगद हनुमदादि समेत ते।
गहें छत्र चामर ब्यजन धनु असि चर्म सक्ति बिराजते।।1।।

आकाशमें बहुत-से नगाड़े बज रहे हैं गन्धर्व और किन्नर गा रहे हैं। अप्सराओंके झुंड-के-झुंड नाच रहे हैं। देवता और मुनि परमानन्द प्राप्त कर रहे हैं। भरत, लक्ष्मण और शत्रुघ्नजी, विभीषण, अंगद,

हनुमान् और सुग्रीव आदिसहित क्रमशः छत्र, चँवर, पंखा, धनुष, तलवार, ढाल और सक्ति लिये हुए सुशोभित हैं।।1।।

श्री सहित दिनकर बंस भूषन काम बहु छबि सोहई।
नव अंबुधर बर गात अंबर पीत सुर मन मोहई।।
मुकुटांगदादि बिचित्र भूषन अंग अंगन्हि प्रति सजे।
अंभोज नयन बिसाल उर भुज धन्य नर निरखंति जे।।2।।

श्रीसीताजी सहित सूर्यवंश के विभूषण श्रीरामजीके शरीर में अनेकों कामदेवों छवि शोभा दे रही है। नवीन जलयुक्त मेघोंके समान सुन्दर श्याम शरीरपर पीताम्बर देवताओंके के मन को मोहित कर रहा है मुकुट बाजूबंद आदि बिचित्र आभूषण अंग अंग में सजे हुए है। कमल के समान नेत्र हैं, चौड़ी छाती है और लंबी भुजाएँ हैं; जो उनके दर्शन करते हैं, वे मनुष्य धन्य हैं।।2।।

दो.-वह सोभा समाज सुख कहत न बनइ खगेस।
बरनहिं सारद सेष श्रुति सो रस जान महेस।।12क।।

हे पक्षिराज गरुड़जी ! वह शोभा, वह समाज और वह सुख मुझसे कहते नहीं बनता। सरस्वतीजी, शेषजी और वेद निरन्तर उसका

वर्णन करते हैं, और उसका रस (आनन्द) महादेवजी ही जानते हैं।।2(क)।।

भिन्न भिन्न अस्तुति करि गए सुर निज निज धाम।
बंदी बेष बेद तब आए जहँ श्रीराम।।12ख।।

सब देवता अलग-अलग स्तुति करके अपने–अपने लोक को चले गये। तब भाटों का रूप धारण करके चारों वेद पहाँ आये जहाँ श्रीरामजी थे।।12(ख)।।

प्रभु सर्बग्य कीन्ह अति आदर कृपानिधान।
लखेउ न काहूँ मरम कछु लगे करन गुन गान।।12ग।।

कृपानिधान सर्वज्ञ प्रभुने [उन्हें पहचानकर] उनका बहुत ही आदर किया। इसका भेद किसी ने कुछ भी नहीं जाना। वेद गुणवान करने लगे।।12(ग)।।

छं.-जय सगुन निर्गुन रूप रूप अनूप भूप सिरोमने।
दसकंधरादि प्रचंड निसिचर प्रबल खल भुज बल हने।।
अवतार नर संसार भार बिभंजि दारुन दुख दहे।।
जय प्रनतपाल दयाल प्रभु संयुक्त सक्ति नमामहे।।1।।

हे सगुण और निर्गुणरूप ! हे अनुपम रूप-लावण्ययुक्त ! हे राजाओं के शिरोमणि! आपकी जय हो। आपने रावण आदि प्रचण्ड, प्रबल और दुष्ट निशाचरोंको अपनी भुजाओंके बल से मार डाला। आपने मनुष्य-अवतार लेकर संसारके भारको नष्ट करके अत्यन्त कठोर दुःखों को भस्म कर दिया। हे दयालु ! हे शरणागतकी रक्षा करनेवाले प्रभो ! आपकी जय हो। मैं शक्ति (सीताजी) सहित शक्तिमान आपको नमस्कार करता हूँ।।1।।

तव बिष माया बस सुरासुर नाग नर अग जग हरे।
भव पंथ भ्रमत अमित दिवस निसि काल कर्म गुननि भरे।।
जे नाथ करि करुना बिलोके त्रिबिधि दुख ते निर्बहे।
भव खेद छेदन दच्छ हम कहुँ रच्छ राम नमामहे।।2।।

हे हरे ! आपकी दुस्तर मायाके वशीभूत होनेके कारण देवता, राक्षस, नाग, मनुष्य और चर अचर सभी काल, कर्म और गुणों से भरे हुए (उनके वशीभूत हुए) दिन-रात अनन्त भव (आवागमन) के मार्ग में भटक रहे हैं। हे नाथ ! इनमें से जिनको आपने कृपा करके (कृपादृष्टिसे) देख लिया, वे [माया-जनित] तीनों प्रकारके दुःखोंसे छूट गये। हे जन्म मरणके श्रमको काटने में कुशल श्रीरामजी ! हमारी रक्षा कीजिये। हम आपको नमस्कार करते हैं।।2।।

जे ग्यान मान बिमत्त तव भव हरनि भक्ति न आदरी।
ते पाइ सुर दुर्लभ पददापि परम हम देखत हरी।।
बिस्वास करि सब आस परिहरि दास तव जे होइ रहे।
जपि नाम तव बिनु श्रम तरहीं भव नाथ सो समरामहे।।3।।

जिन्होंने मिथ्या ज्ञान के अभिमान में विशेषरूपसे मतवाले होकर जन्म-मृत्यु [के भय] को हरनेवाली आपकी भक्ति का आदर नहीं किया, हे हरि ! उन्हें देव-दुर्लभ (देवताओंको भी बड़ी कठिनता से प्राप्त होनेवाले, ब्रह्मा आदिके) पदको पाकर भी हम उस पद से नीचे गिरते देखते हैं। [परन्तु] जो सब आशाओं को छोड़कर आपपर विश्वास करके आपके दास हो रहते हैं, वे केवल आपका नाम ही जपकर बिना ही परिश्रम भवसागरसे तर जाते हैं। हे नाथ ! ऐसे हम आपका स्मरण करते हैं।।3।।

जे चरन सिव अज पूज्य रज सुभ परसि मुनिपतिनी तरी।
नख निर्गता मुनि बंदिता त्रिलोक पावनि सुरसरी।।
ध्वज कुलिस अंकुस कंज जुत बन फिरत कंटक किन लहे।
पद कंज द्वंद मुकुंद राम रमेस नित्य भजामहे।।4।।

जो चरण शिवजी और ब्रह्मा जी के द्वारा पूज्य हैं, तथा जिन चरणोंकी कल्याणमयी रज का स्पर्श पाकर [शिव बनी हुई]

गौतमऋषि की पत्नी अहल्या तर गयी; जिन चरणों के नखसे मुनियों द्वारा वन्दित, त्रैलोक्यको पवित्र करनेवाली देवनदी गंगाजी निकलीं और ध्वजा, वज्र अकुंश और कमल, इन चिह्नोंसे युक्त जिन चरणोंमें वनमें फिरते समय काँटे चुभ जानेसे घठ्टे पड़ गये हैं; हे मुकुन्द ! हे राम ! हे रमापति ! हम आपके उन्हीं दोनों चरणकमलोंको नित्य भजते रहते हैं।।4।।

अब्यक्तमूलमनादि तरु त्वच चारि निगमागम भने।
षट कंध साखा पंच बीस अनेक पर्न सुमन घने।।
फल जुगल बिधि कटु मधुर बेलि अकेलि जेहि आश्रित रहे।
पल्लवत फूलत नवल नित संसार बिटप नमामहे।।5।।

वेद शास्त्रोंने कहा है कि जिसका मूल अव्यक्त (प्रकृति) हैं; जो [प्रवाहरूपसे] अनादि है; जिसके चार त्वचाएँ छः तने, पचीस शाखाएँ और अनेकों पत्ते और बहुत से फूल हैं; जिसमें कड़वे और मीठे दो प्रकार के फल लगे हैं; जिस पर एक ही बेल है, जो उसीके आश्रित रहती है; जिसमें नित्य नये पत्ते और फूल निकलते रहते हैं; ऐसे संसारवृक्षस्वरूप (विश्वरूपमें प्रकट) आपको हम नमस्कार करते हैं।।5।।

जे ब्रह्म अजमद्वैतमनुभवगम्य मनपर ध्यावहीं।।
ते कहहुँ जानहुँ नाथ हम तव सगुन जस नित गावहीं।।
करुनायतन प्रभु सदगुनाकर देव यह बर मागहीं।
मन बचन कर्म बिकार तजि तव चरन हम अनुरागहीं।।6।।

ब्रह्म अजन्म है, अद्वैत है केवल अनुभवसे ही जाना जाना जाता है और मन से परे है-जो [इस प्रकार कहकर उस] ब्रह्म का ध्यान करते हैं, वे ऐसा कहा करें और जाना करें, किन्तु हे नाथ ! हम तो नित्य आपका सगुण यश ही गाते हैं। हे करुणा के धाम प्रभो ! हे सद्गुणोंकी खान ! हे देव ! हम यह बर माँगते हैं कि मन, वचन और कर्म से विकारों को त्यागकर आपके चरणोंमें ही प्रेम करें।।6।।

दो.-सब के देखत बेदन्ह बिनती कीन्हि उदार।
अंतर्धान भए पुनि गए ब्रह्म आगार।।13क।।

वेदोंने सबके देखते यह श्रेष्ठ विनती की। फिर वे अन्तर्धान हो गये और ब्रह्मलोक को चले गये।।13(क)।।

बैनतेय सुनु संभु तब आए जहँ रघुबीर।
बिनय करत गदगद गिरा पूरित पुलक सरीर।।13ख।।

[काकभुशुण्डिजी कहते हैं-] हे गरुड़जी ! सुनिये, तब शिवजी वहाँ आये जहाँ श्रीरघुवीर जी थे और गद्गद वाणीसे स्तुति करने लगे। उनका शरीर पुलकावली से पूर्ण हो गया-।।13(ख)।।

छं.-जय राम रमारमनं समनं। भवताप भयाकुल पाहिं जनं।।
अवधेस सुरेस रमेस बिभो। सरनागत मागत पाहि प्रभो।।1।।

हे राम ! हे रमारणय (लक्ष्मीकान्त) ! हे जन्म-मरणके संतापका नाश करनेवाले! आपकी जय हो; आवागमनके भयसे व्याकुल इस सेवक की रक्षा कीजिये। हे अवधिपति! हे देवताओं के स्वामी ! हे रमापति ! हे विभो ! मैं शरणागत आपसे यही माँगता हूँ कि हे प्रभो ! मेरी रक्षा कीजिये।।1।।

दससीस बिनासन बीस भुजा। कृत दूरि महा महि भूरि रुजा।।
रजनीचर बृंद पतंग रहे। सर पावक तेज प्रचंड दहे।।2।।

हे दस सिर और बीस भुजाओंवाले रावणका विनाश करके पृथ्वीके सब महान् रोगों (कष्टों) को दूर करने वाले श्रीरामजी ! राक्षस समूह रूपी जो पतंगे थे, वे सब आपको बाणरूपी अग्नि के प्रचण्ड तेजसे भस्म हो गये।।2।।

महि मंडल मंडन चारुतरं। धृत सायक चाप निषंग बरं।।
मद मोह महा ममता रजनी। तम पुंज दिवाकर तेज अनी।।3।।

आप पृथ्वी मण्डल के अत्यन्त आभूषण हैं; आप श्रेष्ठ बाण, धनुश और तरकस धारण किये हुए हैं। महान् मद मोह और ममतारूपी रात्रिके अन्धकार समूहके नाश करनेके लिये आप सूर्य तेजोमय किरणसमूह हैं।।3।।

मनजात किरात निपातकिए। मृग लोक कुभोग सरेन हिए।।
हति नाथ अनाथनि पाहि हरे। बिषया बन पावँर भूलि परे।।4।।

कामदेवरूपी भीलने मनुष्यरूपी हिरनों के हृदय में कुभोग रूपी बाँण मारकर उन्हें गिरा दिया है। हे नाथ ! हे [पाप-तापका हरण करनेवाले] हरे ! उसे मारकर विषयरूपी वनमें भूले पड़े हुए इन पामर अनाथ जीवोंकी रक्षा कीजिये।।4।।

बहुरोग बियोगन्हि लोग हए। भवदंध्रि निरादर के फल ए।।
भव सिंधु अगाध परे नर ते। पद पंकज प्रेम न जे करते।।5।।

लोग बहुत-से रोगों और वियोगों (दुःखों) से मारे हुए हैं। ये सब आपके चरणों के निरादर के फल हैं। जो मनुष्य आपके

चरणकमलोंमें प्रेम नहीं करते, वे अथाह भव सागर में पड़े रहते हैं।।5।।

अति दीन मलीन दुखी नितहीं। जिन्ह कें पद पंकज प्रीति नहीं।।
अवलंब भवंत कथा जिन्ह कें। प्रिय संत अनंत सदा तिन्ह कें।।6।।

जिन्हें आपके चरणकमलोंमें प्रीति नहीं है, वे नित्य ही अत्यन्त दीन, मलीन (उदास) और दुखी रहते हैं। और जिन्हें आपकी लीला कथा का आधार है, उनको संत और भगवान् सदा प्रिय लगने लगते हैं।।6।।

नहिं राग न लोभ न मान मदा। तिन्ह कें सम बैभव वा बिपदा।।
एहि ते तव सेवक होत मुदा। मुनि त्यागत जोग भरोस सदा।।7।।

उनमें न राग (आसक्ति) है, न लोभ; न मन है, न मद। उनको सम्पत्ति (सुख) और विपत्ति (दुःख) समान है। इसीसे मुनि लोग योग (साधन) का भरोसा सदा के लिये त्याग देते है और प्रसन्नताके साथ आपके सेवक बन जाते हैं।।7।।

करि प्रेम निरंतर नेम लिएँ। पद पंकज सेवत सुद्ध हिएँ।।
सम मानि निरादर आदरही। सब संत सुखी बिचरंति मही।।8।।

वे प्रेम पूर्वक नियम लेकर निरन्तर शुद्ध हृदय से आपके चरणकमलोंकी सेवा करते रहते हैं। और निरादर और आदरको समान मानकर वे सब संत सुखी होकर पृथ्वीपर विचरते हैं।।8।।

मुनि मानस पंकज भृंग भजे। रघुबीर महा रनधीर अजे।।
तव नाम जपामि नमामि हरी। भव रोग महागद मान अरी।।9।।

हे मुनियों के मनरूपी कमलके भ्रमर ! हे रघुबीर महान् रणधीर एवं अजेय श्रीरघुवीर ! मैं आपको भजता हूँ (आपकी शरण ग्रहण करता हूँ)। हे हरि ! आपका नाम जपता हूँ और आपको नमस्कार करता हूँ। आप जन्म-मरणरूपी रोग की महान औषध और अभिमान के शत्रु हैं।।9।।

गुन सील कृपा परमायतनं। प्रनमामि निरंतर श्रीरमनं।।
रघुनंद निकंदय द्वंद्वधनं। महिपाल बिलोकय दीन जनं।।10।।

आप गुण, शील और कृपा के परम स्थान है। आप लक्ष्मीपति हैं, मैं आपको निरन्तर प्रणाम करता हूँ। हे रघुनन्दन ! [आप जन्म-मरण सुख-दुःख राग-द्वेषादि] द्वन्द्व समूहोंका नाश कीजिये। हे पृथ्वीकी पालना करनेवाले राजन् ! इस दीन जनकी ओर भी दृष्टि डालिये।।10।।

दो.-बार बार बर मागउँ हरषि देहु श्रीरंग।
पद सरोज अनपायनी भगति सदा सतसंग।।14क।

मैं आपसे बार-बार यही वरदान मांगता हूँ कि मुझे आपके चरणकमलोंकी अचलभक्ति और आपके भक्तोंका सत्संग सदा प्रात हो। हे लक्ष्मीपते ! हर्षित होकर मुझे यही दीजिये।

बरनि उमापति राम गुन हरषि गए कैलास।
तब प्रभु कपिन्ह दिवाए सब बिधि सुखप्रद बास।।14ख।।

श्रीरामचन्द्रजीके गुणों का वर्णन करके उमापति महादेवजी हर्षित होकर कैलासको चले गये, तब प्रभुने वानरोंको सब प्रकाश से सुख देनेवाले डेरे दिलवाये।।14(ख)।।

चौ.-सुनु खगपति यह कथा पावनी। त्रिबिध ताप भव दावनी।।
महाराज कर सुख अभिषेका। सुनत लहहिं नर बिरति
बिबेका।।1।।

हे गरुड़जी ! सुनिये, यह कथा [सबको] पवित्र करनेवाली है, [दैहिक, दैविक, भौतिक] तीनों प्रकारके तापोंका और जन्म-मृत्युके भयका नाश करनेवाली है। महाराज श्रीरामचन्द्रजीके

कल्याणमय राज्याभिषेकका चरित्र [निष्कामभावसे] सुनकर मनुष्य वैराग्य और ज्ञान प्राप्त करते हैं।।1।।

जे सकाम नर सुनहिं जे गावहिं। सुख संपति नाना बिधि पावहिं।।
सुर दुर्लभ सुख करि जग माहीं। अंतकाल रघुपति पुर जाहीं।।2।।

और जो मनुष्य सकाम भाव से सुनते और गाते हैं, वे अनेकों प्रकार के सुख और सम्पत्ति पाते हैं। वे जगत् में देव दुर्लभ सुखोंको भोगकर अन्तकाल में श्रीरघुनाथजीके परमाधाम को जाते हैं।।2।।

सुनहिं बिमुक्त बिरत अरु बिषई। लहहिं भगति गति संपति नई।।
खगपति राम कथा मैं बरनी। स्वमति बिलास त्रास दुख हरनी।।3।।

इसे जो जीवन्मुक्त विरक्त और विषयी सुनते हैं, वे [क्रमशः] भक्ति, मुक्ति और नवीन सम्पत्ति (नित्य नये भोग) पाते हैं। हे पक्षिराज गरुड़जी ! मैं अपनी बुद्धिकी पहुँचके अनुसार रामकथा वर्णन की है, जो [जन्म-मरणके] भय और दुःखोंको हरनेवाली है।।3।।

बिरति बिबेक भगति दृढ़ करनी। मोह नदी कहँ सुंदर तरनी।।
नित नव मंगल कौसलपुरी। हरषित रहहिं लोग सब कुरी।।4।।

यह वैराग्य, विवेक और भक्ति को दृढ़ करनेवाली है तथा मोहरूपी नदी के [पार करनेके] लिये सुन्दर नाव है। अवधपुरीमें नित-नये मंगलोत्सव होते हैं। सभी वर्गोंके लोग हर्षित रहते हैं।।4।।

नित नइ प्रीति राम पद पंकज। सब कें जिन्हहि नमत सिव मुनि अज।।
मंगन बहु प्रकार पहिराए। द्विजन्ह दान नाना बिधि पाए।।5।।

श्रीरामजीके चरणकमलोंमें-जिन्हें श्रीशिवजी, मुनिगण और ब्रह्मा जी भी नमस्कार करते हैं-सबकी नित्य नवीन प्रीति है। भिक्षुओंको बहुत प्रकारके वस्त्राभूण पहनाये गये और ब्राह्मणों ने नाना प्रकार के दान पाये।।5।।

दो.-ब्रह्मानंद मगन कपि सब कें प्रभु पद प्रीति।।
जात न जाने दिवस तिन्ह गए मास षट बीति।।15।।

वानर सब ब्रह्मानन्द में मगन हैं। प्रभु के चरणों में सबका प्रेम हैं ! उन्होंने दिन जाते जाने ही नहीं और [बात-की-बातमें] छः महीने बीत गये।।15।।

चौ.-बिसरे गृह सपनेहुँ सुधि नाहीं। जिमि परद्रोह संत मन
माहीं।।
तब रघुपति सब सखा बोलाए। आइ सबन्हि सादर सिरु
नाए।।1।।

उन लोगों को अपने घर भूल ही गये।] जगत् की तो बात ही क्या] उन्हें स्वप्न में भी घरकी सुध (याद) नहीं आती, जैसे संतोंके मनमें दूसरों से द्रोह करनेकी बात कभी नहीं आती। तब श्रीरघुनाथजीने सब सखाओंको बुलाया। सबने आकर आदर सहित सिर नवाया।।1।।

परम प्रीति समीप बैठारे। भगत सुखद मृदु बचन उचारे।।
तुम्ह अति कीन्हि मोरि सेवकाई। मुख पर केहिं बिधि करौं
बड़ाई।।2।।

बड़े ही प्रेम से श्रीरामजीने उनको पास बैठाया और भक्तों को सुख देने वाले कोमल बचन कहे- तुमलोगोंने मेरी बड़ी सेवा की है। मुँहपर किस प्रकार तुम्हारी बड़ाई करूँ ?।।2।।

ताते मोहि तुम्ह अति प्रिय लागे। मम हित लागि भवन सुख त्यागे।।
अनुज राज संपति बैदेही। देह गेह परिवार सनेही।।3।।

मेरे हित के लिये तुम लोगों ने घरों को तथा सब प्रकारके सुखों को त्याग दिया। इससे तुम मुझे अत्यन्त ही प्रिय लग रहे हो। छोटे भाई, राज्य, सम्पत्ति, जानकी, अपना शरीर, घर, कुटुम्ब और मित्र-।।3।।

सब मम प्रिय नहिं तुम्हहि समाना। मृषा न कहउँ मोर यह बाना।।
सब कें प्रिय सेवक यह नीती। मोरें अधिक दास पर प्रीती।।4।।

ये सभी मुझे प्रिय हैं, परन्तु तुम्हारे समान नहीं। मैं झूठ नहीं कहता, यह मेरा स्वभाव है। सेवक सभीको प्यारे लगते हैं, यह नीति (नियम) हैं। [पर] मेरा तो दासपर [स्वभाविक ही] विशेष प्रेम है।।4।।

दो.-अब गृह जाहु सखा सब भजेहु मोहि दृढ़ नेम।
सदा सर्बगत सर्बहित जानि करेहु अति प्रेम।।16।।

हे सखागण ! अब सब लोग घर जाओ; वहाँ दृढ़ नियम से मुझे भजते रहना मुझे सदा सर्वव्यापक और सबका हित करनेवाला जानकर अत्यन्त प्रेम करना है।।16।।

चौ.-सुनि प्रभु बचन मगन सब भए। को हम कहाँ बिसरि तन गए।।
एकटक रहे जोरि कर आगे। सकहिं न कछु कहि अति अनुरागे।।1।।

प्रभु के वचन सुनकर सब-के-सब प्रेममग्न हो गये। हम कौन है और कहाँ है ? यह देह की सुध भी भूल गयी। वे प्रभु के सामने हाथ जोड़कर टकटकी लगाये देखते ही रह गये। अत्यन्त प्रेमके कारण कुछ कह नहीं सकते।।1।।

परम प्रेम तिन्ह कर प्रभु देखा। कहा बिबिधि बिधि ग्यान बिसेषा।।
प्रभु सन्मुख कछु कहन न पारहिं। पुनि पुनि चरन सरोज निहारहिं।।2।।

प्रभुने उनका अत्यन्त प्रेम देखा, [तब] उन्हें अनेकों प्रकारसे विशेष ज्ञान का उपदेश दिया। प्रभु के सम्मुख वे कुछ नहीं कह सकते। बार-बार प्रभुके चरणकमलोंको देखते हैं।।2।।

तब प्रभु भूषन बसन मगाए। नाना रंग अनूप सुहाए।।
सुग्रीवहि प्रथमहिं पहिराए। बसन भरत निज हाथ बनाए।।3।।

तब प्रभु ने अनेकों रंग के अनुपम और सुन्दर गहने-कपड़े मँगवाये। सबसे पहले भरतजी ने अपने हाथ से सँवारकर सुग्रीवको वस्त्राभूषण पहनाये।।3।।

प्रभु प्रेरित लछिमन पहिराए। लंकापति रघुपति मन भाए।।
अंगद बैठ रहा नहिं डोला। प्रीति देखि प्रभु ताहि न बोला।।4।।

फिर प्रभु की प्रेरणा से लक्ष्मणजीने विभीषणको गहने-कपड़े पहनाये, जो श्रीरघुनाथजी के मनको बहुत ही अच्छे लगे। अंगद बैठे ही रहे, वे अपनी जगह से हिलेतक नहीं। उनका उत्कट प्रेम देखकर प्रभुने उनको नहीं बुलाया।।4।।

दो.-जामवंत नीलादि सब पहिराए रघुनाथ।
हियँ धरि राम रूप सब चले नाइ पद माथ।।17क।।

जाम्बवान् और नील आदि सबको श्रीरघुनाथजीने स्वयं भूषण-वस्त्र पहनाये। वे सब अपने हृदयों में श्रीरामचन्द्रजीके रूपको धारण करके उनके चरणोंमें मस्तक नवाकर चले।।17(क)।।

तब अंगद उठि नाइ सिरु सजल नयन कर जोरि।
अति बिनीत बोलेउ बचन मनहुँ प्रेम रस बोरि।।17ख।।

तब अंगद उठकर सिर नवाकर, नेत्रोंमें जल भरकर और हाथ जोड़कर अत्यन्त विनम्र तथा मानो प्रेमके रसमें डुबोये हुए (मधुर) वचन बोले।।17(ख)।।

चौ.-सुनु सर्बग्य कृपा सुख सिंधो। दीन दयाकर आरत बंधो।
मरती बेर नाथ मोहि बाली। गयउ तुम्हारेहि कोछें घाली।।1।।

हे सर्वज्ञ ! हे कृपा और सुख के समुद्र ! हे दीनों पर दया करनेवाले ! हे आर्तोंके बन्धु ! सुनिये। हे नाथ ! मरते समय मेरा पिता बालि मुझे आपकी ही गोदमें डाल गया था !।।1।।

असरन सरन बिरदु संभारी। मोहि जनि तजहु भगत हितकारी।।
मोरें तुम्ह प्रभु गुर पितु माता। जाउँ कहाँ तजि पद
जलजाता।।2।।

अतः हे भक्तों के हितकारी ! अपना अशरण-शरण विरद (बाना) याद करके मुझे त्यागिये नहीं। मेरे तो स्वामी, गुरु, माता सब कुछ आप ही हैं आपके चरणकमलोंको छोड़कर मैं कहाँ जाऊँ ?।।2।।

तुम्हहि बिचारि कहहु नरनाहा। प्रभु तजि भवन काज मम काहा।।
बालक ग्यान बुद्धि बल हीना। राखहु सरन नाथ जन दीना।।3।।

हे महाराज ! आप ही विचार कर कहिये, प्रभु (आप) को छोड़कर घर में मेरा क्या काम है ? हे नाथ ! इस ज्ञान, बुद्धि और बल से हीन बालक तथा दीन सेवकको शरणमें रखिये।।3।।

नीचि टहल गृह कै सब करिहउँ। पद पंकज बिलोकि भव तरिहउँ।।
अस कहि चरन परेउ प्रभु पाहीं। अब जनि नाथ कहहु गृह जाही।।4।।

मैं घर की सब नीची-से-नीची सेवा करूँगा और आपके चरणकमलोंको देख-देखकर भवसागरसे तर जाऊँगा। ऐसा कहकर वे श्रीरामजीके चरणोंमें गिर पड़े [और बोले-] हे प्रभो !

मेरी रक्षा कीजिये ! हे नाथ ! अब यह न कहिये कि तू घर जा।।4।।

दो.-अंगद बचन बिनीत सुनि रघुपति करुना सींव।।
प्रभु उठाइ उर लायउ सजल नयन राजीव।।18क।।

अंगद के विनम्र वचन सुनकर करुणाकी सीमा प्रभु श्रीरघुनाथजीने उनको उठाकर हृदय से लगा लिया। प्रभुके नेत्रकमलोंमें [प्रेमाश्रुओंका] जल भर आया।।18(क)।।

निज उर माल बसन मनि बालितनय पहिराइ।।
बिदा कीन्हि भगवान तब बहु प्रकार समुझाइ।।18ख।।

तब भगवान् ने अपने हृदय की माला, वस्त्र और मणि (रत्नों के आभूषण) बालि-पुत्र अंगद को पहनाकर और बहुत प्रकार से समझाकर उनकी बिदाई की।।18(ख)।।

चौ.-भरत अनुज सौमित्रि समेता। पठवन चले भगत कृत चेता।।
अंगद हृदयँ प्रेम नहिं थोरा। फिरि फिरि चितव राम कीं ओरा।।1।।

भक्त की करनी को याद करके भरतजी छोटे भाई शत्रुघ्नजी और लक्ष्मणजी सहित उनको पहुँचाने चले। अंगदके हृदय में थोड़ा प्रेम नहीं है (अर्थात् बहुत अधिक प्रेम है)। वे फिर-फिर कर श्रीरामजी की ओर देखते हैं।।1।।

बार बार कर दंड प्रनामा। मन अस रहन कहहिं मोहि रामा।।
राम बिलोकनि बोलनि चलनी। सुमिरि सुमिरि सोचत हँसि मिलनी।।2।।

और बार-बार दण्डवत् प्रणाम करते हैं। मन में ऐसा आता है कि श्रीरामजी मुझे रहने को कह दें। वे श्रीरामजी के देखने की, बोलने की, चलने की तथा हँसकर मिलने की रीति को याद कर-करके सोचते हैं (दुखी होते हैं)।।2।।

प्रभु रुख देखि बिनय बहु भाषी। चलेउ हृदयँ पद पंकज राखी।।
अति आदर सब कपि पहुँचाए। भाइन्ह सहित भरत पुनि आए।।3।।

किन्तु प्रभुका रुख देखकर, बहुत-से विनय-वचन कहकर तथा हृदय में चरण-कमलों को रखकर वे चले। अत्यन्त आदर के साथ सब वानरों को पहुँचाकर भाइयोंसहित भरतजी लौट आये।।3।।

तब सुग्रीव चरन गहि नाना। भाँति बिनय कीन्हे हनुमाना।।
दिन दस करि रघुपति पद सेवा। पुनि तव चरन देखिहउँ देवा।।4।।

तब हनुमान जी ने सुग्रीव के चरण पकड़कर अनेक प्रकार से विनती की और कहा- हे देव ! दस (कुछ) दिन श्रीरघुनाथजीकी चरणसेवा करके फिर मैं आकर आपके चरणों के दर्शन करूँगा।।4।।

पुन्य पुंज तुम्ह पवनकुमारा। सेवहु जाइ कृपा आगारा।।
अस कहि कपिसब चले तुरंता। अंगद कहइ सुनहु हनुमंता।।5।।

[सुग्रीव ने कहा-] हे पवनकुमार ! तुम पुण्य की राशि हो [जो भगवान् ने तुमको अपनी सेवा में रख लिया]। जाकर कृपाधाम श्रीरामजी की सेवा करो ! सब वानर ऐसा कहकर तुरंत चल पड़े। अंगद ने कहा- हे हनुमान् ! सुनो-।।5।।

दो.-कहेहु दंडवत प्रभु सैं तुम्हहि कहउँ कर जोरि।
बार बार रघुनायकहि सुरति कराएहु मोरि।।19क।।

मैं तुमसे हाथ जोड़कर कहता हूँ, प्रभु मेरी दण्डवत् कहना और श्रीरघुनाथजी को बार-बार मेरी याद कराते रहना।।19(क)।।

अस कहि चलेउ बालिसुत फिरि आयउ हनुमंत।
तासु प्रीति प्रभु सन कही मगन भए भगवंत।।19ख।।

ऐसा कहकर बालि पुत्र अंगद चले, तब हनुमान् जी लौट आये और आकर प्रभु से उनका प्रेम वर्णन किया। उसे सुनकर भगवान् प्रेममग्न हो गये।।19(ख)।।

कुलिसहु चाहि कठोर अति कोमल कुसुमहु चाहि।
चित्त खगेस राम कर समुझि परइ कहु काहि।।19ग।।

[काकभुशुण्डिजी कहते हैं-] हे गरुड़जी ! श्रीरामजीका चित्त वज्र से भी अत्यन्त कठोर और फूल से भी अत्यन्त कोमल है। तब कहिये, वह किसकी समझ में आ सकता है ?।।19(ग)।।

चौ.-पुनि कृपाल लियो बोलि निषादा। दीन्हे भूषन बसन प्रसादा।।
जाहु भवन मम सुमिरन करेहू। मन क्रम बचन धर्म अनुसरेहू।।1।।

फिर कृपालु श्रीरामजीने निषादराजको बुला लिया और उसे भूषण, वस्त्र प्रसादमें दिये। [फिर कहा-] अब तुम भी घर जाओ,

वहाँ मेरा स्मरण करते रहना और मन, वचन तथा धर्म के अनुसार चलना।।1।

तुम्ह मम सखा भरत सम भ्राता। सदा रहेहु पुर आवत जाता।।
बचन सुनत उपजा सुख भारी। परेउ चरन भरि लोचन
बारी।।2।।

तुम मेरे मित्र हो और भरत के समान भाई हो। अयोध्या में सदा आते-जाते रहना। यह वचन सुनते ही उसको भारी सुख उत्पन्न हुआ। नेत्रोंमें [आनन्द और प्रेमके आँसुओंका] जल भरकर वह चरणों में गिर पड़ा।।2।।

चरन नलिन उर धरि गृह आवा। प्रभु सुभाउ परिजनन्हि
सुनावा।।
रघुपति चरित देखि पुरबासी। पुनि पुनि कहहिं धन्य
सुखरासी।।3।।

फिर भगवान् के चरणकमलों को हृदय में रखकर वह घर आया और आकर अपने कुटुम्बियों को उसने प्रभु का स्वभाव सुनाया। श्रीरघुनाथजी का यह चरित्र देखकर अवध-पुरवासी बार-बार कहते हैं कि सुख की राशि श्रीरामचन्द्रजी धन्य हैं।।3।।

गीताप्रेस गोरखपुर

राम राज बैठें त्रैलोका। हरषित भए गए सब सोका।।
बयरु न कर काहू सन कोई। राम प्रताप बिषमता सोई।।4।।

श्रीरामचन्द्रजीके राज्य पर प्रतिष्ठित होनेपर तीनों लोक हर्षित हो गये, उनके सारे शोक जाते रहे। कोई किसीसे वैर नहीं करता। श्रीरामचन्द्रजीके प्रतापसे सबकी बिषमता (आन्तरिक भेदभाव) मिट गयी।।4।।

दो.-बरनाश्रम निज निज धरम निरत बेद पथ लोग।
चलहिं सदा पावहिं सुखहि नहिं भय सोक न रोग।।20।।

सब लोग अपने-अपने वर्ण और आश्रम के अनुकूल धर्म में तत्पर हुए सदा वेद-मार्गपर चलते हैं और सुख पाते हैं। उन्हें न किसी बात का भय है, न शोक है और न कोई रोग ही सतात है।।20।।

चौ.-दैहिक दैविक भौतिक तापा। राम राज नहिं काहुहि ब्यापा।।
सब नर करहिं परस्पर प्रीति। चलहिं स्वधर्म निरत श्रुति नीति।।1।।

राम-राज्य में दैहिक, दैविक और भौतिक ताप किसी को नहीं व्यापते। सब मनुष्य परस्पर प्रेम करते हैं और है में बतायी हुई

नीति (मर्यादा) में तत्पर रहकर अपने-अपने धर्म का पालन करते हैं।।1।।

चारिउ चरन धर्म जग माहीं। पूरि रहा सपनेहुँ अघ नाहीं।।
राम भगति रत नर अरु नारी। सकल परम गति के अधिकारी।।2।।

धर्म अपने चारों चरणों (सत्य शौच दया और दान) से जगत् में परिपूर्ण हो रहा है; स्वप्नमें भी कहीं पाप नहीं हैं। पुरुष और स्त्री सभी रामभक्ति के परायण हैं और सभी परमगति (मोक्ष) के अधिकारी है।।2।।

अल्पमृत्यु नहिं कवनिउ पीरा। सब सुंदर सब बिरुज सरीरा।।
नहिं दरिद्र कोउ दुखी न दीना। नहिं कोउ अबुध न लच्छनहीना।।3।।

छोटी अवस्था में मृत्यु नहीं होती, न किसी को कोई पीड़ा होती है। सभी के शरीर सुन्दर और नीरोग हैं। न कोई दरिद्र है, न दुखी है न और न दीन ही है। न कोई मूर्ख है और न शुभ लक्षणोंसे हीन ही है।।3।।

गीताप्रेस गोरखपुर

सब निर्दंभ धर्मरत पुनी। नर अरु नारि चतुर सब गुनी।।
सब गुनग्य पंडित सब ग्यानी। सब कृतग्य नहिं कपट सयानी।।4।।

सभी दम्भरहित हैं, धर्मपरायण हैं और पुण्यात्मा हैं। पुरुष और स्त्री सभी चतुर और गुणवान् हैं। सभी गुणों का आदर करनेवाले और पण्डित हैं तथा सभी ज्ञानी हैं। सभी कृतज्ञ (दूसरेके किये हुए उपकार को माननेवाले) हैं, कपट-चतुराई (धूर्तता) किसीमें नहीं हैं।।4।।

दो.-राम राज नभगेस सुनु सचराचर जग माहिं।
काल कर्म सुभाव गुन कृत दुख काहुहि नाहिं।।21।।

[काकभुशुण्डिजी कहते हैं-] हे पक्षिराज गरुड़जी ! सुनिये ! श्रीरामजी के राज्य में जड़, चेतन सारे जगत् में काल, कर्म, स्वभाव और गुणों से उत्पन्न हुए दुःख किसी को भी नहीं होते (अर्थात् इनके बन्धन में कोई नहीं है)।।21।।

चौ.-भूमि सप्त सागर मेखला। एक भूप रघुपति कोसला।।
भुवन अनेक रोम प्रति जासू। यह प्रभुता कछु बहुत न तासू।।1।।

अयोध्या में श्रीरघुनाथजी सात समुद्रों की मेखला (करधनी) वाली पृथ्वीके एकमात्र राजा हैं। जिनके एक-एक रोम में अनेकों ब्रह्माण्ड हैं, उनके लिये सात द्वीपों की यह प्रभुता कुछ अधिक नहीं है।।1।।

सो महिमा समुझत प्रभु केरी। यह बरनत हीनता घनेरी।।
सोउ महिमा खगेस जिन्ह जानी। फिरि एहिं चरित तिन्हहुँ रति मानी।।2।।

बल्कि प्रभु की उस महिमाको समझ लेनेपर तो यह कहने में [कि वे सात समुद्रों से घिरी हुई सप्तद्वीपमयी पृथ्वीके एकच्छत्र सम्राट हैं] उनकी बड़ी हीनता होती है। परंतु हे गरुड़जी ! जिन्होंने वह महिमा जान भी ली है, वे भी फिर इस लीलामें बड़ा प्रेम मानते हैं।।2।।

सोउ जाने कर फल यह लीला। कहहिं महा मुनिबर दमसीला।।
राम राज कर सुख संपदा। बरनि न सकइ फनीस सारदा।।3।।

क्योंकि उस महिमा को जानने का फल यह लीला (इस लीला का अनुभव) ही है, इन्द्रियों का दमन करने वाले श्रेष्ठ महामुनि ऐसा कहते हैं। रामराज्यकी सुखसम्पत्ति का वर्णन शेषजी और सरस्वती जी भी नहीं कर सकते।।3।।

सब उदार सब पर उपकारी। बिप्र चरन सेवक नर नारी।।
एकनारि ब्रत रत सब झारी। ते मन बच क्रम पति हितकारी।।4।।

सभी नर-नारी उदार हैं, सभी परोपकारी हैं और सभी ब्राह्मणों के चरणों के सेवक हैं। सभी पुरुषमात्र एकपत्नीव्रती हैं। इसी प्रकार स्त्रियाँ भी मन, वचन और कर्मसे पति का हित करनेवाली हैं।।4।।

दो.-दंड जतिन्ह कर भेद जहँ नर्तक नृत्य समाज।
जीतहु मनहि सुनिअ अस रामचंद्र कें राज।।22।।

श्रीरामचन्द्रजी के राज्य में दण्ड केवल संन्यासियों के हाथों में है और भेद नाचनेवालों के नृत्यसमाज में है और जीतो शब्द केवल मनके जीतने के लिये ही सुनायी पड़ता है (अर्थात् राजनीति में शत्रुओं को जीतने तथा चोर-डाकुओं आदि को दमन करने के लिये साम, दान, दण्ड और भेद-ये चार उपाय किये जाते हैं। रामराज्य में कोई शत्रु है ही नहीं इसलिये जीतो शब्द केवल मनके जीतने के लिये कहा जाता है। कोई अपराध करता ही नहीं, इसलिये दण्ड किसीको नहीं होता; दण्ड शब्द केवल संन्यासियों के हाथमें रहनेवाले दण्डके लिये ही रह गया है तथा सभी अनुकूल होने के

कारण भेदनीति की आवश्यकता ही नहीं रह गयी; भेद शब्द केवल सुर-तालके भेद के लिये ही कामों में आता है।)।।22।।

चौ.-फूलहिं फरहिं सदा तरु कारन। रहहिं एक सँग गज पंचानन।।
खग मृग सहज बयरु बिसराई। सबन्हि परस्पर प्रीति बढ़ाई।।1।।

वनों में वृक्ष सदा फूलते और फलते हैं। हाथी और सिंह [वैर भूलकर] एक साथ रहते हैं। पक्षी और पशु सभीने स्वभाविक वैर भुलाकर आपसमें प्रेम बढ़ा लिया है।।1।।

कूजहिं खग मृग नाना बृंदा। अभय चरहिं बन करहिं अनंदा।
सीतल सुरभि पवन बह मंदा। गुंजत अलि लै चलि मकरंदा।।2।।

पक्षी कूजते (मीठी बोली बोलते) हैं, भाँति-भाँतिके पशुओंके समूह वनमें निर्भय विचरते और आनन्द करते हैं। शीतल, मन्द, सुगन्धित पवन चलता रहता है। भौंरे पुष्पोंका रस लेकर चलते हुए गुंजार करते जाते हैं।।2।।

लता बिटप मागें मधु चवहीं। मनभावतो धेनु पय स्रवहीं।।
ससि संपन्न सदा रह धरनी। त्रेताँ भइ कृतजुग कै करनी।।3।।

बेलें और वृक्ष माँगने से ही मधु (मकरन्द) टपका देते हैं। गौएँ मनचाहा दूध देती हैं। धरती सदा खेती से भरी रहती है। त्रेता में सत्ययुगकी करनी (स्थिति) हो गयी।।3।।

प्रगटी गिरिन्ह बिबिधि मनि खानी। जगदातमा भूप जग जानी।।
सरिता सकल बहहिं बर बारी। सीतल अमल स्वाद
सुखकारी।।4।।

समस्त जगत् के आत्मा भगवान् को जगत् का राजा जानकर पर्वतों ने अनेक प्रकार की मणियों की खाने प्रकट कर दीं। सब नदियाँ श्रेष्ठ, शीतल, निर्मल और सुखप्रद स्वादिष्ट जल बहने लगीं।।4।।

सागर निज मरजादाँ रहहीं। डारहिं रत्न तटन्हि नर लहहीं।।
सरसिज संकुल सकल तड़ागा। अति प्रसन्न दस दिसा
बिभागा।।5।।

समुद्र अपनी मर्यादा में रहते हैं। वे लहरों के द्वारा किनारों पर रत्न डाल देते हैं, जिन्हें मनुष्य पा जाते हैं। सब तालाब कमलों से परिपूर्ण हैं। दसों दिशाओं के विभाग (अर्थात् सभी प्रदेश) अत्यन्त प्रसन्न हैं।।5।।

गीताप्रेस गोरखपुर

दो.-बिधु महि पूर मयूखन्हि रबि तप जेतनेहि काज।
मागें बारिद देहिं जल रामचंद्र कें राज।।23।।

श्रीरामचन्द्रजीके राज्यमें चन्द्रमा अपनी [अमृतमयी] किरणोंसे पृथ्वीको पूर्ण कर देते हैं। सूर्य उतना ही तपते हैं जितने की आवश्यकता होती है और मेघ माँगने से [जब जहाँ जितना चाहिये उतना ही] जल देते हैं।।23।।

चौ.-कोटिन्ह बाजिमेध प्रभु कीन्हे। दान अनेक द्विजन्ह कहँ दीन्हे।।
श्रुति पथ पालक धर्म धुरंधर। गुनातीत अरु भोग पुरंदर।।1।।

प्रभु श्रीरामजी ने करोड़ों अश्वमेध यज्ञ किये और ब्राह्मणों को अनेकों दान दिये। श्रीरामचन्द्रजी वेदमार्ग के पालनेवाले, धर्मकी धुरीको धारण करनेवाले, [प्रकृतिजन्य सत्त्व रज और तम] तीनों गुणों से अतीत और भोगों (ऐश्वर्य) में इन्द्र के समान हैं।।1।।

पति अनुकूल सदा रह सीता। सोभा खानि सुसील बिनीता।।
जानति कृपासिंधु प्रभुताई। सेवति चरन कमल मन लाई।।2।।

शोभा की खान, सुशील और विनम्र सीताजी सदा पति के अनुकूल रहती हैं। वे कृपासागर श्रीरामजीकी प्रभुता (महिमा) को जानती हैं और मन लगाकर उनके चरणकमलों की सेवा करती हैं।।2।।

जद्यपि गृहँ सेवक सेवकिनी। बिपुल सदा सेवा बिधि गुनी।।
निज कर गृह परिचरजा करई। रामचंद्र आयसु अनुसरई।।3।।

यद्यपि घर में बहुत-से (अपार) दास और दासियाँ हैं और वे सभी सेवा की विधिमें कुशल हैं, तथापि [स्वामीकी सेवा का महत्त्व जाननेवाली] श्रीसीताजी घरकी सब सेवा अपने ही हाथों से करती है और श्रीरामचन्द्रजीकी आज्ञाका अनुसरण करती हैं।।3।।

जेहि बिधि कृपासिंधु सुख मानइ। सोइ कर श्री सेवा बिधि जानइ।।
कौसल्यादि सासु गृह माहीं। सेवइ सबन्हि मान मद नाहीं।।4।।

कृपासागर श्रीरामचन्द्रजी जिस प्रकारसे सुख मानते हैं, श्रीजी वही करती हैं; क्योंकि वे सेवा की विधि को जाननेवाली हैं। घर में कौसल्या आदि सभी सासुओं की सीताजी सेवा करती हैं, उन्हें किसी बात का अभिमान और मद नहीं है।।4।।

उमा रमा ब्रह्मादि बंदिता। जगदंबा संततनिंदिता।।5।।

[शिवजी कहते हैं-] हे उमा ! जगज्जननी रमा (सीताजी) ब्रह्मा आदि देवताओं से वन्दित और सदा अनिन्दित (सर्वगुणसम्पन्न हैं।।5।।

दो.-जासु कृपा कटाच्छु सुर चाहत चितव न सोई।
राम पदारबिंद रति करति सुभावहि खोई।।24।।

देवता जिनका कृपा कटाक्ष चाहते हैं, परंतु वे उनकी ओर देखती भी नहीं, वे ही लक्ष्मीजी जानकीजी अपने [महामहिम] स्वभावको छोड़कर श्रीरामचन्द्रजी के चरणारविन्दमें प्रीति करती हैं।।24।।

चौ.-सेवहिं सानुकूल सब भाई। राम चरन रति अति अधिकाई।।
प्रभु मुख कमल बिलोकत रहहीं। कबहुँ कृपाल हमहि कछु कहहीं।।1।।

सब भाई अनुकूल रहकर उनकी सेवा करते हैं। श्रीरामचन्द्रजीके चरणों में उनकी अत्यन्त अधिक प्रीति है। वे सदा प्रभु का

मुखारविन्द ही देखते रहते हैं कि कृपाल श्रीरामजी कभी हमें कुछ सेवा करने को कहें।।1।।

राम करहिं भ्रातन्ह पर प्रीती। नाना भाँति सिखावहिं नीती।।
हरषित रहहिं नगर के लोगा। करहिं सकल सुर दुर्लभ भोगा।।2।।

श्रीरामचन्द्रजी भी भाइयों पर प्रेम करते हैं और उन्हें नाना प्रकारकी नीतियाँ सिखलाते हैं। नगर के लोग हर्षित होते रहते हैं और सब प्रकारके देवदुर्लभ (देवताओंको भी कठिनतासे प्राप्त होने योग्य) भोग भोगते हैं।।2।।

अहनिसि बिधिहि मनावत रहहीं। श्रीरघुबीर चरन रति चहहीं।।
दुइ सुत सुंदर सीताँ जाए। लव कुस बेद पुरान्ह गाए।।3।।

वे दिन रात ब्रह्मा जी को मानते रहते हैं और [उनसे] श्रीरघुवीरके चरणोंमें प्रीति चाहते हैं। सीताजी के लव और कुश-ये दो पुत्र उत्पन्न हुए, जिनका वेद पुराणों ने वर्णन किया है।।3।।

दोउ बिजई बिनई गुन मंदिर। हरि प्रतिबिंब मनहुँ अति सुंदर।।
दुइ दुइ सुत सब भ्रातन्ह केरे। भए रूप गुन सील घनेरे।।4।।

वे दोनों ही विजयी (विख्यात योद्धा), नम्र और गुणोंके धाम हैं और अत्यन्त सुन्दर हैं, मानो श्री हरि के प्रतिबिम्ब ही हों। दो-दो पुत्र सभी भाइयों के हुए, जो बड़े ही सुन्दर, गुणवान् और सुशील थे।।4।।

दो.-ग्यान गिरा गोतीत अज माया मन गुन पार।
सोइ सच्चिदानंद घन कर नर चरित उदार।।25।।

जो [बौद्धिक] ज्ञान, वाणी और इन्दियों से परे और अजन्मा हैं तथा माया, मन और गुणोंके परे हैं, वही सच्चिदादन्घन भगवान् श्रेष्ठ नर-लीला करते हैं।।25।।

चौ.-प्रातकाल सरजू करि मज्जन। बैठहिं सभाँ संग द्विज सज्जन।।
बेद पुरान बसिष्ट बखानहिं। सुनहिं राम जद्यपि जब जानहिं।।1।।

प्रातः काल सरयू में स्नान करके ब्राह्मणों और सज्जनोंके साथ सभा में बैठते हैं। वसिष्ठजी वेद और पुराणों की कथाएँ वर्णन करते हैं और श्रीरामजी सुनते हैं, यद्यपि वे सब जानते हैं।।1।।

अनुजन्ह संजुत भोजन करहीं। देखि सकल जननीं सुख भरहीं।।
भरत सत्रुहन दोनउ भाई। सहित पवनसुत उपबन जाई।।2।।

वे भाइयों को साथ लेकर भोजन करते हैं। उन्हें देखकर सभी माताएँ आनन्द से भर जाती है। भरतजी और शत्रुघ्नजी दोनों सहित हनुमान् जी सहित उपवनों में जाकर।।2।।

बूझहिं बैठि राम गुन गाहा। कह हनुमान सुमति अवगाहा।।
सुनत बिमल गुन अति सुख पावहिं। बहुरि बहुरि करि बिनय कहावहिं।।3।।

वहाँ बैठकर श्रीरामजी के गुणोंकी कथाएँ पूछते हैं और हनुमान् जी अपनी सुन्दर बुद्धिसे उन गुणोंमें गोता लगाकर उनका वर्णन करते हैं। श्रीरामचन्द्रजी के निर्मल गुणोंकोसुनकर दोनों भाई अत्यन्त सुख पाते हैं और विनय करके बार-बार कहलवाते हैं।।3।।

सब कें गृह गृह होहिं पुराना। राम चरित पावन बिधि नाना।।
नर अरु नारि राम गुन गानहिं। करहिं दिवस निसि जात न जानहिं।।4।।

सबके यहाँ घर-में पुराणों और अनेक प्रकार के पवित्र रामचरित्रों की कथा होती है। पुरुष और स्त्री सभी श्रीरामचन्द्रजी का गुणगान करते हैं और इस आनन्दमें दिन-रातका बीतना भी नहीं जान पाते।।4।।

दो.-अवधपुरी बासिन्ह कर सुख संपदा समाज।
सहस सेष नहिं कहि सकहिं जहँ नृप राम बिराज।।26।।

जहाँ भगवान् श्रीरामचन्द्रजी स्वयं राजा होकर विराजमान हैं, उस अवधपुरी के निवासियों के सुख-सम्पत्ति के सुमुदायका वर्णन हजारों शेषजी भी नहीं कर सकते।।26।।

चौ.-नारदादि सनकादि मुनीसा। दरसन लागि कोसलाधीसा।।
दिन प्रति सकल अजोध्या आवहिं। देखि नगरु बिरागु बिसरावहिं।।1।।

नारद आदि और सनक आदि मुनीश्वर सब कोसलराज श्रीरामजीके दर्शनके लिये प्रतिदिन अयोध्या आते हैं और उस [दिव्य] नगरको देखकर वैराग्य भुला देते हैं।।1।।

जातरूप मनि रचित अटारीं। नाना रंग रुचिर गच ढारीं।।
पुर चहुँ पास कोट अति सुंदर। रचे कँगूरा रंग रंग बर।।2।।

[दिव्य] स्वर्ण और रत्नों से भरी हुई अटारियाँ हैं। [मणि-रत्नोंकी] अनेक रंगोंकी सुन्दर ढली हुई फर्शे हैं। नगर के चारों ओर अत्यन्त

सुन्दर परकोटा बना है, जिसपर सुन्दर रंग-बिरंगे कँगूरे बने हैं।।2।।

नव ग्रह निकर अनीक बनाई। जनु घेरी अमरावति आई।।
महि बहु रंग रचित गच काँचा। जो बिलोकि मुनिबर मन नाचा।।3।।

मानो नवग्रहों ने बड़ी भारी सेना बनाकर अमरावती को आकर घेर लिया हो। पृथ्वी (सड़कों) पर अनेकों रंगों के (दिव्य) काँचों (रत्नों) की गच बनायी (ढाली) गयी है, जिसे देखकर श्रेष्ठ मुनियोंके भी मन नाच उठते हैं।।3।।

धवल धाम ऊपर नभ चुंबत। कलस मनहुँ रबि ससि दुति निंदत।।
बहु मनि रचित झरोखा भ्राजहिं। गृह गृह प्रति मनि दीप बिराजहिं।।4।।

उज्ज्वल महल ऊपर आकाशको चूम (छू) रहे हैं। महलों पर के कलश [अपने दिव्य प्रकाशसे] मानो सूर्य, चन्द्रमाके प्रकाशकी भी निन्दा (तिरस्कार) करते हैं। [महलोंमें] बहुत-सी मणियोंसे रचे हुए झरोखे सुशोभित हैं और घर-घरमें मणियोंके दीपक शोभा पा रहे हैं।।4।।

छं.-मनि दीप राजहिं भवन भ्राजहिं देहरीं बिद्रुम रची।
मनि खंभ भीति बिरंचि बिरची कनक मनि मरकत खची।।
सुंदर मनोहर मंदिरायत अजिर रुचिर फटिक रचे।
प्रति द्वार द्वार कपाट पुरट बनाइ बहु बज्रन्हि खचे।।

घरों में मणियों के दीपक शोभा दे रहे हैं। मूँगों की बनी हुई देहलियाँ चमक रही हैं। मणियों (रत्नों) के खम्भे हैं। मरकतमणियों (पन्नों) से जड़ी हुई सोने की दीवारें ऐसी सुन्दर हैं मानो ब्रह्मा ने खास तौर से बनायी हों। महल सुन्दर, मनोहर और विशाल हैं। उनमें सुन्दर स्फटिक के आँगन बने हैं। प्रत्येक द्वार पर बहुत-से खरादे हुए हीरों से जड़े हुए सोने के किवाड़ हैं।।

दो.-चारु चित्रसाला गृह गृह प्रति लिखे बनाइ।
राम चरित जे निरख मुनि ते मन लेहिं चोराइ।।27।।

घर-घर में सुन्दर चित्रशालाएँ हैं, जिनमें श्रीरामजी के चरित्र बड़ी सुन्दरता के साथ सँवार-कर अंकित किये हुए हैं। जिन्हें मुनि देखते हैं, तो वे उनके भी चित्त को चुरा लेते हैं।।27।।

चौ.-सुमन बाटिका सबहिं लगाईं। बिबिध भांति करि जतन बनाईं।।
लता ललित बहु जाति सुहाईं। फूलहिं सदा बसंत कि नाईं।।1।।

सभी लोगों ने भिन्न-भिन्न प्रकार की पुष्पोंकी वाटिकाएँ यत्न करके लगा रक्खी हैं, जिनमें बहुत जातियों की सुन्दर और ललित लताएँ सदा वसंतकी तरह फूलती रहती हैं।।1।।

गुंजत मधुकर मुखर मनोहर। मारुत त्रिबिधि सदा बह सुंदर।।
नाना खग बालकन्हि जिआए। बोलत मधुर उड़ात सुहाए।।2।।

भौंरें मनोहर स्वर से गुंजार करते हैं। सदा तीनों प्रकार की सुन्दर वायु बहती रहती है। बालकों ने बहुत-से पक्षी पाल रक्खे हैं, जो मधुर बोली बोलते हैं और उड़ने में सुन्दर लगते हैं।।2।।

मोर हंस सारस पारावत। भवननि पर शोभा अति पावत।।
जहँ तहँ देखहिं निज परिछाहीं। बहु बिधि कूजहिं नृत्य कराहीं।।3।।

मोर, हंस, सारस और कबूतर घरोंके ऊपर बड़ी ही शोभा पाते हैं। वे पक्षी [मणियोंकी दीवारोंमें और छतमें] जहाँ-तहाँ अपनी परछाई देखकर [वहाँ दूसरे पक्षी समझकर] बहुत प्रकारसे मधुर बोली बोलते और नृत्य करते हैं।।3।।

गीताप्रेस गोरखपुर

सुक सारिका पढ़ावहिं बालक। कहहु राम रघुपति जनपालक।।
राज दुआर सकल बिधि चारु। बीथीं चौहट रुचिर बजारू।।4।।

बालक तोता-मैना को पढ़ाते हैं कि कहो-राम रघुपति जनपालक। राजद्वार सब प्रकारसे सुन्दर है। गलियाँ, चौराहे और बाजार सभी सुन्दर हैं।।4।।

छं.-बाजार रुचिर न बनइ बरनत बस्तु बिनु गथ पाइए।
जहँ भूप रमानिवास तहँ की संपदा किमि गाइए।।
बैठे बजाज सराफ बनिक अनेक मनहुँ कुबेर ते।
सब सुखी सब सच्चरित सुंदर नारि नर सिसु जरठ जे।।

सुन्दर बाजार है, जो वर्णन नहीं करते बनता; वहाँ वस्तुएँ बिना ही मूल्य मिलती हैं। जहाँ स्वयं लक्ष्मीपति राजा हों, वहाँ की सम्पत्ति का वर्णन कैसे किया जाय ? बजाज (कपड़ेका व्यापार करनेवाले), सराफ (रुपये-पैसेका लेन-देन करनेवाले) आदि वणिक् (व्यापारी) बैठे हुए ऐसे जान पड़ते हैं मानो अनेक कुबेर हों। स्त्री, पुरुष, बच्चे और बूढ़े जो भी हैं, सभी सुखी, सदाचारी और सुन्दर हैं।

दो.-उत्तर दिसि सरजू बह निर्मल जल गंभीर।
बाँधे घाट मनोहर स्वल्प पंक नहिं तीर।।28।।

नगर के उत्तर दिशा में सरयूजी बह रही हैं, जिनका जल निर्मल और गहरा है। मनोहर घाँट बँधे हुए हैं, किनारे पर जरा भी कीचड़ नहीं है।।28।।

चौ.-दूरि फराक रुचिर सो घाटा। जहँ जल पिअहिं बाजि गज ठाटा।।
पनिघट परम मनोहर नाना। तहाँ न पुरुष करहिं अस्नाना।1।।

अलग कुछ दूरी पर वह सुन्दर घाट है, जहाँ घोड़ों और हाथियों के ठट्ट-के-ठट्ट जल पिया करते हैं। पानी भरने के लिये बहुत-से [जनाने] घाट हैं, जो बड़े ही मनोहर हैं; वहाँ पुरुष स्नान नहीं करते।।1।।

राजघाट सब बिधि सुंदर बर। मज्जहिं तहाँ बरन चारिउ नर।।
तीर तीर देवन्ह के मंदिर। चहुँ दिसि तिन्ह के उपवन सुंदर।।2।।

राजघाट सब प्रकारसे सुन्दर और श्रेष्ठ हैं, जहाँ चारों वर्णोंके पुरुष स्नान करते हैं। सरयूजीके किनारे-किनारे देवताओंके मन्दिर हैं, जिनके चारों ओर सुन्दर उपवन (बगीचे) हैं।।2।।

कहुँ कहुँ सरिता तीर उदासी। बसहिं ग्यान रत मुनि सन्यासी।।
तीर तीर तुलसिका सुहाई। बृंद बृंद बहु मुनिन्ह लगाई।।3।।

नदी के किनारे कहीं कहीं विरक्त और ज्ञानपरायण मुनि और संन्यासी निवास करते हैं। सरयूजीके किनारे-किनारे सुंदर तुलसी के झुंड-के-झुंड बहुत से पेड़ मुनियों ने लगा रक्खे हैं।।3।।

पुर सोभा कछु बरनि न जाई। बाहेर नगर परम रुचिराई।।
देखत पुरी अखिल अघ भागा। बन उपबन बापिका तड़ागा।।4।।

नगर की शोभा तो कुछ कही नहीं जाती। नगर के बाहर भी परम सुन्दरता है। श्रीअयोध्यापुरी के दर्शन करते ही सम्पूर्ण पाप भाग जाते हैं। [वहाँ] वन उपवन बावलियाँ और तालाब सुशोभित हैं।।4।।

गीताप्रेस गोरखपुर

छं.-बापीं तड़ाग अनूप कूप मनोहरायत सोहहिं।
सोपान सुंदर नीर निर्मल देखि सुर मुनि मोहहिं।।
बहु रंग कंज अनेक खग कूजहिं मधुप गुंजारहीं।।
आराम रम्य पिकादि खग रव जनु पथिक हंकारहीं।।

अनुपम बावलियाँ, तालाब और मनोहर तथा विशाल कुएँ शोभा दे रहे हैं, जिनकी सुन्दर [रत्नोंकी] सीढ़ियाँ और निर्मल जल देखकर देवता और मुनितक मोहित हो जाते हैं। [तालाबोंमें] अनेक रंगोंके कमल खिल रहे हैं, अनेकों पक्षी पूज रहे हैं और भौंरे गुंजार कर रहे हैं। [परम] रमणीय बगीचे कोयल आदि पक्षियोंकी [सुन्दर बोली से] मानो राह चलनेवालों को बुला रहे हैं।।

दो.-रमानाथ जहँ राजा सो पुर बरनि कि जाइ।
अनिमादिक सुख संपदा रहीं अवध सब छाइ।।29।।

स्वयं लक्ष्मीपति भगवान् जहाँ राजा हों, उस नगर का कहीं वर्णन किया जा सकता है ? अणिमा आदि आठों सिद्धियाँ और समस्त सुख-सम्पत्तियाँ अयोध्यामें छा रही हैं।।29।।

चौ.-जहँ तहँ नर रघुपति गुन गावहिं। बैठि परस्पर इहइ सिखावहिं।।
भजहु प्रनत प्रतिपालक रामहि। सोभा सील रूप गुन धामहि।।1।।

लोग जहाँ-तहाँ श्रीरघुनाथजी के गुण गाते हैं और बैठकर एक दूसरे को यही सीख देते हैं कि शरणागतका पालन करने वाले

गीताप्रेस गोरखपुर

श्रीरामजी को भजो; शोभा, शील, रूप और गुणोंके धाम श्रीरघुनाथजी को भजो।।1।।

जलज बिलोचन स्यामल गातहि। पलक नयन इव सेवक
त्रातहि।।
धृत सर रुचिर चाप तूनीरहि। संत कंज बन रबि रनधीरहि।।2।।

कमलनयन और साँवले शरीरवाले को भजो। पलक जिस प्रकार नेत्र की रक्षा करते हैं, उसी प्रकार अपने सेवकों की रक्षा करनेवालेको भजो। सुन्दर बाण, धनुष और तरकस धारण करनेवाले को भजो। संतरूपी कमलवनके [खिलानेके] लिये सूर्यरूप रणधीर श्रीरामजी को भजो।।2।।

काल कराल ब्याल खगराजहि। नमत राम अकाम ममता जहि।।
लोभ मोह मृगजूथ किरातहि। मनसिज करि हरि जन
सुखदातहि।।3।।

कालरूपी भयानक सर्पके भक्षण करनेवाले श्रीरामरूप गरुड़जीको भजो। निष्कामभावसे प्रणाम करते ही ममताका नाश करनेवाले श्रीरामरूप किरातको भजो। कामदेवरूपी हाथी के लिये सिंहरूप तथा सेवकोंको सुख देनेवाले श्रीरामजीको भजो।।3।।

संसय सोक निबिड़ तम भानुहि। दनुज गहन घन दहन कृसानुहि।।
जनकसुता समेत रघुबीरहि। कस न भजहु भंजन भव भीरहि।।4।।

संशय और शोकरूपी घने अन्ककार के नाश करनेवाले श्रीरामरूप सूर्यको भजो। राक्षसरूपी घने वनको जलाने वाले श्रीरामरूप अग्नि को भजो। जन्म-मृत्युके भय को नाश करनेवाले श्रीजानकीजीसमेत श्रीरघुवीर को क्यों नहीं भजते ?।।4।।

बहु बासना मसक हिम रासिहि। सदा एकरस अजद अबिनासिहि।।
मुनि रंजन भंजन महि भारहि। तुलसिदास के प्रभुहि उदारहि।।5।।

बहुत-सी वासनाओं रूपी मच्छरोंको नाश करनेवाले श्रीरामरूप हिमराशि (बर्फके ढेर) को भजो। नित्य एकरस, अजन्मा और अविनाशी श्रीरघुनाथजीको भजो। मुनियोंको आनन्द देनेवाले, पृथ्वी का भार उतारने वाले और तुलसीदास के उदार (दयालु) स्वामी श्रीरामजीको भजो।।5।।

दो.-एहि बिधि नगर नारि नर करहिं राम गुन गान।
सानुकूल सबह पर रहहिं संतत कृपानिधान।।30।।

इस प्रकार नगर के स्त्री-पुरुष श्रीरामजी का गुण-गान करते हैं और कृपानिधान श्रीरामजी सदा सबपर अत्यन्त प्रसन्न रहते हैं।।30।।

चौ.-जब ते राम प्रताप खगेसा। उदित भयउ अति प्रबल दिनेसा।।
पूरि प्रकास रहेउ तिहुँ लोका। बहुतेन्ह सुख बहुतन मन सोका।।1।।

[काकभुशुण्डिजी कहते हैं-] हे पक्षिराज गरुड़जी ! जबसे रामप्रतापरूपी अत्यन्त प्रचण्ड सूर्य उदित हुआ, तब से तीनों लोकों में पूर्ण प्रकाश भर गया है। इससे बहुतों को सुख और बहुतोंके मनमें शोक हुआ।।1।।

गीताप्रेस गोरखपुर

जिन्हहि सोक ते कहउँ बखानी। प्रथम अबिद्या निसा नसानी।।
अघ उलूक जहँ तहाँ लुकाने। काम क्रोध कैरव सकुचाने।।2।।

जिन-जिनके शोक हुआ, उन्हें मैं बखानकर कहता हूँ [सर्वत्र प्रकाश छा जाने से] पहले तो अविद्यारूपी रात्रि नष्ट हो गयी।

पापरूपी उल्लू जहाँ-तहाँ छिप गये और काम-क्रोधरूपी कुमुद मुँद गये।।2।।

बिबिध कर्म गुन काल सुभाऊ। ए चकोर सुख लहहिं न काऊ।।
मत्सर मान मोह मद चोरा। इन्ह कर हुनर न कवनिहुँ ओरा।।3।।

भाँति-भाँति के [बन्धनकारक] कर्म, गुण, काल और स्वभाव-ये चकोर हैं, जो [रामप्रतापरूपी सूर्यके प्रकाशमें] कभी सुख नहीं पाते। मत्सर (डाह) मान, मोह और मदरूपी जो चोर हैं, उनका हुनर (कला) भी किसी ओर नहीं चल पाता।।3।।

धरम तड़ाग ग्यान बिग्याना। ए पंकज बिकसे बिधि नाना।।
सुख संतोष बिराग बिबेका। बिगत सोक ए कोक अनेका।।4।।

धर्मरूपी तालाबों में ज्ञान, विज्ञान- ये अनेकों प्रकार के कमल खिल उठे। सुख, संतोष, वैराग्य और विवेक-ये अनेकों चकवे शोकरहित हो गये।।4।।

दो.-यह प्रताप रबि जाकें उर जब करइ प्रकास।
पछिले बाढ़िहिं प्रथम जे कहे ते पावहिं नास।।31।।

यह श्रीरामप्रतापरूपी सूर्य जिसके हृदय में जब प्रकाश करता है, तब जिनका वर्णन पीछे से किया गया है, वे (धर्म, ज्ञान, विज्ञान, सुख, संतोष, वैराग्य और विवेक) बढ़ जाते हैं और जिनका वर्णन पहले किया गया है, वे (अविद्या, पाप, काम, क्रोध, कर्म, काल, गुण, स्वभाव आदि) नाश को प्राप्त होते (नष्ट हो जाते) हैं।।31।।

चौ.-भ्रातन्ह सहित रामु एक बारा। संग परम प्रिय पवनकुमारा।।
सुंदर उपबन देखन गए। सब तरु कुसुमित पल्लव नए।।1।।

एक बार भाइयोंसहित श्रीरामचन्द्रजी परम प्रिय हनुमान् जी को साथ लेकर सुन्दर उपवन देखने गये। वहाँ के सब वृक्ष फूले हुए और नये पत्तोंसे युक्त थे।।1।।

जानि समय सनकादिक आए। तेज पुंज गुन सील सुहाए।।
ब्रह्मानंद सदा लयलीना। देखत बालक बहुकालीना।।2।।

सुअवसर जानकर सनकादि मुनि आये, जो तेजके पुंज सुन्दर गुण और शीलसे युक्त तथा सदा ब्रह्मानन्द में लवलीन रहते हैं। देखने में तो वे बालक लगते हैं; परंतु हैं बहुत समय के ।।2।।

रूप धरें जनु चारिउ बेदा। समदरसी मुनि बिगत बिभेदा।।
आसा बसन ब्यसन यह तिन्हहीं। रघुपति चरित होइ तहँ
सुनहीं।।3।।

मानो चारों वेद ही बालकरूप धारण किये हों। वे मुनि समदर्शी और भेदरहित हैं। दिशाएँ ही उनके वस्त्र हैं। उनके एक ही व्यसन है कि जहाँ श्रीरघुनाथजी की चरित्र-कथा होती है वहाँ जाकर वे उसे अवश्य सुनते हैं।।3।।

तहाँ रहे सनकादि भवानी। जहँ घटसंभव मुनिबर ग्यानी।।
राम कथा मुनिबर बहु बरनी। ग्यान जोनि पावक जिमि
अरनी।।4।।

[शिवजी कहते हैं-] हे भवानी ! सनकादि मुनि वहाँ गये थे (वहीं से चले आ रहे थे) जहाँ ज्ञानी मुनिश्रेष्ठ श्रीअगस्त्य जी रहते थे। श्रेष्ठ मुनि ने श्रीरामजी की बहुत-सी कथाएँ वर्णन की थीं, जो ज्ञान उत्पन्न करने में उसी प्रकार समर्थ हैं, जैसे अरणि लकड़ी से अग्नि उत्पन्न होती है।।4।।

दो.-देखि राम मुनि आवत हरषि दंड़वत कीन्ह।
स्वागत पूँछि पीत पट प्रभु बैठन कहँ दीन्ह।।32।।

सनकादि मुनियोंको आते देखकर श्रीरामचन्द्रजी ने हर्षित होकर दण्डवत् की और स्वागत (कुशल) पूछकर प्रभुने [उनके] बैठने के लिये अपना पीताम्बर बिछा दिया है।।32।।

चौ.-कीन्ह दंडवत तीनिउँ भाई। सहित पवनसुत सुख अधिकाई।।
मुनि रघुपति छबि अतुल बिलोकी। भए मगन मन सके न रोकी।।1।।

फिर हनुमान् जी सहित तीनों भाइयों ने दण्डवत् की, सबको बड़ा सुख हुआ। मुनि श्रीरघुनाथजी की अतुलनीय छवि देखकर उसीमें मग्न हो गये। वे मन को रोक न सके।।1।।

स्यामल गात सरोरुह लोचन। सुंदरता मंदिर भव मोचन।।
एकटक रहे निमेष न लावहिं। प्रभु कर जोरें सीस नवावहिं।।2।।

वे जन्म-मृत्यु [के चक्र] से छुड़ानेवाले, श्यामशरीर, कमलनयन, सुन्दरता के धाम श्रीरामजी को टकटकी लगाये देखते ही रह गये, पलक नहीं मारते। और प्रभु हाथ जोड़े सिर नवा रहे हैं।।2।।

तिन्ह कै दसा देखि रघुबीरा। स्रवत नयन जल पुलक सरीरा।।
कर गहि प्रभु मुनिबर बैठारे। परम मनोहर बचन उचारे।।3।।

उनकी [प्रेमविह्लल] दशा देखकर [उन्हीं की भाँति] श्रीरघुनाथजी के नेत्रों से भी [प्रेमाश्रुओंका] जल बहने लगा और शरीर पुलकित हो गया। तदनन्तर प्रभु ने हाथ पकड़कर श्रेष्ठ मुनियों को बैठाया और परम मनोहर वचन कहे-।।3।

आजु धन्य मैं सुनहु मुनीसा। तुम्हरें दरस जाहिं अघ खीसा।।
बड़े भाग पाइब सतसंगा। बिनहिं प्रयास होहिं भव भंगा।।4।।

हे मुनीश्वरों ! सुनिये, आज मैं धन्य हूँ। आपके दर्शनों ही से [सारे] पाप नष्ट हो जाते हैं। बड़े ही भाग्य से सत्संग की प्राप्ति होती है, जिससे बिना ही परिश्रम जन्म-मृत्यु का चक्र नष्ट हो जाता है।।4।।

दो.-संत संग अपबर्ग कर कामी भव कर पंथ।
कहहिं संत कबि कोबिद श्रुति पुरान सदग्रंथ।।33।।

संतका संग मोक्ष (भव-बन्धनसे छूटने) का और कामीका संग जन्म-मृत्युके बन्धनमें पड़ने का मार्ग है। संत, कवि और पण्डित तथा वेद-पुराण [आदि] सभी सद्ग्रन्थ ऐसा कहते हैं।।33।।

चौ.-सुनि प्रभु बचन हरषि मुनि चारी। पुलकित तन अस्तुति अनुसारी।।
जय भगवंत अनंत अनामय। अनघ अनेक एक करुनामय।।1।।

प्रभु के वचन सुनकर चारों मुनि हर्षित होकर, पुलकित शरीर से स्तुति करने लगे-हे भगवान् आपकी जय हो। आप अन्तरहित, पापरहित अनेक (सब रूपोंमें प्रकट), एक (अद्वितीय) और करुणामय हैं।।1।

जय निर्गुन जय जय गुन सागर। सुख मंदिर सुंदर अति नागर।।
जय इंदिरा रमन जय भूधर। अनुपम अज अनादि सोभाकर।।2।।

हे निर्गुण ! आपकी जय हो। हे गुणों के समुद्र! आपकी जय हो, जय हो। आप सुख के धाम [अत्यन्त] सुन्दर और अति चतुर हैं। है लक्ष्मीपति ! आपकी जय हो। हे पृथ्वी के धारण करनेवाले ! आपकी जय हो। आप उपमारहित अजन्मा अनादि और शोभाकी खान हैं।।2।।

ग्यान निधान अमान मानप्रद। पावन सुजस पुरान बेद बद।।
तग्य कृतम्य अग्यता भंजन। नाम अनेक अनाम निरंजन।।3।।

आप ज्ञान के भण्डार, [स्वयं] मानरहित और [दूसरों को] मान देनेवाले हैं। वेद और पुराण आपका पावन सुन्दर यश गाते हैं। आप तत्त्व के जाननेवाले, की हुई सेवा को मानने वाले और अज्ञान का नाश करने वाले हैं। हे निरंजन (मायारहित) ! आपके अनेकों (अनन्त) नाम हैं और कोई नाम नहीं है (अर्थात् आप सब नामों के परे हैं)।।3।।

सर्ब सर्बगत सर्ब उरालय। बससि सदा हम कहुँ परिपालय।।
द्वंद बिपति भव फंद बिभंजय। हृदि बसि राम काम मद गंजय।।4।।

आप सर्वरूप हैं, सबमें व्याप्त हैं और सब के हृदयरूपी घरमें सदा निवास करते हैं; [अतः] आप हमारा परिपालन कीजिये। [राग-द्वेष,अनुकूलता-प्रतिकूलता, जन्म-मृत्यु आदि] द्वन्द्व, विपत्ति और जन्म-मृत्यु के जाल को काट दीजिये। हे रामजी ! आप हमारे हृदय में बसकर काम और मद का नाश कर दीजिये।।4।।

दो.-परमानंद कृपायतन मन परिपूरन काम।
प्रेम भगति अनपायनी देहु हमहि श्रीराम।।34।।

आप परमानन्दस्वरूप कृपाके धाम और मनकी कामनाओंको परिपूर्ण करनेवाले हैं। हे श्रीरामजी ! हमको अपनी अविचल प्रेमा भक्ति दीजिये।।34।।

चौ.-देहु भगति रघुपति अति पावनि। त्रिबिधि ताप भव दाप नसावनि।
प्रनत काम सुरधेनु कलपतरु। होइ प्रसन्न दीजै प्रभु यह बरु।।1।।

हे रघुनाथजी ! आप हमें अपनी अत्यन्त पवित्र करनेवाली और तीनों प्रकार के तापों और जन्म-मरणके क्लेशों का नाश करनेवाली भक्ति दीजिये। हे शरणागतोंकी कामना पूर्ण करने के लिये कामधेनु और कल्पवृक्ष रूप प्रभो ! प्रसन्न होकर हमें यही वर दीजिये।।1।।

भव बारिधि कुंभज रघुनायक। सेवत सुलभ सकल सुख दायक।।
मन संभव दारुन दुख दारय। दीनबंधु समता बिस्तारय।।2।।

हे रघुनाथजी ! आप जन्म-मृत्युरूप समुद्र को सोखने के लिये अगस्त्य मुनिके समान हैं। आप सेवा करने में सुलभ हैं तथा सब सुखों के देनेवाले हैं हे दीनबन्धों ! मन से उत्पन्य दारुण दुःखोंका नाश कीजिये और [हममें] समदृष्टि का विस्तार कीजिये।।2।।

आस त्रास इरिषादि निवारक। बिनय बिबेक बिरति बिस्तारक।।
भूप मौलि मनि मंडन धरनी। देहि भगति संसृति सरि तरनी।।3।।

आप]विषयोंकी] आशा, भय और ईर्ष्या आदि के निवारण करनेवाले हैं तथा विनय, विवेक और वैराग्य विस्तार करनेवाले हैं। हे राजाओं के शिरोमणि एवं पृथ्वी के भूषण श्रीरामजी ! संसृति (जन्म-मृत्युके प्रवाह) रूपी नदीके लिये नौकारूप अपनी भक्ति प्रदान कीजिये।।3।।

मुनि मन मानस हंस निरंतर। चरन कमल बंदित संकर।।
रघुकुल केतु सेतु श्रुति रच्छक। काल करम सुभाउ गुन भच्छक।।4।।

हे मुनियों के मन रूपी मानसरोवर में निरन्तर निवास करनेवाले हंस ! आपके चरणकमल ब्रह्माजी और शिवजी द्वारा वन्दित हैं। आप रघुकुलके केतु, वेदमर्यादा के राक्षक और काल कर्म स्वभाव तथा गुण [रूप बन्धनों] के भक्षक (नाशक) हैं।।4।।

तारन तरन हरन सब दूषन। तुलसिदास प्रभु त्रिभुवन भूषन।।5।।

आप तरन-तारन (स्वयं तरे हुए और दूसरोंको तारनेवाले) तथा अपना सब दोषोंको हरनेवाले हैं। तीनों लोकोंके विभूषण आप ही तुलसीदास के स्वामी हैं।।5।।

दो.-बार बार अस्तुति करि प्रेम सहित सिरु नाइ।
ब्रह्म भवन सनकादिक गे अति अभीष्ट बर पाइ।।35।।

प्रेमसहित बार-बार स्तुति करके और सिर नवाकर तथा अपना अत्यन्त मनचाहा वर पाकर सनकादि मुनि ब्रह्मलोकको गये।।35।।

चौ.-सनकादिक बिधि लोक सिधाए। भ्रातन्ह राम चरन सिरु नाए।।
पूछत प्रभुहि सकल सकुचाहीं। चितवहिं सब मारुतसुत पाहीं।।1।।

सनकादि मुनि ब्रह्मलोकको चले गये। तब भाइयोंने श्रीरामजीके चरणोंमें सिर नवाया। सब भाई प्रभु से पूछते सकुचाते हैं। [इसलिये] सब हनुमान् जी की ओर देख रहे हैं।।1।।

सुनी चहहिं प्रभु मुख कै बानी। जो सुनि होई सकल भ्रम हानी।।
अंतरजामी प्रभु सभ जाना। बूझत कहहु काह हनुमाना।।2।।

वे प्रभु के श्रीमुख की वाणी सुनना चाहते हैं, जिसे सुनकर सारे भ्रमों का नाश हो जाता है। अन्तर्यामी प्रभु सब जान गये और पूछने लगे-कहो, हनुमान् ! क्या बात है ?।।2।।

जोरि पानि कह तब हनुमंता। सुनहु दीनदयाल भगवंता।।
नाथ भरत कछु पूँछन चहहीं। प्रस्न करत मन सकुचत अहहीं।।3।।

तब हनुमान जी हाथ जोड़कर बोले-हे दीनदयालु भगवान् ! सुनिये। हे नाथ ! भरतजी कुछ पूछना चाहते हैं, पर प्रश्न करते मनमें सकुचा रहे हैं।।3।।

तुम्ह जानहु कपि मोर सुभाऊ। भरतहि मोहि कछु अंतर काऊ।।
सुनि प्रभु बचन भरत गहे चरना। सुनहु नाथ प्रनतारति हरना।।4।।

गीताप्रेस गोरखपुर

[भगवान् ने कहा-] हनुमान् ! तुम तो मेरा स्वभाव जानते ही हो। भरत के और मेरे बीचमें कभी भी कोई अन्तर (भेद) है ? प्रभुके वचन सुनकर भरतजीने उनके चरण पकड़ लिये [और कहा-] हे नाथ ! हे शरणागतके दुःखोंको हरनेवाले ! सुनिये।।4।।

दो.-नाथ न मोहि संदेह कछु सपनेहुँ सोक न मोह।
केवल कृपा तुम्हारिहि कृपानंद संदोह।।36।।

हे नाथ ! न तो कुछ सन्देह है और न स्वप्नमें भी शोक और मोह है। हे कृपा और आनन्दके समूह ! यह केवल आपकी ही कृपाका फल है।।36।।

चौ.-करउँ कृपानिधि एक ढिठाई। मैं सेवक तुम्ह जन सुखदाई।।
संतन्ह कै महिमा रघुराई। बहु बिधि बेद पुरानन्ह गाई।।1।।

तथापि हे कृपानिधान ! मैं आपसे एक धृष्टता करता हूँ। मैं सेवक हूँ और आप सेवक को सुख देनेवाले हैं [इससे मेरी धृष्टताको क्षमा कीजिये और मेरे प्रश्न का उत्तर देकर सुख दीजिये]। हे रघुनाथजी ! वेद पुराणों ने संतों की महिमा बहुत प्रकार से गायी है।।1।।

श्रीमुख तुम्ह पुनि कीन्हि बड़ाई। तिन्ह पर प्रभुहि प्रीति अधिकाई।।
सुना चहउँ प्रभु तिन्ह कर लच्छन। कृपासिंधु गुन ग्यान बिचच्छन।।2।।

आपने भी अपने श्रीमुखसे उनकी बड़ाई की है और उनपर प्रभु (आप) का प्रेम भी बहुत है। हे प्रभो ! मैं उनके लक्षण सुनना

चाहता हूँ। आप कृपाके समुद्र हैं और गुण तथा ज्ञानमें अत्यन्त निपुण हैं।।2।।

संत असंत भेद बिलगाई। प्रनतपाल मोहि कहहु बुझाई।।
संतन्ह के लच्छन सुनु भ्राता। अगनित श्रुति पुरान बिख्याता।।3।।

हे शरणागत का पालन करनेवाले ! संत और असंत के भेद अलग-अलग करके मुझको समाझकर कहिये। [श्रीरामजीने कहा-] हे भाई ! संतों के लक्षण (गुण) असंख्य है, जो वेद और पुराणों में प्रसिद्ध हैं।।3।।

संत असंतन्हि कै असि करनी। जिमि कुठार चंदन आचरनी।।
काटइ परसु मलय सुनु भाई। निज गुन देई सुगंध बसाई।।4।।

संत और असंतों की करनी ऐसी है जैसे कुल्हाड़ी और चन्दन का आचरण होता है। हे भाई ! सुनो, कुल्हाड़ी चन्दन को काटती है [क्योंकि उसका स्वभाव या काम ही वृक्षोंको काटना है]; किन्तु चन्दन [अपने् स्वभाववश] अपना गुण देकर उसे (काटने वाली कुल्हाड़ीको) सुगन्ध से सुवासित कर देता है।।4।।

दो.-ताते सुर सीसन्ह चढ़त जग बल्लभ श्रीखंड।
अनल दाहि पीटत घनहिं परसु बदन यह दंड।।37।।

इसी गुणके कारण चन्दन देवताओं के सिरों पर चढ़ता है और जगत् का प्रिय हो रहा है और कुल्हाड़ी के मुखको यह दण्ड मिलता है कि उसको आग में जलाकर फिर घन से पीटते हैं।।37।।

चौ.-बिषय अलंपट सील गुनाकर। पर दुख दुख सुख सुख देखे पर।।
सम अभूतरिपु बिमद बिरागी। लोभामरष हरष भय त्यागी।।1।

संत विषयों में लंपट (लिप्त) नहीं होते, शील और सद्गुणोंकी खान होते है। उन्हें पराया दुःख देखकर दुःख और सुख देखकर सुख होता है। वे [सबमें, सर्वत्र, सब समय] समता रखते हैं, उनके मन कोई उनका शत्रु नहीं है, वे मदसे रहित और वैराग्यवान् होते हैं तथा लोभ, क्रोध हर्ष और भयका त्याग किये हुए रहते हैं।।1।।

कोमलचित दीनन्ह पर दया। मन बच क्रम मम भगति अयामा।।
सबहि मानप्रद आपु अमानी। भरत प्रान सम मम ते प्रानी।।2।।

उनका चित्त बड़ा कोमल होता है। वे दीनोंपर दया करते हैं तथा मन, वचन और कर्मसे मेरी निष्कपट (विशुद्ध) भक्ति करते हैं। सबको सम्मान देते हैं, पर स्वयं मानरहित होते हैं। हे भरत ! वे प्राणी (संतजन) मेरे प्राणोंके समान हैं।।2।।

बिगत काम मम नाम परायन। सांति बिरति बिनती मुदितायन।।
सीतलता सरलता मयत्री। द्विज पद प्रीति धर्म जनयत्री।।3।।

उनको कोई कामना नहीं होती। वे मेरे नाम के परायण होते हैं। शान्ति, वैराग्य, विनय और प्रसन्नताके घर होते हैं। उनमें शीतलता, सरलता, सबके प्रति मित्रभाव और ब्राह्मणके चरणोंमें प्रीति होती है, जो धर्मों को उत्पन्न करनेवाली है।।3।।

ए सब लच्छन बसहिं जासु उर। जानेहु तात संत संतत फुर।।
सम दम नियम नीति नहिं डोलहिं। परुष बचन कबहूँ नहिं बोलहिं।।4।।

हे तात ! ये सब लक्षण जिसके हृदय में बसते हों, उसको सदा सच्चा संत जानना। जो शम (मनके निग्रह), दम, (इन्द्रियों के निग्रह), नियम और नीति से कभी विचलित नहीं होते और मुख से कभी कठोर वचन नहीं बोलते;।।4।।

गीताप्रेस गोरखपुर

दो.-निंदा अस्तुति उभय सम ममता मम पद कंज।
ते सज्जन मम प्रानप्रिय गुन मंदिर सुख पुंज।।38।।

जिन्हें निन्दा और स्तुति (बड़ाई) दोनों समान हैं और मेरे चरणकमलों में जिनकी ममता है, वे गुणों के धाम और सुख की राशि संतजन मुझे प्राणों के समान प्रिय हैं।।38।।

चौ.-सुनहु असंतन्ह केर सुभाऊ। भूलेहुँ संगति करिअ न काऊ।।
तिंन्ह कर संग सदा दुखदाई। जिमि कपिलहि धालइ हरहाई।।1।।

अब असंतों (दुष्टों) का स्वभाव सुनो; कभी भूलकर भी उनकी संगति नहीं करनी चाहिये। उनका संग सदा दुःख देनेवाला होता है। जैसे हरहाई (बुरी जातिकी) गाय कपिला (सीधी और दुधार) गायको अपने संग से नष्ट कर डालती है।।1।

खलन्ह हृदयँ अति ताप बिसेषी। जरहिं सदा पर संपति देखी।।
जहँ कहुँ निंदा सुनहिं पराई। हरषहिं मनहुँ परी निधि पाई।।2।।

दुष्टों के हृदय में बहुत अधिक संताप रहता है। वे पराई सम्पत्ति (सुख) देखकर सदा जलते रहते हैं। वे जहाँ कहीं दूसरे की निन्दा

सुन पाते हैं, वहाँ ऐसे हर्षित होते हैं मानो रास्तेमें पड़ी निधि (खजाना) पा ली हो।।2।।

काम क्रोध मद लोभ परायन। निर्दय कपटी कुटिल मलायन।।
बयरु अकारन सब काहू सों। जो कर हित अनहित ताहू सों।।3।।

वे काम क्रोध, मद और लोभ के परायण तथा निर्दयी, कपटी, कुटिल और पापों के घर होते हैं। वे बिना ही कारण सब किसी से वैर किया करते हैं। जो भलाई करता है उसके साथ भी बुराई करते हैं।।3।।

झूठइ लेना झूठइ देना। झूठइ भोजन झूठ चबेना।।
बोलहिं मधुर बचन जिमि मोरा। खाइ महा अहि हृदय कठोरा।।4।।

उनका झूठा ही लेना और झूठा ही देना होता है। झूठा ही भोजन होता है और झूठा ही चबेना होता है। (अर्थात् वे लेने-देनेके व्यवहारमें झूठका आश्रय लेकर दूसरो का हक मार लेते हैं अथा झूठी डींग हाँका करते हैं कि हमने लाखों रुपये ले लिये, करोड़ों का दान कर दिया। इसी प्रकार खाते है चनेकी रोटी और कहते हैं कि आज खूब माल खाकर आये। अथवा चबेना चबाकर रह जाते हैं और कहते हैं हमें बढ़िया भोजन से वैराग्य है, इत्यादि। मतलब

यह कि वे सभी बातों में झूठ ही बोला करते हैं)। जैसे मोर [बहुत मीठा बोलता है, परन्तु उस] का हृदय ऐसा कठोर होता है कि वह महान् विषैले साँपोंको भी खा जाता है। वैसे ही वे भी ऊपर से मीठे वचन बोलते हैं [परन्तु हृदय के बड़े ही निर्दयी होते हैं।।4।।

दो.-पर द्रोही पर दार रत पर धन पर अपबाद।
ते नर पाँवर पापमय देह धरें मनुजाद।।39।।

वे दूसरों से द्रोह करते हैं और परायी स्त्री पराये धन तथा परायी निन्दा में आसक्त रहते हैं। वे पामर और पापमय मनुष्य नर-शरीर धारण किये हुए राक्षस ही हैं।।39।।

चौ.-लोभइ ओढ़न लोभइ डासन। सिस्रोदर पर जमपुर त्रास न।।
काहू की जौं सुनहिं बड़ाई। स्वास लेहिं जनु जूड़ी आई।।1।।

लोभ ही उनका ओढ़ना और लोभ ही बिछौना होता है (अर्थात् लोभही से सदा घिरे हुए रहते हैं)। वे पशुओं के समान आहार और मैथुनके ही परायण होते हैं, उन्हें यम पुर का भय नहीं लगता। यदि किसीकी बड़ाई सुन पाते हैं, तो वे ऐसी [दुःखभरी] साँस लेते हैं, मानो जूड़ी आ गयी हो।।1।।

जब कहू कै देखहिं बिपती। सुखी भए मानहुँ जग नृपती।।
स्वारथ रत परिवार बिरोधी। लंपट काम लोभ अति क्रोधी।।2।।

और जब किसीकी विपत्ति देखते हैं, तब ऐसे सुखी होते हैं मानो जगत् भर के राजा हो गये हों। वे स्वार्थपरायण, परिवाखालोंके विरोधी काम और लोभके कारण लंपट और अत्यन्त क्रोधी होते हैं।।2।।

मातु पिता गुर बिप्र मानहिं। आपु गए अरु धालहिं आनहिं।।
करहिं मोह बस द्रोह परावा। संत संग हरि कथा न भावा।।3।।

वे माता, पिता, गुरु और ब्राह्मण किसी को नहीं मानते। आप तो नष्ट हुए ही रहते हैं, [साथ ही अपने संगसे] दूसरोंको भी नष्ट करते हैं। मोहवश दूसरोंसे द्रोह करते हैं। उन्हें संतोंका संग अच्छा लगता है, न भगवान् की कथा ही सुहाती है।।3।।

अवगुन सिंधु मंदमति कामी। बेद बिदूषक परधन स्वामी।।
बिप्र द्रोह पर द्रोह बिसेषा। दंभ कपट जियँ धरें सुबेषा।।4।।

वे अवगुणों के समुद्र, मन्दबुद्धि, कामी (रागयुक्त), वेदोंके निन्दक और जबर्दस्ती पराये धनके स्वामी (लूटनेवाले) होते हैं। वे दूसरों से द्रोह तो करते ही हैं; परन्तु ब्राह्मण-द्रोह विशेषतासे करते हैं। उनके हृदय में दम्भ और कपट भरा रहता है, परन्तु वे [ऊपरसे] सुन्दर वेष धारण किये रहते हैं।।4।।

दो.-ऐसे अधम मनुज खल कृतजुग त्रेताँ नाहिं।
द्वापर कछुक बृंद बहु होइहहिं कलिजुग माहिं।।40।।

ऐसे नीच और दुष्ट मनुष्य सत्ययुग और त्रेता में नहीं होते द्वापर में थोड़े-से होगें और कलियुगमें तो इनके झुंड-के-झुंड होंगे।।40।।

चौ.-पर हित सरिस धर्म नहिं भाई। पर पीड़ा सम नहिं अधमाई।।
निर्नय सकल पुरान बेद कर। कहेउँ तात जानहिं कोबिद नर।।1।।

गीताप्रेस गोरखपुर

हे भाई ! दूसरों की भलाई के समान कोई धर्म नहीं है और दूसरों को दुःख पहुँचाने के समान कोई नीचता (पाप) नहीं है। हे तात ! समस्त पुराणों और वेदोंका यह निर्णय (निश्चित सिद्धांत) मैंने तुमसे कहा है, इस बातको पण्डित लोग जानते हैं।।1।।

नर सरीर धरि जे पर पीरा। करहिं ते सहहिं महा भव भीरा।।
करहिं मोह बस नर अघ नाना। स्वारथ रत परलोक नसाना।।2।।

मनुष्य का शरीर धारण करके जो लोग दूसरोंको दुःख पहुँचाते हैं, उनको जन्म-मृत्यु के महान् संकट सहने पड़ते हैं। मनुष्य मोहवश स्वार्थपरायण होकर अनेकों पाप करते हैं, इसी से उनका परलोक नष्ट हुआ रहता है।।2।।

कालरूप तिन्ह कहँ मैं भ्राता। सुभ अरु असुभ कर्म फल दाता।।
अस बिचारि जे परम सयाने। भजहिं मोहि संसृत दुख जाने।।3।।

हे भाई ! मैं उनके लिये कालरूप (भयंकर) हूँ और उनके अच्छे और बुरे कर्मों का [यथायोग्य] फल देनेवाला हूँ ! ऐसा विचार कर जो लोग परम चतुर हैं, वे संसार [के प्रवाह] को दुःखरूप जानकर मुझे ही भजते हैं।।3।।

त्यागहिं कर्म सुभासुभ दायक। भजहिं मोहि सुर नर मुनि नायकू।।
संत असंतन्ह के गुन भाषे। ते न परहिं भव जिन्ह लखि राखे।।4।।

इसी से वे शुभ और अशुभ फल देनेवाले कर्मों को त्याग कर देवता, मनुष्य और मुनियों के नायक मुझको भजते हैं। [इस प्रकार] मैंने संतों और असंतोंके गुण कहे। जिन लोगों ने इन गुणोंको समझ रक्खा है, वे जन्म-मरण के चक्कर में नहीं पड़ते ।।4।।

दो.-सुनहु तात माया कृत गुन अरु दोष अनेक।।
गुन यह उभय न देखिअहिं देखिअ सो अबिबेक।।41।।

हे तात ! सुनो, माया से ही रचे हुए अनेक (सब) गुण और दोष हैं (इनकी कोई वास्तविक सत्ता नहीं है)। गुण (विवेक) इसी में हैं कि दोनों ही न देखे जायँ, इन्हें देखना यही अविवेक है।।41।।

चौ.-श्रीमुख बचन सुनत सब भाई। हरषे प्रेम न हृदयँ समाई।।
करहिं बिनय अति बारहिं बारा। हनूमान हियँ हरष अपारा।।1।।

भगवान् के श्रीमुख से ये वचन सुनकर सब भाई हर्षित हो गये। प्रेम उनके हृदय में समाता नहीं। वे बार-बार विनती करते हैं। विशेषकर हनुमान् जी के हृदय में अपार हर्ष है।।1।।

गीताप्रेस गोरखपुर

पुनि रघुपति निज मंदिर गए। एहि बिधि चरित करत नित नए।।
बार बार नारद मुनि आवहिं। चरित पुनीत राम के गावहिं।।2।।

तदनन्तर श्रीरामचन्द्रजी अपने महलको गये। इस प्रकार वे नित्य नयी लीला करते हैं। नारद मुनि अयोध्या में बार-बार आते हैं और आकर श्रीरामजी के पवित्र चरित्र गाते हैं।।2।।

नित नव चरित देखि मुनि जाहीं। ब्रह्मलोक सब कथा कहाहीं।।
सुनि बिरंचि अतिसय सुख मानहिं। पुनि पुनि तात करहु गुन गानहिं।।3।।

मुनि यहाँ से नित्य नये-नये चरित्र देखकर जाते हैं और ब्रह्मलोक में जाकर सब कथा कहते हैं। ब्रह्माजी सुनकर अत्यन्त सुख मानते हैं [और कहते हैं-] हे तात ! बार-बार श्रीरामजीके गुणोंका गान करो।।3।।

सनकादिक नारदहि सराहहिं। जद्यपि ब्रह्म निरत मुनि आहहिं।।
सुनि गुन गान समाधि बिसारी। सादर सुनहिं परम अधिकारी।।4।।

सनकादि मुनि नारद जी सराहना करते हैं। यद्यपि वे (सनकादि) मुनि ब्रह्मनिष्ठ हैं, परन्तु श्रीरामजीका गुणगान सुनकर वे भी

गीताप्रेस गोरखपुर

अपनी ब्रह्मसमाधिको भूल जाते हैं और आदरपूर्वक उसे सुनते हैं। वे [रामकथा सुननेके] श्रेष्ठ अधिकारी हैं।।4।।

दो.-जीवनमुक्त ब्रह्मपर चरित सुनहिं तजि ध्यान।।
जे हरि कथाँ न करहिं रति तिन्ह के हिय पाषान।।42।।

सनकादि मुनि-जैसे जीवन्मुक्त और ब्रह्मनिष्ठ पुरुष भी ध्यान (ब्रह्मसमाधि) छोड़कर श्रीरामजीके चरित्र सुनते हैं। यह जानकर कर भी जो श्रीहरि की कथा से प्रेम नहीं करते, उनके हृदय [सचमुच ही] पत्थर [के समान] हैं।।42।।

चौ.-एक बार रघुनाथ बोलाए। गुर द्विज पुरबासी सब आए।।
बैठे गुर मुनि अरु द्विज सज्जन। बोले बचन भगत भव भंजन।।1।।

एक बार श्रीरघुनाथजीके बुलाये हुए गुरु वसिष्ठजी, ब्राह्मण और अन्य सब नगरनिवासी सभामें आये। जब गुरु, मुनि, ब्राह्मण तथा अन्य सब सज्जन यथा योग्य बैठ गये, तब भक्तोंके जन्म-मरणको मिटानेवाले श्रीरामजी वचन बोले-।।1।।

सुनहु सकल पुरजन मम बानी। कहउँ न कुछ ममता उर आनी।।
नहिं अनीति नहिं कछु प्रभुताई। सुनहु करहु जो तुम्हहि
सोहाई।।2।।

हे समस्त नगर निवासियों ! मेरी बात सुनिये। यह बात मैं हृदय में कुछ ममता लाकर नहीं कहता हूँ। न अनीति की बात ही करता हूँ और न इससे कुछ प्रभुता ही है इसलिये [संकोच और भय छोड़कर ध्यान देकर] मेरी बातों को सुन लो और [फिर] यदि तुम्हें अच्छी लगे, तो उनके अनुसार करो !।।2।।

सोइ सेवक प्रियतम मम सोई। मम अनुसासन मानै जोई।।
जौं अनीति कछु भाषौं भाई। तौ मोहि बरजहु भय बिसराई।।3।।

वही मेरा सेवक है और वही प्रियतम है, जो मेरी आज्ञा माने। हे भाई ! यदि मैं कुछ अनीति की बात कहूँ तो भय भुलाकर (बेखटके) मुझे रोक देना।।3।।

बड़े भाग मानुष तनु पावा। सुर दुर्लभ सब ग्रंथहि गावा।।
साधन धाम मोच्छ कर द्वारा। पाइ न जेहिं परलोक सँवारा।।4।।

बड़े भाग्य से यह मनुष्य-शरीर मिला है। सब ग्रन्थों ने यही कहा है कि यह शरीर देवताओं को भी दुर्लभ है (कठिनतासे मिलता

है)। यह साधन का धाम और मोक्ष का दरवाजा है। इसे पाकर भी जिसने परलोक न बना लिया,।।4।।

दो.-सो परत्र दुख पावइ सिर धुनि धुनि पछिताइ।
कालहि कर्महि ईस्वरहि मिथ्या दोस लगाइ।।43।।

वह परलोक में दुःख पाता है, सिर पीट-पीटकर पछताता है तथा [अपना दोष न समझकर] काल पर, कर्म पर और ईश्वरपर मिथ्या दोष लगाता है।।43।।

चौ.-एहि तन कर फल बिषय न भाई। स्वर्गउ स्वल्प अंत दुखदाई।।
नर तनु पाइ बिषयँ मन देहीं। पलटि सुधा ते सठ बिष लेहीं।।1।।

हे भाई ! इस शरीर को प्राप्त होने का फल विषयभोग नहीं है। [इस जगत् के भोगों की तो बात ही क्या] स्वर्ग का भोग भी बहुत थोड़ा है और अन्त में दुःख देने वाला है। अतः जो लोग मनुष्य शरीर पाकर विषयों में मन लगा देते हैं, वे मूर्ख अमृत को बदलकर विष ले लेते हैं।।1।।

ताहि कबहुँ भल कहइ न कोई। गुंजा ग्रहइ परस मनि खोई।।
आकर चारि लच्छ चौरासी। जोनि भ्रमत यह जिव अबिनासी।।2।।

जो पारसमणि को खोकर बदलेमें घुँघची ले लेता है, उसको कभी कोई भला (बुद्धिमान्) नहीं कहता। यह अविनाशी जीव [अण्डज, स्वेदज, जरायुज और उद्भिज्ज] चार खानों और चौरासी लाख योनियों में चक्कर लगाता रहता है।।2।।

फिरत सदा माया कर प्रेरा। काल कर्म सुभाव गुन घेरा।।
कबहुँक करि करुना नर देही। देत ईस बिनु हेतु सनेही।।3।।

माया की प्रेरणा से काल, कर्म, स्वभाव और गुण से घिरा हुआ (इनके वशमें हुआ) यह सदा भटकता रहता है। बिना ही कारण स्नेह करनेवाले ईश्वर कभी विरले ही दया करके इसे मनुष्यका शरीर देते हैं।।3।।

नर तनु भव बारिधि कहुँ बेरो। सन्मुख मरुत अनुग्रह मेरो।।
करनधार सद्गुर दृढ़ नावा। दुर्लभ साज सुलभ करि पावा।।4।।

यह मनुष्य का शरीर भवसागर [से तारने] के लिये (जहाज) है। मेरी कृपा ही अनुकूल वायु है। सद्गुरु इस मजबूत जहाज के कर्णधार (खेनेवाले) हैं। इस प्रकार दुर्लभ (कठिनतासे मिलनेवाले) साधन सुलभ होकर (भगवत्कृपासे सहज ही) उसे प्राप्त हो गये हैं,।।4।।

दो.-जो न तरै भव सागर नर समाज अस पाइ।
सो कृत निंदक मंदमति आत्माहन गति जाइ।।44।।

जो मनुष्य ऐसे साधन पाकर भी भवसागर से न तरे, वह कृतघ्न और मन्द-बुद्धि है और आत्महत्या करनेवाले की गति को प्राप्त होता है।।44।।

चौ.-जौं परलोक इहाँ सुख चहहू। सुनि मम बचन हृदयँ दृढ़ गहहू।।
सुलभ सुखद मारग यह भाई। भगति मोरि पुरान श्रुति गाई।।1।।

यदि परलोक में और [यहाँ दोनों] सुख जगह चाहते हो, तो मेरे वचन सुनकर उन्हें हृदय में दृढ़तासे पकड़ रक्खो। हे भाई ! यह मेरी भक्ति का मार्ग सुलभ और सुखदायक है, पुराणों और वदोंने इसे गाया है।।1।।

गीताप्रेस गोरखपुर

ग्यान अगम प्रत्यूह अनेका। साधन कठिन न मन कहुँ टेका।।
करत कष्ट बहु पावइ कोऊ। भक्ति हीन मोहि प्रिय नहिं सोऊ।।2।।

ज्ञान अगम (दुर्गम) है, [और] उसकी प्राप्ति में अनेकों विघ्न हैं। उसका साधन कठिन है और उसमें मनके लिये कोई आधार नहीं है। बहुत कष्ट करनेपर कोई उसे पा भी लेता है, तो वह भी भक्तिरहित होनेसे मुझको प्रिय नहीं होता।।2।।

भक्ति सुतंत्र सकल सुख खानी। बिनु सतसंग न पावहिं प्रानी।।
पुन्य पुंज बिनु मिलहिं संता। सतसंगति संसृति कर अंता।।3।।

भक्ति स्वतंत्र है और सब सुखों की खान है। परन्तु सत्संग (संतोके संग) के बिना प्राणी इसे नहीं पा सकते। और पुण्यसमूहके बिना संत नहीं मिलते। सत्संगति ही संसृति (जन्म-मरणके चक्र) का अन्त करती है।।3।।

पुन्य एक जग महुँ नहिं दूजा। मन क्रम बचन बिप्र पद पूजा।।
सानुकूल तेहि पर मुनि देवा। जो तजि कपटु करइ द्विज सेवा।।4।।

जगत् में पुण्य एक ही है, [उसके समान] दूसरा नहीं। वह है-मन, कर्म और वचन से ब्राह्मणों के चरणोंकी पूजा करना। जो कपटका त्याग करके ब्राह्मणों की सेवा करता है उस पर मुनि और देवता प्रसन्न रहते हैं।।4।।

दो.-औरउ एक गुपुत मत सबहि कहउँ कर जोरि।
संकर भजन बिना नर भगति न पावइ मोरि।।45।।

और भी एक गुप्त मत है, मैं सबसे हाथ जोड़कर कहता हूँ कि शंकरजी के भजन बिना मनुष्य मेरी भक्ति नहीं पाता।।45।।

चौ.-कहहु भगति पथ कवन प्रयासा। जोग न मख जप तप उपवासा।।
सरल सुभाव न मन कुटिलाई। जथा लाभ संतोष सदाई।।1।।

कहो तो, भक्तिमार्गमें कौन-सा परिश्रम है ? इसमें न योगकी आवश्यकता है, न यज्ञ जप तप और उपवास की ! [यहाँ इतना ही आवश्यक है कि] सरल स्वभाव हो, मनमें कुटिलता न हो जो कुछ मिले उसीमें सदा सन्तोष रक्खे।।1।।

मोर दास कहाइ नर आसा। करइ तौ कहहु कहा बिस्वासा।।
बहुत कहउँ का कथा बढ़ाई। एहि आचरन बस्य मैं भाई।।2।।

मेरा दास कहलाकर यदि कोई मनुष्यों की आशा करता है, तो तुम्हीं कहो, उसका क्या विश्वास है ? (अर्थात् उसकी मुझपर आस्था बहुत ही निर्बल है)। बहुत बात बढ़ाकर क्या कहूँ ? भाइयों ! मैं तो इसी आचरण के वश में हूँ।।2।।

बैर न बिग्रह आस न त्रासा। सुखमय ताहि सदा सब आसा।।
अनारंभ अनिकेत अमानी।। अनघ अरोष दच्छ बिग्यानी।।3।।

न किसी से वैर करे, न लड़ाई-झगड़ा करे, न आशा रक्खे, न भय ही करे। उसके लिये सभी दिशाएँ सदा सुखमयी हैं। जो कोई भी आरम्भ (फलकी इच्छासे कर्म) नहीं करता, जिसका कोई अपना घर नहीं है (जिसकी घरमें ममता नहीं है); जो मानहीन पापहीन और क्रोधहीन है, जो [भक्ति करनेमें] निपुण और विज्ञानवान् है।।3।।

प्रीति सदा सज्जन संसर्गा। तृन सम बिषय स्वर्ग अपबर्गा।।
भगति पच्छ हठ नहिं सठताई। दुष्ट तर्क सब दूरि बहाई।।4।।

संतजनो के संसर्ग (सत्संग) से जिसे सदा प्रेम है, जिसके मन में सब विषय यहाँतक कि स्वर्ग और मुक्तितक [भक्तिके समाने] तृणके समान हैं, जो भक्तिके पक्षमें हठ करता है, पर [दूसरेके मतका खण्डन करनेकी] मूर्खता नहीं करता तथा जिसने सब कुतर्कों को दूर बहा दिया है।।4।।

दो.-मम गुन ग्राम नाम रत गत ममता मद मोह।
ता कर सुख सोइ जानइ परमानंद संदोह।।46।।

जो मेरे गुणसमूहों के और मेरे नाम के परायण है, एवं ममता, मद और मोहसे रहित है, उसका सुख वही जानता है, जो [परमात्मारूप परमानन्दराशिको प्राप्त है।।46।।

चौ.-सुनत सुधासम बचन राम के। गहे सबनि पद कृपाधाम के।।
जननि जनक गुर बंधु हमारे। कृपा निधान प्रान ते प्यारे।।1।।

श्रीरामचन्द्रजीके अमृत के समान वचन सुनकर सबने कृपाधामके चरण पकड़ लिये। [और कहा-] हे कृपानिधान ! आप हमारे माता, पिता, गुरु, भाई सब कुछ हैं और प्राणोंसे भी अधिक प्रिय हैं।।1।।

तनु धनु धाम राम हितकारी। सब बिधि तुम्ह प्रनतारति हारी।
असि सिख तुम्ह बिनु देइ न कोऊ। मातु पिता स्वारथ रत
ओऊ।।2।।

और हे शरणागत के दुःख हरने वाले रामजी ! आप ही हमारे शरीर, धन, घर-द्वार और सभी प्रकार के हित करनेवाले हैं। ऐसी शिक्षा आपके अतिरिक्त कोई नहीं दे सकता। माता-पिता [हितैषी हैं और शिक्षा नहीं देते] ।।2।।

हेतु रहित जग जुग उपकारी। तुम्ह तुम्हार सेवक असुरारी।।
स्वारथ मीत सकल जग माहीं। सपनेहुँ प्रभु परमारथ नाहीं।।3।।

हे असुरों के शत्रु ! जगत् में बिना हेतु के (निःस्वार्थ) उपकार करनेवाले तो दो ही हैं-एक आप, दूसरे आपके सेवक। जगत् में [शेष] सभी स्वार्थ मित्र हैं। हे प्रभो ! उनमें स्वप्न में भी परमार्थ का भाव नहीं है।।3।।

सब के बचन प्रेम रस साने। सुनि रघुनाथ हृदयँ हरषाने।।
निजद निज गृह गए आयसु पाई। बरनत प्रभु बतकही
सुहाई।।4।।

सबके प्रेमरस में सने हुए वचन सुनकर श्रीरघुनाथजी हृदय में हर्षित हुए। फिर आज्ञा पाकर सब प्रभु की सुन्दर बातचीत का वर्णन करते हुए अपने-अपने घर गये।।4।।

दो.-उमा अवधबासी नर नारि कृतारथ रूप।।
ब्रह्म सच्चिदानंद घन रघुनायक जहँ भूप।।47।।

[शिव जी कहते हैं-] हे उमा ! अयोध्यामें रहनेवाले पुरुष और स्त्री सभी कृतार्थस्व रूप हैं; जहाँ स्वयं सच्चिदानन्दघन ब्रह्म श्रीरघुनाथजी राजा हैं।।47।।

चौ.-एक बार बसिष्ट मुनि आए। जहाँ राम सुखधाम सुहाए।।
अति आदर रघुनायक कीन्हा। पद पखारि पादोदक लीन्हा।।1।।

एक बार मुनि वसिष्ठजी वहाँ आये जहाँ सुन्दर सुखके धाम श्रीरामजी थे। श्रीरघुनाथजी ने उनका बहुत ही आदर-सत्कार किया और उनके चरण धोकर चरणाममृत लिया।।1।।

राम सुनहु मुनि कह कर जोरी। कृपासिंधु बिनती कछु मोरी।।
देखि देखि आचरन तुम्हारा। होत मोह मम हिदय अपारा।।2।।

मुनिने हाथ जोड़कर कहा-हे कृपासागर श्रीरामजी! मेरी विनती सुनिये ! आपके आचरणों (मुनुष्योचित चरित्रों) को देख-देखकर मेरे हृदय में अपार मोह (भ्रम) होता है।।2।।

महिमा अमिति बेद नहिं जाना। मैं केहि भाँति कहउँ भगवाना।।
उपरोहित्य कर्म अति मंदा। बेद पुरान सुमृति कर निंदा।।3।।

हे भगवान् ! आपकी महिमा की सीमा नहीं है, उसे वेद भी नहीं जानते। फिर मैं किस प्रकार कह सकता हूँ ? पुरोहिति का कर्म (पेशा) बहुत ही नीचा है। वेद, पुराण और स्मृति सभी इसकी निन्दा करते हैं।।3।।

जब न लेउँ मैं तब बिधि मोही। कहा लाभ आगें सुत तोही।।
परमातमा ब्रह्म नर रूपा। होइहि रघुकुल भूषन भूपा।।4।।

जब मैं उसे (सूर्यवंश की पुरोहितीका काम) नहीं लेता था, तब ब्रह्माजीने मुझे कहा था-हे पुत्र ! इससे तुमको आगे चलकर बहुत लाभ होगा। स्वयं ब्रह्म परमात्मा मनुष्य रूप धारण कर रघुकुलके भूषण राजा होंगे।।4।।

दो.-तब मैं हृदयँ बिचारा जोग जग्य ब्रत दान।
जा कहुँ करिअ सो पैहउँ धर्म न एहि सम आन।।48।।

तब मैंने हृदय में विचार किया कि जिसके लिये योग, यज्ञ, व्रत और दान किये जाते हैं उसे मैं इसी कर्म से पा जाऊँगा; तब तो इसके समान दूसरा कोई धर्म ही नहीं है।।48।।

चौ.-जप तप नियम जोग निज धर्मा। श्रुति संभव नाना सुभ कर्मा।।
ग्यान दया दम तीरथ मज्जन। जहँ लगि धर्म कहत श्रुति सज्जन।।1।।

जप, तप, नियम, योग, अपने-अपने [वर्णाश्रमके] धर्म श्रुतियोंसे उत्पन्न (वेदविहित) बहुत-से शुभ कर्म, ज्ञान, दया, दम (इन्द्रियनिग्रह), तीर्थस्नान आदि जहाँतक वेद और संतजनों ने धर्म कहे हैं [उनके करनेका]-।।1।।

आगम निगम पुरान अनेका। पढ़े सुने कर फल प्रभु एका।।
तव पद पंकज प्रीति निरंतर। सब साधन कर यह फल सुंदर।।2।।

[तथा] हे प्रभो ! अनेक, तन्त्र वेद और पुराणोंके पढ़ने और सुनने का सर्वोतम फल एक ही है और सब साधनों का भी यही एक सुन्दर फल हैं कि आपके चरणकमलों में सदा-सर्वदा प्रेम हो।।2।।

छूटइ मल कि मलहि के धोएँ। घृत कि पाव कोइ बारि बिलोएँ।।
प्रेम भगति जल बिनु रघुराई। अभिअंतर मल कबहुँ न जाई।।3।।

मैलसे धोनेसे क्या मैल छूटता है ? जल के मथने ये क्या कोई घी पा सकता है ? [उसी प्रकार] हे रघुनाथजी ! प्रेम-भक्तिरूपी [निर्मल] जलके बिना अन्तःकरण का मल कभी नहीं जाता।।3।।

सोइ सर्बग्य तग्य सोई पंडित। सोइ गुन गृह बिग्यान अखंडित।।
दच्छ सकल लच्छन जुत सोई। जाकें पद सरोज रति होई।।4।।

वही सर्वज्ञ है, वही तत्त्वज्ञ और पण्डित है, वही गुणोंका घर और अखण्ड विज्ञानवान् हैं; वही चतुर और सब सुलक्षणोंसे युक्त है, जिसका आपके चरणकमलों में प्रेम हैं।।4।।

दो.-नाथ एक बर मागउँ राम कृपा करि देहु।
जन्म जन्म प्रभु पद कमल कबहुँ घटै जनि नेहु।।49।।

हे नाथ ! हे श्रीरामजी ! मैं आपसे एक वर माँगता हूँ, कृपा करके दीजिये। प्रभु (आप) के चऱणकमलों में मेरा प्रेम जन्म-जन्मान्तर में भी कभी न घटे।।49।।

चौ.-अस कहि मुनि बसिष्ट गृह आए। कृपासिंधु के मन अति भाए।।
हनूमान भरतादिक भ्राता। संग लिए सेवक सुखदाता।।1।।
ऐसा कहकर मुनि वसिष्ठ जी घर आये। वे कृपासागर श्रीरामजी के मन को बहुत ही अच्छे लगे। तदनन्तर सेवकों सुख देनेवाले श्रीरामजी ने हनुमान् जी तथा भरतजी भाइयों को साथ लिया।।1।।

पुनि कृपाल पुर बाहेर गए। गज रथ तुरग मगावत भए।।
देखि कृपा करि सकल सराहे। दिए उचित जिन्ह तिन्ह तेइ चाहे।।2।।

और फिर कृपालु श्रीरामजी नगर के बाहर गये और वहाँ उन्होंने हाथी, रथ और घो़ड़े मँगवाये। उन्हें देखकर, कृपा करके प्रभुने सबकी सराहना की और उनको जिस-जिसने चाहा, उस-उसको उचित जानकर दिया।।2।।

गीताप्रेस गोरखपुर

हरन सकल श्रम प्रभु श्रम पाई। गए जहाँ सीतल अवँराई।।
भरत दीन्ह निज बसन डसाई। बैठे प्रभु सेवहिं सब भाई।।3।।

संसार के सभी श्रमों को हरनेवाले प्रभु ने [हाथी, घोड़े आदि बाँटनेमें] श्रमका अनुभव किया और [श्रम मिटाने को] वहाँ गये जहाँ शीतल अमराई (आमोंका बगीचा) थी। वहाँ भरत जी ने अपना वस्त्र बिछा दिया। प्रभु उसपर बैठ गये और सब भाई उनकी सेवा करने लगे।।3।।

मारुतसुत तब मारुत करई। पुलक बपुष लोचन जल भरई।।
हनूमान सम नहिं बड़भागी। नहिं कोऊ राम चरन अनुरागी।।4।।
गिरिजा जासु प्रीति सेवकाई। बार बार प्रभु निज मुख गाई।।5।।

उस समय पवन पुत्र हनुमान् जी पवन (पंखा) करने लगे। उनका शरीर पुलकित हो गया और नेत्रोंमे [प्रेमाश्रुओंका] जल भर आया। [शिवजी कहने लगे-] हे गिरिजे ! हनुमान् जी के समान न तो कोई बड़भागी है और न कोई श्रीरामजी के चरणों का प्रेमी ही है, जिनके प्रेम और सेवा की [स्वयं] प्रभुने अपने श्रीमुख से बार-बार बड़ाई की है।।4-5।।

दो.-तेहिं अवसर मुनि नारद आए करतल बीन।
गावन लगे राम कल कीरति सदा नबीन।।50।।

उसी अवसर पर नारद मुनि हाथ में वीणा लिये हुए आये। वे श्रीरामजी की सुन्दर और नित्य नवीन रहनेवाली कीर्ति गाने लगे।।50।।

चौ.-मामवलोकय पंकज लोचन। कृपा बिलोकनि सोच बिमोचन।।
नील तामरस स्याम काम अरि। हृदय कंज मकरंद मधुप हरि।।1।।

कृपापूर्वक देख लेनेमात्र से शोक के छुड़ानेवाले हे कमलनयन ! मेरी ओर देखिये (मुझपर भी कृपादृष्टि कीजिये) हे हरि ! आप नीलकमल के समान श्यामवर्ण और कामदेवके शत्रु महादेवजीके हृदयकमल के मकरन्द (प्रेम-रस) के पान करनेवाले भ्रमर हैं।।1।।

जातुधान बरुथ बल भंजन। मुनि सज्जन रंजन अघ गंजन।।
भूसुर ससि नव बृंद बलाहक। असरन सरन दीन जन गाहक।।2।।

आप राक्षसों की सेना के बल को तोड़नेवाले हैं। मुनियों और संतजनों को आनन्द देनेवाले और पापों के नाश करनेवाले हैं। ब्राह्मणरूपी खेती के लिये आप नये मेघसमूह हैं और शरणहीनों

को शरण देनेवाले तथा दीन जनों को अपने आश्रय में ग्रहण करनेवाले हैं।।2।।

भुज बल बिपुल भार महि खंडित। खर दूषन बिराध बध पंडित।।
रावनारि सुखरूप भूपबर। जय दसरथ कुल कुमुद सुधाकर।।3।।

अपने बाहुबल से पृथ्वी के बड़े भारी बोझ को नष्ट करनेवाले, खर-दूषन और विराधके वध करने में कुशल, रावण के शत्रु, आनन्दस्वरूप, राजाओं में श्रेष्ठ और दशरथजी के कुलरूपी कुमुदिनी के चन्द्रमा श्रीरामजी ! आपकी जय हो।।3।।

सुजस पुरान बिदित निगमागम। गावत सुर मुनि संत समागम।।
कारुनीक ब्यलीक मद खंडन। सब बिधि कुसल कोसला
मंडन।।4।।

आपका सुन्दर यश पुराणों, वेदों में और तन्त्रादि शास्त्रों में प्रकट है ! देवता, मुनि और संतों के समुदाय उसे गाते हैं। आप करुणा करनेवाले और झूठे मद का नाश करनेवाले, सब प्रकार से कुशल (निपुण) और श्रीअयोध्याजी के भूषण ही है।।4।।

कलि मल मथन नाम ममताहन। तुलसिदास प्रभु पाहि प्रनत जन।।5।।

आपका नाम कलियुग के पापों को मथ डालनेवाला और ममता को मारनेवाला है। हे तुलसीदासके प्रभु ! शरणागतकी रक्षा कीजिये।।5।।

दो.-प्रेम सहित मुनि नारद बरनि राम गुन ग्राम।
सोभासिंधु हृदयँ धरि गए जहाँ बिधि धाम।।51।।

श्रीरामचन्द्रजी गुणसमूहों का प्रेमपूर्वक वर्णन करके मुनि नारदजी शोभारके समुद्र प्रभुको हृदय में धरकर जहाँ ब्रह्मलोक है, वहाँ चले गये।51।।

चौ.-गिरिजा सुनहु बिसद यह कथा। मैं सब कही मोरि मति जथा।।
राम चरित सत कोटि अपारा। श्रुति सारदा न बरनै पारा।।1।।

[शिवजी कहते हैं-] हे गिरिजे ! सुनो, मैंने यह उज्ज्वल कथा जैसी मेरी बुद्धि थी, वैसी पूरी कह डाली। श्रीरामजी के चरित्र सौ

करोड़ [अथवा] अपार हैं। श्रुति और शारदा भी उनका वर्णन नहीं कर सकते।।1।।

राम अनंत अनंत गुनानी। जन्म कर्म अनंत नामानी।।
जल सीकर महि रज गनि जाहीं। रघुपति चरित न बरनि सिराहीं।।2।।

भगवान् श्रीराम अनन्त हैं; उनके गुण अनन्त हैं; जन्म कर्म और नाम भी अनन्त हैं। जलकी बूँदे और पृथ्वीके रज-कण चाहे गिने जा सकते हों, पर श्रीरघुनाथजी के चरित्र वर्णन करने से नहीं चुकते।।2।।

बिमल कथा हरि पद दायनी। भगति होई सुनि अनपायनी।।
उमा कहिउँ सब कथा सुहाई। जो भुसुंडि खगपतिहि सुनाई।।3।।

यह पवित्र कथा भगवान् के परमपद को देने वाली है। इसके सुनने से अविचल भक्ति प्राप्त होती है। हे उमा ! मैंने वह सब सुन्दर कथा कही जो काकभुशुण्डिजीने गरुड़जी को सुनायी थी।।3।।

कछुक राम गुन कहेउँ बखानी। अब का कहौं सो कहहु भवानी।।
सुनि सुभ कथा उमा हरषानी। बोली अति बिनीत मृदु बानी।।4।।

मैंने श्रीरामजी के कुछ थोड़े-से गुण बखानकर कहे हैं। हे भवानी ! सो कहो, अब और क्या कहूँ ? श्रीरामजी की मंगलमयी कथा सुनकर पार्वतीजी हर्षित हुईं और अत्यन्त विनम्र तथा कोमल वाणी बोलीं।।4।।

धन्य धन्य मैं धन्य पुरारी। सुनेउँ राम गुन भव भय हारी।।5।।

हे त्रिपुरारि ! मै धन्य हूँ, धन्य-धन्य हूँ, जो मैंने जन्म-मृत्यु के हरण करनेवाले श्रीरामजी के गुण (चरित्र) सुने।।5।।

दो.-तुम्हरी कृपाँ कृपायतन अब कृतकृत्य न मोह।
जानेउँ राम प्रताप प्रभु चिदानंद संदोह।।52क।।

हे कृपाधाम ! अब आपकी कृपा से मैं कृतकृत्य हो गयी। अब मुझे मोह नहीं रह गया। हे प्रभु ! मैं सच्चिदानन्दघन प्रभु श्रीरामजी के प्रताप को जान गयी।।52(क)।।

नाथ तवानन ससि स्रवत कथा सुधा रघुबीर।
श्रवन पुटन्हि मन पान करि नहिं अघात मतिधीर।।52ख।।

हे नाथ ! आपकी मुखरूपी चन्द्रमा श्रीरघुवीरकी कथारूपी अमृत बरसाता है। हे मतिधीर ! मेरा मन कर्णपुटोंसे उसे पीकर तृप्त नहीं होता।।52(ख)।।

चौ.-राम चरित जे सुनत अघाहीं। रस बिसेष जाना तिन्ह नाहीं।।
जीवनमुक्त महामुनि जेऊ। हरि गुन सुनहिं निरंतर तेऊ।।1।।

श्रीरामजी के चरित्र सुनते-सुनते जो तृप्त हो जाते हैं (बस कर देते हैं), उन्होंने तो उसका विशेष रस जाना ही नहीं। जो जीवन्मुक्त महामुनि हैं, वे भी भगवान् के गुण निरन्तर सुनते रहते हैं।।1।।

भव सागर चह पार जो पावा। राम कथा ता कहँ दृढ़ नावा।।
बिषइन्ह कहँ पुनि हरि गुन ग्रामा। श्रवन सुखद अरु मन अभिरामा।।2।।

जो संसाररूपी सागर का पार पाना चाहता है, उसके लिये तो श्रीरामजी की कथा दृढ़ नौका के समान है। श्रीहरि के गुणसमूह तो विषयी लोगों के लिये भी कानों को सुख देनेवाले और मनको आनन्द देनेवाले हैं।।2।।

श्रवनवंत अस को जग माहीं। जाहि न रघुपति चरित सोहाहीं।।
ते जड़ जीव निजात्मक घाती। जिन्हहि न रघुपति कथा सोहाती।।3।।

जगत् में कान वाला ऐसा कौन है जिसे श्रीरघुनाथजी के चरित्र न सुहाते हों। जिन्हें श्रीरघुनाथजी की कथा नहीं सुहाती, वे मूर्ख जीव तो अपनी आत्मा की हत्या करनेवाले हैं।।3।।

हरिचरित्र मानस तुम्ह गावा। सुनि मैं नाथ अमिति सुख पावा।।
तुम्ह जो कही यह कथा सुहाई। कागभुसुंडि गरुड़ प्रति गाई।।4।।

हे नाथ ! आपने श्रीरामचरितमानस का गान किया, उसे सुनकर मैंने अपार सुख पाया। आपने जो यह कहा कि यह सुन्दर कथा काकभुशुण्डिजी ने गरुड़जी से कहीं थी-।।4।।

दो.-बिरति ग्यान बिग्यान दृढ़ राम चरन अति नेह।
बायस तन रघुपति भगति मोहि परम संदेह।।53।।

सौ कौए का शरीर पाकर भी काकभुशुण्डि वैराग्य, ज्ञान और विज्ञान में दृढ़ हैं, उनका श्रीरामजीके चरणोंमें अत्यन्त प्रेम है और

उन्हें श्रीरघुनाथजी की भक्ति भी प्राप्त है, इस बात का मुझे परम सन्देह हो रहा है।।53।।

चौ.-नर सहस्त्र महँ सुनहु पुरारी। कोउ एक होइ धर्म ब्रतधारी।।
धर्मसील कोटिक महँ कोई। बिषय बिमुख बिराग रत होई।।1।।

हे त्रिपुरारि ! सुनिये, हजारों मनुष्योंमें कोई एक धर्म के व्रत का धारण करनेवाला होता है और करोड़ों धर्मात्माओं में कोई एक विषय से विमुख (विषयोंका त्यागी) और वैराग्यपरायण होता है।।1।।

कोटि बिरक्त मध्य श्रुति कहई। सम्यक ग्यान सकृत कोउ लहई।।
ग्यानवंत कोटिक महँ कोऊ। जीवमुक्त सकृत जग सोऊ।।2।।

श्रुति कहती है कि करोड़ों विरक्तों में कोई एक ही सम्यक् (यथार्थ) ज्ञान को प्राप्त करता है और करोड़ों ज्ञानियों में कोई एक ही जीवन्मुक्त होता है। जगत् में कोई विरला ही ऐसा (जीवन्मुक्त) होगा।।2।।

तिन्ह सहस्त्र महुँ सब सुख खानी। दुर्लभ ब्रह्म लीन बिग्यानी।।
धर्मशील बिरक्त अरु ग्यानी। जीवनमुक्त ब्रह्मपर प्रानी।।3।।

हजारों जीवन्मुक्त में भी सब सुखों की खान, ब्रह्म में लीन विज्ञानवान् पुरुष और भी दुर्लभ है। धर्मात्मा, वैराग्यवान्, ज्ञानी, जीवन्मुक्त और ब्रह्मलीन।।3।।

सब ते सो दुर्लभ सुरराया। राम भगति रत गत मद माया।।
सो हरिभगति काग किमि पाई। बिस्वनाथ मोहि कहहु बुझाई।।4।।

इन सबमें भी हे देवाधिदेव महादेवजी ! वह प्राणी अत्यन्त दुर्लभ है जो मद और मायासे रहित होकर श्रीरामजी की भक्तिके परायण हो। विश्वनाथ ! ऐसी दुर्लभ हरिभक्त को कौआ कैसे पा गया, मुझे समझाकर कहिये।।4।।

दो.-राम परायन ग्यान रत गुनागार मति धीर।
नाथ कहहु केहि कारन पायउ काक सरीर।।54।।

हे नाथ ! कहिये, [ऐसे] श्रीरामपरायण, ज्ञानरहित, गुणधाम और धीरबुद्धि भुशुण्डिजी ने कौए का शरीर किस कारण पाया ?।।54।।

चौ.-यह प्रभु चरित पवित्र सुहावा। कहहु कृपाल काग कहँ पावा।।
तुम्ह केहि भाँति सुना मदनारी। कहहु मोहि अति कौतुक भारी।।1।।

हे कृपालु ! बताइये, उस कौएने प्रभु का यह पवित्र और सुन्दर चरित्र कहाँ पाया ! और हे कामदेव के शत्रु ! यह भी बताइये, आपने इसे किस प्रकार ? मुझे बड़ा भारी कौतूहल हो रहा है।।1।।

गरुड़ महाग्यनी गुन रासी। हरि सेवक अति निकट निवासी।
तेहिं केहि हेतु काग सन जाई। सुनी कथा मुनि निकर बिहाई।।2।।

गरुड़जी तो महानज्ञानी, सद्गुणोंकी राशि श्रीहरिके सेवक और उनके अत्यन्त निकट रहनेवाले (उनके वाहन ही) हैं। उन्होंने मुनियों के समूह को छोड़कर, कौए से जाकर हरिकथा किस कारण सुनी ?।।2।।

कहहु कवन बिधि भा संबादा। दोउ हरिभगत काग उरगादा।।
गौरि गिरा सुनि सरल सुहाई। बोले सिव सादर सुख पाई।।3।।

कहिये, काकभुशुण्डि और गरुड़ इन दोनों हरिभक्तों की बातचीत किस प्रकार हुई? पार्वतीजी की सरल, सुन्दर वाणी सुनकर शिवजी सुख पाकर आदरके साथ बोले-।।3।।

धन्य सती पावन मति तोरी। रघुपति चरन प्रीति नहिं थोरी।।
सुनहु परम पुनीत इतिहासा। जो सुनि सकल लोक भ्रम
नासा।।4।।

हे सती ! तुम धन्य हो; तुम्हारी बुद्धि अत्यन्त पवित्र है। श्रीरघुनाथजी के चरणों में तुम्हारा कम प्रेम नहीं है (अत्याधिक प्रेम है)। अब वह परम पवित्र इतिहास सुनो, जिसे सुनने से सारे लोक के भ्रम का नाश हो जाता है।।4।।

उपजइ राम चरन बिस्वासा। भव निधि तर नर बिनहिं
प्रयासा।।5।।

तथा श्रीरामजीके चरणोंमें विश्वास उत्पन्न होता है और मनुष्य बिना ही परिश्रम संसाररूपी समुद्र से तर जाता है।।5।।

दो.-एसिअ प्रस्न बिहंगपति कीन्हि काग सन जाइ।
सो सब सादर कहिहउँ सुनहु उमा मन लाइ।।55।।

गीताप्रेस गोरखपुर

पक्षिराज गरुड़जीने भी जाकर काकभुशुण्डिजीसे प्रायः ऐसे ही प्रश्न किये थे। हे उमा ! मैं वह सब आदरसहित कहूँगा, तुम मन लगाकर सुनो।।55।।

चौ.-मैं जिमि कथा सुनी भव मोचनि। सो प्रसंग सुनु सुमुखि सुलोचनि।।
प्रथम दच्छ गृह तव अवतारा। सती नाम तब रहा तुम्हारा।।1।।

मैंने जिस प्रकार वह भव (जन्म-मृत्यु) से छुड़ानेवाली कथा सुनी, हे सुमुखी! हे सुलोचनी ! वह प्रसंग सुनो। पहले तुम्हारा अवतार दक्ष के घर हुआ था। तब तुम्हारा नाम सती था।।1।।

दच्छ जग्य तव भा अपमाना। तुम्ह अति क्रोध तजे तब प्राना।।
मम अनुचरन्ह कीन्ह मख भंगा। जानहु तुम्ह सो सकल प्रसंगा।।2।।

गीताप्रेस गोरखपुर

दक्ष के यज्ञ में तुम्हारा अपमान हुआ। तब तुमने अत्यन्त क्रोध करके प्राण त्याग दिये थे और फिर मेरे सेवकों ने यज्ञ विध्वंस कर दिया था। वह सारा प्रसंग तुम जानती ही हो।।2।।

तब अति सोच भयउ मन मोरें। दुखी भय़उँ बियोग प्रिय तोरें।।
सुंदर बन गिरि सरित तड़ागा। कौतुक देखत फिरउँ बेरागा।।3।।

तब मेरे मन में बड़ा सोच हुआ और हे प्रिये ! मैं तुम्हारे वियोग से दुखी हो गया। मैं विरक्तभाव से सुन्दर वन, पर्वत, नदी, और तालाबों का कौतुक (दृश्य) देखता फिरता था।।3।।

गिरि सुमेर उत्तर दिसि दूरी। नील सैल एक सुंदर भूरी।।
तासु कनकमय सिखर सुहाए। चारि चारु मोरे मन भाए।।4।।

सुमेरु पर्वत की उत्तर दिशा में, और भी दूर, एक बहुत ही सुन्दर नील पर्वत हैं। उसके सुन्दर सुवर्णमय शिखर हैं, [उनमेंसे] चार सुन्दर शिखर मेरे मन को बहुत ही अच्छे लगे।।4।।

तिन्ह पर एक बिटप बिसाला। बट पीपर पाकरी रसाला।।
सैलोपरि सर सुंदर सोहा। मनि सोपान देखि मन मोहा।।5।।

उन शिखरों में एक-एक पर बरगद, पीपल, पाकर और आम का एक-एक विशाल वृक्ष है। पर्वत के ऊपर एक सुन्दर तालाब शोभित है; जिसकी सीढ़ियाँ देखकर मन मोहित हो जाता है।।5।।

दो.-सीतल अमल मधुर जल जलज बिपुल बहुरंग।।
कूजत कल रव हंस गन गुंजत मंजुल भृंग।।56।।

उसका जल शीतल, निर्मल और मीठा है; उसमें रंग-बिरंगे बहुत-से कमल खिले हुए हैं। हंसगण मधुर स्वर से बोल रहे हैं और भौंरे सुन्दर गुंजार कर रहे रहे हैं।।56।।

चौ.-तेहिं गिरि रुचिर बसइ खग सोई। तासु नास कल्पांत न होई।।
माया कृत गुन दोष अनेका। मोह मनोज आदि अबिबेका।।1।।

उस सुन्दर पर्वत पर वही पक्षी (काकभुशुण्डि) बसता है। उसका नाश कल्प के अन्त में भी नहीं होता। मायारचित अनेकों गुण-दोष, मोह, काम आदि अविवेक।।1।।

रहे ब्यापि समस्त जग माहीं। तेहि गिरि निकट कबहुँ नहिं जाहीं।।
तहँ बसि हरिहि भजइ जिमि कागा। सो सुनु उमा सहित अनुरागा।।2।।

जो सारे जगत् में छा रहे हैं, उस पर्वत के पास भी कभी नहीं फटकते। वहाँ बसकर जिस प्रकार वह काक हरि को भजता है, हे उमा ! उसे प्रेमसहित सुनो।।2।।

पीपर तरु तर ध्यान सो धरई। जाप जग्य पाकरि तर करई।।
आँब छाँह कर मानस पूजा। तजि हरि भजनु काजु नहिं दूजा।।3।।

वह पीपल के वृक्ष के नीचे ध्यान धरता है। पाकर के नीचे जपयज्ञ करता है। आम की छाया में मानसिक पूजा करता है। श्रीहरि के भजन को छोड़कर उसे दूसरा कोई काम नहीं है।।3।।

बर तर कह हरि कथा प्रसंगा। आवहिं सुनहि अनेक बिहंगा।।
राम चरित बिचित्र बिधि नाना। प्रेम सहित कर सादर गाना।।4।।

बरगद के नीचे वह श्री हरि की कथाओं के प्रसंग कहता है। वहाँ अनेकों पक्षी आते और कथा सुनते हैं। वह विचित्र रामचरित्र को अनेकों प्रकार से प्रेमसहित आदरपूर्वक गान करता है।।4।।

सुनहिं सकल मति बिमल मराला। बसहिं निरंतर जे तेहिं ताला।।
जब मैं जाइ सो कौतुक देखा। उर उपजा आनंद बिसेषा।।5।।

सब निर्मल बुद्धिवाले हंस, जो सदा उस तालाब पर बसते हैं, उसे सुनते हैं। जब मैंने वहाँ जाकर यह कौतुक (दृश्य) देखा, तब मेरे हृदय में विशेष आनन्द उत्पन्न हुआ।।5।।

दो.-तब कछु काल मराल तनु धरि तहँ कीन्ह निवास।
सादर सुनि रघुपति गुन पुनि आयउँ कैलास।।57।।

तब मैंने हंस का शरीर धारण कर कुछ समय वहाँ निवास किया और श्रीरघुनाथजी के गुणों को आदरसहित सुनकर फिर कैलास को लौट आया।।57।।

चौ.-गिरिजा कहेउँ सो सब इतिहासा। मैं जेहि समय गयउँ खग पासा।।
अस सो कथा सुनहु जेहि हेतू। गयउ काग पहिं खग कुल केतू।।1।।

हे गिरिजे ! मैंने वह सब इतिहास कहा कि जिस समय मैं काकभुशुण्डि के पास गया था। अब वह कथा सुनो जिस कारण से पक्षिकुलके ध्वजा गरुड़जी उस काक के पास गये थे।।1।।

जब रघुनाथ कीन्हि रन क्रीड़ा। समुझत चरित होति मोहि ब्रीड़ा।।
इंद्रजीत कर आपु बँधायो। तब नारद मुनि गरुड़ पठायो।।2।।

जब श्रीरघुनाथजी ने ऐसी रणलीला की जिस लीला का स्मरण करनेसे मुझे लज्जा होती है-मेघनाद के हाथों अपने को बँधा लिया- तब नारद मुनि ने गरुड़ को भेजा।।2।।

बंधन काटि गयो उरगादा। उपजा हृदयँ प्रचंड बिषादा।।
प्रभु बंधन समुझत बहु भाँती। करत बिचार उरग आराती।।3।।

सर्पों के भक्षक गरुड़जी बन्धन काटकर गये, तब उनके हृदय में बड़ा भारी विषाद उत्पन्न हुआ। प्रभु के बन्धन को स्मरण करके सर्पों के शुभ गरुड़जी बहुत प्रकार से विचार करने लगे-।।3।।

ब्यापक ब्रह्म बिरज बागीसा। माया मोह पार परमीसा।।
सो अवतार सुनेउँ जग माहीं। देखेउँ सो प्रभाव कछु नाहीं।।4।।

जो व्यापक, विकाररहित, वाणी के पति और माया-मोहसे परे ब्रह्म परमेश्वर हैं, मैंने सुना था कि जगत् में उन्हीं का अवतार है। पर मैंने उस (अवतार) का प्रभाव कुछ भी नहीं देखा।।5।।

दो.-भव बंधन ते छूटहिं नर जपि जा कर नाम।
खर्ब निसाचर बाँधेउ नागपास सोई राम।।58।।

जिनका नाम जयकर मनुष्य संसार के बन्धन से छूट जाते हैं उन्हीं राम को एक तुच्छ राक्षस ने नागपाश से बाँध लिया।।58।।

चौ.-नाना भाँति मनहि समुझावा। प्रगट न ग्यान हृदयँ भ्रम छावा।।
खेद खिन्न मन तर्क बढ़ाई। भयउ मोहबस तुम्हरिहिं नाई।।1।।

गरुड़जी ने अनेक प्रकार से अपने मन को समझाया। पर उन्हें ज्ञान नहीं हुआ, हृदय में भ्रम और भी अधिक छा गया। [सन्देहजनित] दुःखसे दुखी होकर, मनमें कुतर्क बढ़ाकर वे तुम्हारी ही भाँति मोहवश हो गये।।1।।

ब्याकुल गयउ देवरिषि पाहीं। कहेसि जो संसय निज मन माहीं।।
सुनि नारदहि लागि अति दाया। सुनु खग प्रबल राम कै माया।।2।।

व्याकुल होकर वे देवर्षि नारदजीके पास गये और मनमें जो सन्देह था, वह उनसे कहा। उसे सुनकर नारदको अत्यन्त दया आयी। [उन्होंने कहा-] हे गरुड़ ! सुनिये ! श्रीरामजी की माया बड़ी ही बलवती है।।2।।

जो ग्यानिन्ह कर चित अपहरई। बरिआईं बिमोह मन करई।।
जेहिं बहु बार नचावा मोही। सोइ ब्यापी बिहंगपति तोही।।3।।

जो ज्ञानियों के चित्त को भी भलीभाँति हरण कर लेती है और उनके मन में जबर्दस्ती बड़ा भारी मोह उत्पन्न कर देती है तथा जिसने मुझको भी बहुत बार नचाया है, हे पक्षिराज ! वही माया आपको भी व्याप गयी है।।3।।

महामोह उपजा उर तोरें। मिटिहि न बेगि कहें खग मोरें।।
चतुरानन पहिं जाहु खगेसा। सोइ करेहु जेहि होइ निदेसा।।4।।

हे गरुड़ ! आपके हृदय में बड़ा भारी मोह उत्पन्न हो गया है। यह मेरे समझाने से तुरंत नहीं मिटेगा अतः हे पक्षिराज ! आप ब्रह्माजीके पास जाइये और वहाँ जिस काम के लिये आदेश मिले, वही कीजियेगा।।4।।

दो.-अस कहि चले देवरिषि करत राम गुन गान।
हरि माया बल बरनत पुनि पुनि परम सुजान।।59।।

ऐसा कहकर परम सुजान देवर्षि नारदजी श्रीरामजीका गुणगान करते हुए और बारंबार श्रीहरि की मायाका बल वर्णन करते हुए चले।।59।।

चौ.-तब खगपति बिरंचि पहिं गयऊ। निज संदेह सुनावत भयऊ।।
सुनि बिरंचि रामहि सिरु नावा। समुझि प्रताप प्रेम अति छावा।।1।।

तब पक्षिराज गरुड़ ब्रह्माजीके पास गये और अपना सन्देह उन्हें कह सुनाया। उसे सुनकर ब्रह्माजी ने श्रीरामचन्द्रजी को सिर नवाया और उनके प्रताप को समझकर उनके अत्यन्त प्रेम छा गया।।1।।

मन महुँ करइ बिचार बिधाता। माया बस कबि कोबिद ग्याता।।
हरि माया कर अमिति प्रभावा। बिपुल बार जेहिं मोहि नचावा।।2।।

गीताप्रेस गोरखपुर

ब्रह्माजी मन में विचार करने लगे कि कवि, कोविद और ज्ञानी सभी मायाके वश हैं। भगवान् की माया का प्रभाव असीम है, जिसने मुझतक को अनेकों बार नचाया है।।2।।

अग जगमय जग मम उपराजा। नहिं आचरज मोह खगराजा।
तब बोले बिधि गिरा सुहाई। जान महेस राम प्रभुताई।।3।।

यह सार चराचर जगत् तो मेरा रचा हुआ है। जब मैं ही मायावश नाचने लगता हूँ, तब पक्षिराज गरुड़को मोह होना कोई आश्चर्य [की बात] नहीं है। तदनन्तर ब्रह्माजी सुन्दर वाणी बोले- श्रीरामजीकी महिमाको महादेवजी जानते हैं।।3।।

बैनतेय संकर पहिं जाहू। तात अनत पूछहु जनि काहू।।
तहँ होइहि तव संसय हानी। चलेउ बिहंग सुनत बिधि बानी।।4।।

हे गरुड़ ! तुम शंकरजीके पास जाओ। हे तात ! और कहीं किसी से न पूछना। तुम्हारे सन्देहका नाश वहीं होगा। ब्रह्माजीका वचन सुनते ही गरुड़ चल दिये।।4।।

दो.-परमातुर बिहंगपति आयउ तब मो पास।
जात रहेउँ कुबेर गृह रहिहु उमा कैलास।।60।।

तब बड़ी आतुरता (उतावली) से पक्षिराज गरुड़ मेरे पाय आये। हे उमा ! उस समय मैं कुबेर के घर जा रहा था और तुम कैलासपर थीं।।60।।

चौ.-तेहिं मम पद सादर सिरु नावा। पुनि आपन संदेह सुनावा।।
सुनि ता करि बिनती मृदु बानी। प्रेम सहित मैं कहेउँ भवानी।।1।।

गरुड़जी ने आदरपूर्वक मेरे चरणों में सिर नवाया और फिर मुझको अपना सन्देह सुनाया। हे भवानी ! उनकी विनती और कोमल वाणी सुनकर मैंने प्रेमसहित उनसे कहा-।।1।।

मिलेहु गरुड़ मारग महँ मोही। कवन भाँति समुझावौं तोही।।
तबहिं होइ सब संसय भंगा। जब बहु काल करिअ सतसंगा।।2।।

हे गरुड़ ! तुम मुझे रास्ते में मिले हो। राह चलते मैं तुम्हें किस प्रकार समझाऊँ ? सब सन्देहों का तो तभी नाश हो जब दीर्घ कालतक सत्संग किया जाय।।2।।

सुनिअ तहाँ हरिकथा सुहाई। नाना भाँति मुनिन्ह जो गाई।।
जेहिं महुँ आदि मध्य अवसाना। प्रभु प्रतिपाद्य राम भगवाना।।3।।

और वहां (सत्संग में) सुन्दर हरि कथा सुनी जाय, जिसे मुनियोंने अनेकों प्रकारसे गाया है और जिसके आदि, मध्य और अन्त में भगवान् श्रीरामचन्द्रजी ही प्रतिपाद्य प्रभु हैं।।3।।

नित हरि कथा होत जहँ भाई। पठवउँ तहाँ सुनहु तुम्ह जाई।।
जाइहि सुनत सकल संदेहा। राम चरन होइहि अति नेहा।।4।।

हे भाई ! जहाँ प्रतिदिन हरिकथा होती है, तुमको मैं वहीं भेजता हूँ, तुम जाकर उसे सुनो। उसे सुनते ही तुम्हारा सब सन्देह दूर हो जायगा और तुम्हें श्रीरामजीके चरणोंमें अत्यन्त प्रेम होगा।।4।।

दो.-बिनु सतसंग न हरि कथा तेहि बिनु मोह न भाग।
मोह गएँ बिनु राम पद होइ न दृढ़ अनुराग।।61।।

सत्संगके बिना हरि की कथा सुननेको नहीं मिलती, उसके बिना मोह नहीं भागता और मोह के गये बिना श्रीरामचन्द्रजी के चरणोंमें दृढ़ (अचल) प्रेम नहीं होता।।61।।

चौ.-मिलहिं न रघुपति बिनु अनुरागा। किएँ जोग तप ग्यान बिरागा।।
उत्तर दिसि सुंदर गिरि नीला। तहँ रह काकभुसुंडि सुसीला।।1।।

बिना प्रेम के केवल योग, तप, ज्ञान और वैराग्यादिके करनेसे श्रीरधुनाथजी नहीं मिलते। [अतएव तुम सत्संग के लिये वहाँ जाओ जहाँ] उत्तर दिशा में एक सुन्दर नील पर्वत है। वहाँ परम सुशील काकभुशुण्डिजी रहते हैं।।1।।

राम भगति पथ परम प्रबीना। ग्यानी गुन गृह बहु कालीना।।
राम कथा सो कहइ निरंतर। सादर सुनहिं बिबिध बिहंगबर।।2।।

वे रामभक्ति के मार्ग में परम प्रवीण हैं, ज्ञानी हैं, गुणों के धाम हैं, और बहुत कालके हैं। वे निरन्तर श्रीरामचन्द्रजी की कथा कहते रहते हैं, जिसे भाँति-भाँति के श्रेष्ठ पक्षी आदरसहित सुनते हैं।।2।।

जाइ सुनहु तहँ हरि गुन भूरी। होइहि मोह जनित दुख दूरी।।
मैं जब तेहि सब कहा बुझाई। चलेउ हरषि मम पद सिरु नाई।।3।।

वहाँ जाकर श्रीहरि के गुण समूहों को सुनो। उनके सुनने से मोह से उत्पन्न तुम्हारा दुःख दूर हो जायगा। मैंने उसे जब सब

समझाकर कहा, तब वह मेरे चरणों में सिर नवाकर हर्षित होकर चला गया।।3।।

ताते उमा न मैं समुझावा। रघुपति कृपाँ मरमु मैं पावा।।
होइहि कीन्ह कबहुँ अभिमाना। सो खौवै चह कृपानिधाना।।4।।

हे उमा ! मैंने उसको इसीलिये नहीं समझाया कि मैं श्रीरघुनाथजीकी कृपासे उसका मर्म (भेद) पा गया था। उसने कभी अभिमान किया होगा, जिसको कृपानिधान श्रीरामजी नष्ट करना चाहते हैं।।4।।

कछु तेहि ते पुनि मैं नहिं राखा। समुझइ खग खगही कै भाषा।।
प्रभु माया बलवंत भवानी। जाहि न मोह कवन अस ग्यानी।।5।।

फिर कुछ इस कारण भी मैंने उसको अपने पास नहीं रक्खा कि पक्षी पक्षी की हो बोली समझते हैं। हे भवानी ! प्रभु की माया [बड़ी ही] बलवती है, ऐसा कौन ज्ञानी है, जिसे वह न मोह ले ?।।5।।

दो.-ग्यानी भगत सिरोमनि त्रिभुवनपति कर जान।
ताहि मोह माया नर पावँर करहिं गुमान।।62क।।

जो ज्ञानीयोंमें और भक्तोंमें शिरोमणि हैं एवं त्रिभुवनपति भगवान् के वाहन हैं, उन गरुड़ को भी माया ने मोह लिया। फिर भी नीच मनुष्य मूर्खतावश घमंड किया करते हैं।।62(क)।।

मासपारायण, अट्ठाईसवाँ विश्राम

सिव बिरंचि कहुँ मोहइ को है बपुरा आन।
अस जियँ जानि भजहिं मुनि माया पति भगवान।।62ख।।

यह माया जब शिव जी और ब्रह्माजी को भी मोह लेती है, तब दूसरा बेचारा क्या चीज है ? जी में ऐसा जानकर ही मुनिलोग उस माया के स्वामी भगवान् का भजन करते हैं।।62(ख)।।

चौ.-गयउ गरुड़ जहँ बसइ भुसुंडा। मति अकुंठ हरि भगति अखंडा।।
देखि सैल प्रसन्न मन भयऊ। माया मोह सोच सब गयऊ।।1।।

गरुड़जी वहाँ गये जहाँ निर्बाध बुद्धि और पूर्ण भक्तिवाले काकभुशुण्डि बसते थे। उस पर्वत को देखकर उनका मन प्रसन्न हो

गया और [उसके दर्शनसे ही] सबसे माया, मोह तथा सोच जाता रहा।।1।।

करि तड़ाग मज्जन जलपाना। बट तर गयउ हृदयँ हरषाना।।
बृद्ध बृद्ध बिहंग तहँ आए। सुनै राम के चरित सुहाए।।2।।

तालाब में स्नान और जलपान करके वे प्रसन्नचित्त से वटवृक्ष के नीचे गये। वहाँ श्रीरामजी के सुन्दर चरित्र सुनने के लिये बूढ़े-बूढ़े पक्षी आये हुए थे।।2।।

कथा अरंभ करै सोइ चाहा। तेही समय गयउ खगनाहा।।
आवत देखि सकल खगराजा। हरषेउ बायस सहित समाजा।।3।।

भुशुण्डिजी कथा आरम्भ करना ही चाहते थे कि उस समय पक्षिराज गरुड़जी वहाँ जा पहुँचे। पक्षियों के राजा गरुड़जी को आते देखकर काकभुशुण्डिजीसहित सारा पक्षिसमाज हर्षित हुआ।।3।।

अति आदर खगपति कर कीन्हा। स्वागत पूछि सुआसन दीन्हा।।
करि पूजा समेत अनुरागा। मधुर बचन तब बोलेउ कागा।।4।।।

उन्होंने पक्षिराज गरुड़जी का बहुत ही आदर-सत्कार किया और स्वागत (कुशल) पूछकर बैठने के लिये सुन्दर आसन दिया फिर प्रेमसहित पूजा करके काकभुशुण्डिजी मधुर वचन बोले-।।4।।

दो.-नाथ कृतारथ भयउँ मैं तव दरसन खगराज।
आयसु देहु सो करौं अब प्रभु आयहु केहिं काज।।63क।।

हे नाथ ! हे पक्षिराज ! आपके दर्शन से मैं कृतार्थ हो गया। आप जो आज्ञा दें, मैं अब वही करूँ। हे प्रभो ! आप किस कार्य के लिये आये हैं?।।63(क)।।

सदा कृतारथ रूप तुम्ह कह मृदु बचन खगेस।
जेहि कै अस्तुति सादर निज मुख कीन्हि महेस।।63ख।।

पक्षिराज गरुड़जीने कोमल वचन कहे-आप तो सदा ही कृतार्थरूप हैं, जिनकी बड़ाई स्वयं महादेवजी ने आदरपूर्वक अपने श्रीमुख से की है।।63(ख)।।

चौ.-सुनहु तात जेहि कारन आयउँ। सो सब भयउ दरस तव पायउँ।।
देखि परम पावन तव आश्रम। गयउ मोह संसय नाना भ्रम।।1।।

हे तात ! सुनिये, मैं जिस कारणसे आया था, वह सब कार्य तो यहाँ आते ही पूरा हो गया। फिर आपके दर्शन भी प्राप्त हो गये। आपका परम पवित्र आश्रम देखकर ही मेरा मोह, सन्देह और अनेक प्रकारके भ्रम सब जाते रहे।।1।।

अब श्रीराम कथा अति पावनि। सदा सुखद दुख पुंज नसावनि।।
सादर तात सुनावहु मोही। बार बार बिनयउँ प्रभु तोही।।2।।

अब हे तात ! आप मुझे श्रीरामजीकी अत्यन्त पवित्र करने वाली, सदा सुख देनेवाली और दुःखसमूह का नाश करनेवाली कथा आदरसहित सुनाइये। हे प्रभो ! मैं बार-बार आपसे यही विनती करता हूँ।।2।।

सुनत गरुड़ कै गिरा बिनीता। सरल सुप्रेम सुखद सुपुनीता।।
भयउ तासु मन परम उछाहा। लाग कहै रघुपति गुन गाहा।।3।।

गरुड़जी की विनम्र, सरल, सुन्दर, प्रेमयुक्त, सुख, प्रद और अत्यन्त पवित्रवाणी सुनते ही भुशुण्डिजी के मनमें परम उत्साह हुआ और वे श्रीरघुनाथजी के गुणों की कथा कहने लगे।।3।।

प्रथमहिं अति अनुराग भवानी। रामचरित सर कहेसि बखानी।।
पुनि नारद कर मोह अपारा। कहेसि बहुरि रावन अवतारा।।4।।

हे भवानी ! पहले तो उन्होंने बड़े ही प्रेम से रामचरितमानस सरोवर का रूपक समझाकर कहा। फिर नारद जी का अपार मोह और फिर रावण का अवतार कहा।।4।।

प्रभु अवतार कथा पुनि गाई। तब सिसु चरित कहेसि मन लाई।।5।।

फिर प्रभु के अवतारकी कथा वर्णन की। तदनन्तर मन लगाकर श्रीरामजीकी बाललीलाएँ कहीं।।5।।

दो.-बालचरित कहि बिबिधि बिधि मन महँ परम उछाह।।
रिषि आवगन कहेसि पुनि श्रीरघुबीर बिबाह।।64।।

मनमें परम उत्साह भरकर अनेकों प्रकारकी बाललीलाएँ कहकर, फिर ऋषि विश्वामित्रजी का अयोध्या आना और श्रीरघुवीरका विवाह वर्णन किया।।64।।

चौ.-बहुरि राम अभिषेक प्रसंगा। पुनि नृप बचन राज रस भंगा।।
पुरबासिन्ह कर बिरह बिषादा। कहेसि राम लछिमन संबादा।।1।।

फिर श्रीरामजीके राज्याभिषेक का प्रसंग, फिर राजा दशरथजी के वचन से राजरस (राज्याभिषेकके आनन्द) में भंग पड़ना, फिर नगर निवासियों का विरह, विषाद और श्रीराम-लक्ष्मण का संवाद (बातचीत) कहा।।1।।

बिपिन गवन केवट अनुरागा। सुरसरि उतरि निवास प्रयागा।।
बालमीक प्रभु मिलन बखाना। चित्रकूट जिमि बसे भगवाना।।2।।

श्रीराम का वनगमन, केवट का प्रेम, गंगाजी से पार उतरकर प्रयाग में निवास, वाल्मीकिजी और प्रभु श्रीरामजीका मिलन और जैसे भगवान् चित्रकूटमें बसे, वह सब कहा।।2।।

सचिवागवन नगर नृप मरना। भरतागवन प्रेम बहु बरना।।
करि नृप क्रिया संग पुरबासी। भरत गए जहँ प्रभु सुख रासी।।3।।

फिर मन्त्री सुमन्त्रजी का नगर में लौटना, राजा दशरथजी का मरण, भरतजी का [ननिहालसे] अयोध्या में आना और उनके प्रेम का बहुत वर्णन किया। राजाकी अन्त्येष्टि क्रिया करके नगरवासियों को साथ लेकर भरतजी वहाँ गये, जहाँ सुख की राशि प्रभु श्रीरामचन्द्रजी थे।।3।।

पुनि रघुपति बहु बिधि समुझाए। लै पादुका अवधपुर आए।।
भरत रहनि सुरपति सुत करनी। प्रभु अरु अत्रि भेंट बरनी।।4।।

फिर श्रीरघुनाथजी ने उनको बहुत प्रकार से समझाया; जिससे वे खड़ाऊँ लेकर अयोध्यापुरी लौट आये, यह सब कथा कही। भरतजी की नन्दिग्राम में रहने की रीति, इन्द्रपुत्र जयन्त की नीच करनी और फिर प्रभु श्रीरामचन्द्रजी और आत्रिजी का मिलाप वर्णन किया।।4।।

दो.-कहि बिराध बध जेहि बिधि देह तजी सरभंग।।
बरनि सुतीछ्न प्रीति पुनि प्रभु अगस्ति सत्संग।।65।।

जिस प्रकार विराध का वध हुआ और शरभंगजीने शरीर त्याग किया, वह प्रसंग कह-कर, फिर सुतीक्ष्णजी का प्रेम वर्णन करके प्रभु और अगस्त्यजीका सत्संग वृत्तान्त कहा।।65।।

चौ.-कहि दंडक बन पावनताई। गीध मइत्री पुनि तेहिं गाई।।
पुनि प्रभु पंचबटीं कृत बासा। भंजी सकल मुनिन्ह की त्रासा।।1।।

दण्डकवन का पवित्र करना कहकर फिर भुशुण्डिजी ने गृध्रराज के साथ मित्रता का वर्णन किया। फिर जिस प्रकार प्रभुने पंचवटी में निवास किया और सब मुनियों के भय का नाश किया।।1।।

पुनि लछिमन उपदेस अनूपा। सूपनखा जिमि कीन्हि कुरूपा।।
खर दूषन बध बहुरि बखाना। जिमि सब मरमु दसानन जाना।।2।।

और फिर जैसे लक्ष्मणजीको अनुपम उपदेश दिया और शूर्पणखा को कुरूप किया, वह सब वर्णन किया। फिर खर-दूषण-वध और जिस प्रकार रावण ने सब समाचार जाना, वह बखानकर कहा।।2।।

दसकंधर मारीच बतकही। जेहि बिधि भई सो सब तेहिं कही।।
पुनि माया सीता कर हरना। श्रीरघुबीर बिरह कछु बरना।।3।।

तथा जिस प्रकार रावण और मारीच की बातचीत हुई, वह सब उन्होंने कही। फिर मायासीता का हरण और श्रीरघुवीर के विरह का कुछ वर्णन किया।।3।।

पुनि प्रभु गीध क्रिया जिमि कीन्ही। बधि कबंध सबरिहि गति दीन्ही।।
बहुरि बिरह बरनत रघुबीरा। जेहि बिधि गए सरोबर तीरा।।4।।

फिर प्रभुने गिद्ध जटायुकी जिस प्रकार क्रिया की, कबन्ध का बध करके शबरी को परमगति दी और फिर जिस प्रकार विरह-वर्णन करते हुए श्रीरघुवीरजी पंपासर के तीरपर गये, वह सब कहा।।4।।

दो.-प्रभु नारद संबाद कहि मारुति मिलन प्रसंग।
पुनि सुग्रीव मिताई बालि प्रान कर भंग।।66क।।

प्रभु और नारद जी का संवाद और मारुतिके मिलने का प्रसंग कहकर फिर सुग्रीवसे मित्रता और बालि के प्राणनाश का वर्णन किया।।66(क)।।

गीताप्रेस गोरखपुर

कपिहि तिलक करि प्रभु कृत सैल प्रबरषन बास।
बरनन बर्षा सरद अरु राम रोष कपि त्रास।।66ख।।

सुग्रीव का राज तिलक करके प्रभु ने प्रवर्षण पर्वतपर निवास किया, तथा वर्षा और शरद् का वर्णन, श्रीरामजीका सुग्रीवपर रोष और सुग्रीव का भय आदि प्रसंग कहे।।66(ख)।।

चौ.-जेहि बिधि कपिपति कीस पठाए। सीता खोज सकल दिसि धाए।।
बिबर प्रबेस कीन्ह जेहि भाँती। कपिन्ह बहोरि मिला संपाती।।1।।

जिस प्रकार वानर राज सुग्रीव ने वानरों को भेजा और वे सीता जी की खोज में जिस प्रकार सब दिशाओं में गये, जिस प्रकार उन्होंने बिल में प्रवेश किया और फिर जैसे वानरों को सम्पाती मिला, वह कथा कही।।1।।

सुनि सब कथा समीरकुमारा। नाघत भयउ पयोधि अपारा।।
लंकाँ कपि प्रबेस जिमि कीन्हा। पुनि सीतहि धीरजु जिमि दीन्हा।।2।।

संपातीसे सब कथा सुनकर पवनपुत्र हनुमान् जी जिस तरह अपार समुद्र को लाँघ गये, फिर हनुमान् जी ने जैसे लंका में प्रवेश किया और फिर जैसे सीताजी को धीरज दिया सो सब कहा।।2।।

बन उजारि रावनहि प्रबोधी। पुर दहि नाघेउ बहुरि पयोधी।।
आए कपि सब जहँ रघुराई। बैदेही की कुसल सुनाई।।3।।

अशोकवन को उजाड़कर, रावण को समझाकर, लंकापुरी को जलाकर फिर जैसे उन्होंने समुद्रको लाँघा और जिस प्रकार सब वानर वहाँ आये, जहाँ श्रीरघुनाथजी थे और आकर श्रीजानकीजी की कुशल सुनायी,।।3।।

सेन समेति सथा रघुबीरा। उतरे जाइ बारिनिधि तीरा।।
मिला बिभीषन जेहि बिधि आई। सागर निग्रह कथा सुनाई।।4।।

फिर जिस प्रकार सेनासहित श्रीरघुवीर जाकर समुद्रको तटपर उतरे और जिस प्रकार विभीषण जी आकर उनसे मिले, वह सब और समुद्रकी बाँधनेकी कथा उसने सुनायी।।4।।

दो.-सेतु बाँधि कपि सेन जिमि उतरी सागर पार।
गयउ बसीठी बीरबर जेहि बिधि बालिकुमार।।67क।।

पुल बाँधकर जिस प्रकार वानरों की सेना समुद्र के पार उतरी और जिस प्रकार वीरश्रेष्ठ बालिपुत्र अंगद दूत बनकर गये, वह सब कहा।।67(क)।।

निसिचर कीस लराई बरनिसि बिबिध प्रकार।
कुंभकरन घननाद कर बल पौरुष संघार।।67ख।।

फिर राक्षसों और वानरोंके युद्धका अनेकों प्रकारसे वर्णन किया। फिर कुम्भकर्ण और मेघनाद के बल, पुरुषार्थ और संहारकी कथा कही।।67(ख)।।

चौ.-निसिचर निकर मरन बिधि नाना। रघुपति रावन समर बखाना।।
रावन बध मंदोदरि सोका। राज बिभीषन देव असोका।।1।।

गीताप्रेस गोरखपुर

नाना प्रकार के राक्षस समूहों के मरण तथा श्रीरघुनाथजी और रावण के अनेक प्रकार के युद्धा का वर्णन किया। रावणवध, मंदोदरी का शोक, विभीषण का राज्यभिषेक और देवताओं का शोकरहित होना कहकर,।।1।।

सीता रघुपति मिलन बहोरी। सुरन्ह कीन्हि अस्तुति कर जोरी।।
पुनि पुष्पक चढ़ि कपिन्ह समेता। अवध चले प्रभु कृपा निकेता।।2।।

फिर सीताजी और श्रीरघुनाथजीका मिलाप कहा। जिस प्रकार देवताओंने हाथ जोड़कर स्तुति की और फिर जैसे वानरोंसमेत पुष्पकविमानपर चढ़कर कृपाधाम प्रभु अवधपुरी को चले, वह कहा।।2।।

जेहि बिधि राम नगर निज आए। बायस बिसद चरित सब गाए।।
कहेसि बहोरि राम अभिषेका। पुर बरनत नृपनीति अनेका।।3।।

जिस प्रकार श्रीरामचन्द्रजी अपने नगर (अयोध्या) में आये, वे सब उज्ज्वल चरित्र काकभुशुण्डिजीने विस्तारपूर्वक वर्णन किये। फिर उन्होंने श्रीरामजीका राज्यभिषेक कहा। [शिवजी कहते हैं-] अयोध्यापुरीका और अनेक प्रकारकी राजनीतिका वर्णन करते हुए-।।3।।

कथा समस्त भुसुंड बखानी। जो मैं तुम्ह सन कही भवानी।।
सुनि सब राम कथा खगनाहा। कहत बचन मन परम उछाहा।।4।।

भुशुण्डिजीने वह सब कथा कही जो हे भवानी ! मैंने तुमसे कही ! सारी रामकथा सुनकर पक्षिराज गरुड़जी मनमें बहुत उत्साहित (आनन्दित) होकर वचन कहने लगे।।4।।

सो.-गयउ मोर संदेह सुनेउँ सकल रघुपति चरित।।
भयउ राम पद नेह तव प्रसाद बायस तिलक।।68क।।

श्रीरघुनाथजीके सब चरित्र मैंने सुने, जिससे मेरा सन्देह जाता रहा। हे काकशिरोमणि ! आपके अनुग्रह से श्रीरामजीके चरणोंमें मेरा प्रेम हो गया।।68(क)।।

मोहि भयउ अति मोह प्रभु बंधन रन महुँ निरखि।
चिदानंद संदोह राम बिकल कारन कवन।।68ख।।

युद्धमें प्रभुका नागपाशसे बन्धन देखकर मुझे अत्यन्त मोह हो गया था कि श्रीरामजी तो सच्चिदानन्दघन हैं, वे किस कारण व्याकुल हैं।।68(ख)।।

चौ.-देखि चरित अति नर अनुसारी। भयउ हृदयँ मम संसय भारी।।
सोइ भ्रम अब हित करि मैं माना। कीन्ह अनुग्रह कृपानिधाना।।1।।

बिल्कुल ही लौकिक मनुष्योंका-सा चरित्र देखकर मेरे हृदय में सन्देह हो गया। मैं अब उस भ्रम (सन्देह) को अपने लिये हित करके समझता हूँ। कृपानिधान ने मुझपर यह बड़ा अनुग्रह किया।।1।।

जो अति आतप ब्याकुल होई। तरु छाया सुख जानइ सोई।।
जौं नहिं होत मोह अति मोही। मिलतेउँ तात कवन बिधि तोही।।2।।

जो धूप से अत्यन्त व्याकुल होता है, वही वृक्ष की छाया का सुख जानता है। हे तात ! यदि मुझे अत्यन्त मोह न होता तो मैं आपसे किस प्रकार मिलता?।।2।।

सुनतेउँ किमि हरि कथा सुहाई। अति बिचित्र बहु बिधि तुम्ह गाई।।
निगमागम पुरान मत एहा। कहहिं सिद्ध मुनि नहिं संदेहा।।3।।

और कैसे अत्यन्त विचित्र यह सुन्दर हरिकथा सुनाता; जो आपने बहुत प्रकार से गायी है ? वेद, शास्त्र और पुराणोंका यही मत है; सिद्ध और मुनि भी यही कहते हैं, इसमें सन्देह नहीं कि-।।3।।

संत बिसुद्ध मिलहिं परि तेही। चितवहिं राम कृपा करि जेही।।
राम कृपाँ तव दरसन भयऊ। तव प्रसाद सब संसय गयऊ।।4।।

शुद्ध (सच्चे) संत उसी को मिलते हैं, जिसे श्रीरामजी कृपा करके देखते हैं। श्रीरामजीकी कृपासे मुझे आपके दर्शन हुए और आपकी कृपासे मेरा सन्देह चला गया।।4।।

दो.-सुनि बिहंगपति बानी सहित बिनय अनुराग।
पुलक गात लोचन सजल मन हरषेउ अति काग।।69क।।

पक्षिराज गरुड़जी का विनय और प्रेम युक्त वाणी सुनकर काकभुशुण्डिजीका शरीर पुलकित हो गया, उनके नेत्रोंमें जल भर आया और वे मन में अत्यन्त हर्षित हुए।।69(क)।।

श्रोता सुमति सुसील सुचि कथा रसिक हरि दास।
पाइ उमा पति गोप्यमपि सज्जन करहिं प्रकास।।69ख।।

हे उमा ! सुन्दर बुद्धिवाले, सुशील, पवित्र कथा के प्रेमी और हरि के सेवक श्रोता को पाकर सज्जन अत्यन्त गोपनीय (सबके सामने प्रकट न करने योग्य) रहस्य को प्रकट कर देते हैं।।69(ख)।।

चौ.-बोलेउ काकभुसंड बहोरी। नभग नाथ पर प्रीति न थोरी।।
सब बिधि नाथ पूज्य तुम्ह मेरे। कृपापात्र रघुनायक केरे।।1।।

काकभुशुण्डिजीने कहा-पक्षिराजपर उनका प्रेम कम न था (अर्थात् बहुत था)- हे नाथ ! आप सब प्रकार से मेरे पूज्य हैं और श्रीरघुनाथजीके कृपापात्र हैं।।1।।

तुम्हहि न संसय मोह न माया। मो पर नाथ कीन्हि तुम्ह दाया।।
पठइ मोह मिस खगपति तोही। रघुपति दीन्हि बड़ाई मोही।।2।।

आपको न सन्देह है और न मोह अथवा माया ही है। हे नाथ ! आपने तो मुझपर दया की है। पक्षिराज ! मोह के बहाने श्रीरघुनाथजीने आपको यहाँ भेजकर मुझे बड़ाई दी है।।2।।

तुम्ह निज मोह कही खग साईं। सो नहिं कछु आचरज गोसाईं।।
नारद भव बिरंचि सनकादी। जे मुनिनायक आमतबादी।।3।।

हे पक्षियों के स्वामी ! आपने अपना मोह कहा, सो हे गोसाईं ! यह कुछ आश्चर्य नहीं है। नारदजी, शिवजी, बह्माजी और

सनकादि जो आत्मतत्त्वके मर्मज्ञ और उसका उपदेश करनेवाले श्रेष्ठ मुनि हैं।।3।।

मोह न अंध कीन्ह केहि केही। को जग काम नचाव न जेही।।
तृस्नाँ केहि न कीन्ह बौराहा। केहि कर हृदय क्रोध नहिं दाहा।।4।।

उनमें से भी किस-किसको मोह ने अंधा (विवेकशून्य) नहीं किया ? जगत् में ऐसा कौन है जिसे काम ने न नचाया हो ? तृष्णा ने किसको मतवाला नहीं बनाया ? क्रोध ने किसका हृदय न जलाया ?।।4।।

दो.-ग्यानी तापस सूर कबि कोबिद गुन आगार।
केहि कै लोभ बिडंबना कीन्हि न एहिं संसार।।70क।।

इस संसार में ऐसा कौन सा ज्ञानी, तपस्वी, शूरवीर, कपि, विद्वान और गुणों का धाम है, जिसकी लोभने बिडम्बना (मिट्टी पलीद) न की हो।।70(क)।।

श्री मद बक्र न कीन्ह केहि प्रभुता बधिर न काहि।
मृगलोचनि के नैन सर को अस लाग न जाहि।।70ख।।

लक्ष्मी के मदने किसको टेढ़ा और प्रभुताने किसको बहरा नहीं कर दिया ? ऐसा कौन है, जिसे मृगनयनी (युवती स्त्री) के नेत्र-बाण न लगे हों।।70(ख)।।

चौ.-गुन कृत सन्यपात नहिं केही। कोउ न मान मद तजेउ निबेही।।
जोबन ज्वर केहि नहिं बलकावा। ममता केहि कर जस न नसावा।।1।।

[रज, तम आदि] गुणों का किया हुआ सन्निपात किसे नहीं हुआ ? ऐसा कोई नहीं है जिसे मान और मद ने अछूता छोड़ा हो। यौवन के ज्वर ने किसे आपे से बाहर नहीं किया ? ममता ने किसके यश का नाश नहीं किया ?।।1।।

मच्छर काहि कलंक न लावा। काहि न सोक समीर डोलावा।।
चिंता साँपिनि को नहिं खाया। को जग जाहि न ब्यापी माया।।2।।

मत्सर (डाह) ने किसको कलंक नहीं लगाया ? शोकरूपी पवन ने किसे नहीं हिला दिया ? चिन्तारूपी साँपिन ने किसे नहीं खा लिया ? जगत् में ऐसा कौन है, जिसे माया ने व्यापी हो ?।।2।।

कीट मनोरथ दारु सरीरा। जेहि न लाग घुन को अस धीरा।।
सुत बित लोक ईषना तीनी। केहि कै मति इन्ह कृत न मलीनी।।3।।

मनोरथ कीड़ा है, शरीर लकड़ी है। ऐसा धैर्यवान कौन है, जिसके शरीर में यह कीड़ा न लगा हो ? पुत्र की, धन की और लोक प्रतिष्ठा की-इन तीन प्रबल इच्छाओं ने किसकी बुद्धि को मलिन नहीं कर दिया (बिगाड़ नहीं दिया) ?।।3।।

यह सब माया कर परिवारा। प्रबल अमिति को बरनै पारा।।
सिव चतुरानन जाहि डेराहीं। अपर जीव केहि लेखे माहीं।।4।।

यह सब माया का बड़ा बलवान् परिवार है। यह अपार है, इसका वर्णन कौन कर सकता है ? शिवजी और ब्रह्माजी भी जिससे डरते हैं, तब दूसरे जीव तो किस गिनती में है?।।4।।

दो.-ब्यापि रहेउ संसार महुँ माया कटक प्रचंड।
सेनापति कामादि भट दंभ कपट पाषंड।।71क।।

मायाकी प्रचण्ड सेना संसारभर में छायी हई है। कामादि (काम, क्रोध और लोभ) उसके सेना पति हैं और दम्भ, कपट और पाखण्ड योद्धा हैं।।71(क)।।

सो दासी रघुबीर कै समुझें मिथ्या सोपि।।
छूट न राम कृपा बिनु नाथ कहउँ पद रोपि।।71ख।।

वह माया श्रीरघुवीर की दासी है। यद्यपि समझ लेने पर वह मिथ्या ही है, किन्तु वह श्रीरामजीकी कृपाके बिनी छूटती नहीं। हे नाथ ! यह मैं प्रतिज्ञा करके कहता हूँ।।71(ख)।।

चौ.-जो माया सब जगहि नचावा। जासु चरित लखि काहुँ न पावा।।
सोइ प्रभु भ्रू बिलास खगराजा। नाच नटी इव सहित समाजा।।1।।

जो माया सारे जगत् को नचाती है और जिसका चरित्र (करनी) किसी ने नहीं लख पाया, हे खगराज गरुड़जी ! वही माया प्रभु

श्रीरामचन्द्रजी की भ्रकुटीके इशारेपर अपने समाज (परिवार) सहित नटी की तरह नाचती है।।1।।

सोइ सच्चिदानंद घन रामा। अज बिग्यान रूप बल धामा।।
ब्यापक ब्याप्प अखंड अनंता। अखिल अमोघसक्ति भगवंता।।2।।

श्रीरामजी वही सच्चिदानन्दघन हैं जो अजन्मा, विज्ञानस्वरूप, रूप और बलके धाम, सर्वव्यापक एवं व्याप्य (सर्वरूप) अखण्ड, अनन्त, सम्पूर्ण अमोघशक्ति (जिसकी शक्ति कभी व्यर्थ नहीं होती) और छः ऐशर्यों से युक्त भगवान् हैं।।2।।

अगुन अदभ्र गिरा गोतीता। सबदरसी अनवद्य अजीता।।
निर्मम निराकार निरमोहा। नित्य निरंजन सुख संदोहा।।3।।

वे निर्गुण (माया के गणों से रहित), महान् वाणी और इन्द्रियोंसे परे सब कुछ देखनेवाले, निर्दोष, अजेय, ममतारहित, निराकार (मायिक आकारसे रहित), मोहरहित, नित्य, मायारहित, सुख की राशि,।।3।।

प्रकृति पार प्रभु सब उर बासी। ब्रह्म निरीह बिरज अबिनासी।।
इहाँ मोह कर कारन नाहीं। रबि सन्मुख तम कबहुँ कि जाहीं।।4।।

प्रकृति से परे, प्रभु (सर्वसमर्थ) सदा सबके हृदय में बसने वाले, इच्छारहित, विकाररहित, अविनाशी ब्रह्म हैं। यहाँ (श्रीराम में) मोह का कारण ही नहीं है। क्या अन्धकार का समूह कभी सूर्य के सामने जा सकता है ?।।4।।

दो.-भगत हेतु भगवान प्रभु राम धरेउ तनु भूप।
किए चरित पावन परम प्राकृत नर अनुरूप।।72क।।

भगवान् प्रभु श्रीरामचन्द्रजीने भक्तोंके लिये राजाका शरीर धारण किया और साधारण मनुष्योंके-से अनेकों परम पावन चरित्र किये।।72(क)।।

जथा अनेक बेष धरि नृत्य करइ नट कोइ।
सोइ सोइ भाव देखावइ आपुन होइ न सोइ।।72ख।।

जैसे कोई नट (खेल करनेवाला) अनेक वेष धारण करके नृत्य करता है, और वही-वही (जैसा वेष होता है, उसीके अनुकूल)

भाव दिखलाता है; पर स्वयं वह उनमेंसे कोई हो नहीं जाता।।72(ख)।।

चौ.-असि रघुपति लीला उरगारी। दनुज बिमोहनि जन सुखकारी।।
जे मति मलिन बिषय बस कामी। प्रभु पर मोह धरहिं इमि स्वामी।।1।।

हे गरुड़जी ! ऐसी ही श्रीरघुनाथजी की यह लीला है, जो राक्षसों को विशेष मोहित करनेवाली और भक्तों को सुख देनेवाली है। हे स्वामी ! जो मनुष्य मलिन बुद्धि, विषयों के वश और कामी हैं, वे ही प्रभु पर इस प्रकार मोह का आरोप करते हैं।।1।।

नयन दोष जा कहँ जब होई। पीत बरन ससि कहुँ कह सोई।।
जब जेहि दिसि भ्रम होइ खगेसा। सो कह पच्छिम उयउ दिनेसा।।2।।

जब जिसको [कँवल आदि] नेत्र दोष होता है, तब वह चन्द्रमा को पीले रंग का कहता है। हे पक्षिराज ! जब जिसे दिशाभ्रम होता है, तब वह कहता है कि सूर्य पश्चिम में उदय हुआ है।।2।।

नौकारूढ़ चलत जग देखा। अचल मोह बस आपुहि लेखा।।
बालक भ्रमहिं न भ्रमहिं गृहादी। कहहिं परस्पर मिथ्याबादी।।3।।

नौका पर चढ़ा हुआ मनुष्य जगत् को चलता हुआ देखता है और मोह वश अपने को अचल समझता है।।3।।

हरि बिषइक अस मोह बिहंगा। सपनेहुँ नहिं अग्यान प्रसंगा।।
मायाबस मतिमंद अभागी। हृदयँ जमनिका बहुबिधि लागी।।4।।

हे गरुड़जी ! श्रीहरिके बिषय में मोह की कल्पना भी ऐसी ही है, भगवान् में तो स्वप्नमें भी अज्ञानका प्रसंग (अवसर) नहीं है। किन्तु जो माया के वश, मन्दबुद्धि और भाग्यहीन हैं और जिनके हृदय पर अनेकों प्रकारके परदे पड़े हैं।।4।।

ते सठ हठ बस संसय करहीं। निज अग्यान राम पर धरहीं।।5।।

वे मूर्ख हठ के वश होकर सन्देह करते हैं और अपना अज्ञान श्रीरामजी पर आरोपित करते हैं।।5।।

दो.-काम क्रोध मद लोभ रत गृहासक्त दुखरूप।
ते किमि जानहिं रघुपतिहि मूढ़ परे तम कूप।।73क।।

गीताप्रेस गोरखपुर

जो काम, क्रोध, मद और लोभ में रत हैं और दुःखरूप घरमें आसक्त हैं, वे श्रीरघुनाथजी को कैसे जान सकते हैं ? वे मूर्ख तो अन्धकार रूपी कुएँ में पड़े हुए हैं।।73(क)।।

निर्गुन रूप सुलभ अति सगुन जान नहिं कोई।
सुगम अगम नाना चरित सुनि मुनि मन भ्रम होइ।।73ख।।

निर्गुण रूप अत्यन्त सुलभ (सहज ही समझ में आ जाने वाला) है, परंतु [गुणातीत दिव्य] सगुण रूपको कोई नहीं जानता। इसलिये उन सगुण भगवान् को अनेक प्रकार के सुगम और अगम चरित्रोंको सुनकर मुनियों के भी मन को भ्रम हो जाता है।।73(ख)।।

चौ.-सुनु खगेस रघुपति प्रभुताई। कहउँ जथामति कथा सुहाई।
जेहि बिधि मोह भयउ प्रभु मोही। सोउ सब कथा सुनावउँ तोही।।1।।

हे पक्षीराज गरुड़जी ! श्रीरघुनाथजी की प्रभुता सुनिये। मैं अपनी बुद्धि के अनुसार वह सुहावनी कथा कहता हूँ। हे प्रभो ! मुझे जिस प्रकार मोह हुआ है, वह सब कथा भी आपको सुनाता हूँ।।1।।

राम कृपा भाजन तुम्ह ताता। हरि गुन प्रीति मोहि सुखदाता।।
ताते नहिं कछु तुम्हहिं दुरावउँ। परम रहस्य मनोहर गावउँ।।2।।

हे तात ! आप श्रीरामजीके कृपा पात्र है। श्रीहरिके गुणों में आपकी प्रीति है, इसीलिये आप मुझे सुख देनेवाले हैं। इसी से मैं आपसे कुछ भी नहीं छिपाता और अत्यन्त रहस्य की बातें आपको गाकर सुनाता हूँ।।2।।

सुनहु राम कर सहज सुभाऊ। जन अभिमान न राखहिं काऊ।।
संसृत मूल सूलप्रद नाना। सकल सोक दायक अभिमाना।।3।।

श्रीरामचन्द्रजीका सहज स्वभाव सुनिये; वे भक्तों में अभिमान कभी नहीं रहने देते। क्योंकि अभिमान जन्म-मरणरूप संसारका मूल है और अनेक प्रकार के क्लेशों तथा समस्त शोकों को देनेवाला है।।3।।

गीताप्रेस गोरखपुर

ताते करहिं कृपानिधि दूरी। सेवक पर ममता अति भूरि।।
जिमि सिसु तन ब्रन होइ गोसाईं। मातु चिराव कठिन की
नाईं।।4।।

इसीलिये कृपानिधि उसे दूर कर देते हैं; क्योंकि सेवक पर उनकी बहुत ही अधिक ममता है। हे गोसाईं ! जैसे बच्चे के शरीर में फोड़ा हो जाता है, तो माता उसे कठोर हृदय की भाँति चिरा डालती है।।4।।

दो.-जदपि प्रथम दुख पावइ रोवइ बाल अधीर।
ब्याधि नास हित जननी गनति न सो सिसु पीर।।74क।।

यद्यपि बच्चा पहले (फोड़ा चिराते समय) दुःख पाता है और अधीर होकर रोता है, तो भी रोगके नाश के लिये माता बच्चे की उस पीड़ा को कुछ भी नहीं गिनती (उसकी परवा नहीं करती और फोड़े कों चिरवा ही डालती है)।।74(क)।।

तिमि रघुपति निज दास कर हरहिं मान हित लागि।
तुलसिदास ऐसे प्रभुहि कस न भजहु भ्रम त्यागि।।74ख।।

उसी प्रकार श्रीरघुनाथजी अपने दास का अभिमान उसके हितके लिये हर लेते हैं तुलसीदासजी कहते हैं कि ऐसे प्रभुको भ्रम त्यागकर क्यों नहीं भजते।।74(ख)।।

चौ.-राम कृपा आपनि जड़ताई। कहउँ खगेस सुनहु मन लाई।।
जब जब राम मनुज तनु धरहीं। भक्त हेतु लीला बहु करहीं।।1।।

हे पक्षिराज गरुड़जी ! श्रीरामजीकी कृपा और अपनी जड़ता (मूर्खता) की बात कहता हूँ, मन लगाकर सुनिये। जब-जब श्रीरामचन्द्रजी मनुष्य शरीर धारण करते हैं और भक्तों के लिये बहुत-सी लीलाएँ करते हैं,।।1।।

तब तब अवधपुरी मैं जाऊँ। बालचरित बिलोकि हरषाऊँ।
जन्म महोत्सव देखउँ जाई। बरष पाँच तहँ रहउँ लोभाई।।2।।

तब-तब मैं अयोध्यापुरी जाता हूँ और उनकी बाल लीला देखकर हर्षित होता हूँ। वहाँ जाकर मैं जन्म महोत्व देखता हूँ और [भगवान् की शिशुलीलामें] लुभाकर पाँच वर्ष तक वहीं रहता हूँ।।2।।

इष्टदेव मम बालक रामा। सोभा बपुष कोटि सत कामा।।
निज प्रभु बदन निहारि निहारी। लोचन सुफल करउँ
उरगारी।।3।।

बालक रूप श्रीरामचन्द्रजी मेरे इष्ट देव हैं, जिनके शरीर में अरबों कामदेवों की शोभा है। हे गरुड़जी ! अपने प्रभु का मुख देख-देखकर मैं नेत्रों को सफल करता हूँ।।3।।

लघु बायस बपु धरि हरि संगा। देखउँ बालचरित बहु रंगा।।4।।

छोटे-से कौए का शरीर धरकर और भगवान् के साथ-साथ फिर कर मैं उनके भाँति-भाँति के बालचरित्रों को देखा करता हूँ।।4।।

दो.-लरिकाईं जहँ जहँ फिरहिं तहँ तहँ संग उड़ाउँ।
जूठनि परइ अजिर महँ सो उठाइ करि खाउँ।।75क।।

लड़कपन में वे जहाँ-जहाँ फिरते हैं, वहाँ-वहाँ मैं साथ-साथ उड़ता हूँ और आँगन में उनकी जो जूठन पड़ती है, वही उठाकर खाता हूँ।।75(क)।।

एक बार अतिसय सब चरित किए रघुबीर।
सुमिरत प्रभु लीला सोइ पुलकित भयउ सरीर।।75ख।।

गीताप्रेस गोरखपुर

एक बार श्रीरघुबीर जी ने सब चरित्र बहुत अधिकता से किये। प्रभु की उस लीला का स्मरण करते ही काकभुशुण्डिजी का शरीर [प्रेमानन्दवश] पुलकित हो गया।।75(ख)।।

चौ.-कहइ भुसुंड सुनहु खगनायक। राम चरित सेवक सुखदायक।।
नृप मंदिर सुंदर सब भाँती। खचित कनक मनि नाना जाती।।1।।

भुशुण्डिजी कहने लगे-हे पक्षिराज ! सुनिये, श्रीरामजी का चरित्र सेवकोंको सुख देनेवाला है। [अयोध्याका] राजमहल सब प्रकारसे सुन्दर है। सोने के महल में नाना प्रकार के रत्न जड़े हुए हैं।।1।।

बरनि न जाइ रुचिर अँगनाई। जहँ खेलहिं नित चारिउ भाई।।
बालबिनोद करत रघुराई। बिचरत अजिर जननि सुखदाई।।2।।

सुन्दर आँगन का वर्णन नही किया जा सकता, जहाँ चारो भाई नित्य खेलते हैं। माताको सुख देनेवाले बाल-विनोद करते हुए श्रीरघुनाथजी आँगनमें विचर रहे हैं।2।।

मरकत मृदुल कलेवर स्यामा। अंग अंग प्रति छबि बहु कामा।।
नव राजीव अरुन मृदु चरना। पदज रुचिर नख ससि दुति हरना।।3।।

मरकत मणि के समान हरिताभ श्याम और कोमल शरीर है। अंग-अंग में बहुत से काम देवों की शोभा छायी हुई है। नवीन [लाल] कमलके समान लाल-लाल कोमल चरण है। सुन्दर अँगुलियाँ हैं और नख अपनी ज्योति से चन्द्रमा की कान्ति को हरने वाले हैं।।3।।

ललित अंक कुलिसादिक चारी। नूपुर चारु मधुर रवकारी।।
चारु पुरट मनि रचित बनाई। कटि किंकिन कल मुखर सुहाई।।4।।

[तलवे में] वज्रादि (वज्र, अंकुश, ध्वजा और कमल) के चार सुन्दर चिह्न है। चरणों में मधुर शब्द करनेवाले सुन्दर नुपूर हैं। मणियों (रत्नों) से जड़ी हुई सोने की बनी हुई सुन्दर करधनीका शब्द सुहावना लग रहा है।।4।।

दो.-रेखा त्रय सुंदर उदर नाभी रुचिर गँभीर।।
उर आयत भ्राजत बिबिधि बाल बिभूषन चीर।।76।।

उदरपर सुन्दर तीन रेखाएँ (त्रिवली) हैं, नाभि सुन्दर और गहरी है। विशाल वक्षःस्थल पर अनेकों प्रकार के बच्चों के आभूषण और वस्त्र सुभोभित हैं।।76।।

चौ.-अरुन पानि नख करज मनोहर। बाहु बिसाल बिभूषन सुंदर।।
कंध बाल केहरि दर ग्रीवा। चारु चिबुक आनन छबि सींवा।।1।।

लाल-लाल हथेलियाँ, नख और अँगुलियाँ मनको हरने वाले है और विशाल भुजाओं पर सुन्दर आभूषण हैं। बालसिंह (सिंहके बच्चे) के-से कंधे और शंख के समान (तीन रेखाओं से युक्त) गला है। सुन्दर ठुड्डी है और मुख तो छवि की सीमा है।।1।।

कलबल बचन अधर अरुनारे। दुइ दुई दसन बिसद बर बारे।।
ललित कपोल मनोहर नासा। सकल सुखद ससि कर सम हासा।।2।।

कलबल (तोतले) वचन हैं, लाल-लाल ओंठ हैं। उज्ज्वल, सुन्दर और छोटी-छोटी [ऊपर और नीचे] दो दो दँतुलियाँ हैं, सुन्दर गाल, मनोहर नासिका और सब सुखों को देनेवाली चन्द्रमा की [अथवा सुख देने वाली समस्त कलाओं से पूर्ण चन्द्रमा की] किरणों के समान मधुर मुसकान है।।2।।

नील कंज लोचन भव मोचन। भ्राजत भाल तिलक गोरोचन।।
बिकट भृकुटि सम श्रवन सुहाए। कुंचित कच मेचक छबि
छाए।।3।।

नीले कमलके समान नेत्र जन्म-मृत्यु [के बन्धन] से छुड़ानेवाले हैं। ललाटपर गोरोचनका तिलक सुशोभित है। भौंहे टेढ़ी हैं। कान सम और सुन्दर हैं। काले और घुँघराले केशोंकी छवि छा रही है।।3।।

पीत झीनि झगुली तन सोही। किलकनि चितवनि भावति
मोही।।
रूप रासि नृप अजिर बिहारी। नाचहिं निज प्रति बिंब
निहारी।।4।।

पीली और महीन झुँगली शरीर पर शोभा दे रही है। उनकी किलकारी और चितवन मुझे बहुत ही प्रिय लगती है। राजा दशरथजी के आँगन में विहार करनेवाली रूप की राशि श्रीरामचन्द्रजी अपनी परछाहीं देखकर नाचते हैं।।4।।

मोहि सन करहिं बिबिधि बिधि क्रीड़ा। बरनत मोहि होति अति
ब्रीड़ा।।
किलकत मोहि धरन जब धावहिं। चलउँ भागि तब पूप
देखावहिं।।5।।

और मुझसे बहुत प्रकार के खेल करते हैं, जिन चरित्रों का वर्णन करते मुझे लज्जी आती है। किलकारी मारते हुए जब वे मुझे पकड़ने दौड़ते और मैं भाग चलता तब मुझे पुआ दिखलाते थे।।5।।

दो.-आवत निकट हँसहिं प्रभु भाजत रुदन कराहिं।।
जाउँ समीप गहन पद फिरि फिरि चितइ पराहिं।।77क।।

मेरे निकट आने पर प्रभु हँसते हैं और भाग जाने पर रोते हैं। और जब मैं उनका चरण स्पर्श करने के लिये पास जाता हूँ, तब वे पीछे फिर-फिरकर मेरी ओर देखते हैं हुए भाग जाते हैं।।77(क)।।

प्राकृत सिसु इव लीला देखि भयउ मोहि मोह।
कवन चरित्र करत प्रभु चिदानंद संदोह।।77ख।।

साधारण बच्चों जैसी लीला देखकर मुझे (शंका) हुआ कि सच्चिदानन्दघन प्रभु यह कौन [महत्त्व का] चरित्र (लीला) कर रहे हैं।।77(ख)।।

चौ.-एतना मन आनत खगराया। रघुपति प्रेरित ब्यापी माया।।
सो माया न दुखद मोहि काहीं। आन जीव इव संसृत नाहीं।।1।।

हे पक्षिराज ! मन में इतनी (शंका) लाते ही श्रीरघुनाथजी के द्वारा प्रेरित माया मुझपर छा गयी है। परंतु वह माया न तो मुझे दुःख देने वाली हुई और न दूसरे जीवों की भाँति संसार में डालने वाली हुई।।1।।

नाथ इहाँ कछु कारन आना। सुनहु सो सावधान हरिजाना।।
ग्यान अखंड एक सीताबर। माया बस्य जीव सचराचर।।2।।

हे नाथ ! यहाँ कुछ दूसरा ही कारण है। हे भगवान् के वाहन गरुड़जी ! उसे सावधान होकर सुनिये। एक सीतापति श्रीरामजी ही अखण्ड ज्ञानस्वरुप हैं और जड़-चेतन सभी जीव माया के वश हैं।।2।।

जौं सब कें रह ग्यान एकरस। ईस्वर जीवहि भेद कहहु कस।।
माया बस्य जीव अभिमानी। ईस बस्य माया गुन खानी।।3।।

यदि जीवों को एकरस (अखण्ड) ज्ञान रहे तो कहिये, फिर ईश्वर और जीवमें भेद ही कैसा ? अभिमानी जीव मायाके वश है और

वह [सत्त्व, रज, तम-इन] तीनों गुणों की खान माया ईश्वर के वशमें है।।3।।

परबस जीव स्वबस भगवंता। जीव अनेक एक श्रीकंता।।
मुधा भेद जद्यपि कृत माया। बिनु हरि जाइ न कोटि उपाया।।4।।

जीव परतंत्र है, भगवान् स्वतत्र हैं। जीव अनेक हैं, श्रीपति भगवान् एक हैं। यद्यपि माया का किया हुआ यह भेद असत् है तथापि वह भगवान् के भजन के बिना करोड़ों उपाय करनेपर भी नहीं जा सकता।।4।।

दो.-रामचंद्र के भजन बिनु जो चह पद निर्बान।।
ग्यानवंत अपि सो नर पसु बिनु पूँछ बिषान।।78क।।

श्रीरामचन्द्रजी के भजन बिना जो मोक्षपद चाहता है, वह मनुष्य ज्ञानवान् होनेपर भी बिना पूँछ और सींग का पशु है।।78(क)।।

राकापति षोड़स उअहिं तारागन समुदाइ।
सकल गिरिन्ह दव लाइअ बिनु रबि राति न जाइ।।78ख।।

सभी तारागणों के साथ सोलह कलाओं से पूर्ण चन्द्रमा उदय हो और जितने पर्वत हैं, उन सबमें दावाग्नि लगा दी जाय, तो भी सूर्य के उदय हुए बिना रात्रि नहीं जा सकती।।78(ख)।।

चौ.-ऐसेहिं हरि बिनु भजन खगेसा। मिटइ न जीवन्ह केर कलेसा।।
हरि सेवकहि न ब्याप अबिद्या। प्रभु प्रेरित ब्यापइ तेहि बिद्या।।1।।

हे पक्षिराज ! इसी प्रकार श्री हरि के भजन बिना जीवोंका क्लेश नहीं मिटता। श्रीहरि के सेवक को अविद्या नहीं व्यापती। प्रभु की प्रेरणा से उसे विद्या व्यापती है।।1।।

ताते नास न होइ दास कर। भेद भगति बाढ़इ बिहंगबर।।
भ्रम तें चकित राम मोहि देखा। बिहँसे सो सुनु चरित बिसेषा।।2।।

हे पक्षिराज ! इसी से दास का नाष नहीं होता और भेद-भक्ति बढ़ती है। श्रीरामजीने मुझे जब भ्रम से चकित देखा, तब वे हँसे। वह विशेष चरित्र सुनिये।।2।।

गीताप्रेस गोरखपुर

तेहि कौतुक कर मरमु न काहूँ। जाना अनुज न मातु पिताहूँ।।
जानु पानि धाए मोहि धरना। स्यामल गात अरुन कर
चरना।।3।।

उस खेल का मर्म किसी ने नहीं जाना, न छोटे भाइयों ने और न माता पिता ने ही। वे श्याम शरीर और लाल-लाल हथेली और चरणतल वाले बालरूप श्रीरामजी घुटने और हाथों के बल मुझे पकड़ने को दौड़े।।3।।

तब मैं भागि चलेउँ उरगारी। राम गहन कहँ भुजा पसारी।।
जिमि जिमि दूरि उड़ाउँ अकासा। तहँ भुज हरि देखउँ निज
पासा।।4।।

हे सर्पों के शत्रु गरुड़जी ! तब मैं भाग चला। श्रीरामजी ने मुझे पकड़ने के लिये भुजा फैलायी। मैं जैसे-जैसे आकाशमें दूर उड़ता, वैसे-वैसे ही वहाँ श्रीहरि की भुजा को अपने पास देखता था।।4।।

दो.-ब्रह्मलोक लगि गयउँ मैं चितयउँ पाछ उड़ात।
जुग अंगुल कर बीच सब राम भुजहि मोहि तात।।79क।।

मैं ब्रह्मलोक तक गया और जब उड़ते हुए मैंने पीछे की ओर देखा, तो हे तात ! श्रीरामजी की भुजा में और मुझमें केवल दो अंगुल का बीच था।।79(क)।।

सप्तावरन भेद करि जहाँ लगें गति मोरि।
गयउँ तहाँ प्रभु भुज निरखि ब्याकुल भयउँ बहोरि।।79ख।।

सातों आवरणों को भेदकर जहाँतक मेरी गति थी वहाँतक मैं गया। पर वहाँ भी प्रभुकी भुजा को [अपने पीछे] देखकर व्याकुल हो गया।।79(ख)।।

चौ.-मूदेउँ नयन त्रसित जब भयऊँ। पुनि चितवत कोसलपुर गयऊँ।।
मोहि बिलोकि राम मुसुकाहीं। बिहँसत तुरत गयउँ मुख माहीं।।1।।

जब मैं भयभीत हो गया, तब मैंने आँखें मूँद लीं। फिर आँखे खोलकर देखते ही अवधपुरी में पहुँच गया। मुझे देखकर श्रीरामजी मुसकाने लगे। उनके हँसते ही मैं तुरंत उनके मुख में चला गया।।1।।

गीताप्रेस गोरखपुर

उदर माझ सुनु अंडज राया। देखेउँ बहु ब्रह्मांड निकाया।।
अति बिचित्र तहँ लोक अनेका। रचना अधिक एक ते एका।।2।।

हे पक्षिराज ! सुनिये, मैंने उनके पेट में बहुत से ब्रह्माण्डोंके समूह देखे। वहाँ उन (ब्रह्माण्डों में) अनेकों विचित्र लोक थे, जिनकी रचना एक-से-एक बढ़कर थी।।2।।

कोटिन्ह चतुरानन गौरीसा। अगनित उडगन रबि रजनीसा।।
अगनित लोकपाल मन काला। अगनित भूधर भूमि बिसाला।।3।।

करोड़ों ब्रह्मा जी और शिवजी, अनगिनत तारागण, सूर्य और चन्द्रमा, अनगिनत लोकपाल, यम और काल, अनगिनत विशाल पर्वत और भूमि।।3।।

सागर सरि सर बिपिन अपारा। नाना भाँति सृष्टि बिस्तारा।।
सुर मुनि सिद्ध नाग नर किंनर। चारि प्रकार जीव सचराचर।।4।।

असंख्य समुद्रस नदीस तालाब और वन तथा और भी नाना प्रकार की सृष्टि का विस्तार देखा। देवता, मुनि, सिद्ध, नाग,

मनुष्य, किन्नर, तथा चारों प्रकार के जड़ और चेतन जीव देखे।।4।।

दो.-जो नहिं देखा नहिं सुना जो मनहूँ न समाइ।
सो सब अद्‌भुत देखेउँ बरनि कवनि बिधि जाइ।।80क।।

जो कभी न देखा था, न सुना था और जो मन में भी नहीं समा सकता था (अर्थात् जिसकी कल्पना भी नहीं की जा सकती थी), वही सभी अद्‌भुत सृष्टि मैंने देखी। तब उनका किस प्रकार वर्णन किया जाय !।।80(क)।।

एक एक ब्रह्मांड महुँ रहउँ बरष सत एक।
एहि बिधि देखत फिरउँ मैं अंड कटाह अनेक।।80ख।।

मैं एक-एक ब्रह्माड में एक-एक सौ वर्षतक रहता। इस प्रकार मैं अनेकों ब्रह्माण्ड देखता फिरा।।80(ख)।।

चौ.-लोक लोक प्रति भिन्न बिधाता। भिन्न बिष्नु सिव मनु दिसित्राता।।
नर गंधर्ब भूत बेताला। किंनर निसिचर पसु खग ब्याला।।1।।

प्रत्येक लोक में भिन्न-भिन्न ब्रह्मा, भिन्न-भिन्न बिष्णु, शिव, मनु, दिक्पल, मनुष्य गन्धर्व, भूत, वैताल, किन्नर, राक्षस, पशु, पक्षी, सर्प।।1।।

देव दनुज गन नाना जाती। सकल जीव तहँ आनहि भाँती।।
महि सरि सागर सर गिरि नाना। सब पंच तहँ आनइ आना।।2।।

तथा नाना जाति के देवता एवं दैत्यगण थे। सभी जीव वहाँ दूसरे ही प्रकार के थे। अनेक पृथ्वी, नदी, समुद्र, तालाब, पर्वत तथा सब सृष्टि वहाँ दूसरी-ही-दूसरी प्रकार की थी।।2।।

अंडकोस प्रति प्रति निज रूपा। देखेउँ जिनस अनेक अनूपा।।
अवधपुरी प्रति भुवन निनारी। सरजू भिन्न भिन्न नर नारी।।3।।

प्रत्येक ब्रह्माण्ड-ब्रह्माण्ड में मैंने अपना रूप देखा तथा अनेकों अनुपम वस्तुएँ देखीं। प्रत्येक भुवन में न्यारी ही अवधपुरी, भिन्न ही सरयूजी और भिन्न प्रकार के नर-नारी थे।।3।।

दसरथ कौसल्या सुनु ताता। बिबिध रूप भरतादिक भ्राता।।
प्रति ब्रह्मांड राम अवतारा। देखउँ बालबिनोद अपारा।।4।।

हे तात ! सुनिये, दशरथजी, कौसल्याजी और भरतजी आदि भाई भी भिन्न-भिन्न रूपोंके थे। मैंने प्रत्येक ब्रहाण्डमें रामावतार और उनकी अपार बाललीलाएँ देखता फिरता।।4।।

दो.-भिन्न भिन्न मैं दीख सबु अति बिचित्र हरिजान।।
अगनित भुवन फिरेउँ प्रभु राम न देखेउँ आन।।81क।।

हे हरिवाहन ! मैंने सभी कुछ भिन्न-भिन्न और अत्यन्त विचित्र देखा। मैं अनगिनत ब्रह्माण्डोंमें फिरा, पर प्रभु श्रीरामचन्द्रजीको मैंने दूसरी तरह का नहीं देखा।।81(क)।।

सोइ सिसुपन सोइ सोभा सोइ कृपाल रघुबीर।
भुवन भुवन देखत फिरउँ प्रेरित मोह समीर।।81ख।।

सर्वत्र वही शिशुपन, वही शोभा और वही कृपालु श्रीरघुवीर ! इस प्रकार मोह रूपी पवन प्रेरणा से मैं भुवन-भुवन में देखता-फिरता था।।81(ख)।।

चौ.-भ्रमत मोहि ब्रह्मांड अनेका। बीते मनहुँ कल्प सत एका।।
फिरत फिरत निज आश्रम आयउँ। तहँ पुनि रहि कछु काल गवाँयउँ।।1।।

अनेक ब्रह्माण्डों में भटकते हुए मानो एक सौ कल्प बीत गये फिरता-फिरता मैं अपने आश्रम में आया और कुछ काल वहाँ रहकर बिताया।।1।।

निज प्रभु जन्म अवध सुनि पायउँ। निर्भर प्रेम हरषि उठि धायउँ।।
देखउँ जन्म महोत्सव जाई। जेहि बिधि प्रथम कहा मैं गाई।।2।

फिर जब अपने प्रभु का अवधपुरी में जन्म (अवतार) सुन पाया, तब प्रेम से परिपूर्ण होकर मैं हर्षपूर्वक उठ दौड़ा। जाकर मैंने जन्म-महोत्सव देखा, जिस प्रकार मैं पहले वर्णन कर चुका हूँ।।2।।

राम उदर देखेउँ जग नाना। देखत बनइ न जाइ बखाना।।
तहँ पुनि देखेउँ राम सुजाना। माया पति कृपाल भगवाना।।3।।

श्रीरामचन्द्रजी के पेट में मैंने बहुत-से जगत् देखे, जो देखते ही बनते थे, वर्णन नहीं किये जा सकते। वहाँ फिर मैंने सुजान मायाके स्वामी कृपालु भगवान् श्रीरामजी को देखा।।3।।

करउँ बिचार बहोरि बहोरी। मोह कलिल ब्यापित मति मोरी।।
उभय घरी महँ मैं सब देखा। भयउँ भ्रमित मन मोह बिसेषा।।4।।

मैं बार-बार विचार करता था। मेरी बुद्धि मोह रूपी कीचड़ से व्याप्त थी। यह सब मैंने दो ही घड़ीमें देखा। मनमें विशेष मोह होने से मैं भ्रमित हो गया था।।4।।

दो.-देखि कृपाल बिकल मोहि बिहँसे तब रघुबीर।
बिहँसतहीं मुख बाहेर आयउँ सुनु मतिधीर।।82क।।

मुझे व्याकुल देखकर तब कृपालु श्रीरघुवीर हँस दिये। हे धीरबुद्धि गरुड़जी! सुनिये, उनके हँसते ही मैं मुँहसे बाहर आ गया।।82(क)।।

सोइ लरिकाई मो सन करन लगे पुनि राम।।
कोटि भाँति समुझावउँ मनु न लहइ बिश्राम।।82ख।।

श्रीरामचन्द्रजी मेरे साथ फिर वही लड़कपन करने लगे। मैं करोड़ों (असंख्य) प्रकारसे मन को समझता था, पर वह शान्ति नहीं पाता था।।82(ख)।।

चौ.-देखि चरित यह सो प्रभुताई। समुझत देह दसा बिसराई।।
धरनि परेउँ मुख आव न बाता। त्राहि त्राहि आरत जन
त्राता।।1।।

यह [बाल] चरित्र देखकर और [पेटके अंदर देखी हुई] उस प्रभुता का स्मरण कर शरीरकी सुध भूल गया और ‘हे आर्तजनोंके रक्षक ! रक्षा कीजिये, रक्षा कीजिये, पुकारता हुआ पृथ्वी पर गिर पड़ा। मुख से बात नहीं निकलती थी!।।1।

प्रेमाकुल प्रभु मोहि बिलोकी। निज माया प्रभुता तब रोकी।।
कर सरोज प्रभु मम सिर धरेऊ। दीनदयाल सकल दुख हरेऊ।।2।।

तदनन्तर प्रभुने मुझे प्रेमविह्वय देखकर अपनी मायाकी प्रभुता (प्रभाव) को रोक लिया। प्रभुने अपना कर-कमल मेरे सिर पर रक्खा। दीनदयालु ने मेरा सम्पूर्ण दुःख हर लिया।।2।।

कीन्ह राम मोहि बिगत बिमोहा। सेवक सुखद कृपा संदोहा।।
प्रभुता प्रथम बिचारि बिचारी। मन महँ होइ हरष अति
भारी।।3।।

सेवकों को सुख देने वाले, कृपा के समूह (कृपामय) श्रीरामजीने मुझे मोह से सर्वथा रहित कर दिया। उनकी पहले वाली प्रभुता

को विचार-विचारकर (याद कर-करके) मेरे मन में बड़ा भारी हर्ष हुआ।।3।।

भगत बछलता प्रभु कै देखी। उपजी मम उर प्रीति बिसेषी।।
सजल नयन पुलकित कर जोरी। कीन्हिउँ बहु बिधि बिनय बिहोरी।।4।।

प्रभु की भक्तवत्सलता देखकर मेरे हृदय में बहुत ही प्रेम उत्पन्न हुआ। फिर मैंने [आनन्दसे] नेत्रों जल भरकर, पुलकित होकर और हाथ जोड़कर बहुत प्रकार से विनती की।।4।।

दो.-सुनि सप्रेम मम बानी देखि दीन निज दास।
बचन सुखद गंभीर मृदु बोले रमानिवास।।83क।।

मेरी युक्त वाणी सुनकर और अपने दासको दीन देखकर रमानिवास श्रीरामजी सुखदायक गम्भीर और कोमल वचन बोले-।।83(क)।।

काकभुसुंडि मागु बर अति प्रसन्न मोहि जानि।
अनिमादिक सिधि अपर रिधि मोच्छ सकल सुख खानि।।83ख।।

हे काकभुशुण्डि ! तू मुझे अत्यन्त प्रसन्न जानकर वर माँग। अणिमा आदि अष्ट सिद्धियाँ, दूसरी ऋद्धियाँ तथा सम्पूर्ण सुखों की खान मोक्ष।।83(ख)।।

चौ.-ग्यान बिबेक बिरति बिग्याना। मुनि दुर्लभ गुन जे जग नाना।।
आजु देउँ सब संसय नाहीं। मागु जो तोहि भाव मन माहीं।।1।।

ज्ञान, विवेक, वैराग्य, विज्ञान, (तत्त्वज्ञान) और वे अनेकों गुण जो जगत् में मुनियों के लिये भी दुर्लभ हैं, ये सब मैं आज तुझे दूँगा, इसमें सन्देह नहीं। जो तेरे मन भावे, सो माँग ले।।1।।

सुनि प्रभु बचन अधिक अनुरागेउँ। मन अनुमान करन तब लागेउँ।।
प्रभु कह देनसकल सुख सही। भगति आपनी देन न कही।।2।।

प्रभु के वचन सुनकर मैं बहुत ही प्रेममें भर गया। तब मन में अनुमान करने लगा कि प्रभुने सब सुखों के देनेकी बात कही, यह तो सत्य है; पर अपनी भक्ति देने की बात नहीं कही।।2।।

भगति हीन गुन सब सुख ऐसे। लवन बिना बहु बिंजन जैसे।।
भजन हीन सुख कवने काजा। अस बिचारि बोलेउँ खगराजा।।3।।

भक्तिसे रहित सब गुण और सब सुख वैसे ही (फीके) हैं, जैसे नमकके बिना बहुत प्रकारके भोजन के पदार्थ ! भजन से रहित सुख किस काम के ? हे पक्षिराज ! ऐसा विचारकर मैं बोला- ।।3।।

जौं प्रभु होइ प्रसन्न बर देहू। मो पर करहु कृपा अरु नेहू।।
मन भावत बर मागउँ स्वामी। तुम्ह उदार उर अंतरजामी।।4।।

हे प्रभो ! यदि आप प्रसन्न होकर मुझे वर देते हैं और मुझपर कृपा और स्नेह करते हैं, तो हे स्वामी ! मैं अपना मन-भाया वर माँगता हूँ। आप उदार हैं और हृदय के भीतरकी जाननेवाले हैं।।4।।

दो.-अबिरल भगति बिसुद्ध तव श्रुति पुरान जो गाव।
जेहि खोजत जोगीस मुनि प्रभु प्रसाद कोउ पाव।।84क।।

आपकी जिस अविरल (प्रगाढ़) एवं विशुद्ध (अनन्य निष्काम) भक्तिको श्रुति और पुराण गाते हैं, जिसे योगीश्वर मुनि खोते हैं और प्रभु की कृपा से कोई विरला ही जिसे पाता है।।84(क)।।

भगत कल्पतरु प्रनत हित कृपा सिंधु सुख धाम।
सोइ निज भगति मोहि प्रभु देहु दया करि राम।।84ख।।

हे भक्तोंके [मन-इच्छित फल देनेवाले] कल्पवृक्ष ! हे शरणागतके हितकारी ! हे कृपा सागर। हे सुखधाम श्रीरामजी ! दया करके मुझे अपनी वही भक्ति दीजिये ।।84(ख)।।

चौ.-एवमस्तु कहि रघुकुलनायक। बोले बचन परम सुखदायाक।।
सुनु बायस तैं सहज सयाना। काहे न मागसि अस बरदाना।।1।।

‘एवमस्तु’ (ऐसा ही हो) कहकर रघुकुल के स्वामी परम सुख देनेवाले वचन बोले-हे काक ! सुन, तू स्वाभव से ही बुद्धिमान् है। ऐसा वरदान कैसे न माँगता ?।।1।।

सब सुख खानि भगति तैं मागी। नहिं जग कोउ तोहि सम बड़भागी।।
जो मुनि कोटि जतन नहिं लहहीं। जे जप जोग अनल तन दहहीं।।2।।

तूने सब सुखों की खान भक्ति माँग ली, जगत् में तेरे समान बड़भागी कोई नहीं है। वे मुनि जो जप और योगकी अग्निसे शरीर जलाते रहते हैं, करोड़ों यत्न करके भी जिसको (जिस भक्तिको नहीं) पाते।।2।।

रीझेउँ देखि तोरि चतुराई। मागेहु भगति मोहि अति भाई।।
सुनु बिहंग प्रसाद अब मोरें।। सब सुभ गुन बसिहहिं उर
तोरें।।3।।

वही भक्ति तूने माँगी। तेरी चतुरता देखकर मैं रीझ गया। यह चतुरता मुझे बहुत अच्छी लगी। हे पक्षी ! सुन, मेरी कृपासे अब समस्त शुभ गुण तेरे हृदय में बसेंगे।।3।।

भगति ग्यान बिग्यान बिरागा। जोग चरित्र रहस्य बिभागा।।
जानब तैं सबही कर भेदा। मम प्रसाद नहिं साधन खेदा।।4।।

भक्ति, ज्ञान, विज्ञान, वैराग्य, योग, मेरी लीलाएँ और उसके रहस्य तथा विभाग-इन सबके भेदको तू मेरी कृपासे ही जान जायगा। तुझे साधन का कष्ट नहीं होगा।।4।।

गीताप्रेस गोरखपुर

दो.-माया संभव भ्रम सब अब न ब्यापिहहिं तोहि।।
जानेसु ब्रह्म अनादि अज अगुन गुनाकर मोहि।।85क।।

माया से उत्पन्न सब भ्रम अब तुझको नहीं व्यापेंगे। मुझे अनादि, अजन्मा, अगुण, (प्रकृतिके गुणोंसे रहित) और [गुणातीत दिव्य] गुणों की खान ब्रह्म जानना।।85(क)।।

मोहि भगति प्रिय संतत अस बिचारि सुनु काग।
कायँ बचन मन मम पद करेसु अचल अनुराग।।85ख।।

हे काक ! सुन, मुझे भक्ति निरंतर प्रिय हैं, ऐसा विचारकर शरीर, वचन और मन से मेरे चरणों में अटल प्रेम करना।।85(ख)।।

चौ.-अब सुनु परम बिमल मम बानी। सत्य सुगम निगमादि बखानी।।
निज सिद्धांत सुनावउँ तोही। सुनु मन धरु सब तजि भजु मोही।।1।।

अब मेरी सत्य, सुगम, वेदादि के द्वारा वर्णित परम निर्मल वाणी सुन। मैं तुझको यह ‘निज सिद्धान्त’ सुनाता हूँ। सुनकर मन में धारण कर और सब तजकर मेरा भजन कर।।1।।

मम माया संभव संसारा। जीव चराचर बिबिधि प्रकारा।।
सब मम प्रिय सब मम उपजाए। सब ते अधिक मनुज मोहि भाए।।2।।

यह सारा संसार मेरी माया से उत्पन्न है। [इसमें] अनेकों प्रकार के चराचर जीव हैं। वे सभी मुझे प्रिय हैं; क्यों कि सभी मेरे उत्पन्न किये हुए हैं। [किन्तु] मनुष्य मुझको सबसे अधिक अच्छ लगते हैं।।2।।

तिन्ह महँ द्विज द्विज महँ श्रुतिधारी। तिन्ह महुँ निगम धरम अनुसारी।।
तिन्ह महँ प्रिय बिरक्त पुनि ग्यानी। ग्यानिहु ते अति प्रिय बिग्यानी।।3।।

उन मनुष्यों में भी द्विज, द्विजों में भी वेदों को [कण्ठमें] धारण करने वाले, उनमें भी वेदान्त धर्मपर चलने वाले, उनमें भी विरक्त (वैराग्यवान्) मुझे प्रिय हैं। वैराग्यवानोंमें फिर ज्ञानी और ज्ञानियों से भी अत्यन्त प्रिय विज्ञानी हैं।।3।।

तिन्ह ते पुनि मोहि प्रिय निज दासा। जेहि गति मोरि न दूसरि आसा।।
पुनि पुनि सत्य कहउँ तोहि पाहीं। मोहि सेवक सम प्रिय कोउ नाहीं।।4।।

विज्ञानियों से भी प्रिय मुझे अपना दास है, जिसे मेरी ही गति (आश्रय) है, कोई दूसरी आशा नहीं है। मैं तुमसे बार-बार सत्य ('निज सिद्धात') कहता हूँ कि मुझे अपने सेवकके समान प्रिय कोई नहीं है।।4।।

भगति हीन बिरंचि किन होई। सब जीवहु सम प्रिय मोहि सोई।।
भगतिवंत अति नीचउ प्रानी। मोहि प्रानप्रिय असि मम बानी।।5।।

भक्तिहीन बह्मा ही क्यों न हो, वह मुझे सब जीवों के समान ही प्रिय है। परन्तु भक्ति मान् अत्यन्त नीच भी प्राणी मुझे प्राणोंके समान प्रिय है, यह मेरी घोषणा है।।5।।

दो.-सुचि सुसील सेवक सुमति प्रिय कहु काहि न लाग।
श्रुति पुरान कह नीति असि सावधान सुनु काग।।86।।

पवित्र, सुशील और सुन्दर बुद्धिवाला सेवक, बता किसको प्यारा नहीं लगता ? वेद और पुराण ऐसी ही नीति कहते हैं। हे काक ! सावधान होकर सुन।।86।।

चौ.-एक पिता के बिपुल कुमारा। होहिं पृथक गुन सील अचारा।।
कोउ पंडित कोउ तापस ग्याता। कोउ धनवंत सूर कोउ
दाता।।1।।

एक पिता के बहुत-से पुत्र पृथक्-पृथक् गुण, स्वभाव और आचरण वाले होते हैं। कोई पण्डित होता है, कोई तपस्वी, कोई ज्ञानी, कोई धनी, कोई शूरवीर, कोई दानी।।1।।

कोउ सर्बग्य धर्मरत कोई। सब पर पितहि प्रीति सम होई।।
कोउ पितु भगत बचन मन कर्मा। सपनेहुँ जान न दूसर धर्मा।।2।।

कोई सर्वज्ञ और कोई धर्मपरायण होता है। पिताका प्रेम इन सभी पर समान होता है। परंतु इनमें से यदि कोई मन, वचन और कर्म से पिता का ही भक्त होता है, स्वप्न में भी दूसरा धर्म नहीं जानता।।2।।

सो सुत प्रिय पितु प्रान समाना। जद्यपि सो सब भाँति अयाना।
एहि बिधि जीव चराचर जेते। त्रिजग देव नर असुर समेते।।3।।

वह पुत्र पिता को प्राणों के समान होता है, यद्यपि (चाहे) वह सब प्रकार से अज्ञान (मूर्ख) ही हो इस प्रकार तिर्यक् (पशु-पक्षी), देव, मनुष्य और असुरोंसमेत जितने भी चेतन और जड़ जीव हैं।।3।।

अखिल बिस्व यह मोर उपाया। सब पर मोहिं बराबरि दाया।।
तिन्ह महँ जो परिहरि मद माया। भजै मोहि मन बच अरु काया।।4।।

[उनसे भरा हुआ] यह सम्पूर्ण विश्व मेरा ही पैदा किया हुआ है। अतः सब पर मेरी बराबर दया है। परंतु इनमेंसे जो मद और माया छोड़कर मन, वचन और शरीरसे मुझको भजता है।।4।।

दो.-पुरुष नपुसंक नारि वा जीव चराचर कोइ।।
सर्ब भाव भज कपट तजि मोहि परम प्रिय सोइ।।87क।।

वह पुरुष नपुसंक हो, स्त्री हो अथवा चर-अचर कोई भी जीव हो, कपट छोड़कर जो भी सर्वभाव से मुझे भाजता है वह मुझे परम प्रिय है।।87(क)।।

सौ.-सत्य कहउँ खग तोहि सुचि सेवक मम प्रानप्रिय।।
अस बिचारि भजु मोहि परिहरि आस भरोस सब।।87ख।।

हे पक्षी ! मैं तुझसे सत्य कहता हूँ, पवित्र (अनन्य एवं निष्काम) सेवक मुझे प्राणों के समान प्यारा है। ऐसा विचार कर सब आशा-भरोसा छोड़कर मुझीको भज।।87(ख)।।

चौ.-कबहूँ काल न ब्यापिहि तोही। सुमिरेसु भजेसु निरंतर मोही।।
प्रभु बचनामृत सुनि न अघाऊँ। तनु पुलकित मन अति हरषाऊँ।।1।।

तुझे काल भी नहीं व्यापेगा। निरन्तर मेरा स्मरण और भजन करते रहना। प्रभुके वचनामृत सुनकर मैं तृप्त नहीं होता था। मेरा शरीर पुलकित था और मनमें मैं अत्यन्त, हर्षित हो रहा था।।1।।

गीताप्रेस गोरखपुर

सो सुख जानइ मन अरु काना। नहिं रसना पहिं जाइ बखाना।।
प्रभु सोभा सुख जानहिं नयना। कहि किमि सकहिं तिन्हहिं नहिं
बयना।।2।।

वह सुख मन और कान ही जानते हैं। जीभ से उसका बखान नहीं किया जा सकता। प्रभु की शोभा का वह सुख नेत्र ही जानते हैं। पर वे कह कैसे सकते हैं ? उनके वाणी तो ही नहीं है।।2।

बहु बिधि मोहि प्रबोधि सुख देई। लगे करन सिसु कौतुक तेई।।
सजल नयन कछु मुख करि रूखा। चितइ मातु लागी अति
भूखा।।3।

मुझे बहुत प्रकार से भली भाँति समझाकर और सुख देकर प्रभु फिर वही बालकों के खेल करने लगे। नेत्रों में जल भरकर और मुख को कुछ रूखा [-सा] बनाकर उन्होंने माताकी ओर देखा-[और मुखाकृति तथा चितवनसे माताको समझा दिया कि] बहुत भूख लगी है।।3।।

देखि मातु आतुर उठि धाई। कहि मृदु बचन लिए उर लाई।।
गोद राखि कराव पय पाना। रघुपति चरित ललित कर
गाना।।4।।

यह देखकर माता तुरंत उठ दौड़ी और कोमल वचन कहकर उन्होंने श्रीरामजीको छाती से लगा लिया। वे गोद में लेकर उन्हें दूध पिलाने लगीं और श्रीरघुनाथजी (उन्हीं) की ललित लीलाएँ गाने लगीं।।4।।

सो.-जेहि सुख लागि पुरारि असुभ बेष कृत सिव सुखद।
अवधपुरी नर नारि तेहि सुख महुँ संतत मगन।।88क।।

जिस सुख के लिये [सबको] सुख देनेवाले कल्याणरूप त्रिपुरारि शिवजी ने अशुभ वेष धारण किया, उस सुख में अवधपुरी के नर-नारी निरन्तर निमग्न रहते हैं।।88(क)।।

सोई सुख लवलेस जिन्ह बारक सपनेहुँ लहेउ।
ते नहिं गनहिं खगेस ब्रह्मसुखहि सज्जन सुमति।।88ख।।

उस सुख का लवलेशमात्र जिन्होंने एक बार स्वप्नमें भी प्राप्त कर लिया, हे पक्षिराज ! वे सुन्दर बुद्धि वाले सज्जन पुरुष उसके सामने ब्रह्मसुखको भी कुछ नहीं गिनते।।88(ख)।।

चौ.-मैं पुनि अवध रहेउँ कछु काला। देखेउँ बालबिनोद रसाला।।
राम प्रसाद भगति बर पायउँ। प्रभु पद बंदि निजाश्रम आयउँ।।1।।

मैं और कुछ समय तक अवधपुरी में रहा और मैंने श्रीरामजी की रसीली बाललीलाएँ देखीं। श्रीरामजी की कृपा से मैंने भक्ति का वरदान पाया। तदनन्तर प्रभु के चरणों की वन्दना करके मैं अपने आश्रमपर लौट गया।।1।।

तब ते मोहि न ब्यापी माया। जब ते रघुनायक अपनाया।।
यब सब गुप्त चरित मैं गावा। हरि मायाँ जिमि मोहि नचावा।।2।।

इस प्रकार जब से श्रीरघुनाथजी ने मुझको अपनाया, तबसे मुझे माया कभी नहीं व्यापी। श्रीहरि की माया ने मुझे जैसे नचाया, वह सब गुप्त चरित्र मैंने कहा।।2।।

निज अनुभव अब कहउँ खगेसा। बिनु हरि भजन न जाहिं कलेसा।।
राम कृपा बिनु सुनु खगराई। जानि न जाइ राम प्रभुताई।।3।।

हे पक्षिराज गरुड़ ! अब मैं आपसे अपना निज अनुभव कहता हूँ। [वह यह है कि] भगवान् के भजन के बिना क्लेश दूर नहीं होते। हे पक्षिराज ! सुनिये, श्रीरामजी की कृपा बिना श्रीरामजी की प्रभुता नहीं जानी जाती।।3।।

जानें बिनु न होइ परतीती। बिनु परतीति होइ नहिं प्रीती।।
प्रीति बिना नहिं भगति दिढ़ाई। जिमि खगपति जल कै चिकनाई।।4।।

प्रभुता जाने बिना उनपर विश्वास नहीं जमता, विश्वास के बिना प्रीति नहीं होती और प्रीति बिना भक्ति वैसे ही दृढ़ नहीं होती जैसे हे पक्षिराज ! जलकी चिकनाई ठहरती नहीं।।4।।

सो.-बिनु गुर होइ कि ग्यान ग्यान कि होइ बिराग बिनु।।
हावहिं बेद पुरान सुख कि लहिअ हरि भगति बिनु।।89क।।

गुरु के बिना कहीं ज्ञान हो सकता है ? अथवा वैराग्य के बिना कहीं ज्ञान हो सकता है ? इसी तरह वेद और पुराण कहते हैं कि श्रीहरिकी भक्तिके बिना क्या सुख मिल सकता है ?।।89(क)।।

गीताप्रेस गोरखपुर

कोउ बिश्राम कि पाव तात सहज संतोष बिनु।
चलै कि जल बिनु नाव कोटि जतन पचि पचि मरिअ।।89ख।।

हे तात ! स्वाभाविक सन्तोष के बिना क्या कोई शान्ति पा सकता है ? [चाहे] करोड़ों उपाय करके पच-पच मरिये; [फिर भी] क्या कभी जलके बिना नाव चल सकती है ?।।89(ख)।।

चौ.-बिनु संतोष न काम नसाहीं। काम अछत सुख सपनेहुँ नाहीं।।
राम भजन बिनु मिटहिं कि कामा। थल बिहीन तरु कबहुँ कि जामा।।1।।

सन्तोष के बिना कामना का नाश नहीं होता और कामनाओं के रहते स्वप्न में भी सुख नहीं हो सकता। और श्रीराम के भजन बिना कामनाएँ कहीं मिट सकती हैं ? बिना धरती के भी कहीं पेड़ उग सकते हैं ?।।1।।

बिनु बिग्यान कि समता आवइ। कोउ अवकास कि नभ बिनु पावइ।।
श्रद्धा बिना धर्म नहिं होई। बिनु महि गंध कि पावइ कोई।।2।।

गीताप्रेस गोरखपुर

विज्ञान (तत्त्वज्ञान) के बिना क्या समभाव आ सकता है ?
आकाश के बिना क्या कोई अवकाश (पोल) पा सकता है ? श्रद्धा के बिना धर्म [का आचरण] नहीं होता। क्या पृथ्वीतत्त्व के बिना कोई गन्ध पा सकता है ?।।2।।

बिनु तप तेज कि कर बिस्तारा। जल बिनु रस कि होइ संसारा।।
सील कि मिल बिनु बुध सेवकाई। जिमि बिनु तेज न रूप गोसाँई।।3।।

तप के बिना क्या तेज फैल सकता है ? जल-तत्त्वके बिना संसारमें क्या रस हो सकता है ? पण्डितजनोंकी सेवा बिना क्या शील (सदाचार) प्राप्त हो सकता है ? हे गोसाईं ! जैसे बिना तेज (अग्नि-तत्त्व) के रूप नहीं मिलता।।3।।

निज सुख बिनु मन होइ कि थीरा। परस कि होइ बिहीन समीरा।।
कवनिउ सिद्धि कि बिनु बिस्वासा। बिनुहरि भजन न भव भय नासा।।4।।

निज-सुख (आत्मानन्द) के बिना क्या मन स्थिर हो सकता है?
वायु-तत्त्वके बिना क्या स्पर्श हो सकता है ? क्या विश्वास के

विना कोई भी सिद्धि हो सकती है ? इसी प्रकार श्रीहरि के भजन बिना जन्म-मृत्यु के भय का नाश नहीं होता।।4।।

दो.-बिनु बिस्वास भगति नहिं तेहि बिनु द्रवहिं न रामु।
राम कृपा बिनु सपनेहुँ जीव न लह बिश्रामु।।90क।।

बिना विश्वास के भक्ति नहीं होती, भक्तिके बिना श्रीरामजी पिघलते (ढरते) नहीं और श्रीरामजी की कृपा के बिना जीव स्वप्न में भी शान्ति नहीं पाता।।90(क)।।

सो.-अस बिचारि मतिधीर तजि कुतर्क संसय सकल।
भजहु राम रघुबीर करुनाकर सुंदर सुखद।।90ख।।

हे धीरबुद्धि ! ऐसा विचार कर सम्पूर्ण कुतर्कों और सन्देहों को छोड़कर करुणा की खान सुन्दर और सुख देनेवाले श्रीरघुवीर का भजन कीजिये।।90(ख)।।

गीताप्रेस गोरखपुर

चौ.-निज मति सरिस नाथ मैं गाई। प्रभु प्रताप महिमा खगराई।।
कहउँ न कछु करि जुगुति बिसेषी। यह सब मैं निज नयनन्हि देखी।।1।।

हे पक्षिराज ! हे नाथ ! मैंने अपनी बुद्धि के अनुसार प्रभुके प्रताप और महिमाका गान किया। मैंने इसमें कोई बात युक्ति से बढ़ाकर नहीं कहीं है यह सब अपनी आँखों देखी कही है।।1।।

महिमा नाम रुप गुन गाथा। सकल अमित अनंत रघुनाथा।।
निज निज मति मुनि हरि गुन गावहिं। निगम सेष सिव पार न पावहिं।।2।।

श्रीरघुनाथजी की महिमा, नाम, रुप और गुणों की कथा सभी अपार और अनन्त है तथा श्रीरघुनाथजी स्वयं अनन्त हैं। मुनिगण अपनी-अपनी बुद्धिके अनुसार श्रीहरि के गुण गाते हैं। वेद, और शिवजी भी उनका पार नहीं पाते।।2।।

तुम्हहि आदि खग मसक प्रजंता। नभ उड़ाहिं नहिं पावहिं अंता।।
तिमि रघुपति महिमा अवगाहा। तात कबहुँ कोउ पाव कि थाहा।।3।।

आपसे लेकर मच्छरपर्यन्त सभी छोटे-बड़े जीव आकाशमें उड़ते हैं, किन्तु आकाश का अन्त कोई नहीं पाते। इसी प्रकार हे तात ! श्रीरघुनाथजीकी महिमा भी अथाह है। क्या कभी कोई उसकी थाह पा सकता है ?।।3।।

रामु काम सत कोटि सुभग तन। दुर्गा कोटि अमित अरि मर्दन।।
सक्र कोटि सत सरिस बिलासा। नभ सत कोटि अमित
अवकासा।।4।।

श्रीरामजीका अरबों कामदेवोंके समान सुन्दर शरीर है। वे अनन्त कोटि दुर्गाओंके समान शत्रुनाशक हैं। अरबों इन्द्र के समान उनका विलास (ऐश्वर्य) है। अरबों आकाशोंके समान उनमें अनन्त अवकाश (स्थान) है।।4।।

दो.-मरुत कोटि सत बिपुल बल रबि सत कोटि प्रकास।
ससि सत कोटि सुसीतल समन सकल भव त्रास।।91क।।

अरबों पवन के समान उनमें महान् बल है और अरबों सूर्यों के समान प्रकाश है। अरबों चन्द्रमाओं के समान वे शीतल और संसारके समस्त भयों का नाश करनेवाले हैं।।91(क)।।

काल कोटि सत सरिस अति दुस्तर दुर्ग दुरंत।
धूमकेतु सत कोटि सम दुराधरष भगवंत।।91ख।।

अरबों कालों के समान वे अत्यन्त दुस्तर, दुर्गम और दुरन्त हैं। वे भगवान् अरबों धूमकेतुओं (पुच्छल तारों) के समान अत्यन्त प्रबल हैं।।91(ख)।।

चौ.-प्रभु अगाध सत कोटि पताला। समन कोटि सत सरिस कराला।।
तीरथ अमित कोटि सम पावन। नाम अखिल अघ पूग नसावन।।1।।

अरबों पतालों के समान प्रभु अथाह हैं। अरबों यमराजोंके समान भयानक हैं। अनन्तकोटि तीर्थों के समान वे पवित्र करनेवाले हैं। उनका नाम सम्पूर्ण पापसमूह का नाश करनेवाला है।।1।।

हिमगिरि कोटि अचल रघुबीरा। सिंधु कोटि सत सम गंभीरा।।
कामधेनु सत कोटि समाना। सकल काम दायक भगवाना।।2।

श्रीरघुवीर करोड़ों हिमालयोंके समान अचल (स्थिर) हैं और अरबों समुद्रों के समान गहरे हैं। भगवान् अरबों कामधेनुओं के समान सब कामनाओं (इच्छित पदार्थों) के देनेवाले हैं।।2।।

सारद कोटि अमित चतुराई। बिधि सत कोटि सृष्टि निपुनाई।।
बिष्नु कोटि सम पालन कर्ता। रुद्र कोटि सत सम संहर्ता।।3।।

उनमें अनन्तकोटि सरस्वतियोंके समान चतुरता हैं। अरबों ब्रह्माओं के समान सृष्टिरचनाकी निपुणता है। वे करोड़ों विष्णुओं

के समान पालन करनेवाले और अरबों रुद्रों के समान संहार करनेवाले हैं।।3।।

धनद कोटि सत सम धनवाना। माया कोटि प्रपंच निधाना।।
भार धरन सत कोटि अहीसा। निरवधि निरुपम प्रभु जगदीसा।।4।।

वे अरबों कुबेरों के समान सृष्टि धनवान और करोड़ों मायाओं के समान के खजाने हैं। बोझ उठाने में वे अरबों शेषोंके समान हैं [अधिक क्या] जगदीश्वर प्रभु श्रीरामजी [सभी बातोंमें] सीमारहित और उपमारहित हैं।।4।।

छं.-निरुपम न उपमा आन राम समान रामु निगम कहै।
जिमि कोटि सत खद्योत सम रबि कहत अति लघुता लहै।।
एहि भाँति निज निज मति बिलास मुनीस हरिहि बखानहीं।
प्रभु भाव गाहक अति कृपाल सप्रेम सुनि सुख मानहीं।।

श्रीरामजी उपमारहित हैं, उनकी कोई दूसरी उपमा है ही नहीं। श्रीरामके समान श्रीराम ही हैं, ऐसा वेद कहते हैं। जैसे अरबों जुगुनुओंके समान कहने से सूर्य [प्रशंसाको नहीं वरं] अत्यन्त लघुता को ही प्राप्त होता है (सूर्य की निन्दा ही होती है)। इसी प्रकार अपनी-अपनी बुद्धिके विकासके अनुसार मुनीश्वर श्रीहरिका वर्णन करते हैं किन्तु प्रभु भक्तों के भावमात्र को ग्रहण

करनेवाले और अत्यन्त कृपालु हैं। वे उस वर्णनको प्रेमसहित सुनकर सुख मानते हैं।

दो.-रामु अमित गुन सागर थाह कि पावइ कोइ।
संतन्ह सन जस किछु सनेउँ तुम्हहि सुनायउँ सोइ।।92क।।

श्रीरामजी अपार गुणोंके समुद्र हैं, क्या उनकी कोई थाह पा सकता है ? संतों से मैंने जैसा कुछ सुना था, वही आपको सुनाया।।92(क)।।

सो.-भाव बस्य भगवान सुख निधान करुना भवन।
तजि ममता मद मान भजिअ सदा सीता रवन।।92ख।।

सुख के भण्डार, करुणाधाम भगवान् (प्रेम) के वश हैं। [अतएव] ममता, मद और मनको छोड़कर सदा श्रीजानकीनाथजी का ही भजन करना चाहिये।।92(ख)।।

चौ.-सुनि भुसुंडि के बचन सुहाए। हरषित खगपति पंख फुलाए।।
नयन नीर मन अती हरषाना। श्रीरघुपति प्रताप उर आना।।1।।

भुशुण्डिजीके सुन्दर वचन सुनकर पक्षिराजने हर्षित होकर अपने पंख फुला लिये। उनके नेत्रोंमें [प्रेमानन्द के आँसुओं का] जल आ गया और मन अत्यन्त हर्षित हो गया। उन्होंने श्रीरघुनाथजी का प्रताप हृदय में धारण किया।।1।।

पाछिल मोह समुझि पछिताना। ब्रह्म अनादि मनुज करि माना।।
पुनि पुनि काग चरन सिरु नावा। जानि राम सम प्रेम बढ़ावा।।2।।

वे अपने पिछले मोहको समझकर (याद करके) पछताने लगे कि मैंने आनादि ब्रह्मको मनुष्य करके माना। गरुड़जी बार बार काकभुशुण्डिजी के चरणों पर सिर नवाया और उन्होंने श्रीरामजी के ही समान जानकर प्रेम बढ़ाया।।2।।

गुर बिनु भव निधि तरइ न कोई। जौं बिरंचि संकर सम होई।।
संसय सर्प ग्रसेउ मोहि ताता। दुखद लहरि कुतर्क बहु ब्राता।।3।।

गुरु के बिना कोई भवसागर नहीं तर सकता, चाहे वह ब्रह्मा जी और शंकरजीके समान ही क्यों न हो। [गरुड़जीने कहा-] हे तात ! मुझे सन्देहरूपी सर्पने डस लिया था और [साँपके डसनेपर जैसे विष चढ़नेसे लहरें आती है वैसे ही] बहुत-सी कुतर्करूपी दुःख देने वाली लहरें आ रही थीं।।3।।

तव सरूप गारुड़ि रघुनायक। मोहि जिआयउ जन सुखदायक।।
तव प्रसाद मम मोह नसाना। राम रहस्य अनूपम जाना।।4।।

आपके स्वरुप रूपी गारुड़ी (साँपका विष उतारनेवाले) के द्वारा भक्तोंको सुख देनेवाले श्रीरघुनाथजीने मुझे जिला लिया। आपकी कृपा से मेरा मोह नाश हो गया और मैंने श्रीरामजी का अनुपम रहस्य जाना।।4।।

दो.-ताहि प्रसंसि बिबिधि बिधि सीस नाइ कर जोरि।।
बचन बिनीत सप्रेम मृदु बोलेउ गरुड़ बहोरि।।93क।।

उनकी (भुशुण्डिजीकी) बहुत प्रकार से प्रशंसा करके, सिर नवाकर और हाथ जोड़कर फिर गरुड़जी प्रेमपूर्वक विनम्र और कोमल वचन बोले-।।93(क)।।

प्रभु अपने अबिबेक ते बूझउँ स्वामी तोहि।
कृपासिंधु सादर कहहु जानि दास निज मोहि।।93ख।।

हे प्रभो ! हे स्वामी ! मैं अपने अविवेकके कारण आपसे पूछता हूँ। हे कृपाके समुद्र ! मुझे अपना ‘निज दास’ जानकर आदरपूर्वक (विचारपूर्वक) मेरे प्रश्न का उत्तर कहिये।।93(ख)।।

चौ.-तुम्ह सर्बग्य तग्य तम पारा। सुमति सुसील सरल आचारा।।
ग्यान बिरति बिग्यान निवासा। रघुनायकके तुम्ह प्रिय
दासा।।1।।

आप सब कुछ जानने वाले हैं, तत्त्वके ज्ञाता है, अन्धकार (माया) से परे, उत्तम बुद्धि से युक्ति, सुशील, सरल, आचरणवाले, ज्ञान, वैराग्य और विज्ञान करके धाम और श्रीरघुनाथीजी के प्रिय दास हैं।।1।।

कारन कवन देह यह पाई। तात सकल मोहि कहहु बुझाई।
राम चरित सर सुंदर स्वामी। पायहु कहाँ कहहु नभगामी।।2।।

आपने यह काक शरीर किस कारण से पाया ? हे तात ! सब समझाकर मुझसे कहिये। हे स्वामी ! हे आकाशगामी ! यह सुन्दर रामचरित मानस आपने कहाँ पाया, सो कहिये।।2।।

नाथ सुना मैं अस सिव पाहीं। महा प्रलयहुँ नास तव नाहीं।।
मुधा बचन नहिं ईश्वर कहई। सोउ मोरें मन संसय अहई।।3।।

हे नाथ ! मैंने शिवजीसे ऐसा सुना है कि महाप्रलयमें आपका नाश नहीं होता और ईश्वर् (शिवजी) कभी मिथ्या वचन कहते नहीं। वह भी मेरे मन में संदेह है।।3।।

अग जग जीव नाग नर देवा। नाथ सकल जगु काल कलेवा।।
अंड कटाह अमित लय कारी। कालु सदा दुरतिक्रम भारी।।4।।

[क्योंकि] हे नाथ ! नाग, मनुष्य, देवता आदि चर-अचर जीव तथा यह सारा जगत् कालका कलेवा है। असंख्य ब्रह्माण्डोंका नाश करनेवाला काल सदा बड़ा ही अनिवार्य है।।4।।

सो.-तुम्हहि न ब्यापत काल अति कराल कारन कवन।
मोहि सो कहहु कृपाल ग्यान प्रभाव कि जोग बल।।94क।।

[ऐसा वह] अत्यन्त भयंकर काल आपको नहीं व्यापता (आपपर प्रभाव नहीं दिखलाता)- इसका कारण क्या है ? हे कृपालु ! मुझे कहिये, यह ज्ञान का प्रभाव है या योग का बल है ?।।94(क)।।

दो.-प्रभु तव आश्रम आएँ मोर मोह भ्रम भाग।।
कारन कवन सो नाथ सब कहहु सहित अनुराग।।94ख।।

हे प्रभो ! आपके आश्रममें आते ही मेरा मोह और भ्रम भाग गया। इसका क्या कारण है ? हे नाथ ! यह सब प्रेमसहित कहिये।।94(ख)।।

चौ.- गरुड़ गिरा सुनि हरषेउ कागा। बोलेउ उमा परम अनुरागा।।
धन्य धन्य तव मति उरगारी। प्रस्न तुम्हारि मोहि अति प्यारी।।1।।

हे उमा ! गरुड़जी की वाणी सुनकर काकभुशुण्डिजी हर्षित हुए और परम प्रेम से बोले-हे सर्पों के शत्रु ! आपकी बुद्धि धन्य है ! धन्य है ! आपके प्रश्न मुझे बहुत ही प्यारे लगे।।1।।

सुनि तव प्रस्न सप्रेम सुहाई। बहुत जनम कै सुधि मोहि आई।।
सब निज कथा कहउँ मैं गाई। तात सुनहु सादर मन लाई।।2।।

आपके प्रेम युक्त सुन्दर प्रश्न सुनकर मुझे अपने बहुत जन्मोंकी याद आ गयी। मैं अपनी सब कथा विस्तार से कहता हूँ। हे तात ! आदरसहित मन लगाकर सुनिये।।2।।

गीताप्रेस गोरखपुर

जप तप मख सम दम ब्रत दाना। बिरति बिबेक जोग बिग्याना।।
सब कर फल रघुपति पद प्रेमा। तेहि बिनु कोउ न पावइ छेमा।।3।।

अनेक जप, तप, यज्ञ, शम (मनको रोकना), दम (इन्द्रियों के रोकना), व्रत, दान, वैराग्य, विवेक, योग, विज्ञान आदि सबका फल श्रीरघुनाथजी के चरणोंमें प्रेम होना है। इसके बिना कोई कल्याण नहीं पा सकता।।3।।

एहिं तन राम भगति मैं पाई। ताते मोहि ममता अधिकाई।।
जेहि तें कछु निज स्वारथ होई। तेहि पर ममता कर सब कोई।।4।।

मैंने इसी शरीर से श्रीरामजी की भक्ति प्राप्त की है। इसी से इसपर मेरी ममता अधिक है। जिससे अपना कुछ स्वार्थ होता है, उस पर सभी कोई प्रेम करते हैं।।4।।

सौ.-पन्नगारि असि नीति श्रुति संमत सज्जन कहहिं।।
अति नीचहु सन प्रीति करिअ जानि निज परम हित।।95क।।

हे गरुड़जी ! वेदों में मानी हुई ऐसी नीति है और सज्जन भी कहते हैं कि अपना परम हित जानकर अत्यन्त नीच से भी प्रेम करना चाहिये।।95(क)।।

पाट कीट तें होइ तेहि तें पाटंबर रुचिर।
कृमि पालइ सबु कोइ परम अपावन प्रान सम।।95ख।।

रेशम कीड़े से होता है, उससे सुन्दर रेशमी वस्त्र बनते हैं। इसी से उस परम अपवित्र कीड़े को भी सब कोई प्राणों के समान पालते हैं।।95(ख)।।

चौ.-स्वारथ साँच जीव कहुँ एहा। मन क्रम बचन राम पद नेहा।।
सोइ पावन सोइ सुभग सरीरा। जो तनु पाइ भजिअ
रघुबीरा।।1।।

जीव के लिये सच्चा स्वार्थ यही है कि मन, वचन और कर्म से श्रीरामजी के चरणोंमें प्रेम हो। वही शरीर पवित्र और सुन्दर है जिस शरीर को पाकर श्रीरघुवीर का भजन किया जाय।।1।।

राम बिमुख लहि बिधि सम देही। कबि कोबिद न प्रसंसहिं तेही।।
राम भगति एहिं तन उर जामी। ताते मोहि परम प्रिय
स्वामी।।2।।

जो श्रीरामजीके विमुख है वह यदि ब्रह्माजी के समान शरीर पा जाय तो भी कवि और पण्डित उसकी प्रशंसा नहीं करते । इसी शरीर से मेरे हृदय में रामभक्ति उत्पन्न हुई। इसी से हे स्वामी ! यह मुझे परम प्रिय है।।2।।

तजउँ न तन निज इच्छा मरना। तन बिनु बेद भजन नहिं बरना।।
प्रथम मोहँ मोहि बहुत बिगोवा। राम बिमुख सुख कबहुँ न
सोवा।।3।।

मेरा मरण अपनी इच्छा पर है, परन्तु फिर भी मैं यह शरीर नहीं छोड़ता; क्योंकि वेदोंने वर्णन किया है कि शरीरके बिना भजन नहीं होता। पहले मोहने मेरी बड़ी दुर्दशा की। श्रीरामजीके विमुख होकर मैं कभी सुख से नहीं सोया।।3।।

नाना जनम कर्म पुनि नाना। किए जोग जप तप मख दाना।।
कवन जोनि जनमेउँ जहँ नाहीं। मैं खगेस भ्रमि भ्रमि जग
माहीं।।4।।

अनेकों जन्मों में मैंने अनेकों प्रकार के योग जप तप यज्ञ और दान आदि कर्म किये। हे गरुड़जी ! जगत् में ऐसी कौन योनि है, जिसमें मैंने [बार-बार] घूम फिरकर जन्म न लिया हो।।4।।

देखउँ करि सब करम गोसाईं। सुखी न भयउँ अबहिं की नाईं।।
सुधि मोहि नाथ जनम बहु केरी। सिव प्रसाद मति मोहँ न
घेरी।।5।।

हे गोसाईं ! मैंने सब कर्म करके देख लिये, पर अब (इस जन्म) की तरह मैं कभी सुखी नहीं हुआ। हे नाथ ! मुझे बहुत-से जन्मों की याद है। [क्योंकि] श्रीशिवजी की कृपा से मेरी बुद्धि मोहने नहीं घेरा।।5।।

दो.-प्रथम जन्म के चरित अब कहउँ सुनहु बिहगेस।
सुनि प्रभु पद रति उपजइ जातें मिटहिं कलेस।।96क।।

हे पक्षिराज ! सुनिये, अब मैं अपने प्रथम जन्म के चरित्र कहता हूँ, जिन्हें सुनकर प्रभु के चरणों में प्रीति उत्पन्न होती है, जिससे सब क्लेश मिट जाते हैं।।96(क)।।

पूरुब कल्प एक प्रभु जुग कलियुग मल मूल।
नर अरु नारि अधर्म रत सकल निगम प्रतिकूल।।96ख।।

हे प्रभो ! पूर्वके एक कल्प में पापोंका मूल युग कलियुग था, जिसमें पुरुष और स्त्री सभी अधर्मपरायण और वेद के विरोधी थे।।96(ख)।।

चौ.-तेहिं कलिजुग कोलसपुर जाई। जमन्त भयउँ सूद्र तनु पाई।।
सिव सेवक मन क्रम अरु बानी। आन देव निदंक अभिमानी।।1।।

उस कलियुग में मैं अयोध्या पुरी में जाकर शूद्र का शरीर पाकर जन्मा। मैं मन वचन और कर्म से शिवजीका सेवक और दूसरे देवताओंकी निन्दा करनेवाला अभिमानी था।।1।।

धन मद मत्त परम बाचाला। उग्रबुद्धि उर दंभ बिसाला।।
जदपि रहेउँ रघुपति रजधानी। तदपि न कछु महिमा तब जानी।।2।।

मैं धन के मदसे मतवाला बहुत ही बकवादी और उग्रबुद्धिवाला था; मेरे हृदय में बड़ा भारी दम्भ था। यद्यपि मैं श्रीरघुनाथजी की राजधानीमें रहता था, तथापि मैंने उस समय उसकी महिमा कुछ भी नहीं जानी।।2।।

अब जाना मैं अवध प्रभावा। निगमागम पुरान अस गावा।।
कवनेहुँ जन्म अवध बस जोई। राम परायन सो परि होई।।3।।

अब मैंने अवध का प्रभाव जाना। वेद शास्त्र और पुराणों ने ऐसा गाया है कि किसी भी जन्म में जो कोई भी अयोध्या में बस जाता है, वह अवश्य ही श्रीरामजी के परायण हो जायगा।।3।।

अवध प्रभाव जान तब प्रानी। जब उर बसहिं रामु धनुपानी।।
सो कलिकाल कठिन उरगारी। पाप परायन सब नर नारी।।4।।

अवधका प्रभाव जीव तभी जानता है, जब हाथ में धनुष धारण करनेवाले श्रीरामजी उसके हृदय में निवास करते हैं। हे गरुड़जी ! वह कलिकाल बड़ा कठिन था। उसमें सभी नर-नारी पापपरायण (पापोंमें लिप्त) थे।।4।।

दो.- कलिमल ग्रसे धर्म सब लुप्त भए सदग्रंथ।।
दंभिन्ह निज गति कल्पि करि प्रगट किए बहु पंथ।।97क।।

कलियुग के पापों ने सब धर्मों को ग्रस लिया, सद्ग्रन्थ लुप्त हो गये। दम्भियों ने अपनी बुद्धि से कल्पना कर-करके बहुत-से पंथ प्रकट कर दिये।।97(क)।।

भए लोग सब मोहबस लोभ ग्रसे सुभ कर्म।।
सुनु हरिजान ग्यान निधि कहउँ कछुक कलिधर्म।।97ख।।

सभी लोग मोह के वश हो गये, शुभकर्मों को लोभ ने हड़प लिया। हे ज्ञान के भण्डार ! हे श्रीहरिके वाहन ! सुनिये, अब मैं कलि के कुछ धर्म कहता हूँ।।97(ख)।।

चौ.-बरन धर्म नहिं आश्रम चारी। श्रुति बिरोध रत सब नर नारी।।
द्विज श्रुति बेचक भूपप्रजालन कोउ नहिं मान निगम अनुसासन।।1।।

कलियुग में न वर्ण धर्म रहता है, न चारों आश्रम रहते हैं। सब स्त्री पुरुष वेद के विरोध में लगे रहते हैं। ब्राह्मण वेदों के बेचने वाले और राजा प्रजा को खा डालने वाले होते हैं। वेद की आज्ञा कोई नहीं मानता।।1।।

मारग सोइ जा कहुँ जोइ भावा। पंडित सोइ जो गाल बजावा।।
मिथ्यारंभ दंभ रत जोई। ता कहु संत कहइ सब कोई।।2।।

जिसको जो अच्छा लग जाय, वही मार्ग है। जो डींग मारता है, वही पण्डित है। जो मिथ्या आरम्भ करता (आडम्बर रचता) है और जो दम्भमें रत हैं, उसीको सब कोई संत कहते हैं।।2।।

सोइ सयान जो परधन हारी। जो कर दंभ सो बड़ आचारी।।
जो कह झूँठ मसखरी जाना। कलियुग सोई गुनवंत बखाना।।3।।

जो [जिस किसी प्रकार से] दूसरे का धन हरण करले, वही बुद्धिमान् है। जो दम्भ करता है, वही बड़ा आचारी है। जो झूठ बोलता है और हँसी-दिल्लगी करना जानता है, कलियुग में वही गुणवान् कहा जाता है।।3।।

निराचार जो श्रुति पथ त्यागी। कलिजुग सोइ ग्यानी सो बिरागी।।
जाकें नख अरु जटा बिसाला। सोइ तापस प्रसिद्ध कलिकाला।।4।।

जो आचारहीन है और वेदमार्ग के छोड़े हुए है, कलियुग में वही ज्ञानी और वही वैराग्यवान् है। जिसके बड़े-बड़े नख और लम्बी-लम्बी जटाएँ हैं, वही कलियुग में प्रसिद्ध तपस्वी है।।4।।

दो.-असुभ बेष भूषन धरें भच्छाभच्छ जे खाहिं।।
तेइ जोगी तेइ सिद्ध नर पूज्य ते कलिजुग माहिं।।98क।।

जो अमंगल वेष और अमंगल भूषण धारण करते हैं और भक्ष्य-अभक्ष्य (खाने योग्य और न खाने योग्य) सब कुछ खा लेते हैं, वे ही सिद्ध हैं और वे ही मनुष्य कलियुग में पूज्य हैं।।98(क)।।

सो.-जे अपकारी चार तिन्ह कर गौरव मान्य तेइ।
मन क्रम बचन लबार तेइ बकता कलिकाल महुँ।।98ख।।

जिनके आचरण दूसरों का अपकार (अहित) करनेवाले हैं, उन्हें ही बड़ा गौरव होता है। और वे ही सम्मान के योग्य होते हैं। जो मन, वचन और कर्म से लबार (झूठ बकनेवाले) है, वे ही कलियुग में वक्ता माने जाते हैं।।98(ख)।।

नारि बिबस नर सकल गोसाईं। नाचहिं नट मर्कट की नाईं।।
सूद्र द्विजन्ह उपदेसहिं ग्याना। मेलि जनेऊँ लेहिं कुदाना।।1।।

हे गोसाईं ! सभी मनुष्य स्त्रियों के विशेष वश में हैं और बाजीगर के बंदर की तरह [उनके नचाये] नाचते हैं। ब्रह्माणों को शूद्र

ज्ञानोपदेश करते हैं और गले में जनेऊ डालकर कुत्सित दान लेते हैं।।1।।

सब नर काम लोभ रत क्रोधी। देव बिप्र श्रुति संत बिरोधी।।
गुन मंदिर सुंदर पति त्यागी। भजहिं नारि पर पुरुष अभागी।।2।।

सभी पुरुष काम और लोभ में तत्पर और क्रोधी होते हैं। देवता, ब्राह्मण, वेद और संतों के विरोधी होते हैं। अभागिनी स्त्रियाँ गुणों के धाम सुन्दर पति को छोड़कर परपुरुष का सेवन करती हैं।।2।।

सौभागिनीं बिभूषन हीना। बिधवन्ह के सिंगार नबीना।।
गुर सिष बधिर अंध का लेखा। एक न सुनइ एक नहिं देखा।।3।।

सुहागिनी स्त्रियाँ तो आभूषणों से रहित होती हैं, पर विधवाओं के नित्य नये श्रृंगार होते हैं। शिष्य और गुरु में बहरे और अंधे का-सा हिसाब होता है। एक (शिष्य) गुरुके उपदेश को सुनता नहीं, एक (गुरु) देखता नहीं, (उसे ज्ञानदृष्टि प्राप्त नहीं है)।।3।।

हरइ सिष्य धन सोक न हरई। सो गुर घोर नरक महुँ परई।।
मातु पिता बालकन्हि बोलावहिं। उदर भरै सोइ धर्म
सिखावहिं।।4।।

जो गुरु शिष्य का धन हरण करता है, पर शोक नहीं हरण करता, वह घोर नरक में पड़ता है। माता-पिता बालकोंको बुलाकर वहीं धर्म सिखलाते हैं, जिससे पेट भरे।।4।।

दो.-ब्रह्म ग्यान बिनु नारि नर कहहि न दूसरि बात।
कौड़ी लागि लोभ बस करहिं बिप्र गुर घात।।99क।।

स्त्री-पुरुष ब्रह्म ज्ञान के सिवा दूसरी बात नहीं करते, पर वे लोभवश कौड़ियों (बहुत थोड़े लाभ) के लिये ब्राह्मण और गुरुओं की हत्या कर डालते हैं ।।99(क)।।

बादहिं सूद्र द्विजन्ह सन हम तुम्ह ते कछु घाटि।।
जानइ ब्रह्म सो बिप्रबर आँखि देखावहिं डाटि।।99ख।।

शूद्र ब्राह्मणों से विवाद करते हैं [और कहते हैं] कि हम क्या तुमसे कुछ कम हैं ? जो ब्रह्म को जानता है वही श्रेष्ठ ब्राह्मण है। [ऐसा कहकर] वे उन्हें डाँटकर आँखें दिखलाते हैं।।99(ख)।।

चौ.-पर त्रिय लंपट कपट सयाने। मोह द्रोह ममता लपटाने।।
तेइ अभेदबादी ग्यानी नर। देखा मैं चरित्र कलिजुग कर।।1।

जो परायी स्त्री में आसक्त, कपट करने में चतुर और मोह, द्रोह और ममता में लिपटे हुए हैं, वे ही मनुष्य अभेद वादी (ब्रह्म और जीवको एक बतानेवाले) ज्ञानी हैं। मैंने उस कलियुग का यह चरित्र देखा।।1।।

आपु गए अरु तिन्हहू घालहिं। जे कहुँ सत मारग प्रतिपालहिं।।
कल्प कल्प भरि एक एक नरका। परहिं जे दूषहिं श्रुति करि तरका।।2।।

वे स्वयं तो नष्ट हुए ही रहते हैं; जो कहीं सन्मार्ग का प्रतिपालन करते हैं, उनको भी वे नष्ट कर देते हैं। जो तर्क करके वेद भी निन्दा करते हैं, वे लोग कल्प-कल्पभर एक-एक नरक में पड़े रहते हैं।।2।।

जे बरनाधम तेलि कुम्हारा। स्वपच किरात कोल कलवारा।।
नारि मुई गृह संपति नासी। मूड़ मुड़ाइ होहिं संन्यासी।।3।।

तेली, कुम्हार, चाण्डाल भील कोल और कलवार आदि जो वर्णमें नीचे हैं, स्त्री के मरने पर अथवा घर की सम्पत्ति नष्ट हो जाने पर सिर मुँड़ाकर संन्यासी हो जाते हैं।।3।।

ते बिप्रन्ह सन आपु पुजावहिं। उभय लोक निज हाथ नसावहिं।।
बिप्र निरच्छर लोलुप कामी। निराचार सठ बृषली स्वामी।।4।।

वे अपने को ब्राह्मणों से पुजवाते हैं और अपने ही हाथों दोनों लोक नष्ट करते हैं। ब्राह्मण, अनपढ़, लोभी, कामी, आचारहीन, मूर्ख और नीची जाति की व्याभिचारिणी स्त्रियों के स्वामी होते हैं।।4।।

सूद्र करहिं जप तप ब्रत नाना। बैठि बरासन कहहिं पुराना।।
सब नर कल्पित करहिं अचारा। जाइ न बरनि अनीति अपारा।।5।।

शूद्र नाना प्रकार के जप, तप और व्रत करते हैं तथा ऊँचे आसन (व्यासगद्दी) पर बैठकर पुराण करते हैं। सब मनुष्य मनमाना आचरण करते हैं। अपार अनीतिकी वर्णन नहीं किया जा सकता।।5।।

गीताप्रेस गोरखपुर

दो.-भए बरन संकर कलि भिन्नसेतु सब लोग।।
करहिं पाप पावहिं दुख भय रुज सोक बियोग।।100क।।

कलियुग में सब लोग वर्णसंकर और मर्यादा से च्युत हो गये। वे पाप करते हैं और [उनके फलस्वरुप] दुःख, भय, रोग, शोक और [प्रिय वस्तुका] वियोग पाते हैं।।100(क)।।

श्रुति संमत हरि भक्ति पथ संजुत बिरति बिबेक।
तेहिं न चलहिं नर मोह बस कल्पहिं पंथ अनेक।।100ख।।

वेद तथा सम्मत वैराग्य और ज्ञान से युक्त जो हरिभक्ति का मार्ग है, मोहवश मनुष्य उसपर नहीं चलते और अनेकों नये-नये पंथोंकी कल्पना करते हैं।।100(ख)।।

छं.-बहु दाम सँवारहिं धाम जती। बिषया हरि लीन्हि न रहि बिरती।।
तपसी धनवंत दरिद्र गृही। कलि कौतुक तात न जात कही।।1।।

संन्यासी बहुत धन लगाकर घर सजाते हैं। उनमें वैराग्य नहीं रहा, उसे विषयों ने हर लिया। तपस्वी धनवान् हो गये और

गृहस्थ दरिद्र। हे तात! कलियुग की लीला कुछ कही नहीं जाती।।1।।

कुलवंति निकारहिं नारि सती। गृह आनहिं चेरि निबेरि गती।।
सुत मानहिं मातु पिता तब लौं। अबलानन दीख नहीं जब
लौं।।2।।

कुलवती और सती स्त्री को पुरुष घर से निकाल देते हैं और अच्छी चाल को छोड़कर घरमें दासी को ला रखते हैं। पुत्र अपने माता-पिता को तभी तक मानते हैं, जब तक स्त्री का मुँह नहीं दिखायी पड़ा।।2।।

ससुरारि पिआरि लगी जब तें। रिपुरूप कुटुंब भए तब तें।।
नृप पाप परायन धर्म नहीं। करि दंड बिडंब प्रजा नितहीं।।3।।

जब से ससुराल प्यारी लगने लगी, तबसे कुटुम्बी शत्रुरूप हो गये। राजा लोग पापपरायण हो गये, उनमें धर्म नहीं रहा। वे प्रजा को नित्य ही [बिना अपराध] दण्ड देकर उसकी विडम्बना (दुर्दशा) किया करते हैं।।3।।

धनवंत कुलीन मलीन अपी। द्विज चिन्ह जनेउ उघार तपी।।
नहिं मान पुरान न बेदहि जो। हरि सेवक संत सही कलि सो।।4।।

धनी लोग मलिन (नीच जाति के होनेपर भी कुलीन माने जाते हैं। द्विजका चिह्न जनेऊमात्र रह गया और नंगे बदन रहना तपस्वी का। जो वेदों और पुराणों को नहीं मानते, कलियुग में वे ही हरिभक्त और सच्चे संत कहलाते हैं।।4।।

कबि बृंद उदार दुनी न सुनी। गुन दूषक ब्रात न कोपि गुनी।।
कलि बारहिं बार दुकाल परै। बिनु अन्न दुखी सब लोग मरै।।5।।

कवियों के तो झुंड हो गये, पर दुनिया में उदार (कवियोंका आश्रय-दाता)सुनायी नहीं पड़ता। गुण में दोष लगाने वाले बहुत हैं, पर गुणी कोई भी नहीं है। कलियुग में बार-बार अकाल पड़ते हैं। अन्न के बिना सब लोग दुखी होकर मरते हैं।।5।।

दो.-सुनु खगेस कलि कपट हठ दंभ द्वेष पाषंड।
मान मोह मारादि मद ब्यापि रहे ब्रह्मंड।।101क।।

हे पक्षिराज गरुड़जी ! सुनिये, कलियुग में कपट, हठ (दुराग्रह), दम्भ, द्वेष, पाखण्ड, मान, मोह और काम आदि (अर्थात् काम

क्रोध और लोभ) और मद ब्रह्माण्डभरमें व्याप्त हो गये (छा गये)।।101(क)।।

तामस धर्म करहिं नर जप तप ब्रत मख दान।
देव न बरषहिं धरनीं बए न जामहिं धान।।101ख।।

मनुष्य जप, तप, यज्ञ, व्रत और दान आदि मर्म तामसी भाव से करने लगे। देवता (इन्द्र) पृथ्वी पर जल नहीं बरसाते और बोया हुआ अन्न उगता नहीं।।101(ख)।।

छं.-अबला कच भूषन भूरि छुधा। धनहीन दुखी ममता बहुधा।।
सुख चाहहिं मूढ़ न धर्म रता। मति थोरि कठोरि न कोमलता।1।।

स्त्रियों के बाल ही भूषण है (उनके शरीरपर कोई आभूषण नहीं रह गया) और उनको भूख बहुत लगती है (अर्थात् वे सदा अतृप्त ही रहती हैं)। वे धनहीन और बहुत प्रकार की ममता होने के कारण दुखी रहती हैं। वे मूर्ख सुख चाहती हैं, पर धर्म में उनका प्रेम नहीं है। बुद्धि थोड़ी है और कठोर है; उनमें कोमलता नहीं है।।1।।

नर पीड़ित रोग न भोग कहीं। अभिमान बिरोध अकारनहीं।।
लघु जीवन संबतु पंच दसा। कलपांत न नास गुमानु असा।।2।।

मनुष्य रोगों से पीड़ित है, भोग (सुख) कहीं नहीं है। बिना ही कारण अभिमान और विरोध करते हैं। दस-पाँच वर्षका थोड़ा-सा जीवन है; परन्तु घमंड ऐसा है मानो कल्पान्त (प्रलय) होनेपर भी उनका नाश नहीं होगा।।2।।

कलिकाल बिहाल किए मनुजा। नहिं मानत क्वौ अनुजा तनुजा।।
नहिं तोष बिचार न सीतलता। सब जाति कुजाति भए मगता।।3।।

कलिकालने मनुष्य को बेहाल (अस्त-व्यस्त) कर डाला । कोई बहिन-बेटी का भी विचार नहीं करता। [लोगोंमें] न सन्तोष है, न विवेक है और न शीतलता है। जाति, कुजाति सभी लोग भीख माँगनेवाले हो गये।।3।।

इरिषा परुषाच्छर लोलुपता। भरि पूरि रही समता बिगता।।
सब लोग बियोग बिसोक हए। बरनाश्रम धर्म अचार गए।।4।।

ईर्ष्या (डाह) कड़वे वचन और लालच भरपूर हो रहे हैं, समता चली गयी। सब लोग वियोग और विशेष शोक से मरे पड़े हैं। वर्णाश्रम-धर्मके आचारण नष्ट हो गये।।4।।

दम दान दया नहिं जानपनी। जड़ता परबंचनताति घनी।।
तनु पोषक नारि नरा सगरे। परनिंदक जे जग मो बगरे।।5।।

इन्द्रियों का दमन, दान, दया और समझदारी किसी में नहीं रही। 'मूर्खता और दूसरों को ठगना यह बहुत अधिक बढ़ गया। स्त्री-पुरुष सभी शरीर के ही पालन-पोषण में लगे रहते हैं। जो परायी निन्दा करने वाले हैं, जगत् में वे ही फैले हैं।।5।।

दो.-सुनु ब्यालारि काल कलि मल अवगुन आगार।
गुनउ बहुत कलिजुग कर बिनु प्रयास निस्तार।।102क।।

हे सर्पोंके शत्रु गरुड़जी ! सुनिये, कलिकाल पाप और अवगुणों का घर है। किन्तु कलियुग में एक गुण भी बड़ा है कि उसमें बिना ही परिश्रम भवबन्धनसे छुटकारा मिल जाता है।।102(क)।।

कृतजुग त्रेताँ द्वापर पूजा मख अरु जोग।
जो गति होइ सो कलि हरि नाम ते पावहिं लोग।।102ख।।

सतयुग, त्रेता और द्वापरमें जो गति पूजा, यज्ञ और योग से प्राप्त होती है, वही गति कलियुग में लोग केवल भगवान् के नाम से पा जाते हैं।।102(ख)।।

चौ.-कृतजुग सब जोगी बिग्यानी। करि हरि ध्यान तरहिं भव प्रानी।।
त्रेताँ बिबिध जग्य नर करहीं। प्रभुहिं समर्पि कर्म भव तरहीं।।1।।

सतयुगमें सब योगी और विज्ञानी होते हैं। हरि का ध्यान करके सब प्राणी भवसागर से तर जाते हैं। त्रेता में मनुष्य अनेक प्रकार के यज्ञ करते हैं और सब कर्मों को प्रभु के समर्पण करके भवसागर से पार हो जाते हैं।।1।।

द्वापर करि रघुपति पद पूजा। नर भव तरहिं उपाय न दूजा।।
कलिजुग केवल हरि गुन गाहा। गावत नर पावहिं भव थाहा।।2।।

द्वापर में श्रीरघुनाथजी के चरणों की पूजा करके मनुष्य संसार से तर जाते हैं, दूसरा कोई उपाय नहीं है और कलियुग में तो केवल श्रीहरि की गुणगाथाओं का गान करने से ही मनुष्य भवसागर की थाह पा जाते हैं।।2।।

कलिजुग जोग न जग्य न ग्याना। एक अधार राम गुन गाना।।
सब भरोस तजि जो भज रामहि। प्रेम समेत गाव गुन ग्रामहि।।3।।

कलियुग में न तो योग यज्ञ है और न ज्ञान ही है। श्रीरामजी का गुणगान ही एकमात्र आधार है। अतएव सारे भरोसे त्यागकर जो श्रीरामजी को भजता है और प्रेमसहित उनके गुणसमूहों को गाता है।।3।।

सोइ भव तर कछु संसय नाहीं। नाम प्रताप प्रगट कलि माहीं।।
कलि कर एक पुनीत प्रतापा। मानस पुन्य होहिं नहिं पापा।।4।।

वही भवसागर से तर जाता है, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं। नामका प्रताप कलियुगमें प्रत्यक्ष है। कलियुगका एक पवित्र प्रताप (महिमा) है कि मानसिक पुण्य तो होते हैं, पर [मानसिक] पाप नहीं होते।।4।।

दो.-कलिजुग सम जुग आन नहिं जौं नर कर बिस्वास।
गाइ राम गुन गन बिमल भव तर बिनहिं प्रयास।।103क।।

यदि मनुष्य विश्वास करे, तो कलियुग के समान दूसरा युग नहीं है। [क्योंकि] इस युगमें श्रीरामजीके निर्मल गुणोंसमूहों को गा-गाकर मनुष्य बिना ही परिश्रम संसार [रूपी समुद्र] से तर जाता है।।103(क)।।

प्रगट चारि पद धर्म के कलि महुँ एक प्रधान।
जेन केन बिधि दीन्हें दान करइ कल्यान।।103ख।।

धर्म के चार चरण (सत्य, दया तप और दान) प्रसिद्ध हैं, जिनमें से कलि में एक [दानरूपी] चरण ही प्रधान है। जिस-किसी प्रकारसे भी दिये जानेपर दान कल्याण ही करता है।।103(ख)।।

चौ.-नित जुग धर्म होहिं सब केरे। हृदयँ राम माया के प्रेरे।।
सुद्ध सत्व समता बिग्याना। कृत प्रभाव प्रसन्न मन जाना।।1।।

श्रीरामजी की माया से प्रेरित होकर सबके हृदयों में सभी युगों के धर्म नित्य होते रहते हैं। शुद्ध सत्त्वगुण, समता, विज्ञान और मनका प्रसन्न होना, इसे सत्यसुग का प्रभाव जाने।।1।।

सत्व बहुत रज कछु रति कर्मा। सब बिधि सुख त्रेता कर धर्मा।।
बहु रज स्वल्प सत्व कछु तामस। द्वापर धर्म हरष भय
मानस।।2।।

सत्त्वगुण अधिक हो, कुछ रजो गुण हो, कर्मों में प्रीति हो, सब प्रकार से सुख हो, यह त्रेता का धर्म है। रजोगुण बहुत हो, सत्त्वगुण बहुत ही थोड़ा हो, कुछ तमों गुण हो, मनमें हर्ष और भय हों, यह द्वापर का धर्म है।।2।।

तामस बहुत रजोगुन थोरा। कलि प्रभाव बिरोध चहुँ ओरा।।
बुध जुग धर्म जानि मन माहीं। तजि अधर्म रति धर्म कराहीं।।3।।

तमोगुण बहुत हो, रजोगुण थोड़ा हो, चारों ओर वैर विरोध हो, यह कलियुग का प्रभाव है। पण्डित लोग युगों के धर्म को मन में जान (पहिचान) कर, अधर्म छोड़कर धर्म से प्रीति करते हैं।।3।।

काल धर्म नहिं ब्यापहिं ताही। रघुपति चरन प्रीति अति जाही।।
नट कृत बिकट कपट खगराया। नट सेवकहि न ब्यापइ
माया।।4।।

जिसका श्रीरघुनाथजी के चरणों में अत्यन्त प्रेम है, उसको कालधर्म (युगधर्म) नहीं व्यापते। हे पक्षिराज ! नट (बाजीगर) का किया हुआ कपट चरित्र (इन्द्रजाल) देखनेवालों हैं के लिये बड़ा विकट (दुर्गम) होता है, पर नट के सेवक (जंभूरे) को उसकी माया नहीं व्यापती है।।4।।

दो.-हरि माया कृत दोष गुन बिनु हरि भजन न जाहिं।
भजिअ राम तजि काम सब अस बिचारि मन माहिं।।104क।।

श्रीहरि की माया द्वारा रचे हुए दोष और गुण श्रीहरि के भजन के बिना नहीं जाते। मन में ऐसा विचारकर, सब कामनाओं को छोड़कर (निष्कामभावसे) श्रीहरि का भजन करना चाहिये।।104(क)।।

तेहिं कलिकाल बरस बहु बसेउँ अवध बिहगेस।
परेउ दुकाल बिपति बस तब मैं गयउँ बिदेस।।104ख।।

हे पक्षिराज ! उस कलिकाल में मैं बहुत वर्षोंतक अयोध्या में रहा। एक बार वहाँ अकाल पड़ा, तब मैं बिपत्ति का मारा विदेश चला गया।।104(ख)।।

चौ.-गयउँ उजेनी सुनु उरगारी। दीन मलीन दरिद्र दुखारी।।
गएँ काल कछु संपति पाई। तहँ पुनि करउँ संभु सेवकाई।।1।।

हे सर्पों के शत्रु गरुड़जी ! सुनिये, मैं दीन, मलिन (उदास), दरिद्र और दुखी होकर उज्जैन गया। कुछ काल बीतने पर कुछ सम्पत्ति पाकर फिर म वहीं भगवान् शंकर की आराधना करने लगा।।1।।

बिप्र एक बैदिक सिव पूजा। करइ सदा तेहिं काजु न दूजा।।
परम साधु परमारथ बिंदक। संभु उपासक नहिं हरि निंदक।।2।।

एक ब्राह्मण देवविधिसे सदा शिवजीकी पूजा करते, उन्हें दूसरा कोई काम न था। वे परम साधु और परमार्थके ज्ञाता थे। वे शम्भुके उपासक थे, पर श्रीहरिकी निन्दा करनेवाले न थे।।2।।

तेहि सेवउँ मैं कपट समेता। द्विज दयाल अति नीति निकेता।।
बाहिज नम्र देखि मोहि साईं। बिप्र पढ़ाव पुत्र की नाईं।।3।।

मैं कपटपूर्वक उनकी सेवा करता। ब्राह्मण बड़े ही दयालु और नीति के घर थे। हे स्वामी ! बाहर से नम्र देखकर ब्राह्मण मुझे पुत्र की भाँति मानकर पढ़ाते थे।।3।

संभु मंत्र मोहि द्विजबर दीन्हा। सुभ उपदेस बिबिध बिधि कीन्हा।।
जपउँ मंत्र सिव मंदिर जाई। हृदयँ दंभ अहमिति अधिकाई।।4।।

उन ब्राह्मणश्रेष्ठ ने मुझको शिवजी का मन्त्र दिया और अनेकों प्रकार के शुभ उपदेश किये। मैं शिवजी के मन्दिर में जाकर मन्त्र जपता। मेरे हृदय में दम्भ और अहंकार बढ़ गया।।4।।

दो.-मैं खल मल संकुल मति नीच जाति बस मोह।
हरि जन द्विज देखें जरउँ करउँ बिष्नु कर द्रोह।।105क।।

मैं दुष्ट, नीच जाति और पापमयी मलिन बुद्धिवाला मोहवश श्रीहरिके भक्तों और द्विजों को देखते ही जल उठता और विष्णुभगवान् से द्रोह करता था।।105(क)।।

सो.-गुर नित मोहि प्रबोध दुखित देखि आचरन मम।।
मोहि उपजइ अति क्रोध दंभिहि नीति की भावई।।105ख।।

गुरुजी मेरे आचरण देखकर दुखित थे। वे मुझे नित्य ही भलीभाँति समझाते, पर [मैं कुछ भी नहीं समझता] उलट् मुझे अत्यन्त क्रोध उत्पन्न होता। दम्भीको कभी नीति अच्छी लगती है ?।।105(ख)।।

चौ.-एक बार गुर लीन्ह बोलाई। मोहि नीति बहु भाँति सिखाई।।
सिव सेवा कर फल सुत सोई। अबिरल भगति राम पद होई।।1।।

एक बार गुरु जी ने मुझे बुला लिया और बहुत प्रकार से [परमार्थ] नीतिकी शिक्षा दी कि हे पुत्र ! शिवजीकी सेवा का फल यही है कि श्रीरामजीके चरणों में प्रगाढ़ भक्ति हो।।1।।

रामहि भजहिं तात सिव धाता। नर पावँर कै केतिक बाता।।
जासु चरन अज सिव अनुरागी। तासु द्रोहँ सुख चहसि अभागी।।2।।

हे तात ! शिवजी और ब्रह्माजी भी श्रीरामजी को भजते हैं, [फिर] नीच मनुष्य की तो बात ही कितनी है ? ब्रह्माजी और शिव जी जिनके चरणों के प्रेमी हैं, अरे अभागे ! उनसे द्रोह करके तू सुख चाहता है ?।।2।।

हर कहुँ हरि सेवक गुर कहेऊ। सुनि खगनाथ हृदय मम दहेऊ।।
अधम जाति मैं बिद्या पाएँ। भयउँ जथा अहि दूध पिआएँ।।3।।

गुरुजीने शिवजी को हरि का सेवक कहा। यह सुनकर हे पक्षिराज ! मेरा हृदय जल उठा। नीच जाति का विद्या पाकर ऐसा हो गया जैसे दूध पिलाने से साँप।।3।।

मानी कुटिल कुभाग्य कुजाती। गुर कर द्रोह करउँ दिनु राती।।
अति दयाल गुर स्वल्प न क्रोधा। पुनि पुनि मोहि सिखाव
सुबोधा।।4।।

अभिमानी, कुटिल, दुर्भाग्य और कुजाति मैं दिन-रात गुरुजीसे द्रोह करता। गुरुजी अत्यन्त दयालु थे। उनको थोड़ा-सा भी क्रोध नहीं आता। [मेरे द्रोह करने पर भी] वे बार-बार मुझे उत्तम ज्ञानकी शिक्षा देते थे।।4।।

जेहि ते नीच बड़ाई पावा। सो प्रथमहिं हति ताहि नसावा।।
धूम अनल संभव सुनु भाई। तेहि बुझाव घन पदवी पाई।।5।।

नीच मनुष्य जिससे बड़ाई पाता है, वह सबसे पहले उसी को मारकर उसी का नाश करता है। हे भाई ! सुनिये, आगसे उत्पन्न हुआ धुआँ मेघकी पदवी पाकर उसी अग्नि को बुझा देता है।।5।।

रज मग परी निरादर रहई। सब कर पद प्रहार नित सहई।।
मरुत उड़ाव प्रथम तेहि भरई। पुनि नृप नयन किरीटन्हि
परई।।6।।

धूल रास्ते में निरादर से पड़ी रहती है और सदा सब [राह चलने वालों] के लातों की मार सहती है पर जब पवन उसे उड़ाता (ऊँचा उठाता) है, तो सबसे पहले वह उसी (पवन) को भर देती है और फिर राजाओं के नेत्रों और किरीटों (मुकुटों) पर पड़ती है।।6।।

सुनु खगपति अस समुझि प्रसंगा। बुध नहिं करहिंअधम कर
संगा।।
कबि कोबिद गावहिं असि नीति। खल सन कलह न भल नहिं
प्रीती।।7।।

हे पक्षिराज गरुड़जी ! सुनिये, बात समझकर बुद्धिमान् लोग अधम (नीच) का संग नहीं करते। कवि और पण्डित ऐसी नीति कहते हैं कि दुष्ट से न कलह ही अच्छा है, न प्रेम ही।।7।।

उदासीन नित रहिअ गोसाईं। खल परिहरिअ स्वान की नाईं।।
मैं खल हृदयँ कपट कुटिलाई। गुर हित कहइ न मोहि
सोहाई।।8।।

हे गोसाईं ! उससे तो सदा उदासीन ही रहना चाहिये। दुष्ट को कुत्ते की तरह दूरसे ही त्याग देना चाहिये। मैं दुष्ट था, हृदय में कपट और कुटिलता भरी थी। [इसलिये यद्यपि] गुरु जी हित की बात कहते थे, पर मुझे वह सुहाती न थी।।8।।

दो.-एक बार हर मंदिर जपत रहेउँ सिव नाम।
गुर आयउ अभिमान तें उठि नहिं कीन्ह प्रनाम।।106क।।

एक दिन मैं शिव जी के मन्दिर में शिवनाम जप कर रहा था। उसी समय गुरुजी वहाँ आये, पर अभिमानके मारे मैंने उठकर उनको प्रणाम नहीं किया।।106(क)।।

सो दयाल नहिं कहेउ कछु उर न रोष लवलेस।।
अति अघ गुर अपमानता सहि नहिं सके महेस।।106ख।।

गुरुजी दयालु थे, [मेरा दोष देखकर भी] उन्होंने कुछ नहीं कहा; उनके हृदय में लेश मात्र भी क्रोध नहीं हुआ। पर गुरु का अपमान बहुत बड़ा पाप है; अतः महादेवजी उसे नहीं सह सके ।।106(ख)।।

चौ.-मंदिर माझ भई नभ बानी। रे हतभाग्य अग्य अभिमानी।।
जद्यपि तव गुर कें नहिं क्रोधा। अति कृपाल चित सम्यक बोधा।।1।।

मन्दिर में आकाश वाणी हुई कि अरे हतभाग्य ! मूर्ख ! अभिमानी ! यद्यपि तेरे गुरु को क्रोध नहीं है, वे अत्यन्त कृपालु चित्त के हैं और उन्हें [पूर्ण तथा] यथार्थ ज्ञान हैं, ।।1।।

तदपि साप सठ दैहउँ तोही। नीति बिरोध सोहाइ न मोही।।
जौं नहिं दंड करौं खल तोरा। भ्रष्ट होइ श्रुतिमारग मोरा।।2।।

तो भी हे मूर्ख ! तुझको मैं शाप दूँगा। [क्योंकि] नीति का विरोध मुझे अच्छा नहीं लगता। अरे दुष्ट ! यदि मैं तुझे दण्ड न दूँ, तो मेरा वेद मार्ग ही भ्रष्ट हो जाय।।2।।

जे सठ गुर सन इरिषा करहीं। रौरव नरक कोटि जुग परहीं।।
त्रिजग जोनि पुनि धरहिं सरीरा। अयुत जन्म भरि पावहिं पीरा।।3।।

जो मूर्ख गुरु से ईर्ष्या करते हैं, वे करोड़ों युगों तक रौरव नरक में पड़े रहते हैं। फिर (वहाँ से निकल कर) वे तिर्यग् (पशु, पक्षी

आदि) योनियों में शरीर धारण करते हैं और दस हजार जन्मों तक दुःख पाते रहते हैं।।3।।

बैठ रहेसि अजगर इव पापी। सर्प होहि खल मल मति ब्यापी।।
महा बिटप कोटर महुँ जाई। रहु अधमाधम अधगति पाई।।4।।

अरे पापी ! तू गुरु के सामने अजगर की भाँति बैठा रहा ! रे दुष्ट ! तेरी बुद्धि पाप से ढक गयी है, [अतः] तू सर्प हो जा। और, अरे अधम से भी अधम ! इस अद्योगति (सर्प की नीची योनि) को पाकर किसे बड़े भारी पेड़ के खोखले में जाकर रह।।4।।

दो.-हाहाकार कीन्ह गुर दारुन सुनि सिव साप।
कंपित मोहि बिलोकि अति उर उपजा परिताप।।107क।।

शिवजी का भयानक शाप सुनकर गुरुजीने हाहाकार किया। मुझे काँपता हुआ देखकर उनके हृदय में बड़ा संताप उत्पन्न हुआ।।107(क)।।

करिं दंडवत सप्रेम द्विज सिव सन्मुख कर जोरि।।
बिनय करत गदगद स्वर समुझि घोर गति मोरि।।107ख।।

प्रेम सहित दण्डवत् करके वे ब्राह्मण श्रीशिवजी के सामने हाथ जोड़कर मेरी भयंकर गति (दण्ड) का विचार कर गद्गद वाणी से विनती करने लगे।।107(ख)।।

छं.-नमामीशमीशान निर्वाणरूपं। विभुं व्यापकं ब्रह्म वेदस्वरुपं।।
निजं निर्गुणं निर्विकल्पं निरीहं। चिदाकाशमाकाशवासं भजेऽहं।।1।।

हे मोक्षस्वरुप, विभु, व्यापक, ब्रह्म और वेदस्वरुप, ईशान दिशाके ईश्वर तथा सबके स्वामी श्रीशिवजी ! मैं आपको नमस्कार करता हूँ। निजस्वरुप में स्थित (अर्थात् मायादिरहित) [मायिकि] गुणोंसे रहित, भेदरहित, इच्छारहित, चेतन, आकाशरुप एवं आकाशको ही वस्त्ररूपमें धारण करनेवाले दिम्बर [अथवा आकाशको भी आच्छादित करनेवाले] आपको मैं भजता हूँ।।1।।

निराकारमोंकारमूलं तुरीयं। गिरा ग्यान गोतीतमीशं गिरीशं।।
करालं महाकाल कालं कृपालं। गुणागार संसारपारं नतोऽहं।।2।।

निराकार, ओंकार के मूल, तुरीय (तीनों गुणों से अतीत), वाणी, ज्ञान और इन्द्रियों से परे, कैलासपति, विकराल, महाकाल के भी

काल, कृपालु, गुणों के धाम, संसार से परे आप परमेश्वर को मैं नमस्कार करता हूँ।।2।।

तुषाराद्रि संकाश गौरं गमीरं। मनोभूत कोटि प्रभा श्री शरीरं।।
स्फुरन्मौलि कल्लोलिनी चारु गंगा। तसद्भालबालेन्दु कंठे भुजंगा।।3।।

जो हिमालय के समान गौर वर्ण तथा गम्भीर हैं, जिसके शरीर में करोड़ों कामदेवों की ज्योति एवं शोभा है, जिनके सिर पर सुन्दर नदी गंगाजी विराजमान हैं, जिनके ललाट पर द्वितीया का चन्द्रमा और गले में सर्प सुशोभित हैं।।3।।

चलत्कुंलं भ्रू सुनेत्रं विशालं। प्रसन्नानं नीलकंठं दयालं।।
मृगाधीशचरमाम्बरं मुण्डमालं। प्रियं शंकरं सर्वनाथं भजामि।।4।।

जिनके कानों के कुण्डल हिल रहे हैं, सुन्दर भृकुटी और विशाल नेत्र हैं; जो प्रसन्नमुख, नीलकण्ठ और दयालु हैं; सिंहचर्म का वस्त्र धारण किये और मुण्डमाला पहने हैं; उन सबके प्यारे और सबके नाथ [कल्याण करनेवाले] श्रीशंकरजी को मैं भजता हूँ।।4।।

प्रचंडं प्रकृष्टं प्रगल्भं परेशं। अखंडं अजं भानुकोटिप्रकाशं।।
त्रयः शूल निर्मूलनं शूलपाणिं। भजेऽहं भवानीपतिं भावगम्यं।।5।।

प्रचण्ड (रुद्ररूप), श्रेष्ठ, तेजस्वी, परमेश्वर, अखण्ड, अजन्मा, करोड़ों सूर्यों के समान प्रकाशवाले, तीनों प्रकार के शूलों (दुःखों) को निर्मूल करनेवाले, हाथमें त्रिशूल धारण किये, भाव (प्रेम) के द्वारा प्राप्त होनेवाले भवानी के पति श्रीशंकरजी को मैं भजता हूँ।।5।।

कलातीत कल्याण कल्पान्तकारी। सदा सज्जनानन्ददाता पुरारी।।
चिदानंद संदोह मोहापहारी। प्रसीद पसीद प्रभो मन्मथारी।।6।।

कलाओं से परे, कल्याण, स्वरुप, कल्प का अन्त (प्रलय) करने वाले, सज्जनों को सदा आनन्द देने वाले, त्रिपुर के शत्रु, सच्चिदानन्दघन, मोह को हरनेवाले, मनको मथ डालनेवाले कामदेव के शत्रु हे प्रभो ! प्रसन्न हूजिये प्रसन्न हूजिये।।6।।

न यावद् उमानाथ पादारविन्द। भजंतीह लोके परे वा नराणां।।
न तावत्सुखं शान्ति सन्तापनाशं। प्रसीद प्रभो
सर्वभूताधिवासं।।7।।

जबतक पार्वती के पति आपके चरणकमलों से मनुष्य नहीं भजते, तबतक उन्हें न तो इहलोक और परलोक में सुख-शान्ति मिलती है और न उनके तापों का नाश होता है। अतः हे समस्त जीवों के अंदर (हृदय में) निवास करनेवाले प्रभो ! प्रसन्न हूजिये।।7।।

न जानामि योगं जपं नैव पूजां। नतोऽहं सदा सर्वदा शंभु तुभ्यं।।
जरा जन्म दुःखौघ तातप्यमानं। प्रभो पाहि आपन्नमामीश शंभो।।8।।

मैं न तो योग जानता हूँ, न जप और न पूजा ही। हे शम्भो ! मैं तो सदा-सर्वदा आपको ही नमस्कार करता हूँ। हे प्रभो ! बुढ़ापा तथा जन्म [मृत्यु] के दुःख समूहों से जलते हुए मुझ दुःखीको दुःखसे रक्षा करिये। हे ईश्वर ! हे शम्भो ! मैं नमस्कार करता हूँ।।8।।

श्लोक-रुद्राष्टकमिदं प्रोक्तं विप्रेण हरतोषये।।
ये पठन्ति नरा भक्त्या तेषां शम्भुः प्रसीदति।।9।।

भगवान् रुद्र की स्तुति का यह अष्टक उन शंकर जी की तुष्टि (प्रसन्नता) के लिये ब्राह्मणद्वारा कहा गया। जो मनुष्य इसे भक्ति पूर्वक पढ़ते हैं, उनपर भगवान् शम्भु प्रसन्न हो जाते हैं।।9।।

दो.-सुनि बिनती सर्बग्य सिव देखि बिप्र अनुरागु।
पुनि मंदिर नभबानी भइ द्विजबर बर मागु।।108क।।

सर्वज्ञ शिवजीने विनती सुनी और ब्राह्मण का प्रेम देखा। तब मन्दिर में आकाशवाणी हुई कि हे द्विजश्रेष्ठ ! वर माँगो।।108(क)।।

जौं प्रसन्न प्रभु मो पर नाथ दीन पर नेहु।
निज पद भगति देइ प्रभु पुनि दूसर बर देहु।।108ख।।

[ब्राह्मणने कहा-] हे प्रभो ! यदि आप मुझपर प्रसन्न हैं और हे नाथ ! यदि इस दीनपर आपका स्नेह है, तो पहले अपने चरणों की भक्ति देकर फिर दूसरा वर दीजिये।।108(ख)।।

तव माया बस जीव जड़ संतत फिरइ भुलान।।
तेहि पर क्रोध न करिअ प्रभु कृपा सिंधु भगवान।।108ग।।

हे प्रभों !यह अज्ञानी जीव आपकी माया के वश होकर निरन्तर भूला फिरता है। हे कृपा के समुद्र भगवान् ! उसपर क्रोध न कीजिये।।108(ग)।।

संकर दीनदयाल अब एहि पर होहु कृपाल।
साप अनुग्रह होइ जेहिं नाथ थोरेहीं काल।।108घ।।

हे दीनों पर दया करने वाले (कल्याणकारी) शंकर ! अब इसपर कृपालु होइये (कृपा कीजिये), जिससे हे नाथ ! थोड़े ही समय में इसपर शापके बाद अनुग्रह (शाप से मुक्ति) हो जाय।।108(घ)।।

चौ.-एहि कर होइ परम कल्याना। सोइ करहु अब कृपानिधाना।।
बिप्रगिरा सुनि परहित सानी। एवमस्तु इति भइ नभबानी।।

हे कृपा के निधान ! अब वही कीजिये, जिससे इसका परम कल्याण हो। दूसरेके हितसे सनी हुई ब्राह्मणकी वाणी सुनकर फिर आकाश वाणी हुई-एवमस्तु (ऐसा ही हो)।।1।।

जदपि कीन्ह एहिं दारुन पापा। मैं पुनि दीन्हि कोप करि सापा।।
तदपि तुम्हारि साधुता देखी। करिहउँ एहि पर कृपा बिसेषी।।2।।

यद्यपि इसने भयानक पाप किया है और मैंने भी इसे क्रोध करके शाप दिया है, तो भी तुम्हारी साधुता देखकर मैं इसपर विशेष कृपा करूँगा।।2।।

छमासील जे पर उपकारी। ते द्विज मोहि प्रिय जथा खरारी।।
मोर श्राप द्विज ब्यर्थ न जाइहि। जन्म सहस अवस्य यह
पाइहि।।3।।

हे द्विज ! जो क्षमाशील एवं परोपकारी होते हैं, वे मुझे वैसे ही प्रिय हैं जैसे खरारि श्रीरामचन्द्रजी । हे द्विज ! मेरा शाप व्यर्थ नहीं जायगा यह हजार जन्म अवश्य पावेगे।।3।।

जनमत मरत दुसह दुख होई। एहि स्वल्पउ नहिं ब्यपिहि सोई।।
कवनेउ जन्म मिटिहि नहिं ग्याना। सुनहि सूद्र मम बचन
प्रवाना।।4।।

परन्तु जन्मने में और मरने में जो दुःसह दुःख होता है, इसको वह दुःख जरा भी न व्यापेगा और किसी भी जन्म में इसका ज्ञान नहीं मिटेगा। हे शूद्र ! मेरा प्रमाणिक (सत्य) बचन सुन ।।4।।

रघुपति पुरी जन्म तव भयऊ। पुनि तैं मम सेवाँ मन दयऊ।।
पुरी प्रभाव अनुग्रह मोरें। राम भगति उपजिहि उर तोरें।।5।।

[प्रथम जो] तेरा जन्म श्रीरघुनाथजी की पुरी में हुआ। फिर तूने मेरी सेवा में मन लगाया। पुरी के प्रभाव और मेरी कृपासे तेरे हृदय में रामभक्ति होगी।।5।।

सुनु मम बचन सत्य अब भाई। हरितोषन ब्रत द्विज सेवकाई।।
अब जनि करहि बिप्र अपमाना। जानेसु संत अनंत समाना।।6।।

हे भाई ! अब मेरा सत्य वचन सुन। द्विजोंकी सेवा ही भगवान् को प्रसन्न करने वाला व्रत है। अब कभी ब्राह्मण का अपमान न करना। संतों को अनन्त श्रीभगवान् ही के समान जानना।।6।।

इंद्र कुलिस मम सूल बिसाला। कालदंड हरि चक्र कराला।।
जो इन्ह कर मारा नहिं मरई। बिप्रद्रोह पावक सो जरई।।7।।

इन्द्र के वज्र, मेरा विशाल त्रिशूल, कालके दण्ड और श्रीहरिके विकराल चक्रके मारे भी जो नहीं मरता, वह भी विप्रद्रोहीरूपी अग्नि से भस्म हो जाता है।।7।।

अस बिबेक राखेहु मन माहीं। तुम्ह कहँ जग दुर्लभ कछु नाहीं।।
औरउ एक आसिषा मोरी। अप्रतिहत गति होइहि तोरी।।8।।

ऐसा विवेक मन में रखना। फिर तुम्हारे लिये जगत् में कुछ भी दुर्लभ न होगा। मेरा एक और भी आशीर्वाद है कि तुम्हारी सर्वत्र अबाध गति होगी (अर्थात् तुम जहाँ जाना चाहोगे, वहीं बिना रोक-टोक के जा सकोगे।।8।।

दो.-सुनि सिव बचन हरषि गुर एवमस्तु इति भाषि ।।
मोहि प्रबोधि गयउ गृह संभु चरन उर राखि।।109क।।

[आकाशवाणीके द्वारा] शिवजी के वचन गुरुजी सुनकर हर्षित होकर ऐसा ही हो यह कहकर मुझे बहुत समझाकर और शिवजी के चरणोको हृदय में रखकर अपने घर गये।।109(क)।।

प्रेरित काल बिंधि गिरि जाइ भयउँ मैं ब्याल।
पुनि प्रयास बिनु सो तनु तजेउँ गएँ कछु काल।।109ख।।

काल की प्रेरणासे मैं विन्ध्याचलमें जाकर सर्प हुआ। फिर कुछ काल बीतने पर बिना ही परिश्रम (कष्ट) के मैंने वह शरीर त्याग दिया।।109(ख)।।

जोइ तनु धरउँ तजउँ पुनि अनायास हरिजान।।
जिमि नूतन पट पहिरइ नर परिहरइ पुरान।।109ग।।

हे हरिवाहन ! मैं जो भी शरीर धारण करता, उसे बिना ही परिश्रम वैसे ही सुखपूर्वक त्याग देता था जैसे मनुष्य पुराना वस्त्र त्याग देता है और नया पहिन लेता है।।109(ग)।

सिवँ राखी श्रुति नीति अरु मैं नहिं पावा क्लेस।
एहि बिधि धरेउँ बिबिधि तनु ग्यान न गयउ खगेस।।109घ।।

शिवजीने वेदकी मर्यादा की रक्षा की और मैंने क्लेश भी नहीं पाया। इस प्रकार हे पक्षिराज ! मैंने बहुत-से शरीर धारण किये, पर मेरा ज्ञान नहीं गया।।109(घ)।।

चौ.-त्रिजग देव नर जोइ तनु धरऊँ। तहँ तहँ राम भजन अनुसरऊँ।।
एक सूल मोहि बिसर न काऊ। गुर कर कोमल सील सुभाऊ।।1।।

तिर्यक् योनि (पशु-पक्षी) देवता या मनुष्य का, जो भी शरीर धारण करता, वहाँ-वहाँ (उस-उस शरीरमें) मैं श्रीरामजी का भदजन जारी रखता। [इस प्रकार मैं सुखी हो गया] परन्तु एक शूल मुझे बना रहा। गुरुजी का कोमल, सुशील स्वभाव मुझे कभी

गीताप्रेस गोरखपुर

नहीं भूलता (अर्थात् मैंने ऐसा कोमल स्वभाव दयालु गुरुका अपमान किया, यह दुःख मुझे सदा बना रहा)।1।।

चरम देह द्विज कै मैं पाई। सुर दुर्लभ पुरान श्रुति गाई।।
खेलउँ तहूँ बालकन्ह मीला। करउँ सकल रघुनायक लीला।।2।।

मैंने अन्तिम शरीर ब्राह्मण का पाया, जिसे पुराण और वेद देवताओं को भी दुर्लभ बताते हैं। मैं वहाँ (ब्राह्मण-शरीरमें) भी बालकोंमें मिलकर खेलता तो श्रीरघुनाथजीकी ही सब लीलाएँ किया करता।।2।।

प्रौढ़ भएँ मोहि पिता पढ़ावा। समझउँ सुनउँ गुनउँ नहिं भावा।।
मन ते सकल बासना भागी। केवल राम चरन लय लागी।।3।।

सयाना होनेपर पिता जी मुझे पढ़ाने लगे। मैं समझता, सुनता और विचारता, पर मुझे पढ़ना अच्छा नहीं लगता था। मेरे मन से सारी वासनाएँ भाग गयीं। केवल श्रीरामजी के चरणों में लव लग गयी।।3।।

कहु खगेस अस कवन अभागी। खरी सेव सुरधेनुहि त्यागी।।
प्रेम मगन मोहि कछु न सोहाई। हारेउ पिता पढ़ाइ पढ़ाई।।4।।

हे गरुड़जी ! कहिये, ऐसा कौन अभागा होगा जो कामधेनु को छोड़कर गदहीकी सेवा करेगा ? प्रेममें मग्न रहने के कारण मुझे कुछ भी नहीं सुहाता। पिताजी पढ़ा-पढ़ाकर हार गये।।4।।

भए कालबस जब पितु माता। मैं बन गयउँ भजन जनत्राता।।
जहँ तहँ बिपिन मुनीस्वर पावउँ। आश्रम जाइ जाइ सिरु
नावउँ।।5।।

जब पिता-माता कालवाश हो गये (मर गये), तब मैं भक्तों की रक्षा करनेवाले श्रीरामजीका भजन करने के लिये वन में चलता गया। वन में जहाँ-जहाँ मुनीश्वरों के आश्रम पाता वहाँ-वहाँ जा-जाकर उन्हें सिर नवाता।।5।।

बूझउँ तिन्हहि राम गुन गाहा। कहहिं सुनउँ हरषित खगनाहा।।
सुनत फिरउँ हरि गुन अनुबादा। अब्याहत गति संभु प्रसादा।।6।।

उनसे मैं श्रीरामजीके गुणों की कथाएँ पूछता। वे कहते और मैं हर्षित होकर सुनता। इस प्रकार मैं सदा-सर्वदा श्रीहरि के गुणानुवाद सुनता फिरता। शिवजी की कृपासे मेरी सर्वत्र अबाधित गति थी (अर्थात् मैं जहाँ चाहता वहीं जा सकता था)।।6।।

छूटी त्रिबिधि ईषना गाढ़ी। एक लालसा उर अति बाढ़ी।
राम चरन बारिज जब देखौं। तब निज जन्म सफल करि
लेखौं।।7।।

मेरी तीनों प्रकार की (पुत्रकी, धनकी और मानकी) गहरी प्रबल वासनाएँ छूट गयीं। और हृदय में एक ही लालसा अत्यन्त बढ़ गयी कि जब श्रीरामजीके चरणकमलों के दर्शन करूँ तब अपना जन्म सफल हुआ समझूँ।।7।।

जेहि पूँछउँ सोइ मुनि अस कहई। ईस्वर सर्ब भूतमय अहई।।
निर्गुन मत नहिं मोहि सोहाई। सगुन ब्रह्म रति उर अधिकाई।।8।।

जिनसे मैं पूछता, वे ही मुनि ऐसा कहते कि ईश्वर सर्वभूतमय है। यह निर्गुण मत मुझे नहीं सुहाता था। हृदय में सगुण ब्रह्मपर प्रीति बढ़ रही थी।।8।।

दो.-गुर के बचन सुरति करि राम चरन मनु लाग।
रघुपति जस गावत फिरउँ छन छन नव अनुराग।।110क।।

गुरुजीके वचनों का स्मरण करके मेरा मन श्रीरामजीके चरणों में लग गया। मैं क्षण-क्षण नया-नया प्रेम प्राप्त करता हुआ श्रीरघुनाथजीका यश गाता फिरता था।।110(क)।।

मेरु सिखर बट छायाँ मुनि लोमस आसीन।
देखि चरन सिरु नायउँ बचन कहेउँ अति दीन।।110ख।।

सुमेरुपर्वतके शिखरपर बड़ी छाया में लोमश मुनि बैठे थे। उन्हें देखकर मैंने उनके चरणों में सिर नवाया और अत्यन्त दीन वचन कहे।।110(ख)।।

सुनि मम बचन बिनीत मृदु मुनि कृपाल खगराज।
मोहि सादर पूँछत भए द्विज आयहु केहि काज।।110ग।।

हे पक्षिराज ! मेरे अत्यन्त नम्र और कोमल वचन सुनकर कृपालु मुनि मुझसे आदरके साथ पूछने लगे-हे ब्राह्मण ! आप किस कार्य से यहाँ आये हैं।।110(ग)।।

तब मैं कहा कृपानिधि तुम्ह सर्बग्य सुजान।।
सगुन ब्रह्म अवराधन मोहि कहहु भगवान।।11घ।।

तब मैंने कहा हे कृपानिधि ! आप सर्वज्ञ हैं और सुजान है। हे भगवान् ! मुझे सगुण ब्रह्मकी आराधना [की प्रक्रिया] कहिये।110(घ)।।

चौ.-तब मुनीस रघुपति गुन गाथा। कहे कछुक सादर खगनाथा।।
ब्रह्मग्यान रत मुनि बिग्यानी। मोहि परम अधिकारी जानी।।1।।

तब हे पक्षिराज ! मुनीश्वर ने श्रीरघुनाथजी के गुणों की कुछ कथाएँ आदर सहित कहीं। फिर वे ब्रह्मज्ञानपरायण विज्ञानवान् मुनि मुझे परम अधिकारी जानकर-।।1।।

लागे करन ब्रह्म उपदेसा। अज अद्वैत अगुन हृदयेसा।।
अकल अनीह अनाम अरूपा। अनुभव गम्य अखंड अनूपा।।2।।

ब्रह्मका उपदेश करने लगे कि वह अजन्मा है, अद्वैत है, निर्गुण है और हृदय का स्वामी (अन्तर्यामी) है। उसे कोई बुद्धि के द्वारा माप नहीं सकता, वह इच्छारहित, नामरहित, रूपरहित, अनुभवसे जानने योग्य, अखण्ड और उपमारहित है,।।2।।

मन गोतीत अमल अबिनासी। निर्बिकार निरवधि सुख रासी।।
सो तैं ताहि तोहि नहिं भेदा। बारि बीचि इव गावहिं बेदा।।3।।

वह मन और इन्द्रियों से परे, निर्मल, विनाशरहित, निर्विकार, सीमारहित और सुख की राशि है। वेद ऐसा गाते हैं कि वही तू है (तत्त्वमसि), जल और जल की लहर की भाँति उसमें और तुझमें कोई भेद नहीं है।।3।।

बिबिधि भाँति मोहि मुनि समुझावा। निर्गुन मत मम हृदयँ न आवा।।
पुनि मैं कहेउँ नाइ पद सीसा। सगुन उपासन कहहु मुनीसा।।4।।

मुनिने मुझे अनेकों प्रकार से समझाया, पर निर्गुण मत मेरे हृदय में नहीं बैठा। मैंने फिर मुनि के चरणों में सिर नवाकर कहा-हे मुनीश्वर ! मुझे सगुण ब्रह्म की उपासना कहिये।।4।।

राम भगति जल मम मन मीना। किमि बिलगाइ मुनीस प्रबीना।।
सोइ उपदेस कहहु करि दाया। निज नयनन्हि देखौं रघुराया।।5।।

मेरा मन राम भक्तिरूपी जलमें मछली हो रहा है [उसीमें रम रहा है]। हे चतुर मुनीश्वर ! ऐसी दशा में वह उससे अलग कैसे हो सकता है ? आप दया करके मुझे वही उपदेश (उपाय) कहिये जिससे मैं श्रीरघुनाथजीको अपनी आँखोंसे देख सकूँ।।5।।

भरि लोचन बिलोकि अवधेसा। तब सुनिहउँ निर्गुन उपदेसा।।
मुनि पुनि कहि हरिकथा अनूपा। खंडि सगुन मत अगुन
निरूपा।।6।।

[पहले] नेत्र भरकर श्रीअयोध्यानाथ को देखकर, तब निर्गुणका उपदेश सुनूँगा। मुनिने फिर अनुपम हरिकथा कहकर, सगुण मतका खण्डन करके निर्गुण का निरूपण किया।।6।।

तब मैं निर्गुन मत कर दूरी। सगुन निरूपउँ करि हठ भूरी।।
उत्तर प्रतिउत्तर मैं कीन्हा। मुनि तन भए क्रोध के चीन्हा।।7।।

तब मैं निर्गुण मत को हटाकर (काटकर) बहुत हठ करके सगुणका निरूपण करने लगा। मैंने उत्तर-प्रत्युत्तर किया, इससे मुनिके शरीरमें क्रोध के चिह्न उत्पन्न हो गये।।7।।

सुनु प्रभु बहुत अवग्या किएँ। उपज क्रोध ग्यानिन्ह के हिएँ।।
अति संघरषन जौं कर कोई। अनल प्रगट चंदन ते होई।।8।।

हे प्रभो ! सुनिये, बहुत अपमान करने पर ज्ञानी के भी हृदय में क्रोध उत्पन्न हो जाता है यदि कोई चन्दन की लकड़ी को बहुत अधिक रगड़े, तो उससे भी अग्नि प्रकट हो जायगी।।8।।

दो.-बारंबार सकोप मुनि करइ निरुपन ग्यान।
मैं अपनें मन बैठ तब करउँ बिबिधि अनुमान।।111क।।

मुनि बार-बार क्रोध सहित ज्ञानका निरूपण करने लगे। तब मैं बैठा-बैठा अपने मनमें अनेकों प्रकारके अनुमान करने लगा।।111(क)।।

क्रोध कि द्वैतबुद्धि बिनु द्वैत कि बिनु अग्यान।
मायाबस परिछिन्न जड़ जीव कि ईस समान।।111ख।।

बिना द्वैतबुद्धिके क्रोध कैसा और बिना अज्ञानके क्या द्वैतबुद्धि हो सकती है ?माया के वश रहने वाला परिच्छिन्न जड़ जीव क्या ईश्वर के समान हो सकता है ?।।111(ख)।।

चौ.-कबहुँ कि दुख सब कर हित ताकें। तेहि कि दरिद्र परस मनि जाकें।।
परद्रोही की होहिं निसंका। कामी पुनि कि रहहिं अकलंका।।1।।

सबका हित चाहने से क्या कभी दुःख हो सकता है ? जिसके पास पारसमणि है, उसके पास क्या दरिद्रता रह सकती है ? दूसरे से द्रोह करनेवाले क्या निर्भय हो सकते हैं ? और कामी क्या कलंकरहित (बेदाग) रह सकते हैं ?।।1।।

बंस कि रह द्विज अनहित कीन्हें। कर्म कि होहिं स्वरुपहिं चीन्हें।।
काहू सुमति कि खल सँग जामी। सुभ गति पाव कि परत्रिय गामी।।2।।

ब्राह्मण का बुरा करने से क्या वंश रह सकता है ? स्वरूपकी पहिचान (आत्मज्ञान) होने पर क्या [आसक्तिपूर्वक] कर्म हो सकते हैं ? दुष्टोंके संगसे क्या किसीके सुबुद्धि उत्पन्न हुई है ? परस्त्रीगामी क्या उत्तम गति पा सकता है ?।।2।।

भव कि परहिं परमात्मा बिंदक। सुखी कि होहिं कबहुँ हरिनिंदक।।
राजु कि रहइ नीति बिनु जानें। अघ कि रहहिं हरिचरित बखानें।।3।।

परमात्मा को जानने वाले कहीं जन्म-मरण [के चक्कर] में पड़ सकते हैं ? भगवान् की निन्दा करनेवाले कभी सुखी हो सकते हैं ? नीति बिना जाने क्या राज्य रह सकता है ? श्रीहरिके चरित्र वर्णन करनेपर क्या पाप रह सकते हैं ?।।3।।

पावन जस कि पुन्य होई। बिनु अघ अजस कि पावइ कोई।।
लाभु कि किछु हरि भगति समाना। जेहि गावहिं श्रुति संत पुराना।।4।।

बिना पुण्य के क्या पवित्र यश [प्राप्त] हो सकता है ? बिना पापके भी क्या कोई अपयश पा सकता है ? जिसकी महिमा वंद संत और पुराण गाते हैं उस हरि-भक्ति के समान क्या कोई दूसरा भी है ?।।4।।

हानि कि जग एहि सम किछु भाई। भजिअ न रामहि नर तनु पाई।।
अघ कि पिसुनता सम कछु आना। धर्म कि दया सरिस हरिजाना।।5।।

हे भाई ! जगत् में क्या इसके समान दूसरी भी कोई हानि है कि मनुष्य का शरीर पाकर भी श्रीरामजीका भजन न किया जाय ?

चुगलखोरी के समान क्या कोई दूसरा पाप है ? और हे गरुड़जी ! दया के समान क्या कोई दूसरा धर्म है ?।।5।।

एहि बिधि अमिति जुगुति मन गुनऊँ। मुनि उपदेस न सादर सुनऊँ।।
पुनि पुनि सगुन पच्छ मैं रोपा। तब मुनि बोलेउ बचन सकोपा।।6।।

इस प्रकार मैं अनगिनत युक्तियाँ मन में विचारता था और आदर के साथ मुनिका उपदेश नहीं सुनता था। जब मैंने बार-बार सगुण का पक्ष स्थापित किया, तब मुनि क्रोधयुक्त वचन बोले-।।6।।

मूढ़ परम सिख देउँ न मानसि। उत्तर प्रतिउत्तर बहु आनसि।।
सत्य बचन बिस्वास न करही। बायस इव सबही ते डरही।।7।।

अरे मूढ़ ! मैं तुझे सर्वोत्तम शिक्षा देता हूँ, तू भी तो उसे हीं मानता और बहुत-से उत्तर प्रत्युत्तर (दलीलें) लाकर रखता है। मेरे सत्य वचन पर विस्वास नहीं करता ! कौए की भाँति सभी से डरता है।।7।।

सठ स्वपच्छ तव हृदयँ बिसाला। सपदि होहि पच्छी चंडाला।।
लीन्ह श्राप मैं सीस चढ़ाई। नहिं कछु भय न दीनता आई।।8।।

अरे मूर्ख ! तेरे हृदय में अपने पक्ष का बड़ा भारी हठ है अतः तू शीघ्र चाण्डाल पक्षी (कौआ) हो जा। मैंने आनन्द के साथ मुनि के श्राप को सिर पर चढ़ा लिया। उससे मुझे न कुछ भय हुआ, न दीनता ही आयी।।8।।

दो.-तुरत भयउँ मैं काग तब पुनि मुनि पद सिरु नाइ।।
सुमिरि राम रघुबंस मनि हरषित चलेउँ उड़ाइ।।112क।।

तब मैं तुरन्त ही कौआ हो गया। फिर मुनि के चरणों में सिर नवाकर और रघुकुलशिरोमणि श्रीरामजीका स्मरण करके मैं हर्षित होकर उड़ चला।।112(क)।।

उमा जे राम चरन रत बिगत काम मद क्रोध।
निज प्रभुमय देखहिं जगत केहि सन करहिं बिरोध।।112ख।।

[शिव जी कहते है-] हे उमा ! जो श्रीहरिके चरणों के प्रेमी हैं, और काम, अभिमान तथा क्रोध से रहित हैं, वे जगत् को अपने प्रभु से भरा हुआ देखते हैं, फिर वे किससे वैर करें।।112(ख)।।

चौ.-सुनु खगेस नहिं कछु रिषि दूषन। उर प्रेरक रघुबंस बिभूषन।।
कृपासिंधु मुनि मति करि भोरी। लीन्ही प्रेम परिच्छा मोरी।।1।।

[काकभुशुण्डिजीने कहा-] हे पक्षिराज गरुड़जी ! सुनिये, इसमें ऋषिका कुछ भी दोष नहीं था। रघुवंशके विभूषण श्रीरामजी ही सबके हृदय में प्रेरणा करनेवाले हैं। कृपासागर प्रभु ने मुनिकी बुद्धिको भोली करके (भुलावा देकर) मेरे प्रेम की परीक्षा ली।।1।।

मन बच क्रम मोहि जन जाना। मुनि मति पुनि फेरी भगवाना।।
रिषि मम महत सीलता देखी। राम चरन बिस्वास बिसेषी।।2।।

मन, वचन और कर्म से जब प्रभु ने मुझे अपना दास जान लिया तब भगवान् ने मुनि की बुद्धि फिर से पलट दी। ऋषिने मेरा महान् पुरुषोंको-सा स्वभाव (धैर्य, अक्रोध विनय आदि) और श्रीरामजीके चरणोंमें विशेष विश्वास देखा।।2।।

अति बिसमय पुनि पुनि पछिताई। सादर मुनि मोहि लीन्ह बोलाई।।
मम परितोष बिबिधि बिधि कीन्हा। हरषित राममंत्र तब दीन्हा।।3।।

गीताप्रेस गोरखपुर

तब मुनि ने बहुत दुःख के साथ बार-बार पछताकर मुझे आदरपूर्वक बुला लिया। उन्होंने अनेकों प्रकार से मेरा सन्तोष किया और तब हर्षित होकर मुझे राममन्त्र दिया।।3।।

बालकरूप राम कर ध्याना। कहेउ मोहि मुनि कृपानिधाना।।
सुंदर सुखद मोहि अति भावा। सो प्रथमहिं मैं तुम्हहि सुनावा।।4।।

कृपानिधान मुनि ने मुझे बालकरूप श्रीरामजीका ध्यान (ध्यान की विधि) बतलाया। सुन्दर और सुख देनेवाला यह ध्यान मुझे बहुत ही अच्छा लगा। वह ध्यान मैं आपको पहले ही सुना चुका हूँ।।4।।

मुनि मोहि कछुक काल तहँ राखा। रामचरितमानस तब भाषा।।
सादर मोहि यह कथा सुनाई। पुनि बोले मुनि गिरा सुहाई।।5।।

मुनि ने कुछ समय तक मुझको वहाँ (अपने पास) रक्खा। तब उन्होंने रामचरित मानस वर्णन किया। आदरपूर्वक मुझे यह कथा सुनाकर फिर मुनि मुझसे सुन्दर वाणी बोले।।5।।

रामचरित सर गुप्त सुहावा। संभु प्रसाद तात मैं पावा।।
तोहि निज भगत राम कर जानी। ताते मैं सब कहेउँ बखानी।।6।।

हे तात ! यह सुन्दर और गुप्त रामचरितमानस मैंने शिवजी की कृपा से पाया था। तुम्हें श्रीरामजी का ‘निज भक्त’ जाना, इसीसे मैंने तुमसे सब चरित्र विस्तार के साथ कहा।।6।।

राम भगति जिन्ह कें उर नाहीं। कबहुँ न तात कहिअ तिन्ह पाहीं।।
मुनि मोहि बिबिधि भाँति समुझावा। मैं सप्रेम मुनि पद सिरु नावा।।7।।

हे तात ! जिनके हृदय में श्रीरामजी का भक्ति नहीं है, उनके सामने इसे कभी नहीं कहना चाहिये। मुनि ने मुझे बहुत प्रकार से समझाया। तब मैंने प्रेम के साथ मुनि के चरणों में सिर नवाया।।7।।

निज कर कमल परसि मम सीसा। हषित आसिष दीन्ह मुनीसा।।
राम भगति अबिरल उर तोरें। बसिहि सदा प्रसाद अब मोरें।।8।।

मुनीश्वर ने अपने कर-कमलोंसे मेरा सिर स्पर्श करके हर्षित होकर आशीर्वाद दिया कि अब मेरी कृपासे तेरे हृदय में सदा प्रगाढ़ राम-भक्ति बसेगी।।8।।

दो.-सदा राम प्रिय होहु तुम्ह सुभ गुन भवन अमान।
कामरूप इच्छामरन ग्यान बिराग निधान।।113क।।

तुम सदा श्रीरामजीको प्रिय होओ और कल्याण रूप गुणोंके धाम, मानरहित इच्छानुसार रूप धारण करनेमें समर्थ, इच्छामृत्यु (जिसकी शरीर छोड़नेकी इच्छा करने पर ही मृत्यु हो, बिना इच्छाके मृत्यु न हो), एवं ज्ञान और वैराग्य के भण्डार होओ।।113(क)।।

जेहिं आश्रम तुम्ह बसब पुनि सुमिरत श्रीभगवंत।
ब्यापिहि तहँ न अबिद्या जोजन एक प्रजंत।।113ख।।

इतना ही नहीं, श्रीभगवान् को स्मरण करते हुए तुम जिस आश्रम में निवास करोगे वहाँ एक योजन (चार कोस) तक अविद्या (माया-मोह) नहीं ब्यापेगी।।113(ख)।।

चौ.-काल कर्म गुन दोष सुभाऊ। कछु दुख तुम्हहि न ब्यापिहि काऊ।।
राम रहस्य ललित बिधि नाना। गुप्त प्रगट इतिहास पुराना।।1।।

काल, कर्म, गुण दोष और स्वभाव से उत्पन्न कुछ भी दुःख तुमको कभी नहीं व्यापेगा। अनेकों प्रकार से सुन्दर श्रीरामजीके रहस्य (गुप्त मर्म के चरित्र और गुण) जो इतिहास और पुराणोंमें गुप्त और प्रकट हैं (वर्णित और लक्षित हैं)।।1।।

बिनु श्रम तुम्ह जानब सब सोऊ। नित नव नेह राम पद होऊ।।
जो इच्छा करिहहु मन माहीं। हरि प्रसाद कछु दुर्लभ नाहीं।।2।।

तुम उन सबको भी बिनाही परिश्रम जान जाओगे। श्रीरामजीके चरणोंमें तुम्हारा नित्य नया प्रेम हो। अपने मनमें तुम जो कुछ इच्छा करोगे, श्रीहरिकी कृपा से उसकी पूर्ति कुछ भी दुर्लभ नहीं होगी।।2।।

सुनि मुनि आसिष सुनु मतिधीरा। ब्रह्मगिरा भइ गगन गँभीरा।।
एवमस्तु तव बच मुनि ग्यानी। यह मम भगत कर्म मन
बानी।।3।।

हे धीरबुद्धि गरुड़जी ! सुनिये, मुनिका आशीर्वाद सुनकर आकाशमें गम्भीर ब्रह्मवाणी हुई कि हे ज्ञानी मुनि तुम्हारा वचन ऐसा ही (सत्य) हो। यह कर्म, मन और वचन से मेरा भक्त है।।3।।

सुनि नभगिरा हरष मोहि भयऊ। प्रेम मगन सब संसय गयऊ।।
करि बिनती मुनि आयसु पाई। पद सरोज पुनि पुनि सिरु
नाई।।4।।

आकाशवाणी सुनकर मुझे बड़ा हर्ष हुआ। मैं प्रेम में मग्न हो गया और मेरा सब सन्देह जाता रहा। तदनन्तर मुनिकी विनती करके, आज्ञा पाकर और उनके चरणकमलों में बार-बार सिर नवाकर- ।।4।।

हरष सहित एहिं आश्रम आयउँ। प्रभु प्रसाद दुर्लभ बर पायउँ।।
इहाँ बसत मोहि सुनु खग ईसा। बीते कलप सात अरु बीसा।।5।।

मैं हर्षिसहित इस आश्रममें आया। प्रभु श्रीरामजीकी कृपासे मैंने दुर्लभ वर पा लिया। हे पक्षिराज ! मुझे यहाँ निवास करते सत्ताईस कल्प बीत गये।।5।।

करउँ सदा रघुपति गुन गाना। सादर सुनहिं बिहंग सुजाना।।
जब जब अवधपुरी रघुबीरा। धरहिं भगत हित मनुज
सरीरा।।6।।

मैं यहाँ सदा श्रीरघुनाथजीके गुणोंका गान किया करता हूँ और चतुर पक्षी उसे आदरपूर्वक सुनते हैं। अयोध्यापुरीमें जब-जब

श्रीरघुवीर भक्तों के [हितके] लिये मनुष्यशरीर धारण करते हैं,।।6।।

तब तब जाइ राम पुर रहउँ। सिसुलीला बिलोकि सुख लहऊँ।।
पुनि उर राखि राम सिसुरूपा। निज आश्रम आवउँ खगभूपा।।7।।

तब-तब मैं जाकर श्रीरामजी की नगरी में रहता हूँ और प्रभु की शिशु लीला देखकर सुख प्राप्त करता हूँ। फिर हे पक्षिराज ! श्रीरामजीके शिशुरूपको हृदय में रखकर मैं अपने आश्रममें आ जाता हूँ।।7।।

कथा सकल मैं तुम्हहि सुनाई। काग देह जेहिं कारन पाई।।
कहिउँ तात सब प्रस्न तुम्हारी। राम भगति महिमा अति भारी।।8।।

जिस कारण से मैंने कौए की देह पायी, वह सारी कथा आपको सुना दी। हे तात ! मैंने आपके सब प्रश्नों के उत्तर कहे। अहा ! राभक्तिकी बड़ी भारी महिमा है।।8।।

दो.-ताते यह प्रन मोहि प्रिय भयउ राम पद नेह।
निज प्रभु दरसन पायउँ गए सकल संदेह।।114क।।

मुझे अपना यह काक शरीर इसिलिये प्रिय है कि इसमें मुझे श्रीरामजीके चरणोंका प्रेम प्राप्त हुआ। इसी शरीर से मैंने अपने प्रभु के दर्शन पाये और मेरे सब सन्देह जाते रहे (दूर हुए) ।।114(क)।।

मासपारायण, उन्तीसवाँ विश्राम

भगति पच्छ हठ करि रहेउँ दीन्हि महारिषि साप।
मुनि दुर्लभ बर पायउँ देखहु भजन प्रताप।।114ख।।

मैं हठ करके भक्तिपक्ष पर अड़ रहा, जिससे महर्षि लोमश ने मुझे शाप दिया। परंतु उसका फल यह हुआ कि जो मुनियों को भी दुलर्भ है, वह वरदान मैंने पाया। भजनका प्रताप तो देखिये !।।114(ख)।।

चौ.-जे असि भगति जानि परिहरहीं। केवल ग्यान हेतु श्रम करहीं।।
ते जड़ कामधेनु गृहँ त्यागी। खोजत आकु फिरहिं पय लागी।।1।।

जो भक्ति की ऐसी महिमा जानकर भी उसे छोड़ देते हैं और केवल ज्ञान के लिये श्रम (साधन) करते हैं, वे मूर्ख घर पर पड़ी

गीताप्रेस गोरखपुर

हुई कामधेनु को छोड़कर दूध के लिये मदार के पेड़ को खोजते फिरते हैं।।1।

सुनु खगेस हरि भगति बिहाई। जे सुख चाहहिं आन उपाई।।
ते सठ महासिंधु बिनु तरनी। पैरि पार चाहहिं जड़ करनी।।2।।

हे पक्षिराज ! सुनिये, जो लोग श्री हरिकी भक्ति छोड़कर दूसरे उपायों से सुख चाहते हैं, वे मूर्ख और जड़ करनीवाले (अभागे) बिना ही जहाजके तैरकर महासमुद्र के पार जाना चाहते हैं।।2।।

सुनि भसुंडि के बचन भवानी। बोलेउ गरुड़ हरषि मृदु बानी।।
तव प्रसाद प्रभु मम उर माहीं। संसय सोक मोह भ्रम नाहीं।।3।।

[शिव जी कहते हैं] हे भवानी ! भुशुण्डिके वचन सुनकर गरुड़जी हर्षित होकर कोमल वाणीसे बोले-हे प्रभो ! आपके प्रसादसे मेरे हृदय में अब सन्देह, शोक, मोह और भ्रम कुछ भी नहीं रह गया।।3।।

सुनेउँ पुनीत राम गुन ग्रामा। तुम्हरी कृपाँ लहेउँ बिश्रामा।।
एक बात प्रभु पूँछउँ तोही। कहहु बुझाइ कृपानिधि मोही।।4।।

मैंने आपकी कृपा से श्रीरामचन्द्रजीके पवित्र गुणों समूहों को सुना और शान्ति प्राप्त की। हे प्रभो ! अब मैं आपसे एक बात और पूछता हूँ, हे कृपासागर ! मुझे समझाकर कहिये।।4।।

कहहिं संत मुनि बेद पुराना। नहिं कछु दुर्लभ ग्यान समाना।।
सोइ मुनि तुम्ह सन कहेउ गोसाईं। नहिं आदरेहु भगति की नाईं।।5।।

संत मुनि वेद और पुराण यह कहते हैं कि ज्ञान के समान दुर्लभ कुछ भी नहीं है। हे गोसाईं ! वही ज्ञान मुनिने आपसे कहा; परंतु आपने भक्तिके समान उसका आदर नहीं किया।।5।।

ग्यानहि भगतिहि अंतर केता। सकल कहहु प्रभु कृपा निकेता।।
सुनि उरगारि बचन सुख माना। सादर बोलेउ काग सुजाना।।6।।

हे कृपा धाम ! हे प्रभो ! ज्ञान और भक्तिमें कितना अन्तर है ? यह सब मुझसे कहिये। गरुड़जी के वचन सुनकर सुजान काकभुशुण्डिजीने सुख माना और आदरके साथ कहा-।।6।।

भगतिहि ग्यानहिं नहिं कछु भेदा। उभय हरहिं भव संभव खेदा।।
नाथ मुनीस कहहिं कछु अंतर। सावधान सोउ सुनु बिहंगबर।।7।।

भक्ति और ज्ञान में कुछ भी भेद नहीं है। दोनों ही संसार से उत्पन्न क्लेशों को हर लेते हैं। हे नाथ ! मुनीश्वर इसमें कुछ अंतर बतलाते हैं। हे पक्षिश्रेष्ठ ! उसे सावधान होकर सुनिये।।7।।

ग्यान बिराग जोग बिग्याना। ए सब पुरुष सुनहु हरिजाना।।
पुरुष प्रताप प्रबल सब भाँती। अबला अबल सहज जड़
जाती।।8।।

हे हरिवाहन ! सुनिये ; ज्ञान, वैराग्य, योग, विज्ञान-ये सब पुरुष हैं; पुरुषका प्रताप सब प्रकार से प्रबल होता है। अबला (माया) स्वाभाविक ही निर्बल और जाति (जन्म) से ही जड़ (मूर्ख) होती है।।8।।

दो.-पुरुष त्यागि सक नारिहि जो बिरक्त मति धीर।।
न तु कामी बिषयाबस बिमुख जो पद रघुबीर।।1115क।।

परंतु जो वैराग्यवान् और धीरबुद्धि पुरुष हैं वही स्त्री को त्याग सकते हैं, न कि वे कामी पुरुष जो विषयों के वश में है। (उनके गुलाम हैं) और श्रीरघुवीरके चरणों से विमुख हैं।।115(क)।।

सो.-सोउ मुनि ग्याननिधान मृगनयनी बिधु मुख निरखि।
बिबस होइ हरिजान नारि बिष्नु माया प्रगट।।115ख।।

वे ज्ञान के भण्डार मुनि भी मृगनयनी (युवती स्त्री) के चन्द्रमुखको देखकर विवश (उसके अधीन) हो जाते हैं। हे गरुड़जी ! साक्षात् भगवान् विष्णुकी की माया ही स्त्रीरूप से प्रकट है।।115(ख)।।

चौ.-इहाँ न पच्छपात कछु राखउँ। बेद पुरान संत मत भाषउँ।।
मोह न नारि नारि कें रूपा। पन्नगारि यह रीति अनूपा।।1।।

यहाँ मैं कुछ पक्षपात नहीं रखता। वेद, पुराण और संतों का मत (सिद्धांत) ही कहता हूँ। हे गरुड़जी ! यह अनुपम (विलक्षण) रीति है कि एक स्त्री के रूप पर दूसरी स्त्री मोहित नहीं होती।।1।।

माया भगति सुनहु तुम्ह दोऊ। नारि बर्ग जानइ सब कोऊ।।
पुनि रघुबीरहि भगति पिआरी। माया खलु नर्तकी बिचारी।।2।।

आप सुनिये, माया और भक्ति-ये दोंनों ही स्त्रीवर्ग हैं; यह सब कोई जानते हैं। फिर श्रीरघुनाथजी को भक्ति प्यारी है। माया बेचारी तो निश्चय ही नाचने वाली (नटिनीमात्र) है।।2।।

भगतहि सानुकूल रघुराया। ताते तेहि डरपति अति माया।
राम भगति निरुपम निरुपाधी। बसइ जासु उर सदा
अबाधी।।3।।

श्रीरघुनाथजी भक्तिके विशेष अनुकूल रहते हैं। इसी से माया उससे अत्यन्त डरती रहती है। जिसके हृदय में उपमा रहित और उपाधिरहित (विशुद्ध) रामभक्ति सदा बिना किसी बाधा (रोक-टोक) के बसती है;।।3।।

तेहि बिलोकि माया सकुचाई। करि न सकइ कछु निज प्रभुताई।।
अस बिचारि जे मुनि बिग्यानी। जाचहिं भगति सकल सुख
खानी।।4।।

उसे देखकर माया सकुचा जाती है। उस पर वह अपनी प्रभुता कुछ भी नहीं कर (चला) सकती। ऐसा विचार कर ही जो विज्ञानी मुनि हैं, वे सभी सुखों की खनि भक्ति की ही याचना करते हैं।।4।।

दो.-यह रहस्य रघुनाथ कर बेगि न जानइ कोइ।।
जो जानइ रघुपति कृपाँ सपनेहुँ मोह न होइ।।116क।।

श्रीरघुनाथजी का यह रहस्य (गुप्त मर्म) जल्दी कोई भी नहीं जान पाता। श्रीरघुनाथजी की कृपा से जो इसे जान जाता है, उसे स्वप्न में भी मोह नहीं होता।।116(क)।।

औरउ ग्यान भगति कर भेद सुनहु सुप्रबीन।
जो सुनि होइ राम पद प्रीति सदा अबिछीन।।116ख।।

हे सुचतुर गरुड़जी ! ज्ञान और भक्ति का और भी भेद सुनिये, जिसके सुनने से श्रीरामजी के चरणों में सदा अविच्छिन्न (एकतार) प्रेम हो जाता है।।116(ख)।।

चौ.-सुनहु तात यह अकथ कहानी। समुझत बनइ न जाइ बखानी।।
ईस्वर अंस जीव अबिनासी। चेतन अमल सहज सुख रासी।।1।।

हे तात ! यह अकथनीय कहानी (वार्ता) सुनिये। यह समझते ही बनती है, कही नहीं जा सकती। जीव ईश्वर का अंश है। [अतएव] वह अविनाशी, चेतन, निर्मल और स्वभाव से ही सुख की राशि है।।1।।

सो मायावश भयउ गोसाईं। बँध्यो कीर मरकट की नाईं।।
जड़ चेतनहि ग्रंथि परि गई। जदपि मृषा छूटत कठिनई।।2।।

हे गोसाईं ! वह माया के वशी भूत होकर तोते और वानों की भाँति अपने-आप ही बँध गया। इस प्रकार जड़ और चेतन में ग्रन्थि (गाँठ) पड़ गयी। यद्यपि वह ग्रन्थि मिथ्या ही है, तथापि उसके छूटने में कठिनता है।।2।।

तब ते जीव भयउ संसारी। छूट न ग्रंथि न होइ सुखारी।।
श्रुति पुरान बहु कहेउ उपाई। छूट न अधिक अधिक अरुझाई।।3।।

तभी से जीव संसारी (जन्मने-मरनेवाला) हो गया। अब न तो गाँठ छूटती है और न वह सुखी होता है। वेदों और पुराणों ने बहुत-से उपाय बतलाये हैं, पर वह (ग्रंथि) छूटती नहीं वरं अधिकाधिक उलझती ही जाती है।।3।।

जीव हृदयँ तम मोह बिसेषी। ग्रंथि छूट किमि परइ न देखी।।
अस संजोग ईस जब करई। तबहुँ कदाचित सो निरुअरई।।4।।

जीवे के हृदय में अज्ञान रूप अन्धकार विशेष रूप से छा रहा है, इससे गाँठ देख ही नहीं पड़ती, छूटे तो कैसे ? जब कभी ईश्वर

गीताप्रेस गोरखपुर

ऐसा संयोग (जैसा आगे कहा जाता है) उपस्थित कर देते हैं तब भी वह कदाचित् ही वह (ग्रन्थि) छूट पाती है।।4।।

सात्त्विक श्रद्धा धेनु सुहाई। जौं हरि कृपाँ हृदयँ बस आई।।
जप तप ब्रत जम नियम अपारा। जे श्रुति कह सुभ धर्म अचारा।।5।।

श्रीहरि की कृपा से यदि सात्त्विकी श्रद्धारूपी सुन्दर गौ हृदयरूपी घरमें आकर बस जाय; असंख्यों जप, तप, व्रत, यम और नियमादि शुभ धर्म और आचार (आचरण), जो श्रुतियों ने कहे हैं,।।5।।

तेइ तृन हरित चरै जब गाई। भाव बच्छ सिसु पाइ पेन्हाई।।
नोइ निबृत्ति पात्र बिस्वासा। निर्मल मन अहीर निज दासा।।6।।

उन्हीं [धर्माचाररूपी] हरे तृणों (घास) को जब वह गौ चरे और आस्तिक भावरूपी छोटे बछड़े को पाकर वह पेन्हावे। निवृत्ति (सांसारिक बिषयोंसे और प्रपंच से हटना) नोई (गौके दुतहे समय पिछले पैर बाँधने की रस्सी) है, विश्वास [दूध दूहनेका[] बरतन है, निर्मल (निष्पाप) मन जो स्वयं अपना दास है। (अपने वशमें है), दुहनेवाला अहीर है।।6।।

परम धर्ममय पय दुहि भाई। अवटै अनल अकाम बनाई।।
तोष मरुत तब छमाँ जुड़ावै। धृति सम जावनु देइ जमावै।।7।।

हे भाई ! इस प्रकार (धर्माचारमें प्रवृत्त सात्त्विकी श्रद्धा रूपी गौसे भाव, निवृत्ति और वश में किये हुए निर्मल मन की यहायता से) परम धर्ममय दूध दुहकर उसे निष्काम भावरूपी अग्नि पर भलीभाँति औटावे। फिर क्षमा और संतोष रूपी हवा से उसे ठंढा करे और धैर्य तथा शम (मनका निग्रह) रूपी जामन देकर उसे जमावे।।7।।

मुदिताँ मथै बिचार मथानी। दम अधार रजु सत्य सुबानी।।
तब मथि काढ़ि लेइ नवनीता। बिमल बिराग सुभग सुपुनीता।।8।।

तब मुदिता (प्रसन्नता) रूपी कमोरी में तत्त्वविचाररूपी मथानीसे दम (इन्द्रिय-दमन) के आधार पर (दमरूपी खम्भे आदि के सहारे) सत्य और सुन्दर वाणीरुपी रस्सी लगाकर उसे मथे और मथकर तब उसमें से निर्मल, सुन्दर और अत्यन्त पवित्र बैराग्यरूपी मक्खन निकाल ले।।8।।

दो.-जोग अगिनि करि प्रगट तब कर्म सुभासुभ लाइ।
बुद्धि सिरावै ग्यान घृत ममता मल जरि जाइ।।117क।।

तब योग रुपी अग्नि प्रकट करके उसमें समस्त शुभाशुभ कर्मरूपी ईंधन लगा दे (सब कर्मोको योगरूपी अग्निमें भस्म कर दे)। जब [वैराग्यरूपी मक्खन का] ममता रूपी मल जल जाय, तब [बचे हुए] ज्ञानरूपी घी को निश्चियात्मिका] बुद्धि ठंडा करे।।117(क)।।

तब बिग्यानरूपिनी बुद्धि बिसद घृत पाइ।।
चित्त दिया भरि धरै दृढ़ समता दिअटि बनाइ।।117ख।।

तब विज्ञानरूपिणी बुद्धि उस [ज्ञानरूपी] निर्मल घी को पाकर चित्तरूपी दियेको भरकर, समता की दीवट बनाकर उसपर उसे दृढ़तापूर्वक (जमाकर) रक्खे।।117(ख)।।

तीनि अवस्था तीनि गुन तेहि कपास तें काढ़ि।
तूल तुरीय सँवारि पुनि बाती करै सुगाढ़ि।।117ग।।

[जाग्रत् स्वप्न और सुषुप्ति] तीनों अवस्थाएँ और [सत्त्व, रज और तम] तीनों गुणरूपी कपाससे तुरीयावस्थारूपी रूईको

निकालकर और फिर उसे सँवारकर उसकी सुन्दर कड़ी बत्ती बनावें।।117(ग)।।

सो.-एहि बिधि लेसै दीप तेज रासि बिग्यानमय।
जातहिं जासु समीप जरहिं मदादिक सलभ सब।।117घ।।

इस प्रकार तेज की राशि विज्ञानमय दीपक को जलावे, जिसके समीप जाते ही मद आदि सब पतंगे जल जायँ।।117(घ)।।

चौ.-सोहमस्मि इति बृत्ति अखंडा। दीप सिखा सोइ परम प्रचंडा।।
आतम अनुभव सुख सुप्रकासा। तब भव मूल भेद भ्रम नासा।।1।।

सोऽहमस्मम (वह ब्रह्म मैं हू) यह तो अखण्ड (तैलधारावत् कभी न टूटनेवाली) वृति है, वही [उस ज्ञानदीपककी] परम प्रचण्ड दीपशिखा (लौ) है। [इस प्रकार] जब आत्मानुभवके सुखका सुन्दर प्रकाश फैलता है, तब संसार के मूल भेद रूपी भ्रमका नाश हो जाता है।।1।।

प्रबल अबिद्या कर परिवारा। मोह आदि तग मिटइ अपारा।।
तब सोइ बुद्धि पाइ उँजिआरा। उर गृँह बैठि ग्रंथि निरुआरा।।2।।

और महान् बलवती अविद्या के परिवार मोह आदि का अपार अन्धकार मिट जाता है। तब वही (विज्ञानरूपिणी) बुद्धि [आत्मानुभवरूप] प्रकाश को पाकर हृदयरूपी घरमें बैठकर उस जड़-चेतन की गाँठ को खोलती है।2।।

छोरन ग्रंथि पाव जौं सोई। तब यह जीव कृतारथ होई।।
छोरत ग्रंथि जानि खगराया। बिघ्न अनेक करइ तब माया।।3।।

यदि वह विज्ञानरूपिणी बुद्धि) उस गाँठको खोलने पावे, तब यह जीव कृतार्थ हो। परंतु हे पक्षिराज गरुड़जी ! गाँठ खोलते हुए जानकर माया फिर अनेकों विघ्न करती है।।3।।

रिद्धि सिद्धि प्रेरइ बहु भाई। बुद्धिहि लोभ दिखावहिं आई।।
कल बल छल करि जाहिं समीपा। अंचल बात बुझावहिं दीपा।।4।।

हे भाई ! वह बहुत-सी ऋद्धि-सिद्धियों को भेजती है, जो आकर बुद्धि को लोभ दिखाती है। और वे ऋद्धि-सिद्धियाँ कल (कला), बल और छल करके समीप जाती और आँचल की वायु से उस ज्ञानरूपी दीपकको बुझा देती हैं।।4।।

होइ बुद्धि जौं परम सयानी। तिन्ह तन चितव न अनहित जानी।।
जौं तेहि बिघ्र बुद्धि नहिं बाधी। तौ बहोरि सुर करहिं
उपाधी।।5।।

यदि बुद्धि बहुत ही सयानी हुई तो वह उन (ऋद्धि-सिद्धियों) को अहितकर (हानिकर) समझाकर उनकी और ताकती नहीं। इस प्रकार यदि माया के विघ्नों से बुद्धि को बाधा न हुई, तो फिर देवता उपाधि (विघ्न) करते हैं।।5।।

इंद्री द्वार झरोखा नाना। तहँ तहँ सुर बैठे करि थाना।।
आवत देखहिं बिषय बयारी। ते हठि देहिं कपाट उघारी।।6।।

इन्द्रियों के द्वारा हृदय रूपी घरके अनेकों झरोखे हैं वहाँ-वहाँ (प्रत्येक झरोखेपर) देवता थाना किये (अड्डा जमाकर) बैठे हैं। ज्यों ही वे विषयरूपी हवाको देखते हैं, त्यों ही हठपूर्वक किवाड़ खोल देते हैं।।6।।

जब सो प्रभंजन उर गृहँ जाई। तबहिं दीप बिग्यान बुझाई।।
ग्रंथि न छूटि मिटा सो प्रकासा। बुद्धि बिकल भइ बिषय
बतासा।।7।।

ज्यों ही वह तेज हवा हृदयरूपी घरमें जाती है, त्यों ही वह विज्ञानरूपी दीपक बुझ जाता है। गाँठ भी नहीं छूटी और वह (आत्मानुभवरूप) प्रकाश भी मिट गया। विषयरूपी हवासे बुद्धि व्याकुल हो गयी (सारा किया-कराया चौपट हो गया)।।7।।

इंद्रिन्ह सुरन्ह न ग्यान सोहाई। बिषय भोग पर प्रीति सदाई।।
विषय समीर बुद्धि कृत भोरी। तेहि बिधि दीप को बार
बहोरी।।8।।

इन्द्रियों और उनके देवताओंको ज्ञान [स्वाभाविक ही] नहीं सुहाता; क्योंकि उनकी विषय-भोगोंमें सदा ही प्रीति रहती है। और बुद्धिको भी विषयरूपी हवाने बावली बना दिया। तब फिर (दुबारा) उस ज्ञानदीपकको उसी प्रकार से कौन जलावे ?।।8।।

दो.-तब फिरि जीव बिबिधि बिधि पावइ संसृति क्लेस।
हरि माया अति दुस्तर तरि न जाइ बिहगेस।।118क।।

[इस प्रकार ज्ञानदीपक के बुझ जानेपर] तब फिर जीव अनेकों प्रकार से संसृति (जन्म-मरणादि) के क्लेश पाता है। हे पक्षिराज ! हरिकी माया अत्यन्त दुस्तर है, वह सहज ही में तरी नहीं जा सकती।।118(क)।।

कहत कठिन समुझत कठिन साधत कठिन बिबेक।
होइ घुनाच्छर न्याय जौं पुनि प्रत्यूह अनेक।।118ख।।

ज्ञान कहने (समझने) में कठिन, समझनेमें कठिन और साधनेमें भी कठिन है। यदि घुणाक्षरन्यायसे (संयोगवश) कदाचित् यह ज्ञान हो भी जाय, तो फिर [उसे बचाये रखनेमें] अनेकों विघ्न हैं।।118(ख)।।

चौ.-ग्यान पंथ कृपान कै धारा। परत खगेस होइ नहिं बारा।।
जो निर्बिघ्न पंथ निर्बहई। सो कैवल्य परम पद लहई।।1।।

ज्ञान का मार्ग कृपाण (दुधारी तलवार) की धारके समान है। हे पक्षिराज ! इस मार्गसे गिरते देर नहीं लगती। जो इस मार्गको निर्विघ्न निबाह ले जाता है, वही कैवल्य (मोक्ष) रूप परमपदको प्राप्त करता है।।1।।

अति दुर्लभ कैवल्य परम पद। संत पुरान निगम आगम बद।।
राम भगत सोइ मुकुति गोसाईं। अनइच्छित आवइ बरिआईं।।2।।

संत, पुराण, वेद और [तन्त्र आदि] शास्त्र [सब] यह कहते हैं कि कैवल्यरूप परमपद अत्यन्त दुर्लभ है; किंतु गोसाईं ! वही [अत्यन्त दुर्लभ] मुक्ति श्रीरामजी को भजने से बिना इच्छा किये भी जबरदस्ती आ जाती है।।2।।

जिमि थल बिनु जल रहि न सकाई। कोटि भाँति कोउ करै उपाई।।
तथा मोच्छ सुख सुनु खगराई। रहि न सकइ भगति बिहाई।।3।।

जैसे स्थल के बिना जल नहीं रह सकता, चाहे कोई करोड़ों प्रकारके उपाय क्यों न करे। वैसे ही, हे पक्षिराज ! सुनिये, मोक्षसुख भी श्रीहरिकी भक्तिको छोड़कर नहीं रह सकता।।3।।

अस बिचारि हरि भगत सयाने। मुक्ति निरादर भगति लुभाने।।
भगति करत बिनु जतन प्रयासा। संसृति मूल अबिद्या नासा।।4।।

ऐसा विचरकर बुद्धिमान् हरिभक्त भक्तिपर लुभाये रहकर मुक्तिका तिरस्कार कर देते हैं। भक्ति करनेसे संसृति (जन्म-मृत्युरूप संसार) की जड़ अविद्या बिना ही यत्न और परिश्रम के (अपने-आप) वैसे ही नष्ट हो जाती है,।।4।।

भोजन करिअ तृपिति हित लागी। जिमि सो असन पचवै जठरागी।।
असि हरि भगति सुगम सुखदाई। को अस मूढ़ न जाहि सोहाई।।5।।

जैसे भोजन किया तो जाता है तृप्तिके लिये और उस भोजनको जठराग्नि अपने-आप (बिना हमारी चेष्टाके) पचा डालती है, ऐसी सुगम और परम सुख देनेवाली हरिभक्ति जिसे न सुहावे, ऐसा मूढ़ कौन होगा ?।।5।।

दो.-सेवक सेब्य भाव बिनु भव न तरिअ उरगारि।
भजहु राम पद पंकज अस सिद्धांत बिचारि।।119क।।

हे सर्पों शभु गरुड़जी ! मैं सेवक हूँ और भगवान् मेरे सेव्य (स्वामी) हैं, इस भावके बिना संसाररूपी समुद्रसे तरना नहीं हो सकता। ऐसा सिद्धात विचारकर श्रीरामचन्द्रजी के चरणकमलोंका भजन कीजिये।।119(क)।।

जो चेतन कहँ जड़ करइ जड़हि करइ चैतन्य।
अस समर्थ रघुनायकहि भजहिं जीव ते धन्य।।119ख।।

जो चेतन को जड़ कर देता है और जड़ को चेतन कर देता है, ऐसे समर्थ श्रीरघुनाथजीको जो जीव भजते हैं, वे धन्य हैं।।119(ख)।।

चौ.-कहेउँ ग्यान सिद्धातं बुझाई। सुनहु भगति मनि कै प्रभुताई।।
राम भगति चिंतामनि सुंदर। बसइ गरुड़ जाके उर अंतर।।1।।

मैंने ज्ञानका सिद्धान्त समझाकर कहा। अब भक्तिरूपी प्रभुता (महिमा) सुनिये। श्रीरामजीकी भक्ति सुन्दर चिन्तामणि है। हे गरुड़जी ! यह किसके हृदयके अंदर बसती है।।1।।

परम प्रकास रूप दिन राती। नहिं कछु चहिअ दिआ घृत बाती।।
मोह दरिद्र निकट नहिं आवा। लोभ बात नहिं ताहि बुझावा।।2।।

वह दिन-रात [अपने-आप ही] परम प्रकाशरूप रहता है। उसको दीपक, घी और बत्ती कुछ भी नहीं चाहिये। [इस प्रकार मणिका एक तो स्वाभाविक प्रकार रहता है] फिर मोहरूपी दरिद्रता समीप नहीं आती है [क्योंकि मणि स्वयं धनरूप है]; और [तीसरे] लोभरूपी हवा उस मणिमय दीपको बुझा नहीं सकती [क्योंकि मणि स्वयं प्रकाशरूप है, वह किसी दूसरे की सहायता से नहीं प्रकाश करती]।।2।।

प्रबल अबिद्या तम मिटि जाई। हारहिं सकल सलभ समुदाई।।
खल कामदि निकट नहिं जाहीं। बसइ भगति जाके उर माहीं।।3।।

[उसके प्रकाशसे] अविद्या का प्रबल अन्धकार निज जाता है। मदादि पतंगोंका सारा समूह हार जाता है। जिसके हृदयमें भक्ति बसती है, काम, क्रोध और लोभ आदि दुष्ट तो पास भी नहीं आते जाते।।3।।

गरल सुधासम अरि हित होई। तेहि मनि बिनु सुख पाव न कोई।।
ब्यापहिं मानस रोग न भारी। जिन्ह के बस जीव दुखारी।।4।।

उसके लिये विष अमृतके समान और शत्रु मित्र के समान हो जाता है। उस मणि के बिना कोई सुख नहीं पाता। बड़े-बड़े मानस-रोग, जिसके वश होकर सब जीव दुखी हो रहे हैं, उसको नहीं व्यापते।।4।।

राम भगति मनि उर बस जाकें। दुख लवलेस न सपनेहुँ ताकें।।
चतुर सिरेमनि तेइ जग माहीं। जे मनि लागि सुजतन
कराहीं।।5।।

गीताप्रेस गोरखपुर

श्रीरामभक्तिरूपी मणि जिसके ह्रदयमें बसती है, उसे स्वप्नमें भी लेशमात्र दुःख नहीं होता। जगत् में वे ही मनुष्य चतुरोंके शिरोमणि हैं जो उस भक्तिरूपी मणि के लिये भलीभाँति यत्न करते हैं।।5।।

सो मनि जदपि प्रगच जग अहई। राम कृपा बिनु नहिं कोउ लहई।।
सुगम उपाय पाइबे केरे। नर हतभाग्य देहिं भटभेरे।।6।।

यद्यपि वह मणि जगत् में प्रकट (प्रत्यक्ष) है, पर बिना श्रीरामजीकी कृपाके उसे कोई पा नहीं सकता। उनके पाने उपाय भी सुगम ही हैं, पर अभागे मनुष्य उन्हें ठुकरा देते हैं।।6।।

पावन पर्बत बेद पुराना। राम कथा रुचिराकर नाना।।
मर्मी सज्जन सुमति कुदारी। ग्यान बिराग नयन उरगारी।।7।।

वेद-पुराण पवित्र पर्वत हैं। श्रीरामजीकी नाना प्रकारकी कथाएँ उन पर्वतों में सुन्दर खानें हैं। संत पुरुष [उनकी इन खानोंके रहस्यको जाननेवाले] मर्मी हैं और सुन्दर बुद्धि [खोदनेवाली] कुदाल है। हे गरुड़जी ! ज्ञान और वैराग्य- ये दो उनके नेत्र हैं।।7।।

गीताप्रेस गोरखपुर

भाव सहित खोजइ जो प्रानी। पाव भगति मान सब सुख खानी।।
मोरें मन प्रभु अस बिस्वासा। राम ते अधिक राम कर दासा।।8।।

जो प्राणी उसे प्रेम के साथ खोजता हैं, वह सब सुखों की खान इस भक्तिरूपी मणिको पा जाता है। हे प्रभो ! मेरे मन में तो ऐसा विश्वास है कि श्रीरामजी के दास श्रीरामजीसे भी बढ़कर हैं।।8।।

राम सिंधु घन सज्जन धीरा। चंदन तरु हरि संत समीरा।।
सब कर फलर हरिस भगति सुहाई। सो बिनु संत न काहूँ पाई।।9।।

श्रीरामचन्द्रजी समुद्र हैं तो धीर संत पुरुष मेघ हैं। श्रीहरि चन्दनके वृक्ष हैं तो संत पवन हैं। सब साधनों का फल सुन्दर हरि भक्ति ही है। उसे संतके बिना किसी ने नहीं पाया।।9।।

अस बिचारि जोइ कर सतसंगा। राम भगति तेहिं सुलभ बिहंगा।।10।।

ऐसा विचार कर जो भी संतों का संग करता है, हे गरुड़जी ! उसके लिये श्रीरामजीकी भक्ति सुलभ हो जाती है।।10।।

दो.-ब्रह्म पयोनिधि मंदर ग्यान संत सुर आहिं।।
कथा सुधा मथि काढ़हिं भगति मधुरता जाहिं।।120क।।

ब्रह्म (वेद) समुद्र है, ज्ञान मन्दराचल है और संत दवता है। जो उस समुद्रको मथकर अमृत निकालते हैं, जिसमें भक्ति रूपी मधुरता बसी रहती है।।120(क)।।

बिरति चर्म असि ग्यान मद लोभ मोह रिपु मारि।।
जय पाइअ सो हरि भगति देखु खगेस बिचारि।।120ख।।

वैराग्यरूपी ढाल से अपने को बचाते हुए और ज्ञान रूपी तलवार से मद, लोभ और मोहरूपी वैरियोंको मारकर जो विजय-प्राप्त करती है, वह हरिभक्ति ही है; हे पक्षिराज ! इस विचार कर देखिये।।120(ख)।।

चौ.-पुनि सप्रेम बोलेउ खगराऊ। जौं कृपाल मोहि ऊपर भाऊ।।
नाथ मोहि निज सेवक जानी। सप्त प्रस्न मम कहहु बिचारी।।2।।

पक्षिराज गरुड़जी फिर प्रेमसहित बोले-हे कृपालु ! यदि मुझपर आपका प्रेम है, तो हे नाथ ! मुझे अपना सेवक जानकर मेरे सात प्रश्नों के उत्तर बखानकर कहिये।।1।।

प्रथमहिं कहहु नाथ मतिधारा। सब ते दुर्लभ कवन सरीरा।।
बड़ दुख कवन सुख भारी। सोउ संछेपहिं कहहु बिचारी।।2।।

हे नाथ ! हे धीरबुद्धि ! पहले तो यह बताइये कि सबसे दुर्लभ कौन-सा शरीर है ? फिर सबसे बड़ा दुःख कौन है और सबसे बड़ा सुख कौन है, यह भी विचार कर संक्षेप में ही कहिये।।2।।

संत असंत मरम तुम्ह जानहु। तिन्ह कर सहज सुभाव बखानहु।।
कवन पुन्य श्रुति बिदित बिसाला। कहहु कवन अघ परम कराला।।3।।

संत और असंत का मर्म (भेद) आप जानते हैं, उनके सहज स्वभाव का वर्णन कीजिये। फिर कहिये कि श्रुतियोंमें प्रसिद्ध सबसे महान पुण्य कौन-सा है और सबसे महान् भयंकर पाप कौन है।।3।।

मानस रोग कहहु समुझाई। तुम्ह सर्बग्य कृपा अधिकाई।।
तात सुनहु सादर अति प्रीती। मैं संछेप कहउँ यह नीती।।4।।

फिर मानस रोगों को समझाकर कहिये। आप सर्वज्ञ हैं और मुझपर आपकी कृपा भी बहुत है [काकभुशुण्डिजीने कहा-] हे

तात ! अत्यन्त आदर और प्रेमके साथ सुनिये। मैं यह नीति संक्षेप में कहता हूँ।।4।।

नर तन सम नहिं कवनिउ देही। जीव चराचर जाचत तेही।
नरक स्वर्ग अपबर्ग निसेनी। ग्यान बिराग भगति सुभ देनी।।5।।

मनुष्य शरीर के समान कोई शरीर नहीं है। चर-अचर सभी जीव उसकी याचना करते हैं। यह मनुष्य-शरीर नरक, स्वर्ग और मोक्ष की सीढ़ी है तथा कल्याणकारी ज्ञान, वैराग्य और भक्ति को देनेवाला है।।5।।

सो तनु धरि हरि भजहिं न जे नर। होहिं बिषय रत मंद मंद तर।।
काँच किरिच बदलें ते लेहीं। कर ते डारि परस मनि देहीं।।6।।

ऐसे मनुष्य-शरीरको धारण (प्राप्त) करके जो लोग श्री हरि का भजन नहीं करते और नीच से भी नीच विषयोंमें अनुरक्त रहते हैं, वे पारसमणि को हाथ से फेंक देते हैं और बदलेमें काँचके टुकड़े ले लेते हैं।।6।।

नहिं दरिद्र सम दुख जग माहीं। संत मिलन सम सुख जग नाहीं।।
पर उपकार बचन मन काया। संत सहज सुभाउ खगराया।।7।।

जगत् में दरिद्रता के समान दुःख नहीं है तथा संतोंके मिलने के समान जगत् में सुख नहीं है। और हे पक्षिराज ! मन, वचन और शरीर से परोपकार करना यह संतोंका सहज स्वभाव है।।7।।

संत सहहिं दुख पर हित लागी। पर दुख हेतु असंत अभागी।।
भूर्ज तरू सम संत कृपाला। पर हित निति सह बिपति बिसाला।।8।।

संत दूसरोंकी भलाईके लिये दुःख सहते हैं और अभागे असंत दूसरों को दुःख पहुँचाने के लिये। कृपालु संत भोजके वृक्षके समान दूसरों के हित के लिये भारी विपत्ति सहते हैं (अपनी खालतक उधड़वा लेते हैं)।।8।।

सन इव खल पर बंधन करई। खाल कढ़ाइ बिपति सहि मरई।।
खल बिनु स्वारथ पर अपकारी। अहि मूषक इव सुनु उरगारी।।9।।

किंतु दुष्ट लोग सनकी भाँति दूसरों को बाँधते हैं और [उन्हें बाँधनेके लिये] अपनी खाल खिंचवाकर विपत्ति सहकर मर जाते हैं। हे सर्पोंके शत्रु गरुड़जी ! सुनिये; दुष्ट बिना किसी स्वार्थके साँप और चूहे के समान अकारण ही दूसरों का अपकार करते हैं।।9।।

पर संमपदा बिनासि नाहीं। जिमि ससि हति उपल बिलाहीं।।
दुष्ट उदय जग आरति हेतू। जथा प्रसिद्ध अधम ग्रह केतू।10।।

वे परायी सम्पत्ति का नाश करके स्वयं नष्ट हो जाते हैं, जैसे खेती का नाश करके ओले नष्ट हो जाते हैं। दुष्ट का अभ्युदय (उन्नति) प्रसिद्ध अधम केतू के उदय की भाँति जगत् के दुःख के लिये ही होता है ।।10क।।

संत उदय संतत सुखकारी। बिस्व सुखद जिमि इंदु तमारी।।
परम धर्म श्रुति बिदित अहिंसा।पर निंदा सम अघ न
गरीसा।।11।।

और संतों का अभ्युदय सदा ही सुखकर होता है, जैसे चन्द्रमा और सूर्य का उदय विश्व भर के लिये सुख दायक है। वेदोंमें अहिंसा को परम धर्म माना है और परनिन्दा के समान भारी पाप नहीं है।।1।।

हर गुर निंदक दादुर होई। जन्म सहस्त्र पाव तन सोई।।
द्विज निंदक बहु नरक भोग करि। जग जनमइ बायस सरीर
धरि।।12।।

शंकरजी और गुरुकी निंदा करनेवाला मनुष्य [अगले जन्ममें] मेढक होता है और वह हजार जन्मतक वही मेढक का शरीर पाता है। ब्राह्मणों की निन्दा करनेवाला व्यक्ति बहुत-से नरक भोगकर फिर जगत् में कौए का शरीर धारण करके जन्म लेता है।।12।।

सुर श्रुति निंदक जे अभिमानी। रौरव नरक परहिं ते प्रानी।।
होहिं उलूक संत निंदा रत। मोह निसा प्रिय ग्यान भानु गत।।13।।

जो अभिमानी जीव देवताओं और वेदों की निन्दा करते हैं, वे रौरव नरक में पड़ते हैं। संतोंकी निन्दा में लगे हुए लोग उल्लू होते हैं, जिन्हे मोहरूपी रात्रि प्रिय होती है और ज्ञानरूपी सूर्य जिनके लिये बीत गया (अस्त हो गया) रहता है।।13।।

सब कै निंदा जे जड़ करहीं। ते चमगादुर होइ अवतरहीं।।
सुनहु तात अब मानस रोगा। जिन्ह ते दुख पावहिं सब लोगा।।14।।

जो मूर्ख मनुष्य सबकी निन्दा करते हैं, वे चमगीदड़ होकर जन्म लेते हैं। हे तात ! अब मानस-रोग सुनिये, जिनसे सब लोग दुःख पाया करते हैं।।14।।

मोह सकल ब्याधिन्ह कर मूला। तिन्हे ते पुनि उपजहिं बहु सूला।।
काम बात कफ लोभ अपारा। क्रोध पित्त नित छाती जारा।।15।।

सब रोगों की जड़ मोह (अज्ञान) है। उन व्याधियों से फिर और बहुत-से शूल उत्पन्न होते हैं। काम वाद है, लोभ अपार (बढ़ा हुआ) कफ है और क्रोध पित्त है जो सदा छाती जलाता रहता है।।15।।

प्रीति करहिं जौं तीनउ भाई। उपजई सन्यपात दुखदाई।।
बिषय मनोरथ दुर्गम नाना। ते सब सूल नाम को जाना।।16।।

प्रीति कहीं ये तीनों भाई (वात, पित्त और कफ) प्रीति कर लें (मिल जायँ) दुःखदायक सन्निपात रोग उत्पन्नय होता है। कठिनता से प्राप्त (पूर्ण) होनेवाले जो विषयोंके मनोरथ हैं, वे ही सब शूल (कष्टदायक रोग) है; उनके नाम कौन जानता है (अर्थात् वे अपार हैं)।।16।।

गीताप्रेस गोरखपुर

ममता दादु कंडु इरषाई। हरष बिषाद गरह बहुताई।।
पर सुख देखि जरनि सोइ छई। कुष्ट दुष्टता मन कुटिलई।।17।।

ममता दाद, और ईर्ष्या (डाह) खुजली है, हर्ष-विषाद गले की रोगों की अधिकता है (गलगंड, कण्टमाला या घेघा आदि रोग हैं), पराये सुखको देखकर जो जलन होती है, वही क्षयी है। दुष्टता और मनकी कुटिलता ही कोढ़ है।।17।।

अहंकार अति दुखद डमरुआ। दंभ कपट मद मान नेहरुआ।।
तृस्णा उदरबुद्धि अति भारी। त्रिबिधि ईषना तरुन तिजारी।18।।

अहंकार अत्यन्त दुःख देनेवाला डमरू (गाँठका) रोग है। दम्भ, कपट मद, और मान नहरुआ (नसोंका) रोग है। तृष्णा बड़ा भारी उदरवृद्धि (जलोदर) रोग है। तीन प्रकार (पुत्र, धन और मान) की प्रबल इच्छाएँ प्रबल तिजोरी हैं।।18।।

जुग बिधि ज्वर मत्सर अबिबेका। कहँ लगि कहौं कुरोग अनेका।।19।।

मत्सर और अविवेक दो प्रकार के ज्वर हैं। इस प्रकार अनेकों बुरे रोग हैं, जिन्हें कहाँ तक कहूँ।।19।।

दो.-एक ब्याधि बस नर मरहिं ए साधि बहु ब्याधि।
पीड़हिं संतत जीव कहुँ सो किमि लहै समाधि।।121क।।

एक ही रोग के वश होकर मनुष्य मर जाते हैं, फिर ये तो बहुत-से असाध्य रोग हैं ये जीव को निरंतर कष्ट देते रहते हैं, ऐसी दशा में वह समाधि (शान्ति) को कैसे प्राप्त करे ?।।121(क)।।

नेम धर्म आचार तप ग्यान जग्य जप दान।।
भेषज पुनि कोटिन्ह नहिं रोग जाहिं हरिजान।।121ख।।

निमय, धर्म, आचार (उत्तम आचरण), तप, ज्ञान, यज्ञ, जप, दान तथा और भी करोड़ों ओषधियाँ हैं, परंतु हे गरुड़जी ! उनसे ये रोग नहीं जाते।।121(ख)।।

चौ.-एहि बिधि सकल जीव जग रोगी। सोक हरष भय प्रीति बियोगी।।
मानस रोग कछुक मैं गाए। हहिं सब कें लखि बिरलेन्ह पाए।।1।।

इस प्रकार जगत् में समस्त जीव रोगी हैं, जो शोक, हर्ष, भय, प्रीति और वियोगके दुःखसे और भी दुखी हो रहे हैं। मैंने ये थोड़े-से मानस रोग कहे हैं। ये हैं तो सबको, परंतु इन्हें जान पाये हैं कोई विरले ही।।1।।

जाने ते छीजहिं कछु पापी। नास न पावहिं जन परितापी।।
विषय कुपथ्य पाइ अंकुरे। मुनिहु हृदयँ का नर बापुरे।।2।।

प्राणियों को जलाने वाले ये पापी (रोग) जान लिये जानेसे कुछ क्षीण अवश्य हो जाते हैं; परंतु नाश को नहीं प्राप्त होते। विषयरूप कुपथ्य पाकर ये मुनियों के हृदयों में भी अंकुरित हो उठते हैं, तब बेचारे साधारण मनुष्य तो क्या चीज हैं।।2।।

राम कृपाँ नासहिं सब रोगा। जौं एहि भाँति बनै संजोगा।।
सदगुर बैद बचन बिस्वासा। संजम यह न बिषय कै आसा।।3।।

यदि श्रीरामजीकी कृपा से इस प्रकार का संयोग बन जाये तो ये सब रोग नष्ट हो जायँ।सद्गुरुरूपी वैद्य के वचनमें विश्वास हो। विषयों की आशा न करे, यही संयम (परहेज) हो।।3।।

गीताप्रेस गोरखपुर

रघुपति भगति सजीवन मूरी। अनूपान श्रद्धा मति पूरी।।
एहि बिधि भलेहिं सो रोग नासाहीं। नाहिं त जतन कोटि नहिं जाहीं।।4।।

श्रीरघुनाथजी की भक्ति संजीवनी जड़ी है। श्रद्धा से पूर्ण बुद्धि ही अनुपान (दवाके साथ लिया जाने वाला मधु आदि) है। इस प्रकार का संयोग हो तो वे रोग भले ही नष्ट हो जायँ, नहीं तो करोड़ों प्रयत्नों से भी नहीं जाते।।4।।

जानिअ तब मन बिरुज गोसाँई। जब उर बत बिराग अधिकाई।।
सुमति छुधा बाढ़इ नित नई। बिषय आस दुर्बलता गई।।5।।

हे गोसाईं ! मनको निरोग हुआ तब जानना चाहिये, जब हृदय में वैराग्य का बल बढ़ जाय, उत्तम बुद्धिरूपी भूख नित नयी बढ़ती रहे और विषयों की आशारूपी दुर्बलता मिट जाय।।5।।

बिल ग्यान जल जब सो नहाई। तब रह राम भगति उर छाई।।
सिव अज सुक सनकादिक नारद। जे मुनि ब्रह्म बिचार बिसारद।।6।।

गीताप्रेस गोरखपुर

[इस प्रकार सब रोगों से छूटकर] जब मनुष्य निर्मल ज्ञानरूपी जलमें स्नान कर लेता है, तब उसके हृदय में राम भक्ति छा रहती है। शिवजी, ब्रह्मा, जी शुकदेवजी, सनकादि और नारद आदि ब्रह्मविचारमें परम निपुण जो मुनि हैं।।6।।

सब कर मत खगनायक एहा। करिअ राम पद पंकज नेहा।।
श्रुति पुरान सब ग्रंथ कहाहीं। रघुपति भगति बिना सुख
नाहीं।।7।।

हे पक्षिराज ! उन सब का मत यही है कि श्रीरामजी के चरणोंकमलों में प्रेम करना चाहिये। श्रुति पुराण और सभी ग्रन्थ कहते हैं कि श्रीरघुनाथजीकी भक्ति के सुख नहीं है।।7।।

कमठ पीठ जामहिं बरु बारा। बंध्या सुत बरु काहुहि मारा।।
फूलहिं नभ बरु बहुबिधि फूला। जीव न लह सुख हरि
प्रतिकूला।।8।।

गीताप्रेस गोरखपुर

कछुए की पीठपर भले ही बाल उग आवें, बाँझ का पुत्र भले ही किसी को मार डाले, आकाशमें भले ही अनेकों फूल खिल उठें; परंतु श्रीहरि से विमुख होकर जीव सुख नहीं प्राप्त कर सकता।।8।।

तृषा जाइ बरु मृगजल पाना। बरु जामहिं सस सीस बिषाना।।
अंधकारु बरु रबिहि नसावै। राम बिमुख न जीव सुख पावै।।9।।

मृगतृष्णाके जलको पीने से ही प्यास बुझ जाय, खरगोशके भले ही सींग निकल आवें, अन्धकार भले ही सूर्य का नाश कर दे; परंतु श्रीराम से विमुख होकर जीव सुख नहीं पा सकता।।9।।

हिम ते अनल प्रगट बरु होई। बिमुख राम सुख पाव न कोई।।10।।

बर्फ से भले ही अग्नि प्रकट हो जाय (ये सब अनहोनी बातें चाहे हो जायँ), परंतु श्रीरामसे विमुख होकर कोई भी सुख नहीं पा सकता।।10।।

दो.-बारि मथें घृत बरु सिकता ते बरु तेल।
बिनु हरि भजन न भव तरिअ यह सिद्धांत अपेल।।122क।।

जलको मथने से भले ही घी उत्पन्न हो जाय और बालू [को पेरने] से भले ही तेल निकल आवे; परंतु श्रीहरि के भजन बिना संसाररूपी समुद्र से नहीं तरा जा सकता यह सिद्धान्त अटल है।।122(क)।।

मसकहि करइ बिरंचि प्रभु अजहि मसक ते हीन।
अस बिचारि तजि संसय रामहि भजहिं प्रबीन।।122ख।।

प्रभु मच्छर को ब्रह्मा कर सकते हैं और ब्रह्मा को मच्छर से भी तुच्छ बना सकते हैं। ऐसा विचारकर चुतर पुरुष सब सन्देह त्यागकर श्रीरामजीको ही भजते हैं।।122(ख)।।

श्लोक-विनिश्चितं वदामि ते न अन्यथा वचांसि मे।
हरि नरा भजन्ति येऽतिदुस्तरं तरन्ति ते।।122ग।।

मैं आपसे भलीभाँति निश्चित किया हुआ सिद्धान्त कहता हूँ-मेरे वचन अन्यथा (मिथ्या) नहीं है कि जो मनुष्य श्रीहरिका भजन करते हैं, वे अत्यन्त दुस्तर संसारसागरको [सहज ही] पार कर जाते हैं।।122(ग)।

चौ.-कहेउँ नाथ हरि चरित अनूपा। ब्यास समास स्वमति अनुरूपा।।
श्रुति सिद्धांत इहइ उरगारी। राम भजिअ सब काज बिसारी।।1।।

हे नाथ ! मैंने श्रीहरि का चरित्र अपनी बुद्धिके अनुसार कहीं विस्तारसे और कहीं संक्षेपसे कहा। हे सर्पोंके शत्रु गरुड़जी !

श्रुतियोंका यही सिंद्धांत है कि सब काम भुलाकर (छोड़कर) श्रीरामजीका भजन करना चाहिये।।1।।

प्रभु रघुपति तजि सेइअ काही। मोहि से सठ पर ममता जाही।।
तुम्ह बिग्यानरूप नहिं मोहा। नाथ कीन्हि मो पर अति छोहा।।2।।

प्रभु श्रीरघुनाथजीको छोड़कर और किसका सेवन (भजन) किया जाय, जिनका मुझ-जैसे मूर्खपर भी ममत्व (स्नेह) है। हे नाथ ! आप विज्ञानरूप हैं, आपको मोह नहीं है। आपने तो मुझपर बड़ी कृपा की है।।2।।

पूँछिहु राम कथा अति पावनि। सुक सनकादि संभु मन भावनि।।
सत संगति दुर्लभ संसारा। निमिष दंड भरि एकउ बारा।।3।।

जो आपने मुझे से शुकदेवजी, सनकादि और शिवजीके मनको प्रिय लगनेवाली अति पवित्र रामकथा पूछी। संसारमें घड़ीभरका अथवा पलभरका एक-बारका भी सत्संग दुर्लभ है।।3।।

देखु गरुड़ निज हृदयँ बिचारी। मैं रघुबीर भजन अधिकारी।।
सकुनाधम सब भाँति अपावन। प्रभु मोहि कीन्ह बिदित जग पावन।।4।।

हे गरुड़जी ! अपने हृदय में विचार कर देखिये, क्या मैं भी श्रीरामजी के भजनका अधिकारी हूँ ? पक्षियोंमें सबसे नीच और सब प्रकार से अपवित्र हूँ। परंतु ऐसा होनेपर भी प्रभुने मुझको सारे जगत् को पवित्र करनेवाला प्रसिद्ध कर दिया। [अथवा प्रभुने मुझको जगत्प्रसिद्ध पावन कर दिया]।।4।।

दो.-आजु धन्य मैं धन्य अति जद्यपि सब बिधि हीन।
निज जन जानि राम मोहि संत समागम दीन।।123क।।

यद्यपि मैं सब प्रकार से हीन (नीच) हूँ, तो भी मैं आज धन्य हूँ, अत्यन्त धन्य हूँ, जो श्रीरामजीने मुझे अपना निज जन जानकर संत-समागम दिया (आपसे मेरी भेंट करायी)।।123(क)।।

नाथ जथामति भाषेउँ राखेउँ नहिं कछु गोइ।
चरित सिंधु रघुनायक थाह कि पावइ कोइ।।123ख।।

हे नाथ ! मैंने अपनी बुद्धि के अनुसार कहा, कुछ भी छिपा नहीं रक्खा। [फिर भी] श्रीरघुवीरके चरित्र समुद्रके समान हैं; क्या उनकी कोई थाह पा सकता है ?।।123(ख)

चौ.-सुमिरि राम के गुन गन नाना। पुनि पुनि हरष भुसुंडि सुजाना।।
महिमा निगम नेति करि गाई। अतुलित बल प्रताप प्रभुताई।।1।।

श्रीरामचन्द्रजीके बहुत से गुणसमूहोंका स्मरण कर-करके सुजान भुशुण्डिजी बार-बार हर्षित हो रहे हैं। जिनकी महिमा वेदों ने नेति-नेति कहकर गायी है; जिनका बल, प्रताप और प्रभुत्व (सामर्थ्य) अतुलनीय है;।।1।।

सिव अज पूज्य चरन रघुराई। मो पर कृपा परम मृदुलाई।।
अस सुभाउ कहुँ सुनउँ न देखउँ। केहि खगेस रघुपति सम लेखउँ।।2।।

जिन श्रीरघुनाथजी के चरण शिवजी और ब्रह्माजी द्वारा पूज्य हैं, उनकी मुझपर कृपा होनी उनकी परम कोमलता है। किसीका ऐसा स्वभाव कहीं न सुनता हूँ, न देखता हूँ। अतः हे पक्षिराज गरुड़जी ! मैं श्रीरघुनाथजीके समान किसे गिनूँ (समझूँ) ?।।2।।

साधक सिद्ध बिमुक्त उदासी। कबि कोबिद कृतग्य संन्यासी।।
जोगी सूर सुतापस ग्यानी। धर्म निरत पंडित बिग्यानी।।3।।

साधक, सिद्ध, जीवन्मुक्त, उदासीन (विरक्त), कवि, विद्वान्, कर्म [रहस्य] के ज्ञाता, संन्यासी, योगी, शूरवीर, बड़े तपस्वी, ज्ञानी, धर्मपरायण, पण्डित और विज्ञानी-।।3।।

तरहि न बिनु सेएँ मम स्वामी। राम नमामि नमामि नमामी।।
सरन गएँ मो से अघ रासी। होहिं सुद्ध नमामि अबिनासी।।4।।

ये कोई भी मेरे स्वामी श्रीरामजीका सेवन (भजन) किये बिना नहीं तर सकते। मैं उन्हीं श्रीरामजीको बार-बार नमस्कार करता हूँ। जिनकी शरण जानेपर मुझे-जैसे पापराशि भी शुद्ध (पापरहित) हो जाते हैं, उन अविनाशी श्रीरामजी को मैं नमस्कार करता हूँ।।4।।

दो.-जासु नाम भव भेषज हरन घोर त्रय सूल।
सो कृपाल मोहि तो पर सदा रहउ अनुकूल।।124क।।

गीताप्रेस गोरखपुर

जिनका नाम जन्म मरण रूपी रोग की [अव्यर्थ] औषध और तीनों भयंकर पीड़ाओं (आधिदैविक, आधिभौतिक और आध्यात्मिक दुःखों) को हरनेवाला है, वे कृपालु श्रीरामजी मुझपर और आपपर सदा प्रसन्न रहें।।124(क)।।

सुनि भुसुंडि के बचन सुभ देखि राम पद नेह।
बोलेउ प्रेम सहित गिरा गरुड़ बिगत संदेह।।124ख।।

भुशुण्डिजीके मंगलमय वचन सुनकर और श्रीरामजीके चरणों में उनका अतिशय प्रेम देखकर सन्देहसे भलीभाँति छूटे हुए गरुड़जी प्रेमसहित वचन बोले।।124(ख)।।

चौ.-मैं कृतकृत्य भयउँ तव बानी। सुनि रघुबीर भगति रस सानी।।
राम चरन नूतन रति भई। माया जनित बिपति सब गई।।1।।

श्रीरघुवीर के भक्ति-रस में सनी हुई आपकी वाणी सुनकर मैं कृतकृत्य हो गया। श्रीरामजीके चरणोंमें मेरी नवीन प्रीति हो गयी और मायासे उत्पन्न सारी विपत्ति चली गयी।।1।।

मोह जलधि बोहित तुम्ह भए। मो कहँ नाथ बिबिध सुख दए।।
मो पहिं होइ न प्रति उपकारा। बंदउँ तव पद बारहिं बारा।।2।।

गीताप्रेस गोरखपुर

मोहरूपी समुद्र में डूबते हुए मेरे लिये आप जहाज हुए। हे नाथ ! आपने मुझे बहुत प्रकार के सुख दिये (परम सुखी कर दिया)। मुझसे इसका प्रत्युपकार (उपकार के बदलें में उपकार) नहीं हो सकता। मैं तो आपके चरणोंकी बार-बार वन्दना ही करता हूँ।।2।।

पूरन काम राम अनुरागी। तुम्ह सम तात न कोउ बड़भागी।।
संत बिटप सरिता गिरि धरनी। पर हित हेतु सबन्ह कै
करनी।।3।।

आप पूर्णकाम हैं और श्रीरामजीके प्रेमी हैं। हे तात ! आपके समान कोई बड़भागी नहीं है। संत, वृक्ष, नदी, पर्वत और पृथ्वी-इन सबकी क्रिया पराये हितके लिये ही होती है।।3।।

संत हृदय नवनीत समाना। कहा कबिन्ह परि कहै न जाना।।
निज परिताप द्रवइ नवनीता। पर दुथख द्रवहिं संत
सुपुनीता।।4।।

संतोंका हृदय मक्खन के समान होता है, ऐसा कवियोंने कहा है; परंतु उन्होंने [असली] बात कहना नहीं जाना; क्योंकि मक्खन तो

अपनेको ताप मिलनेसे पिघलता है और परम पवित्र संत दूसरोंके दुःखसे पिघल जाते हैं।।4।।

जीवन जन्म सुफल मम भयऊ। तव प्रसाद संसय सब गयऊ।।
जानेहु सदा मोहि निज किंकर। पुनि पुनि उमा कहइ बिहंगबर।।5।।

मेरा जीवन और जन्म सफल हो गया। आपकी कृपासे सब सन्देह चला गया। मुझे सदा अपना दास ही जानियेगा। [शिवजी कहते हैं-] हे उमा ! पक्षिश्रेष्ठ गरुड़जी बार-बार ऐसा कह रहे हैं।।5।।

दो.-तासु चरन सिरु नाइ करि प्रेम सहित मतिधीर।
गयउ गरुड़ बैकुंठ तब हृदयँ राखि रघुबीर।।125क।।

उन (भुशुण्डिजी) के चरणों में प्रेमसहित सिर नवाकर और हृदय में श्रीरघुवीरको धारण करके धीरबुद्धि गरुड़जी तब वैकुण्डको चले गये।।125(क)।।

गिरिजा संत समागम सम न लाभ कछु आन।।
बिनु हरि कृपा न होइ सो गावहिं बेद पुरान।।125ख।।

हे गिरिजे ! संत-समागम के समान दूसरा कोई लाभ नहीं है। पर वह (संत-समागम) श्रीहरिकी कृपाके बिना नहीं हो सकता, ऐसा वेद और पुराण गाते हैं।।125(ख)।।

चौ.-कहेउँ परम पुनीत इतिहासा। सुनत श्रवन छूटहिं भव पासा।।
प्रनत कल्पतरु करुना पुंजा। उपजइ प्रीति राम पद कंजा।।1।।

मैंने यह परम पवित्र इतिहास कहा, जिसे कानों से सुनते ही भवपाश (संसारके बन्धन) छूट जाते हैं और शरणागतों को [उनके इच्छानुसार फल देनेवाले] कल्पवृक्ष तथा दया के समूह श्रीरामजीके चरणकमलोंमें प्रेम उत्पन्न होता है।।1।।

मन क्रम बचन जनित अघ जाई। सुनहिं जे कथा श्रवन मन लाई।।
तीर्थाटन साधन समुदाई। जोग बिराग ग्यान निपुनाई।।2।।

जो कान और मन लगाकर इस कथा को सुनते हैं, उनके मन, वचन और कर्म (शरीर) से उत्पन्न सब पाप नष्ट हो जाते हैं। तीर्थयात्रा आदि बहुत-से साधन, योग, वैराग्य और ज्ञानमें निपुणता,-।।2।।

नाना कर्म धर्म ब्रत दाना। संजम दम जप तप मख नाना।।
भूत दया द्विज गुर सेवकाई। बिद्या बिनय बिबिक बड़ाई।।3।।

अनेकों प्रकार के कर्म, धर्म, व्रत और दान, अनेकों संयम, दम, जप, तप और यत्र प्राणियोंपर दया, बाह्मण और गुरु की सेवा; विद्या, विनय और विवेककी बड़ाई [आदि]-।।3।।

जहँ लगि साधन बेद बखानी। सब कर फल हरि भगति भवानी।।
सो रघुनाथ भगति श्रुति गाई। राम कृपाँ काहूँ एक पाई।।4।।

जहाँ तक वेदोंने साधन बतलाये हैं, हे भवानी ! उन सबका फल श्रीहरिकी भक्ति ही है। किंतु श्रुतियोंमें गायी हुई वह श्रीरघुनाथजीकी भक्ति श्रीरामजीकी कृपासे किसी एक (विरले) ने ही पायी है।।4।।

दो.-मुनि दुर्लभ हरि भगति नर पावहिं बिनहिं प्रयास।
जे यह कथा निरंतर सुनहिं मानि बिस्वास।।126।।

किंतु जो मनुष्य विश्वास मानकर यह कथा निरंन्तर सुनते हैं, वे बिना ही परिश्रम उस मुनिदुर्लभ हरिभक्ति को प्राप्त कर लेते हैं।।126।।

चौ.-सोइ सर्बग्य गुनी सोइ ग्याता। सोइ महि मंडित पंडित दाता।।
धर्म परायन सोइ कुल त्राता। राम चरन जा कर मन राता।।1।।

जिसका मन श्रीरामजीके चरणोंमें अनुरक्त है, वही सर्वज्ञ (सब कुछ जाननेवाला) है, वही गुणी है, वही ज्ञानी है। वही पृथ्वीका भूषण, पण्डित और दानी है। वही धर्मपरायण है और वही कुलका रक्षक है।।1।।

नीति निपुन सोइ परम सयाना। श्रुति सिद्धांत नीक तेहिं जाना।।
सोइ कबि कोबिद सोइ रनधीरा। जो छल छाड़ि भजइ रघुबीरा।।2।।

जो छल छोड़कर श्रीरघुवीरका भजन करता है, वही नीति में निपुण है, वही परम बुद्धिमान् है। उसीने वेदों के सिद्धान्तको भलीभाँति जाना है। वही कवि, वही विद्वान् तथा वही रणधीर है।।2।।

धन्य देस सो जहँ सुरसरी। धन्य नारि पतिब्रत अनुसरी।।
धन्य सो भूपु नीति जो करइ। धन्य सो द्विज निज धर्म न
टरई।।3।।

वह देश धन्य है जहाँ श्री गंगाजी हैं, वह स्त्री धन्य है जो पातिव्रत-धर्मका पालन करती है। वह राजा धन्य है जो न्याय करता है और ब्राह्मण धन्य है जो अपने धर्म से नहीं डिगता।।3।।

सो धन धन्य प्रथम गति जाकी। धन्य पुन्य रत मति सोइ पाकी।।
धन्य घरी सोइ जब सतसंगा। धन्य जन्म द्विज भगति
अभंगा।।4।।

वह धन धन्य है जिसकी पहली गति होती है (जो दान देनेमें व्यय होता है।) वही बुद्धि धन्य और परिपक्व है जो पुण्य में लगी हुई है। वही घड़ी धन्य है जब सत्संग हो और वही जन्म धन्य है जिसमें ब्राह्मणकी अखण्ड भक्ति हो।।4।। [धनकी तीन गतियाँ होती है-दान भोग और नाश। दान उत्तम है, भोग मध्यम है और नाश नीच गति है जो पुरुष न देता है, न भोगता है, उसके धन को तीसरी गति होती है।]

दो.-सो कुल धन्य उमा सुनु जगत पूज्य सुपुनीत।
श्रीरघुबीर परायन जेहिं नर उपज बिनीत।।127।।

हे उमा ! सुनो। वह कुल धन्य है, संसारभरके लिये पूज्य है और परम पवित्र है, जिसमें श्रीरघुवीरपरायण (अनन्य रामभक्त) विनम्र पुरुष उत्पन्न हो।।127।।

चौ.-मति अनुरूप कथा मैं भाषी। जद्यपि प्रथम गुप्त करि राखी।।
तव मन प्रीति देखि अधिकाई। तब मैं रघुपति कथा सुनाई।।1।।

मैंने अपनी बुद्धि के अनुसार यह कथा कही, यद्यपि पहले इसको छिपाकर रक्खा था। जब तुम्हारे मनमें प्रेमकी अधिकता देखी तब मैंने श्रीरघुनाथजीकी यह कथा तुमको सुनायी।।1।।

यह न कहिअ सठही हठसीलहि। जो मन लाइ न सुन हरि लीलहि।।
कहिअ न लोभिहि क्रोधिहि कामिहि। जो न भजइ सचराचर स्वामिहि।।2।।

यह कथा उनसे न कहनी चाहिये जो शठ (धूर्त) हों, हठी स्वभावके हों और श्रीहरिकी लीलाको मन लगाकर न सुनते हों। लोभी, क्रोधी और कामीको, जो चराचरके स्वामी श्रीरामजीको नहीं भजते, यह कथा नहीं कहनी चाहिये।।2।।

द्विज द्रोहिहि न सुनाइअ कबहूँ। सुरपति सरिस होइ नृप जबहूँ।।
राम कथा के तेइ अधिकारी जिन्ह कें सत संगति अति प्यारी।।3।।

ब्राह्मणों के द्रोही को, यदि वे देवराज (इन्द्र) के समान ऐश्वर्यवान् राजा भी हो, तब भी यह कथा कभी नहीं सुनानी चाहिये। श्रीरामजीकी कथाके अधिकारी वे ही हैं जिनको सत्संगति अत्यन्त प्रिय है।।3।।

गुर पद प्रीति नीति रत जेई। द्विज सेवक अधिकारी तेई।।
ता कहँ यह बिसेष सुखदाई। जाहि प्रानप्रिय श्रीरघुराई।।4।।

जिनकी गुरुके चरणों में प्रीति हैं, जो नीति परायण और ब्राह्मणों के सेवक हैं, वे ही इसके अधिकारी है। और उसको तो यह कथा बहुत ही सुख देनेवाली है, जिनको श्रीरघुनाथजी प्राणके समान प्यारे हैं।।4।।

दो.-राम चरन रति जो चहि अथवा पद निर्बान।
भाव सहित सो यह कथा करउ श्रवन पुट पान।।128।।

जो श्रीरामजीके चरणोंमें प्रेम चाहता हो या मोक्ष पद चाहता हो, वह इस कथा रूपी अमृतको प्रेमपूर्वक अपने कानरूपी दोनेसे पिये।।128।।

चौ.-राम कथा गिरिजा मैं बरनी। कलि मल समनि मनोमल हरनी।।
संसृति रोग सजीवन मूरी। राम कथा गावहिं श्रुति सूरी।।1।।

हे गिरिजे ! मैंने कलियुगके पापों का नाश करनेवाली और मनके मलको दूर करनेवाली रामकथाका वर्णन किया। यह रामकथा संसृति (जन्म-मरण) रूपी रोगके [नाशके] लिये संजीवनी जड़ी है, वेद और विद्वान पुरुष ऐसा कहते हैं।।1।।

एहि महँ रुचिर सप्त सोपाना। रघुपति भगति केर पंथाना।।
अति हरि कृपा जाहि पर होई। पाउँ देइ एहिं मारग सोई।।2।।

इसमें सात सुन्दर सीढ़ियाँ हैं, जो श्रीरघुनाथजीकी भक्ति को प्राप्त करनेके मार्ग हैं। जिसपर श्रीहरि की अत्यन्त कृपा होती है, वही इस मार्ग पर पैर रखता है।।2।।

मन कामना सिद्धि नर पावा। जे यह कथा कपट तजि गावा।।
कहहिं सुनहिं अनुमोदन करहीं। ते गोपद इव भवनिधि
तरहीं।।3।।

जो कपट छोड़कर यह कथा गाते हैं, वे मनुष्य अपनी मनःकामनाकी सिद्धि पा लेते हैं। जो इसे कहते-सुनते और अनुमोदन (प्रशंसा) करते हैं, वे संसाररूपी समुद्र को गौके खुरसेबने हुआ गड्ढेकी भाँति पार कर जाते हैं।।3।।

सुनि सब कथा हृदय अति भाई। गिरिजा बोली गिरा सुहाई।।
नाथ कृपाँ मम गत संदेहा। राम चरन उपजेउ नव नेहा।।4।।

[याज्ञवल्क्यजी कहते हैं-] सब कथा सुनकर श्रीपार्वतीजीके हृदय को बहुत ही प्रिय लगी और वे सुन्दर वाणी बोलीं-स्वामीकी कृपा से मेरा सन्देह जातास रहा और श्रीरामजी के चरणों में नवीन प्रेम उत्पन्न हो गया।।4।।

दो.-मैं कृतकृत्य भइउँ अब तव प्रसाद बिस्वेस।
उपजी राम भगति दृढ़ बीते सकल कलेस।।129।।

गीताप्रेस गोरखपुर

हे विश्वनाथ ! आपकी कृपासे अब मैं कृतार्थ हो गयी। मुझमें दृढ़ रामभक्ति उत्पन्न हो गयी और मेरे सम्पूर्ण क्लेश बीत गये (नष्ट हो गये)।।129।।

चौ.-यह सुभ संभु उमा संबादा। सुख संपादन समन बिषादा।।
भव भंजन गंजन संदेहा। जन रंजन सज्जन प्रिय एहा।।1।।

शम्भु-उमाका यह कल्याणकारी संवाद सुख उत्पन्न करने वाला और शोक का नाश करनेवाला है। जन्म-मरणका अन्त करने वाला, सन्दहों का नाश करनेवाला, भक्तोंको आनन्द देनेवाला और संत पुरुषोंको प्रिय है।।1।।

राम उपासक जे जग माहीं। एहि सम प्रिय तिन्ह कें कछु नाहीं।।
रघुपति कृपाँ जथामति गावा। मैं यह पावन चरित सुहावा।।2।।

जगत् में जो (जितने भी) रामोपासक हैं, उनको तो इस राम कथा के समान कुछ भी प्रिय नहीं है। श्रीरघुनाथजीकी कृपासे मैंने यह सुन्दर और पवित्र करनेवाला चरित्र अपनी बुद्धि के अनुसार गाया है।।2।।

एहिं कलिकाल न साधन दूजा। जोग जग्य जप तप ब्रत पूजा।।
रामहि सुमिरिअ गाइअ रामहि। संतत सुनिअ राम गुन ग्रामहि।।3।।

[तुलसीदासजी कहते हैं-] इस कलिकाल में योग, यज्ञ, जप, तप, व्रत और पूजन आदि कोई दूसरा साध नहीं है। बस, श्रीरामजीका ही स्मरण करना, श्रीरामजी का ही गुण गाना और निरन्तर श्रीरामजीके ही गुणसमूहोंको सुनना चाहिये।।3।।

जासु पतित पावन बड़ बाना। गावहिं कबि श्रुति संत पुराना।।
ताहि भजहि मन तजि कुटिलाई। राम भजें गति केहिं नहिं पाई।।4।।

पतितोंको पवित्र करना जिनका महान् (प्रसिद्ध) बाना है-ऐसा कवि, वेद, संत और पुराण गाते हैं-रे मन ! कुटिलता त्याग कर उन्हींको भज। श्रीरामजीको भजने से किसने परम गति नहीं पायी ?।।4।।

छं.-पाई न केहिं गति पतित पावन राम भजि सुनु सठ मना।
गनिका अजामिल ब्याध गीध गजादिखल तारे घना।।
आभीर जमन किरात खस स्वपचादि अति अघरूप जे।
कहि नाम बारक तेपि पावन होहिं राम नमामि ते।।1।।

अरे मूर्ख मन ! सुन, पतितोंको भी पावन करनेवाले श्रीरामजीको भजकर किसने परमगति नहीं पायी ? गणिका, अजामिल, व्याध, गीध, गज आदि बहुत-से दुष्टों को उन्होंने तार दिया। अभीर, यवन, किरात, खस, श्वरच (चाण्डाल) आदि जो अत्यन्त पापरूप ही हैं, वे भी केवल एक बार जिनका नाम लेकर पवित्र हो जाते हैं, उन श्रीरामजीको मैं नमस्कार करता हूँ।।1।।

रघुबंस भूषन चरित यह नर कहहिं सुनहिं जे गावहीं।।
कलि मल मनोमल धोइ बिनु श्रम राम धाम सिधावहीं।।
सत पंच चौपाईं मनोहर जानि जो नर उर धरै।
दारुन अबिद्या पंच जनित बिकार श्री रघुबर हरै।।2।।

जो मनुष्य रघुवंश के भूषण श्रीरामजीका यह चरित्र कहते हैं, सुनते हैं और गाते हैं, वे कलियुगके पाप और मन के मलको धोकर बिना ही परिश्रम श्रीरामजीके परम धामको चले जाते हैं। [अधिक क्या] जो मनुष्य पाँच-सात चौपाईयों को भी मनोहर जानकर [अथवा रामायण की चौपाइयों को श्रेष्ठ पंच (कर्तव्याकर्तव्यका सच्चा निर्णायक) जानकर उनको] हृदय में धारण कर लेता है, उसके भी पाँच प्रकार की अविद्याओं से उत्पन्न विकारों को श्रीरामजी हरण कर लेते हैं, (अर्थात् सारे

रामचरित्र की तो बात ही क्या है, जो पाँच-सात चौपाइयोंको भी समझकर उनका अर्थ हृदय में धारण कर लेते हैं, उनके भी अविद्याजनित सारे क्लेश श्रीरामचन्द्रजी हर लेते हैं)।।2।।

सुंदर सुजान कृपा निधान अनाथ पर कर प्रीति जो।
सो एक राम अकाम हित निर्बानप्रद सम आन को।।
जाकी कृपा लवलेस ते मतिमंद तुलसीदासहूँ।
पायो परम बिश्रामु राम समान प्रभु नाहीं कहूँ।।3।।

[परम] सुन्दर, सुजान और कृपानिधान तथा जो अनाथों पर प्रेम करते हैं, ऐसे एक श्रीरामचन्द्रजी ही हैं। इनके समान निष्काम (निःस्वार्थ) हित करनेवाला (सुहृद्) और मोक्ष देनेवाला दूसरा कौन है ? जिनकी लेशमात्र कृपासे मन्दबुद्धि तुलसीदासने भी परम शान्ति प्राप्त कर ली, उन श्रीरामजीके समान प्रभु कहीं भी नहीं हैं।।3।।

दो.-मो सम दीन न दीन हित तुम्ह समान रघुबीर।।
अस बिचारि रघुबंस मनि हरहु बिषम भव भीर।।130क।।

हे श्रीरघुवीर ! मेरे समान कोई दीन नहीं है और आपके समान कोई दीनों का हित करनेवाला नहीं है। ऐसा विचार कर हे

गीताप्रेस गोरखपुर

रघुवंशमणि ! मेरे जन्म-मरणके भयानक दुःखकों हरण कर लीजिये ।।130(क)।।

कामिहि नारि पिआरि जिमि लोभिहि प्रिय जिमि दाम।।
तिमि रघुनाथ निरंतर प्रिय लागहु मोहि राम।।130ख।।

जैसे कामीको स्त्री प्रिय लगती है और लोभी को जैसे धन प्यारा लगता है, वैसे ही हे रघुनाथजी ! हे राम जी ! आप निरन्तर मुझे प्रिय लगिये।।130(ख)।।

श्लोक-यत्पूर्वं प्रभुणा कृतं सुकविना श्रीशम्भुना दुर्गमं
श्रीमद्रामपदाब्जभक्तिमनिशं प्राप्त्यै तु रामायणम्।
मत्वा तद्रघुनाथनामनिरतं स्वान्तस्तंमःशान्तये
भाषाबद्धमिदं चकार तुलसीदासस्तथा मानसम्।।1।।

श्रेष्ठ कवि भगवान् शंकरजीने पहले जिस दुर्गम मानस-रामायणकी, श्रीरामजीके चरणकमलोंके नित्य-निरन्तर [अनन्य] भक्ति प्राप्त होनेके लिये रचना की थी, उस मानस-रामायणको श्रीरघुनाथजीके नाममें निरत मानकर अपने अन्तः करणके अन्धकारको मिटानेके लिये तुलसीदासने इस मानसके रूपमें भाषाबद्ध किया।।1।।

पुण्यं पापहरं सदा शिवकरं विज्ञानभक्तिप्रदं
मायामोहमलापहं सुविमलं प्रेमाम्बुपुरं शुभम्।
श्रीमद्रामचरित्रमानसमिदं भक्त्यावगाहन्ति ये
ते संसारपतंगघोरकिरणैर्दह्यन्ति नो मानवाः।।2।।

यह श्रीरामचरितमानस पुण्यरूप, पापों का हरण करने वाला, सदा कल्याणकारी, विज्ञान और भक्तिको देनेवाला, माया, मोह और मलका नाश करनेवाला, परम निर्मल प्रेमरूपी जलसे परिपूर्ण तथा मंगलमय है। जो मनुष्य भक्तिपूर्वक इस मानसरोवर में गोता लगाते हैं, वे संसाररूपी सूर्यकी अति प्रचण्ड किरणोंसे नहीं जलते।।2।।

कलियुगके समस्त पापोंका नाश करनेवाले श्रीरामचरितमानसका यह सातवाँ सोपान समाप्त हुआ। (उत्तरकाण्ड समाप्त)

गीताप्रेस गोरखपुर

-:श्री रामचरित मानस समाप्त:-